

झरु ल्या अण्डकन " "
पनरयामंदल वल्लन
रीक्षमैस, गोरखपुर

सं० १००४ प्रथम बार १०,०००
सं० २००५ द्वितीय बार १८,०००-

मूल्य ३॥) तीन लया अठ खाना

मिलने का पता —

गी ल अे स , गो र. सु पु र

प्रथम संस्करणका निवेदन

श्रीरामचरितमानसका स्थान हिंदी-साहित्यमें ही नहीं, जगत्के साहित्यमें निराळा है। इसके जोड़का, ऐसा ही सर्वाङ्गसुन्दर, उत्तम काव्यके लक्षणोंसे युक्त, साहित्यके समो-रसोंका आस्वादन करनेवाला, काव्यकलाकी दृष्टिसे भी सर्वोच्च कोटिका तथा आदर्श गृहस्थ-जीवन, आदर्श राजधर्म, आदर्श पारिवारिक जीवन, आदर्श पातिव्रतधर्म, आदर्श भ्रातृधर्मके साथ-साथ सर्वोच्च भक्ति-ज्ञान, त्याग-वैराग्य तथा सदाचारकी शिक्षा देनेवाला, श्री-पुरुष, बालक-वृद्ध और युवा—सबके लिये समान उपयोगी एवं सर्वोपरि स्तुण-साकार भगवान्की आदर्श मानवलीला तथा उनके गुण, प्रभाव, रहस्य तथा प्रेमके गहन तत्त्वको अत्यन्त सरल, रोचक एवं ओजस्वी शब्दोंमें व्यक्त करनेवाला कोई दूसरा ग्रन्थ हिंदी-भाषामें ही नहीं, कदाचित् संसारकी किसी भाषामें आजतक नहीं लिखा गया। यही कारण है कि जिस चाबसे गरीब-अमीर, शिक्षित-अशिक्षित, गृहस्थ-संन्यासी, श्री-पुरुष, बालक-वृद्ध—सभी श्रेणीके लोग इस ग्रन्थरत्नको पढ़ते हैं, उतने चाबसे और किसी ग्रन्थको नहीं पढ़ते तथा भक्ति, ज्ञान, नीति, सदाचारका जितना प्रचार जनतामें इस ग्रन्थसे हुआ है, उतना कदाचित् और किसी ग्रन्थसे नहीं हुआ।

जिस ग्रन्थका जगत्में इतना मान हो, उसके अनेकों संस्करणोंका छपना तथा उसपर अनेकों टीकाओंका लिखा जाना स्वाभाविक ही है। इस नियमके अनुसार रामचरितमानसके भी आजतक सैकड़ों संस्करण छप चुके हैं। इसपर सैकड़ों ही टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं। हमारे गीता-पुस्तकालयमें रामायण-सम्बन्धी ५०० ग्रन्थ भिन्न-भिन्न भाषाओंके आ चुके हैं। अबतक अनुमानतः इसकी लाखों प्रतियाँ छप चुकी होंगी। आये-दिन इसका एक-न-एक नया संस्करण देखनेको मिलता है और उसमें अन्य संस्करणोंकी अपेक्षा कोई-न-कोई

विशेषता अवश्य रहती है। इसके पाठके समन्वये भी रामायणी विद्वानोंमें बहुत मतभेद है, यहाँतक कि कई स्थलोंमें तो प्रत्येक चौपाईमें एक-न-एक पाठभेद मिल-मिल संस्करणोंमें मिलता है। जितने पाठभेद इस ग्रन्थके मिलते हैं, उतने कदाचित् और किसी प्राचीन ग्रन्थके नहीं मिलते। इससे भी इसकी सर्वोपरि लोकप्रियता सिद्ध होती है।

इसके अतिरिक्त रामचरितमानस एक आशीर्वादालम्बक ग्रन्थ है। इसके प्रत्येक पद्यको अद्भुत जोग मन्त्रवत् आदर देते हैं और इसके पाठसे लौकिक एवं पारमार्थिक अनेक कार्य सिद्ध करते हैं। यही नहीं, इसका अद्भुतपूर्वक पाठ करने तथा इसमें आये हुए उपदेशोंका निवारणार्थक मनन करने एवं उनके अनुसार आचरण करनेसे तथा इसमें वर्णित भगवान्की मधुर लीलाओंका चिन्तन एवं कर्तन करनेसे मोक्षरूप परम पुरुषार्थ एवं उससे भी बढ़कर भगवन्मोक्षकी प्राप्ति आसानीसे की जा सकती है। क्यों न हो, जिस ग्रन्थकी रचना गेसामी तुलसीदासजी-जैसे अल्प-भक्तके द्वारा, जिन्होंने भगवान् श्रीसीतारामजीका रूपसे उनकी दिव्य लीलाओंका प्रत्यक्ष अनुभव करके यथार्थ रूपसे कर्णमित्र है, साक्षात् भगवान् श्रीसीतारामजीकी आज्ञासे हुई तथा जिसपर उन्हीं भगवान्ने स्वयं शिव सुन्दरम् लिखकर अपने हाथसे सही की, उसका इस प्रकारका लौकिक प्रमाण कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। ऐसी दशामें इस लौकिक ग्रन्थका जितना भी प्रचार किया जायगा, जितना अधिक पढ़न-पाठन एवं मनन-अनुशीलन होगा, उतना ही जगत्का भङ्गल होगा—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। वर्तमान समयमें तो, जब सर्वत्र हाहाकार मचा हुआ है, मारा संसार दुःख एवं अशान्तिकी भीषण ज्वालासे जल रहा है, जगत्के कोने-कोनेमें मार-काट मची हुई है और प्रतिदिन हजारों मनुष्योंका श्वाभ हो रहा है, करोड़ों-अरबोंकी सम्पत्ति एक-दूसरेके विनाशके लिये कर्ब की जा रही है, विज्ञानकी सारी शक्ति पृथ्वीको शस्त्रास्त्रके रूपमें परिणत करनेमें लगी हुई है, संसारके बड़े-से-बड़े मस्तिष्क संसारके नये-नये साधनोंको रूढ़ निराश्रयमें व्यस्त हैं, जगत्में सुख-शान्ति एवं प्रेम्णा प्रसार करने तथा भगवान्का उपदेशके लिये रामचरितमानसके पाठ एवं अनुशीलनका अवलम्बन परम आवश्यक है।

इसी दृष्टिसे गीताकी मौलिक मानसके भी कई छोटे-बड़े, शुद्ध, प्रामाणिक, सस्ते, सचित्र एवं सटीक संस्करण निकालनेका आयोजन गीताप्रेसके द्वारा किया जा रहा है। इस दिशामें सर्वप्रथम प्रयास आजसे लगभग आठ वर्ष पूर्व हुआ था, जब कि श्रीरामचरितमानसका एक सटीक एवं सचित्र संस्करण कड़े परिश्रमसे प्राचीन प्रतियोंके आधारपर तैयार किया जाकर अन्य उपयोगी सामग्रीके साथ फल्याण्डके विशेषज्ञके रूपमें प्रकाशित किया गया था। उसमें बहुत-सी त्रुटियाँ होनेपर भी मानस-प्रेमी जनताने उसका किताब बाँट दिया, यह सब लोगोंको विदित ही है। कुछ ही वर्षोंमें उसके आठ संस्करण छपे और ७८,६०० प्रतियाँ विक्रय हुई। बीचमें श्रीसीतारामजीकी कृपासे एक मूल गुठका भी छप गया, जिसके छः वर्षों अंदर दस संस्करण एवं दो लाख पैंसठ हजार प्रतियाँ छप चुकी हैं। गुठके टाइप छोटे होनेके कारण एक संस्करण पुस्तकाकार मजबूती साइजमें छपा गया, जिसके दो सालमें तीन संस्करण छपे और ४५,२५० प्रतियाँ विक्री हुई। इनके अतिरिक्त मोटे टाइपमें मूल रामचरितमानसका एक आलोचनात्मक संस्करण भी निकाला गया, जिसमें कई प्राचीन एवं अर्वाचीन प्रतियोंके पाठभेदोंको देते हुए ख-तत्र पाद-टिप्पणीमें अपने पाठकी साधुताको हेतुपूर्वक सिद्ध किया गया तथा मानसकी भाषाको समझनेमें सुविधा हो-इसलिये मानसका एक संक्षिप्त व्याकरण भी उसमें जोड़ दिया गया। इस संस्करणका टाइप मोटा होने तथा आगे दर्जनसे अधिक सुन्दर चित्रोंके चित्र, मानस-व्याकरण, पाठभेद एवं पाद-टिप्पणी आदि रहनेके कारण उसका मूल्य ३॥) रक्खा गया था।

इस प्रकार पिछले कुछ वर्षोंमें मूल रामचरितमानसके तो छोटे-बड़े कई संस्करण निकले; किंतु मानसाङ्कके अतिरिक्त सटीक संस्करण केवल एक ही तरहका, जो बहुत मोटे टाइपमें है, निकल पाया। उसके टाइप बहुत बड़े होनेके कारण उसकी पृष्ठ-संख्या १२०० हो गयी। दो संस्करणोंमें अब उसकी १३,२५० प्रतियाँ छप चुकी हैं। दूसरे संस्करणके दाम ७॥) यह संस्करण भी प्रायः समाप्त हो चुका है। मानसाङ्क स्टायकमें न केवल कारण लोगोंको मिलता नहीं था और मोटे टाइपकी कीमत अधिक कम दाममें एक सटीक संस्करणकी बड़ी आवश्यकता थी, जिसे यह प्रयास है।

इसमें दोहे चौपाइयोंका बही अर्घ दिया गया है, जो मोटे टाड़पवाली प्रतिमें है। पाठ एवं अर्थकी भूलोंके लिये मैं बिना महानुभावोंसे क्षमा-प्रार्थना करता हूँ और भावान्की वस्तु वित्तपूर्वक भगवान्को अर्पित करता हूँ।

विनीत—

हनुमानप्रसाद पोद्दार

दूसरे संस्करणका निवेदन

देशी कागजोंकी प्राप्तिमें अत्यन्त कठिनाईके कारण इस द्वार पुस्तक विदेशी कागजोंपर छपी गयी है और उपलब्ध कागजोंकी साइजके अनुसार ग्रन्थकी साइज भी सुपररायल सोल्डपेजोंसे बढकर डिमाई आठपेजी हो गयी है।

वर्षा विदेशी कागजोंके दाम देशीकी अपेक्षा अधिक लगे हैं, फिर भी ग्रन्थका मूल्य नहीं बढ़ाया गया है।

—प्रकाशक



॥ श्रीहरिः ॥

श्रीरामचरितमानसकी

विषय-सूची

विषय	छा-संख्या	विषय	छा-संख्या
१-नवाहुपारायणके विभाग-स्थान	१४	२२-शिवजीद्वारा सतीका त्याग,	
२-मातुपारायणके विभाग-स्थान	१४	शिवजीकी समाधि ...	४७
३-गोस्वामी तुलसीदासजीकी		२३-सतीका दश-यज्ञमें जाना ...	५१
संक्षिप्त जीवनी ...	१५	२४-पतिके अपमानसे दुखी होकर	
४-श्रीरामचरितका प्रभावकी ...	१९	सतीका योगाद्विसे उस जाना,	
५-पारायण-विधि ...	२१	दश-यज्ञ-विध्वंस ...	५२
बालकाण्ड		२५-पार्वतीका जन्म और लक्ष्म्या	५३
६-मङ्गलान्वरण ...	१	२६-श्रीरामजीका शिवजीसे विवाह-	
७-गुरु-वन्दना ...	२	के लिये अनुरोध ...	५५
८-ब्राह्मण-संत-वन्दना ...	३	२७-सप्तर्षियोंकी परीक्षामें पार्वती-	
९-संन-वन्दना ...	५	जीका महत्त्व ...	५०
१०-संत-असंत-वन्दना ...	६	२८-कामदेवका देवकार्यके लिये	
११-रामरूपसे जीवमायकी वन्दना	९	जाना और भय होना ...	५२
१२-तुलसीदासजीकी दीनता और		२९-उत्तिके वरदान ...	५७
रामभक्तिमयी कविताकी महिमा	९	३०-देवताओंका शिवजीसे व्याहृके	
१३-कवि-वन्दना ...	१५	लिये प्रार्थना करना; सप्तर्षियों-	
१४-वाचस्पति, वेद, ब्रह्मा, देवता,		का पार्वतीके पाठ जाना ...	६७
शिव, पार्वती आदिकी वन्दना ...	१६	३१-शिवजीकी विचित्र वाराह और	
१५-श्रीसीताराम-धाम-परिक्र-		विवाहकी ऐवारी ...	६९
वन्दना ...	१७	३२-शिवजीका विवाह ...	७६
१६-श्रीनाम-वन्दना और नाम-		३३-शिव-पार्वती-संवाद ...	८१
महिमा ...	१९	३४-अन्तारके द्वेष्ट ...	९०
१७-श्रीरामगुण और श्रीराम-		३५-नारदका अधिमान और	
चरितकी महिमा ...	२६	मायाका प्रभाव ...	९४
१८-मानसनिर्माणकी विधि ...	२१	३६-विश्वगोहिनीका स्वर्णवट	
१९-मानसका रूप और माहात्म्य	२२	शिवजीको तथा भगवान्को	
२०-याज्ञवल्क्य-भरत-संवाद		आप और नारदका मोह-मह	९६
तथा प्रयाग-माहात्म्य ...	२९	३७-यन्तु-अतरुणा-तप एवं वरदान	१०४
२१-सतीका अम, श्रीरामजीका		३८-अन्तुप्रदायकी कथा ...	११०
ऐश्वर्य और सतीका खेद ...	४१		

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
३९-रावणादिका जन्म, तरुणा और उनकी ऐश्वर्य तथा अत्याचार ... १२४		५६-श्रीरामचन्द्रजीका प्रवेश ... १७६	
४०-दुष्टों और देवतादिकी कल्प पुकार ... १३०		५७-जनकगृह ... १८२	
४१-भगवान्‌का घरदान ... १३२		५८-जयमाल पहनाना ... १८४	
४२-राजा दशरथका पुत्रोद्दिष्टि यज्ञ, रानियोंका गर्भवती होना ... १३४		५९-श्रीराम-लक्ष्मण और परशुराम- संवाद ... १८८	
४३-श्रीभगवान्‌का प्राकट्य और वाल्मीकीका आनन्द ... १३५		६०-दशरथजीके पास जनकजीका हुत भेजना; अयोध्यासे वाराण- स प्रस्थान ... १९८	
४४-विश्वामित्रका राजा दशरथसे राम-लक्ष्मणको भेजना ... १४६		६१-वाराणसका जनकपुरमें जाना और स्वागतादि ... २०९	
४५-विश्वामित्र-यज्ञकी रक्षा ... १४८		६२-भीष्मता-राम-विवाह ... २२१	
४६-अहल्या-उद्धार ... १४८		६३-वाराणसका अयोध्या लौटना और अयोध्यामें आनन्द ... २३९	
४७-श्रीराम-लक्ष्मणसहित विश्वामित्र- का जनकपुरमें प्रवेश ... १५०		६४-श्रीरामचरित्र मुनने-गानेकी महिमा ... २५१	
४८-श्रीराम-लक्ष्मणको देवककर जनकजीकी प्रेमप्रवृत्ति ... १५२		अयोध्याकाण्ड	
४९-श्रीराम-लक्ष्मणका जनकपुर- निरीक्षण ... १५४		६५-महाराजचरण ... २५३	
५०-पुष्पाटिकानिरीक्षण, सीता- जीका मयम दर्शन, श्री- मैतारामजीका परस्पर दर्शन १५९		६६-रामराज्याभिवेकत्री सैयारी, देवताओंकी व्याकुलता तथा सरस्वतीजीसे उनकी प्रार्थना २५५	
५१-भीष्मताजीका गर्वती-गूजन एवं घरदानप्राप्ति तथा राम- लक्ष्मण-संवाद ... १६४		६७-सरस्वतीका मन्थरकी बुद्धि फेरना; कैकेयी-मन्थरा-संवाद २६१	
५२-श्रीराम-लक्ष्मणसहित विश्वामित्र- का वनमालामें प्रवेश १६८		६८-कैकेयीका कोपमचनमें जाना २६७	
५३-श्रीभीष्मताजीका वनमालामें प्रवेश ... १७४		६९-दशरथ-कैकेयी-संवाद और दशरथ-शोक, सुमन्त्रका महल- में जाना और वहाँसे लौटकर श्रीरामजीको महलमें भेजना ... २६९	
५४-वन्दीजनोंद्वारा जनक-प्रतिष्ठा- की घोषणा ... १७५		७०-श्रीराम-कैकेयी-संवाद ... २७८	
५५-राजाओंसे वनप्र न उठना, जनकजी निराशाजनक वाणी १७५		७१-श्रीराम-दशरथ-संवाद, अश्व- वाहियोंका विषाद, कैकेयीको समझाना ... २८१	
		७२-श्रीराम-कौसल्या-संवाद ... २८६	
		७३-श्रीभीष्म-राम-संवाद ... २९१	
		७४-श्रीराम-कौसल्या-सीता-संवाद २९६	

विषय	पृष्ठ-संख्या
७५-श्रीराम-लक्ष्मण-संवाद ...	२९७
७६-श्रीलक्ष्मण-सुमित्रा-संवाद ...	२९९
७७-श्रीरामजी, लक्ष्मणजी, सीता- जीका महाराज दशरथके पास विदा माँगने जाना, दशरथजी- का सीताजीको समझाना ...	३०१
७८-श्रीराम-सीता-लक्ष्मणका वन- गमन और नगरनिवासियोंको सोये झोड़कर आने-बढ़ना ...	३०३
७९-श्रीरामका शृङ्गवेरपुर पहुँचना, निषादके द्वारा सेवा ...	३०८
८०-लक्ष्मण-निषाद-संवाद, श्रीराम- सीतासे सुमन्त्रका संवाद, सुमन्त्रका लौटना ...	३११
८१-केपटका प्रेम और राक्षस-पार जाना ...	३१६
८२-प्रयाग पहुँचना, भरद्वाज संवाद, यमुनातीरनिवासियोंका प्रेम	३१९
८३-सापत-प्रकरण ...	३२३
८४-यमुनाको प्रणाम, वनवासियों- का प्रेम ...	३२४
८५-श्रीराम-बाल्मीकि-संवाद ...	३३३
८६-चित्रकूटमें निवास, कोलमीनों- के द्वारा सेवा ...	३३८
८७-सुमन्त्रका अवोष्वाको लौटना और सर्वत्र शोक देना ...	३४५
८८-दशरथ-सुमन्त्र-संवाद, दशरथमरण ...	३४८
८९-मुनि वसिष्ठका भरतजीको बुलानेके लिये वृत्त भेजना ...	३५३
९०-श्रीभरत-शुक्राक्ष कागमन और शोक ...	३५४
९१-भरत-वैशम्पत्य-संवाद और दशरथजीकी मन्त्रोक्ति क्रिया	३५७

विषय	पृष्ठ-संख्या
९२-वसिष्ठ-भरत-संवाद, श्रीरामजी- को बुलानेके लिये चित्रकूट जानेकी तैयारी ...	३६२
९३-अवोष्वावासियोंविरुद्ध श्रीभरत- शत्रुघ्न आदिका वन-गमन	३७०
९४-निषादकी शङ्का और सत्वधानी	३७३
९५-भरत-निषाद-मिलन और संवाद और भरतजीका तथा नगरवासियोंका प्रेम ...	३७५
९६-भरतजीका प्रणाम जाना और भरत-भरद्वाज-संवाद	३८२
९७-भरद्वाजद्वारा भरतका उत्कार	३८८
९८-इन्द्र-वृहस्पति-संवाद ...	३९१
९९-भरतजी चित्रकूटके मार्गमें	३९४
१००-श्रीसीताजीका स्थग्न, श्रीराम- जीको कोल-किरातोंद्वारा भरत- जीके आगमनकी सूचना, रामजीका शोक, लक्ष्मणजीका शोक ...	३९७
१०१-श्रीरामजीका लक्ष्मणजीको समझाना एवं भरतजीकी महिमा कहना ...	४०१
१०२-भरतजीका, मन्दाकिनी-कान, चित्रकूटमें पहुँचना, भरतादि लक्ष्मण परस्पर मित्रत्व, पिताका शोक और आह ...	४०२
१०३-वनवासियोंद्वारा भरतजीकी मन्दकीका उत्कार, कैकेयीका फलाचाप ...	४१३
१०४-श्रीवसिष्ठजीका भाषण ...	४१५
१०५-श्रीराम-भरतादिका संवाद ...	४१८
१०६-वनकजीका पहुँचना, कोल- किरातदिकी मेट, लक्ष्मण परस्पर मित्रत्व ...	४२९

क्र.सं.	विषय	पृ.सं.	क्र.सं.	विषय	पृ.सं.
१००-	होमका कुमुदा-संवाद, श्री- दीपदीप शीत ... ४३३		१२२-	होमकाकी कथा, शार्ङ्गका- का सूर्यपुत्रके वध जाना और सूर्यपुत्रादिका वध ... ४८२	
१०८-	अनङ्ग-मुनि-संवाद, महा- वीर्यी महिमा ... ४३७		१२३-	होमकाका रावणके भिक्षु जन्म, श्रीसीताजीका वध; प्रवेश और महा सीता ... ४८८	
१०९-	अनङ्ग-मुनि-संवाद, टन्त्र- की चिन्ता, अरस्वतीका हनुमत् सम्मान ... ४३९		१२४-	श्रीसीताजीका और सर्वभूत- हर्म्ये मारीकका मारा जाना ४९०	
११०-	श्रीराम-भरत-संवाद ... ४४३		१२५-	श्रीसीताजीका और श्रीसीता- मित्रा ... ४९४	
१११-	भरतजीका तीर्थ का स्थापन तथा चित्रकूटप्रणय ... ४५२		१२६-	अनङ्ग-पुत्र-मुद्र ... ४९५	
११२-	श्रीराम-भरत-संवाद, पापुका- भय, भरतजीकी विवाह ... ४५४		१२७-	श्रीरामजीका विवाह, अनङ्ग- का प्रसन्न ... ४९७	
११३-	भरतजीका अयोध्या छोड़ना, भरतजीका वापसी काण्य, अनङ्गजीके विवाह और श्रीरामजीके चरित्र वर्णन ... ४५८		१२८-	अनङ्ग-उद्धार ... ५००	
	अनङ्गकाण्ड		१२९-	अनङ्ग-पुत्र, अनङ्ग-मित्र- उद्देश और अनङ्गजीके और प्रधान ... ५००	
११४-	अनङ्गजीका ... ४५९		१३०-	अनङ्ग-पुत्र-संवाद ... ५०७	
११५-	अनङ्गजीके कुटिलता और काम्य ... ४६६		१३१-	अनङ्गजीके लक्षण और वापस प्रधानके विवेक ... ५०९	
११६-	अनङ्ग-मित्रा एवं वृत्ति ... ४६७			चित्रकूटकाण्ड	
११७-	अनङ्ग-अनङ्ग-मित्रा और श्रीसीताजीके अनङ्गजीका पाणिपुत्र्य ... ४६९		१३२-	अनङ्गजीके हनुमानजीका मित्रा और श्रीराम-मुनिजीकी मित्रा ... ५१४	
११८-	श्रीरामजीका कामे प्रसन्न, श्रीराम-वध और अनङ्गजीके ... ४७२		१३३-	अनङ्गजीका पुत्र, अनङ्ग, वापसकी प्रतिष्ठा, श्रीराम- और अनङ्गजीके वध ... ५१७	
११९-	अनङ्ग-वधकी प्रतिष्ठा करना ... ४७४		१३४-	अनङ्गजीके वध ... ५१९	
१२०-	अनङ्गजीका वध, अनङ्ग- मित्र, अनङ्ग-संवाद, राम का दण्डक-वन प्रवेश और अनङ्गजीके ... ४७४		१३५-	अनङ्गजीके वध, अनङ्ग-उद्धार ... ५२०	
१२१-	अनङ्गजीके वध और श्रीराम- वधका वध ... ४७९		१३६-	अनङ्गजीके वध, अनङ्ग- और अनङ्गजीका वध और अनङ्गजीके वध ... ५२२	

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१३८-वर्षा-श्रुत-वर्णन	... ५२४	१५४-हनुमान् रावण-संवाद	... ५५४
१३९-शरद्-श्रुत-वर्णन	... ५२६	१५५-लङ्कादहन	... ५५८
१४०-श्रीरामकी सुग्रीवपर नाराजी, लक्ष्मणजीका कोप	... ५२७	१५६-लङ्का जलनेके बाद हनुमान्- जीका सीताजीसे विदा मँगना और चूड़ामणि पाना	... ५५८
१४१-सुग्रीव-राम-संवाद और सीता- जीकी खोजके लिये बंदरोंका प्रस्थान	... ५२९	१५७-समुद्रके इस पार आना, सयका लौटना, मधुवनप्रवेश, सुग्रीव-मिलन, श्रीराम- हनुमान्-संवाद	... ५५९
१४२-गुफामें तपस्विनीके दर्शन	... ५३२	१५८-श्रीरामजीका बानरोंकी सेनाके साथ चलकर समुद्रतटपर पहुँचना	... ५६३
१४३-बानरोंका समुद्रतटपर आना, तम्पारीसे भेंट और बातचीत	५३३	१५९-मन्दोदरी-रावण-संवाद	... ५६५
१४४-समुद्र लोपनेका परामर्श, जान्बन्तका हनुमान्जीको बल बाद दिखकर उत्ताहित करना	... ५३५	१६०-रावणको विभीषणका समझाना और विभीषणका अपमान	... ५६६
१४५-श्रीराम-गुणका माहात्म्य	... ५३७	१६१-विभीषणका भयवान् श्रीराम- जीकी शरणके लिये प्रस्थान और शरणप्राप्ति	... ५६९
सुन्दरकाण्ड		१६२-समुद्र पार करनेके लिये विचार, रावणदूत युक्तता आना और लक्ष्मणजीके पत्रको देकर लौटना	... ५७४
१४६-नल्लालचरण	... ५३९	१६३-दूतका, रावणको समझाना और लक्ष्मणजीका पत्र देना	५७६
१४७-हनुमान्जीका लङ्काको प्रस्थान, सुरतासे भेंट, छाया पड़ने- वाली राक्षसीका वध	... ५४०	१६४-समुद्रपर श्रीरामजीका क्रोध और समुद्रकी विनती	... ५७९
१४८-लङ्कादर्शन, लङ्कामें प्रवेश	... ५४२	१६५-श्रीरामगुणगानकी महिमा	... ५८१
१४९-हनुमान्-विभीषण-संवाद	... ५४४	लङ्काकाण्ड	
१५०-हनुमान्जीका अयोध्याटिका- में सीताको देखकर दुखी होना और रावणका सीताजी- को भय दिखलाना	... ५४५	१६६-मल्लालचरण	... ५८३
१५१-श्रीसीता-निवृत्ता-संवाद	... ५४८	१६७-नल्लालद्वारा पुल बौधना, श्रीरामजीद्वारा श्रीरामेश्वरकी स्थापना	... ५८४
१५२-श्रीसीता-हनुमान्-संवाद	... ५४९	१६८-श्रीरामजीका सेनासहित समुद्र पार उतरना, मुत्तैलवर्तपर निवास, रावणकी आक्रुतता	५८६
१५३-हनुमान्जीद्वारा अयोध्या- वाटिका-विध्वंस, अक्षयकुमार- वध और मेघनादका हनुमान्- जीको नागपाशमें बाँधकर सभामें ले जाना	... ५५२		

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१६९-राजपूतों	मंदोदरीका	१८३-कुम्भकर्ण-युद्ध और टमकी	
समग्रान्तः राजपूत-संवाद	५८७	परमवर्ति	६२२
१७०-मुद्रांगक और रामजीकी छाँटी		१८४-मेघनादका युद्धः रामजीका	
और चन्द्रोदयवर्णन ...	५९९	लीकते नामधर्मों वेषाना	६१७
१७१-भीरामजीके काको राजपूतों		१८५-मेघनाद-कल-विजय, युद्ध	
मुकुट-स्यारिका भिन्ना ...	५९३	और मेघनाद-उद्धार ...	६४०
१७२-मंदोदरीका फिर राजपूतों		१८६-राजपूतों युद्धके लिये प्रस्थान	
समग्रान्तः और भीरामजी		और भीरामजीका विजय-रथ	
सदिया करना	५९४	रथा चानर-राजपूतों युद्ध	६४३
१७३-मंदोदरीका कंका जाना और		१८७-समग्र-राजपूत-युद्ध ...	६४७
राजपूतों समग्रान्तः मंदोदरीका		१८८-राजपूत-सूक्त, राजपूत-वर्ण	
संवाद	५९६	विजय, राम-राजपूत युद्ध ...	६४८
१७४-राजपूतों पुनः मंदोदरीका		१८९-इन्द्रका भीरामजीके लिये रथ	
समग्रान्तः	६११	मेघना, राम-राजपूत-युद्ध ...	६५३
१७५-मंदोदरीका संवाद ...	६१२	१९०-राजपूतों विभीषणका	
१७६-मुद्रांगक	६१४	कंदेना, रामजीका अन्तिकी	
१७७-मत्स्यराजका राजपूतों		अपने ऊपर लेता; विभीषण-	
समग्रान्तः	६२०	राजपूत-युद्ध	६५७
१७८-समग्रान्तः मेघनाद-युद्ध, समग्र-		१९१-राजपूत-सुगन्ध-युद्ध, राजपूतों	
जीकी छवि बनाता ...	६२३	समा राजपूत, रामजीका	
१७९-सुगन्ध-युद्ध, सुगन्ध		समा नाम	६५८
समा रामजीकी छवि		१९२-मोर युद्धः राजपूतों सूक्त	६६१
जाना, रामजीका राजपूत-संवाद		१९३-विजय-जीता-संवाद ...	७६२
मकी-उद्धार-कावेमि-उद्धार	६२५	१९४-राम-राजपूत-युद्धः राजपूतों	
१८०-मत्स्यजीके अन्तिके सुगन्ध		संवाद अन्तिके	६६४
सुगन्ध होना, मत्स्य-सुगन्ध-		१९५-मंदोदरी-भिन्ना, राजपूतों	
संवाद	६२७	अन्तिके-भिन्ना	६६८
१८१-भीरामजीकी प्रसन्न-सूक्त		१९६-विभीषणका राजपूतों-संवाद ...	६७०
सुगन्ध-युद्ध-संवाद, समग्र-		१९७-सुगन्ध-युद्ध, सुगन्ध	
जीका उद्धार	६२८	सुगन्ध, सुगन्ध, सुगन्ध	
१८२-राजपूतों कुम्भकर्णकी समग्रान्तः		सुगन्ध और अन्तिकी ...	६७१
कुम्भकर्णका राजपूतों उद्धार		१९८-देवताओंकी सुक्ति, इन्द्रकी	
और विभीषण-कुम्भकर्ण-		अभुक्तता	६७२
संवाद	६३०		

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१९९-विभीषणकी शर्यतः, श्रीराम- जीके द्वारा भरतजीकी प्रेम- दशाका वर्णन, शीघ्र अर्बोच्या पहुँचानेका अनुरोध ... ६७९		२१२-श्रीराम-चरित्र-संवाद, श्रीराम- जीका माहबोसद्वि अमराईमें जाना ... ७२५	
२००-विभीषणका कसबाभूषण तरसाना और वानर-भाष्टुओं- का उन्हें पहनना ... ६८१		२१३-नारदजीका आना और स्तुति करके ब्रह्मलेनको छोट जाना ७२७	
२०१-पुष्पक विमानपर चढ़कर श्रीसीतारामजीका अन्धके लिये प्रस्थान ... ६८२		२१४-शिव-पार्वती-संवाद, गङ्ग-मोह, गङ्गजीका काकमुष्ण्डिके राम-कथा और राम-महिमा सुनना ... ७२८	
२०२-श्रीरामचरित्रकी महिमा ... ६८५		२१५-काकमुष्ण्डिकन अपनी पूर्व- जन्मकथा और कल्मिहिमा कहना ... ७४४	
उत्तरकाण्ड		२१६-गुस्तीका अपमान एवं शिवजीके शापकी बात सुनना ७६७	
२०३-मङ्गल-वचन ... ६८७		२१७-वृत्राटक ... ७६९	
२०४-भरत-विरह तथा भरत- हनुमान्-मिलन, अयोध्यामें आनन्द ... ६८८		२१८-गुस्तीका शिवजीसे अस्त्र- आखण्ड, शापनुग्रह और काकमुष्ण्डिकी भावैकी कथा ७७१	
२०५-श्रीरामजीका स्वागत, भरत- मिलन, लक्ष्मण मिलनमन्द ६९२		२१९-काकमुष्ण्डिकीका क्षेमशर्माके पुत्र जाना और जाय तथा अंगुग्रह पाना ... ७७४	
२०६-राम-राक्षसामिके, वेद-स्तुति, शिव-स्तुति ... ६९८		२२०-ज्ञान-मक्ति-निरूपण, ज्ञान- दीपक और भक्तिकी महान् महिमा ... ७७९	
२०७-वानरोंकी और निषादकी विवाह ... ७०४		२२१-गङ्गजीके साथ प्रथम तथा काकमुष्ण्डिके उत्तर ... ७८६	
२०८-रामराज्यका वर्णन ... ७०७		२२२-स्वप्न-महिमा ... ७८६	
२०९-पुत्रोत्पत्ति, अयोध्याजीकी रमणीयता, सनकादिका आगमन और संवाद ... ७१०		२२३-सामन्त-व्याहृत्य, तुलसी- विनय और फलस्तुति ... ७९१	
२१०-हनुमान्जीके द्वारा भरतजीका प्रथम और श्रीरामजीका उपदेश ७१८		२२४-श्रीरामायणजीकी आरती ... ७९८	
२११-श्रीरामजीका प्रजाको उपदेश (श्रीरामगीता), पुराणस्मरण ... ७२२			



जि.पु.नं.

४		५	
१-मोपारी	मोपारी	१-मोपारी (रबी)	५११
	(रबी) ...	२-मोपारी (रबी)	५१२
२-मोपारी (रबी)	...	३-मोपारी (रबी)	५१३
३-मोपारी (रबी)	...	४-मोपारी (रबी)	५१४
४-मोपारी (रबी)	...	५-मोपारी (रबी)	५१५
५-मोपारी (रबी)	...	६-मोपारी (रबी)	५१६

जयश्यामरावराव विष्णूराव

क्र	क्र	क्र	क्र
१०	१०	१०	१०
११	११	११	११
१२	१२	१२	१२
१३	१३	१३	१३
१४	१४	१४	१४
१५	१५	१५	१५

सामान्यतः विद्यार्थी-समूह

क्र	विषय	पृष्ठ
१	विषय	१
२	विषय	२
३	विषय	३
४	विषय	४
५	विषय	५
६	विषय	६
७	विषय	७
८	विषय	८
९	विषय	९
१०	विषय	१०
११	विषय	११
१२	विषय	१२
१३	विषय	१३
१४	विषय	१४
१५	विषय	१५
१६	विषय	१६
१७	विषय	१७
१८	विषय	१८
१९	विषय	१९
२०	विषय	२०
२१	विषय	२१
२२	विषय	२२
२३	विषय	२३
२४	विषय	२४
२५	विषय	२५
२६	विषय	२६
२७	विषय	२७
२८	विषय	२८
२९	विषय	२९
३०	विषय	३०
३१	विषय	३१
३२	विषय	३२
३३	विषय	३३
३४	विषय	३४
३५	विषय	३५
३६	विषय	३६
३७	विषय	३७
३८	विषय	३८
३९	विषय	३९
४०	विषय	४०
४१	विषय	४१
४२	विषय	४२
४३	विषय	४३
४४	विषय	४४
४५	विषय	४५
४६	विषय	४६
४७	विषय	४७
४८	विषय	४८
४९	विषय	४९
५०	विषय	५०
५१	विषय	५१
५२	विषय	५२
५३	विषय	५३
५४	विषय	५४
५५	विषय	५५
५६	विषय	५६
५७	विषय	५७
५८	विषय	५८
५९	विषय	५९
६०	विषय	६०
६१	विषय	६१
६२	विषय	६२
६३	विषय	६३
६४	विषय	६४
६५	विषय	६५
६६	विषय	६६
६७	विषय	६७
६८	विषय	६८
६९	विषय	६९
७०	विषय	७०
७१	विषय	७१
७२	विषय	७२
७३	विषय	७३
७४	विषय	७४
७५	विषय	७५
७६	विषय	७६
७७	विषय	७७
७८	विषय	७८
७९	विषय	७९
८०	विषय	८०
८१	विषय	८१
८२	विषय	८२
८३	विषय	८३
८४	विषय	८४
८५	विषय	८५
८६	विषय	८६
८७	विषय	८७
८८	विषय	८८
८९	विषय	८९
९०	विषय	९०
९१	विषय	९१
९२	विषय	९२
९३	विषय	९३
९४	विषय	९४
९५	विषय	९५
९६	विषय	९६
९७	विषय	९७
९८	विषय	९८
९९	विषय	९९
१००	विषय	१००

.C 2-000000-0-000



उत्पत्ति निम्न-संज्ञावली

60 - 100

100-000

श्रीरामशलाका प्रभावली

मानवानुरागी महानुभावोंको श्रीरामशलाका प्रभावलीका विशेष परिचय देनेकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। उसकी महत्ता एवं उपयोगितासे प्रायः सभी मानसंगेभी परिचित होंगे। अतः नीचे उसका स्वल्पमात्र अङ्कित करके उससे प्रभोक्त निकालनेकी विधि तथा उसके उत्तर-फलका उल्लेख कर दिया जाता है। श्रीरामशलाका प्रभावलीका स्वरूप इस प्रकार है—

मु	प्र	उ	वि	हो	मु	म	त	सु	नु	वि	व	वि	ह	र
र	र	र	र	र	र	र	र	र	र	र	र	र	र	र
सु	सो	ग	सु	कु	म	स	ग	त	न	ई	उ	व	व	नो
त्य	र	न	कु	नो	म	रि	र	र	अ	की	हो	सं	रा	य
पु	पु	य	सी	बै	ह	म	म	सं	क	र	हो	सं	स	नि
त	र	त	र	र	ह	ह	म	प	वि	सु	य	स	ह	ह
म	का	र	र	मा	मि	सी	म	ल	बा	कु	हो	ह	ह	ह
हा	रा	र	सी	ह	का	फ	वा	मि	ई	र	रा	पु	ह	ह
नि	की	मि	गो	म	म	न	प	ने	मनि	क	व	प	स	ह
हि	म	म	रि	न	द	न	प	म	मि	मि	मनि	त	व	व
ति	सु	न	हो	मि	व	र	म	सु	स	ह	का	स	ह	ह
शु	क	म	हो	मि	म	हो	न	व	न	ती	न	रि	म	ह
मा	पु	म	हो	र	का	ए	ह	र	न	सु	व	व	व	व
वि	ह	ह	ह	ह	ह	ह	ह	ह	ह	ह	ह	ह	ह	ह
र	रा	र	र	र	र	र	र	र	र	र	र	र	र	र

इस रामशलाका प्रभावलीके द्वारा जिस किसीको जब कभी अपने अमीश प्रभका उत्तर प्राप्त करनेकी इच्छा हो तो सर्वप्रथम उस व्यक्तिको मगसात श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर मन्त्र-विद्याकर्मका मन्त्र अमीश प्रभका चिन्तन करते हुए प्रभवालीके मन्त्रादे कोष्ठकमें सँभली या कोई इच्छाका रत्न देना चाहिये और उस कोष्ठकमें जो अक्षर हो उसे अलग किसी करि चमक या खेदपर लिख देना चाहिये। प्रभावलीके कोष्ठकपर भी ऐसा कोई चिह्नन देना चाहिये जिससे न तो प्रभावली गंभी हो और न प्रभोक्त प्रसन्न होनेके लक्ष कोष्ठक नष्ट जाय। अब जिस कोष्ठकका अक्षर लिख लिया गया है उससे आगे बढ़ना चाहिये तथा उसके नवें कोष्ठकमें जो अक्षर पड़े उसे भी लिख देना चाहिये। इस प्रभर प्रति नवें अक्षरके दवें अक्षरको क्रमसे लिखते जाना चाहिये और उनतक लिखते जाना चाहिये, जबतक सही पहले कोष्ठकके अक्षरतक सँभली अथवा शलाका न पहुँच जाय। पहले कोष्ठकका अक्षर जिस कोष्ठकके अक्षरसे नवें पड़ेगा, वहतक पहुँचते-पहुँचते एक चौमई, पूरी हो जायगी, जो प्रभकचकि अमीश प्रभका उत्तर होगी। यही इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि किसी-किसी

मोहमें केवल 'आ' ही मात्र (१) और किसी किसी मोहमें दो-दो प्रकार हैं। अतः भिन्नते समय व हो मानासे मोहमें मोह देना चाहिये और न दो अक्षरोंवाले मोहमें दो बार मिश्र चाहिये। वहाँ मात्राका मोहक जाने वहाँ पूर्वलिखित अक्षरके आगे मात्रा लिख देना चाहिये और वहाँ दो अक्षरोंका मोहक जाने वहाँ दोनों अक्षर एक साथ लिख देने चाहिये।

एक उदाहरणके लिये इस उदाहरणका प्रमाणार्थि किसी एकके उत्तरमें एक चौपाई निकल दी जाती है। फलक जानते देखें। किसीने मयका नौरातमन्दवीरता जान और अपने प्रबन्ध लिखन करते हुए यदि प्रभावार्थिक इस विह्वले समुक्त 'म' वाले मोहमें दौड़ने का अन्तका लक्ष्य और वह अक्षर वक्ष्ये कामके अनुसार अक्षरोंको गिन-गिनकर लिखा गया हो उत्तरलक्ष्य वह चौपाई का अक्षर—

हो है तोई और मकर विराट् । ओकरि हर कब क र हिं स प ॥

यह चौपाई अक्षरप्रमाणार्थि विर और पर्वर्षिके उत्तरमें है। अक्षरार्थके इस उत्तरलक्ष्य चौपाई के अक्षर निकलना चाहिये कि अक्षर होनेमें सन्देह है, अतः इसे भ्रमाक्षर मोह देना अक्षरप्रमाण है।

इस चौपाईके अक्षरार्थिक अक्षरप्रमाण अक्षरप्रमाण आठ चौपाईयों और बनती हैं, उन सभी का नाम और अक्षर उत्तरलक्ष्य केने दिया जाता है। कुछ नौ चौपाईयों हैं।

१-पुनः सित लक्ष्मी हरी । पूछि सन सनत तुम्हरी ॥

काम—यह चौपाई अक्षरप्रमाणमें अक्षरप्रमाणों की प्रमाणों प्रमाणों है। अक्षरप्रमाणों की प्रमाणों की प्रमाणों दिया है।

काम—अक्षरप्रमाणों का उत्तर है, अक्षर प्रमाणों है।

२-अक्षर प्रमाणों का उत्तर है, अक्षर प्रमाणों का उत्तर है ॥

काम—यह चौपाई अक्षरप्रमाणों का उत्तर है, अक्षर प्रमाणों का उत्तर है।

काम—अक्षरप्रमाणों का उत्तर है, अक्षर प्रमाणों का उत्तर है।

३-अक्षर प्रमाणों का उत्तर है, अक्षर प्रमाणों का उत्तर है ॥

काम—यह चौपाई अक्षरप्रमाणों का उत्तर है, अक्षर प्रमाणों का उत्तर है।

काम—यह अक्षर प्रमाणों का उत्तर है, अक्षर प्रमाणों का उत्तर है।

४-अक्षर प्रमाणों का उत्तर है, अक्षर प्रमाणों का उत्तर है ॥

काम—यह चौपाई अक्षरप्रमाणों का उत्तर है, अक्षर प्रमाणों का उत्तर है।

काम—यह अक्षर प्रमाणों का उत्तर है, अक्षर प्रमाणों का उत्तर है।

५-अक्षर प्रमाणों का उत्तर है, अक्षर प्रमाणों का उत्तर है ॥

काम—यह चौपाई अक्षरप्रमाणों का उत्तर है, अक्षर प्रमाणों का उत्तर है।

काम—अक्षर प्रमाणों का उत्तर है, अक्षर प्रमाणों का उत्तर है।

६-अक्षर प्रमाणों का उत्तर है, अक्षर प्रमाणों का उत्तर है ॥

बीहरी:

गोस्वामी तुलसीदासजीकी संक्षिप्त जीवनी

प्रयागके पास बाँदा जिलेमें राजपुर नामक एक ग्राम है, वहाँ मात्माराम तूवे नामके एक प्रतिष्ठित सरपंचाधीन नासब रहते थे। उनकी धर्मपत्नीका नाम दुखसी था। संवत् १५५४ की आषाढ शुक्ल अष्टमीके दिन मधुकरमूक नववर्षमें इन्हीं मात्माराम दम्पति-के यहाँ राख गद्दीनाथ गर्भमें रहनेके पञ्चाश, गोस्वामी तुलसीदासजीका जन्म हुआ। जन्मते समय काळ तुलसीदास रोये नहीं, किन्तु उनके बुल्लेसे 'धाम' का शब्द निकला। उनके शुरुमें बालोंमें दाँत पैदा हो गये। उनका डील-डौल पाँच वर्षके बालकका-सा था। इस प्रकारके बहुत बालकको देखकर विद्या अमलकाजी धातुसे भयभीत हो गये और उसके सम्मुखमें कई प्रकारकी कल्पनएँ करने लगे। माता दुखसीको यह देखकर बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने नाथके अन्तिमी आशुहृष्टी वंशमीसे राखको मज्जात पिछुको अपनी दासीके साथ उसके समुदास में भेज दिया और बूढ़े दिन स्वयं गलार संतासे चले बसी। दासीने जिसका नाम चुनियाँ था, वड़े प्रेम्से शालकका पालन-पोषण किया। यह तुलसीदास लगभग साढ़े पाँच वर्षके हुए, चुनियाँका भी दैवान्त हो गया, अब तो शालक अनाथ हो गया। यह इतर-इतर भटकने लगा। इतर कागलननी पार्वतीको उठ होनहार बालककर देना आनी। वे बालकीका वेध धारण कर प्रतिदिन उसके पास जाती और उसे अपने हाथों में मोकन करा जाती।

इतर लगभग छहवर्षकी प्रेमासे रामबोलकर रहनेवाले श्रीमन्मन्मन्दीकी नाम शिष्य श्रीनरहरिनाथजीने इस बालकको हँस निकाला और उसका नाम रामबोल रखा। उसे वे अयोध्या के मने और वर्ष १५६१ माघ शुक्ल पक्षमी शुक्लवारको उसका पशोपनीषत्संस्कार कराया। बिना विज्ञाने ही बालक रामबोलने गायत्री मन्त्रका उच्चारण किया। बिदे देखकर सब लोग चकित हो गये। इसके बाद बरहरी स्वामीने वैष्णवीके पाँच संस्कार करके रामबोलको राम-मन्त्रकी बीजा बी और कपोलबीमें रहकर उन्हें विद्याभ्यसन करने लगे। बालक रामबोलकी बुद्धि बढ़ी प्रकर गी। एक बार गुस्सेसे जो दुन लेते थे, उन्हें वह कटख हो जाता था। चौथे कुछ दिन बाद गुप्त-शिष्य दोनों सूरसेध (कोरी) खुँचे। वहाँ श्रीनरहरिजीने तुलसीदासको रामचरित सुनाया। कुछ दिन बाद वे कसी चले आये। कसीमें वेध सनातनवीके पञ्च राजर तुलसीदासने पंद्रह वर्षक वेद-वेदाङ्गका अध्ययन किया। इतर उनकी लोक-नाटका कुछ प्राप्त हो उठी और काने निजगुस्ते काका लेकर वे अपनी कन्याशुभिको लेट आये। वहाँ

आकर उन्होंने देखा कि उनका परिभार सब गढ़ हो चुका है। उन्होंने त्रिपुल्लक अपने मित्र आदिका आद किता और वहीं रहकर जोगीभो भगवान् रामजी कथा सुनाने लगे।

संवत् १५८१ ज्येष्ठ शुद्ध १३ बुधवारको भाद्रपदज्योतिषी एक सुन्दरी कन्याके साथ उनका विवाह हुआ और वे सुखपूर्वक अपनी नवविवाहित कपूके साथ रहने लगे। एक बार उनकी स्त्री माँके साथ अपने सबके जन्मे गयी। पीछे पीछे तुलसीदासजी भी वहाँ जा पहुँचे। उनकी नानीने इसपर उन्हें बहुत विस्मय और कहा कि छोरे, इस हाव-भावके धरीरों मिली तुम्हारी आत्मा कि है, उल्टे जायी भी यदि भगवन्में होनी हो तुम्हारा देहा पार हो गया होला।

तुलसीदासजीको ये शब्द कम गये। वे एक क्षण भी नहीं रुके, दूरत चले गये।

यही आकर तुलसीदासजी प्रयाग गये। वहाँ उन्होंने रहस्य-वैराग्य परित्याग कर साधुत्व प्राप्त किया। फिर लोहाटन करते हुए पक्षी पहुँचे। भगवन्कोरके पक्ष उन्हें काफ़ी प्रसन्न कर दिया।

कारणों तुलसीदासजी रामनाम करने लगे। वहाँ उन्हें एक दिन एक प्रेव मिला, जिसने उन्हें हनुमानजीका पद बताया। हनुमानजीसे मिलकर तुलसीदासजीने उनसे श्रीरामजीका दर्शन कानेकी शर्चना की। हनुमानजीने कहा, धुनै विप्रकूटमें रामावलीके दर्शन होंगे। इसपर तुलसीदासजी विप्रकूटकी ओर चले गये।

विप्रकूट पहुँचकर रामचन्द्र उन्हींने अपना आसन जमाया। एक दिन वे प्रवृत्ति करने लगे थे। मार्गमें उन्हें श्रीरामके दर्शन हुए। उन्होंने देखा कि दो पक्षे ही सुन्दर रामकुमार बोहोतर लहर होकर पतन-पथ लिये जा रहे हैं। तुलसीदासजी उन्हें देखकर क्रोध हो गये, परन्तु उन्हें प्रवृत्ति न रहे। पीछे हनुमानजीने जानी उन्हें सारा भेद प्रकट तो वे क्या प्रभाव करने लगे। हनुमानजीने उन्हें सान्त्वने की ओर दृष्ट प्रभावकर फिर दर्शन होने।

संवत् १६०७ की जैनी अमवस्या शुक्लपक्षके दिन उनके सामने भगवान् श्रीराम पुनः प्रकट हुए। उन्होंने वाक्यमर्मों तुलसीदासजीसे कहा—बन्ना। हमें चन्दन से हनुमानजीने पोता, वे इस घर की पोता न ला जायें, इसलिये उन्होंने दोहेका से धारण कर वह दोहा कहा—

निजकृपेन चर मर संन की मर। तुलसीदास चंदन मिले मिले देव रघुवीर ॥

तुलसीदासजी उस अद्भुत जन्मके निहारकर खीरकी मुग्धि मूढ गये। भगवान् अपने हाथों चन्दन लेकर अपने तथा तुलसीदासजीके ससकल कथाया की अन्वर्धन हो गये।

संवत् १६२८ में ये हनुमत्स्त्रीकी आवाते भयोच्चासी और चल पड़े। उन दिनों प्रयागमें भाघमेज था। वहाँ कुछ दिन वे ठहर गये। पक्के छः दिन बाद एक बटवृक्षके नीचे उन्हें भद्राज और बाळकृष्ण मुनिके दर्शन हुए। वहाँ उस समय वही कथा हो रही थी, जो उन्होंने स्कंधशेखरों अपने गुह्ये सुनी थी। वहाँसे वे काशी चले आये और वहाँ प्रह्लादशठपर एक ब्राह्मणके घर निवास किया। वहाँ उनके बंदर कविल-शक्तिसे स्मरण हुवा और वे संस्कृतमें पद्य-रचना करने लगे। परन्तु दिनमें वे जितने पद्य रचते, रात्रिमें वे सब भूल हो जाते। कई बरोंका येन बरती। आठवें दिन तुलसीदासजीको स्वप्न हुआ। भगवान् सङ्कल्पने उन्हें आदेश दिया कि तুম अपनी भाषामें काव्य-रचना करो। तुलसीदासजीकी नींद उलट गयी। वे उठकर बैठ गये। उसी समय भगवान् शिव और पार्वती उनके सामने प्रकट हुए। तुलसीदासजीने उन्हें नाशक प्रणाम किया। शिवजीने कहा—तुम भयोच्चामें जाकर रहो और हिन्दीमें काव्य-रचना करो। मेरे आशीर्वादसे; तुम्हारी कविता, रामसेवके; समान; फलवती होगी। इसका कहकर श्रीगौरीशङ्कर अन्तर्धान हो गये। तुलसीदासजी उनसे आशा, शिरोधार्य, कर, काशीसे भयोच्चा चले आये।

संवत् १६३१ का प्रारम्भ हुआ। उस साल रामनवमीके दिन प्रातः वैशा ही पौषा था जैसा जेवामुगमें रामनवमीके दिन था। उस दिन प्रातःकाल श्रीतुलसीदासजीमें श्रीरामचरितमानसकी रचना प्रारम्भ की। दो-मर्त्य; सप्त महीने, छत्तीस दिनमें, सप्तकी समाप्ति हुई। संवत् १६३१ के मार्गशीर्ष शुक्लपक्षमें, रामविवाहके दिन काशी काव्य पूर्ण हो गये।

इसके बाद महाप्रभुकी आज्ञासे; तुलसीदासजी, काशी, पले जाये। वहाँ उन्होंने भगवान् विश्वनाथ और भक्त अन्नपूर्णाको श्रीरामचरितमानस सुनवा। रात्रिके पुस्तक श्रीविश्वनाथजीके मन्दिरमें रख दी गयी। सबै जब पद सोया गया, तो उसपर लिखा हुआ पाया गया—‘स्वयं शिवं सुन्दरम्’ और नीचे भगवान् ब्रह्मकी लक्ष्मी थी। उस समय उपस्थित लोगोंने ‘स्वयं शिवं सुन्दरम्’ की भाषा में कर्णोत्ते सुनी।

इसपर पण्डितोंने जब यह बात सुनी तो उनके मनमें ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वे एक बौध्दक तुलसीदासजीकी भिन्ना करने लगे और उस पुस्तकको भी नष्ट कर देनेका प्रयत्न करने लगे। उन्होंने पुस्तक चुरानेके लिये दो चोर भेजे। चोरोंने जाकर देखा कि तुलसीदासजीकी कुटीके आख्यात दो धीर पुरुष-नाम लिये गए थे थे हैं। वे बड़े ही सुन्दर स्वाम और गौर जबकि वे। उनके दर्शनसे चोरोंकी बुद्धि छूट हो गयी। उन्होंने उसी समयसे चोरी करना छोड़ दिया और भक्तमें जा गये। तुलसीदासजीने अपने लिये भगवान्को पद हुवा जान कुटीर सरा समान छत्र दिया, पुस्तक अपने शिव

दोहरमन्त्रे यहाँ रख दी। इसके बाद उन्होंने एक दूसरी प्रति लिखी। उसीके आधार पर दूसरी प्रतिलिखी वेंगार की जाने लगी। पुस्तकका प्रचार दिनोदिन बढ़ने लगा।

इस पण्डितोंने और कोई उपाय न देख श्रीमधुसूदन सरस्वतीजीको उस पुस्तकको देखनेकी प्रेरणा दी। श्रीमधुसूदन सरस्वतीजीने उसे देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और उसपर यह सम्पत्ति लिख दी—

भगवत्प्राप्तये सुखितुल्यमस्तुकस्योदकः। कवित्वा मङ्गरी अस्मि समस्तभक्तभूषिताः ॥

एतत् कालीकामी भगवत्प्राप्तये। दुर्गादीनाम् चमत्कार-चित्रात्। दुर्गादीनाम् यौगा है। उसकी कवित्वा मङ्गरी यही ही सुन्दर है। जिसपर श्रीरामकामी मैत्रा यद्वा मैत्राय करता है।

पण्डितोंको इसपर भी सन्देह नहीं हुआ। उन पुस्तककी परीभाका एक उपाय और सोचा गया। अन्तर्गत निम्नलिखित सामने लम्बे ऊपर पैदा, उनके नीचे बाएँ, बाएँके नीचे पुराण और उनके नीचे रामचरितमानस रख दिया गया। मन्दिर बंद कर दियोगया। प्रातःकाल जब मन्दिर खोल गया तो लोगोंने देखा कि श्रीरामचरितमानस केदोके समस्त पुराण। हुआ है। अब तो पण्डित लोग बड़े खिन्न हुए। उन्होंने दुर्गादासजीसे शयन नौमी और भोजनसे उनका परपोरक किया।

दुर्गादासजी अब बड़ी खटपर रहने लगे। रातको दैत्य द्वार कल्पित मूर्तोंपर धारण कर उनके पाठ किया और उन्हें प्राप्त देने लगा। गोस्वामीजीने हनुमानजीका भजन किया। हनुमानजीने उन्हें निम्नलिखित कर रक्तेको कहा। इसपर गोस्वामीजीने विनय-परिष्कार किया और भगवाणके चरणोंमें उसे समर्पित कर दी। श्रीरामने उसपर अपने हस्ताक्षर कर दिये और दुर्गादासजीको निर्णय कर दिया।

सन् १९८० मङ्गल कुण्ड सुदीपा दीनिकारको अग्नीषाठपर गोस्वामीजीने राम-राम करते हुए अन्न की परित्याग किया।



स्थान—यह चौलाई श्रीहनुमानजीके लंकारों प्रवेश करनेके समयकी है।

फल-प्रदान बहुत भेद है । कार्य सफल होना ।

७-यस्य कुम्भे सुरेस समीप । रत्न-समगुप्त परि बद्ध न पीत ॥

स्वाय-यह चौपार्हः खंभकाण्डमें रावयकी मुखके पश्चात् मन्दोदरीके बिलापके प्रसंगमें है ।

प्रत्येक कार्य पूर्ण होनेमें उन्देह है।

८-सुफल मन्त्रेण हर्षे तुम्हारे । रामु लब्धु सुनि भए सुखारे ॥

समाप्त—यह 'सौभाग्य' शब्दकण्ठमें पुष्पवदिकासे पुष्प खानेपर विश्रामिजनीका आशीर्वाद है।

पण्ड-प्रश्न बहुत उत्तम है । सर्व सिद्ध होगा ।

इस प्रकार 'सामाजिक'का प्रभावशीलते कुछ नौ चौपाइयों बनती हैं, जिनमें सभी प्रकारके प्रश्नोंके उत्तराद्यम सम्बन्धित हैं।

पारायण-विधि

श्रीरामचरितमानसका विधिपूर्वक पाठ करनेवाले श्रद्धालुओंको पाठारम्भके पूर्व श्रीगुरुदेवकी, श्रीबाबाजीकी, श्रीपितृकी तथा श्रीहनुमद्दीक्षा आवाहन-पूजन करनेके पश्चात् तीनों भाइयोंसहित श्रीवैद्यरामजीका आवाहन, पोखरोपचार पूजन और स्नान करना चाहिये। एवंन्तर पाठका आरम्भ करना चाहिये। इसके आवाहन, पूजन और स्नानके मन्त्र क्रमशः नीचे दिये जाते हैं—

आद्य अर्थात्प्रारम्भः

पुस्तक नमस्तुभ्यमिहागच्छ शुभित्तम् ।

नैऋत्य उपविशेदं पूजनं प्रतिपुंसजम् ॥ १ ॥

ॐ तुलसीदासाय नमः

श्रीवासनीः समस्तुम्यनिहायः कुमप्रदः ।

हस्तपूर्य्ययोगे विह गृहीष्य मेधवत् ॥ २ ॥

ॐ कल्याणाय नमः

मौरीयते वसन्तपुरमिहागच्छ महेश्वर ।

पूर्वदक्षिणयोर्मध्ये तिष्ठ पूर्वा गृह्यन्ते मे ॥ ६ ॥

ॐ गौरीपतये नमः

श्रीलक्ष्मण कमस्तुभ्यसिद्ध्यच्छ सहप्रिया ।

आम्याभ्यामे समप्रतिष्ठ पूजनं संगृहाण मे ॥ ४ ॥

ॐ श्रीसपत्नीकाय लक्ष्मणाय नमः

श्रीतन्मा वस्तुम्यमिहावन्तं सद्मिक ।

धीरज पत्रिमे माये पूज्यं स्वीकृत्य मे ॥ ५ ॥

ॐ श्रीसप्तशतीनाय नमः

श्रीभरत धर्मसुखमिहामन्त्रं लक्ष्मिः ।
श्रीरुद्रोत्तरे श्री विष्णु पूर्वं गृह्यते ॥ ६ ॥

ॐ श्रीसप्तशतीनाय नमः

श्रीहनुमन्मस्तुभिमिहामन्त्रं कृष्णनिधे ।
पूर्वभागे समस्तैः पूजनं लोकेषु प्रथमं ॥ ७ ॥

ॐ हनुमते नमः

अथ प्रथमपूजा च कर्तव्या त्रिभिर्पूर्वकम् ।
पुष्पाक्षतिं गृह्यते तु अथ च कुङ्कुमैरस च ॥ ८ ॥
स्वात्मयोगदत्तमिहामन्त्रं श्रीरामराजकुलं
हनुमन् विष्णुं प्रसन्नमनं श्रीसेतुं श्रीभिरम् ।
काकपक्षमुत्तमानं त्रिकवैभ्रान्तिमिहामन्त्रं
काले विष्णुरिवादिसेतुमन्त्रं गच्छेत्तुहिनम् ॥ ९ ॥
अथ च कान्तरीनाथं काकपक्षं सह राक्षसं ।
गृह्यते तत्र पूर्वा 'च' कालेपुष्पादिभिर्भुजः ॥ १० ॥

पूजावादनम्-

कुङ्कुमैरक्षितं रामं विष्णुदत्तमसौसितम् ।
अक्षतं हि जगत् सर्वं गृह्यते भक्तिचित्तम् ॥ ११ ॥

इति षोडशोपचारैः पूजयेत्

ॐ कलं श्रीरामसमस्तसामन्त्रैरुपचारितम् श्रीविष्णुकुलकुम्भियाह्वय-
गोत्रादिहनुमन्पूजा आचर्य श्रीसितारामो देवता प्रीतमानः श्रीं नमरोत्तरी भक्तिः
शक्तिः नम विष्णुप्राप्तयेविष्णुतया श्रीसितारामप्रीतिपूर्वकसकलमनोवसितस्य
पादे निविष्टोः ॥

अथान्तर्यामिन्

श्रीसौमित्रमात्मनो नमः । श्रीरामकृष्णाय नमः ॥

श्रीराममन्त्राय नमः ।

इति मन्त्रमन्त्रेण आचर्य कुम्भम् ॥ श्रीसुब्रह्मन्त्रेण आचर्य कुम्भम् ॥

अथ कर्तव्याः

अथ मन्त्रं पुनः श्रव्यं राम के । एभिः मुमुक्षु पन्थनं पन्थनं के ॥

अनुष्ठानं नमः

राम राम कर्मे वे अनुष्ठेयं । किन्ति यः कर्तुं समुद्यते ॥

तर्जनीभ्यां नमः

गण सकल नमः ते भक्तिः । ह्येन नमः अथ राम मन्त्रं भक्तिः ॥

मध्यम्यस्यां नमः

उमा दाह ज्येष्ठ की नई । सखी नचावत राहु खेराई ॥

अनामिकास्यां नमः

सन्मुख होइ कीज गोहि जगहीं । जग कीटि जव नसहिं तजहीं ॥

कनिष्ठिकास्यां नमः

मामनिरह्य रघुकुलनयक । कृत कर पात खिच कर सावक ॥

करतलकरपृष्ठास्यां नमः

इति करन्यासः

अथ हृदयविन्यासः

जग मंगल गुन प्राप्त राम के । दानि भुक्ति जन परम पाय के ॥

हृदयाय नमः ।

राम राम कहि जे अनुहरी । सिन्धुहि न जपुंन सुखहीं ॥

शिरसे लाह ॥

राम सकल समस्त ते अविना । होत नय अब सन जन बनिना ॥

शिरसाय नमः ।

उमा दाह ज्येष्ठ की नई । सखी नचावत राहु खेराई ॥

हृदयाय नमः ।

सन्मुख होइ कीज गोहि जगहीं । जग कीटि जव नसहिं तजहीं ॥

नेत्राग्रां नमः ।

मामनिरह्य रघुकुलनयक । कृत कर पात खिच कर सावक ॥

अजाय कट् ।

इति हृदयविन्यासः

अथ ध्यानम्

मामवलीनयनं चन्द्रलोचन । अथ विशेषनि शेष विशेषन ॥

नील तामरस स्त्राग कम उरि । हृदय को मकरंद मनुष हरि ॥

गङ्गाधन कवच कट मंगल । मुनि समन रंजन अब मंगल ॥

मूसुर सखि कज बूँद नखक । अमरन सन कीन अब खडक ॥

मुषमक विपुल भद्र बहि खिचि । कर धून निराम अब पीति ॥

रामनारी सुखरूप भूषण । जग दसरण कुल कुसुम सुधर ॥

सुजस पुराण निर्दिष्ट निगमन । कष्ट सुर मुनि संत समान ॥

करुणिक मन्त्रिक मद संन । सब विधि मुक्त कोउज मंगल ॥

कति मठ यवन नाम मन्त्राइन । तुलसीदास प्रभु कहि कत जन ॥

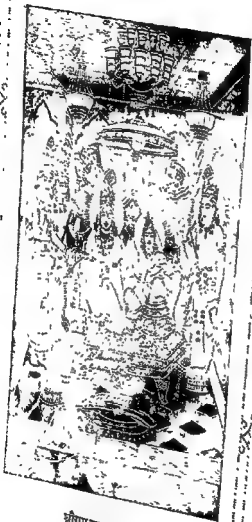
इति ध्यानम्

रामजी पालनेमें



एक बार उनकी कहानी ।

दरि सिंगार पलनें पौड़ाए ॥



श्रीराम-नरवारी हाथी

श्रीलक्ष्मण नमः

श्रीलक्ष्मणचरणयोः विनयेन

श्रीरामचरितमानस

प्रथम सोपान

बालकाण्ड

श्लोक

वर्णाश्रमव्यसंघानां रसानां छन्दसामपि ।

मङ्गलानां च कर्तारौ वन्दे चाजीविनायकौ ॥ १ ॥

सङ्गरो, अर्थतमूहों, रसों, छन्दों और मङ्गलोंकी करनेवाली सरलताही और गणेशजीकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

भयानीशङ्करो वन्दे अद्याविश्वासरूपिणौ ।

याम्पां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ॥ २ ॥

भया और विश्वासके स्वरूप श्रीपार्वतीजी और श्रीशङ्करजीकी मैं वन्दना करता हूँ, जिनके बिना सिद्धजन्म अपने अन्तःकरणमें सिद्ध ईश्वरको नहीं देख सकते ॥ २ ॥

वन्दे बोधमयं - निर्यं शुद्धं शङ्कररूपिणम् ।

यमाधितो हि कसोऽपि बन्धः सर्वत्र घ्नयते ॥ ३ ॥

ज्ञानमय, नित्य, शङ्करजी शुद्ध हैं मैं वन्दना करता हूँ, जिनके आधित होनेसे ही डेढ़ा कन्त्रमा भी सर्वत्र बन्धित होता है ॥ ३ ॥

सीतारामगुणप्रामदुष्करव्यवहारिणौ

वन्दे - विदुश्चिन्तानौ कवीश्वरकवीश्वरौ ॥ ४ ॥

श्रीसीतारामजीके गुणलम्हणी पवित्र वनमें विहार करनेवाले, विदुश्चिन्तानसम्पन्न कवीश्वर श्रीवासुकीजी और कवीश्वर श्रीहनुमान्जीकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ ४ ॥

उद्भवस्थितिसंहारकारिणौ - हेशहारिणौ ।

सर्वभ्रैयस्कर्ता सीता - कतोऽहं रामबल्लभम् ॥ ५ ॥

उत्पत्ति, स्थिति (-पावन) और संहार करनेवाले; ज्ञेश्वरी ईशेवाली तथा सम्पूर्ण कल्याणोंकी करनेवाली श्रीरामचन्द्रजीकी प्रियतमा श्रीसीताजीकी मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ५ ॥

याम्पायाचशर्त्तं विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवांसुराः

यत्सत्त्वादमृषैव माति सकलं रज्जौ यथादेर्धम् ।

यत्पादप्लवधमेकमेव हि सवासम्भोधेस्तितीर्षावतां

वन्देऽहं समशेषकारणघटं रामाख्यमीशं हरिम् ॥ ६ ॥

जिनकी मायाके, कवीमूल सम्पूर्ण विश्व, ब्रह्मादि देवता और असुर हैं, जिनकी सत्ताके रस्तीमें लपके जगज्जो भीति यह सारा दृश्य-जगत् कय ही प्रतीत होता है और

निन्दे केवम जल ही कलकलते लरनेही हल्लावाँके छिने एकबाण नौक है, उन
समस्त धरणीति पर (सब धरणीति फाला और कलते मोड़) राम कानेनाले भगवद
होली में बन्दना करता हैं ॥ ६ ॥

बालापुराचविषयान्ममसमस्त

वद

रामकले विमिश्रितं कविकल्पतोऽपि ।

सम्पदमुखाय मुञ्जती रघुपदव्यास-

प्राप्तविकल्पमस्मिन्नुत्तमात्तनोति ॥ ७ ॥

कलेक पुण्य, वेद और [उन] आलोके समस्त तथा ओ रामावर्णों वर्णित है,
और कुछ कल्पके भी उपलब्ध और पुनः कबीली जनाको उत्तमिदात कले अन्तःकरणके
हलते छिने कल्पत योहर भगवत्कर्म निरूप्य जाता है ॥ ७ ॥

तो—ओ सुमित्र विधि होइ गन बावक करिबर सख ।

करत मनुष्य होइ बुद्धि राखि सुख गुन सख ॥ १ ॥

किन्ने करत करतो छन करन निद संके हैं, ओ कबोंके क्षामी और दुष्ट
हाथी दुष्टको है, वे ही बुद्धिके रहि ओर गुणोंके प्राप्त (योग्यस्थी) दुष्टन
करा करें ॥ १ ॥

सूक होइ बावक संतु सुदर निरिबर सख ।

असु सुषो तो दयाल दूषत सख कलि मक बहम ॥ २ ॥

लोकमें दुष्टके दोष बहुत दुष्टर बोलेकल हो गेज है और दुष्ट-सख
दुष्टन सखर कर गया है, वे कलिकाले सव बावको कल बावकेले दयाल
(मानव) सुखर होत हैं (दया करें) ॥ २ ॥

धीछ सखेसल काम तदन सख सखि सख ।

करत से मम कर काम सदा हीरकसख सख ॥ ३ ॥

ओ धीकलके काम सखक हैं, धी छिने सुख कल कामके काम लिलके
मेम है और ओ काम धीकलके सख मतो है, वे (भगवान् सखन) मेर
दरने निरत करें ॥ ३ ॥

हुन संतु सख देह काम सख करत सख ।

कहि दीन पर गेह करत कृपा सखि सख ॥ ४ ॥

मिरत दुष्टके गुन और कलकले करत (सैर) धीर है, ओ पारंगीलीके
मिरत और सखे पाम है, और निरत धीवीर को है, वे कलकले सख
कलेकले (संक्रम) अकार गुण करें ॥ ४ ॥

पदें सुख पद कल कृपा छिंधु सरकर करि ।

सदागोह काम पुष्ट जसु सख रवि कर निकर ॥ ५ ॥

हैं उन गुन भगवान् के कलकलकी कलक करता हैं, ओ कलके सख और
मिरतमें धीर हो है और किले सख सदागोहसी पदे कलकले नख करतेके
छिने दुष्ट-कलके जसु हैं ॥ ५ ॥

ओ—सैर सुख पद पद पद पद । सुखी सुख सख सख सख ॥

दुष्टन सुखि सख कल । सख सख सख सख परिकर ॥ ६ ॥

हैं सुख कावके कलकलकी रक्की कलक करता हैं, ओ सुखि (दुष्टर
दया), दुष्टन तथा सदागोहसी सखे पूर्ण है । न कर सुख (संक्रमी जदी) स

सुन्दर चूरी है, जो सम्पूर्ण भवयोगोंके परिवारको नाश करनेवाला है ॥ १ ॥

सुकृति संसृ तन विमल विमूढी । संसृल गंगल मोह प्रसूती ॥

जन मन संसृ सुन्दर भक्त हरनी । किन्ति तिलक गुन वन वस करनी ॥ २ ॥

वह रत्न सुकृती (पुष्पवान् पुष्प) रूपी शिवजीके शरीरपर सुशोभित निर्मल विभूति है और सुन्दर कल्याण और आनन्दकी बननी है, भक्तके मनरूपी सुन्दर दर्पणके मैलको दूर करनेवाली और तिलक करनेसे गुणोंके समूहको वस्त्रमें करनेवाली है ॥ २ ॥

श्रीगुरु पद वस गति वन छोटी । सुमिरत विम्व दृष्टि हिरे होती ॥

वचन मोह तम सो सम्पन्नस्य । बड़े गम वर आवड जास्य ॥ ३ ॥

श्रीगुरु महाराजके चरण-नखोंकी ज्योति भविष्योंके प्रकाशसे समान है, जिसके स्पर्श करते ही हृदयमें दिव्यदृष्टि उत्पन्न हो जाती है। वह प्रकाश अज्ञानरूपी अन्धकारका नाश करनेवाला है; वह जिसके हृदयमें आ जाता है, उसके बड़े भाग्य हैं ॥ ३ ॥

उपरहि चिमल विजोचन ही के । मिटहि दोष दुख भय रजनी के ॥

सूरसहि राम चरित गति मानिक । गुण प्रगट वही जो तेहि छानिक ॥ ४ ॥ ✓

उसके हृदयमें आते ही हृदयके निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और संचाररूपी रात्रिके दोष-दुःख मिट जाते हैं एवं श्रीरामचरित्ररूपी गति और गतिरूप; गुण और प्रकाश वही जो जिस ज्ञानमें है, सब दिखायी पड़ने लगते हैं—॥ ४ ॥

श्री—जथा सुभज्य अंजि दग साधक सिद्ध सुज्ञान ।

कौमुद देवत, सैल वन भूखल भूरि निधान ॥ १ ॥

जैसे सिद्धाञ्जनको नेत्रोंमें लगाकर साधक; सिद्ध और सुज्ञान पर्वतों, वन और पृथ्वीके अंदर कौतुकसे ही बहुत-सी खानें देखते हैं—॥ १ ॥

श्री—गुण पद रत्न मृदु संसृल भजन । कथन अमिषका दोष विमलन ॥

तेहि करि विमल जिके विजोचन । बरवई राम चरित भव मोचन ॥ ५ ॥

श्रीगुरु महाराजके चरणोंकी रत्न कोमल और सुन्दर नयनामृत-अञ्जन है, जो नेत्रोंके दोषोंका नाश करनेवाला है। उस अञ्जनसे भिषेकरूपी भेषोंको निर्मल करके भी संचाररूपी वक्त्रसे सुवानेवाले श्रीरामचरित्रका वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥

बंरवई प्रपन्न महीसुर चरना । मोह कथित संसृल सब हरना ॥

सुजन समाज सम्पन्न गुन साधी । करई प्रपन्न सप्रेम सुबानी ॥ ६ ॥

पहले पृथ्वीके देवता ब्राह्मणोंके चरणोंकी वन्दना करता हूँ, जो अज्ञानसे उत्पन्न सब सम्देहोंको हरनेवाले हैं। फिर सब गुणोंकी खान संत-समाजको प्रेमसहित सुन्दर वाणीसे प्रणाम करता हूँ ॥ २ ॥

साधु चरित सुभ चरित कथास्य । निरस चित्तसुगुणसमय फल जास्य ॥

जो सहि दुख परसिद्ध दुखना । बंरवई तेहि कथ जस पावा ॥ ७ ॥

संतोंका चरित्र कथास्य चरित्र (जीवन) के समान श्रेष्ठ है, जिसका फल नीरस विषाद और गुणमय होता है। (कथास्य खोनी नीरस होती है, संत-चरित्रमें भी विषाद नहीं है, इससे वह भी नीरस है; कथास उच्छन्न होता है, संतका हृदय भी अज्ञान और पापरूपी अन्धकारसे रहित होता है, इसीसे वह विषाद है; और कथासमें गुण (लब्ध) होते हैं, इसी प्रकार संतका चरित्र भी सद्गुणोंका भण्डार होता है, इसलिये वह गुणमय है।) [जैसे कथासका भाषा सुईके सिधे हुए छेदको अपना तन देकर ठक देता है, अथवा कथास जैसे जेदे जाने, करते जाने और मुने अनेक कष्ट सहकर भी

बलके रूपमें परिणत होकर दूसरेके गोपनीय स्थानोंको दकता है उसी प्रकार] संत
स्वयं दुःख सहकर दूसरेके त्रिद्वि (दोष) को दकता है, जिसके कारण उसने जगत्में
कन्दलीय यश प्राप्त किया है ॥ २५ ॥

मुद्र मंगलमन संत समाप् । यो जय शंभो दीर्यराज ॥

राम सन्धि धर्मे सुरसहि धारा ! सरसद् मङ्गल दिवस प्रसार ॥ ४ ॥

संतीका अभाव आनन्द और कल्याणम् है जो समस्त चक्राभितता तीर्थराज (प्रधान) है। ऊर्ध्व (उपर संस्थापनात्मी प्रवर्तणकर्तृ) सममकित्वा महाजीकी थापा है और त्रयविचक्र प्रचार रुखतीकी है ॥ ४ ॥

स्थिति निवेद्यमय कृति मल्ल हरणी । काम कथा रुचिरांश्चि ददनी ॥

इति कथा विराजति येन । पुनस्तस्मिन् सुद संयुक्त देवो ॥ ५ ॥

विधि और नियम (यह करो और यह न करो) सभी कर्मों की कथा कल्पिबुद्धों के पास ही रहनेवाली धर्मकथा समझनी है; और भगवान् विष्णु और शंकरजी की कथाएँ विवेकीरूपसे सुनोमित्र हैं, जो सुनते ही सब आनन्द और कल्याण ही देनेवाली हैं ॥ ५ ॥

बहु विज्ञानस्य अन्तर्गतं निम्नं यस्याः दीनयस्यान् समानं सुखम् ॥

सबहि सुखम सब दिन सुख देख । सेवत लखन समन करैस ॥ ६ ॥

[उक्त सहायताप्राप्तियों प्रयागमें] अपने कर्मों की शायद शिक्षा है वा ज्ञानपत्र है, और कुछ कर्म ही उस तीर्थयात्रा समाज (परिषद्) है। वह (सहायताप्राप्तियों प्रयागमें) सब देशोंमें, सब स्थान सभीको सुखपूर्वमें प्राप्त हो सकता है और आदर्श-पूर्ण स्थान करनेसे लोगोंको नष्ट करनेवाला है ॥ ६ ॥

सकय अर्थात्किं किरियन्तु । हेतु सद्य कल प्रथम प्रभात १७ ॥

एवं तीर्थयात्रा अर्थात् भक्ति और सत्सङ्ग ही है। एवं कल्याण प्राप्त होनेका है। अन्तर्मा प्रमाण प्रमाण है ॥ * ॥

दो०—सुनि समुसहि जग मुदित मन मज्जहि भति अनुपम ।

अहं चारि फल भङ्गत् तनु साधु सनात प्रयाग ॥ २ ॥

और मनुष्य इत नत-कमलपरी तीर्थयात्राका प्रभाव प्रत्यक्ष अपने सुनते और समझते हैं और फिर अथवा प्रेमापूर्वक इन्हें अपने लगे लाते हैं, वे इस धीरे-धीरे जाते ही बर्मा, भर्मा, नाम, मोह—सबों का मारे हैं ॥ २ ॥

ਸ਼੍ਰੋਮਣੀ ਗੁਰਦੁਆਰਾ ਪ੍ਰਬੰਧਕ ਕਮੇਟੀ ਦੀ ਸੇਵਾ ਵਿੱਚ ਸ਼ਾਮਲ ਹੋਣ ਵਾਲੇ ਸੇਵਾਦਾਰਾਂ ਦੀ ਸੂਚੀ

सुनि आसन्न करै जमि कोई । सुतसंगति सहिना नहि गोई ॥ १ ॥

इति तीर्थयात्रायां जलानि पश्यन्तस्माह एषा देवतानां आवाहिनी इति श्रीमद्भगवद्गीतायां अष्टादशोऽध्यायः समाप्तः ॥१८॥

गन्तव्यं नरस्य षष्ठ्योनी । निद्रा नित्य युक्तानि कुरीतिरद्वयनी ॥

अमुष्म घलत्तर नमत्तर कम्पा । ॐ अथ केतव खेव जगुना ॥ २ ॥

अष्टांगिचक्र, नारदकी और अमरकलाने अपने-अपने मुखोंसे अपनी होनी (तन्त्रिका वृत्तान्त) बरी है। अष्टम रहनेवाले, अष्टांग रहनेवाले और आचार्यने विचरनेवाले भाना अष्टमके बह-वेदन विज्ञाने बौद्ध इस सप्तममें हैं, ॥ २ ॥

नदि कीर्ति गति मूर्ति मण्डपं । सब बेहि जतन बहौं उहि पाई ॥

श्री गणेशाय नमः । श्रीगुरुभ्यो नमः । श्रीसर्वलोकपालेभ्यो नमः ।

समयों: विज्ञान दिवस सम्मेलन काँट्रॉल रूम और विज्ञान विज्ञान मंडले, इति, श्रीरं, सुवि.

विभूति (ऐश्वर्य) और मलाई पायी है, सो सब सत्संगीस ही प्रभाव समझना चाहिये । वेदोंमें और लोकमें इनकी प्राप्तिका दूसरा कोई उपाय नहीं है ॥ १ ॥

✓ बिनु सत्संग नित्य न होई । राम कृष्ण बिनु सुख न सोई ॥

सत्संगत सुख संयुक्त सुख । सोइ फल सिद्धि सब साधन पूरक ॥ ४ ॥

सत्संगके बिना निवेक नहीं होता, और श्रीरामजीकी कृपाके बिना वह सत्संग सहजमें मिलता नहीं । सत्संगति आनन्द और कल्याणकी जड़ है । सत्संगकी सिद्धि (प्राप्ति) ही फल है, और सब साधन तो फूल हैं ॥ ४ ॥

✓ 'सद' सुखहि सत्संगति परहि । पास्त परस कृपात सुहाई ॥

विधि धन सुजन कुसंगत परहीं । कवि मनि सम निध मुन अनुसरहीं ॥ ५ ॥

बुद्ध भी सत्संगति पाकर सुखर आते हैं, जैसे पारसके टुकड़े जोड़ा सुहावना हो जाता है (सुन्दर सोना बन जाता है) । किन्तु दैवयोगसे यदि कभी सज्जन कुसंगतिमें पड़ जाते हैं, तो वे यहाँ भी सौंपकी मणिके समान अपने गुणोंका ही अनुसरण करते हैं (अर्थात् जिस प्रकार सौंपका संसर्ग पाकर भी मणि उसके विषको ग्रहण नहीं करती तथा अपने सहज गुण प्रकाशको नहीं छोड़ती, उसी प्रकार साधु पुरुष दुष्टोंके संगमें रहकर भी दूसरोंको प्रकाश ही देते हैं, दुष्टोंका उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।) ॥ ५ ॥

विधि हरि हर कवि कोविद वासी । कहत सखु महिमा सकुचासी ॥

सो मो सब कहि आत न कैसैं । साक अधिक मनि मुन भव जैसैं ॥ ६ ॥

प्रकाश, विष्णु, शिव, कवि और पण्डितोंकी वाणी भी सत्-महिमाका वर्णन करनेमें समुदायी है; यह सुनते फिर प्रकार नहीं कही जाती, जैसे छातारखरी बेचनेवालेसे मणियोंके गुणसूत्र नहीं कहे जा सकते ॥ ६ ॥

दो०—बंदरें संत समान चित हित अमहित नहि कोइ ।

अंजलि मत्त सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ ॥ १ (क) ॥

(मैं संतोंको प्रणाम करता हूँ, जिनके चित्तमें समता है, जिनका न कोई मित्र है और न शत्रु ! जैसे अङ्गुलिमें रखते हुए सुन्दर फूल [जिस हाथने फूलोंको तोड़ा और फिलने उनको रक्खा उन] दोनों ही हाथोंको समानरूपसे सुगन्धित करते हैं [जैसे ही संत ॥॥ और मित्र दोनोंका ही समानरूपसे कल्याण करते हैं] ॥ १ (क) ॥

संत सरल चित अमत्त हित आवि सुभात सनेहु ।

बालविनय सुनि करि कृपा राम चरन रति देहु ॥ १ (ख) ॥

संत सरलहृदय और अमत्तके हितकारी होते हैं, उनके ऐसे स्वभाव और स्नेहकी जानकर मैं विनय करता हूँ, मेरी इस बाल-विनयको सुनकर कृपा करके श्रीरामजीके चरणोंमें मुझे प्रीति दें ॥ १ (ख) ॥

✓ चौ०—बहुरि बंदि सख गन सतिभई । जे बिनु काव हृदिबहु चारै ॥

पर हित हानि काम चिन्ह केरें । उबरें हरष विषाद कसेरें ॥ १ ॥

जब मैं सच्चे भावसे तुझको प्रणाम करता हूँ, जो बिना ही प्रयोजन अपना हित करनेवालेके भी प्रतिकूल ध्यानरण करते हैं । दूसरोंके हितकी हानि ही जिनकी दृष्टिमें काम है, जिनको दूसरोंके उजड़नेमें हर्ष और कष्टमें विषाद होता है ॥ १ ॥

✓ हरि हर जस जसेस राहु से । पर-बल्लभ मत्त सहसराहु से ॥

जो पर कोष कसहि सहस्रको । पर हित फल चिन्हके मन माखी ॥ २ ॥

जो हरि और हरके कसली भूमिमाके कन्दमाके लिये राहुके समान हैं (अर्थात्

जहाँ श्री मगवान् विष्णु का शंकरके बखस्य वर्णन होता है, उन्हीं वे बाधा देते हैं), और दूसरोंकी बुराई करनेमें ब्रह्मब्राह्मके समान वीर हैं। जो दूसरोंके दोषोंको हजार ओंखोंसे देखते हैं, और दूसरोंके हितकारी चीजें लिये किन्तु मन अंधोंके समान है (अर्थात् जिस प्रकार मक्खी चीमें भिरकर उसे सफ़ा कर देती है और स्वयं भी मर जाती है, उसी प्रकार दुष्ट लोग दूसरोंके बड़े-बुराये कामोंको अपनी छानि करके भी निगाह देते हैं) ॥ २ ॥

तेज सुसुषु तोष महीषेसा। जय जयपुत्र यन बड़ी धमेसा ॥

धृष्य केत सम दित सखी के। कुंभकरन राम खोकर नीके ॥ ३ ॥

जो तेज (दूसरोंको बलानेवाले ताप) में अग्नि और क्रोधमें समरालके समान है, पर और अवयुगकी धनमें पुत्रोंके समान धनी है, किसी सदती सभीसे हितका नाश करनेके लिये केतु (पुच्छल तारे) के समान है, और जिनके कुम्भकरनकी तरह मोटे रङ्गमें ही प्रगई है ॥ ३ ॥

पर अक्षयु क्षमि ससु परिहराई। तिमि दिन बपल हुरी दृष्टिगदई ॥

बंदई एक अत सेप सरोषा। सहस्र बन्ध दरकद पर दीप ॥ ४ ॥

जैसे अंगरे सेतीका नाश करके आम भी गल गति है, वैसे ही वे दूसरोंका काम विगाड़नेके लिये मक्खी कारितक खोद देते हैं। मैं दुष्टोंको [हजार मुसवाले] शेषजीने समान सम्राज्य प्रणाम करता हूँ, जो परामे दोषोंका हजार मुखोंके बड़े रोगके साथ कर्म करते हैं ॥ ४ ॥

सुनि प्रपदई सुसुषुष समसा। पर यय सुबह सहस्र दस जाना ॥

बहुरि एक सम किकरई ठेही। संतत सुरानीन दिन लेही ॥ ५ ॥

पुनः उनकी राधा शुभ (जिन्होंने मगवागुरु वगैरे मुक्तके लिये एक हजार काल मोंगे थे) के समान आनन्द ग्रन्थम करता हूँ, जो दस हजार कामोंके दूसरोंके पापोंको मुक्तते हैं। फिर इनके समान समकर-उनकी विनय करता हूँ, किकरी सुरा (मीरिण) मीठी और हितकारी मायूम देती है [इनके लिये भी सुरानीन अर्थात् देवताओंकी सेना हितकारी है] ॥ ५ ॥

दकम बज बेहि सदा निमरा। सहस्र काम पर दीप निहरा ॥ ६ ॥

जिनकी कठोर बकनसपी बज सदा पाप जगद है और जो हजार ओंखोंसे दूसरोंके दोषोंको देखते हैं ॥ ६ ॥

ऐ—उदासीन अरि भीत हित मुनत जरहि। खल रीति ।

जानि पानि श्रुय ओरि जन किन्सी परर सग्रीति ॥ ७ ॥

दुष्टोंभी यह रीति है कि वे उदासीन अनु अक्का निकः किरीका भी हित मुनकर गते हैं। यह जानकर दोनों हाथ जोड़कर यह जन योगपूर्वक उनसे विनय करता है ॥ ७ ॥

चौ—मैं अपनी दिति कीन्ह पिहोरा। किन्ह निज ओर न काडन मोरा ॥

चाक बलिनहि जति अनुसम। होहि विरासिप कबहुं फि काय ॥ ८ ॥

मैं अपनी ओरसे विनती नही, परन्तु वे अपनी ओरसे कभी नहीं चूँगे। जो-जो बड़े प्रेम्ही पालिये, परन्तु वे क्या कभी मोचके साथी हो सकते हैं ? ॥ ८ ॥

बंदई संत अक्षय्य जना। सुसुषुष उनय घोष लहु बरना ॥

विहारा एक गान हरि बेही। मिच्छ एक लुका दारन देही ॥ ९ ॥

अब मैं संत और जगत दोनोंके चर्योंकी बन्दना करता हूँ। दोनों ही दुष्ट देनेवाले

हैं, परन्तु उनमें कुछ अन्तर कहा गया है। वह अन्तर यह है कि एक (संत) तो विद्युद्वत् समय प्राण हर लेते हैं और दूसरे (असंत) मिटते हैं तब दाक्ष कृष्ण देते हैं। (अर्थात् संतोंका विद्युद्वत् मरनेके समान दुःखदायी होता है और असंतोंका मिलना) ॥ २ ॥

उपजहि एक संघ जग भाहीं। जलज जौकनिमि गुन बिछाहीं ॥

सुधा सुरा सम साधु असाधु। जनक एक जग जलधि अगाध ॥ ३ ॥

दोनों (संत और असंत) अगत्में एक साथ पैदा होते हैं पर [एक साथ पैदा होनेवाले] कमल और बेंकड़ी तरह उनके गुण अलग-अलग होते हैं। (कमल दर्शन और स्पर्शसे सुख देता है; किन्तु जौक अरिक्क स्पर्श पाते ही रक्त चूषने लगती है।) साधु अमृतके समान (मृत्युरूपी संसारसे उबारनेवाला) और असाधु मदिराके समान (मोह, प्रमाद और अहंता उत्पन्न करनेवाला) है, दोनोंको उत्पन्न करनेवाला अगत्स्वपी अगाध समुद्र एक ही है [शास्त्रोंमें सुप्रसन्नसे ही अमृत और मदिरा दोनोंकी उत्पत्ति बतायी गयी है] ॥ ३ ॥

अल अनमल निज निज करसूती। कष्ट सुखस अपलोक बिमूली ॥

सुधा सुधाकर सुरसरि साधु। गरल अरु ककिलसरि असाधु ॥ ४ ॥

गुण अवगुण ज्ञानस सब कोई। जो जेहि सब नीक तेहि सोई ॥ ५ ॥

भले और बुरे अपनी-अपनी करनीके अनुसार सुन्दर वन और अपमयकी सम्पत्ति पाते हैं। अमृत, चन्द्रमा, गङ्गाजी और साधु एवं विष, अग्नि, कलियुगके पापोंकी नदी अर्थात् कर्मनाशा और हिंसा करनेवाला व्याध, इनके गुण-अवगुण सब कोई जानते हैं किन्तु जिते जो माता है, उसे कभी अच्छा लगता है ॥ ४-५ ॥

दो०—मल्लो मलाहहि वै लहह रुहह निचाहहि बीधु।

सुधा सराहिअ अमरताँ गरल सराहिअ मीधु ॥ ५ ॥

मल्ल मलाई ही मल्ल करता है और नीच नीचताको ही ग्रहण करने रहता है। अमृतकी सराहना अमर करनेमें होती है और मिकी मरनेमें ॥ ५ ॥

पौ०—कल अम अगुन साधु गुन अहा। उमय अपार उदधि अवगाहा ॥

तेहि तें कलु गुन दोष बसाने। संशय त्याग न बिनु पहिचाने ॥ १ ॥

इहाँके पापों और अवगुणोंकी और साधुओंके गुणोंकी क्यारें दोनों ही अपार और अथाह समुद्र हैं। एहीसे कुछ गुण और दोषोंका वर्णन किया गया है, क्योंकि बिना पक्षजने उनका ग्रहण या त्याग नहीं हो सकता ॥ १ ॥

मकैठ पोष सब बिधि उपजाए। कनि गुन दोष वेद बिलगाए ॥

कहिहि वेद इतिहास पुराना। बिधि अर्थजु गुन अवगुन जाना ॥ २ ॥

भले, बुरे सभी ब्रह्मके पैदा होने हुए हैं पर गुण और दोषोंको विचार कर वेदोंने उनको अलग-अलग कर दिया है। वेद, इतिहास और पुराण कहते हैं कि ब्रह्मकी यह सृष्टि गुण-अवगुणोंसे सनी हुई है ॥ २ ॥

हुल सुख बाप गुन्य निज राती। साधु असाधु सुधावि कुजकी ॥

दानव देव तीव्र कर नीच। अमित्र सुखीवतु मादुर मीच ॥ ३ ॥

माया मय जीव जगदीश। उच्छिद अलच्छिद रंक अजनीश ॥

कासी मग सुरसरि कमलासा। मरु मरुत महिदेव गवासा ॥ ४ ॥

सरग मरक अधुराय विरागा। विगमनम गुन दोष विभागा ॥ ५ ॥

दुःख-सुख, पाप-पुण्य, दिन-रात, साधु-असाधु, सुधा-वि-कुजकी, दानव-देवता,

कैच-नीच, अमृत-विष, दुष्कृत (सुन्दर जीवन)-मृत्यु, माया-मल, जीव-दंष्टर, व्यसक्ति-दरिद्रता, रंजनाश, वृद्धी-भगव, मन्त्रा-कर्मनाश, गारवाह-मालवा, शोक-कलह, स्वर्ग-नरक, जल-राम-जैलक, [ये सभी बदार्थ ब्रह्माग्नी संहिमें हैं ।] वेद-शास्त्रोंने उनके गुण-दोषोंका विमान कर दिया है ॥ २-५ ॥

दो०—अद् वेतन शुच दोषमय विल कोन्ह करतार ।

संत हंस गुच गहहिं पय परिहरि वारि विहार ॥ ६ ॥

विधाताने इस सब-वेतन विधकी शुच-दोषमय रचा है; किन्तु संतस्सी हंस दोषरूपी लकी छेड़कर शुचरूपी दूधको ही ग्रहण करते हैं ॥ ६ ॥

बौ०—अस विदेह सब देह विपन्न । तब छवि दोष गुहहिं ननु रत्न ॥

कल सुभाष करव बरिबहई । भेटे मकुलि वस सुकह भलाई ॥ ७ ॥

विधाता अब इस प्रभारका (हंस-मल) विवेक देते हैं, तब दोषोंको छेड़कर मय शुद्धीमें अक्षुण्ण होता है । कल-सुभाष और कर्मकी प्रवृत्ततासे भले लोभ (शास्त्र) भी मायाके चक्केमें होकर कभी-कभी मगईते चूक गते हैं ॥ ७ ॥

तो सुचरि हरिजन विमि केहीं । दक्षि शुच दोष विमल ननु वेहीं ॥

सकल करहिं लल पाइ सुसंग । मिटइ न सखिन सुमाठ नसंग ॥ ८ ॥

भगवान्के भक्त जैसे उस चूकसे सुचार होते हैं और शुच-दोषोंको मिटाकर निर्मल बन देते हैं, वैसे ही शुच भी कभी-कभी उलझ संघ पाकर भगई करते हैं; परन्तु उनका कभी मंग न होनेवाला विलन स्वभाव नहीं मिटता ॥ ८ ॥

नरिष सुखे काय संघट केड । वेप प्रकाय पुत्रिबहिं लेक ॥

उपरीहिं अंत व होइ विवाह । कलमेंनि विनि रावन राहु ॥ ९ ॥

बो [वेपवारी] उग है, उन्हे भी अच्छा (सखुका-सा) वेप बनाने देखकर वेपके प्रतापसे कल पूजता है; परन्तु एक-एक दिव वे चौड़े का ही मारते हैं, अन्ततः उनका कल नहीं निमज्जा, जैसे कालमें, रागमें और राहुका हाज हुआ ॥ ९ ॥

किपहुं छेपेउ छापु सखताम् । विमि कव तामवंत हृदमम् ॥

होमि कुसंग सुसंगति काहु । छेकहुं वेप विहित सग काहु ॥ १० ॥

दुरा वेप बना केकर भी राहुका समान हो होता है जैसे-कालमें कामबाद और दुःखालोचन हुआ । दुरे संगमें होमि और अच्छे संगमें लग होता है, वह दास ओह और वेदमें है और कभी छेव हलके जानते हैं ॥ १० ॥

कल कहुं रज पवन प्रसंग । कोचहिं मिहइ नीच लल संग ॥

छापु जलपु सदन सुक संगी । सुमिचहिं राय देहिं यमि मारी ॥ ११ ॥

कलके संगमें चूक जाग्रद्वार चढ़ जाती है और वही नीच (नीचेकी और गल्लेवाली) जलके संगमें नीचहमें मिल जाती है । छापुके परके लोता-मौना, राम-राम सुमिचते हैं और अज्ञानके परके लोता-मौना मित्र-मित्रकर माछियों देते हैं ॥ ११ ॥

पुम कुसंगति करिष दोई । विविच सुभाष भंड मलि सोई ॥

होइ बल नयन अलि संकता । होइ कल कव नीचनशता ॥ १२ ॥

कुसंगके करण पुर्वों काचित बढ़वता है, नदी-पुर्वों [कुसंगसे] सुन्दर स्थायी होकर पुष्प विप्लवके चक्केमें जाता है । और वही पुर्वों संक, अलि और पवनके संगे नदक होकर अमृतको जीवन देनेवाला बन जाता है ॥ १२ ॥

दो—ग्रह भेषज जल पवन पट पाद कुजोम सुजोम ।

होहिं कुवस्तु सुवस्तु जग लखीहि सुलच्छन लाग ॥ ७ (क) ॥

ग्रह, ओषधि, जल, वायु और वन, ये सब भी कुसंग और सुसंग पाकर संसारमें भूरे और भले पदार्थ हो जाते हैं । चतुर एवं निचारील प्रुष ही इस बातको जान पाते हैं ॥ ७ (क) ॥

सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम भेद विधि कीन्ह ।

सखि सोपक पोपक समुल्लि जय जस अपवस दीन्ह ॥ ७ (ख) ॥

महीनेके दोनों पक्षवालोंमें उज्जिवाला और अंधेरा समान ही रहता है, परन्तु विभाताने इनके नाममें भेद कर दिया है (एकपक्ष नाम शुक्ल और दूसरेका नाम कृष्ण रत्न दिया) । एकपक्षे कन्धमाका बदानेवाला और दूसरेको उसका घटानेवाला समझकर जगत्में एकको सुख और दूसरेको अफस दे दिया ॥ ७ (ख) ॥

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जाति ।

यदर्थ सख के पद कमल सदा जोरि जुग पानि ॥ ७ (ग) ॥

सगत्मे कितने जड़ और चेतन जीव हैं, उनको राममय जानकर मैं उन सबके चरणकमलोंकी सेवा दोनों हाथ ओढ़कर वन्दना करता हूँ ॥ ७ (ग) ॥

वेध इजुज नर नाग खग प्रेत पितर राक्षस ।

यदर्थ किनार खनिखर कृपा करहु सब सख ॥ ७ (घ) ॥

देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, पक्षी, प्रेत, पितर, यन्त्र, किन्नर और निशाचर सबको मैं प्रणाम करता हूँ । सब सब सुखपर कृपा कीजिये ॥ ७ (घ) ॥

बी०—भाकर थारि लाख बीरासी । जाति जीव जल वन वन घासी ॥

सीध राममय सब जग जानी । कर्ते प्रकास जोरि पुन पावी ॥ १ ॥

चौरासी लाख बीनेमें चार प्रकारके (स्वेदक, अण्डक, उन्मिक्त, जरायुज) जीव जल, पृथ्वी और आकाशमें रहते हैं, उन सबसे भरे हुए इस सारे जगत्को भीक्षीराममय जानकर मैं दोनों हाथ ओढ़कर प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥

जानि कृपाकर किन्नर मोहू । सब मिलि करहु यदि एक छोटू ॥

निज बुधि लख भरोस मोहि माहीं । हाथें किन्तु कर्ते सख पाहीं ॥ २ ॥

सुखको अपना दास जानकर कृपाकी साल-आस सब लोग मिलकर एक छोड़कर कृपा कीजिये । मुझे अपने बुद्धि-बलका भरोसा नहीं है, इच्छाजिने मैं सबसे विनती करता हूँ ॥ २ ॥

करन चहई रघुपति गुन गाहा । कहु मति मोहि चरित अवगाहा ॥

सुख न एकद खंय अषाढ । मन मति रंक भरोस राख ॥ ३ ॥

मैं औरधुनायकोंके गुणोंका वर्णन करना चाहता हूँ, परन्तु मेरी बुद्धि छोटी है और श्रीरामजीका चरित्र अग्राह्य है । इसके लिये मुझे उपायका एक भी अंग अर्थात् कुछ (लेखमात्र) भी उपाय नहीं सुझा । मेरे मन और बुद्धि कंचल हैं, किन्तु मनोरथ पूरा है ॥ ३ ॥

मति मति दीख डँचि डँचि आछी । चहिय चरितजग सुख न जानी ॥

कमिहहि समन मोरि दिगई । सुनिहहि कलकल भन काई ॥ ४ ॥

मेरी बुद्धि तो समस्त नीची है और चाह नहीं उठती है; चाह तो अमृत पानेकी है, पर जगत्में सुख ही कुछ भी नहीं । समन मेरी दिगईको समझ करेगे और मेरे बालवचनोंको मन लगानकर (प्रेमपूर्वक) सुनेंगे ॥ ४ ॥

सौ बाबूद पर सेतनि सजा । सुनिहं सुनिहं मनसि लख माता ॥

हंसिहं हार सुनिहं सुनिहं । जे पर सुख भूपनधारी ॥ ५ ॥

जैसे बाबूद नव लेखे रचन प्रीति है तो उत्तम नाता-पिता उन्हें प्रमत्त मनसे
जुते हैं । किन्तु धर, कुटिल बोन कुने विचारके लगे जो दूसरोंके दोषोंको ही भूपन-
रूपसे कारण किये रहते हैं (जहाँ बिन्दे पत्ने दोष ही पत्नी लगते हैं), हंसते ॥ ५ ॥

निज कविच केहि रुच न नीच । सरस होत अधन अति फीका ॥

जे पर भविते सुख दूरपाहीं । ते पर सुख बहुत जय पाहीं ॥ ६ ॥

रमणी हो ना सखन्त प्रीति, अपनी कविता निने अच्छी नहीं लगती ? किन्तु
जो दूसरी रचनाको सुनकर हर्षित होते हैं, ऐसे उत्तम पुष्प जगतमें बहुत नहीं हैं ॥ ६ ॥

जग बहु न सार सनि सम भाई । ते निज भाई बहिं जग पाई ॥

सखन सखन सिधु सम कोई । देखि पूर विधु पाइ कोई ॥ ७ ॥

हे भाई ! जहाँ सखनों और भदिकोंके स्थान सुख ही अधिक है, जो एक
पाकर अपनी ही वादों जुते हैं (जहाँ अपनी ही उन्नतिके प्रमत्त होते हैं) । सख-सा
तो कोई एक भिन्न ही सखन होता है जो सखनको पूर्ण देखकर (दूसरोंका उत्कर्ष
देखकर) उत्तम पकता है ॥ ७ ॥

दो—मान छोड़ अभिरुप दइ करउँ एक विस्वास ।

पैहं हं सुख सुनि सुजन सब जग करिहं उपवास ॥ ८ ॥

मेरा भाग्य छोड़ा है और इच्छा बहुत बड़ी है, प्रमत्त मुझे एक विश्वास है कि इसे
सुनकर सखन सभी सुख पाँगे और हुए सभी उड़ावेगे ॥ ८ ॥

जो—बख परिवार होइ हिक मोर । कल कन्हि प्रसन्न ज्योव ॥

हंसिहं बख सुख बावन्हा । देखि नखि नखि नखि नखि ॥ ९ ॥

किन्तु इच्छा है जेने मेरा हिक ही सेवा ! फिर कष्टार्थ कोपलको और जो
बोरो ही लदा करते हैं । जैसे व्युते इच्छा और नेदक परिश्रमों हैं, जैसे ही मखिन
मनमें हुए निर्मल कर्मात्मे होते हैं ॥ ९ ॥

अति रसिक ॥ राम बह देह । किन्तु जे सुख दस स पद ॥

बाप भविते भोरि मति मोरी । हंसिहं जेव हंसिहं मोरी ॥ १० ॥

जो न तो कविताके लीक है और न विषय श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रेम है,
उन्हीं सिधे भी वह कविता सुखद शस्त्ररत्न बाप देगी । प्रथम तो वह भाषाको रचना
है, दूसरे सेगी दुःख भोग्य है; इसके वह हंसते ही है, हंसते ही उन्हें कोई
दोष नहीं ॥ १० ॥

प्रमत्त नर प्रीति न समुधि कीकी । किन्तु जे सुख सुनि सुनिहं कीकी ॥

रिहं बह रति नति न ह्यलकी । किन्तु जे सुख सुनि सुनिहं कीकी ॥ ११ ॥

विन न तो प्रीति चरणोंमें प्रेम है और न अच्छी कथा ही है, उन्हीं पर कथा
मुनेमें प्रीति लगेगी । किन्तु कीकी (मगल न सिधु) और कीकी (मगल न सिधु)
के चरणोंमें प्रीति है और विनकी दुःख कुतर्क कर्मात्मा नहीं है (जो कीकी-रूपमें
मेरी ना लैवनीवनी कथना नहीं करते), उन्हें श्रीरामचन्द्रजीकी कथा कीकी
लगेगी ॥ ११ ॥

राम भविते सुख सिधे जानी । सुनिहं सुख सुनिहं सुखनी ॥

रति न होई बहिं बख प्रीति । सखन कल न विना हीन ॥ १२ ॥

सम्बन्धन इस कथाको अपने भीम श्रीरामजीकी मूर्तिसे शक्ति जानकर सुन्दर बाणीसे सहायता करते हुए सुनै। मैं न तो कवि हूँ, न वाक्पटुत्वामें ही कुशल हूँ, मैं तो सब कलाओं तथा सब विद्याओंसे रहित हूँ ॥ ४ ॥

आखर कवय बलवृत्ति नाम। उद प्रबंध अनेक विधाना ॥

भाव भेद रस भेद अपात। कवित दोष गुण विविध प्रकार ॥ ५ ॥

नाना प्रकारके बखर, अर्थ और अलङ्कार, अनेक प्रकारके छन्दरचना, भावों और रसोंके अपार भेद और कविताने भाँति-भाँतिके गुण-दोष होते हैं ॥ ५ ॥

कवित विवेक एक नहीं भोरे। सब कदमें किस कामद भोरे ॥ ६ ॥

इसमेंसे काव्यसम्बन्धी एक भी बातका ज्ञान मुझमें नहीं है, वह मैं कौरे कागजपर लिखकर (चपयपूर्वक) उलट-सल कहता हूँ ॥ ६ ॥

पो०—भनिति मोरि सब गुन रहित कित बिदित गुन एक।

सो विचारि सुनिहहि सुमति जिन्ह के धिमल विवेक ॥ ७ ॥

मेरी रचना सब गुणोंसे रहित है; इसमें सब, जगत्प्रसिद्ध एक गुण है। उसे विचारकर अच्छी बुद्धिवाले पुरुष, जिनके निर्मल ज्ञान है, इसको सुनै ॥ ७ ॥

चौ०—एहि मैं रहसि कह्य बदाय। अति पावन पुरान कृति सारा ॥

मंगल भवन कर्मल हारी। उमा सहित केहि अपस पुरारी ॥ ८ ॥

इसमें श्रीरघुनाथजीका उदार नाम है, जो अत्यन्त पवित्र है, वेद-पुराणोंका सार है, कल्याणका भजन है और अमङ्गलोंको हरनेवाला है; जिसे पार्वतीजीसहित भगवान् शिवजी सदा जपा करते हैं ॥ ८ ॥

भनिति विविध सुकवि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ ॥

विशुद्धजी सब भाँति सँवारी। सोह न बस्य कित बर नारी ॥ ९ ॥

जो अच्छे कविके द्वारा रची हुई बड़ी अमूर्ती कविता है, वह भी रामनामके बिना शोभा नहीं पाती। जैसे कर्मजालके समाप्त बुझवाली कुन्दर की चप प्रकारसे झुलझिल होनेपर भी वस्त्रके बिना शोभा नहीं देती ॥ ९ ॥

सब गुन रहित कृति कृत नामी। राम नाम जेह बंकिन लामो ॥

सादर कहौं सुनिहहि गुण ताही। मधुकर सरित संत गुनधारी ॥ १० ॥

इसके विपरीत, कृकर्मिणी रची हुई सब गुणोंसे रहित कविताओं भी, रामके नाम एवं यज्ञसे अधिकृत जानकर, बुद्धिमान् लोग सादरपूर्वक कहते और सुनते हैं। क्योंकि संतजन मौरकी भाँति गुणहीनो ज्ञान करनेवाले होते हैं ॥ १० ॥

अपि कवित रस कूट नाहीं। तम मेल्य प्रकट एहि भाहीं ॥

सोह मरोस भोरे सब जाना। केहि न सुखं यदुप्यु पावा ॥ ११ ॥

यद्यपि मेरी इस रचनामें कविताका एक भी रस नहीं है, तथापि इसमें श्रीरामजीका प्रताप प्रकट है। मेरे मनमें यही एक मरोसा है। मले संगसे मल, किन्तु बंदूपन नहीं पाया ॥ ११ ॥

यसत 'सहज सहज' कह्यो है। कवय प्रसंग सुखं कहाई ॥

भनिति भवेस बसु मलि कस्यी। सब कथा जेग मंगल करनी ॥ १२ ॥

धुआँ भी अगरके संगसे सुगन्धित होकर अपने सामर्थिके बहुवेपनको छोड़ देता है। मेरी कविता अवश्य मही है, परन्तु इसमें जगत्का कल्याण करनेवाली रामक्यास्तवी उत्तम वस्तुका वर्णन किया गया है। [इससे यह भी अच्छी ही समझी जायगी] ॥ १२ ॥

उ०—मंगल करनि मलि मल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की ।

गति ह्रस्व कविता सरित की ओं सरित प्राचल पाथ की ॥

प्रभु हृदयस्य संगति यन्त्रिणि गति होषि सुवन मत् भावनी ।

भव अंभं मृतिं मत्तां कीं सुसिद्ध सुहावनि पावनी ॥

नुरुलीदासजी कहते हैं कि श्रीरघुनाथजीकी कथा कथायन करनेवाली और फलियुगके पातोंको हटनेवाली है। मेरी इस यद्दी कवितास्त्री नदीकी चाल पवित्र लछवाली नदी (गङ्गाजी) की चालकी भीति देदी है। प्रभु श्रीरघुनाथजीके सुन्दर कण्ठके संगसे यह कविता सुन्दर तब सज्जोंके मन्त्रके मन्त्रेवादी हो चल्नगी। शम्भानकी अपवित्र राख मी श्रीमद्दिवादीके संगसे मुद्रास्त्री जगती है और सज्ज करते ही पवित्र करनेवाली होती है।

६०—प्रिय कविहि जति सबहि मम भनिति राम जस संग ।

ब्राह्म विष्णुश्च किं कर्तुं शक्नुवन् वंदिन मलय प्रसंग ॥ १० (क) ॥

अश्वमेधके समक्षे संग्रहे मेरी कदिया लगींओ अश्वमेध विद्य करेगी । जैसे मलय
पर्वतके नीचे काश्माग [मन्दन वनज] कदनीय हो जाता है, फिर क्या कोई
दाह [श्रीगुरुदेव] का विचार करता है ! ॥ १० (क) ॥

स्थाम सुरमि पथ शिखर अति गुनद कर्हि सब पान ।

गिरा प्राम्य सिय राम अल गाबहि सुमहि सुजाय ॥ १० (ख) ॥

इसका भी जल्दी होनेपर भी उसका दूध उल्लस और बहुत गुणकारी होता है ।
यही समझकर यह खेग उसे पीते हैं । इन्ही तरह गैबक भ्रूषणों होनेपर भी श्रीसीत-
गणजीने बाबां दुर्दिम्बन् लेम बड़े बानसे गाते और सुनते हैं ॥ १०० (स) ॥

श्री ८-तमिः पदमिह सुकुमर एषि नैसो । अहि निदि नञ् सिद्ध सोह न सौखी ॥

मृदं किरोटं तदानीं तदुपपन्नं । तद्विद्वत्सकलं सोमा अभिजातम् ॥ १ ॥

शनि, मङ्गल-६ घोर मारपीत जैसी मुन्दर छिपे है, यह सौंघ, बरबद और हाथीके मल्लखर के-१ जोभा नहीं पाया । धमाके सुकट और नवपुत्री कीके शरीरको पान्त ही से यह अन्ध शम्भोको ग्राह होके हैं. ॥ १ ॥

ऐतरेयैः सुवर्णिः कथितः पुनः कथ्यते । अथर्वणिः कथ्यते त्वत्तः सुविच्छिद्यते ।

भगति हेतु, निजि भजन विहारी । झुमिरत सरत आदति धारी ॥ २ ॥ ✓

उसी तरह, इंदिराजी लोग कहते हैं कि तुलसीदास कविता भी उत्पन्न और बाह्य होती है और शोभा अन्तर्गत नहीं होती है (यद्यपि कविता वाणीसे उत्पन्न हुई कविता नहीं होता) वहाँ उत्पन्न सिद्धांत प्रसार तथा उसमें कथित आदर्शों का ग्रहण और अनुसरण होता है। प्रतिके स्वरूप जन्मे ही उसकी भक्तिके कारण उसकी ही प्रकृतिके-ले होकर होती जाती है ॥ ३ ॥

शम जलितं तु यिदु बह्वर्णम् । सो भवति भवति न कोटि उपायम् ॥

मणि सोनिद मल हृये विद्यते । शब्दविहृति हरि अस कवि मक हारी ॥ ३ ॥

अनन्तदेवीजी बोलीं आनेवी वह धक्कावट समझलिरूपी सरोवरमें उगई नहलये
दिना क्रूर गरोरा टण्ठोंने भी दूर नहीं छोड़ी । कबि और पण्डित भयने हृदयमें देवा
निजाकर दण्डिगुने पाषोको हनेवाले भीरुने कलम ही गान करते हैं ॥ ३ ॥

स्वर्गे प्रवृत्त धन शुन वाता । मित्र पुनि गिरा कनक प्रसिद्धाया ।

इदं विष्णु भक्तिं योगं समानम् । इति साक्षात् कृतिः सवान् ॥ २ ॥

संसारी मनुष्योंका गुणगान करनेसे सरस्वतीजी फिर धुनकर पछताने लगती हैं [कि मैं क्यों इसके बुलानेपर आवी] । बुद्धिमान् लोग हृदयको समुद्र, बुद्धिको दीप और सरस्वतीको स्वाति नक्षत्रके समान कहते हैं ॥ ४ ॥

जो बरषद् नर धारि निचक्र । होहि कविद मुकुतामणि चारु ॥ ५ ॥

इसमें यदि श्रेष्ठ विचाररूपी जल नरसदा है तो मुक्तामणिके समान सुन्दर कविता होती है ॥ ५ ॥

दो०—जुगुति बेधि पुनि पोहिआई राम चरित नर तन ।

पहिरहि सखन विमल सर सोभा अति अनुराग ॥ ११ ॥

उन कवितारूपी मुक्तामणियोंको गुफिते बेधकर फिर रामचरित्ररूपी सुन्दर ताने-में पिरोकर सज्जन लोग अपने निर्मल हृदयमें धारण करते हैं, जिससे अत्यन्त अनुराग-रूपी सोभा होती है (ये आत्मन्तिक प्रेमको प्राप्त होते हैं) ॥ ११ ॥

पौ०—जो जनसे फलिकाल कराका । करतव कथस बेध मराका ॥

बल्लत कुपंथ बेध मरा छाँचे । कपट कलेवर कलि मल भाँचे ॥ १ ॥

जो कराल फलियुगमें समेत हैं, जिनकी करनी कोपके समान है और जेब हंसका-सा है, जो वेदमार्गको छोड़कर क्रुमार्गपर चलते हैं, जो कपटकी मूर्ति और कलियुगके पापोंके भाँचे हैं ॥ १ ॥

बंचक भगत कहाइ राम के । किंकर कंचन कोह काम के ॥

तिगइ महुँ प्रबल रेख नय मोरी । घोंघ बरमण्यन बंधन मोरी ॥ २ ॥

जो श्रीरामजीके भक्त फलदाकर लोगोंको ठगते हैं, जो धन (कोम), मोच और कामके गुलाम हैं और जो घोंगाधारी करनेवाले, चर्मचर्मी (चर्मजी सूझी जवा फहरानेवाले—दर्भी) और कपटके चन्दोंका मोल देनेवाले हैं, संसारके ऐसे लोगोंमें सबसे पहले मेरी घिनती है ॥ २ ॥

जो अपने अवलुन सन कहैं । बाढ़ कहा पार नहि जाई ॥

राते मैं जति भक्त्य कसामे । मोरे महुँ जाविहि सपाने ॥ ३ ॥

यदि मैं अपने सव अवशुषोंको छाने लूँ तो क्या बहुत बड़ जायगी और मैं पार नहीं पाऊँगा । इससे मैंने बहुत कम अवशुषोंका वर्णन किया है । बुद्धिमान् लोग योवेहीमें समझ लेंगे ॥ ३ ॥

समुक्ति विधिधि-विधि विनती मोरी । कोठ ब कथा सुनि देहि मोरी ॥

पुतेहु पर फरिहि जे असक । मोहि ते अधिकते बढ मति रंका ॥ ४ ॥

मेरी अनेकों प्रकारकी विनतीको समझकर, जोह भी इस कथाको सुनकर रोष नहीं देगा । एतनेपर भी जो खंका करे, वे जो गुहासे भी अधिक सूख और बुद्धिके फंगल हैं ॥ ४ ॥

कवि न होई नहि चतुर कहलई । मति अनुसय राम गुन कवई ॥

कहै रघुपति के चलि जगस । कहै मति मोरि चरित संसार ॥ ५ ॥

मैं न तो कवि हूँ, न चतुर कहलता हूँ अपनी बुद्धिके अनुसार श्रीरामजीके गुण गाता हूँ । कहाँ तो श्रीरघुनाथजीके अपार चरित्र, कहाँ संसारमें आसक्त मेरी बुद्धि ! ॥ ५ ॥

जोहि मायु मिरि मेघ ददाई । कहहु लख केहि केसे माई ॥

समुसर अमिठ राम प्रसुखई । कलक कहा मज मति कदवाई ॥ ६ ॥

जिस हवासे सुमेरु-जैसे पहाड़ उड़ जाते हैं, वहिलेतो, उसके गमने रुई किध मिलतीमें है । श्रीरामजीकी असीम प्रभुताको समझकर कथा रचनेमें मेरा मन बहुत दिव्यता है—॥ ६ ॥

शो.—सारथ्य सेवक महेस विधि मध्यम निगाह पुरान ।

मेति मेति कहि ब्राह्म जुन करहि निरंतर गाव ॥ १५ ॥

सरस्वतीजी, वेपथी, विपथी, नृपथी, दास, वेद और पुरान—ये सब मेति-
मेति कहकर (पर नहीं पाकर देख नहीं, देख नहीं करते हुए) उदा निनका
गुणवान किया करते हैं ॥ १५ ॥

शो.—सब वाक्य प्रभु कहें। जय कहें बिलु सदा न कोई ॥

तहाँ के बस करन सख। मजन प्रभाव मीति बहु भाषा ॥ १६ ॥

यद्यपि प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी प्रभुत्वको सब ऐसी (अकथनीय) ही मानते हैं
तथापि कहे बिना कोई नहीं खा। इन्होंने वेदने ऐस करन बताया है कि भजनका
प्रभाव बहुत लज्जे का गया है। (अर्थात् भगवान्की भक्तिमाका पूरा वर्णन तो कोई
कर नहीं सकता; परन्तु जिससे जिसना बन पड़े उसना भगवान्का गुणगान करना
चाहिये। क्योंकि भगवान्के गुणगानकी प्रभावका बहुत ही अनोखा है; उसका
नाम प्रसारने शक्तिमें वर्णन है। योद्धा-या भी भगवान्के भजन अनुभवको सहन ही
भगवान्को कर देख है।) ॥ १६ ॥

एक कहीह बखान जगता। जस सखिद्वारा परवसा ॥

ब्रह्मक विरक्त्य भवदास। कोई करि वेद करित पूज गाता ॥ १७ ॥

शो परमेस्वर एक हैं, जिनके कोई इच्छा नहीं है, जिनका कोई काम भीर नग
वही है, जो ब्रह्मन्, सच्चिदानन्द और परमेश्वर हैं और जो स्वयं व्यापक एवं
विरक्त हैं उनही भगवान्को दिव्य करीर धारण करके नामा प्रसारकी लीला की है ॥ १७ ॥

शो वेदक मज्जन विद छागे। परम कृपक प्रवत अमुरागी ॥

मेति मन पर मज्जा मति छोह। कोई कदम करि कीच न कोह ॥ १८ ॥

यद्यपि लोक केवल भक्तोंके हितके ही है, क्योंकि भगवान् परम कृपावान् हैं और
परमात्माके दिग्गम हैं। जिनकी भक्तसे बढ़ी प्रवृत्ति और कृपा है, जिनोंने एक
बार विचार हुआ कर दो, उसपर फिर कभी श्रेय नहीं किया ॥ १८ ॥

यहें भजोर जीव। वेदात्। सरक लख सखिद्वारा ॥

सुन बाबहि हरि बस लख गावी। करहि पुनैव सुख विष बावी ॥ १९ ॥

शो प्रभु श्रीरामचन्द्रजी गमी हुई बल्लभों फिर मात करपेवाके, शरीरनिपाज
(चौनच)। लखलखभाष, लखलखान् और सके स्वामी हैं। वही समस्तकर
मुक्तिमान् लोग उन भीड़िका दश वर्णन करके अपनी वाणीओ परिन और उच्चन पद
(शेष और दुर्लभ मन्त्रयोग) देनेवाली बनाते हैं ॥ १९ ॥

कोई एक में रज्जुकी जुन गावा। कहिहैं नाह रास पर गावा ॥

मुनिन्द गवस हरि जोति खाई। कोई मन्त्र लख सुख सोहि माई ॥ २० ॥

उसी वल्ले (महिमामय बगवत् कर्म नहीं, परन्तु कदात् पद देनेवाला भजन
समयकर मन्त्रकृपाके कर्तार ही) में श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें तिर नवाकर श्रीरामचन्द्र-
जीके गुणोंकी कथा कहें। इसी विचारसे [वाक्यीकि, व्यास आदि] मुनियोंने पहले
हरिसे शीर्षी गयी है। माई। उसी मन्त्रपर लखना के लिये सुख होय ॥ २० ॥

शो.—शक्ति अथवा जो सचित वर जो सुख सेतु कराहिं।

कहिं फिरीलख परम कहु बिनु अस पारहिं लाहिं ॥ २१ ॥

जो धर्मन्त्र वही भेद नदिकों हैं, यदि राजा उत्तर पुत्र गीत देता है तो भगवान्

छोटी चींटियाँ भी उनपर चढ़कर बिना ही परिश्रमके पार चली जाती हैं [इसी प्रकार मुनियोंके धर्षनके सहारे मैं भी श्रीरामचरित्रका वर्णन सहज ही कर सकूँगा] ॥ १३ ॥

चौ०—एहि प्रकार बह सबहि देखाई। करिहैं रघुपति कथा सुहाई ॥

व्यास आदि कवि पुंश्व जना। जिन्ह सभर हरि सुजस बखाना ॥ १ ॥

॥ प्रकार मनको बह दिखलकर मैं श्रीरघुनाथजीकी सुहावनी कथाकी रचना करूँगा। व्यास आदि जो कनेकों श्रेष्ठ कवि हो गये हैं, जिन्होंने बड़े आदरसे श्रीहरिका गुणोंका वर्णन किया है ॥ १ ॥

चरन कमल बंदैं तिन्ह धरे। पुत्रहुँ सकल मनोरथ मेरे ॥

कवि के कविन्ह करत परजसा। जिन्ह करने रघुपति गुन प्रामा ॥ २ ॥

मैं उन सब (श्रेष्ठ कवियों) के चरनकमलोंमें प्रणाम करता हूँ, वे मेरे सब मनोरथोंको पूरा करें। कवियुगके भी उन कवियोंको मैं प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने श्रीरघुनाथजीके गुणगुणोंका वर्णन किया है ॥ २ ॥

जो प्राकृत कवि परस सवाने। भाषी जिन्ह हरि चरित बखाने ॥

सप ने जहहि के होइहहि जायें। प्रकवैं सबहि कथ सख ब्यागें ॥ ३ ॥

जो बड़े बुद्धिमान् प्राकृत कवि हैं, जिन्होंने भाषामें हरिचरित्रोंका वर्णन किया है, जो ऐसे कवि पहले हो चुके हैं, जो इस समय वर्तमान हैं और जो आये होंगे, उन सबको मैं सारा कथ ट्याकर प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥

होइ प्रसन्न पैहु करवान्। साधु समान् भविति समसाधु ॥

जो प्रबंध कुछ कहि जाइरहीं। सो अम बादि बह कवि करहीं ॥ ४ ॥

आप सब प्रसन्न होकर यह करवान दीजिये कि साधु-समाजमें मेरी कविताका सम्मान हो; क्योंकि बुद्धिमान् लोग भिन्न कविताका आदर नहीं करते, मूर्ख कवि ही उसकी रचनाका अर्थ परिश्रम करते हैं ॥ ४ ॥

कीरति भविति भूति अलि। होइ। सुरसरि सम सब कहि दित होइ ॥

राम सुकीरति भविति भवेस्त। असमंशत बल मोहि भवेत्ता ॥ ५ ॥

कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही उत्तम है जो गङ्गाजीकी तरह लवका दित करनेवाली हो। श्रीरामचन्द्रजीकी कीर्ति तो वही सुन्दर (सबका अनन्त कल्याण करनेवाली ही) है, परन्तु मेरी कविता भरी है। यह असामञ्जस है (अर्थात् इन दोनोंका मेल नहीं मिलता), इसकी मुझे चिन्ता है ॥ ५ ॥

तुम्हरी कृपा सुखम सोय मेरे। लिखि सुहावनि यह पठेरे ॥ ६ ॥

परन्तु हे कवियो! 'आमकी कृपासे यह बात भी मेरे लिखे सुखम हो सकती है।

रेशमकी सिलाई टाटपर भी सुहावनी लगती है ॥ ६ ॥

दो०—सरल कवित कीरति विमल सोइ आवरहि सुजान ।

सहज वयर विसराइ रिपु जो मुनि करहि बखान ॥ १४ (क) ॥

चतुर पुत्र उसी कविताका आदर करते हैं, जो सरल हो और जिसमें निर्मल चरित्रका वर्णन हो, तथा जिसे सुनकर ॥ भी स्वाभाविक वेश्मो भूझकर सराहना करने लगे ॥ १४ (क) ॥

सो न होइ बिनु विमल भति मोहि भति बह भति धोर ।

करहु कृपा हरि जस कहैं पुनि पुनि करत निधोर ॥ १४ (ख) ॥

ऐसी कविता बिना निर्मल बुद्धिके होती नहीं और मेरी बुद्धिवा बह बहुत ही पोहा

बिन शिव-पार्वतीने कलियुगको देसकर, जगहको हितके लिये, छावर मन्त्रसमूहकी रचना की, बिन मन्त्रोंके अक्षर बेगैठ हैं, किन्तु न कोई ठीक अर्थ होता है और न ज्ञान ही होता है, तथापि श्रीशिवजीके प्रतापसे बिनका प्रभाव प्रत्यक्ष है ॥ ३ ॥

छो ठमेल मोहि पर बजुल्लय । करिहि कथा सुव मंगल मूल ॥

सुमिरि सिवा सित पाइ फलक । करनैं राम चरित कित पाव ॥ ४ ॥

वे उभापति शिवजी सुसपर प्रसन्न होकर, [श्रीरामजीकी] इस कथाको आनन्द और मंगलकी मूल (उत्पन्न करनेवाली) बनावेंगे । इस प्रकार पार्वतीजी और शिवजी दोनोंका स्मरण करके और उनका प्रसाद पाकर मैं चावभरे चित्तसे श्रीरामचरित्रका वर्णन करता हूँ ॥ ४ ॥

भनिति भोरि सिव कूर्चो विमाती । सखि समाज भिक्षि मनहुँ सुरती ॥

जे एहि कथहि समेश समेत । कहिहहि सुनिहहि समुसि सचेत ॥ ५ ॥

होइहहि राम चरन अनुसन्धी । कसि भक्त रहित सुमंगल भागी ॥ ६ ॥

मेरी कविता श्रीशिवजीकी कृपासे ऐसी सुद्योमित होगी, जैसी तारागणोंके सहित चन्द्रमाके साथ राशि द्योमित होती है । जो इस कथाको प्रेमसाहित एवं श्रवणानीके साथ समझ-बूझकर कहें-सुनैंगे, वे कलियुगके पापोंसे रहित और सुन्दर कल्याणके भागी होकर श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके प्रेमी बन जावेंगे ॥ ५-६ ॥

दो०—सपनेहुँ साचेहुँ मोहि पर औ हर गौरि फसाव ।

तौ फुर होइ ओ कहेई सब भाषा भनिति प्रसाव ॥ १५ ॥

यदि सुसपर श्रीशिवजी और पार्वतीजीकी सपनें भी सचसुच प्रसजता हों, तो मैंने इस भाषाकविताका जो प्रभाव कहा है, वह सब सच हो ॥ १५ ॥

चौ०—बंघडै अवध पुरी अति पावनि । सरबसरि कसि कलुष नसावनि ॥

प्रकाहैं सुर भर नाहि बहीरी । समस्त जिन्ह पर प्रसुहि न धोरी ॥ १ ॥

मैं अति पवित्र श्रीअयोध्यापुरी और कलियुगके पापोंका नाश करनेवाली श्रीसरयू नदीकी वन्दना करता हूँ, फिर अवधपुरीके उन नर-नारियोंके प्रभाव करता हूँ, जिनपर मनु श्रीरामचन्द्रजीकी ममता थोड़ी नहीं है (अर्थात् बहुत है) ॥ १ ॥

सिय निवृत्त भय ओष नसाए । लोक विलोक बनाव बसाए ॥

बंघडै कौलस्या दिशि प्राण्छि । खेरसि अमु सखल लज मापी ॥ २ ॥

उन्होंने [अपनी पुरीमें रहनेवाले] सीताजीकी निष्ठा करनेवाले (धोबी और उसके समर्थक पुर-नर-नारियों) के पापसमूहको नाश कर उनको शोफरहित बनाकर अपने लोक (भाम) में बसा दिया । मैं कौलस्यास्त्री पूर्व दिशाकी वन्दना करता हूँ, जिसकी कीर्ति समस्त संसारमें फैल रही है ॥ २ ॥

मगटेड जहँ रहुपति सखि चरु । बिस सुखद सख कमल तुलार ॥

दसरथ राठ सहित सब सखी । मुकृत सुमंगल श्रुति मानी ॥ ३ ॥

करडै प्रनाम करम भव बानी । करहु कृप सुत सेवक जानी ॥

जिन्हहि विरधि ब्रह्ममन्त्र विद्याता । महिमा कथधि राम पितु माता ॥ ४ ॥

जहाँ (कौलस्यास्त्री पूर्व दिशा) से निष्कसे मुख देनेवाले और दुष्टरूपी कमलोंके लिये पालके समान श्रीरामचन्द्रजीकी सुन्दर चन्द्रमा प्रकट हुए । वर रात्रियोंसहित राजा दशरथजीको पुत्र्य और सुन्दर कल्याणकी मूर्ति जानकर मैं मन, चरन और कर्मे प्रणाम करता हूँ । अपने पुत्रका सेवक जानकर वे सुसपर छत्रा करे, बिनको

रत्नकर प्रसादीने श्री बर्षाई वाणी तथा जो श्रीरामजीके मन्त्र और पिता होनेके कारण यहिमाफी सीमा है ॥ ३-४ ॥

सो—संदर्भ अवध मुखाळ सत्य प्रेम लेहि राम पद ।

विह्वल दीनदयाळ प्रिय छु छुन ह्व परिहरेड ॥ १६ ॥

मैं अवधके राजा श्रीदत्तपत्नीसे वन्दना करता हूँ, बिनका श्रीरामजीके चरणोंमें उषा प्रेम या और किसीने दीनदयाळ प्रभुके विह्वले ही अपने प्यारे दरीरको मामूली दिनकेही तरह त्याग दिया ॥ १६ ॥

सो—प्रभवर्ष परिचय सखि बिह्व । कहि राम पद गुरु सगेह ॥

योग योग सहेँ सखेव सोई । राम विह्वेक प्रभेड सोई ॥ १७ ॥

मैं परिवारहीन राजा कनकबीरसे प्रणाम करता हूँ, बिनका श्रीरामजीके चरणोंमें गुरु प्रेम या, जिसने उन्होंने योग और योगमें किया रखा था, परन्तु श्रीरामचन्द्रजीकी देखते ही वह प्रकट हो गया ॥ १७ ॥

प्रभवर्ष प्रभव अरत के जाना । कसु बेम मत जाइ न करत ॥

राम करत संकट मन जाइ । छुड गडुप ह्व रत्न ५ पाद ॥ १८ ॥

[भार्येमें] समसे पहले मैं श्रीभरतजीके चरणोंको प्रणाम करता हूँ, जिसका निष्प और वह लय नहीं किश का सकता तथा बिनका यह श्रीरामजीके चरण-कमलोंमें भीरवी तरह बुझाया हुआ है, कभी उनका पाद नहीं सोवता ॥ १८ ॥

संदर्भ छविमय पद बधना । सीत छुमन भवत मुख दाता ॥

रहवति सीति मिमल पताक । रूँ संमान सबत कत जाका ॥ १९ ॥

मैं श्रीभरतजीके चरणकमलोंको प्रणाम करता हूँ, जो सीत, सुन्दर और भर्षाकी छल हैनाते हैं । श्रीभरतजीकी कीर्तिकी मिमल पताकमें बिनका (कमलजीका) या [पताकाको रेंवा करके चढ़ानेवाले] रंको समान हुआ ॥ १९ ॥

सेव छलसीत सब करत । जो अवतरेव भूमि भव दात ॥

छल से सखुसक रह मे वर । कृतसिद्ध सीमिति दुवाकर ॥ २० ॥

जो हनुम विराजे और आपके करण (हनुम कीतर वास्तुको धारण कर रखनेवाले) दीपही हैं, उन्होंने वृषीका भव दूर करनेके लिये अवतार किया, वे गुणोंकी दानि कृतसिद्ध सीमाजनन श्रीभरतजी की सुकर तथा प्रकट रहे ॥ २० ॥

रिजुसुह पद कमल समसी । सूर सुसीत भरत बहुगामी ॥

महावीर विभवर्ष दुपुमन । राम जसु सत कर बहावा ॥ २१ ॥

मैं श्रीभरतजीके चरणकमलोंको प्रणाम करता हूँ, जो नंदे रीत सुधी और श्रीभरतजीके पीछे चलनेवाले हैं । मैं महावीर श्रीभरतजीकी किसी करता हूँ, बिनके बहावा श्रीरामचन्द्रजीने स्वयं (अपने श्रीमुखसे) वर्णन किया है ॥ २१ ॥

सो—प्रभवर्ष पवनकुमार सख बन पावक भ्रममन ।

जसु हृदय मायार कसहि राम सर चाप घर ॥ २२ ॥

मैं पवनकुमार श्रीभरतजीको प्रणाम करता हूँ, जो दुष्टकी वनके भय करनेके लिये अस्त्रित हैं, जो भयभीत भवति हैं और बिनके हृदयस्त्री भयमें घनुष-बाण धारण किये श्रीरामजी निरास करते हैं ॥ २२ ॥

सो—कपिपति रीत निरास राज । कंधादि से कीस समाज ॥

संदर्भ सव के कर छुगप । भवत सीर राम बिह्व पाद ॥ २३ ॥

वानरोंके राजा सुग्रीवजी, रीछोंके राजा जाम्बवानजी, राक्षसोंके राजा विभीषणजी और अंगदजी आदि जितना वानरोंका सम्मान है, सबके सुन्दर चरणोंकी मैं वन्दना करता हूँ, जिन्होंने अक्षय (पशु और राक्षस आदि) शरीरमें भी श्रीरामचन्द्रजीको प्राप्त कर लिया ॥ १ ॥

रघुपति जन उपासक जेते। सग सग मुर पर असुर समेते ॥

बंदे पद सरोच सब केते। जे बिनु काम राम के चरे ॥ २ ॥

पशु, पक्षी, देवता, मनुष्य, असुरसमेत जितने श्रीरामजीके चरणोंके उपासक हैं, मैं उन सबके चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ, जो श्रीरामजीके निष्काम सेवक हैं ॥ २ ॥

सुक सनकादि भगत मुनि बारद। जे मुनिवर निम्बान बिसारद ॥

मनयई सयहि धरनि धरि सीसा। करहु कृप नय काबि मुनीसा ॥ ३ ॥

शुकदेवजी, सनकादि, नारदमुनि आदि जितने भक्त और परम धानी श्रेष्ठ मुनि हैं, मैं धरतीपर ठिठ टेककर उन सबको प्रणाम करता हूँ; हे मुनीश्वरो! आप सब मुझको अपना दास जानकर कृपा कीजिये ॥ ३ ॥

जनकमुता जग जननि आकरी। अतिसय मित्र कन्यानिधान की ॥

ताके सुग पद कमल सबकरी। जाहु कृपा निरमल मति पावई ॥ ४ ॥

राजा जनकजी पुत्री, जगत्की माता और कन्यानिधान श्रीरामचन्द्रजीकी प्रियतमा श्रीजानकीजीके दोनों चरणकमलोंको मैं मनाता हूँ, जिनकी कृपासे निर्मल बुद्धि पाऊँ ॥ ४ ॥

मुनि मन जगम करे। रघुनाथक। चरन कमल बंदे सब कामक ॥

राक्षसजगम करें पशु सपक। भगत विरति भंडव मुखदायक ॥ ५ ॥

फिर मैं मन, कंचन और कर्मसे कामलवन, भगुन-बाणधारी, भक्तोंकी विपत्तिका नाश करने और उन्हें मुक्त देनेवाले भगवान् श्रीरघुनाथजीके सर्वसमर्थ चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ ॥ ५ ॥

दो०—गिरा अरध जल बीचि सम कहिमत मित्र न मित्र ।

बंदे सीता राम पद भिन्दहि परम प्रिय खिन्न ॥ १८ ॥

जो याणी और उसके भर्ष, तथा जल और जलकी छद्मके समान पहलेमें अलग-अलग हैं, परन्तु वास्तवमें अभिन्न (एक) हैं, उन श्रीसीतारामजीके चरणोंकी मैं वन्दना करता हूँ, जिन्हें दीन-दुखी बहुत ही प्रिय हैं ॥ १८ ॥

✓ दो०—बंदे नाम राम खुन्न जे। हेतु फलानु भावु हितकर को ॥

बिधि इरि हरमन केद प्राप्ति सो। अनुन अनूयम गुन निधान सो ॥ १ ॥

मैं श्रीरघुनाथजीके नाम 'राम' की वन्दना करता हूँ, जो फलानु (कामि), भावु (सर्व) और हितकर (कन्द्रमा) का हेतु अर्थात् 'र' ध्या और 'म' रूपसे बीच है। वह 'राम' नाम महा, विष्णु और शिवरूप है। वह वेदोंका प्राण है; नियुक्त, उपभारहित और दुष्टोंका मन्धार है ॥ १ ॥

महामंत्र ओह जपत महेस्। कसौ मुकुंति हेतु उपदेस् ॥

महिमा जम्मु जाव गवरक। प्रलय पुनिजत नाम प्रसाक ॥ २ ॥ ✓

जो महामन्त्र है, जिसे महेश्वर श्रीशिवजी जपते हैं और उनके द्वारा जिसका उपदेश काशीमें मुक्तिका कारण है, तथा जिसकी महिमाको शणैश्वरी जानते हैं ओ इस 'राम' नामके प्रभावसे ही सबसे पहले पूजे जाते हैं ॥ २ ॥

जब भीखारी राम आया। जब कुछ करि उभरा जग ॥
 कुछ कर सब मुनि मिल बसो। जले जेई विष संग भवानी ॥ १४ ॥
 भीखारी भीखारीके राममने प्रणामे बसो है। जो उभरा राम
 (पाप, पाप) बस प्रिय हो गये। भीखारीके इस वचनसे सुनकर कि एक
 राम-राम लख नामके लख है। पानीकी क्या कमी पड़े (भीखारी) के लिये रामनामका
 का फल पड़ी है ॥ १४ ॥

इससे देखे हैरत हर ही को। विष सुख विष सुख ली लो ॥
 राम प्रसन्न सब मिल बीखे। फलफूल पशु दैव भरी को ॥ १५ ॥
 नामके पति पानीकीके हृदयकी देखे पति देकर भीखानी पति हो गये
 और उन्होंने मिलके सुखसम (पशुपतिजीके विषमणि) पानीकीको अपना रूप
 बना लिया। (अर्थात् उन्हें अपने कर्मों परल करके भगवन्निनी बना दिया)। नामके
 प्रभावसे भीखानी भीखारीके बनते हैं। (प्रभाव) के कारण फलफूल पशु
 उभरे समुद्रका फल दिया ॥ १५ ॥

ये—कहा रिदु रघुपति भगति कुलली सखि सुवास ॥
 राम नाम पर करन सुन राजस भवच भवस ॥ १६ ॥
 भगवन्निनीके मठ परा-सुहृद्, कुललीकी पत्नी है कि उभर केनकाप वाग
 है और पद्म नामके से सुनर बकर राम भरोके मुनि है ॥ १६ ॥
 ये—कहा गुरु भरो भरो देख। करन भिरोन सब विष होत ॥
 सुमिरत सुकम सुख सब पद। लोक सब पसीक गिरा ॥ १७ ॥
 ऐसी कर गुरु भरो भरो है। जो रम्यावली पदरेने भव है, यहीके
 बीज है राम करन करनेके लिये सुकम और सुख देनेवाले हैं, और जो इस
 मोहने राम और पदोपदी निराल करते हैं (अर्थात् भगवन्निने विष भली विधि
 देखे गये भगवन्निनीके विषुक्त करते हैं) ॥ १७ ॥

जब कुछ मुनि आये मुनि सैके। सब करन सब विष मुनि के ॥
 भव सब भव भिरो निराली। गुरु और राम करन केपरी ॥ १८ ॥
 ये कहते, सुनने और करन करनेमें सुख हो बसके (सुनर और भव) हैं।
 कुललीकी वो गीत उभरके लख पारे हैं। इनका (पा और पा) का
 नाम-अमर नाम करनेमें श्रुति मिलगयी है (अर्थात् भगवन्निनीके इन्होंने उभरके,
 कर्म और ५ में मिलवा रीत पड़ी है), रघु है ये और और बसके लिये लभाने
 ही लभ दियेवाले (या रघुना और पद्म) ॥ १८ ॥

यह भवभय सखि सुखसम। राम नाम विरोधि कर भव ॥
 भगति सुखसम नभ करन निराल। सब विष देव विष विष ॥ १९ ॥
 ये दोनों करन न-वचनके लिये सुनर बकर हैं। ये लखना राज और
 विषमणि मन्त्रीका पद करेवाले हैं। ये भीखारीकी सुनर भरोके कर्मोंके सुनर
 नाम (कर्म) हैं और बसके लिये विष निराल चरमा और पद हैं ॥ १९ ॥
 कर्म लेन सब सुखी सुख के। कर्म लेन सब पर भुक्ता के ॥
 लभ सब गुरु कर भवच से। नभ भरोके इरी इकरा के ॥ २० ॥
 ये सुनर भरो (सुख) सभी भवभय करन और सुनरके भव है, भवभय और
 भवभयके लिये भवभय करन करनेवाले हैं, भवभय भवभय सुनर भवभय

विहार करनेवाले औरके समान हैं और जीमरूपी कणोदावीके छिने श्रीकृष्ण और बलरामजीके समान [आनन्द देनेवाले] हैं ॥ ४ ॥

दो०—एक छत्र एक मुकुटमणि सब परस्पर पर जोड़ ।

तुलसी रघुवर नाम के बरन विराजत दोड़ ॥ २० ॥

तुलसीदासजी कहते हैं—श्रीरघुनाथजीके नामके दोनों अक्षर बड़ी शोभा देते हैं, जिनमेंसे एक (रकार) छत्ररूप (रेफ) से और दूसरा (मकार) मुकुटमणि (अनुस्वार) रूपसे सब अक्षरोंके अक्षर हैं ॥ २० ॥

चौ०—समुद्रत सरित नाम अह भासी । प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी ॥

नाम रूप हुए ईश उपाधी । अक्षय अनादि सुसामुक्ति साधी ॥ १ ॥

समझनेमें नाम और नामी दोनों एक-से हैं, किन्तु दोनोंमें परस्पर स्वामी और शेषके समान प्रीति है (अर्थात् नाम और नामीमें पूर्ण एकता होनेपर भी जैसे स्वामीके पीछे सेवक चलता है, उसी प्रकार नामके पीछे नामी चलते हैं । प्रभु श्रीरामजी अपने 'राम' नामका ही अनुगमन करते हैं, नाम केसे ही यहाँ आ जाते हैं) । नाम और रूप दोनों ईश्वरकी उपाधि हैं; वे (प्रभावान्ते नाम और रूप) दोनों अनिर्बचनीय हैं, अनादि हैं और सुन्दर (शुद्ध भक्तियुक्त) बुद्धिसे ही इनका [दिग्य अविनाशी] स्वरूप जाननेमें आता है ॥ १ ॥

श्री एक जोड़ कहत अपराध । सुनि गुन भेदु समुक्तिहि साध ॥

देखिअहि रूप नाम आधीना । रूप भ्याम नहि काम विहीना ॥ २ ॥

ज्ञा (नाम और रूप) में कौन बढ़ा है, कौन छोटा, यह कहना तो अपराध है । इनके गुणोंका तारतम्य (कमी-बेसी) सुनकर साधु पुरुष श्रवण ही समझ लेंगे । रूप नामके अधीन देखे जाते हैं, नामके बिना रूपका ज्ञान नहीं हो सकता ॥ २ ॥

रूप विशेष नाम सिधु मार्ग । कस्तुर गत न परहि पहिचार्ग ॥

सुनिरित नाम रूप सिधु देखें । अमृत हृदयें सदैव बितेयें ॥ ३ ॥

कोई-का विशेष रूप बिना उसका नाम जाने इकेबीपर रक्खा हुआ भी पहचान नहीं जा सकता । और रूपके बिना देखे भी भाषका सारण किया जब तो विशेष प्रेमके साथ वह रूप हृदयमें आ जाता है ॥ ३ ॥

नाम रूप गति अक्षय कहाँ । समुद्रत सुकर न परति वसानी ॥

अगुन समुद्र विष नाम सुसमयी । उदय प्रकोपक खड्ग हुमायी ॥ ४ ॥

नाम और रूपकी गतिभी कशानी (विशेषताकी कथा) अकथनीय है । वह समझनेमें सुखदायक है, परन्तु उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । निर्गुण और सगुणके बीचमें नाम सुन्दर साधी है, और दोनोंका यथार्थ ज्ञान करनेकेलिये चतुर हुमायिया है ॥ ४ ॥

दो०—राम नाम मनिदीप घर जीह देखीं द्वार ।

तुलसी भीतर पक्षिरेहुँ बौ चाहति रजिमार ॥ २१ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं, यदि तू भीतर और बाहर दोनों ओर उजाला चाहता है तो मुखरूपी द्वारकी जीमरूपी देखीपर समतामररूपी मणि-दीपकको रख ॥ २१ ॥

चौ०—नाम जीहँ जणि नामहि जोगी । निरति निरति प्रपंच वियोगी ॥

प्रभुसुखहि अनुभवहि करुण । अक्षय अनामय नाम न रूपा ॥ १ ॥

ब्रह्माके बनाये हुए इस प्रपञ्च (हस्त-जगत्) से मल्लोभति धृते हुए वैराग्यवान् मुक्त योगी पुरुष इस नामको ही जीमणे अपने हुए [सत्त्वज्ञानरूपी दिव्य] नामते हैं

और नाम तथा रूपसे रहित अनुभव, अनिर्वचनीय, अतमम ब्रह्मावुलका अनुभव करते हैं ?

कहा चाहें यह गति कैद । कम जहँ अपि जानहि तेद ॥

साधक नाम चाहि सब सम्यै । होहि सिद्ध अनिमादिक पायै ॥ २ ॥

जो परमात्माके गूढ़ रहस्यको (वस्तुतः व्यङ्ग्यको) जानना चाहते हैं वे (गिरासु) भी नामको जीभसे चूकर उठे जान लेते हैं । [जैतिका विद्वानोंके चाहनेवाले अर्थाधी] साधक जो तत्पक्ष नामका सब करते हैं और अनिमादि [आदों] विद्वानोंको पाकर सिद्ध हो जाते हैं ॥ २ ॥

जहँ कसु नव जात गरी । सिद्धि कुसंख्य होहि सुखारी ॥

सुख प्राप्त जग करि प्रसन्न । सुखी करिब अनव उन्नत ॥ ३ ॥

[मंदरसे कृष्णने हुए] जहाँ सब नामका करते हैं तो उनके बड़े भारी दुःखे बहुत मिट जाते हैं और वे सुखी हो जाते हैं । जगत्में चार प्रकारके (१-अर्थाधी—अनारिही चाहते मननेवाले, २-जहाँ—संकटकी निशुल्के किसे मननेवाले, ३-किरासु—भगवान्को जाननेकी इच्छासे मननेवाले, ४-जहाँ—भगवान्को सर्वसे जानकर आत्मनिष्ठ हो प्रेम्से मननेवाले) रासका १ और चारों ही पुण्यात्मा, पापहीन और बरकर ॥ ३ ॥

कह चहु कहु नान दखत । गान्ते प्रभुहि विदेहि विचार ॥

हो जा चहु कहु नाम प्रसाद । दखि विदेहि नहि भाव उपाद ॥ ४ ॥

जहाँ ही सब भक्तोंको नामका ही आधार है; इनमें अपनी मनु प्रभुकी विशेष करने दिए हैं । वे जो चारों गुणोंमें और चारों ही वेदोंमें नामका प्रभाव है, परन्तु विचारके बिना नहीं हैं । इसीसे [नामसे छोड़कर] गुणों को उपाय ही नहीं है ॥ ४ ॥

हा—सुखद कामना छीन के राम प्रकटि रख लीक ।

नाम सुखम निरूप हूइ सिंहहुँ फिर मल मीन ॥ २२ ॥

जो राम प्रसादी (भोग और मोक्षकी भी) कामनाओंसे रहित और औरामभावा-
के मल मीन हैं, उनमें भी नामके सुन्दर प्रेरणायुक्तके लोचनमें अपने मलको धोना समा सखा है (अर्थात् वे कामनायी कृष्णन निरन्तर आत्मादान करते रहते हैं, राम भी उनके लक्ष्य होना नहीं चाहते) ॥ २२ ॥

हा—गुरु मनु हूइ मल सखा । मल अक्षय अमादि कदा ॥

मोरे नर नर हूइ हूइ हैं । फिर कोई छा विवमल मल हूँ ॥ १ ॥

मिथुन और मृग—जहाँ से रहता है । वे दोनों ही अकर्मनीय, अघात, अन्याय और अहंकार हैं । मेरी समझमें नाम इन दोनोंसे बड़ा है, जिसने अपने पछले दोषोंको अपने मन पर उखाड़ा है ॥ १ ॥

प्राप्ति सुख अनि जानहि नान छी । सहै प्रसीति प्रीति कृपाम न ॥

सुख प्राप्त देखिब हूइ । सबक सब सब महा विवेक ॥ २ ॥

उक्त कथन हम सुमन नाम हैं । श्रेष्ठ नाम सब सब राम हैं ॥

रामक पुत्र प्रह्लाद भविवासी । सब चेतन सब सापैद राखी ॥ ३ ॥

रामनाथ सब दासको सब दाससे बड़ा है । वे सब दासोंके न सम हैं । मैं अपने गुरु, पिता, प्रेम और सखी बात कहता हूँ । [मिथुन और मृग] दोनों प्रसाद—राम नाम आदिके समान हैं । मिथुन उस अक्षय आदिके समान है जो काठके और रू, पत्थर दीर्घजीवी हैं और मृग सब प्रकार के समान है जो प्रत्यक्ष दीर्घजीवी

है । [तत्त्वतः दोनों एक ही हैं; केवल प्रकट-अप्रकटके मेरसे भिन्न माध्यम होती हैं । इसी प्रकार निर्गुण और सगुण तत्त्वतः एक ही हैं । इतना होनेपर भी] दोनों ही जाननेमें बड़े कठिन हैं, परन्तु नामसे दोनों सुगम हो जाते हैं । इसीसे मैंने नामको [निर्गुण] ब्रह्मसे और [सगुण] रामसे बड़ा कहा है । ब्रह्म व्यापक है, एक है, अविनाशी है; सत्ता, चैतन्य और आनन्दकी घन राशि है ॥ २-३ ॥

मस प्रभु इदं अमृत अविकारी । सख्य जीव जग दीन दुखारी ॥

नाम निरूपण नाम चरन हैं । छोट प्रकटत जिनम मोक्ष रसन तें ॥ ४ ॥

ऐसे विकाररहित प्रभुके हृदयमें रहते भी अफ़्तके सब जीव दीन और दुखी हैं । नामका निरूपण करके (नामके बंधार्थ स्वरूप, अहिमा, रहस्य और प्रभावकी जानकारी) नामका ज्ञान करनेसे (श्रद्धापूर्वक नामजपवासी जपन करनेसे) भी ब्रह्म ऐसे प्रकट हो जाता है जैसे रखके जाननेसे उसका मूल्य ॥ ४ ॥

दो—निरगुण हैं यदि भौति वह नाम प्रमान अपार ।

कहवें नामु यह राम तें निज विचार अनुसार ॥ २३ ॥

इस प्रकार निर्गुणसे नामका प्रमान अत्यन्त बड़ा है । अब अपने विचारके अनुसार कहता हूँ कि नाम [सगुण] रामसे भी बड़ा है ॥ २३ ॥

श्री—राम भगत हित नर तनु धारो । सहि संकट किए सबु दुखारी ॥

नामु समेत जगत जयवासा । भगत होहि सुख मंगल वासा ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने भक्तोंके हितके लिये मनुष्यसरीर धारण करके स्वयं कष्ट सहकर साधुओंको दुखी किया; परन्तु भक्तवत प्रेम्हके साथ नामका जप करते हुए तबहीमें आनन्द और कल्याणके फल हो जाते हैं ॥ १ ॥

राम एक जगस तिब छापी । नाम कोटि जग कुमति सुधारी ॥

रिधि हित राम सुकेतुसुता की । सहित सेन सुत कीर्ति विधारी ॥ २ ॥

सहित दीप हूत हूत हुराता । एकह नामु किमि रचि निति माता ॥

भजेत राम आपु सब कष्ट । भव भव अंतव ज्ञान प्रताप ॥ ३ ॥

श्रीरामजीने एक तपस्वीकी स्त्री (अहत्या) को ही तारा; परन्तु नामसे करोड़ों दुष्टोंकी बिगाड़ी बुझिकी सुधार दिया । श्रीरामजीने प्राणि विधामिनके हितके लिये एक सुकेतु यक्षकी कन्या ताड़ककी सेना और पुत्र (सुताहु) सहित स्मरति की; परन्तु नाम अपने भक्तोंके दोष, दुःख और दुरागमनोंका इष्ट तरह नाश कर देता है जैसे स्वर्ण रात्रिका । श्रीरामजीने दो स्वर्ण शिवजीके चतुष्को घोड़ा; परन्तु नामका प्रताप ही संसारके सब भयोंका नाश करनेवाला है ॥ २-३ ॥

दंडक वन प्रभु श्रीराम सुहायन । जल मन अस्मित नाम किए पावन ॥

निक्षिपर निकर दूके रत्नमदन । नामु सकल कलि कटुष विफंदन ॥ ४ ॥

प्रभु श्रीरामजीने [मयानक] दंडक वनको सुहायना बनाया; परन्तु नामने असंख्य मनुष्योंके मनोको पवित्र कर दिया । श्रीरामनाथजीने राक्षसोंके समूहको मारा; परन्तु नाम जो कलियुगके सारे पापोंकी जड़ उखाड़नेवाला है ॥ ४ ॥

दो—सबरी गीध सुसेवकवि सुगति दीन्दि रघुनाथ ।

नाम उधारे अमित खल केद विदित गुन पाथ ॥ २४ ॥

श्रीरामनाथजीने तो शबरी, बटभु आदि उत्तम सेवकोंको ही मुक्ति दी; परन्तु नामने अनित दुष्टोंका उद्धार किया । नामके गुणोंकी कथा केशोंमें प्रसिद्ध है ॥ २४ ॥

चौ०—राम सुकंठ विनीषन दोह । राखे सस्य जाव सहु कोह ॥

राम राखे अनेक बेसये । लोक वेद भर विरिद बिगये ॥ १ ॥

औरामजीने सुनीर और विनीषन दोहो ही अपनी अरकों सखा, वह हम बोई
जाते हैं । परन्तु रामने अनेक कीर्तन कृत भी हैं । नाम्ना यह सुन्दर विरद लोक
और वेदमें विविधरूपसे प्रकटित है ॥ १ ॥

राम बहुत अपि कष्ट खोले । सेह सेह समु कोन्द व मोर ॥

बहु सेह अवसिपु सुखहीं । कष्ट निबन्ध सुख वध माहीं ॥ २ ॥

औरामजीने तो मन्द और कन्दौपी केना नदोरी और समुद्रपर पुल बाँधनेके छिदे
येका परिक्रम नहीं किया; परन्तु नाम जेते ही संसार-सुख सख जात है । समनगम ।
मनमें विचार कीजिये [कि दोनोंमें कौन बढ़ा है] ॥ २ ॥

राम सज्जक सब कबहु धारा । लीव सहित निज पुर वगु धारा ॥

रामा समु अन्ध स्वधामी । गच्छ गुन दुर मुनि वर गनी ॥ ३ ॥

कैवलय सुमित्रा समु समीपे । विनु धन प्रपक मोह दलु बादी ॥

शित्त लनेई मान सुख अगैं । काम प्रपदु सोच नहिं सपनैं ॥ ४ ॥

औरामजीने कुटुम्बकीव रामको बुझमें धारा, ज्ञा श्रीलक्ष्मि उन्हीं अपने
नगर (अयोध्या) में अनेक किया । राम रामा हुए, अथवा उनकी राक्षसनी हुई,
ऐसा और मुनि सुन्दर काफीसे जिनके गुण जाते हैं । परन्तु कैवलय (मक) प्रेमात्मक
नामके स्वरूपवाचते दिन परिक्रम मोहनी प्रक केनाको नीतकर प्रेममें मग हुए अपने ही
सुखमें विचरते हैं, नामके प्रवादसे उन्हें अपने में कोई चिन्ता नहीं लगती ॥ ४-४ ॥

दो०—जहा राम तैं नहु सक दर हवक वर रहनि ।

रामचरित सठ छेदि गई छिय मोहस बिबैं जानि ॥ २५ ॥

इस प्रकार नाम [विदुष] राम और [लज्ज] राम दोनोंमें बढ़ा है । वह
बराबर देनेवालोंको भी न देनेवाला है । श्रीलक्ष्मजीने अपने हृदयमें यह जानकर ही ही
फोड़ रामचरितमेंसे इस राम नामको [उरसले पुनकर] प्रक किया है ॥ २५ ॥

मांसपारत्याग, पहला विधाय

चौ०—राम प्रसाद धनु अजिमासी । ललु कर्मवद मयक रासी ॥

सुख दुःखवि सिद्ध मुनि जेकी । राम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी ॥ १ ॥

रामजीने प्रसादसे जिनकी अजिमासी है, और कर्मवद सेवकसे होनेपर भी मोक्षकी
राशि है । दुन्देबसे और राजाजि सिद्ध, मुनि, योगीश्वर नामके ही प्रसादसे ब्रह्मसुखको
भोगते हैं ॥ १ ॥

मगद कवेड राम प्रसाद । अब शिव हरि हर शिव भाद ॥

बहु जगत समु कोन्द प्रसाद । राम सिद्धोसि जे प्रसाद ॥ २ ॥

नगरजीने रामके प्रसादको जाना है । हमें राखे संसर्गसे चले हैं, [हरिको हर
चले हैं] और राम (सी-नरदजी) हरि और हर दोनोंको प्रिय हैं । नामके कनेसे
प्रभुने ज्ञा वी- निरुद्ध प्रसाद मकधिराम्णि हो अने ॥ २ ॥

सुई सप्तजनि मनेर हरि कर्ष । धन्य कपल अन्तम कर्ष ॥

सुमिरि पवनसुत कान वगद । अपने कष करि राखे राम ॥ ३ ॥

सुनबीने कविसे (शिष्यको कर्मसे दुखी होने पर प्रसादसे) हरिनामको

जया, और उसके प्रदापने अन्त अनुपम खान (भुक्तिक) प्राप्त किया । हनुमान्जीने पवित्र नामका सरण करके रामजीको अपने वक्षमें कर रक्खा है ॥ २ ॥

अपनु अनामिष्ठ गन्ध गन्धिका । भयं मुकुट हरि नमः प्रभातः ॥

कहीं कहीं खमि नाम बदाई । राम व सकहि नाम गुन गाई ॥ ३ ॥

नीच अनामिष्ठ, गन्ध और गन्धिका (वैष्णव) भी श्रीहृरि के नामके प्रभावसे मुक्त हो गये । मैं नामकी बदाई कहँतक कहूँ, राम भी नामके गुणोंको नहीं गा सकते ॥ ४ ॥

श्लो०—नामु राम को कलपतरु कलि कल्याण निवासः ।

जो सुमिरत भयो मैं तैं तुलसी तुलसीदास ॥ २६ ॥

कलिजुगमें रामका नाम कल्पतरु (मनचाहा पदार्थ देनेवाला) और कल्याणका निवास (मुक्तिका घर) है, जिसको सरण करनेसे भौं-स (निकट) तुलसीदास तुलसीके समान [पवित्र] हो गया ॥ २६ ॥

श्लो०—बहुं हुग सीनि कल तिहुं कोका । भयं नाम जनि जीव बितोका ॥

वेद पुराण संत मत पङ्क्त । सकल सुकृत फल सम समेट ॥ १ ॥

[केवल कलियुगकी ही बात नहीं है,] चारों युगोंमें, तीनों कालोंमें और तीनों लोकोंमें नामको जपकर जीव शोकादि त हुए हैं । वेद, पुराण और संतोंका मत बड़ी है कि समस्त पुण्योंका फल श्रीरामकी [या रामनाममें] प्रेम होना है ॥ २ ॥

अपानु प्रथम सुग मल विधि दुर्जे । हापर परितोक्त प्रभु पूर्ण ॥

कलि कैवल्य मल मूत्र मलीन । पाप पयोविधि धन मन मीन ॥ १ ॥

पङ्के (सत्व) युक्तमें ध्यानसे, दूसरे (वेता) युगमें वक्ते और हापरमें पूजनसे भावान् प्रसन्न होते हैं; परन्तु कलियुग केवल पापकी अब और मलिन है, इसमें मनुष्योंका मन पापकामी समुद्रमें मछली बन हुआ है (भर्षात् पापसे कभी अलग होना ही नहीं चाहता; इससे ध्यान, मन्त्र और पूजन नहीं बन सकते) ॥ २ ॥

नाम जमनतक कल करत । सुमिरत समब सकल तल बाण ॥

राम नाम कलि अभिमत कल । हित परलोक लोक विदु माता ॥ ३ ॥

ऐसे कराक (कलियुगके) कालमें तो नाम ही कल्पवृक्ष है, जो सरण करते ही संसारके सब बंधनोंको नाश कर देनेवाला है । कलियुगमें वह रामनाम मनोवाञ्छित फल देनेवाला है, परलोकका परम हितेयी और इस लोकका माया-पिता है (अर्थात् परलोकमें ममबान्का परमप्राप्त देता है और इस लोकमें माता-पिताके समान सब प्रकारसे पालन और रक्षण करता है) ॥ ३ ॥

नहि कलि कल न मगति बिबेक । राम नाम जवबंदव पङ्क ॥

काळवेनि कलि कल निवास । नाम सुमति समरव हनुमान् ॥ ४ ॥

कलियुगमें न कर्म है, न भक्ति है और न ध्यान ही है; रामनाम ही एक आधार है । कष्टकी खान कलियुगकामी कालवेनिके [मारनेके] बिबे रामनाम ही बुद्धिमान् और समर्थ श्रीहनुमान्जी है ॥ ४ ॥

श्लो०—राम नाम जरकेसरी कनककसिपु फलिकाक ।

जापक जन प्रह्लाद बिमि पाळिहि दलि सुरसाक ॥ २७ ॥

रामनाम श्रीवृत्तिह भगवान् है, कलियुग हिरण्यकशिपु है और जप करनेवाले जन प्रह्लादके समान है; वह रामनाम देवताओंके शत्रु (कलियुगरूपी देव) को मारकर जप करनेवालोंकी रक्षा करेगा ॥ २७ ॥

चौ०—भार्ये कुमार्यै अवलम्ब आलसहूँ । नाम चपत संगल दिसि दसहूँ ॥

सुमिरि सौ नाम सस पुन गथा । करै नह रघुनयधि माया ॥ ११

अच्छे माय (प्रेम) से, बुरे मान (वैर) से, शोकसे या आलससे, किसी तरहसे भी नाम बचनेसे दसों दिशाओंमें बरबाद होता है । उसी (परम कल्याणकारी) रामनामका सरण करके और श्रीरघुनयजीको मस्तक नवाकर मैं रामजीके गुणोंका दर्शन करता हूँ ॥ १ ॥

मेरि सुधारहि सौ सब मालो । जसु कृपा नहि कुरी अवाली ॥

राम सुखामि कुम्बेक कुंभो । निब दिसि देखि दयानिधि पोसो ॥ २ ॥

वे [श्रीरामजी] मेरी [दिगन्दी] सब तरहसे सुधार लेंगे; निनकी कृपा कृपा करनेसे नहीं अवाली । राम-से उत्तम स्वामी और मुक्त-सीसा बुध सेरक । इतनेपर भी जन दयानिधिने अपनी ओर देखकर भेग पावन किया है ॥ २ ॥

कोषहूँ केह सुसादिब रीसी । निनब मुक्त पहिचानत प्रीती ॥

गरी गरीब प्राप्त कर आगर । पंथि नृप मर्त्यन उजागर ॥ ३ ॥

शोक और वेदने भी अच्छे लानीकी यही रीति प्रकट है कि वह निनब मुनते ही प्रेमको पहचान लेता है । अमीर-गरीब, नैवार-नगपनिवारी; पण्डित-मूर्ख; बदानाम-दगन्वी, ॥ ३ ॥

सुपधि कुकवि निम मति अनुदासी । नरहि सराहत सब नर वारी ॥

साधु सुमान सुखीक तुपाका । ईस बंस अब परम कुपाका ॥ ४ ॥

सुपधि-कुकवि, सभी नर-नारी अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार राजाकी सराहना करते हैं । और साधु-बुद्धिमान्, सुशील ईश्वरके भेदसे उत्तम कृपाकृ राजा—॥ ४ ॥

सुनि समानाहि मरति सुखी । मरति भगति बति रहि पहिचानी ॥

बन प्राकृत नहिणल सुखक । जाल निरोमनि कोसलराल ॥ ५ ॥

सबकी सुन्दर और उनकी वाणी, भक्ति, विनय और चालको पहचानकर सुन्दर (मीठी) दार्ढ्यसे उक्ता यथायोग्य सम्मान करते हैं । यह सम्भाव से संशयी राजाओंका है, कोसलमान् भीरामचन्द्रजी तो चतुर निरोमनि हैं ॥ ५ ॥

रंजन राम सबेह निसोते । को कब मंद मखिमति मोहें ॥ ६ ॥

भीरानजी तो विग्रह प्रेम्से ही रीझते हैं, पर कष्टमें मुनते बढ़कर मूर्ख और मतिमदुद्धि और क्रोध होमा ॥ ६ ॥

शौ०—सठ सेवन की प्रीति सचि सचिहहि राम कृपालु ।

दरल किए जलजान जेहि सचिब सुमति कपि भालु ॥ २८ (क) ॥

यथापि कृपालु श्रीरामचन्द्रजी कुछ कुछ सेवककी प्रीति और सचिकी अवश्य रखेंगे; किन्तुने परधनको च्छाज और बन्दर-भालुओंको छुद्रिगान् मन्वी बना लिया ॥ २८ (क) ॥

हौहू कहावत सवु कहत राम सहत उपहास ।

साहिब सीताबाय सो सेवक तुलसीदास ॥ २८ (ख) ॥

अब सोय मुझे श्रीरामजीका नेत्र कहते हैं और मैं भी [बिना लजा-सकोचके] कहलाता हूँ (कदनेबालता निरोप नहीं करता); कृपालु श्रीरामजी इस निन्दाको सहते हैं कि श्रीसीतानाथजीके स्वामीज तुलसीदास-या सेवक हैं ॥ २८ (ख) ॥

चौ०—अति बड़े मोरि डिगई खोने । सुते अप नरकहु नाक सकोरी ॥

समुनि सहन मोहि लखर अपने । सो मुधि सम कीन्हि नहि लपने ॥ १ ॥

यह मेरी बहुत बड़ी दिठाई और दोष है, मेरे पापों को छुनकर नरकने भी नाक सिकोड़ ली है (अर्थात् नरकमें भी मेरे छिने ठौर नहीं है) । यह समझकर मुझे अपने ही कथित डरसे डर हो रहा है, किन्तु भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने तो स्वप्नमें भी इसपर मेरी इस दिठाई और दोषपर ध्यान नहीं दिया ॥ १ ॥

सुनि अवलोकि सुखित जस कह्यो । भगति मोरि मति स्वाभि सराही ॥

कहत बसाइ होइ हिये नीकी । रीकत राम जानि बन जी की ॥ २ ॥

यस में प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने तो इस बातको छुनकर, देखकर और अपने सुचितरूपी चक्षुसे निरीक्षण कर मेरी मति और बुद्धिमें [उलटे] सराहना की । क्योंकि छद्मेमें चाहे किहू जाय (अर्थात् मैं चाहे अपनेको भगवान् का सेवक कहता-कहाता रहूँ) परन्तु हृदयमें अच्छापन होना चाहिये । (हृदयमें तो अपनेको उनका सेवक बनने योग्य नहीं मानकर पापी और दीन ही मानता हूँ, यह अच्छापन है ।) श्रीरामचन्द्रजी भी उसके हृदयकी [अच्छी] स्थिति जानकर रीक जाते हैं ॥ २ ॥

रहति न प्रभु पित नूक किए की । करत सुरति सब कार दिए की ॥

मेहि भय बधेइ व्याध विनि बानी । फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि मुवाकी ॥ ३ ॥

प्रभुके चित्तमें अपने भयोंकी की हुई भूल-नूक बाद नहीं रहती (वे उसे भूल जाते हैं) और उनके हृदय [की अच्छाई—नीकी] को खै-खै बार-बार करते रहते हैं । जिस पाप-के कारण उन्होंने बालिकों को व्याधकी तरह गण्य था, वैसी ही कुबालकिये सुप्रीयने बनी ॥ ३ ॥

सोइ करसति विनीचन केरी । सक्नेहुँ सो न सम दिये हेरी ॥

ते भरसहि मँहत सममाने । तजसही रघुवीर बजाने ॥ ४ ॥

वही करनी विनीचनकी थी, परन्तु श्रीरामचन्द्रजीने स्वप्नमें भी उनका मनमें विचार नहीं किया । उलटे भरतजीसे मिलनेके समय श्रीरघुनाथजीने उनका सम्मान किया और राजलभार्थ भी उनके गुणोंका बसाल किया ॥ ४ ॥

बो—प्रभु तब तर कपि डार पर ते किए भाषु समाज ।

तुलसी कह्यो न राम से साहिब जीजनिधान ॥ २९ (क) ॥

प्रभु (श्रीरामचन्द्रजी) तो वृष्णके नीचे और बन्दर बाकीपर (अर्थात् कहाँ महादापुत्रकोसम सखिदानन्दघन परमार्थवा श्रीरामजी और कहाँ पैतृकी शास्त्राभ्यास कूदनेवाले बन्दर) । परन्तु ऐसे कन्दरोंको भी उन्होंने अपने समान बना दिया । तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी-सरीखे जीजनिधान स्वामी कहीं भी नहीं हैं ॥ २९ (क) ॥

राम निकार्य रावरी है खबरी को नीक ।

जौ यह साँची है सदा ती सीको तुलसीक ॥ २९ (ख) ॥

हे श्रीरामजी ! आपकी अच्छाईसे सभीका भय है (अर्थात् आपका कल्याणमय स्वभाव सभीका कल्याण करनेवाला है) । यदि यह बात सच है तो तुलसीदासजी भी सदा कल्याण ही होगा ॥ २९ (ख) ॥

एहि विधि निज गुन दोष कहि सबहि बहुरि सिख जाय ।

वरनउँ रघुवर विसद जसु सुनि कलि फलुष नसाइ ॥ २९ (ग) ॥

इस प्रकार अपने गुण-दोषोंको कहकर और सबको फिर फिर मनाकर मैं श्रीरघुनाथजीका निर्मल वश वर्णन करता हूँ, जिसके सुननेसे कलियुगके पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ २९ (ग) ॥

बो—आगवक्षिक सो कहा सुहाई । सराह्य भुविबहि सुगई ॥

कहिहँ सोइ संवाद बजानी । सुनहुँ सकल सबन सुन्य गयी ॥ ३० ॥

हुनि वास्तवकीने सो गुह्यनी क्या प्रतियोग मत्ताकीने गुह्यनी पी, तब
अरुको में वसन्तत बहोवा, सब समन गुह्यनी वदुभा करो दुर, ठगे कुँ ॥ १ ॥

बहु चीन्हा नर चीन्हा गुह्यनी । कुनी गुना करी वसति सुखा ॥

सो निम कस्युपिदि किन्हा । कस मत्ता बहिनारी कोन्हा ॥ २ ॥

विपनीने पले हत गुह्यनी चीन्हा रना, फिर गुह्य कले पारोटीकीने गुह्यनी ।
सो विपनि विपनीने वसन्तगुह्यनीने गुह्यनी ॥ वसन्तगुह्यनी वसन्तत दिया ॥ २ ॥

वेदि सब वसन्तगुह्यनी गुह्यनी पला । फिर गुह्य वसन्तत प्रति गावा ॥

वे सोल वसन्त गुह्यनीने । वसन्तगुह्यनी वसन्तत हरीनीने ॥ ३ ॥

उन वसन्तगुह्यनीने फिर वास्तवकीने पावा और ठगेने फिर ठगे पावा
चीन्हा गावा गुह्यनी । वे दोरी वसन्त और वसन्त (वसन्तत और वसन्तत) वसन्त
वसन्तत और वसन्तत हैं और वसन्तत वसन्तत वसन्तत हैं ॥ ३ ॥

वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत । वसन्तत वसन्तत वसन्तत ॥

वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत । वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत ॥ ४ ॥

वे वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत
(वसन्तत) वसन्तत हैं । और भी वो वसन्तत (वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत)
वसन्तत हैं । वे वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत ॥ ५ ॥

वे—वे वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत ।

वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत ॥ ६ ॥ (६) ॥

वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत
वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत ॥ ७ ॥ (७) ॥

वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत ।

वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत ॥ ८ ॥ (८) ॥

वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत
वसन्तत (वसन्तत) वसन्तत हैं । वे वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत
वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत ॥ ९ ॥ (९) ॥

वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत ।

वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत ॥ १० ॥

वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत
वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत ॥ ११ ॥

वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत ॥ १२ ॥

वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत ॥ १३ ॥

वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत
वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत ॥ १४ ॥

वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत ॥ १५ ॥

वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत ॥ १६ ॥

वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत
वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत वसन्तत ॥ १७ ॥

और विवेककारी अधिक प्रकट करनेके लिये अरवि (गन्धन की आनेवाली लकड़ी) है, (अर्थात् इस कथासे ज्ञानकी प्राप्ति होती है) ॥ ३ ॥

रामकथा कवि कामद गाई । सुनन सबीचवि सूरि सुहाई ॥

सौद वसुधातक सुधा सरसिनि । मन मंजवि अम मेक मुनीमनि ॥ ४ ॥

रामकथा कवियुगमें सब मनोरथोंके पूर्ण करनेवाली कामधेनु गौ है और सबनौके लिये सुन्दर सङ्गीतनी लड़ी है । पृथ्वीपर लड़ी अमृतकी नदी है, जन्म-मरण-रूपी भयका नाश करनेवाली और अमररूपी मेढकोंको खानेके लिये तर्पणी है ॥ ४ ॥

असुर सेन सम वरक निर्वर्दिनि । सप्तविषुष कुलहित निर्वर्दिनि ॥

कंस सम्राज पयोधि रसा खी । बिल मर मर अचल छमा सी ॥ ५ ॥

यह रामकथा असुरोंकी केनाके समान नरकोंका नाश करनेवाली और सप्तारूप देवताओंके कुलका हित करनेवाली पार्वती (दुर्गा) है । यह संत-समाजरूपी क्षीरसमुद्रके लिये लक्ष्मीकी समान है और सम्पूर्ण विश्वका मर उठानेमें अचल पृथ्वीके समान है ॥ ५ ॥

अम राघ मुहँसि बग असुभा सी । जीवन मुकुति हेतु बहु कासी ॥

रामहि मिय पत्नवि तुलसी सी । तुलसीदास हित हिमँ तुलसी सी ॥ ६ ॥

यमवृत्तोंके हुक्मपर काविल ज्ञानके लिये वह जगत्में भग्नानीके समान है और जीवोंको मुक्ति देनेके लिये मानो कासी ही है । यह श्रीरामजीके पवित्र तुलसीके समान मिय है और तुलसीदासके लिये तुलसी (तुलसीदासजीकी माता) के समान हृदयके हित करनेवाली है ॥ ६ ॥

सिधमिप मेकल सैक मुक्त सी । सकल सिद्धि सुख संरति रासी ॥

सवगुण सुरमन अंब मदिति सी । सुखर मन्ति प्रेम परमिति सी ॥ ७ ॥

यह रामकथा शिवजीके नर्मदाजीके समान प्यारी है, यह सब सिद्धियोंकी तथा सुख-सम्पत्तियों राखि है । सद्गुणरूपी देवताओंके उत्पन्न और पद्म-लोचन करनेके लिये माता मदितिके समान है । श्रीछुना कबीरजी भक्ति और प्रेमकी परम सीमा-सी है ॥ ७ ॥

दो०—रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित छाद ।

तुलसी सुमन समेह वन सिख रघुवीर बिहार ॥ ३१ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि रामकथा मन्दाकिनी नदी है, सुन्दर (निर्मल) चित्र चित्रकूट है और सुन्दर झील ही वन है, जिसमें श्रीजीश्वरजी बिहार करते हैं ॥ ३१ ॥

चौ०—रामचरित चितामनि चर । संत मुमति सिख सुमन विमल ॥

अवमंगल गुनअम राम के । दासि मुकुति पन घरम भास के ॥ ३२ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका चरित्र सुन्दर किन्तामनि है और संतोंकी सुन्दररूपी लीला सुन्दर सङ्कार है । श्रीरामचन्द्रजीके गुणगूह जगत्का कल्याण करनेवाले और मुक्ति, धन, धर्म और परमधामके देनेवाले हैं ॥ ३२ ॥

सद्गुरु म्यान निराव शेष के । बिलुख वैद अम जीम रोग के ॥

अर्धन बनक सिख राम प्रेम के । शीख सकल मर घरम नेम के ॥ ३३ ॥

ज्ञान, वैराग्य और योगके लिये सद्गुरु हैं और शंकररूपी भयंकर रोगका नाश करनेके लिये देवताओंके वैद्य (अभिनीकुमार) के समान हैं । ये श्रीजीश्वरजीके प्रेमके उत्पन्न करनेके लिये माता-पिता हैं और सम्पूर्ण जल, धर्म और निवर्तके बीज हैं ॥ ३३ ॥

समन फग संताप सोक के । मिय कलक परसोक शोक के ॥

सचिद सुखत मूपति बिहार के । कुंमल जोम उदधि जगर के ॥ ३४ ॥

पाप, दुःख और शोकका नाश करनेवाले तथा हल शोक और परलोकके प्रिय पालन करनेवाले हैं। दिवार (वान) सभी राजाके धूरवीर मन्त्री और लोभरूपी अपार समुद्रके मोलनेके लिये अमरत्व मुनि हैं ॥ ३ ॥

काम कोह कल्लिमल करिण डो। केहरि सायक मव मव बन के ॥

अविधि पूज्य प्रिकल्लम डुरारि के। कामद घब दारिद दवारि के ॥ ४ ॥

भक्तोंके मनरूपी जन्मे वसनेवाले काम, शोक और कल्लिमलके पादरूपी हृदयोंके धारनेके लिये सिंहाके बन्धे हैं। प्रिकल्लमके पूज्य और प्रियतम अविधि हैं और दारिद्र्यरूपी दावानलके बुझानेके लिये कामला पूर्ण करनेवाले मेघ हैं ॥ ४ ॥

संघ महामणि विषय म्याळ के। मेळ कठिन हुमळ भाळ के ॥

हरम मोह सम दिक्कर कर से। सेवक सारिण पाळ कळयर से ॥ ५ ॥

विषयरूपी सौमका शब्द उदरनेके लिये मन्त्र और महामणि हैं। ये कळापपर छिड़े हुए कठिनवाले मित्रनेवाले बुरे छेवों (मन्द प्रारब्ध) को मिटा देनेवाले हैं। शक्रात्मकी शङ्खकारके हरण करनेके लिये सूर्यकिरणोंके समान और केवलरूपी धामके पालन करनेमें मेघके समान हैं ॥ ५ ॥

अभिमत दुषि देवदद वर से। सेवक सुखम सुखद हरि हर से ॥

दुखवि सरद मम मय ददधन से। रामभक्त जन बीजव बन से ॥ ६ ॥

मनोवाञ्छित वस्तु देनेमें श्रेष्ठ कन्ददृसके समान हैं और सेवा करनेमें हरि-वरके समान सुख और सुख देनेवाले हैं। सुखविकारी शरद ऋतुके मनकरी वायव्याको कुपोषित करनेके लिये कारण्यके समान और श्रीरामजीके भक्तोंके तो जीवनधन ही हैं ॥ ६ ॥

सकल सुख कळ भूले मोग से। मय हित मिश्रवि छाडु सोन मे ॥

सेवक मम भावस मराळ से। पावव रंग वरंघ भाळ से ॥ ७ ॥

मनपूर्व पुष्पोंके फल मगान् मोमोंके समान हैं। कातृज उत्तरहित (वधार्थ) वित्त करनेमें बाहु रत्नोंके समान हैं। सेवकोंके मनरूपी मानरोजकरके लिये इनके समान और वषिप करनेमें गङ्गाजीकी तरङ्गमालाओंके समान हैं ॥ ७ ॥

रोः—कृपय कुतरक कुञ्जलि करि कपट वंम सारंज ।

दहन राम गुन प्राप्त विमि इवन अतल प्रवर्द्ध ॥ १२ (क) ॥

श्रीरामजीके गुणोंके समूह कुञ्जलि, कुतरक, कुञ्जल और कनिमुषके कपट, दम्भ और वाक्पथके बधनेके लिये वैसे ही हैं जैसे हँसनेके लिये प्रबन्ध बाध ॥ १२ (क) ॥

यमचरित राकेस कर लरिस सुखद सब कहहु ।

राज्यन कुमुद चकोर चित्त हित विसेपि यद छाडु ॥ १२ (ख) ॥

रामचरित पूर्णिकके चन्द्रमाली किरणोंके समान नर्तको ब्रुत देनेवाले हैं, परन्तु राजरूपी कुञ्जलि और चकोरके चित्तके लिये तो विशेष हितकारी और पहाड़ नामदायक हैं ॥ १२ (ख) ॥

चौ—कीर्ति प्रस बेहि भोति मयानी। बेहि विधि संकर कहा कयानी ॥

सो सब देसु कदम पै गाई। कथाप्रबंध विविध भगाई ॥ १ ॥

विश्वप्रभर श्रीगार्वाज्यके श्रीशिवजीके प्रभु भिन्न और वित्त प्रकारसे श्रीशिवजीने विहारा से उत्पन्न दण्ड कदा वह सब कथा में लिख्य कथाकी रचना करके गाकर कहा ॥ १ ॥

बेहि यह कथा सुनी नहि होई। कनि नाचतु करि मुनि सोई ॥

कथा अटीविक सुनीं वे मयानी। नहि भावतु करहि मय मयानी ॥ २ ॥

रामकथा कै श्रिति बना चाहौं । जसि प्रतीति सिन्धु के मन साहीं ॥

नाना भौति राम कवतार । रामावन सत कोटि अक्षर ॥ ३० ॥

जिसने यह कथा पढ़े न सुनी हो, वह इसे सुनकर आश्चर्य न करे । जो शर्मा इस विचित्र कथाको सुनते हैं, वे वह जन्मकर आश्चर्य नहीं करते कि संसारमें रामकथा की कोई सीमा नहीं है (रामकथा अनन्त है) । उनके मनमें ऐसा विश्वास रहता है । नाना प्रकारसे श्रीरामचन्द्रजीके अवतार हुए हैं और सौ करोड़ तथा अपार रामायण हैं ॥ २-३ ॥

कष्टपथेद, हरिचरित सुहाय । भौति जकेक सुकीसन्द राय ॥

करिज न संसय अस उर जाने । सुनिष कथा सादर रति भाबी ॥ ४ ॥

कष्टपथके अनुसार भीहरिके सुन्दर चरित्रोंसे मुनीश्वरोंने अनेकों प्रकारसे गाया है । हृदयमें ऐसा विचारकर सन्देह न कीजिये और आश्चर्यहित प्रेम्से इस कथाको सुनिये ॥ ४ ॥

शे०—राम अनंत अनंत गुन अमित कथा विस्तार ।

सुनि आचरण न सागिहहि सिन्धु के विमल चिन्तार ॥ ३३ ॥

श्रीरामचन्द्रजी अनन्त हैं, उनके गुण भी अनन्त हैं और उनकी कथाओंका विस्तार भी असीम है । अतएव जिनके चिन्तार निर्मल हैं, वे इस कथाको सुनकर आश्चर्य नहीं मानेंगे ॥ ३३ ॥

शे०—एहि बिधि सब संसय करि दूरी । सिर धरि गुन पद बंजन चूरी ॥

हुनि सबही भिन्नहैं कर जोरी । करत कथा बौहि कथन व सोरी ॥ ३४ ॥

इस प्रकार सब सन्देहोंको दूर करके और श्रीगुरुजीके शरणकमलोंकी रजको घिरपर धारण करके मैं पुनः श्रवण जोड़कर स्वयं चिन्ती करता हूँ, जिससे कथाकी रचनामें कोई दोष स्वर्ण न करने पावे ॥ ३४ ॥

सादर सिन्धि बाहू अम माथा । बरनहैं बिसद राम गुन लखा ॥

संभत सोरह सै सुकसिसा । करहैं कथा हरिपद धरि लखा ॥ २ ॥

जब मैं आश्चर्यपूर्वक श्रीशिवजीसे शिर नवाकर श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंकी निर्मल कथा कहता हूँ । भीहरिके चरनोंपर सिर रखकर संवत् १६३१ में इस कथाका आरम्भ करता हूँ ॥ २ ॥

शे० भीम भीमकर मधुमाता । अवधपुटी यह चरित प्रकासा ॥

जोहि दिन राम जन्म सुति गावहि । तीरव सक्क रहौं चकि जावहि ॥ ३ ॥

शैव माधवी नवमी तिथि मंगलवारको श्रीअयोध्याजीमें यह चरित्र प्रकाशित हुआ । जिस दिन श्रीरामजीका जन्म होता है, वेद कहते हैं कि उस दिन सारे तीर्थ वहाँ (अयोध्याजीमें) चले जाते हैं ॥ ३ ॥

जसुर नाग सग नर सुनि देवा । बहू करहि रघुनाथक सेवा ॥

जन्म महील्लव रचिहैं सुजाय । करहि राम कठ कोरति जया ॥ ४ ॥

जसुर, नाग, पक्षी, मनुष्य, मुनि और देवता सब अयोध्याजीमें आकर श्रीरघुनाथजीकी सेवा करते हैं । बुद्धिमान लोग जन्मका महील्लव मनाते हैं और श्रीरामजीकी सुन्दर कीर्तिका गान करते हैं ॥ ४ ॥

शे०—मज्झहि सज्जन बृंद बहु पावन सरजू नीर ।

जपहि राम धरि ध्यान उर सुवैर स्याम सरीर ॥ ३४ ॥

जनोंके बहुतसे समूह उस दिन अयोध्याजीके पवित्र जलोंमें स्नान करते हैं और

प्रचार हुआ, अब वही सब कथा मैं श्रीराम-भक्तिकर सारण करते कहता हूँ ॥ १५ ॥

चौ०—संभु प्रसाद मुमति हिमें हुआ। रामचरितमानस कवि हुआ।

करद मनोहर सति अनुसूते। सुजन सुनिष्ठ सुनि सेह सुधारी ॥ १ ॥

श्रीशिवजीकी कृपासे उसके हृदयमें सुन्दर बुद्धि का विकास हुआ, जिससे यह सुकसीदास श्रीरामचरितमानसका कवि हुआ। अपनी बुद्धि के अनुसार तो वह इसे मनोहर ही बनाता है। किन्तु फिर भी हे सबने। सुन्दर चित्ते सुनकर इसे आम सुधार लीजिये ॥ १ ॥

मुमति भूमि बल द्रव्य बनाए। वेद पुरान उद्दिष्टि वन साधू ॥

बरपाई राम सुखस घर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी ॥ २ ॥

सुन्दर (साधुकी) बुद्धि भूमि है, द्रव्य ही उसमें गहरा स्थान है, वेद-पुराण समुद्र हैं और साधु-संत मेघ हैं। वे (साधुकी मेघ) श्रीरामजीके कृपारूपी सुन्दर, मधुर, मनोहर और मंगलकारी बरपाई कर रहे हैं ॥ २ ॥

लीला सगुण को कहहि ब्रह्मानी। सोइ सत्सङ्ग करद मङ्ग हाणी ॥

प्रेम भगति को कहि न जाई। सोइ मधुरता सुखसङ्गताई ॥ ३ ॥

सगुण लीलाका को निहारते वर्णन करते हैं, वही राम-कृपारूपी ब्रह्मणी निर्मलता है, जो मङ्गका नाश करती है; और जिस प्रेमभक्ति का वर्णन नहीं किया जा सकता, वही इस जलकी मधुरता और सुन्दर शीतलता है ॥ ३ ॥

सो जल सुकल सखि हित होई। राम भग्न जन अविन सोई ॥

मेधा महि गत सो बल पवन। सकलिन भवभय खेद सुहावन ॥ ४ ॥

भरोस सुमानस सुखक विरग। सुख सौं सचि पाव विरगा ॥ ५ ॥

पा (राम-कृपारूपी) जल उत्कर्मरूपी पानके लिये शिक्कर है, और श्रीरामजीके मर्तोका को जीवन ही है। वह पवित्र जल बुद्धिरूपी पूर्णतर गिरा और किमद-कर मुहाफने कानरूपी मार्गसे बल और मानस (द्रव्य) रूपी भेद स्थानमें भरकर नहीं सिर हो गया। वही पुराना होकर सुन्दर, सचिकर, शीतल और सुखदायी हो गया ॥ ४-५ ॥

चौ०—मुनि सुन्दर संवाद कर बिरसे बुद्धि विचारि।

तेह एहि पावन सुमग घर छट मनोहर चारि ॥ ३१ ॥

इस कथामें बुद्धिसे निचारकर जो चार अत्यन्त सुन्दर और उत्तम संवाद (मुनि-पावन, शिव-पार्वती, वासुदेव-महाबाब और सुकसीदास और संत) रहे हैं, वही इस पवित्र और सुन्दर स्त्रोत्रके चार मनोहर चार हैं ॥ ३१ ॥

चौ०—संत प्रबंध सुमग सोफना। ज्ञान कव्य विरक्त सव भाषा ॥

रघुपति महिमा जगुन। कव्य सोइ घर बरि जगावा ॥ १ ॥

सात काण्ड ही इस मानस-स्तोत्रकी सुन्दर सात छीदियाँ हैं, जिनको ज्ञानरूपी नेत्रोंसे देखते ही मन प्रसन्न हो जाता है। श्रीरामचरितमानसी तिरुंग (प्राकृतिक गुणोंके मतीत) और निर्वाण (एकल) महिमाका जो वर्णन किया जायगा, वही इस सुन्दर बरपाई मयाद गहराई है ॥ १ ॥

राम-सीव जल सखि सुखसङ्ग। उपमा कीचि विरक्त मनोरम ॥

पुरहनि सचन पाव चौपाई। रघुपति संत सचि सीप सुहाई ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीका क्या जस्तके स्थान जल है। इसमें जो उपमाएँ हो गयी हैं वही तरङ्गोंका मनोहर विभव है। सुन्दर चौपाइयों ही इसमें बनी पौड़ी हुई

पुरंद (कालिनी) है और कलिकायी कुक्षिमें सुन्दर यति (भोजी) लयन
फलवाली सुधानी भोजिनी है ॥ २ ॥

एवं सोमदा जुंवर सोहा। सोह दहुरंग कमल-जुल सोहा ॥

यस जगत् सुख सुखसा। सोह परम मकरंद सुखासा ॥ ३ ॥

जो सुन्दर छन्द, सोरठे और दोरे है, वही इसमें बहुतों के समूह सुशोभित
है। अनुपम व्यस, सोचे मान और सुन्दर भाषा ही परम (पुष्परज), मकरन्द
(पुष्परज) और सुख है ॥ ३ ॥

सुख सुख नैकुल कलि भाव। न्याय विराग विचार मराल ॥

हुनि जगत्तर कलि सुख काशी। मनीहर ते बहुमौतो ॥ ४ ॥

कलनों (पुष्पों) के पुष्प भोजिनी सुन्दर पंक्तिवाँ है; जन, वैराग्य और विचार इस
है। कलिकायी जलि, कलिका, सुख और भाति ही अनेकों प्रकारकी मनीहर मल्लिकार्जुन है ॥ ४ ॥

अथ घरम कामदेविक करी। कद्व मन्त्र चिन्मय विचारो ॥

मेव रस कय लय योग विराग। ते सब जगत्तर चार वदाम ॥ ५ ॥

अर्थ: प्रेम, काम, मोह ये चारों, ज्ञान-विज्ञान-विचारके कलना, कामके मकरंद,
जल, लय, योग और वैराग्यके प्रसंग, ये सब इस सरोवरके सुन्दर जलकर लीप हैं ॥ ५ ॥

सुकुलो छात्रु खस सुप गवा। ते विविध कलविदुष कमला ॥

संप्रसन्न चहुँ विदि जगत्तर। अदा रिदु कल सम गवा ॥ ६ ॥

सुकुली (पुष्पात्म्य) जलोंके, सुकुलोंके और वीरामनामके सुनोंका गान ही विविध
कल-विदोंके समान है। सुंदरी तथा ही इस सरोवरके चारों ओरकी अमराई (आमकी
पनीषियाँ) हैं और अदा कलत श्रुतके समान कदी गयी है ॥ ६ ॥

भक्ति निरूपन विविध विद्या। सम दस दस दस विद्या ॥

सम जन विषम कूल कल म्याना। हरि पर एति रस केद पद्याना ॥ ७ ॥

नाम प्रसारो मलिकान निरूपन और सम, दस तथा दस (इन्द्रियनिग्रह)
कलाओंके समूह है। समका निग्रह, यम (अहिंस, कथ, कलेश, प्रसन्नचर्च और
अपरिग्रह); निग्रह (शेष, संतोष, उप, स्वाभाव और ईश्वरप्रणिधान) ही उनके
कूल है; जन कल है और भीतिके चरणोंमें प्रेम ही इस जलकारी कलका रस है।
ऐसा वेदोंके कहा है ॥ ७ ॥

औरत कया अनेक प्रसंग। सोह सुक पिक बहुवत्त निर्वा ॥ ८ ॥

इस (रामचरितमानस) में और भी अनेक प्रसंगोंकी कथाएँ हैं, वे ही इसमें
सोते, सोक आदि रंग-रिचि पड़ी हैं ॥ ८ ॥

ये—पुलक पाटिप्र भाग बन सुख सुचिरंग विहार।

माखी सुमन खेद लल खीवत खेवव चार ॥ ९ ॥

काममें जो रोमाञ्च होता है वही पाटिप्र, भाग और बन हैं; और जो सुख होता
है, वही सुन्दर पटियोंका विहार है। निमित्त मन ही माखी है, जो प्रेमकली जलसे सुन्दर
नेत्रोंद्वारा उनको खींचता है ॥ ९ ॥

जो—जो कदाहिं यद खसि खेवरे। केद यदि लल चर रसवरे ॥

लल सुवर्दि सुन्दर नर गरी। केद सुन्दर मानस धनिकारी ॥ १० ॥

जो लोग इस चरित्रके खगवाजीति करते हैं, वे ही इस धावनके चरु रसवरे

॥ और जो स्त्री-पुरुष सदा आदरपूर्वक इसे सुनते हैं, वे ही इस सुन्दर मानसके अधिकारी उत्तम देवता हैं ॥ १ ॥

अति सख्खे जे निषई बग काग। एहि सर निखट न जाई अमराग ॥

संडुक जेक सेवार समाचा। इहाँ न विषय कया रस नांन ॥ २ ॥

जो अति दुष्ट और निषधी हैं वे अमरों वसुधे और कौए हैं, जो इस सरोवरके समीप नहीं जाते। क्योंकि यहाँ (इस मानस-सरोवरमें) घोंके, भेदक और सेवारेके समान विषय-रसकी जाना कयाएँ नहीं हैं ॥ २ ॥

तेहि कारण भावत हिमें हरे। कामी कक कलक विचारे ॥

भावत एहि सर अति कठिनाई। राम कृपा बिनु जाई न जाई ॥ ३ ॥

इसी कारण बेचारे कौए और खुलेरुसी निषधी लोग यहाँ जाते हुए हृदयमें हार मान जाते हैं। क्योंकि इस सरोवरके आगेमें कठिनाइयाँ बहुत हैं। श्रीरामजीकी कृपा बिना यहाँ नहीं आया जाता ॥ ३ ॥

कठिन कुसंग कुसंग करका। सिन्ध के वचन बाध हरि मरका ॥

एह कारण माना जताका। ते अति दुर्गम सैक विनाका ॥ ४ ॥

घोर कुसंग ही भयानक बुरा रक्ता है; उन कुसंगियोंके वचन ही बाध, सिंह और तौप हैं। परके काम-कल और शहसीके धोति-भोंतिके जंगल ही भयान्त दुर्गम बड़े-बड़े पहाड़ हैं ॥ ४ ॥

बस बहु विषम मोह मद माया। यही कुलके मरकर बाबा ॥ ५ ॥

मोह, मद और माया ही बहुतसे पीढ़ कन हैं और नाना प्रकारके कुतर्क ही मयानक नदियाँ हैं ॥ ५ ॥

शे०—जे श्रद्धा संकल रहित बाहि संतनु कर साथ ।

तिन्ह कहूँ मानस अगम अति जिन्हहि न मिय रघुनाथ ॥ १८ ॥

शिनके पाँच भद्रास्त्री राह-सर्च नहीं है और संतोंका साथ नहीं है और किसी भीरुनाथगी प्रिय नहीं है, उनके लिये यह मानस अगम ही अगम है। (अर्थात् श्रद्धा, सारंग और भगवत्प्रेमके बिना कोई इसको नहीं पा सकता) ॥ १८ ॥

शे०—जी करि कए जाइ छुनि मोई। बाघहि नींद छुवाई होई ॥

जड़ता बाध विषम कर लागत। गहूँ न मज्जन पाव भवागा ॥ १ ॥

यदि कोई मनुष्य कष्ट उठाकर वर्तितक पहुँच भी बाध, तो वहाँ जाते ही उसे भीरुस्त्री जूझी जा जाती है। हृदयमें मूर्खतास्त्री बड़ा कड़ा बाधा लगाने लगता है; जिससे वहाँ जाकर भी वह अमरता ज्ञान नहीं कर पाता ॥ १ ॥

करि न जाइ सर मज्जन पावा। फिरि जाइ ससे अमिता ॥

नी बहोरि खेठ पूछन जाता। सर निहा करि जाइ दुखवा ॥ २ ॥

उससे उस सरोवरमें ज्ञान और उत्तम जन्मान तो किया नहीं जाता, वह अभिमानवशित लौट आता है। फिर यदि कोई-उससे [वहाँभर इच्छा] पूछने जाता है, तो वह [अपने अभाग्यकी बात] कहकर सरोवरकी निन्दा करके उसे खहाता है ॥ २ ॥

सकल विषय व्यग्रहि बाहि छेई। राम सुकृपाँ किछेछहि बेदी ॥

सोइ सादर कर मज्जु करई। महा घोर प्रस्ताव न जरई ॥ ३ ॥

ये सारे विषय उसको नहीं आते (बाधा नहीं देते) जिसे श्रीरामचन्द्रजी सुन्दर कृपाकी दृष्टिसे देखते हैं। यही आदरपूर्वक इस सरोवरमें ज्ञान करता है और मज्ज

उमा महेस विवाह करती। ते कञ्जर कमलिता धृष्टभीती ॥

खुश बन्धन बन्धन बंधाई। नरैर तरंग मनोहरसाई ॥ ४ ॥

श्रीपार्वतीजी और शिवजीके विवाहके बराती इस नदीमें बहुत प्रकारके धातुएँ जलकर जीव हैं। श्रीधुनायजीके कमली आनन्द-बधाईयाँ ही इस नदीके मैत्र और तरङ्गोंकी मनोहरता है ॥ ४ ॥

दो०—शालचरित बहु वंश के कमल विपुल बहुरंग ।

मृप रानी परिजन सुकृत मधुकर वारिबिहंग ॥ ४० ॥

चारों भाइयोंके जो शालचरित हैं, वे ही इसमें मिले हुए रंग-विरंगे बहुत-से कमल हैं। महाराज श्रीदशरथजी तथा उनकी रानियों और कुटुम्बियोंके सत्कर्म (पुण्य) ही प्रसर और सल-पत्ती हैं ॥ ४० ॥

चौ०—जीय स्वयंवर क्या सुहाई। सखि सुहायि सो छवि छाई ॥

नदी बाद बहु प्रसन्न जनेका। केवट कुसल उतर सविषका ॥ १ ॥

श्रीसीताजीके स्वयंवरकी जो सुन्दर क्या है, वही इस नदीमें सुहायि छवि छा रही है। जनेकों सुन्दर विचारपूर्ण प्रसन्न ही इस नदीकी नावें हैं और उनके विषेकसुक उत्तर ही चतुर केवट हैं ॥ १ ॥

सुनि भद्रकथन परस्पर होई। पथिक समस्त सोद खरी सोई ॥

और चार मधुनाथ रिसावी। छट सुकल राम बर वाली ॥ २ ॥

इस कथाको सुनकर पीछे जो भाग्यमें चर्चा होती है, वही इस नदीके सारे-सारे बालनेवाले यात्रियोंका समस्त शोभा पा रहा है। परशुरामजीका शेष इस नदीकी भवानक बाण है। और श्रीरामचन्द्रजीके श्रेष्ठ वचन ही सुन्दर बैसे हुए बात हैं ॥ २ ॥

साङ्गुल राम विवाह उछाह। सो सुम उमग सुख सन काहू ॥

बहल सुवाह हरपाई पुसकाई। ते सुकली मन सुखित बहाई ॥ ३ ॥

माइपौसहित श्रीरामचन्द्रजीके विवाहका उत्साह ही इस कथा-नदीकी कल्याण-करिणी नाव है; जो सभीको सुख देनेवाली है। इसके सखे-सुननेमें जो हर्षित और पुसकित होते हैं। वे ही पुष्पात्मा पुष्प हैं, जो प्रसन्न मनसे इस नदीमें नाहते हैं ॥ ३ ॥

राम तिलक हित भंगल छाया। पत्न जोध बलु धरे समाना ॥

काई कुमति केकाई पैरी। एरी धातु फल पिपति बनेरी ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके राजतिलकके छिये जो भंगल-भाव सज्जवा बधा वही मानो पर्वके समय इस नदीमें यात्रियोंके समूह इसके हुए हैं। केकेलीकी कुमुदि ही इस नदीमें फाई है, जिसके फलस्वरूप बड़ी भारी पिपति या पढ़ी ॥ ४ ॥

दो०—समन अमिस्त उतकलत स्वयं मरतचरित अप्रजग ।

कलि मद्य सल यन्त्रगुल कयल ते सलमल बच काग ॥ ४१ ॥

सम्पूर्ण अनगिन्त उतावलोंकी शान्त फलेवाला मरतजीका चरित्र नदीतटपर किया जानेवाला अप्रजग है। कलियुगके पापों और दुष्टोंके अवगुणोंके जो वर्णन हैं वे ही इस नदीके जलमय कीचड़ और मृगके-मौर हैं ॥ ४१ ॥

चौ०—कीरति सखि छहूँ रिद करी। समन सुहायि फवलि मूरी ॥

दिन विमलैकमुल सिन्ध न्याह। सिधिर सुकल मधु कयल उछाह ॥ १ ॥

यह कीर्तिकीर्णनी नदी जहाँ शत्रुओंमें सुन्दर है। सभी समय वह परम सुहायिनी

और लयन्त पवित्र है । इसमें शिव-पार्वतीका किञ्चन हेमन्त ऋतु है । श्रीरामचन्द्रजीके जन्मका उत्सव सुखदायी विधिरातु है ॥ १ ॥

चरनन राम विमल सुख । सो सुख भंगलभय रिहयान् ॥

ग्रीष्म सुख राम बन गन । पंगवना खर जातप पवन ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके विनाह-समाजका वर्णन ही मानन्द-महत्त्वमय ऋतुराज वसंत है । श्रीरामजीका बनगमन दुःख-श्रीषा ऋतु है और मार्गजीकथा ही कहीं घूप और दू है ॥ २ ॥

वहवा भोर विस्तार रायी । सुखल सखि सुमंगलरायी ॥

राम राज गुप विमल वहवाई । विमल सुखद सो स्रद सुदाई ॥ ३ ॥

राजगोके साथ घोर दुःख ही वर्षा ऋतु है, जो देवकुम्हपी धानके लिये सुन्दर कृषिपाण करनेवाली है । रामचन्द्रजीके राज्यकालका जो सुख, विनम्रता और बड़ाई है वही निर्मल सुख देनेवाली सुहावनी वसन्त ऋतु है ॥ ३ ॥

सरी सिरोमणि सिध सुन कवर । सोइ सुख समल जगपम पाया ॥

धरत सुमाद सुखीकलवाई । सदा एकस करनि न जाई ॥ ४ ॥

सती-शिरोमणि श्रीवीताजीके गुणोंकी जो कथा है, वही इस जलका निर्मल और मनुष्य गुण है । श्रीमत्तवीका स्वभाव इस नदीकी सुन्दर वीथिका है, जो सदा एक-ही सती है और ब्रिहन्न वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ४ ॥

यो—मयलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परस्पर हास ।

भायप भक्ति यहु वंधु की जल माधुरी सुपास ॥ ५ ॥

चारों भावोंका परस्पर देखना, बोलना, मिलना, एक-दूसरेसे प्रेम करना, हँसना और सुन्दर मार्गपना इस जलकी मधुरता और सुकन्व हैं ॥ ५ ॥

षी—भारति विमल दीनता सोरी । ललित छलित सुखरि न थोरी ॥

भद्रसुत सखि सुख गुनकारी । भास विमल सबोमल हायी ॥ ६ ॥

मेरा भार्यमाद, विमल और दीनता इन सुन्दर और निर्मल जलका कम इसकापन नहीं है (अर्थात् अत्यन्त इसकापन है) । यह जल बड़ा ही अनोखा है, जो सुननेसे ही गुण करता है और भावार्थकी व्याख्यान और मनके मेलको दूर कर देता है ॥ ६ ॥

राम सुमेमहि बोधन पानी । इत सखि सखि कलुष नाकनी ॥

भव भम सोपक सोपक तोष । समस हरिष सुख हरिद दोषा ॥ ७ ॥

यह जल श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर प्रेमकी पुष्ट करता है, कलियुगके समस्त पापों और उनसे होनेवाली खानिसे हर करता है । संसारके (कर्म-मत्स्यरूप) भ्रमको धोष करता है, संतोषको भी लुप्त करता है और वाप, ताप, दग्धता और दोषोंको नष्ट कर देता है ॥ ७ ॥

काम सोइ मय सोइ लसलस । विमल विमल विमल नसावन ॥

मन मन मन मन निर तें । मित्रि मित्रि पंच परिचाप हि तें ॥ ८ ॥

यह जल काम, प्रेम, मत् और मोहका नाश करनेवाला और निर्मल ज्ञान और वैराग्यका बढ़ानेवाला है । इसमें आदरपूर्वक स्नान करनेसे और इसे पीनेसे हृदयमें रहने-वाले सब पाप-ताप मिट जाते हैं ॥ ८ ॥

किन्दि प्रदि पारि न मानस मोह । ते कर कर कलिकाल किनोह ॥

दुषित निरसि रवि कर भव पाश । मित्रि मित्रि मित्रि मित्रि मित्रि ॥ ९ ॥

मिन्दोंने इस (राम-सुखकरणी) जलसे अपने हृदयको नहीं धोया, वे कायर

कलिकालके द्वारा ठगे गये । जैसे प्यास रिन सूर्यकी किरणोंके देखकर पड़नेसे उत्पन्न हुए जलके भ्रमको वास्तविक जल समझकर पीनेको दौड़ता है और जल न पाकर ठुसी होता है, वैसे ही वे (कलियुगसे ठगे हुए) नीच भी [विषयोंके पीछे भटककर] ठुसी होंगे ॥ ४ ॥

दो०—भक्ति अनुहारि सुवारि सुब भन गवि मन कन्हवाह ।

सुमिरि भवानी संकरहि कह कवि कथा सुहाह ॥ ४३(क) ॥

अपनी बुद्धिके अनुसार दस सुन्दर लालके गुणोंको विचारकर, उसमें अपने मनको स्नान कराकर और श्रीमवानी-अक्षरको स्मरण करके कवि (तुलसीदास) सुन्दर कथा कहता है ॥ ४३ (क) ॥

अब रघुपति पद पंक्तवह हिर्यं चरि पाह प्रसाह ।

कहतैं भुगल सुनिवर्य कर मिलन सुभग संघाह ॥ ४३(ख) ॥

मैं अब श्रीधुनायजीके करणकर्मोंको हृदयमें धारणकर और उनका प्रसाद प्राप्त होनेों भेद सुनियोंके मिलनका सुन्दर संघाद वर्णन करता हूँ ॥ ४३ (ख) ॥

चौ०—भगवान् भुक्ति कहांहि प्रसंगा । किन्हुहि राम पद अति अनुरागा ॥

छापस लल दम दया विधाया । परमावध पद परम सुताया ॥ १ ॥

भगवान् भुक्ति प्रयागमें बसते हैं, उनका श्रीरामजीके चरणोंमें अत्यन्त प्रेम है । वे सपत्नी, निष्कलितचित्त, निवेदिन्य, दयाके निधान और परमार्थके मार्गमें बड़े ही चतुर हैं १

माघ मकराष्ट रवि अब होई । तीरपतिहिं अब सब कोई ॥

देव वज्रुन किंवर नर ओंछी । सादर मजहिं सकल शिषी ॥ २ ॥

माघमें शय सूर्य मकर राशिपर जाते हैं तब सब श्रेष्ठ तीर्थराज प्रयागको आते हैं । वेष्ठा, देव, तिसर और भुवनोंके समूह सब आदरपूर्वक शिष्योंमें स्नान करते हैं ॥ २ ॥

पूजहिं भाग्यव पद जलमाला । पंक्ति असय यह हरपहिं गाता ॥

भगवान् काष्मण अति काव्य । परम रम्य सुविबर अब भाषण ॥ ३ ॥

श्रीवेणीनाथजीके करणकर्मोंको पूजते हैं और अक्षवटका स्पर्शकर उनके शरीर पुष्पित होते हैं । भगवान् कीका आश्रम बहुत ही पवित्र, परम स्वर्गीय और भेद सुनियोंके मनको भावनाका है ॥ ३ ॥

तहाँ होइ भुक्ति विषय समस्त । जहिं से मज्जव तीरवाराता ॥

मजहिं प्राप्त समेत उल्लाहा । कजहिं परस्पर हरि सुब गाहा ॥ ४ ॥

तीर्थराज प्रयागमें जो स्नान करने जाते हैं उनमें भक्ति-सुनियोंका समाव यहाँ (भगवान् के आश्रममें) जुटा है । प्रोक्तकल सब उत्साहपूर्वक स्नान करते हैं और फिर परस्पर भगवान् के गुणोंकी कथाएँ करते हैं ॥ ४ ॥

दो०—अथ निरूपन छरम निवि बरनहिं उत्त विभाग ।

कहहिं भगति सबकंठ कै संजुत म्बन विराग ॥ ४४ ॥

भगवान् निरूपन, सर्वत्र विधान और तत्त्वोंके विभाजन वर्णन करते हैं तथा स्नान-वैराग्यसे युक्त भगवान् की भक्ति का वर्णन करते हैं ॥ ४४ ॥

चौ०—दहि प्रकार मरि माघ नहण्हीं । भुजिखन भिज विरामाववाहीं ॥

प्रति संकट अति छोह कर्षण । मकर अति कवचहिं सुनिहंदा ॥ १ ॥

इसी प्रकार माघके महीनेमें स्नान करते हैं और फिर सब अपने-अपने भावनोंको

कहे जाते हैं । इत साल यहाँ इन्नी तरह बड़ा आनन्द होता है । मकलें खान करके मुनिराज कहे जाते हैं ॥ १ ॥

एक बार मरि जन्म काल्प । ज्ञान मुनीन व्यक्तमन्त्र सिधाय ॥
 आगवर्णिग मुनि पस्त विवेकी । भरहृदय लसे पद देकी ॥ २ ॥
 एक बार पूरे मकरन्द स्नान करने सब मुनीमर अपने-अपने आभमोंको लौट गये । परम ज्ञानी शङ्करन्वय मुनेको चरण कण्ठकर भरहृदयकी रस दिया ॥ २ ॥
 साधर धन सरोज चहारे । लक्षि पुकीट आसन बैजरे ॥
 हरि पूजा मुनि मुकुट प्रजाली । लोके अति पुनीत मृदु वासी ॥ ३ ॥
 आदरपूर्वक उनके कण्ठमग्न भोगे और कहे ही वक्ति आसनपर उन्हें बैठाया । पूजा करके मुनि शङ्करन्वयकी मुखाब्ज चर्चन किया और फिर अत्यन्त पवित्र और कोमल वाणीसे बोले— ॥ १ ॥

बाद एक संस्रव बड़ सोरें । धनस्य वैकुण्ठ सङ्ग सोरें ॥
 कष्ट सो मोदि कमलभव कलम । बी न कष्टें बड़ होइ अकाल ॥ ४ ॥
 हे नाथ ! मेरे मनमें एक कदा संदेह है ; मेरीक तब सब आसकी मुझमें है (अर्थात् आप ही वैकुण्ठ लय जाननेवाले होनेके कारण मेरा संदेह निवारण कर सकते हैं) । पर उस संदेहको कहे मुझे भय और डर आती है [मय इच्छिये कि कहीं आप सब न समझें कि मेरी परीक्षा के रहा है, ज्ञान इच्छिये कि इतनी आसु वीर गयी, अद्वैत ज्ञान न हुआ] और यदि नहीं ज्ञान तो बही हानि होती है [क्योंकि अज्ञानी बना जाता है] ॥ ४ ॥

ये—संत कहहि अति नीति प्रभु श्रुति पुराण मुनि गाव ।
 होर न विमल विवेक हर गुर खन फिरें दुपार ॥ ५ ॥
 हे प्रभो ! संतयोग ऐसी नीति करते हैं और वेद, पुराण तथा मुनिक्रम भी वहीं बतलाते हैं कि गुणों वय छिन्नन करनेसे इदमें निर्मल ज्ञान नहीं होता ॥ ५ ॥
 बी—भल विचारि प्रपट्टै किन मोह । बरहु बय करि जल पर कोह ॥
 राम नाम जन अमिष प्रभाव । संत पुराण वक्त्रिपद गाव ॥ १ ॥
 यही सोचकर मैं अपना भगवान् प्रकट करता हूँ । हे नाथ ! ऐक्यकर ज्ञान करके इस अज्ञानका नाम कीजिये । संतों, पुराणों और उपनिषद्ोंने रामनामके असीम प्रभावका ज्ञान किया है ॥ १ ॥

संत जग संतु अधिगच्छे । सिव भयलव भयन मुन राक्षी ॥
 भाकर काली जीव जन बहुरी । कर्मां जल परम पद कबही ॥ २ ॥
 इत्याणस्तपन, ज्ञान और गुणोंकी शक्ति अनिनाशी भगवान्, क्षम्यु निरन्तर रामनामका ज्ञान करते रहते हैं । संतारों चार नाविके जीव हैं, जन्मोंमें सरनेसे सभी परमपदको प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

छोपे राम बहिन मुनिराज । सिव उपवेशु कल करि हाता ॥
 शत्रु जग प्रभु प्रहर्ष लेही । कलियु कलह कृपाविधि मोही ॥ ३ ॥
 हे मुनिराज ! वह भी राम [नाम] की ही खरीदा है, क्योंकि शिवजी महापराक दया करने [बाधाओं मरनेवाले जीवको] रामनामका ही उपदेश करते हैं [दधीसे उसको परमपद मिला है] । हे प्रभो ! मैं आपसे पूछता हूँ कि ये राम क्यों हैं । हे कृपाविधान ! मुझे समझाने कहिये ॥ ३ ॥

एक राम स्वयंसे कुम्भार । सिन्धु कर चरित विदित संसार ॥

भारि बिरहें दुख खेद ज्वर । मयठ रोषु रज राखनु मार ॥ ४ ॥

एक राम तो अवधनेश दसरथजीके कुम्भार हैं, उनका चरित्र धारा संसार जानता है । उन्होंने श्रीके विरहमें अपर दुःख उठाया और क्रोध आनेपर कुदमें राखणको मार डाला ॥ ४ ॥

दो०—प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ चाहि जपत त्रिपुरारि ।

सत्यधाम सर्वग्य तुम्ह कहहु विवेकु विचारि ॥ ४६ ॥

हे प्रभो ! वही राम हैं वा और कोई दूखे हैं, जिनको शिवजी जपते हैं । आप सत्यके धाम हैं और सब कुछ जानते हैं, इन विचारकर कहिये ॥ ४६ ॥

चौ०—जैसें मिटै मोर जल गरी । कहहु सी कथा नाम विहारी ॥

जागरणिक बोले सुसुताई । तुम्हहि विदित रहसि प्रसुताई ॥ १ ॥

हे नाथ ! जित प्रकाशसे भेरा यह मारी भ्रम मिट जाव, भय वही कथा विस्तार-पूर्वक कहिये । हरपर याज्ञवल्क्यजी मुकटाकर बोले, श्रीरघुनाथजीकी प्रसुताको तुम जानते हो ॥ १ ॥

रामभगत तुम्ह भव कम जाकी । चहुताई तुम्हारि मैं जानी ॥

चाहुतु सुनै राम सुन ग्या । कीन्हिहु जल मगहुं अति सूझा ॥ २ ॥

तुम राम, कबल और कसि श्रीरामजीके भक्त हो । तुम्हारी चहुराईको मैं जान गया । तुम श्रीरामजीके रहस्यमय गुणोंको सुनना चाहते हो । इसीसे तुमने ऐसा प्रश्न किया है भानो वही गूढ़ हो ॥ २ ॥

सात सुगहु साधर मनु छाई । कहैं राम के कथा सुहाई ॥

महामोहु महिषसु विहायर । रामकथा कालिका कराहा ॥ ३ ॥

हे सात । तुम आदरपूर्वक मन लगाकर सुनो । मैं श्रीरामजीकी सुन्दर कथा कहता हूँ । बड़ा भारी अज्ञान विद्याकर महिषासुर है और श्रीरामजीकी कथा [उसे नष्ट कर देनेवाली] भयङ्कर कालीजी हैं ॥ ३ ॥

रामकथा सति किरन समाज । संत जफेर करहि जेहि पात ॥

ऐसेह संसय कीन्ह भवानी । महादेव सब कहा बजायी ॥ ४ ॥

श्रीरामजीकी कथा कर्मजाली किरणोंके समान है, जिसे संतकृपी जफेर सब पान करते हैं । ऐसा ही सन्देश पार्वतीजीने किया था, सब महादेवजीने विस्तारसे उसका उत्तर दिया था ॥ ४ ॥

दो०—कहउँ सो मति मनुहारि जब उमा संसु संवाद ।

मयठ समय जेहि हेतु जेहि सुनु सुनि मिटिहि विषाद ॥ ४७ ॥

जब मैं अपनी बुद्धिके जलधर वही उमा और शिवजीका संवाद करता हूँ । वह जिस समय और जिस हेतुसे हुआ, उसे हे सुनि । तुम सुनो, तुम्हारा विषाद मिट जायगा ॥ ४७ ॥

चौ०—एक बार जेता जुग महीं । संसु कर कुंमल सिधि पाहीं ॥

संग सरी समजननि गगनो । पूजे सिधि जसिनेस्वर जानी ॥ १ ॥

एक बार त्रेतायुगमें शिवजी जगत्पूज्य ऋषिके पास गये । उनके साथ जगज्जननी भवानी सतीजी भी थीं । ऋषिने सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर जगत्पूज्य उनका पूजन किया ॥ १ ॥

तत्काल मुनिजनों पक्षी। सुनी गयेस परम सुख मानी ॥
 विधि पूजा इच्छिति धुर्यै। पदी संतु खचित्पदी पाई ॥ २ ॥
 मुनिज नरत्नकीने रामकथा निहासे कही, जिसको मोक्षपदने परम सुख
 मानकर सुना। फिर श्रुतिने शिवजीसे पुनर हरिमाधि पूजी और शिवजीने उनके
 अधिकारी पाकर [रत्नमण्डित] भविकन निहास किया ॥ २ ॥

अतः मुनि रघुपति पुनः कथा। दिन तहाँ रहे गिरिनाथ ॥
 मुनि सब विद्या मणि विदुरगरी। जे सन सँष दण्डकुमारी ॥ ३ ॥
 भीरुनाथजीके गुणोंकी कथाएँ कहते-सुनते कुछ दिनोंतक शिवजी वहाँ रहे। फिर
 मुनिसे फिर माँगकर शिवजी दण्डकुमारी सतीजीके साथ पर (कैलाश) को गये ॥ ३ ॥
 हेहि कथार संजन सहितार। हरि रघुवंस छन्द अवतार ॥
 विदुः कथन ललित शृंग कथाएँ। दण्ड वन शिवरत्न कविनाथी ॥ ४ ॥
 उनी दिने पुष्पीध भार उतापनेके लिये श्रीछुरिने रघुवंसमें अवतार दिया था।
 वे अतिशारी भावात् उत समय शिवके वचनसे रागवश त्याग करते सरस्वी या
 शालुदेवमें दण्डकवनमें विचर रहे थे- ॥ ४ ॥

श्री०—दुर्यै विचारत जात हर केहि विधि दरसतु होइ।
 सुत रूप अवतरेत प्रभु गदैं लान सतु कोइ ॥ ४८ (क) ॥

शिवजी दूरधमें विचारते थे रहे थे कि मन्वातके दर्शन मुझे किस प्रकार हो।
 प्रभुने सुतकसे अवतार लिया है, मेरे जानेसे सब लोग जान लेंगे ॥ ४८ (क) ॥

श्री०—संकर उर मति छेनु सती न जानिह मरुतु सोइ।
 तुलसी दरसन सोयु मर दण्ड संजन लालची ॥ ४८ (ख) ॥

भीरुनाथजीके हृदयमें इस बातकी चिन्ता बड़ी कष्टमयी उत्पन्न हो गयी, परन्तु
 सतीजी इस मेदको नहीं जानती थीं। तुलसीदासजी कहते हैं कि शिवजीके मनमें [मेव
 बुद्धिमेव] हर भी, परन्तु दर्शनके लोभसे उनके नेत्र ललक रहे थे ॥ ४८ (ख) ॥

श्री०—रत्न मण मुनिज कर अपा। प्रभु विधि वपुसीन चह साया ॥
 की नहिं कहीं रह सकिताया। परत विचार व वलत बसाया ॥ १ ॥

राकमने [ब्रह्मजीसे] अपनी मनु मनुष्यके हाथसे मोंगी थी। ब्रह्मजीके वचनोंको
 प्रभु स्मरण करता चाहते हैं। मैं तो पास नहीं जाता हूँ तो क्या पकड़ावा रह जायगा। इस
 प्रकार शिवजी विचार करते थे, परन्तु कोई भी बुद्धि ठीक नहीं बैठती थी ॥ १ ॥

एहि विधि मर सोवस हैरा। वेही समय जाइ दलधीरा ॥
 छन्द शीघ्र मारीफे संता। मरत तुल्य सोइ कपटकुंरा ॥ २ ॥

इस प्रकार मन्मथजी कितने वक्त हो गये। उसी समय नीच रागवश आकर
 मारीफको नाथ लिया और वह (मारीच) तुल्य कपटपुरुष बन गया ॥ २ ॥

मरि कुछ मर रही कैरी। मरु प्रकट तस किदित व ठेही ॥
 मर वधि वल सविष्ट हरि आए। मरतु देखि मरत मरत छाय ॥ ३ ॥

मूर्त (राकम) ने छल करके सीताजीको हर लिया। उसे भीरुमन्मथजीके
 पञ्चविक्रम प्रभावपर कुछ भी था न था। रामको बारबार भाई लक्ष्मणदास भीड़
 जाभयमें आये और उसे साती देसकर (अर्थात् वहाँ सीताजीको न पाकर) उनके
 नेत्रोंमें ओंख भर आये ॥ ३ ॥

विरह विकल भर ह्व खुदाई । लोभत विविध फिरत दोह भार्द ॥
कचहूँ जोग विनोय न जाकें । देख प्रगट विरह दुखु तकें ॥ ४ ॥
भीरघुनाथजी मनुष्योंकी भौति निरहो व्यक्त हैं और दोनों भार्द वनमें सीताको
खोजते हुए फिर रहे हैं । उनके कभी कोई संयोग-वियोग नहीं है, उनमें प्रत्यक्ष
विरहका दुःख देखा गया ॥ ४ ॥

दो०—अति विचित्र रूपरति चरित जानहि परम सुजान ।

जे मतिमंद विमोह बस हृदयें धरहि कहु आन ॥ ४९ ॥

भीरघुनाथजीका चरित्र कहा ही विचित्र है, उसको पहुँचे हुए जानीजन ही जानते
हैं । जो मन्दबुद्धि हैं, वे तो विशेषरूपसे मोहके बस होकर हृदयमें झुल वृत्ती ही बात
समझ बैठते हैं ॥ ४९ ॥

चौ०—संसु समस तेहि रामहि देखा । उपज्य हिषें अति इरगु विसेका ॥

भरि लोचन छविसेयु विहारी । कुसमय क्यदि न कीन्ह चिन्हारी ॥ १ ॥

शिशिवर्जने उसी अवसरपर श्रीरामजीको देखा और उनके हृदयमें बहुत भारी
आनन्द उत्पन्न हुआ । उन शोभाके समुद्र (श्रीरामचन्द्रजी) को शिशुजने नेत्र
भरकर देखा, परन्तु अक्सर ठीक न जानकर परिचय नहीं किया ॥ १ ॥

जय सूरिदामह वय बाधव । अस कहि लखै मनोज नसावव ॥

चले जाय सिव सती समेख । पुनि पुनि पुनकत कृपाविकेला ॥ २ ॥

आत्मे पवित्र करनेवाले सच्चिदानन्दकी जय हो, इस प्रकार कहकर कामदेवका
नाश करनेवाले शिवजी चले पड़े । कृपानिधान श्रीशिवजी बार-बार आनन्दसे पुलकित
होते हुए सतीजीके साथ चले जा रहे थे ॥ २ ॥

सती सो दस संसु कै देखी । घर उपजा संवेहु बिलेखी ॥

संकाष जगत्कंध अगदीक्षा । मुर कर मुनि सब नावत सीसा ॥ ३ ॥

सतीजीने श्रीशंकरजीकी वह दृष्टि देखी तो उनके मनमें बड़ा सन्देह उत्पन्न हो
गया । [वे मन-ही-मन कहने लगीं कि] शंकरजीकी साथ बाग्य बन्दना करता है,
वे जगत्के ईश्वर हैं, देवता, मनुष्य, मुनि सब उनके प्रति फिर नवाते हैं ॥ ३ ॥

तिन्ह वृषमुसरि कीन्ह जन्ममा । कहि सखितनंद परधामा ॥

भय मगल छवि लखु बिलेखी । अहं प्रीति उर रहति न रोकी ॥ ४ ॥

उन्होंने एक रात्रिपुत्रको सच्चिदानन्द परमप्राप्त कहकर प्रणाम किया और उसकी
शोभा देखकर वे इतने प्रेममग्न हो गये कि अक्सर उनके हृदयमें प्रीति रोकनेसे
भी नहीं रुकती ॥ ४ ॥

दो०—ब्रह्म ओ व्यापक विरज अज अकल अवीह अभेद ।

सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत वेद ॥ ५० ॥

जो ब्रह्म सर्वव्यापक, भावराहित, अकल, अमोक्ष, इच्छारहित और भेदरहित
है, और जिसे वेद भी नहीं जानते, क्या वह देह धारण करके मनुष्य हो सकता है ॥ ५० ॥

चौ०—विष्णु जो मुर दित नखनु धारी । खेड सबैय कया त्रिपुरारी ॥

खोजइ सो कि जन्म ह्व करी । मयधाम श्रीपति मसुरारी ॥ १ ॥

देवताओंके हिलके जिसे मनुष्यधारी धारण करनेवाले को विष्णु माना है, वे
भी शिवजीकी ही भौति सर्वज्ञ हैं । वे जानके मन्दार, लक्ष्मीपति और असुरोंके राघु
महान् विष्णु क्या अज्ञानीकी तरह स्त्रीको सोचेंगे ॥ १ ॥

संजुगिता दुमि कृपा व होई । सिन सर्वस्य जान सजु कोई ॥

बल संसय मन भयद बसत । होइ व हृदय प्रबोध प्रवारा ॥ २ ॥

फिर भिन्नबीजे कचन भी छूटे नहीं हो सके । उन कोई जानते हैं कि शिवजी कर्म हैं । सतीके मनमें इत प्रकटका बपार कन्देह उठ खड़ा हुआ, किसी तरह भी उनके हृदयमें जनक प्रादुर्भाव नहीं होता था ॥ २ ॥

अपनि प्रयद व कहेद यकावी । हर अंतर्जामी सब जानी ॥

सुनिहि सती तब भारि सुखान्न । संसय बल व भारिज ठर काक ॥ ३ ॥

अपनि प्रवर्तनीजीने प्रकट कुछ नहीं कहा, पर अन्तर्जामी शिवजी सब जान गये । वे बोले—हे सती । सुनो, दुग्धराजीसम्भव है । ऐस कन्देह मनमें कभी न रहना चाहिये ॥ ३ ॥

जासु कवा कुंमल शिबि गाई । जगति जासु मैं सुनिहि सुपाई ॥

सोइ मम हृदयेव रघुवीर । सेवत जाहि सदा सुनि शीरा ॥ ४ ॥

जिनकी कृपाका अगस्त्य श्रमिने गान किया और जिनकी भक्ति मैंने सुनितो सुनायी, वे वही मेरे हृदये भीरुवीरजी हैं, जिनकी सेवा खानी मुनि सदा किया करते हैं ॥ ४ ॥

॥—सुनि और ओपी सिद्ध संतत विमल मन जेहि व्यावर्ही ।

कहि नेति नियम पुपल आयम जासु कीरति पावर्ही ॥

सोइ रसु व्यापक अक्ष भुवन विकास पति माया भनी ।

अक्षतरेख भपने भयत हित निजतंत्र नित रघुकुलमसी ॥

छानी मुनि, योगी और सिद्ध निरन्तर निर्मल चित्तसे जिनका ध्यान करते हैं, तथा वेद, पुराण और आज्ञा 'नेति-नेति' कहकर जिनकी कीर्ति गाते हैं, उन्हीं सर्वव्यापक, समस्त प्रकाशोंके स्वामी, मायापति, नित्य परम स्वतन्त्र, अक्षरकम प्रख्यात श्रीरामजीने अपने मर्कोंके दिवसे श्रिमे [अपनी इच्छासे] रघुकुलके मणिरूपमें अवतार लिया है ।

॥—साग न कर उपदेसु अदरि कहेउ सिदै वार बहु ।

बोले विद्वसि महेसु हरिमाया बलु जानि सिदै ॥ ५ ॥

अपनि शिवजीने बहुत बार सम्भाषा, फिर भी सतीजीके हृदयमें उनका उपदेश नहीं बैठा । तब महादेवजी मनमें भगवान्की मायाका बल जानकर मुसकराते हुए बोले—॥ ५ ॥

॥—सी तुम्हरे मन बसि सदैव । ती सिन बह परीछर केह ॥

तब तनि बैठ अहर्क यत्नगहीं । कब कबि दुख ऐह्य मोदि पाहीं ॥ १ ॥

जो तुम्हारे मनमें बहुत कन्देह है वो तुम बाहर परीक्षा क्यों नहीं लेती । अक्षरक तुम मेरे पास बैठ जाओगी चलक मैं दलों यकी जेहमें बैठा हूँ ॥ १ ॥

॥—जब मोह अग भारी । केहु तो जतनु विवेक विचारी ॥

अब सती सिन जासु पाई । कही विचार करी का साई ॥ २ ॥

जित प्रकार दुग्धरा कह अज्ञानबन्धन भारी भ्रम दूर हो, [भलीमति] विवेकके द्वारा बीच-बमलकर हटा रही करता । शिवजीकी आज्ञा पाकर सती चली और मनमें सोचने लगी कि भाई । क्या करूँ (कैसे परीक्षा हूँ) । ॥ २ ॥

होई संजु अल मन बलुमान । दल्लमुता कहे नहि कन्याका ॥

मेरेहु कहे व संसय जाहीं । विधि शिवरीत मझाई पाहीं ॥ ३ ॥

इधर शिवजीने मनमें ऐसा अनुमान किया कि दल्लमुता सतीका कन्यापण नहीं

है । तब मेरे स्मरणसे भी छन्देह दूर नहीं होता, तब [वाङ्मय होता है] विधाता ही सन्तुष्ट है, जब छतीका कुत्ता नहीं है ॥ ३ ॥

होइहि सोइ जो राम रचि रह्यो । को करि लई कइयै सखा ॥

अस कहि लखे जस्य हरिनामा । नई सखी नई प्रभु मुखपामा ॥ ४ ॥

जो कुछ रामने रच रख्यो है, वही होगा । लई करके मौन साक्षा (विचार) कदावे । [नभमें] ऐसा कल्पित धिक्की भगवान् श्रीहरिनाम नाम जने को और लगी भी नहीं गयी कहीं सुखके काम प्रभु श्रीरामचन्द्रजी वे ॥ ४ ॥

सो—पुनि पुनि हृदयें विचार करि और सीख कर रह ।

आगे होइ चलि पंथ तेहि जेहि आवत भरभूप ॥ ५ ॥

लगी पार-पार मरमें विचारकर सीखलीका तब वारण करके उस मार्गकी ओर जागे होकर लगी जिससे [स्वीकीके विचारानुसार] अनुभवोंके राज रामचन्द्रजी भा रहे वे ॥ ५ ॥

चौ—कठिन दृष्टि समझत वेधा । चलि भर भ्रम हृदयें भिसेष ॥

कहि न सकत कहु कलि गेसीरा । प्रभु प्रभाव जानत मतिवीर ॥ ६ ॥

छतीकीके शत्रुवादी वेधको देखकर समझली चलि हो गये, और उनके हृदयमें पड़ा भ्रम हो गया । वे बहुत गम्भीर हो गये, कुछ कह नहीं सके । श्रीरामचन्द्र जस्य प्रभु रहनापणीके प्रभावको जानते वे ॥ ६ ॥

लगी कहु जानेत मुखपामे । समझलै सब बंढसखी ॥

सुमिरत जाहि सिद्ध अमल । सोइ सख्य राहु भगवाना ॥ ७ ॥

सब कुछ देखनेवाले और उनके हृदयकी माननेवाले देवताओंके स्वामी श्रीरामचन्द्रजी छतीकीके कष्टको जान गये; जिनके समझानसे अज्ञानका नाश हो जाता है, यही सर्वत्र भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं ॥ ७ ॥

लगी बीह नई लई दुराक । देखत गारि मुखव प्रसाक ॥

विन मला कहु हृदयें कलाकी । मोठे चिहनि राहु सहु नावी ॥ ८ ॥

श्रीरामचन्द्रजी अगर तो देखो कि यहाँ (उन सर्वत्र भगवान्के समने) भी लगीकी छिपाव करना चाहती हैं । अपनी भावने के लक्ष्य हृदयमें कलावक, श्रीरामचन्द्रजी हैंकर कोमल बागीचे में ॥ ८ ॥

जोरे पानि प्रभु बीह प्रभाम् । पिता समेत बीह विव कहु ॥

कौट लहीरे कहीं कृपेह । विन भरेनि फिरु केहि देह ॥ ९ ॥

पहले प्रभुने हाथ जोड़कर लगीको प्रणाम किया और विरासति अपना नाम बताया । फिर कहा कि कृपेह धिक्की कहीं हैं ? आप नहीं कहें थोड़ी कियेले फिर रही हैं ? ॥ ९ ॥

सो—राम धवन मृदु गुरु मुनि लपका अति संकोच ।

सती समीत महेस पहि लई हृदयें कहु सोच ॥ १० ॥

श्रीरामचन्द्रजीके क्रोध और रहस्यमे वनस कुत्ता लगीकीके पड़ा संकोच हुआ । वे दली हुई (चुपचाप) शिकारीके पास लगी, उनके हृदयमें पड़ी किन्ता हो गयी—॥ १० ॥

चौ—नै संकर कर कहा न माना । मित्र जस्यसु राम पर जाना ॥

बाह् दलक अब वेदों काह । कर लपका अति काल राह ॥ ११ ॥

—कि मैंने शंकरजीका ज्ञान न माना और अपने अज्ञानका श्रीरामचन्द्रजीके

सारोय किया । अब ज्ञात है शिवजीको क्या उत्तर दूरी ! [नौ खेचते-खेचते]
 सीताजीके हृदयमें अत्यन्त अत्यन्त कष्ट पैदा हो गयी ॥ १ ॥

साया राम खड़ी दुःख पाया । विष प्रभाव कबु प्रकटि भयावा ॥

सती देखै कैलुक मय खाता । अर्यै यमु सहित श्री भगता ॥ २ ॥

भीरामचन्द्रजीने ज्ञान लिया कि सीताजीको दुःख हुआ; उन उन्होंने अपना कुछ
 प्रभाव प्रकट कते ऊन्हें दिखवाता । सीताजीने खर्गमें जते हुए यह कौतुक देखा कि
 भीरामचन्द्रजी सीताजी और लक्ष्मणजीसहित जाते चले जा रहे हैं । [इस अवसरपर
 सीताजीको हर्गिजे दिखाया कि सीताजी भीरामके जितनामन्दमय रूपको देखें, वियोग
 और दुःखकी कल्पना वो उन्हें हुई थी वुर हो जान तथा वे प्रकृतिसिद्ध हैं] ॥ १ ॥

फिरि चिन्ता पाछे प्रभु देखा । अहित वंद सिम सुंदर कैपा ॥

नहै चित्तहिं तहै प्रभु आसीक । सेनहिं सिद्ध मुनीक प्रवीण ॥ २ ॥

[तब उन्होंने] पीछेकी ओर फिरकर देखा, तो कहीं भी भाई लक्ष्मणजी और
 सीताजीके साथ भीरामचन्द्रजी सुन्दर केशमें दिखायी दिये । वे फिर देखती हैं, उभर
 ही प्रभु भीरामचन्द्रजी विराजमान हैं और सुचतुर सिद्ध मुनीकर उनकी सेवा कर रहे हैं । ॥

देखे छिन्न चिन्ति विष्णु अनेक । अमित प्रभाव एक में पूजा ॥

बंदत ज्ञान कत प्रभु सेवा । विविध रूप देखै सब देखा ॥ ४ ॥

सीताजीने अनेक विषय, प्रथा और विष्णु देखे, जो एक-से-एक दृष्टकर असीम
 प्रभाववाले थे । [उन्होंने देखा कि] भौति-भौतिके रूप धारण किये सभी देवता
 भीरामचन्द्रजीकी चरणकन्दन और सेवा कर रहे हैं ॥ ४ ॥

हो—सती विद्याजी इन्दिरा देवी अमित अनुप ।

जोहिं जोहिं रूप अवादि सुर तेहिं तेहिं तन अतुल्य ॥ ५ ॥

उन्होंने अनन्तगत अतुल्य सती, प्रजापती और कश्यप देवी । जित-जित रूपमें प्रथा
 भादि देखा थे, उसीसे अतुल्य रूपमें [उनकी] वे सब [पदविर्ग] भी थीं ॥ ५ ॥

चौ—देखे भई तहै खगति भेटे । सत्सिद्ध सहित समक सुर भेटे ॥

जीव चरकर जो संसार । देखे सकल अनेक प्रकार ॥ १ ॥

सीताजीने कहीं-कहीं मिलने खुनामकी देखे, सत्सिद्धोंसहित वहाँ उठने ही सारे
 देवताओंकी भी देखा । संसारमें जो चरकर जीव हैं, वे भी अनेक प्रकारके रूप देखे ॥ १ ॥

एकहिं प्रभुहिं रूप बहु कैपा । राम रूप वृत्त नहिं देखा ॥

अन्योके रहसि कह्यो । सीता सहित २ रूप भरी ॥ १ ॥

[उन्होंने देखा कि] अन्योके रूप धारण करके देखा प्रभु भीरामचन्द्रजीकी पूजा
 कर रहे हैं । प्रभु भीरामचन्द्रजीका वृत्ता रूप नहीं गयी देखा । सीतासहित भीरामचन्द्र-
 जी अतुल्य-से देखे, परन्तु उनके रूप अनेक नहीं थे ॥ २ ॥

छोड़ खरक सोह टलियु सोता । देखि सबे भक्ति भई समीता ॥

दृढ रज तन तुचि कबु भाई । कथन मुदि चेरी मग भाई ॥ २ ॥

[तब अगद] वही खुनामकी, वही लक्ष्मण और वही सीताजी—सती देखा देखकर
 स्तब्ध हो रह गयीं । उनका दृढ रज तन तुचि कबु भाई और देखने सारी सुष-सुष बाढी रही । वे
 जौन मूढकर अर्थमें बैठ गयीं ॥ २ ॥

धुरि किन्नेके नवन बघारी । कबु न दूख तहै पण्डितुवारी ॥

धुनि धुनि नद राम पद सोता । जहाँ तहाँ नहै रहे गिरीस ॥ ४ ॥

फिर आँस खोकर देखा, तो वहाँ दशकुमारी (सतीजी) को कुछ भी न दीख पड़ा। तब वे बार-बार श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें फिर नवाकर वहाँ चलीं वहाँ श्रीशिवजी थे ॥ ४ ॥

श्री०—गर्ह समीप महेस तब हैसि पूछी कुसलत ।

कीन्ह परीछा क्यन विधि क्यहु सत्त्व सच बाट ॥ ५५ ॥

जब पास पहुँची, तब श्रीशिवजीने हैसकर कुशल-प्रश्न करके कहा कि तुमने राम-जीको किस प्रकार परीछा की, वही बात सच-सच कहो ॥ ५५ ॥

भासपारायण, दूसरा विश्राम

श्री०—सती सखुनि रघुधर अम्बक। जस बस सिव सन कीन्ह दुराद ॥

कहु न परीछा कीन्ह गोसाईं। कीन्ह अनासु तुम्हारिहि नाई ॥ १ ॥

सतीजीने श्रीरघुनाथजीके प्रयाचको समझकर डरके मारे शिवजीसे छिपाव किया और कहा—हे स्वामिन्! मैंने कुछ भी परीछा नहीं की, [वहाँ जाकर] आपकी ही तरह प्रणाम किया ॥ १ ॥

जो सुझा कहा सो नचा न होई। नीरे मन प्रतीति बसि सोई ॥

तब संकर देखै छरि ध्याना। सती जो कीन्ह चरित सखु जाना ॥ २ ॥

आपने जो कहा वह सच नहीं हो सकता, मेरे मनमें यह कहा (पूरा) विश्वास है। तब शिवजीने ध्यान करके देखा और सतीजीने जो चरित्र किया था, सब जान लिया ॥ २ ॥

बहुरि राममायहि सिद्ध पावा। जेरि सतिहि जेहि हूँ कहवा ॥

हरि हृच्छा आवी बडवान्स। इदवै विचारस संसु सुभावा ॥ ३ ॥

फिर श्रीरामचन्द्रजीकी मायाको फिर नवाया, जिसने प्रेरणा करके सतीके हृदय में सच कहा दिया। सुखान शिवजीने मनमें विचार किया कि छरीकी इच्छाकामी भावी प्रपञ्च है ॥ ३ ॥

सती कीन्ह सीता कर बेका। सिव जर समठ विभाव बिलेवा ॥

जौ जब करवै सती सन प्रीती। मिदइ सति पडु होय अनीती ॥ ४ ॥

सतीजीने सीताजीका केव भारण किया, यह जानकर शिवजीके हृदयमें बड़ा विचार हुआ। उन्होंने सोचा कि यदि मैं अब सतीसे प्रीति करता हूँ तो अधिकमार्ग दुष्ट हो जाता है और बड़ा अन्याय होता है ॥ ४ ॥

श्री०—परम पुनीत न जाइ तबि किये प्रेम बड पापु ।

प्रगटि न कहत महेसु कहु हृदयै अधिक संतापु ॥ ५६ ॥

सती परम पवित्र हैं, इसलिये उन्हें छोड़ते भी नहीं बनता और प्रेम करनेमें बड़ा पाप है। प्रकट करके महादेवजी कुछ भी नहीं कहते, परन्तु उनके हृदयमें बड़ा संताप है ॥ ५६ ॥

श्री०—तब संकर प्रसु बह सिव बांवा। सुमिरत रसु इदवै कड जाना ॥

पहिं तन सतिहि भेट भोहि पाहीं। सिव संकसु कीन्ह सच माहीं ॥ १ ॥

तब शिवजीने प्रसु श्रीरामचन्द्रजीके चरणप्रज्ञोंमें फिर नवाया और श्रीरामजीके स्पर्श करते ही उनके मनमें यह आया कि सतीके इस करीबे मेरी [पति-पत्नीकरणमें] भेंट नहीं हो सकती और शिवजीने अपने मनमें यह संकल्प कर लिया ॥ १ ॥

जस विचारि संकड भविषीरा। फके जगन सुमिरत रघुवीरा ॥

जगत जगज से निरा सुहाई। जय महेस बसि सति सदाई ॥ २ ॥

लिरबुद्धि धंकरनी ऐस विचारकर श्रीसुनाबलीस सारव करते हुए अपने पर
(कैलास) को बोले । अच्छे समय सुन्दर वातावरणवाणी हुई कि हे मोक्ष । आपकी मर्प
है । आरने भक्तिही भक्ती दक्षता थी ॥ २ ॥

अस पन दुग्ध बिडु सख को मान । रावमलत समरप सम्मन्त्र ॥

सुनि नमनिरा सखी वन सोख । पूत सिपहि सुखेव सकोच ॥ ३ ॥

आपको छोड़कर दूसरा कौन ऐसी प्रतिभा कर सकता है ? आप श्रीरामचन्द्रजीके
भक्त हैं, समर्थ हैं और सम्मान हैं । इस वातावरणवाणीसे सुन्दर सखीकी मनमें
बिना दुर्ग और उन्होंने सकुचते हुए चिन्तिते पूछ— ॥ ३ ॥

कौन् कमल पन कहहु झुकाव । सलधाम प्रभु दीनदयाल ॥

अपि सखें पूछ बहु बोलै । कधि न कहैव विप्र अपराध ॥ ४ ॥

हे कृपाह ! कहिये, आपने कौनसी प्रतिभा की है ? हे प्रभो ! आप सत्यके धाम
और दीनदयालु हैं । यहाँ सखीकीने बहुत प्रकारते पूछ, परन्तु विप्रपरि चिन्तिते
कुछ न कहा ॥ ४ ॥

श्री—सखी कह्यैं अनुमय किन सखु अमेव सर्वस्ये ।

कौन् कपटु मैं संतु सख धरि सहज लखु अम्य ॥ ५७ (क) ॥

सखीकीने हृदयमें अनुमान किया कि सर्वस्य चिन्तिते वन मन गये । मैं चिन्तिते कपट
किया, जो स्वभावसे ही सुख और बेकमल होती है ॥ ५७ (क) ॥

श्री—अबु पप सरिख पिकाव देखहु प्रीति कि रीति भक्ति ।

बिहग होइ रसु भाइ कपट सखाई परत पुनि ॥ ५७ (ख) ॥

प्रीतिही सुन्दर रीति देखिये कि सब भी [दूसरे धाम विहग] दूसरे सखान
भात बिहग है ; परन्तु फिर कमलकी सखाई पकते ही वाली भक्ति हो जाता है (रूप
कट जाता है) और स्याद (प्रेम) जाता रहता है ॥ ५७ (ख) ॥

श्री—दुर्गरे सोनु सखुल निज फली । पित्र भवित पाव बहि परकी ॥

कपटिहु किन कपट भलाका । प्रकर न कहैव मोर अपराध ॥ १ ॥

अपनी करनीको सब कहे सखीकीने हृदयमें इतना सोच है और इतनी अपार
बिना है कि बिहग क्यों नहीं किया न करता । [उन्होंने कहा कि] बिह-
की कृपाके परन भलाका लाभ है, इच्छे प्रकटमें उन्होंने मेरा अपराध नहीं कहा ॥ १ ॥

संकर सब भवतेकि सखी । प्रभु सोचि सखेव इदरे अनुकामी ॥

किन सब सखुकि न ननु कहि भाई । कपटु कहीं हूँ तर अधिपति ॥ २ ॥

प्रीतिका रूप देखकर सखीकीने जान लिया कि स्वामीने मेरा त्याग कर दिया
और वे हृदयमें शायक हो गयी । अपना धाम सखीकर कुछ करते नहीं बनता, परन्तु
इदरे [भीतर-ही भीतर] सुन्दरके लोभसे सखान भवन्त करने लगा ॥ २ ॥

सखिदि सखेव जानि दुस्तेहु । कहीं कजा सुंदर सुख देह ॥

रामदा रंग विविध इच्छास । विहगनाथ पहुँचे कैलासा ॥ ३ ॥

इच्छेदु विहगने सखीकीने पित्रभुक्त मानकर उन्हें कुछ देनेके लिये सुन्दर कपारों
करी । इस प्रकार नाममें विविध प्रकटके इच्छाकीको भवते हुए विहगनाथ कैलास
जा पहुँचे ॥ ३ ॥

नरे पुनि संतु सखुकि पन व्यापन । कैटे कट लर करि कलकलस ॥

संकर सखेव सम्यु सम्मन्त्र । कति सखधि सखेव भवता ॥ ४ ॥

वहाँ फिर शिवजी अपनी प्रतिमाको याद करने लगे, पेड़के नीचे पड़ासन लगाकर बैठ गये। शिवजीने अपना स्वाभाविक रूप सँभाला। उनकी अक्षय्य और अमर सम्पत्ति समा गयी ॥ ४ ॥

दो०—सती बसहि कैलस तब अधिक सोचु मन भारि ।

मरमु न कोठ जान कहु जुग सम दिवस सिरहि ॥ ५८ ॥

तब सतीजी कैलसपर रहने लगी। उनके मनमें बड़ा दुःख था। इस रहस्यको कोई कुछ भी नहीं जानता था। उनका एक-एक दिन जुगके समान बीत रहा था ॥ ५८ ॥

चौ०—निश नव सोचु सती उर भार। कब बहैहुँ दुख सागर पार ॥

मैं जो कीन्ह स्वरूपति अधमाना। मुनि पतिवचनु श्रव करि जाना ॥ ५९ ॥

सतीजीके हृदयमें निश मला और भारी बोच हो रहा था कि मैं इस दुःखदुःखके पार कब आऊँगी। मैंने जो भीरपुत्राश्रयकीका अभ्यस्तन किया और फिर उसके बचनोंकी श्रुत जाना—॥ १ ॥

सो कहु मोहि विचारि दीन्हा। जो कहु चरित रह सोइ कीन्हा ॥

अथ बिधि भव सुखिम बहि सोही। संकर विमुख निभावसि मोही ॥ ६० ॥

उसका फल विधाताने मुझको दिया, जो उचित था वही किया। परन्तु हे विधाता! भव मुझे यह उचित नहीं है जो संकरसे विमुख होनेपर भी मुझे लिज रहा है ॥ ६० ॥

कहि न जाइ कहु हृदय गहरी। मन महुँ समदि मुमिर सपाही ॥

जो प्रभु दीनदयालु कहावा। भवति ह्रस्व केर जसु गावा ॥ ६१ ॥

सतीजीके हृदयकी स्थिति कुछ कही नहीं जाती। बुद्धिमत्ती सतीजीने अपने भीरमपुत्रजीका स्मरण किया और कहा—हे प्रभो! यदि आप दीनदयालु कहालौ हैं और वेदोंने आपका यह कहा गावा है कि आप दुःखको हरनेवाले हैं, ॥ ६१ ॥

तो मैं बिगब करके कर कोरी। छूट येति देह यह मोरी ॥

जो मोरें सिम करन सगेहु। सब कम कचव संव जसु पहा ॥ ६२ ॥

तो मैं हाथ जोड़कर किन्ती करती हूँ कि मेरी यह देह जल्दी छूट जाय। यदि मेरा शिवजीके चरणोंमें प्रेम है और मेरा यह [प्रेमका] मत मन, ध्यान और कर्म (आचरण) से सत्य है, ॥ ६२ ॥

दो०—तौ सबदरसी मुनिज प्रभु कण्ठ सो बेगि उपाइ ।

होइ मरनु जेहि बिनीहि अम दुसह विपति विहाइ ॥ ६३ ॥

तौ हे सर्वदर्शी प्रभो! मुनिने, और श्रीम यह उपाय कीजिये निजते मेरा मरण हो और बिना ही परिभ्रम छूट [पति-परित्यागस्वी] अथवा विपत्ति दूर हो जाय ॥ ६३ ॥

चौ०—यहि बिधि दुखित प्रजेतकुमारी। अकल्पकीनः सख दुख भारी ॥

बीतें संवत सखस सतसी। तबी समरति संभु अभिवासी ॥ ६४ ॥

दशमुता सतीजी इस प्रकार बहुत दुःखित थीं, उनकी इतना दर्शन हुआ था कि निस्का वर्णन नहीं किया जा सकता। सत्ताली हजार वर्ष बीत जानेपर अभिनायी शिवजीने समाधि सोली ॥ १ ॥

शम नाम रिज मुमिरव कने। जाबेव सती जयवपति जाये ॥

बाइ संभु पंद संभु कीन्हा। सनसुख संकर भवसु दीन्हा ॥ ६५ ॥

शिवजी रामनामका स्मरण करने लगे, तब सतीजीने जाना कि अब अमरके रत्नायी

(शिवजी) बाये । उन्होंने तब शिवजीके चर्मोंमें प्रथम किया । शिवजीने उनको दैतनेके लिये सज्जने वासना दिव ॥ २ ॥

उसे कदव हस्तिका हस्ताव । दृष्ट प्रसेध मय छेहि काष्ठा ॥

देखा प्रिये त्रिपुरि सब छन्दः । दृच्छहि कीन्ह प्रतापति वायक ॥ ३ ॥

शिवजी भगवान् शक्ति की सम्पत्ति कर्मादें कहे छे । उसी समय दध प्रतापति हुए । ब्रह्मानेने सब प्रकारसे योग देव कन्दर्प दक्षमे प्रत्यक्षयोगमें नायक बना दिया ॥ ३ ॥

एद अधिकार दृष्ट दद पाव । अति अभिमानु हृदयें तव भावा ॥

महि चोद अस कल्पा अब माहीं । प्रसुख पाह आदि मद नाहीं ॥ ४ ॥

जब दक्षने इतना बड़ा अधिकार पाया तब उनके हृदयमें अत्यन्त अभिमान जा गया । अतएव देखा कोई नहीं पैदा हुआ जिसको प्रसुता पाकर मद न हो ॥ ४ ॥

श्री—दक्ष छिए मुनि बोलि सब करज सगे बड़ जाग ।

नेवते सावर सकल सुर जे पावत भज भाग ॥ ६० ॥

दक्षने सब मुनिबोंको बुला किया और वे बड़ा यम करने छे । जो देवता सरका भाग पाते हैं, दक्षने उन सबको आदरसहित निम्नलिखित किया ॥ ६० ॥

श्री—विष्णु वायु सिद्ध, यन्त्रवा, यक्षुह, समेत, चले सुर सर्वा ॥

विष्णु विरिधि महेसु विद्वान् । जे सकल सुर जान बसाई ॥ १ ॥

[दक्षका निम्नलिखित शब्द] विष्णु, नाग, सिद्ध, यन्त्रवा और सब देवता अपनी-अपनी शिरीसहित चले । विष्णु, ब्रह्मा और महादेवजीको छोड़कर सभी देवता अपना-अपना विमान उठाकर चले ॥ १ ॥

सर्ग मिलोके भौम विमान । जात चले सुंदर विधि नामा ॥

सुर सुंदरी करहि कल गावा । सुनव धरव दूरहि मुनि भगवा ॥ २ ॥

शिवजीने देखा अनेकों प्रकारके सुंदर विमान आकाशमें चले जा रहे हैं । देवसुन्दरियों सहित गाव कर रही हैं, किन्तु सुनकर मुनियोंका व्यान बूट गया है ॥ २ ॥

प्रेम तब सिधे कीन्ह नसली । पिता जय सुवि कहु हरवानी ॥

श्री महेसु नीहि आम्हु देही । कहु दिव जाह रहौ सिधे एही ॥ ३ ॥

शिवजीने [निम्नलिखितें देवताओंके अनेक कारण] पूछा, तब शिवजीने सब बातें बतलायी । पिताके पक्षकी बात सुनकर स्त्री कुछ प्रसन्न हुई और सोचने लगी कि यदि महादेवजी मुझे आका दें, तो इसी कहने कुछ दिन पिताके घर बसकर रहूँ ॥ ३ ॥

पति परिवारा हृदये दुख ननी । कहइ न निख अपराध विचारी ॥

पौकी सती सपौहर जानी । सब संकोच प्रेम रस सानी ॥ ४ ॥

क्योंकि उनमें हृदयमें पतिव्रता लागी अनेक बड़ा भारी दुःख था परं अपना अपराध समझकर वे कुछ कहती न थी । आखिर स्त्रीकी भव, संकोच और प्रेमरसमें स्त्री दूर भगौर वाग्वि चली—॥ ४ ॥

श्री—पिता मचन उत्तव परम औ प्रसु आयसु होह ।

तौ मैं जाई कृपायतन सावर देखन सोह ॥ ६१ ॥

हे भगो ! जो पिताके घर बहुत बड़ा उत्सव है । यदि आपकी आका हो तो मैं कृपापत्र । मैं आदरसहित उसे देखने जाऊँ ॥ ६१ ॥

श्री—अहेतु कीज मोहि मय गया । यह यहुचित यदि नेवत पठावा ॥

दक्ष सकल विन सुता दोलाई । समरे कवर कुम्हव निसराई ॥ १ ॥

शिवजीने कहा—तुमने बात तो गन्धी कही, वह मेरे मनको भी पसंद आयी। पर उन्होंने न्योता नहीं भेजा, वह अनुचित है। दसने अपनी सब कदमियोंको गुलाब है; किन्तु हमारे बैरके कारण उन्हें तुमको भी भुल दिया ॥ १ ॥

ब्रह्मसमी इस सब सुन माना। तेहि में मनहुं कहि अपमाना ॥

जौ बिलु मोलें जाहु मरानी। रहइ व सीनु सनेहु व फानी ॥ १ ॥

एक बार ब्रह्माकी समीपों हमसे व्यवहार हो गये थे, उसीसे वे अब भी हमारा अपमान करते हैं। हे भवानी! जो तुम बिना गुलामे जाओगी तो न शीत-स्नेह ही रहेगा और न मान-मर्यादा ही रहेगी ॥ २ ॥

अपि मित्र प्रभु पिता-पुत्र गोहा। आइव बिलु मोलेंहु व सँदेहा ॥

कपि विरोध मान छई कोई। तहाँ कई फन्वानु व होई ॥ १ ॥

यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि मित्र, स्वामी, पिता और पुत्रके घर बिना गुलामे भी जाना चाहिये तो भी यहाँ कोई विरोध मानता हो, उसके घर जानेसे कल्याण नहीं होता ॥ १ ॥

गौति अनेक संभु समुझावा। मनी बस व म्यानु हर धावा ॥

कह प्रभु जाहु जो बिनहि कोछाई। नहि गकि बात हमारे भाई ॥ ४ ॥

शिवजीने बहुत प्रकारसे समझाया, पर होनहारवत छतीके-दुदयमें बौध नहीं हुआ। फिर, शिवजीने कहा कि यदि बिना गुलामे जाओगी, तो हमारी समझमें अच्छी बात न होगी ॥ ४ ॥

दो०—कहि देखा हर जतन जाहु रहइ व दृष्टकुमारि।

दिए मुखय जान संव सब बिदा कीन्ह त्रिपुरारि ॥ ६२ ॥

शिवजीने बहुत प्रकारसे कहकर, देखा लिया, किन्तु सब स्त्री किसी प्रकार भी नहीं स्वीं तब त्रिपुरारि महादेवजीने अपने दुख्य गलोंको साथ देकर उनकी विदा कर दिया ॥ ६२ ॥

पौ०—पिता मवन सब गई भवानी। वच्छ अस काहुं व सबमानी ॥

सावर भोई मिछी एक माता। भगिनीं मिछी बहुत सुसकाता ॥ १ ॥

भवानी जब पिता (दश) के घर पहुँचीं तब दशके डरके मारे मिछीने उनकी आश्रमात नहीं की। केवल एक माता भोई ही जादरसे मिछी। बहिनें बहुत सुसकारती हुई मिछी ॥ १ ॥

दन्ध व कसु पुमि कुसकता। सतिहि भिषेकि बरे सब गता ॥

सतीं जाहु देखेठ सब जाता। कतहुं व दील संभु कर माता ॥ २ ॥

दशने जो उनकी कुछ कुसकतक नहीं पूछी, स्त्रीजीको देखकर उछटे उनके सारे रंग लज उठे। तब स्त्रीने साफर बस देखा जो नहीं कहीं शिवजीका भाग दिखायी नहीं दिया ॥ २ ॥

तब चित भदेठ जो संकर कहेछ। प्रभु अपमानु समुझि तर दहेछ ॥

पञ्चिह दृष्ट व छुनै अस ज्ञापा। जस यह भयव महा परितापा ॥ ३ ॥

तब शिवजीने जो कहा था वह उनकी समझमें जाच। स्वामीका अपमान समझकर स्त्रीका दुदय जल उठा। पिछला (पति-परित्याग) दुःख उनके दुदयमें उतना नहीं व्यापा, था जितना महान् दुःख इस समय (पति-अपमानके कारण) हुआ ॥ ३ ॥

अपि जस सुमन हुस कन्य। सब में कठिन कति अपमाना ॥

समुझि सो सतिहि नकट जति कोछा। यह विधि सबनीं कीन्ह प्रयोषा ॥ ४ ॥

यदि अयम् अनेक प्रकारे दास्य दुःख है तथापि जति-अपमान सने
बहुत कठिन है। यह समझकर लक्ष्मीने बड़ा क्रोध हो गया। माराने उन्हें बहुत
प्रकारसे समझाया-कुशाका ॥ ४ ॥

दो०—सिद्ध अपमान न लाइ तहि दुःख न होइ प्रबोध ।

लफल सखि इति हृदयि तव बोली पचन समोध ॥ ६३ ॥

परन्तु उनसे शिवजीने अपमान कहा नहीं गया, इससे उनके हृदयमें कुछ भी
प्रबोध नहीं हुआ। तब वे चारी सभाको हठपूर्वक बौंठकर ओषधरे वचन बोली—॥ ६३ ॥

सौ०—सुनहु सम्राट सख सुनिहु। कही सुनी किह संकर निदा ॥

हो कहु दुःख लख तव कहूँ। लखी सीति पछिताय पितार्ह ॥ १ ॥

हे सम्राट् और सब सुनीधरो। सुनो। निज ओगोने कहां शिवजीकी निन्दा की जा
सुनी है, वन स्वप्ने उनका एक दुरंत ही मिलेगा और मेरे पिता सह भी मर्जीमौति
पछताये ॥ १ ॥

संग संभु कीपति जलका। सुनिम जहाँ तहाँ भसि मरका ॥

कायि लखु सीम को कछाई। शवव गृदि व त कछिम परार्ह ॥ २ ॥

कहाँ संग, शिवजी और लक्ष्मीपति शिशुमगधन्वी निन्दा सुनी जाय कहीं ऐसी
मर्मादा है कि यदि अपना क्या चले तो उठ (निन्दा करनेवाले) की जीम काट के
और नहीं हो फान बूँदकर कोंठे भाग जाय ॥ २ ॥

जगदामा मोक्ष दुरामी। जल जल सख ॥ शिलापरी ॥

पिता संभ्रमति निवृत्त लेही। दण्ड सुख संभव नद वैही ॥ ३ ॥

शिवुर दैत्यको मारनेवाले भावान् मोक्षर सगुण जगत्के आत्मा हैं, वे जगामिला
और लक्ष्मी हित करनेवाले हैं। मेरा मन्दबुद्धि पिता उनकी निन्दा करता है। और
मेरा यह शरीर शरीरके धीरेसे टलत है ॥ ३ ॥

लहिहँ दुराव वैह लेहि हैह। नर हरि चंद्रमौकि चुषेहँ ॥

जल कहि सीम कछिमि लहु जल। मयव रक्त सख हाहाकार ॥ ४ ॥

हृदयमें चन्द्रमाको टकटक बात करनेवाले चुषेहँ शिवजीको हृदयमें बात
करके मैं इस शरीरको दुरंत ही त्याग दूँगी। ऐसा कहकर लक्ष्मीने योगान्धमें अपना
शरीर भस्म कर दिया। लक्ष्मी जगामाके हाहाकार स्रव गया ॥ ४ ॥

सौ०—सखी मरतु सुनि संभु गव लये करन मज लील ।

सख विचल मिलेकि गुरु रक्त लीनि सुनील ॥ ६४ ॥

कहीक मज सुनकर शिवजीके राज बड़ विचल करने लगे।—कह
निवृत्त होते देखकर सुनीकर लक्ष्मीने रक्त ली खा की ॥ ६४ ॥

सौ०—समाचार सख संल, पापु। धीरगदु हरि कोय पकर ॥

गव विचल जइ सिन्धु जीन्हा। सख सुन्दरि विचलत फल दीन्हा ॥ १ ॥

ये सब जगामार शिवजीको मिले, तब उन्होंने श्रेष्ठ करके धीरमाको मेला।
उन्होंने कहां जाकर यह विचल कर जाय और सब देवताओंको योक्ति पत्र
(दण्ड) दिया ॥ १ ॥

मे अकस्मिक दुःख कति सोई। नहि लहु संभु विमुक्त कै सोई ॥

नह पुनहात लख सख लखी। लखे मे लखि बचाने ॥ २ ॥

दशकी अग्रासिद्ध बड़ी गति हुई जो शिवदोहीकी हुआ करती है। यह इतिहास सदा संसार जानता है, इसलिये मैंने संक्षेपमें वर्णन किया ॥ २ ॥

सती मरते हरि सदा यह समा। अचम अचम सिद्ध पद अनुगमा ॥

हेहि कारण हिमशिखर गृह आई। जन्मी पारवती सदा पाई ॥ ३ ॥

सतीने मरते समय भगवान् हरिसे यह कर गौंसा कि मेरा जन्म-जन्ममें शिवजीके करणोंमें अनुगमा रहे। इसी कारण उन्होंने हिमाचलके पर आकर पार्वतीके शरीरसे जन्म लिया ॥ ३ ॥

अब मैं उमा सैक गृह आई। सकल सिद्ध संपत्ति लई आई ॥

जहाँ लई मुनिन्द सुखधन कीन्हे। उचित सब हिम भूवर कीन्हे ॥ ४ ॥

जबसे उमाजी हिमाचलके पर जन्मी तबसे लई सारी सिद्धियाँ और सम्पत्तियाँ का गयीं। मुनियोंने जहाँ-तहाँ सुन्दर आभन बना किये और हिमाचलने उनको उचित स्थान दिये ॥ ४ ॥

दो०—सदा सुमन फल सहित सब हुम नव नाया जाति।

प्रगटी सुन्दर खेल पर मनि आकर बहु भाँति ॥ ५ ॥

उस सुन्दर पर्वतपर बहुत प्रकारके सब नये-नये वृक्ष सदा पुष्प-फलभूक्त हो गये और वहाँ बहुत तरहकी मणियोंकी जामें प्रकट हो गयीं ॥ ५ ॥

चौ०—सरिता सब पुबीत कहु बहहीं। सग सग मज्जुप सुखी सब रहहीं ॥

सहज बरष सब कीन्हे त्यागा। मिरि पर सकल करिँ अनुगमा ॥ ६ ॥

सारी नदियोंमें पवित्र जल बहता है और पत्थी, पशु, समस्त सभी वृक्षी रहते हैं। सब जीवोंने अपना सामाधिक देर छोड़ दिया, और पर्वतपर सभी परस्पर प्रेम करते हैं ॥ ६ ॥

सोह सैक मिरिखा गृह आई। मिति बहु समस्यति के पाई ॥

मिति नृपतः मीनक गृह लख। मल्लिक अकहिं लख वासु ॥ ७ ॥

पार्वतीजीके घर आ जानेसे पर्वत ऐसा शोभायमान हो-रहा है जैसा रामजीके प्राकर भक्त शोभायमान होता है। उस (पर्वत) के घर निरख नये-नये मङ्गोलोत्सव होते हैं, किन्ना ब्रह्मादि वर गाते हैं ॥ ७ ॥

नारद समाचार सदा सदा। कौतुकहीं मिरि गौह सिचाप ॥

हैसराव आदर कीन्हा। पद पत्तरी पर अस्तु कीन्हा ॥ ८ ॥

अब नारदजीने वे सब समाचार सुने सो वे कौतुकसे हिमाचलके पर पधारे। पर्वतपानने उनका बड़ा आदर किया और कलष धोकर उनके उत्तम ओंछन दिया ॥ ८ ॥

गिरि सहित मुनि पद सिद्ध नागर। अरन सखि सदा भवतु सिचाप ॥

मिल सौमन्य बहुत मिरि करना। सुसा पोकि मोली मुनि परना ॥ ९ ॥

मिर अपनी जीवहित मुनिके करणोंमें सिर नमस्कार और उनके वरणोदकको सारे जगत्में छिड़काया। हिमाचलने अपने सौभाग्य बहुत बखान किया और पुनीको बुलाकर मुनिके घरोंपर डाल दिया ॥ ९ ॥

दो०—त्रिकादलय सर्वव्य तुम्ह यति सर्वव्य तुम्हारि।

कहहु सुता के दोष सुच मुनिवर हृदय विचारि ॥ १० ॥

[और कहा—] हे मुनिवर। आप त्रिकाल और सर्वव्य हैं, आपकी सर्वव्य पहुँच है। अतः आप हृदयमें विचारकर कन्याके दोष-गुण कहिये ॥ १० ॥

चौ०—कह सुनि बिहसि रह कहु बायो । सुता तुम्हारी सकल गुन खानी ॥

तुंर सदा बुझै सगली । यम उमा केविक भवानी ॥ १ ॥

नारद मुनिने हँसकर रहस्युक कोमल वाणीसे कहा—तुम्हारी कन्या सब गुणोंकी खान है । यह स्वयंसे ही सुन्दर, सुशील और अमृतदायक है । उमा, अम्बिका और भवानी इसके नाम हैं ॥ १ ॥

सब उच्छ्वस संस्र पुसलो । होइहि संतत विनहि विधारी ॥

सदा भजत पति कर बहिवसता । पति तें वसु पैहहि पितु माता ॥ २ ॥

कन्या सब सुखमेंसे सगुल है, वह अपने पतिको सदा प्यारी होगी । हमका सुख सदा भजत रहेगा और इतने इसके माता-पिता का पालेगा ॥ २ ॥

होइहि पूज्य सकल सब माहीं । पति सेवत कहु दुर्लभ माहीं ॥

पति कर नाहु छुडिरी संसार । त्रिष बहिहि पतिव्रत असिधारा ॥ ३ ॥

यह जो जगमें पूज्य होगी और इसकी सेवा करनेसे कुछ भी दुर्लभ न होगा । संसारमें किसे ऐसा नाम अर्पण करके पतिव्रतकी उन्नतकी धारण न करेगी ॥ ३ ॥

सैक सुखछन्द सुता तुम्हारी । सुनहु मे भव अवगुन दुद भारी ॥

अगुन अमाव नहु पितु हीना । उदासीन सब संस्र छीना ॥ ४ ॥

है परैतराज । तुम्हारी कन्या सुखछन्द है । अब इसमें जो दो-चार अवगुन हैं, उन्हें भी सुन लो । उदासीन, मानहीन, माता-पिता-विहीन, उदासीन, संसारहीन (अपरमाह) । ॥ ४ ॥

दो०—जोगी जरिअ अकसम मन सधम अर्मगल बेप ।

अस खानी पहि कहैं मिठिहि परी हस्त अति देस ॥ १७ ॥

योगी, जादुगरी, निष्कामहृदय, नया और अमृतदायक, ऐसा पति इसको मिलेगा । इसके हाथमें ऐसी ही देखा पड़ी है ॥ १७ ॥

चौ०—सुनि सुनि पिरा नख किय जानी । दुख संवतिहि उमा, हरवानी ॥

नारद कहि गह मेहु न जान । दस एक सखसुख बिलमाना ॥ १ ॥

नारद मुनिजी की वाणी सुनकर और उसकी हरकतें सत्य जानकर पतिव्रती (हिमवान् और मेधा) को दुःख हुआ और पार्वतीजी प्रसन्न हुई । नारदजीने भी इस रहस्यको नहीं जाना, क्योंकि उसकी दाहरी दस एक ही होनेपर भी भीखरी सख भिन्न-भिन्न थी ॥ १ ॥

सख सब गिरिअ गिरि मैना । पुनक सरि नरे गल मैना ॥

होइ ॥ मुना देखेनि आका । उमा सो वचु दुखरे बरि राका ॥ २ ॥

सारी सखियाँ, पार्वती, परैतराज हिमवान् और मेधा—सभीके खरी पुलकित थे और सभीके नेत्रोंमें लज भरा था । देखिके वचन अकल नहीं हो सके, [यह विचारकर] पार्वतीने उन वचनोंको हृदयमें धारण कर लिया ॥ २ ॥

उपनेउ शिव पर कमल सनेहु । मिजन कठिअ सब आ सदेहु ॥

नानि पुनकसक श्रिति दुराई । सखी उल्लेख नैछि पुनि जाई ॥ ३ ॥

उन्हें शिवजीके चरणकमलोंमें स्नेह उसल हो थाक, परन्तु मनमें यह सन्देह हुआ कि उनका मिलना कठिन है । अन्तर ठीक न जानकर उमाने अपने प्रेयसकी छिया लिया और फिर वे गलीकी ओरमें जाकर बैठ गयीं ॥ ३ ॥

पति न होइ देखेनि खाने । खीचहि दंष्ट्रि खनी सखानी ॥

उर परि घोर कष्ट गिरिउल । कहु बाप का करिअ उपाद ॥ ४ ॥

देखिकी वाणी खूनी न होगी, यह विचारकर हिमवान्, मेधा और सारी चक्र

सखियों बिना करने लगीं। फिर इहकर्म पीरच परकर पर्वतराजने कहा—हे नाथ !
कहिये, अब क्या उपाय किया जाय ? ॥ ४ ॥

दो०—कह मुनीस दिगंत सुनु जो निधि लिखा लिखर ।

वेच वतुज नर नाग मुनि कोउ न भेटनिहार ॥ ६८ ॥

मुनीभरने कहा—हे हिमवान् ! सुनो, विषाहाने जलाधर जो कुछ लिख दिया है
उसको देवता, दानव, मनुष्य, नाग और मुनि कोई भी नहीं मिला सकते ॥ ६८ ॥

चौ०—तदपि एक मैं कह्यँ उपाई । छोड़ करै, जौ दैठ सहाई ॥

जस बर मैं बरनेउं तुम्ह पाहीं । निशिदि उमहि उस संख्य नहीं ॥ १ ॥

तो भी एक उपाय मैं बतलाता हूँ। यदि दैव सहायता करें तो वह सिद्ध हो सकता है।
उमाको बर तो निःसन्देह देखा ही मिलेगा जैसा मैंने तुम्हारे सामने वर्णन किया है ॥ १ ॥

मेरे जे बर के दोष बखाने । से सब सिव पदि मैं अनुमाने ॥

जौ बिबाहु संकर सन होई । दोषउ शुन सम कब सपु छोई ॥ २ ॥

परन्तु मैंने बरके जो-जो दोष बतलाये हैं, मेरे अनुमानसे वे सभी शिवजीमें हैं।
यदि शिवजीके साथ विबाह हो जाय तो दोषोंको भी सब खोग गुणोंके समान ही कहिये ॥ २ ॥

जौ भवि खेज सम्य हरि करी । बुध कहु सिन्धु कर दोष न बहरी ॥

भगु हृषाणु सर्व रस काही । सिन्धु कई मंद कबल कोउ भाही ॥ ३ ॥

जैसे विष्णुभगवान् खेलावली शय्यापर चोते हैं, तो भी पवित्र सोम उनको
कोई दोष नहीं लगाते। सर्व और अतिरेख अच्छे-बुरे सभी रसोंका भक्षण करते हैं, परन्तु
उनको कोई बुरा नहीं कहता ॥ ३ ॥

बुध बर मनुष्य समित सब बहरी । सुरसरि सोन गुरुवैठ न कहाई ॥

समरथ कहु गहि दोषु गैछाई । रवि पावक सुरसरि को गाई ॥ ४ ॥

गङ्गाजीमें शुभ और अशुभ सभी जल बरदा दे, पर कोई उन्हें भगवति नहीं
कहा। सूर्य, अग्नि और वज्राजीछे भक्ति समर्थको कुछ दोष नहीं लगाता ॥ ४ ॥

दो०—जौ अस हिसिषा करहि सर कहु विवेक अभिमान ।

परहि कलप भरि नरक महुँ जीव कि ईस समान ॥ ६९ ॥

यदि मूर्ख मनुष्य शत्रुके अभिमानसे इस प्रकार होक करते हैं तो वे कल्पभरके भिन्न
नरकमें पड़ते हैं। भला, बुरी जीव भी ईश्वरके समान (सर्वथा स्वल्प) हो सकता है। ॥ ६९ ॥

चौ०—सुरसरि नंद कृत वासनि जना । कबहुँ न संव करिँ तेहि राख ॥

सुरसरि निछे सो फलन जैसँ । ईस कबीरादि संख्य जैसँ ॥ १ ॥

गङ्गाजलसे भी बनायी हुई मंदिराको जलाधर रस खेब कभी उसका पान नहीं करते।
परन्तु गङ्गाजीमें मिल जानेपर जैसे पवित्र हो जाती है, ईश्वर और जीवों भी ऐसा ही भेद है। ॥ १ ॥

सुनु सहाय समरथ भगवान् । बुदि किछी सच बिधि कनयाना ॥

हरातान्ध पै बहहि गहेछु । आशुतोष पुनि निर्द कहेछु ॥ २ ॥

शिष्यी सहाय ही समर्थ हैं, क्योंकि वे सत्यवादी हैं। हर्षजने इस विषयमें सब प्रकार
कथनाय है। परन्तु महादेवजीकी वागवृत्त नहीं कहिन है, फिर भी श्रेष्ठ (तब) करनेसे
वे बहुत नन्द समुह हो जाते हैं ॥ २ ॥

जौ जा करै कुमारि, तुम्हारी । चापिउ भेटि सकई विपुलरी ॥

सर्वपि नर कनेक कम भाहीं । बुदि कई सिव तबि वृत्तर पाहीं ॥ ३ ॥

यदि तुम्हारी कन्या तब को, तो विपुलारी महादेवजी रोजससके मिला सकते हैं।

के भण्डार हैं। यह निश्चयकर तुम [मित्र्या] सन्देशको छोड़ दो। शिवजी, सभी तरहसे निष्कलङ्क हैं॥ २॥

मुनि प्रति वचन हरहि भय साहीं। भाई तुस्त उठि गिरिजा साहीं॥

उमहि बिलोकि बचन भरे सारी। सहित सनेह मोद मैठारी॥ ३॥

पतिके वचन सुन मनमें प्रसन्न होकर मैना उठकर तुरंत पार्वतीके पास गयी। पार्वती को देखकर उनकी छाँखोंमें आँसु भर आये। उसे छोड़के साथ मोदमें बैठ लिया॥ ३॥

भारहि कस केति कर समई। यदुमद कंड न कहु कहि जाई॥

जगत मातु सम्बन्ध गवानी। मातु सुखद बोली सुहु नानी॥ ४॥

फिर बार-बार उसे हृदयसे लगाने लगी। प्रेमसे मैनाका मुख भर आया, कुछ कहा नहीं जाता। जगजनी भवानीजी तो सर्वज्ञ ठहरें। [माताके मनकी रक्षाको जानकर] वे माताको सुख देनेवाली कोमल थापीसे बोली—॥ ४॥

दो०—सुनहि मातु मैं दीख अस सपन सुनावतैं तोहि।

सुंदर गौर सुनिप्रवर अस उपदेसेउ मोहि॥ ७२॥

मा! सुन। मैं तुझे सुनाती हूँ। मैंने ऐसा स्वप्न देखा है कि तुमसे एक सुन्दर गौरवर्ध भेट प्राप्त करने ऐसा उपदेश दिया है—॥ ७२॥

बौ०—करहि जाइ तपु सैकुमारी। नारद कहा को सत्य-विचारी॥

मातु पितहि दुनि-यक मल भावा। तपु सुखायदु होय सत्तावा॥ ७३॥

हे पार्वती! नारदजीने जो कहा है उसे सत्य समझकर तू जाकर तप कर। फिर यह बात तेरे माता-पिताको भी अच्छी लगी है। तप सुख देनेवाला और दुःख-रोषका नाश करनेवाला है—॥ ७३॥

तपक रचइ, प्रयत्नु विधात। तपक विष्णु सकल जन ज्ञाता॥

तपक संशु, करहि संघारा। तपक सेपु, बहइ महिभारा॥ ७४॥

तपके बलसे ही प्रज्ञा उत्पन्न होती रहती है और तपके बलसे ही विष्णु सारे जगत्का पालन करते हैं। तपके बलसे ही शम्भु [शक्रपते] जगत्का संहर-करते हैं और तपके बलसे ही शेषजी-पृथ्वीका भार धारण करते हैं॥ ७४॥

तप, अथार सः छदि भवानी। करहि जाइ तपु अस विधि नायी॥

कुनत बचन निरुमित महारती। सपन सुनकन गिरिहि हँकारी॥ ७५॥

हे भवानी! तारी सृष्टि तपके ही आधारपर है। ऐसा जीमें जानकर तू जाकर तप कर। यह बात सुनकर माताको बड़ा आनन्द हुआ और उसने शिवजीको बुलाकर यह सन्त सुनाया॥ ७५॥

मातु पितहि बहुविधि ससुखई। चली उमा तप दिव हरवाई॥

प्रिय परिवार पितृ अक माता। यदु किछ सुख अक न पाता॥ ७६॥

माता-पिताको बहुत तरहसे समझाकर बड़े हर्षके साथ पार्वतीजी तप करनेके लिये चली। प्यारे कुटुम्बी, पिता और माता सब व्याकुल हो गये। किसीके मुँहसे बात नहीं निकलती॥ ७६॥

दो०—वेदसिरा, मुनि जाइ सच, सनहि कहा समुदाइ।

पारवती महिमा सुनत रहे प्रलोषदि पाइ॥ ७७॥

तप वेदसिरा मुनिने आकर उनके समझाकर कहा। पार्वतीजीकी महिमा सुनकर उनके समाधान हो गया॥ ७७॥

सौ०—उर धरि यमा ज्ञानपति करवा । जहू निजिह छली तबु करवा ॥

अति सुकुमार न तबु तप मोयू । पति पद मुमिरि सखैर सहु भोगू ॥ १ ॥

प्राणपति (निखली) के चरणोंके हृदयमें धारण करके पार्वतीजी धनमें आकर तप करने लगीं । पार्वतीजीका अत्यन्त सुकुमार ऊँच तपके योग्य नहीं था, तो भी पतिके चरणोंका स्पर्श करके उन्होंने स्व भोगोंको तप दिव्य ॥ १ ॥

नित सब नरन उपस्य रह्युता । विसरी देह उपहि मनु लाग ॥

मंथ सहस मूल फल भायू । समु जायू सत दस बर्षाद ॥ २ ॥

स्वाध्याय चर्चोनि दिव्य नव वस्तुय उपस्य छेने क्वा और तपमें ऐसा मन लगा कि कर्तव्यी छायी दुब दिव्य गयी । एक द्वाक वर्षक उन्होंने मूल और फल खाये, फिर सौ वर्ष ज्ञान लाकर विखये ॥ २ ॥

कयु दिन मोयनु पारि कलासा । किपु जडेन कयु दिन उपयासा ॥

केल पासी यदि परा हुकाई । छेनि सहस संयत सोइ काई ॥ ३ ॥

कुछ दिन एक और वायुष भोजन किया और फिर कुछ दिन कठोर उपवास किया । तो वेठनन सूतकर पृथ्वीपर गिरते दे, सीम हजर वर्षक उन्होंनेको खाया ॥ ३ ॥

हुनि करिदरे सुलमेठ परेका । उमहि कयु तप मयठ भयला ॥

हेकि उमहि छप फीन सरीरा । प्रह गिरा मै गलाव गमीरा ॥ ४ ॥

फिर मूल वर्ष (पक्षे) भी छोड़ दिये, उमी पार्वतीका नाम 'भयनी' हुआ । तपसे उमाका शरीर छीप देकर आकाशमें गमीर बसावानी हुई—॥ ४ ॥

दो०—मयठ मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिपुत्रकुमारि ।

परिदह सुसह कलेस सब भव मिलिहहि त्रिपुरारि ॥ ७७ ॥

दे परितपमयी कुमारो । पुन, तेरा मनोरथ उपलब्ध हुआ । ए भव सारे भयछ भेदोंको (कठिन समयों) त्याग दे । अब तुझे त्रिपली 'मित्रो' ॥ ७४ ॥

सौ०—तब तबु फलु न कीर भयनी । मयु भयेक धीर मुनि त्पानी ॥

कब कर भरहु तबु दर गली । सब सदा संयत सुनि कानी ॥ १ ॥

हे भयानी । धीर, मुनि और शानी बहुत हुए हैं, पर ऐसा (कठोर) तप किसीने नहीं किया । अब तु हठ श्रेष्ठ ज्ञानार्थ वाणीको सदा सत और निरन्तर पवित्र ज्ञानकर अपने हृदयमें बाध कर ॥ १ ॥

मार्द पिता कंडमल बरही । हठ परिहरी घर बापहु तवही ॥

मिलहि तुम्हहि अब सत निषीसा । जामेहु तब प्रसाव दारीसा ॥ २ ॥

एव तेरे पिता कुलनेको जामें, अब हठ छोड़कर घर चली जाना । और जब दुम्हें स्मरि मिले तब इस वाणीको ठीक उपलब्धना ॥ २ ॥

सुनत गिरा पिदि कान बखानी । सुक गल गिरिजा हरपानी ॥

उना चरित सुंदर मै गवा । सुबहु संसु कर चरित मुहावा ॥ ३ ॥

[एव प्रकार] आकाशमें कही हुई बखानी वाणीको सुनते ही पार्वतीजी प्रसन्न हो गयी और [हृदय गीरे] उनका शरीर पुनर्विद्य हो गया । [वायुषलक्षणी भद्राज्योतिषे मेले कि] मैंने पार्वतीका सुन्दरचरित्र सुनाया, अब शिवजीका प्रसवना चरित्र सुनो ॥ ३ ॥

एव ते जहाँ जाह तनु स्थागा । तब ते सिद्ध सब भयठ किरागा ॥

जहाँ मदा रघुनाथक भागा । जहाँ जहाँ सुबहि राम गुन प्रागा ॥ ४ ॥

जन्मे लीने जान करीलागा भिना, तबसे शिवजीके मनमें वैराग्य हो गया ।

वे सदा श्रीरघुनाथजीका नाम जपने लगे और जहाँ-जहाँ श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंकी कथाएँ सुनने लगे ॥ ४ ॥

दो०—चिदानन्द सुखदाम सिव भिन्न मोह मद काम ।

विचरहि महि धरि हृदयँ हरि सकल लोक भविराम ॥ ७५ ॥

चिदानन्द, सुखके धाम, मोह, मद और कामसे रहित शिवजी सम्पूर्ण लोकोंको आनन्द देनेवाले भगवान् श्रीहरि (श्रीरामचन्द्रजी) को हृदयमें धारणकर (भगवान्के भ्रान्तमे गला हुए) पृथ्वीपर विचरने लगे ॥ ७५ ॥

चौ०—कतहुँ मुनिह उपदेशहि आमा । कतहुँ राम गुन कहि बजान ॥

अथपि अकाम उदधि भगवान्मा । अथ कहि ॥॥ दुखित सुखमा ॥ १ ॥

वे कहीं मुनियोंको आनन्द उपदेश करते और कहीं श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका वर्णन करते थे । यद्यपि सुखन शिवजी निष्काम है, तो भी वे भगवान् अपने भक्त (एतों) के प्रियोगके दुःखसे दुखी हैं ॥ १ ॥

एहि विधि रम्य कहु बहु बीती । नित नै होइ राम ॥ प्रीती ॥

मेसु मेसु संकर कर देसा । अविच्छ हृदयँ भगति कै देसा ॥ २ ॥

इस प्रकार बहुत समय बीत गया । श्रीरामचन्द्रजीके कारणोंमें नित-नयी प्रीति हो रही है । शिवजीके [कठोर] नियम, [अनन्य] प्रेम और उनके हृदयमें प्रीतिकी गहल टेकके [जब श्रीरामचन्द्रजीने] देसा, ॥ २ ॥

प्रगटे रासु कृतम्य कृपास्य । रूप सीक विधि तेज भित्ति ॥

बहु प्रकार संकरहि सरसा । हुम्ह पितु अस मतु को निरवाहा ॥ ३ ॥

तब कृतम्य (उपकार माननेवाले) कृपास्य, रूप और धीके भण्डार, अज्ञान सेवक भगवान् श्रीरामचन्द्रजी प्रकट हुए । उन्होंने बहुत तरहसे शिवजीकी सराहना की और कहा कि आपके बिना ऐसा (कठिन) प्रत जैन निवाह सकता है ॥ ३ ॥

बहुविधि राम सिद्धि समुदाया । परकी कर कसु सुबाया ॥

भति पुनीत गिरिज कै करनी । निरकर रहित कृपानिधि शरी ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने बहुत प्रकारसे शिवजीको समझाया और पार्वतीजीका जन्म बुझाया । कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजीने निरकारपूर्वक पार्वतीजीकी मत्कन्त पवित्र करनीका वर्णन किया ४

दो०—अब विनती मम सुमहु सिव औं मे पर निज मेहु ।

जाइ विवाहहु सैकजहि यह भोहि मारें वेहु ॥ ७६ ॥

[किर उन्होंने शिवजीसे कहा—] हे शिवजी ! यदि मुझपर आपका स्नेह है तो अब आप मेरी विनती सुनिये । मुझे यह भोले दीनिये कि आप जबकि पार्वतीके साथ विवाह कर लें ॥ ७६ ॥

चौ०—कह सिव अद्विजविज अम गहीं । नाथ नवन छुवि सेति न जहाँ ॥

सिर धरि कायसु करिज मुहमस । परस कसु कह नाथ हमारा ॥ १ ॥

शिवजीने कहा—यद्यपि ऐसा उचित नहीं है, परन्तु स्वामीकी बात भी मेरी नहीं का सकती । हे नाथ ! मेरा यही परमकर्म है कि मैं आपके आज्ञाको तिरपर रखकर उक्त पावन करूँ ॥ १ ॥

माझ पिता गुर ग्रसु कै करनी । किन्हि निरकर करिज मुख जानी ॥

हुम्ह सब भोति परस शिखरी । जम्हा सिर पर नाथ मुहारी ॥

माता, पिता, गुरु और स्वामीकी आज्ञा बिना ही विचार कुछ समझकर करना

(मानना) चाहिये । छिद्र छाप तो मय मझारो जै परम हितकारी हैं । हे नाथ-
भाषणी भाषा मेरे किरण है ॥ २ ॥

प्रभु सोईष्ट पृथि रक्ष्य कवना । माने दिखेन प्रभु सुत रचना ॥

पद प्रभु हर कुशल नव खेस । अब दर सखेहु तो हम कहेस ॥ ३ ॥

शिवजीकी भक्ति, इन और धर्मसे युक्त वचनरचना सुनकर प्रभु रामचन्द्रजी
सन्तुष्ट हो गये । प्रभुने कहु—हे हर ! आपकी प्रशंसा पूरी हो गयी । अब हमने जो कहा
है उसे हृदयमें रक्कना ॥ ३ ॥

संकरधान भद्र सब आये । संकर सोई सूरसि उर सखी ॥

हरसि हरसिनि शिव यहि नाम । वोके प्रभु भक्ति कवन सुहाए ॥ ४ ॥

इस प्रकार कहकर भीमचन्द्रजी अन्तर्धान हो गये । शिवजीने उनकी यह
मूर्ति अपने हृदयमें रख ली । उसी समय सप्तर्षि शिवजीके पास आये । प्रभु महादेवजीने
उनसे आशुता मुद्रापने कवन कहे—॥ ४ ॥

दो—पारवती यहि जाइ तुम्ह प्रेम परिच्छन्न लेहु ।

गिरिहि प्रेरि पदप्रभु भक्त हरि करेहु सहेहु ॥ ७७ ॥

भारतीय पार्वतीके पास जाकर उनके प्रेम्पूर्ण परीक्षा लीजिये और हिमाचलकी
कहकर [उन्हें पार्वतीको लिखा अपनेके लिये भेजिये तथा] पार्वतीको घर भिजवाइये
और उनके सन्देशको दूर फीजिये ॥ ७७ ॥

पौ—रिपिन्ह गौरि देखी कई कैसी मूर्तिमंत तपसा । कैसी ॥

वोके मुनि सुहु लैकुमारी । करहु कवन कारण सपु मारी ॥ १ ॥

श्रुतिबोधे [वहाँ जाकर] पार्वतीको कैसी देसा माने मूर्तिमान् तपसा ही हो ।
मुनि बोधे—वै लैकुमारी । मुनो, तुम किसलिये इसना कठोर तप करना दो ॥ १ ॥

कैहि ममरादहु पर तुम्ह कहहु । इन सब तपस सरसु सिव कहहु ॥

नन्द दशन गनु भक्ति सकुचाई । देखिहु सुवि हमारि जगसाई ॥ २ ॥

तुम किसी आराधना करती हो और क्या प्राप्ती हो ! हमसे अपना सच्चा भेद
क्यों नहीं कहती ? [पार्वतीने कहा—] यात करते मन बहुत सकुचाया है । आपलोग
मेरी मूर्तता सुनकर कैसे ॥ २ ॥

मनु हर पर व भुवर्ष चित्तका । पद हरि पर भक्ति बढाया ॥

नाद पद सब सोई जान्य । किनु पंखन्ह हम चाहि बढाया ॥ ३ ॥

मनने हर पकड़ लिया है, वह उपदेश नहीं सुनता और सत्कार दीवाल टटाना चाहता
है । नारदजीने जो पद दिया उसे क्या जानकर मैं बिना ही पोंसके बढ़ना चाहती हूँ ॥ ३ ॥

देखहु मुनि भविष्य हमारा । चाहिये सदा त्रिविधि भस्मारा ॥ ४ ॥

हे मुनिगो ! नाथ मेरा कथन तो देखिये कि मैं क्या शिवजीको ही पति बनाना
चाहती हूँ ॥ ४ ॥

दो—तुनत दसन बिहसे रिपव गिरिसंगव तव देह ।

नारद कर उपदेश सुनि कहहु वखेठ किनु मेह ॥ ७८ ॥

पार्वतीजीकी बात सुनते ही श्रुतिबोध हो पड़े और बोले—तुम्हारा धरि परतसे ही
तो उपदेश हुआ है । मन्त्र, कर्तों तो नारदका तपदेश सुनकर आनन्दकित्तों पर बसा है ॥ ७८ ॥

पौ—दण्डगुरुन्ह उपदेशेन्ह चाहै । किन्ह फिर मनु व देसा आई ॥

त्रिविध कर कर कर चाल । कनकसिन्धु कर मुनि कस हाथ ॥ १ ॥

उन्होंने बाहर दसके पुत्रोको उपदेश दिया था, किन्तु उन्होंने फिर लौटकर भ्रष्टा मुँह भी नहीं देखा। किन्तु उनके घरको नारदने ही चौपट किया। फिर वही शूल हिरण्यकशिपुका हुआ ॥ १ ॥

नारद सिख जे सुनहिं नर नरी। जलमि होहिं तमि भवतु मिसारी ॥

भय कपटो तन सखन चीन्हा। जगु सरिस सखी यह फीन्हा ॥ २ ॥

जो स्त्री-पुरुष नारदकी सीख सुनते हैं वे पर-भर छोड़कर अवश्य ही भ्रष्टारी हो जाते हैं। उनका मन तो कपटी है, अतीतर समझेके चिढ़ है। वे सभीको अपने समान (आधारा) बनाना चाहते हैं ॥ २ ॥

रोहिं हैं बचन माहि विस्मया। दुम्ह जाहु पति सहज उदासा ॥

निगुन निखन कुवेच कसली। जगुन जगै दिखंवर भाकी ॥ ३ ॥

उनके वचनोपर विधाल मानकर गुम ऐसा पति चाहती हो जो स्वभावसे ही उदासीन, गुणहीन, निर्लज्ज, भुरे वेषवस्त्रा, नरकपायीकी भाँति धननेच्छक, कुलहीन, बिना घर-बारका, नया और धारीतर लोगोंको छोटे रखनेवाला है ॥ ३ ॥

काहु कवन मुहु भय न पणै। नक मूकहु उग के वीरस्यै ॥

पंच कहैं सिधैं लती विवारी। जुनि भवधेरि मरान्दि ताही ॥ ४ ॥

ऐसे वरके मित्रनेचे कहो, तुम्हें क्या मुल होगा? तुम उठ उग (नारद) के बहकाने-में भाकर लूट भूली। पहले पंचोंके करनेसे विघने लती विवार किता था, परन्तु फिर उसे त्यागकर मरणा डाला ॥ ४ ॥

श्री—भव मुल सोवत सोनु नहिं मीन भायि भव काहि।

सहज एकाकिन्ध के भयन कपहैं कि बारि लटाहि ॥ ७५ ॥

अब शिष्यकी कोई चिन्ता नहीं रही, भीख माँगकर खा डेते हैं और दुकले चोते हैं। ऐसे स्वभावसे ही लोकेके रखनेवालोंके घर भी भयः, स्वा कभी कियों टिक सकती हैं! ॥ ७५ ॥

श्री—जगहैं नानहु कहा हयमल। इन दुम्ह जहुं नर नीरु विचार ॥

जति सुंदर मुनि मुकन सुसीख। सबहिं केद जातु नस डोका ॥ १ ॥

अब भी हमारा कहा मनो, हमने तुम्हारे लिये अच्छा वर विचार है। वह बहुत ही सुन्दर, पवित्र, सुखदायक और सुशील है, किन्तु वह और लीज केद खाते हैं ॥ १ ॥

बूचन रहित सकल गुण राखी। जीवति पुर बैकुण्ठ निवासी ॥

भय नर तुम्हहिं मिलवय जाती। मुकन विहसि कह बचन मवाती ॥ २ ॥

वह दोषसे रहित, सबे सद्गुणोंकी राखी, असीम स्वामी और बैकुण्ठपुरीका रहनेवाला है। हम ऐसे वरको लकर तुम्हें मिल देंगे। वह मुन्ते ही पार्वतीजी होकर बोली—॥ २ ॥

सब कोहु गिरिकन ललु बहा। हठ न छूट छूटै अब देहा ॥

कनकड पुनि पकव हैं होई। जोहैं सखु न परिहर सोई ॥ ३ ॥

आपने वह सब ही कहा कि सेवा न करी परंतु लज्ज हुआ है। इसलिये हठ नहीं छोटेगा, शरीर भले ही छूट जाय। सेना भी पत्करले ही उत्तर होता है, जो वह नकावे जानेपर भी अपने स्वभाव (सुमर्त्य) को नहीं छोड़ता ॥ ३ ॥

नारद बचन न मैं परिहसैं। कसव नमहु नरद बहिं खरें ॥

✓ पुर हैं बचन प्रीति न केही। अपनेहुं सुगम न मुक सिधि छेटी ॥ ४ ॥ ✓

अतः मैं नारदजीके बचनोंसे नहीं छोड़ूँगी; जोर पर वसे या उठके, हठसे मैं नहीं दूँगी। जिसको तुमके बचनोंमें निश्चय नहीं है, उसको तुम और सिद्धि स्वप्नमें भी प्रथम नहीं होती ॥ ४ ॥

श्री०—महादेव जबतुम भवस विष्णु सफल भुन घाम ।

जोहि मर मरु रज काहि सन तेहि तेही सन घाम ॥ ८० ॥

माना कि महादेवकी अनुमतिसे भवन है और विष्णु स्वप्न सदगुणोंके धाम हैं। तब निश्चय मन चित्तमें उन गणों, उक्तों तो जगति कम है ॥ ८० ॥

श्री०—जो हुम्न मिछतेहु प्रथम सुनीस। सुनतिदे सिख हुम्नपरि भर सीसा ॥

जब मैं कन्धु संसु दित हारा। जो गुन रूपन करे दिवात ॥ १ ॥

है सुनीसरी। फिर आप वसके मिलते, तो मैं आपका उपदेश तिर-ग्राथे रखकर सुनती। परन्तु अब तो मैं अपना कम चित्तजीके छिपे कर चुकी। फिर गुण-दोषोंका विचार कौन करे ॥ १ ॥

श्री हुम्नर हठ हार्ये विसेकी। रहि न जाइ विनु बिदे वीरी ॥

ही कौतुकिभद्र बाछसु ताई। कर कथा भवेक जग माई ॥ १ ॥

बहि आपके हठपर्यं बहुत ही हठ है और विवाहकी बातचीत (वरीसी) किये बिना आपसे रहा ही नहीं जाता, तो संसारमें कर-कथा बहुत है। शिखराइ करनेवालोंको आत्मस तो होता नहीं [और कहीं जाकर कीजिये] ॥ २ ॥

कपर जोहि छीन सार हयारी। बरवें संसु व द रहवें कुमारी ॥

सबहें न कानद कर, उपसेसु। अणु कहहि सत बार भोसु ॥ ३ ॥

मेरा तो करोड़ बर्षोंका रही हठ रोगा कि या तो शिखरीको बरेंगी, नहीं तो कुमारी हो रूँगी। सब जिनकी चौंकार कहें, तो भी नारदजीके उपदेशको न छोड़ूँगी ॥ ३ ॥

मै पा बरवें कइ कर्मदख। छुह पूह गवनहु भवस भिंरता ॥

बैकि मेहु सोके मुनि जानी। बप लय जगदीके सपानी ॥ ४ ॥

जगज्जननी पार्वतीजीने फिर कहा कि मैं आपके पैरों पड़ती हूँ। आप अपने पर कादये, बहुत देर हो गयी। [मिनतीमें पार्वतीजीका ऐसा] प्रेम देखकर हमी मुनि गेले—हे जगज्जननी! हे भवानी! आपकी कब हो! कब हो! ॥ ४ ॥

श्री०—हुम्न मया भगवान् सिख सफल कगत पितु मातु ।

नाइ बरद सिर मुनि चले पुनि पुनि हरपत मातु ॥ ८१ ॥

आप मया है और किसी भगवान् हैं। आप दोनों समस्त जगत्के माता-पिता हैं। [बद करके] मुनि पार्वतीजीके चरणोंमें फिर नवाकर कल दिये। उनके शरीर पर-पर पुजित हो रहे थे ॥ ८१ ॥

श्री०—जह सुनिद बिभ्रंत फलप। करि निच्छो विरिवाहि गृह स्थाप ॥

रुहिर उग्रविनि सिय पई जाई। कथा उग्र छे सफल सुनाई ॥ १ ॥

मुनिपोंने आकर विष्णुजीको पार्वतीजीके पास भेजा और वे विनती करके उनको घर ले आये; फिर चतुर्थपौने शिखरीके पास जाकर उनसे पार्वतीजीकी कथा सुनायी ॥ १ ॥

रुह मगन सिख सुक्त सनेह। हरपि सखसिपि कवने मेहा ॥

समु फित की तब संसु सुबान। कबे कबव सुनायक ध्यामा ॥ २ ॥

पार्वतीजीका प्रेम सुनते ही शिखरी आनन्दमग्न हो गये। सखसि प्रसन्न होकर

अपने घर (ब्रह्मलोक) को चले गये । तब सुब्रह्मण्य शिवजी गन्धर्व स्त्रियों की ओर ध्यान करने लगे ॥ २ ॥

तारक बसुर मन्त्र रोहि कला । मुच प्रताप यत् तेज विलासा ॥

रोहि सन् लोक लोकपति जीति । मय देव कुल संपति सीते ॥ १ ॥

उसी समय तारक नामका असुर हुआ, जिसकी बुद्धिबल बल, प्रताप और तेज बहुत बढ़ा था । उसने सब लोक और लोकपालों को जीत लिया, सब देवता मुक्त और सम्पत्ति रहित हो गये ॥ १ ॥

अन्तर अन्तर सो जीति य भाई । इमे सुर करि विविध कराई ॥

प्रथ विरंचि सन् तन्त्र पुनरे । देवे विधि सन् देव दुखारे ॥ २ ॥

वह अन्तर-अन्तर था, इसलिये किसी चीज नहीं भाता था । देवता उसके पास बहुत तरफकी लड़ाईयों लड़कर हार गये । तब उन्होंने ब्रह्माजीके पास आकर पुनर सहाय्य । ब्रह्माजीने सब देवताओंको दुखी देखा ॥ २ ॥

दो—सब सन् कहा बुझाई विधि बहुत निमन तब होइ ।

संसु सुक् संसुत सुत यदि जीतइ रत्न सोइ ॥ ८२ ॥

ब्रह्माजीने सबको समझाकर कहा—इस देवकी मृत्यु तब होगी जब शिवजीके पीर से पुत्र उत्पन्न हो । इसके पुत्रमें वही जीतगा ॥ ८२ ॥

चौ—मौर कहा सुनि करहु उपाई । होइ ईश्वर करिहि सहाई ॥

सर्वा जो लखी दण्ड मत्त देहा । जन्मी कह हिमालय गेहा ॥ १ ॥

मेरी बात सुनकर उपाय करी । ईश्वर सहायता करे और काम हो जायगा । सर्वाजीने जो दण्डके यन्त्रमें देहका त्याग किया था, उन्होंने अब दिग्गजके घर जाकर जन्म लिया है ॥ १ ॥

रोहि तनु कौनह संसु पति कर्मा । सिन् सवधि वीर सुत कर्मा ॥

कदरि गह्वर असमंजस भरी । तपि कला एक सुवह इसारी ॥ २ ॥

उन्होंने शिवजीको पति माननेके लिये तर किया है । इस शिवजी तब छोड़-छाड़कर समाधि लगा बैठे हैं । समाधि है तो कहे अमरत्वकी बात, तथापि मेरी एक बात सुनो ॥ २ ॥

पदगुह कसु जाइ सिन् पदार्थ । करि सोसु संकर सब साही ॥

तब इस बात शिवजी फिर आई । कन्धजय विवाह करिआई ॥ २ ॥

इस जाकर कामदेवको शिवजीके पास भेला, वह शिवजीके मनमें भोग उत्पन्न करे (उनकी समाधि मद्ध करे) । तब इस जाकर शिवजीके चरणोंमें सिर रख देने और शरदस्त्री (उन्हें रानी करके) विवाह करा देवे ॥ २ ॥

पदि विधि मछेहि देवविच होई । मत्त यति सीक वृद्ध रक्ष कोई ॥

जलपि सुरन्द कीनिद जति हेर । अष्टोद विपत्तकाम सपत्न ॥ ३ ॥

इस प्रकारसे मछे ही देवताओंका हित हो । और तो कोई उपाय नहीं है । अपने कहा—यह सम्पत्ति बहुत-अच्छी है । फिर देवताओंमें कोई प्रेमसे सुखी थी, तब विष्णु (पाँच) बाण धारण करनेवाला और मछलीके चिह्नवाला कामदेव प्रकट हुआ । ॥ ३ ॥

दो—सुरन्द कही निज विपति सब सुनि मन् कौनह विचार ।

संसु विरोध न कुशल मोहि निहसि कहेत अष्ट मार ॥ ८३ ॥

देवताओंने कामदेवसे अपनी खरी विपति कही । सुन्दर कामदेवने अपने विचार

निज हो हँस देवकीनी केँ जा निजिनी नय निरोध करनेने ॥ कुल
मती है ॥ ८३ ॥

श्री—सर्प जग के बहुत घुमना। दुष्ट भव घस घसल ॥

फ निज राखि जाऊ केँ भेटै। रँजत रँज प्रसंगि देखी ॥ १ ॥

तकालि नै दुष्टता भव ले झँप-समाधि केँ दूखेने टकभरने परम बर्न भवते
। ले दुष्टने कितने बिने जगज कहे-नाय देता है, सब सब उठाये पहाई करते हैं ॥ १ ॥

कन की केव सखी रंग बद्ध ॥ सुख बसुष भ सखित सदाई ॥

करत भव न हव वैजना। निज निरोध हन सखु दमात ॥ २ ॥

श्री—इस काले हित नयकर इच्छेय अपने पुण्य के वसुषो हाथों सेकर
[कनसादि] कनसेने सख बद्ध। कहे रना सखसेने दुष्टमने ऐसा बिचार किया
कि निजकी सख निरोध करनेने सेव प्रसन्न प्रियत ॥ २ ॥

तब भवम प्रसन्न दिखत। निज भव कीन्ह पछत संसार ॥

शेषक जगि नयेकहिं। कन सखु विरे सनत हृति सेद ॥ ३ ॥

ता काने जगज प्रसन्न रँजत भव सख सखयो भवने सखमें कर दिया।
निज रम्य उत मज्जि निजगी भवसेने करनेने दोन किन, उत सख प्रसन्न-
में ही बोली मनी मनी प्रियत ॥ ३ ॥

प्रसन्न भव जेवम सख। नीरव करत सख निजसा ॥

सखकर जव सोय निजसा। सख निरव कसु सख नाया ॥ ४ ॥

प्रसन्न, निज, सख प्रसन्न सख, नीरव, सख, भव, निरव सख, सख,
सख, सख आदि निरवसे खरी केन करत भव गयी ॥ ४ ॥

श्री—मातेव विवेक सदाय सरित सो घुमना रज्जुग गहि हुरे।

सखप्रसन्न पद नौरसि सख दाह देखि भवसर हुरे ॥

नेमिदाह न करत नै सखार भव परमभ पद ॥

दूर गव देखि रतिना। सेदि कहुँ देखि कर भव सख घरा ॥

विवेक मने सदायसेव नय पद, उने रोदा सखसेने पद दिया सवे।
उत सख से वर सखसेने पदसेने करतसेने न निरे (सखसेने नय, सखसेने
सख, निज, सखसेने सखसेने ही निरे सखसेने, उत सख सखसेने पद सखसेने)
सखसेने सखसेने सखसेने [नैर सखसेने सखसेने] दे निजसा। भव सख
सेने सखसेने। सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने
सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने

श्री—जे सखीस सख सखर कर नरि पुनर कस जाय।

जे निज निज मंजुषा सखि भव सखस कस जाय ॥ ८४ ॥

जगसेने सख सखसेने निजसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने
सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने

श्री—सख के सख सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने

सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने

सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने
सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने
सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने सखसेने

अहं असि दसा जगन्मह कै करनी। को कहि सकहु सचेतन करनी ॥

पशु पण्डी नरा जल गलचारी। मए कामबल समय बिसारी ॥ २ ॥

जब जब (पशु, नदी आदि) की वह दसा कही गयी, तब चेतन जीवोंकी करनी कौन कह सकता है ! आत्मज्ञ, जल और पृथ्वीपर विचरनेवाले सारे पशु-पक्षी [अपने संयोगका] समय भुलाने कामके बन्ध हो गये ॥ २ ॥

मदन भंड व्याकुल सप लोका। बिसि दिनु महीं बबलो कहि कोका ॥

देव वनुन नर किनर जगज्ज। प्रेत पिशाच भूत वेताला ॥ ३ ॥

सब लोग कामान्ध होकर व्याकुल हो गये। चकवा-चकई रात-दिन नहीं देखते। देव, दैत्य, मनुष्य, किन्नर, सर्प, प्रेत, पिशाच, भूत, वेताल—॥ ३ ॥

इन्ह कै दसा न कहेवें पसायी। सदा कम के बंदे मानी ॥

सिद्ध बिरक्त महासुनि भोगी। लेखि कामबल मए बियोगी ॥ ४ ॥

ये तो सदा ही कामके गुलाम हैं, वह समझकर मैंने इनकी बधाका वर्णन नहीं किया। सिद्ध, बिरक्त, महासुनि और महाम् योगी भी कामके बन्ध होकर योगरहित या जीके विरही हो गये ॥ ४ ॥

छं—भय कामबल जोगीस तापस पार्वरन्दि की को कहैं।

देखहि धराधर नारिमय जे प्रहमम देखत रहे ॥

भवला बिलोकिहि पुरुषमय जगु पुरुष सब अवलामय ॥

बुर दंड भरि प्रह्लाद मीतर कामकृत फौतुक बर्य ॥

जब योगीश्वर और तपस्वी भी कामके बन्ध हो गये, तब पारम मनुष्योंकी कौन कहे ! जो समस्त धराधर जगत्की प्रहमम देखते ये ये अब उठे क्षीम्य देखने लगे। किसी सारे संसारको पुरुषमय देखने लगी और पुरुष उठे क्षीम्य देखने लगे। दो बड़ी-बड़ी सारे ब्रह्माण्डके अंदर कामदेवका रचा हुआ यह फौतुक (तमाशा) रहा।

छं—धरी न काहूँ धीर सब के मन मबसिज हरे।

जे राखे रघुवीर ते उकरे तेहि फाड महुँ ॥ ८५ ॥

किसीने भी हृदयमें शैव नहीं धारण किया, कामदेवने सबके मन हर लिये।

भीरुमायवीने जिनकी रक्षा की, केवल ये ही उस समय बचे रहे ॥ ८५ ॥

छं—अभय बरी मरु कौतुक मरु। जो लगी कसु संशु पहि मरु ॥

सिवाहि बिलोकि छसकि मरु। मरु नवविधि ॥ संताक ॥ १ ॥

दो घड़ीतक ऐसा तमाशा हुआ, जन्तुक, कामदेव शिवजीके पास पहुँच गया। शिवजीको देखकर कामदेव डर गया, तब सारा संसार फिर जैसा-का-से सा स्थिर हो गया।

मए सुरत सब जीव सुलारे। जिमि मद उत्तरे गर्व भक्तवारे ॥

जदहि देखि मदन सब मान्य। दुराधरष दुरास भगवाना ॥ २ ॥

दुरंत ही सब जीव जैसे ही सुखी हो गये जैसे गतनाले (नशा भिये हुए) डोंग मरु (नशा) उतर जानेपर सुखी होते हैं। दुराकर्ष (जिनको अपाजित करना अत्यन्त ही कठिन है) और दुरास (जिनका पार पाना कठिन है) भगवान् (सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, शक्ति, ज्ञान और वैराग्यरूप का ईश्वरीय गुणोंसे युक्त) का (महाभयंकर) शिवजीको देखकर कामदेव भयभीत हो गया ॥ २ ॥

फिरत छान कसु करि पहि जहै। मरनु छनि सब रचेसि जपाई ॥

प्रगटेसि दुरंत कबि सिहराना। कुमुमिव नव तब राखि बिराना ॥ ३ ॥

संदेह धानेमें कड़ा मारदा होनी है, और धरते दुःख बनता नहीं । आतिरमनमें
मरनेका निमित्त करने उलझे ठाम रचा । गुंत ही सुन्दर आतुरान कलन्तको पकट
दिवा । दूले हुए मोनेने बुझोमी कबरें दुखोंक हो कभी ॥ ३ ॥

वन नक्षत्र नक्षत्र जगता । परम सुनय सय दिवा विमान ॥

बई भई सनु दमन्य अनुगतः । कैवि सुपहुँ गन मनसिज बाग ॥ ३ ॥

वन-उपवन, नक्षत्री धरत और सब विशालीके विमान परम सुन्दर हो गये ।
जहाँ-हाँ गानो भोग दम्य रहा है, जिसे देखकर मेरे मनमें भी कामदेव जाग उठा ॥ ३ ॥

सं०—जानू उन्नेपय सुपहुँ अब वन सुमगता म परै कही ।

सौरभ सुगंध सुमध मास्त भवत अबल सख्य सही ॥

विकसे सगिह वहु कंज सुंदर पुंज मंडुल मधुकप ।

फलहंस पिक मुक सरस रच करि घान नावहि अपछप ॥

मेरे हुए मनमें भी कामदेव जागने लगा, वनभी सुन्दरता कहीं नहीं का लकी ।
समगरी अधिक सबा मित शीतल-मन्द सुगन्धित पवन चलने लगा । लगेरोंमें धनेरों
कलह निक गये, किनपर सुन्दर भौंरोंके समूह गुंजर करने लगे । राजहंस, कौपर
और सोते लीली बोली पोखने लगे और बाघपाएँ ख-माफर नाचने लगीं ।

दो०—खकल कल करि कोटि विधि हरेव सेम समेत ।

बाछी न बनल समाधि सिव कोपेव इवयनिकेत ॥ ८९ ॥

कामदेव अपनी केनासेन कपड़ों अक्षरोंके लव कबरे (उपय) फाँटे हार गया,
पर शिवजीकी अन्धक समाधि न दिगी । उन कामदेव कोपित हो उठा ॥ ८९ ॥

चौ०—कैवि सख्य विद्वय कर सख्य । रोहि पर जेव नदहुँ नव माता ॥

सुनय बाग निज सर संघले । यदि रिस रसिक दखव बनि तामे ॥ १ ॥

आगेके दुखी एक सुन्दर लकी देखकर मनमें कोपते गए दुधा कानदेव उस-
पर चढ़ गए । उनमें पुष्प-वनपर अपने [बाँवों] बाव चढ़ाये और अत्यन्त कोपते
[सकली और] उनपर उन्हें अनावृत्त ठाम दिवा ॥ १ ॥

कवि विमान विदित कर काने । कृदि समति संसु सब जगौ ॥

मन्द ईस नन छोडु बिलेवी । वन वपारि सकल दिशि बैसी ॥ २ ॥

कामदेवने वीच बाँव बाग छोड़े, जो शिवजीके दूरसे लगे । जो उनकी समीप
हूट गयी और वे जाग गये । ईश्वर (शिवजी) के मतमें बहुत बोध हुआ, उन्होंने
आँखें फोलाकर सब ओर देखा ॥ २ ॥

सौरभ पल्लव सगु निषेध । भयत छोडु बिक्रम पैकोच ॥

सग कियै लेपर नवन कलहा । निजन्त कम सु सयन करि छाया ॥ ३ ॥

उन आगेके वनमें [जिसे हुए] कामदेवको देखा तो उन्हें बड़ा क्रोध हुआ
नितरे नीनो लोक कम सते । उन शिवजीने वीच नैन सोल, उनके देखते ही का
देव उनपर गया हो गया ॥ ३ ॥

इहकर कपल जव नसी । लखे दूर नद कसुर मुजारी ॥

सदकि कमकुसु सुखी भोनी । नद कलक सखक बोधी ॥ ४ ॥

सागमें क्या इसपर मन गया । देखत कर गने, देख सुखी हुए । मोनी भोग
दमकुसुमको यह करते किता फले ज्ये और साफक योगी निर्मल हो गये ॥ ४ ॥

ॐ—जोगी अकंटक भए रति गति मुक्त रति मुरलित भई ।

रोवति बवति बहु भौति करुण करति संकर परि गई ॥

भति प्रेम करि विनती विविध निधि छोरि कर संमुख रही ।

प्रभु मासुतोष कृपाळ सिख जबन निरंखि योके लही ॥

योयी निष्कंटक हो गये, कामदेवकी ली रति अपने पत्नीकी यह दशा सुनते ही मुक्ति हो गयी । रोती-बिछाती और भौति-भौतिके करुण करती हुई वह शिवजीके पास गयी । अत्यन्त प्रेमेके साथ अनेकों प्रकारसे विनती करके छत्र जोड़कर सामने खड़ी हो गयी । शीघ्र प्रसन्न होनेवाले कृपाळ शिवजी जबन (कंधड़ावा ली) को देखकर मुन्दर (ठफकी खान्खाना देनेवाले) बचन बोले—

दो—अब तैं रति तब नाथ कर होइहि नानु गर्गसु ।

बिनु अपु न्यसपिहि सबहि पुनि सुनु निज मिलन प्रसंगु ॥ ८७ ॥

हे रति ! अबसे तैं स्वामीका नाम 'अनन्त' होगा । वह बिना ही शरीरके एकको व्यापेगा । अब तू अपने पतिसे मिलनेकी बात सुन ॥ ८७ ॥

चौ—जब जगुर्लस कुण्ज अवतारा । होइहि हरव महा सहितारा ॥

कुण्ज तराप होइहि पति सेरा । कष्टु कल्पना होइ ब मोरा ॥ १ ॥

जब पृथ्वीके बड़े भारी भारको उतारनेके लिये खुदबखुद श्रीकृष्णका अवतार होगा, तब सेरा पति उनके पुत्र (मधुसूत) के रूपमें उत्पन्न होगा । मेरा यह कल्पन अन्यथा नहीं होगा ॥ १ ॥

रति जबनी मुनि संकर जानी । कहा भवर जब कहवैं वृत्तापी ॥

देवन्द समाचार सब पाए । महादिक बैकुण्ठ सिखाए ॥ १ ॥

शिवजीके बचन सुनकर रति चली गयी । अब दूसरी कहा बलानकर (बिछाड़े)

कहा हूँ । महादि देवतामीने ये सब समाचार सुने तो वे वैकुण्ठसे पड़े ॥ १ ॥

सब सुर बिन्दु विरिधि समोक्त । गए जहाँ सिख कृपानिक्ता ॥

पूजक धृष्टक तिनह कीमिह प्रसंता । नष्ट प्रसन्न पंड अवसंता ॥ २ ॥

फिर यहाँसे विष्णु और महाशक्ति सब देवता चली गये जहाँ कृपके धाम शिवजी थे । उन सबने शिवजीकी अलग-अलग स्तुति की, तब शशिभूषण शिवजी प्रसन्न हो गये ॥ २ ॥

बोले कृपासिंधु कृपकेसु । कहा भवर आए मेहि देव ॥

कह बिधि पुनः प्रभु संसलामी । तदपि भवति वर विवदवैं स्वामी ॥ ३ ॥

कृपाके समुद्र शिवजी बोले—हे देवताओं ! कहिये, आप किसलिये आये हैं ? महावीने कहा—हे प्रभो ! आप अमर्यामी हैं, तथापि हे स्वामी ! भक्तिवश मैं आपसे विनती करता हूँ ॥ ४ ॥

दो—सकल सुरन्द के हृदवैं भस संकर परम उच्छाडु ।

निज नयननिह देखा जहहि नाथ सुखार विबाडु ॥ ८८ ॥

हे शंकर ! सब देवताओंके मनमें ऐसा परम उत्साह है कि हे नाथ ! वे अपनी मौखीसे आपका विवाह देखना चाहते हैं ॥ ८८ ॥

चौ—यह उत्साह देखिअ गरि लोचन । सोइ कहु कहु सखन मद मोचन ॥

कानु करि रति कहुँ पर चोन्हा । कृपसिंधु यह अति मल कोन्हा ॥ १ ॥

हे कामदेवके मदको पूर करनेवाले ! आप ऐसा मुक्त कीजिये । जिससे सब लोग इस उत्साहको नेत्र भरकर देखें । हे कृपाके समुद्र ! कामदेवको भसा करके आपने रतिको जो बरदान दिया सो बहुत ही अच्छा किछ ॥ १ ॥

सहसि करि पुनि करि पसाक । राय प्रमुन्द कर सहज सुभाक ॥

परकी ॥ कीन्ह जसत । छहु तासु जय अंगीकार ॥ २ ॥

हे नाथ । मोह स्वामियोंका यह सहज सभाज ही है कि वे पहले दण्ड देकर फिर
कृपा किया करते हैं । पार्वतीने अथर तब किया है, अब उन्हें अंगीकार कीजिये ॥ २ ॥

सुनिविधि निवध ह्युक्ति प्रमुखनी । देवेद होठ कथा सुसु मानी ॥

उद देवद हंहुन कथाई । कवि सुमन जगज्ज सुर साई ॥ ३ ॥

प्रजापती प्रार्थना सुनकर और प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके वचनोंको याद करके
धर्मिणीने प्रकृतापूर्वक कहा, ऐश ही हो ।' अब देवताजीने नगादे बजाये और पूर्योंकी
कथा करते 'नय हो । देवताजीने स्त्रीकी जग हो' ऐश कहने लगे ॥ ३ ॥

असत कवि ससरिपि अर । सुसहि निधि विरिभवन पदार ॥

प्रथम गर जई छी मकनी । जेले महु वचन छठ सानी ॥ ४ ॥

उचित अक्षर अनकर ससहि आते और प्रजापतीने पुरत ही उन्हें हिमाचलके
पर भेज दिया । वे पहले कहाँ बने कहाँ पार्वतीजी थीं, और उनसे छठसे भरे मीठे
(विनोदयुक्त, आनन्द पहुँचानेवाले) वचन बोले—॥ ४ ॥

यो—कहा इमार न तुनेहु तब शरद को उपदेश ।

अथ भा झूठ तुम्हारे एक कारेव कामु भोख ॥ ८९ ॥

नारदजीके उपदेशसे हमने उठ सम्य इसरी बात नहीं सुनी ! अब तो तुम्हारा
मन छड़ा हो गया, क्योंकि भगवन्जीने कामसे ही भय कर वाला ॥ ८९ ॥

भक्तपरायण, छीसरा विश्राम

पौ—सुनि जेहीं सुमुन्द जगती । उचित कहहु मुनिवर विन्यासी ॥

दुखरें जग कामु अज सता । अथ कवि संसु रहे सविहारा ॥ १ ॥

यह सुनकर पार्वतीजी मुक्तपरायण पौनी—वे विद्वानी मुनिको । आपने उचित
ही कहा । भाग्यो समझें विन्यासी कामदेवको अब कथना है, अन्ततः तो वे विकार-
युक्त (पापी) ही रहे ॥ १ ॥

हमरे जग कहा सित बोध । अब भववश भंजम जगती ॥

की मैं सिध सेये जग जगती । मीति समेत कर्म अज बाती ॥ २ ॥

किन्तु हमारी समझसे तो दिवली कहासे ही योगी, धन्य, अनिन्द्य, कामरहित
और भोगहीन हैं और यदि मैंने विन्यासीको ऐसा समझकर ही मन, वचन और कर्मों
प्रेमादि उनकी सेवा की है—॥ २ ॥

तौ हमर कन सुन्द मुनीसा । करिहि छल कुराविधि हैसा ॥

हुन को कहा दर बादेव सता । सोह कवि वर अविषेहु सुधारा ॥ ३ ॥

तो है मुनीसरो । सुमने, वे कुराविषय भवाम् मेरी प्रतिभाको सत्य करेंगे ।
आजों जो यह कहा कि विन्यासी कामदेवको जग कर दिया, वही आपका क्या भारी
अनिन्द्य है ॥ ३ ॥

जत अकल कर सहज सुखज । दिम सेहि निवत कह्यो काक ॥

सर्व समीध सौ कदलि कथन । अथि सन्मय अदेव की नाई ॥ ४ ॥

हे वात ! अक्षि तो यह सहज समान ही है कि वाल उसके समीप कभी जा ही
नहीं सकता और ज्वनेर वह अवश्य ना हो जाना । भगवन्जी और कामदेवके
सम्बन्धमें भी वही ज्ञाप (बात) समझना चाहिये ॥ ४ ॥

दो०—द्विज हरये मुनि वचन मुनि वेक्षि प्रीति विस्वास ।

चले भवानिहि नाहं सिर मय हिमाचल पास ॥ ९० ॥

पार्वतीके वचन सुनकर और उनका प्रेम तथा विश्वास देखकर मुनि हृदयमें बड़े प्रसन्न हुए । वे भवानीको सिर नवाकर चल दिये और हिमाचलके पास पहुँचे ॥ ९० ॥

चौ०—सह प्रसंसु गिरियतिहि मुनाया । मदन दहन मुनि भति ह्वतु पावा ॥

बहुरि कहेव रति फर वरदान । मुनि हिमबन्त बहुत मुसु माना ॥ १ ॥

उन्होंने पर्वतराज हिमाचलको सब धुल मुनाया । कामदेवका भस्म होना सुनकर हिमाचल बहुत दुखी हुए । फिर मुनियोंने रतिके वरदानकी बात कही, उसे सुनकर हितवान्ने बहुत मुसु माना ॥ १ ॥

इदर्थे विचारि संसु प्रसुतार्ह । सावर मुनिकर त्रिप दीर्घार्ह ॥

मुदित सुनकर सुषरी सोचार्ह । वेणि केदनिधि कमल भराई ॥ २ ॥

शिवजीके प्रभावको मनमें विचारकर हिमाचलने भेड़ मुनियोंको आश्चर्यचकित किया और उनसे कुछ दिन, कुछ नक्षत्र और कुछ बड़ी शोषवाकर वेदकी विधिके अनुसार शीघ्र ही कल मिश्रण कराकर लिखाया किया ॥ २ ॥

पक्षी ससिपिण्ड सोह दीन्दी । गहि पद विनय हिमाचल कीन्दी ॥

जाह विधिहि तिन्द दीन्दि सौ पत्नी । कचत प्रीति च हृदर्थे समती ॥ ३ ॥

पिर हिमाचलने यह कल्पपत्रिका सप्तर्षियोंको दे दी और करण पकड़कर उनकी विनती की । उन्होंने जाकर यह कल्पपत्रिका ब्रह्मजीको दी । उसको पढ़ते समय उनके हृदयमें प्रेम समाता न था ॥ ३ ॥

कान बाचि अन्न समहि मुनाई । हरये मुनि सब सुर समुदाई ॥

सुमन हृष्टि बस वामन बाजे । मंगल कस्त दस्तुं दिसि लाजे ॥ ४ ॥

ब्रह्मजीने लज पढ़कर उसको मुनाया, उसे सुनकर सब मुनि और देवताओंका संग समाज हर्षित हो गया । आकाशसे पूर्वोंकी वर्षा होने लगी, बाजे बजने लगे और वहाँ विद्याओंमें मङ्गल-कला सजा दिये गये ॥ ४ ॥

दो०—लगे सैवारज सकल सुर बाह्य विविध विमान ।

होहि सगुन मंगल सुभद करहि अपहरा यान ॥ ९१ ॥

सब देवता अपने भौतिक-भौतिक वस्त्र और विमान संजाने लगे । कल्याणप्रद मङ्गल शकुन होने लगे और लफकारते गाने लगे ॥ ९१ ॥

चौ०—सिवाहि संसु गल करहि सिमारा । अट मुहुर अहि शीघ्र सैवारा ॥

हुंकार कंकन पहिरे अमल । सब विभूति पद केदरी उकर ॥ १ ॥

शिवजीके गण शिवजीका श्रद्धा करने लगे । चटाओंका झुंझट बनाकर उधर सौँपोंका और सजाया गया । शिवजीने सौँपोंके ही कुण्डल और कंकन पहने, शरीरपर विभूति रमयी और कलकी जगह बाधनर लपेट लिया ॥ १ ॥

ससि कण्ठ सुंदर सिर पंख । तपन तीप्ति उपवीत जुनग ॥

गरुड कंठ कद न सिर माल । अक्षिष वेध सिन्ध्याम कुला ॥ २ ॥

शिवजीके सुन्दर मस्तकपर चन्द्रमा, सिरपर गङ्गाजी, तीन नेत्र, सौँपोंका जनेऊ, गलेमें निप और छातीपर नखुण्डोंकी माल थी । इस प्रकार उनका चेह अद्भुत होनेपर भी वे कल्याणके भाग और कुपल हैं ॥ २ ॥

कर प्रियुक्त अहं वन्दे तत्त्वम् । छेदं यद्धं चदि जगद्दि बामा ॥

देखे सिद्धि सुखिय मुमुक्षुही । कर कायक दुखदिवि बग नही ॥ १ ॥

एक हा में विशुद्ध और दूसरे में कमल तुष्टोम्भि है । शिवजी बैद्यपर चढ़कर चले । चाके दन रहे हैं । दिव्यवीर्य देखकर देवताजनाएँ मुसफर रही हैं [और कही है कि] हा उनके योग दुखलिन संसारमे नहीं भिखेगी ॥ १ ॥

रिपु निर्लेप आदि सुराक्ष । चदि चदि बाह्य चले बरता ॥

सुर पम्पउ स अति अतुल्य । बहिं बरत दुलह अनुस्था ॥ ४ ॥

विष्णु और नन्दा आदि देवताओंके समूह अपने-अपने बाह्यों (सवारियों) पर चढ़कर गरातमें चले । देवताओंका समाज सब प्रकलते अनुपम (परम सुन्दर) था, पर वृद्धके योग बरत न थी ॥ ४ ॥

दो—रिपु करा अस विहसि तब बोलि सकल दिखिराज ।

पिल्लर मिलर होइ सखहु सब निज निज सहित समाज ॥ १२ ॥

सब (विष्णुमन्त्र) ने सब दिखाराओंको कृपाकर हँसकर ऐसा कहा—सब लोग अपने-अपने दलमें दलका अलग होकर चले ॥ १२ ॥

चो—कर जगद्वरि बरत न आई । हँसी करैतु पर धुर आई ॥

रिपु दख सुनि धुर मुमुक्षुने । निज निज सैन सहित मिलगने ॥ १ ॥

२ भाई ! हमलोगोंकी वह कल बरके योग नहीं है । स्वा पराये गरातमें जाकर हँसी फटाओगे ! विष्णुमन्त्रजी ने सब मुसफर देखा मुसफरये और वे अपनी-अपनी सेनासहित अलग हो गये ॥ १ ॥

मगही मग महेसु मुमुक्षुही । हरि के विष्णु वचन नहिं आई ॥

अति प्रिय वचन सुनत प्रिय करे । भुगिहे प्रेरि सकल मन डरे ॥ १ ॥

महादेवजी [यह देखकर] मन-ही-मन मुसफरते हैं कि विष्णुमन्त्रजीके वचन (विल्ली) नहीं छूटते ! अपने प्यारे (विष्णुमन्त्रजी) के इन अति प्रिय वचनोंको सुनकर गिदगिने ही मृगीको भेनकर अपने सब गधोंको दुल्ला किया ॥ २ ॥

सिब अनुसामन सुनि सप शब्द । पशु पर अलख सीस तिन्द भार ॥

मग्न दण्ड मग्न वेदा । बिसे सिब समस्त निज देखा ॥ ३ ॥

शिवजीकी आज्ञा सुनते ही सब जने भागे और उन्होंने सामीके करण-कमलोंमें निज नवाया । तर-तरकी सवारियाँ और तर-तरके नेववाले अपने समाजको देखकर गिज्जी हुंसे ॥ ३ ॥

/ कोट मुगदीग विष्णु दुल सखु । विष्णु पर कर वीर बहु पर बाहु ॥

विष्णु नयन कोट अमल विहीन । रिपुप कोट कति तदधीन ॥ ४ ॥

कोट विना मुलका है, किसीके बहुतसे मुख हैं, कोई विना हाथ-पैरका है तो निगिने तब हाथ-पैर हैं । किसीके बहुत आँखें हैं तो किसीके एक भी आँख नहीं है । कोई बहुत मोटा-झाना है तो कोई बहुत ही दुबला-पतला है ॥ ४ ॥

ॐ—तन तीन कोट गति तीन पावन कोट अपवचन गति धरे ।

मूपन कपाल कपाल कर सब सब सोनित तन भरे ॥

एन स्वान सुभर सुभल सुख मग वेध अगवित को गनै ।

पशु जिनस प्रेत पिसाच जोगि अमात वरनत नहिं बने ॥

कोई बहुत दुल्ला, कोई बहुत मोटा, कोई पवित्र और कोई अपवित्र वेध वाला

किये हुए हैं। भयङ्कर गहने पहने, हाथमें कंगाल छिपे हैं और सन-के-सन शरीरमें तावा खून छपेटे हुए हैं। गंधे, कुत्ते, सूअर और सिंगारके-से उनके मुँस हैं। गर्भोंके धनगिनत पैरोंको सौन गिने ! बहुत प्रकारके प्रेत, पिशुन और योगिनियोंकी जमातें हैं। उनका वर्णन करते नहीं बनता।

सो०—**नाचहि गावहि भीत परम तरंगी भूत सब ।**

देखत अति विपरीत बोलहि बचन विचित्र विधि ॥ ९३ ॥

भूत-प्रेत नाचते और गाते हैं। वे सब बड़े मौजी हैं। देखनेमें बहुत ही बेवज्हे जान पड़ते हैं। और बड़े ही विचित्र ढंगसे बोलते हैं ॥ ९३ ॥

चौ०—**जस बृलहु तसि बनी बरता। कौतुक विविध होहि मग वाता ॥**

हूँ हिमाचल रचैत जिताना। अति विविध बहि जाइ यताना ॥ १ ॥

जैसा बृहदा दे, अथ जैसी ही बरत बन गयी है। मार्गमें चलते हुए भौंसे-भौंसेके कौतुक (तमाशे) होते जाते हैं। इस हिमाचलने ऐसा विचित्र मन्त्रप बनाया कि जितका वर्णन नहीं हो सकता ॥ १ ॥

सैक सकल जहँ कनि जग मझीं। क्यु मिलल गहि बरनि सिराहीं ॥

बन सागर सब जहाँ लछावा। हिमगिरि सब बहूँ बैरा पडावा ॥ २ ॥

जगत्में जितने छोटे-बड़े पर्वत थे, किन्तु वर्णन करते पार नहीं मिलता तथा जितने बन, समुद्र, नदियाँ और सागर थे, हिमाचलने सबको ज्योंही भेजा ॥ २ ॥

कामरूप सुंदर उन धारी। सहित समस्त सहित घर धारी ॥

गए सकल सुहिमचल गेहा। गावहि मंगल सहित सनेहा ॥ ३ ॥

वे सब अपने इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले सुन्दर शरीर धारणकर सुन्दरी स्त्रियों और समाजोंके साथ हिमाचलके घर गये। सभी स्नेहस्थित ममल गीत गाते हैं ॥ ३ ॥

प्रथमहि गिरि बहु गृह लैबराए। जवाजोगु सँहैं तहँ सब कए ॥

पुर सोभा भवलोकि सुहाई। अगह कहु विसेनि निपुनाई ॥ ४ ॥

हिमाचलने पहलेहीते बहुत-से घर बनवा रखे थे। ब्याजोग्य उन-उन सार्वभौमस्य लोग उतर गये। नगरकी सुन्दर सोभा देखकर जगत्की रचना-बहुरी भी दुच्छ जगती थी ॥ ४ ॥

छं०—**लघु काग विधि की निपुनता अवलोकि पुर सोभा सही ।**

बन बाग कुप तक्षमा सरिता सुमय सब सक को कही ॥

मंगल विपुल तोरण पत्रका केतु गृह गृह सोहही ।

बनिता पुरुष सुंदर चतुर छवि देखि मुनि मग मोहही ॥

नगरकी सोभा देखकर जगत्की निपुनता सबकुछ दुच्छ लगती है। बन, बाग, कुप, तक्षमा, नदियाँ सभी सुन्दर हैं। उनका वर्णन कौन कर सकता है ! घर-घर बहुत-से मङ्गलसूचक तोरण और पत्रका-केतु सुशोभित हो रही हैं। वहाँके सुन्दर और चतुर स्त्री-पुरुषोंकी छवि देखकर मुनियोंके भी मन मोहित हो जाते हैं।

सो०—**जगदंबा जहँ अवतरी सो पुर बरनि कि जाइ ।**

रिद्धि सिद्धि संपत्ति मुख नित नूतन अधिकार ॥ ९४ ॥

जित नगरमें स्वयं जगदम्बाने अवतार लिया, वहाँ उसका वर्णन हो सकता है। यहाँ श्रद्धा, सिद्धि, संपत्ति और मुख नित नूतन अधिकार ॥ ९४ ॥

चौ०—**नगर निरुद बरत सुधि आई। पुर सरस्व सोम अधिकारी ॥**

करि बनाव सवि जहँन जावा। जेन सहर जयवाना ॥ १ ॥

वरातको मगसके निकट जाती सुनकर नगरमें चहल-फहल मच गयी; निराले उसकी घोषा बढ़ गयी। अगवानों करनेवाले लोग प्रताप-प्रहार करते बंध नांना प्रकरकी स्वारियोंको सजकर आहरसहित वरातको लेने चले ॥ १ ॥

हियै धरये तुर सेन निहारी। हरिहि देखि कति मर सुसारी ॥

सिंह सम्राज जय देवान् कये। विहरि चले बहब सब भागे ॥ २ ॥

देवताओंके समानको देखकर सब दानवें प्रसन्न हुए और विष्णुभगवान्को देखकर तो बहुत ही डुली हुए। किन्तु जय शिवजीके दलको देखने लगे तब तो उनके सब भाइन (स्वारियोंके शयी, घोड़े, रथके बैल आदि) डरकर भाग चले ॥ २ ॥

धारे धीरजु सौं रहे सजाने। अछक सब कै जीव पराने ॥

मरै मरन पछहि किनु माता। कहहि यवन नय कंठिह गता ॥ ३ ॥

डुल बड़ी उसके समस्तदार लोंध धीरज भरकर वहाँ डटे रहे। लड़के ही सब अपने प्राण लेकर भागे। पर पहुँचनेपर सब माता-पिता पूछते हैं, सब वे भयसे काँपते हुए धीरेसे ऐसा बचन करते हैं—॥ ३ ॥

कहिम सगइ कहि सगइ य वाता। बस कर चार किवाँ करिजाता ॥

बस धीरजु रहसै असदारा। ब्याल कपाल विमूषन छार ॥ ४ ॥

क्या कहीं कोई बात कही नहीं जाती। यह वरात है या यमराजकी सेना ? वृद्धा मागल है और दैत्यर खार है। सोंप, कपाल और राज ही उसके गहने हैं ॥ ४ ॥

छं—सम छार न्याल कपाल भूषन सगन जडिल मयंकप ॥

सँप भूत प्रेस पिताच जोपनि बिकट मुख पजनीचर ॥

ओ जिभत परिहि वरात देखत पुन्य बड़ तेहि कर लारी ॥

देकिहि लो उमा विचाहु घर घर वात असि करिकन्ह काही ॥

दूल्हेके गरीएर राज लगी है, सँप और कपालके गहने हैं; बर गंगा, जडाचारी और भयङ्कर है। उसके लय मवानक मूलनाले भूत, प्रेस, पिताच, योगिनियों और राजल हैं। जो वरातको देखकर बीता लबेगा, सचमुच उसके बड़े ही पुन्य है और वही पार्वती-का विवाह देखेगा। लड़कोंने घर-घर गयी बात कही।

दो—सनुनि भोहो सम्राज लय जननि जतक मुसुकाहि ।

वाल चुहाए विविध विधि निदर होहु डर नाहि ॥ १५ ॥

महेभर (चिन्मय) का समान समझकर सब लड़कोंके माता-पिता डरकराते हैं।

उन्होंने बहुत लड़ते लड़कोंसे समझाया कि निदर हो जाओ, डरकी कोई बात नहीं है ॥ १५ ॥

औ—सै कपडन कतहि आप। दिगु सबहि जनवाल भुहाए ॥

सैनी सुम जगती सैनारी। सँग सुसंलक गवहि नारी ॥ १६ ॥

अगवान लोग वरातको लिख लभे, उन्होंने सबको सुन्दर जनवाते डहरनेको दिने। मैना (पार्वतीजीके माता) ने ज़ुम आसली सजायी और उनके साथकी कियों टकर भङ्गलमीठ माने लगे ॥ १६ ॥

संलग चार सोह कर फाँवी। पसिखन फली हरिदि हरपाती ॥

बिकट वेप रहहि कन देछ। कलकल उर मय भवत विधिषा ॥ २ ॥

सुन्दर सयोंमे खेनेस बाल सोपित है, इस प्रकार मैना हर्षके साथ शिवजीका पछन करने लगी। जय महादेवजीको मवानक वेपने देखा जब तो स्त्रियोंके मनमें बड़ा भावी भय उत्पन्न हो गया ॥ २ ॥

अभि भवन वैरी बति फल। नयु महेसु अहाँ जनवाला ॥
 जेना हृदयें अकल हल। मरी। कीन्ही मोहि गिरिस्तुनारी ॥ ३ ॥
 बहुत ही बरके मरे भाग्यर वे करमें भुस गयीं। और शिवकी अहाँ जनवाला या
 वहाँ चले गये। मेनुके हृदयमें कदा दुःख दुःख। उन्हींने पर्वतीजीको अपने
 पास बुला लिया ॥ २ ॥

अधिक संगेहें नीच बैसरी। स्वाम सरीज कवन गये पारी ॥
 बेहि विधि तुम्हहि कय अस दीन्हा। तेहि कह यह कानर कस कीन्हा ॥ ३ ॥
 और अत्यन्त स्नेहे मोहमें बैठकर अपने नीच कपड़ोंके स्थान नेत्रोंमें आँसू
 भरकर कहा—जिस विधाताने तुमको ऐसा दुन्दर बना दिया, उस भूखने तुम्हारे बूझ-
 को बाधला कैसे बनाया ? ॥ ४ ॥

हं—कस कीन्हा यह बौराह विधि बेहि तुम्हहि सुंहरता कई।
 जो फल चाहिअ सुरतसहि सो बरकस कबूहि लगई ॥
 तुम्ह सहित गिरि तें गिरि पायक ऊरें अऊनिधि भई परी।
 घब जात अपजसु होत जग जीवत विवाहु न ही करी ॥
 जिस विधाताने तुमको सुंहरता दी, उन्हे तुम्हारे छिने न बाधला कैसे बनाया ?
 जो फल कल्पवृक्षमें लज्जा चाहिये, वह कबरसी कबूझमें क्या रहा है। मैं तुम्हें लेकर
 पहाड़के तिर पकूँगी, आगमें लज्जा आऊँगी या समुद्रमें डूब पकूँगी। बाहे पर उलझ जाय और
 संसारमें अपकीर्ति फैल जाय, पर जीते-जी मैं इस बाधके मरने तुम्हारा विवाह न करूँगी।

यो—भई बिकल अवल्य सकल दुखित देखि गिरिनारि।
 करि विलापु रोदति यदति सुता सनेहु सँनारि ॥ ५ ॥
 विभावली जी (मैत्र) को दुखी देखकर सारी स्त्रियाँ आहत हो गयीं। मैत्रा
 अपनी कन्याके लोहको याद करके विवश करती, रोती और कहती थीं—॥ ५ ॥

जौ—नारद कर मैं कह विवाहा। मयु मोर सिंह बल्ल बनारा ॥
 मयु उपरैसु तमहि निन्द दीन्हा। यै कहि कलि तपु कीन्हा ॥ १ ॥
 मैंने नारदका क्या विवाहा था, किन्हींने मेरा कल्ला तुम्हा पर उठाइ दिया और
 किन्हींने पर्वतीजीको देता उपदेश दिया कि जिसके छेकने बाधके बरके सिने तप किया ॥ १ ॥
 साधैहु बन्धु हैं मोह न मय। उदसीन प्रसु वसु न बाधा ॥
 पर घर बाधक छल न भिर। बौद्ध कि जय प्रत्य है नीर ॥ २ ॥
 स्वयंभुव उनके न कितीअ मोह है, न मान। न उनके मन है, न धर है और न
 की ही है। वे अपने उदासीन हैं। हठीये वे धूर्जेन पर उठावनेवाले हैं। उन्हें न
 किर्तनी छल है, न धर है। मय, मोह जी प्रसन्नकी पीड़ाको क्या जाने ? ॥ २ ॥

कननिहि बिकल बिकेकि मन्ती। बोधी छल बिके सपु भाषी ॥
 कस विचारि सोचहि भति मात। सो न दह जो रचइ विधाता ॥ ३ ॥
 माताको विकल देखकर पर्वतीजी विवेकपुत्र प्रयोग राणी बोली—हे माता ! जो
 विधाता रच देते हैं वह दबला नहीं; ऐसा विचारकर तुम लोच मत करो ! ॥ ३ ॥

करन बिधा जी कानर कह। जे कय दोसु अमय्य कह ॥
 तुम्ह सन मिटाहि कि विधि के लंक। मयु अर्थ अनि केहु कलंक ॥ ४ ॥
 जो मेरे भागमें बाधना ही पति लिया है तो किसीको क्यों दोष लगाया जाय ? हे
 माता ! क्या विधाताके धर्म तुमसे मिट सकते हैं ? क्या कलंकका टीका मत को ॥ ४ ॥

ॐ—जति छेहु महु कलकु कल्ला परिहरहु भवसर नहीं ।
हुहु हुहु जो छिछा छिलार हमारें जाव जई बावय तहीं ॥
हुनि दया बदन विनीत व्योमल सकल सबल सोचहीं ।
गहु भौति विविधि डगार दूपत नथन वहरि विमोचहीं ॥

हे माता ! उलट मर जे रेंना ओखे, नर नकर विवाद करनेका नहीं है । मेरे भान्यो से दुल-मुत्त लिखा है उसे मैं क्यों व्यऊँगी, क्यों पाऊँगी ! पार्वतीजीके ऐसे दिनमध्ये कोमल वदन दुनकर पारी छियाँ सोच करने छहीं, और भौति-भौति विधात-ओ रोग देकर थोछोने थोछ पड़ने छहीं ।

दो—तेहि भवसर नाथ सहित नर रिपि सप्त समेत ।

समाचार सुनि मुहिनगिरि गगने तुरत निकेत ॥ १७ ॥

एष समाचारको सुनते ही हिमावत उठी सम नारदजी और सप्तर्षियोंको साथ लेकर अपने घर पड़े ॥ १७ ॥

चौ—एक नन्द नरही समुदास । एख कथाप्रसंग सुनाव ॥

ममता साथ हुनहु प्रेम पाली । जगदक सब छुवा मकारी ॥ १ ॥

तब नारदजीने पूर्वजन्मी कथा सुनाकर सप्तो समझावा [और कहा] कि हे मैना । तुम मेरी सबी बात सुनो, तुम्हारी रू लइकी साखा कलमननी भवानी है ॥ १ ॥

जका भवति सति भविकमिति । सदा संसु अरुणच निवासिनि ॥

आ सँमर फलन सब करिनि । निर दूषण कीका बहु पारिनि ॥ २ ॥

ये अकल्मा, मनादि और भविनाथिनी भक्ति हैं । सदा पिपलीके भाग्यमें रहती हैं । ये कालकी सक्कि, पालन और चहार करनेवाली हैं और अपनी इच्छासे ही सील-शरीर धारण करती हैं ॥ २ ॥

लगायें नमन दूषक छूट कई । वाहु सदा सुंदर बहु पाई ॥

तई सबी संकटि निकई । कय प्रतिद सरल सब माई ॥ ३ ॥

पहले हे दखे पर जाकर नमी थी, सब इच्छा छी नाम था, बहुत सुन्दर शरीर पाया था । यही भी सबी संकटोंके ही जवाही गयी थी । वह कथा-शरीर जगत्में प्रसिद्ध है । ॥

एक घर 'नन्द' सिर 'सदा' । देखेइ खुल्लु कयल पतंग ॥

भयः मीहु रिपि छर न पीनुह । जन यस वेहु सीय कर छीनुह ॥ ४ ॥

एक घर इन्होंने शिवजीके साथ आते हुए [राममें] खुल्लु-कली कयलके दूरै धर्ममन्त्रालीके देखा, तब दई मोह हो गय और इन्होंने शिवजीका कहना न मानकर भयः सीताजीका कय कारण कर लिया ॥ ४ ॥

ॐ—सिय छेहु सखी जो खीनु तेहि अपराध संस्तर परिहरौ ।

ए विहई जाह वहरि पितु के जग्य योगावस करौ ॥

धर जदमि मुहरे भएन निज पति समि दावन तुहु किया ।

मस जानि संसय ठसहु विरिजा सर्वदा संकरप्रिया ॥

खीजीने जो खीजक के धारण किया, उही अपराधके कारण संकरजीने उनको पाग दिया । फिर शिवजीके विशेषमें ये अपने मित्रके कर्मों जाकर यही योगावसे मस ने गयी । अब इन्होंने मुहरे पर जग्य लेकर अपने पतिसे मिले करिज तब किया है । ऐसा करने पर छन्द होय हो, पार्वतीजी से सदा ही शिवजीकी प्रिया (अर्द्धाङ्गिनी) हैं ।

दो०—सुनि नारद के बचन तब सब कर मिटा विवाद ।

उन महुँ व्यापेह सकल पुर घर घर यह संवाद ॥ ९८ ॥

तब नारदके बचन सुनकर सबका विवाद मिट गया और क्षणभरमें यह समाचार
सारे नगरमें घर-घर फैल गया ॥ ९८ ॥

चौ०—तब भयना हिमचंद्रु जनिहै । सुनि सुनि पारवती पद बंदि ॥

नारि पुरुष छिनु भुज सधाने । नगर छोव सब अति हरषाने ॥ ९९ ॥

तब मैना और हिमवान् जानन्दमें गद्य हो गये और उन्होंने बार-बार पार्वतीके चरणों-
की वन्दना की । स्त्री, पुरुष, बालक, युवा और वृद्ध, नगरके सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए ॥ ९९ ॥

रुने होव पुर मंगलजवा । सबे सचहि हाटक बट नाना ॥

भौति अनेक भई जेबनरा । सुखास जस मनु व्यथहावा ॥ १०० ॥

नगरमें मंगलगीत गाये जाने लगे और सबने भौति-भौतिके सुवर्णके कलश रचाये । पाक-
शास्त्रमें वैसी रीति है, ठाके अनुसार अनेक भौतिकी ज्योनार हुई (खोई गयी) ॥ १०० ॥

सो जेवनार कि जाह कसली । सचहि भवन भेहि माहु मजानी ॥

सादर बोले सकल बरती । विनु किरिचि देव सन जाती ॥ १०१ ॥

जित परमें स्वयं माया भवानी रहती हो, वहाँकी ज्योनार (मोक्षणसाक्षी) का
कर्णन कैसे किया जा सकता है ! हिमचन्द्रने आदरपूर्वक उन बराहियोंको-विष्णु, ब्रह्मा
और सब जातिके देवताओंको बुझाया ॥ १०१ ॥

किरिचि पौति बैसि जेववावा । काने पकल विनु सुनारा ॥

नारिचुव सुर जेवत जाती । कमी देव गरीं सुनु धानी ॥ १०२ ॥

भोजन [करनेवालों] की बहुत ही पंगतें बैठीं । बहुत खोद्ये परेशमे लगे । किरीचि
मन्त्रधियों देवताओंको भोजन करते जानकर कोमल बानीसे शक्तिवाँ देने लगीं ॥ १०२ ॥

छ०—गारीं मधुर सर देहि सुंदरि विंध्य बचन सुनावहीं ।

भोजन करहि सुर अति थिठु विनेवु सुनि सनु पावहीं ॥

जेवत जो बड़यो जनिवु सो मुख कोठिई न परै कह्यो ।

अबबौह दीन्हें धान भकने वास जाई जाको रक्षो ॥

सब सुन्दरी क्षियोंभीठे स्वरमें शक्तिवाँ देने लगीं और व्यंग्यमय बचन सुनाने लगीं ।
देवगण निनोद सुनकर बहुत मुक्त अनुभव करते हैं, शक्तिसे भोजन करनेमें बड़ी रस
लगा रहे हैं । भोजनके समय जो आनन्द बढ़ा, वह करोड़ों मुँहसे भी नहीं कहा जा सकता ।
[भोजन कर चुकनेपर] उनके हाथ-मुँह धुलवाकर धान दिये गये । फिर सब लोग, जो
लगाव ठारे थे, वहाँ चले गये ।

दो०—बहुरि सुनिह दिमकंत कहुँ लगन सुनारि आव ।

समय बिलोकि बिवाद कर कउय देव थोलाइ ॥ १०३ ॥

फिर सुनियोंने जौटकर हिमवान्को ज्ञान (ज्ञानाविव) सुनायी और विवाद
समय देवकद देवताओंको बुला भेजा ॥ १०३ ॥

चौ०—बोकि सकल सुर सादर लीन्हे । सचहि जमोहित आसन सीन्हे ॥

बैदी वेद विधान सँवारी । सुख सुमंज कसहि करी ॥ १०४ ॥

सब देवताओंको आदरसहित बुला लिया और सबको क्याबोध्य आसन दिये
वेदकी रीतिसे वेदी रचवायी सभी और क्षियों सुन्दर वेद मन्त्रगीत गाने लगीं ॥ १०४ ॥

हिंसासुख धरि विभ्र सुखान् । ताह न करि विरोधि बनाव ॥
 ॥॥ सिध विप्रह सिध मार्ग । दुखै सुमिरि विभ्र प्रभु रघुराई ॥ २ ॥
 वेदिकापर एक कण्ठ सुन्दर दिख विहसत या, बिठ [श्री सुन्दरान्]
 वर्णन नहीं किया आ कन्ठ, क्योंकि यह कन्ठ मन्थनीका बनाया हुआ था । माछणों
 तिर भवावर और छत्रमें अपने स्वामी श्री-सुन्दरचरणीका स्मरण करके शिवजी :
 विहसत बैठ गये ॥ २ ॥

धुरि मुनीसह दवा खोला । करि विम्वर सचौ लै आई ॥
 ऐप्रत सपु ललल सुर मोहे । यरनै रावि अर वय नवि को है ॥ ३ ॥
 फिर मुनीश्वरोंने पार्वतीजीको बुलाया । कवियों शृंगार करके उन्हें ले आये
 पार्वतीजीके रूपको देखते ही सब देखता मोहित हो गये । सगरमें ऐसा कवि कौन है
 वह सुन्दरताका वर्णन कर सके ॥ ३ ॥

लालचिका कवि भव जन्मा । सुन्दर सचौ भव कीन्ह प्रगप्ता ॥
 सुंदरता मन्त्राद यवानी । ताह न कोटिहु बन्ध बजानी ॥ ४ ॥
 पार्वतीजीको स्मृति-लायक शिवजीकी पत्नी समझकर देवताओंने मन-हीन,
 प्रगम किया । मन्थनीजी सुन्दरताकी सीमा है । करोड़ों मुन्त्रों भी उनकी शोभा नहीं
 करी ला सकती ॥ ४ ॥

छं—कोटिहु बन्ध नहीं धनै बरजत जगजन्मि सोभा महा ।
 ललचिका कहत भुवि सेव सार प्रभवमति तुलसी कहा ॥
 छविपानि माहु भवानि राखनी मध्य मंडप सिम जहाँ ।
 मण्डोकि सचौ न सकुच पति पद कमल मनु मधुकर हाँ ॥
 जगजन्मो पार्वतीजीको महान् शोभाका वर्णन करोड़ों मुन्त्रोंसे भी करते नहीं
 बता । देव, होददी और कलकलीलक लटे बहते हुए सकुचा जाते हैं, सब मन्दबुद्धि
 तुलसी भिन्न-गतिमें है । सुन्दरता और शोभाकी खान माता भवानी मन्त्रके बीचमें,
 जहाँ शिवजी वे वहाँ भवानी । वे संकोचके बारे पति (शिवजी) के करणकर्मोंको देख
 नहीं सकती, परन्तु उनका मन्त्रपी नैरा हो वही [स्तब्ध कर रहा] था ।

दो—सुनि सनुलासन पनपविहि पूजेव संभु भवानि ।
 जोर सुनि संसय करै कवि धुर बनावि किर्त बानि ॥ १०० ॥
 सुनिप्राणी भागवत ऐतली और पार्वतीजीने मन्थनीका पूजन किया । मनमें
 देवताजीको अनादि समयपर मोह इत वातको सुनकर संका न करे [कि गणेशजी को
 पितृ-पार्वतीका स्नान है, जमी किन्हासे पूर्व ही वे जहसे आ गये] ॥ १०० ॥

चौ—कवि विप्रह के भवि सुनि आई । महासुनिह से सब करवाई ॥
 रामि गिरेल कृप कन्पा कनी । मरहि सगरसौ तानि मवानी ॥ १ ॥
 वेदोंमें विप्रकी जैसी रीति रही थी है; मन्थनीजीने वह सभी रीति करवायी ।
 पंचरात्र विमाचने हारमें कुल डेकर तथा कन्पाका हाथ पदद्वार उन्हें भवानी
 (शिवजी) काकर विप्रकीसे स्मरण किया ॥ १ ॥

पन्थिहल वय कीन्ह नहेता । दिवै हारये सब सकल सुरेसा ॥
 रंगमंड सुनिव दयसही । वय वय वय संकर सुर करहीं ॥ २ ॥
 यह मन्थनी (शिवजी) ने पार्वतीका पाणिग्रहण किया, उन [इन्द्रादि] सब

देखा हृदयमें बड़े ही दर्पित हुए। ओह मुनिगण वेदमन्त्रोंका उच्चारण करने लगे और देवगण शिवजीका अङ्गनलङ्घन करने लगे ॥ २ ॥

जगहिं कनक विविध विद्याका । सुमन्महि भन नै विधि नका ॥

॥ गिरिज कर मयल विषय । सख सुख भरि रहा उकाह ॥ ३ ॥

अनेकों प्रकारके खिले बच्चे लगे । मन्त्रपद्ये नाम प्रभरके फूलोंकी वर्षा हुई । शिव-पार्वतीका विवाह हो गया । छरी ब्रह्माण्डमें आनन्द भर गया ॥ ३ ॥

बाजी दम सुरग दम नाका । चेतु सख मनि पल्लु विद्याका ॥

अथ कनकनाभन भरि जका । वृद्ध वृद्ध न जह बजना ॥ ४ ॥

दाही, दाव, रघ, घोड़े, हाथी, गायें, बर और खनि आदि अनेक प्रकारकी चीजें, कला तथा सोनेके बर्तन आदिकोंमें अर्पणकर शिवजीने दिने जिम्मा वर्णन नहीं हो सका ५

ॐ—बाराह विषो बहु भाँति पुनि कर ओरि हिममूषर कछो ।

कर देव पूरकाम संकर करन संकल गहि रह्यो ॥

शिव कृपासागर ससुर कर संतोष सब भाँतिहि कियो ।

पुनि गहे पद् पापोज मयनै प्रेम परिपूरज हियो ॥

एक प्रकारका देव देकर, फिर हाथ छोड़कर दियाजाने का—दे संकर । आप पूर्णभक्त हैं, मैं आपको क्या दे सका हूँ ! [इत्यादि कहकर] वे शिवजीके चरणभक्त बनकर रह गये । सब कृपाके कारण शिवजीने अपने ससुराल की प्रकारसे समाधान किया । फिर प्रेमसे परिपूर्णहृदय मैत्राजीने शिवजीके चरणभक्त बनके [और कहा—]

दो—नाथ उमा मम गान सम बृहकिंकरी करेह ।

छमेह सकल अपराध अब होइ प्रसन्न सब देह ॥ १०१ ॥

हे माय ! वह उमा मुझे मेरे प्राणीके सम्पन्न [प्यारी] है । आप इसे अपने परकी स्तुति स्तुतिसे और इसके सब अपराधोंको क्षमा करते रहियेगा । अब प्रसन्न होकर मुझे भी कर दीजिये ॥ १०१ ॥

चो—बहु विधि संतु समु ससुखहै । नवनी भव्य कल सिक चाहै ॥

जगदी उमा बोलि उम अम्बि । कै बलन सुंदर सिद्ध दीन्दि ॥ ११ ॥

शिवजीने बहुत तरहसे अपनी लक्ष्मी समझाया । उस से शिवजीके चरणोंमें फिर नवाकर भर दी । फिर माताने पार्वतीको बुला लिया और बोधमें बैठकर वह सुन्दर चीज दी— ॥ १ ॥

बोहे सदा संकर पद् पूका । नरिबल्लु पति दैठ न दूका ॥

बचन कहुत जो कोचन काही । बहुरि छह डर कीन्दि कुमारी ॥ २ ॥

हे पार्वती ! तू सदा शिवजीके चरणोंमें पूजा करना, नरिबल्लु नहीं बर्न है । उसके छिपे पति ही देवता है, और कोई देवता नहीं है । दश प्रकारकी बातें स्मरे-स्मरे उनकी फाँवोंमें आँसू भर आये और उन्होंने कन्याको छोटीसे विषय दिया ॥ २ ॥

कह विधि खलौ नारि अब माहीं । पताचीन सखेहुँ सुख पावैं ॥

नै अति प्रेम जिह्वा खटवारी । चीख कीन्दि तुलसय विपारी ॥ ३ ॥

[फिर बोली कि] विषयजने आदमें जीवितिको क्यों पैदा किया ? पार्वतीको लनेमें भी मुल नहीं मिलता । वो कहती हुई प्रेमीने अत्यन्त निकल हो बहो, परन्तु अत्यन्त जेलकर (दुःख करनेका अक्षर न जानकर) उन्होंने भीरज परा ॥ ३ ॥

हुनि पुनि मिलति पति गहि करवा । परम प्रेसु कहु जाइ न करवा ॥
 सब भासिहू मिळि भेटि भगानी । जह भवनि पर हुनि छपानी ॥ ४ ॥
 मेना घर-बार मिली हैं और [पार्वतीके] चरणोंको पकड़कर गिर पड़ी हैं ।
 मना ही प्रेम है, कुछ दर्शन नहीं किन्तु स्वता । यवानी सब किंवोले मित्र-भेटकर फिर
 अपनी माताके हृदयसे बा निभती ॥ ४ ॥

छं—अनभिहि बहुनि मिलि उत्तै उचित मसीस सब काहुँ दर्ह ।
 फिरि फिरि मिलोयति मातु सब सब सखीं छै सिव पहि गई ॥
 आचर्य सकल संशेषि संकट उमा सहित भवन चले ।
 सब भगर दूरये सुप्रन करपि निमान नम बाजे मले ॥
 पार्वतीजी मातासे फिर मिलकर चलीं, सब किंवोले उन्हें योग्य आशीर्वाद दिये ।
 पार्वतीजी फिर-फिर मातासे ओर देखती जाती थी । सब सखियाँ उन्हें शिवजीके
 पास ले गयी । महादेवजी सब बाबूकोसे संतुष्ट कर पार्वतीके साथ घर (कैलाश) को
 चले । सब देवता प्रसन्न होकर पूज्योकी बर्षा करने लगे और आकाशमें सुन्दर मंगारे बजाने लगे ।

छं—बले संग हिमबंसु सब पहुँचावन अति हेतु ।
 दिविष मीति परितोषु करि विदा कीन्ह बृषकेतु ॥ १०२ ॥
 सब हिमपाद अलग्न प्रेमसे शिवजीको पहुँचानेके लिये साथ चले । बृषकेतु
 (शिपजी) ने बहुत तरहसे उन्हें संतोष कराकर विदा किया ॥ १०१ ॥

चौ०—दुख भवन जाइ गिरिगई । सकल सैक सर किए बोल्यई ॥
 भावर दाय विनय कहुमाया । सब कर विदा कीन्ह हिमबावा ॥ १ ॥
 पर्यस्त्रान हिमकन्य हरत कर आवे और उन्होंने सब पर्वतों और श्रोत्रियोंको
 बुझाया । हिमकान्ते भावर, दाय, विनय और बहुत सम्मानपूर्वक तर्कों विचारोंकी ॥ १ ॥
 सबहिं संसु ऐकसहिं आय । सुन सब विनय किए लोक विधाप ॥
 जगत माहु पिह संसु भवानी । तेहिं कियास व कह्यै भवानी ॥ २ ॥
 सब शिवजी कैलाश पर्यस्त्रान पहुँचे, सब सब देवता अपने-अपने लोकोंको चले
 गये । [द्रुपदीदासजी कहते हैं कि] पार्वतीजी और शिवजी अत्यन्त माता-पिता हैं,
 इसलिये मैं उनके शृंगारका वर्णन नहीं करता ॥ २ ॥

काहि विविध विधि मोय निरस्त । बहक ससेत बतहिं कैलासा ॥
 ॥ गिरिजा विहान गित भवत । एहि विधि विपुल कल पति गमक ॥ १ ॥
 शिव-पार्वती विविध प्रकारके योग-निलस करते हुए अपने गणोंवहित कैलाशपर
 रहने लगे । वे नित्य नये निसर करते थे । इस प्रकार बहुत समय बीत गया ॥ २ ॥
 सब समेक कष्टदन पुनरा । तबहु समुद्र समर बेहि नारा ॥
 भागम निमग्न प्रसिद्ध पुनरा । कनुमुख कनु सखल बग जाना ॥ ३ ॥
 सब छः मुखवाले पुत्र (स्वामिभक्तिक) का क्या हुआ, जिनोंने [नंदे शोनेर]
 प्रथमे तारकासुरको मारा । वेद, शास्त्र और पुराणोंमें स्वामिभक्तिकके कथकी कथा
 प्रसिद्ध है और साथ अग्रे उठे जानक है ॥ ४ ॥

छं—जगु जान फगुस जगु कहुँ प्रवपु पुरुधारु महा ।
 तेहि हेतु मैं बृषकेतु सुत कर-चरित संशेषहिं कदा ॥
 यह उमा संसु विवाह जे कर बारि कहहिं जे गावहीं ।
 कल्याण काज विवाह मंगल सर्वदा सुसु पावहीं ॥ ५ ॥

पदान्तर (स्वामिकार्तिक) के अन्तर्गत, प्रत्यक्ष और अत्यन्त पुरुषार्थकी सारा जगत् जानता है। इसलिये मैंने वृषभेन्द्र (शिवजी) के पुत्रका चरित्र संक्षेपसे ही कहा है। शिव-पार्वतीके विवाहकी इस कथाकी जो स्त्री-पुरुष कहीं और गवैँ, वे कल्याणके कर्मों और विवाहादि मङ्गलोंमें सदा सुख पावेंगे।

दो०—चरित सिंधु गिरिजा रमन के न पार्यहि पार ।

बनै सुखसीवासु किमि अति मतिमंद धर्मात् ॥ १०३ ॥

गिरिजापति महादेवजीका चरित्र समुद्रके समान (अपार) है, उसका पार वेद भी नहीं पावे। तब अत्यन्त मन्दबुद्धि और गैर बुद्धीवान् उसका वर्णन कैसे कर सकता है ॥ १०३ ॥

चौ०—सिंधु चरित मुनि सरस सुहावा । सरसज मुनि अति सुख पाव ॥

बहु साधना कथा पर बारी । नवनमि सीव सेमवलि छोड़ी ॥ १०४ ॥

शिवजीके रसीले और सुहावने चरित्रको सुनकर मुनि भरद्वाजजीने बहुत ही सुख पाया। कथा सुननेकी उनकी साधना बहुत बढ़ गयी। नेत्रोंमें जल भर आया तथा रोमाशकी छाड़ी हो गयी ॥ १०४ ॥

प्रेम विषय सुख काय व कायी । हता देखि हरये मुनि मगरी ॥

बाही बन्ध सब जन्मु सुदीख । तुम्हहि जान सम प्रिय गौरीख ॥ १०५ ॥

वे प्रेममें सुख हो ज्ये, सुखसे वाली नहीं निकलती। उनकी यह दशा देखकर बानी मुनि बाहबन्धन बहुत प्रसन्न हुए [और बोले—] हे मुनीश्वर ! अथा ॥ तुम्हारा कर्म बन्ध है। तुमको गौरीपति शिवजी प्रभोंके समान प्रिय हैं ॥ १०५ ॥

सिंध पद कमल किम्हदि छिटाई । रामहि से सबदेहुँ व सोपही ॥

सिंधु छल विस्मय पद वेहु । राम भक्त कर लक्षण पद ॥ १०६ ॥

शिवजीके चरणरङ्गलोंमें निजकी प्रति नहीं है, वे श्रीरामचन्द्रजीको स्वयं भी अच्छे नहीं समते। विश्वनाथ श्रीशिवजीके चरणोंमें निष्कण्ठ (विस्मय) प्रेम होता, यही रामभक्तका लक्षण है ॥ १०६ ॥

सिंध सम को रघुपति अत बारी । सिंध अथ लकी सती जरि बारी ॥

पदु करि रघुपति भक्ति देखई । को सिंध सम रागहि विर भाई ॥ १०७ ॥

शिवजीके समान रघुनाथजी [और शक्ति] का अत बारण करनेवाला कौन है ? जिनमेंसे बिना ही पापके सती-वैशी लीको त्याग दिया और प्रतिका करके श्रीरघुनाथजीकी भक्तिको दिसा दिया। हे भाई ! श्रीरामचन्द्रजीको शिवजीके समान और कौन प्यारा है ॥ १०७ ॥

दो०—प्रथमहि मैं कहि सिंध चरित बूझा मरखु सुम्हार ।

सुधि सेवक तुम्ह राम के रहित समस्त विचार ॥ १०८ ॥

मैंने पहले ही शिवजीका चरित्र कहकर तुम्हारा भेद समझ लिया। तुम श्रीरामचन्द्रजीके पवित्र सेवक हो और समस्त दोषोंसे रहित हो ॥ १०८ ॥

चौ०—मैं जाना तुम्हारे सुख सीमा । कष्टें सुनहुँ जन रघुपति जोकर ॥

सुख मुनि जहूँ समझन सोरैं । कष्टि न जादु जहूँ सुख मन सोरैं ॥ १०९ ॥

मैंने तुम्हारा सुख और सीमा जान लिया। जब मैं श्रीरघुनाथजीकी लीज करता हूँ, सुनो। हे मुनि ! सुनो, जान तुम्हारे मित्रदेवे से मनमें जो आनन्द हुआ है, वह क्या नहीं जा सकता ॥ १०९ ॥

रत्न करित छनि अमित मुनीन्द्र। कटि न तु कहिँ सब कोटि जहोसा ॥
 तदपि जगन्मन कह्यो बहोबी। सुमेरि विरागति प्रसु धनुषानी ॥ १ ॥
 हे मुनीन्द्र ! रामचरित अत्यन्त अमर है। जो कज्जक वेश्या भी उसे नहीं खा
 सकते। तपस्वि जैन भी खाते हैं। बौद्ध भगवत त्वाणी (प्रेरक) और हाथमें धनुष
 बिने हुए प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका स्तन करते कहता हूँ ॥ २ ॥

मन्दर इन्दरारी खस खानी। सख सुखधर अंतरजानी ॥
 सोहि न ह्या। करहिँ बनु जानी। कपि डर अखिर नचावहिँ बानी ॥ ३ ॥
 कस्तुरीकी कटुदुःखीदे, त्वन है और अन्तर्यामी त्वाणी श्रीरामचन्द्रजी [खा
 नहीकर कटुदुःखको भचनेकले] सुखधर हैं। अपना मक खानकर जित कपिर
 वे डर करते हैं। तत्के इन्द्रायणी औरगर्भने सरस्वतीको वे नचावा करते हैं ॥ ३ ॥

प्रबद्ध मोह कृपाक खुलापा। बरबद्ध बिसर ताहु गुन गाथा ॥
 जग रज्य विविध वैराग्य। लख जहाँ सिव उवा विवाह ॥ ४ ॥
 उन्हीं कृपाक भोक्तुनापजीसो मैं प्रबलन करवा हूँ और उन्हींके निर्मल गुणोंकी
 गथा गाता हूँ। वैराग्य सर्वतोमं भेद और बहुत ही उन्नीय है, जहाँ शिव-पार्वतीकी
 रस निदान करते हैं ॥ ४ ॥

गो०—सिद्ध तपोधन जोगिजन छुर किन्नर मुनिवृन्द ।
 बलहिँ तहाँ छुछरी सकल सेवहिँ सिव सुखार्द ॥ १०५ ॥
 सिद्ध, ढरली, योगीश्वर, देवदा, किन्नर और मुनियोंके समूह उस पर्वतपर रहते
 हैं। वे सब बड़े पुण्यप्राप्त हैं और आनन्दकण्ठ श्रीनारायणजीकी सेवा करते हैं ॥ १०५ ॥

बौ०—हरि हर विभुष धर्म रति गहीं। से तर खई सरयेहु गहिँ काहीं ॥
 सोहि पिरि पर बट विषय विसादा। गित सुतन सुंदर सब काहा ॥ १०६ ॥
 जो भगवान् विभु और नारायणजीके विभु हैं और किन्हीं धर्ममें प्रीति नहीं
 है, वे भोग करने भी बड़ों नहीं बन सकते। उस पर्वतपर एक विद्याक बरादका पेड़
 है। जो गिर नदीन और सब जात (छहों ध्रुवों) में झुंझ रहता है ॥ १०६ ॥

किन्ति सगरी सुखीतहिँ छदा। सिव विधाम विदय मुति गाथा ॥
 एक धम तेहिँ तर प्रभु गमक। तर किन्ति कर अति सुखमय ॥ १०७ ॥
 बाँ गति प्रबलनी (सोतल, मन्द और दुःख) वायु गहरी रहती है और
 उच्छी दार उच्छी ठडी रहती है। यह किन्तिके विधाम करनेका वृद्ध है। भित्ति
 वेदीने गाथा है। एक बा मनु प्रोक्षिणी उस वृद्धके गोले गये और उसे देखकर
 उनके हृदयमें बहुत आनन्द हुआ ॥ १०७ ॥

मित्र न द्रष्टि नगरिदु काहा। बडे सहजहिँ संसु कृपाका ॥
 सुंदर वहु वर गौर करीत। भुव प्रबंध परिषन मुनिवीर ॥ १०८ ॥
 अपने शान्ति धर्मकर किन्नर कृतज्ञ शिवजी लम्बावले ही (दिना किन्ती खात
 प्रयोगमें) बड़े देव गये। झुंझके पुण्य, चन्द्रमा और शंकरके स्तन उनका गौर करीर
 पा। पत्नी नही सुखहिँ या और वे सुखीकिते (कलक) बर चारण क्रिये हुए थे ॥ १०८ ॥

सख अल अंशुय नन करना। पल दुःखि मगत इदम सम दहता ॥
 मुखा भुवि भुपन विद्युत्तरी। माननु सख पंड कवि हारी ॥ १०९ ॥
 उनमें जग मे (पूर्णरूपे विनिहृत) ललक कलके समान थे, नखोंकी प्योति
 मकोके हृदयका अन्तर्गत होनेवाली थी। सख और मल ही उनके रुपण थे। और

उन-त्रिपुरासुरके-शत्रु विनश्वर सुख करत (पूर्णिमा) के कन्दमाकी सोमानो भी इनेवाला (पीकी करनेवाला) था ॥ ४ ॥

शो०—जटा मुकुट सुरसरित सिर जेवन ललित बिसाल ।

नीलकण्ठ स्वकन्यनिधि सोह बालविधु भाठ ॥ १०६ ॥

उनके सिरपर जटाओंका मुकुट और गङ्गाजी [सोमायमान] थीं। कमलके समान बड़े-बड़े नेत्र थे। उनका नील कण्ठ था और वे सुन्दरताके मण्डार थे।

उनके महाभयर द्वितीयाक्ष चन्द्रमा सोमित था ॥ १०६ ॥

चौ०—बैठे सोह भ्रमविधु कैसैं। परें खरीब-खोखरु कैसैं ॥

पारवती भक्त भक्तसह जगने। यहँ संसु पहिँ मनु भवानी ॥ १ ॥

कामदेवके शत्रु शिवजी वहाँ बैठे हुए ऐसे सोमित हो रहे थे, मानो शान्तरस ही खरीब भरण किये बैठा हो। अन्ध्रा मोक्ष जाकर शिवपत्नी मातु पार्वतीजी उनके पास गयीं ॥ १ ॥

कानि प्रिया ब्रह्म अति कोन्हा। कम भग्न आसुतु हर दीन्हा ॥

बैठी, सिर समीप हरकई। पूरुष कम कथा चित भाई ॥ २ ॥

अपनी प्यारी पत्नी जानकर शिवजीने उनका बहुत आदर-उत्साह किया और अपनी बारी और बैठनेके लिये आसन दिया। पार्वतीजी प्रसन्न होकर शिवजीके पास बैठ गयीं। उन्हें मिलते-जुलनेकी कथा सुनान हो आयी ॥ २ ॥

पति हिचै हेतु अधिक-भक्त्यानी। विदिति वरुन कोसैं जिन बानी ॥

कथा जो सकल लोक हितकारी। सोह पूरुष यहँ सैलकुमारी ॥ ३ ॥

स्वामीके हृदयमें [अपनी ऊपर पहुँचकी शान्ति] अधिक प्रेम समझकर पार्वतीजी सँवर प्रिय-वचन बोलीं। [बाह्यलक्षणकी कहे हैं कि] जो कथा सब लोगोंका हित करनेवाली है, उसे ही पार्वतीजी पूछना चाहती हैं ॥ ३ ॥

विस्वनाथ मम कम गुरारी। त्रिभुवन अधिकारी विहित तुम्हारी ॥

कर कम अन्ध भग्न कर देवा। सकल करिँ पद पंकज सेवा ॥ ४ ॥

[पार्वतीजीने कहा—] हे संसारके स्वामी! हे मेरे नाथ! हे त्रिपुरासुरका वध करनेवाले! आपकी महिमा तीनों-लोकोमें विख्यात है। वह अन्ध नाग, मनुष्य और देवता सभी आपके करणक्रमोंकी सेवा करते हैं ॥ ४ ॥

शो०—प्रभु समस्त सर्वम्य सित सकल कलां शुभ धाम ।

योग स्थान वैराग्य निधि प्रकृत फलफल नाम ॥ १०७ ॥

हे प्रभो! आप सर्वमय, सर्व और कल्याणस्वरूप हैं। सब कलाओं और गुणोंके निधान हैं, और योग, ज्ञान तथा वैराग्यके मण्डार हैं। आपका नाम फलफलके लिये कल्याण है ॥ १०७ ॥

चौ०—जो मो पर प्रसन्न सुखरसी। जानिब सब मोहि निव दासी ॥

तो प्रभु हरहु और अन्धना। कहि सुनान कथा विधि नावा ॥ १ ॥

हे भूतके पति! यदि मैं मुझपर प्रसन्न हूँ और सबभुत मुझे अपनी दासी [या अपनी स्त्री] दासी] जानते हैं, तो हे प्रभो! आप भीखुनामकी नामा प्रकारकी कथा कहकर मेरा अन्धन दूर कीजिये ॥ १ ॥

बांसु मनुषु सुस्तक कर होई। खदि कि दृष्टि अन्धि दुष्ट सोई ॥

सतिनूपन भक्त हृदयें निचारी। हरहु कम मम मति भक्त भरी ॥ २ ॥

किष्का पर कल्याणके नीचे हो। वह मलय दृष्टिवाले उत्पन्न-दुःखको क्यों

रा० रा० ६—

छोड़ो । हे इतिमन्त्र ! हे नाथ ! हृदयमें ऐसा निवास कर मेरी बुद्धि के भारी भ्रम को दूर कीजिये ॥ २ ॥

प्रभु ने पुनि परमात्मवत्नी । कदाहिं राम कहूँ बड़ा क्लेशी ॥
 सदा स्मरति । पद पुराण । सदा कदाहिं पुरुरिति पुन बानो ॥ ३ ॥
 हे प्रभो ! जो परमात्मत्व (ब्रह्म) के सात और बड़ा मुनि हैं, वे श्रीरामचन्द्रजीको भनादि प्रशंसा करते हैं और चौक करतछी, वेद और पुराण सभी श्रीरघुनाथजीका गुण गाते हैं ॥ ३ ॥

पुनः पुनि राम राम दिन राती । साधर जगहु अर्था आरती ॥
 राम को जगज्जगत्पति मुन कोहैं । की जग जगुन ब्रह्मसंगति कोहैं ॥ ४ ॥
 और हे कामदेवको धनु ! आप भी दिन-रात आदरपूर्वक राम-राम जपा करते हैं । ये राम वही सर्वोत्तमके राजाके पुत्र हैं । वा अकाला, निर्गुण और अनोचर कोहैं और राम हैं ॥ ४ ॥

दो—औं रूप लम्प स ब्रह्म विमि नारि चिरहैं मति मोरि ।
 होखि परित महिमा सुखत समति बुद्धि नति मोरि ॥ १०८ ॥
 यदि वे राजपुत्र हैं तो बड़ा कैसे ? [और यदि हैं तो] कीसे बिद्वानों उनकी मति वाक्यी कैसे हो सगी । हफर उनके ऐसे चरित्र देखकर और स्फुर उनकी महिमा सुनकर मेरी बुद्धि बलान्त बंधा रही है ॥ १०८ ॥

औं—औं अनेक व्यापक विमल लोक । कहु उछाह नाथ मोहि लोक ॥
 जग जगि विस्त कर जगि धरहु । केहि बिधि मोह सिरे सोइ करहु ॥ १ ॥
 यदि इन्कारित । व्यापक, उपर्य गद्य कोहैं और हे, जो हे नाथ ! मुझे उसे समझाकर कहिये । मुझे मराने छलकर मनमें श्रेष्ठ न ब्याहैं । जिस तरह मेरा मोह दूर हो, वही कीजिये ॥ १ ॥

धै धन हीहि राम भंसुअई । जगि जग विमल स प्रमदि सुताई ॥
 कदां मक्ति मय बीछु न जगता । तो कहु सखी सीति हृद बावा ॥ २ ॥
 मैं [पिछले समयमें] कर्म श्रीरामचन्द्रजीकी प्रभुता देखी थी; परन्तु भ्रातृभगवति रामके कारण मैंने यह बात भावको सुनयी नहीं । तो भी मेरे दिलमें धनकी बोध न हुआ । उसका फल भी मैंने अच्छी तरह पा लिया ॥ २ ॥

अर्जुन कहु संसद सम जोरें । कहु कहु विमल कर जोरें ॥
 प्रभु तब मोहि कहु नति प्रलोच । जग सो समुक्ति कहु जगि प्रोधा ॥ ३ ॥
 धन भी मेरे मनमें कुछ समझ है । आप मुझा सीजिये, मैं साथ जोड़कर विनती करती हूँ । हे प्रभो ! आपने उस जगल मुझे बहुत चलाते समझाया था । [फिर भी फिर समझ नहीं गया], हे नाथ ! वह सोचकर मुझपर बोध न कीजिये ॥ ३ ॥

उप ऊर जग विमल सम जगि । राजक्यां पर जगि सम जगि ॥
 कहु सुख राम कुरु जगता । सुखसुख सुखसुख ॥ ४ ॥
 मुझे अब फले-मेल मोह नहीं है, धन तो मेरे मनमें प्रकट हो चुके हैं । हे रामनाथको अलंकारकाममें चाल करनेवाले देवताजीके नाथ ! आप श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंकी पवित्र क्या कहिये ॥ ४ ॥

दो—बंदरें पद धरि जगि विमल करैं कर जोरि ।
 बरजहु रघुवर विमल बहूँ बुद्धि सिद्धांत लिखेरि ॥ १०९ ॥

मैं पृथ्वीपर सिर टेककर आपके चरणोंकी वन्दना करती हूँ और हाथ जोड़कर विनती करती हूँ। आप वेदोंके सिद्धान्तको निचोड़कर श्रीरघुनाथजीका निर्मल यश वर्णन कीजिये १०६

चौ०—अद्वि जोषित्वा बहि अधिकारी। दासी मम क्रम घनत मुन्हारी ॥

गूढ़ तत्त्व न क्षण्य दुराहर्हि। भारत अधिकारी जहै पारहि ॥ १ ॥

यद्यपि स्त्री होनेके कारण मैं उसे सुननेकी अधिकारिणी नहीं हूँ, तथापि मैं मन, वचन और कर्मसे आपकी दासी हूँ। संत लोग जहाँ आर्त अधिकारी पाते हैं, वहाँ गूढ़ तत्त्व भी उससे नहीं छिपाते ॥ १ ॥

अति भारति पूज्यै सुरस्या। शुपति कथा कहहु करि दया ॥

प्रथम सो कारन कहहु विचारी। निर्गुन ब्रह्म धनुन वपु भारी ॥ २ ॥

हे देवताओंके स्त्री ! मैं बहुत ही आर्तभाव (दीनता) से पूछती हूँ; आप मुझपर दया करके श्रीरघुनाथजीकी कथा कहिये। पहले तो वह कारण विचारकर मतलाइये जिससे निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप धारण करता है ॥ २ ॥

पुनि प्रभु कहहु राम भवत्परा। बाहचरित पुनि कहहु उदारा ॥

कहहु अथा जानकी विपारि। राव तया सो दूषन कारी ॥ ३ ॥

फिर हे प्रभु ! श्रीरामचन्द्रजीके अवतार (जन्म) की कथा कहिये; तथा उनका उदार बाहचरित्र कहिये। फिर जिस प्रकार उन्होंने श्रीनानकीजीसे विवाह किया, वह कथा कहिये और फिर वह मतलाइये कि उन्होंने जो राज्य छोड़ा तो किस दोषसे ॥ ३ ॥

मम बलि कीन्हे चरित अपरा। कहहु भव तिमि रावन मारा ॥

राव बैठि कीन्हीं पदु लीला। सकल कहहु संकर मुजसीला ॥ ४ ॥

हे नाथ ! फिर उन्होंने वनमें रहकर जो अपार चरित्र किये तथा जिस तरह रावणको मारा, वह कहिये। हे सुखस्वरूप शंकर ! फिर आप उन खारी लीलाओंको कहिये जो उन्होंने राज्य [सिंहासन] पर बैठकर की थीं ॥ ४ ॥

चौ०—बहुरि कहहु करुनायतन कीन्हु जो अक्षरत राम।

प्रजा सहित रघुवंसमनि किमि बखने निज धाम ॥ ११० ॥

हे कृपाधाम ! फिर वह अद्भुत चरित्र कहिये जो श्रीरामचन्द्रजीने किया—वे पुरुषलक्ष्मिरोमणि प्रजासहित किस प्रकार अपने घामके गये ? ॥ ११० ॥

चौ०—पुनि प्रभु कहहु सो तत्व बलापी। बेहि विन्यास सखन मुनि न्यापी ॥

भगति व्यास विन्यास विरामा। पुनि सच परबहु सहित विभागा ॥ १ ॥

हे प्रभु ! फिर आप उस तत्वके समझाकर कहिये; जिसकी अनुसृष्टियों ज्ञानी मुनिगण सदा मग्न रहते हैं; और फिर भक्ति, ज्ञान, विज्ञान और वैराग्यका विभागपरिचित्करण कीजिये ॥ १ ॥

औरत राम रहस्य भवेन। कहहु बाध अति निमल निवेन ॥

जो प्रभु मैं पूज्य नहि होई। सोव दण्डन राबहु जनि होई ॥ २ ॥

[इसके सिवा] श्रीरामचन्द्रजीके और भी जो अनेक रहस्य (छिपे हुए भाव तथा चरित्र) हैं, उनको कहिये। हे नाथ ! आपका ज्ञान अत्यन्त निर्मल है। हे गो ! जो बात मैंने न भी पूछी हो, हे देवाह ! उसे भी बाह छिपा न रक्षियोगा ॥ २ ॥

उन्म त्रिभुवन श्रु वेद बलावा। ज्ञान जेव चौधर न जाना ॥

प्रमद वसा है सबल मुहाई। उक्त निर्दिष्ट मुनि सिय मच भाई ॥ ३ ॥

वेदोंने आपको तीनों लोकोंका गुरु कहा है। वृक्षोंके पत्रों कीव ज्ञान रहस्यको क्या

जानें । पार्वतीजीके लख सुन्दर और लखहि (करक) प्रसन्न हुनकर भिन्नजीके मनको बहुत धन्यो ज्यो ॥ ३ ॥

॥ ॥ रामचरित सब आए । प्रेम कुल्लु छोचन जहं छप ॥

श्रीरघुनाथ रूप तर जलत । परमाचर्य अमित सुख पावा ॥ ४ ॥

भीमहादेयजीके हृदयमें जो रामचरित आ गये । प्रेमके मोरे उनका शरीर पुलकित हो गया और नेयोंमें लल भर गया । श्रीरघुनाथजीका रूप उनके हृदयमें आ गया; चित्तमें स्वयं परमाचर्यरूप भिन्नजीने श्री अपार सुख पाया ॥ ४ ॥

हो—भगवन् ध्यानरस वृन्द कुग पुनि मन वादेर कीन्ह ।

रघुपति चरित महेस तब हरपित बरतै कीन्ह ॥ १११ ॥

शिवजी दो पदीतक ध्यानके रस (मानन्द) में डूबे रहे; फिर उन्होंने मनको नाश कींचा और सब वे प्रसन्न होकर श्रीरघुनाथजीका चरित्र वर्णन करने लगे ॥ १११ ॥

धौ—बड़ेछ सत्य साहि बिनु जतैं । सिमि जुर्जन निनु रजु पहिचानैं ॥

केहि धामैं जग. बाहू हेरई । जानैं जग सपन भ्रम जाई ॥ १ ॥

जिसके बिना जाने कुछ भी सत्य साध्य होता है, वैसे बिना पहचाने—रस्तीमें सँपका भ्रम हो जाता है; और जिसके ज्ञान केनेर कगलज जरी तरह लोप हो जाता है वैसे जगनेर स्वप्नका भ्रम लजा रहता है ॥ १ ॥

जहं जगज्जग छोह राम । सब सिधि सुख जगज्जग पाम ॥

अपक जगज्जग समकड हारी । इबड सो दसख जगिर विहारी ॥ २ ॥

मैं अपनी श्रीरामचन्द्रजीके वाक्यकी कन्दरा करता हूँ, जिसका नाम जगज्जग सिद्धिमें सत्य ही प्राप्त हो जाती है । मनुष्यके धाम, जगज्जगके इनेवाले और श्रीरघुनाथजीके आँगनमें केवलवाले (वाक्यरस) श्रीरामचन्द्रजी द्वारा दया करें ॥ २ ॥

जरी जगज्जग रामहि विगुहरी । हरहि सुखा सम गित उचारी ॥

जग जग गिरिराजकुमारी । तुम्ह समक बहि जेव उपकारी ॥ ३ ॥

शिरुपदुरका यथ करनेवाले शिवजी श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके आनन्दमें भरकर अन्तर्गत समान वाली बोले—हे गिरिराजकुमारी पार्वती ! तुम दय्य हो । जग हो ॥ तुम्हारे समान कोई उपकारी नहीं है ॥ ३ ॥

रैकु रघुपति जग प्रसन्न । सकल लोक जग पावनि गंगा ॥

तुम्ह रघुबीर जग अनुसन्धि । नीनिहु प्रसन्न जग हित छापी ॥ ४ ॥

जो तुमने श्रीरघुनाथजीकी कथाका प्रसन्न पूछा है, जो दया समस्त लोकोंके लिये जगज्जग पवित्र करनेवाली गङ्गाजीके समान है । तुमने आगतके कल्याणके लिये ही प्रसन्न पूछे हैं । तुम श्रीरघुनाथजीके कारणोंमें प्रेम रखनेवाली हो ॥ ४ ॥

हो—राम कृपा तैं धारवति सत्येहुँ तब मन माहि ।

सोक मोह सविह सम सम विचार कहु नाहि ॥ ११२ ॥

हे पार्वती ! मैं विचारमें तो श्रीरामजीकी कृपासे तुम्हारे मनमें स्वयं भी शोक मोह, सन्देह और सम कुछ भी नहीं है ॥ ११२ ॥

धौ—नरहि जसक कीन्हहु सोई । जग जगज्जग सब कर हित होई ॥

बिगड हरिकथा सुनै नहि जग. धन्य रज. जगिजन समावा ॥ १ ॥

मित्र भी तुमने इसलिये नहीं (पुनर्नी) कहा कि है कि इस प्रसन्नके करने

मुननेसे सबका कल्याण होगा । किन्होंने अपने कानोंसे भगवान्की कथा नहीं सुनी,
उनके कानोंके छिन्न सोंपके बिल्लके समान हैं ॥ १ ॥

अमनन्दि संत दरस नहीं देखा । छोख मोरपंख फर छेला ॥

ते सिर कढ़ तुंवरि समतूखा । वे न समत हरि सुर भद्र मूखा ॥ २ ॥

किन्होंने अपने नेत्रोंसे संतोंके दर्शन नहीं किये, उनके वे नेत्र मोरके पंखोंपर
दीखनेवाली नकली-आँखोंकी गिनतीमें हैं । वे सिर कढ़तीं तुंवरिके समान हैं जो धीहरि
और गुब्बे चरणतलपर नहीं झुकते ॥ २ ॥

बिन्दु हरिकण्ठि हृदयें नहिं जानी । जीवत सब समान तेह प्राणी ॥

जो नहिं करइ राम गुन जाना । जीह सो दादुर जीह समाना ॥ ३ ॥

किन्होंने भगवान्की भक्तिको अपने हृदयमें खान नहीं दिया, वे प्राणी जीते हुए
ही मुर्देके समान हैं । जो जीम भीरामचन्द्रजीके गुणोंका ज्ञान नहीं करती, ॥॥ घेदककी
जीमके समान है ॥ ३ ॥

कुछि कछेर बिदुर सोइ ज्ञानी । सुनि हरिचरित ब जो हरपाती ॥

गिरिका सुबहु राम कै लीला । सुर दित बज्रुन विमोहनलीला ॥ ४ ॥

यह हृदय पंखके समान फड़ा और निष्ठुर है जो भगवान्के चरित सुनकर शर्षित
नहीं होता । हे पार्वती ! भीरामचन्द्रजीकी लीला सुनो, वह देवताओंका कल्याण करने-
वाली और दैत्योंको विधेयरूपसे मोहित करनेवाली है ॥ ४ ॥

पौ०—रामकथा सुनघेतु सम सेवत सब सुख जानि ।

सतसमाज सुखलोक सब को न सुमै अस जानि ॥ ११३ ॥

भीरामचन्द्रजीकी कथा कामधेनुके समान सेवा करनेसे सब सुखोंकी देनेवाली है,
और सखुषोंके समान ही सब देवताओंके लोक है, ऐसा ज्ञानकर इसे कौन न
सुनेगा ॥ ११३ ॥

पौ०—रामकथा सुनइ कर लारी । संसब विद्या उपायनिहारी ॥

रामकथा कवि विषय कुलारी । सादर सुनु गिरिराजकुमारी ॥ ११४ ॥

भीरामचन्द्रजीकी कथा हाथकी सुन्दर लारी है, जो सन्देहकी पहरियोंको उड़ा
देती है । फिर रामकथा कविमुगलकी बुझकी घाटनेके लिये कुलारी है । हे गिरिराज-
कुमारी ! इस इसे आदरपूर्वक सुनो ॥ ११४ ॥

राम नाम गुन चरित सुहाय । लक्ष्म करम अपवित, सुनि नाय ॥

कथा अनन्त राम भगवान् । कथा कथा कीरति गुन नाथ ॥ ११५ ॥

वेदोंने भीरामचन्द्रजीके सुन्दर नाम, गुण, चरित, अन्य और कर्म सभी अनमिनत
किये हैं । भिन्न प्रकार भगवान् भीरामचन्द्रजी अनन्त हैं, उसी तरह उनकी कथा, कीर्ति
और गुण भी अनन्त हैं ॥ ११५ ॥

तदपि जया मुख जसि मति मोरी । कबिहर्दें देसि प्रीति बसि मोरी ॥

बसा प्रथ सब साहज सुहाई । सुखद संतसंगत मोदि माई ॥ ११६ ॥

तो भी तुम्हारी आजन्त प्रीति देखकर, जैसा कुछ मैं सुना है और बेटी मेरी
बुद्धि है, उसीके अनुसार मैं कहूँगा । हे पार्वती ! तुम्हारा प्रथम स्वाभाविक ही सुन्दर
हृत्सदायक और संतसंगत है और सुखे सो बहुत ही अच्छा लगा दे ॥ ११६ ॥

एक बात नहिं ओहि सोहाने । जदपि ओह बस कोइह नवानी ॥

इह को कहा राम कोट जाना । जेहि मुति कावचरहिं मुनि पाना ॥ ११७ ॥

परन्तु हे पार्वती ! एक बात मुझे अच्छी नहीं लगी। यद्यपि वह तुमने मोहके बंध होकर ही कही है। तुमने जो यह कहा कि वे राम कोई और हैं, जिन्हें वेद गाते और मुनिजन जिनका ध्यान करते हैं—॥ ४ ॥

॥ चौ—कहहिं सुगति अलख बचन नर प्रसे जे मोह पिसाच ।

पाधंठी हरि पद बिभुज जगहिं झूठ न साच ॥ ११४ ॥

जो मोहकरी पिशाचके द्वारा प्रस्त है, पाधंठी है, भगवान्‌के चरणोंसे विभुज है और जो झूठ-सच कुछ भी नहीं जानते, ऐसे अधम-अनुपम ही इस तरह कहते-सुनते हैं ॥ ११४ ॥

चौ—अथ जकीरिह भंज बजाके । कहैं विषय मुकुट मव छागी ॥

संहर कपटी कुटिल चितोरी । सपनेहुं संतसम गहिं देखी ॥ १ ॥

जो बजानी, मूर्ख, अंध और मायाहीन हैं और जिनके मनस्वी दर्पणपर विषय-करी कोई नमी बुरा है, जो व्याभिचारी, काली और बड़े कुटिल हैं और जिन्होंने कभी स्वप्नमें भी संत-समाजके दर्शन नहीं किये ॥ १ ॥

॥ कहहिं ते वेद अर्धमात्र बानी । किन्हें सुख कछु नहिं जानी ॥

मुकुट मखिन अरु ब्रह्म बिहीन । राम रूप देखहिं कियि सीमा ॥ २ ॥

और जिन्हें अपनी छात्र-शानि नहीं सुझती, वे ही ऐसी वेदविद्वज्ज, वातें कहा करते हैं। जिनका हृदयकरी पूर्ण नैज है और जो नेत्रोंसे झीन हैं, वे बेचारे श्रीरामचन्द्रजी-का रूप कैसे देखें ॥ २ ॥

॥ किन्हें सें भगुन न समुप विवेक । कसहिं कविज बचन बोलै ॥

हरिमन्य कछु जगत अमर्षी । किन्हहिं कहत कछु अवधिवादी ॥ ३ ॥

जिनको निर्गुण-रूपका कुछ भी विवेक नहीं है, जो अनेक मनगढ़ंत बातें बका करते हैं, जो श्रीहरिकी मानके चरम होकर जगत्‌में (जन्म-मृत्युके चक्रमें) जंमते फिरते हैं, उनके किये कुछ भी वह ठाकता असम्भव नहीं है ॥ ३ ॥

॥ भाग्यसुख सुख विषय भक्तिकारे । ते कहि कोरहि बचन विचारे ॥

॥ किन्हें छुन नहानीह मद पाया । किन्ह कर कहर करिह नहिं कामा ॥ ४ ॥

॥ जिन्हें बाधक रोग (सविपात, उन्माद आदि) हो गया हो, जो मृतके बराबरी मरे हैं, और जो नखें धूर हैं, ऐसे लोग विचारकर बचन नहीं बोलते। जिन्होंने महाभारत की मदिरा पी चुकी है, उनके कहेसर कान न देना चाहिये ॥ ४ ॥

॥ चौ—मंस निज छत्रुयें विचारि कहुं संसय भंडु राम पद ।

॥ सुदु गिरिराज कुमारी अमलम रवि कर बचन मम ॥ ११५ ॥

अपने हृदयमें ऐसा विचारकर कन्धे छोड़ दो और श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंको मजो। हे पार्वती ! प्रमत्तजी अन्यस्वकारके नाश करनेके लिये सर्वकाली किरणोंके समान मेरे वचनोंको द्यो ॥ ११५ ॥

चौ—सगुनहिं बलुनहिं नहिं कछु बोध । कसहिं मुनि पुराण ॥ १ ॥

॥ भगुन अलख अलख कम जोई । जगत कैम अस सखुन सो होई ॥ २ ॥

सगुण और निर्गुणमें कुछ भी भेद नहीं है—युनि, पुराण, पण्डित और वेद सभी ऐसा कहते हैं। जो निर्गुण, अलख (निराकार), अलख (अव्यक्त) और अजन्मा है, वही सर्वकाली प्रेममय सगुण हो जाता है ॥ २ ॥

जो गुन रहित सगुन सोह कैसैं । जहुहिम उफळ विष्णुका
जामु नाम भ्रम विमिर पतंगा । तेहि किमि कथिय विमोह
जो निर्गुण है वही सगुण कैसैं है ? कैसैं कल और ओकेमें मेद
जल ही हैं, ऐसे ही निर्गुण और सगुण एक ही हैं ।) निरुक्त नाम भ्रमर
के मिटानेके लिये सूर्य है, उसके लिये मोहक प्रसंग भी कैसैं कहा जा सकता है
राम सचिदानन्द दिनेश । नहिं नहिं मोह किया कबलेसा ॥

सहज प्रकासरूप जगजाना । नहिं नहिं गुनि विमान विहाना ॥ १ ॥
श्रीरामचन्द्रजी सचिदानन्दस्वरूप सूर्य हैं । वहाँ मोहसीं रात्रिका सबलेसा भी
नहीं है । वे स्वभावसे ही प्रकाशरूप और [सदैववर्षयुक्त] भगवान् हैं, वहाँ तो
विमानरूपी प्रातःकाल भी नहीं होता । (भ्रमररूपी रात्रि हो तब तो विमानरूपी
प्रातःकाल हो । भगवान् तो निरुक्त स्वरूप हैं ।) ॥ १ ॥

इस विषय मन्त्र भस्मना । कीद धर्म अहमिति अभिमाना ॥
राम ब्रह्म ब्रह्मक संत ज्ञाना । परमार्थदः पसेत पुराणा ॥ २ ॥
इस, धोक, राज, भजन, अहंता और अभिमान—ये सब जीवके धर्म हैं ।
श्रीरामचन्द्रजी तो व्यापक ब्रह्म, परमानन्दस्वरूप, परस्पर प्रभु और पुराणपुराण हैं । इस
बालको सारा जगत् जानता है ॥ ४ ॥

दो—पुरुष प्रसिद्ध प्रकाश निधि प्रगट परावर भये ।
रघुकुलमणि मम स्वामि सोह कहि सिवैं नयउ माथ ॥ ११५ ॥
जो [पुराण] पुरुष प्रसिद्ध हैं, प्रकाशके भण्डार हैं, सब स्त्रीमें प्रगट हैं, जीव,
माया और जगत् सबके स्वामी हैं, वे ही रघुकुलमणि श्रीरामचन्द्रजी मेरे स्वामी हैं, देखो
कहकर शिवजीने उनको मस्तक नवाया ॥ ११५ ॥

चौ—गिरा भ्रम नहिं समुक्ति-सम्भवी । प्रभु पर सौह धरहिं जग जानी ॥
कथा गमन संव पटक निहारी । किरि मातु कहि कुविचारी ॥ १ ॥
अज्ञानी मनुष्य अपने भ्रमको तो समझते नहीं और वे सूर्य प्रभु श्रीरामचन्द्र-
जीपर अवका आरोप करते हैं । जैसे भ्रातृधर्म, शस्त्रधर्म एवम् देखकर कुविचारी
(अज्ञानी) सोच कहते हैं कि बादलोंने सूर्यको ढक लिया ॥ १ ॥

विश्व जो कीचल अंगुलि लप्ये । प्रगट पुनक ससि तेहि के भार्ये ॥
दसा राम विषदक अत मोह । नम तक पूज हरि निमि सोहा ॥ २ ॥

जो मनुष्य अँधलेमें उँगली लगाकर देखता है, उसके लिये दो दो चन्द्रमा प्रगट
(प्रत्यक्ष) हैं । वे पार्वती । श्रीरामचन्द्रजीके विषयमें इस प्रकार मोहकी कल्पना-कल्पना
बैसा ही है जैसे आकाशमें जम्बूधर, सूर्य और चन्द्रमा खेतना (दीखना) । [आकाश
जैसे निर्मल और निर्लेप है उसीसे कोई गलिन या रक्त नहीं कर सकता, इसी प्रकार
भगवान् श्रीरामचन्द्रजी निरुक्त निर्मल और निर्लेप हैं] ॥ २ ॥

विषय कल धुर जीव समेता । सकल एक हैं एक सचेता ॥
सब कर परम प्रकाशक मोह । राम जगदि जगजगति सोह ॥ ३ ॥
विषय, इन्द्रियों, इन्द्रियोंके देवता और जीवजना, वे सब एकही सहायताते एक
केतन होते हैं । (अर्थात् विषयोंका प्रकाश, इन्द्रियोंके, इन्द्रियोंका इन्द्रियोंके देवताओंके
और इन्द्रिय-देवताओंका केतन जीवात्मासे प्रकाश होता है ।) इन सबका जो परम

प्रकाश है (अर्थात् मिलते हुन लज्ज प्रकाश होता है), वही अनादि ब्रह्म अवोध्यामनेश
श्रीरामचन्द्रजी हैं ॥ २ ॥

अतः प्रकाश अस्तस्य राम । मायापीड ध्यान शुच धाम् ॥

धाम् सत्यता है वह सत्य । अस सत्य इव मोह सदाप्य ॥ ३ ॥

यह सत्य प्रकाश है और श्रीरामचन्द्रजी इसके प्रकाशक हैं । वे मायके स्थानी
और ज्ञान तथा गुणोंके धाम हैं । दिनदि उजाले, गोखी कलफा पाकर वह माया भी
सत्य ही भावित होता है ॥ ४ ॥

श्लो—रजत सीप सहै अस्त्र जिमि जया मानु कर वारि ।

सद्यपि लुप्यः तिहुँ फाल सोह भ्रम न सकह कोउ दारि ॥ १७ ॥

ऐसे सीपमें चाँदीकी और हथौड़ी किण्वोंमें पानीकी [बिना हुए भी] प्रतीति होती
है । यद्यपि यह प्रतीति हीनो फालमें छूट है, यद्यपि इस भ्रमको कोई हटा नहीं सकता ॥ १७ ॥

चौ—यदि बिधि का हरि अश्रित रहई । नदपि असल वत हुष भई ॥

औ सपनें सिर बाँधे फोई । बिनु धर्म न दुरि हुष होई ॥ १ ॥

इसी तरह यह संसार भगवत्पुरुषे अवश्रित रहता है । यद्यपि यह असत्य है, तो भी
गुण हो देता ही है ; किंतु तब सपनें कोई सिर बाँध ठे तो दिना जाने वह गुण
दूर नहीं होता ॥ १ ॥

बालु कुरीं अस्त्र भ्रम जिदि आई । गिरिवा सोइ कृपाक रजसई ॥

अदि अस्त्र फोड बालु न पाव । नति अनुमाने निगस असपाव ॥ २ ॥

है पार्वती ! किन्तु कृपाके इस प्रकारका भ्रम मिट जाता है, वही कृपाके
भीषुनापणी हैं । किन्तु आवि और भक्त क्रियेनी नहीं [बाध] पाया । वेदोंमें
अपनी छुट्टिसे अनुमान करके इस प्रकार (नीचे लिखे अनुसार) जया है—॥ २ ॥

हिनु पद पट्ट सुवइ बिनु बाधा । कर बिनु करम कह बिधि नावा ॥

आगत रहिस सकल रस भीनी । बिनु बाधी दस्ता पद भीनी ॥ ३ ॥

यह (पद) बिना ही पैरके चलता है, बिना ही करके चलता है, बिना ही हावके
नामा प्रकारके काम करता है, बिना पैर (बिना) के ही सारे (सब) रसोंका आनन्द
लेता है और बिना ही बाणीके बहुत योग्य ब्रह्मा है ॥ ३ ॥

तन बिनु परल मयन बिनु देखा । मइ ज्ञान बिनु बाध नसेवा ॥

धरि सन अंति अलौकिक करनी । भदिमा बालु बाइ यदि परनी ॥ ४ ॥

यह बिना ही अंतर (लज्जा) के समर्थ करता है, बिना ही आँखोंके देखता है ।
और बिना ही नाकके स्पर्श मन्त्रोंको ग्रहण करता है (देखता है) । उस ब्रह्मकी करनी सभी
प्रकारके ऐसी अलौकिक है कि किन्तु भदिमा कही नहीं जा सकती ॥ ४ ॥

श्लो—सोहि इमि भावहि वेद दुख बाहि धरहि मुनि ध्याव ।

सोह दूसरय सुत भगंत हित कोसक्यति मगधान ॥ १८ ॥

किन्तु वेद और पण्डित इस प्रकार कर्ण करते हैं और मुनि किन्तु ध्यान करते
हैं वही दशरथनन्दन, मर्कटके हितकारी, अवोध्याके स्वामी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं ॥ १८ ॥

चौ—कहाँ मरत भंड जखोही । बाहु बान बल करवें बिसोकी ॥

सोह मसु मोर पशवर लखी । खुबर सब उर लंतरजानी ॥ १ ॥

[है पार्वती !] किन्तु नाकके बलसे जखोंमें मस्ते हुए प्राणीको देखकर मैं उसे
[राममान देख] बोधवित कर देता हूँ (उर कर देता हूँ), वही मेरे मसु खुबो

भीरामचन्द्रजी जड़-चेतनके स्वामी और उनके हृदयके भीतरकी खननेवाले हैं ॥ १ ॥

विष्णु नाम नर कहीं । नवम बनेक रचित पद दही ॥

सावर सुभिरर ने नर कहीं । नर करिधि कोपद हू ॥ तहीं ॥ २ ॥

विष्णु होकर (बिना इच्छाके) भी विष्णु नाम लेनेसे मनुष्योंके अनेक ऊर्ध्वमें फिये हुए पाप जल जाते हैं । फिर वो मनुष्य वादरपूर्वक उन्मत्त स्मरण करते हैं, वे तो संसाररुनी [दुःखर] समुद्रको बाँके छुरते गने हुए गड्ढेके समान (अर्थात् बिना किसी परिश्रमके) पार कर जाते हैं ॥ २ ॥

राम सो परमात्मा भवानी । जौ राम जति गविहिररुषावी ॥

भक्त संसय भावस उर माहीं । ग्यान विराग सकल हुन गाहीं ॥ ३ ॥

[हे पार्वती !] वही परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी हैं । उनमें भ्रम [देखनेमें आता] है, हमारा ऐसा कहना अत्यन्त ही अनुचित है । इस प्रकारका सम्यक् मनमें आते ही मनुष्यके ज्ञान, वैराग्य आदि सब सङ्गण नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥

सुनि सिध के भ्रम भंजय बचना । मिटि सै सब कुतरक कै रचना ॥

मह रघुपति पद गीति प्रसीतो । दम्भ नर्पभावना बीतो ॥ ४ ॥

विष्णुजीके भ्रमनाशक बचनोंको सुनकर पार्वतीजीके सब कुतर्कोंकी रचना मिट गयी । श्रीरामायणजीके चरणोंमें उनका प्रेम और विश्वास हो गया और कठिन अस्मत्प्रपन्ना (निष्का होना सम्भव नहीं, ऐसी विषय कहना) जाती रही ॥ ४ ॥

दो—सुनि सुनि प्रभु पद कमल गहि जोरि पंकज पति ।

बोली गिरिजा बचन नर मगहुँ प्रेम रस सानि ॥ ११९ ॥

बार-बार स्वामी (विष्णुजी) के चरणकमलोंकी पकड़कर और अपने कमलके समान शरीरोंको जोड़कर पार्वतीजी माने प्रेमरसमें सानकर सुन्दर बचन बोली ॥ ११९ ॥

बो—सति करसन सुनि गित तुम्हारे । मित्र मोह सरदाय नारी ॥

हृद कृपाक सङ्ग संसय होक । राम लक्ष्म जावि मोहि परेक ॥ १ ॥

आपकी चन्द्रमाकी किरणोंके समान शीतल शायी सुनकर मेरा अज्ञानकमी धरद्वन्द्व (कार) की वृष्ण भारी साय मिट गया । हे कृपासु ! आपने मेरा सब सम्यक् हर लिया, अब श्रीरामचन्द्रजीका यथार्थ स्वरूप मेरी समझमें आ गया ॥ १ ॥

नाथ कुर्षो भव लखट विफला । सुखी भवै प्रभु चर प्रसादा ॥

भव मोहि ओपवि निन्दति जानी । अद्वि संसय जगुं नरि संभानी ॥ २ ॥

हे नाथ ! आपकी कृपासे अब मेरा विश्वास जाता रहा और आपके चरणोंके अनुग्रहसे मैं सुखी हो गयी । यद्यपि मैं स्त्री होनेके कारण समाजसे ही दूरे और शान्तिन है, भी भी अब आप मुझे अपनी दासी जानकर—॥ २ ॥

प्रथम जो मैं पुत्र सोइ कहहु । जौ सो कर प्रसन्न प्रभु कहहु ॥

राम भक्त चिन्मय जगिजोती । सर्व रक्षि सय उर उर कही ॥ ३ ॥

हे प्रभो ! यदि आप सुतपर प्रसन्न हैं तो जो बात मैंने पहले आपसे पूछी थी, वही कहिये । [यह सत्य है कि] श्रीरामचन्द्रजी ब्रह्म हैं, किन्तु (शान्तस्वरूप) हैं, भविष्यी हैं, सबसे रक्षि और उनके हृदयकमी जगतीमें निवास करनेवाले हैं ॥ ३ ॥

नाथ धरै नर नरतु केहि हेत । मोहि समुल्लस बहनु हृषिकेद ॥

बंसा बधन सुनि करम निबोधा । उलकवा कर गीति पुसीदा ॥ ४ ॥

फिर हे नाथ ! उन्होंने मनुष्यका शरीर किस कारणसे धारण किया ? हे नरपति

ब्रह्मा धारण करनेवाले प्रभो ! वह मुझे उपसाधार कहिये । पार्वतीके अत्यन्त नम्र स्वर
सुनकर और भीरामचन्द्रवीरके कण्ठमें उन्नम्र विभूत प्रेम देखकर—॥ ४ ॥

हो—द्विषं हृत्प्रे कामारि तव संकर सद्भव भुजान् ।

यहु किंचि उमदि अस्सिं पुवि बोले कृपानिधान ॥१२०(क)॥

तब कामदेवके शत्रु, त्यागाधिक ही भुजान्, कृपानिधान शिष्यको मनमें बहुत ही हर्षित
हुए और बहुत प्रकासे पार्वतीकी दण्डमें करते फिर बोले—॥ १२० (क) ॥

नराह्वारायण, पहला विश्राम

मासवारायण, चौथा विश्राम

हो—सुनु सुन कथा भवानि रामचरितमानस किमल ।

कथा सुसुद्धि दधानि सुता विहाय नायक गरुड ॥१२०(ख)॥

हे पार्वती ! निर्दोष रामचरितमानसकी वह महत्त्वपूर्ण कथा सुनी जिसके काकुटुहाभि-
ने निकारते कथा और पक्षियोंके रासक वक्त्रोंने सुना था ॥ १२० (ख) ॥

तो संसार बहार जेहि विधि भा आये कहव ।

सुनहु राम भक्तार चरित परम सुन्दर अनघ ॥१२०(ग)॥

वह श्रेष्ठ वंशज किमप्रकार हुआ, वह मैं जाने नहीं। अभी तुम भीरामचन्द्रकी
भक्तारका नाम सुन्दर और पवित्र (पवित्राणक) चरित सुनो ॥ १२० (ग) ॥

हरि गुन नाम अपर कथा रूप अरन्धत अमिष ।

मैं निज भवि अनुसार कहवें क्या सार सुनहु ॥१२०(घ)॥

पक्षीके गुण, नाम, कथा और रूप सभी अमर, अमणित और अमीष हैं । फिर
भी हे पार्वती ! मैं अपनी बुद्धिके अनुसार कथा हूँ, गुण आदरपूर्णक सुनो ॥ १२० (घ) ॥

बौ—इह निराला हरिचरित सुसंग । विपुल विपद् विनाशायन राग ।

हरि अमल देह बेदि हीहै । इतिवर्ष कहि आहू न सोहै ॥ १ ॥

हे पार्वती ! तुमने, वेद-शास्त्रोंने औरलिके सुन्दर, विपुल और निर्दोष हरिचरितोंका
गान किया है । हरिक अमलाल निज करणसे होख है, वह कारण, अमल नहीं है, ऐसा
नहीं कहा जा सकता, (अनेकों कारण हों सकते हैं और ऐसे भी हो सकते हैं) जिन्हें, छोड़े
जान ही नहीं सकता—॥ १ ॥

राम अमल बुद्धि भव नावी । मल हमार कस सुनदि कथावी ॥

वदनि बंध मुनि वेद सुरास । कलकल कहिं लसति अनुमावी ॥ २ ॥

हे कथानी ! तुमने, हमारा मत तो यह है कि बुद्धि, मन और वाणीके भीरामचन्द्र-
कीकी वर्तन नहीं ही हो सकती । वर्यापि ब्रह्म, मुनि, वेद और पुराण मानी-अमली
बुद्धिके अनुसार ऐसा कुछ कहते हैं, ॥ २ ॥

कस में सुसुद्धि सुनवर्ष सोही । सुसुद्धि हृद मल करण सोही ॥

मय जब होइ पस्य कै सुनी । कहिं असुर मलम अभिमानी ॥ ३ ॥

और ऐसा मूढ़ मेरी समझमें आया है, हे सुसुद्धि ! कही कारण मैं तुमको सुनता
हूँ, मन-मल भर्मास दुष्ट-होता है और नीच अभिमानी राक्षस बद् व्यते हैं, ॥ ३ ॥

कहोई भनीति कह कहिं मनो । सीवहिं निज वेद सुर धरवी ॥

तब ॥ ॥ ॥ परे विविध सरीर । हरिं कृपानिधि खबर दीव ॥ ४ ॥

और वे ऐसा अन्याय करते हैं कि विविध वर्णन नहीं हो सकता तथा ब्रह्मण,

गो, देवता और पृथ्वी कष्ट पाते हैं, तब-तब वे कृष्णनिवास प्रभु मांति-भाँटिके [शिष्य] शरीर धारणकर सबजनोंकी पीड़ा हरते हैं ॥ ४ ॥

दो०—असुर मारि थापहि सुरन्द राधाहि, निज भ्रुति सेतु ।

जग विस्तारहि विसद जस राम जन्म कर सेतु ॥ १२१ ॥

ये असुरोंको मारकर देवताओंको स्थापित करते हैं, अपने [आश्रय]-देवोंकी मर्यादाकी रक्षा करते हैं और जगत्में अपना निर्मल-वश फैलते हैं । श्रीरामचन्द्रजीके अवतारका यह कारण है ॥ १२१ ॥

चौ०—सोइ बस गाइ भगत भव करहीं । कृपासिद्ध जन हित तबु करहीं ॥

राम जन्म के हेतु अनेक । परम बिचित्र एक तैं एका ॥ १ ॥

उसी वशको गा-गाकर भक्तजन भक्तभारसे सर-भाते हैं । कृपासागर भगवान् भक्तोंके हितके लिये शरीर धारण करते हैं । श्रीरामचन्द्रजीके जन्म लेनेके अनेक कारण हैं, जो एक-से-एक बढ़कर बिचित्र हैं ॥ १ ॥

जन्म एक हूय कहैं पक्ष्मी । साधधान सुनु सुमति मनानी ॥

हारपास हरि के प्रिय होइ । जब भव विषय जान सब होइ ॥ २ ॥

हे सुन्दर बुद्धिपायी भवानी ! मैं उनके दो-एक जनोंका विसारसे वर्णन करता हूँ, हम साधधान होकर सुनो । श्रीहरिके भव और विषय दो प्यारे हारपास हैं, जिनको सब जोई जानते हैं ॥ २ ॥

विम साध तैं दूषत कहैं । कामस असुर देह छिद्र पाई ॥

कमकसियु अह हाटकओचर । जगतविदित सुरपति मइ मोचन ॥ ३ ॥

उन दोनों भाइयोंने ब्राह्मण (सम्राज) के शापसे असुरोंका तानवी शरीर पाया । एकका नाम था हिरण्यकशिपु और दूसरेका हिरण्यक । ये देवराज इन्द्रके गर्वको कुड़ाने-वालों की गलतमें प्रसिद्ध हुए ॥ ३ ॥

बिजई जमर बीर विष्णुमत । बरि बराह प्यु एक विपत्ता ॥

होइ नरहरि दूसर पुनि मारा । जव प्रहस्य सुखस विचारा ॥ ४ ॥

ये युद्धमें विजय पानेवाले विष्णुमत बीर थे । इनमेंसे एक (हिरण्यक) को मगधराज ने बराह (संभर) का शरीर धारण करके मारा किन्तु दूसरे (हिरण्यकशिपु) का नरसिंह-रूप धारण करके बर्ध किया और अपने भक्त ब्रह्मादिक सुन्दर रूप फैलाया ॥ ४ ॥

दो०—भए निंसाचर जाइ तेह भद्रावीर पक्षधाम ।

कुम्भकर्ण रावन सुमट सुर बिजई जय मान ॥ १२२ ॥

ये क्षी [दोनो] जकर देवताओंको बीत्नेवाले तथा बड़े बड़े ब्रह्मा, रावण और कुम्भकर्ण नामके भट्टे बलवान् और महावीर राखत हुए, किन्हीं द्वारा जगत् जयनेवा है ॥ १२२ ॥

चौ०—सुकुल भ मरु हते मकानक । लीनि पक्ष्य द्विज वचन प्रबाना ॥

एक बार छिद्र के द्विज काबी । चरेड सुरीर मकान मरुगामी ॥ १ ॥

भगवान्के द्वारा मरे जानेपर भी ये (हिरण्यक और हिरण्यकशिपु) इसीलिये शक नहीं हुए कि ब्राह्मणके वचन (शाप) का प्रमाण तीन जन्मके लिये था । अतः एक बार उनके कर्मणोंके लिये भक्त्योगी मगधराजने फिर अवतार लिया । ॥ १ ॥

कश्यप भदिति तहाँ चितु मरुत । एसरय कौस्तुभ विचारा ॥

एक कश्यप एहि विधि-मकानक । कलित-फनिज किद् संसारा ॥ २ ॥

वहाँ (तब अवतारमें) कश्यप और भदिति उनके मकान-मिठा हुए, जो बराह

और कौसल्या ने नाम्ने प्रसिद्ध थे । एक कसमें इस प्रकार बतवार लेकर उन्होंने संसार में पवित्र लीलाएँ कीं ॥ २ ॥

एक कसम धुर इंसि दुकारे । तमार जळंधर सब सब इन्हे ॥

संभु जीव्य संगमन जळर । द्रुपुड महापुरु मरु न मार ॥ ३ ॥

एक कसमें सब देवताओंको तळन्दर दैत्यो दुहमें दुर जानेके कारण दुखी होकर शिवजीने उसके साथ कहा और द्रुपुड किया; पर ॥ महापरी दैत्य मारे नहीं मरवा था ॥ ३ ॥

परम सती जमुतापिप भारी । तेहि बळ तहि न निवहि डुगरी ॥ ४ ॥

उक्त दैत्यराजप्री ली परमसती (सद्गीरीशतिमता) थी । उहीके प्रतापसे त्रिपुरासुर- [जैसे अनेक राघु] का विनाश करनेवाले दिक्कती भी उस दैत्यको नहीं जीत सके ॥ ४ ॥

हो—छल करि दारेड तसु ब्रत प्रभु मुर कारज कीन्ह ।

तब तेहि कामेड मरन सब आप कोप करि दीन्ह ॥ १२३ ॥

प्रभुने छलसे उक्त लीला का ब्रत कर देवताओंका काम किया । जब उस लीने वह भैरव जाना, तब उतने कोप करके भयमानको घायल किया ॥ १२३ ॥

हो—भाबु भाव इरि दीन्ह अमाता । लीलाकविधि कृपाक भावाभा ॥

तहाँ जळंधर ताम्र भयक । एव इति राम परम पदु दयक ॥ १ ॥

लीलाओंके मन्थन कृपाद्व इरिने उस लीके भावको प्राणलप दिया (लीलाकार किया) । वही जळंधर उक्त कसमें राजन हुआ, लीले श्रीरामचन्द्रजीने मुझमें साफल्य परमपद दिया ॥ १ ॥

एक कसम कर करन पूजा । तेहि लीप राम श्री नर देहा ॥

प्रति बतवार बयस प्रभु कैरी । सुनु सुनि वरणी कविन्द धनेरी ॥ २ ॥

एक कसमका करन यह था, जिससे श्रीरामचन्द्रजीने मनुजदेह धारण किया । हे मरुताज सुनि । सुनो; प्रभुके मलेक बतवारकी कथाका कवियोंने नामा प्रकाशते वर्णन किया है ॥ २ ॥

नारद श्रम दीन्ह एक शक्त । कसम धुर तेहि छमि बतवत्ता ॥

गिरिजा बलिह भाई सुनि वली । नारद विष्णुमगत सुनि गदावी ॥ ३ ॥

एक बार नारदजीने शक्त दिया; अतः एक कसमें उसके छिमे बतवार हुआ । यह बात सुनकर पार्वतीजी बड़ी बलिह हुई [और बोली कि] नारदजी दो विष्णुपुत्र और लनी हैं ॥ ३ ॥

कारन कसम भाव सुनि दीन्हा । कर बतवत्ता रसापति कीन्हा ॥

यह प्रसंग मोहि बहू डुगरी । सुनि मव मोह बावत्ता भारी ॥ ४ ॥

मुनिने भगवान्को शक्त कित करके दिला ? जळीरति भगवत्ते उनका क्या बतवत्ता किया था ? हे पुनि (बहूखी) ! यह कथा मुझसे कहिये । मुनि नारदके मनमें मोह होना बड़े आश्चर्यकी बात है ॥ ४ ॥

हो—चोळे विहसि मोहस तव ग्यानी मुह व कोह ।

जेदि अस राहुपति करहि सब सो तस तेहि छव होर ॥ १२४ (क) ॥

यह महादेवजीने ईश्वरका—च कोई ज्ञानी है न कोह । श्रीगुणाधारी जब ब्रह्मको जेला करते हैं, वह उन्हीं का वैरा ही हो जाता है ॥ १२४ (क) ॥

सो—कहते राम गुन बाप फट्ठास सावर सुनहु ।

भय भंजन रघुनन्द महु तुलसी तजि मान मर ॥१२४(ख)॥

[बाणवल्गवी कहते हैं—] हे भरद्वाज ! मैं श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंकी कथा कहता हूँ, तुम धारसे सुनो । तुलसीदासजी कहते हैं—मान और मरको छोड़कर आनन्दमनका नाश करनेवाले रघुनाथजीको भजो ॥ १२४ (ख) ॥

चौ—हिनगिरि गुहा एक गति पावनि । जह समीप सुखसुख सुहस्रनि ॥

आश्रम परम पुनोत सुहावा । देखि देखिनि मन अति भावा ॥ १ ॥

हिमालय पर्वतमें एक बड़ी पवित्र गुहा थी । उसके समीप ही सुन्दर गङ्गाजी बहती थी । यह परम पवित्र सुन्दर आश्रम देखनेपर नारदजीके मनको बहुत ही सुहावना लगा ॥ १ ॥

निरखि सैक सरि विपिन पिशाङ्ग । मकड़ समापति पद भुराणा ॥

सुमिरत हरिहि ध्याय गति वापी । सुख निमग्न मन कामि समाधी ॥ २ ॥

पर्वत, मकड़ी और मकड़े [सुन्दर] विभागोंको देखकर नारदजीका लक्ष्मीकान्त मनसाके चरणोंमें प्रेम हो गया । मगधार्क्य धारण करते ही उन (नारद मुनि) के बापजी (जो बाप उन्हें दश प्रजापतिने दिया था और जिसके कारण वे एक स्थानपर नहीं छहर सकते थे) गति रुक गयी और मनके स्वाभाविक ही विरक्त होनेसे उनकी समाधि लगा गयी ॥ २ ॥

हुनि गति देखि सुनेस बैराना । कामदि देखि कीन्ह खनमाका ॥

सहित सहाय बाहु मम हेत । चलेत हरिनि हिये लक्ष्मणकेत ॥ ३ ॥

नारद मुनिजी [यह तपोमयी] स्थिति देखकर देवराज इंद्र डर गया । उसने कामदेवको बुलाकर उसका आदर-सत्कार किया [और कहा कि] मेरे [हितके] छिये हुए अपने छायाकाँधहित [नारदजी समाधि भङ्ग करनेको] बाधो । [यह हुनकर] मीनव्रज कामदेव मनमें प्रवृत्त होकर चला ॥ ३ ॥

सुनासीर मन महुँ अस्ति ज्ञान । जह देखिनि मम पुर कला ॥

ते कानी छोड़्यु जग माहीं । कुटिल सक इय सखि बैराहीं ॥ ४ ॥

इन्द्रके मनमें यह डर हुआ कि देवर्षि नारद मेरी पुरी (अमरावती) का निवास (राज्य) चाहते हैं । अतएव जो कसभी और जोभी होते हैं, वे कुटिल कौएकी तरह सबसे डरते हैं ॥ ४ ॥

सो—सुख हाइ छै भयम सठ लान निरखि सुयराज ।

छीनि लेह जनि जान जह तिनि सुरपतिदि न द्याज ॥ १२५ ॥

जैसे मूर्ख कुत्ता छिंदको देखकर सूखी हड्डी छेकर भागे और वह मूर्ख, यह समझे कि फही उस हड्डीको छिंद छीन न ले, वैसे ही इन्द्रको [नारदजी जेय राज्य छीन लेंगे, ऐसा खोबरे] जान नहीं आती ॥ १२५ ॥

चौ—देहि आश्रमहि मदन मन गवत । विज जाहीं कर्षव विरमवक ॥

अनुमिद विविध विष्ट बहुरंग । कृषिहि कोषिह सुंजहि मृगा ॥ १ ॥

जब कामदेव उस आश्रममें गया, तब उसने अपनी भागते कहीं बल्ल-शूद्रको ठपका किया । तरद-तरदके शूकोपर रंग-धिरंगे फूल लिख भये, उनपर कोवर्षे मृगने कर्ण और भीर सुंनार करने लगे ॥ १ ॥

सखी सुहस्रनि विविध कपारी । कम कृषाव कृषिनिहारी ॥

रंभादिह सुरवाहि मवीर । सकल कलकलर कल प्रवीर ॥ २ ॥

१०. यवनि शिवलीने वह बिल्ली बिल्ला दी। पर नादलीके यह अच्छी न लगी। हे भद्राव ! अब चौदह (संख्या) सुनी। हरिनी इच्छा नहीं बखान् है ॥ १२७ ॥

चौ०-तन० कीन्ह बखानि सोह कीन्ह। करि कर्मका भक्त प्रति कोह ॥

११. संतु बचन सुनि अब नहि माय। तब निरति के लोक सिवाय ॥ १२८ ॥

१२. श्रीरामचन्द्रजी को करना चाहते हैं, वही सेवा है, ऐसा कोई-नहीं जो उसके विरुद्ध कर सके। श्रीविष्णुकी भक्त नादलीके मनको अच्छे नहीं। लगे, तब वे बहुत बहनोंको बच दिये ॥ १ ॥

एक बार करके पर बीमा। नादली हरि पुन यत्र प्रवेश ॥

१३. श्रीरामचन्द्रजी यत्र सुनिवाय। जहाँ बस श्रीनिवास श्रुतिमाय ॥ १२९ ॥

एक बार रामचन्द्रजीने निपुण सुनिनाथ नादली इन्हीं सुन्दर बीमा लिये, हरिपुन मीत हुए, श्रीरामचन्द्रजी यत्र, जहाँ वेदोंके महाफलरूप (नृसिंहान् वेदान्तमय) श्रीनिवास भगवान् स्थापन करते हैं ॥ २ ॥

हरिनि निके रहि समाधिगत। वैसे कल्प सिद्धि समेत ॥

१४. कोके विद्वत्ति जायन् संय। बहुते दिवस कीन्ह सुनि प्राय ॥ १३० ॥

१५. रामनिवास भगवान् उठकर वैसे आनन्दसे उनके निके और श्रुति (नादली) के साथ आनन्दपर बैठ गये। जायन्के साथी भगवान् उठकर वैसे—हे सुनि। आज भगवान् बहुत दिनोंपर क्या की ॥ ३ ॥

काम करित नाद० तब जाये। जयनि प्रथम कवि सिद्धि राखे ॥

१६. भक्ति प्रथम रूपरति है माय। वेदित मोह तब को लग जाय ॥ १३१ ॥

१७. यहाँपर श्रीविष्णुकीने उन्हें पहचाने ही बल रखता था, जो भी नादलीने फलदेकना परा करित भगवान्की कह सुनाया। श्रीकृष्णजीकी माया नहीं ही प्रकाश है। जयार्थ देखा तीन प्रमा है, जिसे वह मोहित न कर दे ॥ ४ ॥

१८. कल बहम करि कवन मुहु बोले शिवपराय ॥

१९. तुम्हरे सुमिरन में मित्रहि मोह सार भव माय ॥ १३२ ॥

२०. भगवान् कला मुह करते होमक कवन बोले—हे सुमिरन। नादली सरप करनेसे दूसरीके मोह, काम, भव और अधिमान मिट जाते हैं। फिर आनन्द निके तो क्या ही क्या है ॥ १३३ ॥

चौ०-मुहु सुनि मोह होह जब तर्क। जयनि विद्या उपर कीन्ह ॥

२१. नदधरम प्रथ ह्य गतिभीष। तुम्हहि कि करह मनेयन सौर ॥ १३४ ॥

२२. हे सुनि। सुनिये, मोह तो उनके मनमें होता है जिसके द्वारा हमें ज्ञान-वैराग्य नहीं है। आप तो ब्रह्मचर्यपथसे तपन और वसे वीजुद्धि हैं। मन्त्र क्यों अमरको भी कावरेय क्या करता है ॥ १ ॥

नाद० कोह उदित अधिमान। पुन तुम्हहि उदक भगवान् ॥

२३. कदाचिदि मन्त्र दीप्त निवर्ती। तब अंजनेन करत तब मरी ॥ १३५ ॥

नादलीने अधिमानके साथ कहा—भगवान् ! वह कर्म आपकी कृपा है। कदाचिदि मन्त्र भगवान्ने मन्त्रे विचारका देखा कि इनके मनमें कर्मे भरी उदक बहुत पैदा हो गया है ॥ २ ॥

२४. को को अविद्वन् उदाले। एवं इमार लेक दिवसरी ॥

सुनि कर विद्वत् बर चौदह होई। कदाचि उदक कवि हैं कोई ॥ १३६ ॥

मैटसे दुरंत ही उखाड़ केहुँग, कबोकि केवळोका शिव करना हमारा प्रण है । मैं
अवश्य ही यह उपाय करूँगा जिससे मुनिका कल्याण और मेरा खेद हो ॥ ३ ॥

तब नगर दुर्गिष्व स्थित थाई । फले दुर्ग्ये यदमिति भविकार्य ॥

पीपति विद्व मग्ना एव प्रेरी । बुबुधु कठिन करवीं लेहि केरी ॥ ४ ॥

तब नारदजी भगवान्‌के चरणोंमें स्थिर नवाकर बसे । उनके हृदयमें अभिमान
और भी बढ गया । तब अश्लीलता मगवान्‌ने अपनी भाषाको प्रेरित किया । कम
उत्तरी कठिन करनी मुनी ॥ ४ ॥

श्लो०—विरचेत मग सहुँ नगर लेहि सत जोजन विस्तार ।

धीनिवाच पुर तै अधिक रख्य विविध प्रकार ॥ १२९ ॥

उठ (हरिमाया) ने रास्तेमें सौ योन्म (चार सौ कोठ) का एक नगर रचा ।
उस नगरकी भौति भौतिकी रचनाएँ अभीनिवाच भगवान्‌ विष्णुके नगर (वैकुण्ठ) से
भी अधिक सुन्दर थी ॥ १२९ ॥

श्लो०—बसोह नगर सुंदर बन गरी । बहु दहु मगसिब रति लज्जुगारी ॥

लेहि ॥ कपट सीधमिति राजा । सपथिष्व ह्य कथ सेन समजा ॥ १ ॥

उस नगरमें ऐसे सुन्दर नर-नारी बसते थे मानो बहुत से कामदेव और [उच्छवी
ली] रति ही मनुष्य स्त्रीके पारण करने हुए हो । उस नगरमें सीधमिति नामका राजा
राजा था, जिसके यहाँ अकल्प सेने, शायी और सेनाके लखू (हुकूमियों) थे ॥ १ ॥

सत सुरेख सम विषय विजयता । कप सेन बच लेहि निजाता ॥

विजयोदही तनु कुमारी । भी विनोद विभु हनु विहारी ॥ २ ॥

उसका दैत्य और विजय से दन्तोंके समान था । का हत, सेन, बच और
नीतिज्ञ घर था । उसके विजयोदही नामके एक [ऐसी कन्यकी] कन्या थी,
जिसे लपटो देकर अश्लीली भी मोहित हो जायें ॥ २ ॥

श्लो०—रियमा सब पुन सायी । लोका ताहु कि भाइ बछारी ॥

कपट उच्छ्वर से मुकताय । आप लई बसति सदिपाय ॥ ३ ॥

पर सब गुणीकी खान भगवान्‌की गवा ही थी । उसकी गोमताका बर्णन कैसे किया
जा सकता है ! यह राजकुमारी लम्बर करना चाहती थी, इसके पहले भगवित राजा
आये हुए थे ॥ ३ ॥

मुनि कौहुँको नगर लेहि बसत । पुरकमिष्व सब पूज्य मयत ॥

मुनि सय चरित भूष गृह आप । करि पूज्य हृष मुनि वैठाप ॥ ४ ॥

सितवाही मुनि नारदजी उस नगरमें गये और नरकवासियोंसे उन्होंने सब पूज्य
पूजा । वह नरकवासी मुनिकर से राजाके महलमें आये । राजाने पूज्य करके मुनिकी
[भासनगर] बैठाय ॥ ४ ॥

श्लो०—आनि देखाई नरदहि भूषति राजकुमारि ।

कहहु गाय शुष दोष सब पदि के हृदयें विचारि ॥ १३० ॥

[फिर] राजाने राजकुमारीको लकरनारदजीको दिखलाया [और पूछा कि—]
हे भाय ! आप अपने हृदयमें विचारकर इसके सब शुष-दोष कहिये ॥ १३० ॥

श्लो०—देसि कप मुनि विरति पिछारी । ज्यो कर कति रहे निहारी ॥

कच्छम ताहु किलोकि मुकने । हृदयें हरष यदि प्रवट बसावे ॥ १ ॥

उसके रूपको देखकर मुनि वैराग्य भूल गये और धड़ी देर तक उसकी ओर देखते ही रह गये । उसके लक्षण देखकर मुनि अपने व्यापको भी भूल गये और हृदयमें हर्षित हुए, पर प्रकटरूपमें उन लक्षणोंको नहीं बता ॥ १ ॥

जो पृथि बरह अमर खेह होई । समस्तभूमि वेदि जीत न कोई ॥

खेहि सबस्य चरान्तर ताहीं । बरह खीलनिधि कन्या ताहीं ॥ २ ॥

[लक्षणोंको सोचकर वे मनमें कहने लगे कि—] जो इसे न्याहेगा, वह अमर हो जायगा और रणभूमिमें कोई उसे जीत न सकेगा । वह खीलनिधिका कन्या निकली होगी, सब घर-धरकर जीव उसकी सेवा करेंगे ॥ २ ॥

लक्षण सब विचारि सर राखे । कबहु कनाह धूप सब भाये ॥

मुता मुलच्छव कहि रूप पाहीं । बारह कले सोच मन माहीं ॥ ३ ॥

सब लक्षणोंको विचारकर मुनिने अपने हृदयमें रख लिया और राजसे कुछ अपनी ओरसे बनाकर कह दिये । राजसे लक्ष्मीके मुलक्षण कहकर नारदजी बल दिये । पर उनके मनमें यह चिन्ता थी कि— ॥ ३ ॥

कहीं काह सोह कवन विधारी । खेहि प्रभर मोहि बरै कुमारी ॥

जप तप कबु न होह वेदि कल । हे निधि मिलह कवन विधि काज ॥ ४ ॥

मैं जाकर सोच-विचारकर यही उपाय करूँ जिससे वह कन्या मुझे ही बरे । इस समय काय-तन्त्रसे तो कुछ हो नहीं सकता । हे विधाता ! मुझे वह कन्या किस तरह मिलेगी ? ॥ ४ ॥

दो०—पृथि अवसर खादिल परम स्नेहा रूप विद्याल ।

जो बिछोकि रीझे कुमैरि तब मेळै अपमाळ ॥ १३१ ॥

इस समय तो पृथ्वी भारी शोभा और विद्याल (सुन्दर) रूप चाहिये, निसे देखाकर राजकुमारी मुक्तपर रीझ जाय और तब अपमाळ [मेरे गलेमें] डाल दे ॥ १३१ ॥

चौ०—हरि सन मानी सुन्दरताई । होइदि काज गहव अति भाई ॥

मोरें-हिस हरि सम बहि कोऊ । पृथि अवसर सहाय सोह होऊ ॥ १ ॥

[एक काम कहूँ कि] भगवान्से सुन्दरता पाँऊँ पर भाई ! उनके पास जानेमें तो बहुत देर हो आयगी । किन्तु श्रीहरिके समान मेरा हित भी कोई नहीं है, इसलिये इस समय वे ही मेरे सहायक हों ॥ १ ॥

बहुविधि विनय कीन्हि वेदि काज । प्रभवेन प्रभु कौतुकी कृपाका ॥

प्रभु बिछोकि मुनि कवन छुड़ने । होइदि काज दिव्य हरपाने ॥ २ ॥

उस समय नारदजीने भगवान्की बहुत प्रकारसे विनती की । तब श्रीहामय कृपाशाली [वही] प्रकट हो गये । स्वामीको देखकर नारदजीके नेत्र भीतर हो गये और वे मनमें बके ही हर्षित हुए कि अब तो प्रभु बन ही जायगा ॥ २ ॥

अति आरति कबि कथा सुनाई । कबहु कृपा करि होहु सदाई ॥

आपन रूप हेतु प्रभु मोही । जान मीति नाहि पावौ ओही ॥ ३ ॥

नारदजीने बहुत मार्त (रीति) होकर सब कथा कह सुनायी [और प्रार्थना की कि] कृपा कीजिये और कृपा करके मेरे सहायक बनिये । हे प्रभो ! आप अपना रूप मुझको दीजिये; और किसी प्रकार मैं उस (रामकन्या) को नहीं पा सकता ॥ ३ ॥

खेहि विधि नाथ होह दिव्य-मोख । कबहुँ सो नेमि दास मैं तोरा ॥

निज माका कल देखि विद्याल । दिव्य हिसि कोऊ दीपदवाला ॥ ४ ॥

हे नाथ ! जिस तरह मेरा हित हो, आप कही चीज कीजिये ! मैं आपका दास हूँ । आपकी मायाका विशाल बल देख दीनदवाह भगवान् मन-ही-मन हैसकर बोले—॥ ४ ॥

दो—जेहि बिधि होवहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार ।

सोइ हम धरय त आन कहु बचन न सृषा हमार ॥ १३१ ॥

हे नारदजी ! सुनो, जिस प्रकार आपका तम हित होगा, हम वही करेंगे; दूसरा कुछ नहीं । हमारा बचन अकल नहीं छेदा ॥ १३१ ॥

दो—कुण्ड मग्य इस व्याकुल रोनी । नैद न देख सुनहु मुनि जेनी ॥

दृष्टि बिधि हित तुम्हार मैं ठगऊ । कहि अस अंतरहित प्रभु भयऊ ॥ १ ॥

हे योगी मुनि ! मुनिवै, रोमसे व्याकुल रोनी कुण्ड मग्य मैं तो वैषाउते नहीं देता । उठी प्रकार मैंने भी तुम्हारा हित करनेकी ठान ली है । ऐसा कहकर भगवान् अन्तर्दान हो गये ।

साधा बिनास कर मुनि सुख । लसुखी नहि हरि मिरा भिगुना ॥

गवने सुरत लहीं निधिराई । जहाँ स्वर्णर भूमि जगई ॥ १ ॥ ~

[भगवान्की] मायाके कर्मात्त हुए मुनि ऐसे मूढ़ हो गये कि वे भगवान्की अगूढ़ (स्वर) धारियों की न समझ सके । श्रुतिपात्र नारदजी तुरत वहाँ गये जहाँ स्वर्णरकी भूमि बसायी गयी थी ॥ २ ॥

मिथ मिथ धासय बैठे राज । चमार कर सहित समारा ॥

मुनि मन हरष कर कति सोरें । मोहि तनि लखहि बरिहि न भोरें ॥ १ ॥

राजाकीय लूत सब-सबकर समाकहित अपने-अपने आसनपर बैठे थे । मुनि (नारद) मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे कि मेरा कम बड़ा सुन्दर है, मुझे छोड़ फन्दा भूलकर भी दूसरेकी न करोगी ॥ २ ॥

मुनि हित करय कृपानिधाना । दीन्ह कुसल न जगु यज्ञाणा ॥

सो चरित्र खल कहुँ न पाया । नारद जाहि लखि सिर नाथा ॥ ३ ॥

कृपानिधान भगवान्ने मुनिके कल्याणके लिये उन्हें ऐसा कुसल बना दिया कि निरुद्धा वर्णन नहीं हो सकता; पर वह चरित्र कोई भी न जान सके । अपने उन्हें नारद ही जानकर प्रशन्न किया ॥ ४ ॥

दो—रहे तहाँ सुर रद गव ते आनहि सब भेद ।

गिरयेव देखत फिरहि परम कौतुकी तेउ ॥ १३३ ॥

वहाँ दो दिग्दर्शक गये भी थे । वे सब भेद जानते थे और ब्राह्मण सब वेद बनाकर हारी जीव देखते मिलते थे । वे भी कहे गौरी थे ॥ १३३ ॥

दो—जेहि समाज बैठे मुनि जगई । इतैं कर अग्रिमलि अधिकार ॥

सर्व बैठे ग्येस बन लोक । गिरयेव सति कसद न लोक ॥ १ ॥

नारदजी अपने हृदयमें समस्त सब गणिमान लेकर जिस समाज (पंक्ति) में आकर बैठे थे, वे दिग्दर्शक दोनों सब भी वहीं बैठ गये । ब्राह्मणके देखमें होनेके कारण उनकी इस बातकी कोई न जान सका ॥ १ ॥

कहि कृति नारदहि सुनई । कीकि दीन्हि हरि सुंदरताई ॥

रीझिहि लखकुंजि लयि केसी । हनहि बरिहि हरि जाति बिलेसी ॥ २ ॥

वे नारदजीको सुना-सुनकर जंम बचन कहते थे—भगवान्ने इनको अपनी 'सुन्दरता' दी है । इनकी ओमा देखकर राजकुमारी रीझ ही जावती और 'हरि' (नारद) जानकर इन्हींको लख तीरते करेगी ॥ २ ॥

मुनिहि मोह मन हाथ पराई । हँसहि संसृजन बलि सनु पाई ॥

बदलि मुनिहि मुनि अल्पति बानी । समुद्रि न परह बुद्धि भ्रम सानी ॥ ३ ॥

नारद मुनिको मोह हो रहा था, क्योंकि उनका मन दूसरेके श्रव (मायाके वश) में था । शिवजीके गण बहुत प्रसन्न होकर हँस रहे थे । वचपि मुनि उनकी अटपटी बातें सुन रहे थे, पर बुद्धि भ्रममें लगी हुई होनेके कारण वे बातें उनकी समझमें नहीं आती थीं (उनकी बातोंको वे अपनी प्रशंसा समझ रहे थे) ॥ ३ ॥

काहूँ न उल्लासो चरित विसेष । सो सख्य नृपकन्यो देखा ॥

मकंद बदध भवकर देहो । देखत हृदयें ओष भा तेहो ॥ ४ ॥

इस विशेष चरित्रको और किसीने नहीं जाना, केवल राजकन्याने [नारदजीका] यह रूप देखा । उनका बंदरका-सा मुँह और भवकर शरीर देखते ही कन्याके हृदयमें मोह उत्पन्न हो गया ॥ ४ ॥

यो—सखी संग छै कुअरि तब चलि जनु राजमराल ।

देखत फिरह महीप सब कर सरोज अयमाल ॥ ११४ ॥

तब राजकुमारी सखियोंको साथ लेकर इस तरह चली गयी राजहंसिनी चल रही है । वह अपने कमल-जैसे हाथोंमें कमाल लिये सब राजाजीकी देखती हुई ब्रम्मे लगी ॥ ११४ ॥

चौ—जेहि बिसि बैठे पारव फूल । सो दिखि तेहि बल्लोकी झूल ॥

मुनि मुनि मुनि उल्लासहि बकुलहीं । देखि रसा ॥ गव मुसुकाहीं ॥ १ ॥

जिस ओर नारदजी [रूपके दर्शन] फूले बैठे थे, उस ओर उसने झुककर भी नहीं थाका । नारद मुनि धार-धार उल्लासते और छल्लासते हैं । उनकी दशा देखकर शिवजीके गण मुसकाते हैं ॥ १ ॥

परि मृपतनु सई गयत कृपल । कुअरि हरिषि मेकैव खबनाल ॥

बुलहिनि छै मे उच्छिनिवसा । मृपसमाज सब भवत निरास ॥ २ ॥

कृपाश्रु भगवान् भी राजाका शरीर धारणकर वहाँ जा पहुँचे । राजकुमारीने हर्षित होकर उनके गलेमें कमाल डाल दी । उच्छ्वसितभाव भगवान् बुलहिनको ले गये । तारी राजमण्डली निराश हो गयी ॥ २ ॥

मुनि अति विकल मोह भलि गली । मयि मिरि कई झूझि बहु गौडी ॥

तब हर गव कोके मुसुकाई । मित्र मुख मुकुन बिलोकहु जाई ॥ ३ ॥

मोहके कारण मुनिजी बुद्धि नष्ट हो गयी थी, हल्ले वे [राजकुमारीको गयी देस] बहुत ही विकल हो गये । मानो गौठले झूठकर मयि किर गयी हो । तब शिवजीके गणोंने मुसकारकर यक्ष—जाकर दर्शनमें अपना मुँह तो देखिये ! ॥ ३ ॥

अस कहि दोड आगे सर्व गली । बदध दीप्त मुनि बरि निहारी ॥

बेषु बिलोकि ओष बलि काय । किन्हहि समग दीप्त बलि गाथा ॥ ४ ॥

ऐसा कहकर वे दोनों बहुत मगध्वीत होकर आगे । मुनिने कठमें शौककर अपना मुँह देखा । अपना रूप देखकर उनका मोह बहुत बढ़ गया । उन्होंने शिवजीके उन गर्वोच्च अत्यन्त कठोर शपथ—॥ ४ ॥

यो—होहु निस्तार जाह तुम्ह कपटी पापी दोड ।

हँसेहु हमहि सो लेहु फल वदुरि हँसेहु मुनि कोव ॥ ११५ ॥

तुम दोनों कटो और पापी नाकर राक्षस हो जाओ । तुमने हमारी हँसी की,
उसका फल चखो । अब फिर किसी मुनिकी हँसी करना ॥ १३५ ॥

चौ०—मुनि नल दीप्त रूप निद्र कथ । उदपि हृदय संतोष न भावा ॥

— फलदात अघर कोष मन माहीं । लपटि चले कमलपति पाहीं ॥ १ ॥

मुनिने फिर लक्ष्मी देखा, तो उन्हें अपना (लक्ष्मी) रूप प्राप्त हो गया; तब
मीठ्ठनहीं सन्तोष नहीं हुआ । उनके आँठ फट्टक रहे वे और मनमें श्रेष्ठ [भरा] था ।
दुरंत ही वे भगवान् कमलपतिके पास चले ॥ १ ॥

देहर्ष आष फि भरिहर्ष आई । अगल सोरि लपटाव कराई ॥

नीचहि पँव मिळे दलुचारी । संव रमा सोह रामकुमारी ॥ २ ॥

[मनमें सोचते आते थे—] नाकर वा सो आप दूँगा वा प्राण दे दूँगा । उन्होंने
अगलमें मेरी हँसी करायी । देखोके लघु भगवान् हरि उन्हें बीच रास्तेमें ही मिल गये ।
माथमें लक्ष्मीकी और वही रामकुमारी थी ॥ २ ॥

लोके मधुर बचन सुरसाई । मुनि कई चले निरुक्त की नाई ॥

सुखत बचन उषका अति प्रोष । नाचा कत न रहा मध बोझा ॥ ३ ॥

देवताओंके स्वामी भगवान्ने मीठी बानीमें कहा—हे मुनि । व्याकुलकी तरह
क्यों चले । वे शब्द सुनते ही नारदको बड़ा श्रेष्ठ आया । मायाके पक्षीभूत होनेके
कारण मनमें चेत नहीं रहा ॥ ३ ॥

पर संवश लफटु नहि देखी । तुम्हरे हरिवा कष्ट किसीही ॥

मयत सिद्ध छदि वीरायडु । सुरन्द मेरि विष पाव करापडु ॥ ४ ॥

[मुनिने कहा—] तुम दूनरोंकी सम्पदा नहीं देना सकते, तुम्हारे हृदयों और
कण्ठ बहुत हैं । समुद्र मयते समय तुमने धिक्कीको वाक्य बना दिया और देवताओंको
मेरि करके उन्हें विषयान कराया ॥ ४ ॥

शौ०—मधुर सुरा विष संकरहि आपु रमा ममि आव ।

स्वारय साधक कुटिल तुम्ह सदा कपट व्यवहार ॥ १३६ ॥

भट्टोंको मधिरा और दिल्लीको विष देकर तुमने स्वयं लक्ष्मी और सुन्दर
[कोस्तुम] मणि के ली । तुम बड़े भोलेबाज और मत्तकी हो । सदा कपटका व्यवहार
करते हो ॥ १३६ ॥

चौ०—परम सतंश न शिर पर कोई । भवइ मयहि करहु तुम्ह सोई ॥

मलेहि मंद मदिहि भल कस्तु । विस्मय हरप न दिखै कतु धरहु ॥ १ ॥

तुम परम सतंश हो, शिरपर तो कोई है नहीं, इससे क्या जो मनको भाता है,
[सच्छन्दतासे] वही करते हो । मलेको सुरा और सुरेको मल कर देते हो । हृदयमें
ईर्ष्या-विषाद कुछ भी नहीं जते ॥ १ ॥

उहकि उदपि फरिहेतु सन काहु । अति अलंक मन सदा उरुमहु ॥

करम सुमसुख तुम्हहि न बाधा । अब जगि तुम्हहि न काई साधा ॥ २ ॥

उपको ठग-ठगकर परक गये हो, और अत्यन्त निद्र हो गये हो; इसीसे
[ठगनेके काममें] मनमें सदा उत्साह सदा है । सुम-सुख कर्म तुम्हें बाधा नहीं
है । अवश तुमको किसीने ठीक नहीं किया था ॥ २ ॥

मले मय अब बावन दीन्हा । काहुने फल कावन कीन्हा ॥

नयेहु मोहि अकनि धरि देहा । सोह लघु धरहु अब मय एहा ॥ ३ ॥

अबकी तुमने अच्छे घर बना दिया है (मैंने जवर्दस्त बादमीके जेदखानी की है) । अतः अपने किमेका फल अवश्य पाओगे । जिस शरीरको धारण करके तुमने मुझे ठगा है, तुम भी वही शरीर धारण करो, वह मेरा साथी है ॥ ३ ॥

कवि भाकति तुम्ह कीन्दि हमारी । करिहहिं कीस, सखस तुम्हारी ॥

मम अपकार कीन्दि तुम्ह सखी । धरि किरहें तुम्ह होब दुखारी ॥

तुमने हमारा रूप बन्दरका-सा बना दिया था, इससे बन्दर ही तुम्हारी सहाया करेंगे । [मैं जिस लीको चाहता था उससे मेरा वियोग करकर] तुमने मेरा बड़ा अहित किया है, इससे तुम भी लीके वियोगमें दुखी होगे ॥ ४ ॥

दो—आप सीस धरि हरषि हियँ प्रसु बहु बिनती कीन्दि ।

मिज माया के प्रबलता करषि कृपामिचि लीन्दि ॥ ११७ ॥

छापको सिरपर बदाकर, हृदयमें दक्षि होते हुए प्रसुने नारदजीके बहुत पिनवी की और कृपानिधान भगवान्ने अपनी मायाकी प्रबलता सीस ली ॥ ११७ ॥

चौ—तब हरि मत्वा हरि निवारी । बहिं तहँ रमा न राजकुमारी ॥

तब मुनि भक्ति सखीत हरि करन । गये कहि प्रवसरति हरना ॥ १ ॥

तब भगवान्ने अपनी मायाको हटा दिया, तब नहीं न लक्ष्मी ही रह गयी, न राजकुमारी ही । तब मुनिने अत्यन्त भयभीत होकर भीखरके चरण पकड़ लिये और कहा—हे धारणागतके दुष्कर्माको हरनेवाले ! मेरी रक्षा कीजिये ॥ १ ॥

मुवा होब मम जब कृपाका । मम इच्छा कह दीनप्राका ॥

मैं दुर्बचन कहे छुतेरे । कह मुचि पाप मिटिहि किमि मेरे ॥ २ ॥

हे कृपाका ! मेरा छाप मिथ्या हो जाय । तब दीनोंर दया करनेवाले भगवान्ने कहा कि यह सब मेरी ही इच्छा [से हुआ] है । मुनिने कहा—मैंने आपको अनेक छोटे वचन कहे हैं । मेरे पाप कैसे मिटेंगे ? ॥ २ ॥

बपहु आइ छंकर सख नामा । होइहि हरहँ प्रेत-मिथसा ॥

कोइ बहिं सिव समान प्रिय भोरें । अति प्रसीति कबहु लोच भोरें ॥ ३ ॥

[भगवान्ने कहा—] जबकि छंकरजीके अतिनाम्ना पूरा करे, तब ही हृदयमें ईश्वर शान्ति होगी । शिवजीके समान तुम्हें कोई प्रिय नहीं है, इस किन्तकी भूलकर भी न छोड़ना ॥ ३ ॥

मेदि पर कृपा न करहिं पुरारी । कोउ पय मुचि भवति हमारी ॥

जस उर धरि गहि भिन्नहु जहँ । जस ये तुम्हहि जस निभेराइ ॥ ४ ॥

हे मुनि ! पुरारि (शिबजी) जिसपर कृपा नहीं करते, वह मेरी सखी नहीं पाता । हृदयमें ऐसा निश्चय करके जबकि भुञ्जित निचोरे जाये, मेरी माया तुम्हारे निकट नहीं आवेगी ॥ ४ ॥

दो—बहुचिचि मुनिहि प्रबोचि प्रसु तब भए अंतराधाम ।

सत्य लोक नारद चले करत राम गुन मान ॥ १२८ ॥

बहुत प्रकारसे मुनिसे मन्त्रा-मुखाकर (दादरा देकर) सब प्रभु अन्तराधाम हो गये और नारदजी भीरामचन्द्रजीके गुणोंका गान करते हुए सत्यलोक (ब्रह्मलोक) को चले ॥ १२८ ॥

चौ—हर गन मुनिहि जस पथ देखी । विस्त मोह भन हरष चितेकी ॥

अति सखीत नारद पदि आए । बहिं पद नारत बचन मुनाप ॥ १ ॥

विचरिषे गगौने जब मुनिषो मोहरलि और मनो बहुत प्रसन्न होकर मार्गमें जाते हुए देखा। तब वे अत्यन्त मगधोत्त होकर नारदजीके पाठ वाचे और उनके चरण पदद्वारा दीन वचन बोले—॥ १ ॥

॥ गन हम न बिष मुनिषा । कः अपराध कोन्ह छल पया ॥

आप मनुग्रह करहु कृतक । कोके बारह दीनपया ॥ २ ॥

हे मुनिराज ! ॥ आप ज्ञान नहीं हैं, विचरिषे गन हैं । हमने बड़ा अपराध किया, विनाका एक हमने या विश्व । हे कृपाहृ ! जब आप दूर करनेकी कृपा कीजिये । दीनोंपर दया करनेवाले नारदजीने कहा—॥ २ ॥

निश्चिन्त जाहू देहु तुम्ह सोच । बैसा बिपुल सेव बल होय ॥

मुच नम भिक्षु जितव तुम्ह बहिष् । परिहर्हि भिक्षु यतुन ठतु तहिआ ॥ ३ ॥

॥ दोनों जकार राखत होयो ; तुम्हें मझन् ऐश्वर्य, सेव और बखी प्राति हो । तुम अपनी मुजुधोंके बखसे जब जारे विचरिषे जीव लोये, तब भवयान् किन्तु मनुष्यका शरीर पारण करिये ॥ ३ ॥

सतर सतर हरि हार्य तुम्हारा । होदहु मुकुट न पुनि संसार ॥

कले कृपक मुनि नर तिर सार्ह । मर निष्कार कसहि पार्ह ॥ ४ ॥

तुम्हें जीवितके हाथले तुम्हारी मुल्य होनी, मिले तुम मुक्त हो जाओगे और फिर सत्तामें जग्य गयीं लोके । वे दोनों मुनिके बरखोंमें तिर नवाकर चले और समय पार राखत हुए ॥ ४ ॥

रो—एक कल्प प्रति हेतु प्रभु छीन्ह मनुष्य अवतार ।

हुर रंजन सज्जन सुखद हरि मंजन मुनि भार ॥ १३९ ॥

देवताजीओ प्रसन्न करनेवाले, जन्मोंमें तुल्य देनेवाले और पृथ्वीका भार हरण करनेवाले भगवान्ने एक कल्पमें इसी कारण मनुष्यका अवतार दिया था ॥ १३९ ॥

पौ—एहि बिधि जस्य कर्म हरि भेदे । सुंदर मुकय विविध बहरे ॥

पश्य कल्प प्रति प्रभु अवतारहो । कब चलि बान्धविधि करहो ॥ १ ॥

इस प्रकार भगवान्ने भगवत् सुन्दर, सुखदायक और अशौचित्य कर्म और कर्म हैं । प्रत्येक कर्मों जन्म-जन्म भगवान् अवतार लो है और नरक परकारों सुन्दर लोकर कहे हैं ॥ १ ॥

॥ हम कय सुनीसन्त जाहू । पस्य पुरीत प्रवीच बजाहू ॥

विविध प्रसन्न मनुष्य पस्यो । कसहि न मुनि जायसु तथाये ॥ २ ॥

तब-तब सुनीसरीने पस्य विविध जन्मरचना करके उनकी कथाओंका ज्ञान किया है और भौतिक-भौतिके अतुल्य प्रसन्नता जन्म किता है, विनसे सुनक ॥ समस्तद्वार (विचरिषे) सेव जायस्य नहीं करते ॥ २ ॥

हरि जलत हरिकृपा जयस्य । कसहि सुनहि बहुविधि सब संता ॥

रामचंद्र के कसि सुसन्त । कल्प कोटि कसि कोटि न पार ॥ ३ ॥

भीरि मान्य हैं (उनका कोई पार नहीं था कल्प), और उनकी कथा भी मनन है; तब संव लेग उसे बहुत प्रसन्नते करते-सुनते हैं । श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर चरित्र कोटि कल्पोंमें भी गहरे नहीं आ सकते ॥ ३ ॥

बह प्रसन्न हैं कहा मज्जी । हरिगानों कोटि मुनि पस्यो ॥

प्रभु प्रीतिही प्रसन्न हितवरी । सेवत मुकुट सकल दुख हरि ॥ ४ ॥

[शिवजी कहते हैं कि] हे पार्वती ! मैंने यह कलनेके लिये इस प्रसंगको कहा कि हानी मुनि भी भयवशस्त्री मायासे मोहित हो जाते हैं । प्रभु कौतुकी (लीलाय) हैं और शरणागतका हित करनेवाले हैं । वे सेवा करनेमें बहुत सुलभ और सब दुःखोंके हलनेवाले हैं ॥ ४ ॥

सो०—सुर नर मुनि कोइ नाहि जोहि न मोह माया प्रबल ।

यस विचारि मन माहि मज्जिम महाभाया पतिहि ॥ १५० ॥

देवता, मनुष्य और मुनिकीमें ऐसा कोई नहीं है किसे भयान्की महान् कष्टकी माया मोहित न कर दे । मनमें ऐसा विचारकर उस महाभायके स्वायी (प्रेय) भयान्का भजन करना चाहिये ॥ १४० ॥

सौ०—अपर हेतु सुख सैवकुमारी । कहैं विविध कथा विजारी ॥

जेहि कारण सब अशुच अल्पक । तब नष्ट होसकपुर भूष ॥ १ ॥

हे गिरिराजकुमारी ! जब भयान्के अकारका यह वृत्ता कारण सुनो—मैं उसकी विविध कथा विस्तार करके कहता हूँ—जिस कारणसे कन्यारहित, निर्गुण और स्मररहित (भक्त्य लक्षिरान्धन) तब भवोन्मादीके राधा हुए ॥ १ ॥

जो प्रभु विविध चित्त दुःख देता । संतु समेत बरें- सुनिषेका ॥

साधु चरित अलोकिक भवानी । सती सती रहिहु बीरानी ॥ १ ॥

जिन प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके हुमेने माई कल्याणकी साथ सुनियोका-सा वैष कारण किये वनमें फिरते देखा वा, और हे भवानी ! जिनके चरित देखकर, सतीके चरितमें तब ऐसी वाक्यी हो गयी थी कि—॥ २ ॥

जगहुँ न सया मिमति सुन्दरी । साधु चरित सुनु मन मन हारी ॥

कीका कीमि जो तेहि अक्षर । सो सब कहिहुँ मति अनुसारी ॥ २ ॥

अब भी हमारे उस वाक्यकी छाया नहीं भिखी, उन्हीं भ्रमकी रोगके कारण करनेवाले चरित सुनो । उस अक्षरमें मयावने बो-बो कीका की, वह सब मैं अपनी श्रुतिसे अनुसार हुनै कहूँगा ॥ २ ॥

भरहास मुनि संहर जमी । सङ्गि सौम उमा सुमुखाकी ॥

कौ बहुरि कौ कुन्हे । सो अक्षर सयत कैरि हेतु ॥ ४ ॥

राजकल्याणकी कह—हे भवानी ! संहरजीके वन सुनकर पार्वतीकी सङ्गुचकर मेघरित सुनकराया । फिर सुफेद सिखी जिस कारणसे मयावन्ध वह भवसार हुआ वा, उसका वर्णन करने लगे ॥ ४ ॥

सौ०—सो मैं सुनइ सब कहैं सब सुनु सुखी मन खर ।

राम कथा कलिमल हरनि मंगल करनि सुहा ॥ १४१ ॥

हे सुनीस्वर मरहास ! मैं वह सब तुमसे कहता हूँ, मन लगाकर सुनो । श्रीरामचन्द्रजीकी कथा कलियुगके रागीको हलनेवाली, कल्याण करनेवाली और बड़ी सुन्दर है ॥ १४१ ॥

सौ०—साबन्धु मनु अब सतसुख । निष्ठ तैं ये सरसति अक्षर ॥

दंपति अरु अन्तन कीका । जगहुँ सब सुति निष्ठ के कीका ॥ १ ॥

सावन्धु मनु और [उनकी पत्नी] सतसुख, मिलते मनुष्योंकी भाई अनुपम सति हुई, इस दोनों पति-पत्नीके कर्म और वाकरण बहुत अच्छे थे । जान भी वेद जिनकी भवार्थाका बदन करते हैं ॥ १ ॥

दूध ब्रह्मवत्सु दुग्धं साधु । कुच हरिस्मृतं मयउ सुत साधु ॥
 उद्धु सुतं ताम शिष्यस्तु ताही । वेद पुराण प्रसंसहि माही ॥ २ ॥
 राम उत्तमपुत्र उन्ने पुत्र वे, जिन्हो पुत्र [अस्ति] हरिभक्त भुवनी हुए ।
 उन (मनुजी) के छोटे स्वधैमा नमःप्रियवत्सा; भिक्षुकी प्रशंसा वेद और पुराण करते हैं ॥ २ ॥
 देवहूति मुनि तसु कुमारी । जो मुनि कर्म के प्रिय गरी ॥

आदिदेव तानु दीपनबाल । जड घरेठ नेहि कणित कृपाका ॥ ३ ॥
 पुनः देवहूति उनकी कथा भी जो कर्म मुनिकी प्यारी पत्नी हुई और जिन्होंने
 आदिदेव; दीनोंपर कृपा करनेवाले समस्त देवकुपाहु मयवान् कणितको कर्ममें वर्णन किया ॥ ३ ॥
 सांचर साधु सिन्धु प्राण कलाम । तज विचार निपुण भगवाका ॥
 रोहिं मनु राज कोन्हा बहुकला । मनु मयसु सब दिशि प्रणिपाका ॥ ४ ॥
 तस्योका विचार करनेमें अत्यन्त निपुण जिन (कणिक) भगवान्ने सांख्यशास्त्रका
 प्रकटस्वमें वर्णन किया; उन (सांख्यगुरु) मनुजीने बहुत समयतक राज्य किया और
 सब प्रकारसे भगवान्की आज्ञा [उस शास्त्रोंकी मर्यादा] का पालन किया ॥ ४ ॥

श्री०—होइ क विषय विराग अबन वसत भा चौपपन ।
 हृदयें बहुन दुख काग अलम मयउ हरिमयति पितु ॥ १४९ ॥
 बरमे रहते ब्रह्मा आ रावा, परन्तु विषयोंसे वैराग्य नहीं होता; [इस बातको
 बौद्ध] उनके मनमें बड़ा दुःख हुआ कि श्रीहरिकी भक्ति बिना अन्य योही चला गया १४९
 श्री०—बरबड राज सुखहि सब दीन्हा । नारि समेत सबन बन कीन्हा ॥
 सारसवार मैमिय विषयात्ता । नति पुनीत सबन सिद्धि दाता ॥ १ ॥
 तब मनुजीने अपने पुत्रको जयंती राज देकर स्वयं श्रीहरित वनको रामन
 किया । भगवान् विष्णु और शिवजीको मित्र देनेवाला तीर्थोंमें भेद नैमिषारण्य प्रसिद्ध है ॥ १ ॥

पहहि वर्यो मुनि सिद्ध समान । तहें द्विषै हरवि चलेइ मनु राज ॥
 पर्य जल सोहहिं नतिचौरा । व्यन नपति वनु धरें छरीरा ॥ २ ॥
 वहाँ मुनिमें और सिद्धोंके उत्पन्न करते हैं । राजा मनु हरवने इर्षित होकर वहाँ
 गये । वे और सिद्धको राजा-राजी मारमें बने हुए ऐसे मुखोभित हो रहे थे जानी
 राज और भक्ति ही करि कारण किये जा रहे हैं ॥ २ ॥

पहुंचे नइ चेमुमति जेरा । हरवि काने भिस्मक सीरा ॥
 बाप मिलन सिद्ध मुनि न्याही । परम डुरंवर कुपतिपि लानी ॥ ३ ॥
 [चले-चले] वे गोमतीके किनारे जा पहुँचे । हरित रोकर उन्होंने निर्भक्त
 लक्षमें स्नान किया । उनकी धर्मबुद्धिपर रावर्षि आकर सिद्ध और जानी मुनि उनसे
 मिलने आये ॥ ३ ॥

वहें जहें सीरय रहे सुदृग । मुनिह सबन सादर कलाए ॥
 इस सीर मुनि पद परिवाला । सत समाज नित सुचहिं पुराण ॥ ४ ॥
 जहाँ-जहाँ सुन्दर तीर्थ थे, मुनिगोने आह्वपूर्वक सभी तीर्थ उनको करा दिये ।
 उनका स्नान हुयंक हो गया था; वे मुनिगोने-ने (वरुण) का वाचन करते थे श्री
 वंदोंके उमागोने नित पुराण सुनते थे, ॥ ४ ॥

श्री०—द्वादस अजड मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग ।

धामुदेव पद पंकज दंपति मज अति लज ॥ १४३ ॥

जाना । तब परम यमीर और कुमरसी अमृतसे छनी हुई वह आकाशवाणी हुई कि
 'पर मौरो' ॥ ६ ॥

मृतक सिंघावनि गित सुहाई । शवन रंज होइ जर जब आई ॥

इष्ट पुष्ट तन सप सुहाय । गल्ले कहीं भवन ते आय ॥ ७ ॥

मुरंको भीजिल देनेवाली वह सुन्दर वाणी कर्मोंके छेदोंसे होकर जब हृदयमें आयी,
 तब राजा-रानीके चरित ऐसे सुन्दर और इष्ट-पुष्ट हो गये, मानो वाणी भरते आयी है ॥ ४ ॥

श्री०—शवन सुखा सप्त वचन सुनि पुलक प्रफुल्लित गात ।

बोले मनु फिर दंडवत प्रेम न हृदयें समात ॥ १४५ ॥

गर्मोंमें अमृतके समान लम्पेवाले वचन सुनते ही ठनकर चरित पुलकित और
 प्रफुल्लित हो गया । तब मनुष्य दण्डवत् करके बोले, प्रेम हृदयमें समात न था—॥ १४५ ॥

श्री०—सुष्ठु लेख सुरत सुरसे । निधि हरि हर वंदित पद देन ॥

लेखत सुष्ठुन सखल मुख वामक । प्रलपत सखतपर नायक ॥ १ ॥

हे प्रभो ! सुनिये, आप देवदोंके लिये कल्पवृक्ष और कामधेनु हैं । आपकी चरण
 रत्नकी प्रशंसा, विष्णु और शिवजी भी वन्दना करते हैं । आप सेवा करनेमें सुलभ
 तथा सब सुखोंके देनेवाले हैं । आप करवागतके राक्षस और बड़-चैतनके लामी हैं ॥ १ ॥

श्री अनामक द्विज हम पर नेह । तो प्रसन्न होइ यह घर देह ॥

श्री सख्य बस तिम मन आई । वेदि करन मुनि कथन करी ॥ २ ॥

हे अनामक द्विज ! यदि हम जेपीपर आपका स्नेह है, तो प्रसन्न
 होकर यह घर दीजिये कि आपका जो स्वरूप शिवजीके मनमें बसता है और जिस [श्री
 प्राप्ति] के लिये मुनिछोन बन करते हैं ॥ २ ॥

श्री मुमुक्षु सज मानस इंस । सगुन भजुन वेदि निगन प्रशंसा ॥

देवहि हम लो कर भनि शोभन । सुवा कहत प्रवतारति मोक्ष ॥ ३ ॥

जो काकगुह्यण्डिके मनकरी मानकरोवरों निहार करनेवाला इंस है, सगुण और
 निर्गुण कहकर वेद जिसकी प्रशंसा करते हैं, हे अनामक द्विज ! मियानेवाले प्रभो ! ऐसी
 कृपा कीजिये कि हम उठी लम्पे नेम भोकर देखें ॥ ३ ॥

इंपति वचन परस तिम लये । सुष्ठु निवेत प्रेम रस लगे ॥

भगत बरल मु सुखनिधान । निरुपस प्रपदे भयवान ॥ ४ ॥

राजा-रानीके क्रोध, विषयपुल और प्रेमरसमें पगे हुए वचन भगवान्‌को बहुत
 ही प्रिय लगे । भक्तबालक, सुखनिधान, सम्पूर्ण निषेधके निषातस्थान (या समस्त विषयों
 व्यापक), सर्वसर्व भगवान् प्रकट हो गये ॥ ४ ॥

श्री०—नील सरोख्ख नील मनि नील खीरधर सखस ।

जालहि तन सोमा विरधि कोटि कोटि त्त काम ॥ १४६ ॥

भगवान्‌के नीले कमल, नीलवाणि और नीले (जलपुल) मेघके समान [कोमल,
 प्रकाशमय और सरल] कलावर्ण [चित्रण] अरीरपी शोभा देखकर करोड़ों कामदेव
 भी लजा जाते हैं ॥ १४६ ॥

श्री०—सद भवक बरव छवि सीत । चरु कोक चिकु पर शोभा ॥

बधर अल रद सुंदर वन । बिष्टु कर निर निनिदक हास ॥ १ ॥

उनका तुल्य शब्द [धूमिल] के चन्द्रमाके समान जबकी सीमास्वरूप था ।
 गाल और छोटी बहुत सुन्दर थे; राजा उसके समान (निरेशपुल, चन्द्र-उत्तरवाला)

था । लाल ओठ, दाँत और नाक (अत्यन्त) सुन्दर थे । हँसी चन्द्रमण्डो किरणवली-
को नीचा दिखानेवाली थी ॥ १ ॥

नव लंगुल शंकर छवि नीकी । भित्तनि लज्जित भावैती की की ॥

चूड़ति मनोज नव छवि हारी । शिखर ललट पटक मुखिकारी ॥ २ ॥

नेत्रोंकी छवि नवे [सिले हुए] कमलके समान थी सुन्दर थी । मनोहर चितवन
शोको बहुत प्यारी लम्बी थी । टेढ़ी मँहें कमदेवके अनुपम शोभाको हरनेवाली थी ।
समस्तपटलमय प्रकाशमय शिखर था ॥ २ ॥

कुण्डल मकर मुकुट सिर आभा । कुण्डल केत अनु मधुन समाज ॥

वर भीमलस कचिर घनमात्र । पदिक हार भूपम मनिवास ॥ ३ ॥

कानोंमें मकराक्षत (गजनीके आकारके) कुण्डल और किरपर मुकुट सुशोभित
था । देवे (शूँवरले) कले बाल ऐसे समन थे, नानो मौरोंके झुंड हों । सुदमर श्रीवल,
सुन्दर धनमात्रा, रत्नजडित हार और मणियोंके आभूषण सुशोभित थे ॥ ३ ॥

केहुरि कंचर नव ललक । अनु विभूषण सुंदर लेक ॥

करि कर सलिस सुमन भुजवंदा । कटि विषम कर कर कोर्दा ॥ ४ ॥

विहारीसी गर्दन थी, सुन्दर अनेक था । मुकुटभोंमें जो गहने थे, वे भी सुन्दर
थे । हाथोंकी दूँइके समान (उतार-चढ़ाववाले) सुन्दर मुकुटवाले थे । कमरमें तरफत
और हाथमें बाण और धनुष [शोभा पा रहे] थे ॥ ४ ॥

यो०—सदित विमिदक पीत पट उवर रेख पर लीनि ।

नामि मनोहर लेति अनु उमम भवैर छवि छीनि ॥ १४७ ॥

[स्वर्ण-वर्षका प्रकाशमय] पीताम्बर विहारीको लज्जानेवाला था । पेटपर सुन्दर
शीम रेखाएँ (त्रिवली) थीं । नामि ऐसी मनोहर थी, मानो धनुनालीके मँवरोंकी
छाँवकी छीने छेटी हो ॥ १४७ ॥

चौ०—नव राजीव कलमि नहि वाही । मुनि मव नवपलसहि केव माही ॥

नाम भाग सोभति अनुकूल । आदिसकि छविविधि लगभूला ॥ १ ॥

जिनमें मुनियोंके मनकपी मौर लगे हैं, भगवान्‌के उन चरणकमलोंका तो वर्णन
ही नहीं किया जा सकता । भगवान्‌के सर्व भागमें सदा अनुकूल रहनेवाली, शोभाकी राशि
जगत्की मूलकारणरत्ना आदिसकि श्रीमान्‌की सुशोभित हैं ॥ १ ॥

बाहु गल उपजहि कुन्तलानी । अगच्छि कच्छि दसा मलानी ॥

चूड़ति विहास अनु नव होई । राम नाम दिसि लोठा सोई ॥ २ ॥

जिनके अंगधरे गुणोंकी शान्त अभिविध लक्ष्मी, पार्वती और लक्ष्मणी (जिदेवोंकी शक्तियों)
उपलब्ध होती हैं, तथा जिनकी मौलिके शस्त्रोंसे ही अष्टकी रचना हो जाती है, वही
[भगवान्‌की स्वरूप-शक्ति] भीमशक्ती श्रीरामचन्द्रजीके बायीं ओर स्थित हैं ॥ २ ॥

छलिसमुद्र हरि कम किलेकी । एकटक खे नवन पट रोकी ॥

विहवहि समर रूप कर्पा । कृषि न आर्जहि अनु सतस्मा ॥ ३ ॥

शोभाके समुद्र श्रीहरिके रूपको देखकर सज्ज-सतस्मा नेत्रोंके पट (पल्लव) रोके
हुए एकटक (स्थाव) रह गये । उस अनुपमा रूपको वे वादरलहित देख रहे थे और
देसते-देसते अघाते ही न थे ॥ ३ ॥

हरष निबल हव दसा सुमनी । नरे दंड हव गहि नव पानी ॥

सिर परसे प्रभु विज नव कंका । गुरत उरत कल्पधुंदा ॥ ४ ॥

आनन्दके अधिक सखी हो जानेके कारण उन्हें अपने देहकी सुधि भूठ गयी । हे हाथोंसे भगवान्‌के चरण पकड़कर दण्डकी तरह (खींचे) भूमिपर गिर पड़े । कुपकी रागि प्रभुने अपने करकमलोंसे उनके मस्तकके सखी किया और उन्हें तुरंत ही उठा लिया । ४।

श्री०—बोले कृष्णनिधान पुनि अति प्रसन्न मोहि जानि ।

मायहु दर जोर भाव नभ महावाचि अनुमानि ॥ १४८ ॥

फिर कृष्णनिधान भगवान् बोले—मुझे अत्यन्त प्रसन्न जानकर और बड़ा भारी दानी मानकर, जो मनके मने की वर माँव को ॥ १४८ ॥

श्री०—सुधि प्रभु वचन जोरि जुग पानी । धरि धीरहु बोले भूहु कानी ॥

तथ देखि पद कमल मुखारे । लख पुरे सब काम हमारे ॥ १ ॥

प्रभुके वचन सुनकर, दोनों हाथ जोड़कर और धीरज धरकर राजाने कोमल वाणी कही—हे नाथ ! आपके चरणकमलोंके देखकर अब हमारी सभी मनःकामनाएँ पूरी हो गयीं ॥ १ ॥

एक संकटा बाढ़ि दर माहीं । सुगम अमल कहि कति सो नाही ॥

हुम्हहि बेग भति सुखम सोखई । लग्न काम मोहि निज कुपनाई ॥ २ ॥

फिर भी हमने एक बड़ी कामना है । उसका पूरा होना खूब भी है और क्षणिक कठिन भी, इसीसे उसे कष्ट नहीं, वकता । हे स्वामी ! आपके लिये तो उसका पूरा करना बहुत लक्ष्य है, पर मुझे अपनी कुपकता (दीनता) के कारण वह अत्यन्त कठिन मानना होता है ॥ २ ॥

जया हरिज विष्णुकाय पाई । यहु संपति मागत सकुचाई ॥

चाहु मन्त्रज जाय नहि छोई । तथा हरर्थ सम संसय होई ॥ ३ ॥

जैसे कोई दारु कल्याणको पाकर भी अधिक दुःख योग्यतामें संकोच करता है, क्योंकि वह उसके प्रभावको नहीं समझता, वैसे ही मेरे हृदयमें संसय हो रहा है ॥ ३ ॥

तो हुम्ह जायहु संतरकामी । पुनहु खेर सकोरख स्वामी ॥

सङ्कट विहङ्ग जागु सुख मोहि । मोरें बाँहि ज्येय कहूँ सोही ॥ ४ ॥

हे स्वामी ! जब अन्तर्दामी हूँ, इसलिये उसे जानते ही हूँ । मेरा वह मनोरथ पूरा कीजिये [भगवान्‌ने कहा—] हे राजा ! संकोच छोड़कर मुझसे माँगो । हुम्हें न है ॥ ४ ॥ ऐसा मेरे पास कुछ भी नहीं है ॥ ४ ॥

श्री०—बासि सिरामनि कृष्णनिधि ताप कहवैं सतिमाव ।

काहवैं हुम्हहि समान सुत प्रभु सत कवन दुराव ॥ १४९ ॥

[राजाने कहा—] हे दानिनीके सिरामनि ! हे कृष्णनिधान ! हे नाथ ! मैं अपने मनका तथा भाव कहता हूँ कि मैं आपके स्थान पुत्र चाहता हूँ । प्रभुसे भला क्या क्षिपाना ॥ १४९ ॥

श्री०—बेहि प्रीति सुनि कच अमोके । एन्मसा कल्याणिधि बोले ॥

जागु हरिख मोही कई चाहैं । नृप तव लख होख पै माई ॥ १ ॥

राजाकी प्रीति देखकर और उनके अमूल्य वचन सुनकर कल्याणबान भगवान् बोले—ऐसा ही हो । हे राजा ! मैं अपने सम्पन्न [कूट] वहाँ जाकर खोजूँ ! अतः सब दी आकर तुम्हारा पुत्र बनूँगा ॥ १ ॥

सतस्पदि विमोहि कर जेरें । बेमि मागु कह को रुचि तोरें ॥

ओ ॥ नाथ चरु नृप माना । छोड़ कृपक मोहि बनि विष खपा ॥ २ ॥

शतरूपजीको धाय बोदे देखकर भगवान्ने कहा—हे देवि ! तुम्हारी तो इच्छा हो, सो कर मोंग लो । [शतरूपाने कहा—] हे नाथ ! चरु रचाने को कर मोंगा, हे कृपाछ । वह मुझे बहुत ही प्रिय लगा ॥ २ ॥

प्रभु परंतु क्षुति होति निद्राई । जदपि भगत हित तुम्हहि सोहाई ॥
तुम्ह प्रसादि सबक जय स्थायी । प्रभु सकल घर अंतरनामी ॥ ३ ॥
परन्तु हे प्रभु ! बहुत बिठाई हो रही है, क्वचि हे भक्तोंका हित करनेवाले । वह बिठाई भी आपको अच्छी ही लगती है । आप ब्रह्म आदिके भी पिता (उसका करने-वाले), अगस्त्ये स्वामी और उनके हृदयके गीतरत्नी जाननेवाले भक्त हैं ॥ ३ ॥

अस समुसत सब संस्रव होई । कहा जो प्रभु भक्तन पुनि सोई ॥
के निज भगत पाय ता अहर्हो । जो सुख कर्वाहि जो भति छहोई ॥ ४ ॥
ऐसा समझनेपर मनमें सन्देह होता है, फिर भी प्रभुने जो कष्ट वही प्रमाण (लाभ) है । [मैं तो यह मोंगती हूँ कि] हे नाथ ! आपके जो निज भक्त हैं वे जो (भौतिक, भक्ष्य) सुख पाते हैं और जिस परम शक्तिको प्राप्त होते हैं—॥ ४ ॥

वो०—खोह सुख खोह पति खोह भयति खोह निज चरण सनेहु ।
खोह विषेक खोह रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु ॥ १५० ॥
हे प्रभो ! वही सुख, वही गति, वही भक्ति, वही अपने घरवाँमें प्रेम, वही ज्ञान और वही राम-रहान कृपा कर्ते हमें दीजिये ॥ १५० ॥

वो०—सुनि सुहु यह वरि कर रक्ता । कृपासिधु जेहे सुहु बचवा ॥
जो कष्ट सपि तुम्हारे मन साहीं । मैं सो दीन्ह लख संस्रव गहीं ॥ १ ॥
[रानीजी] भोमल, गूढ़ और मनोहर जेष्ठ वामपरचन सुनकर कृपाके अनुग्रह भगवान् कोमल वचन बोले—तुम्हारे मनमें जो कुछ ह्मज है, वह सब मैंने तुम्हको दिया, इसमें कोई सन्देह न समझना ॥ १ ॥

माहु बिचेक भलीकिक सीरें । कबहुँ न मिडिदि अनुग्रह सोरें ॥
बोदि परम सनु पड़ेल गहोरी । अवर एक निकली प्रभु सीरी ॥ २ ॥
हे माता ! मेरी कृपासे तुम्हारा भौतिक ज्ञान कभीनष्ट न होगा । तब मनुने भगवान् के चरणोंकी वन्दना करते फिर कहा—हे प्रभु ! मेरी एक विनयी और है—॥ २ ॥

सुत विषदक तब पद रति होक । गीहि यह सुद कहे दिन होक ॥
मनि बिनु फनि निमि ब्रह्मभित्तु मीन । मम जीवन निमि पुद्गलि भजीना ॥ ३ ॥
आपके चरणोंमें मेरी वैसी ही प्रीति हो जैसी पुनर्के लिये पिताकी होती है, चाहे मुझे कोई बड़ा भारी मूर्ख ही क्यों न कहे । जैसे मणिके बिना तौप और चक्के बिना मछली [नहीं रह सकती], वैसे ही मेरा जीवन आपके अधीन रहे (आपके निजान रह लके) ॥ ३ ॥

अस वर मासि धरन गहि रहेक । दयसाय कलसागिधि कहेक ॥
मम तुम्ह भक्त अनुसासन मानी । बसहु जख सुखसि रचवासी ॥ ४ ॥
ऐसा कर मोंगकर राजा भगवान्के चरण पकड़े रह गये । तब दयाके निधान भगवान्ने कहा—ऐसा ही हो । अब तुम मेरी आज्ञा मानकर देवराज ह्मजकी राजधानी (सम्राज्य) में जाकर वास करो ॥ ४ ॥

वो०—तहाँ करि भोग विसाख छल गयँ कहु काल पुनि ।
होइहु जखन मुआल तब मैं होव तुम्हार सुत ॥ १५१ ॥

हे तात ! वहाँ [स्वर्गे] बहुत-से भोव भोगकर, कुछ कल वीत जनेपर, ज्ञान अवधके राजा होगे । तब मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा ॥ १५१ ॥

चौ०—इच्छामय सन्नेर सँधरें । होइहर्त प्रसन्न निकेत तुम्हारें ॥

अंसइ सहित देह धरि तात । करिहर्त पसित मगस सुखदाता ॥ १ ॥

इच्छानिर्मित मनुष्यरूप उलकर मैं तुम्हारे घर प्रकट होऊँगा । हे तात ! मैं अपने अंगोंसहित देह धारण करके भक्तोंके सुख देनेवाके चरित्र करूँगा ॥ १ ॥

मे सुनि सादर नर पदमन्त्रि । मन्त्र चरिहर्दि ममता मद त्यागी ॥

आदिशक्ति जेहि जग उपजाय । सोइ अवतारिहि मीरि यह माया ॥ २ ॥

मित्र (चरित्रों) को बड़े मानकशाली मनुष्य आदरसहित सुनकर, ममता और मद त्याग कर, भक्तधारणसे घर चार्क्ये । आदिशक्ति यह मेरी [स्वरूपमूला] माया थी, जिसने उगड़को उत्पन्न किया है, अवतार लेगी ॥ २ ॥

पुरवच मैं अतिछाव तुम्हारा । सत्य सत्य पन सत्य हमारा ॥

पुनि पुनि भक्त कहि कृपाविधान । अंतरधान मय भगवाना ॥ ३ ॥

इस प्रकार मैं तुम्हारी अभिषेया पूरी करूँगा । मेरा प्रथम सत्य है, सत्य है, सत्य है । कृपाविधान भगवान् बार-बार ऐसा कहकर व्यस्तधान हो गये ॥ ३ ॥

इंसति नर धरि भक्त कृपाका । जेहि आक्रम निम्नसे कहु पाका ॥

समय पइ सहु तखि अमलस । जाइ कीन्ह अमराकति बासा ॥ ४ ॥

वे जी-पुत्र (राजा-रानी) भक्तोंपर कृपा करनेवाके भगवान्को हृदयमें धारण करके कुछ कालकाल जब मग्नमग्न रहे । फिर उन्होंने समय पाकर, उल्ला ही (बिना किसी कठके) करीर छोड़कर, अमराकती (इन्द्रकी पुरी) में व्यक्त वाट किया ॥ ४ ॥

चौ०—यह इतिहास पुनीत अति रामहि कही कृपकेतु ।

मरघास सुनु अपर पुनि राम जनम कर हेतु ॥ १५२ ॥

[वाक्यव्यपत्ती करते हैं—] हे भगवान् ! इस अत्यन्त पवित्र इतिहासको शिबनीने पार्वतीके कथा था । तब श्रीरामके अवतार लेनेका वृत्ता कारण सुनो ॥ १५२ ॥

मासपारायण, पौर्णमासी विजयाम

चौ०—सुनु सुनि कज्ज पुनीत पुराणी । जी गिरिका प्रति संजु बजानी ॥

विश्व निवृत्त एक कैवल्य देस । सत्यकेहु तखै सखइ नरेस ॥ १ ॥

हे सुनि । वह पवित्र और प्राचीन कथा सुनो जो विश्वजीने पार्वतीने कही थी । विलारमे प्रसिद्ध एक कैवल्य देश है । वहाँ सत्यकेतु नामका राजा रहता (राज्य करता) था ।

धर्म धर्मधर नीति निधान । तेस प्रताप सीक सखवाना ॥

तेहि के म्मु सुख सुख नीर । सख सुख घाम महा रनधीरा ॥ २ ॥

वह धर्मकी धुरीको धरण करनेवाला, नीतिकी खान, तेजस्वी, प्रतापी, सुधीर और बलवान् था । उसके दो और पुत्र हुए, जो सख सुखोंके मग्नधर और बड़े ही रणवीर थे ।

राम धनी जो नि सुख जाही । नाम प्रतापमग्न भक्त जाही ॥

अपर सुतहि अरिमर्दन नाम । सुखकल अलुल जल्ल संभामा ॥ ३ ॥

राज्यका उत्तराधिकारी जो बड़ा लक्ष्मण था, उसका नाम प्रतापमग्न था । दूसरे पुत्रका नाम अरिमर्दन था, जिसकी मुञ्चनोंमें अपार बल था और जो बुद्धमें [पर्वतके समान] अटल रहता था ॥ ३ ॥

भाइहि भाइहि परम समिति । सकल दोष छल धनित प्रीति ॥
 केते सुतहि राख नृप कीन्हा । हरिहित भापु कवन वन कीन्हा ॥ १ ॥
 भाई-भाईमें बड़ा खेल और तब प्रसन्नके दोनों और छल्लेसे रहित [सची] मीति
 थी । रतने केते पुत्रको राज्य दे दिया और आप मगधान् [के मगध] के छिमे
 वनको चर दिया ॥ ४ ॥

दो०—जब प्रतापरवि भवत नृप फिरी दोहाई देख ।
 प्रजा पात जति वेदविधि भतहुँ नहीं अघ लेस ॥ १५३ ॥
 जब प्रतापभानु राज्य हुआ, देखमें उसकी दुहाई फिर गयी । वह वेदमें बतायी
 हुई विधिके अनुसार उत्तम रीतिसे प्रजापर पावन करने लगा । उसके राज्यमें पापका
 नहीं छेप भी नहीं रह गया ॥ १५३ ॥

चौ०—दूर विपकारक सखि सबाण । मन धरमरुचि मुक्त समाग ॥
 लखि सफल बंधु बडबीरा । अरु प्रतापपुंज रघवीभा ॥ १ ॥
 राजाका दित करनेवाला और सुप्रभावके लभन बुद्धिमान् धर्मरुचि नामक उसका
 मन्त्री था । इस प्रकार बुद्धिमान् मन्त्री और कल्याण तथा और भाईके साथ ही स्वर्ग
 राजा भी बड़ा प्रतापी और रणवीर था ॥ २ ॥

सेन सेन अशुरंग अकरा । अमित सुख सन समर लखार ॥
 सेन विजैकि राह हरफना । अरु राजे गहगहे बिसारा ॥ २ ॥
 राज्यमें अपार अशुररुचिनी केना थी, जितमें असंख्य योद्धा थे, जो सब-के-सब रणमें
 लड़ा करनेवाले थे । अपनी सेनाको देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और समाधम भगवत्के
 बनने लगे ॥ २ ॥

बिसर दिहु कछई बनई । भुविन साधि रूप लोख बताई ॥
 गई गई पौं अनेक करई । जीते सकल दूर करिआई ॥ ३ ॥
 दिग्विजयके छिमे केना लखकर वह राजा छप दिन (शुद्ध) चापकर और बंदा बलाकर
 लज । गई-गई बहुत-सी जगहोंहुई । उन्ने सब राजाओंको बन्धुर्क जीत लिया ॥ १ ॥
 सब दीव मुजबल बन गहने । लै लै रंज लखि दूर दौने ॥

सकल भवनि नंदन तेहि काल । एक प्रतापमानु सहपात्र ॥ ४ ॥
 अपनी मुसावीके बलसे उन्ने सारीं शीरी (भूमिस्थलों) को रघुमें कर लिया
 और राजाओंसे दण्ड (कर) ले-लेकर उन्ने खेद दिया । सम्पूर्ण पृथ्वीसंगलभ उस
 समय प्रतापमानु ही एकमात्र (कर्तव्य) राजा था ॥ ४ ॥

दो०—सबस बिसर करि वाहुचल मित्र पुर कीन्हा प्रभेसु ।
 अरय धरम कामाधि सुख सेयर समर्थ नरेसु ॥ १५४ ॥
 संसारभरको अपनी मुजाबोंके बलसे कर्तों करके राजाने अपने नगरमें प्रवेश किया ।
 राजा भई, धर्म और काम आदिके सुखोंका समग्रानुसार सेवन करता था ॥ १५४ ॥

चौ०—नृप प्रतापमानु कल पाई । कामधेनु जै भूमि दुहाई ॥
 धन हुआ बरजित प्रजा सुखाती । धनमखीक सुंदर नर नारी ॥ १ ॥
 राजा प्रतापमानुका कल पाकर भूमि सुन्दर कामधेनु (मनवासी वस्तु देनेवाली)
 हो गयी । [उसके राज्यमें] प्रज उन [प्रसरके] दुःखोंसे रहित और सुखी थी, और
 सभी जी-पुरुष सुन्दर और वर्णात्मक थे ॥ २ ॥

सखि धरसखि हनि पद श्रीती । नर हित हेतु सिखव निह मोती ॥
 गुर गुर संत फिर मणिवेवा । करइ सग नर सब कै सेवा ॥ २ ॥
 भर्मचरि मन्त्रीका श्रीहरिके चर्योंमें प्रेम था । वह राजाके हितके लिये सदा ठकरो
 नीति सिखावा करता था । राजा गुरु, देवता, संत, भितर और ब्राह्मण—इन सबके
 सेवा सेवा करता रहता था ॥ २ ॥

रूप धरम जै वेद पचावे । सकल परइ सखर सुख माने ॥
 दिन प्रति वेद विधि निधि दाना । सुख साख बर वेद पुराना ॥ ३ ॥
 वेदोंमें राजाजीके जो धर्म बखाने गये हैं, राजा सदा आदरपूर्वक और सुख
 मानकर उन सबका पालन करता था । प्रतिदिन अनेक प्रकारके दान देता और उत्तम
 शास्त्र, वेद और पुराण सुनता था ॥ ३ ॥

नाना बर्षों रूप लक्ष्मणा । सुमन सखिछ सुंदर भाषा ॥
 विप्रमनन सुरमनन सुहाय । सब शीरषण्ड विविध बनय ॥ ४ ॥
 उठने बहुत-सी बालियाँ, कुएँ, तालाब, फुलवाड़ियाँ, सुन्दर बगीचे, ब्राह्मणोंके
 लिये घर और देवताओंके सुन्दर विविध मन्दिर सब तीर्थोंमें बनवाये ॥ ४ ॥

रो:-जहाँ लगे कहे पुराण भ्रुति एक एक सब अपन ।

बार सहस्र सहस्र नृप किए सहित अनुपम ॥ १५५ ॥

वेद और पुराणोंमें लिखे प्रकारके सब कहे गये हैं, राजाने एक-एक करके उन
 सब गणोंके प्रेमसहित हजार-हजार बार किया ॥ १५५ ॥

चौ:-इहँ न लख सक अनुसंधान । नृप विवेकी परम सुमान ॥

बारह जे भक्त करम मन जानी । बानुदेव भर्षित कुर ध्यानी ॥ १ ॥

[राजाके] हृदयमें किसी पक्षकी दोह (कामना) न थी । राजा बड़ा ही
 बुद्धिमान और गंभीर था । वह अपनी राजा कर्म, मन और भावोंके जो कुछ भी धर्म
 करता था, सब भगवान् बानुदेवके भर्षित करके करता था ॥ १ ॥

बाबू कर बाबू बार एक राजा । नृपय कर सब लखि सनाका ॥

विष्णुपद गभीर बर गयक । नृप पुनीत बहु ममत्त भयक ॥ २ ॥

एक बार वह राजा एक अच्छे घोड़ेपर सवार होकर, विष्णुपद सब सामान सजाकर
 विष्णुपदके पने अंगणमें गया और वहाँ उठने बहुत-से उत्तम-उत्तम दिन मारे ॥ २ ॥

कित्त विविध नृप दीव वाहू । बभ्रुबन बुरेक सखिहि प्रसि राहू ॥

बड़ विष्ट नहि अमात भुक्त भर्षा । सगर्हू शेष बस उचित नाहीं ॥ ३ ॥

राजाने वनमें गिरे हुए एक खरबके देखा । [वीलोंके कारण वह देता दीव
 पड़ता था] भोजो जन्मगांधे भक्त (यैल्लों पकड़कर) राजा वनमें आ लिया हो ।
 जन्मगा बड़ा होनेके उसके मुँहमें लगावा नाहीं है और भोजो शेषवत्त वह भी उसे
 उगलता नहीं है ॥ ३ ॥

कोठ करक दुखन छवि सार्ह । तनु विसल पीर अविचार्य ॥

इष्टसुख हर जाली पण्य । चोखि विखेकत काम उरार्प ॥ ४ ॥

वह जो सुखके भयानक वीलोंकी शोभा करी बनी । [इष्ट] उलका शरीर भी
 बहुत विचार और मोटा था । घोड़ेकी गाँह पान्ना वह कुछकुछ दुःखा कोन उठाने
 चौकमा होकर देख रहा था ॥ ४ ॥

दो०—जीत महीधर सिक्कर सम देखि विछलत बगडू ।

खपरि चलेव हव सुदुकि रूप हौकि न होइ निबडू ॥ १५६ ॥

नील पर्वतके शिखरके समान निखल [करीबके] उस सुभरके देखकर राजा पोढ़ेको चाबुक लगाकर तेजीसे चला और उसने सुभरको जकड़कर कि अब तैरा बचाव नहीं हो सका ॥ १५६ ॥

चौ०—आगत देखि अधिक रस बासी । चलेव बगडू मला गति भासी ॥

दुरत कोह रूप सर संचाला । गहि निजि गपठ खिलेकत बाता ॥ १ ॥

अधिक शब्द भरते हुए पोढ़ेको [अपनी तरफ] अग्रा देखकर सुभर प्रणवेणसे भगा चला । राखने दुरंत ही बागको बहुतकर चढ़ाया । सुभर बगडू देखते ही बरतीमें दुबक गया ॥ २ ॥

तकि तकि पीर महीधर बगला । करि छल सुज्य सहीर बगला ॥

आगत दुरत आह रूप आगत । रिज कत भूष चलेव सँव संगत ॥ २ ॥

राजा एक-समय पीर बगला है, परन्तु सुभर छल करके सहीरको बचाता जाता है । वह पशु फनी पकड़ होव और कभी शिपया हुआ भाग जाता था; और राजा भी जोबने वह उससे खप (पीछे) लग्न चला आता था ॥ २ ॥

गपठ दूरि रस मदन बगडू । जई कहीन मन कति पिबडू ॥

गति मलेक रस विपुल कलेव । बरि न मला मग समझ करि ॥ ३ ॥

सुभर बहुत दूर ऐसे को संगठमें चला गया जहाँ हाथी-पोढ़ेका निवाह (गम) नहीं था । राजा बिलुल अनेक था वहीं कममें कलेव भी बहुत था; फिर भी राजाने उस पशुका पीका नहीं छोड़ा ॥ ३ ॥

कोठ बिकोकि भूप बह बीरा । भवि पैठ गिरिजुर्नी बसीरा ॥

आगत देखि कत गति पछिछाई । फिरेव महावन पोर सुकाई ॥ ४ ॥

राजाको बड़ा वैयवहार देखकर, सुभर भागकर कड़ाफी एक पहाड़ी गुफामें जा चुका । उसमें जाना कठिन देखकर राजाको बहुत पकड़ाकर छोड़ना पड़ा; पर उस पीर बनमें वह रास्ता भूल गया ॥ ४ ॥

दो०—कोइ जिम प्रुखित लुपित राजा कति समेत ।

सोवत म्याङ्कल सरित सर जल बिनु बचत जचेत ॥ १५७ ॥

बहुत परिश्रम करनेसे यका हुआ और पोढ़ेपनेव भूख-प्यासे व्याकुल राजा कहीं साक्षात् खोजता-जोखता पानी बिना मेटाऊ हो गया ॥ १५७ ॥

चौ०—फिरत बिपिन आगत एक देहा । जई कत दुरति करत मुसिहरा ॥

गपठ देस नृप लीक जगदई । समर सेव सति मयव पराई ॥ १ ॥

वनमें फिरते-फिरते उसने एक आश्रम देखा; वहाँ कमठने मुनिंका सेव बदासे एक राजा रहता था, जिसका देश राजा प्रतापमालुने खीन किया था और जो केवलसे छोड़कर बुढ़से भाग गया था ॥ १ ॥

सनय प्रतापमालु कर जनी । जलव । जति बलुमय अनुमानी ॥

मयव न गृह मय बलुल जलनी । सिम न सयदि नृप जतिमानी ॥ २ ॥

प्रापमानुष्य समय (मन्त्रे दिन) जलकर और अपना कुम्भकर (घुरे दिन) अनुमनकर सलके मनमें बड़ी गलति हुई । इससे वह न तो घर गया और न जतिमानी सेनिके करण राजा प्रतापमालुसे ही मिल (मेल मिला) ॥ २ ॥

रिस कर जारि रंक बिनि राधा । बिनिव बसाइ सापस के साधा ॥
 हाथु समीप गहन दुख कीन्हा । यह प्रतापमान तेहिं तब चीन्हा ॥ ३ ॥
 दरिद्री भौति मनहीं कोकरो मारकर यह राजा तपस्वीने बेधौ वनमें रहता था ।
 राजा (प्रतापमान) उसके पास गया । उसने पुरात पहचान लिया कि यह प्रतापमान है ॥ ३ ॥
 राठ हृषित बहिं सो पहिचान । देखि सुखे महासुनि जना ॥
 अरि सुख ते कोइ अकस । परम सुख न कोइ विन कामा ॥ ४ ॥
 राजा प्यासा होनेके फल [व्याकुलतामें] उसे पहचान न सका । सुन्दर वैद्य
 देखकर उसने उसे महासुनि स्थला और बोलेसे उत्तरकर उसे प्रणाम किया । परन्तु
 वह चतुर होनेके कारण राखने उसे अपना नाम नहीं बतलवा ॥ ४ ॥
 दो०—भूपति हृषित विस्त्रोकि तेहिं सरवद दीन देखि ॥
 मज्जन पाल समेत हय कीन्ह हृषति हरपाइ ॥ १५८ ॥
 राजाको प्रणाम देखकर उसने उत्तरकर दिलास दिया । हृषित होकर राजाने
 बोलेसहित उसमें स्नान और मज्जन किया ॥ १५८ ॥
 चौ०—मै कम समझ सुखी सुप भवत । विन आश्रम तावत कै गयक ॥
 आश्रम दीन्ह सदा रवि जामी । सुनि तपस सीकेड सहु बानी ॥ १ ॥
 शरी यकावट मित्र कपी, राजा सुखी हो गया । तब तपस्वी उसे अपने आश्रममें
 ले गया और सारांशका समय जानकर उसने [राजाको बैठनेके लिये] आसन दिया ।
 फिर वह तपस्वी कोसल बलीने बोला—॥ १ ॥
 कौ सुख कस वन किन्हु जकेहैं । सुंदर जना और परीकैं ॥
 आश्रम के उपवन सोरैं । देखत दया करि गति मोरैं ॥ २ ॥
 तुम कौन हो ? तुम्हारे उपर सेकर, जीवनकी परवा न करके, वनमें अकेले क्यों
 फिर रहे हो ? तुम्हारे चतुर्मुखी रामदेवे के कर्म देखकर मुझे यही दया आती है ॥ २ ॥
 नाम प्रतापमानु अनीस । काहु सखि न सुनु सुखीस ॥
 फितर जहेरें गेरैं सुखई । कैं जाय देखेहैं यदु आई ॥ ३ ॥
 [राजाने कहा—] हे सुनीभर ! सुनिमे, प्रतापमान नामका एक राजा है, मैं
 ठकला मन्त्री हूँ । गिराके लिये फिरते हुए राह मूठ गया हूँ । वही भगवत्से यहाँ आकर
 मैंने आपके चरणोंके दर्शन पाये हैं ॥ ३ ॥
 इस कई दुर्लभ द्रव्य तुम्हारा । जन्तु ही कहु अक होमिहारा ॥
 यह सुनि तब अक बंकिमारा । कोषय सचरि नय सुम्हारा ॥ ४ ॥
 हमें आपका दर्शन दुर्लभ था, इससे जान पड़ा है कुछ फल होनेवाला है ।
 सुनिने कहा—हे तब ! जैसा हो गया । तुम्हारा समय अहोरेक उत्तर योजनपर है ॥ ४ ॥
 दो०—निसा घोर गंभीर कन पंच न सुखहु सुजात ।
 बसहु आजु नर जानि तुम्ह जापहु होत निहात ॥ १५९ (क) ॥
 हे सुमान ! सुनो, घोर अपेरी रात है; क्या बोल हो गया नहीं है ? ऐसा
 समझकर तुम मान यही ठहर जाओ, सोचा होते ही बने जाया ॥ १५९ (क) ॥
 तुलसी जसि मकतयता कैसी मिलत सहस्र ॥
 आपुनु स्वचह तहि पहि तहि तहाँ कै आह ॥ १५९ (ख) ॥
 तुलसीदासजी कहते हैं—जैसी भक्तिव्यथा (सोचकर) होती है, जैसी ही उदायता मिल जाती
 है । या तो वह आप ही लगे पड़ जाती है, या लगे लगे से जाती है ॥ १५९ (ख) ॥

बौ०—भौंई बाय बाकसु चरि लीला । बाँधि सुख तब कै भरोसा ॥

रूप बहु मौंति प्रसंसेत लाही । करम बँदि निज भाग्य सराही ॥ १ ॥

हे नाथ । बहुत अच्छा, ऐसा कहकर और उसकी आज्ञा फिर चढ़ाकर, बोदेको हुसले बाँधकर रात्रा बैठ गया । राजाने उसकी बहुत प्रकारसे प्रशंसा की और उसके चरणोंकी चन्दना करके अपने भाग्यकी सराहना की ॥ १ ॥

पुनि मोकेव सुहु भिरा सुहार्द । जनि पिता प्रभु परतें दिठार्द ॥

मोहि मुनीस सुत सेवक जानी । कब काम निज कहहु बचानी ॥ २ ॥

फिर सुन्दर कोमल धार्मीसे कहा—हे प्रभो ! तुमको पिता जानकर मैं दिठाई करता हूँ । हे मुनीश्वर ! तुमसे अपना पुत्र और सेवक जानकर अपना नाम [धाम] विस्तारसे बतलावदे ॥ २ ॥

तेहि म जान रूप सुखहि सो जाना । रूप सुख सो कष्ट समाना ॥

वैरी पुनि छली पुनि राखा । छल कलकलै कहहु निज जाना ॥ ३ ॥

राजाने उसको नहीं पहचाना, पर वह राजाको पहचान गया था । राजा तो छद्मरूप या और वह कष्ट करनेमें चतुर था । एक तो वैरी, फिर व्याधिका शत्रिय, फिर राजा । वह छल-कलसे अपना काम बनाना चाहता था ॥ ३ ॥

सहसि राजपुत्र हुसित मंरली । कबो भगवत रूप सुखमाइ छली ॥

सरल बचन रूप के सुनि जान । कब सँभारि कह्यु हरपाया ॥ ४ ॥

वह शत्रु अपने शत्रु-मुखको समझ करके (सरल करके) चुपचा था । उसकी छाती [कुम्हारके] बाँधकी आबकी तरह [भीतर-ही-भीतर] गुल्म रही थी । राजाके सरल बचन कागसे सुनकर, अपने वैरको यादकर वह हृत्पर्यो रूषित हुआ ॥ ४ ॥

बौ०—कपट बोरी बानी सुबुल बोलेव सुगुति समेत ।

नाम हमार मिळारि अब निर्जन रहित निकेत ॥ १६० ॥

वह कपटमें हुनोकर बड़ी मुश्किले साथ कोमल छापी बोला—अब हमारा नाम मिळारी है; क्योंकि हम निर्जन और अनिकेत (पर-द्वारहीन) हैं ॥ १६० ॥

✓बौ०—बाह रूप के विमोघ निघाव । तुम्ह सारिके बसित भविष्या ॥

सदा तहिं भयनवी बुराई । सब विधि कुलक कुलेश बनाई ॥ १ ॥

राजाने कहा—जो आपके उद्यम विघ्नके निघान और वर्षा अभिमानरहित होते हैं, वे अपने स्वरूपकी सदा स्थिति रहते हैं । क्योंकि कुलेश बनाकर राजमें ही सब तरहका कल्याण है (प्रकट संतकेमें मान होनेकी सम्मानना है और बायसे पतनकी) ॥ १ ॥

कैहि तें कहहि संत मुति टेई । परम बर्किचन विष हरि केई ॥

तुम्ह सम अधन मिळारि ज्योहा । होत निर्दिष्ट निबिदि खेदा ॥ २ ॥

इसीसे तो संत और वेद पुष्पधर कहते हैं कि परम बर्किचन (वर्षा बरकर, भगवा और मानरहित) ही भगवान्को प्राप्त होते हैं । आप-भरीसे निर्जन, मिळारी और राहीनोंको देखकर ज्ञान और शिष्यकी-सी चन्देह हो जाता है [कि ये साक्षातिक संत हैं या मिळारी] ॥ २ ॥

बौलि सोधि सब कस्य चमगमी । सो पर कमा करिब अब सामी ॥

सहज प्रीति मूपति कै देखी । आहु विषय विमोघ विसेवी ॥ ३ ॥

आप जो सौ सौ हैं (जहाँ जो कोई भी हो), मैं आपके चरणोंमें नमस्कर करता

हैं । हे स्वामी ! अब इसपर कृपा कीजिये । अपने ऊपर राजाजी स्वाभाविक प्रीति और अपने विषयमें उक्त अधिक निश्चय देसकर—॥ १ ॥

सम प्रकर राजहि अनाहैं । कोउठ अधिक सनेह अनाहैं ॥

बहु सतिभाव कदवैं मदिबख । इहाँ बसत जीते ॥ कल ॥ ४ ॥

यस प्रकारसे राजाको अपने पक्षमें करके, अधिक स्नेह दिलाया हुआ वह (कष्ट तपस्वी) योद्धा-हे राजन् ! तुम, मैं तुमसे स्नेह करता हूँ, तुमसे कहीं रहते बहुत समय बीत गया ४
हो—अब उमि मोहि न मिलेउ कोउ मै न जखयवैं काहु ।

खेचमप्रवृत्ता अनल सम फर तप कान्धन दाहु ॥ १६१ (क) ॥

अबतक न तो कोई मुझसे मिल और न मैं अपनेको किसीपर प्रकट करता हूँ । क्योंकि कोऊमें प्रीति अधिक लगान दे जो तपस्वी बनको मझ कर ठाछनी है ॥ १६१ (क) ॥

हो—तुमसी बेसि सुयेहु सुखहि मूढ़ न चतुर सर ।

छुपर कोकिहि येहु बचन सुधा सम असम अहि ॥ १६१ (ख) ॥

मुझसीवासी कहते हैं—तुम्हारे ये देसपर मूढ़ नहीं, [मूढ़ तो मूढ़ ही हैं] छुपर म्लुप्य भी सोचा जा जाते हैं । तुम्हारे भरोसे देखो, उसका बचन तो अमूल्य समान है और भाषा सौन्दर्य है ॥ १६१ (ख) ॥

चौ—ताजें गुप्त रहवैं लग मदी । हरि उमि किमहि प्रमेजन जाहीं ॥

प्रभु लागत सब किमहि बचावैं । कहु कवि सिधि लोक रिझावैं ॥ १ ॥

[कष्ट तपस्वीने कहा—] इहाँसे मैं कान्धनमें छिपकर रहता हूँ । भीखारीकी छिपकर किसीके कुछ भी प्रमेजन नहीं रहता । प्रभु तो बिना बनाने ही सब जानते हैं । फिर क्यों, उंचारको रिझानेसे क्या सिधि मिलेगी ॥ १ ॥

तुम्ह सुनि सुनति परम भिय मोरें । प्रीति प्रीति मोहि पर तोरें ॥

बस नी ठाठ दुरावहैं मोही । शक दोष बह्व अति मोही ॥ २ ॥

तुम पवित्र और तुम्हारे मुदितको हो, इससे तुमसे बहुत ही प्यारे हो । और तुम्हारी भी मुझपर प्रीति और विश्वास है । हे तात ! अब यदि मैं तुमसे कुछ छिपाता हूँ तो तुमसे बहुत ही नम्रानुश दोष उगेगा ॥ २ ॥

किमि किमि तपहु कवहु उदम । किमि किमि कृपहि उपबधिबख ।

देस सवळ कर्म मन जनी । सब सोख तरसत पराध्यामी ॥ १ ॥

सबो-क्यों वह तपस्वी उदासीनतासे बातें कहता था, सबो-ही-त्यों राजाको विश्वास उत्पन्न होता जाता था । अब उस बहुलेश्वरी तपह ज्ञान कर्मनेवाले (कपटी) मुनिने राजाको धर्म, मन और मननसे अपने पक्षमें खड़ा उस पद बोध—॥ २ ॥

सम हसत प्रकृतु मदी । सुनि पृथ कोउहु बुनि सिध मादैं ॥

कहु नम फर कल बखानी । मोहि सेवक बधि आपन जाकी ॥ ४ ॥

हे मादैं ! इसपर नाम प्रकृतु है । वह तुम्हारे ख्यामे फिर फिर नवाकर कहा— तुम अपना मान [अनुगामी] केवल खानकर अपने नाममय कार्य असाधकर कहिये ॥ ४ ॥

हो—अदिदृष्टि उपजी अवधि तव उत्पति मै मोरि ।

सम प्रकृतु हेतु तेहि देह न भरी बहोरि ॥ १६२ ॥

[कपटी मुनिने कहा—] अब अपने पाछे छष्टि उत्पन्न हुई थी, तभी मेरी उत्पत्ति हुई थी । तबसे मैंने फिर कृपणी देह नहीं धारण की, इसीसे मेरा नाम प्रकृतु है ॥ १६२ ॥

चौ०—जनि आचरतु जगहु मन माहीं । सुत तब तें दुर्लभ कह्यु माहीं ॥

तपबल तें जग सुबहु विधात । तपबल विष्णु अष्ट परिधात ॥ १ ॥

हे पुत्र ! मनमें आकर्षण मत करो, तपसे कुछ भी दुर्लभ नहीं है । तपके बलसे
ब्रह्मा जगत्को रचते हैं । तपहीके बलसे विष्णु संसारका पावन करनेवाले बने हैं ॥ १ ॥

तपबल संशु करहि संसार । जप तें अस्म न कह्यु संसार ॥

भयन नृपति मुनि अति अनुराग । कथा पुरातन कही सो काग ॥ २ ॥

तपहीके बलसे कइ संसार करते हैं । संसारमें कोई ऐसी वस्तु नहीं जो तपसे न
मिल सके । यह सुनकर राजाको बड़ा अनुराग हुआ । तब वह (तपस्वी) पुरानी
कथाएँ कहने लगा ॥ २ ॥

करम धरम इतिहास जगैकर । करहु निकलन विरति विवेका ॥

उदभव पावन प्रलय कहानी । कहेसि अमित आचरण ब्रह्माणी ॥ ३ ॥

कर्म, धर्म और अनेकों प्रकारके इतिहास कहकर वह वैराग्य और शमन निकलन
करने लगा । सुधी उग्रचि, पावन (सिद्धि) और संसार (प्रलय) की जगत्
आकर्षणकारी कथाएँ उसने विस्तारसे कहीं ॥ ३ ॥

मुनि भरीप सावत नस मयक । आपन काम कह्यु तब छयक ॥

कह ताकत मूल जानवें तोही । कीन्हेंहु कष्ट काम मळ मोही ॥ ४ ॥

राजा सुनकर उस तपस्वीके वचनमें हो गया और तब वह उसे अपना नाम बटाने लगा ।
तपस्वीने कहा—राजन् ! मैं तुमको जानता हूँ । तुमने कष्ट किया, वह मुझे अच्छा लगा । ४ ॥

चौ०—सुनु महीस भसि नीति जहैं तहैं नाम न कहहि मृष ।

मोहि तोहि पर अति प्रीति सोइ चतुरता विचारि तब ॥ १५३ ॥

हे राजन् ! सुनो, ऐसी नीति है कि राजा कोइ जहाँ-तहाँ अपना नाम नहीं कहते ;
इसारी वही चतुराई समझकर तुमपर मेरा बड़ा प्रेम हो गया है ॥ १५३ ॥

चौ०—नाम तुम्हार ब्रह्मप दिनेस । स्वयंकेहु तब विता भोस ॥

गुर प्रसाद सब जागिब राज । कहिय न आपन नामि ब्रह्मसा ॥ १५४ ॥

तुम्हारा नाम प्रदायमान है, महाराज स्वयंकेहु तुम्हारे पिता ने । हे राजन् !
गुरुकी कृपासे मैं सब जानता हूँ, पर अपनी शानि समझकर कहा नहीं ॥ १५४ ॥

बैसि तब तब सबहु सुभाई । प्रीति प्रीति नीति निपुनाई ॥

उपजि परी ममता सब मोरें । कहवें कथा विजि पूछे तोरें ॥ १५५ ॥

हे तात ! तुम्हारा स्वाभाविक सीधापन (सरलता), प्रेम, विद्या और नीतिमें
निपुणता देखकर मैं मनमें तुम्हारे ऊपर बड़ी ममता उत्पन्न हो गयी है ; इसीलिये मैं
तुम्हारे पूछनेपर अपनी कथा कहता हूँ ॥ १५५ ॥

अब प्रसन्न मैं संसय नहीं । मनु जो मूल मान मन माहीं ॥

मुनि सुबचन भूपति हरकना । महिषद विनय कीन्हि विधिवाना ॥ १५६ ॥

अब मैं प्रसन्न हूँ, इसमें संदेह न करना । हे राजन् ! जो मनको माने वही माँग
को । सुन्दर (प्रिय) वचन सुनकर राजा हर्षित हो गया और [मुनिके] वैर पकड़कर
सबने बहुत प्रसन्न हो गये ॥ १५६ ॥

कृपतिहु मुनि दस्तन तोरें । चरि पवारध करतक मोरें ॥

प्रभुहि तयापि प्रसन्न बिलेकी । नामि ब्रह्म पर होवें अखेकी ॥ १५७ ॥

हे दवातागर मुनि ! आपके दर्शनसे ही मैंने पदार्थ (अर्थ-धर्म, काम और मोक्ष) मेरी मुठ्ठीमें आ जमे । तो भी हमारीको प्रसन्न देखकर मैं वह दुर्लभ वर माँगकर [क्यों न] बोकरहित हो जाऊँ—॥ ४ ॥

श्री०—अरा मरुत दुख रहित ठनु समर सितै जनि कोठ ।

एकछत्र सिद्धीर गहि राज कलय सत होउ ॥ १६४ ॥

मेरा शरीर वृद्धावस्था, मृत्यु और दुःखसे रहित हो जाय; कृपे तुझमें कोई जीत न सके; और पृथ्वीपर मेरा ही कसतक एकछत्र ध्वजध्वज राज्य हो ॥ १६४ ॥

श्री०—एह तापस ॥ ऐसेह होऊ। नवर एक कठिन सुनु सोऊ ॥

कण्ठ दुख पद बाहुनि सीस। एक विमल छदि महीसा ॥ १ ॥

तपस्वीने कहा—हे राजन् ! ऐस ही हो पर एक बात कठिन है, उसे भी तुम जो । हे पृथ्वीके स्वामी ! केवल ब्राह्मणकुलसे छोड़ काक भी तुम्हारे चरणोंपर सिर नवावेगा ॥ १ ॥

तबल निम उहा करिभास। किहू के कोप न कोउ रसकारा ॥

जौ जिम्ह बड करहु तरेसा। तौ तुम बस विधि विन्दु महेसा ॥ २ ॥

आपके बलसे ब्राह्मण सदा कल्याण रहते हैं । उनके श्रेष्ठसे उदा करनेवाला कोई नहीं है । हे तपस्वि ! यदि तुम ब्राह्मणोंको कष्टमें कर लो, तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी तुम्हारे शरीरमें हो जायेंगे ॥ २ ॥

कह न मलकुल सब परिणार्ह। सब कहैं कोउ बुझा उठाई ॥

विम शाय विनु सुनु महिपन्न। पोर वास बहि कबहुँ जाहा ॥ ३ ॥

ब्राह्मणकुलसे पोर-जगदसी नहीं चल सकती, मैं दोनों मुजा उठाकर उत्पन्न कइसा हूँ । हे राजन् ! तुमो, ब्राह्मणोंके शाय विना तुम्हारा नाश किसी कालमें नहीं होगा ॥ ३ ॥

हरषेठ राह बल्ल सुनि कसु। शय न होइ मोर कल मासु ॥

तब प्रणव प्रभु हवनिकागा। सो कहूँ सदै कल कल्याण ॥ ४ ॥

राजा उत्तरके कवन सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और कहने लगा—हे स्वामी ! मेरा नाम शय नहीं होगा । हे कृपाविधान प्रभु ! आपकी कृपासे मेरा सब समय कल्याण होगा ॥ ४ ॥

श्री०—एवमस्तु कहि कपटमुनि बोला कुटिल वहीर ।

मिलव शमर सुखद निज पाइहु त हमहि न थोरि ॥ १६५ ॥

‘एवमस्तु’ (ऐसा ही हो) कहकर वह कुटिल कपटी मुनि फिर बोला—[किन्तु] तुम मेरे मिलने तथा अपने राह भूक जानेकी बात किसीसे [कहना नहीं, यदि] का दोगे, तो हमारा दोष नहीं ॥ १६५ ॥

श्री०—साते मैं तोहि दरख्यौ शय। कहैं कथा तब परस जकारना ॥

उठै प्रबन कल परत कहानी। नभ तुम्हारे सत्य भय बावी ॥ १ ॥

हे राजन् ! मैं तुमको इसलिये सना करता हूँ कि इस प्रसङ्गसे कइनेसे तुम्हारी वही धनि होगी । ठठे जानमें वह बात पड़ते ही तुम्हारा नाश हो जायगा, मेरा वह वचन सत्य जानना ॥ १ ॥

कह प्रमटैं कथना द्विजकथा। वास तोर सुनु कस्तुप्रतापा ॥

मान जस्यै विषय तब कहौ। जौ हरि हर कोफहि मय भाही ॥ २ ॥

हे प्रतापमान ! तुमो, इस बातके प्रसङ्ग कइनेसे जबका ब्राह्मणोंके शायसे तुम्हारा नाश होगा । और किसी उपायसे, चाहे तप और बड़ा भी भयमें श्रेष्ठ करे, तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी ॥ २ ॥

सत्य नाथ पद यहि नृप भण्यो । हिन गुर कोष कहहु को राग ॥

राख्यो ॥॥ औ कोष निषांत । गुर बिरोध नहि कोठ नग अंत ॥ २ ॥

राजाने मुनिके चरण पकड़कर कहा—हे स्वामी ! सत्य ही है । नाराण और गुरु के कोषसे, कहिये, कौन रक्षा कर सकता है ! यदि जसा भी कोष करें, तो गुरु बचा लेते हैं ; पर गुरु से विरोध करनेपर जगत्में कोई भी बचानेवाला नहीं है ॥ २ ॥

औ न कळब हम कहे सुम्हारे । होठ नस यहि सोच हमारे ॥

एकहि दर दरफत मन मोरा । प्रभु भविदेव आप अति घोर ॥ ४ ॥

यदि मैं आपके कथनके अनुसार नहीं चलेगा, तो [भले ही] मेरा नाथ हो जाय । मुझे इसकी चिन्ता नहीं है । मेरा मन तो हे प्रभो ! [केवल] एक ही डरते सर रहा है कि ब्राह्मणोंका क्षाप बड़ा ममानक होता है ॥ ४ ॥

दो—होहि विप्र बस काल विधि कहहु कृपा करि सोड ।

सुम्ह तखि दीनदयाल विप्र हितु न देखत कोठ ॥ १९६ ॥

हे ब्राह्मण किस प्रकारसे यशसे हो सकते हैं, कृपा करते ॥ भी बताइये । हे दीनदयाल । आपको छोड़कर और किसीको मैं अपना हितु नहीं देखता ॥ १९६ ॥

दो—सुनु गुर विविध कतल बन माही । कळसाध्य भुवि दोहि कि नहीं ॥

बहइ एक अति सुमन उपाई । तहाँ परंतु एक कठिमाई ॥ १ ॥

[तपस्वीने कहा—] हे राजन् ! सुनो, संसारमें उपाय तो बहुत हैं ; पर वे कष्टदायक हैं (वही कठिनतासे बननेमें आते हैं), और इतर भी सिद्ध हों या न हों (उनकी सफलता निश्चित नहीं है) । हाँ, एक उपाय बहुत सहज है ; परन्तु उसमें भी एक कठिनता है ॥ १ ॥

मम जाबीन छुति नृप छोई । मोर नाथ तब बसर न होई ॥

आहु तनो भक्त सब तें नकई । काहु के गुरु आन न गयई ॥ २ ॥

हे राजन् ! वह छुति तो मेरे हाथ है, पर मेरा जाना तुम्हारे नगरमें ही नहीं चला । सबसे पैदा हुआ हूँ, सबसे जागतक मैं किसीके घर जगजा याँव नहीं गया ॥ २ ॥

औ न जानै तब होइ भक्तान् । बहा आहु असमयस आम् ॥

भुनि महीस खेळत सुहु वाली । नाथ निमम अति सीति बसानी ॥ ३ ॥

परन्तु यदि नहीं जाना हूँ, तो तुम्हारा काम निगदता है । आज वह बड़ा असमयस आ पया है । वह बुनकर राजा कोमल वाणीसे बोला, हे नाथ ! वेदोमें ऐसी सीति कही है कि—॥ ३ ॥

बड़े सगैह लङ्कन पर करहीं । गिरि विज सिरवि सदा नृप धरहीं ॥

गवाधि जगाध मौकि वह पेन् । संतत घरनि पशव सिर रेन् ॥ ४ ॥

बड़े लोग छोटोंपर स्नेह करते ही हैं । परंतु अपने शिरोपर सदा तुल (नात) को धारण किये रहते हैं । जगाध सतुल अपने मखमल सेनको धारण करता है, और पत्नी अपने शिरोपर सदा भूलिकों धारण किये रहती है ॥ ४ ॥

दो—अस कहि गये नरेस पद स्वामी होहु कृपाल ।

मोहि छामि दुख सहिअ प्रभु सख्य दीनदयाल ॥ १९७ ॥

ऐसा करके राजाने मुनिके चरण पकड़लिये [और कहा—] हे स्वामी ! क्या कीजिये । आप मन हैं । दीनदयाल हैं [अतः] हे प्रभो ! मेरे लिये इतना का [अमय] ॥ १९७ ॥

दो—आपन आपनीना । दोन तपत अष्ट प्रक

नि भनु तोही । जव कहिय दुर्मम

राजको अपने जमीन बानकर झपटगै प्रणैल तपस्वी बोल—हे राजन् ! हुनो, मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, तबतनै मुझे कुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥ १ ॥

अबसि काय मैं बरिहैं सोर । मय तव दच्छ मगल सैं मोरा ॥

जोरा तुमुनि तप संत्र प्रभात । फलत उबहिं सब करिय पुरात ॥ २ ॥

मैं तुम्हारा काम अदरप करेगा [वचोक्ति] तुम मल, वाणी और धर्म [तीनों] से मेरे भक्त हो । पर योग, युक्ति, तप और मन्त्रोंका प्रभाव सभी फलप्रसूत होता है जब वे छिपाकर किये जाते हैं ॥ २ ॥

हाँ कसेस मैं लीं लोई । तुम्ह पससहु सोहि जान न कोई ॥

अस सो पोइ कोइ मोहन करई । सोइ सोइ रूप भायसु मनुसरई ॥ ३ ॥

हे मरपति ! मैं यदि स्नेह कनालें और तुम उसे परोसे, और मुझे कोई जानने न पावे, तो उस लड़के स्नेहसे लायका, मो-से तुम्हारा आत्मकरी बन लायका ॥ ३ ॥

तुमि सिंग के पूर कोई जोर । तव वस होइ भूप सुनु सोर ॥

भाव उपाय तबहु रुप एह । संवत भरि संकल्प कोइ ॥ ४ ॥

यही नहीं, उन (भोजन करनेवालों) के कर भी जो कोई भोजन करेगा, हे राजन् ! हुनो, वह भी तुम्हारे अधीन हो जायगा । हे राजन् ! चाकर यही उपाय करो और वर्णन [भोजन करने] का लक्ष्य कर लेना ॥ ४ ॥

दो—मित्र नूतन द्विज सहस्र सत बरेहु सहित परिवार ।

मैं तुम्हारे संकल्प कगि दिनहिं करि जेबनार ॥ १६८ ॥

मित्र नये एक कक्ष आसनोंके कुटुम्बसहित निमन्त्रित करना । मैं तुम्हारे लक्ष्य [के काल अर्थात् एक वर्ष] तक प्रतिदिन भोजन बना दिया करेगा ॥ १६८ ॥

चौ—एहि विधि भूष कर कति धीरें । होइहि सकल विप्र वस तीरें ॥

करिहि किम होस सक सेवा । तेहि प्रसंग लहैहि वत देवा ॥ १ ॥

हे राजन् ! इस प्रकार बहुत ही थोड़े परिश्रमसे सब आराधन तुम्हारे यशमें हो जायेंगे । आराधन इनके, यह और सेवा-पूजा करेंगे, तो उस प्रसंग (सम्बन्ध) से देवता भी सदन ही यशमें ही जायेंगे ॥ १ ॥

और एक तोहि कह्यै लखान । मैं एहि देव न अदरप काक ॥

तुम्हारे उपरोहित कहुँ राख । हरि भावय मैं हरि मित्र साध ॥ २ ॥

मैं एक और पटवान तुम्हारे वताये देता हूँ कि मैं इस रूपमें कभी न आऊँगा । हे राजन् ! मैं अपनी भाषासे तुम्हारे पुरोहितको हर लखेगा ॥ २ ॥

तपक ठेहि करि जाहु सम्मान । सम्हिहैं इहाँ कप पतवान ॥

मैं करि ताहु देख सुनु सम । सब विधि सोर सँवस्य काका ॥ ३ ॥

तपके बलसे उसे अपने सम्मान बनाकर एक ज्योतिष कहेंगे, और हे राजन् ! हुनो, मैं उसका रूप बनाकर तब आराधने तुम्हारा काम सिद्ध करेगा ॥ ३ ॥

मैं निजि बहुत समय लव कीये । सोहि तोहि रूप नैत दिव सीये ॥

मैं तपयक तोहि कुरा समेता । पौचैहैं सेवताहि निकेता ॥ ४ ॥

हे राजन् ! रात बहुत बीत जमी, अब तो चाओ । आजसे सीखे दिन मुझसे तुम्हारी मेंट होगी । तपके बलसे मैं फोदेखल कुनको सोखीमैं कर पहुँचा दूँगा ॥ ४ ॥

दो—मैं आठव सोइ वेपु हरि पहिचानेहु तव मोहि ।

जब एकांत बोलइ सब कथा सुनवौं कोइ ॥ १६९ ॥

मैं वही (पुरोहितका) वेप धरकर आऊँगा जब एकजन्ममें तुमको बुलाकर सब
कथा सुनाऊँ। तब तुम मुझे पहचान लेना ॥ १६९ ॥

चौ०—सबन कीन्ह भूष जगत्सु मानी। जसन जगु बैठ छलमानी ॥

अश्विन भूप सिद्धा अति आई। सो मिमि सोव सोच अधिकारी ॥ १ ॥

रामाने आज्ञा मानकर जसन किया और वह कमठ-खानी असनपर जा बैठा।
राजा क्या था, [उठे] खून (गहरी) नींद आ गयी। पर वह कगड़ी कैसे सोता।
उसे तो बहुत चिन्ता हो रही थी ॥ १ ॥

कालकेतु विदित्वा छई बाधा। कैहि सुकर होइ नृपति सुजाय ॥

परम सिद्ध जगत्सु भूप केत। बाधा सो अति कष्ट घनेरा ॥ १ ॥

[उत्तरी समय]—कहाँ कालकेतु राखत आया, जिसने सुकर बनकर रामको भटकाया
था। वह सपत्नी रामका बड़ा मित्र था और सब छल-प्रपञ्च जानता था ॥ २ ॥

हेहि के सत सुत बाध वस आई। कल अति अन्ध वेप दुखदारी ॥

प्रथमहि भूप समर सब सारे। किम संत सुर देखि दुखारे ॥ १ ॥

सस्ते सौ पुत्र और इत भाई-भे, जो बड़े ही दुष्ट, किसीसे न जीते बानेवाले और
देवताओंको दुष्ट देनेवाले थे। ब्राह्मणों, संतों और देवताओंको दुखी देखकर रामाने
उन सबको पहले ही दुष्टमें मार डाला था ॥ २ ॥

हेहि कल पाछि कल सँसार। जसत लुप सिद्धि भंघ विपत्ता ॥

कैहि विपु छप सोइ रणेहि उपाय। मानी कल व बाध कहु राय ॥ ४ ॥

उस दुष्टने पिछला कैर बाद करके तपस्वी राजासे मित्रकर सहाइ दिवारी
(पञ्चम्य किया) और जिस प्रकार बहुत नाथ हो, वही उपाय रहा। मानीय
राम (प्रतापमान) कुछ भी न समझ सका ॥ ४ ॥

चौ०—रिपु तेजसी धकेल अति लघु करि पमिष न राहु।

अऊहुँ देत दुख रवि ससिहि सिर अपसेषित राहु ॥ १५० ॥

तेजसी शत्रु अकेला भी हो तो भी उसे छोटा नहीं समझना चाहिये। विपत्ता
सिध्द हो क्या था, वह राहु आमतक सर्व-सन्त्रासको दुष्ट देता है ॥ १५० ॥

चौ०—रापस लुप निरु समहि मिहरी। हरिमिहरे उठि अन्ध भुखरी ॥

मित्रहि करि सप कया भुवाई। जसुपाय कोय दुख पाई ॥ १ ॥

सस्ते राजा अपने मित्रको देस प्रसन्न हो उठकर मित्र और दुखी-दुष्ट। उसने
मित्रको सब कथा कह सुनायी, तब राजस अनन्तर होकर बोला—॥ १ ॥

अब सबेरे—रिपु सुगुह जेस। भी दुष्ट कीन्ह बोर उपदेस ॥

परिवारि, सोव राहु दुष्ट सोई। भिनु कोपय मिहवि चिरि सोई ॥ १ ॥

हे राजा! तुमने, जब तुमने मेरे कन्नेके अनुसर [इतना] काम कर दिया, तो
अब मैंने तुमको कायमें कर ही दिया [छात्रों]। तुम अब चिन्ता स्वयं तो रखो।
निवादाने किना ही दनाके लिए दूर कर दिया ॥ २ ॥

इस समेत रिपु शुक कहाई। चौथे दिवस मिहव में आई ॥

रापस सुदि बहुत परितोषी। फल अहकपटी अतिरोषी ॥ १ ॥

कुम्भारि शत्रुको जल-गुहले उखाड़ कहाकर, [जानसे] चौथे दिन मैं तुमसे
जा मिर्दिगा। [इत प्रकार] तपस्वी राजाको शून्य दिवसा देकर वह महाप्रमानी और
अपमान्य श्रेणी राजस बना ॥ २ ॥

भानुप्रातःपदि कानि समेत । पहुँचयहि छन मान निकेता ॥
 भूपति गति छँदि सयन करौ । ह्यगुह्यँ पँधिसि कानि बनाई ॥ ४ ॥
 उसने प्रतापमान राजाको बोलेछँद छनमर्म कर पहुँचा दिया । राजाको रानीके
 पास भूपतिर पहुँचो अच्यो तहसे सुखसुखमें बाँध दिया ॥ ४ ॥

दो—राजा के उपरोहितहि हरि है पयद बहोरि ।

है राजेशि गिरि खेद भहुँ भावाँ करि मति मोरि ॥ १७१ ॥

फिर वह राजाके उपरोहितको उठा के गया और लपके उसकी बुद्धिको भ्रमसे
 बाध कर उसे छनै पराधी सोह्यै ले रखा ॥ १७१ ॥

चौ०—जायु गिरिहि उपरोहित छन । परेद बड् देखि ॥ जगूपा ॥

जगूपा तब जनमर्षे विह्वल । देखि सयन भति अचरतु माना ॥ १ ॥

वह आप उपरोहितका कम कपकर, उसकी सुन्दर सेवक का छेदा । राजा सबेरा
 होमैपके ही जाया और अपना घर देखकर उसने बड़ा ही आश्चर्य माना ॥ १ ॥

भुवि महिमा यव भहुँ भहुँगयी । उदेन कदि देखि जाय न राखी ॥

कायन पयद कनि चरि देखी । पुर कर गरि न जानेद कैहीं ॥ २ ॥

मनमें बुनिही महिमात्र अनुमान करके वह बीखे उठा सिधे रानी न जान
 पावे । फिर उसी प्रेक्षेपर चढ़कर बनको बल गया । नगरके किसी भी छी-पुरुषने
 नहीं जाना ॥ २ ॥

गढ़ पास छन भूपति जाय । घर घर उल्लस काय बचावा ॥

उपरोहितहि देखि कम राजा । कति किछो सुमिरि सोह पचा ॥ ३ ॥

वो घर बीच जनेपर राजा जाया । घर-घर उत्सव होने को और यथाथा बजने
 लगा । जब राजाने उपरोहितको देखा, तब वह [अपने] उसी अर्चक सरण कर उसे
 आश्चर्यसे देखने लगा ॥ ३ ॥

कन कम भूपति गढ़ दिन सीनी । कयले भुवि पर रह नति सीनी ॥

सयन कनि उपरोहित छावा । भूपति मने सय कहि सनुसाया ॥ ४ ॥

राजाको तीन दिन पुनके समान बीहे । उसकी बुद्धि कपटी बुद्धिके चारोंपै लगी
 रही । निश्चित धमय कानकर उपरोहित [बना हुआ राखत] जाया और राजाके साथ
 की हुई गुप्त सलाहके अनुसार [उसने अपने] सब विचार उसे समझाकर कह दिये ॥ ४ ॥

दो—भूप हरपेक पहिछानि शुद्ध भ्रम बस रहा न खेत ।

करे दुरत सत साहस बर विप्र कुटुंब समेत ॥ १७२ ॥

[संकेतके अनुसार] गुप्तको [उस समयमें] पदचानकर राजा प्रसन्न हुआ ।
 भ्रमस्य उसे चेष्ट न रहा [कि वह वास्तव बुद्धि है या कालकेतु राखत] । उसने दुरंत
 एक लाख उत्तम ब्राह्मणोंके कुटुम्बसहित निमन्त्रण दे दिया ॥ १७२ ॥

चौ०—उपरोहित जेवहार कजाई । जस करि विधिबसि भुति पाई ॥

मायामय देखि कोन्हि स्तोई । विप्र बड् भनि सख्द न कोई ॥ १ ॥

उपरोहितने छः स और चार प्रकारके भोजन, वैसे कि येदोंमें वर्णन है, बनाये ।
 उसने मायामयी रतोई तैयार की और इतने व्यञ्जन बनाने जिन्हें कोई भिन नहीं सकता ॥ १ ॥

विविध सुगन्ध कर व्यापिष रोंछा । देखि बड् विप्र मौसु बल धौंचा ॥

मौनव कहुँ सब विप्र मोल्यए । पर पछारि सादर बैठाए ॥ २ ॥

अनेक प्रकारके पुष्पोंका माल पकड़ा और उसमें उस बुद्धिने ब्राह्मणोंका मान मिला

दिया। सब ब्राह्मणोंको भोजनके लिये तुल्यता और चरम धोकर आदरस्थित बैठाया ॥ २ ॥

बसंत नर्तक सभ्य महिषासुर । ये भक्तसभ्यको तेहि काठा ॥

विप्रभुं उठि उठि मृदु जगद्वृत्ति । हे नर्तक तुमि नर नरि जाहु ॥ २ ॥

ज्यों ही राजा परोसने लगा, उसी काठ [भक्तसभ्यकुल] आकाशवाणी हुई—हे ब्राह्मणों! उठ-उठकर अपने घर जाओ; वह अब मत खाओ। इस [के खाने] में बरी हानि है ॥ ३ ॥

भयठ रसोई मृदु नरि । सब द्विज उठे भक्ति निस्तम् ॥

मृदु बिकल भक्ति सोई सुखनी । क्यो तब न भय मृदु नारी ॥ ४ ॥

रसोईमें ब्राह्मणोंका योग बना है। [आकाशवाणीका] विचार मानकर सब ब्राह्मण उठ करके हुए। राजा आनन्द हो गया। [परन्तु] उसकी मुद्रि मोहमें भूली हुई थी। होनहारका उसके मुँहसे [एक] बात [भी] न निकली ॥ ४ ॥

चौ०—बोले विप्र सरोप सब नहि कहु कौन विचार ।

आह मिसावर होहु मृदु मृदु सहित परिवार ॥ १७३ ॥

सब ब्राह्मण प्रवेशस्थित बोल उठे—उन्होंने कुछ भी विचार नहीं किया—अरे मूल राजा! तुम्हारे परिवारस्थित राजा हो ॥ १७३ ॥

चौ०—कनकचु हैं विप्र बोलाई । कौन विप्र सहित सखुवाई ॥

ईसर राजा घरम इसरा । नैदसि हैं सरोप परिवारा ॥ १ ॥

१ बीच भक्ति । तुने तो परिवारस्थित ब्राह्मणोंको कुलकर उगई नष्ट करना चाहा था; ईश्वरने हमारे धर्मकी रक्षा की। अब तुम्हारे परिवारस्थित नष्ट होगा ॥ १ ॥

संनत मध्य भास सब होऊ । कलदाता न रहिहि कुल कौक ॥

मृदु भुक्ति सभ्य बिकल भक्ति जगता । ये क्यो नर निर भक्तता ॥ २ ॥

एक वर्षके भीतर तेरा नष्ट हो जाय, तेरे कुलमें कोई पानी देनेवाला न रहेगा। घायल सुनकर राजा उसके गले अलगव आनन्द हो गया। फिर सुन्दर आकाशवाणी हुई—॥ २ ॥

विप्रहु आन विचारि न होन्हा । यदि भक्तसभ मृदु कहु कौन ॥

भक्ति विप्र सभ भुक्ति नमस्वामी । मृदु क्यो नै भोवत नारी ॥ ३ ॥

हे ब्राह्मणों! तुमने विचारकर घायल नहीं दिया। राजाने कुछ भी अपराध नहीं किया। आकाशवाणी सुनकर सब ब्राह्मण भक्ति हो गये। सब राजा यहाँ गया नहीं भोजन बना था ॥ ३ ॥

सई न भक्त नहि विप्र सुधार । सिद्ध सब मन सौच भवास ॥

सब प्रसंग सहितुल्य सुखई । जसित पौर कनकी मङ्गलाई ॥ ४ ॥

[देखा तो] नहीं न भोजन था, न रसोईका ब्राह्मण ही था। सब राजा भक्तों के अपार चिन्ता करता हुआ बैठा। उसने ब्राह्मणोंको सब हृदयानुसृतता और [नदी ही] मन्वीत और आनन्द होकर वह धृष्टीकर फिर पड़ा ॥ ४ ॥

चौ०—भूयसि मावी मिष्ट नहि अपि न रूपन दौर ।

किर्ये भक्तसभ होइ नहि विप्र सभ भक्ति घोर ॥ १७४ ॥

हे राजा! कथि तुम्हारा दोष नहीं है, तो भी होन्हार नहीं बिटता। ब्राह्मणोंका वाप मृदु ही मन्वीत होता है, वह किसी तरह भी उनके दम नहीं सकता ॥ १७४ ॥

चौ०—अस कहि सय सहिदेव सिखव । समाचार पुसलोगन्ह पाए ॥

सोचहि वृपन बैसहि देखी । निरवत हंस काय किय जेही ॥ १ ॥

ऐसा कहकर सब ब्रह्मण चले गये । नमस्कारियोंने [अब] वह समाचार पाया,
तो वे चिन्ता करने और विद्यवाक्य दोष देने लगे, जिसने हंस बनाते-बनाते कौमा कर
दिया (ऐसे पुण्यात्मा राजाको देवता बनाना चाहिये या तो राक्षस बना दिया) ॥ १ ॥

उपरोंदितहि अवन गहुँचहई । असुर समसहि सबरि सनाई ॥

तेहि लल रहई लखे पत्र पत्राय । सनि सनि सेन भूप सब पाए ॥ २ ॥

पुरोहितको उसके पर पहुँचाकर असुर (काष्मिष्ठ) ने [कपटी] तपस्वीको सब
ही । जब दुष्टने लक्ष-लक्ष पत्र भेजे, जिससे सब [बैरी] राजा सेना-सभा-सभाकर [चढ़] दौड़े
बेरिष्ट बरार बिसाव बनाई । विशिष्ट भीति नित होइ छाई ॥

दोहे सकल सुख भलि करनी । पंडु समेत पौठ भूप धरनी ॥ ३ ॥

और उन्होंने लंका बनाकर नगरको बेर दिया । नित्यप्रति अनेक प्रकारसे लड़ाई
होने लगी । [मत्तारभाषुके] सब कोछा [छरवीरोंकी] करवी करके रणमें लड़ा मी ।
राजा भी भाईसहित लेत रहा ॥ ३ ॥

सत्यमेव दुष्ट कोठ बहि बीषा । निप्र भाव किमि होइ जनीषा ॥

रिपु मिथि क्षय भूप सगर बसाई । निम पुर गवनी कय लजु पाई ॥ ४ ॥

काष्मिष्ठके कुलमें कोई नहीं बचा । प्राकणोंका शाप सुना कैते हो सकता था ।
छत्रको बीषाकर, नगरको [मित्रसे] बसाकर सब राजा विजय और बड़ा पाकर अपने-
अपने नगरको चले गये ॥ ४ ॥

दो०—भरद्वाज छत्रु आदि जब होइ विचारत धाम ।

दुरि मेरुसम जनक जम ताहि जगलसम धाम ॥ १७५ ॥

[भारद्वाजकी कहते हैं—] हे भरद्वाज ! सुनो, विद्यवा जब जिसके विपरीत होते
हैं, सब उनके सिधे धृष्ट कुमेरुपर्वतके लगान (भारी और कुबल बलनेवाली), पिता दमके
समान (काठकर) और रस्सी सोंपके समान (काट खानेवाली) हो जाती है ॥ १७५ ॥

चौ०—कल पाह मुनि लोह सख । मयस विसावर सहित समावा ॥

दल विर साहि बीष जुझईका । रावक पास बीर बरिषका ॥ १ ॥

हे मुनि ! सुनो, काय पाकर वही राजा परिवारसहित रावण नामक राक्षस हुआ ।
उलके दल विर और वीर सुनार्य भी और यह वड़ा ही प्रचण्ड धूरवीर था ॥ १ ॥

भूप भकुल अरिमर्दन लमा । सबत सो कुंभमल यजमाना ॥

सखि जो छह परमसखि धाम । सबत विमान पंडु का । राव ॥ २ ॥

अरिमर्दन नामक जो राजान्न छोटा माई था, वह कलक धाम कुम्भकर्ण हुआ ।
उलका जो समीचीन था, जिसका नाम भर्मासखि था, वह रावणपर सौतेला छोटा भाई हुआ ॥ २ ॥

वान विभीषण वेदि कम् नान । विष्णुभक्त किमान विधाना ॥

रहे ते सुख लेषक सुख केरे । सय विसावर बोर छनैरे ॥ ३ ॥

उलका विभीषण नाम का बिदे काय सखा जानता है । वह विष्णुभक्त और
धर्म-विशानका मण्डार था । और जो राजाके पुत्र और संवक थे, वे समीचीन वड़े भवानक
राक्षस हुए ॥ ३ ॥

कामरूप लल विनय अनेका । कुटिक मनेकर विगत विवेका ॥

कृपा रहित हितक दस सपरी । करनि व नहि विर पतितापी ॥ ४ ॥

वे सब अनेकों आतिका, मममाना रूप धारण करनेवाले, दुष्ट, कुटिल, भयङ्कर, विवेकहीन, निर्दयी, ईश्वर, पापी और संसारमत्तके दुष्ट देनेवाले दुष्ट, उनका वर्णन नहीं हो सकता ॥ ४ ॥

दो—उपजे अवधि पुलस्त्यकुल पावन अमल अनूप ।

तदपि महीसुर भ्राप वस भय सकल भयरूप ॥ १७६ ॥

यद्यपि ये पुलस्त्य श्रुतिके पवित्र, निर्मल और अनुपम कुलमें उत्पन्न हुए, तथापि ब्राह्मणोंके शत्रुके कारण वे सब पापसम-दुष्ट ॥ १७६ ॥

श्री०—कीन्ह बिबिध तप तीन्हिहुँ भई । परम उग्र नहीं धरनि सो आई ॥

गपट निकट तप देखि विधात । सम्बहु नर प्रसन्न मैं ताता ॥ १ ॥

तीनों भाइयोंने अनेकों प्रकारको बड़ी ही कठिन समस्या की, जिसका वर्णन नहीं हो सकता । [उनका उग्र] तप देखकर ब्रह्मानी उनके पास गये और बोले—हे शत्रु ! मैं प्रसन्न हूँ, पर माँगो ॥ १ ॥

करि बिनती पद गहि दससीस्र । बोलेउ बचन सुबहु अगदीसा ॥

हम काहु के मरहि न मारें । धानर मनुज जाति दुष्ट कारें ॥ २ ॥

रामजने विनय करके और चरण पकड़कर कहा—हे सपत्नीश्वर ! सुनिये, धानर मनुज हम को जातियोंको छोड़कर हम और किसीके मारे न मरें [यह वर मिले] ॥ २ ॥

पद्मसु दुग्द पद तप कीन्हा । मैं माहीं भिक्षि तेहि वर दीन्हा ॥

पुनि प्रभु कुम्भकरण पदि भयउ । तेहि बिलोकि मन विसमय मनउ ॥ ३ ॥

[ब्रह्मानी कहते हैं कि—] मैंने और ब्रह्मामें मिलकर उठे वर दिया कि ऐसा ही है, हमने बड़ा तप किया है । फिर ब्रह्मानी कुम्भकरणके पास गये । उठे देखकर उनके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ३ ॥

श्री पदि कल निरु करण भव्यक । होइहि सब ब्यारि संसांक ॥

सारथ प्रेरि ताहु मति केरी । मनेसि कीद मरत पद केरी ॥ ४ ॥

श्री यह दुष्ट नित्य आहार करेगा, वो सारा संसार ही उखाड़ हो जायगा । [ऐसा ब्यचारकर] ब्रह्मानीने सरस्वतीकी प्रेरणा करके उसकी बुद्धि फेर दी । [निरुषे] उसने ॥ महीनेकी नींद माँगी ॥ ४ ॥

श्री०—गए बिमिषन पास पुनि कहेउ पुन वर मागु ।

तेहि मागेउ ममघंत पद कमल अमल मलुरागु ॥ १७७ ॥

फिर ब्रह्मानी विनीक्षणके पास गये और बोले—हे पुन । पर माँगी । उसने कावालेके चरणकमलोंमें निर्मल (निष्काम और अनन्य) प्रेम माँगी ॥ १७७ ॥

श्री०—जिन्हि देह नर अन्न विषाण । हरकि वे जयने गृह जाय ॥

मय मनुजा मन्दोदरि नाम । परम सुंदरी करि कलसा ॥ १ ॥

उनको वर देकर ब्रह्मानी चले गये । और वे (तीनों माई) हर्षित होकर अपने घर छोट आयी । मय राजकुमारी मन्दोदरी नामकी कन्या परम सुन्दरी और जियोंने विरोधगी थी ॥ १ ॥

सोह मय दीन्हि सत्तवहि जानी । होइहि जगुधानपति जानी ॥

हरविष ममल करि अलि पाई । पुनि दोउ बंधु बिजादेसि आई ॥ २ ॥

मयने उसे जाकर राक्षसों दिया । लज्जे जन लिया ॥ वह राक्षसोंका राजा होगा । भाली ली जाकर राक्षस प्रजा हुआ और फिर उसने जाकर दोनों भाइयोंका विवाह कर दिया ॥ २ ॥

मिरि सिद्ध दुःख निवृत्त जगति । विधि निमित्त दुर्गम गति गयी ॥

सोए मन बसवै बहुरि सैवात । जनक रक्षित मनिगजन अपारा ॥ ३ ॥

सदृशने, बौद्धने शिष्ट नामक परमेश्वर ब्रह्माका बनाया हुआ एक बड़ा भारी किया था । [महान् भगवती और निपुण कारीगर] मन दानदने उसको फिरसे सजा दिया । उसने माँगते छड़े हुए सोनेके जलमिलत मटल थे ॥ ३ ॥

भोगावति अति बलिष्ठ बाला । असरवति बलि लज्जनिवाला ॥

लिखूँ ते अधिक मन अति बंध । जय विजयास नाम तेहि संका ॥ ४ ॥

लैली नारायणदे रहनेदी [पाताललोचने] भोगावती पुत्र है और हनुके रहनेकी [लक्ष्मीलोचने] अमावसी पुरी है, उससे भी अधिक सुन्दर और बँका वह हुआ था । अतएव उसका नाम संका प्रसिद्ध हुआ ॥ ४ ॥

सो—साईं सिद्धु गमीर अति चारिहुँ दिशि फिरि भ्रम ।

जनक सोढ मनि लखित हउ धरनि न जाइ बनाव ॥ १७८ (क) ॥

उसे चारों ओरसे बहुरी अस्मत् गहरी साईं बँरे हुए हैं । उस [पुरी] के मणिलोके लड़ा हुआ सोमेका मन्वन्त परचोटा है, जिसकी अतिगहिरा बर्षन नहीं किया जा सकता ॥ १७८ (क) ॥

हरि प्रेरित जेहि कल्प ओह अनुधानपति होइ ।

सूर प्रतापी अनुलखल हउ समेत वस सोइ ॥ १७८ (ख) ॥

महाबली प्रेरणसे निष्ट कल्पने को राक्षसोंका राजा (राक्षस) होता है, वही शूर, प्रतापी, अनुलखल बलवान् अपनी दैनर्त्तव्य उस पुरीमें रहता है ॥ १७८ (ख) ॥

सो—रहै ठहो कितिकर नद और । है सब सुलभ समर संवारे ॥

भय तहै रहहि सख के मेरे । लखन खेदि बखतरि कै ॥ १ ॥

[पद्ये] वहाँ बड़े बड़े बोझा राखन रहते थे । देखा मैंने उन सबको युद्धमें मार डाला । अब इन्द्रकी प्रेरणसे वहाँ कुम्भके एक कोठ रख (रखलोचने) रहते हैं—॥ १ ॥

एनसुख बड़हुँ उमरि भवि पाई । सेव अलि पद बेरेलि साई ॥

देखि किछ नय बहि लखवाई । लख बाल ली गए पराई ॥ २ ॥

राक्षसों वही देखे लखन निधी तब टपने सेना सजाकर निकले जो पैदा । उस बड़े किछ बोझा और लक्ष्मी वही सेनाको देखकर खड़े अपने प्राण लेकर भाग गये ॥ २ ॥

फिरि सख नगर दसगन बेला । गमल सोच सुख सबद बिसेष ॥

हुँदर लखन रूपन बलुनामी । बनिहि वहाँ सखन स्वधानी ॥ ३ ॥

तब राक्षसने भूमजिह्व कर नगर देला । लक्ष्मी [खानखानगी] चिता मिट गयी और उसे बहुत ही सुख हुआ । उस पुरीके स्वामिक ही सुन्दर और [बाहरवालोंके छिपे] हुँगन अनुमान करने रखने वहाँ अपनी राजधानी कायम की ॥ ३ ॥

जेहि सब मोन बाँटे भूख दीहे । हुली सख लखीकर कीन्हे ॥

एक बार कुँवर पर धारा । पुष्पक जान जोहि है अपार ॥ ४ ॥

मोक्षदाके अनुसार धरौंसे बँटकर राखने सब राखलेंको सुखी किया । एक बार वह कुबेरपर चढ़ दौड़ा और उससे पुण्यकविमानको जीतकर ले आया ॥ ४ ॥

दो०—कौतुकहीं कैलास पुनि लीन्हेसि जग उठाई ।

मनहुँ तौलि बिअ बाहुबल चला बहुत सुख पाई ॥ १७९ ॥

फिर उसने जाकर [एक बार] सिलवद्वीमें कैलास पर्वतको उठा लिया, और मानो अपनी मुवायोंका बल छोड़कर बहुत सुख पाकर वह कहाँसे चला आया ॥ १७९ ॥

चौ०—सुख संपति सुख सेव सदाई । सब प्रताप बल बुद्धि बढ़ाई ॥

नित नूतन सुख यमल जाई । निमि प्रविश्य भोग अधिकाई ॥ १ ॥

सुख, सम्पत्ति, पुत्र, सेना, सहायक, जय, प्रताप, बल, बुद्धि और बढ़ाई—ये सब उसके नित्य नये [वैसे ही] बढ़ते जाते थे, जैसे प्रलोक लगभग लोग बढ़ता है ॥ १ ॥

अतिबल कुंभकरण आस जाता । तेहि कहुँ नहि प्रसिद्ध जग जाता ॥

करइ पाज सोवइ कर भाला । जागत होइ तिहुँ पुर ताला ॥ २ ॥

अत्यन्त बलवान् कुम्भकर्ण-ता उसका भाई था; जिसके जोड़का योद्धा जगत्में पैदा ही नहीं हुआ । वह मंदिरा पीकर ऊः झीमे सोया करता था । उसके जागते ही तीनों लोकोंमें दहलका मच जाता था ॥ २ ॥

भी दिम प्रति अहार कर सोई । बिअ केनि सब चीपट होई ॥

संनर भीर नहि जाइ बाला । तेहि सम अमित भीर कहवाला ॥ ३ ॥

यदि वह प्रतिदिन भोजन करता, तब तो सम्पूर्ण विश्व शीघ्र ही चौपट (साथी) हो जाता । रणभीर ऐसा था ॥ जिसका बर्णन नहीं किया जा सकता । [सङ्ग्रामों] उसके ऐसे अंतर्ग्रस कलहान् भीर थे ॥ ३ ॥

बारिद्वार बैठ सुख ठाह । भट महुँ प्रथम लोक जय पाह ॥

तेहि न होइ लन सम्मुख कोई । मुरपुर मितहि परावन होई ॥ ४ ॥

मैघवाह रावणका बड़ा लड़का था, जिसका जगत्के योद्धाओंमें पहला मंवर था । यों कोई भी उसका सामना नहीं कर सकता था । स्वर्गमें तो [उसके भयसे] नित्य भयद मची रहती थी ॥ ४ ॥

दो०—कुमुद अकंपन कुलिसरद धूमकेतु अतिफाय ।

एक एक जग जीति सक ऐसे सुमद निफाय ॥ १८० ॥

[इनके अतिरिक्त] दुर्मुख, अकम्पन, वक्रान्त, धूमकेतु और अतिफाय जाति ऐसे अनेक योद्धा थे जो अकेले ही सारे जगत्को जीत सकते थे ॥ १८० ॥

चौ०—सामरूप जानहि सब आत्मा । समनेहुँ जिन के घरस न दास ॥

दसमुख बैठ सर्वा एक जगर । देखि जमित आचर परिवार ॥ १ ॥

सभी राक्षस मनमाना रूप बना सकते थे और [आसुरी] भाषा जानते थे । इनके दया-धर्म स्वप्नमें भी नहीं था । एक बार लगामें बैठे हुए राखने अपने अगणित शिवाको देखा—॥ १ ॥

सुख समूह जय परिवन्ध-वासी । नवै को पार निस्तार जाती ॥

सेन बिलोकि सहज अधिमानी । जेस बचन शेष सब समी ॥ २ ॥

पुत्र-पौत्र, कुटुम्बी और केवक डेर-के-डेर थे । [खरी] राखलेंकी जातियोंको भी गिन ही कौन सकता था । अपनी सेनाको देखकर स्वयंसे ही अधिमानी राखण शेष और सबमें सजी हुई वाणी बोल—॥ २ ॥

किन्नर सिद्ध मनुज सुर नग्न । इति सखी के पंथहि लग्ना ॥

महापति नई छगि पलुवारी । दसमुख बसवती घर बारी ॥ ६ ॥

किन्नर, सिद्ध, मनुज, देवता और नाम सभीके पीछे वह हठपूर्वक पड़ गया किसीको भी उसने शान्तिपूर्वक नहीं बैठने दिया) । नरानाभीने सुष्ठिम जहाँतक सूरि-परी की-पुरुष थे, सभी रावणके अधीन हो गये ॥ ६ ॥

आपसु करहि सकल सम्मोहा । भवहि वह नित चरव बिनीता ॥ ७ ॥

हरके मारे सभी उसकी आज्ञाका पालन करते थे और नित आत्त नम्रतापूर्वक उसके चरणोंमें सिर नवाते थे ॥ ७ ॥

दो०—मुजबल विश्व वस्य करि राखेसि कोठ न सुतंभ ।

मंडलीक मनि राघव राज करइ मित्र मंत्र ॥ १८२(क) ॥

उसने भुजाओंके वल्ले सारे विश्वको कसमें कर लिया, किसीको लक्ष्म नहीं रखे दिया । [इस प्रकार] मण्डलीक राजाओंका विरोधनि (सर्वभौम वज्र-ट्) रावण मने इच्छानुसार राज्य कसमें लगा ॥ १८२ (क) ॥

देव जच्छ नंधर्व घर किन्नर नम्य कुमारि ।

जीति परी मित्र बाहु बल बहु सुंदर वर भारि ॥ १८३(क) ॥

देवता, यक्ष, राक्षस, मनुज, किन्नर और नागोंकी कन्याओं तथा बहुत-सी अन्य सुन्दरी और उत्तम स्त्रियोंको उसने अपनी भुजाओंके वल्ले जीतकर व्याप्त किया ॥ १८३(क) ॥

पौ०—इंद्रवीर सब जो कह्यु कहेऊ । सो सब बहु पहिलेहि करि रोऊ ॥

प्रथमहि बिन्द कह्यु आबसु दीन्द्र । तिन्द कर करित सुखहु जो कीन्हा ॥ १ ॥

मेषनादसे उसने जो कुछ कहा, उसे उसने (मेषनादसे) मानो पछेते ही कर लया था (अर्थात् रावणके कहनेमरखी देर थी, उसने आज्ञापालनमें तमिह भी देर नहीं की) किन्तु [रावणने मेषनादसे] पछे ही आज्ञा दे रखी थी, उन्होंने जो करलें-की उन्हें सुनी ॥ १ ॥

देवत धीमक्य सब वाली । गितिबर विकर देव परितारी ॥

करहि उपद्रव असुर निरन्ध । कया रूप बरहि करि माया ॥ २ ॥

सब राक्षसोंके समूह देखनेमें बड़े भयानक, पापी और देवताओंको दुःख देनेवाले थे । वे असुरोंके समूह उपद्रव करते थे और मायासे अनेकों प्रपञ्चके रूप धारते थे ॥ २ ॥

बेहि बिधि होइ चर्म निर्मुल । सो सब करहि वेद प्रतिकूल ॥

बेहि बेहि देस भेगु शिव पावहि । कबर गाँव पुर आवि कयावहि ॥ ३ ॥

भिद प्रकार चर्मकी जड़ कटे, वे कही सब वेदविरुद्ध काम करते थे । जित-जित आत्मे वे गौ और ब्राह्मणोंको पाते थे, उगी नगर, गाँव और पुरमें माय छया देते थे ॥ ३ ॥

सुभ जागरण कह्यु नहि होई । देव विप्र शुभ मान न कोई ॥

नहि हरिमगसि जम तब मज्ज । सपनेहुं सुनिज न वेद पुतना ॥ ४ ॥

[उनके दृष्टे] कहीं भी सुभ आचरण (ब्राह्मणभोजन, यज्ञ, आदि आदि) नहीं होते थे । देवता, ब्राह्मण और शुक्ले कोई नहीं मानता था । न हरिमकि थी, न यज्ञ, तब और शान था । वेद और पुण्य तो स्वप्नमें भी सुननेसे नहीं मिलते थे ॥ ४ ॥

दो०—जप जोस बिरागा तप मस्य जगता अवन सुनर दससीसा ।

आपुनु उठि छावह रौ न सवह धरि सब छलह बीसा ॥

रा० स० ९—

अस धष्ट अचारा मा संसार धर्म सुनिम यहि जाना ।

तेहि बहुविधि प्राप्तह देख निवासह जो कह वेद पुराता ॥

अप, योग, वैराग्य, तप तथा यज्ञमें [देवताओंके] भाव पानेकी बात रावण कहीं अनोखे सुन पाता, तो [उसी समय] स्वयं उठ दौड़ता । कुछ मी रहने नहीं पाता, यह सबको पकड़कर विष्वंस कर बाँटता था । संसारमें ऐसा धष्ट आचरण फैल गया कि धर्म तो कानोसे भी सुननेमें नहीं आता था; जो कोई वेद और पुराण कहता, उसको बहुत तरावते नास देता और देखते निकाल देता था ।

सो—परमि त जाह भनीति खेर निसाचर जो करहि ।

हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पाषाहि कवनि मिति ॥ १८१ ॥

राजसभोग जो खेर अत्याचार करते थे, उसका कर्म नहीं किया जा सकता । हिंसापर ही क्रिमकी प्रीति है, उनके पापोंका क्या ठिकमा ! ॥ १८१ ॥

मासपारत्यन्त, छटा निश्राम

सो—पाटे काठ खुं चोर चुकल । से कंपट परबन परदार ॥

मार्गहि सह बिता यहि देखा । साङ्गन्त सब करवावहि सेवा ॥ १ ॥

पराये वन और परासी क्षीपर मन चलनेवाले, दुष्ट, चोर और गुजारी बहुत गए । सौग माया-पिता और देवताओंको नहीं मानते थे और छद्मियों [की सेवा करना सो दूर था, उल्टे उन] से सेवा करवाते थे ॥ १ ॥

तिन्ह के यह आचरण भगानी । से जानेहु निशिचर सब मानी ॥

अतिशय देखि धर्म है खानी । परत खनीस धरा जकुलानी ॥ १ ॥

[श्रीविष्णुजी कहते हैं कि—] हे भगानी ! कितने ऐसे आचरण हैं, उन सब मायियोंको राक्षस ही समझना । इस प्रकार धर्मके प्रति [अज्ञेयोंकी] अतिशय खानि (अदृष्टि, अनजाना) देखकर पृथ्वी अत्यन्त भयभीत एवं व्याकुल हो गयी ॥ १ ॥

गिरि करि सिंधु भार यहि मोही । सब मोहि सबन एक परजोही ॥

सकल धर्म देखह धिक्कीता । कहि न सकल राजब भय भीता ॥ १ ॥

[यह सोचने लगी कि] पर्वतों, नदियों और समुद्रोंका बोझ मुझे इतना भारी नहीं लग पड़ा कितना भारी मुझे एक परजोही (दुर्लभ बनित करनेवाला) लगता है । पृथ्वी सारे धर्मोंको धिक्कीत देख रही है, पर राक्षसों भयभीत हुई वह कुछ शोक नहीं सकती ॥ १ ॥

येहु सब धरि दुदर्थे विचारी । गाँ लहीं जई सुर मुनि छारी ॥

मिन संसार सुनारुमि रोई । कहहु तें कहु काल न होई ॥ १ ॥

[अन्तर्गते] हृदयमें खोज-निचारकर, गौका रूप धारण कर पत्नी बहों गयी जहाँ सब देवता और मुनि [जिन्हें] ये । पृथ्वीने खोज उनको अपना दुःख दुनामा, पर किसीके कुछ काम न बना ॥ ४ ॥

सं—सुर मुनि गंधर्वा मिलि करि सर्वा ये विरंचि के लोका ।

सँग गोतनुधापी भूमि चित्तारी परम बिकल धय सोका ॥

प्रह्राँ सब जान्य सब अस्तुमाना मोर कहु न बसाई ।

आ करि तैं दाखी सो जनिजसही हमरेठ सोर सहाई ॥

उप देवता, मुनि और मन्त्रार्थ सब मिलकर ब्रह्माजीके ओक (सत्यलोक) को गये । भय और शोकसे अत्यन्त व्याकुल बेचारी पृथ्वी भी शोक करीर कारण किये हुए उनके

साथ थी । ब्रह्माजी सब जान गये । उन्होंने मनमें अनुमान किया कि इसमें मेरा कुछ भी
श्रम नहीं चलनेका । [तब उन्होंने पृथ्वीसे कहा कि—] जिसकी तू दासी है, वही
अविनाशी हमारा और तुम्हारा दोनोंका सहायक है ।

श्लो०—धरनि धरहि मन धीर कह बिरंचि हरि पद सुमिर ।

जानत जन की पीर प्रभु भंजिहि दास्यन बिपति ॥ १८४ ॥

ब्रह्माजीने कहा—हे धरती ! मनमें धीरज धारण करके श्रीहरिके चरणोंका स्मरण
करे । प्रभु अपने दासोंकी पीड़ाको जानते हैं, वे तुम्हारी कठिन विपत्तिका नाश
करेंगे ॥ १८४ ॥

श्लो०—बैठे सुर सब करहि विचार । कोई पाहुन प्रभु करिअ पुकार ।

पुर वैकुण्ठ जान कह कोई । कोउ कह बसविधि न स प्रभु सोई ॥ १ ॥

सब देवता बैठकर विचार करने लगे कि प्रभुको कहाँ पावें ताकि उनके सामने
पुकार (प्रार्थना) करें । कोई वैकुण्ठपुरी जानेको कक्षा या और कोई कक्षा या कि
वही प्रभु धीरतनुप्रभमें निवास करते हैं ॥ १ ॥

जाके हरिँ भजति बसि प्रीति । प्रभु सहै प्रगट सर सेहि रीति ॥

तेहि समान निरिआ मैं रहेई । अवसर पाइ कबन एक कोई ॥ १ ॥

जिसके हृदयमें ऐसी भक्ति और प्रीति होती है, प्रभु वहाँ (उसके लिये) सदा
उसी रीतिसे प्रकट होते हैं । हे पार्वती ! तब समझमें मैं भी था । अवसर पाकर मैंने
एक बात कही— ॥ १ ॥

हरि व्यापक सर्वत्र समान । प्रेम से प्रगट होहि मैं जान ॥

ऐस काळ दिशि विदिसिहु महीं । कहाउ सो कह्यो जहाँ प्रभु बाहीं ॥ १ ॥

मैं तो यह जानता हूँ कि भगवान् सब जगह समानरूपसे व्यापक हैं, प्रेमसे वे प्रकट हो
जाते हैं । देश, काल, दिशा, विदिशामें बताओ, ऐसी जगह कहाँ है वहाँ प्रभु न हों ॥ १ ॥

कग कगमय सब रहित निजगी । प्रेम से प्रभु प्रगट किमि भागी ॥

मोर कबच सब के मन नाथ । सखु साधु करि नान बसाया ॥ १ ॥

वे चराचरमय (चराचरमें व्याप्त) होते हुए ही सबसे रहित हैं और विरक्त
हैं (उनकी कहीं भासकिया नहीं है) ; वे प्रेमसे प्रकट होते हैं, जैसे अग्नि । (अग्नि
अव्यक्तस्वरूपसे सर्वत्र व्याप्त है, परन्तु वहाँ उसके लिये अरपिचम्यनादि धातन लिये
जाते हैं, वहाँ यह प्रकट होती है । इसी प्रकार सर्वत्र व्याप्त भगवान् भी प्रेमसे प्रकट
होते हैं ।) मेरी बात सबको प्रिय लगी । ब्रह्माजीने पाशु, सखु, कवच नदार्द की ॥ ४ ॥

श्लो०—सुनि बिरंचि मन हरष तन पुलकि नवम यह नीर ।

मस्तुति फरत जोरि कर सावधान मतिधीर ॥ १८५ ॥

मेरी बात सुनकर ब्रह्माजीके मनमें बड़ा हर्ष हुआ; उनपर तन पुलकित हो गया
और नेत्रोंसे [प्रेमसे] आँसू नहने लगे । तब वे पीछुदि ब्रह्माजी सावधान होकर सब
ध्यानकर स्तुति करने लगे— ॥ १८५ ॥

श्लो०—जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रमत्तसक भगवन्ता ।

गो द्विज शिवकारी जय मधुपरी सिधुसुख प्रिय कंठा ॥

पालन सुर धरनी बद्ध करनी सरभ न जानद कोई ।

जो सहज कृपास्य दीनदास्य करउ अनुग्रह सोई ॥ १ ॥

हे देवताओंके स्वामी, सेवकोंको सुख देनेवाले, शरणागतकी रक्षा करनेवाले

मगवान् ! आपकी जय हो ! जय हो ॥ हे गो-ब्रह्मर्षीज्य हित करनेवाले, असुरोंका विनाश करनेवाले, समुद्रकी कन्या (श्रीलक्ष्मीजी) के प्रिय स्वामी ! आपकी जय हो ! हे देवता और पृथ्वीका पावन करनेवाले ! आपकी स्तुति बहुत है, उक्त भेद कोई नहीं जानता । ऐसे जो स्वभावसे ही कुमल और दीनदयालु हैं, वे ही हमर कृपा करें ॥ १ ॥

अथ जय अविनासी सब घट चासी व्यापक परमानन्द ।

अद्विगत मोक्षति चरित पुनीतं मयारहित मुकुन्द ।

जेहि लागि विरामी अति अनुरागी विगतमोह मुनिवृन्द ।

निसि वासर ध्यावई गुन वन गावई अथति सच्चिदानन्द ॥ २ ॥

हे अविनाशी, सबके हृदयमें निवास करनेवाले (अन्तर्धामी), सर्वव्यापक, परम आनन्दस्वरूप, अशेष, इन्द्रियोंसे परे, पवित्रचरित्र, मायासे रहित मुकुन्द (मोक्षदाता) । आपकी जय हो ! जय हो ॥ [इस लोक और परलोकके सब भोगोंसे] विरक्त तथा मोक्षसे सर्वथा झूटे हुए (शानी) मुनिवृन्द भी अत्यन्त अनुरागी (प्रेमी) बनकर गिनता रात-दिन गान करते हैं और उनके गुणोंके समूहका गान करते हैं, उन सच्चिदानन्दको जय हो ॥ २ ॥

जेहि छुटि उपाई विविध बनाई संग सहाय न हुआ ।

सो करु अगारी चित-हमारी जानिब भवति न पूजा ॥

जो मय मय भंजन मुनि मन रंजन गंजन विपति वक्षया ।

मन वक्ष क्रम वासी छादि सयानी सरज सकल सुरजुथा ॥ ३ ॥

निम्नोने बिना किसी दूसरे संगी अथवा व्यक्तिके अकेले ही [या स्वयं अपनेको] निगुणकम—ब्रह्मा, विष्णु, शिवस्व—बनाकर अथवा बिना किसी उपादान-कारणके भयार्द्र स्वयं ही छुटिका अभिप्रायमिषोपादान धरण बनकर] तीन प्रकारकी छुटि करघ की, वे पापोंका नाश करनेवाले भगवान् हमारी सुधि हैं। इस न भक्ति जानते हैं, न पूजा । जो संसारके (जन्म-मृत्युके) भयका नाश करनेवाले, मुनियोंके मनको आनन्द देनेवाले और विपत्तियोंके समूहको नाश करनेवाले हैं, इस सब देवताओंके समूह मन, वक्ता और कर्ते सबवाई करनेकी वन छोड़कर हम (भगवान्) की धरण [भावे] हैं ॥ ३ ॥

सारद भुति सेवा रिपय भलेया जा कहूँ कोउ नहि जाना ।

जेहि दीन पिशारे वेद पुकारे इच्छ सो धीमगवाना ॥

भव बारिधि मंदर सब धिधि सुंदर गुन मंदिर सुखपुंजा ।

मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर वमत बाध पद कांजा ॥ ४ ॥

वरसती, वेद, शेषजी और सम्पूर्ण श्रुति कोई भी बिलकुल नहीं जानते, जिनमें दीन प्रिय हैं, देव वेद पुकारत करते हैं, वे ही औपमयान् हमर दया करें । हे संसाररुपी समुद्रके [मगनेके] जिसे मन्दराचलस्व, उन प्रकारसे सुन्दर, गुणोंके शम और मुखोंकी राशि नाथ ! आपने अणकाम्योंमें मुक्ति, सिद्ध और सारे देवता भवते अत्यन्त व्याकुल होकर नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥

दो०—जानि समय सुर भूमि मुनि वक्त समेत सनेह ।

भगवतिरा गंभीर गइ हरनि सोक सदिह ॥ १८६ ॥

देवताओं और पृथ्वीजि मरणीत बनकर और उनके स्नेहयुक्त वचन सुनकर शोक और कन्देरीकी दलेखली गंभीर आभाधवाली हुई ॥ १८६ ॥

चौ०—जनि दरपहु मुनि सिद्ध सुरेस । सुमहि लागि परिहर्त नर केस ॥

अत्यन्त सहित अनुबध्न व्यतास । केहँ दिखकर बंस उदास ॥ १ ॥

हे मुनि, सिद्ध और देवताओंके स्वामिन् ! ठहरो मत । तुम्हारे लिये मैं मनुष्यका रूप धारण करूँगा और उदार (पवित्र) सर्वव्यापमें अंगीकृत गनुष्यका अवतार लूँगा ॥ १ ॥

कल्प अवस्थि महातप कीन्हा । तिम्र कहूँ मैं पूरन कर दीन्हा ॥

ते दसराय कौसल्या कथा । कौसल्यापुरी प्रकट कर भूषा ॥ २ ॥

कल्प और अदितिने नन्दा मारी तप किया था । मैं पहले ही उनको वर दे चुका हूँ । वे ही दशरथ और कौसल्याके रूपमें मनुष्योंके राजा होकर अयोध्यापुरीमें प्रकट हुए हैं ॥

तिम्र के यह अभ्यतिष्ठते आई । खुकुलतिष्ठत सो चरित भाई ॥

नारद बचन सत्य सब करिहैं । परम सक्ति समेत अवतिहैं ॥ ३ ॥

उन्हींके घर जाकर मैं खुकुलमें श्रेष्ठ चार भाइयोंके रूपमें अवतार लूँगा । नारदके सब बचन मैं सत्य करूँगा और अपनी पराशक्तिके सहित अवतार लूँगा ॥ ३ ॥

हरिहैं सफल भूमि गन्धर्वा । निर्भव होहु वैव समुद्राई ॥

गाता ब्रह्मचारी सुनि कथा । सुरत चिरे सुर हृदय सुझाया ॥ ४ ॥

मैं पृथ्वीका सब मार हर लूँगा । हे देवकुन्द ! तुम निर्भव हो जाओ । आकाशमें ब्रह्म (भगवान्) की धानीको कान्ते सुनकर देखा सुरत छैट गये । उनका हृदय शीतल हो गया ॥ ४ ॥

तब ब्रह्मा धरणिहि समुझाया । जगत् भाई भरोस बिदे जाया ॥ ५ ॥

तब ब्रह्माजीने पृथ्वीको समझाया । यह भी निर्भव हुई और उसके जीने भरोसा (बादल) भा गया ॥ ५ ॥

सो—मित्र लोकहि विरम्बि ने देवन्त रह रह सिचाइ ।

वानर तनु धरि धरि महि हरि पद सेवहु जाइ ॥ १८७ ॥

देवताओंको यही सिखाकर कि कामोंका धरति भर-भरकर तुमलोग पृथ्वीपर काम भगवान्के चरणोंकी सेवा करो, ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये ॥ १८७ ॥

चौ—गाय देव सब मित्र मित्र जगत् । भूमि सहित सब कहूँ विभागा ॥

जो कह्य आपसु ब्रह्मा दीन्हा हरये देव सिन्धव न कीन्हा ॥ १८८ ॥

सब देवता अपने-अपने लोकमें गये । पृथ्वीसहित सबके मनको शांति मिली । ब्रह्माजीने जो कुछ आशा दी, उसके देवता बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने [देवा करनेमें] देर नहीं की ॥ १८८ ॥

बनकर देह पूरी छिदि भाई । जगत्सिन्ध पद प्रताप तिन्ह पाई ॥

गिरि सब गन्ध जगत्सुख सब नीत । हरि आसन चित्तबिह मतिधीर ॥ २ ॥

पृथ्वीपर उन्होंने वानरदेह धारण की । उनमें जगत्सुख और प्रताप था । सभी क्षत्रीय ये पर्वत, पृथ्वी और नक्षत्र ही उनके सब थे । वे धीर बुद्धिवाले [वानरके देवता] भगवान्के आनेकी राह देखने लगे ॥ २ ॥

गिरि जानत आई छई गरि पूरी । रहे मित्र मित्र बचीक रचि करी ॥

पह सब हरिध चरित मैं जगत् । अब से खुचहु जो सीचि रह्य ॥ ३ ॥

वे (वानर) पर्वतों और जंगलोंमें जहाँ-तहाँ अपनी-अपनी सुन्दर तेजा बनाकर भरपूर छा गये । यह सब सुन्दर चरित्र मैंने कहा । अब वह चरित्र तुमने जिसे वीर्यमें छोड़ दिया था ॥ ३ ॥

अवधपुरी खुकुलमनि राह । वेद चित्त तेहि दसराय नाके ॥

परम धुरंधर गुननिधि जगत् । हृदय जगत्सि मति सार्गगानी ॥ ४ ॥

अवधपुरीमें खुकुलश्रोमणि दसराय नामके राजा हुए, जिनका नाम वेदोंमें

विरह्यात है । वे धर्मधुरन्धर, गुणोंके भण्डार और ज्ञानी थे । उनके हृदयमें आश्रयगुण
धारण करनेवाले भगवान्की भक्ति थी और उनकी बुद्धि भी उन्हींकी सी रहती थी ॥४॥

श्री०—कौसल्यादि चारि प्रिय सब आचरण पुनीत ।

पति प्रतुष्टुल प्रेम चहुँ हरि पद कमल विनीत ॥ १८८ ॥

उनकी कौतल्या आदि प्रिय रावियाँ सभी पवित्र आचरणवाली थीं । वे [बड़ी]
विनीत और पतिके अतुष्टुल [चलनेवाली] थीं और श्रीहरिके चरणकमलोंमें उनका
हृद प्रेम था ॥ १८८ ॥

श्री०—एक बार भूषति भव सखी । जै गलाहि मोरें सुत भाई ॥

गुर गृह गमल गुरत मदिगल । चरन ठागि करि चिनय चिसका ॥ १ ॥

एक बार राजाके भनमें बड़ी मन्नि हुई कि भोरे पुत्र नहीं है । राजा तुरत ही
गुरुके घर गये और चरणोंमें प्रणाम कर बहुत चिनय की ॥ १ ॥

बिलदुल सुख सख गुरहि सुकपट । कहि बसिह बहुरिधि समुदाय ॥

भरहु भीर होइहहि सुख चारो । मिमुयन सिद्धि भमत मय द्वारी ॥ २ ॥

राजाने मरना सारा सुख-गुण सुखको सुनाया । गुरु बशिहजीने उन्हें बहुत प्रकारसे
कमहाया [और कहा—] औरन भये, दुन्दारे बार पुत्र होंगे, जो हीनों जोकीने प्रसिद्ध
और भर्त्सक मयको करनेवाले होंगे ॥ २ ॥

सुती रिधिहि पसिह योसक । पुत्रकम सुभ जम्य कसपा ॥

भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें । प्रमटे जगिनि चक कर लीन्हें ॥ ३ ॥

बशिहजीने शब्दी चरिको बुलवाया और उनसे कुछ पुत्रकामेति वश कराया ।
इन्हींके भक्तिसहित आहुतियों देनेपर अग्निदेव हाथमें चक्र (हविष्यास, खीर) लिये
प्रकट हुए ॥ ३ ॥

सो बसिह कहु हृदय विचार । सकल कहु मा सिद्ध दुन्दारा ॥

यह हवि बसिह देहु नृप भाई । कबा शेष बेदि भाग बनाई ॥ ४ ॥

[और दशरथसे बोले—] बशिहजीने हृदयमें जो कुछ विचारा था, दुन्दारा वह
सब काम सिद्ध हो गया । हे राजन् ! [भव] तुम जाकर इस हविष्यास (पायस) को,
मिसको वैसा ठपिल हो, वैसा भाग बनाकर बाँट दो ॥ ४ ॥

श्री०—तब भद्रहा मय पावक सकल समहि समुधार ।

परमानन्द मगल नृप हरष न हृदय समा ॥ १८९ ॥

तदनन्तर अग्निदेव सारी समाको समझाकर अन्तर्दान हो गये । राजा परमानन्दमें
मान हो गये, उनके हृदयमें हर्ष समाता न था ॥ १८९ ॥

श्री०—उषादि सयें प्रिय नरि कोऊन । कौसल्यदि सखी चलि आई ॥

जय माग कौसल्यदि दीन्हा । उषय सख जग्ये कर कीन्हा ॥ १ ॥

उसी समय राजाने अपनी प्यारी पत्नियोंको बुलवाया । कौसल्या आदि सब [रावियों]
वहाँ चली आयीं । राजाने [पायस] जाया भाग कौसल्याको दिया, [और शेष]
आपेके दो भाग किये ॥ १ ॥

कैकेई कहै नृप सो बक । रह्यो सो उषय सख पुनि मयक ॥

कौसल्या कैकेई हाथ चरि । दीन्ह मुमिसहि सब प्रथम करि ॥ २ ॥

वह (उनसेसे एक भाग) राजाको कैकेयीको दिया । शेष जो बच रहा उसके
पित्र दो भाग हुए और राजाने उनको कौसल्या और कैकेयीके हाथपर रखकर (अर्थात्

उनकी अनुमति लेकर, और इस प्रकार उनका मन प्रसन्न करके, सुमित्राको दिया ॥२॥

एहि विधि गर्भसहित सब वारी । गर्भ हृदयें हरचित सुख भारी ॥

जा दिन हैं हरि गयोहि जाए । सकल लोक सुख संपत्ति जाए ॥ ३ ॥

इस प्रकार सब स्त्रियाँ गर्भवती हुई । वे हृदयमें बहुत हर्षित हुई, उन्हें बड़ा सुख मिला । जिस दिनसे श्रीहरि [जीजये ही] गर्भमें जाये, उस लोकमें सुख और संपत्ति छा गयी ॥ ३ ॥

मंदिर मैं सब राखि गयीं । सोन सौं केव की खानी ॥

सुख श्रुत कहुक कल थलि गयल । बेहि प्रभु प्राण से अवसर भयल ॥ ४ ॥

शोभा, शील और तेजकी खान [वनी हुई] सब रानियाँ महलमें सुखोभित हुई । इस प्रकार कुछ समय सुखपूर्वक बीता और वह अवसर आ गया जिसमें प्रभुको प्रकट होना था ॥ ४ ॥

दो०—जोग जगम प्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल ।

बार बर बर हर्षजुत राम जगम सुखमूल ॥ १९० ॥

योग, जन्म, ग्रह, बार और तिथि सभी अनुकूल हो गये । जड़ और चेतन सब हर्षित भर गये । [क्योंकि] श्रीरामका जन्म सुखका मूल है ॥ १९० ॥

चौ०—नौमी तिथि मधु मास पुनीत । सुकल पक्ष अभितित हरिप्रोत ॥

मध्याह्निक अति सीत न पामा । जगम कल लोक विभामा ॥ १ ॥

पाँच चैत्रका नौवीना था, नवमी तिथि थी । शुक्लपक्ष और मगधान्का मिय अभितित सुहृत् या । दोपहरका समय था । न बहुत सरदी थी, न धूप (गरमी) थी । वह पवित्र समय सब लोकोंको शान्ति देनेवाला था ॥ १ ॥

हीतल मंद सुखि यह कल । हरचित सुर संस्र मय पाक ॥

बन कुसुमित निरि गन भविभारा । सबहि सकल सरिताभूतभारा ॥ २ ॥

हीतल, मन्द और सुखान्वित पवन बह रहा था । देवता हर्षित थे और संतोंके मनमें [बड़ा] चाव था । बन फूले हुए थे, पर्वतोंके समूह संपिंडित जगमगा रहे थे और सारी नदियाँ अमृतपरी धारा बहा रही थीं ॥ २ ॥

सो अवसर विरंचि जब जवा । सबे सकल सुर लखि विभावा ॥

गगन निमल संकुल सुर ज्वा । सबहि सुख संस्रै बरजा ॥ ३ ॥

जब ब्रह्माजीने वह (भगवान्के प्रकट होनेका) अवसर जाना, सब [उनकी समेत] सारे देवता विमान सभा-सज्जकर चले । निर्मल आकाश देवताओंके समूहोंसे भर गया । गन्धर्वोंके दल गुणोंका गाव करने लगे, ॥ ३ ॥

बरपहि सुमन सुखंजुलि सखी । गहपहि जगम बुंदुभी खाली ॥

अस्तुति करहि जग सुनि देव । बहुविधि जगहि विज विज सेवा ॥ ४ ॥

और सुन्दर अञ्जलिमें सज्ज-सजाकर पुष्प बरसाने लगे । आकाशमें वमाधम नगाचे बजने लगे । नाग, मुनि और देवता स्तुति करने लगे और बहुत प्रकारसे अपनी-अपनी सेवा (उपहार) भेंट करने लगे ॥ ४ ॥

दो०—सुर समूह निमती करि पहुँचि निज निज घाम ।

जगनिवास प्रभु प्रमटे अखिल लोक विभाम ॥ १९१ ॥

देवताओंके समूह विनती करके अपने-अपने लोकमें जा पहुँचे । समस्त लोकोंको शान्ति देनेवाले, जगदाधार प्रभु प्रकट हुए ॥ १९१ ॥

छं०—अप प्रगट कृपाळा दीनदयाळा कौसल्या हितकारी ।
 हरदित महदारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप विचारी ॥
 छोबन अभिरामा तनु धनस्यामा निज आयुध मुज चारी ।
 धूपन वनमाळा नयन किछाळ सोमासिंधु खारी ॥ १ ॥
 दीनोपर दया करनेवाले, कौसल्याजीके हितकारी कृपाळु प्रभु प्रकट हुए । मुनियोंके
 मनको हर्नेवाले उनके अद्भुत रूपका विचार करने वाला हरसि मर गयी । नेत्रोंको आनन्द
 देनेवाला मेवके लगान स्वाम्यकीर का; चारों मुखाओंमें अपने (जात) आयुध
 [धारण किने हुए] थे; [दिव्य] आभूषण और कलाव्य पहने थे; बढ़े-बढ़े नेत्र थे ।
 इस प्रकार शोभाके समुद्र तम सर राखतको गानेवाले भगवान् प्रकट हुए ॥ १ ॥

कह दुइ कर ओरी अस्तुति खेरी केहि विधि कयै भर्ता ।
 माया गुन ग्यानासीत असावा वेद पुरान भर्ता ॥
 कहना सुख संगार सय गुन आगर जेहि गावहि धृति संता ।
 सो मम हित लगी जल अनुपामी भयह प्रगट धीकंठा ॥ २ ॥
 दोनों हाथ जोड़कर माता कहने लगी—हे भगवन् ! मैं किस प्रकार तुम्हारी स्तुति
 करूँ । वेद और पुराण तुमको भावा; गुण और जगत् परे और परिमाणरहित इतकते
 हैं । श्रुतियों और संतकन दया और सुखका समुद्र, सब गुणोंका धाम कहकर जिनका
 गान करते हैं, वही भक्तोंपर प्रेम करनेवाले कभीपति भयान् मैं कल्याणके लिये
 प्रकट हुए हैं ॥ २ ॥

प्रगट निकाला निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै ।
 मम उर सो वासी यह कथासी सुनत धीर मति धिर न रहै ॥
 कपला जल ग्याना प्रभु मुमुक्षुना चरित बहुद विधि कीन्ह कहै ।
 कहि कथा सुहार् माहु सुहार् जेहि प्रकार सुत प्रेम कहै ॥ ३ ॥
 वेद कहते हैं कि तुम्हारी प्रत्येक रोममें भावाके रचे हुए अनेकों प्रमाणोंके समूह
 [भरे] हैं । वे तुम मेरे गर्भमें रहे—इस हँसीकी बातके सुननेपर धीर (निषेकी) पुत्रों-
 की बुद्धि भी धिर नहीं रहती (विचलित हो जाती है) ।

जब माताको शन उलगड हुआ, तब प्रभु मुसकराये । वे बहुत प्रकारके चरित्र
 करना चाहते हैं । माता उन्होंने [पूर्वजन्मकी] कृपा कथा कहकर माताको समझाया,
 किन्तु उन्हें पुत्रका (वात्सल्य) प्रेम प्राप्त हो (मनस्वरके प्रति पुत्रभाव को शाय) ॥ ३ ॥

माता पुनि बोली सो मति ठोली तजहु तात यह कथा ।
 कौनै सिद्धलीटा मति प्रियसील यह सुख परम अनूपा ॥
 सुनि वचन सुजना रोदन अना होर बालक सुरभूष ।
 यह चरित जे गावहि हरिपद पावहि ते न कहहि भवकृपा ॥ ४ ॥

माताकी वह हृदि बल्ल गयी, तब वह फिर बोली—हे तारा ! यह रूप छोड़कर
 अत्यन्त प्रिय बालकीका करो; [मेरे लिये] यह सुख परम अनुपम होगा । [माताका]
 यह वचन सुनकर देवताओंके लाली तुलान भयान्को वात्सल्य [रूप] छोड़कर रोना शुरू
 कर दिया । [दुर्लभाशान्नी कहते हैं—] जो इस चरित्रका गान करते हैं, वे श्रीहरिक
 पर पाते हैं और [फिर] लतारुणी रूपमें नहीं मिलते ॥ ४ ॥

दो०—किम धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवधार ।

निज इच्छा विर्मित तनु माया गुन नो पार ॥ १९२ ॥

प्राक्षण, गौ, देखत और संतोंके लिये भक्तान्ते अनुपम अवतार दिया । वे [अज्ञानमयी, मलिना] माया और उसके गुण (सत्, रज, तम) और [बाहरी तथा भीतरी] इन्द्रियोंसे परे हैं । उनका [दिव्य] शरीर अपनी इच्छासे ही बना है [किसी कर्मबन्धनसे परबद्ध होकर विगुणालोक भौतिक पदार्थोंके द्वारा नहीं] ॥ १९२ ॥

पौ०—सुनि सिद्धु रदव परम प्रिय कवी । संभ्रम चक्षि आई सय रानी ॥

हरषित आई आई आई दासी । आनंद भवन सकल पुरबासी ॥ १ ॥

बन्धनेके रोककी बहुत ही प्यारी चूनि मुनकर उन रानियों उठावकी होकर दौड़ी चली आयी । दावियों हरषित होकर ज्यों-त्यों दौड़ी । सारे पुरबासी आनन्दमें मग्न हो गये ॥ १ ॥

इसरथ पुत्रकला सुचि फाना । समर्थ प्रह्लाद समाया ॥

परम प्रेम मन पुष्पक सतीरा । चाहत कदव करत मति घीरा ॥ २ ॥

राधा दशरथजी पुत्रका जन्म कानोंसे सुनकर खनो ब्रह्मानन्दमें समा गये । मनमें अतिशय प्रेम है, शरीर पुष्पकित हो गया । [आनन्दमें असीर हुई] बुद्धिको घीरन देकर [और प्रेममें विषिक्त हुए शरीरको सँभालकर], वे उठना चाहते हैं ॥ २ ॥

जाकर प्रेम मुनत तुम होई । औरें गृह जाय प्रभु सोई ॥

परमानंद पूरि मन राजा । कदा लोकाई बलाबद्ध कला ॥ ३ ॥

विनका नाम सुनबैसे ही कल्याण होता है, वही प्रभु । वर लाये हैं । [यह शेषकर] राजाका मन परम आनन्दसे पूर्ण हो गया । उन्होंने बालेवालोंको बुलाकर कहा कि बाबा बलाओ ॥ ३ ॥

गुर बसिह कई मलय ईकरा । आए हिकव सहित रूपद्वारा ॥

अनुपम कलक देखेहि आई । कव रचित गुन कहि न सिराई ॥ ४ ॥

गुरु बसिहजीके पास बुलाया गया । वे ब्राह्मणोंको साथ लिये राजद्वारपर आये । उन्होंने जाकर अनुपम बालकको देखा, जो रूपकी राशि है और जिसके गुण कल्पसे समाप्त नहीं होते ॥ ४ ॥

पौ०—संदीमुख सराव करि ज्ञातकरत सब कीन्ह ।

हाटक धेनु बसत मनि सुप बिग्रह कई धीन्ह ॥ १९३ ॥

जिसे राजाने सन्दीमुख आद करके सब बालकर्म-संस्कार आदि किये और ब्राह्मणोंको घेना, गौ, धन और मणियोंका दान दिया ॥ १९३ ॥

पौ०—कलक पतक छोरन पुर छाया । यदि न जाइ देखि भीति बनाया ॥

सुमन कृति अमलस ठैं होई । प्रह्लाद, जन्म सब कीई ॥ १ ॥

ध्वजा, पताका और छोरनोंसे नभर छा गया । जिस प्रकारसे, यह सजाया गया, उसका दो वर्णन ही नहीं हो सकता । आनन्दसे धूर्तोंकी कृपा हो रही है, उन लोग ब्रह्मानन्दमें मग्न हैं ॥ १ ॥

हुंन हुंन मिकि जहीं लोकाई । सहच सिम्बर किई चढि पारई ॥

कनक कलस मंगल करि जारा । कलस पैरई रूप दुआरा ॥ २ ॥

जिसे धुंन-की-धुंन सिम्बर जहीं । साम्प्रतिक श्रेया किने ही वे उठ दौड़ी । सोनेका कलस लेकर और धूर्तोंमें मंगल द्रव्य गिराकर गयी हुई राजद्वारमें प्रवेश करती हैं ॥ २ ॥

करि अरति केवलवरि कहीं । बार बार सिद्धु परतनिह पहीं ॥

अनाथ सुख बंदि गय गायक । पश्यत गुन गावई अनुदायक ॥ ३ ॥

वे आरती करके निजाकर जाती हैं और कार-बार बन्धेके चरणोंपर गिरती हैं ।
मनाम, सुत, वन्दीजन और गर्वये खुजुलके लम्बीके पवित्र गुणोंका गान करते हैं ॥ ३ ॥

सर्पस धाव दीन्ह सब कष्ट । जेहि जना रक्षा नहीं ताहू ॥

सुगमय चंदन कुंजुम कीच । नखी सकल बीकिन्ह बिच बीचा ॥ ४ ॥

राजाने सब किसीको भरपूर दान दिया । बिछने पावा, उछने भी नहीं रखा
(छुटा दिया) । [नगरात्री] उषी गन्धियोंके बीच-बीचमें कसूरी, चन्दन और केसरकी
बीच मच गयी ॥ ४ ॥

दो०—पूह पूह बाज बघाव सुम भगटे सुपमा कंद ।

हरपवंत सदा जई तहै न्कार नारि नर पुंद ॥ १९४ ॥

हर-हर म्भूतमय बघाव बन्धे लगा, नखोंकि जोभके मूल मगवान् प्रकट हुए हैं ।
मगरके श्री-पुरुषोंके छंद-के-छंद ज्यों-त्यों आनन्दमग हो रहे हैं ॥ १९४ ॥

चौ०—कैफय सुख सुमिल होय । सुंदर मुख बभयत मैं भोज ॥

बद मुख संपति समय समाज । कहि न सकइ सारइ कहिराजा ॥ १ ॥

कैफयी और सुमिला इन दोनोंने भी सुन्दर पुरुषोंको भोग दिया । उस मुख, सम्पत्ति,
समय और समाजका वर्णन करवाती और उनके राज्ञ गेफयी भी नहीं कर सकते ॥ १ ॥

अवधपुरी लोहू एहि भौली । प्रभुहि निकन भाई जनु रासी ॥

देखि भदु गनु भग सकुचकी । तपि बनी रंजना लहुमानी ॥ २ ॥

अवधपुरी इस प्रकार सुशोभित हो रही है मानो रात्रि प्रभुसे मिलने भावी हो ।
और सूर्यको देखकर मानो मममें छकुच मची हो, परन्तु फिर भी मममें विचारकर वह
मानो लज्जा बन [कर रहा] गयी हो ॥ २ ॥

अगर पूह गनु गनु बीचिअरी । उरह अकीर भवहुं भवगरी ॥

भंवरि भवि समूह गनु समा । पूह पूह ककस सो ईहुं उहारा ॥ ३ ॥

आगरकी धूपका बहुत-सा कुण्ड मानो [लम्बाका] अन्धकार है और जो अन्धों
उह रहा है, वह उसकी लज्जा है । मन्त्रोंमें जो भविष्योके छहू हैं, वे मानो तारतार
हैं । राजमहलका जो ककस है, वही मानो गेह चन्द्रमा है ॥ ३ ॥

भवय वेद पुनि अति सुहुमानी । जनु लभ सुखर समर्थे जनु समी ॥

कीकुक देखि पतय सुमना । एक मास खेई जात न जाना ॥ ४ ॥

राजमन्त्रमें जो अतिशोभक वालीसे वेदवाचि हो रही है, वही मानो सम्पत्ते
(समानकुल) उनी हुई पवित्रोंकी चहकभट्ट है । वह केतुक देखकर सूर्य भी
[अपनी जात] भूल गये । एक महीना उन्होंने जात हुआ न ज्ञात (भर्वाद् उनी
एक महीना नहीं गीत गया) ॥ ४ ॥

दो०—रास दिवस कर दिवस भा भरम न जगह कोर ।

रथ समेत रवि शकेत निस्त ककव विधि होइ ॥ १९५ ॥

महीनेभरका दिन हो गया । इस यज्ञको कोई नहीं जानता । सूर्य अपने रथसहित
वहीं रुक गये, फिर रात फिर उठ होती ॥ १९५ ॥

चौ०—यह रहण कर्म । जई जावा । दिनमनि चले फल गुन जावा ॥

देखि महोत्सव सुख गुनि नग । पले जवन कलत निज मगा ॥ १ ॥

यह यज्ञ किसीने नहीं जाना । सूर्यसिंह [मगवान् औरमन्त्रीका] गुणगान करते

हुए चले । यह महोत्सव देखकर देवता, मुनि और नाथ अपने मागधी सराहना करते हुए अपने-अपने घर चले ॥ १ ॥

औरत एक कदम भी नहीं चोरी । सुनु भिरिवावति दद मति तोरी ॥

कफमुमुदि लंघ ह्यम दोह । मनुज रूप जान्हू नहीं कोह ॥ २ ॥

हे पार्वती ! दुम्हारी बुद्धि [श्रीरामजीके करघोंमें] बहुत दृढ़ है, इसलिये मैं और भी अपनी एक चोरी (छिपाव) की बात कहता हूँ, सुनो ! कफमुमुदि और मैं दोनों बहो साथ-साथ ये परन्तु मनुष्यत्वमें होनेके कारण हमें कोई जान न सका ॥ २ ॥

परमार्थ प्रेम सुख भूले । बंधिन्ह फिरहि मग्न मन भूले ॥

यह सुन करित जान वै सोई । दुम्ह राम के जगत् छोई ॥ ३ ॥

परम आनन्द और प्रेमके सुखमें भूले हुए हम दोनों मग्न मनसे (मग्न हुए) शक्तियोंमें [तन-मन-बुद्धि] भूले हुए फिरते थे । परन्तु यह श्रम करित नहीं जान सकता है जिसपर औरगवतीकी कृपा हो ॥ ३ ॥

तैहि भवत्तर जो केहि बिधि जाना । हीन्ह रूप जो वेहि मग्न भावा ॥

तब तब मुरख हेम जो हीरा । हीन्हे रूप कम्बुविधि बीरा ॥ ४ ॥

उस भवत्तरपर जो जिस प्रकार भावा, और जिसके मनको जो सम्प्राप्ता, रामाने उल्टे गयी दिया । हाथी, रत्न, घोड़े, सोना, बौद्ध, छीरे और मूर्ति-मूर्तियोंके बल रामाने दिये ॥ ४ ॥

दो०—मग्न संतोषे सखिन्ह के जई लई देखि मसीस ।

सकल लख चिर औचहुँ तुलसिदास के ईस ॥ १९६ ॥

राजाने सबके मनको उन्मुक्त किया । [इत्थने] सब लोग महीं-तहाँ काशीवाँद दे रहे थे कि तुलसीदासके स्वामी सब पुत्र (चारों रामकुमार) चिरजीवी (दीर्घायु) हों ॥ १९६ ॥

बौ०—कलक दिवस भीते पृथि भौंछी । भाव न बागिनि दिव भव राती ॥

नामकरण कर अमरस्य जायी । रूप बौकि पठइ मुनि ग्यायी ॥ १ ॥

इस प्रकार कुछ दिन गीत बने । दिन और रात जाते हुए, काल नहीं पकते । तब नामकरण-संस्कारका समय जानकर राजाने बानी मुनि जीपतिश्रीको बुला मेला ॥ १ ॥

करि चूक भूपति अस जाक । करिब नाव जो मुनि मुनि राका ॥

इन्ह के नाम अनेक भव्या । मैं रूप कह्य सभति अनुपमा ॥ २ ॥

मुनिजी पूजा करके राजाने कहा—हे मुनि ! आपने मनमें जो विचार रखे हों, वे नाम रखिये । [मुनिने कहा—] हे राजा ! इनके अनेक अनुपम नाम हैं, फिर भी मैं अपनी बुद्धिके अनुसार कहूँगा ॥ २ ॥

जो जानंद मितु सुकरसी । लीकर तैं कैसैक सुपासी ॥

ही मुखा चाम राम अत नाम । अलिख लोक दायक चिन्तामा ॥ ३ ॥

ये जो जानन्दके समग्र और सुखी राखि हैं, जिस (जानन्दकिन्तु) के एक क्लेश तीनों लोक सुखी होते हैं । उन (जिनके सबसे बड़े पुत्र) का नाम 'राम' है, जो सुखका भवन और सम्पूर्ण लोकोंको शान्ति देनेवाला है ॥ ३ ॥

मिख मन पोषन कर छोई । लखन नाम शतत अस होई ॥

जाके सुमिरन तैं दिनु मखा । नाम सलुखन वेद प्रवसा ॥ ४ ॥

जो संसारका भरण-पोषण करते हैं, उन (जिनके दूरे पुत्र) का नाम 'मिख' होगा । जिनके स्मरणसे सब दुःख नाश होता है, उनका केसोंमें प्रथिम 'अमुक' नाम है ॥ ४ ॥

श्री०—ललछजन धाम राम प्रिय सकल लगत आधार ।

गुरु बसिए तेहि राखा लछिभन नम उदार ॥ १९७ ॥

जो गुन लक्षणोंके धाम, श्रीरामजीके 'घारे और ओरे' जगत्के आधार हैं, गुरु बसिष्ठजीने उनका 'सकल' ऐसा श्रेष्ठ नाम रक्खा ॥ १९७ ॥

श्री०—धरे राम गुरु इदर्थे विचारी। केद छव नृप छव सुत चारी ॥

मुनि धन धन सरसस छिन्न प्राप्ता। जल केहि सस तेहि सुख माना ॥ १ ॥

गुरुजीने हृदयमें विचारकर ये नाम रखे [और कहा—] हे राजन्! तुम्हारे चारों पुत्र वेदके तत्व (लक्षण प्रत्यक्ष अन्वय) हैं। जो मुनियोंके धन, भक्तोंके सर्वज्ञ और शिवजीके प्राण हैं, उन्होंने [इस समय तुमलोगोंके प्रेमकण] बालजीलाके रसमें सुख माना है ॥ १ ॥

बारेहि ते भिन्न द्विज बसि जाती। कछिभन राम चरन रसि जाती ॥

भरत लघुद्वय दूषक आई। मनु सेवक बसि प्रीति बढ़ाई ॥ २ ॥

बचनसे ही श्रीरामचन्द्रजीको अपना परम हितैषी स्वामी जानकर लक्ष्मणजीने उनके चरणोंमें प्रीति बोझ ली। भरत और लघु दोनों मादलोंमें स्वामी और सेवककी मिश्र प्रीतिकी प्रशंसा है वैसी प्रीति हो गयी ॥ २ ॥

राम और सुन्दर दोठ जोरी। भिरबहि छवि धवनी पुन तोरी ॥

चारिठ सीछ कम गुन धारा। तबहि कबिह सुखसागर रासा ॥ ३ ॥

राम और और शरीरवाली दोनों सुन्दर जोड़ियोंकी शोभाको देखकर माधार्देय पुन सोचती हैं [जिसने दोठ न कम पाव] योंतो चारों ही पुन शीघ्र, कम और गुणके धाम हैं, तो भी सुनके समग्र श्रीरामचन्द्रजी सबसे अधिक हैं ॥ ३ ॥

इदर्थे बलुमह इंदु प्रकाश। सुख करन मनोहर हासा ॥

कबहुं कलम कबहुं सर फलम। मनु सुखरह कहि प्रिय ललना ॥ ४ ॥

उनके हृदयमें कुमारकी चन्द्रमा प्रकाशित है। उनकी मनको हरनेवाली हैंसी उर (कुपाक्षी चन्द्रमा) की फिरलोंको चूमित करती है। कभी गोदमें [लेकर] और कभी उचम पाकनेमें [लिटकर] माता 'घारे खन्ना !' कहकर बुकार करती है ॥ ४ ॥

श्री०—अपारक प्रहृ मिरजम निरुल विरस विनोद ।

जो अल प्रेम मगति वस कोसल्या के गोद ॥ १९८ ॥

जो सर्वव्यापक, निरञ्ज (मायावहित), निरुल, विनोदरहित और अवस्था-ब्रह्म हैं, वही प्रेम और भक्तिके वश कोसल्याजीकी गोदमें [खेद रहे] हैं ॥ १९८ ॥

श्री०—अन कोछि छवि सख सखी। जल कम चरिह रंगीरा ॥

कलस करन पंकज बल जोती। कमल कछिहि कै जनु मोती ॥ १ ॥

उनके नील कमल और यमवीर (जलसे मरे हुए) रोधके समान श्याम शरीरमें फरोही कामदेवकी जोगा है। लल-कल चरणकमलोंके नक्षोंकी [शृंग] क्योंकि ऐसी मादम होती है जैसे [लल] कमलके पत्तोंपर मोती स्थिर हो गये हों ॥ १ ॥

रेख कुलिस पञ्च बंजस सोहे। नृप नृपि नृपि मुनि मन मोहे ॥

कहि किमिनी उदर छव रेखा। पाणि यकीन जान जेहि देखा ॥ २ ॥

[चरणतलोंमें] रेखा पञ्च और नृपुणके विह्व शोभित हैं। नृपुण (पैजनी) की धनि सुन्दर मुनियोंका भी मन मोहित हो जाता है। कमरमें फरफनी और पेटपर

सीन रेखाएँ (चित्रली) हैं । नागिनी यन्त्रीखाने को बड़ी आनते हैं, जिन्होंने उसे देखा है ॥ २ ॥

सुख विस्तार भूषण सुत गूरी । हिले हरि वल वलि सोभा करी ॥

उर मन्दिहार पदिक की सोभा । विष भवन देकर मन बीजा ॥ ३ ॥

बहुतसे आभूषणोंसे सुशोभित विप्राक मुन्दर हैं । हृदयपर बाणके नसनी बहुत ही मिराली उठा है । छातीपर रखते कुछ यमियोंके हारपी शोभ और आभन (भूषण) के अरुणचिह्नको देखते ही मन सम्यक् जाता है ॥ ३ ॥

कंठ कंठ मति विष्णु सुन्दर । अवन वसित भवन वलि छाई ॥

दूर दृश्य नगर मन्दार । नखा विष्णु की नखे पारे ॥ ४ ॥

कण्ठ गज्जके समान (उदात्त-चन्द्रमाला) वीन रेखाओंसे सुशोभित) है और ठोड़ी बहुत ही सुन्दर है । गुलापर अरुणक कामदेवोंकी लटा लगी है । दोनो मुन्दर दंष्ट्रिका हैं । कान-कान मोठ हैं । नासिका और विष्णु [के सौन्दर्य] का तो वर्णन ही कौन कर सकता है ।

सुन्दर भव्य सुन्दर कर्णिका । मति मति मन्दर तोरै भोका ॥

विष्णु कण्ठ कुम्भित पशुमार । बहु प्रलय रति मनु सँकारे ॥ ५ ॥

सुन्दर कान और बहुत ही सुन्दर गाल हैं । मन्दर तोरके शब्द बहुत ही प्यारे लगते हैं । कण्ठसे लपकते लपके हुए विष्णु और सुन्दर गाल हैं, जिनकी मलाने बहुत मकारसे बनाकर सँवार दिया है ॥ ५ ॥

पीठ जगुज्ज्वल तनु बहिराई । कहु पानि विचरनि मोहि जाई ॥

कन्य बर्हि गङ्गा की मुनि सेवा । खे नखर सरपेई खोई देखा ॥ ६ ॥

छोरीपर पीठी सँपुली पहनाई हुई है । उनका झुटनी और सपोंसे एक चकना छोले बहुत ही प्यारा लगता है । उनके रूपका वर्णन यहाँ और खेवनी भी नहीं कर सकते । उसे बड़ी जानता है, जिसने कभी सपने में भी देखा हो ॥ ६ ॥

पौ०—सुख संवोद मोहपर भव्य मिरा योसीत ।

हंसति परम प्रेम बस कर सिमुच्चरित पुनीत ॥ १९९ ॥

ओ सुखके पुष्प, मोहके पीठ तथा भवन, बाणी और इन्द्रियोंके भरीत हैं, वे भगवान् शम्भु-वीरव्याके अत्यन्त प्रेमके लक्ष होकर बहिन बालकीय करते हैं ॥ १९९ ॥

पौ०—यदि विधि राम जगत् सिद्ध मल । कोसलपुर आसिन् सुखदाता ॥

विन्द रघुनाथ जग रति माली । विन्द की कद रति प्रगट माली ॥ १ ॥

इस प्रकार [सम्पूर्ण] जगत्के सब-मिला श्रीरामकी अवधपुरके निवासियोंको सुख है ॥ १ ॥ जिन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रीति जोड़ी है, वे माली । उनको यह प्रत्यक्ष मति है [कि भगवान् उनके प्रेमका बालकीय करते-उन्हें आनन्द दे रहे हैं] ॥ १ ॥

रघुपति विष्णु जगत् कर कोरी । जगत् समस्त भव बंधन कोरी ॥

जीव बलभर बल के लखे । खे नखर प्रभु खे नख बाली ॥ २ ॥

भीष्मनाथजीसे विष्णु रघुनाथ मनुष्य पारे करोड़ों उपाय करे परन्तु उनका संसारभवन कौन कुदा सकता है । जिसने जब अरुणक वीरोंको अपने बन्धन कर रखा है, वह माया भी प्रभुसे भय खाती है ॥ २ ॥

सुखति विष्णु बलभर लखे । जगत् प्रभु लखे भविय कहु काही ॥

मन कम बलन लखे बलभर । जगत् प्रभु करिहाई रघुनाथ ॥ ३ ॥

भगवान् जगत् मायाको मोहके हारोपर नखते हैं । ऐसे प्रभुको छोड़कर भव

[और] किरण भक्त किया आप । मग, कवन और कर्मसे चतुराई ओढ़कर भक्तों की श्रीरघुनाथजी कृपा करेंगे ॥ १ ॥

एहि विधि सिद्धिबोध प्रसूखिन्हा । लुकत बरतसिन्ह सुख दीन्हा ॥

ते बड़ेय फलहुँक हकताँ । कबहुँ फलने चाकि सुखावै ॥ ४ ॥

इस प्रकारसे प्रसू श्रीरामचन्द्रजीने बाळकीया की और समस्त नगरनिवासियोंको सुख दिया । कौतुक्याभी कभी उन्हें मोदमें लेकर हिलती-दुलती और कभी पाछेमें लिटाकर छुलती थीं ॥ ४ ॥

शे०—येम मगन कौसल्या बिसि दिन जात न जाण ।

सुत सनेह पस मात्रा बाळचरित कर गान ॥ २०० ॥

मेममें मग कौसल्याजी रात और दिनभर बीतना नहीं जानती थीं । पुत्रके स्नेहवा माता उसके बाळचरितोंका गान किया करतीं ॥ २०० ॥

चौ०—पूछ कर जानै कबहुँपर । करि सिफर पक्यों कौणपर ॥

निज कुछ इहदेव भगवान् । पूछा हेतु कीन्ह अजाना ॥ १ ॥

एक बार माताने श्रीरामचन्द्रजीको खान कराया और भुंगार करके पाछेपर पौवा दिया । फिर अपने कुछके इहदेव भगवान्की पूछने लिये खान किया ॥ १ ॥

करि पूछा बैसल कदावा । भयु नई नई पाव बनवा ॥

बहुरि मनु लहौं चकि आई । मोहन करत देख सुत आई ॥ २ ॥

पूछा करके नैकेव कदावा और स्वयं क्यों गयी, क्यों रत्नेई बनायी गयी थी । फिर माता वहीं (पूछने खानमें) बैठ आयी, और वहाँ जानेपर पुत्रको [इहदेव भगवान्के लिये कदावे हुए नैकेव] मोहन करते देखा ॥ २ ॥

मै नगनी सिधु पई मयबीन । देखा कळ तहाँ पुनि सुत ॥

बहुरि जाइ देखा सुत लोई । इयँ कंन मग और न होई ॥ ३ ॥

माता भयभीत होकर (पाछेमें खेप या, वहाँ फिलसे ककर बैठा दिया, इस बातसे डरकर) पुत्रके पास गयी, तो वहाँ बाळकीये लीचा हुआ देखा । फिर [पूछाखानमें बैठकर] देखा कि वही पुत्र वहाँ [मोहन कर रहा] है । उनके हृदयमें कम्प होने लगा और मनको धीरज नहीं होता ॥ ३ ॥

इहौ बडौ दुइ कळक देखा । मतिजन और कि बात विलेख ॥

देखि राम लज्जी अकुलानी । प्रसू हँसि दीन्ह मधुर मुमुकानी ॥ ४ ॥

[मैं सोचने लगी कि] क्यों और वहाँ मैंने दो कळक देखे । ॥ मेरी बुद्धिवा भ्रम है या और कोई विशेष कारण है ? प्रसू श्रीरामचन्द्रजीने माताको कपरापी हुई देखकर मधुर मुसकाने हँस दिया ॥ ४ ॥

शे०—देखपाय मगहि निज अच्युत रूप अवंद ।

रोम रोम प्रति छमे कोटि कोटि ब्रह्मंड ॥ २०१ ॥

फिर उन्होंने माताको अपना अच्युत अच्युत रूप दिखलगाया, जिसके एक-एक रोममें करोड़ों ब्रह्माण्ड लगे हुए हैं—॥ २०१ ॥

चौ०—समनित रवि सति सिव चतुरासन । बहु विधि धर्मिष्ठ सिधु महि कनन ॥

काल कर्म गुण ग्यान सुखद । सोब देखा जो सुता न काक ॥ १ ॥

संगणित सूर्य, चन्द्रमा, शिव, काल, चतुर-वै परबैठ, नदियाँ, सद्युद, पृथ्वी, वन, काल, कर्म, गुण और स्वभाव देखे । और ते पदार्थ भी देखे जो कभी सुने भी न थे ॥ १ ॥

देखी माया सब बिधि लकी। अति समीप जोरें कर ठाढ़ी ॥

देखा भीम वलवत् आसी। देखी मज्जति जो जेरत् लकी ॥ २ ॥

सब प्रकारसे बज्जती मायाको देख कि वह [मगवावत्के सामने] अत्यन्त भयभीत
होय जोवे लकी है। जीवको देखा, जिसे वह माया नचली है, और [फिर] भौतिको
देखा, वो उस जीवको [मायासे] छुटा देखी है ॥ २ ॥

सब पुच्छित मुक्त अवयव स खड़ा। कल्प भूति करवनि सिद्ध खड़ा ॥

किसमवर्त देखि महत्तर। मर भदुरि सिधुस्य करी ॥ ३ ॥

[माताका] शरीर पुच्छित हो गया। मुझसे वचन नहीं निकलता। तब बाँसों
हँकर उसने श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें तिर जमाया। माताको आभयवर्तित देखकर
जैसे शत्रु भीरामजी फिर बालक हो गये ॥ ३ ॥

बलुति करि न जाइ भय माया। लपट सिद्ध मैं सुख करि लया ॥

हरि अवली बहुविधि ललुपार्ह। यह भवि कलहुँ कदसि सुखु भार्य ॥ ४ ॥

[मातासे] श्रुति भी नहीं की जाती। यह दर गयी कि मैंने जगदिता परमात्माको
पुत्र करते जाना। अतिरिने माताको बहुत प्रकारसे समझाया [और कहा—] हे माता !
तुमने, यह बात कहीपर खाना नहीं ॥ ४ ॥

दो०—बार बार कौसल्या विषय कहइ कर कोरि।

अब जनि कहुँ जगै प्रभु मोहि माया लेरि ॥ २०२ ॥

कौसल्याजी बार-बार हाथ जोड़कर विनय करती हैं कि हे प्रभो ! तुम मायाकी
माया भय कभी न छोड़ो ॥ २०२ ॥

बौ०—बाधपरित हरि बहुविधि कीटा। अति नरय रासन्द कई दीमा ॥

कलुक काक कोरें सब भार्य। कदे मर पवित्र ललुपार्ह ॥ १ ॥

भगवान्ने बहुत प्रकारसे बाधकीजारी कीं, और अपने सेवकोंको आपत्त भानन्द
दिया। कुछ समय बीतनेपर सब भार्य कदे होकर दुष्टविषयोंको मुक्त देनेवाले हुए ॥ १ ॥

पद्मकरन कीमद् सुख भार्य। विग्रह दुखि लुकिना बहु पार्ह ॥

परम मनोहर करित अवारा। कल सिद्ध करि ललुपार्ह ॥ २ ॥

सब सुखीने अकर वृद्धार्थ-संस्कार किन्ना। ज्ञानापीने फिर बहुत-सी दक्षिणा
पयी। चारों मुन्दर राजकुमार कदे ही मनोहर अपार करिष करते फिरते हैं ॥ २ ॥

सब जग नयन जगोकर जोई। पसरन अधिर विषर प्रभु सोई ॥

भीजन कलत लोक सब शवा। कई खलत तनि जल समाला ॥ ३ ॥

सो मन, वचन और कर्मसे जगोकर हैं, परी प्रभु दशरथजीके भोगमें विषर
पड़े हैं। भोजन करनेके समय जब राजा मुझसे हैं, तब वे अपने बाध-सत्ताओंके समझको
छोड़कर नहीं आते ॥ ३ ॥

कौसल्या सब बोझा लई। दुष्टक दुष्टक प्रभु कदहि पराई ॥

निगम नेति सिद्ध लल न पया। लहि करे लक्ष्मी रुति पाया ॥ ४ ॥

कौसल्याजी अब मुझसे जाती हैं, सब प्रभु दुष्टक-दुष्टक सब चढते हैं। निगम
वेद 'नेति' (इतना ही नहीं) कहकर निरागण करते हैं और शिवजीने जिनका अन्ध
नहीं पया, माता उन्हें दृष्टपूर्वक पकड़नेके लिये रोड़ती हैं ॥ ४ ॥

पुनर पुरी भई ललु जगः श्रुति विमिषि गोद बैरज ॥ ५ ॥

वे शरीरमें धूल लपेटे हुए जाने और राजाने हँकर उन्हें गोदमें बैठा लिया ॥ ५ ॥

दो०—मोजन करत खसल चित इत डट अवसर पाइ ।

भाजि खले किलकट मुख धवि ओदन लपटाइ ॥ २०३ ॥

भोजन करते हैं पर चित चञ्चल है । अवसर पाकर मुँहमें दही-भात लपटाये किलकारी मारते हुए इपर-उपर माग चले ॥ २०३ ॥

चौ०—बालचरित अति सरल जुहाय । सरद सेव संसु कृति गाए ॥

लिन्द पर मन इन्द्र सब बहिं सखा । ते सब बंखि किष्ट विधाता ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी बहुत ही सरल (मोली) और सुन्दर (मनभावनी) बाललीलाओं-का सरस्वती, शेषश्री, शिवश्री और वेदोंने यान किया है । जिनका मन इन लीलाओंमें अनुरक्त नहीं हुआ, विधाताने उन मनुष्योंको चञ्चित कर दिया (नित्यन्त भाग्यहीन बनाया) ॥ १ ॥

भए कुमार बचहिं सब भ्राता । दीन्ह जनैक गुन विदु साता ॥

गुर सुई गए पवन सूरदाई । जल्प कर विधा सब भाई ॥ २ ॥

ज्यों ही सब भाई कुमारपत्ताके हुए, त्यों ही गुरु, पिता और भाताने उनका यशोवशीत-सत्कार कर दिया । श्रीभुनाथजी [माइवोंसहित] गुरुके घरमें शिक्षा पढ़ने गये और पोछे ही समयमें उनको सब विद्याएँ आ गयीं ॥ २ ॥

जाकी सखल स्वस्त कृति चारी । सो हरि पद यह कौतुक भारी ॥

विधा विनय निपुण गुन सौख्य । केहि केह सबल वृषकीछा ॥ ३ ॥

चारों वेद जिनके स्वाभाविक भास हैं, वे भगवाद् पदें, यह बड़ा कौतुक (अचरन) है । चारों भाई विद्या, विनय, गुण और शीलमें [बड़े] निपुण हैं और सब राजाओंकी छीलाओंके ही लेख लेखते हैं ॥ ३ ॥

करत मान अनुच अति सोदा । देखत रूप चराचर मोदा ॥

जिन्ह कीजिन्ह बिहरहिं सब भाई । बसित होहिं सब लोग जुगाई ॥ ४ ॥

हार्पोंमें बाण और अनुच बहुत ही शोभा देते हैं । रूप देखते ही चराचर (जा-चेतन) मोहित हो जाते हैं । वे सब भाई जिन गलियोंमें लेखते [हुए निपण्ठे] हैं, उन गलियोंके सभी छी-पुख डनको देखकर लेशसे खिंचित हो जाते हैं अथवा ठिठककर रह जाते हैं ॥ ४ ॥

दो०—कोसलपुर वाली नर नारि ब्रज अरु बाल ।

मानहु ते प्रिय लगत सब कहूँ राम कृपाळ ॥ २०४ ॥

कोसलपुरके खनैवाले ली, पुरुष, बूढ़े और बालक सभीको कृपाळ श्रीरामचन्द्रजी प्राणोंसे भी अधिक बढ़कर प्रिय लगते हैं ॥ २०४ ॥

चौ०—बंशु सखा सँग कोहि जोलहई । जन सूरदा चित कोहहिं जाई ॥

पावन मृग मारहिं जिनै जन्तो । दिव प्रति नृपहिं देसाचहिं जानी ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजी भाइयों और शत्रु-मित्रोंको मुलकर साथ ले ॥ हैं और नित्य घनमें जाकर शिकार खेलते हैं । मनमें पवित्र धन्यकर मृगोंको मारते हैं और प्रतिदिन जाकर राना (दधरथजी) को दिखलाते हैं ॥ २ ॥

जे मृग राम जान के मारे । ते तसु जनि सुख्येक सिधारे ॥

अनुच सखा सँग योग्य करहों । जानु पिता अम्मा अनुसहों ॥ २ ॥

जो मृग श्रीरामजीके लक्ष्यमें मारे जाते थे, वे शरीर छोड़कर देवलोको चले जाते थे । श्रीरामचन्द्रजी अपने छोटे भाइयों और सखाओंके साथ योग्य करते हैं और माता-पिताकी आज्ञा पालन करते हैं ॥ २ ॥

येहि विधि सुखी होहि पुर जोगा । कहिं छुविधि सोइ संजोगा ॥
वेद पुरान सुनहिं मन छाई । ज्यु कहिं अनुजग समुसाई ॥ २ ॥
जिह प्रकार नगरके जोग सुखी हो, छुविनिधान श्रीरामकन्दवी बड़ी संयोग (लीला) करते हैं । वे मन छायाकर वेद-पुरान सुनते हैं और फिर लवं छोटे भाइयोंके समझाकर करते हैं ॥ २ ॥

प्रातःकाल उठि कै रहनाथा । मनु पिछ गुरु भावहिं भाषा ॥
आपनु मागि कहिं पुर काज । देखि चरित हरषद मन राधा ॥ ४ ॥
धीरधुनामणी प्रातःकाल उठकर माता-पिता और गुरुके मधकनवाते हैं और माता केसर नगर का काम करते हैं । उनके चरित्र देख-देखकर राधा मनमें बड़े हर्षित होती है ॥ ४ ॥
श्री—व्यापक अकल मनीह काज निर्गुन नाम न रूप ।

मरात हेतु जाना विधि करत चरित्र अनूप ॥ २०५ ॥
जो व्यापक, अकल (निरवयव), इच्छाहित, मन्मथ और निर्गुन है तथा विनका न नाम है न रूप, वही भावात् सर्वोके । जाना प्रकारके अनुपम (अलौकिक) चरित्र करते हैं ॥ २०५ ॥

चौ—यह सब चरित कहा मैं गाई । अतिरिक्त कथ सुनहु मन छाई ॥
विश्वामित्र महासुनि कानी । कसहिं किमि सुन काजम जायी ॥ १ ॥
यह सब चरित्र मैंने बाकर (बखानकर) कहा । मन भागेकी कथा मन छायाकर सुनी । शनी महासुनि विश्वामित्रजी कर्म सुन आश्रम (पवित्र स्थान) जानकर बघते थे, ॥ १ ॥
मैं आप सम्योग सुनि करदीं । अति मनीष मुवाहुहिं हरषीं ॥
देखत जग विद्याचम धर्महिं । कहिं उपदेश सुनि दुष्ट राखीं ॥ १ ॥
ज्यों वे सुनि जग, जग और सोच करते थे, परन्तु गारीष और मुवाहुते बहुत करते थे । यह देखते ही राक्षस दौड़ पड़ते थे और उपदेश सपाते थे, जिससे सुनि [बहुत] दुःख पाते थे ॥ २ ॥

वाचितनय मन पिछ जांकी । हरि विनु मरिह न चितिचर कपी ॥
उप सुनिवर मन मीन विचरा । प्रभु जेकरेद हरन सधि भांता ॥ २ ॥
वाधिके पुत्र विश्वामित्रजीके मनमें विद्या का गयी कि वे गरी राक्षस भगवारके [मारे] विना न मरेगे । उप जोड़ सुनिने मनमें चिन्तन कि प्रभुने दुष्टोंका भार हलनेके लिये अवतार लिया है ॥ २ ॥

एई मिस देखीं पद गाई । करि निमले कबैं लोह भाई ॥
व्यान विद्या सकल गुन अवका । सो प्रभु मैं देखन मरि नपना ॥ ४ ॥
इसी कथने बाकर मैं उनके चर्याका दर्शन करूं और विनती करके दोनों भाइयों को ले मार्क । [बाह ।] जो ज्ञान, वैराग्य और सब गुणोंके योग हैं, उन प्रभुको मैं नेत्र भरकर देखूंगा ॥ ४ ॥

श्री—बहुविधि करत मन्नेरथ जग अग्रि यहिं बार ।
करि मन्त्रन सरक जेक यय सृष्ट दरबार ॥ २०६ ॥
बहुत प्रकारसे मन्त्रोप करते हुए जनेमें देर नहीं करी । हरजूनीके जन्म स्थान करने वे राजाके दरबारपर पहुँचे ॥ २०६ ॥

चौ—सुनि ज्ञानमन सुक नम लता । मिथन सपत कै पिछ लजाना ॥
करि दंडवत सुनिहिं समझासी । पित्र-जसल जैरविनि लकी ॥ १ ॥
ए० स० १०—

राजने नव मुनिका जाना जुना, उन ने ब्राह्मणोंके समानको साथ लेकर मिलने गये,
और दण्डवत् करके मुनिका सम्मान करते हुए उन्हें स्वयं अपने आसनपर बैठाया ॥१॥

चरम पक्षारि धीमेहि अति पूजा । जो सम कष्ट घन नहीं हुआ ॥

विशेष भक्ति भोजन करवाया । मुनिवर हृदयें हरष अति पाया ॥ २ ॥

चरणोंको चोकर बहुत पूजा की और कहा—जैसे समान घन आज दूसरा कोई
नहीं है । फिर अनेक प्रकारके भोजन करवाने, लिये जो मुनिने अपने हृदयमें बहुत
ही दर्प प्राप्त किया ॥ २ ॥

मुनि करवलि मेके सुत जारी । राम देखि मुनि वेद विस्तारी ॥

अथ मदन दैवत कुछ सोचा । बहुत चकोर पूज सति कोभा ॥ ३ ॥

फिर राजाने चारों पुरुषोंको मुनिके चरणोंपर दाक दिया (उनसे प्रणाम कराया) ।
श्रीरामचन्द्रजीको देखकर मुनि अपनी देखी मुनि भूक भरे । वे श्रीरामजीके मुखकी
शोभा देखते ही देखे भाव हो गये, मानो चकोर पूर्ण चन्द्रमाको देखकर डूबा गया हो ॥३॥

सब मन हरषि वचन कह राक । मुनि अस्त हस्त न कीमिहु काक ॥

कहै करन जगमग दुम्हारा । कहहु सो करत ब लखकेँ बारा ॥ ४ ॥

तब राजाने मनमें हँसित होकर ये वचन कहे—हे मुनि ! इस प्रकार क्या तो
भापने कभी नहीं की । आज फिर करणसे भवका दुःभावमान हुआ ! कहिये, मैं उसे
पूरा करनेमें देर नहीं लगाऊँगा ॥ ४ ॥

अनुर समुह सकपहि मोही । मैं लखन आपरें सुर लोही ॥

अनुर समेत देहु रघुनाथ । बिसिखर वन मैं होव सनाथा ॥ ५ ॥

[मुनिने कहा—] हे रामन् ! राजाओंके समूह मुझे बहुत छत्रते हैं । इसीलिये मैं
तुमसे कुछ माँगने आया हूँ । छोटे भाईवदित औरबुनायनीको सुने दो । राजाओंके माँ
जानेपर मैं वनाय (वृक्षवित) हो जाऊँगा ॥ ५ ॥

वो—देहु शूष मन हरपित राजहु मोह अग्रधान ।

घनं दुःखप्र प्रमु तुम्ह कीं एह कहै अति कल्पान ॥ २०७ ॥

हे रामन् ! प्रसन्न मनसे इनको दो, मोह और अज्ञानको छोड़ दो । हे स्वामी ! इससे
तुमको धर्म और दुःखकी प्राप्ति होगी और धनका परम कल्याण होगा ॥ २०७ ॥

वो—मुनि राजा अति अमिल लगी । हृदय करं मुख दुखि कुसुकागी ॥

भीरिपक पापदैं सुख लगी । निध वचन महि कहेहु विचारी ॥ १ ॥

इस आत्मन्त अमिल लगीको सुनकर राजाका हृदय काँप उठा और उनके मुखकी
कान्ति फीकी पड़ गयी । [उन्होंने कहा—] हे ब्राह्मण ! मैंने चौबेखरमें चार पुत्र पाये
हैं, आपने विचारकर कात नहीं कही ॥ १ ॥

मागहु भूमि जेहु घन कोसा । सर्वत देवैं अशु सहरोसा ॥

देह प्रम तें शिष कहु लगी । सोच मुनि देवैं निसिष एक माहीं ॥ २ ॥

हे मुनि ! भयभूमी, गौ, जल और खसना माँग लीजिये, मैं आज चबे दर्पके जाय अपना
सर्वस्व देदूँगा । देह और प्राणसे अधिक प्राण कुछ भी नहीं होता, मैं उसे भी एक फलमें देदूँगा

सब सुत शिष मोहि प्रम की कर्ह । राख देत नहिं कन्ह रोसाई ॥

कहै निसिषर अति धीर कटोस । कहैं सुंवर सुख परम किशोर ॥ ३ ॥

सभी पुत्र सुते शालीके समान प्यारे हैं उनमें भी हे प्रभो ! रामको तो [किसी

प्रकार भी] देते नहीं बन्ता । कहाँ अत्यन्त ठगाने और क्रूर राजा, और कहाँ परम-
किशोर अवस्थाके (विशुद्ध सुकुमार) मेरे सुन्दर पुत्र ! ॥ १ ॥

मुनि छूट गिरा प्रेम रस सखी । हृदय हरव भाव मुनि मानी ॥

तब बसिष्ठ बहुविधि समुदाया । रूप संदेह नस कई पाना ॥ ४ ॥

प्रेम-रसमें रानी हुई राजपत्नी वाली सुनकर अनी मुनि विश्वामित्रजीने हृदयमें बड़ा
दर्प माना । ॥॥ बसिष्ठजीने राजाको बहुत प्रकारसे समझाया, जिससे राजाका संदेह
नाशको प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥

कति भयूर होत तबव शोकम् । हृदयें कष्ट बहु भँति सिलाए ॥

मेरे प्रत्य नाथ सुन लोक । तुम्ह मुनि भिन्न भाव नहीं कोक ॥ ५ ॥

राजाने बड़े ही आदरसे दोनों पुत्रोंको बुलाया और हृदयसे लगाकर बहुत प्रकारसे
उन्हें पिला दी । [फिर कहा—] हे नाथ ! ये दोनों पुत्र मेरे प्राप हैं । हे मुनि ।
[अब] आप ही इनके भिन्न हैं, वृत्त कोई नहीं ॥ ५ ॥

सो—क्षीपि भूप रिषिहि सुत बहुविधि देह मसीस ।

जमनी भवन गए प्रभु चले गाह पद सीस ॥२०८(क)॥

राजाने बहुत प्रकारसे आशीर्वाद देकर पुत्रोंको ऋषिके लक्ष्मके कर दिया । फिर प्रभु
भाताके महलमें गये और उनके चरणोंमें स्निग्ध नवाकर चले ॥ २०८ (क) ॥

सो—पुरुषसिंह होत वीर हरषि चले मुनि भय दुरज ।

कृपासिधु मतिधीर अखिल किल कारण करन ॥२०८(ख)॥

पुरुषोंमें सिंहरूप दोनों भाई (राम-लक्ष्मण) मुनिका भय हरनेके लिये प्रसन्न होकर
चले । वे कृपाके समुद्र, धीरहृदि और सम्पूर्ण विश्वके कारणके भी कारण हैं ॥ २०८ (ख) ॥

सो—अस्त्र नवन डर जाहु किलाह । नील वस्त्र तनु वसन समाना ॥

कति पद पीत कर्त वर आभा । बरिष पाव सायक, हुँहु हाथा ॥ १ ॥

भगवान्‌के काल नेत्र हैं, चौड़ी छाती और विशाल भुजाएँ हैं, नील कमल और
लालके बुझी तरह श्यामस्त्रीर है, कमरमें पीताम्बर [पहने] और सुन्दर तारकल कटे
हुए हैं । दोनों हाथोंमें [कक्षाः] सुन्दर धनुष और बाण हैं ॥ १ ॥

स्वाम गौर सुंदर दोठ भाई । विश्वामित्र महानिधि । पाई ॥

प्रभु महान्मदेन श्री वाक् । ओहि चिदि पिल तजेव भगवाना ॥ २ ॥

स्वाम और गौर वर्णके दोनों भाई परम सुन्दर हैं । विश्वामित्रजीको महान् निधि
प्राप्त हो गयी । [वे सोचने लगे—] मैं जान गया कि प्रभु महान्मदेव (भगवान्‌के मन्त्र)
हैं । मेरे लिये भगवान्‌ने अपने पिताजी भी लोह दिया ॥ २ ॥

चले जात मुनि दीन्ह देखाई । मुनि तपका जोष करि घाई ॥

एकहि वान प्राण हरि लीन्हा । दीन जमि तेहि निज पद रोखा ॥ ३ ॥

मार्गमें चले जाते हुए मुनिने वाह्यको विस्मयवा । शब्द सुनते ही वह क्रोध
करके दौड़ी । श्रीरामजीने एक ही वाक्यसे उसके प्राण हर लिये और दीन जानकर उसके
निजपद (अपना दिव्य लक्षण) दिया ॥ ३ ॥

तब रिषि निज जगहि धिक्छीन्ही । विच्छाविधि कहे बिबा वीन्ही ॥

जाते काल न सुक विपत्ता । अमुक्ति कल सपु तेज प्रकाश ॥ ४ ॥

तब ऋषि विश्वामित्रने प्रभुको अपनी विद्याका अन्धकार उखाड़ते हुए भी [जीजाने

पूर्ण करनेके लिये] ऐसी विद्या दी जिससे सूत-प्यास न लगे और करीबें बहुकृत बल और तेजका प्रकाश हो ॥ ४ ॥

दो०—आयुध सर्व सर्वाणि कै प्रभु निश्च आश्रम जानि ।

कंस मूल फल भोजन वीन्ह भगति द्विज जानि ॥ २०९ ॥

सब अस्त्र-राक्ष सम्पन्न करके मुनि प्रभु भीरवजीको अपने आश्रममें ले आये; और उन्हें परम रिक्त जानकर भक्तिपूर्वक बन्द, मूल और फलका भोजन कराया ॥ २०९ ॥

चौ०—प्रातः कहा मुनि सब रघुराई । निर्मल जन्म करहु कुम्ह जाई ॥

होम करम छाये मुनि छाये । ज्यु रहे मस की रखवायी ॥ १ ॥

सबै श्रीरघुनाथजीने मुनिले कहा—आप जानकर निम्न होकर सब कीमिये । यह मुनकर सब मुनि हवन करने लगे । आप (भीरवजी) पक्की रखवालीपर रहे ॥ १ ॥

मुनि मारीच विस्तार छोड़ी । सै सहज भावा मुनिप्रोही ॥

बिनु घर बाण राम छेदि मारा । सत जीवन न्य छग्न पारा ॥ २ ॥

यह समाचार सुनकर मुनिबोध धनु श्रेणी राक्षस मारीच अपने सहजकोंको लेकर दौड़ा । भीरवजीने बिना फलदाता बाण उसको मारा; जिससे वह सौ जीवनके विस्तार-बाले सधुप्रके पार का गिरा ॥ २ ॥

पायस घर सुगन्ध पुनि मस । अजुब निस्तार कटकु सँभारा ॥

मरि अजुब द्विज निर्मलकारी । असुखि करहि वैष मुनि क्षारी ॥ ३ ॥

फिर सुगन्धको अग्निमाष मारा । हजर छोटे भाई लक्ष्मणजीने राक्षसीकी सेनाका संहार कर डाला । इस प्रकार भीरवजीने राक्षसोंको मारकर ब्राह्मणोंको निर्मल कर दिया । तब घरे देवता और मुनि खुश करने लगे ॥ ३ ॥

सबै पुनि कहुँक विवस रघुराया । रहे कीरिद विप्रान्ध पर दया ॥

भगति हेतु बहु कथा पुराण । कई विप्र अघपि प्रभु जाना ॥ ४ ॥

श्रीरघुनाथजीने वहाँ कुछ दिन और रहकर ब्राह्मणोंपर दया की । भक्तिके कारण ब्राह्मणोंने उन्हें पुराणोंकी बहुत-सी कथाएँ कही; यद्यपि प्रभु सब जानते थे ॥ ४ ॥

तब मुनि सादर कहा कुम्ह । भरि पक प्रभु देखिब जाई ॥

धनुषद्वय मुनि रघुकुल नाया । हरिब चले मुखपर के साधा ॥ ५ ॥

तदनन्तर मुनिने आदरपूर्वक लम्बाकर कहा—हे प्रभो ! चलकर एक चरित्र देखिये । रघुकुलके स्वामी भीरवजीकी धनुषका [जो बात] सुनकर मुनिभेद विधा-मित्रजीके साथ प्रसन्न होकर चले ॥ ५ ॥

आश्रम एक दीया मग महीं । लग सग जीव बंधु तहैं नाहीं ॥

पूछ मुनिदि सिद्ध प्रभु देखी । सकल कथा मुनि कहा भिसेकी ॥ ६ ॥

मार्गमें एक आश्रम दिखायी पड़ा । वहाँ धनुषधारी कोई भी जीव-जन्तु नहीं था । पत्थरकी एक शिलाको देखकर प्रभुने पूछा; तब मुनिने विस्तारपूर्वक सब कथा कही ॥ ६ ॥

दो०—चौतम नारि । आप बस उपल देख धरि धीर ।

चरन कमल रज छाहति क्षय करहु रघुवीर ॥ २१० ॥

गौतम मुनिकी स्त्री अहंता आपका पत्थरकी देह धारण किये बड़े धीरजसे आपके चरणकमलोंकी धूलि चाहती है । हे रघुवीर ! इसका क्षय कीजिये ॥ २१० ॥

छं०—परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तप पुंज सही ।

देखत रघुनाथक अब सुतदायक सनमुख होकर जोरि रही ॥

अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं अतह वचन कही ।
अतिसय बढमागी चरनन्हि छागी जुमल नवन बलधार वही ॥ १ ॥
भीरामजीके पवित्र और शोकको भाषा करनेवाले चरणोंका स्पर्श पाते ही सचमुच वह तपोमूर्ति अहत्या प्रकट हो गयी । मर्कोंको मुक्त देनेवाले श्रीखुनायजीको देखकर, वह हाथ जोड़कर सामने खड़ी रह गयी । अत्यन्त प्रेमके कारण वह भभीर हो गयी; उसका शरीर पुलकित हो उठा; मुखसे वचन बहनेमें नहीं आते थे । वह अत्यन्त बढमायिनी अहत्या प्रभुके चरणोंसे छिन्न गयी और उसके दोनों नेत्रोंसे जल (प्रेम और आनन्दके आँसुओं) की धारा बहने लगी ॥ १ ॥

भीरजु मन कीन्हा प्रभु कहँ चीन्हा रघुपति कृपाँ भगति पाई ।
अति निर्मल बापी अस्तुति ठानी ग्यान गम्य जय रघुराई ॥
मैं सारि अपावन प्रभु जय पावन राखन रिपु जम लुखवाई ।
राजीव बिछोखन मय भय मोखन पाहिं पछि सरनहिं माई ॥ २ ॥
फिर उसने मनमें धीरज भरकर प्रभुको वंदना और श्रीरघुनाथजीकी कृपासे भक्ति प्राप्त की । तब अत्यन्त निर्मल बापीसे उसने [इत प्रकार] स्तुति प्राप्त की—
हे ज्ञानसे जानने योग्य श्रीरघुनाथजी ! आपकी कृपा हो । मैं [सहज ही] अरविष की हूँ । भीर है प्रभो ! आप जगत्को पवित्र करनेवाले, मर्कोंको मुक्त देनेवाले और रावणके मारु हैं । हे कामलपन ! हे संसार (जन्म-मृत्यु) के भयसे मुक्तनेवाले ! मैं आपकी भरण लायी हूँ, [मेरी] रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥ २ ॥

मुनि आप जो दीन्हा अति मल कीन्हा परम अनुभव मैं माना ।
देखेई भरि सोचन हरि मय मोचन इहह छत्र संकर जाना ॥
विनती प्रभु मोरी मैं मति मोरी नाथ न भावई बर आना ।
पद् कमल पदमा एस अनुरागा भग्न मन मधुप करै पाना ॥ ३ ॥
मुनिने, जो मुझे राग दिया, तो बहुत ही अच्छा किया । मैं उसे अत्यन्त अनुग्रह [करके] मानती हूँ, कि आपके कारण मैंने संसारसे मुक्तनेवाले श्रीहरि (आप) को भोग भरकर देखा । इसी (आपके दर्शन) को संकरजी कल्पे बड़ा लाभ समझते हैं । हे प्रभो ! मैं बुझिंकी कभी भोझी हूँ, मेरी एक विनती है । हे नाथ ! मैं और कोई वर नहीं माँगती; केवल यही चाहती हूँ कि मेरा मनस्वी भीरा आपके चरणकमलकी रत्नसे प्रेमरूपी रक्षा कदा पान करता रहे ॥ ३ ॥

जेहि पद छुरसरिता परम पुनीत प्रघट भईसिख सीस धरी ।
सोई पद पंकज जेहि पूज्य भग्न मन सिर धरेउ कृपाल हरी ॥
पछि मौति सिखरी गीतम नारी बार बार हरि चरण परी ।
जो अति मन माच्छ सो बर पाछा पै पतिखेक सनई मरी ॥ ४ ॥
जिन चरणोंसे परमस्वित देवकी गङ्गाजी प्रकट हुई, जिन्हें शिवजीने शिरपर धारण किया, और जिन चरणकमलोंको गङ्गाजी पूजते हैं, कृपावतु हरि (आप) ने उसीको मेरे शिरपर रक्खा । इस प्रकार [स्तुति करती हुई] बार-बार, भगवान्‌के चरणोंमें गिरकर, जो मनको बहुत ही अच्छा लगा उस वरको पाकर गौतमी जी अहत्या आनन्दमें भरी हुई पतिखेककी चली गयी ॥ ४ ॥

दो०—भस प्रभु दीनबंधु हरि काल रहित दयाल ।
हुबखिदास सब तेहि भवु आदि कष्ट जंझल ॥ २११ ॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजी ऐसे दीनवन्धु और बिना ही कारण दवा करनेवाले हैं । तुलसी-
दासजी कहते हैं, हे छठ [यम] ! तू जल-बंजल छोड़कर उन्हींका भजन कर ॥२११॥

मासपारायण, सातवाँ विश्राम

चौ०—सबे राम लछिमन दुनि संग । जय बहौ जय पवनि संग ॥

गाधियतु सब कथा सुनाई । नेहि प्रकर सुरसरि भहि लाई ॥ १ ॥

श्रीरामजी और लक्ष्मणजी मुनिके साथ चले । वे वहाँ गये जहाँ जगतको पवित्र
करनेवाली गङ्गाजी थी । मन्दाकिनि गाधिके पुत्र विष्णुधर्मजीने सब सब कथा कह सुनायी
जिस प्रकार देववती सङ्गाजी पृथ्वीपर आवी थी ॥ १ ॥

सब प्रभु रिपिन्ह समेत नहाय । शिषिब बाब सहियेवहि पाय ॥

हरये सबे मुनि बूढ़ सदाया । बेनि निवेह मगर निजराया ॥ २ ॥

सब प्रभुने श्रुतियोंसहित [गङ्गाजीमें] स्नान किया । ब्राह्मणोंने भौंठि-भौंठिके दान पाये ।
जिस बुनिन्दके साथ वे प्रसन्न होकर चले और शीघ्र ही जनकपुरके निकट पहुँच गये ॥२॥

पुर रम्यता राम सब देखी । हरये अनुज समेत बिलेखी ॥

बासीं बूझ सरित सर पाया । सलिल सुवसस सबि सोपाया ॥ ३ ॥

श्रीरामजीने सब जनकपुरकी शोभा देखी, तब वे छोटे भाई लक्ष्मणसहित मगध
हमिल हुए । वहाँ मनोकों फलफियों, फुल्ले, नदी और वाख्य हैं, जिनमें अमृतके समान
सक है और मणियोंकी सीढ़ियाँ [बनी हुई] हैं ॥ ३ ॥

गुंजात मंड मय रस मंडा । सुजात कळ बहुवरन बिहंगा ॥

घरघ फल बिकले धनमाला । शिषिब समीर सदा सुखशाला ॥ ४ ॥

मकरन्द-रससे भजनाके होकर भीरे सुन्दर गुंजार कर रहे हैं । रंग-विरंगे [बहुसंख्ये]
फली मखर चन्द कर रहे हैं । रंग-रंगके कमल बिके हैं, सदा (सब श्रुतियोंमें) झूल
देनेवाला शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन वह रह रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—सुमन काटिका धाम धन त्रिपुल बिहंग निवास ।

धूलत फलत सुपल्लवत सोहत पुर चहुँ पास ॥ २१२ ॥

पुष्पवाटिका (फुलवादी) , धाम और धन धनमें बहुत-से पक्षियोंका निवास है, फूल-
फली और सुन्दर पत्तोंके लगे हुए नगरके चारों ओर सुशोभित हैं ॥ २१२ ॥

चौ०—दण्ड न वरक्त मय निहाई । चहुँ चाह सब तहई कोमाई ॥

चाह कजाह विनिमल कैकरी । नविमय विचित्रपुसर सँवारी ॥ १ ॥

नारली सुन्दरताका वर्णन करते नहीं बनता । मन जहाँ जाता है वहाँ छुपा जाता
(रस जाता) है । सुन्दर नाचर है, मणियोंके बने हुए विचित्र छन्दे हैं, मानो ब्रह्मा
उन्हें अपने हाथोंसे बनाया है ॥ १ ॥

धनिक धनिक धर घनङ्ग ससाला । कैके लखल वस्तु कै माना ॥

बौद्ध सुंदर मछो सुहाई । संतत रहहि सुगंध सिंहाई ॥ २ ॥

जुनेके समान शेर फनी व्यापारी सब प्रकारकी मनेक वस्तुएँ केकर [दुकानोंमें]
बैठे हैं । सुन्दर चौपाइ और सुखानी गलियों सदा सुगन्धसे सिंची रहती हैं ॥ २ ॥

मंगलमय मंदिर सब केर । विविध वस्तु रत्नवाच चितेर ॥

हा कर गरि सुमग सुचि संता । परमसौख्य गानो पुनवंता ॥ ३ ॥

सबके पर मङ्गलमय हैं और उत्तर निज कहे हुए हैं, जिन्हें मानो कामदेवकृपे

चित्रकारने अंकित किया है। नगरके [समी] लौ-पुल्ल सुन्दर, पवित्र, सहु सम्भाव-
याके, धर्मात्मा, शानी और शुभवाच हैं ॥ ३ ॥

कवि अल्प यहाँ उल्लिखित किया है। विष्णुर्होमिषुच किलेकि विष्णुम् ॥

होत कथित पित कोट निजोन्मी। समस्त भुवन सोमा वसु रोमी ॥ ४ ॥

यहाँ जनकजीका अक्षय्य उत्पन्न (सुन्दर) निवासस्थान (माल) है, यहाँके विष्णु
(देवर्ष) को देवर्ष देवता भी अधिक (सम्मिलित) हो जाते हैं [समुष्णोकी सो बात ही
क्या]। कोट (राजमण्डलके परकोटे) को देवर्षपर चित्र अंकित हो जाता है, [ऐसा नामक
होता है] मानो उसने समस्त क्षेत्रोंकी ओमाको रोक (के) रक्ता है ॥ ५ ॥

दो०—धवल धाम भवि पुरट पट सुवर्णित कथा मॉति।

सिध निवास सुन्दर सदन सोमा किमि अहि जाति ॥ २१३ ॥

राजमण्डल महाद्वारेमें अनेक प्रकारके सुन्दर रीतिसे बने हुए मणिमण्डित सोनेकी छत्री-
के पदों को हैं। वीतावीके रहनेके सुन्दर मण्डली ओमाका वर्णन किया हो जैसे
जा सकता है ॥ २१३ ॥

चौ०—सुसग हार सब कुण्डित कपला। सुर और पट जगज भद्रा ॥

बगी पिच्छल कवि यम सख। हम सब सब संकुल सब सख ॥ १ ॥

राजमण्डलके उप दरवाजे (घरक) सुन्दर हैं, जिनमें राजके (महामुल लपका हीरोंके
चमकते हुए) बिम्ब के लगे हैं। यहाँ [माला] यन्त्राओं, नदों, नामों और भावोंकी
भीष लगी रहती है। दोनों और हाथोंके लिये बहुत बड़ी-बड़ी कुशलों और राजाकायों
(जीवजाने) बनी हुई हैं, जो सब समय बोझ, हाथी और रथोंसे भरी रहती हैं ॥ २ ॥

सुर सखि लेख बहुतेरे। सुसुन्दर सखि सख सब केरे ॥

॥ कहेर सर सखि समीपा। उतरे लई लई विषुव भरीपा ॥ ३ ॥

बहुत-से सुखी, भन्नी और वेनाखी हैं, उन लके पर भी राजमण्डल-नदीके
ही हैं। नगरके बाहर राजन और नदीके निकट जहाँ-तहाँ बहुत-से राजायोग उतरे हुए
(वेर वाले हुए) हैं ॥ २ ॥

देखि अल्प कृष्ण नीमसई। सब सुसग सब योनि सुराई ॥

औसिक कहेर और वसु कथा। इहाँ रहियं छुकीर मुजावा ॥ ४ ॥

[यहाँ] आर्षोषा एक अनुपम वानं देवर्ष, जहाँ सब प्रकारके सुमीति वे और
जो सब लक्ष्मणे सुहायता था, विष्णुमित्रीने कहा—दे सुवन राजनीर। वेप मन सदा
है कि यही रहा काम ॥ १ ॥

महेहि नाम कहि कुनामिषेख। उतरे लई सुवि वृष सखेस ॥

विष्णुमिषि महासुवि कहे। समान विविधपति पाद ॥ ५ ॥

कृष्णके नाम श्रीरामचन्द्रकी बहुत अच्छा, सखिम् ? कहकर यहाँ सुनियोंने
अपने धाम उतर गये। विष्णुमिषि जनकजीने जब यह सम्बन्ध पाया कि महासुवि
विष्णुमिषि जाये हैं, ॥ ४ ॥

दो०—संग सखि सुवि मुरि मट मसुर बर सुर स्वसि।

उतरे मिलन मुनिनायकहि सुवि राव पति मॉति ॥ २१४ ॥

सब उन्होंने पवित्र हृदयके (संगमस्थल, सखिमण्ड) मन्त्री, बहुत-से बोझ,
मेघ वाक्का, हुए (शठमन्दली) और अपनी अक्षिके मेघ क्षेत्रोंको धाय किया और
इत प्रकार प्रसन्नके साथ राजा सुनियोंने स्वामी विष्णुमिषिजीके मिलने लगे ॥ २१४ ॥

बौ०—कीन्ह मनसु जल धरि माया । दीन्हि मलीन सुदित सुनिनाथा ॥

चित्रहंष सख सखर बंदे । आवि मन्य बहू ॥१॥ कनदे ॥ १ ॥

रागने सुनिके चरनोंपर मस्तक रखकर प्रणाम किया । सुनियोंके स्वामी विश्वामित्रजीने प्रसन्न होकर अश्वीर्वाच दिया । फिर सारी ब्राह्मणमण्डलीको आदरसहित प्रणाम दिया और अपना बड़ा भाग्य जानकर राधा आनन्दित हुए ॥ १ ॥

हुलस प्रसन्न कहि करहिं खरा । विस्वामित्र भूपति बैराग ॥

तेहि अवसर छाप दौट आई । गए रहे देखव फुलवाई ॥ २ ॥

बार-बार फुलव्यवश करके विश्वामित्रजीने राधाको बैराग्य । उसी समय दोनों भाई आ पहुँचे, वो फुलवाही देखने गये थे ॥ २ ॥

लाम गौर मृदु बभस किसोरा । खोचन सुखद विखरि चितचोरा ॥

उठे सकल जग खनुपति आप । विस्वामित्र विरुद्ध बैराग ॥ ३ ॥

सुकुमार किसोरे जलसलिलके, श्याम और गौर वर्णके दोनों कुमार नेत्रोंको सुख देनेवाले और सारे विश्वके चित्तको सुखानेवाले हैं । जग खनुनापनों भाये तब सभी [उनके हम एव देखने प्रभावित होकर] उठकर खड़े हो गये । विश्वामित्रजीने इनको अपने पास बैठा लिया ॥ ३ ॥

भए सब सुखी देखि दौड प्रसन्न । करि विखोचन पुनकित माता ॥

भूरति मधुर मनोहर देखी । जपठ विदेहु विदेहु चितैसी ॥ ४ ॥

दोनों भाइयोंको देखकर सभी सुखी हुए । उनके नेत्रोंमें सब भर आया (मानन्द और प्रेम्भके भाँप उभर पड़े) और सारी रोमाञ्चित हो उठे । रामजीकी मधुर मनोहर भूर्तिकी देखकर विदेह (जनक) विषोपक्रमे विदेह (देखी सुख-सुखे रहित) हो गये ॥ ४ ॥

बौ०—प्रेम भगन मनु कामि दृष्ट करि विवेक धरि धीर ।

पोकेठ सुनि पद गार सिध गवामद गिरा समीर ॥ २१५ ॥

मनको प्रेममें मग्न मान राजा जनकने विवेकका आश्रय लेकर पीरल चारण किया और सुनिके चरनोंमें फिर नवाकर बहद (प्रेमभरी) गम्भीर वाणीसे कहा—॥ २१५ ॥

बौ०—कहातु राम सुंदर दीन बाळक । सुखितुल तिलक किमुपकुल पाळक ॥

मग तो विगत भेति कहि राख । उभय रूप धरि की सोइ भाकर ॥ १ ॥

हे नाथ ! कहिये, ये दोनों सुन्दर बालक सुनितुलके आभूषण हैं, या किसी राजवंशके पाळक । मगला तिलका केदोने भेति कहेकर गान किया है, कहीं यह वस्तु तो सुगलरूप धरकर नहीं भाग्य है ॥ १ ॥

सहस विरामत्य मनु सोक । कथित होत विमि बंद चकोरा ॥

सारे मनु फुल्लै सविमल । कहातु बाण जनि कहु हुराक ॥ २ ॥

मेरा हृदय जो समाप्त हो बैरगमल [वना हुआ] है, [इन्हें देखकर] इस तरह दुःख हो रहा है जैसे कन्तराको देखकर भूकोर । हे प्रभो ! इसलिये मैं आपसे सख (निष्ठा) भावसे पूछता हूँ । हे नाथ ! कहाइये, विप्राय न कीजिये ॥ २ ॥

इन्द्रि विरामत अति कुरुरता । समस्त ब्रह्मसुखहि मग स्वगत ॥

कह सुनि विहसि कहेहु नृप मोक्ष । नवन सुम्हार न होइ मकीका ॥ ३ ॥

इन्द्रको देखते ही अंतस्त्व प्रेम्भके कल होकर मेरे मनमें सबदर्शी ब्रह्मसुखको त्याग

दिया है। मुनिने हँसकर कहा—हे राजन् ! आपने ठीक (वर्याव ही) कहा। आपका वचन मिथ्या नहीं हो सकता ॥ ३ ॥

ये प्रिय सखी! जहाँ लगी आँखी। मग सुमुखीहि ससु सुनि कानी ॥

रघुकुल मनि वसत्य के जाए। मग हित कायि वरस पठाए ॥ ४ ॥

अगतमें जहाँतक (चित्तने भी) प्राणी हैं, वे सभीक्षे प्रिय हैं। मुनिकी [रहस्यभरी] वाणी सुनकर भीरामजी मन-ही-मन मुक्तपते हैं (हँसकर मानो संकेत करते हैं कि रहस्य खोलिये नहीं)। [तब मुनिने कहा—] ये रघुकुलमणि मधुराज दक्षरके पुत्र हैं। मेरे हितके लिये राजाने इन्हें मेरे साथ भेजा है ॥ ४ ॥

श्री०—रामु लखनु दोठ भंजुवर कप सील बल काम।

मख राजेड ससु साखि जगु जिते असुर संश्राम ॥ ११९ ॥

ये राम और लक्ष्मण दोनों श्रेष्ठ भाई रूप, शील और बलके धाम हैं। सारा समस्त [इस यातका] वासी है कि इन्होंने मुझमें असुरोंको जीतकर मेरे बलकी रक्षा की है ॥ ११९ ॥

श्री०—मुनि तब परत देखि कह राख। कहि न सकई भिन्न पुन्य प्रमद ॥

सुंदर साम और दोठ छाता। धर्मवदु के आर्मेइ हाता ॥ १ ॥

राजाने कहा—हे मुनि ! आपके परनोंके दर्शन कर मैं अपना पुण्य-प्रभाव कह नहीं सकता। ये सुन्दर श्याम और गौर बर्णके दोनों भाई आनन्दको भी आनन्द देनेवाले हैं ॥ १ ॥

इन्हें कै प्रीति परसपर साबधि। कहि न जह मग पाव सुवाधि ॥

सुपहु नाथ कह मुदित चिदेइ। जग जीव सब सहज समेइ ॥ २ ॥

इनकी आपसी प्रीति यही पवित्र और सुहावनी है; वह जनको बहुत भाती है, पर [वाणीसे] कही नहीं जा सकती। विदेह (जनकजी) आनन्दित होकर कहते हैं—हे नाथ ! मुनिये, सब और जीवकी तरह इनमें स्वाभाविक प्रेम है ॥ २ ॥

मुनि मुनि प्रसुहि चित्त बरनाइ। पुछक नाक सब अधिक ठकाइ ॥

मुनिहि मरसि जाइ पद खीस। चोड कवाइ नगर भवनीइ ॥ ३ ॥

राजा बार-बार मुनिको देखते हैं (इति वहाँसे इतना ही नहीं चाहती)। [प्रेमसे] यारी पुछक हो रहा है और इन्द्रयों क्या उत्साह है। [फिर] मुनिकी प्रशंसा करके और उनके परनोंमें छिर नम्रकर राजा उन्हें नगरमें लिय चले ॥ ३ ॥

सुंदर सवद सुबाद सब कला। तहाँ नम्रु कै रीमद मुखाका ॥

करि पूजा सब भिनि सेवकाई। गपव राव रूख निवा कराई ॥ ४ ॥

एक सुन्दर महल जो सब समय (सभी ऋतुओंमें) सुखदायक था, वहाँ राजाने उन्हें ले जाकर ठहराया। तदनन्तर सब प्रसन्नते पूजा और सेवा करके राजा निदा भौंकर अपने घर गये ॥ ४ ॥

श्री०—रिचय संग रघुवंस मनि करि भोजनु विद्यासु।

बैठे प्रभु आत्त सहित दिवसु रहा मरि आसु ॥ २१७ ॥

रघुकुलके विरोधि प्रभु भीरामचन्द्रजी श्रुतिमोंके साथ जेहन और विद्याम करके भाई लक्ष्मणसमेत बैठे। उस समय पहरम दिन रह गया था ॥ २१७ ॥

श्री०—कहत इदँ जलसा बिलेखी। जाइ जनकपुर आइल देवी ॥

प्रभु मग बहुरि मुनिहि सनुजहाँ। प्रभु न कहहि मरिहि सुनुकाहीं ॥ १ ॥

लक्ष्मणजीके इन्द्रयों विशेष लज्जा है कि जाकर जनकपुर देव गये। परन्तु प्रभु

श्रीरामचन्द्रलीला कर है और फिर मुनिसे भी कह्यो जाते हैं । इतलिये प्रकटमें कुछ नहीं करते; मन-ही-मन मुकता रहे हैं ॥ १ ॥

राम बहुत भव की गति जानी । नखत बछलता हिचै दुलसानी ॥

परम विनीत सङ्गति सुसुझाई । बोले गुर बहुसासन पाई ॥ २ ॥

[भक्त्यागी] श्रीरामचन्द्रजीने छोटे भाईके मतकी दशा जान ली, [तब] उनके हृदयमें भक्तललाटा उमड़ आयी । वे गुरुजी आज्ञा पाकर बहुत ही विनयके साथ कह्यो जाते हुए उनकेपाकर बोले— ॥ २ ॥

साथ लखतु ज्ञान देखन चाहैं । प्रभु सकलेश कर प्रपट न कहैं ॥

जो राह अन्धसु मैं पाई । नगर देखाइ सुख लै कावैं ॥ ३ ॥

हे गुरु ! लखत नगर देखना चाहते हैं, किन्तु प्रभु (गुरु) के डर और संकोचके कारण स्पष्ट नहीं करते । यदि आपकी आज्ञा पाऊँ, तो मैं इनको नगर दिखाकर दूरत ही [वारन] ले आऊँ ॥ ३ ॥

मुनि सुनीसु कह वचन समीक्षा । कस न राम दुग्ध राखतु नीती ॥

धरन सेतु पावत दुग्ध साध । प्रेम विषय सेवक सुखदाता ॥ ४ ॥

यह मुनिकर सुनीकर निष्कामिन्द्रजीने प्रेमसहित वचन कहे— हे राम ! तुम नीतिकी रक्षा कैसे न करोगे ? हे सात ! तुम धर्मकी रक्षापात्र पालन करनेवाले और प्रेमके वशी-भूत होकर सेवकोंकी कुछ देनेवाले हो ॥ ४ ॥

दो०—आइ देखि आवहु नगर सुख निधान बोट भाइ ।

कहा सुफल सब के सयन सुंदर वदन देखाइ ॥ २१८ ॥

सुलभ निधान दोनों भाई आकर नगर देख आओ । अपने सुन्दर मुख दिखा-कर सब [नगर-निवासियों] के मनमें लोभ उत्पन्न करो ॥ २१८ ॥

चौ०—मुनि पद मनक ईद्रि दीड आना । चले कोष कोषन मुख दाटा ॥

बालक पुत्र देखि मति सोभा । लगे संग लोचन भनु होभा ॥ १ ॥

सब देखके देखोको कुछ देनेवाले दोनों भाई मुनिके चरणकमलोंकी वन्दना करते चले । बालकोंके हाँव इन [के लौन्दर्य] की मन्त्रन्त शोभा देखकर लय लग गये । उनके नेत्र और मन [इनकी मधुरीतर] छमा गये ॥ १ ॥

पीत वसन परिकर कटि मासा । बाह बाज सर लोहल हन्सा ॥

कन भ्रुहरत सुवर्धन खीरी । सासक यौर मनोहर खीरी ॥ २ ॥

[दोनों भाइयोंके] पीले रंगके वस्त्र हैं, कमरके [पीठे] दुपट्टोंमें लटकत बँधे हैं । हाथोंमें सुन्दर मृण-वाय कुशेभित हैं । [श्याम और गौर वर्णके] शरीरोंके अनुकूल (सर्पाद निरुक्त विष रंगक) चन्दन अधिक धरे उभरत लवी रंगके] सुन्दर चन्दनकी खौर लगी है । सोंके और गौर [रंग] की मनोहर जोड़ी है ॥ २ ॥

कैहरि कंचर बाहु धिलावा । सर धति रचिर नागमनि मावा ॥

सुभन सोन सरसाल्हा लोचन । वदन मर्कत लपप्रम मोचन ॥ ३ ॥

विद्रुके समान (पुष्ट) गर्दन (बलेका पिछला भाग) है; विशाल भुजाएँ हैं । [चौड़ी] छातीपर अत्यन्त सुन्दर गजमुखाकी नाचा है । सुन्दर लाल कमलके समान नेत्र हैं । सीने पर दोहे सुवर्णकालक चन्द्रमाके समान मुख है ॥ ३ ॥

काननि कनक पूरु छवि देहीं । चितवत चितहि चोरि लखु देखी ॥

चितवनि बाह नृपति बर पाँकी । तिलक रेख सोमा लखु पाँकी ॥ ४ ॥

कावोंमें सोनेके कर्णकुल [अत्यन्त] घोमा दे रहे हैं और देखते ही [देखनेवालेके] चित्तको मानो चुप लेते हैं। उन्मत्ती चित्रक (दृष्टि) बड़ी मनोहर है और मौंह तिछी एवं सुन्दर हैं। [मायेपर] तिलकज्मी रेखाएँ ऐसी सुन्दर हैं मानो [मूर्तिमती] घोमापर मुख लगा दी गयी है ॥ ४ ॥

दो—रुचिर चीतनी सुमग सिर मेचक कुचित केस।

नख सिम सुन्दर धंघु दोड सोमा सकल सुदेस ॥ २१९ ॥

शिरपर सुन्दर चौकोनी येपियाँ [दिवे] हैं। काने और कुंवरके बाळ हैं। दोनों आँहें नखसे लेकर मिलातक (एड़ीसे चौटीतक) सुन्दर हैं और गारी घोमा जहाँ तेरी चाहिये वैसी ही है ॥ २१९ ॥

चौ—देखन कण धूपधुत भाए। समाचन पुरवासिन्ह पाए ॥

पाए धाम काम सब लगी। मनहुँ रंक निधि लखन लगी ॥ १ ॥

जब पुरवासियोंने यह समाचार पाया कि दोनों राजकुमार नगर देखनेके लिये आये हैं, तब वे सब घर-बार और सब काम-काज छोड़कर ऐसे चौंके मानो दरिद्री [धनका] खजाना खूटने लगे हैं ॥ १ ॥

निरनि सख सुंदर होव आई। होई सुखी कोचन फल पाई ॥

लुचली भवन सुतेखनिह लगी। निरखहि सम कम भवुरानी ॥ २ ॥

समावृत्तिसे सुन्दर दोनों भाइयोंको देखकर वे ज्येन नेत्रोंका कल पाकर सुखी हो रहे हैं। सुखी किर्याँ परके सरोवोंसे लगी हुई प्रेमसहित धीरमन्दब्रीके रूपको देख रही हैं ॥ २ ॥

कहि परसपर बचन समीची। सखि इन्ह कोटि काम इति जौती ॥

सुर नर भञ्जुर गग मुनि माई। सोभ अंसि कहुँ मुनिजति माई ॥ ३ ॥

वे आपसमें मदे प्रेमी भातें कर रही हैं—हे सखी! इन्होंने करोड़ों कामदेवोंकी सचिको बीत लिया है। देवता, मनुष्य, असुर, नाग और मुनियोंमें ऐसी घोमा तो कहीं सुननेमें भी नहीं आती ॥ ३ ॥

विष्णु कारि मुस निजि मुस कसी। विष्ट केव मुस पंच पुरानी ॥

अपर दैठ भल जोड न भाई। यदु कवि सखी पलरिज जाई ॥ ४ ॥

भगवान् विष्णुके चार मुजार्दे हैं, जहाँवाँके चार मुख हैं, धिक्कीका विष्ट (मयानक) वेव है और उनके पाँच मुँह हैं। हे सखी! वृत्तर देवता भी कोई ऐसा नहीं है जिसके साथ इस छविनी उपमा दी मान ॥ ४ ॥

दो—यय किसोर सुषमा सदन स्वाम गौर सुख धाम।

अंग अंग पर चारिअहि कोटि कोटि सत काम ॥ २२० ॥

इनकी किशोर अवस्था है, वे सुन्दरताके फल, सँकने और गौर रंगके तथा मुखके धाम हैं। इनके अङ्ग-अङ्गपर करोड़ों-अरबों कामदेवोंको निहाकर कर ऐसा चाहिये ॥ २२० ॥

चौ—कहनु सखी अस को सनुकरी। जो न मोह यह रूप निहारी ॥

कोड समैस कोले भुहु कवी। जो नै मुस सी भुवहु लवानी ॥ १ ॥

हे सखी! [मंज] कबो तो ऐसा कौन शरीरपारी होया जो इस रूपको देखकर मोहित न हो जाय (अर्थात् यह रूप सब-चेष्टनसम्बन्ध मोहित करनेवाला है)। [तब] कोई दूसरी सखी प्रेमसहित कोमल चर्चासे बोली, हे लवानी! मैंने जो सुना है उसे सुनो— ॥ १ ॥

ए दोड एतरण के होठ। कल सखनिह के कल मोवा ॥

मुनि कौसिक मल के रसवारे। निह रन अजिह मिलावर मारे ॥ २ ॥

ये दोनों [रावकुमार] महागज दशरथजीके पुत्र हैं। बाल रावहर्षका-सा सुन्दर जोड़ा है। ये मुनि विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करनेवाके हैं। इन्होंने युद्धके मैदानमें राक्षसोंको मारा है ॥ २ ॥

साम सप्त त्रय बंध बिलोचन। जो गरीब सुमुख मनु मोचन ॥

कौस्तुभ सुत सो मुख खानी। नाम पशु चतु सारक पानी ॥ ३ ॥

जिनका दफन खरीर और सुन्दर कमल-जैसे नेत्र हैं, जो गरीब और सुबाहुके मदको दूर करनेवाले और सुलकी खान हैं और जो हाथमें चतुष-बाण छिपे हुए हैं वे औपत्याजीके पुत्र हैं। इनका नाम राम है ॥ ३ ॥

गौर कितोर बंधु कर काँछे। कर सर चाप राम के पाँछे ॥

छठिमनु नाम राम लघु जन्मा। सुनु सखि राम मुमिमा माता ॥ ४ ॥

जिनका रंग गौर और कितोर अक्ला है और जो सुन्दर चेह बनाये और हाथमें चतुष-बाण छिपे भीरुमकी पीछे-पीछे चले रहे हैं; वे इनके छोटे भाई हैं। उनका नाम छठम है। हे सखी! तुमने उनकी माता मुमिमा है ॥ ४ ॥

दो०—विप्रकाशु करि बंधु दोठ मग मुनि बधू उधारि।

अथ देखन आपमल सुनि हरषी सब कारि ॥ २२१ ॥

दोनों भाई ब्राह्मण विश्वामित्रका काम करके और राक्षसों मुनि गौतमकी श्री अश्वत्थामा उद्धार करके यहाँ चतुष-बाण देखने आये हैं। यह सुनकर सब खिन्न प्रसन्न हुए ॥ २२१ ॥

बौ०—बेकि राम छवि कोठ एक कइ। जोपु जानकिहि यह बर बइह ॥

बी सखि इन्हि देख नमहा। पग परिहरी दडि करइ बिबाह ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी छवि देखकर कोई एक (दूम्री सखी) कहने लगी—यह बर जानकीके योग्य है। हे सखी! यदि यही रामा इन्हें देख ले, तो प्रतीति छोड़कर ब्रह्म-पूर्यक इन्हें विवाह कर देगा ॥ १ ॥

कोठ कह प भूपति बहिचाने। मुनि समेत लखर सवमाने ॥

सखि परशु पशु राव न लखई। विधि बस छि सखिबेसहि जगई ॥ २ ॥

किछीने कहा—राजाने इन्हें पहचान लिया है और मुनिके सहित इनका आदरपूर्वक सम्मान किया है। परन्तु हे सखी! राजा अपना प्रथ नहीं छोड़वा। यह होनहारके बनीमृत होकर ब्रह्मपूर्यक कविवेदका ही अग्रधर्म छिपे हुए है (यगन्तर अके रहनेकी मूर्खता नहीं छोड़ता) ॥ २ ॥

कोठ कह बी गल अइ बिबाह। सब कहँ मुनिम उचित फलदाता ॥

तौ जानकिहि मिनिहि पग पइ। नाहिन भाकि परी सरेह ॥ ३ ॥

कोई कहती है—यदि निषादा भले हैं और उनका माया है कि वे सबको उचित फल देते हैं, तो जानकीजीको यही बर मिलेगा। हे सखी! इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३ ॥

जौ मिनि बस भस बी सँयोग। तौ कलकल होइ सब लोग ॥

सखि हमरें जगति नति लखै। कलकल प जावहि एहि गति ॥ ४ ॥

जो दैवयोगसे ऐसा संयोग बन जाव, तो व्यवसय भोग कृतार्थ हो जायें। हे सखी! मेरे तो इसीसे इतनी नाविक आतुरता हो रही है कि यही गति कभी-बे यहाँ आवेगी ॥ ४ ॥

दो०—नहिं त हम कहँ सुनहु सखि इन्ह कर दरसनु करि।

यह संघट्ट सब होइ अब पुन्य पुण्डित गुरि ॥ २२२ ॥

नहीं तो (विवाह न हुआ तो) है सखी ! सुनो- हमको इनके दर्शन दुर्लभ हैं ।
यह संयोग हमी हो सकता है जब हमारे पूर्वजन्मोंके बहुत पुण्य हों ॥ २२२ ॥

चौ०-बोली जगत् कहैहु सखि नीला । एहि विवाह अति हित सबही का ॥

छोट कह संकर चप कलेस । ए कथकल सुदुग्धत किछोरा ॥ १ ॥

दूसरीने कहा—है सखी ! हमने बहुत धच्छा कइ । इस विवाहसे, सभीका परम
हित है । किसीने कहा—शुभ्रजीव पशुप कठोर है और ये छँवले राजकुमार कोमल
शरीरके बालक हैं ॥ १ ॥

सबु अममंजल कहइ सयागो । यह सुनि जगत् कहइ भुवानी ॥

सखि हन्ह कोईकोट कोट अस कहहीं । यह प्रभाव देखत लघु बाहीं ॥ २ ॥

है सयानी । सब अममंजल ही है । यह सुनकर दूसरी सखी कोमल वाणीसे कहने
लगी—है सखी ! इनके सम्बन्धमें कोई-कोई ऐसा कहते हैं कि ये देखनेमें लो छोटे हैं,
पर इनका प्रभाव बहुत बड़ा है ॥ २ ॥

परसि जसु पर रंजक घरी । ली कहकस कुप जब मूरी ॥

सो कि रहिहि बिनु सिनबसु सोरें । यह प्रतीति परिहरिअ न भोरें ॥ ३ ॥

जिनके चरणरुमलौधी भूषिकर सखी पाकर जइल्ला तर भवी, जिनने बड़ा भारी
पाप धिना या, वे क्या सिनबीका पशुप बिना सोहे रहेंगे । इस विवाहको भूलकर भी
नहीं छोड़ना चाहिये ॥ ३ ॥

जेहि बिरंभि एहि सीय सँवारी । जेहि जगमल बर रवेज बिचारी ॥

साहु बचन सुनि सब हरषानी । देखे होइ कहहि सहु कारी ॥ ४ ॥

जिस ब्रह्माने शीतलो सँवारकर (कही चतुराईसे) रखा है, लीने बिचारकर
सौंका बर भी रच रहला है । उनके ये बचन सुनकर सब हर्षित हुई और कोमल वाणीसे
कहने लगी—ऐसा ही हो ॥ ४ ॥

दो०-द्विर्ष हरषहि बरषहि सुमन सुमुखि सुलोचनि वृंद ।

जाहि अहाँ जई संजु दोउ तहैं तहैं परमानंद ॥ २२३ ॥

सुन्दर मुख और सुन्दर नेत्रोंवाली शिवाँ सगु-की-सगु हरषमें हर्षित होकर कूल
परचा रही हैं । जहाँ-जहाँ दोनों भाई जाते हैं, वहाँ-वहाँ परम आनन्द का जात है ॥ २२३ ॥

चौ०-पुर पुरव दिशि गे होइ भई । बई पशुपक हित मुनि बवाई ॥

अति विद्याल जगत् सब डारी । निमल केदिक छरि सँवारी ॥ १ ॥

दोनों भाई नगरके पूरव ओर गये, जहाँ पशुपकके लिये [रंग] भूमि बनायी
गयी थी । बहुत लंबा-चौड़ा सुन्दर वाज्य हुआ पक्षा आँपन था; जिसपर सुन्दर और
निर्मल वेदी स्थायी गयी थी ॥ १ ॥

बहु दिशि कंचल मंच विस्तार । रवे जहाँ बैठीं मदिराज ॥

तेहि पाछे समीप जहुँ पला । जगत् मंच मँवली निमला ॥ २ ॥

चारों ओर सोनेके बड़े-बड़े मंच बने थे, जिसपर राजा जोग बैठेंगे । उनके पीछे
समीप ही चारों ओर बूरे मन्त्रालोका मन्त्रालयके भेरा सुशोभित था ॥ २ ॥

ककुल जँचि सब मीति सुहाई । बैठीं जगत् जोग जई ताई ॥

हिन्द के निकट निवास-सुहाए । फनल पाग जगत्जन बनाए ॥ ३ ॥

यह कुल जँचा था और सब यज्ञस्थले सुन्दर था, जहाँ जगत् नगरके जोग बैठेंगे ।
उत्तरीके प्राय विद्याल एवं सुन्दर लोभ मन्त्राल जनेक रंगोंके बनये गये हैं ॥ ३ ॥

सहै ॥ देखाई सय वादी । क्यसोतु निज कुल मनुहारी ॥
 पुर बाळक कहि कहि सुनु बचन । सागर प्रसुहि देखीकहि रचना ॥ ४ ॥
 जहाँ अपने-अपने कुलके अनुसर छव सिखैं यथायेव (निजको जहाँ बैठना उचित है)
 बैठकर देखैगी । नगरके बाळक कोमल बचन कह-कहकर आनखपूर्वक प्रभु श्रीरामचन्द्र-
 जीको [चक्काछकी] रचना दिखत रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—सय सिद्ध यहि मित्र प्रेमबन्ध परसि मनोहर बात ।

तन पुलकाहि अति हृदयु छियैं देखि देखि दोष भ्रात ॥ २२४ ॥
 सब बाळक इसी वहाने प्रेमके बन्ध होकर श्रीरामजीके मनोहर कर्णोंको
 झुंझर गरीरसे पुलकित हो रहे हैं और दोनों माहोंको देख-देखकर उनके हृदयमें
 अत्यन्त हर्ष हो रहा है ॥ २२४ ॥

चौ०—सिद्ध सय राम प्रेमबन्ध काने । प्रीति समेत निरन्तर बचाने ॥

मित्र मित्र रुचि सय केहि बोलत । समित सखे जाहि दोष भाई ॥ १ ॥
 श्रीरामचन्द्रजीने सब बाळकोंको प्रेमके बन्ध जानकर [यशभूमिके] छात्रोंकी
 प्रेमपूर्वक प्रशंसा की । [हृष्टे बाळकोंका उत्साह, आनन्द और प्रेम और भी बढ़
 गया, जिससे] वे सब अपनी-अपनी रुचिके अनुसर उन्हें बुझा लेते हैं और
 [प्रत्येकके सुखानेपर] दोनों भाई प्रेमछहित उनके पास चले जाते हैं ॥ १ ॥

राम देखावै अनुबहि रचना । कहि कहि सगुर मनोहर बचन ॥

कह निवेद्य भूँ मुयन निबाना । रचत बाहु मनुसासन माया ॥ २ ॥
 कोमल, मधुर और मनोहर बचन कहकर श्रीरामजी अपने छोटे भाई छम्पकको
 [यशभूमिकी] रचना दिखलाते हैं । किमकी आज्ञा पाकर माया रूप निवेद्य (पक्ष
 गिरानेके चौपाई लगाने) में गङ्गापर्वतके समूह रूप बाळती है, ॥ २ ॥

भगति हेतु सोइ दीनदयाल । निरन्तर चरित धनुष मखलाका ॥

कौतुक देखि बने गुन पाहीं । लागि विरहनु त्रास सय माहीं ॥ १ ॥
 यही दीनोपर दया करनेवाले श्रीरामजी भक्तिके कारण धनुषयन्त्रालाकी चकित
 होकर (आश्चर्यके साथ) देख रहे हैं । इस प्रकार सब कौतुक (चिचिच रचना) देख-
 कर वे गुनके पास चले । देर हुई जानकर उनके मनमें डर है ॥ १ ॥

बाहु बल हर कहुँ डर होई । भयन प्रसन्न देखत सौई ॥

यहि राखें मनु मधुर सुहाई । किए किए बाळक बरिजाई ॥ ४ ॥
 निजके भयसे इस्को भी डर लगता है, वही प्रभु मन्मन्त्र प्रभाव [जिसके कारण ऐसे
 महात्मा प्रभु भी भयका नाश करते हैं] दिखत रहे हैं । उन्होंने कोमल, मधुर और
 सुन्दर पाठ कहकर बालकोंसे ज्वरदस्ती निदा किया ॥ ४ ॥

दो०—समय समेत विनीत अति सङ्कुच सखित दोष माह ।

सुर एत पैकज ताह सिर बिँटि आयसु पाह ॥ २२५ ॥
 फिर भय, प्रेम, विनय और क्लेश संश्लेषके साथ दोनों भाई गुनके चरणकमलोंमें
 सिर नवाकर, आज्ञा पाकर बैठे ॥ २२५ ॥

चौ०—निजि प्रवेद्य मुनि आयसु दीनका । सवाही संन्यासद्वेषु धीनका ॥

कहत कथा इतिहास भुरानी । कथित बचन सय ज्ञान सिरानी ॥ १ ॥
 रात्रिका प्रवेद्य होते ही (छम्पकके सम्य) मुनिने आज्ञा दी, तब अपने संन्यासवन्दन
 किया । फिर प्राचीन कथाएँ तथा इतिहास कहते-कहते सुन्दर रात्रि दोपहर बीत गयी ॥ १ ॥

मुनिवर समय कीन्हि सब जाई । लगे जस चाकन होठ भाई ॥
 सिन्द के चरन सरोवर कानी । कस बिबिध लव जोग विरागी ॥ २ ॥
 सब श्रेष्ठ मुनिने लकर कवन किया । दोनों भाई उनके चरण दहाने छे ।
 चिनै परणकमलोंके [दर्शन एवं स्पर्शके] वैराग्यवान् भुस्र भी भौंति-भौतिके
 भर और योग करते हैं ॥ २ ॥

वेद होठ बंधु प्रेम जनु जीति । सुर पद कमल पल्लवत प्रीति ॥
 बार बार मुनि कन्या कीन्ही । रज्जुवर लब्ध समर सब कीन्ही ॥ ३ ॥
 वे ही दोनों भाई माने प्रेम्मे जीति हुए प्रेमपूर्वक गुहरीके चरणकमलोंको दबा रहे
 हैं । मुनिने बार-बार आशा दी, सब भीखुनायजीने जाकर कवन किया ॥ ३ ॥
 चापत चरण कलशु भर झरई । सधम सधेम परम सनु पाई ॥
 मुनि मुनि प्रभु लख सोबहु लख । बौंदे बरि डर पद कळ जाता ॥ ४ ॥
 भीरामजीके चरणोंको छुदयते लवाकर भय और प्रेमसहित परम मुसका अनुभव
 करते हुए कसनगी उनको दबा रहे हैं । प्रभु भीरामचरणजीने बार-बार कहा—
 हे सात ! [भय] सो जाओ । तब वे उन चरणकमलोंको छुदवते करके लेट रहे ॥ ४ ॥

दो०—उठे कलशु भित्ति बिपत मुनि असमस्तिका धुनि काम ।
 सुर हैं पहिलेहि अमलपति आने रामु सुजान ॥ २२६ ॥
 रात बीतनेपर, सुनैका शब्द कानोंसे सुनकर कसनगी लगे । जगत्के स्वामी
 भुजान भीरामचरणजी भी सुरसे पहले ही जाग सके ॥ २२६ ॥

चौ०—लख लख हीन बरि लाह नहाए । फिर बिबाहि मुनिहि फिर नाए ॥
 समथ कानि लल भवसु पाई । केन प्रभु लखे दोह भाई ॥ १ ॥
 सब शौचक्रिया करके वे जाकर नहये । फिर [सन्तान-अग्निहोत्रादि] निरूपण
 समाप्त करके उन्होंने मुनिको मस्तक नवाया । [पूजाका] समय आनकर, सुरकी जाड़ा
 पाकर दोनों भाई फूल छेने लगे ॥ १ ॥

भूष बागु भर देखै जाई । जहाँ बसंत रितु रही सोभाई ॥
 लंगे पिढय मगधेर लका । बरब बरब कर केहि लितका ॥ २ ॥
 उन्होंने जाकर राजाका सुन्दर बाग देखा जहाँ पवन श्रुत सुभाकर रह गयी ॥ १ ॥
 मनको छुभानेवाले अनेक वृक्ष लगे हैं । रंग-विरंगी उत्तम कलाओंके मण्डप छाने हुए हैं ॥ २ ॥
 लव पल्लव लल सुमन सुहाव । निज संवति सुर कल छजाए ॥
 आलक कोमल बरि जनेरा । कृष्ण विद्या जल कळ मोरा ॥ ३ ॥
 नये पत्तों, फलों और फूलोंसे युक्त सुन्दर वृक्ष अपनी सभ्यचित्ते कल्पवृक्षकी भी
 सजा रहे हैं । पपीहि, कोकल, लौहे, चकोर आदि पक्षी यीठी बोली बोल रहे हैं और
 मोर सुन्दर दल कर रहे हैं ॥ ३ ॥

मम बाग सब स्नेह सुहाव । मनि सोलस विविध बनवा ॥
 विमल सलिल सरस्वि नहरंग । कसलन कलक गुंजत सुंग ॥ ४ ॥
 बागके बीचोबीच सुहावना खोहर झरोमि है, जिसमें मणिपौषी सीढ़ियाँ विविध
 रंगसे बनी हैं । उसका गल निर्मल है, जिसमें अनेक रंगोंके कमल खिले हुए हैं, जलके
 पक्षी काश्य बर रहे हैं और झग झग कर रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—बागु लखलु बिलोकि प्रभु हरने बंधु समेत ।
 परम परम जागसु बहु जो रामहि सुख देत ॥ २२७ ॥

बाग और सरोवरको देखकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी भाई छद्मणसहित हर्षित हुए । यह बाग [वास्तवमें] परम रमणीय है, जो [जयको सुख देनेवाले] श्रीरामचन्द्रजीको सुख दे रहा है । ॥ २२७ ॥

चौ०—जहाँ दिसि चितइ दृष्टि भाळीयन । छरो लेव बंक भूत मुदित मन ॥

तेहि अवसर सीता आई । गिरिजा पूर्वव जननि पढ़ाई ॥ १ ॥

चारों ओर दृष्टि डालकर और मात्स्योत्तरे पूछकर वे प्रसन्न मनसे पत्र-पुष्प लेने लगे । उही समय सीताजी यहाँ आयीं । माताने उन्हें गिरिजा (पार्वती) जीकी पूजा करनेके लिये मेवरा था ॥ १ ॥

संग सखीं सब सुभग सखीं । गार्हि गीत मनोहर गानां ॥

हर समीप गिरिजा रुद्र सोदा । बरनि न जाइ देखि मनु मोहा ॥ २ ॥

साथसे सब सुन्दरी और स्यानी सखियाँ हैं, जो मनोहर धापीके गीत गा रही हैं । सरोवरके पास गिरिजाजीका मन्दिर सुशोभित है, जिसका दर्शन नहीं किया जा सकता; देखकर मन मोहित हो जाता है ॥ २ ॥

मगजु करि सर सजिन्ह समेता । गई मुदित मन गौरि निकेता ॥

पूजा सोनिह अधिक भवुलगा । मित्र बहुकर सुनय बच मारा ॥ ३ ॥

सखियोंसहित सरोवरमें स्नान करके सीताजी प्रसन्न मनसे गिरिजाजीके मन्दिरमें गयीं । उन्होंने बड़े प्रेम्मे पूजा की और अपने योग्य सुन्दर वस्त्र माँगा ॥ ३ ॥

एक सखी सिय संगु विहाई । गई रही देवन कुलवाही ॥

तेहि होत भंगु किनोके जाई । प्रेम बिबस सीता बहि आई ॥ ४ ॥

एक सखी सीताजीका साथ छोड़कर कुलवाही देखने चली गयी थी । उसने जाकर दोनों भाइयोंको देखा और प्रेम्मे झिल होकर वह सीताजीके पास आयी ॥ ४ ॥

रो०—तासु दसा देखी सजिन्ह पुरक पात जलु वैग ।

फहु कवरनु मित्र हरन सर पूछहि सब सुदु बैन ॥ २२८ ॥

सखियोंने उसकी दशा देखी कि उनका अंगिर पुष्कित है और नेत्रोंमें जल भरा है । एवं कोमल धापीके पूछने लगीं कि अपनी प्रसन्नताका कारण बता ॥ २२८ ॥

चौ०—देखत बागु कुँवर दुइ अपर । जब किसीर सब भोति मुहाव ॥

सास गौर सिमि कहीं बसानी । गिरा अवसर सब बिभु बानी ॥ १ ॥

[उसने कहा—] दो राजकुमार साथ देखने आये हैं । किन्तु अवस्थाके हैं और सब प्रकाशते सुन्दर हैं । वे सँवले और चोरे [रंगके] हैं; उनके सौन्दर्यको मैं कैसे बखानकर जाऊँ । वाणी किना नेत्रकी है और नेत्रोंके धापी नहीं है ॥ १ ॥

सुनि हर्षः सब सखीं स्यानी । सिय द्विज्य अति उत्कण्ठ गानी ॥

एक पदइ सुसुख छेह पकरी । सुने वे सुनि सँग जाय काडी ॥ २ ॥

यह सुनकर और सीताजीके हृदयमें बड़ी उत्कण्ठा जागकर सब स्यानी सखियाँ प्रसन्न हुईं । तब एक सखी कहने लगी—हे सखी ! वे कही राजकुमार हैं जो मुना है कि कन विधामिन मुनिके साथ आये हैं, ॥ २ ॥

सिन्ह मित्र रूप मोहवी बारी । कीन्हे खबख कार वर पारी ॥

बरगत जय आई गई सब सोपू । अवधि देखिगई देवन सोपू ॥ ३ ॥

और जिन्होंने अपने स्वामी मोहिनी डालकर नगरके ली-पुस्तोंसे अपने कर्मों

कर लिया है। जहाँ-तहाँ सब लोग उन्हींकी छत्रिका वर्णन कर रहे हैं। अथवा [चलकर] उन्हें देखना चाहिये, वे देखने ही योग्य हैं ॥ ३ ॥

ताम्र वचन अति सिद्धि सोहाने। दस छत्रि कोचन नकुलाने ॥

चलो अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरस्स कछद न कोई ॥ ४ ॥

उसके वचन सीताजीको अत्यन्त ही प्रिय लगे और दर्शनके लिये उनके नेत्र भकुल उठे। उठी चारी सखीको आगे करके सीताजी चलीं। पुरानी प्रीतिको कोई छत्र नहीं पाता ॥ ४ ॥

दो—सुमिरि सीय नारद वचन उपजी प्रीति पुनीत।

वकित थिलोकति सफल दिसि बहु सिद्ध सुगी समीत ॥ २२९ ॥

नारदजीके वचनोंका स्मरण करके सीताजीके मनमें पवित्र प्रीति उत्पन्न हुई। वे वकित होकर सब ओर इत तरह देख रही हैं मानो कहीं हुई मृगछाँनी इधर-उधर देख रही हो ॥ २२९ ॥

चौ—कंकन किंकिसि चूपुर पुनि सुनि। कद्वर कलम सन रामु छुदरै गुनि ॥

मानहुँ मदन मुहुनी हीन्दी। मनसा किल विषय कहँ कीन्दी ॥ १ ॥

कंकन (हाथोंके कड़े), कद्वरी और पायकेवके कद्वर सुनकर श्रीरामचन्द्रजी हृदयमें विचारकर लक्ष्मणसे कहते हैं—[यह स्थिति ऐसी आ रही है] मानो कामदेवने विश्वको प्रीतनेका संकल्प करके उभेपर थोट मारी है ॥ १ ॥

भल कहि पिरि पितर तेहि जोरा। सिव सुख सखि भूषणन चकोरा ॥

भयु विछोचन नारद अवकल। ननु सखि निमि सजे दिगंचल ॥ २ ॥

ऐसा कहकर श्रीरामजीने फिरकर उस ओर देखा। श्रीसीताजीके मुखकामी चन्द्रमा [को निहारने] के लिये उनके नेत्र चकोर बन गये। सुन्दर नेत्र स्थिर हो गये (कद्वरी लग गयी)। मानो निमि (कद्वरीके पूर्वज) ने [चिनफा] सखी पल्लवोंमें निषाध माना गया है; कद्वरी-दाम्पत्यके मित्र-प्रसन्नको देखना उचित नहीं, इस भावसे [सकुचाकर पलकें छोड़ दीं, (कद्वरीमें रहना छोड़ दिया, किन्तु पलकोंका गिरना रुक गया)] ॥ २ ॥

देखि सीय सोभा सुख पावा। इहैं सरहात पचुं न जावा ॥

बहु विरंचि संव निम निगुवाहँ। विरंचि किल कहँ प्रगदि-वेसाहँ ॥ ३ ॥

सीताजीकी शोभा देखकर श्रीरामजीने क्या सुख पाया। हृदयमें वे उसकी सराहना करते हैं, किन्तु सुखसे कचन नहीं निकल्ये। [यह शोभा ऐसी अनुपम है] मानो ब्रह्माने अपनी धारी निपुणताको मूर्तिमान् कर संसारको प्रकट करके दिया दिया हो ॥ ३ ॥

सुंदरता कहँ सुंदर कहँ। जचिगुहँ दीपसिखा जनु करहँ ॥

सब उपमा कवि रहे सुमरी। केहि पट्यरौ बिदेहुमारी ॥ ४ ॥

यह (सीताजीकी शोभा) सुन्दरताको भी सुन्दर करनेवाली है। [यह ऐसी मादम होती है] मानो सुन्दरताकामी घरमें दीपककी ज्ये लल रही हो। (अथवा सुन्दरताकामी भवगर्भमें सँभरा था, वह भवन मानो सीताजीकी सुन्दरताकामी दीपसिखा-को पाकर जगमगा उठा है, पहलेसे भी अधिक सुन्दर हो गया है।) सारी उपमाओंको तो कविवोंने झूठा कर रखा है। मैं जन्मनन्दिनी श्रीसीताजीकी किण्वे उपमा हूँ ॥ ४ ॥

बो-सिख सोमा दिवैं बरनि प्रभु आवनि दस निवारि ।

॥ २१० ॥

[१० मार्ग] इसका विवरण नीचे दी गई तालिका में दिया गया है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

हो तो प्रश्नको तब ही मान्य है। न प्रश्नको प्रमाण कदा ही फिर नहीं है।

आर्य विवेकि सार्वभौमिक बोध : स्वयं दुर्गम भवतु शोभा ।

ये सङ्ग काले काले निवृत्ता । जगति मुमुक्षुणा । जगत् ।

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

है। तब उस व्यक्ति (अथवा वस्तु का प्रभाव) को निम्नता धर्मों। निम्न है धर्म।

प्रश्न 10. निम्नलिखित में से एक (1) वाक्य लिखिए।
प्रश्न 11. निम्नलिखित में से एक (1) वाक्य लिखिए।

कृष्णार्जुन का भव्य युद्ध। महाभारत युद्ध का १० भाग।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

शुद्धिहीन जल (अमृत) लयान है कि उनका मन नहीं शुद्ध हो
 पाता है। जो वे अपने अमृत भक्षण से निवृत्त हैं कि लोको [आपदा]
 को जो वे अपने ही अमृत को ही नहीं देखते ॥ ६ ॥

विष्णु के जन्म व विष्णु एक ही हैं : यदि सही शक्ति प्रदायी है

कोन कहे र किहू नै कही । ते खल गौ का कहीं ॥ ४३ ॥

सर्वोत्तम विद्यापीठ म्हणजे (अर्थ) कोणत्याही विद्यापीठात

मौ), एउटा किलो मिने मा कोर ठाउँमा यही बाँच यहाँ कोर पिछाटी फिर्ता यही
यही कोर यही (एउटा कोर कोर) एउटा कोर कोर यही कोर ॥ १४ ॥

ऐ—क्या भगवती बहुत लज्जा कर दिव कर होनाम ।

सुख सयोग मकरंद सवि फल मधुप नमः पान ॥ १२१ ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

उत्तमः कृतार्थः यज्जने जलस्य गन्तव्ये गौरीयं तस्य वीर्यम् ॥ २५१ ॥

सौ—मिलनी कीज यहू दिगि लोक । सर्व घर दूर किरीर मनु पिता ॥

कॉपिलेड बाय सायन्स पेरी। सन्तुष्टीपत्रित कानून रिटि केने: ॥ ३३

कैलाश जीत लेना नहीं तोर देव भी हैं। का हू पावनी किया घर का

[illegible]

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

इति सप्तोऽंशः । हारो वाहू भिन्न निद्रि गदिधाने ॥ ५ ॥

एक वर्ष की अवधि में जो वे कुम्हार बनाए और पौर कुम्हारों को दिए। उनके कुम्हारों ने उनसे बहुत सारे नए नए कलाकृतियाँ बनाईं। उन्होंने अपने कलाकृतियों को भी (१५)

को राम लुखी छि ऐँ ॥ एउटाछि पछि ॥ जिने ॥

अधिक कर्मों को भी छोड़ें। काम छोड़ें। नए पिछले पड़ोसी में न।

श्रीरुचायकी छवि देखकर नेत्र रञ्जित (निखल) हो गये । पत्नीने भी गिरता छोड़ दिया । अधिक रोहके कारण शरीर निहल (नेत्रशून्य) हो गया । मानो शरद् ऋतुके चन्द्रमाको चकोरी [वैकुण्ठ हुई] देख रही हो ॥ ३ ॥

छोपन सब रागहि घर आनी । दौढ़े बलक बगल सवाली ॥

जब सिय सखिन्ह प्रेमकस जनी । बहि वसहि कहु भन सकुचानी ॥ ४ ॥

नेत्रोंके रासो श्रीरामबीचो हृदयमें छलर चतुरधितोगि जानकीनीने पलकोंके किपाड़ लगा दिये (अर्थात् नेत्र सूँदकर उनका ध्यान करने लगीं) । जब सखियोंने सीताजीको प्रेमके बरा जाना, तब वे मर्माें सकुचा गयीं; कुछ कह नहीं सकती थीं ॥ ४ ॥

दो०—लतामवन तैं अगद से तेहि अक्सर दोउ माह ।

निकसे जनु जुय विमल बिभु जसद पदल बिलगाइ ॥ २३२ ॥

उही समय दोनों माई अत्यमण्य (कुछ) मेंसे अकट हुए । मानो दो निर्मल चन्द्रमा बादलोंके परोंको हटाकर निकले हों ॥ २३२ ॥

चौ०—सोभा सीखैं सुजग होउ सेवा । पीठ पीठ अलगाव शरीर ॥

सौरपण छि रीहव नीके । सुक बीच बिच सुमुख कही के ॥ १ ॥

दोनों सुन्दर भाई सोयफी सीख हैं । उनके शरीरमें आत्मा नीके और पीठे कमकी-सी है । सिपर सुन्दर मोरपण सुबोभित हैं । उनके बीच-बीचमें फूलोंकी किरणोंके गुच्छे लगे हैं ॥ १ ॥

भाळ तिलक अमण्डि सुहाव । जवन सुजग भूषण छवि छाप ॥

बिहद भुङ्गति कस वृषावरे । नव सरोव जेखन रतनारे ॥ २ ॥

साधेपर तिलक और ज्वीनेकी बूँदें शोभायमान हैं । कानोंमें सुन्दर भूषणोंकी छवि छानी है । देखी सीखें और सुँघाते बाल हैं । नये छल कमलके समान रतनारे (काल) रंग हैं ॥ २ ॥

बाह चिबुक वासिन्ना फयोन्न । हास बिहस केउ सजु मोला ॥

मुक छवि बहि व बाह मोहि पाहीं । जो किलेकि यह कस कहाई ॥ ३ ॥

ठोड़ी, नाक और गाल कड़े सुन्दर हैं, और हैंसीकी शोभा मनको मोह छिने लेती है । मुककी छवि तो मुकते कहीं ही नहीं जाती, जिसे देखकर यहूद-से कामदेव लज्ज बगते हैं ॥ ३ ॥

उर भवि नाळ कहु कळ सीका । कम ककम कर भुज बळसीका ॥

सुभग समेठ कम कर दीना । सर्वैर कुँवर सबी मुनि होना ॥ ४ ॥

बद्धःकलपर मलियोंकी भासा है । कल्लके अथा सुन्दर सब है । कामदेवके हाथके बण्डेकी छँदके समान (उत्तर-वदनाली एवं प्रेमल) सुचार हैं, जो बलकी सीमा हैं । जिसके पायें छपमें फूलोंलहित दोना है, हे सखी ! वह शोक्व कुँवर तो बहुत ही सजेना है ॥ ४ ॥

दो०—केहरि कटि पट पीठ पर सुभगा सौठ निधान ।

देखि मानुकुलभूषाहि बिसरा सखिन्ह अपान ॥ २३३ ॥

सिन्धी-सी (पतली, लचीली) कमरवाले, पीठामर आरम भिने हुए, शोभा और शील्के भण्डार, सूँघकुल्लके गूँथ श्रीरामधनजीको देखकर सखियाँ अपने आपको सूँघ गयीं ॥ २३३ ॥

चौ०—बदि श्रीरुद्र एक लालि सकवी । सीत सच मोली बदि कवी ॥

बहुरि नीरि कर आग जेहू । सुखिलेह, देखि भिन लेहू ॥ १ ॥

एक चतुर लखी वीरन करकर, हाथ फन्दकर सीताजीके मोली—गिरिवाशीका अलन फिर कर लेना, इस समय राजकुमारकी नहीं नहीं देख लेती ॥ १ ॥

- सकृत्पि सीर्ये तव नवन धरि । सवसुख दोढ रसुविध निहारे ॥
 वल सिक देखि राम है सोख । सुमिरि निता पनु मनु भति जोभा ॥ २ ॥
 तव सीताजीने सकुचाकर नेव खोले और खुकुलके दोनों धिँहोंको अपने यामने
 [लड़े] देखा । नखवे शिमातक श्रीरामजीकी सोभा देखकर और फिर पिताका प्रण
 वाद करके उनका मन बहुत खुश हो गया ॥ २ ॥
- परबत सन्निह कलै जान सीता । मरत नख सब कइहि समीता ॥
 पुनि आनख पति देखिबो काली । नख कइ मन विहसो एक काली ॥ ३ ॥
 तब लक्ष्मणोंने सीताजीको परवत (प्रेमके कण) देखा, तब सब भवभीत होकर
 करने छाँ—वही देर हो गयी [मन चक्का चाहिये] । कल इसी समय फिर आवेंगी,
 देवा करके एक ज्यो मनाये हैं ॥ ३ ॥
- गूढ़ गिरा सुनि सिध सकुचावो । मरत विहसु माहु भव मावी ॥
 हरि कइ और राखु डर जाने । छिरी जगपथ विहसल जाने ॥ ४ ॥
 सखीकी यह रहस्यमयी बात सुनकर सीताजी सकुचा गयीं । देर हो गयी जान
 उन्हें माताका भव क्या । बहुत घोरत भरकर वे श्रीरामचन्द्रजीको हृदयमें के भरी,
 और [उनका ध्यान करती हुई] अपनेको दिखाके अपनी जानकर लौट आईं ॥ ४ ॥
 दो—देखन मिलि सुग बिहग तव फिरइ बहोरि बहोरि ।
 विरहि निरहि रघुवीर छवि वादूर प्रीति न थोरि ॥ २३४ ॥
 मूढा, पत्नी और सुखोकी देखनेके लिये सीताजी बार-बार घूम जाती हैं और
 श्रीरामजीकी छवि देख-देखकर उनका प्रेम कम नहीं बढ़ रहा है (मर्यादा बहुत ही
 बढ़ता जाता है) ॥ २३४ ॥
- चौ—जानि कइम सिधपाद विस्तरि । कही राखि डर लामक मूरति ॥
 प्रभु जब जग जगदी जाती । सुख सबै सोख सुव सागी ॥ ५ ॥
 धियवीके पनुपको कठोर जानकर वे विस्तरि (मनमें विचार करती) हुई हुए-
 ने श्रीरामजीकी लोचनी मूर्तिको रखकर कही । (धियवीके पनुपकी कठोरताका कारण
 आनेते उन्हें चिन्ता होती थी कि वे सुकुमार रघुनाथजी उसे कैसे तोड़ेंगे, पिताके प्रणकी
 स्मृतिसे उनके हृदयमें जोम था ही, इसलिये मनमें विचार करने लगीं । प्रेमपथ देख्य-
 की स्मृति हो जानेसे ही ऐसा हुआ, फिर ममत्वान्के वक्ता कारण आते ही वे हर्षित
 हो गयीं और लोचनी छविको हृदयमें धारण करके कही) प्रभु श्रीरामजीने जब सुख,
 स्नेह, प्रीति और सुखोकी सज्ज जीवानकीकीको कही हुई जाना, ॥ ५ ॥
- परम प्रेममन सखु मसि कोन्ही । नख पिय सीर्यो लिखि कीन्ही ॥
 मई मन्गनी भवन कोन्ही । यदि नख बोझी कर सोरी ॥ ६ ॥
 तब परम प्रेमकी कोमल लक्ष्मी कान्हा उनके लक्ष्मीको अपने सुन्दर चित्रकारी
 मिश्रित कर लिया । सीताजी पुनः मन्गनीजीके मन्दिरमें गयीं और उनके
 चरणोंकी गन्दा उनके मुख लोहकर बोझी—॥ ६ ॥
- जय मन निरिधर सब निखोते । कन ग्रहेत सुख बंध चकोरी ॥
 जय गनपवन पदावन गाता । जय सबवि शक्तिनि हुति गाता ॥ ७ ॥
 हे श्रेष्ठ पर्वशक्ति राव दिगम्बरकी पुत्री पर्वती ! अपनी जय हो, जय हो ; हे
 नन्दिनी, मुक्तकी, चन्द्राकी [जोर ठकठक लगाकर देखनेवाली] चकोरी !
 आरती जय हो ; हे शक्ति मुक्तकी भक्तकी और जय : मुक्तकी स्वाधिकारीकी माता !

हे अमजननी ! हे विनलीनीसी कान्तियुक्त शरीरवासी ! आपकी जय हो ! ॥ २ ॥

नहिं तब आदि मध्य अवसाना । अमित प्रसाद भेदु नहिं जामा ॥

भव भव बिभव परानव करिनि । किन्तु विमोहनि स्वस्त विहारिनि ॥ ३ ॥

आपका न आदि है, न मध्य है और न अन्त है । आपके अतीत प्रभावको वेद भी नहीं जानते । आप संसारको उत्पन्न, पालन और नाश करनेवाली हैं । विश्वको मोहित करनेवाली और स्वतन्त्ररूपसे विश्व करनेवाली हैं ॥ ४ ॥

दो०—पतिदेवता सुतीर्थ महुँ मातु प्रथम तब देख ।

महिमा अमित न सकाहि कहि सहस्र सारवा सेष ॥ २३५ ॥

पतिको इष्टदेव माननेवाली श्रेष्ठ नारियोंमें, हे माता ! आपकी प्रथम गणना है । आपकी अपार महिमाको हजारों सरस्वती और शेषजी भी नहीं कह सकते ॥ २३५ ॥

चौ०—तेवत तोहि सुखम फल जाती । बरदासनी पुरारि विभारी ॥

हेचि पूजि पद कमल तुम्हारे । सुर नर मुनि सब होहि सुकारे ॥ १ ॥

हे [मत्तोको मुँहयोगी] नर देनेवाली ! हे त्रिपुरके शत्रु शिखरीकी प्रिय पत्नी ! आपकी सेवा करनेसे चारों फल सुख्य हो जाते हैं । हे देवि ! आपके चरणकमलोंकी पूजा करके देवता, मनुष्य और मुनि सभी सुखी हो जाते हैं ॥ १ ॥

मोर मनोरथु वाच्यु कीर्ण । बसहु सदा उर पुर सबही कें ॥

कोन्हेई प्रगट न करन तेहीं । अस कदि बरन को बैदेही ॥ २ ॥

मैं मनोरथको आप भरीभोंति जानती हूँ, क्योंकि आप सदा सबके हृदयस्थी नगरीमें निवास करती हैं । इसी कारण मैंने आपको प्रकट नहीं किया । ऐसा कहकर जगदीजीने उनके चरण पङ्कज लिखे ॥ २ ॥

विशय प्रेम कत भई अवागी । कली नाक दुरति मुमुकायी ॥

सादर सिधैं प्रसाधु सिर चरेक । कोकी गौरि हरहु सिधैं भोरक ॥ ३ ॥

गिरिजाजी सीताजीके विनय और प्रेमके वरमें हो गयीं ! उन [के गले] की माका खिचक पत्नी और मूर्ति मुकुटायी । सीताजीने सादरपूर्वक उस प्रसाद (मावा) को तिरपट धारण किया । गौरीजीका हृदय हर्षित भर गया और वे कोकी—॥ ३ ॥

सुहु सिय लख असीस हमारी । पूजिहि नव कमल तुम्हारी ॥

नारद बचन सदा सुनि साध । सो कद मिलिहि जाहि भजु राधा ॥ ४ ॥

हे सीता ! हमारी लख असीस तुम्हें, तुम्हारी भक्त्यभ्यगा पूरी होगी । नारदजीका वचन सदा पवित्र (संशय, भ्रम आदि दोषोंसे रहित) और उत्तम है । जिसमें तुम्हारा मन अनुरक्त हो गया है, वही नर तुम्हें मिलेगा ॥ ४ ॥

छं०—मनु जाहि एचेत मिलिहि सो नर सहज सुंदर सौंदर्यो ।

करुना निधान सुजान सीधु स्नेह जानत रावरो ॥

पहि भौति गौरि असीस सुनि सिय सहित सिधैं हरयो अली ।

तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि सुदित मन मंदिर चली ॥

जिसमें तुम्हारा मन अनुरक्त हो गया है, वही सभाबसे ही सुन्दर शौंवाला नर (श्रीरामचन्द्रजी) तुम्हें मिलेगा । वह दयाका सजाना और सुजान (सर्वेश) है, तुम्हारे शील और स्नेहको जानता है । इस प्रकार श्रीगौरीजीका आशीर्वाद सुनकर जानकीजीसमेत सब स्त्रियाँ हृदयमें हर्षित हुईं । तुलसीदासजी कहते हैं—भरानीजीको बार-बार पूजकर सीताजी प्रसन्न करने राक्षसोंको छेड़ चली ।

करि सुनि अरु खोज प्रथमा । अन्तु कह कोन्ह विनामा ॥
 किात निता खुलक कानो । वंनु निखेहि कह्य अत लगे ॥ ३ ॥
 मुनिके चरणकमलोंमें प्रणाम करके, आत्मा पाकर उन्होंने विभ्रम किया । रात
 बीतनेपर श्रीरघुनाथजी जागे और भारीको देखकर ऐसा करने लगे—॥ ३ ॥
 दण्ड बध्न भयलैकहु उज्ज । पंकज कोक लोके मुखदाता ॥
 सोके लखनु जोरि जय खनी । प्रभु प्रगाढ सूक्त सुदु पागी ॥ ४ ॥
 हे तात । देखो, कमल, चंक्राक और समस्त संसारको मुख देनेवाला अरणोदय
 हुआ है । लक्ष्मणजी दोनों हाथ जोड़कर प्रभुके प्रणामको सूचित करनेवाली कोमल
 पागी बोले—॥ ४ ॥

श्री०—अहनोदय सङ्गसे कुसुम उदयन जोति मलीन ।
 शिमि तुम्हार अव्यमल मुनि भय नृपति बलहीन ॥ २३८ ॥
 अरणोदय होनेसे कुसुमिनी खुल पायी और वाराणसीके प्रकाश प्रोक्ष पड़ गया;
 शिब प्रकार आपका आत्मा मुनिकर सब राजा बलहीन हो गये हैं ॥ २३८ ॥
 श्री०—सुप सब मल्ल करहि उचिकारी । खरि न करहि कच उम भारी ॥
 कमल कोक मङ्गल काम खना । हरै सकल विना व्यवसाया ॥ १ ॥
 सब राजाकनी तारे उजाख (मन्द प्रकाश) करते हैं, पर वे शत्रुवर्मा नाना
 अम्भकारको हटा नहीं सकते । रात्रिअ अन्त होनेसे वेते कमल, बल्ले, मीरे और नाना
 प्रकारके पक्षी-वर्षित हो रहे हैं ॥ १ ॥

पैलेहि प्रभु सब काम उदये । होइहि दुई पदुप सुकारे ॥
 दण्ड भांडु विमु भम सम वास । दुरे मल्ल का केहु प्रकाता ॥ २ ॥
 वेते ही हे प्रभो ! आपके सब भक्त शत्रुप दृष्टनेपर मुखी होने । दुर्ग उदय हुआ;
 बिना ही परिभ्रम अम्भकार भय हो गया । तब छिप गये, संसारमें सेनका प्रकाश
 हो गया ॥ २ ॥

रवि निज उदय आलख खुलका । प्रभु प्रपुप सब सुख दिखाना ॥
 सब भुल बल महिमा उदकाटी । प्रकटी बहु विषय परिपाटी ॥ ३ ॥
 हे रघुनाथजी ! सूर्यने अपने उदयके आने सब राजाओंको प्रभु (आप) का
 प्रताप दिखलाया है । आपकी सुखाओंके बलभी महिमाको उद्घाटित करने (खोलकर
 दिखाने) के लिये ही शत्रुप सोइनेकी वह पद्धति प्रकट हुई है ॥ ३ ॥

बहु मल्ल सुनि प्रभु सुसुक्ने । होइ सुनि सख पुनीत नहाने ॥
 निरालिख करि भुल पहि कण्ड । फल खोज सुमग सिर माप ॥ ४ ॥
 माइके वचन सुनकर प्रभु सुलहराये । निर सगलके ही पवित्र मीरामजीने
 शीघ्रसे निवृत्त होकर खान किया और निराला करके वे सुखीके पास आये । आकर
 उन्होंने सुखीके मुखर चरणकमलोंमें सिर नवाया ॥ ४ ॥

सतान्दु सब जलक खोला । कौनिक सुनि पहि सुख फला ॥
 जनक विषय तिन्ह आइ सुखई । हल्ले कोकि छिप रोड भार्दे ॥ ५ ॥
 सब जनकजीने सतान्दुजीको सुखोंको और उन्हें हल्ले ही विस्वामित्र मुनिके पास
 भेजा । उन्होंने आकर जनकजीकी मिन्ती सुनायी । विस्वामित्रजीने धर्मित होकर दोनों
 भाइयोंको बुलवाया ॥ ५ ॥

दो०—सतानन्द पद बँदि प्रसु बैठे गुर पहि जँद ।

सलसु तत मुनि कहेउ तव फला जनक बोलाइ ॥ २१९ ॥

सतानन्दजीके चरणोंकी कन्दना करके प्रसु श्रीरामचन्द्रजी गुरुजीके पास जा बैठे ।
तब मुनिने कहा—हे तव । ज्यो, जनकजीने मुख मेला है ॥ २१९ ॥

मासपराश्रम, आठवाँ विश्राम

स्वाहपराश्रम, दूसरा विश्राम

दो०—दीन स्वयंवर देखिअ जाई । ईसु कहि थी वेद बढाई ॥

लखन फल लख भाखनु सोई । नाथ कृपा सब बखर होई ॥ १ ॥

बालक सीताजीके स्वयंवरको देखना चाहिये । देखी ईश्वर किसको बढाई देते हैं ।
लखनबीने कहा—हे नाथ ! जिसपर आपकी कृपा होगी, वही बढाईका पात्र होगा
(धनुष तोड़नेका श्रेय उसीको प्राप्त होगा) ॥ १ ॥

हरये मुनि सब मुनि घर बानी । दीक्षि जसोस सपहि सुनु मानी ॥

मुनि मुनिहुँद समेत कृपाकर । देखन लै अनुग्रहमात्र साख ॥ २ ॥

इए श्रेष्ठ बाणीको सुनकर सब मुनि प्रसन्न हुए । सभीने मुख मानकर आशीर्वाद
दिया । फिर मुनिगँगे सम्मुखित कृपाकर श्रीरामचन्द्रजी धनुषबलसाध देखने लगे ॥ २ ॥

रंग भूमि ऊपर दोढ जाई । अस्ति मुनि सब पुरवासिन्ह पाई ॥

चले सकल कृद काज बिसारी । बाक सुखन भरत पर जारी ॥ ३ ॥

दोनों भाई रंगभूमिमें आये हैं, देखी खबर जब तब नवरनिवासिगँगे पायी, तब
। बाणन, लपान, बड़े, ली, पुष्प सभी घर और काम-काजको भुलकर चल दिये ॥ ३ ॥

देखी सकल भीन पै मरी । मुनि देखत सब बिदू हैंकारी ॥

तत सकल अस्मिन्ह पहि जाहु । कसब उचित हेतु सब काहु ॥ ४ ॥

जब जनकजीने देखा कि बड़ी भीड़ छे गयी है, तब उन्होंने सब विद्वान्पात्र
सेषकाँको बुला लिया और कहा—तुमसँग तुरंत सब लोगोंके पास आओ और सब
किरीकी पथानोय आखन दो ॥ ४ ॥

दो०—कहि महु बचन बिगीत सिन्ह बैसरे कर मारि ।

उत्तरा मत्तरा नीच लघु मित्र बिघ थल अनुहारि ॥ २४० ॥

उन सेकड़ोंने नीच और लघु मित्र बिघ थल अनुहारि ॥ २४० ॥
(सभी श्रेणीके) जी-पुरुषोंको अपने-अपने बोम्ब खानपर बैठाना ॥ २४० ॥

दो०—रावकुँवर देखि, अस्तर ऊपर । भवई मरौइस्त तब जापर ॥

गुप्त सफर राधर पर खेरा । सुंदर स्वमत खैर खरीरा ॥ १ ॥

उसी समय रामकुमार (राम और लक्ष्मण) वहीं आये । [वे ऐसे सुन्दर हैं]
मानो साक्षात् मनोदत्ता ही बनके अरीशेपर आ रही हो । सुन्दर खँकड़ा और गोरा
बनका शरीर है ; वे तुमके समुद्र, चतुर और उत्तम वीर हैं ॥ १ ॥

राम समाज विरामत रुदे । बरतल महुँ बनु सब विपु पूरे ॥

जिन्ह कें रही भावना बैसी । प्रहू सूरति जिन्ह देखी बैसी ॥ २ ॥

वे राजगँगेके समाजमें बैठे सुखोभित हो रहे हैं मानो तारागणोंके बीच दो पूर्ण
चन्द्रमा हों । जिसकी बैसी भावना थी, प्रभुकी सूरति उन्होंने बैसी ही देखी ॥ २ ॥

देखाई 'रूप' गहा, रबवीरा । सबहुँ और खुष घरेँ सरीरा ॥
 हरे कुटिल-धूप प्रसुधि निहारो । अनहुँ सवानक मूरति भारी ॥ ३ ॥
 महान् रणवीर [राज्यलोभ] भीरामचन्द्रजीके रूपसे ऐसा देख रहे हैं मानो स्वयं
 भीर-रस शरीर धारण किये हुए हो । कुटिल राजा प्रसुको देखकर डर भये, मानो
 पदी भवानक मूर्ति हो ॥ ३ ॥

रहे असुर एक छेविय देवा । लिह प्रसु प्रपट कक सम देखा ॥
 पुरवालिह देखे दोन आई । नर सुवन छेवन सुखदई ॥ ४ ॥
 रूपसे जो राखत वहाँ राज्यमें कि वेधों [बैठे] थे; उन्होंने प्रसुको प्रपट फालके
 समान देखा । नगरनिवासियों ने दोनों भाइयोंको प्रसुओंके रूपसम और नेत्रोंको [सुख]
 देनेवाला देखा ॥ ४ ॥

दो०—भारि त्रिलोकहि हरवि हिये मित्र मित्र कवि अनुकर ।
 जहु सोहत सिंगार छरि मूरति परज अनूप ॥ २४१ ॥
 कियों हृदयमें हर्षित होकर अपनी-अपनी रुचिके अनुसार उन्हें देख रही हैं ।
 मानो संगारन्त ही परज अनुपम मूर्ति धारण किये सुसोभित हो रहा हो ॥ २४१ ॥
 चौ०—विह्वल प्रसु विराटसम दीक्षा । कहु मुक्त कर पव छेवन सीसा ॥
 जनक शक्ति अवलोकहि कैलें । सचन समे प्रिय कथहि लैलें ॥ १ ॥
 विद्यापीठोंके प्रसु विराट्सममें दिक्षापी दिवें, मिलके बहुक-से हुँड, हाथ, पैर, नेत्र
 और धार हैं । जनकजीके उजातीव (कुटुम्बी) प्रसुको फिर लख (बैठे प्रिय रूपमें)
 देख रहे हैं, वैसे सगे सजन (सम्बन्धी) प्रिय लगते हैं ॥ १ ॥

सहित विवेक भिडोई रनै । सिधु सम प्रीतिवृत्ति बलवाणी ॥
 जोसिन्ह, परम सन्मन्य भला । सत सुद सम लख्य प्रकला ॥ २ ॥
 जनकसमेत राजाओं उन्हें अपने अपनेके समान देख रही हैं; उनकी प्रीतिवृत्ति वर्णन
 नहीं किया जा सकता । जोगियोंको वे सन्त, बुद्ध; पत और सतप्रकाश परम सत्यके
 रूपमें देखे ॥ २ ॥

हरिमनमह देखे दोन भवज । इत्येव हय सय सुख फल ॥
 रामहि चित्त आई कैलि लीला । सो सवेहु सुख कहि कबरीषा ॥ ३ ॥
 हरिमन्तोने दोनों भाइयोंको सम सुखोंके देनेवाले इत्येवके समान देखा । लीलापी प्रिय
 भाषने भीरामचन्द्रजीको देख रही हैं; वह स्नेह और सुख को कथनेमें ही नहीं लाया ॥ ३ ॥
 कर अनुभवति न कहि सक सोक । कथन अकर कहै कवि सोक ॥
 यदि बिधि रहा जाहि जस जाक । लैलि सत देखेव कोसकराक ॥ ४ ॥
 उस (स्नेह और सुख) का वे हृदयमें अनुभव कर रही हैं; पर वे भी उसे कहनेही
 सकतीं । फिर कोई कवि उसे किस प्रकार कह सकता है । इस प्रकार लिखा गया भाग
 था; उसने कोसवापीय भीरामचन्द्रजीको ऐसा ही देखा ॥ ४ ॥

दो०—राजत राज समान सहुँ कोसकराज किन्तोर ।
 सुन्दर स्वामल और तज विश्व त्रिलोक्यन चोर ॥ २४२ ॥
 सुन्दर सौन्दर्य और भी शरीरवाले तथा निरुपमके नेत्रोंके सुलोकके कोसवापीय-
 के कुमार राजतमानोंमें [इस प्रकार] सुसोभित हो रहे हैं ॥ २४२ ॥
 चौ०—सुन्दर मनीहर मूरति होय । कोटि काम उपपन्न कहु सोक ॥
 सरद कंद विरक्त सुख लोके । चोरस मन्मथ ज्योति ली के ॥ १ ॥

दोनों मूर्तियों स्वाम्यसे ही (बिना किसी कला-श्रृंगारके) मनको हरनेवाली हैं । करोड़ों कामदेवोंकी उपमा भी उनके लिये कुछ है । उनके सुन्दर मुख चरद् [पूर्णिमा] के चन्द्रमाकी भी निन्दा करनेवाले (उसे नीचा दिखानेवाले) हैं और कमलके समान नेत्र मनको बहुत ही भाते हैं ॥ २ ॥

चित्तवति चाप सार मधु हरन्ती । सखति हृदय चापि अहं बरन्ती ॥

कठ कपोल भूति हुंकर छोकर । निरुक्त जघन सुंदर सट्ट चौका ॥ २ ॥

सुन्दर नितम्ब [घरे संसारके मनको हरनेवाले] कामदेवके भी मनको हरनेवाली है । वह हृदयको बहुत ही प्यारी लगती है, पर उसका कर्ण नहीं किया जा सकता । सुन्दर गाल हैं, कानोंमें चबल (धातुसे बना) कुण्डल हैं । ओंसी और अक्षर (मोठ) सुन्दर हैं, स्नेहमयी हैं ॥ २ ॥

कुसुम वंदु पर निरुक्त होंस । सृष्टये विरक्त ममोदर नास ॥

मात विसास विरक्तः इत्युक्ताहो । कथमिच्छेति कथि अवलि लगार्हो ॥ ३ ॥

हैं ही चण्डिका की फिराँफा तिरस्कार करनेवाली है । भीहें टेढ़ी और नासिका मनोहर है । [कँचे] चौड़े लवणपर लेकड़ सकल खे हैं (वीतिमान हो रहे हैं) । [कले घुँपराले] बालोंको देखकर भौरोंकी पंक्तियों भी रुना जाती हैं ॥ ३ ॥

पीत चौकरी विरक्ति सुहार । कुसुम कर्ण विष बीच बनाई ॥

रेखें कंचि कंहु कल गीर्वा । मनु विरुचन सुखमा की लीर्वा ॥ ४ ॥

पीली चौकोनी दोरियों सिरोंपर सुशोभित हैं, जिनके बीच-बीचमें मूलोंकी कलियाँ बनायी (काडी) हुई हैं । उसके समान सुन्दर (गोम) पल्लेमें मनोहर तीन रेखाएँ हैं, जो माने तीनों ओलोंकी सुन्दरताकी सीमा [को बत रही] हैं ॥ ४ ॥

शो—कुंजर सनि कंठ कलित रुग्नि तुलसिका माल ।

हृषम कंठ सेहरि कबलि दल निधि दाहु यिच्छा ॥ २४३ ॥

हरपोंपर गजमुकाओंके सुन्दर कंठ और तुलसीकी मालाएँ सुशोभित हैं । उनके कंठ नैलोंके कंठेकी तरह [कँचे तथा गुट] हैं, ऐंठ (कले होनेकी शाल) सिंहकी-सी है, और धुवाएँ विशाल एवं लकी मण्डार हैं ॥ २४३ ॥

शो—कवि सुगौर पीत पल पौंचे । कल सर बभ्रुष शम पर कींहे ॥

पीत मय्य टपरीष सुहार । वल सिक मंहु सहकरि छार ॥ १ ॥

कमरमें तरकल और पीताम्बर बाँधे हैं । [दाहिने] बायेंमें दाग और बायें सुन्दर कंधोंपर बभ्रु तथा पीले बज्रमाली (क्लेक) सुशोभित हैं । नक्षत्रे केन्द्र शिलातक तक भक्त सुन्दर हैं, उनपर भक्त शोभा जगती हुई है ॥ १ ॥

देकि ओम सब सर सुखरि । एकटक लोचन पल्लव व तारे ॥

हारये जगदु देकि दोन भाई । मुनि पद कमल क्ये तप जाई ॥ २ ॥

उन्हें देखकर सब लोग मुन्नी हुए । नेत्र एकटक (नियतवृत्त) हैं, और तारे (प्रखलियाँ) भी नहीं कलवे । जगद्वी दोनों मादवोंको देखकर खिंत हुए । तब उन्होंने नाकर मुनिके चरणकमल नन्द किये ॥ २ ॥

करि शिवकी निद्रा कया सुखाई । रंग क्वनि सब सुविधि देखाई ॥

गई जई जहि कुंजर पर दोन । जई क्ये क्विद चित्त सखु कोन ॥ ३ ॥

बिनही करके अपनी कथा सुनायी और मुनिके घाटी रंगमूमि (कल्याण)

दिखलायी । [मुनिके साथ] दोनों ओर रामकुमार चढ़-चढ़ जाते हैं, वहाँ-वहाँ सब कोई आश्चर्यचकित हो देखने लगते हैं ॥ ३ ॥

निज निज स्वर रामहि सख देख । कोठ न जान कबु गरमु निशेपा ॥

भलि रचना सुनि सख सन बनेक । राबो सुदिन बहामुख कोक ॥ ४ ॥

सबने रामजीको अपनी-अपनी ओर ही मुक्त किये हुए देखा; परन्तु इसका कुछ भी विशेष रहस्य कोई नहीं जान सका । मुनिने राजसे कहा—रंगभूमिकी रचना बड़ी सुन्दर है । [विन्यासित-बैठे निःस्पृह, विरक्त और जानी मुनिके रचनाकी प्रशंसा सुनकर] राज प्रसन्न हुए और उन्हें बड़ा मुक्त मिला ॥ ४ ॥

श्री०—सब मंचन्द तें मंचु एक सुंदर विसद विसाल ।

मुनि समेत दोउ बंधु तई पैठारे महुपाल ॥ २४४ ॥

सब मंडोते एक भज अधिक सुन्दर, उज्ज्वल और विशाल था । [क्षय] रागा-ने मुनिवर्षित दोनों भाइयोंको उत्तर देठाया ॥ २४४ ॥

श्री०—अधुनि देखि सख नृप हियैं हरे । जनु राखेन उदय भई तारे ॥

अलि प्रतीति सख के सब माहीं । राम चप तोरव सख भाहीं ॥ १ ॥

प्रभुको देखकर सब राधा दूरवर्षे ऐसे शर गये (निराश एवं डरती-हीन हो गये) जैसे पूर्ण चन्द्रमाके उदय होनेपर तारे प्रकाशहीन हो जाते हैं । [उनके तैयारी देखकर] सबके मनमें ऐसा विश्वास हो गया कि रामचन्द्रजी ही प्रभुकी तोहफे, इन्से सम्बन्ध नहीं ॥ १ ॥

बिनु मीतहु भव भनुप विसाल । मेछिहि सोच राम कर माका ॥

जस विचारि गवगु पर साई । जनु प्रकटु बसु तेह गबोई ॥ २ ॥

[इसपर उनके लपको देखकर सबके मनमें यह निश्चय हो गया कि] शिवजीके विशाल प्रभुको [जो सम्भव है न दृष्ट सके] बिना तोहफे श्रीसीताजी श्रीरामचन्द्रजीके ही गलेमें अपमान डालेंगी (अर्थात् दोनों तरफसे ही हमारी शर होगी और विजय रामचन्द्रजीके हाथ रहेगी) । [श्री सीतचक्र ने कहने लगे—] हे भाई ! ऐसा विचारकर क्या, प्रताप, बल और वैज गंगाकर अपने-अपने घर चलो ॥ २ ॥

बिहसे जवर नृप सुनि छाडी । ते अविनेक भंघ अभिमावी ॥

चोरहुं प्रनुप क्याहु अकपाडा । बिनु तोरें को कुबैरि विवाहा ॥ ३ ॥

बूझे राजा, जो अविनेकसे भंघ हो रहे थे, और अभिमावी थे, यह बात सुनकर बहुत हँसे । [उन्होंने कहा—] प्रनुप तोहनेपर भी विवाद होना कठिन है (अर्थात् सखजहीमें हम जानकीको हाथसे जाने नहीं देंगे), फिर बिना तोहफे तो रामकुमारीको क्या ही कौन सकता है ॥ ३ ॥

एक बार कसक विज्य होक । शिव शिव समर विजय हम सोक ॥

यह मुनि जवर मदिन मुमुकाने । परमसीक हरिकण्ठ सखने ॥ ४ ॥

काल ही क्यों न हो, एक बार तो सीतके-लिये उसे भी मुझमें जीत लेंगे । वह परमेश्वरी बात मुनिकर दूसरे राज्य, जो बर्मावास, हरिकण्ठ और स्थाने थे, मुक्तताये ॥ ४ ॥

श्री०—स्त्रीय विवाहवि राम गरव पूरि करि नृपण्ड के ।

जीति को सक संशय दसरथ के रज बाँहुरे ॥ २४५ ॥

[उन्होंने कहा—] राजाजीके सब दूर करके (जो प्रनुप मिथीसे नहीं दृष्ट सकेगा उसे तोहफे) श्रीरामचन्द्रजी सीतजीको स्वीकेंगे । [रही कुसुमी बात, जो] महाराज दशरथके रजमें बाँके पुष्पोंको सुझने को जीत ही कौन सकता है ॥ २४५ ॥

चौ०—अर्थ मरहु जनि गल पकाई । मन मोदकन्हि कि भूख बुलाई ॥

सिख हमारि सुनि पस्य पुलीस । कपड़ें धानहु जियँ सोता ॥ १ ॥

राज दत्तक ज्यै ही मर गये । उनके लट्ठबोटे भी कहीं भूल नुसली है ? हमारी परम पवित्र (निष्कपट) सीखको सुनकर सीखजीको अपने जीमें ताजात जगन्नी समझो (उन्हें पत्नीरूपमें पानेकी आज्ञा एवं लल्ला छोड़ दो) ॥ १ ॥

जगल पिछ रघुपतिहि विवारी । मरि सोच्य छवि केहु बिहारी ॥

सुंदर मुखद सख्य गुन राखे । ए होय बंधु संसु डर बासी ॥ २ ॥

और श्रीगुनायजीको अवतार मित्रा (परमेश्वर) निचाकर, नेत्र भरकर उनकी छवि देख लो [ऐसा अवसर बार-बार नहीं मिलेगा] । सुन्दर, मुख देनेवाले और समस्त गुणोंकी राखि ये दोनों भाई शिखरीके हृदयमें बसनेवाले हैं (सब शिखरी भी जिन्हें सदा हृदयमें छिपाये रखते हैं, वे तुम्हारे सेवकोंके सामने आ गये हैं) ॥ २ ॥

बुधा समुद्र समीप विहाई । नृमज्जु विरिधि मरहु कत घाई ॥

कहू कहू आ कहू जोड़ जावा । हम ती आहु जनम फलु पावा ॥ ३ ॥

समीप आये हुए [भयवर्हानरूप] जम्भुके समुद्रको छोड़कर तुम [जगन्नीकी पत्नीरूपमें पानेकी वुरास्यरूप मिथ्या] मृगज्जुको देखकर दौड़कर क्यों मरते हो ? फिर [भाई !] जिसको जो अच्छा लगे, वही जाकर फरो । हमने तो [श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन करके] आनन्द केनेका फल पा लिया (जीवन और जन्म-को सफल कर लिया) ॥ ३ ॥

अस कहि अके भूप बबुरागे । सय रूप बिकोक्य जागे ॥

देखाई सुर नय जो दिखावा । बरहि मुमय कहि फल गमा ॥ ४ ॥

ऐसा कहकर बम्बे राजा प्रेममय होकर श्रीरामजीका अनुपम रूप देखने लगे । [मनुष्योंकी तो बात ही क्या] देवता योग भी आच्छादित कियातोर चढ़े हुए वर्णन करते हैं और सुन्दर पान करते हुए बूझ रहते हैं ॥ ४ ॥

शे०—जानि सुखसख सीय ठव पठई जलक बोलाइ ।

बहुर सखी सुंदर सखल सावर फली छवाइ ॥ २४१ ॥

तब मुजुकर जनकर जगन्नीने सीताजीके कुछ मेवा । सब चतुर और सुन्दर शक्तिषों आदरपूर्वक उन्हें दिया कहीं ॥ २४१ ॥

चौ०—सिख सीमा नहि जाइ कसावी । अर्थात्सिख रूप मुख जानी ॥ १ ॥

उपमा सखल मोहि सख समी । प्रकृत मरि अय अनुरागी ॥ १ ॥

रूप और गुणोंकी खान जगन्नी जानकीजीकी योग्यता वर्णन नहीं हो सकता । उनके लिये गुण [काव्यकी] सब उपमाएँ तुच्छ लगती हैं, क्योंकि वे लौकिक स्त्रियोंके अङ्गोंसे अनुराग रखनेवाली हैं (अर्थात् वे जगत्की स्त्रियोंके अङ्गोंको ही जाती हैं) । [काव्यकी उपमाएँ सब त्रिभुवात्मक, मायिक जगत्से ली गयी हैं, उन्हें महाज्ञानी स्वरूपाशक्ति श्रीजानकीजीके अप्राकृत, चिन्मय अङ्गोंके लिये प्रयुक्त करना उनका अपमान करना और अपनेको उपलक्ष्यरूप बनाना है] ॥ १ ॥

सिख हरमिन तेह उपमा देई । कुम्बधि कटह अमसु को देई ॥

सौ पदविल तीव सम सीमा । सम अति सुबति कहीं कमलीया ॥ २ ॥

सीताजीके वर्णनमें उन्हीं उपमाओंको देकर कौन कुम्बधि कहलाये और अपयवका भागी बने (अर्थात् सीताजीके लिये उन उपमाओंका प्रयोग करना सुम्बलके पदसे श्रुत

शेना और अपकीर्ति मोल लेता है, कोई भी सुखि ऐसी भद्रादी एवं अनुचित कार्य नहीं करता ।), यदि किसी स्त्रीके साथ सीखनीकी तुलना की जाय तो अन्तमें ऐसी सुन्दर सुवर्ती है ही नहीं [जिसकी उम्मा उन्हें दी जाय] ॥ २ ॥

गिरा सुन्दर सब अरब सयानी । रक्षि नहि दुखित भवतु पति जानी ॥

विष बाढ़नी बंधु मित्र चेदी । कहिख रसासुख किमि वैदेही ॥ ३ ॥

[पृथ्वीकी क्षियोंकी तो बात ही क्या, देवतायोंकी क्षियोंके भी यदि देखा जाय जो हमारी अपेक्षा कहीं अधिक दिव्य और सुन्दर हैं, तो उनमें] सरसती तो बहुत बोलने-वाली है; पार्वती अर्धाङ्गिनी है (अर्थात् अर्द्धनारीनटेश्वरके रूपमें उनका आधा ही अङ्ग स्त्रीका है, दोरा आधा अङ्ग पुरुष-शिवजीका है); कामदेवकी स्त्री रति पतिको बिना शरीररक्ष (अनङ्ग) जन्मकर बहुत दुखी रहती है; और जिनके विष और मध-जैसे [मधुप्रदे उत्पन्न होनेके नाते] मित्र माई हैं, उन छद्मीके समान तो जानकीजीको कहा ही कैसे जाय ॥ ३ ॥

जो छवि मुखा पयोनिधि होई । परम स्वमय कच्छपु सोई ॥

सोभा रह्य मंदक सिमाक । मयै पवि पंकज मित्र माक ॥ ४ ॥

[जिन लक्ष्मीजीकी बात ऊपर कही गयी है वे निम्नकी भी सारे समुद्रजै, जिसकी मयमैके लिये भगवान्ने अति कष्ट पीठवाले कच्छपका रूप धारण किया, उसी बनायी गयी महान् विपश्चर यासुकि नामकी, मयानीका कार्य किया अतिरूप कठोर मन्दराचल पर्वतसे और उसे मया सारे देवताओं और देवोंने मिलकर । जिन लक्ष्मीजी अतिरूप गोमाकी जान और अनुपम सुन्दरी कहते हैं उनको प्रकट करनेमें हेतु बने थे ॥ अतएव एवं स्वाभाविक ही कठोर उपकरण । ऐसे उपकरणोंसे प्रकट हुई लक्ष्मी जीजानकीजीकी समताको पीछे पा सकती हैं । हाँ, इसके विपरीत] यदि छविस्त्री अमृतका समुद्र हो, परम स्वमय कच्छप हो, गोभास्म रक्षी हो, मंदार [रत्न] पर्वत हो और [उस छविके समुद्रको] स्वयं कामदेव अपने ही कलकमलसे पड़े, ॥ ४ ॥

दो—पवि विधि नयने लच्छि तव सुन्दरता मुख मूख ।

तदपि समोष समेत कवि कहहि स्त्रीय समतुल ॥ ५७७ ॥

इत प्रकार [का संयोग होनेसे] जब सुन्दरता और मुखकी मूल लक्ष्मी उत्पन्न हो, तो भी कविलोग ठठे [बहुत] छोड़के साथ सीताजीके समान कहेंगे ॥ ५४७ ॥

[जिस सुन्दरताके समुद्रको कामदेव मयेवा वह सुन्दरता भी प्राकृत, औरकि सुन्दरता ही होगी; क्योंकि कामदेव स्वयं भी त्रिगुणमयी प्राकृतिक ही विकार है । अतः उस सुन्दरताको मयकर प्रकट की हुई लक्ष्मी भी उत्पुङ्क लक्ष्मीकी अपेक्षा कहीं अधिक सुन्दर और दिव्य होनेपर भी होगी प्राकृत ही, अतः उसके साथ ही जानकीजीकी तुलना करना कविके लिये यद्दे संकोचकी बात होगी । जिस सुन्दरतासे जानकीजीका दिव्यातिदिव्य परमदिव्य विमल बना है वह सुन्दरता उत्पुङ्क सुन्दरतासे मिल अवाकृत है—बहुत; लक्ष्मीजीका अवाकृत रूप भी यही है । यह कामदेवके रूपमें नहीं आ सकती और ॥ जानकीजीका स्वरूप ही है, अतः उनसे मिल नहीं, और उपम की जाती है मित्र वस्तुके साथ । इसके अतिरिक्त जानकीजी प्रकट हुई हैं स्वयं अपनी महिमामें, उन्हें प्रकट करनेके लिये किसी मित्र उपकरणकी अपेक्षा नहीं है । अर्थात् यदि शक्तिमान्ते अमित्र, शक्तिरत्न है अतएव अनुपम है, यही गूढ दार्शनिक सत्य भक्तशिरोमणि कविने इत समुत्पन्नप्रकारके द्वारा वही सुन्दरतासे व्यक्त किया है ।]

चौ०—बडी संत है सबी सखानी । रावन नीत मनोहर बानी ॥

सोह दखत तब सुन्दर सरी । सकत तननि अतुलित छवि भारी ॥ १ ॥

सगनी लफियाँ दीवानीयो ताम केधर मनोहर बानीसे सीत पारी हुई चली । सीतादे-
के नवत शरीरर दुन्दर दाड़ी दुखीक है । कलकलीकी म्हात छवि अतुलनीय है ॥ १ ॥

श्रवण स्वर सुख सुहाय । मन अंग रवि सखिह बहाय ॥

रंगदूनि पद सिमरतु पारी । देखि हम सोहे मर पारी ॥ २ ॥

एक आश्रय अनी-अनी अवसर योगित है, किन्तु लखिबोने अह-अहमे भली-
मौति त्याग्य पकनाया है । जब सीताजीने रंगदूनिमें कैर रसता, सब दनका [दिव्य]
एक देखकर ली, पुनः सभी योगित हो गये ॥ २ ॥

हरि सुख सुन्दरी बजाई । बरि प्रहल मरदरा गाई ॥

पानि सरोवर सोह बपसाय । अचर चित्त एक भुजाय ॥ ३ ॥

देवताओंने शक्ति होकर तथासे बजाये और पुनः वरदाकर अक्षराएँ गाये कहीं । सीताजीके
परममूर्तिमें बपनाय सुशोभित है । एक राजा चरित होकर अचानक उनकी ओर देखने लगे ।

सिय बरिष चित रमहि बाह । मर मोह बस सब मर बाह ॥

दुनि समोर देखे दोह माई । लगे एककि लीचन विधि पाई ॥ ४ ॥

सीताजी चरित चितसे आत्मजीको देखने लगी, तब सब राजा योग मोहके वश
हो गये । सीताजीने मुनिके पास [बैठे हुए] दोनों माइनोंसे देखा तो उनके नेत्र अपना
सबाना पाकर कलकल मरी (गीरामनीमें) ज लगे (छिर हो गये) ॥ ४ ॥

दो०—गुरुजन काज समाजु बड़ देखि सीय सकुचायि ।

काजि बिसोकल सखिह तन रघुवीरहि तर यायि ॥ २५८ ॥

परन्तु गुरुजीकी आज्ञासे तथा बहुत बड़े समाजसे देखकर सीताजी सकुचा गयीं ।
वे गीरामनीकी ओर दूरगम अक्षर सखियोंकी ओर देखने लगी ॥ २५८ ॥

चौ०—राम कहु अरु सिमरि छवि देखें । पर बारिह परिहरी निमेषें ॥

लोचहि सख कहु सकुचायि । विधि सब विनय करि निम मायि ॥ १ ॥

गीरामनीकीका लम और सीताजीकी छवि देखकर श्री-पुरुषोंने एक मारना छोड़
दिया (उस एकटक दर्शको देखने लगे) । सभी अपने मनमें लोचने हैं, पर करते
सकुचायि हैं । मन-ही-मन वे विचाराते विनय करते हैं—॥ १ ॥

॥ विधि देनि कनक कनकाई । मति हमारि बलि देहि मुदाई ॥

दिनु विचार एतु तकि करवाह । सीय राम कर करे विवाह ॥ २ ॥

हे विषय ! कनक मूढतासे सीत हर लीजिने और हमारी ही ऐसी सुन्दर बुद्धि
उन्हें दीजिने कि कितने विचार ही विचार निवे राजा अपना प्रज छोड़कर सीताजीका
विवाह रामजीसे कर दें ॥ २ ॥

अनु मर कहिदि तब सब कहु । एत जीने बंढहु तर बाहु ॥

एहि छवहीं मगल सब खेम् । अरु सखिरो नामकी जोम् ॥ ३ ॥

संसार उन्हें मग्य कहेया, क्योंकि अब बात सब किसीको अच्छी लगती है । इस
करतेसे अन्तमें भी दुःख लगेगा । ॥ खेय हवी जगदसमें मग्य हो रहे हैं कि जानकीजीके
योग वर से अब सौख्य ही है ॥ ३ ॥

अप यहीं जग जनक खेलाय । विरिदासरी कहुत चलि जाय ॥

कह एतु साह कहुत पव मोरा । अरु साह दिवें हरषु न मोरा ॥ ४ ॥

एव राजा जनको पंढरीको (माटी) को बुझवा । वे विदवावली (वंशकी कीर्ति) गाते हुए चले जाये । राजने कल-चाकर मेरा प्रण कहे कहे । माट चले, उनके हृदयमें कम आनन्द न था ॥ ४ ॥

दो०—बोले पंढी बचन कर सुनहु सकल महिपाक ।

एन विदेह कर कहहि हम मुज उठा विहाल ॥ २४९ ॥

भदोने भेद वचन कहा—हे पृथ्वीकी पालना करनेवाले एव राजगण ! सुनिये । हम अपने विहाल भुज उठाकर जनकजीका प्रण कहते हैं— ॥ २४९ ॥

चौ०—रूप भुज कल विह सिव बलु राहु । प्रमत्त कपूर विहित सब काहु ॥

रावजु कलु महामद मारे । देखि सरासन गयीहि विधारे ॥ १ ॥

राजाजीकी भुजाजीका कल-चमत्कार है, शिवजीका अनुप राहु है, वह भारी है, कठोर है, वह सबको विदित है । कहे भारी बोझा रावन और बाणासुर भी इस अनुपको देखकर सींचे (धुपके-से) चमके बने (उसे उठाना तो दूर रहा, झूनेतकनी विप्लव न हुई) ॥ १ ॥

सीह पुरारि कोरहु कठोर । सब समान कलु जोह सोरा ॥

विभुवन सब समेत वैदेही । विधि विचार करहु हठि वेदी ॥ २ ॥

उसी शिवजीकी कठोर अनुपको भाव इस राजदमाजमें जो भी तोड़ेगा, सीनो कोसीकी विधायके साथ ही-उसको जानकीजी बिना किसी विचारके दृष्टपूर्वक बरग करेंगी ॥ २ ॥

भुनि एन सकल रूप अनित्य । भटमाली पतिव्रत सब मारे ॥

परिकर पतिवि उडे अकुमई । कहे हृदयकन्द सिर माई ॥ ३ ॥

प्रण सुनकर एव राजा लज्जा उठे । जो वीरराजके अभिमानी थे, वे मनमें बहुत ही समझाये । कमर कलपर, अकुलाकर उठे और अपने हृदयोंको सिर नवाकर कहे ॥ ३ ॥

तकिक तकि तकि सिव बलु परही । उठ न कोसि भौति बलु करही ॥

सिंह के लालु विचक मन माहीं । आप समीप मदीप न माहीं ॥ ४ ॥

वे समझकर (कहे दावते) शिवजीके अनुपकी ओर देखते हैं और फिर निगाह जमाकर उसे पकड़ते हैं ; कठोरी भौतिवे नीर लगाते हैं, पर वह उठवा ही नहीं । शिव-राजाजीके सममें कुछ विवेक है, वे तो अनुपके पास ही नहीं जाते ॥ ४ ॥

दो०—तकिक धरहिं बलु मुहु रूप उकर न कसहिं उजाह ।

मनहुं पाह मट बाहुबलु अचिकु मचिकु राहमाह ॥ २५० ॥

वे मुहों राजा समझकर (विचित्रकर) अनुपको पकड़ते हैं परन्तु वह नहीं उठता । तो लज्जाकर चले जाते हैं । मानो नीरोंकी भुजाजीका वह पाकर वह अनुप अधिक-अधिक भारी होता जाता है ॥ २५० ॥

चौ०—रूप सहस्र दस एकहिं बस । कमे उठमन दख न दार ॥

राहु न संहु सराशु कैस । कमी कपन सली मलु कैस ॥ १ ॥

तब दस हजार राज एक ही बार अनुपको उठाने लगे, तो भी वह उनके टाके नहीं टलता । शिवजीका वह अनुप कैस नहीं विगत था, जैसे कमी पुत्रके वचनोंके शक्ति मल [कमी]-पक्षममान नहीं होता ॥ १ ॥

सब रूप सब जोहु उपहासी । कैस भिनु जितन संवासी ॥

करीवि विजय जीस्ता यरी । चले पाव कर कसक हारी ॥ २ ॥

एव राजा उपहासके बोध हो गये । जैसेवैराग्यके बिना वंशजी उपहासके बोध हो जाता है । कीर्ति, विजय, बड़ी जीस्ता, इन सबसे वे अनुपके लक्ष्यों करवत हारकर चले गये ॥ २ ॥

भीहत गए हारि दिई 'रत्न' । बैसे बिक निच अह, समाना ॥ १ ॥
 नृपद मिलेकि बरक अकुलाये । छोले बचक रोष धनु साने ॥ २ ॥
 रामाजोग दृढये हारकर श्रीहीन (इक्ष्वाकु) हो गये और अपने-अपने समानमें
 जा बैठे । राजाजोंधे [अमरक] देखकर जनक अनुज उठे और ऐसे वचन बोले जो
 मानो मोघमें सने हुए थे ॥ ३ ॥

रीष रीष के दुष्टते भया । अह मुनि हम जो-धनु उना ॥
 देव वनुव बरि मनुज लोहा । बिपुल कीर अह रणवीरा ॥ ४ ॥
 मैंने जो प्रथ ठाना था, उठे सुनकर हीन-हीनके अनेकें राजा भये । देवता और
 दैत्य भी मनुजका शरीर धारण करके आने लगे और मी वहुत-से रणवीर वीर आये ॥ ५ ॥
 दो०—कुशैरि मनेहर विजय बड़ि कीरति अति कमनीय ।

पावनिहार किरिंजि अनु रणेद न धनु समसी ॥ २५१ ॥
 परनु धनुको लोककर मनोहर कया, कही विजय और अत्यन्त सुन्दर कीर्तिको
 पानेवाला मानो कहाने कितोको रक्षा ही नहीं ॥ २५२ ॥

दो०—अह कहि धनु अह न भावा । काहुँ न संकर आए चढ़वा ॥
 रदद अमरक तोरय भई । किनु मरि भूमि न लगे छड़ाई ॥ १ ॥
 कहिये, यह काम कितोको अच्छा नहीं लगता । परनु कितनी भी लड़करजीका धनुष
 नहीं चढ़ाया । अरे भाई ! चढ़ाना और लोचना तो दूर रहा, कोई लिखकर भूमि भी
 छुड़ा न सगा ॥ २ ॥

अह बनि कोट माँही अमरानी । कीर विहीन मही मैं बाकी ॥
 लखनु अमर निज निज गृह जाहू । किना व बिधि बँधेहि बिसाहू ॥ २ ॥
 अह जोई दीरसाका अमरमानी नाराज न से । मैंने जान लिया, पृथ्वी वीरोंसे खाली
 हो गयी । अब माया छोड़कर अपने-अपने घर जाओ; कहाने वीरोंका बिसाह लिया ही नहीं । २ ॥
 सुनुव बाहू जी धनु परिहरलें । कुशैरि कुशारि रक्त का फनलें ॥
 जी ननवेरें किनु अह भुकि भई । ती धनु करि होवेरें व हँसाई ॥ ३ ॥
 यदि प्रण छोड़ता हूँ तो पुण्य जाता है । इच्छिये क्या करें, कम्पा कुँमारी ही रहे ।
 यदि मैं मानता कि पृथ्वी वीरोंसे धूम्य है, तो प्रण करके उपद्रवकर पाप न बनता ॥ ४ ॥
 जनक बचक मुनि सब नर मारी । देखि आवकिहि अह दुखारी ॥
 माली कलनु कुटिछ भई जीई । रक्षक फलक नयन । रिसीह ॥ ५ ॥
 जनकसे बचन सुनकर सभी जी-पुल्ल जानकीजीन्दी और देखकर दुखी हुए, परनु
 कल्पजी समता उठे, उनकी मीहें देदी हो बर्बा, अनेक अकुलने को, और नेत्र
 मोघले लाग हो गये ॥ ४ ॥

दो०—अहि न सकत रघुवीर हर लये बचन अनु जान ।
 नाह राम पद कमल सिद्ध बोले गिरा प्रमान ॥ २५२ ॥
 श्रीरघुवीरजीके डरते कुछ अह तो कहते नहीं, पर जनकसे बचन उन्हें बाधने
 को । [अब न रह सके लव] श्रीरामचन्द्रजीके अरुणकालमें गिर, बचाकर ये वधार्थ
 बचन बोले—॥ २५२ ॥

दो०—रघुवीरसिद्ध भई बई कीट होई । तेहिं समान अह कहइ न कोई ॥
 कही जनक जसि अनुचित कानो । किन्नायन रघुपुत्र मनि जादी ॥ १ ॥
 रघुवंशियोंमें कोई भी ज्यों होता है, उस समानों ऐसे बचन कोई नहीं कहता;

बैसे अनुचित वचन रखकुञ्जिरोमणि श्रीरामजीको उगसित जानते हुए भी जनकजीने कहे—॥ १ ॥

सुनहु भानुकुञ्ज पंकज मन् । कहैं सुमाद प कहु अभिमान ॥

जौ तुम्हारि अनुसन्धन पावौ । कहुँक इव भ्रष्टोड उठावौ ॥ २ ॥

हे सूर्यकुलरूपी कमलके सूर्य ! सुनिवे । मैं स्वभावहीसे कहता हूँ, कुछ अभिमान करते नहीं; यदि आपकी आज्ञा पाऊँ, तो मैं ब्रह्माण्डको बँदकी तरह उठा दूँ ॥ २ ॥

कारणें कट जिमि धारौ सोरी । सकनैं शेष सूखक जिमि सोरी ॥

तब प्रताप महिमा भववान् । को कपुते पिनाक पुराना ॥ ३ ॥

और उसे कण्ठे पड़ेघी तरह फेड़ दाखें । मैं सुमेरु पर्वतको मूलीकी तरह तोड़ सकता हूँ हे भगवन् । आपके प्रतापकी महिमासे यह वेचाप पुराना धनुष तो कौन चीख है ॥ ३ ॥

नाथ जानि अस भवसु होऊ । कौहुकु करौ थिठोकिअ लोक ॥

कमल कमलिमि आप बसावौ । बोनन छत प्रमान छै धावौ ॥ ४ ॥

ऐसा जानकर हे नाथ ! आशा हो तो कुछ खेल करूँ, उसे भी देखिबे । धनुषकी कमलकी डंडीकी तरह चढ़ाकर उसे छौ योचनतक दौड़ा लिये चल नालें ॥ ४ ॥

हो—तोरो छबक बूँड जिमि तब प्रताप बख नाथ ।

जौ न करौ प्रसु पद सपथ करन धरौ धनु भाथ ॥ २५३ ॥

हे नाथ ! आपके प्रतापके चलते धनुषको कुकुरधुते (बरसाती छते) की तरह तोड़ दूँ । यदि ऐसा न करूँ तो प्रभुके चरणोंकी क्षम है, फिर मैं धनुष और तरफतफो कभी हाथमें भी न लूँगा ॥ २५३ ॥

चौ—ककल लकोप मचन से बोले । बगमगानि महि विमल बोले ॥

सकल लीग सब भूप डेतये । तिव द्वियै हरहु जनहु सङ्गवाने ॥ १ ॥

क्यों ही कलकली लोचनमे बचन बोले कि पृथ्वी बगमगा उठी और विशाखोंके हाथी काँप गये । सभी लोग और सब राजा डर गये । लीलाजीके डरवमें हर्ष हुआ और जनकजी सङ्गवा गये ॥ १ ॥

गुर रहपति सब सुनि मन माहीं । सुदित मय सुनि पुनि पुछकाहीं ॥

समर्हि एवुपति कहुहु मेवारे । प्रेत ससेव विकट वैडारे ॥ २ ॥

गुरु विश्वामित्रजी, श्रीरामनाथजी और सब सुनि मनमें प्रसन्न हुए और बार-बार पुछनित होने लगे । श्रीरामचन्द्रजीने इधारेसे कलकली सना किया और प्रेमसहित अपने पास बैठा लिया ॥ २ ॥

विश्वामित्र समस सुम जायी । बोलै अति सवेहसय बायी ॥

उठहु राम बंजहु मय चापा । सेयहु लख जनक परितापा ॥ ३ ॥

विश्वामित्रजी सुम समस अनन्तर अत्यन्त प्रेममयी बायी बोले—हे राम ! उठो, शिवजीका धनुष तोड़ो और हे राज ! जनकका सन्तान मिटाओ ॥ ३ ॥

सुनि गुरु कलक भजन सित जग । हरहु विषादु य कहु उर बाधा ॥

कहे मय उठि कह्य सुनहु । जनि हुवा सुनराड कनारु ॥ ४ ॥

गुरुके वचन सुनकर श्रीरामजीने चरणोंमें सिर जगाया । उनके मनमें न हर्ष हुआ, न विषाद; और वे अपनी पैंड (सड़े होनेकी धान) से बनाय सिद्धकी भी जनाते हुए राज स्वभावसे ही उठ खड़े हुए ॥ ४ ॥

रो०—उदित उदयगिरि मंच पर रघुकर बाढपर्वण ।

विकसे संत सरोज सब इरये लोचन भुंग ॥ २५४ ॥

मन्त्रस्त्री उदयाचकर खुनापवीस्त्री बाढपर्वण उदय होये ही सब संतस्त्री कमल
निल उठे और नेत्रस्त्री भीर हर्षित हो गये ॥ २५४ ॥

चौ०—दूषण केरि आसा विधि कही । अकल कलत कबली न प्रकासी ॥

मापी महिष हृद्युष संकुचये । कपटी मूष उच्छुल्ल लुकाये ॥ १ ॥

राजाओंकी आकास्त्री खनि नष्ट हो गयी । उनके वचनस्त्री द्वारोंके समूहका
बनरुपा बंद हो गया (वे मौन हो गये) । अभिमानी राजास्त्री कुमुद संकुचित हो गये
और कपटी राजास्त्री उच्छुल्ल बन गये ॥ १ ॥

मय बिसोक छोड मुनि देव । बरिछाई सुमन जगजहि लेक ॥

गुर पद धंदि सक्षिप भयुरात्म । राम मुनिन्द सन जगजु माया ॥ २ ॥

मुनि और देवतास्त्री बकने छोड़कर हो गये । वे पूज करवाकर अपनी सेवा
प्रकट कर रहे हैं । प्रेमवशित गुरुके चरणोंकी वन्दना करके श्रीरामचन्द्रजीने मुनियोंके
आकाशोंमें ॥ २ ॥

सहस्रहिं कळे सलल सब सासी । मय मंहु कर जुंजर समी ॥

कलत राम सब पुर पर बारी । पुच्छ पुरि लव मय सुकारी ॥ ३ ॥

सहस्र हजारोंके सारी श्रीरामजी सुन्दर वस्त्राढे भेद हाथीकीसी बालसे आभाषिक
हो गये । श्रीरामचन्द्रजीके चले ही नगरभरके सब जी-मुश्क सुखी हो गये और उनके
द्वारों में आवाजें भर गये ॥ ३ ॥

धीरे विवर सुख सुख सँभरे । जी कहु पुन्य प्रभाव हमारे ॥

ही सिख बजु मुक्कल की नाई । जेन्हूँ राहु कबैस गोसाई ॥ ४ ॥

अन्तर्निहित और देवताओंकी वन्दना करके अपने पुण्योंका स्मरण किया कि
यदि हमारे पुण्योंका कुछ भी प्रभाव हो, तो हे गणेश गोसाई ! रामचन्द्रजी शिवजीके
बहुलके कमलकी बंसीकी मूर्ति तोड़ काटे ॥ ४ ॥

रो०—रामहि प्रेम समेत छवि स्वस्तिन्द समीप वोलाइ ।

सीता मातु सनेह कस वचन कहइ बिलखाइ ॥ २५५ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने [विलख्य] प्रेमके साथ देसकर और लखियोंकी समीप गुलाब
सीताजीकी माता स्नेहवश निलकाकर (निज करती हुई-थी) वे वचन बोलीं—॥ २५५ ॥

चौ०—सखि हय छैलुल बेसविहारे । बेट अद्वयत विदु हमारे ॥

खेट न कुलह कइइ गुर जही । ए कलक जसि हत कळे नाहीं ॥ १ ॥

हे लखी ! वे जो हमारे विदु कहल्ले हैं, वे भी सब लपटा देखनेवाले हैं । कोई
भी [हमने] गुरु विश्वामित्रजीको कलहाकर नहीं कहा कि वे (रामजी) मालक हैं,
इनके लिये ऐसा हत अन्क नहीं । [जो पुरुष रामजी और लख-जैसे अगाधचरी बीरोंके
दिलमें न हिल सका, उसे छोड़नेके लिये मुनि विश्वामित्रजीका रामजीको भावा देना और
रामजीपर उसे छोड़नेके लिये सब देना रानीको हत जान पड़ा, इसलिये वे कहने लगे
कि गुरु विश्वामित्रजीको छोड़ कलहाया भी नहीं ।] ॥ १ ॥

रामन सब सुख नाई पाया । हारे सकल नृप करि दाया ॥

सी पजु रामकुँज पर खेहीं । कल माल कि संहर खेहीं ॥ २ ॥

रामन और नापासुने बिच बलुखे जुमायक नहीं और सब राजा धर्म्य करके

हार गये, नदी धनुष इस सुकुमार राजकुमारके हावमें देखे हैं । हंसके बच्चे भी कहीं मन्दराचल रहाड़ उठा सकते हैं ॥ २ ॥

भूय सखनय सखल सिसवी । सखिनिधिगतिबहुकाविनसायी ॥

बोली चतुर सखी सहु कपी । तेजवंत धनु अनिय न रानी ॥ १ ॥

[और तो कोई समझाकर कहे ना नहीं, राजा तो बड़े समझदार और शानी हैं, उन्हें तो युवकी समझालेकी चेष्टा करना चाहिये थी; परन्तु माधव होता है] राजाभा भी वही सयानापन समाप्त हो गया । हे सखी ! विपत्तिकाँठी गति कुछ क्षणमें नहीं खाती [यों कहकर रानी चुप हो रही] । तब एक चतुर (राजकी महत्त्वकी जानने-वाली) सखी बोलाव करीबि बोली—हे रानी ! तेजवान्को [देखनेमें छोटा होनेपर भी] छोटा नहीं गिनना चाहिये ॥ २ ॥

कहै कुंमल कहै सिंधु भगवत । सोकेव सुबहु सखल संसार ॥

रवि संदख देखत सहु सम्य । उरवै सहु सिमुक्क राम भाग ॥ ४ ॥

कहाँ पड़ेसे लपक होनेवाले [छोटे-से] मुनि अकल्प और कहीं अपार । किन्तु हमोंने उसे मोख सिन्धु, सिंधुका सुगंध खरे संसारमें खया हुआ है । सूर्यमण्डल देखनेमें छोटा समझा है, पर उसके उदय होने ही सीनों कोमोख मन्थकर भाग जाता है ॥ ४ ॥

रो—मंत्र परम सहु आहु यस विधि हरि हर सूर सब ।

महामन्त्र गङ्गायन कहै यस कर अंकुस खरै ॥ २५९ ॥

जितके वशमें प्रजा, विष्णु, शिव और सभी देवता हैं, वह मन्त्र अत्यन्त छोटा होता है । महान् मन्त्राके मन्त्रात्मको छोटा-ठा अंकुस यन्त्रे कर सेवा है ॥ २५९ ॥

रौ—काम कुसुम धनु सखक कीन्हे । सखल सुयव जयमें कप कीन्हे ॥

हेवि ठजिन संखन भस जाकी । मंत्रक धनुष राम सुधु रावी ॥ १ ॥

कामदेवने प्रलोक ही धनुष-बाण लेकर सखल लोकोको अपने वशमें कर रक्खा है । हे देवी ! देवा आनकर कन्दह त्याग रीजिये । हे रानी ! सुनिने, रामकनजी धनुषको अवश्य ही सीजिये ॥ १ ॥

सखी वचन सुनि जे फलीसी । जित विपदु की गति जौसी ॥

यस रामहि निकोकि जौही । सम्य हरवै निवृत्ति वेदि पैदी ॥ २ ॥

सखीके वचन सुनकर रानीको [श्रीरामजीके सारथीके सम्बन्धमें] विश्वास हो गया । उसकी उदासी मिट गयी और श्रीरामजीके प्रति उसका प्रेम अत्यन्त बढ़ गया । उस समय श्रीरामचन्द्रजीको देखकर सीताजी भवभीत हृदयसे तिस-तिस [वेस्ता] से फिन्ती कर-रही हैं ॥ २ ॥

ममहाँ मय भवान् अकुलगी । होहु प्रलय महेश भवाकी ॥

कारहु सखक अरवि संखनर । करि दिखु हरहु चाप सखनर ॥ १ ॥

वे व्याकुल होकर मन्ही-मन् गना रही हैं—हे श्वेद-मन्वादी ! सुनकर मलय होरवे, मैंने आपकी को सेवा की है, उसे सुनकर कीजिये और सुनकर स्नेह करते धनुषके मारीधनको हर सीजिये ॥ ३ ॥

गमनयक कर हाक देरा । आहु कौ कोनिहैं मुख सेवा ॥

कर कर विनकी सुनि लेवी । करहु चप सुयव जति बीरी ॥ ४ ॥

हे शर्माके श्वक, कर देखाने देखा गयेकी । मैंने आशुकी निने दुन्दारी

सेवा की थी । बार-बार मेरी धिक्की कुनकर अनुपम भारीमन बंधुव ही कम कर दीजिये ॥ ४ ॥

दो०—देखि देखि रघुवीर तन छुर सनस्य धरि धीर ।

अरे दिलोचन प्रेम जल पुलकावली सरीर ॥ २५७ ॥

भीरुनाथजी और देख-देखकर सीताजी धीरज धरकर देवताओंको मना रही हैं । उनके नेत्रोंमें नेत्रों आँसू गये हैं और ऊँचीमें रोमाञ्च हो रहा है ॥ २५७ ॥

चौ०—नीकें भिखि दयन धरि लोभ । पितृपुत्रसुमिरि बहुरि मनु लोभा ॥

अहह तब शरवि हठ खनी । समुद्रमग्न नहिं कहु छात्रु व हानी ॥ १ ॥

भार्या तरह नेत्र भरकर श्रीरामजीकी शोभा देखकर, फिर पिताके प्रणाम स्वरूप आपके सीताजीके मन दुष्प्र हो उठा [वे मन-ही-मन कहने लगी—] अहो ! पिताजीने यह ही कहिन हठ ठाम है, वे जन्म-हानि कुछ भी नहीं समझ रहे हैं ॥ १ ॥

सखि समय सिद्ध हैह न पौह । दुष्ट समान यत् अनुचित होई ॥

कहाँ बहुत कुतिलतु चाहि कठोर । कहीं स्वामक मृदुगत कितोर ॥ २ ॥

सम्झी उर रहे है, इच्छिये कोई उन्हें संख भी नहीं देना; पण्डितोंकी समझमें यह बड़ा अनुचित हो रहा है । कहीं तो ब्रह्मे भी बदकर कठोर बनुर और कहीं वे कोमलपरीत त्रिशोर स्वामनुन्दर ॥ २ ॥

विधि केहि भोगि खरी उर धीर । निरस सुमन जन वैचिह हीरा ॥

सकल सख नै सति नै ओरी । अय मोहि संसु बाप खति तोरी ॥ ३ ॥

हे विचारा ! मैं हृदयमें किन तरह धीरज धरूँ; सिरके पूछके जगते कहीं हीरा खेदा जाता है । सारी सम्भाषी बुद्धि भोली (बादली) हो गयी है, अतः हे शिष्यजीमे वनुप । जब तो मुझे दुष्टरा ही भक्त्य है ॥ ३ ॥

निज कपल लोगद पर डारी । होहि इवम श्रुपतिहि बिहारी ॥

कति पोरतन सीय मन माई । उव निमेष क्षण सब सम जाई ॥ ४ ॥

उन आशो जड़त लोगोंपर बाढकर, भीरुनाथजी [के झुझार शरीर] को देखकर [उतने ही] इसके हो जाओ । इस प्रकार सीताजीके मनमें बड़ा ही सन्देह हो गया है । निमेषका एक क्षण (धंग) भी वे जड़ोंके समान सीत रहा है ॥ ४ ॥

दो०—प्रभुहि भित्तु पुनि धितव्य महि राजत कोषन डोल ।

खेलत मनसिज मीन शुभ अनु विषु मञ्जक डोल ॥ २५८ ॥

मनु भीमवचनजीको देखकर फिर पृथ्वीकी ओर देखती हुई सीताजीके चञ्चल मन इस प्रकार शोभित हो रहे हैं मानो चन्द्रमण्डलकी डोलने जगदम्बकी दो मञ्जुलिमें दोल रही हों ॥ २५८ ॥

चौ०—गिरा अङ्गिनि शुभ पङ्कज शीकी । प्रपन्न व क्षम निहा अवलोकी-॥

लोचन जल रह लोचन ज्ञेय । जैसै परम कृपण कर सोना ॥ १ ॥

सीताजीकी दार्ढ्यतायी भूमिमें उनके मुखरूपी कमलमें रोक रक्खा है । लावली रात्रिमें देखकर वह प्रपन्न नहीं हो रही है । नेत्रोंका जल नेत्रोंके कोने (कोप) में ही रह जाता है । जैसे पड़े भारी कंजुल खेना केनेमें ही गड़ा रह जाता है ॥ १ ॥

सकृन्वा व्याकुलता बहिं गनी । धरि धीरसु प्रतीति कर आनी ॥

तन मन कथन मोर पखु साचा । रघुपति पद सरोज चितु राजा ॥ २ ॥

अपनी बड़ी हुई व्याकुलता जानकर सीताजी सकुचा गयीं और धीरज धरकर

हृदयमें विधात छे आर्य कि' यदि तन मन और वक्त्रसे मेरा प्रण सधा है और श्रीरामायणीके चरणकमलोंमें मेरा चित्त वास्तवमें अतुरक है ॥ २ ॥

तौ भगवान् सकल उर पसी । करिहि मोहि खुबर कै वासी ॥

.. बोहि कैं बेहि पर सज सनेह । सो बेहि मिलइ न कहु संदेह ॥ ३ ॥

.. तो उनके हृदयमें निवास करनेवाले भगवान् मुझे राखेह श्रीरामचन्द्रजीकी दासी अवसर बनायेंगे । जिसका जिसपर सधा स्नेह होता है, वह उसे मिलता ही है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ३ ॥

प्रभु सब कितह प्रेम दन छावा । कृपानिधान छस सहु जाना ॥

सिरहि निबोकि ठकेउ धनु कैसैं । पितव यक सहु म्माछहि बैसैं ॥ ४ ॥

प्रभुकी ओर देखकर सीताजीने दरीरके द्वारा प्रेम ठान लिया (अर्थात् वह निश्चय कर लिया कि यह दरीर इन्हींके होकर रहेगा या रहेगा ही नहीं) । कृपानिधान श्रीरामजी सब जान बचे । उन्होंने सीताजीकी देखकर धनुषकी ओर कैसे ताक, जैसे मक्खनकी छोट-से सोंपकी ओर देखते हैं ॥ ४ ॥

दो०—लखन लखेउ राघुवंसमनि ताकेउ हर कोदहु ।

पुनकि गात बोले यखन चरन भापि म्माहु ॥ २५९ ॥

इसका लक्ष्मणजीने देखा कि राघुकुलमणि श्रीरामचन्द्रजीने शिवजीके धनुषकी ओर ताक है, तो वे दरीरके पुनक्ति हो म्माहकी चरनोंसे दबाकर निम्नलिखित बचन बोले— ॥ २५९ ॥

बो०—विसिगुंजरहु कमठ यहि कोका । भरहु धरमि भरि और न कोका ॥

रागु यहि संकर भनु तोरा । होइ सका सुनि भयमु नीरा ॥ १ ॥

हे दिवाजी ! हे धन्वर ! हे शेष ! हे वाराह ! बीरब धरकर सृष्टीको घामे खो, जिसमें यह हिस्से न पावे । श्रीरामचन्द्रजी शिवजीके धनुषको लोभ्य पाइते हैं । मेरी भाषा सुनकर सब सम्पदान हो जाओ ॥ १ ॥

कार समीप रागु जब जाइ । कर बारिह पुर सुकृत मनाइ ॥

सय कर संसठ भय म्माहु । मंद महीरुह कर समिमाहु ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजी जब धनुषके समीप आये, सब सब छी-पुनपौने देवताओं और पुण्योंको मनाया । लखन सन्देह और भयानक नीच राक्षसोंका समिमान, ॥ २ ॥

मृगुपति केरि गरब मस्यह । भुर सुचिन्तइ केरि कदराइ ॥

सिय कर सोनु जमक पछितम्हा । राखिह कर राखन गुण दावा ॥ ३ ॥

राघुरामजीके गर्वकी मुफता, देवता और जोड़ सुनियोंकी कातरता (मय), सीताजीका सोच, जनकका प्रयासान और राक्षसोंके दास्य दुःखका दावानल, ॥ ३ ॥

संगु जब यह बोदियु पाई । ओ जह सब संगु मस्यह ॥

राम सहु जब सिंगु जगक । यहत जब यदि छेउ कबहाक ॥ ४ ॥

ये सब शिवजीके धनुषरणी बड़े जलामसे पाकर, लखन बनाकर उठकर जा चढ़े । ये श्रीरामचन्द्रजीकी सुखयोंके ललसाती जगार राघुजीके पार जाना चाहते हैं, परन्तु कोई केवट नहीं है ॥ ४ ॥

दो०—राम बिल्लेके उमेय सब चित्र लिखे से देखि ।

त्रितई सौप लुपयल्लन जानी बिफल बिसेपि ॥ २६० ॥

श्रीरामजीने सब जोगोंकी ओर देखा और उन्हें विनम्र-सिद्धे हुए-से देखकर फिर

हूराधम श्रीरामजीने सीताजीकी ओर देखा और ऊर्ध्व निक्षेप व्याकुल बना ॥२६०॥

चौ०—देवी विपुल विप्लव मैत्री । निक्षिप दिव्यत कल्प सम तेही ॥

मृदित धरि विलु को छु लक्ष्य । मुर्ध करि का सुधा सङ्गा ॥ १ ॥

उन्होंने बार-बार देखा बहुत ही विप्लव देखा । उनका एक-एक क्षण कल्पके समान सीता या ! यदि पत्नी आदमी पानीके दिना धीरे छोड़ दे, तो उसके भर जानेपर अमृतका ताजाव भी क्या करते ॥ १ ॥

का स्वप्न सम नृसी दुखाने । समय चुके पुनि क वृत्तिताने ॥

अथ त्रिरे जादि अथकी देवी । प्रभु पुछने अखि प्रीति विलेपी ॥ २ ॥

सारी जेहीके मूढ जानेकर कदा किछ कामकी । समय बीत जानेपर फिर पछतानेसे क्या लाभ ! जहाँ देखा समस्तकर श्रीरामजीने सखीजीकी ओर देखा और उनका विशेष प्रेम रखकर वे पुछकर हो गये ॥ २ ॥

पुरहि प्रभुसु मर्हि मय सौम्य । अति कवर्ष उग्रह धनु सीमा ॥

दुर्गच्छ दामिनि किमि वद कवक । पुनि मय धनु मंजुलसम भयक ॥ ३ ॥

मन-धी-मन उन्होंने सुझने प्रणाम किया और बड़ी कृपासे धनुषको उठा लिया । जब उने [हाथमें] लिया, तब वह धनुष विकलीकी तरह कमका और फिर आकाशमें मण्डल-जैसा (मण्डलधर) हो गया ॥ ३ ॥

केत धावत लैल लक्ष्मण । काहुँ न सखा देख सगु दौने ॥

रोहि छन राम मय धनु सोरा । भरे भुवन भुवि घोर कपोरा ॥ ४ ॥

लेखे, चढ़ाते और धौलते लौकते हुए किसीने नहीं सखा (अर्थात् वे तीनों काम इतनी कृपासे कि धनुषको छन उठाया, वह चढ़ाया और वह लौंचा, इसका किसीको पता नहीं लगा) ; अपने भीरुपत्नीको [धनुष लौंचे] लक्ष्मण देखा । उसी क्षण श्रीरामजीने धनुषमें बीजते रोह डाला । भयङ्कर कठोर ज्वलिते [वज्र] लोक भर गये ॥ ४ ॥

छं०—भरे भुवन घोर कठोर वज्र रवि धादि तमि मात्रगु बले ।

विह्वलहि दिग्गज बोल महि अहि कोल कूयन कलमले ॥

सुर अक्षर पुनि कर कान दीन्हें सफल विप्लव विचारही ।

कोईह खंडित राम तुलसी जयति धनन दखारही ॥

घोर कठोर ध्वजसे [वज्र] लोक भर गये, सबके जोड़े मार्ग छोड़कर चलने लगे । दिग्गज विह्वलने लगे, परती डोलने लगी ; लेव, धावत और कन्धक कलमल ठठे । देवता, राक्षस और गुनि कानोंपर हाथ रखकर सब व्याकुल होकर विचारने लगे । तुलसीदासजी कहते हैं, जब [सबके निश्चय हो गया कि] श्रीरामजीने धनुषको तोड़ डाला, तब सब श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति करने लगे ।

छं०—संकर चापु अक्षरु साधक रघुवर बाहुबल ।

धनु सो सफल समाजु चक्षु जो प्रभुमहि मोह बस ॥ २६१ ॥

निजकीध धनुष ज्ञान है और श्रीरामचन्द्रजीकी सुजायोंका बल समुद्र है । [धनुष दृष्टसे] वह सारा समाज हूब क्या जो मोहनक पहले इस अक्षरपर चढ़ा था [निम्नका वर्णन कर आया है] ॥ २६१ ॥

चौ०—प्रभु दोह अपहंर मदि अने । देखि लोग सब मय सुखारे ॥

कौस्तुभ पञ्चविनि फल । प्रेम बारि अक्षरु सुखनव ॥ १ ॥

प्रभुने धनुषके दोनों डुकड़े पृथ्वीपर गल दिये । वह देखकर सब लोग मुन्नी हुए ।
विशामित्रहनी पवित्र समुद्रमें, जिसमें प्रेमस्त्री सुन्दर जगाह कल भरा है ॥ १ ॥

रामरूप रणेशु निहासी । कल नीचि पुलकवलि भारी ॥

बाले नल गहगह निसावा । देवबधू नाचहि करि गाना ॥ २ ॥

रामरूपी पूर्णचन्द्रको देखकर पुलकानलीलसी मारी लहरें बढ़ने लगीं । आकाशमें
बढ़े जोरसे नगाड़े बजने लगे और देवाङ्गनाएँ गान करके नाचने लगीं ॥ २ ॥

ब्रह्मादिक सुर सिद्ध सुवीसा । प्रसुधि प्रसंसहिं देहि असीसा ॥

वरिसहिं सुमन रंग बहुसाध । गावहिं किंवर गीत रसाध ॥ ३ ॥

ब्रह्मा आदि देवता, सिद्ध और मुनीश्वरजोग प्रसुद्धों प्रशंसा कर रहे हैं और
आयोर्वाद दे रहे हैं । वे रंग-निरन्ते फूल और मालाएँ बरसा रहे हैं । किंवरजोप रखते
गीत गा रहे हैं ॥ ३ ॥

रही भुवन मरि बर जय बानी । धनुष भन धुनि बाज न बानी ॥

सुविध कर्हि कई कई कर बारी । भोजन राम संभुषण भारी ॥ ४ ॥

मारे ब्रह्माण्डमें जय-जयकारकी ध्वनि छा गयी, जिसमें धनुष दूटनेकी ध्वनि जान
ही नहीं पड़ती । जहाँ-तहाँ पुरुष-की प्रशंसा होकर बढ़ रहे हैं कि श्रीरामबन्धुजीने
विषमोक्ती मारी धनुषको सोह दाज ॥ ४ ॥

दो०—बंदी भयभय सुमन विरह कर्हि मतिधीर ।

कर्हि निछावरि लोग सब हय गय धन मनि धीर ॥ २१२ ॥

धीर बुद्धिवाले, भाट, मायघ और सुल्लेख निरुदायली (कीर्ति) का बखान कर
रहे हैं । सब लोग धोड़े, हाथी, धन, मणि और वस्त्र निछावर कर रहे हैं ॥ २१२ ॥

चौ०—संज्ञि सुदंग संख सहगई । मेरि लोक दुंदुभी सुहाई ॥

बालहिं धनु बानने सुहाए । कई कई उपनिन्द मंगल गाए ॥ १ ॥

सौत, मूर्दंग, सड्ड, धडनाई, मेरी, दोल और सुहावने नगाड़े आदि बहुत प्रकारके
सुन्दर बाने बज रहे हैं । जहाँ-तहाँ उपनिषों मन्त्रजपित या रही हैं ॥ १ ॥

सखिगह सहित हरषी अति रामी । सुखत धन परा कलु दामी ॥

जगत्त कहैठ सुखु सोखु किहई । पैस धन धन कलु पाई ॥ २ ॥

सखियोंसहित रामी अत्यन्त हर्षित हुई । मानो सुखसे हुए धानपर पानी पड़ गया
हो । जनकजीने सोच त्याग कर सुख प्राप्त किया । मानो तेरे-तेरे थके हुए पुरुषने
खाद्य पा ली हो ॥ २ ॥

भीहत भय भूष धनु दूटे । जैसे दिक्क शीघ्र छवि छूटे ॥

सीध सुखहि भरनिज केहि माली । धनु चालने पड़ जलु खाली ॥ ३ ॥

धनुष दूट जानेपर राजा जोग ऐसे बीहीन (निस्तेज) हो गये जैसे दिनमें दीपककी
शोभा जाती रहती है । सीताजीका सुख निज प्रकार वर्णन किया जहाँ जैसे चातकी
स्वादीका जल पा गयी हो ॥ ३ ॥

रामहि बलधु बिलेखत कैलें । सखिहि पकरे बिलोरकू खेलें ॥

सतानंद तब लखसु खिन्हा । सीतां भजलु राम पई भीन्हा ॥ ४ ॥

श्रीरामजीकी लक्ष्मणजी फिल प्रकार देख रहे हैं जैसे चन्द्रमाको चक्रोका चप्पा देख
रहा हो । सब बालानन्दजीने आकाश ही और सीताजीने श्रीरामजीके पल नयन किया ॥ ४ ॥

दो—संग सखी सुंदर चतुर गार्वाहि मंगलचार ।

रावनी बाढ प्रराढ गति सुषमा अंब अपार ॥ २६३ ॥

साथमें सुन्दर चतुर सखियाँ महाअचारके गीत गा रही हैं, सीताजी वालाहिनीकी चालसे चलीं । उनके अक्षोंमें अपार शोभा है ॥ २६३ ॥

चौ—सखिन्ह मध्य सिन्ध स्नेहति वैसैं । छविगन मध्य महाछवि मैसैं ॥

कर सौख्य जयमाल सुहाई । बिस्व विस्व सोभा बेहि छाई ॥ १ ॥

सखियोंके बीचमें सीताजी कैसी शोभित हो रही हैं, जैसे बहुत-सी छवियोंके बीचमें मशालवि हो । करकमलमें सुन्दर जयमाल है, जिसमें विश्वविजयकी शोभा छावी हुई है ॥ १ ॥

तन लकोनु मन परम उल्लाह । गुह्य प्रेम्नु छवि परह ब काह ॥

बाह समीप राम छवि देखी । रहि जलु दुर्गैरि चित्र भवरेखी ॥ २ ॥

सीताजीके शरीरमें संकोच है, पर मनमें परम उत्साह है । उनका यह गुप्त प्रेम किसीको खान नहीं पड़ रहा है । समीप बाह, भीरमजीकी शोभा देखकर रावकुमारी सीताजी चित्रमें लिखी-सी रह गयीं ॥ २ ॥

चतुर सखी छवि कहा सुहाई । पहिराबहु जयमाल सुहाई ॥

सुनत दुगल कर माल उदाई । प्रेम विचल पहिराह ब काई ॥ ३ ॥

चतुर सखीने यह वृथा देखकर समझाकर कहा—सुहावनी जयमाला पहनाओ । यह सुनकर सीताजीने दोनों हाथोंसे माका उठाया, पर प्रेम्के विषय होनेसे पहनायी नहीं गयी ॥ ३ ॥

सौहत बहु कुन लज्ज सनाह । सखिहि समीत देव जयमाला ॥

गार्वाहि छवि भवलोकि सहेछी । सिरे जयमाल सन उर मेछी ॥ ४ ॥

[उस समय उनके हाथ ऐसे कुचोमित हो रहे हैं] मानो जङ्घिपोंसहित दो कमल चन्द्रमाको बरो हुए जयमाला दे रहे हों । इस छविको देखकर सखियाँ गाने लगीं । तब सीताजीने भीरमजीके गलेमें जयमाला पहना दी ॥ ४ ॥

गौ—रघुवर उर जयमाल देखि देव बरिसहि सुमन ।

सखुछे सकल भुजल अहु बिलोकि रवि कुमुदगन ॥ २६४ ॥

भीरुनायकीके हृदयपर जयमाला देखकर देवता पूछ बरताने लगे । समस्त राजागण इस प्रकार सखुचा गये मानो स्वर्गको देखकर कुमुदोंका समूह सिकुड़ गया हो ।

चौ—पुर अह लोभ पावने जले । लल भयु मखिन सखु सय राजे ॥

भुर विजय कर गौर मुनीछ । जय जय साह दिदि भलीसा ॥ १ ॥

नगर और आसनामें बसे बसे लगे । दुष्टजोग उदास हो गये और सज्जनजोग सय प्रसन्न हो गये । देवता, निजरा, अनुष्य, नाग और मुनीभर जय-जयकार करके आशीर्वाद दे रहे हैं ॥ १ ॥

नाचहि गार्वाहि निवृध क्यूँ । चर चर कुमुदांजलि क्यूँ ॥

साईं तई विष वेद पुनि क्यूँ । जंही विरिहायकि उचरायौ ॥ २ ॥

देवताओंकी स्त्रियाँ नाचती-यात्री हैं । चर-चर हाथोंसे पुष्पोंकी भञ्जलियाँ कूट रही हैं । जहाँ-तहाँ ब्रह्मण वेदजनि कर रहे हैं और गाठजोग विरदाकबी (कुटकीति) वक्षान रहे हैं ॥ २ ॥

मदि पातल नाक समु व्याप । राम करी सिब संकेव चाप ॥

करहि अरती पुर नर गयी । देहि विरहपरि विच विरहारी ॥ ३ ॥

पृथ्वी, पाताल और स्वर्ग तीनों क्षेत्रोंमें वह फैल गया कि श्रीरामचन्द्रजीने धनुष तोड़ दिया और सीतानीको वरण कर लिया । नगरके नर-नारी आरती कर रहे हैं और अपनी पूँजी (हैसियत) को भुलकर (सामर्थ्यसे बहुत अधिक) निराकर कर रहे हैं ॥ ३ ॥

सोइति सीत रत्न कै जोरी । छवि सिम्हाय मनहुं वृद्ध ठोरी ॥

सर्षों कहहि प्रभु पद बहुत सोता । करति न पश्य परस अति सीता ॥ ४ ॥

बीबीता-रामबीबी बोली ऐसी सुशोचित हो रही है अपने सुन्दरता और शृंगार-रस एकत्र हो गये हैं । ससिखों कह रही हैं—सीते ! स्वामीके चरण कुम्भों किन्तु सीतानी अव्यन्त भयभीत हुई उनके चरण नहीं छूती ॥ ४ ॥

दो०—गौतम तिय गति सुरति करि नहि परसति प्य पानि ।

मन विद्वसे रघुवंसमनि प्रीति अलौकिक व्यभि ॥ २६५ ॥

गौतमजीकी [] अहल्याकी गतिका स्मरण करते सीतानी श्रीरामजीके चरणोंको हाथोंसे स्पर्श नहीं कर रही हैं । सीतानीकी अलौकिक प्रीति जानकर रघुकुलमणि श्रीरामचन्द्रजी मनमें हैंते ॥ २६५ ॥

चौ०—सब सिप देखि नृप अनिकाये । दूर कपूत मूढ मन माये ॥

उठि उठि पहिरि सनाह अभाये । कहैं तहाँ मरल बनावन छाये ॥ १ ॥

उस समय सीतानीको देखकर कुछ राजा लज्जा उठे । वे दुष्ट, कुपूत और मूढ़ राजा मनमें बहुत समझाये । वे अभाये उठ-उठकर, कन्ध पहनकर, जहाँ-तहाँ गाल बजाने लगे ॥ १ ॥

केहु उवाह सीत कह कोछ । चरि बाँधहु नृप बाधक होछ ॥

तीरें धनुष बाध नहि तरई । जीतत हमहि तुम्हैर को बरई ॥ २ ॥

कोई कहते हैं, सीतको जीन लो और दोनों राजकुमारोंको पकड़कर बाँध लो । धनुष तोड़नेसे ही बाध नहीं लेगी (पूरी होगी) । हमारे जीते-जी राजकुमारीको कौन बन्धा सकता है ? ॥ २ ॥

चौ० बिरोधु कहु करै तहाई । नीतहु समर सहिष वीर आई ॥

छाहु भूप कोछे सुनि गयी । समसमाजहि कम लजानी ॥ ३ ॥

यदि जनक कुछ कहावता करे, तो युद्धमें दोनों भाईबोसहित उठे भी, जीत लो । वे कখন युद्धकर छाहु राजा बोले—इस [निर्दक] राजसभानको देखकर तो लज भी लगी गयी ॥ ३ ॥

बहु प्रतापु बीरता बजाई । बाध निकलहि संग सिपाई ॥

सौह सुरता कि अब कहूँ पाई । असि बुधितोचि सुईमसि काई ॥ ४ ॥

अरे ! तुम्हारा बल, प्रताप, बीरता, बहादुरी और नाक (मतिज्ञा) तो बहुतको हाथ ही चली गयी । वही वीरता थी कि अब कहीसे मिली है ! ऐसी दुष्ट बुद्धि है, तभी तो विघाताने तुम्हारे मुखोंपर काश्चित् छाया दी ॥ ४ ॥

दो०—देखहु रामहि मयम मरि तखि हरिषा महु कोहु ।

लखन रोधु पावहु प्रबल जनि सलुम जनि होहु ॥ २६६ ॥

ईश्वरों, धर्मद और श्रीव डोढ़कर नेत्र मरकर श्रीरामजी [को छवि] को देख लो । लखनको कोषको प्रबल जनि जानकर उसमें पतने मत बनो ॥ २६६ ॥

चौ०—वैगतेय कलि निमि यह कागू । निमि समुपहै जब चरि मागू ॥

निमि यह फुलक ककरन कोरी । सब संपद यहि क्षिपवोरी ॥ १ ॥

जैसे गन्धर्व भाग करेगा चाहे, शिखर भाग करेगा चाहे, बिना कारण ही मोघ करनेवाला अपनी कुबल चाहे, शिखरजी विरोध करनेवाला सब प्रकारकी सहायति चाहे ॥ १ ॥

सोभी सोकुप कल कीरति चहई । जकलकल नि कभी कहई ॥

हरि पद विमुक्त परम गति चाहा । तब तुम्हार कलकु नरनाहा ॥ २ ॥

सोभी-बालकी सुन्दर धीरिं चाहे, कभी मनुष्य निष्कलंकता [चाहे तो] क्या पा सकता है । और जैसे श्रीहरिके चरणसे विमुक्त मनुष्य परमगति (मोक्ष) चाहे, हे रामजी ! सीतके लिये गुरुतरा कालच भी पैदा ही न्यर्थ है ॥ २ ॥

कोहाइलु मुनि सब सखनी । खरी लबाइ बाई बई शनी ॥

राम मुनवै पके गुन पानी । छिप समेटु बलत मन भाई ॥ ३ ॥

कोहाइल हुनकर सीताजी खोजी हो गयीं । सब खसियों उन्हें वहाँ के गयी जहाँ गयी (सीताजीकी मर्यादा) थी । श्रीरामचन्द्रजी मनमें सीताजीके प्रेमका बलान करते हुए स्वाभाविक बाछवे गुनवैके पास पके ॥ ३ ॥

रामिन्ह छवि छोप कल सीता । भव भी चिबिदि कह कानीया ॥

भूप बचप मुनि दूक बत कहई । कलकु राम कर कौकि न कहई ॥ ४ ॥

रामियोंनेछिद सीताजी [हुए राखामोंके दुर्बल पुनकर] छोपके बात हैं कि न जाने मिथ्या भव क्या करनेवाले हैं । राखामोंके कल पुनकर कक्षमयी हृदय-उत्तर ताकते हैं । किन्तु श्रीरामचन्द्रजीके डरते कुछ बोल नहीं सकते ॥ ४ ॥

श्री—प्रथम तत्काल शृङ्खली कुटिल चित्तकल सुपम्ह लकोप ।

मनहुँ मल गज गज मिरलि सिध कितोरहि कोप ॥ २५७ ॥

उनके नेत्र लाल और भीरे टेढ़ी हो गयीं और वे क्रोधसे राजाजीकी ओर देखने लगे । मनमें मतवाले शिवयोगी हाँ देखकर सिद्धके नन्देको खेद भा गया हो ॥ २५७ ॥

चौ—खरमद बैलि मिळत पुर गयीं । सब मिलि देहि महीलह गयीं ॥

देहि जवहार मुनि छिन्न जनु भंग । जवहार मुनिमुक्त कमल पत्ता ॥ १ ॥

खरमदी देखकर जलधुरंधी जियों बालुक हो गयीं और सब मिलकर राखामों-से गालियाँ देने लगीं । उसी मौकेपर जिनकीके जनुवक दूटना सुनकर मुनिमुक्तकी कमलके धूर्प परशुरामजी आगे ॥ १ ॥

देहि महीप सल्ल सल्लबावे । कमल कल जनु कल सुकाले ॥

गीरी सरीर मुनि यल आवा । यल विसल जिवंद विहाता ॥ २ ॥

इन्ने देखकर सब राजा सकुचा गये, मनमें बलके समुत्तेर बंदे हुए (छिन्न) गये हैं । गौर शरीर पर निभूति (भस्म) बदी पल रही है, और विषाद ललाट पर विपुल विशेष घोरम दे रहा है ॥ २ ॥

सीत जल सखिबदनु सुलभा । सिखर कलकल होइ भावा ॥

शृङ्खली कुटिल नम रित रावे । सहबई पितल मवहुँ रिसते ॥ ३ ॥

सिरपर बड़ा है, सुन्दर मुखचन्द्र कोपके कारण कुछ जल हो आया है । योंही टेढ़ी और आँखें क्रोधसे लाल हैं । सत्य ही देखते हैं, तो भी ऐसा बल पकड़ है मल्लो कोष कर रहे हैं ॥ ३ ॥

रूपम कल बर बाहु रिसल । पद जलेक मांठ सुपका ॥

कटि मुनि कल दन हूइ नींद । जनु सर कर कुलक कल कीरें ॥ ४ ॥

नैलके समान (ऊँचे और पुष्ट) कपे हैं, छाती और मुजाएँ विशाल हैं । सुन्दर यज्ञोपवीत धारण किये, मात्सा पहने और मृगकर्ण किये हैं । कमरमें मुनियोंका कण (कल्ल) और दो तरकस बाँधे हैं । हाथमें वनस्पत-बाण और सुन्दर कबजर करता धारण किये हैं ॥४॥

दो०—सांत वेधु करनी पठित चरनि न जाइ सख्य ।

धरि मुनि ननु जनु पौर रसु वायड जई सब भूप ॥ २६८ ॥

शान्त वेध है, परन्तु करनी बहुत कठोर है; सरूपका वर्णन नहीं किया जा सकता । माने दीर-रस ही मुनिका शरीर धारण करके ज्यों सब राजा लोग हैं वहाँ जा गया हो ॥२६८॥

चौ०—देखत भृगुपति वेधु करता । ठठे सकल भय निरुल मुग्राछ ॥

विशु समेत कहि कहि निरुल गमा । कये करन सब रज प्रनामा ॥ १ ॥

परशुरामजीका भयानक वेध देखकर सब राजा मरते व्याकुल हो उठ सके हुए और वितासहित अपना नाम कहे-कहेकर सब दण्डका प्रणाम करने लगे ॥ १ ॥

जेहि सुभायें वितथहि दिशु जानै । सो जानइ जनु आइ सुगानी ॥

जन्मक चहोरि आइ सिध गवा । सीध कोलइ प्रनामु करावा ॥ २ ॥

परशुरामजी दिशु समझकर भी सहल ही मिली और देख लेते हैं, वह समझता है गानो मेरी आशु पूरी हो गयी । फिर जनकजीने आकर फिर नवावा और सीताजीको मुलाकर प्रणाम कराया ॥ २ ॥

आसिष दीन्हि सर्षी हरपाषी । विरु समस्त कै गई लक्ष्मी ॥

विश्वामित्रु मिले पुनि आई । पद सरोज सेठे रोक आई ॥ ३ ॥

परशुरामजीने सीताजीको आशीर्वाद दिया । लक्ष्मी लक्ष्मी हुई और [वहाँ जब अधिक दूर उड़ना ठीक न समझकर] वे सखी लक्ष्मी उनको अपनी मण्डलीमें ले गयीं । फिर विश्वामित्रजी आकर मिले और उन्होंने दोनों बाइबाईके उनके करण-कमलोंपर गिराया ॥ ३ ॥

राजु ककहु एसरक के होय । दीन्हि जसीत वेनि अरु जोय ॥

रामहि वितइ रहे बकि कोचन । कय जकर मर सब मोचन ॥ ४ ॥

[विश्वामित्रजीने कहे—] वे राज और उसका राज दशरथके पुत्र हैं । उनकी सुन्दर जोड़ी देखकर परशुरामजीने आशीर्वाद दिया । कमरेके भी मरको बुझनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके अपार रूपके देखकर उनके पैर बकित (सम्भित) हो रहे ॥ ४ ॥

दो०—बहुरि बिलोकि विदेह सब ककहु काद गति मीर ।

पूँछत जानि अज्ञान जिमि न्यायेत कोषु सररीर ॥ २६९ ॥

फिर सब देखकर, जानते हुए भी अज्ञानकी तरह जनकजीसे पूछते हैं कि क्यों [] बड़ी भारी भीड़ कैसी है ! उनके करीयों कोष छा गया ॥ २६९ ॥

चौ०—समाचार कहि जकं मुग्राछ । जेहि करण अहीन सब आप ॥

मुन्या बचन प्रिनि जगत निहने । वेधो नय खंड कहि करे ॥ १ ॥

जित कारण सब राजा जाये वे; राजा जनकने वे सब समाचार कह सुनाये । जनकके बचन सुनकर परशुरामजीने फिरकर दूसरी ओर देखा तो वनस्पते के पदों पर पड़े हुए दिखायी दिये ॥ १ ॥

अति रिक्त कोठे बचन करोय । कहु जय जयक वनस्पत कै तोर ॥

वेनि देखात सुत न त आइ । उठतई महि जई कहि सब राय ॥ २ ॥

अत्यन्त शोकमें मरकर वे कतोर बचन बोले—ये पूर्व जनक ! वता, वनस्पतियने

तोड़ा ! उधे श्रीम दिखत, नहीं तों अरे घूड ! आज मैं जहाँतक तेस राज्य है, तूँतककी
पृथ्वी ललट दूँगा ॥ २ ॥

जति हरु उत्तर देत नृपु नहीं । कुरिह सूप हरये मन माहीं ॥ ३ ॥

सुर मुनि नाम नगर कर गरी । सोचहि सकल जग उर भारी ॥ ४ ॥

राजाको सत्पत्त बर जगा, सिनै कारण वे उत्तर नहीं देते । यह देखकर कुरिह
राजा मनमें बड़े प्रसन्न हुए । देखा, मुनि, नाम और नगरके श्री-पुनर सभी सोच करने
लगे; सबके हृदयमें बड़ा भय है ॥ ३ ॥

मय पछिताति रथि सहसारी । विधि नव सँवरी बात विगारी ॥ ५ ॥

श्रुपति कर सुभात सुनि लीख । अरथ निमेष कल्प सम बीता ॥ ६ ॥

सीताजीकी माता मनमें पछता रही हैं कि शत्रु ! विघाताने अब बनी बनायी बात
निगाह दी । परशुरामजीका स्वभाव सुनकर सीताजीको भावा क्षय भी कष्टके समान
धीनने लगा ॥ ४ ॥

दो०—समय विलोके खेग सय जानि जानकी भीर ।

हृदय न हरपु विपादु कहु बोले धीरघुषीर ॥ २७० ॥

तब श्रीरामचन्द्रजी छत्र लोगोंको भयभीत देखकर और सीताजीको डरी हुई जानकर
बोले—उनके हृदयमें न कुछ शय या न विपाद—॥ २७० ॥

मासपारायण, नवाँ विश्राम

बौ०—नाथ संतु धनु मंजविहार । शीर्षि केड एक दास तुम्हारा ॥

आपहु ब्रह्म कहिभ किन मोही । सुनि रिषाद बोले मुनि कोही ॥ १ ॥

हे नाथ ! शिवजीके धनुषमें तोड़नेवाला आपका कोई एक दास ही होगा । क्या
भाषा है, मुझसे क्यों नहीं कहते ? यह सुनकर गोपी मुनि रिषाद बोले— ॥ १ ॥

सैवहु सो नो करै सेवकार । भरि करबी करि करिह कराई ॥

धनुहु नाम जैहि सिव धनु सोरा । सहस्रहु सम सो रिपु मोरा ॥ २ ॥

सैव वह है तो सेवका काम करे । धनुष काम करके तो लड़ाई ही करनी चाहिये ।
हे राम ! तुम, जिसने शिवजीके धनुषमें तोड़ा है, वह सहस्रोंहुके समान मेरा शत्रु है ॥ २ ॥

सो भिलगाड बिहाइ समाया । ब त मारे जैहि सय राया ॥ ३ ॥

मुनि मुनि बचन छानन मुसुखाने । बोले परशुधरहि अपमाने ॥ ४ ॥

यह इस समाजको छोड़कर अलग हो जाय, नहीं तो सभी राजा मारे जायेंगे । मुनिके
बचन सुनकर लक्ष्मणजी मुसुकारने और परशुरामजीका अपमान करते हुए बोले— ॥ ३ ॥

बहु धनुही तोरी करिहार् । कबहु न भसि रिस कीनिहोसाई ॥

एहि धनु पर मसल केहि हेत । मुनि रिषाद कहि श्रुहुकेहे ॥ ४ ॥

हे गोशर्मा ! लक्ष्मणमें हमने बहुत-सी धनुषियाँ तोड़ डालीं । किन्तु आपने ऐसा
क्रोध कभी नहीं किया । इसी धनुषपर इतनी प्रशंसा कि, कारणते है ! यह सुनकर
भगुंवाजी धनान्तरूप परशुरामजी हृषित होकर कहने लगे— ॥ ४ ॥

दो०—दे नृप बालक काल बस बोलत तोहि व सँभार ।

धनुही सम विपुहारि धनु विविध, सकल संसार ॥ २७१ ॥

... अरे राजपुत्र ! कालके वस होनेसे तुझे बोलनेमें कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है । मारे संभारने
विप्रात शिवजीका धनुष नया धनुषके समान है ! ॥ २७१ ॥

चौ०—सज्जन कहा हैसि हमरें जाना । सुखहु देव सब धनुष सज्जाना ॥
 के छति जसु नव धनु छोरे । देखा राम कबर के भोरें ॥ १ ॥
 नैमिषजीने हैवकर कहा—दे देव ! सुनिने, हमारे-बानमें जो सभी धनुष एक-ठे
 टी हैं । पुराने धनुषके छेदनेमें क्या छानि-खन ! जीरामचन्द्रजीने तो इसे नवीनके
 घोलेले देखा था ॥ ३ ॥

सुखत दूर धनुषीहुं न होय । सुनि विषु कल करिष कल रोय ॥
 बोले पितर पसु की ओर । देखत सुनिहि सुखत न मोर ॥ २ ॥
 फिर तब तो खूबे टी दूट गया । इसमें धनुषानवीन भी कोई दोष नहीं है ।
 हे सुनि ! माप बिना ही खरब तिसरिने श्रेय करी हैं । परधनुषकी अपने फलेकी
 ओर देखकर बोले—अरे दुष्ट ! तुम क्या लाभ नहीं सुना ॥ २ ॥

पाठकु बोकि बचतें नहि सोही । केसु सुनि फल कहि नोही ॥
 बाक मरणासी भति कोही । किल विहित जनि कुल प्रोही ॥ ३ ॥
 मैं तुमसे राक्षस बनकर नहीं भरत हूँ । नरे मूर्ख ! क्या दू मुझे निरा सुनि
 ही जानसा है ! मैं दालजलकारी और अनन्त श्रेणी हूँ । क्षत्रियकुलका धनु तो
 विद्वज्जने मिलता हूँ ॥ २ ॥

तुम यक मुनि भूप पितु पीयरी । विपुल कर भविष्यक दीयरी ॥
 धनुषपातु धुन केदमिहता । परसु किलेख महीपहुमारा ॥ ४ ॥
 अपनी मुद्राओंके लक्षों में पृथ्वीको राजाजोति रहित कर दिया और बहुत बार
 उधे आकाशको देखा । हे राजकुमार ! धनुषपातुकी मुद्राओंको कानेबाजे से इत
 फाँसेकी देख ॥ ४ ॥

पौ०—मातु पितरि जनि सोच कस करसि महीस किलोरे ।
 गर्भरु के गर्भक दलन करसु मोर भति छोरे ॥ ५ ॥
 अरे राजाके बालक ! तू अपने माता-पिताको गोचके बंधन न कर । बैरा कल
 क्या भयानक है, वह गर्भके कल्लोंका भी नाश करनेवाला है ॥ २० ॥

चौ०—विदित छलनु, बोले महु माकी । भयो हुनोनु महा भयानकी ॥
 पुनि पुनि मोहि देखाव कुलक । कल उदयन कुंकि पदारु ॥ ६ ॥
 कलपाकी हँसकर कीमल नागजि बोले—अहो, सुनीकर तो अपनेको क्या भारी
 मोक्षा समझते हैं । बार-बार मुसीकुलवादी दिखाते हैं । तुमने बहुत उदयन चारते हैं ॥ २ ॥

इही कुम्हदधलिता कोट कहाँ । ये जलनी देखि नरि माहीं ॥
 देखि कुलक उलसन कल । से कल कहा अहित अधिमान ॥ ७ ॥

गौ०—कोई कुम्हदेकी नडिवा (छोटा-कल फल) नहीं है, जो तर्की (अपने
 भाग्यकी) जंगलीकी देखते ही भर जाती है । कुमार और धनुष-नाम देखकर ही मैंने
 कुछ अभिमानधरित कहा था ॥ २ ॥

धनुषधन लघुधि जनेन मिलेकी । जो कल कलु रुद्धें सिल रोकी ॥
 सुन महिसुर इविषय कर गई । हयरे कल रुद्ध पर यो सुनार ॥ ८ ॥

धनुषधनी समझकर और कलौषीय देखकर तो जो कुछ लब्ध करते हैं उसे मैं
 कोपकी रोमलर खी लेता हूँ । देखा, प्राणके, ममताके भय और यो, इनपर इसके
 कुलमें पीता नहीं दितांकी जाती ॥ २ ॥

बने पापु लक्ष्मीरति हरे । मारवहुँ पा पति सुभार ।

कोटि कुटिल सम बधु सुहृद । अप्यं घरहु पति सख सुभार ॥ ५ ॥

क्योंकि हमें मालेसे आप समान है और इसके हार अपनेर अपकीर्ति होती है । इसलिये आप मारें तो भी आपके पैर ही पड़ना चाहिये । आपका एक-एक वचन ही करोड़ों बरोंके समान है । धनुष-बाण और कुठार तो आप अवश्य ही धारण करते हैं ॥ ५ ॥

दो—जो पिछोकि अनुचित कहेवैं छमहु महासुनि धीर ।

सुनि सरोर सुमुखस्मानि बोले गिरा गभीर ॥ २७३ ॥

इन्हें (धनुष बाण और कुठारको) देखकर मैंने कुछ अनुचित कहा हो, तो उठे हे धीर महासुनि ! क्षमा कीजिये । यह सुनकर धनुषस्मानी परशुरामजी श्रेष्ठके साथ गभीर गणी बोले— ॥ २७३ ॥

धौ—सौंसिक सुमुख मंद बहु कलहु । कुटिल कलह निज कुल बाहु ॥

पाहु बल राखे कलहु । निपट निरंकुश अनुघ कलहु ॥ १ ॥

हे पिछासिक ! सुनो, यह बाहु बड़ा कुबुद्धि और कुटिल है; काँके वध होकर यह अपने कुलका वातक बन रहा है । यह सर्वकषकी पूर्ण कन्दक कलहु है । यह विस्तृत उदर, मुख और निधर है ॥ १ ॥

काह कलहु होइहि कव महीं । अर्धे पुकारि सोरि मोहि महीं ॥

सुम्ह हकहु लीं पणु ठगरा । कहि प्रताप बहु रोषु हमारा ॥ २ ॥

अभी क्षणभरमें यह कलहु बाण हो गइया । मैं पुकारकर कोई देता हूँ, फिर इसे दोष नहीं है । यदि मैं इसे बचना चाहते हो तो हमारा प्रताप, बल और श्रेष्ठ कलाकर इसे मना कर दो ॥ २ ॥

कलह कहेउ सुनि सुमुख सुभारा । सुम्हि अकल को कलै फल ॥

बचने सुँह सुम्ह लखि करी । कर अनेक सौंसि बहु बरनी ॥ ३ ॥

लक्ष्मणजीने कहा—हे सुनि ! आपका मुख आपके रहते दूसरा तीन वर्षान कर सकता है । आने अपने ही सुँहसे अपनी कर्नी अनेकों बार बहुत प्रकाशते वर्णन को है ॥ ३ ॥

नहिं संतीवु व सुनि कहु कहु । चमि रिस तेकिहुकर कहु लहु ॥

वीरवरी सुम्ह वीर बलीय । गली दैत व पणहु सोभा ॥ ४ ॥

इतनेपर भी कन्तेव न हुआ हो तो फिर कुछ कह चाहिये । श्रेष्ठ रोकर अक्षय दुःख भव लिये । कम वीरताका अत कारण करनेवाले, वैवर्णा और सोमप्रदित हैं । गली देते सोभा नहीं पाते ॥ ४ ॥

दो—सूर समर करनी कर्नाहि कहि न जवाकीहि मायु ।

विद्यमान रज पाह रिषु फायर कर्नाहि प्रतापु ॥ २७४ ॥

छापीर तो युद्धमें करनी (धुरीणाका कार्य) करते हैं, कदर अपनेको नहीं जनाते । शत्रुको युद्धमें उपस्थित पाकर अकर ही अपने प्रतापकी बौब मारा करते हैं ॥ २७४ ॥

धौ—सुम्ह ती काहु हर्कि अनु कव । कर कर मोहि लखि मोहता ॥

सुगव कवन के कवन कठोर । पणु सुम्हरी परेव कर घोरा ॥ ५ ॥

आप तो मानो काँके छँक व्याकर नर-वार उठे सेर लिये बुझाते हैं । लक्ष्मणजी-के कठोर वचन सुनते ही फल्लारामजीने अपने गवाक, परसेछे सुधारकर हाथमें छे लिया ।

अब तनि पैह दोसु मोहि छेगू । कलहाही मलहु कव जोगू ॥

काह किरीकि कलुव मैं बाँच । अब बहु मरनिहार, अब लौक ॥ ६ ॥

[और बोले—] अब लोग मुझे रोष न दें। वह कहना बोलनेवाला वाल्मीकि मेरे जानेके ही योग्य है। इसे वाल्मीकि देखकर मैंने बहुत कष्टों पर अब यह कष्ट मुझ मरनेको ही आ गया है ॥ २ ॥

कौशिक कहा उमिष अफरावू। बाल दोष मुन नहीं न साधू ॥

सर कुटार मैं समस्त कोही। जगें अपराधी सुखदोही ॥ ३ ॥

विश्वामित्रजीने कहा—अपराध इसा कीजिये। वाल्मीकि के दोष और गुणों का प्रयोग नहीं गिनते। [परशुरामजी बोले—] वीरों का कुटार मैं दण्डादित और शोभी, और यह सुखदोही और अपराधी मैं सामने—॥ ३ ॥

उत्तर देत छोड़त बिधु मारें। केवल कौशिक सीक तुम्हारें ॥

न त यदि करि कुटार कठोरें। गुरदि उरिष होतें अस धीरें ॥ ४ ॥

उत्तर दे रहा है। इतनेपर भी मैं इसे बिना मारे छोड़ रहा हूँ, तो हे विश्वामित्र ! केवल तुम्हारे हीन (प्रेम) से। नहीं तो इसे इत कठोर कुटारसे काटकर थोड़े ही परिश्रमसे मुझसे उद्धार हो जाता ॥ ४ ॥

दो०—वाचिष्ठमु कह हृदयें हंसि मुनिहि हरिभरद सख ॥

अथमय खोंड न ऊचमय अजहुँ न बूझ भवूझ ॥ २७५ ॥

विश्वामित्रजीने हृदयमें हँसकर कहा—मुनि को हरा-ही-हरा सख रहा है (अर्थात् सर्व विषयी होनेके कारण वे औरत-अन्यकों भी लक्षारण अभिष ही समझ रहे हैं)। किन्तु यह खोहमयी (केवल प्रौढादकी बनी हुई) खोंड (खोंडा—खट्वा) है, खजकी (रसकी) खोंड नहीं है [जो मुझमें छेदे ही गल जाय। खेद है,] मुनि अब भी वैलम्ब धने हुए हैं, इनके प्रभावको नहीं समझ रहे हैं ॥ २७५ ॥

चौ०—कदैल लखन मुनि सीख तुम्हारा। को यदि अब विदित संसारा ॥

माता पितरि उरिष भए नीकें। गुर रिनु रहा सीखु बह लोके ॥ १ ॥

लक्ष्मणजीने कहा—हे मुनि ! आपके शीलको कौन नहीं जानता ? वह संसारभरमें प्रसिद्ध है। आप माता पितासे तो अच्छी तरह सम्मान हो ही गये; अब सुकृत श्रम रहा, जिसका बीने कहा लोच लगा है ॥ १ ॥

सो लहु इनरीदि मागे कथा। दिव ककि भए कथा बह बाका ॥

अब आनिभ कथहरिष कोही। सुख देतें मैं पैसी कोही ॥ २ ॥

यह मानो हमारे ही मरने कादा था। बहुत दिव बीते गये, इससे व्यास भी बहुत बड़ गया होगा। अब किसी दिलाव करनेवालेको तुल्य छाहके, तो मैं तुरंत पैसी लोचन दे हूँ ॥ २ ॥

मुनि कहु कवन कुटार सुकस्त। हाय हाय सब सप्त पुकारा ॥

गुरावर परसु देखावहु मोही। किम विनारी कथैं सुखदोही ॥ ३ ॥

लक्ष्मणजीने कहुए कवन मुनकर परशुरामजीने कुटार सम्हाला। तारी सप्त हाय ! हाय ! करके पुकार उठी। [लक्ष्मणजीने कहा—] हे मयुभेद ! आप मुझे परदा दिया रहे हैं ? पर हे राजाजीके अनु ! मैं ब्राह्मण खजाना बना रहा हूँ (शरा दे रहा हूँ) ॥ ३ ॥

मिळे न कबहुँ सुखट रन गढ़े। दिव देवता कदि के बादे ॥

अनुचित कदि सब लोच पुकसे। राहुति सम्महि कस्तु पेवारे ॥ ४ ॥

आपको कभी राजाजीर वस्त्रात् धीर नहीं मिले। हे ब्राह्मण देवता ! क्षम पराधीने

वदे हैं । यह सुनकर अनुचित है, अनुचित है' कहकर छत्र-छोग पुकार ठठे । तब श्रीरामचन्द्रजीने इधारेसे लक्ष्मणजीके रोक दिया ॥ ४ ॥

दो०—लखन उत्तर माहुति सरिस मृगुधर कोषु कसालु ।

बहुत देखि जल सम दखन बोले रघुकुलभातु ॥ २७६ ॥

लक्ष्मणजीके उत्तरसे, जो जाहुतिके समान थे, परशुरामजीके क्रोधरूपी अग्निको पड़ते देखकर रघुकुलके पूर्व श्रीरामचन्द्रजी जलके समान (छान्त करनेवाले) बचन बोले—

चौ०—भाय करहु जलक पर जोहू । सूच दूषमुक्त करिष न कोहू ॥

जौं पै प्रभु प्रसाद कहु जानू । तौ कि कदावरि कस्त अयातु ॥ १ ॥

हे भाय ! जलकर जूझा कीजिये । इस धीधे और दूषमुँहे बचनेपर क्रोध न कीजिये । यदि यह प्रभुका (आपका) कुछ भी प्रभाव जानता, तो स्वा यह बेसमय आपकी बराबरी करता ? ॥ १ ॥

जीं करिषा कहु अक्षरि करहीं । गुर विनु भातु मोय न मरहीं ॥

करिष कृपा सिधु लेख्य जाणी । इन्ह सम सीक वीर मुनि प्यानी ॥ २ ॥

जालक यदि कुछ चपलता भी करते हैं, तो गुरु, पिता और माता मनमें मानन्दसे भर जाते हैं । अतः इते छोटा बच्चा और सेवक जानकर कृपा कीजिये । आप तो समदर्शी, सुशील, धीर और शानी मुनि हैं ॥ २ ॥

राम बचन सुनि कहक सुनारो । कहि कहु कहु बहुरि मुमुकाने ॥

हँसत देखि नक सिख रिस प्यापी । रंस तोर आसा बह पापी ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके बचन सुनकर वे कुछ ठठे पड़े । इतनेमें लक्ष्मणजी कुछ कहकर फिर मुकता दिये । उनको हँसते देखकर परशुरामजीके नलते शिखातक (सारे शरीरमें) क्रोध छा गया । उन्होंने कहा—हे राम ! तेरा भार्य बड़ा पापी है ॥ ३ ॥

गौर छेरीर खास भन माहीं । कालकूमर क्यमुच पाहीं ॥

सहज देख जगुद्वारा न ठोही । चीनु सीनु सम देख न मोही ॥ ४ ॥

यह शरीरसे गोरा, पर हृदयका बंदा कसा है । यह विधुमल है, दुधमुँहा नहीं । स्वभावसे ही टेढ़ा है, तेरा अनुसरण नहीं करता (तैरे-मोहा धोख्यान नहीं है) यह नीच तुझे काँके समान नहीं देखता ॥ ४ ॥

दो०—लखन कहेत हँसि सुमह मुनि कोषु पाप कर भूख ।

लेहि बस जन अनुचित करहि खरहि विस्व प्रतिकूल ॥ २७७ ॥

लक्ष्मणजीने हँसकर कहा—हे मुनि ! मुनिये, क्रोध पापका मूल है, जिसके जगमें शंकर मनुष्य अनुचित कर्म कर बैठते हैं और विषमरूपे प्रतिकूल पड़ते (सबका भविष्य करते) हैं ॥ २७७ ॥

चौ०—मैं तुम्हारे अनुकर मुक्तिवा । परिहरि कोषु करिष अथ दया-॥

तुम नहिं समेहि सिंहावे । बैठिष होईहि पाप पिराने ॥ १ ॥

हे मुनिराज ! मैं आपका दास हूँ । अब क्रोध त्याग कर दया कीजिये ! दूठा दुमां धनुष क्रोध करनेसे खड़ नहीं जायगा । खड़े-खड़े पैर दुखाने लो होंगे, बैठ जाइये ॥ १ ॥

औं अस्ति शिव तौ करिष उपाई । कोरिष कोय न सुनी बोलाई ॥

थोकर लखनहिं जनहुं ऐराहीं । मंद करहु अनुचित भन माहीं ॥ २ ॥

... यदि धनुष अत्यन्त ही प्रिय हो तो कोई उपाय किया जाय और किसी बड़े गुणी

(करीमर) को बुलाकर जुड़वा दिया जाय । ललमणीकी योत्नासे कनकजी डर जाते हैं और कहते हैं—यस, तू प रहिये, अतुलित योत्ना अच्छा नहीं ॥ २ ॥

धर धर कौंपहिं पुर पर मारी । छोट कुमार छोट पुर मारी ॥

भृगुपति मुनि मुनि निरभय जानी । सिस तन बहद होइ बल हानी ॥ ३ ॥

कनकपुरके स्त्री-पुरुष भर-भर कौंप रहे हैं [और मन-ही-मन कह रहे हैं कि] छोटा कुमार क्या ही छोटा है । ललमणीकी निर्भय चाणी सुन-सुनकर परशुरामजीका खीर कोमलते जाल ॥ यदा है और उनके बलकी दाहि हो-रही है (उनका बल बट रहा है) ॥ ३ ॥

खोले रामदि देखे निहोया । बकई बिचारि बंधु बन्धु तोरा ॥

मनु मर्दान सहु सुंदर कैल । विपत्त भरा कनकबटु जैल ॥ ४ ॥

तब श्रीरामचन्द्रजीपर गदगद कनाकर परशुरामजी थोड़े—तेरा छोटा भाई समझपर मैं इसे क्या रहा हूँ । पर मनका मैत्र और मरीचका कैला सुन्दर है, जैसे बिकसे रखे भरा हुआ सोनेका पड़ा ! ॥ ४ ॥

चौ०—मुनि लछिमन बिरसे बहुरि नयन लरेरे राम ।

गुर समीप बसने सकुचि परिहरि वाणी बाम ॥ २७८ ॥

इह सुनकर ललमणी फिर हँसे । तब श्रीरामचन्द्रजीने तिरछी नजरसे उनकी ओर देखा, जिससे ललमणी सकुचाकर, विरपेय बोलना छोड़कर, शुकजीके पास चले गये ॥ २७८ ॥

चौ०—बलि विनीत बहू सीतल पायी । रोके सहु जोरि ह्रास पायी ॥

सुनहु नाथ गुरइ सख्य सुमान । बालक बचु करिष बहिं जाना ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजी दोनों राम बोझकर अपना विनयके स्वर कोमल और धीमे बाली बोले—हे नाथ ! मुनिने, आप तो स्वभावसे ही सुमान हैं । आप बालकके पचनपर फान न कीजिये (उन्हें सुना-अनसुना कर दीजिये) ॥ १ ॥

बारी बालक कहु सुभाक । इन्हहि न संत बिहूबहिं जान ॥

तेहि नारी कहु काज विगास । अन्तधी में जाय दुम्भारा ॥ २ ॥

हाँ और बालकका एक स्वभाव है, संतजन इन्हे कभी दौप नहीं बताते । फिर संतने (ललमणी) तो कुछ काम भी नहीं दिगाका है, हे नान । आपका अपनाही तो मैं हूँ ॥ २ ॥

कुछ कोपु बहू कैवय मोझाई । मे पर करिष दास की नारी ॥

कहिल बेनि तेहि बिधि सिस नारी । मुनिबाक सीध कलै कपारी ॥ ३ ॥

अतः हे स्वामी ! कुछ, श्रेय, वन और कपन, जो कुछ करता हो, दासकी तरफ (अर्थात् दास समझकर) मुझपर कीजिये । जिस प्रकारसे बीम भगवत कोष पूर हो, हे मुनिनाथ ! काजिये, मैं यही उपाय करूँ ॥ ३ ॥

कह मुनि राम कह सिस कैल । कान्हू अकुल सब रिख जैल ॥

पवि कैं कंड कुआर न दीन्दर । लौ में काह जोपु करि कौन्दा ॥ ४ ॥

मुनिने कहा—हे राम ! श्रेय कैले जन, जब भी तेरा छोटा भाई देखा ही तक रहा है । इसकी गर्दनपर मैंने कुठार न जलवा, जो श्रेय करके निरा ही क्या ! ॥ ४ ॥

चौ०—गर्म सवहिं मचनिपु रचनि मुनि कुआर गति घोर ।

परसु मल्लत देखै विमल । बैरी सुपकिसोर ॥ २७९ ॥

मेरे लिए कुठारकी घोर कलौ सुनकर राजबोधी जिनके, गर्म गिर पड़ते हैं, उसी प्रकारके रहते मैं इस बहू रजपुत्रको जीवित देख रहा हूँ ॥ २७९ ॥

प० स० १३—

राम कहेउ रिस तजिब सुनीस। वन कुंठन क्यों यह सीसा ॥

मेहि रिस बाइकरिबसोइसकमी। नैहि जनिब अपन गनुगामी ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने [प्रकट] कहा—हे सुनीसर। श्रेय छोड़िने। आपके हाथमें कुठार है और मेरा यह सिर आगे है। निज प्रकार जातका श्रेय जग, हे स्वामी। वही कीजिये। मुझे अपना बलुकर (दास) जानिये ॥ ४ ॥

दो—प्रभुहि सेवकहि समरु कस ठहहु विप्रवर रोसु।

बेधु बिलोकें कहेसि कहु बालकह नहि दोसु ॥ २८१ ॥

स्वामी और सेवकमें युद्ध कैसा ? हे बालकचन्द्र ! श्रेयकर स्थान कीजिये। आपका [बालक-सा] श्रेय देखकर ही बालकने कुछ कह सका था; बासपायों उलझां भी कोई रीप नहीं है ॥ २८१ ॥

चौ—नेहि कुठार बाण बधु चली। मै करिकहि रिस बीच विप्रवरी ॥

नासु बाल वै दुम्हहि न, कीम्हर। बंस सुमयमें उरक लेहि दीम्हरा ॥ १ ॥

आपको कुठार, बाण और बधुष धारण सिने देखकर और और समझकर बालकको फ्रांस आ गया। वह आपका नाम तो जानता था, पर उसने आपको पहचाना नहीं। अपने श्रेय (रसुरास) के स्वभावके अनुसार उसने उत्तर दिया ॥ १ ॥

श्री दुम्ह शीतोहु मुनि की चहई। यह रज सिर सिद्धु बरत गौसई ॥

कमहु बलु। जयजानत केरी। बहिष विप्र दर कुल धरौरी ॥ २ ॥

यदि आप मुनिकी तरह आते तो हे स्वामी। बाणक आपके धरणीकी भूमि फिरपर रखता। भक्तजानेकी मूलको धर्म कर दीजिये। बालकोंके हृदयमें बहुत अधिक रसा होनी चाहिये ॥ २ ॥

इमहि दुम्हहि सरिचरि कसि नम। कहु न कहीं चरन कहीं नाथा ॥

राम मान कहु नाम इमारा। परसु सहित कहु नाम तोहारा ॥ ३ ॥

हे नाथ। इसारी और आपकी कण्वरी कैसी ? बनिने न, कहीं चरण और कहीं मस्तक। कहीं मेरा रामनाम छोड़ा-जा नामऔर कहीं आपका परसुसहित बड़ा नाम ॥ ३ ॥

बैष पसु शुद्ध बधुष इमारे। नम कुन परम पुनीत दुम्हारे ॥

कस प्रकार जल कुन्द सब हारे। जम्हु निज जयजय इमारे ॥ ४ ॥

हे वैष ! हमारे तो एक ही शुभ बधुष है और आपके परम पवित्र [धर्म, दान, सत्य, शौच, श्रमा, सदाकृत, ज्ञान, विज्ञान और मास्तिज्ञान—ये] नौ शुभ हैं। हम तो सब प्रकारसे आपसे हारे हैं। हे विप्र ! हमारे जयजयको धर्म कीजिये ॥ ४ ॥

चौ—बार बार मुनि विप्रवर कहा राम-सब राम ॥

बोले भृगुपति-सरसु हसि तहैं। बंधु सम नाम ॥ २८२ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने, परशुरामजीको बार-बार 'भूमि' और 'विप्रवर' कहा। उन भृगुपति (परशुरामजी) कुपित होकर [जम्हा श्रेयकी हठी होकर] बोले—दू भी अपने मार्गके क्रमान ही देता है ॥ २८२ ॥

चौ—निप्रवहि विप्र करि जानहि मेही। हैं जस विप्र कुलकर्ष कोही ॥

बाण सुदा कर जगुति-कन। जोसु मीर जति और कुलकर्ष ॥ १ ॥

दू मुझे मेरा बालक ही समझता है ? मैं जैसा विप्र हूँ, उसे कुलकर्ष हूँ। बलुकरों की, बाणको आहुति और मैं श्रेयको अत्यन्त भव्यकर जति जान ॥ १ ॥

समिति सेव च्छरीन सुहाई । महा महीन मण पसु भाई ॥

मैं एहि पसु कछि कहि दीन्हे । समर जग जय कोदिन्ह कोन्हे ॥ २ ॥

चतुरंगिनी सेना सुन्दर समिधार्थ (यन्त्रमे जयवी खनेवाली लकड़ियाँ) है । बड़े-बड़े राजा उसमे आकर बलिहारे पशु हुए हैं । जिनको मैंने इसी परसे काटकर बलिदिया है । ऐसे करोड़ों जययुक्त रणजय मैंने किये हैं (अर्थात् जैसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक 'स्वाहा' शब्दके साथ आहुति दी जाती है, उसी प्रकार मैंने पुकार-पुकारकर राजाओंकी बलि दी है) ॥ २ ॥

मोर प्रयाग विधित गहि मोरें । खेळसि निद्रि विम के भोरें ॥

भोज्य चापु जसु वद बाज । जहमिसि मजहुं जीति जसु डाज ॥ ३ ॥

येरा प्रयाग तुमसे माधम नदी है । इसीसे तू ब्राह्मणके बोधे मेरा निरादर करके दांत रग दे ॥ पशु तोड़ बाज, दुखे सेप धर्मव बहुत बढ गया है । ऐसा अहंकार है माने संसारको जीतकर खड़ा है ॥ ३ ॥

राम कह मुनि कहहु विचारी । स्ति गति बहि लहु पृथ हनारी ॥

पुनर्वाहि हट विचार पुनरा । मैं केहि हेतु कौं अभिमाना ॥ ४ ॥

श्रीरामभक्तजने कहा—हे मुनि ! विचारकर बोलिये । आपका क्रोध बहुत बढ़ा है और बेरी भूल बहुत छोटी है । पुनरा वनप या; क्यूँ ही दूट गया । मैं किस कारण अभिमान करते ? ॥ ४ ॥

दो०—जौं हम निदर्पहि विप्र बहि सत्य सुमहु भृगुनाथ ।

तौ अस को जग सुमहु खेहि मय बस नार्थाई माय ॥ ५ ॥

हे भृगुनाथ ! यदि हम सचमुच ब्राह्मण कहकर निरादर करते हैं, तो वह सत्य मुनिनै, फिर संसारमें ऐसा कौन बोधा है जिसे हम बरके मोरे मलक नवाये ? ॥ ५ ॥

बौ०—केव दखुन ब्रूषति नट भना । समकठ कथिन होठ मलजाना ॥

जौं राम जहि धक्कै कीक । कही मुखेन काहु किम होक ॥ ६ ॥

देवता, दैत्य, राजा या और बहुत-से बोधा, वे चाहे कलमे हमारे बराबर हो; यानि अधिक शक्तवान हो; यदि रणमें हमें कोई भी लखहोरे तो हम उससे कुछपूर्वक शङ्गे, भावे काळ ही नहीं न हो ! ॥ ६ ॥

दक्षिण ■■■ गति समर सखना । कुल कलहु तेहि पतौर भाना ॥

ज्येष्ठ सुमाव न कुलकि प्रससी । कलहु बराई न रव रघुवंसी ॥ ७ ॥

अधिका शरीर परमर को मुझमे ढर गया; उस नीचने अपने कुलपर कलह नगा दिया । मैं समाजसे ही कहता हूँ; कुलकी प्रभाव करते नहीं कि खुरंभी रणमें काखे भी नहीं डरते ॥ ७ ॥

निप्रपंस कै गति भवुताई । जन्म होइ जो मुन्दहि ठेराई ॥

मुनि महु गुरु यन्त्र रघुपति के । उठे पल्ल परसुकर गति के ॥ ८ ॥

ब्राह्मणवर्गकी ऐसी ही प्रगुता (भविष्य) है कि जो जगसे बरखा है वह सबसे निर्मय हो जाता है [अथवा जो भस्महित होता है वह भी जापसे डरता है] । श्रीभृगुनाथजीके कोमल और रसपूर्ण वचन सुनकर परशुरामजीकी बुद्धिके परदे खुल गये ॥ ८ ॥

राम ग्यापति कर पशु केह । खैचहु मिष्टे मोर संदेह ॥

देन चापु अणुहि जलि कस्य । पशुस्य मय निरमय धनक ॥ ९ ॥

[परशुरामजीने कहा—] हे राम ! हे लक्ष्मीपति ! पशुको हाथों [अथवा लक्ष्मीपति विष्णुका धनुष] जीविने और इसे लीजिये, जिसमे मेरा कन्दे मिट जाय । परशुरामजी धनुष

देने लगे; वह आप ही चक गया। तब परशुरामजीने मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ४ ॥

श्री०—जाना राम प्रभाट तब पुलक प्रफुल्लित आत।

जोरि पाणि बोले वचन हृदयें न प्रेसु अमात ॥ २८४ ॥

तब उन्होंने श्रीरामजीका प्रभाव जाना, [जिसके कारण] उनका शरीर पुलकित और प्रफुल्लित हो गया। वे हाथ जोड़कर वचन बोले—प्रेम उनके हृदयमें समाप्त न था—॥ २८४ ॥

चौ०—जय श्रुवस वनज वन भाव। गहव दनुज कुल दहस हुआ ॥

जय सूर विष घेनु हितकारी। जय मधु मोह कोह भस हारी ॥ १ ॥

हे शत्रुघ्नकुमारी कमलवनके खूँ ! हे राजकीके कुलकी बने जंगलकी जहानेवाले भागि ! आपकी जय हो। हे देवता, नासक और गौरी हित करनेवाले ! आपकी जय हो। हे मधु, मोह, क्रोध और भ्रमके हरनेवाले ! आपकी जय हो ॥ १ ॥

विनय सीक कल्याण सगर। जयति वचन दया धति मगर ॥

सेवक सुवाद सुभग सब भंग। जय शरीर छवि कीटि भर्मा ॥ २ ॥

हे विनय, शील, कृपा आदि गुणोंके समुद्र और वचनोंकी रचनामें धारण मधुर ! आपकी जय हो। हे सेवकोंको सुख देनेवाले, सब अङ्गोंमें सुन्दर और शरीरमें करोड़ों कमलोंकी छवि धारण करनेवाले ! आपकी जय हो ॥ २ ॥

करी काह मुक्त एक प्रसंसा। जय महेस भव सबल ईश ॥

कलुषित बहुत कहेई भगवत्ता। समुद्र समाम्बिर दौड जाता ॥ ३ ॥

मैं एक मुक्तके आपकी क्या प्रशंसा करूँ ! हे महादेवकी बनेकसी मानसरोवरके ईश ! आपकी जय हो। मैंने अनन्तनमें आपको बहुतसे अनुचित वचन कहे। हे कामके मन्दिर दोनों भारी ! मुझे क्षम कीजिये ॥ ३ ॥

कहि जय जय जय शत्रुघ्नकेर। शत्रुघति जय वरधि जय हैर ॥

अपभयें कुलित महरि डेराने। कहे तहे काकर गहई पसरे ॥ ४ ॥

हे शत्रुघ्नके पताकासक श्रीरामकन्दजी ! आपकी जय हो; जय हो, जय हो। ऐसा काकर परशुरामजी उनके किले वनको चले गये। [यह देखकर] हुए राजाजीका पिता ही कारणके (मनःकलित) डरते (रामकन्दजीके तो परशुरामजी भी डार गये, हमने इनका अपमान किया था, अब क्यों वे उलझ संलग्न न हों, इस वर्षके डरते) डर गये, वे कायर सुपकेले लहीं-तहीं भाग गये ॥ ४ ॥

श्री०—देवन्द दीनहीं कुंजुमी प्रभु पर वरपाई फूल।

हरये पुर नर कारि सब मिठी मोहमय सुड ॥ २८५ ॥

देवताजीने नगाड़े बजाये, वे प्रभुके लक्ष फूल बरसाने लगे। वनकपुरके श्री-पुत्र सब हर्षित हो गये। उनका मोहमय (ललनसे उत्पन्न) झूठ मिट गया ॥ २८५ ॥

चौ०—अति गहवाहे काजो काये। सखेई ममेहर संकट सखे ॥

पय रूप भिदि प्रफुल्लित मुलकी। फरहि जय फल खेकिउवनी ॥ १ ॥

मूढ मोरये बाजे बन्दे छो। लीने मनोहर मल्ल खान वजे। सुन्दर मुख और सुन्दर नेत्रोंवाली तथा कोमलके समान मधुर लोकोत्तरी दिनों झूठ-की-झूठ मित्रर सुन्दर गान करने लगीं ॥ १ ॥

विदेह जय वरधि व जहे। जन्मविह गहई विधि पाई ॥

विगत आस मधु सीव सुकारी। जय विडु उदयें भकीकुमारी ॥ २ ॥

जनकीके सुखकर खर्चन नहीं किया जा सकता; मानो जनकज दखी पनका

सगता पा गया हो । सीताजीका मन साठा रहा; वे ऐसी सुखी हुई जैसे चन्द्रमाके उदय होनेसे चकोरकी कन्ध सुली होती है ॥ २ ॥

चक्र कीन्ह कीसिद्धि अर्थात् । प्रभु सदाय सब भविष्य समा ॥

मोहि हस्तक्य कीन्ह हुई आई । जब जो उचित सो कहिय गोसाईं ॥ ३ ॥

जनकजीने विश्वामित्रजीको प्रणाम किया [और कहा—] प्रभुहीनो कृपासे श्रीरामचन्द्रजीने धनुष तोका है । दोनों माइजीने शुद्ध कृतार्थ कर दिया । हे स्वामी ! सब जो उचित हो सो कहिये ॥ ३ ॥

कह मुनि मुन नरकाय महीय । रहा विवाह पाय भावीना ॥

हूतहो भयु मयल विवाह । सुर नर सब विविध सब कह्य ॥ ४ ॥

मुनिने कहा—हे चतुर मेरा ! सुनो । यो जो विवाह-धनुषके अवीन था; धनुषके टूटने ही विवाह हो गया । देवता, मनुष्य और नाग सब किसीको यह माह्य है ॥ ४ ॥

सो—सपि आह तुम्ह करहु मय अथ रस व्यवाहार ।

धूमि धिम कुलहल सुर वेद विविध भाषार ॥ २८६ ॥

तपापि तुम आकर अपने कुलध्व जैसा व्यवहार हो; ब्राह्मणों, कुलके दूतों और द्रुवोंसे पूजकर और केतोंसे अर्पित जैसा आचार हो वैसा करो ॥ २८६ ॥

सो—तुव आचर्य पदपुं जाई । भवहि सुव दसरवहि सोकाई ॥

मुद्रित राव कोइ भवेई कृपाय । पद सुव सोलि कोहि साका ॥ १ ॥

गानर जयोजाको दूत भेजो; जो राजा दशरथके कुल सब । राजाने प्रसन्न होकर कहा—हे कुलहल ! बहुत अच्छा । उही समय दूतोंको पुजकार भेज दिया ॥ १ ॥

बहुरि महाजय सकल होखए । कह सुनिह सार सार बाए ॥

हउ सब भविर सुरवास । सब सँवारहु बारिहु पाका ॥ २ ॥

फिर सब महाजनोको पुजया और अपने आकर राजाको आदरपूर्वक विर नवाया । [राजाने कहा—] पाका, राखे, पर, देवालय और सारे नगरको चारों ओरसे सजाओ ॥ २ ॥

सपि चले निम भिल राह आए । मुनि परिचारक कोलि पठाए ॥

रघु दिग्विध विद्याय बनाई । सिर धरि बकर चले सधु पाई ॥ ३ ॥

महाजन प्रसन्न होकर चले और अपने-अपने घर आये । फिर राजाने नौकरोंको हुल भेजा [और उन्हें आज्ञा दी कि] विविध मन्त्र सजाकर तैयार करो । यह सुनकर वे सब राजाके दायन विरपर घरकर और सुख पाकर चले ॥ ३ ॥

पद सुलि मुनी निम सकल । जे विद्वान विधि कुल सुजाया ॥

विधिहि धेदि निम कीन्ह अर्थात् । सिरवे कनक कहलि के जूभा ॥ ४ ॥

उन्होंने कनक कीसिद्धि कीन्ह हुल भेजा; जो मन्त्र बनानेमें चले-कुछाव और चतुर थे । उन्होंने तैयारी बन्दना करके कर्ण धारण किया और [पहले] सोनेके झोके लुभे बनाने ॥ ४ ॥

सो—हरि मनिह के पत्र पत्र पदुमपाय के फूल ।

रचना देखि विविध गति मनु विचैच कर मूल ॥ २८७ ॥

हरी-हरी मणियों (पत्र) के पत्र और फूल बनाने तथा पत्ररत्न मणियों (मणिक) के फूल बनाने । मण्डपकी अल्पविध विविध रचनादेखकर ब्रह्मन्त्र मन भी मूल गया ॥ २८७ ॥

सो—वेधु हसित मणिस सब कीन्हे । सकल ललक परहि नहि कीन्हे ॥

कनक कसिह आहोकेल बनाई । कसि कीन्ह पद सफल सुदाई ॥ १ ॥

बाँव सब हरी-हरी मलिनो (पत्ते) के लीपे और गाँठें युक्त ऐसे बनाये जो पहचाने नहीं जाते थे [॥ अथिर्बेदि हैं वा साधारण ॥] । खेनेकी सुन्दर नागमेदि (पानकी ज्वा) बनानी, जो पचोत्तहित ऐसी मन्त्री साक्ष्य होती थी कि पहचानी नहीं जाती थी ॥१॥

सेहि के रचि पवि यंव जनाए । विष भिन्न सुख्य दाम सुहाए ॥

मामिक भरुत कुमिष्ठ सिरोजा । पीरि-कोरि पचि त्वे सरोजा ॥ २ ॥

उसी नायकेलि रचकर और फकीरारी कले कवन (धँधनेकी रस्ती) बनाये।
 शीव-शीवमें मोतिपौंधी सुन्दर छातमें हैं। गायिक, फने, हरि और फिरोजे, इन रत्नोंको
 पीरकर, कोरकर और फकीरारी कले, इनके [जल, हरे, लोह और फिरोजी रंगके]
 कल बनाये ॥ २ ॥

किं सृणु पुरेण विद्वत् । पुंसीहि कुंसीहि एवम श्रवणम् ॥

सुर प्रतिमा संभव गवि, काशी । संगल मय्य छिये सय ठाई ॥ १ ॥

मौरे और बहुत रंगोंके पत्ती बनावे। जो हवाके सहारे गुँजते और कूजते थे। समी-
पर देशवासियों की मूर्तियाँ गह्वर निकालीं, जो सब मङ्गलप्रद स्त्रियों खाती थीं ॥ १ ॥

भीरों भीति कलक दुखई। सिधुर अस्मिय सहज सुखई ॥ ४ ॥

शस्त्रमुखाओंके सहस्र ही तुहास्ने अनेकों तरहके चौक पुपये-॥ ४ ॥

६०—सौरभ पण्डित, सुभन छुटि सिप नीलमणि कोरि ।

हेम धौर भरकत घबरि ललत पाटनय शोरि ॥ २८८ ॥

मीलमगिको शोरकर भरबन्त सुन्दर आम्के पत्ते बनने । छौनेके बौर (काममे फूल)
और रेधमकी होटीसे निह दृष्ट पडैके बने अर्धके गुच्छे सुखोमित हैं । १८८ ॥

चौ०—एषे स्थित वर बंदनिवारे । मगई, मण्डोमई पंर-लेंवारे ॥

अंगार ककल कोट' बगए । धन-पत्तक पद बसर' मुहाए ॥ १ ॥

ऐसे सुन्दर और उत्तम मंदनकार बनाने मन्त्रो का प्रयोग करते हैं। मन्त्रो मन्त्र-मन्त्र और सुन्दर बनाने, प्रकाश, परदे और चर्च बनाने ॥ ११ ॥

शीघ्र-समर्थोद्धार-समितिनाम-कायाः-काङ्क्ष-न-यस्य-विचित्र-विज्ञान-॥

जेहि मंगर पुखरिनि पैदेही । सो करी भविस सति कवि केही ॥ २ ॥

बिस्मों मणिजोंके अनेकों सुन्दर दीपक हैं, उत बिबिध मण्यपन को वर्णन ही नहीं किया जा सकता । त्रिद मण्यपनं श्रीमान्मयी शुद्धिद होगी; त्रिद, अविद्यो ऐसी युधि है जो अक्षय वर्णन कर सके ॥ २ ॥

हृदय, रस, रूप, सुख, सागर : सो वितावु तिहुँ लोक उवाणत ॥

भवन के छोमा-जैसी । गुह गुह प्रति पुर, देखिअ तैसी ॥ ५ ॥

निज मन्त्रपत्रमें इस और गुणोंके समुद्र श्रीरामचन्द्रजी बूढ़े हैंकि, वह मण्डप हीमें खेचेंमें प्रविष्ट होना ही चाहिये। कनकजीके महकती बेसी शोभा है, बेसी ही शोभा नगरके प्रत्येक घरकी रिलामी देती है ॥ ३ ॥

वेदिं वेदादिति तेहि सम्म विद्यासी । वेदिं मनु मन्त्रिं सुवन दत्त भारी ॥

जो संपदा बीच शुद्ध सोदा । सो निजोकि सुखक क सोदा ॥ ४ ॥

उस समय जितने सिपुहकरी देखा उसे चौदह सुनन हुआ था। सब से १-कनकपुर में नीचे पर भी उस-समय को सम्पदा सुगमिद थी, उसे देखकर इन भी मोहित हो जाता था ॥४॥

हो—दसह नगर जेहिं संचित करि कपट भारि वर वेधु ।

तेहि पुर कै सोम्य जात सकुचहिं सारह सेधु ॥ २८९ ॥

जि नगरे सगल ज्योती कपटे जेहि सुन्दर वर दसह वस्य है, उठ
पुरी सोभाका धरन करनेमें कलसी और और भी सकुचते हैं ॥ २८९ ॥

बौ—पहुँचे दूत राम पुर रावन । हमे नगर बिलोकि सुदासन ॥

रूप हर सिंह समी नगई । कसल नृप सुनि सिधु बेकाई ॥ २९० ॥

सुनकरहि दूत श्रीरामचन्द्रजीकी चरित्र पुरी अयोध्यामें पहुँचे । सुन्दर नगर
देखकर वे दर्शन हुए । रज्जदारक जाकर उन्होंने शहर में; राज दशरथजीने
सुनकर उठे हुए किया ॥ २९० ॥

परि प्रसन्न सिधु राजा कीन्ही । सुनि भोजन भणु अति कीन्ही ॥

करि बिदेस्य बौधक कही । पुच्छ सकल काई मरि छाही ॥ २९१ ॥

इन्होंने प्रसन्न करने लीं वी । भोजन होकर रात्रिमें लय उठकर उठे किया ।

बिही बौधके समय उनके नेत्रोंमें लज (श्रेय और मानन्दके भाव) का गया, शरीर
पुनर्जित हो गया और छाही भर भासी ॥ २९१ ॥

राज सकल कर कर कर कीन्ही । यदि गदु गदु न कही मीन्ही ॥

सुनि परि वीर पत्रिका बौधक । हर्षा सभा लख सुनि लीन्ही ॥ २९२ ॥

हरपने राम और कलन हैं । हमने सुन्दर बिही है । राजा उठे हापने सिने वी
रूप, कही-मीन्ही कुछ भी न करे । फिर सभा करके उन्होंने पत्रिका पढ़ी ।
छाही लख बौधक राजा इति हो गयी ॥ २९२ ॥

लेख रहे लख सुनि काई । काय भल अवित्र हित काई ॥

पुच्छ भति लीन्ही सकुचई । काय लखी में पानी काई ॥ २९३ ॥

भक्तोंमें अपने मित्र और भाई सुनने लख लखी लेखने वे वी सगलवार पाकर
वे का गये । बहुत जेते सकुचते हुए पुछते हैं—सिखाये बिही कहेहि भासी है ॥ २९३ ॥

हो—कुशल प्रमत्तिव वधु दोठ धंहीह कइहू पेरिह देस ।

सुनि सनेह छावे वधन बाधी बहुरि मोस ॥ २९० ॥

हमने प्रपठे पदों दोठे-बाई, कहे, सकुचल लो वी और वे कित वधनमें हैं
लोहे लो वे वधन सुनकर रात्रिमें निरते बिही पढ़ी ॥ २९० ॥

बौ—सुनि लखी पुच्छे दोठ काय । लखि सनेह सगल व राता ॥

अति प्रीति भक्त कै देखी । लख सकी सुख कहेह मिलेसी ॥ २९१ ॥

बिही ज्ञानर दोठे मध्य पुनीति हो गये । लोह प्रीति अधिक हो गया कि वह
अतिमें सगल भा । मजलीस पदिय गेह देखकर छाते समाने विशेष कुछ पाया ॥ २९१ ॥

लख मय दूठ निकल देखे । मयूर मनोहर वधन कचिरे ॥

लख कइहू प्रसन्न दोठ चारे । लख मोने विप्र वधन निहारे ॥ २९२ ॥

भारता पूर्वोक्तो पाप वैदिक नस्यो हरेचिहने कीते वधन बोले—सैय । लखी, दोठों
को पुनर्जित हो है । तुमने कर्मों जाँचते उन्हें अच्छी तरह देखा है न ? ॥ २९२ ॥

सगल और परें भणु मया । वध निरते संचित सुनि साया ॥

पदियक कइहू कइहू सुनाह । प्रिय निरते पुनि पुनि कइ राता ॥ २९३ ॥

सोले और और औरकले वे भणु और उरक परम सिने खोले हैं, निरते

अवस्था है, विश्वामित्र मुनिके साथ हैं। तुम उनको पहचानते हो तो उनका स्वभाव बताओ।
राजा प्रेमके विरोध क्या होनेसे बार-बार इस प्रकार भड़ (पूछ) रहे हैं ॥ ३ ॥

जा दिन तें मुनि यह क्यारै। तब तें बहुत सोचि मुनि पारै ॥

कहहु विदेह कवन विधि जाने। मुनि प्रिय नचय दूठ सुसुकाने ॥ ४ ॥

[मैया !] जिस दिनेसे मुनि उन्हें खिचा छे गये, उससे आज ही हमने सच्ची खबर
प्राप्ति है। कहे तो महाराज बनकने उन्हें कैसे पहचाना ! वे प्रिय (प्रेममये) कचन
सुनकर दूठ मुसकराये ॥ ४ ॥

श्लो०—सुनहु महापति मुकुट मनि तुम्ह सम धन्य न कोट।

राहु लखतु जिन्ह के कन्य विख बिभूषन दोउ ॥ २९१ ॥

[यूतोंने कहा—] हे राजाजीके मुकुटमणि। मुनिवे, आपके समान कन्य और कोई
नहीं है, जिनके राम-प्रणमन-वैसे पुत्र हैं, जो दोनों विधवाके विभूषण हैं ॥ २९१ ॥

श्लो०—दूधन गोशु न कन्य सुहारे। दुखसिंह सिद्ध दुर उजियारे ॥

जिन्ह के जस प्रकाश कें आये। ससि मकीव रवि सीतल कागे ॥ १ ॥

आपके पुत्र दूधने योग्य नहीं हैं। वे दुखसिंह तीनों कोटीके प्रकाशस्वरूप हैं।

जिनके यशके भ्रामे चन्द्रमा मछिन और प्रतापके आगे सूर्य सीतल लगाता है, ॥ १ ॥

तिन्ह कहैं कहिब नाथ किमि चीन्हे। देखिब रवि कि दीप कर लीन्हे ॥

सीय सर्वधर भूप जगेक। ससिरे सुभट एक सैं एका ॥ २ ॥

हे नाथ ! उनके लिये आप कहते हैं कि उन्हें कैसे पहचाना ! स्या सर्वको हाथमें
धीन छेकर देखा जाता है। सीतलीके-सर्वधरों अनेकों राजा और एक-से-एक बढ़कर
पोदा एकत्र हुए थे, ॥ २ ॥

संभु सपत्तलु कहां न दास। हरे सकल वीर बसिआस ॥

शीघ्र लोक माई के मठमानी। खन कै समति संभु भवु भागी ॥ ३ ॥

परन्तु शिवजीके धनुषको कोई भी नहीं हटा सका। जरे शलवार वीर हार गये।

तीनों कोशोंमें जो वीरताके अभिमानी थे, शिवजीके धनुषने सबकीधकि तोड़ दी ॥ ३ ॥

सकह दसाह सकसुर मेरु। सीठ शिपैं हरि गायद करि फेरु ॥

मेहि कीचुक सिनसैह दलवा। सोय तेहि सभैं वरानक पावा ॥ ४ ॥

पाण्डुरा, जो सुमेरुको भी उठा सकता था; वह भी हृदयमें डरकर परिक्रमा करके
पला गया और जिसने खेलते ही कैलसको उठा लिया था, वह रावण भी उस समान
पराजयको प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥

श्लो०—तहाँ राम रघुवंशमणि मुनिव महा महिपाल।

भंजेठ चाप प्रयस विनु किमि कस पंकज नाल ॥ २९२ ॥

हे महाराज ! मुनिवे, जहाँ (जहाँ ऐसे-ऐसे) चोड़ा हार मान गये) रघुवंशमणि
भीरमचन्द्रजीने बिना ही प्रजापति शिवजीके धनुषको जैसे ही तोड़ लाले जैसे हाथी कमल-
की डंडीको चोढ़ डालता है ! ॥ २९२ ॥

श्लो०—मुनि सरोष मुमुक्षुबद्ध आए। बहुत मोति तिन्ह सोचि देवाय ॥

देखि राम बहुत निव भवु दोन्हा। करि बहु किय भवु चन कीन्हा ॥ १ ॥

धनुष टूटनेकी बात सुनकर परशुरामजी क्रोधमें आये और उन्होंने बहुत प्रकारसे
भाँलें दिखलायीं। अन्तमें उन्होंने भी भीरमचन्द्रजीके कण्ठ देखकर उन्हें अपना धनुष दे
दिया और बहुत प्रकारसे चिन्ती करके कन्यो यमन किया ॥ १ ॥

राज्य प्राप्त करुणक जैसं । तेव निजस खखु सुनि तैसैं ॥

कंपहि यूप बिलोकत जाकैं । बिनि राज हरि किशोर के ताकैं ॥ २ ॥

हे राजन् ! जैसे श्रीरामचन्द्रजी करुणनीय कही हैं, जैसे ही तेजनिधान फिर लक्ष्मण-
जी भी हैं, जिनके देखनेवाले राजयोग ऐसे प्राप्त करते थे जैसे शायी सिंहके बच्चेके
ताकनेसे काँप उठते हैं ॥ २ ॥

देव देखि एव चरकत दोऊ । सब व जाँचि सर आवत कोऊ ॥

दूत वचन रचत शिव खसी । प्रेम प्रलय वीर रस रागी ॥ ३ ॥

हे देव ! आपके दोहों वाक्योंको देखनेके बाद जब आँखोंके नीचे कोई जाता
ही नहीं (इसी दृष्टिपर कोई चढ़ता ही नहीं) । प्रेम, प्रलय और वीर-रसमें पूरी
हुई वृत्तोंकी वचनरचना सबको बहुत प्रिय कही ॥ ३ ॥

सदा समेत राठ अनुसमे । दृग्गद् देव निखरि लागे ॥

कहि भगीरथ ते सुनि करक । चरु विचारि सबहि सुख माना ॥ ४ ॥

समाहित राजा प्रेममें मग हो गये और वृत्तोंको निखर देने लगे । [उन्हें
निखर देते देखकर] यह नीतिविद् है, ऐसा कहकर दूत अपने हाथोंसे भान भूँके
गले । धर्मको विचारकर (उन्नत वर्गसुक्त वर्तन देखकर) कहीने सुख माना ॥ ४ ॥

दो०—सब वठि भूष बसिष्ट कहैं । रमिनि पविता पाँद ।

कया सुनारै गुपहि सब सावर दूत थोकार ॥ २९३ ॥

जब राजाने उठकर बसिष्ठजीके पास जाकर उन्हें पविता दी और आबरूपक
वृत्तोंको सुनकर सारी कथा सुनबीकी सुना दी ॥ २९३ ॥

चौ०—भूमि गेके गुर बसि । सुद्ध पाई । पुण्य पुण्य कहैं मदि सुख जाई ॥

जिनि मरिछ समस्त भई जाही । बसहि राहि बसत जाही ॥ १ ॥

जब समाचार सुनकर और अत्यन्त मुक्त पाकर गुरु योगे—पुण्यात्मा पुण्यके
लिये पुष्पी सुझाते कभी हुई है । जैसे मदिरा समुद्रमें जाती है, वही समुद्रको नदीकी
कामना नहीं होती, ॥ १ ॥

विनि प्राप्त संपति विमहि योकरै । बरसहीन पाहि काहि सुनारै ॥

दुग्ध गुर मिल खेडु सुन देसी । ससि पुगीत वीरसत्या देसी ॥ २ ॥

देते ही सुख और सम्पत्ति-विना ही कुलमे स्वाभाविक ही वर्मात्मा पुण्यके, प्राप्त
जाती है । हम जैसे दुग्ध, नाश्वर्य, धान और देवताकी सेवा करनेवाले हो, वैसी ही
पवित्र कीर्तना देसी भी हैं ॥ २ ॥

सुकुटी दुग्ध समस्त सब माहीं । बसत व है खोव होनेव माही ॥

दुग्ध ते अधिक पुण्य सब कसैं । राखत सब ससि सुत जाकैं ॥ ३ ॥

दुग्धारे समस्त पुण्यात्मा जगत्में न कोई दुगा, न है और न होनेका ही है ।
हे राजन् ! तुमसे अधिक पुण्य और कितना होना, जिसके रास-सहीसे पुत्र है, ॥ ३ ॥

धीर विनीत चरम प्रद जाहीं । गुन सागर भर बाकक चारी ॥

दुग्ध कहैं सर्व कस कसत । समस्त बरात कमाइ मिसाना ॥ ४ ॥

और जिसके चारों बाकक वीर भिन्न, धर्म प्रद धारा करनेवाले और गुणोंके
सुन्दर समुद्र है । तुम्हारे लिये सभी कसमें कसत है । अत्यन्त बड़ा वचनार्थ
प्राप्त जगत्को, ॥ ४ ॥

दो०—चलहु बेनि सुनि गुर बचन मलेहि नाथ सिख नाह ।

भूपति गवने मकन तब दूकन्ह वासु देवाह ॥ २९४ ॥

और जल्दी चले । गुरुजीके ऐसे कवन सुनकर, ये नाथ । बहुत अच्छा कहकर और फिर नवाकर तथा दूतोंको भेज दिखानेकर राजा महलमें गये ॥ २९४ ॥

चौ०—राजा सबु रनिवास गोहई । जम्क पत्रिख बाधि सुनाई ॥

सुनि सदेहु सकल हरसन्दी । जगर कया सब सुण कसानी ॥ १ ॥

राजाने सारे रनिवासको बुझकर जम्कजीकी पत्रिका बोलकर सुनायी । समाचार सुनकर सब रानियाँ हँसते मर गयीं । राजाने फिर दूसरी सब बाँकी (जो दूतोंके मुँहसे सुनी थीं) जर्जन किया ॥ १ ॥

प्रफुल्लित राजाहि राणी । मनहुँ सिखिधि सुनि बसिह पानी ॥

सुनिह असिख वेदि गुरपाहीं । भति आनंद समन महतारी ॥ २ ॥

प्रेममें प्रफुल्लित हुई रानियाँ ऐसी सुखोमित हो गयी हैं जैसे मोरनी बादलोंकी गरज सुनकर प्रफुल्लित होती हैं । कहीं-बूढ़ी [अथवा गुरुजीकी] सिखाई प्रकट होकर आशीर्वाद दे रही हैं । प्रतापें अत्यन्त आनन्दमें मग्न हैं ॥ २ ॥

केहि पत्तर भति मिय वाली । इदई कबहुँ सुखसहि छाती ॥

राम कजब के कीरति करनी । बाछहि बार भूपवर बरनी ॥ ३ ॥

उस अत्यन्त मिय पत्रिकाको आसतमें लेकर सब हृदयसे लगाकर छाती धीकल करती हैं । राजाओंमें भेज दशरथजीने श्रीराम-कृष्णवली कीर्ति और करनीका बार्त्ता बर्णन किया ॥ ३ ॥

सुनि प्रकहु कहि इत सिचाए । रतिकुह तब मसिहैव बीसाए ॥

विप दान आनंद समैका । पळे विप्रनर कसिख पैता ॥ ४ ॥

'यह सब सुनिकी कृप है' ऐसा कहकर ने बाहर चले जाये । तब रानियोंमें ब्राह्मणोंको बुलाया और आनन्दवहित उन्हें दान दि । भेज ब्राह्मण आशीर्वाद देते हुए गये ॥ ४ ॥

चौ०—जावक किय हैंकारि दीन्हि निछावरि कोटि बिधि ।

बिह आधुँ सुत चारि शकवति दसदस के ॥ २९५ ॥

फिर भिक्षुओंको बुलाकर करोड़ों प्रभरोंकी निछावरें उनको दीं । 'शकवती' महाराज दशरथके चारों पुत्र चिरंजीव हों, ॥ २९५ ॥

चौ०—कहत कळे पहिरेँ पर कवा । हरि हने यहक्ये बिसांग ॥

समाचार सब लोगन्ह पाए । कयै बर बर होय बधाए ॥ १ ॥

यों कहते हुए वे अनेक प्रभरोंके सुन्दर वस्त्र पहन-पहनकर चले । धानदिह शीकर नवासेवालों ने बड़े जोरसे नगदोंमें चोट लगायी । सब जोरोंसे तब यह समाचार पाया, तब घर-घर बधाये होने लगे ॥ १ ॥

सुवन चारिदस भक्त उठहु । जम्कसुख रखीर विगाह ॥

सुनि सुन कया लोग अनुगये । सब यह कयों सँवार जगे ॥ २ ॥

चौदहों लोकोंमें उत्साह मर गया कि जम्कजीकी और श्रीरामदेवीकी विवाह होना । यह शुभ समाचार पाकर जेठ-प्रेमप्रसन्न हो गये और राखते घर तथा गलियों समाने लगे ॥ २ ॥

नयनि कय सदैव सुखमनि । राम गुरी संकमय पवननि ॥

तददि प्रीति के प्रीति सुखई । नयन रक्क रकी कसई ॥ ३ ॥

यद्यपि अयोध्या सदा सुहावनी है, क्योंकि वह श्रीरामजीकी मङ्गलमयी पवित्र पुरी है, तथापि प्रीति-पर-प्रीति होनेसे वह सुन्दर मङ्गलरचनासे सजायी गयी ॥ ३ ॥

जब पताक पट चमर चारु। छत्र परम विविध वज्राह ॥

कनक कलस तोरनं अविवाह्य। हस्त दूष दधि अक्षय भाज ॥ ४ ॥

ज्वला, पताका, परदे और सुन्दर चैकोसे सारा बाजार बहुत ही अलङ्का किया है। सोनेके कलस, तोरण, मणिबोरी साकर, हस्ती, दूष, दही, अक्षत और मालाओंसे—॥ ४ ॥

दो०—मङ्गलमय विज्र विज्र मन्त्र छेमन्ह रखे कनाद।

बीचीं सीचीं चतुरस्रम चौकें चारु पुराद ॥ २९६ ॥

छोमोने अपने अपने पोंके सवाकर मङ्गलमय बना लिया। गलियोंको चतुरस्रसे सींचा और [हारोंपर] सुन्दर चौक पुराये। [चन्दन, केसर, कस्तूरी और कपूरसे बने हुए एक सुगन्धित ब्रश्मसे चतुरस्र करते हैं] ॥ २९६ ॥

चौ०—जहाँ तहाँ जूय बूध निशि भासिनि। सति नवसहस्रकलमुसिदाभिनि ॥

चिडुवनी भूषा सारक कोचनि। निमं अस्मय रति मातु विमोचनि ॥ १ ॥

विजयीकी-सी कागिताली चन्द्रमुखी, हरिनके बन्धेकै-से नेत्रोपाली और अपने सुन्दर कानके कामदेवकी सी रतिके अमिमानके छुसानेवाली मुहागिनी जियाँ सभी सोझीं भृंगार सलकर, जहाँ-तहाँ छुट-की-छुट मिलकर, ॥ १ ॥

गायहि पंख मंजुक कर्षी। सुनि कळ रस कलसंति कजावी ॥

भूप समम विमि जह् मजाक। निरु विमोहय रवेड विताजा ॥ २ ॥

मनोहर गायीसे मङ्गलगीत गा रही हैं, जिनके सुन्दर स्वरको सुनकर कौबलें भी लजा जाती हैं। राजनहलकर वर्णन कैसे किया जाए, जहाँ निश्चयसे विमोहित करनेवाला मण्डप बनाया गया है ॥ २ ॥

मंगल . ब्रह्म मनोहर गावा। राजत बाजत विपुल विसामा ॥

कतहुं निरिद बंदी उबरही। कतहुं वेद जुनि भूमुर करही ॥ ३ ॥

जनेकी प्रकारके मनोहर माहात्मिक पदार्थ शोभित हो रहे हैं और बहुतसे नगाहे बज रहे हैं। कहीं भाट विस्दाककी (कुल्कीर्ति) का उच्चारण कर रहे हैं और कहीं ब्राह्मण वेदध्वनि कर रहे हैं ॥ ३ ॥

गायहि सुंदरि मंगलगीता। कै कै वासु राखु भव सीता ॥

बहुन लजहु भवतु अति सोरा। मानहुं उमगि पका बहु सोरा ॥ ४ ॥

सुन्दरी जियाँ श्रीरामजी और श्रीसीताजीका नाम ले-लेकर मङ्गलगीत गा रही हैं। उस्ताह बहुत है और मङ्गल बलन्त ही लेया है। इतने [उसमें न समाकर] मानो वह उस्ताह (आनन्द) चारों ओर उमड़ रहा है ॥ ४ ॥

दो०—सोभा दसरथ मवन कर फे कवि बरनै पार।

जहाँ सकल सुर सीस मणि राम छीन्ह अवतार ॥ २९७ ॥

दशरथके मङ्गलकी शोभाकर वर्णन कौन कवि कर सकता है, जहाँ समस्त देवताओं के शिरोमणि रामचन्द्रजीने अवतार लिया है ॥ २९७ ॥

चौ०—भूप भस्त जुनि किं दोऊई। हय मय स्वयंन सजहु दाई ॥

चलहु बेगि राखीन कसाता। सुकल सुकल पूरे दोक ज्ञाता ॥ १ ॥

फिर राजाने भरतजीको बुझ लिया और कहा कि जाकर बोधो, हाथी और रथ सजानो; जल्दी एसकन्दजीकी वास्तवमें चले। यह सुनते ही दोनों भाई (भरतजी और शत्रुघ्नजी) आनन्दवश पुलकते भर पड़े ॥ १ ॥

भरत सकल सजहनी कोझर। आबसु दीन्ह मुदित बडि बाण्ड ॥
रवि रुचि जीव दुख तिन्ह सजये। मन कल धर कनि बिराजे ॥ २ ॥
भरतजीने सब सजहनी (मुद्रबालके अण्डल) सुझाये और उन्हें [घोड़ोंको सजानेकी] आज्ञा दी, वे प्रसन्न होकर उठ दौड़े। उन्होंने रुचिके साथ (गयागम्य) जीनें फलकर घोड़े सजाये। रंग-रंगके उत्तम घोड़े शोभित हो गये ॥ २ ॥

सुभग सकल मुदि चंचक करसी। अप ह्व अत भरतपा धरनी ॥
राजा कति न जाहि बसवे। निरि पवतु मनु ज्ञात ठगाने ॥ ३ ॥
सब घोड़े नदें ही सुन्दर और चञ्चल कदनी (बाल) के हैं। वे भरतीपर ऐसे पैर रखते हैं जैसे जलते हुए लोहेपर रखते हों। बनेकीं जातिके घोड़े हैं, जिनका वर्णन नहीं हो सकता। [देखी तब चालके हैं] मानो हवाका निरादर करके उड़ना चाहते हैं ॥ ३ ॥
तिन्ह सब कलक मय बसवरा। भरत समित कम राजकुमार ॥
सब सुन्दर सब भूषतधारी। कर सर सप ह्व बडि भारी ॥ ४ ॥
उन सब घोड़ोंपर भरतजीके समान अवसावके सब छैठ-छपीके राजकुमार सवार हुए। वे सभी सुन्दर हैं और सब आभूषण धारण किये हुए हैं। उनके हाथोंमें बाण और धनुष हैं, तथा कमरमें मारी तल्वर बंधे हैं ॥ ४ ॥

१०—छरे छपीके छयल सब सूर सुझाव भवनी।
सुग पदचर बसवार प्रति जे असिकला प्रवीन ॥ ५८ ॥
सभी जुने हुए छपीके छैठ, धरवीर, चतुर और नयुवक हैं। प्रत्येक सवारके साथ दो पैदल लिपारी हैं, जो तलवार, चकमेकी कसमें बड़े निपुण हैं ॥ ५८ ॥
चौ०—बाँधें बिरद और रथ गाई। किमति मय पुर गाँवर ठाई ॥
कैरहि चतुर सुभग बति जाय। इवाहि मुदिमुनिरक बिसागत ॥ १ ॥
छायाका घना धारण किये हुए शूणपीर की सब निकलकर तमके बाहर आ पड़े हुए। वे चतुर अपने घोड़ोंके तख-तखकी चालोंके फेर रहे हैं और मेरी-तया भगावकी आज्ञा सुन-सुनकर प्रसन्न हो रहे हैं ॥ १ ॥

सायबिन्ह विपित जवापु। बक बकक मनि भूषण बाण्ड ॥
बँवर पाव विविवि मुनि कलहो। मनु सब प्रीमा अहरही ॥ २ ॥
सायबिनोंने ध्वजा, फताफत, मणि और वासुकीको लककर रथोंको बहुत विलक्षण बना दिया है। उनमें सुन्दर जँकर लगे हैं और छटकों सुन्दर शब्द कर रही हैं। वे रथ हलते सुन्दर हैं मानो सुनके रथकी शोभाको छीने लेते हैं ॥ २ ॥
सायबिन्ह अमनित हव छोले। ते तिन्ह रकम सायबिन्ह जोले ॥
सुंदर सकल कलकल छोले। किमदिबिबोका मुनिनयबोले ॥ २ ॥
अमणित ध्यामकर्ष घोड़े वे उनको सायबिनोंने उन रथोंमें जोत दिया है, जो सभी देखनेमें सुन्दर और गहनेंसे सजाये हुए सुशोभित हैं और जिनमें देखकर मुनिबोंके मन भी मोहित हो जाते हैं ॥ २ ॥
जे जक चलिहि कलहि की गाई। तब न नुत केव अधिकारी ॥
बक बक सब सकल बकई। रही सायबिन्ह विद बोलाई ॥ ४ ॥

जो जलपर मी जमीनकी तरफ ही चले हैं। वेगकी अधिकतासे उनकी टाप पानीमें नहीं डूबती। अरु-अरु और एक एक उलझकर सपरिवारोंने रथियोंको कुल लिया ॥ ४ ॥

श्री०—बहि बहि रथ बाहेर नगर जगगी सुरज वरात।

होत खगुन सुन्दर सवहि जो जेहि कारज जात ॥ २९९ ॥

रथोंपर चढ़-चढ़कर बाहर नगरके बाहर छुटने लगी। जो जिस कामके लिये जाता है, उसीको सुन्दर दखुन होते हैं ॥ २९९ ॥

श्री०—कलित करिचर्मह परी बैसारीं। बहि न बहि जेहि भीति सैवारीं ॥

चले सत गज रैट सिताली। मन्हुं सुमग सावन बन राजी ॥ १ ॥

घेड़ हाथियोंपर सुन्दर बैचारियों परी हैं। वे जिस प्रकार सजादी गयी थीं, सो कहा नहीं जा सकता। भयले हाथी घंटोंसे सुखोभित होकर (घंटे बजाते हुए) चले, मानो सावनके सुन्दर धात्योंके समूह [चरते हुए] नष्ट रहे हों ॥ १ ॥

बाइन अगर अनेक विधान। मिक्खि सुमग सुखालय जाव ॥

तिन्हु बहि चले विप्रवर गुंवा। बहुत बहुत भरे सकल मुति छंदा ॥ २ ॥

सुन्दर पावकियों; सुकले पैठने योग्य सामान (जो कुर्तुमुमा होते हैं) और रथ आदि और भी अनेकों प्रकारकी सवारियों हैं। उनपर श्रेष्ठ आसनोंके समूह बद्धकर चले, मानो एक वेदोंके छन्द ही शरीर धारण किये हुए हों ॥ २ ॥

मागव सूत बहि पुनस्तथक। चले जाव बहि जो जेहि लावक ॥

बेसर रैट दुषम बहु जाती। चले बहुत मरि जगनिष्ठ भीती ॥ ३ ॥

मागव, सूत, माद और गुप्त जानेवाले रथ, जो जिस योग्य थे, वैसी सवारीपर चढ़कर चले। बहुत मानियोंके लकार, रैट और रैट भस्त्रियों प्रकारकी बहुतों लादे-कारकर चले ॥ ३ ॥

कोटिन्ह कोँवरि चले कहारा। विविध बलुं को बरै बारा ॥

चले सखलं सेवक समुदाई। विन विन सख समझ बनवाई ॥ ४ ॥

कहार करोड़ी कोँवरें लेकर चले। उनमें अनेकों प्रकारकी शतों बहुतों थीं कि जिनका वर्णन कौन कर सकता है। उन सेवकोंके समूह अपना-अपना साथ-समाज बनाकर चले ॥ ४ ॥

श्री०—सब कैं उर विमर हरषु पूरित पुखल सुरीर।

कवहि देखिये नयन मरि एसु लखलु दोठ धीर ॥ ३०० ॥

सबके हृदयमें अथार हर्ष है और शरीर पुखले भरे हैं। [आपको एक ही लालसा लगी है कि] हम भीरुम-लज्जम दोनों माइसोंको नेत्र मस्कर कर देखेंगे ॥ ३०० ॥

श्री०—गजबहि गज बंटा छुमि घोरा। सब सब बानि हिंस चहु ओरा ॥

निहदि धनहि धुमैरहि विमाना। निज पराड कहुं सुनिष न करना ॥ १ ॥

शुणी गरज रहे हैं उनके घंटोंमें भीषण ध्वनि हो रही है। चारों ओर रथोंकी धरधरहट और घोड़ोंकी हिनहिनाहट हो रही है। वादलोंका निरादर करते हुए नगाड़े घोर शब्द कर रहे हैं। किसीको अपनी-पराधी कोई बात कर्मोंसे सुनायी नहीं देती ॥ १ ॥

महा भीम शूक्ति के हर्षे। सब होइ बद्ध पशान पवारें ॥

धकी भयान्ह देखहि धारी। किये लखती भंगल पारी ॥ २ ॥

राजा बद्धरूपके दसकोर हतनी मारी भीड़ हो रही है कि यहाँ पत्थर पेंच जाय तो वह भी मिलकर धूल हो जाए। अटारियोंपर चढ़ी सिंघों मल्ल-बाजोंमें आरती लिये देख रही हैं ॥ २ ॥

गायहि गीत मनोहर नमः । नति कर्णदुःख न जह्नु मन्त्रानां ॥
 स्व सुमंत्र स्वयं साजी । जेते रवि हन विदुषं वाजी ॥ ३ ॥
 और नाना प्रकारके मनोहर गीत गा रही हैं । उनके अत्यन्त आनन्दका प्रमाण
 नहीं हो सकता । तब सुमन्त्रजीने दो रव राजाजन उनमें स्वर्गके दोहोंको भी भात करने-
 वाले बोड़े जोते ॥ ३ ॥

दोद रव रचिर नृप बहि जने । बहि सनद ग्रहि जहि बहाने ॥
 राज सम्राट् एक रव सत्ता । दूसर सेव सुद नति आना ॥ ४ ॥
 दोनों सुन्दर रव वे राजा दशरथके पात के भाये, जिनकी सुन्दरताका वर्णन
 संस्कृतमें भी नहीं हो सकता । एक रथपर राजसी समकेन सज्जता गया । और दूसरा जो
 वैजंका पुंस और अत्यन्त ही शोभायमान था, ॥ ४ ॥

री०—तेहि रथ रचिर बसिष्ठ कहुँ हरषि बहाने मरेसु ।
 आयु बड़ेउ स्वयं सुमिरि हर गुर गौरि गनेसु ॥ ३०१ ॥
 जब सुन्दर रथपर राजा बसिष्ठजीको हर्षपूर्वक बहाने पिर स्वर्ग विष, युव, गीरी
 (पार्वती) और गणेशजीका स्मरण करके [हृत्ते] रथपर चढ़े ॥ ३०१ ॥
 श्री०—बसिष्ठ बसिष्ठ सीह नृप कैते । गुर गुर संग गुरंदर कैते ॥
 करि कुल रीति वेद विधि सत् । हेति सचहि सब भौति बहाने ॥ १ ॥
 बसिष्ठजीके साथ [जाते हुए] राजा दशरथजी कैते घोषित हो रहे हैं, जैसे देवगुरु
 दशरथजीके साथ इन्द्र ही । वेदकी विधिसे और कुलकी रीतिसे अनुचार सब कार्य करके
 तथा सबको सब प्रकारसे सजे देसकर, ॥ १ ॥

सुमिरि एम्ह गुर जगत्सु पार्ह । चले महीरति जंग बहाने ॥
 हरये विपुष विदोकि बरता । कर्णहि सुमन सुमंगल दाता ॥ २ ॥
 श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके, युवकी आज्ञा पाकर वृषधैर्यति दशरथजी एम्ह बहाकर
 चले । बापत देसकर देवता हर्षित हुए और सुन्दर मङ्गलवाचक पुत्रोंकी वर्षा करने लगे २
 भयद कौटुहल हन नव गाने । ज्योत बरत बजने बाने ॥
 गुर पर नति सुमंगल गह । सरत संग कबहि सज्जाने ॥ ३ ॥
 सवा और मय मय, बोड़े और हाथी गरजने लगे । आकाशमें और वायुतम
 [शीर्षों काह-] बाजे बजने लगे । देवादेवों और मनुष्योंकी शिर्षों सुन्दर मङ्गलवाचन
 करने लगीं और रसीले रगने गहनाहों बजने लगीं ॥ ३ ॥

बंद बहि धुनि नति न जह्नी । सख करहि पक्षक फहराही ॥
 कर्णहि विदुषक कौतुक नमः । हास कुसक कंठ गांभ सुजाना ॥ ४ ॥
 बंटे-बंटेवोंकी चलिका कर्ण नहीं हो सकता । पैरल कछेवाके सेवकाय अथवा
 पट्टेवाचन करानेके लोक कर रहे हैं और चढ़ा रहे हैं (जलधाममें जैसे उड़लते हुए जा
 रहे हैं) । ॥ ४ ॥ करनेमें निपुण और सुन्दर जनेमें अतुर निपुण (मन्त्रो) तब-करने
 लगाये कर रहे हैं ॥ ४ ॥

री०—सुरग मवाचहि कुमैर वर जगदि । मूर्धन निराज ।
 नगर मठ चित्तबहि चकित क्यहि न सल वैधान ॥ ३०२ ॥
 सुन्दर राजकुमार मूढका और नगाके शब्द सुनकर बोड़ोंको उन्हीं अनुचार इत
 प्रकार नचा रहे हैं कि वे लालके वैधानसे बस भी ठिकते नहीं हैं । चतुर तब चकित
 होकर यह देख रहे हैं ॥ ३०२ ॥

चौ०—वनह न करवत बनी कराता। होहि सगुन सुंदर सुमद्राता ॥

चाता चापु पाय दिसि लेहै। जचहुँ संकल संगल कहि देहै ॥ १ ॥

बारात ऐसी बनी है कि उसका वर्णन करते नहीं बनता। सुन्दर छमदायक शकुन हो रहे हैं। नोलड्ड पक्षी वहाँ ओर चला ले रहा है; मानो सम्पूर्ण मङ्गलोंकी सूचना दे रहा हो ॥ १ ॥

दाहिन काया सुखेय सुहावा। नकुल वस्तु सब कहै पावा ॥

सावुक कह त्रिविव बबारी। सुवट सुवाल आव घर गारी ॥ २ ॥

दाहिनी ओर बौआ सुन्दर तेजमें शोभा पा रहा है। मेकलेय दर्शन भी सब फिगीले गया। तीनों प्रभरकी (शौकल; मन्द; सुगन्धित) हवा अनुकूल दिशामें चल रही है। श्रेष्ठ (सुहाविनी) स्त्रियों भरे हुए घड़े और गोदमें बालक लिये आ रही हैं ॥ २ ॥

कोय फिरि फिरि दस्तु देखावा। सुरभी सरसुच सिमुहि पिआवा ॥

सुगमाका फिरि दाहिनि आई। संकल गह जनु हीन्हि बैसाई ॥ ३ ॥

शेवकी फिर-फिरकर (बार-बार) दिखायी दे जाती है। गर्व सामने लक्ष्मी बड़बड़को दूष रिखाती हैं। इतिहासों टोपी [बायाँ ओर] एककर दाहिनी ओरकी भापी। मनो मनी मङ्गलोंका समूह दिखायी दिया ॥ ३ ॥

छेमकरी कह छेम बिलेपी। सारा नाम सुकल पर बैसी ॥

सगसुग भावत इवि कह मीन। कर पुसक दुह विप्र प्रवीन ॥ ४ ॥

छेमकरी (सदैव मित्रवाली मीन) विशेष करते छेम (कल्याण) कह रही है। स्वामा बायीं ओर सुन्दर पेड़पर दिखायी पड़ी। दाहिं, मछली और वो विद्वान् ब्राह्मण शपमें पुस्तक लिये हुए सामने आये ॥ ४ ॥

चौ०—मंगलमय कल्याणमय अभिमय फल वातावर ।

तहु सब साथे होत हित भए सगुन एक बार ॥ १०३ ॥

सभी मङ्गलमय, कल्याणमय और मनोवर्धक फल देनेवाले शकुन मानो सच्चे होमके लिये एक ही समय हो गये ॥ १०३ ॥

चौ०—मंगल सगुन सुगम सब ठाकें। सगुन बह सुंदर सुत जाकें ॥

राम सरिस यह दुखहिनि सीता। समधी वसरायु भवकु पुगीता ॥ १ ॥

सब सगुन बड़ा निकले सुन्दर पुत्र हैं, उसके लिये सब मङ्गल-शकुन सुखमें हैं। यहाँ श्रीरामचन्द्रजी-सतीने दूहा और सीताजी-बैती दुखहिनि है तथा दशरथजी और जनकजी-बैठे पवित्र समधी हैं ॥ १ ॥

भुनि भस व्याह सगुन ला भवै। अब कोन्हि चिरंति हस सीधे ॥

पदि विधि कीन्ह वदत पयन। हव गव गजहि हने दिखावा ॥ २ ॥

ऐसा व्याह सुन्दर मानो सभी शकुन नाच उठे [और कहने लगे—] अब दशरथजीने आपको उखा फर दिया। हा, यह वदतने प्रस्तुत किया।—चोढ़े-बापी गरज रहे हैं और नगार्झण चोढ़े ला रही है ॥ २ ॥

वाचत लानि मावुकल के। करिनिह वनक बैचए सेह ॥

दीव नीच कर बास बनाए। सुपुर ससि संपदा साप ॥ ३ ॥

सर्ववचने भावजन्यता दशरथजीको आगे हुए जनकर जनकजीने नदियोंपर पुल बंधवा दिये। नीच-नीचमें ठहरनेके लिये सुन्दर घर (पक्ष) बनवा दिये, जिनमें देवलोडके आनन समस्त लक्ष्मी है ॥ ३ ॥

असम समय नर असम सुहाय । पानहि सब निख निख मन भाए ॥

नित नूतन सुख छवि अनुकूले । सकल कपटिन्ह मंदिर भूले ॥ ४ ॥

और जहाँ सारातके सब लोग अपने-अपने मनकी पसंदके अनुसार सुहावने उत्तम भोजन, विस्तार और कल पाते हैं । मनके अनुकूल विल नये सुखोंको देखकर सभी बरातियोंको अपने घर भूख मरे ॥ ४ ॥

दो०—आवत जानि वरत नर मुनि गहगहे निसान ।

सजि राज रय पदचर तुरग डेन चले अगवान ॥ ३०४ ॥

यह बोरसे बजते हुए नखदोंकी आवाज सुनकर मोह बारातको आती हुई आनन्द आवाजी करनेवाले हाथी, रथ, पैदल और घोड़े सजकर सारात चले ॥ ३०४ ॥

मासपारम्ब, दसवाँ विश्राम

श्री०—कलक कलस भरि कोपर धारा । मज्जन कछिद अनेक मकार ॥

भरे सुधासन सब पकवाये । कल भौति न जाहि कपामे ॥ १ ॥

[दूध, शर्बत, ठंडाई, जल आदिसे] भरकर सोनेके कण्ठ, तथा जिन्का बर्जन नहीं हो सकता ऐसे अमृतके समान भौति-भौतिके सब पकवानोंसे भरे हुए परत, पाक भादि अनेक प्रकारके सुन्दर पर्वन, ॥ १ ॥

कल भौक नर कस्तु सुहाय । हरि मेट हित रूप पमाय ॥

भूपन कलम महामणि नाम । सग सुग हय भव बहुनिधि जाना ॥ २ ॥

उत्तम फल तथा और भी अनेकों सुन्दर वस्तुएँ राजाने हाँकी होकर मेटके छिमे मेर्सी । गहने, कपड़े, नाना प्रकारकी मूल्यवान् मणियों (रत्न) की, पशु, घोड़े, हाथी और बहुत तरहकी मकारियाँ, ॥ २ ॥

मंगल लगुन सुगंध सुहाय । बहुत भौति अहितक पठाए ॥

वधि चिडवा उचहल अतरा । भरि भरि कौबरी चले कदारा ॥ ३ ॥

तथा बहुत प्रकारके सुगन्धित एवं सुहावने मङ्गल द्रव्य और लगुनके पदार्थ राजाने भेजे । चढ़ी, चिडवा और अगणित उपहारकी चीजें कौबरीमें भर-भरकर कदार चले ॥ ३ ॥

अगवान् । जल दीप्ति बरात । घर जाबहु पुनक नर पाता ॥

हेलि कलम सहित अगवाना । सुखित कपटिन्ह हवे निसाना ॥ ४ ॥

अगवाजी करनेवालोंको सब बारात हिलायी दी, उन उनके द्वारमें आनन्द छा गया और शरीर रोमाञ्चसे भर गया । अगवानोंको सब-कुछके साथ देखकर बरातियोंने प्रसन्न होकर नगाड़े बजाये ॥ ४ ॥

दो०—हरि परसर मिल्न हित कसुक चले वगमेल ।

जनु आनन्द समुद्र दुर मिल्न विशाह सुचेल ॥ ३०५ ॥

[बराती तथा अगवानोंसे] कुछ लोग परसर मिलनेके लिये हाँकी भरे बाण छोड़कर (सरपट) दौड़ चले, और ऐसे मिले मानो आनन्दके दो समुद्र सर्वादा छोड़कर मिलते हों ॥ ३०५ ॥

श्री०—वधि सुगन सुर सुंदरि जाबहि । सुखित देव दुंदुभी बलाधि ॥

कस्तु सफल राखी मूष कर्ण । निख योनिन्हि सिन्हाति अनुरागे ॥ १ ॥

देवसुन्दरियों फूल बरसकर गीत गा रही हैं; और देवता आनन्दित होकर नगाड़े बजा रहे हैं । [अगवानोंमें आगे हुए] उन लोगोंसे सब चीजें दखरथीके आगे रक्ष दी और अत्यन्त प्रेम्मे बितती की ॥ १ ॥

मम समेत सबै सबु लीन्हा । मै बकसीस जाकसिंह दीन्हा ॥
 : करि पूजा मान्यता बढ़ाई । जगसासे कहूँ चले छवाई ॥ १ ॥
 राजा दशरथजीने प्रेमसहित सब वस्तुएँ ले लीं, फिर उनसे बख्शीयेँ होने ल्याँ
 और वे बाचकौको दे दी गयीं । तदनन्तर पूजा, आदर-सत्कार और बढ़ाई करके
 अजान लोग उनको जगसासेकी ओर लिया ले चले ॥ २ ॥

बसन भिक्षा पैसेदे पछाई । देखि धनहु बन महु परिहराई ॥
 अति सुंदर दीन्हेद जनसास । जहाँ सब कहूँ सब भीति सुपास ॥ ३ ॥
 : बिलक्षण वस्त्रोंके पोंछे पड़ रहे हैं, किन्तु देखकर कुनेर भी अपने धनका अभिमान
 छोड़ देते हैं । बड़ा सुन्दर जनसासा दिया गया, जहाँ सबको सब प्रकारका सुभीता था ॥ ३ ॥
 जागी सिधैं बरात सुर आई । कहु बिम महिमा प्रगटि जनाई ॥
 इतयै सुमिरि सब सिद्धि सोछाई । सुख पहुँचई करन पठाई ॥ ४ ॥
 सीताजीने बारात जनकपुरमें आयी जानकर अपनी कुछ महिमा प्रकट करके
 दिसवायी । हरयमें सत्कारकर सब सिद्धियोंको हुम्नवा और उन्हें राजा दशरथजीकी
 भेदमानो करनेके लिये भेजा ॥ ४ ॥

६०—सिधि सब सिध भायसु मजनि राई जहाँ जगवास ।
 लिहैं संपदा सकल सुख सुरपुर मोग विलास ॥ ३०६ ॥
 सीताजीकी भांश सुनकर सब सिद्धियों जहाँ जनसासा था जहाँ सारी सम्पदा, सुख
 और सुरपुरके मोग-विलासको लिये हुए गयी ॥ ३०६ ॥

६१—मिज मिज पास मिलेकै कराती । सुर सुख सकल मुखम सबगौती ॥
 शिव मेठ कहु कोठ न कान्हा । सकल जग कर करिई बखाना ॥ १ ॥
 बराहियोंने अपने-अपने ठहरनेके स्थान देते तो जहाँ देवताओंके सब सुखोंकी सब
 प्रकारसे तुल्य पाया । इस ऐश्वर्यका कुछ भी मेघ कोई नाम न बख । सब जनकजीकी
 पढ़ाई कर रहे हैं ॥ १ ॥

सिध महिमा खुवायक जानी । हरये इतयै हेतु पहिचानी ॥
 पितु भागनु मुनय दोन आई । इतयै न भति धांगु जमाई ॥ २ ॥
 श्रीरामनाथजी यह सब सीताजीकी महिमा जानकर और उनका प्रेम पहचानकर
 हृदयमें दर्पित हुए । पिता दशरथजीके जानेका समाचार सुनकर दोनों भाइयोंके हृदयमें
 महान् आनन्द समाता न था ॥ २ ॥

सङ्कल्प कहि न सञ्जत गुण पाहीं । पितु दरसन कमलसु मल माहीं ॥
 विद्यामित्र किय बलि देसी । उपव्य ठर संतोषु बिसेरी ॥ ३ ॥
 संकोचवच वे गुण विद्यामित्रजीसे कह नहीं सकते थे । परन्तु मनमें पिताजीके
 दर्शनकी इच्छा थी । विद्यामित्रजीने उनकी कही नामता देखी तो उनके हृदयमें
 बहुत संतोष उत्पन्न हुआ ॥ ३ ॥

रूपि बंधु दोन हृदयें लज्ज । मुक नान बंनक जग छार ॥
 चले जहाँ दसरतु जनसासे । मरहुँ सखेकर खेन पिनासे ॥ ४ ॥
 प्रत्यक्ष होकर उन्होंने दोनों भाइयोंको हृदयसे लज्ज लिया । उनका धीर पुत्रव्रत
 ही गया और नेत्रोंमें (प्रेमसुखोत्थ) जल भर आया । वे उस जनसासेको चले जहाँ
 दशरथजी थे । यानी श्रीराम पालके और लज्ज करके चले ॥ ४ ॥

रो०—गुप्त बिलोके जगहि मुनि व्यक्त सुतन्त्र समेत ।

बटे हरषि मुक्तसिद्ध महुँ चले थाह सी छेत ॥ ३०७ ॥

जब राजा दशरथजीने पुत्रोत्पत्ति मुनिसे जाते देखा, तब वे हर्षित होकर उठे और हुलके समूहमें थाह-सी छेते हुए चले ॥ ३०७ ॥

चौ०—मुनिहि दंडवत कीन्ह महीसा । कर बार वर रज बरि सीसा ॥

कौसिक राव छिन् उर फाई । कहि कसीस पूछी कुसलाई ॥ १ ॥

पृथ्वीपति दशरथजीने मुनिसे चरणधूलिके बारंबार सिरपर चढ़ाकर उनको दण्डवत-प्रणाम किया । मिशामिश्रजीने राजाको उठाकर हृदयसे लगा लिया और आशीर्वाद देकर कुसल पूछी ॥ १ ॥

मुनि दंडवत करत होइ माई । देखि कृपति जग मुक्त व समझाई ॥

सुत द्वियै काह हुसल हुच भेटे । सुतक सरीर प्रण जसु भेटे ॥ २ ॥

फिर दोनों माहयोंको दण्डवत-प्रणाम करते देखकर राजाके हृदयमें दुःख समाया नहीं । पुत्रोंको [उठाकर] हृदयसे लगाकर उन्होंने अपने [विवेकमय] दुःख-दुःखको मिटाया । मानो मृतक शरीरको प्राण मिल गये हों ॥ २ ॥

मुनि वसिष्ठ पद सिर सिन्हा बाधू । प्रेम मुदित मुनिकर उर काधू ॥

बिभ्र हुंन बंदे हुई माई । मन्महाकली कसीस पवाई ॥ ३ ॥

फिर उन्होंने पवित्रशरीरके चरणोंमें सिर नवाया । मुनिजोड़ने प्रेमके आनन्दमें उन्हें हृदय-से लगा लिया । दोनों माहयोंने सब ब्राह्मणोंकी वन्दना की और भक्तभावसे आशीर्वाद पाये ॥ ३ ॥

जगत सहस्रजुष कीन्ह मन्मथ । सिर दण्ड कइ उर समा ॥

हरये कलन देखि होइ कल । मिके प्रेम हरिपूजित नाथ ॥ ४ ॥

भरथजीने छोटे माई अनुमतिसे श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम किया । श्रीरामजीने उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया । लक्ष्मणजी दोनों माहयोंको देखकर हर्षित हुए और प्रेमसे परिपूर्ण हुए शरीरसे उठते मिके ॥ ४ ॥

रो०—पुरजन परिक्रम आतिजन वाचक मंथी सीत ।

मिके जपाविधि सबहि प्रसु परम कृपाळ विनीत ॥ ३०८ ॥

लक्ष्मण परम कृपाळ और किन्हीं श्रीरामचन्द्रजी अयोध्यावासियों, कुटुम्बियों, जातिके लोगों, यादकों, मन्त्रियों और मित्रों समीपे स्वाश्रय मिके ॥ ३०८ ॥

चौ०—रामहि देखि कलत कृपावी । प्रीति कि रीति व कधि नसावी ॥

गुप्त समीर सोहहि सुत जगरी । बंधु प्रण भरमादिक लुचारी ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीको देखकर कलत होकर (राजाके विशेषमें उनके हृदयमें जो भाव बल रही थी, वह शान्त हो गयी) । श्रीकृष्ण रीतिके बलान नहीं हो सकत । राजाके पास चारों पुत्र देखी शोभा प रहे हैं मनो जर्ब, गर्व, क्रम और मोह गरीर धारण किये हुए हैं ॥ १ ॥

सुतन्त्र समेत दसस्वहि देखी । मुदित जग नर हरि मिलेकी ॥

सुमान बसिल सुर हवाहि निरवा । नरकनी कचहि करि गाना ॥ २ ॥

पुत्रोत्पत्ति दशरथजीको देखकर अचरकेसी-मुक्त बहुर ही प्रसन्न हो रहे हैं [आकाशमें] देवता दूतोंकी वर्षा करके मगधे बन्ध रहे हैं और अष्टमार्ग गा-गाकर नाच रही हैं ॥ २ ॥

सतानंद बस निज सखि बस । जगज सुत सिद्धुष बंदीजन ॥

सहित करत सत सनसक । मन्मथ कवि निरे जगजग ॥ ३ ॥

अमवानीमें आवे हुए अतानन्दजी, अन्य ब्राह्मण, मन्त्रीयण, मागध, तनू-
विद्वान् और भार्येने वाराणसीके राजा दशरथजीके आदर-सत्कार किया । फिर आज
लेकर वे भाग्य लौटे ॥ ३ ॥

प्रथम धरात लगन हो गई । तब पुर प्रमोद अधिकार्य ॥

ब्रह्मातुल्य लोग सब कह्यो । यहँ दिवसविधि विधि सब कह्यो ॥ ४ ॥

वाराणसीके दिनेसे पहले आ गयी है, इसी जनपदपुरमें अधिक आनन्द छा रहा
है । सब लोग ब्रह्मानन्द प्राप्त कर रहे हैं और विचारसे स्नाकर कहते हैं कि दिन-रात
इस कार्य (वधे हो नवें) ॥ ४ ॥

शे.—राम सीता सोमा अवधि सुकृत अवधि दोउ राज ।

यहाँ तहाँ पुरजल कहहि अस मिलि नर नारि समाज ॥ ३०९ ॥

भीरामचन्द्रजी और सीताजी सुन्दरताकी सीमा हैं और दोनों राजा पुण्यकी सीमा
हैं । तहाँ-तहाँ जनकपुरवासी श्री-पुरुषोंके समूह इकट्ठे हो-होकर बड़ी बड़ रहे हैं ॥ ३०९ ॥

शे.—जनक सुकृत सृष्टि बँदेही । दशरथ सुकृत राम बँदे देखी ॥

इन्ह सब कह्यो न तब अवधये । कह्यो न इन्ह समान फल काये ॥ १ ॥

जनकजीके सुकृत (पुण्य) की मूर्ति जानकीजी हैं और दशरथजीके सुकृत देव
धारण किये हुए भीरामजी हैं । इन [दोनों राजाओं] के समान किसीने शिवजीकी
आराधना नहीं की और न इनके समान किसीने फल ही पाये ॥ १ ॥

इन्ह सब कोउ न भवत जग महीं । है यहँ कह्यो होइत नाहीं ॥

इस सब सकल सुकृत के राखी । भय जग जगति जनकपुर वासी ॥ २ ॥

इनके समान जगत्में न कोई हुआ, न कहीं है, न होनेका ही है । इस सब की
रक्षण पुण्यकी राखी हैं, जो जगत्में कम लेकर कमजोरके निवासी हुए, ॥ २ ॥

किम्ब जानकी राम छवि देखी । की सुकृती इस सरित बिलेखी ॥

पुनि देख्य सुबान कियाहू । देख मखी विधि कोषन काहू ॥ ३ ॥

और जिनोंने जानकीजी और श्रीरामचन्द्रजीकी छवि देखी है । इसी-सीता
विशेष पुण्यात्मा कीन होगे ! और अब हम श्रीरामचन्द्रजीके विवाह देखेंगे और मन्त्री-
मौलि नेत्रोंका दृष्टि करेंगे ॥ ३ ॥

कहि परलका कोविन्दवली । यहँ बिजयै सब लखु सुखपनी ॥

यहँ भाग्य विधि बात बयाहँ । मन्त्र-अतिथि होइहहि दोउ भाई ॥ ४ ॥

कोसलके समान मधुर बोलनवाली स्त्रियाँ आपसमें कहती हैं कि हे सुन्दर नेत्रोंवाली ।
इस विवाहमें बड़ा काम है । वधे मायसे विधातने सब बात बना दी है; ये दोनों भाई
इसो नेत्रोंके अतिथि हुआ करेंगे ॥ ४ ॥

शे.—बारहि बार स्नेह कस जनक बोलखव सीध ।

लेन आइहहि वंसु दोउ कोटि कसम कमनीय ॥ ३१० ॥

जनकजी मोक्षदा बार-बार सीताजीको बुलायेंगे, और जनकों कायदेवोंके समान
सुन्दर दोनों भाई सीताजीके सेवे (विश्र करने) आया करेंगे ॥ ३१० ॥

शे.—विधि मौलि होइहि कृतार्ह । मित्र ब कहि अस सासुर माई ॥

कय तब राम उदरहि मिहारी । होइहहि सब पुर लोग भुजारी ॥ १ ॥

तब उनकी अनेकों प्रसन्नसे पढ़नाई होगी । कहीं ! ऐसी समुदाय किते प्यारी न
मैली । तब-तब हम सब नमस्कारकी श्रीराम-कमलको देख-देखकर सुखी होंगे ॥ १ ॥

सखि जस राम लखष कर छोटा । तैसेइ रूप संग हूँ छोटा ॥
 काम गौर सब जँब झुहाइ । ते सब कहहि देखि जे अर ॥ २ ॥
 हे सखी ! जेस श्रीराम-लखष कर छोटा है, वैसे ही दो कुम्हार राजाके साथ और भी हैं । वे भी एक श्याम और दूसरे गौर कबिके हैं, उनके भी सब अङ्ग बहुत सुन्दर हैं । जो लोग उन्हें देख आये हैं, वे सब खूँही पड़ते हैं ॥ २ ॥
 कहा एक मै आहु किहारे । जसु विरिधि मिल आहु सँवारे ॥
 अरु रायही की मनुहारी । सखसा लखि न सकहि नर नारी ॥ ३ ॥
 एकने कहा—मैंने जान ही उन्हें देखा है, इतने सुन्दर हैं मानो ब्रह्माजीने उन्हें अपने हाथों से बनाया है । मरत खे श्रीरामचन्द्रजीकी ही लख-सूतके हैं । श्री-पुरुष उन्हें सखा पहचान नहीं सकते ॥ ३ ॥

कहहु सनुवरहु एकदमा । नर सिख से सब जँग अरुहा ॥
 मन भावहि मुफ करनि न बाही । उषस कह्यु विनुषन कोट गही ॥ ४ ॥
 लखम और शत्रुज दोनोंका एक रूप है । दोनोंके सबसे शिखातक लमी अङ्ग अनुपम हैं । मनको सब अच्छे लगते हैं, पर मुझसे उनका वर्णन नहीं हो सका । उनकी उपमाके योग्य तीनों छेकोंमें कोई नहीं है ॥ ४ ॥

छं—उपमा न कोउ कह दास तुलसी कहुँ कवि कोविद कहै ।
 बल विनय विद्या सील सोभा सिंधु शङ्ख से एर गहै ॥
 पुर नारि सकल पसारि बंछल विधिहि बचन सुनावही ।
 व्याहिमहुँ बारिड भाइ पहिँ पुर हम सुमंगल गावही ॥
 दास तुलसी कहता है कवि और कोविद (विद्वान्) कहते हैं, इनकी उपमा कहीं कोई नहीं है; बल, विनय, विद्या, सील और सोभाके समुद्र इनके समान थे ही हैं । जनकपुरकी सब स्त्रियों औचल फैलाकर विधाताको यह पथन (विनती) सुनायी हैं कि वारी भाइयोंका विवाह इली नगरमें हो और हम सब सुन्दर मङ्गल गावें ।

छं—कहहि परस्पर नारि नारि बिलोखन पुच्छ लन ।
 सखि सहु करन पुरारि पुन्य पयोनिधि भूप दोइ ॥ ३११ ॥
 नेत्रोंमें [प्रेमाशुलोका] लल मरकर पुच्छति करीखे स्त्रियाँ आपसमें पूछ रही हैं कि हे सखी ! दोनों राजा पुन्यके समुद्र हैं, त्रिपुरारि शिवजी सब मनोरथ पूर्ण करे ॥ ३११ ॥
 चौ—एहि विधि लखक मनोरथ कही । आर्षेद उभवि उभगे जर भरही ॥
 जे रूप लीख लखधर गए । तैवि वंदु सब सिन्ध सुख पाए ॥ १ ॥
 इस प्रकार सब मनोरथ कर रही हैं । और हृदयको जर्मोप-उर्मोमकर (उत्साहपूर्वक) आनन्दते भर रही हैं । तीताजीके स्वर्णरत्न जो राजा आये थे, उन्होंने भी वारी भाइयोंको देखकर झुल पाया ॥ १ ॥

कहत राम बसु किसल किताल । निख निज नखर गए सहिपाल ॥
 गए भीति कहु निष एहि भीती । प्रसुदित पुरुष सब बराती ॥ २ ॥
 श्रीरामचन्द्रजीका निर्मल और माहान् बस कहते हुए राजलोग अपने-अपने घर गये । इस प्रकार कुछ दिन बीत गये । जनकपुरनिवासी और वराही लमी बड़े आनन्दित हैं ॥ २ ॥

मंगल मूल कवन दिनु आया । हिमंति कपलसु मनु सुहाया ॥
 अहं त्रिधि बलहु कोहु नर नर । लख सोवि विधि कीन्ह विचार ॥ ३ ॥

मङ्गलार्थ मूल लगान दिव जा गया । हेमन्त ऋतु और सुहावन अगहनका महीना था । मङ्ग, तिथि, मङ्गल, योग और वार भेद थे । तब (युद्धार्थ) श्लेषकर ब्रह्माजीने उत्तर दिशा करि । ॥ ३ ॥

तब हीन्दि वास्त सब छोड़ । जमी जल के गलकन्ह जोई ॥

सुनी सकल श्लेषक यह जाता । कहहि ज्योतिषी अहि विधाता ॥ ४ ॥

और उस (लग्नप्रशिक्ष) को सरदजीके हाथ [जनकजीके यहाँ] भेज दिया । जनकजीके ज्योतिषीवोंने भी वही राखना कर रखी थी । तब सब ज्योतिषोंने यह बात सुनी तब ये कहने लगे—यहाँके ज्योतिषी भी ब्रह्मा ही हैं ॥ ५ ॥

दो०—धेनुधुरि केन्द्र विमल सफल सुमंगल मूल ।

विमल कहै विदेह सब जानि समुच्च अनुकूल ॥ ३१२ ॥

निर्मल और सभी सुन्दर मङ्गलकी मूल गोपूजिका पवित्र देव आ गयी और अनुकूल शकुन होने लगे, वह जानकर ब्रह्माजीने जनकजीके कहा ॥ ३१२ ॥

जौ०—अपरोक्षहि कहे बलवत् । तब मिलन कर करतु कहा ॥

तत्प्राप्त सब लक्षि बोलत । मंगल सकल सखि सब हवाए ॥ १ ॥

तब राधा जनकने पुरोहित शतानन्दजीके कहा कि अब देरका क्या कारण है । तब शतानन्दजीने मन्त्रियोंको बुलाया । ये सब मङ्गलका सामान उठाकर ले आये ॥ २ ॥

संख बिलास पद्म बहु कले । मंगल कलस सगुन सुख साके ॥

सुमंग सुखसिनि पावहि मीता । कहहि वेद धुनि विम धुनीता ॥ २ ॥

शङ्ख, नगाड़े, डोल और बहुत-से शबे बनने लगे तथा मङ्गल-कलस और सुमंग शकुनकी वस्तुएँ (पक्षि, वृक्ष आदि) समायी गयीं । सुन्दर सुहागिन जिनकी गीत गा रही हैं और पवित्र ब्राह्मण वेदकी ध्वनि कर रहे हैं ॥ २ ॥

केस चके सखर एहि भीठी । गङ्ग जहाँ जलवास बराठी ॥

कीसकरति कन देखि समाप् । अति समु कान किन्हाहि सुरराप् ॥ ३ ॥

सब लोग इस प्रकार अक्षरपूर्वक वातको लेने चके और जहाँ बरातिवोंका जनवाता था, वहाँ गये । अवसर्पति दशरथजीका उत्तम (वैभव) देखकर उनको देखकर इन्द्र भी बहुत ही प्रसन्न होने लगे ॥ ३ ॥

मपल समद सब भारिण पात । यह सुनि पद विमलहि जात ॥

पुरहि पुरि करि कुल निधि राज । चके संग सुनि सखु समाज ॥ ४ ॥

[उन्होंने जाकर विनती की—] समस्त हो गया, अब पधारिये । यह सुनते ही मातापिता चोट पड़ी । शुरू बलिष्ठजीने पूछकर और कुलकी सब रीतियोंको करके राधा दशरथजी सुनिगों और साधुजनों उमाकनो साथ लेकर चले ॥ ४ ॥

दो०—भाग्य विमल मन्त्रसे कर देखि देव ब्रह्मादि ।

उमे सपाहम सखस मुख जानि अमर निज भादि ॥ ३१३ ॥

अक्षरपरोक्ष, दशरथजीका भाव्य और दैत्य देखकर और अपना अन्य ज्यैष्ठ्य मन्त्रका, ब्रह्मादी आदि देवता हवाएँ सुनाने उनकी सपाहना करने लगे ॥ ३१३ ॥

जौ०—सुन्दर सुमंगल शक्यत जान । कसहि सुमंगल कला विधाना ॥

सिय ब्रह्मादिक शिष्य कल्या । जे विमलहि नारा धूया ॥ १ ॥

देवराज सुन्दर मङ्गलका वक्ता जानकर, मातापिता बला-बलाकर पूछ बरसाते हैं । शिवजी, ब्रह्माजी आदि देवदेव युग (दोहों) कल-कलाकर विमानोंपर आ चढ़े ॥ १ ॥

प्रेम पुष्पक तब हृदयें उछाहू । चले मिलैकन सम विजाहू ॥
देखि जनकजूर सुर-अनुसरी । विन निज लोक सखीं छुटु सारी ॥ २ ॥
और प्रेमते पुष्पकितरीर हो तथा हृदयमें उल्लाह भरकर भीरामचन्द्रजीका
विवाह देखने चले । जनकपुरको देखकर देखत रहने अनुरक्त हो गये कि उन सबको
अपने-अपने लोक बहुत तुच्छ लगने लगे ॥ २ ॥

चित्तवाहि चकित विचित्र भिन्नता । रचन समस्त अलौकिक जाता ॥
नगर नारि नर रूप निधाना । सुपर सुधस्म सुसीक सुजाना ॥ ३ ॥
विचित्र मण्डपको तथा जाना प्रकारकी सब अलौकिक रचनाओंको धे चकित होकर
देख रहे हैं । नगरके श्री-पुरुष समके मण्डप, सुमह, भेद धर्मात्मा, सुशील और सुजान हैं ।
तिनहदि देखि सब सुर सुरनारी । मद्द बसत ननु विनु तविवारी ॥
विधिहि भक्त आचरतु विसेयी । निज करवी ननु फलहुं न देखी ॥ ४ ॥
इन्हें देखकर सब देखत और देखाइनाएँ ऐसे प्रमाहीन हो गये जैसे जन्मजाके
तनिकासेमें तारागण पीके पद आते हैं । प्रज्ञाओंको विशेष आश्चर्य हुआ, क्योंकि यहाँ
उनहोंने अपनी कोई करनी (रचन) तो नहीं देखी ही नहीं ॥ ४ ॥

दो०—सिखै समुझाय देव सब अनि आचरत मुसाहू ।
हृदयें विचारतु घोर घरि सिय रघुवीर विभाहू ॥ ५ ॥
तब शिवजीने सब देवताओंको समझाया कि तुम लोग आत्थर्वमें मा भूलो ।
हृदयमें घोरत करकर विचार तो करो कि यह [भगवान्की महामहिमामयी निरापत्ति]
जीसीताजीका और [अखिल ब्रह्माण्डके परम ईश्वर साक्षात् भगवान्] श्रीरामचन्द्रजी-
का विवाह है ॥ ५ ॥

चौ०—शिख कर पासु देत लग सखी । सकल अर्चनक सुन गताही ॥
करतक होहि पदात्म चरी । तेह सिय राघु कबह कामारी ॥ ६ ॥
शिनका नाम छेते ही जगत्में गते अमल्लोकी चढ़ कर जाती है और पारों पदार्थ
(धर्म, धर्म, काम, मोक्ष) मुझमें आ जाते हैं, ये श्री [जगत्के माता-पिता]
जीसीतारामजी हैं; कामके अनु शिवजीने ऐसा कहा ॥ ६ ॥

पदि विधि संनु भुलह सज्जना । पुनि अर्चन कर करत जगना ॥
देवन्द देखे दसरतु काल । मद्रमोद सब पुष्पकित गाला ॥ ७ ॥
इत प्रकार शिवजीने देवताओंको समझाया और फिर अपने भेद सेह नन्दीश्वरको
आगे बढाना । देवताजीने देखा कि दशरथजी भगवें श्री प्रवक्त और शरीरते पुष्पक
दुए चले जा रहे हैं ॥ ७ ॥

साधु समाज संग अहिदेव । यहु राघु वरें करहि सुख सेवा ॥
सोहत साव सुमन सुत पाले । ननु जगदल-सकल अनुचारी ॥ ८ ॥
उनके साथ [परम हर्षसुक] साधुओं और ब्राह्मणोंकी मण्डली ऐसी शोभा है
रही है-मानो समस्त सुख शरीर धारण करके उनकी सेवा कर रहे हो । चारों ओर
पुत्र साथमें ऐसे सुशोभित हैं मानो सम्पूर्ण मोक्ष (ज्ञानेय, ज्ञानीय, कर्तव्य, साधुज्य)
शरीर धारण किये हुए हो ॥ ८ ॥

मरकत कनक कल कर खेरी । देखि भुलह मै प्रीति न बोरी ॥
पुनि रामहि विद्येकि दिवें हरे । नृपति सखि सुमन तिन्ह वरे ॥ ९ ॥
मरकतमणि और सुवर्णके रंगकी सुन्दर जोड़ियोंने देखकर देवताओंके कम प्रीति

नहीं हुई (अर्थात् बहुत ही शीघ्र हुई)। फिर रामचन्द्रजीको देखकर वे हृदयमें (अत्यन्त) हर्षित हुए और रावजी सरहना करते उन्होंने पूछ बरसाये ॥ ४ ॥

दो०—राम कपु लख सिख सुमग वारहि वार निहारि।

पुलक भात खेचन सखल उमा समेत पुरारि ॥ ३१५ ॥

नखते दिखाते श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर रूपको बार-बार देखते हुए पार्षतोन्नी-सहित श्रीशिवजीका स्तरीय पुष्कित हो गया और उनके नेत्र [प्रेमशुभ्रोंके] जलसे भर गये ॥ ३१५ ॥

बौ०—कोई छंद कृति सामल संख। तथै प्रियिदुख भवन सुरंग ॥

ज्याह विनुव विविध यगद। संख सब सब भौति सुहाय ॥ १ ॥

रामजीका मोरके कम्पकी-सी कान्तिवाला [हरिग्राम] स्वाम स्तरी है। विनलकी-अत्यन्त निरादर करनेवाले जगज्जगत् सुन्दर [छंद] रंगके बख हैं। सब मङ्गलरूप और सब प्रकारसे सुन्दर भौति-भौतिकीके विशालके आभूषण स्तरीरर सजाये हुए हैं ॥ १ ॥

साद विमल विपु बरु सुहाय। नयन नखल राखी ललाट ॥

सखल सखौकि सुंदसाई। कहि न काइ मगही मन माई ॥ २ ॥

उनका सुन्दर मुख सखसुखिके निर्मल चन्द्रमाके समान और [मनोहर] नेत्र लकीन कमलसे सजायेवाले हैं। सारी सुन्दरता अवैकिक है (मायाकी कमी नहीं है, विषय-समिधानन्दमयी है) वह कही नहीं जा सकती; मन-ही-मन बहुत प्रिय लगती है ॥ २ ॥

बंधु मनोहर छोरहि संवा। सख नखल नयन सुरंग ॥

रासकुंभर भर सखि बेछावहि। बंस प्रसंसक विरिह सुहाय ॥ ३ ॥

छात्रमें मनोहर माई शोभित हैं, जो बखल घोड़ोंको नचाते हुए चले जा रहे हैं। राजकुमार शैव घोड़ोंको (उनकी चालसे) दिखला रहे हैं और बंधकी प्रशंसा करनेवाले (मनमन्माद) किदाकरी घुमा रहे हैं ॥ ३ ॥

लेहि सुरंग पर रसु विराते। गति किछोकि लगलखु काने ॥

कहि न काइ सब भौति सुहाय। सखि वेनु बनु कम बगवा ॥ ४ ॥

जिस बोदेकर श्रीरामजी विरजमान हैं, उसकी [तेज] चाल वैसकर गवड़ भी लगा जाते हैं। उसका बर्चन नहीं हो सकता, वह सब प्रकारसे सुन्दर है। कानों कमदेव-ने ही बोदेका वेप धारण कर लिया हो ॥ ४ ॥

छं०—जलु बाजि वेनु सनाइ मखसिहु राम हित ग्यति सोइई।

आपनै वष ॥ लख गुन गति सखल भुवत विमोइई ॥

जगमगत जीनु जगव ज्योति सुमेति मखि मानिक लगे।

किंकिभि छलाम लगामु लखित किछोकि सुर नर मुनि ठगे ॥

माने श्रीरामचन्द्रजीके शिबे कामदेव बोदेकर वेप बनाकर अत्यन्त शोभित हो रहा है। वह अपनी व्यवसाय, कल, रस, गुण और चालसे समस्त जगज्जगत् मोहित कर रहा है। सुन्दर मोती, मणि और मणिमय लकी जुहं ज्वाला लीन ज्योतिसे जगज्जगत् एरा है। उसकी सुन्दर सुभ्र लकी लखित ज्वालासे देखकर देवक, मनुष्य और मुनि लकी ठगे जाते हैं।

दो०—प्रभु मनसाहि लखलीम मनु चंखत बाजि छवि पाव।

भुषित उदयान इहित मनु जलु कर नरहि नयाव ॥ ३१६ ॥

प्रभुजी इच्छामें अपने मनमें लीन किये पल्लव हुवा वह घोड़ा बड़ी चोभा च

रहा है । मानो तारतम्य तथा निजजीसे अलङ्कृत गेव सुन्दर मोरको नन्हा रहा हो ॥११६॥

चौ०—जेहिं बर बाजि राखु अम्बारा । तेहि स्वरदठ न बरवै पाण ॥

संस्कृत छन्द छन्द अम्बुरागे । नकर पंचकस वधि शिव लागे ॥ १ ॥

शिव श्रेष्ठ गेवेषर श्रीरामचन्द्रजी स्मर है, उवध कर्बन सरस्वतीजी भी नहीं कर सकती । शङ्करजी श्रीरामचन्द्रजीके समीं ऐसे कतुस्तु हुए कि उन्हें अपने पत्रह नेत्र इस समय बहुत ही प्यारे लगने लगे ॥ १ ॥

हरि हित सहित राखु अब जेहे । सम समेत समपति मोहे ॥

निर्विक राम जय विधि, हरमने । अखर नयन बानि पकिताने ॥ २ ॥

मगवान् विष्णुने जब प्रेमसहित श्रीरामसे देखा, तब वे [रामजीपत्नीकी मूर्ति] श्रीरामजीकी पति श्रीरामजीकीसहित मोहित हो गये । श्रीरामचन्द्रजीकी शोभा देखकर ब्रह्माजी बड़े प्रसन्न हुए, पर अपने आठ ही नेत्र जानकर पकिताने लगे ॥ २ ॥

सुर सैन्य उर बहुत उछाह । विधि से ठेक कोचन छाह ॥

शरदि चित्तव सुखेस सुखान् । गौतम बापु परम हित मान ॥ ३ ॥

देवताओंके सेनापति स्वामिकारिकके हृदयमें बड़ा उत्साह है, क्योंकि वे ब्रह्माजीके बगोड़े अर्थात् पाण नेत्रोंसे राम-दर्शनकर सुन्दर कम उठा रहे हैं । भुजान इन्द्र [अपने हजार नेत्रोंसे] श्रीरामचन्द्रजीको देख रहे हैं और गौतमजीके बापको अपने लिये परम हितकर मान रहे हैं ॥ ३ ॥

ऐव सकल सुखसिद्धि सिद्धाहीं । बाहु पुरंदर कम कोच नहीं ॥

सुखित देखन शरदि देखी । नृपसमाज दुहुँ हस्त मिलेची ॥ ४ ॥

सभी देवता देवराज इन्द्रसे ईर्ष्या कर रहे हैं [और यह रहे हैं] ॥ बाज इन्द्रके समान भाग्यवाद दूसरा कोई नहीं है । श्रीरामचन्द्रजीको देखकर देवमग प्रसन्न हैं और दोनों राजाओंके समाजमें मिले इर्ष्य का रहा है ॥ ४ ॥

छं०—अति हरपु राजसमाज पुहु दिशि पुहुभी बाजहिं ननी ।

वरपाहिं सुमन सूर हरपि कहिअय अवतिअय राहुकुलमनी ॥

एहि भीति जानि करत भाकर कान्ते बहु बाजहिं ।

रानी सुभासिनि बोळि परिलनि सेतु मंगल साजहिं ॥

दोनों ओरसे राजसमाजमें अत्यन्त हर्ष है और बड़े जोरसे नगाड़े बज रहे हैं । देवता प्रसन्न होकर और पुरुषजन्मि श्रीरामजी काय हो, अय हो, सब हो' कहकर फूट बरसा रहे हैं । इस प्रकार नगरमें गांधी हुई जाकर बहुत प्रकारके शाले बनने लगे और रानी सुभासिनि झिपोंको कुलकर फलनके लिये मङ्गल साजने लगीं ।

दो०—सवि भारती अनेक विधि मंगल सकल सँवारि ।

चलीं मुदित परिलनि करव मज्जगमिनि बर नारि ॥ ३१७ ॥

अनेक प्रकारसे भारती सबकर और समस्त भद्रचन्द्रज्योंको बधाधोष राजापर 'गन्तामिनी' (हाथीपै-थी चालनाली) उपन लियों आकरपूर्वक परलनके लिये चलीं ॥३१७॥

चौ०—विधुवदनीं सख सम सखलोचनि । एव निजजन छवि रति स्तु औचनि ॥

पहिरें वरन बंदन कर जीरा । सकल विमूर्धन सखें सरीरा ॥ १ ॥

सभी स्त्रियां चन्द्रमुखी (चन्द्रमुखके समान मुखवाली) और सभी मृगलोचनी (हरिकी-थी झंझोनाली) हैं, और सभी अपने सरीरकी ओभासे रतिके गर्वको छुड़ाने-वाली हैं । रंग-रंगकी सुन्दर लक्ष्मियां पहने हैं और स्त्रीएँ उन आनन्द के हुए हैं ॥१॥

सकल सुमंगल जग बनावै । कहि याव कलकंडि छत्राएँ ॥

कंकन किङ्किनि मधुर खनहि । खलि मिलोकि कम गज लाजहि ॥ २ ॥

ममदा अङ्गोष्ठो सुन्दर मङ्गलदायिनि सजाये हुए वे क्रोमलत्रो मी लजाती हुई [मधुर स्वरमे] गान कर रही हैं । कंकन, करघनी और मधुर वज रहे हैं । किङ्किनी चात देलकर कामदेवके हाथी भी सजा बढे हैं ॥ २ ॥

खनहि खल्ले निविध प्रसरा । नम अरु नगर सुमंगलचार ॥

सखी सारथ रसा भवती । वे सुचरित मुनि सहज सकासी ॥ ३ ॥

अनेक प्रसारे जाये वज रहे हैं । आकाश और नगर दोनों स्थानोंमें सुन्दर मङ्गलचार हो रहे हैं । मन्त्री (इन्द्राणी), मन्त्रवती, लक्ष्मी, पार्वती और जो मयामने ही पवित्र और भवानी देवाङ्गनाएँ थीं ॥ ३ ॥

कपट खरि वर कैय बनावै । मिछी सुकल रनिवासहि जाई ॥

कहि गान कल मंगल वार्ता । हरष विषय सब कछु न लाई ॥ ४ ॥

वे सब कपटके सुन्दर लीला येव बनकर रनिवासमें आ मिछी और मनोहर बाणीसे मंगलान करने लगीं । सब कोई हरिके विशेष का थे, अतः किसीने उन्हें पहचाना नहीं ॥ ४ ॥

४०-को जान केहि ध्वजद वस सब ब्रह्म वर परिछन कछी ।

फल प्राप्त भधुर निस्तान वरपहि सुमन सुर सोभा भली ॥

भानवकांडु दिलोकि दूखु सकल हिर्य हरपित भार ।

भ्रमोज भयक अंधु उमसि सुमंग पुलकावलि छई ॥

कौन किते जाने-पहिचाने ! भानन्दके वस हुई सब दूख वने हुए प्रसन्न परछन करने लगीं । मनोहर गान हो रहा है । मधुर-मधुर नगादे वज रहे हैं, देवता फूल बरसा रहे हैं, वही अच्छी सोभा है । भानन्दकन्द दूखके डेलकर सब क्रियाएँ हरयमे हरित हुई । उनके काम-कसौति नेत्रोंमें प्रेमाभुओंका लज उमद आका और सुन्दर अङ्गोंमें पुलकावली छा गयी ।

१०-जो सुखु मा सिय मातु मन देखि राम वर वेधु ।

सो न सकहि कहि कछु सत सहस सारथ लेधु ॥ ११८ ॥

भौरामचन्द्रजीका वरकर देखकर सीतानीकी माता मुसयनाजीके मनमें जो सुख हुआ, उसे हारो खरबती और केपनी सौ कल्पोंमें भी नहीं कह सकते [अथवा जहाँ खरबती और शेष लाखों कल्पोंमें भी नहीं कह सकते] ॥ ११८ ॥

चौ०-मन नीच हरि मंगल जानी । पलित्ति कहि मुदित सब राखी ॥

वेद विहित लक्ष कुल व्याचार । कीन्ह मली विधि सब व्यवहार ॥ १ ॥

मङ्गल अवसर जानकर नेत्रोंके जलको रोंके हुए सनी प्रसन्न मनसे परछन कर रही हैं । वेदोंमें कहे हुए तथा कुलचारके अनुसार सभी व्यवहार रानीने मलीमति किये ॥ १ ॥

पंच सबद छवि मंगल जाना । पद पौवदे परहि विधि वाता ॥

करि सारथी भखु स्निह दीन्हा । राम धामतु मंदन सब कर्महा ॥ २ ॥

पञ्चशब्द (तन्त्री, ताल, गायन, नगारा और तुखी—इन पाँच प्रकारके वातोंके शब्द), पञ्चपद्म (वेदपद्म, कन्दर्भपद्म, जयपद्म, मधुपद्म और दुग्धपद्म) और

मनुष्यान् हो रहे हैं। माना प्रसूतके पल्लोके गँवड़े पड़ रहे हैं। उन्होंने (एनीने) धातवी करके अर्घ्य दिशा, तब श्रीरामजीने मन्त्रों मन्मन् किया ॥ २ ॥

दसतु संहित समान्य विधाने । विमल विभोदि सोऽपि सत्ये ॥

समर्प्य स्वर्ग्यं सुर वरपदि पूज्य । सोति पदहिं महिसुर भुजगम् ॥ ३॥

दशरथजी अपनी मन्त्रावली पढ़ते विप्रसमान हुए ! उनके वैभवकी दैसकर लोकमात्र भी सज्जा गये । समय-समयपर देवता पूज करछते हैं और सदैव ब्राह्मण समानानुद्ध गान्निपाट करते हैं ॥ ३ ॥

नमः अहं नमः कोलहल होई । अक्षयि पर कसु सुख भ कोई ॥

एदि निवि रासु भंटपहि काए । जखु देह जखन पैठार ॥ १३ ॥

आकाश और नभसे घोर मघ गड़ा है । मक्खी-मक्खी कोरें कुछ भी नहीं सुनता । ■ प्रकाश भीपम-कण्डजो मण्डपमें आवे और सर्व वैकर आसनपर बैठावे गये ॥ ४ ॥

७०-वैद्यरि आसम आरुतौ करि निरखि वर सुख पावहीं ।

मनि वस्तु धूपन भुरि वारहि नारि मंगल गावहीं ॥

महाशिव सूरवर यिम् येव वन्नाइ कौतुक ऐन्हीं ।

मयलोकि राघवकुल कमल रवि छवि सुफल जीवन देणहीं ॥

आसनपर बैठकर, आली करके, दृष्टको देखकर बिना मुक्त या रही हैं। वे
हैर-हैर भवि, पक्ष और गन्ने शिवाकर करके मन्त्र या रही हैं। तथा यदि ओं
देवता ब्राह्मणका वेद बनाकर कौतुक देख रहे हैं। वे शत्रुमण्डली वक्त्रके मन्त्रित
कन्येको हर्ष अंगारमन्त्रको भी बिना देखकर अप्रज जीवन लक्ष्य मान रहे हैं।

१०—मालु खारी भाट मड राम निछावरि पाव ।

सुखित असीखहि ग्राह सिर हरपु न हृदयै समाह ॥ ३१९ ॥

नाई; बारी, भाट और गढ श्रीरामचन्द्रजीकी निहसर फाकर आनन्दित हो फिर मनापर भाविय देते हैं; उनके इतरकर्म हर्ष सम्पत्ता नहीं है ॥ ३११ ॥

चौ०—मिसे जगज्ज वसरायु जति प्रीतीं । करि वैदिक कौलिक सब प्रीतीं ॥

सिद्धत महा शोक राग बिलसै । उपमा शीति खोमि कबि हानै ॥ १ ॥

वैदिक और लौकिक ज्ञान वीथियों करके अन्तर्गत और दृश्यरूपी के प्रवेश मिले ।
दोनों महाराज मिलते हुए नये ही भोक्ति प्राप्त करके उनके मिले उपर्युक्त शब्द-लोकात्
कथ्य गये ॥ १ ॥

कही न कहतुँ हारि हिमें मनी । हृद साधु रूपसा तर मनी ॥

साधनं देहि देव अनुसूय । सुमनसोऽपि जन्तुः शान्तः सती ॥ १ ॥

१॥ अब श्री जी उपासी नहीं मिली, अब हृदयों हार मानकर उन्हाड़े घामें नहीं
सपना निमित्त थी कि इनके सामन वै ही है। सन्निविर्वाह मिलन अ. परस्पर सम्पन्न
देखकर देवता अनुकूल हो गये और पूजा करताकर उनका कस माने कले ॥ २ ॥

कतु धिरं चि, उपज्जा अय तं । देवे सुदे म्भर म्भु सव तं ॥

सकल जीवित समं सखु समन्त । समं सखी दुख ह्ये जन्म । व १

देसे-मुने; परन्तु वह प्रकाश के अन्तर्गत अन्तर्गत और अन्तर्गत (पूर्व उपपन्न) समीचीन तो आत्मा ही देसे ॥ ३ ॥

देव विरा सुनि हुंदर सौची । प्रीति जलैतिक मुहु दिति माची ॥
 देत सौंदर्ये कहु सुहृद । सदा बनु मंडपहि ल्याए ॥ ४ ॥
 देवताओंकी सुन्दर स्तुतिवाणी सुनकर दोनों कोर अनैतिक प्रीति छा गयी । मुन
 पण्डे और अर्ध देते हुए जनकजी वरारवजीको जाहरपूर्वक मण्डपमें ले आवे ॥ ४ ॥
 ६०-मंडपु विलोकि विविध रचनै रुधिरतौ मुनि मन हरे ।
 निज पानि अन्त झुजान सब कहँ अनि सिधासन धरे ॥
 कुल हृद हरिस बसिए पूजे वित्त करि आसिए लही ।
 कौंसिकहि पूजत परम प्रीति कि रीति तौ न परे कही ॥
 मण्डपको देखकर उसकी विचित्र रचना और सुन्दरतासे मुनियोंके मन भी ह
 गये (मोहित हो गये) । मुनान जनकजीने अपने हाथोंसे ख-खकर सबके छिद
 तिशासन रखे । उन्होंने अपने कुण्डके हर देवताके समान बसिठनीकी पूजा की और
 वित्त करके आसिए लही । विश्वामित्रजीकी पूजा करते समयकी परम प्रीतिकी
 रीति तो करते ही नहीं बनती ।

श्री०-यामयेष अदिक रिषय पूजे मुदित महीस ।
 विप दिग्य आसन सगहि सब सब लही भसीस ॥ ३९० ॥
 राजाने कामरेष आदि ऋषियोंकी प्रसन्न मन्ते पूजा की । सभीको दिग्ध आसन
 दिये और सबसे आशीर्वाद प्राप्त किये ॥ ३९० ॥
 श्री०-बहुरि कोसिह ज्ञेसकवसि पूजा । आदि ईस सम भव न दूना ॥
 कोसिह ओरि कर विनाय कहाई । कहि निज भाग्य विमल बहुताई ॥ १ ॥
 फिर उन्होंने कोसिकजीका राजा दसरथजीकी पूजा उन्हें ईश (महादेवजी) के
 समान जानकर की; कोई दूसरा भाव न था । वदनम्बर [उनके सम्बन्धसे] अपने भाग्य
 और वैभवके विस्तारकी सराहना करते हुए जोड़कर विनती और वहाई की ॥ १ ॥
 पूजे भूषति सकल काशी । समथी सम सादर सब भौंती ॥
 भाजन उचित किए सब कहू । कहौ कह सुख एक बछाहू ॥ २ ॥
 राजा जनकजीने सब कर्त्तव्योंका अपनी दसरथजीके समान ही सब प्रकारसे
 आदरपूर्वक पूजन किया और सब कर्त्तव्योंको उचित आसन दिये । ये एक मुकसे उस
 उत्साहका क्या वर्णन करें ॥ २ ॥

सकल वरात सकल समग्रथी । शत्रु नष्ट विजयी कर काशी ॥
 विधि हरि हर दिसिपति दिनरात । वे कामहिं श्रुबीर प्रभाक ॥ ३ ॥
 राजा जनकने धाम, मन-सम्मान, विनय और उत्तम वाणीसे वारी शरादस
 सम्मान किया । नडा, विष्णु, शिव, दिक्कल और सर्व जो औरगुनायकीका प्रमाण
 मानते हैं ॥ ३ ॥

कपट निज भर देव कहाई । कीतुक देखीहँ अति सहु पाई ॥
 पूजे अवक देव संभ वाने । दिष्ट मुकसन तिलु पहिचाने ॥ ४ ॥
 वे कपटसे ज्ञाहोष्य सुन्दर को ज्ञाने बहुत ही सुख पाते हुए सब चीज देख
 रहे थे । जनकजीने उनको देवताओंके समान जानकर उनका पूजन किया और बिना
 पहचाने भी उन्हें सुन्दर आसन दिये ॥ ४ ॥

६०-पहिचान को केहि जान सवहि अपान सुधि मोरी नई ।
 सानंद कहु विलोकि बूछहु अग्य विसि जानैदमई ॥

सुर लखे राम मुखव पूजे मानसिक आसन दण ।

अवलोकित सीतु सुभास प्रभु को विबुध भव प्रमुदित भण ॥

कौन किसको जनेपहिचाने । सबको अपनी ही मुख मूखी हुई है । आनन्दकन्द
दूषणको देखकर दोनों ओर आनन्दगयी स्थिति हो रही है । सुभास (सर्वश) श्रीराम-
चन्द्रजीने देवताओंको पहचान लिया और उनकी मानसिक पूजा करके उन्हें मानसिक
आसन दिये । प्रभुका शील-स्वभाव देखकर देवगण मनमें बहुत आनन्दित हुए ।

तो—रामचंद्र मुख चंद्र लखि खेचन बाह चकोर ।

करत पान सादर सकल प्रेमु प्रमोदु न थोर ॥ ३९१ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके मुखरूपी चन्द्रमासी छवि को सभीके सुन्दर नेत्ररूपी चकोर
आदरपूर्वक पान कर रहे हैं ; प्रेम और आनन्द कम नहीं है (अर्थात् बहुत है) ॥ ३९१ ॥

चौ०—समस्त पिछोके बसिह कोकाण्ड । सादर सम्राट् सुनि भाण ॥

देगि कुभेरि अब आबहु आई । कबे मुदित मुनि बाबसु पाई ॥ १ ॥

समस्त देखकर बसिहजीने शतानन्दजीको आदरपूर्वक बुलाया । वे सुनकर आदरके
शाय आये । [पशिष्टजीने कहा—] अब आकर राजकुमारीको भीष्ट से आइये । हुनिजी
आका पाकर ये प्रसन्न होकर चले ॥ १ ॥

रानी सुनि उपरोहित कानी । प्रमुदित बसिह समेत सक्नी ॥

विम कइ कुलकुल कोलाई । करि कुल रीति सुमंगल गाई ॥ २ ॥

हुनिमयी रानी पुरोहितकी बाणी सुनकर बसिहसमेत बड़ी प्रसन्न हुई । आकाणोंकी
लियाँ और कुलकी बूझी लियोंको बुलाकर उन्होंने कुलरीति करके सुन्दर मङ्गलगीत
गाये ॥ २ ॥

गारि वेध से सुर कर कान । सकल सुमार्ग सुंदरी जाना ॥

तिन्हाहि देखि सुख पावई मारी । किउ कहिबाधि आबहु ते प्यारी ॥ ३ ॥

श्रेष्ठ देवाङ्गनाएँ, जो सुन्दर मनुष्य-लियोंके केसों हैं, सभी लभापसे ही सुन्दरी
और क्याना (सोलह वर्षकी अवस्थावाली) हैं । उनको देखकर रनिवासकी लियोंमुख पावी
हैं और विना पहचानके ही वे स्वको जानोसे भी प्यारी हो रही हैं ॥ ३ ॥

बार बार सकलनहि रानी । उमरा सत सार सत जानी ॥

छोष सँवारी ममाहु कवाई । मुदित मंवरहि पड़ी कवाई ॥ ४ ॥

उन्हें पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वतीके समान जानकर रानी बार-बार उमरा सम्मान
करती हैं । [रनिवासकी लियों और बसियों] शीतवीर्य मृगार करने, बंधाधी बनाकर,
प्रसन्न होकर उन्हें मण्डपमें लिया प्यारी ॥ ४ ॥

नं०—बलि ह्याइ सीतहि सक्नी सादर सजि सुमंगल आमिनी ।

नवसप्त साजे सुंदरी सब मत्त कुंजर गामिनी ॥

कल गान सुनि मुनि भ्याव त्वागहि काम कोकिल काजरी ।

मंजीर नूपुर कलित कंकन ताल गति कर बाजरी ॥

सुन्दर मङ्गलका शाल सनकर [रनिवासकी] लियों और बसियों आदरसहित
सीतजीकी लिना चली । सभी सुन्दरियों सोलहों मृगार भिजे हुए, भववाते हाथियोंकी
चालसे चलनेवाली हैं । उनके मनोहर गानको सुनकर मुनि भयान डोढ़ बैठे हैं और
कामदेवकी कोयलें भी डब डबती हैं । लवनेवः पैंनी और सुन्दर कंकन तालकी
गतिमय बड़े सुन्दर बज रहे हैं ।

दो०—सोहति यमिता सुंव महुं खइज सुहावनि सीय ।

छवि जलना मय मय जसु सुभया तिय कमनीय ॥ ३२२ ॥

सब ही सुन्दरी सीयानी जिनके सुन्दर रूप प्रभर शोभा पा रही है, मनोहर रूपी लक्ष्मणोंके समूहके बीच खड़ा प्रभु मनोहर शोभाकरी को सुशोभित हो ॥ ३२२ ॥

। चौ०—सिय हुंदरत नरनि न जाई । जसु मति बहुत मयोदस्तई ॥

सावत दीखि धरिनिह सीय । सब रासि सब भौति पुनीता ॥ १ ॥

सीताजीकी सुन्दरताका वर्णन नहीं हो सकता, क्योंकि यदि बहुत छोटी है और मनोहरता बहुत बड़ी है । कसबी गांधी और सब प्रकारसे प्रिय सीताजीको परासियोंने भाते देखा ॥ १ ॥

सबहि मरिहं सब किं प्रसास । देखि राम मय पूजकाजा ॥

हरि एतय सुसन्ध समेस । कहि न जाइ जर जानहु जेता ॥ १ ॥

सभीने उन्हें मन-ही-मन प्रशाम किया । श्रीरामचन्द्रजीको देखकर तो सभी पूर्णकाम (कृतकाम) हो गये । राजा दशरथजी पुत्रोत्पत्ति इच्छित हुए । उनके हृदयमें निराला आनन्द था, यह कहा नहीं जा सकता ॥ २ ॥

सुर प्रजासु सवि वसिहं पूज । मुनि असीस छवि मंगल सूख ॥

गाव निताम कोकनहु भरी । प्रेम प्रमोद मय सब करी ॥ २ ॥

देवता प्रजापति हरके पूज करता रहे हैं । मन्त्रियोंकी मूल मुनियोंके आशीर्वादोंकी प्राप्ति हो रही है । बानों और नगाहोंके शब्दसे बड़ा धोर मच रहा है । सभी नर-नारी प्रेम और आनन्दमें मग्न हैं ॥ २ ॥

एहि विधि सीय मंडपहि आई । प्रभुविह संसि पवहि मुनिछाई ॥

तेहि मकर कर विधि कनहाक । हुहुं कुलसुत सब सीस बजारु ॥ ३ ॥

इस प्रकारसीताजी मण्डपमें आयीं । मुनिराज बहुत ही आनन्दित होकर शान्तिपाठ पढ़ रहे हैं । उन अवसरकी सब रीति-व्यवहार और कुलचार दोनों कुलपुरुषोंने बिने ॥ ४ ॥

छं०—आवाय करि गुर गौरि मनपति मुदित चित्र पुआवहीं ।

सुर प्रमटि पूज लेहि वेदि असीस अति सुगु पावहीं ॥

मधुपर्क मंगल द्रव्य जो जेहि समय मुनि भन महुं चहैं ।

भरे कनक कोर कलस सो तब छिपहि परिचारक रहैं ॥ १ ॥

कुलचार करके गुरुजी प्रसन्न होकर गौरीजी, गणेशजी और ब्राह्मणोंकी पूजा कर रहे हैं [अथवा ब्राह्मणोंके द्वारा गौरी और गणेशजी पूजा करा रहे हैं] । देवता प्रकट होकर पूजा ग्रहण करते हैं, लक्ष्मीवर्द्ध देते हैं और वात्सल्य सुख पा रहे हैं । मधुपर्क भादि जिस किसी भी गार्हपत्य पदार्थोंकी मुनि जिस समय भी मनमें चाहमान करते हैं, ऐककाल लक्ष्मी समस्त छेनेकी परातोंमें और कलशोंमें भरकर उन पदार्थोंको बिने देवार करते हैं ॥ २ ॥

कुल रीति प्रीति समेत रवि कहि देत सब सादर कियो ।

एहि मति देव पुआद सीतहि सुमय सिंघासनु दियो ॥

सिय राम अवलोकनि परस्पर प्रेम काहु न लखि परै ।

भन मुनि कर वानी अयोधर प्रमट कवि कैस करै ॥ २ ॥

स्वयं स्वयं प्रेमलहित अपने कुलकी सब रीतिओं बता देते हैं, और वे सब आदरपूर्वक कीजा रही हैं। इस प्रकार देवताओंकी पूजा करके मुनियोंने वीरज्योतीके सुन्दर विरासन दिया। श्रीसीताजी और श्रीरामजीका आश्रममें एक दूखेको देसना तथा उनका परस्पर प्रेम किसीको लख नहीं पड़ रहा है। जो बात गेह मन्त्र, बुद्धि और धर्मसे भी फरे, उसे कवि क्योंकर प्रकट करे ॥ १ ॥

श्लोक—होम समय तनु धरि अवलु कसि सुख आवडति लेहि ।

विध वेध धरि वेद सब कहि विवाह विधि देखि ॥ १२१ ॥

हृदयके समय अग्निदेव करीर धारण करके कहे ही मुखसे आवडति प्रहसं करते हैं और सारे वेद ब्राह्मणका वेध परकर विवाहकी विधियों बताने देते हैं ॥ १२१ ॥

चौ०—अनक पाठमहिषी का नाम । सीध मातु किमि कहू बसानी ॥

मुक्त मुक्त मुक्त मुक्त स्तब्ध । सब समेति विधि रही बसाई ॥ १ ॥

जनकजीकी बगद्विष्णुवात पटरानी और सीताजीकी माताका बसनाम तो ही ही कैसे सकता है ! सुवचः मुक्त (मुक्त) मुक्त और सुन्दरता सबको बटोरकर विधानाने उगं सँवारकर तैयार किया है ॥ १ ॥

समस्त कामि मुनिजगत् कोकाई । मुक्त मुक्तविधि सावर बसाई ॥

अनक काम विधि सोइ सुबसना । दिग्विधि संग बडी बसु प्रसन्न ॥ २ ॥

समय बानकर भेद मुनियोंने उनको बुझाया। वह मुनते ही मुद्राविनी कियौं उन्हें आदरपूर्वक से आर्षी । मुनयनाली (जनकजीकी पटरानी) जनकजीकी शर्मा और ऐसी सोइ रही हैं, मानो हिमालयके साथ मैत्री प्रेमिता हों ॥ २ ॥

अनक कलस मणि कोपर बने । मुनि सुरोच संगक बस पूरे ॥

निल कर मुक्ति राखे अन्न शरी । धरे राम के अर्थे जानी ॥ ३ ॥

पवित्र, सुगन्धित और मङ्गल लाले भरे लोकेके कलस और मणियोंकी सुन्दर परतें राम और रामीने आनन्दित होकर अपने शर्पित करके श्रीरामचन्द्रजीके लगे रखीं ॥ ३ ॥

पकई वेद मुनि संगक जानी । अनक सुन्दर करि अनन्य जानी ॥

बस विज्ञोकि रूपाति अनुगामी । पाव पुनीत पकारन कसे ॥ ४ ॥

मुनि नकुलवासीते वेद पढ़ रहे हैं। सुगन्धित अनन्य आकाशसे दूधोंकी शर्मा का गनी है। दूधको देसकर राम-रानी प्रेमसा हो गये और उनके पवित्र चरणोंको पकारने लगे ॥ ४ ॥

श्लोक—छाये पकारन पाव पंकज प्रेम तब पुलकावली ।

गमनगर गगननिष्ठानज मुनिरमणिजनु चहुँ दिसि बली ॥

जे पद सरोज मनोज अरि तर सर सबैव विपजही ।

जे सकल सुमिरत निमलता भव सकल कलि मल माबही ॥ १ ॥

वे श्रीरामजीके चरणकमलोंको पकारने लगे, प्रेम्से उनके करीरमें पुलकावली छर रही है। आकाश और नगरमें होनेवाली गगन, नगरी और जल-चक्रोंको ध्वनि मानो चारों दिशाओंमें उमड़ चली। जो चरणकमल कमलदेके शत्रु भीतिपनीके हृदयसरी करोवरमें सदा ही विपानये हैं, निमल एक तर भी सरल करनेसे मनमें निर्मलता आ जाती है और कलियुगके खरे पाव भग्न करते हैं ॥ १ ॥

जे परसि मुनिवसिता खड़ी गति रही जे कलकर्म ।
 मकरंदु जिह्म को संभु सिर सुचित यथधि दुर परनई ॥
 करि मधुप मम मुनि जेवियन जे सेह बहिमत गति खई ।
 ते पद पसारत सत्यमयनु जन्हु अब अब सब कहै ॥ २ ॥
 निनका रक्षा पाकर गौतम मुनिजी की कहलाने, जो पासमी थी, परमति पायी,
 मिन चरणमल्लेंक पकरदरत (गङ्गाजी) दिनकीके मलकर निपजमन है, जिसको
 देखा एविबलाही चीन मलते हैं, मुनि और बोधीजन अपने मनको यौर बनाकर मिन
 चरणमल्लेंका सेवन करके मनोवसिमत गति प्राप्त करते हैं; उन्हीं कारणोंको भाव्यके
 पाष (ब्रह्मणी) जनकी धो रहे हैं; वह देलकर सब सब-बनकर कर रहे हैं ॥ २ ॥

पर मुजैरि करतल जोरि साबोबाह बोट कुलधुर करै ।
 मयो पागियहनु चितोकि विधि दुर मतुन मुनि अनैद मरै ॥
 सुख मूल दूखु देखि वंशति पुलक तन दुलखो दिखो ।
 करि लोक जेद विद्यातु कथाहातु सुपसूख कियो ॥ ३ ॥
 एही कुलके गुन कर और कथाकी हथेलियोंको मिलाकर बासोबाह करने को ।
 तपिद्वय हुआ देखकर बहादुरि देखा; मतुन और मुनि साकदमें मर गये । दुलखे
 मूल दूखको देखकर राज-राजीबा शरीर पुलकित हो गया और दुखय जानन्दे डर्किन
 उठा । एजावोंके मज्जुरलक्षण लहरान जनकीने लोक और बैरसे पीड़ितो करने
 कथादान किया ॥ ३ ॥

हिमधत जिमि विरिज महेसहि हरिहि जी समर खई ।
 तिमि कक एमहि सिय समरपी बिल कल होरति नई ॥
 कयो करे दिन्य विवेदु जियो विवेदु मूर्ति सावैरी ।
 करि होतु विधिमत गति जेरी होन समी भावैरी ॥ ४ ॥
 उहे हिमशरते मिलनीको फाँसीकी और एगरे भगवन् विष्णुको जमीकी की
 पा; नैत ही जनकीने भीरामचन्द्रकीको रीताकी समरति थी; जिससे विपरीत सुन्दर
 नवीन कीर्ति हो गयी । विवेद (जनकी) कैसे मिलती करे ! उस धौनकी मूर्तिने ही
 उन्हे कबहुन विवेद (ईश्वरी गुन-गुणसे रहित) की कर दिया । विधिपूर्वक एगन
 जगो गठवोही की गयी और मूर्ति होने लगी ॥ ४ ॥

गो०—अब धुनि कीरी वेद धुधि अंगल याम बिसाल ।
 धुनि हरथहि करथहि विबुध सुरतल सुमन सुखल ॥ १२४ ॥
 बरचनि; कदीचनि; केरचनि; मल्लजन और जगदीश्वरी धुनि सुन्दर चतु
 उपाय कति हो रहे हैं; और कलकर्मके पूजेको कला रहे हैं ॥ १२४ ॥
 गो०—अब कुंभरि कल मूर्ति देही । नवन जमु सब समर केही ॥
 जह न रहति मनोहार जेरी । जो दरम कहु कही को पीरी ॥ १ ॥
 पर और कल-सुन्दर मूर्ति दे रहे हैं । सब लोग जहरपूर्ण [उन्हें देसकर]
 नेवीन परम लाभ ले रहे हैं । मनोहार जेरीक लैन नहीं हो सकता; जे कुछ उपाय
 करे पड़ी पोड़ी होभी ॥ १ ॥

मम सीव सुंदर बलिगहीं । जगजगत मनि खंजन खड़ी ।
 मनुई मदन गति धरि खुल जग । देखा कम भिखारु जगद ॥ २ ॥

श्रीरामजी और सीताजीकी सुन्दर परछाईं सबिनोंके खम्भोंमें जाममा रही हैं, मानो कामदेव और रति बहुत-से रंग धारण करके, श्रीरामजीके अनुपम विनाइको देख रहे हैं ॥ २ ॥

दरस्त फलस्रग्, सङ्कष न सोरी । प्रसन्न द्रुत बहोरि बहोरि ॥

मधु मयव सम देसनिहारे । जक समान, व्यापन विसारे ॥ ३ ॥

उन्हें (कामदेव और रतिको) दर्शनही जलज्- और संश्लेष दोनों ही कम नहीं हैं (अर्थात् बहुत हैं); इसीलिये वे-मानो बार-बार, प्रकट होते और छिपते हैं । जब देखनेवाले आनन्दमग्न हो गये और जनकजीकी भाँति सभी अपनी सुख भूल गये ॥ ३ ॥

प्रमुदित मुनिन्ह भावेंतें पैरी । केन सहित खन पीठि निवेरी ॥

राम खोव सिर सेंदुर देरी । सोभाबहि न बालि बिधि केरी ॥ ४ ॥

मुनियोंने आनन्दपूर्वक भाँकते फिराकी और नेमसहित खन पीठियोंको पूरा किया । श्रीरामचन्द्रजी सीताजीके सिरमें सेंदुर दे रहे हैं; सोभाकिली प्रकार भी कही नहीं जाती ॥ ४ ॥

अथ पद्म जलसु नारि कीर्ति । ससिहे मूल भनि खोव भनी के ॥

बहुरि बसिह दीपि भुजसलन । बर दुखहिनि बेटे एक आसन ॥ ५ ॥

मानो कमलको जलपद्मसे अच्छी तरह भरकर अघुतके लीमते सौं चन्द्रमाकी धूमिल कर रहा है । [यहाँ श्रीरामके हाथको कमलकी, सेंदुरकी, पद्मकी, श्रीरामकी इयान मुखाको सौंकी और सीताजीके मुखाको चन्द्रमाकी उपमा दी कही है] फिर पवित्रजीने आज्ञा दी, तब, पद्म और दुखहिनि एक आसन पर बैठे ॥ ५ ॥

ॐ—बैठे बरसन रामु जागकि मुदित मन बसरखु सब ।

तनु पुलकतुनि मुनि देखि नयनं मुहुत मुहुतव फल नय ॥

भरि भुवन रहा सज्जहु राम विबाहु भू सवहीं कहा ।

केहि भाँति बरनि सिरस रत्नव एक-यहु भंगसु महा ॥ १ ॥

श्रीरामजी और जानकीजी भेद्य भासनेपर बैठे; उन्हें देखकर बरसयोंकी मनमें बहुत आनन्दित हुए । अपने मुहुतकरी कर्णद्वयमें नये फल [भाँति] देखकर उनका धीरे धीरे बार-बार पुलकित हो रहा है । चौबहीं भुवनोंमें उत्साह भर गया; अपने कहा कि श्रीरामचन्द्रजीका विवाह हो गया । जीम एक है और वह मंगल स्थान है; फिर भला, वह वर्णन करके फिर प्रकार समाप्त किया जा सकता है ॥ १ ॥

तब जनक पाह बसिष्ठ व्यासु न्याह साज सँवारि कै ।

माँसकी धुतकीरति उपमिला कुमोरि कर्षे हँसरि कै ॥

कुसकेतु कन्या प्रथम को गुन खील सुख सोभामई ।

खन रीति प्रीति समेत करि सो न्याहि नृप भरतहि दई ॥ २ ॥

तब बसिष्ठजीकी आज्ञा पकर जनकजीने विवादन सभा में राजाकर माण्डवीजी, भुतकीरिणी और उर्मिजाजी इन तीनों राजकुमारियोंको बुला किया । कुसकुम्भी कही कन्या माण्डवीजीको, जो गुण, शील, सुख और सोमांकी सम्पत्ति ही थी; राजा जनकने प्रेमपूर्वक खन रीतियों करके भरतजीको न्याह दिया ॥ २ ॥

जानकी लघु भगिनी सङ्कल मुँवरि सिरमणि जालि कै ।

सो तमय दीपही न्याहि लखनही सङ्कल बिधि सचमनि कै ॥

जेहि नामु भुतकीरति मुलोचनि मुमुचि खन गुन थापरी ।

सो बई रिपुसदनहि मूषति रूप खील-उत्तमरी ॥ ३ ॥

रा० प० १५—

जानकीजीकी छोटी गहिन ठमिजकीको सब सुन्दरियोंमें शिरोमणि जानकर उस कन्याको
उस प्रकारसे समझन करके, व्यवस्थायीको ब्याह दिया; और किन्का नाम श्रुतकीर्ति है
और जो सुन्दर नेत्रोंवाली, सुन्दर मुखवाली, सब सुनोकी खान और रूप तथा शीलमें
उत्तम है, उनको उबाने उभुको ब्याह दिया ॥ ३ ॥

अनुसूय सर दुलहनि परस्पर लखि सकुन्त हिर्यै हरषही ।

सब सुविष्ट सुन्दर्य सगहहि सुमय सुर गव बरपही ॥

सुन्दरी सुन्दर वरन्द सह सब पद मंदप राजही ।

समु जीव उर चारिउ अवस्था विमुन सहित विराजही ॥ ४ ॥

दूध और पुष्पिनै फलर अपने-अपने अनुसूय बोझीके देखकर सकुन्तले हुए
हृदयमें हर्षित हो रही हैं। सब लोग प्रसन्न होकर उनकी सुन्दरताकी सराहना करते हैं
और देखाए पद बरखा रहे हैं। सब सुन्दरी दुलहिनै सुन्दर दूल्होके साथ एक ही मण्डपमें
ऐसी शोभा पा रही हैं मानो चौके हृदयमें चारों अवस्थाएँ (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और
तृतीय) अपने-चारों स्वामियों (मिथ, वैजय, प्राक और वस) सहित विराजमान हों ॥ ४ ॥

बो०—सुविष्ट अवधपति सकल सुत वधुवत् समेत निहारि ।

अनु पाप महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि ॥ १२५ ॥

सब सुनोको वधुओंसहित देखकर अवधनेत्र दूरस्थों ऐसे मानवित हैं मानो
वे राजाओंके शिरोमणि किन्काओं (वसुकिन्का, भद्राकिन्का, योगकिन्का और शानकिन्का)
सहित चारों पद (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) पा गये हों ॥ १२५ ॥

बो०—जसि पदुधर ब्याह विधि करी । सकल सुनै क्यहे तेहि करनी ॥

कहि न जानु कहु दुख भूरी । रा कक सवि संवदु पूरी ॥ १ ॥

भारतमन्त्रजीके विवाहकी कैसी विधि वर्णन की गयी, उसी रीतिसे सब राजकुमार विवाह
गये। दूल्होंकी अधिकता कुछ कही नहीं जाती; स्वामंडप होने और मणिपोंसे भरा गया ॥ १ ॥

सकल कलम विविध पठेरे । भीति भीति कहु मोक्ष न भोरे ॥

राज रथ कुल दस भव वासी । वेपु बालक्य सममुहा सी ॥ २ ॥

सकुन्तले फलपद, फल और मण्डि-मण्डितके विविध देखी करके, जो बोझी कीमत्तके
न थे (अर्थात् बहुमूल्य थे), तथा हाथी, रथ, घोड़े, दास-दासियों और गहनोंसे लगी
दुर्लभ वस्त्रमैत्र-सीरीसी लगे—॥ २ ॥

सकु अनेक करिषि विमि केला । कहि न जानु क्यहे किन्ह देला ॥

लोकपाल जगलोकि सिद्धने । लीन्ह अवधपति पद सुमु मनि ॥ ३ ॥

[भावि] अनेकों वस्तुएँ हैं, किन्तु सिद्धने कैसे की जाय। उनका वर्णन नहीं
किया जा सकता, किन्तुने देखा है वही जानते हैं। उन्हे देखकर लोकपाल भी विह्वल गये।
अवधपति दशरथजीके सुत नामकर प्रत्यक्षितसे सब कुछ ग्रहण किया ॥ ३ ॥

दुग्ध जगन्निह जो जहि भव । क्यार सो क्यारसेहि लावा ॥

ता पर जोरि ककु बहू वावी । छोके सब वसत सनमानी ॥ ४ ॥

उन्हींने यह देहमन्त्र प्राप्त थाचक्रेके, जो जिह्मे अच्छा लगा, वे दिया। जो बच
रहा, वह जनवासेमें चला आया। उस जनकजी हृष्य ओढ़कर सारी वाराणसी सम्मान
करते हुए फोफ वापीसे बोले ॥ ४ ॥

बो०—सनमनि सकल, वरपद आदर राज विनय बंधार के ।

प्रमुदित महा मुनि कुंठ नदि पूजि प्रेम लका के ॥

सिर नाद देव मन्त्र सह सब कहत कर संपुट किए ।

सुर साधु चाहत भाव सिधु नि लेख जल गंजलि दिए ॥ १ ॥

आदर, दान, विनम्र और नमस्कारके द्वारा करी जायतका सम्मान कर राजा जनको महान् आनन्दके साथ प्रेम्पूर्ण लड़ाकर (लड़ करके) मुनियोंके समूहकी पूजा एवं सन्तान की । सिर नवाकर देवताओंके सम्मान राजा शय जोड़कर सबके कहने को कि देवता और साधु तो भाव ही चाहते हैं (वे प्रेम्मे ही प्रसन्न हो जाते हैं, उन पूर्णकाम महापुरुषोंको कोई कुछ देकर कैसे सन्तुष्ट कर सकता है) ; इस एक अङ्कति जल देनेसे कहीं समुद्र सन्तुष्ट हो सकता है ? ॥ १ ॥

कर जोरि जगहु कछोरि बंधु समेत कोसलरथ सों ।

बोले मनोहर कवन सानि सनेह सील सुभाय सों ॥

संबंध रखव राजन हम बड़े भव सब विधि भर ।

एहि रात साज समेत सेवक जनिवे बिनु नय जग ॥ २ ॥

किर जनकजी भार्यवहित हाथ जोड़कर कोसलपथीय दशरथजीसे स्नेह, सील और सुन्दर प्रेम्में जानकर मनोहर कवन बोले—हैं राजन् ! आपके साथ सम्बन्ध हो जानेसे अब हम सब प्रकारसे बड़े हो गये । इस रात-भटवहित हम दोनोंको आप बिना दामके बिने हुए सेवक ही बनसिधेया ॥ २ ॥

ए वारिका परितरिका करि पालिनी करव नई ।

मपराधु समियो बोकि पछ पशुत हों सीठ्यो कई ॥

पुनि भानुकुलमुपन सकल सममान निधि समधी किय ।

कहि जाति सीहि पिनरी परस्पर प्रेम परिपूर्ण रिप ॥ ३ ॥

इस लड़कियोंको यहली मानकर, नयी-नयी दया करके पालन कीजियेगा । मैंने पत्नी डिठारी की कि आपकी बहों नुमा मेला; अपराध क्षमा कीजियेगा । फिर दुर्लभको सुपुत्र दशरथजीने समधी जनकजीको सम्पूर्ण सम्मानन निधि कर दिया (इतना सम्मान किया कि ये सम्मानके मण्डार ही हो गये) । उनकी परस्परकी पिनर नयी नहीं जाती, दोनोंके हृदय प्रेम्से परिपूर्ण हैं ॥ ३ ॥

हुंवारका गम सुमन करिखहि राउ जगवासेहि चले ।

तुमुमी जय पुनि वेद पुनि नम कपर करिदुख मले ॥

तब सपी मंगल पाग करत मुनीस आयसु पार है ।

दुख दुखदिनिन्ह सहित सुंदरि चली कोहपर त्यार है ॥ ४ ॥

देवतागण झूल बरसा रहे हैं, राजा जनपथके चले । नगादेकी जनि, जयजनि और वेदकी ध्वनि हो रही है; आकाश और नगर दोनोंमें खुल खौहल हो रहा है (आनन्द छा रहा है) । तब मुनीश्वरजी गायक पाकर सुन्दरी चलिना मङ्गलजन करती हुई दुखदिनोदहित दुखोंको जितकर कोहपरको चली ॥ ४ ॥

तो—पुनि पुनि रामहि चितव सिव सकुचति गज सकुचै न ।

हरत मनोहर मीन छवि प्रेम पिमासे नैव ॥ ३२६ ॥

सीताजी बार-बार रामजीको देखती हैं और सकुच जाती हैं; पर उनका मन नहीं सकुचाता । प्रेम्से प्यारे उनके नेत्र सुन्दर मछलियोंकी छविसे हर रहे हैं ॥ ३२६ ॥

मासपराक्व, ग्यारहवाँ विभाग

चौ०—राम सगी सुधावे, दुहायव सोभ ज्योति मवोच छत्रावन ॥

जावन हल पव पयल सुहाए । बुनि मधमहुपरहत किह छाप ॥ १ ॥

शीरामचन्द्रजीफा साँझ करि लगामसे ही सुन्दर है । उसकी शोभा करोड़ों कामदेवोंको लज्जितवादी है । मगनरसे बुक करणकाल बड़े सुहावने लगते हैं, जिनपर मुनियोंसे मनहरी मँहरे तारा छाने चढ़ते हैं ॥ १ ॥

पीत पुचौत मनोहर जोती । हस्ति बाल छवि दसिनि जोती ॥

रज किचिदि कछे रज मनोहर । बाहु विहाल निभूपन सुंदर ॥ २ ॥

पीत और मनोहर लौंठ होती जातमालके सूर्य और विजलीकी ज्योतिही होते होती है । कमलमें सुन्दर निचिनी और कटिखन है । विहाल भुजबगोंमें सुन्दर आभूषण सुशोभित है ॥ २ ॥

पीत जनेक महामनि हेई । कर मुद्रिय ज्येदि किउ केई ॥

सोहत कपड छाक सव सजे । हर जपत दरखव पावे ॥ ३ ॥

पीता जनेक मद्राह शोभा दे रहा है । सन्धी भँगूनी चिकनी सुर होती है । व्याहने नय सज सजे हुए वे प्रेमा प रहे हैं । चौकी अतोपर दुवकप धननेके सुन्दर आभूषण सुशोभित हैं ॥ ३ ॥

पिभर जपत छाकललोती । दुहे जेचरहि छाने मनि मोती ॥

मदन कमल रज सुंदर दान । पद सुख सौख्य निषाया ॥ ४ ॥

पीता दुराज प्रेमाधोष (तोड़की तरह) शोभित है, जिसके दोनों ओरोंपर पि और मोती छाने हैं । कमलके समान सुन्दर देन हैं, जनोंमें सुन्दर कुण्डल हैं और न तो सारी सुन्दरताएँ लवाना ही है ॥ ४ ॥

सुंदर धरि मनोहर मासा । माल तिण्डु खिरल विहाल ॥

सोहत मौह मनोहर मने । मंगलमय मुकुट मनि पावे ॥ ५ ॥

सुन्दर मँह और मनोहर नासिका है । ललाटपर लिख तो सुन्दरताका घर ही है ।

मनम मद्राहम मोती और मनि मुँह हुए हैं, ऐसा मनोहर और भावेपर सोह रहा है ॥ ५ ॥

६०—वाधे महामनि और मंगुल अंग सव विष खोरहीं ।

पुर हारि सुर सुंदरी गरहि दिखेकि सब तिन खोरहीं ॥

मनि दसक भूज वारि भरति करीह मंगल गावहीं ।

सुर सुमन वरिखहि सख मायघ बँधि सुख सुनावहीं ॥ १ ॥

सुन्दर मँहमें बहुमूल्य मणिकों मुँही हुई है, सभी वह चिकनी सुरावे छेते हैं ।

मध मगरकी मियाँ और देवदुन्दियाँ दूखकी देखकर तिमका खेद रही हैं (उनकी बटियाँ छे गीं) और मणि, वज्र तथा नासपण निहाकर करके आसती उतार रही और मद्राहमान कर रही हैं । देवता पुरु करम रहे हैं और सख मायघ तथा माद सुयम मृता रहे हैं ॥ १ ॥

कोहवरहि जाने दुजैर कुँवरि सुखासिखिद सुख पावै ।

अति प्रीति लौकिक रति नखी करव मंगल पावै ।

लक्ष्मणारि औरि सिखाव रामहि सीव सन साख कवै ।

रमिवासु दास दिखस रस वस जम को फलु सब लवै ॥ २ ॥

मुहागिनी सिखा सुख प्रक, कुँवर और कुमारियोंके कोहर (कुलदेवताके स्थान)

में लगी और अत्यन्त प्रेम्ते ललचलीय यह-गाइर लैकिक रीति करने लगीं । शर्वतीजी श्रीरामचन्द्रजीको लहकौर (नर-कपूर परस्पर प्राप्त देना) सिखाती हैं और सरस्वतीजी रीताजीको सिखाती हैं । रत्निवास हास-निखरके आनन्दमें गड़ा है, [श्रीरामजी और सीताजीको देख-देखकर] समी कन्फका फल फल प्राप्त कर रही हैं ॥ २ ॥

विज पाणि मणि महुँ देखियेति मुरति मुरुपनिधान की ।

चांलति न भुलवली बिलोकनि विरह मय बस जानकी ॥

कौतुक बिनोद प्रमोद प्रेम न जाद कहि जानहि अली ।

बर कुर्मेर सुंदर सज्ज सखी लवाह अनंतासेहि खली ॥ ३ ॥

अपने हाथकी मणियोंमें सुन्दर रंगके भण्डार श्रीरामचन्द्रजीकी फंझाहीं दीख रही हैं । यह देखकर जननीजी दर्शनमें विमोह होनेमें भस्ते बाहुस्त्री छत्ताके और हल्किो हिलाती-हुलकी यहीं हैं । उस समयमें रूखी-खेक और भिनोरका आनन्द और प्रेम कदा नहीं जा सकता, उधे सखियों ही बनती हैं । उदन्तर बर-कन्याजीको ध्व सुन्दर सखियों मनपातेको सिवा नहीं ॥ ३ ॥

सेहि समय मुनिज भसीस जई तहँ नगर बम जानैतु महा ।

चिब किभहुँ ओरी काठ बारबो मुदित मन सखी काहा ॥

जोर्नाइ सिख मुनीस देव बिलोकि प्रभु हुंदुमि इती ।

बळे हरपि बरपि प्रसून निज निज लोक ज्ञान जय जय मनी ॥ ४ ॥

उत समय नगर और साफझमें, जहाँ मुनिये वहाँ, जासोबादी प्रबि दुनामी दे रही हैं और महात् आनन्द छावा है । समीने प्रसन्न मनसे कहा कि सुन्दर पारों जोषियों चिरजीवी हों । सोषिपार, सिद्ध, मुनीश्वर और देवताओंमें प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको देखकर हुन्दुभी बनानी और हर्षित होकर पुखेंकी वर्षा करते हुए तथा गव हो, जय हो, जय हो करते हुए वे अपने-अपने लोकमें चले ॥ ४ ॥

श्री०—सहित बहुदिग्ध कुर्मेर सब सब अपर, पितु पास ।

सोम मंगल मोद मरि समवेव जनु जनवास ॥ ३२७ ॥

तब सब (पारों) कुमार बहुयोंसहित सिताजीके पास जाये । ऐसा माझम होता था मानो शोभा, मस्तक और आनन्दसे भरकर बनवासों समझ पड़ा हो ॥ ३२७ ॥

श्री०—पुनि जेवकार भाई बहु भौली । फरद जन्म कोडाह बरती ॥

दरत रीतिदे कलम जन्म । सुन्दर समेत नवन डिपो भूपा ॥ १ ॥

फिर बहुत प्रकारकी स्तोहं कनी । जनकजीने बरतिषोंको मुला भेजा । राजा दशरथजीने पुत्रीसहित गमन किया । अनुसंग वंशोंके पौवड़े-पसुते जाते हैं ॥ १ ॥

सादर सब के साथ एकमे । जगज्योतु रीतिम्ह बैधरे ॥

श्री० जनक जगज्योति जगज्योति । सीता समेत जगद नंद बरजा ॥ २ ॥

सादरके साथ सबके वरण योगे और सबसे सपासोय पीढ़ीपर बैठता । उन जनकजीने जनकपति दशरथजीके चरण योगे । उनका सीता और स्तोह वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ २ ॥

बहुरि सब पद कलम जोह । से हर हृदय कलम महुँ गोद ॥

सीमित जगद सब सब जानी । श्री० सब जगके पित पानी ॥ ३ ॥

फिर श्रीरामचन्द्रजीके वरकलमोंको योगा, जे श्रीविजयकी दुष्टकलमोंसे छिने

रहते हैं। तीनों माइनोंको श्रीरामचन्द्रजीके ही समान जानकर जनकजीने उनके भी चरण अपने हाथोंसे धोये ॥ ३ ॥

भासन अथित स्पर्हि लृप दीन्हे। कोहि लृपजरी सब कीन्हे ॥

सादर छोटे पदम एकदरे। कनक खेक खनि पान सँवारे ॥ ४ ॥

यदा जनकजीने सभीको उचित वाष्पन दिये और सब परसनेवालोंको डुला किया। भादरके गाय पतलें पहने ल्याईं, जो धूम्रपानके पत्तोंसे सोनेकी बौक बनाकर बनायी गयी थी ॥ ५ ॥

दो—सुषोदम सुखमी सरसि सुंदर खड्ड पुनीत।

छत महुँ लख कों परसि से चहुँ सुखार चिनीत ॥ ३९८ ॥

बाहर और गिरिज स्त्रोदरे सुन्दर स्वरिह और धीरे दाम्भ्य और गायका [सुगन्धित] की धामभरने सबके सामने पस्त गये ॥ ३९८ ॥

बौ—नंद कपक जरी लेख काले। करि पल मुनि नति भुलसये ॥

नति भोज पर पकवारे। मुखा हरित नहि जाई पकवारे ॥ १ ॥

सब लोग पकवारे करते (अर्थात् मायाय स्वाहा, अन्नमाय स्वाहा, मृदानाय स्वाहा, उषामाय स्वाहा और समस्तान स्वाहा इन नमोस्त उच्चारण करते हुए पहले पाँच प्राण केन्द्र) धोयन करने लगे। गायीका नामा सुन्दर वे अत्यन्त प्रेममग्न हो गये। अनेकों तरफसे अमृतके समान (स्वादिष्ट) पदमान पस्ते गये, किन्तु कतानेही हो सकला ॥ २ ॥

पकवल छोटे सुखर सुताय। निन्दन विविध नाम जो जाना ॥

करि नति भोजन विधि नहि। एक एक विधि करि न नहि ॥ २ ॥

बाहर स्त्रोदरे नाना प्रकारके स्पर्शन करने लगे, उनका नाम कौन जानता है। बार प्रकारके (चर्म, वीर्य, छेद, देव सर्पात् पचाकर, भूचक्र, चादकर और पीकर हातेवेद्य) लोचनकी विधि कही गयी है, उद्योते एक-एक विधिके करने पराये बने थे कि निन्दनार्पण नहीं किया जा सकता ॥ २ ॥

छनक हरिण निन्दन महुँ लखी। एक एक नाम अवधि नहि ॥

केवैत देहि सख सुनि गरी। डै डै वाम पुनर यह गरी ॥ ३ ॥

छाँटी रीति बहुत तरहके मुन्दर (स्वरिह) स्पर्शन हैं। एक-एक तरहके अतियन्तरी प्रकारके गने हैं। मीठान करते समय पुष्प और शिबोंके नाम केकेकर शिबों मधुर भविषे गायी वे गयीं (गली गा रही हैं) ॥ ३ ॥

रचन सुगन्धि गरी विप्राय। ईश्वर सब सुनि सहित समाय ॥

गुदि निधि मगही मोक्षनु जीन्हा। बाहर सहित अचमलु हीन्हा ॥ ४ ॥

सम्पत्ती सुगन्धी गली शोभित हो रही है उसे सुन्दर समालोहित राजा दशरथजी ईश्वर रहे हैं। इस रीतिसे सभीने भोजन किया और सब सबको आदरसहित भाषयन (हाथ-मुँह धोनेके विधि कर) दिया गया ॥ ५ ॥

दो—देह पान पूजे नन्दक वस्तरपु। सहित समाज।

अनवासेहि मनने मुदित सखल भूष सिरताज ॥ ३९९ ॥

फिर पान देकर जनकजीने स्यामसहित दशरथजीस प्रोजन किया। वह राजाशोक के निगौर (चमकते) श्रीदशरथजी प्रसन्न होकर जनकजीको चले ॥ ३९९ ॥

बौ—नित नृपन भोजक भुर गयी। निमित्तसहित दिन प्राप्तिविजयी ॥

जो और नृपतिनित जये। नन्दक भुर गये नन्दक जये ॥ १ ॥

जनकपुरमें नित्य नये मङ्गल हो रहे हैं। दिन और रात पहले समान वीत बाते हैं। वड़े सारे राजाओंके मुकुटमणि द्यारयवी जाये। बाचक उनके गुणसमूहका गान करने लगे ॥ १ ॥

देखि कुँआर कर बजुन्द समेत । किमि कहि जात मोहु रात नेता ॥

प्रातःक्रिया करि गे-बुद्ध पाहीं । म्हाप्रभेदु भेषु मन माहीं ॥ २ ॥

चारों कुमारोंको सुन्दर वधुओंसहित देखकर उनके मनमें कितना आनन्द है, यह किस प्रकार कहा जा सकता है ? वे प्रातःक्रिया करके गुप्त वशिष्ठजीके पास गये। उनके मनमें महान् आनन्द और प्रेम मग्न है ॥ २ ॥

करि प्रवासु पूज्य कर जोरी । खेले गित अनिमं अबु वीरी ॥

गुहरी कृपौ सुन्दर सुमियाज । यकटं जगु मैं पूज्यकाज ॥ ३ ॥

राजा प्रणाम और पूजन करके फिर हाथ जोड़कर मनो समूतमें दुबोरी हुई घाणी बोले—हे मुनिराज ! मुनिवे, आपकी कृपसे आज मैं पूर्वसम हो गया ॥ १ ॥

अब सब विप्र-बोलाइ खेसाई । वेहु वेहु सब भौति प्रमाई ॥

हुनि गुर करि मतिपात कमाई । हुनि पठ्य हुनि बुंद बोलाई ॥ ४ ॥

हे स्वामिन् ! अब सब ब्राह्मणोंको बुलाकर उनको सब तरह [गहन-कपट] से सजी हुई गायें दीजिये। यह हुनकर हुनजीने राजाकी बहार्ह करके फिर मुनिगणोंसे बुलवा मेला ॥ ४ ॥

बो-बामदेव अह देखरिधि बालमीकि जवालि ।

आप मुनिवर निकर तब कोसिकासि तपसालि ॥ ३३० ॥

तब बामदेव, देवर्षि मारु, कल्मीकि, नागसि और विश्वामित्र आदि तपस्वी ऋषि मुनिओंके समूह-के-समूह आये ॥ ३३० ॥

बो-बुद्ध प्रणाम सगहि रूप-कीन्हे । रुचि सयन, वरसन, वीन्हे ॥

चारि छच्छ कर भेषु प्रमाई । अममसुसम सम सीख सुहाई ॥ १ ॥

राजाने सबको दण्डका-प्रणाम किया और प्रेमसहित पूजन करके उन्हें उत्तम आसन दिये। चार जल-उत्तम गायें बँधवायीं, जो कर्मबेदके समान अण्डे समानवासी और सुहायनी थीं ॥ १ ॥

सब विधि सकल अर्पण कीन्हीं । सुदित जिय मरिदेवन्द दीन्हीं ॥

करंत विमय बहुविधि अन्धहू । फेरें आसु अब जीवन काहू ॥ २ ॥

उन सबको सब प्रकारसे [गहन-कपटसे] तथाकर राजाने प्रवक्ष होकर भूदेव ब्राह्मणोंको दिया। राजा बहुत तरहसे विनती कर रहे हैं कि जगद्गुरु मैंने आज ही भीनेका काम पाया ॥ २ ॥

पाइ असीस, महेसु अरुंदा । विप्र बोलि हुनि जाचक बुंदा ॥

कंसक दसन मधि हव कम स्वंदन । विप्र बुकि रुचि रचिहुजर्मन ॥ ३ ॥

[ब्राह्मणोंसे] ब्राह्मीवाद वाकर राजा अज्ञानन्दित हुए। फिर याचकोंके समूहोंके बुलवा लिया और सबको उनकी रुचि पूज्यकर जेन्हा, वरु मधि, घोड़ा, हाथी और रथ (जिसने जो चाह-खो-) सर्वकुलमें आनन्दित करनेवाले द्यारयवीने दिये ॥ ३ ॥

खेले पकत गानस-गुन घन्वा । अब अब अब विवर करु नाथा ॥

बुधि विधि राम विवाह उल्लहू । सकल सचनि सहस मुख जाहू ॥ ४ ॥

वे सब गुणानुवाद गाते और पूर्वकुलके साप्तीकी जग हो, जग हो, जग हो कहते हुए

कले । २७ पदम धृताचन्द्रजीके निवाक, कहेन हुआ । बिन्हे सहस मुख हैं वे
मेदनी भी उमड़ा कर्षन नही कर सकें ॥ ४ ॥

दो०—चार चार डीसिक करव सीसु बाह कह राठ ।

बह सुनु तुझ भुदियाध तव कृपा कटाच्छ पसाउ ॥ ३३१ ॥

पादभर विमलिकीने चल्वागि निर नजर राजा कहते हैं—हे मुनिराव ।

बह का तुम आके ही कृपाच्छयता प्रसाद है ॥ ३३१ ॥

चौ०—नकर सन्धु सीसु कसली । तुम सब भंति सगह बिमूली ॥

दिन छति पिदा अवपति कण्ठ । छटाहि जन्म सहित वतुराग ॥ १ ॥

राजा दशरथजी जनकजीके पुत्र, नौल, परनी और ऐश्वर्यकी सब प्रकारसे
सुश्रुता करते हैं । प्रभेदिन [नौल] उल्लेख 'अयोध्यामेघ' विद्या मँगते हैं । पर
जनकजी उन्हें प्रेमसे रख लेते हैं ॥ १ ॥

बिना दूतन चारु जयिहर्षन दिन प्रति पदसं भोति पडुनाई ॥

नि क क पार पावे उदाह । दारुण गडु सोहाइ न काहु ॥ २ ॥

नजर दिने नया वदना नाल है । प्रभेदिन दारुण प्रकारसे मेहमानी होती है ।
गगने निच नया जानना और उच्चार रहता है, दशरथजीका जाना किसीको नहीं सुझाता ॥ २ ॥

भदुर विचर छीने पटि रानी । धनु सनेह खु बैसि बपासी ॥

सीसिन छानाद तव जाहे । कजा दिदेह सुपहि समुसाई ॥ ३ ॥

इस प्रकार बहुत दिन बीत भये, नया बरषा सेरकी रस्सीसे बँध गये हैं । तब
विद्यामित्री और सतानन्दजीने बाहर राजा जनकजी समझाकर कहा— ॥ ३ ॥

अब बसत कई क्षणसु देहु । जयति छवि स सकुन सनेह ॥

भोति गाय कहे सगिब कीटाह । कवि जय भीर सीस तिन्ह नाप ॥ ४ ॥

बपति गाय छेद [कजा उहे] नदी छोड़ सकते, तो भी अब दशरथजीको
बाधा दीजिये । वे नाप । बहुत शब्दों परान् जनकजीने 'मन्त्रियोंको बुलवाया । वे
भाये और क्षण नीक कहकर उन्हें नष्टक नवाया ॥ ४ ॥

दो०—अवदनायु काहुत कष्टन भीतर करहु जनाउ ।

भय प्रेमदस खचिद सुनि रिम सम्रासंद राउ ॥ ३३५ ॥

[जनकजीने कहा—] अयोध्याया प्रलमा चाहते हैं, भीतर (रनिवासे)

कमर कर दो । यह सुनकर मन्त्री, ब्राह्मण, क्षत्रिय और राजा जनक भी प्रेमके बंध
से बंधे ॥ ३३२ ॥

चौ०—दुताली सुनि कसिहि कण्ठ । दूतन विचर पसरर कता ॥

सह गदनु सुनि सन विचलने । मनुहु सीस सरसिध सकुचाने ॥ १ ॥

जनकपुराणियोंने सुना कि कपल-बन्धनी, तब वे न्याकुल होकर एक-दूसरेसे
गात पृथने लगे । जाना क्या है, यह सुनकर सब ऐसे उदास हो गये मानो सम्झाके
रूप समल सकुचा गये हों ॥ १ ॥

बई बई जयत जे रकी । तई तई सिद्ध पछा बहु भौंती ॥

धियिध भौंति सेवा पकवाना । मोनन सख न जाइ बसाना ॥ २ ॥

आते समय यहाँ-यहाँ बराती रहते थे, यहाँ-यहाँ बहुत प्रकारका सीमा (रसोईका
सामान) मेजा गया । अनेकों प्रकारके भोजन, पकवान और मोननकी सामग्री जो बखानी
गई जा सकती— ॥ २ ॥

भरि भरि घसई अकार कहरा । पहरै जनक जेकर सुधार ॥
 मुरा मारु रथ सहस धनीसा । सकल सँभारे सब बह सीखा ॥ १ ॥
 अनगिनत बैलों और चरारोंपर भर-भरकर (जड़-जड़पर) मेनी गयी । तब
 ही जनकजीने अपनेको सुन्दर खम्मारै (खैरा) मेनी । एक वरस पंद्रहे और पचास
 हजार रथ सब नरको विस्तारक (उपरले नीचेरक) खम्भे हुए ॥ २ ॥
 सब सहस दस सिंघुर सबे । किन्तुहि देखि दिगिदुंकर छोडे ॥
 जनक बलब मनि भरि भरि जाय । यदिही पैतु बसु बिधि माने ॥ ४ ॥
 दस हजार लोहे हुए । नवखंडे हाथी । किन्तु देखकर दिगमलोंके हाथी भी लम्हा
 जाते हैं । गाड़ियोंमें भर-भरकर सोया । तब और रथ (जगदिरात) और पैर, गाव
 रथा और भी नाना प्रकारकी चीजें थीं ॥ ४ ॥

दो०—ब्राह्मण शमित य सवित्र कदि दौगह विदेहें छोडि ।
 ओ भवलोकात छोडपति स्नेह संघा छोडि ॥ १३३ ॥
 [इस प्रकर] जनकजीने फिरते अनगिनत खोबे दिसा । जो कहा नहीं जा सक्या
 और लिते देखपर लोकपालोंके लोकपाली सम्यदा भी चीन्ही जन पट्टी थी ॥ १३३ ॥
 चौ०—सबु समस्त बुद्धि भोखि बगई । जनक भवबधुर दीन बगई ॥
 बलिदि बधत भुवन सब शर्म । विरक्त प्रीतम बसु बसु पानी ॥ १ ॥
 इस प्रकार जब राजान प्रजापर राज जनकने दयोत्पादुसीको भेष दिया । पापत
 नलोगी । यह सुनते ही सब रामियों ऐसी मिथक हो गयीं जसो सोहे कसो महलियों
 छटपटा रही हैं ॥ १ ॥

पुनि पुनि प्रीति पौन करि लेहैं । वेद मरीच निरालु देहैं ॥
 होयु संवत विबहि विजारी । बिह भदिगत असीस हारा ॥ २ ॥
 ये बार-बार सीताजीको गंध कर लेते हैं और मन्मथीगंध देखर सिखावन देखे हैं—
 हम सदा अपने पतिकी प्यारी होओगे तुमस्य छोहाग अफस हो; इसरी प्यो आधिप है ॥ १ ॥
 कामु सजुर ॥ स्नेह करेह । पति पसं लेकि भाषतु मनुसरेह ॥
 कति सनेह सब लखीं समझी । बारी पलन विजयहिं धेनु मारी ॥ ३ ॥
 शास, सहार और मुदकी सेवा करना । पतिपर सब देखकर उसकी आलसता पक्षम
 करना । स्थानी सविद्यां आलस स्नेहके बस कोषक बांधीते स्निग्धके धर्म सिद्धावति हैं ॥ १ ॥
 सावर लकड़ कुंठिरे समुझाई । बकिंद कर बार कर जाई ॥
 बहुरि बहुरि लेहैं महामी । बहदि विरंचि रंभी फल गरी ॥ ४ ॥
 सादरके साथ सब पुत्रियोंको [विरंचि कर] जंगलानकर रामियोंने बार-बार
 उन्हें हृदयसे लपटा । बहलई फिर-फिर मैत्री और बहली हैं कि बहलने जीवितको
 क्यों रचा ॥ ४ ॥

दो०—लेहि जससर माहन् संहित एसु असु कुत केतु ।
 जसे जनक मंदिर सुदित बिदा करायन हेतु ॥ १३४ ॥
 उड़ी समय सुईदलके पञ्चमसंक्रम औरमकरांश भादपौषहित मन्त्र होकर बिदा
 करनेके लिये जनकजीके महलको चले ॥ १३४ ॥
 चौ०—जाति बंध सुमानें सुभाह । कर्म बारी कर देखन कर ॥
 कोर कह लजन बहत इहै जान । मीन विदेह विदा कर जाह ॥ १ ॥
 समायते ही सुन्दर जाये महलोंके देखनेके लिये नरके सी-नुचम पीडे ।

कोई कहता है—आज ये जाना चाहते हैं । विदेहने निराहृत-सब सामान तैयार कर लिया है ॥ १ ॥

छेहु सवन मरि हम निहारी । प्रिय पाहुने सूप सुख जारी ॥

ये जाने केहि सुकृत सखी । धन अतिथि खीन्हे बिधि आनी ॥ २ ॥

राजाके चारों पुत्र, इन प्यारे मेहमानोंके [फनोहर] रूपको नेत्र भरकर देख लो ! हे सखी ! कौन जाने, तित पुण्यते निपाताने इन्हें यहाँ जकर-हयारे नेत्रोंका अतिथि किना है ॥ २ ॥

मरनहीछु विधि एव फिकरा । सुख छहै जगन कर सुखा ॥

एव मारकी हमिषु जैसैं । हृद कर दसखु हम कई सैसैं ॥ ३ ॥

मरनेवाला विधि तरह धमक पा जाय, जन्मका सुखा कल्यदुख पा जाय और नरकमें रहनेवाला (या भरकके योग्य)-जीव जैसे मगधालके परमपदको प्राप्त हो जाय, हमारे लिये हमने रचन चेहे ही हैं ॥ ३ ॥

विधि राम सोय्य उर चरहु । विन मन छवि मूरति मनि काहु ॥

एहि विधि सगहि कन कहु देवा । गप कुँवर सव राज भिक्षेता ॥ ४ ॥

श्रीरामकनारीकी योग्यतासे निरसकर हृदयमें घर लो । अपने मनको छाप और हृदय मूर्तिमें मणि बना लो । इस प्रकार सबको नेत्रोंका कल देते हुए सब राजकुमार राममूर्तिमें गये ॥ ४ ॥

तो—कप सिंधु सव बांधु छवि हरवि उख रनिवासु ।

करहि निहावरि आरती महा मुदित मन सासु ॥ ३३५ ॥

कपके सुहृद सब भाइयोंको देखकर साथ रनिवास हर्षित हो-उठ । सासुर्दे महान् प्रसन्न मनसे निहावर और आरती करती हैं ॥ ३३५ ॥

बो—बेचि राम छवि अति अनुगामी । प्रेमविषय पुनि पुनि पद लावी ॥

ग्री न राज प्रीति उर जई । सख सनेहु पति किनि जाई ॥ १ ॥

श्रीरामकनारीकी छवि देखकर वे प्रेममें अत्यन्त, सब हो गयीं और प्रेमके विक्षेप बस होकर बार-बार फरसों करीं । हृदयमें प्रीति झर गयी, इसके कला नहीं रह गयी । उनके स्वाभाविक लोभका वर्णन भिन्न तरह किना जा सकता है ॥ १ ॥

आहृद सहित उमति अनुवाप । कसत असव अति तित वैदीप ॥

बोले रासु सुखदस लावी । ललित सखि, सकुचमय बावी ॥ २ ॥

उन्होंने मधुरोत्प्रेक्षित श्रीरामकी उवठन करते जान कराया और बड़े प्रेमसे यदरत भोजन कराया । सुखकर जानकर श्रीरामकनारीकी, लोह और संकोचमरी बावी बोले—॥ २ ॥

रासु उमयपुर कसत सिपाप । बिदा होय हम इहाँ फकाप ॥

सासु मुदित मन जगसु-देहु । कलक जयि कसत पित मेहु ॥ ३ ॥

महाराज अपोधापुरीको चलाय चाहते हैं, उन्होंने हमें बिदा होनेके लिये यहाँ भेजा है । हे माता ! प्रसन्न मनसे आज्ञा दीभिने और हमें अपने बालक-जानकर यदा लोह बनाये रहियेगा ॥ ३ ॥

सुगत बचन निरुल्लेख सविनासु । बोले न सखि प्रेम बस सासु ॥

इजयं लगइ कुँवरि सब छिन्ही । पतिन्द सौमि भिक्षेता अति छिन्ही ॥ ४ ॥

इन कफलोको सुनते ही रनिवास उदास हो गया । सासुर्दे प्रेममग मोल नहीं

कर्ती । उन्होंने सब कुमारियोंको हुदके ल्या लिया और उनके बहियोंको सँभर बहुत विनती की ॥ ४ ॥

छं०—करि चिनय सिय रामहि समरपी जेरि कर पुनि पुनि कहै ।

बलि जावैं तात सुखान तुम्ह कहैं विदित गति सब की अहै ॥

परिवार पुरजन मोहि राखहि मानप्रिय सिय जानिबी ।

हुलसीस सीखु सनेहु लखि मिल किंकरी करि मानिबी ॥

विनती करके उन्होंने वीरजीको भीरामचन्द्रजीको समर्पित किया और हाथ जोड़-कर बार-बार कहा—हे तात । हे सुखन । मैं यत्नि जाती हूँ; तुम्हको सबकी गति (हाल) मालूम है । परिवारको, पुरवाधियोंको, पुत्रको और राजासे वीर्य शत्रुओंके छानन प्रिय है, ऐसा जानियेगा । हे हुलसीके स्वामी । इसके डीक और स्नेहको देखकर इसे अपनी दासी करके मानियेगा ।

जो०—तुम्ह परिपूरण करम जान सिरोमणि भावप्रिय ।

जन शुभ गाहक राम दोषे दखन कसमायतन ॥ ३३६ ॥

तुम पूर्णकाम हो; सुखानशिरोमणि हो और भावप्रिय हो (तुम्हें प्रेम प्यार है) । हे राम ! तुम भावोंके गुणोंको ग्रहण करनेवाले, दोषोंको नाश करनेवाले और दवाके धाम हो ॥ ३३६ ॥

चौ०—अस कहि रही काय करि रानी । प्रेम एक बहु गिरा समानी ॥

पुनि सनेहलागी कर बानी । खुशियि राम लखु ससमायी ॥ १ ॥

ऐसा कहाकर रानी करणोंको पकड़कर [चुप] रह गयीं । भान्ने उनकी बाणी प्रेमरूपी दण्डकमें सज गयी हो । स्नेहसे सनी हुई ओड़ बाणी सुनकर भीरामचन्द्रजीने शासका बहुत मकरसे सम्मान किया ॥ १ ॥

धन बिदा मागत कर जेरी । कीन्ह प्रणाम ज्योरी ज्योरी ॥

पाइ कसीस बहुरि सिद्ध काई । भाइन्ह सहित लगे राहवाई ॥ २ ॥

तब भीरामचन्द्रजीने हाथ जोड़कर विदा माँगते हुए बार-बार प्रणाम किया । आशीर्वाद पाकर और फिर फिर नयाकर भाइयोंसहित भीरुनुवापजी लगे ॥ २ ॥

महं मधुर मूर्ति कर भली । बहै सनेह सिखि सब रानी ॥

पुनि करिखु भरि कुँवैरि हँसरी । कर कर येहि महवारी ॥ ३ ॥

भीरामजीकी सुन्दर मधुर मूर्तिसे हृदयमें लकर सब रानियाँ स्नेहसे सिखित हो गयी । फिर वीरज घातन करके कुमारियोंको हुलकर बाजारों बार-बार उन्हें [पके लगाकर] भेजने लगी ॥ ३ ॥

पहुँचावहि फिरि मिलहि यहीरी । लखे बसकर प्रीति न थोरी ॥

पुनि पुनि मिलतसखिन्ह मिलनार्द । लख लख निमि येनु लवाई ॥ ४ ॥

प्रियोंको पहुँचाती हैं, फिर जैदकर मिलती हैं । परस्परने कुछ थोड़ी प्रीति नहीं बदी (अर्थात् बहुत प्रीति नहीं) । बार-बार मिलती हुई यात्राओंको शिखियोंने जल्म कर दिया । जैसे हालही न्यायी हुई बान्ने कोई उसके बालक घटके [ख बलिया] से सकल कर दे ॥ ४ ॥

जो०—प्रेमविषस नर करि सब सखिन्ह सहित रनिवाद्य ।

मानहुँ कीन्ह विदेहपुर कसनाँ निरर्थ निवास ॥ ३३७ ॥

सब जी-पुख और खिलखिलाने लगे। रत्नबाबू प्रेमके विशेष बन्ध हो रहा है।
[ऐसा लगता है] सभी जनकपुरमें कल्याण और बिहारे में डेरा डाल दिया है ॥-२९७॥

श्री०-सुखं ह्यसिद्धं ज्ञानं उवाच । कथं विवर्त्तते तसि पदम् ॥

ध्यातुं कर्तुं कर्तुं नैवेद्यं । सुविधीतं ददितुं न केही ॥ १ ॥

अननीने जिन लोतां और मनाफो पाक-सोखकर बढ़ा-किया था और सोनेके पिंडहोमे रखकर पड़ाया था, वे जाकुल होकर बर रहे हैं—वैदेही कहाँ है ? उनके पेरो दबनोंको हलकर पीरत किन्तु नहीं लाभ देया (अर्थात् स्वप्न नैर्ब जवा रहा) ॥ ६ ॥

भारतियल्लु लता मृदु, शुद्धि जौसी । मनुष्य दस्र कदि जाती ॥

संभु समेत कन्धु-सव भाव । प्रेम कमलि लोचन-वट छाय ॥ २ ॥

जब पक्षी और पशुतक इत कष्ट विकल हो गये, तब मनुष्योंकी दशा कैसे कही जा सकती है। तब याईगणित जनपदी यहाँ आये। प्रेमसे लम्बकर उनके मैत्रीमें [प्रेमाश्रयिता] सब मर भाया ॥ २ ॥

हृदय विकसित होती है। ये कहकर उस समय बिरागी ।

छीन्दि तर्दे, छर खह, कापसी । मिटी महामस्ताद स्थान की ॥ ३ ॥

वे परम वैराग्यवाल् प्रकटते थे। पर शीतलकीको देखकर उनका भी धीरे-धीरे मन
गया। राजाने आनन्दकीकी इच्छासे लगा लिया। [प्रत्येक प्रभावसे] जातकी महान्
मर्यादा मिट गयी (आनन्द बौद्ध ब्रह्म) ॥ १ ॥

समुद्रावत सप्त सन्निव सृष्टने । श्रीमद् विष्णुसुत न भवसा जाले ॥

प्राणि, पार सुख कर छई । छवि पुंवर पाछें मगाई ॥ १ ॥

सप्त बुद्धिमान् मन्त्री अन्यैः संज्ञाते हि । तत्र राजाने विक्रमः कन्दर्पकः समस्त नवानकर
विभारः किम् । शरणागतः पुत्रियोगो बुद्धयः स्थावरः सुन्दरः सती बुद्धिः शालीक्याः मैत्रायाः ॥४॥

श्री०—ब्रह्मविद्या परिव्याह सद्गुणानि सुख्यन्त भवेत् ।

हुमरि बड़ाई पाळिनिव हुमरे खिदि गोस ॥ ३३८ ॥

राधा परिवार प्रेमी विप्लव है। चलने सुन्दर सुवर्ण वानर निविशित
गणेशजीका साथ करके कन्याओंको वाक्मयीय नवादा ॥ ३३८ ॥

श्री०-बहुविधि भूय ह्युता समुद्रार्धे । कतिपयसु कुजंरति सिद्धार्धे ॥

दानी दस दिह पावें । सुनि केन के प्रिय सिध करे ॥ १ ॥

राजाने पुत्रियोंको बहुत प्रशस्ते सम्माना और उन्हें शिष्योक्त धर्म और कुलकी
रीति सिधायी। बहुतसे दासी-दास दिये, जो सीखनेके प्रिय और विश्वासपात्र थे ॥१॥

श्रीयः सक्तः प्रकृतः शुभरासी । होहिं तस्यै सुखं मंगलं रासी ॥

महेश्वर सन्निवृत्तः समेतः कर्मकाण्डः । संगः पद्यैः पञ्चमस्कन्धः राज्ञः ॥ २ ॥

॥ १ ॥
 ॥ २ ॥
 ॥ ३ ॥
 ॥ ४ ॥
 ॥ ५ ॥
 ॥ ६ ॥
 ॥ ७ ॥
 ॥ ८ ॥
 ॥ ९ ॥
 ॥ १० ॥
 ॥ ११ ॥
 ॥ १२ ॥
 ॥ १३ ॥
 ॥ १४ ॥
 ॥ १५ ॥
 ॥ १६ ॥
 ॥ १७ ॥
 ॥ १८ ॥
 ॥ १९ ॥
 ॥ २० ॥
 ॥ २१ ॥
 ॥ २२ ॥
 ॥ २३ ॥
 ॥ २४ ॥
 ॥ २५ ॥
 ॥ २६ ॥
 ॥ २७ ॥
 ॥ २८ ॥
 ॥ २९ ॥
 ॥ ३० ॥
 ॥ ३१ ॥
 ॥ ३२ ॥
 ॥ ३३ ॥
 ॥ ३४ ॥
 ॥ ३५ ॥
 ॥ ३६ ॥
 ॥ ३७ ॥
 ॥ ३८ ॥
 ॥ ३९ ॥
 ॥ ४० ॥
 ॥ ४१ ॥
 ॥ ४२ ॥
 ॥ ४३ ॥
 ॥ ४४ ॥
 ॥ ४५ ॥
 ॥ ४६ ॥
 ॥ ४७ ॥
 ॥ ४८ ॥
 ॥ ४९ ॥
 ॥ ५० ॥
 ॥ ५१ ॥
 ॥ ५२ ॥
 ॥ ५३ ॥
 ॥ ५४ ॥
 ॥ ५५ ॥
 ॥ ५६ ॥
 ॥ ५७ ॥
 ॥ ५८ ॥
 ॥ ५९ ॥
 ॥ ६० ॥
 ॥ ६१ ॥
 ॥ ६२ ॥
 ॥ ६३ ॥
 ॥ ६४ ॥
 ॥ ६५ ॥
 ॥ ६६ ॥
 ॥ ६७ ॥
 ॥ ६८ ॥
 ॥ ६९ ॥
 ॥ ७० ॥
 ॥ ७१ ॥
 ॥ ७२ ॥
 ॥ ७३ ॥
 ॥ ७४ ॥
 ॥ ७५ ॥
 ॥ ७६ ॥
 ॥ ७७ ॥
 ॥ ७८ ॥
 ॥ ७९ ॥
 ॥ ८० ॥
 ॥ ८१ ॥
 ॥ ८२ ॥
 ॥ ८३ ॥
 ॥ ८४ ॥
 ॥ ८५ ॥
 ॥ ८६ ॥
 ॥ ८७ ॥
 ॥ ८८ ॥
 ॥ ८९ ॥
 ॥ ९० ॥
 ॥ ९१ ॥
 ॥ ९२ ॥
 ॥ ९३ ॥
 ॥ ९४ ॥
 ॥ ९५ ॥
 ॥ ९६ ॥
 ॥ ९७ ॥
 ॥ ९८ ॥
 ॥ ९९ ॥
 ॥ १०० ॥

दसरेय किण पोखि सब छीन्ने । दाज मान अनिरुख छीन्ने ॥ ३ ॥

नै स्व प्राज्ञर्षीको मुला शिक्षा और उन्हें वान और सम्मन्धे परिपूर्ण कर दिशा ॥ ३ ॥

सुग्रीवः कपिलं पश्यन् ।
सुग्रीवः कपिलं पश्यन् ।

सुगन्धर गन्धर्वसु स्निह एषात् । संग्रह मूल सन्तु नमः शान्ति ॥ १० ॥

[illegible]

येन—मुनः प्रभूतः यस्मादिदं इत्यपि कर्तव्यं भवत्यस्य मानः ।

सन्तः प्रत्यक्षं प्रत्यक्षं सुनिश्चितं यत्नात् विज्ञानम् ॥ ३२९ ॥

दशम शक्ति होकर पूरा कर्म से है और अन्तर्यामी बन कर रहें। भावार्थ
होगा कि हमारे अन्तर्यामी अन्तःकर्मों से बने ॥ ३३५ ॥

ਸੀ—ਕੁਝ ਹਮੇ ਵਿਸ਼ਵ ਮਹਾਮਨ ਦੇ। ਸਾਹ ਸਾਹ ਮਾਮੇ ਦੇ।

भुवन वनम यज्ञि यत्तु पौनः । त्रै लोकि सन्त मय श्रीभे ॥ १ ॥

सत्यं वदतु धर्मं विदुः । तं श्रेयसाय नृणां ॥ १ ॥
 सत्यं वदतु धर्मं विदुः । तं श्रेयसाय नृणां ॥ १ ॥

सत सत सिद्धिदानि गरी । जिरे माज क्यदि शर छरी ॥

बहुनि बहुनि कोलपण्णिवि वारानां । अणुपण्णो अणु विनि न बह्विनि ॥ १ ॥

३ म्बु नावाक जिजाय (गुर्गर्गि) क्वातनर को क्वातनरको देवता
क्याद देव : क्वातनरको देवता के क्वातनर देवता के देवता : क्वातनर देवता के देवता
के देवता के देवता : ३ ॥

पुनि ता भुक्ति दान मुक्त । विविध मर्त्य कुरि छी ।

काद वीर्येति उच्यते । अतः श्रेयः प्रत्यक्षं विस्मयेन च । ३ ॥

॥ अथ श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ १ ॥ अथ श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ १ ॥

मह विन्दु कोय वर जीनी । भजन मंत्र सुयो 'छु कोरी ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । गङ्गाया नमः । कृष्णाय नमः ॥ १ ॥

॥ अथाहं त्वं शब्दं कथं शब्दं प्रकृतं तुल्यं त्वं शब्दं—॥
॥ अथाहं (त्वं शब्दं) शब्दं कथं ! ॥ ८ अथाहं ! अथाहं ! अथाहं ! ॥

श्रीः-सत्यमिति यमपी सुजन सत्यमाने यप सति ।

मित्रानि पण्डितानि कियन्तु गच्छन्ति तानि च सुखं समाप्स्यन्ति ॥ ३४० ॥

[illegible]

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

[illegible]

मन के मन्त्र, द्रष्टा और गुरुदेव विद्या का साधक—अनेक साधकों के मित्र; १२४
 ओरी कल्याण का वि. मुद्रा. केने वरुण केन मनु मनु ४

राज्य की रक्षा के लिए। सुविधा के साथ। २३

[illegible]

कहि लोग लोगी केहि छापी । कोहु कोहु ममता न लगी ॥
 कदाहु दहु कदाहु अधिगती । चिदाचरु निरुनु गुन रासी ॥ २ ॥
 शोबीलोग निनके निने मोप, मोह, ममता और मरकी लग कर योगदान करते
 हैं, जो सर्वव्यापक, ज्ञान, अज्ञान, अविज्ञानी, चिदानन्द, निर्गुण और गुणोंकी राशि हैं ॥ ३ ॥
 मन समेत केहि जान प कनी । तरकि न सकहि एक अनुमाने ॥
 महिमा निगुनु नेहि कहि कहाई । सो तिहु कम् एक रस रहै ॥ ४ ॥
 निनको मनसहित पापी नहीं जानी और उन निनका अनुमान ही करते हैं, कोई
 तर्कना नहीं कर सकते; निनकी महिमामें केर धेति कहकर जान करता है, और जो
 [सच्चिदानन्द] तीनों कथनोंमें एकस (उपेक्षा और सर्वथा निर्विकार) रहते हैं ॥ ५ ॥
 दो:- नयन विषय मो कहूँ धरत सो समस्त सुखसुख ।
 सबर लखु लग भीष कहँ भयँ ईछु अनुकूल ॥ ६ ॥
 ये ही समस्त सुखोंके सूत्र [आप] में नेत्रोंके निरूपण । ईश्वरके अनुकूल
 होनेपर समस्तों कीकी उन सब-ही-सम है ॥ ७ ॥
 चौ:- सबहि भँति मोहि दीनि कदाई । निज मन भाषि जेह भगवाई ॥
 होहि सदा सदा सब सेवा । कहहि कहर कोटिक करि केला ॥ ८ ॥
 आपने मुझे सभी प्रकारसे बड़ाई दी और अपना मन जानकर अपना किया ।
 यदि इस प्रकार करसकी और सेवा हो और करोड़ों कर्त्तव्यक मरना करते रहें ॥ ९ ॥
 और आप सब गुन पावा । कहि न सिताई सुख सुख ॥
 मैं कहु कदाई एक कद मोरें । सुख सदा सदा सुख मोरें ॥ १० ॥
 तो भी मैं खुशानी । मुनि, मेरे गोपाय और आपके गुणोंकी क्या कहकर
 समाप्त नहीं की जा सकती । मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह अपने इस एक ही चरित्र कि
 आप भगवान् मोहि प्रेम्से प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ११ ॥
 बार बार मागई कर मोरें । मनु करिहै चरन जल मोरें ॥
 सुनि पर नयन प्रेम अनु रोपे । पूरकम रसु परितोपे ॥ १२ ॥
 मैं बार-बार हाथ जोड़कर कह माँगता हूँ कि सेवा मन भूषण भी आपके करणी-
 को न छोड़े । जननीके सेठ कर्त्तव्योंके हुनकर, जो मानो प्रेम्से पुत्र सिने हुए थे,
 पूर्णकाम श्रीरामचन्द्रजी अनुग्रह हुए ॥ १३ ॥
 करि नर निज सगुन उपसखे । निरु सीसिक बसिह सम जाये ॥
 विनती बहुरि मरत मन कीन्ही । मित्रि सप्रेम पुनि आसिह दीन्ही ॥ १४ ॥
 उन्होंने सुन्दर विनती करके सेवा करवायी, मुक्त विरामिनी और कुलपुत्र
 बलिहारीके समान जानकर सगुन कर्त्तव्योंके समझ दिया । फिर जननीने भरतजीके
 विनती की और प्रेम्से आप मित्र फिर उन्हें आशीर्वाद दिया ॥ १५ ॥
 दो:- मित्रे उखल रिपुसुखकी दीन्हि जसीस भाईस ।
 भय परसर प्रेममस- विरि- विरि बाधाई सीस ॥ १६ ॥
 फिर राजाने कर्त्तव्यी और सज्जनकी मित्र उन्हें आशीर्वाद दिया । वे परसर
 प्रेम्से पर होकर बार-बार मागई फिर नाने को ॥ १७ ॥
 चौ:- बार बार करि निज कदाई । सुखि कहे संन सब भाई ॥
 कम् नहि कीसिक कद कदाई । पल देहु- मिर- कम् नहि कदाई ॥ १८ ॥
 जननीकी बार-बार विनती और बड़ाई करके श्रीरामचन्द्रजी उन भाइयोंके साथ

छले । जनकजीने ज्वर विद्यामित्रजीके चरण पकड़ लिये और उनके चरणोंकी रत्नको मिर और नेत्रोंमें लगाया ॥ १ ॥

सुख सुनीस कर दसख तोरें । जगसु न कहु प्रीति मन मोरें ॥

जो सुख सुखसु कोकनति चाहैं । करत मनोरथ सखुनत कहैं ॥ २ ॥

[उन्होंने कहा—] हे सुनीसर ! सुनिसे, जाँके सुन्दर दर्शनसे कुछ भी दुर्लभ नहीं है, मेरे मनमें ऐसा विश्वास है । जो सुख और सुख स्नेहभाव चाहते हैं परन्तु [असम्भव समझकर] जिसका मनोरथ करते हुए सकुचाते हैं ॥ २ ॥

सो सुख सुखसु सुखम सोहि स्वामी । सब सिधि तब दसख अनुगामी ॥

कीन्ह विषय पुनि पुनि सिद्ध नहि । भिरे महीसु अखिषा पाई ॥ ३ ॥

हे स्वामी ! वही सुख और सुख सुखे सुखम हो गया; सभी सिधियाँ आपके दर्शनकी अनुगामिनी बनकर पीछे-पीछे चबनेवाली हैं । इस प्रकार बार-बार किन्ती की और फिर नवाकर तथा उनसे आशीर्वाद पाकर राजा जगद्वैते ॥ ३ ॥

कही बरात निहाय पचाई । सुविष्ट होत सब सख सुदाई ॥

रामहि निरति प्रेम कर गारी । पद संघन कहु होहि सुकारी ॥ ४ ॥

बंका बराकर बारात चली । छोटे-बड़े सभी सुदाय प्रथम हैं । [राखेके] गोंबोंके ली-गुस्न औरामचन्द्रकीके देखकर नेत्रोंका कल बाकर सुखी होते हैं ॥ ४ ॥

श्री०—बीच बीच पर बास करि भग खोगन्ह सुख देत ।

भवथ समीप पुनीत दिन पहुँची ग्राह जनैत ॥ ५ ॥

बीच-बीचमें सुन्दर सुखम करती हुई, तथा मार्गके खोगोंसे सुख देती हुई वह

बारात पवित्र दिनमें अवधियापुरीके समीप आ पहुँची ॥ ५ ॥

चौ०—इसे विस्तार पवन कर बाने । मेरे संख पुनि हव नव गाये ॥

सौखि मिलि विनिमी सुदाई । सख राग बजाई कहलाई ॥ ६ ॥

नागाधोंपर चोटें पड़ने लगीं; सुन्दर झोल बजने लगे । मेरी और बाहुकी बही आवाज ही रही है; शायी-झोड़े गरज रहे हैं । विशेष सम्म करनेवाली शौंस, सुश्रवणी बलियों तथा रसिके रससे सहनाहर्नो बन रही हैं ॥ ६ ॥

पुलक / भावत अन्वि बरात । सुविष्ट सकल पुष्पकवति गता ॥

मिज मिज सुखर सख संघारे । हठ बाह चौहट पुर हारे ॥ ७ ॥

बारातको धाती हुई सुनकर मगरनिवासी प्रसन्न हो गये । उनके शरीरोंपर पुष्पकवली छा गयी । उनमें अपने-अपने सुन्दर परों, बाजारों, गलियों, चौपटों और गारके झारोंकी सज्जा ॥ ७ ॥

गलीं सकल नगरजीं सिन्धई । लहै सारै नीक नद पुराई ॥

बग बगद न जगद बलन । तोरन केहु पलक बितान ॥ ८ ॥

शरी गलियों नगरजो सिन्धानी गलीं, जहाँ-जहाँ सुन्दर थीक पुराये गये । तोरणों, घब-नलक्यों और सम्भरोति बाजार, ऐसा तथा कि जिसका कर्ण नहीं भ्रमा आ सकता ॥ ८ ॥

सकल पूराक कदकि लखल । रोये कहु कर्न लखल ॥

करो सुमय तब परसत पारी । मरिमव आनन्दक कद करनी ॥ ९ ॥

परमदिव सुपारी, कैल, जाम, मौलिकरी, कदम्य और उपलब्धे वृक्ष लगाये

गले । वे छगे हुए सुन्दर ब्रह्म [फलोंके भास्वरे] पृष्ठीको चू रहे हैं । उनके मणियोंके
पाछे बड़ी सुन्दर शरीरगरीबे बनाये गये हैं ॥ ४ ॥

दो०—विदिध मौलि मंगल कलख यह सह खे खँवारि ।

सुर ब्रह्मादि सिद्धादि सब रघुवर पूरी निहारि ॥ ३४४ ॥

अनेक प्रकारके मंगल-कलख पर-पर सजाकर बनाये गये हैं । श्रीरघुनाथजीकी
पूरी (अयोध्या) को देखकर ब्रह्मा आदि सब देवता विह्वले हैं ॥ ३४४ ॥

बौ०—सूर भयशु देखि अघसर सोझ । रज्जा देखि मदन मनु मोह ॥

मंगल सुख सुख मनेइसबई । विधि विधि सुख संपदा सुझई ॥ १ ॥

एत समय गलपल्लव [अलङ्कार] सोभित हो रहा था । उसकी रचना देखकर
कामदेवका भी मन मोहित हो जाता था । मङ्गलसङ्गुन, मनोहरता, शक्ति-शक्ति, सुख-
सुखवनी सम्पत्ति ॥ १ ॥

अनु ममद सब सहज सुझए । उनु धरि धरि दसव्य सुई ऊच ॥

ऐक्य हेतु राम वैदेही । कहतु सलसा छेदि ब केही ॥ २ ॥

और सब प्रसन्नके उल्लास (आनन्द) मनो सहज सुन्दर शरीर पर-परकर
दर-दरकीके घरमें छा गये हैं । श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीके दर्शनके लिये भला,
कहिये, किसे कात्ता न होगी ॥ २ ॥

दृष्ट दृष्ट मिथि चली सुभासिनि । निज छवि निरुद्धि मधुविकसिनि ॥

सकल सुसंपन्न सब भवती । गच्छति जनु बहु वैभ भारती ॥ ३ ॥

सुहागिनी किसे छीन-छीन-छीन भिन्नकर चली, जो अपनी छविसे कामदेवकी की
-रसिका भी निरादर कर रही हैं । सभी सुन्दर मङ्गलसङ्गुन एवं आपसी सजाये हुए गा
रही हैं । मानो सरलसीली ही बहुत-से वैभ धारण किये गा रही हों ॥ ३ ॥

मृगति भवन कोलाहल होई । अह न कवि समर सुझ सोई ॥

कौलव्यादि राम महापरी । प्रेम विवसत तब दसर विहारी ॥ ४ ॥

राजमहर्षि [आनन्दके मोरे] मोर मध रहा है । उस समयका और सुखका
वर्णन नहीं किया जा सकता । कौलव्यादी आदि श्रीरामचन्द्रजीकी सब माताएँ प्रेमके
विषय बच होनेके शरीरकी सुख मूल लगी ॥ ४ ॥

दो०—विष दाम किमन्ध विपुल पूजि धनेस पुरारि ।

प्रसुदित परम वरिद्र अनु पाइ परतर्य चारि ॥ ३४५ ॥

मण्डोदरी और विपुलारि विकसित पूजन करते उन्होंने माहागणिको बहुत-सा दान
दिया । वे ऐसी परम प्रसन्न हुई मानो अत्यन्त बरिद्री चारों पदार्थ पा गया हो ॥ ३४५ ॥

बौ०—मोद ममोद किमल सब मत्ता । चरहि बचन सिनिक भय माता ॥

राम दस दित धति अनुसन्धि । परिछवि सख सख सब कागी ॥ १ ॥

॥॥ और ममन्त आनन्दसे निवृत्त होनेके कारण सब माताओंके शरीर प्रियत हो
गये हैं, उनके वरण नल्ले नहीं हैं । श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनके लिये वे अत्यन्त अनुपम-
में मकर पछनका सब सामान छवने लगी ॥ १ ॥

विधि विधान जानने वाले । मंगल सुदित सुमित्री सते ॥

हृद दृष्ट ध्वि पल्लव पूज्य । पान पूज्य मंगल सुख ॥ २ ॥

मनेमो प्रकारके बातें बघते थे । सुमित्राजीने आनन्दपूर्वक मंगल-दान समये ।
इन्दी, दूध, दही, पत्ते, फूल, फल और सुगंधी आदि मंगलकी मूल वस्तुएँ ॥ २ ॥

अथवा भंडार भोजन काय । मंडल संसि विप्रसि विनाय ॥
 छेदे पुत्र मर सख्य सुहाय । मदन सख्य बसु मीय वगाय ॥ ३ ॥
 तथा अथ (वायु) , जैमिण्य, जैरोचन, तथा और तुलसीजी सुन्दर मंडरिणी
 सुशोभित हैं । नाना रंगोंसे विविध भिने हुए खूब सुहावने सुननेके कंठों ऐसे गाव्य
 होते हैं मानो कामदेवके पक्षियोंने धौलके कनके हों ॥ ३ ॥

सख्य सुगंध म आदि कलानी । मंडल सख्य सखि सख रानी ॥
 रवीं भारती बसु विनाय । सुविद करहि फल मंडलका ॥ ४ ॥
 शकुनकी सुगन्धित वस्तुएँ कलानी नदीं जा सखी । रानियाँ सम्पूर्ण मंडल-
 सख्य सख रही हैं । बहुत प्रकारकी आरती बनाकर वे आनन्दित हुई सुन्दर मंडलान
 कर रही हैं ॥ ४ ॥

श्री०—कलक धार मरि मंडलनिह कामल करनिह किये माय ।
 बरही सुविद परिखनि करण पुलक पडविद माय ॥ ५ ॥
 होनेके पालेको मातृलिक बलुणीले मंडल अपने कंठके समान (कोमल)
 दापोंसे छिने हुए माठाएँ आनन्दित होकर फलन करने पड़ीं । उनके धरेर पुलकानवी-
 से झा गये हैं ॥ ५ ॥

श्री०—बसु धन बसु सख्य मंडल । सख्य धन बसु बसु उभय ॥
 सुखध सुखन मंडल सुर करहि । मंडल सख्य मंडल मनु करहि ॥ ६ ॥
 धुके धुके आकाश ऐसा काम ही मंडल है मानो सफले बादल सुमन-सुमनकर
 का गये हो । देवता कलकके पुनर्जी मंडलें बरत रहे हैं । वे ऐसी क्यती हैं मानो
 बगुनोंकी पौष्टि मंडलें [अपनी ओर] लींच रही हो ॥ ६ ॥

मंडल मणिमय मंडलिकरे । मंडल मंडलिकर मंडल सखी ॥
 मंडलिकर मंडलिकर मंडलिकर । मंडलिकर मंडलिकर मंडलिकर ॥ ७ ॥
 सुन्दर मणिदीप्ति बने मंडलिकर ऐसे मंडल होते हैं मानो मंडलिकर मंडलिकर हों ।
 जटादीपक सुन्दर और चकल भिनों प्रकट होती ओर भिज जाती हैं (आती-जाती हैं) ।
 वे ऐसी बान पकती हैं मानो विज्जिओं काम कर रही हों ॥ ७ ॥

सुविद पुनि धन मंडलिकर । मंडलिकर मंडलिकर मंडलिकर ॥
 सुर सुगंध सुविद मंडलिकर । मंडलिकर मंडलिकर मंडलिकर ॥ ८ ॥
 मणालीनी धनि मंडलिकर मंडलिकर मंडलिकर । मंडलिकर मंडलिकर मंडलिकर ॥
 मंडलिकर मंडलिकर मंडलिकर मंडलिकर मंडलिकर मंडलिकर ॥ ९ ॥

समय जावि सुर मंडलिकर । सुर मंडलिकर मंडलिकर मंडलिकर ॥
 सुमिरि संयु मंडलिकर मंडलिकर । सुविद मंडलिकर मंडलिकर मंडलिकर ॥ १० ॥
 [प्रवेशका] समय मंडलिकर मंडलिकर मंडलिकर मंडलिकर मंडलिकर मंडलिकर ॥
 मंडलिकर मंडलिकर मंडलिकर मंडलिकर मंडलिकर मंडलिकर मंडलिकर मंडलिकर ॥ ११ ॥

श्री०—होदि सुखल करहि सुमन सुर सुंदरी पल्लव ।
 विदुष चक्षु नयनि सुविद मंडलिकर मंडलिकर ॥ १२ ॥
 शकुन ही रहे हैं, देवता सुन्दरी मंडलिकर मंडलिकर मंडलिकर मंडलिकर ॥
 भिनों आनन्दित होकर सुन्दर मंडलिकर मंडलिकर मंडलिकर मंडलिकर ॥ १३ ॥
 रा० स० १६—

देवि भगोदर धारिण सोरी। समस्त उपमा समस्त पैठरीं ॥

देत म बनदि निष्ट छसु छरीं। एकटक रही स्म अनुसारीं ॥ १ ॥

चारों मनोहर जोदियोंको देखकर सखीने छरी उपमाओंको खोल गला; पर फोरें उपमा देते नहीं ननी; क्योंकि उन्हें सभी निकुञ्ज कुञ्ज जान पड़ी। नम हारक दे भी श्रीरामजीके रूपमें अनुसक्त होकर एकटक देखती रह गयी ॥ ५ ॥

दो०—निराम भीति कुल रीति करि गरुड चौंके देत।

पशुना सहित सुत परिच्छि सब घट्यो लपटाह निकेत ॥ ३४९ ॥

देवकी विधि और कुलप्री रीति करके सर्व-चौंके देती हुई शकुन्तलेत सब पुत्रोंको परछन परने गलतारें गलतारें निकल चली ॥ ३४९ ॥

चौ०—गारि सिपासम सदान सुहाव। जनु मनोन मित्र दात यमरा ॥

लिप्ट पर कुँवरि कुँवर बंधारे। सार फष पुनीत पछारे ॥ १ ॥

स्वाभाषिक ही सुन्दर पक्ष सिद्धमन थे; जो मानों कमदेवने ही अपने हाथसे बनाये थे। उनपर माताशाने गजकुमारियों और राजकुमारोंकी पैठाया और आदरके साथ उनको पवित्र करण पोसे ॥ १ ॥

एष दीप दीपद पैद विधि। पूजे पर दुखहिनि मंगल विधि ॥

धारिण बार भासो करी। न्यजन थाप जमर सिर दरीं ॥ २ ॥

पित देवकी विधिमें अनुसार मंगलोंके निधान दूतद गौर दुखहिनोंकी पूजा दीप और दीप आदिके द्वारा पूजा की। माताएँ बारबार आरती कर रही हैं और पर-गजुओंके छिरोंपर सुन्दर वस्त्र तथा चैंकर दल रहे हैं ॥ २ ॥

पशु अनेक निछावरी होई। भरी प्रमोद मातु सब सोई ॥

पाया परम लख जनु ओरी। असु सखै जनु संतत रोरी ॥ ३ ॥

अनेकों पशुएँ निछावर हो गयी हैं; सभी माताएँ आनन्दसे भरी हुई देखी छुपीभित हो रही हैं मानो खेतीने फल लचको प्राप्त कर लिया। सखे रोनीने मनो अमृत पा लिया; ॥ ३ ॥

रामन रंक जनु पास पाया। बंधाति होधन छातु सुहावा ॥

सूक पदम ॥ मारद छई। मारदु सार सूर जब पाई ॥ ४ ॥

बन्धनवा दरिद्री मानो पास पा गया। अनेको सुन्दर नैर्जन सम हुआ। नैतिके सुखमें मानो सरसली आ निपजों और धारवीले मनो दुखमें निचम पा ली ॥ ४ ॥

दो०—यदि सुख ते सत कोटि मुन कचाह मातु भनंदु।

मादुह सहित विव्याहि घर आए। रघुकुलबंदु ॥ ३५० (क) ॥

॥ सुखोंते भी ही कपेटयुता नदकर आनन्द गलतारें पा रही हैं। क्योंकि शकुन्तले चन्द्रमा श्रीरामजी विवाह करके माहयौलहित पर आवे हैं ॥ ३५० (क) ॥

लोक रीति जगमी कचाहि वर दुखहिनि रघुचाहि।

मोडु विनोदु बिलोकि मरु राम मर्यादि मुसुकाहि ॥ ३५० (ख) ॥

माताएँ जेकरीति कली हैं और दूख-दुखहिनें रघुचाहे हैं। इस महान् आनन्द और विनोदको देखकर श्रीरामचन्द्रजी मन-ही-मन मुसुका रहे हैं ॥ ३५० (ख) ॥

चौ०—देव पितर पूजे विधि नीचरी। क्वी समस्त कलत्र जी की ॥

सबहि यदि मर्यादि कलत्रक। मर्याद कलिह राम कलत्रात ॥ १ ॥

मनकी सभी कलत्राएँ पूरी हुई बानन देख और निकलेंग मरीचोंति पूजन

छिया । सबही बन्दूक करते गलाएँ गद्दी बरदान मँगती हैं कि भाईवैलहीत
औरसखीका कसबाग हो ॥ १ ॥

अंतरहित सुर चक्षिष देही । मुदित मनु बंधन मरी लेही ॥

भूपति रोहि भरती बीने । खन खन सवि सुवन बीने ॥ २ ॥

देवता सिने हुए [कनकसिने] काशीनांद दे रहे हैं और गलाएँ आनन्दित हो
मौखत भरकर के रही हैं । तदनन्तर राजने जरासिन्हीको बुझा किन और उन्हें
सदरिर्वा- धन, मयि (रत्न) और जाभूषादि दिये ॥ २ ॥

अपनु पद राखि उर समधि । मुदित नर सखनिनित धामधि ॥

सुर नर मारी लख पहिराए । सर सर भावन को कपाए ॥ ३ ॥

माल पाकर धीरापवीने दूरसें लखन के सख आनन्दित होकर अपने-अपने
घर गये । तत्पश्चात् समस्त श्री-पुस्तोको राजने कपड़े और गहने पहनाये । घर-घर
गहने बढाये छे ॥ ३ ॥

काचर कम कपधि कोह कोह । मनुदित राज देहि कोह कोह ॥

लेखन लखन कनिका कम । पूरन सिद्ध कप सगमा ॥ ४ ॥

बावक क्षेत्र जो-जो मँगते हैं, मित्र प्रसन्न होकर राजा उन्हें यही-वही देते हैं ।
कम्पू रोगी और कालेसोखी राजने नाना प्रकारके राज और कपडाने मनुह
किया ॥ ४ ॥

यो-—देहि असीत ओहारि सख मयारी गुन गन भाव ।

सब सुर मूसुर लखित छहै । गवधु कीन्ह भरमाय ॥ ५१ ॥

सब ओहार (कपडन) करते आक्षिप देते हैं और गुणगुणहोकी कथा गाते हैं ।

सब सुर और ब्रह्मसंहित राज दरपवीने मङ्गलों समन किया ॥ ५१ ॥

चौ-—ओ लखि भुलखसन सुग्री । लोक वेद विधि सार फोहो ॥

मूसुर और देहि सब गयी । सार सौ आन्य वर मारी ॥ १ ॥

वशिष्ठजीने तो भाग दी, ठीक लोक और वेदकी विधिके अनुसार राजाने आदर
पूर्वक किया । राजाजीकी भीष्ट देखकर अपना बड़ा भाग जानकर सब पानियों भरकरके
सब ढरी ॥ १ ॥

पद कतारि लखन अमलपद । पुरि मन्त्री विधि पूर वैभान् ॥

मास राज मेल करिषे । देत असीत कहे मय लोषे ॥ १ ॥

चरण पीछे उन्होंने लपके सान करवा और राजाने भलीभाँति पूजन करते
उन्हे मोहन कहा । मगर, दन और प्रेमके पुष्ट हुए वे समस्त मन्त्रे आशीर्वाद देते
हुए बसे ॥ २ ॥

सु निधि कीन्ह मन्त्रिपुत्र पूज । सख रोहि सख धन न दूख ॥

कीन्ह जसस सुखि मूरी । लखि नखि कीन्ह पन मूरी ॥ २ ॥

राजने गति-भुल विद्यामित्रकी बहुत कष्टसे पूजा की और कहा—दे माय !
मेरे समान पद दूख को नहीं है । राजने उनकी बहुत प्रशंसा की और उनसेमोक्षदित
उनकी वरपशुको मंगल किया ॥ २ ॥

मीर समन कीन्ह सर कप । मय लोगल स सु सु रमिषा ॥

पुते सुर स्र कल बनेरी । कीन्ह विन नर प्रीति न बोरी ॥ ४ ॥

उन्हे समस्त मीर दर्पनेसे उच्च सान दिया; जिनमें गज और सब रजिमान

उनका मन जोहता रहे (अर्थात् निजों राजा और मन्त्री सारी रानियों सब उनके हृच्छानुसार उनके आराधनी और दृष्टि रख सकें) फिर राजाने गुह वसिष्ठजीके चरण-कमलोंकी पूजा और विनती की । उनके हृदयमें कम शीति न थी (अर्थात् बहुत प्रीति थी) ॥ ४ ॥

दो०—बभ्रुन्ह समेत कुमार सख रक्षिन्ह सहित महीसु ।

पुनि पुनि बंदव शूर चरन देत असीस सुनीसु ॥ ३५२ ॥

बहुगौरवित स राजकुमार और सब रानियोंसमेत राजा बार-बार गुहजीके चरणोंकी बन्दना करते हैं और सुनीसर आशीर्वाद देते हैं ॥ ३५२ ॥

चौ०—विषय कीन्हि उर अति अनुसारे । सुख संपदा राखि सब भाँसे ॥

मेसु सखि सुनिवायक कीन्हि । अक्षिरक्षु बहुत विधि दीन्हि ॥ १ ॥

राजाने अत्यन्त प्रेमपूर्ण हृदयसे पुर्णको और सारी सम्पत्तिको सामने रखकर [उन्हें स्वीकार करनेके लिये] विनती की । परन्तु गुनिपानने [पुरोहितके नाते] केवल अपना नेग मोंग लिया और बहुत तपस्व भागीर्वाद दिया ॥ १ ॥

उर धरि राखहि सोख समेता । हरि कीन्ह गुर सबु निकेता ॥

विषयसु सख भूष बोझाई । पैल लख सूख पाहराई ॥ २ ॥

फिर सीतानीचरित श्रीरामचन्द्रजीको हृदयमें रखकर गुह वसिष्ठजी हर्षित होकर अपने स्थानको गये । राजाने सब शासकोंकी शिपोंको बुझाया और उन्हें सुन्दर वस्त्र तथा आभूषण पहनाये ॥ २ ॥

पहुरि बोझा सुखसिद्धि कीन्हि । रुचि निषारि पहिरायवि दीन्हि ॥

तैसी कैम जीम सब ठेही । रुचि अनुस्य भूपसवि दीही ॥ ३ ॥

फिर सब सुभाविनियोंको (नगरभरकी सौभाग्यवती बहिन, बेटे, भानजी भापिको) बुलाया लिया और उनकी रुचि समझकर [उनकी अनुसर] उन्हें पहिराननी दी । नेगी लोग सब अपना-अपना नेग-भोग लेंगे और राजाओंके शिरोमणि द्यारपथी उनकी हृच्छाके अनुसार देते हैं ॥ ३ ॥

प्रिय पाहुने कृप से अने । भूषवि भाँसे बाँसे सबनाने ॥

देख देखि राखीर किनाहु । चरवि भूषव असीसि उछाहु ॥ ४ ॥

जिन नेहमानोंको प्रिय और पूजनीय जाना; उन सब राजाने मसीमौति सम्मान दिया । देखगम श्रीरामचन्द्रजीका विवाह देखकर उत्तमकी प्रार्थना करके फूल बरशाते हुए— ॥ ४ ॥

दो०—खले निखान बखाइ सुर निज मिस पु । सुख पाव ।

कहत परस्पर राम अनु प्रेम न हृदयें समाह ॥ ३५३ ॥

नगाहे बचकर और [परम] सुख प्राप्तकर अपने-अपने क्षेत्रोंको चले । वे एक-दूसरेसे श्रीरामजीका यह कहते जाते हैं । हृदयमें प्रेम लपकत नहीं है ॥ ३५३ ॥

चौ०—सब विधि सबहि समधि कसाहु । खा हृदयें भरि धरि उछाहु ॥

जाँ रक्षिसु तहाँ खु बरे । सहित बहुदिन्ह कुनैर निहारे ॥ १ ॥

सब प्रकारसे सब प्रेमपूर्ण मसीमौति आदर-वक्तार कर लेनेपर राजा दक्षमणीके हृदयमें पूर्ण उत्साह (आनन्द) भर गया । जहाँ रनिवास था, वे वहाँ फारे और बहुगौरवित उन्होंने कुमारोंको देखा ॥ १ ॥

लिपु गोव करि शेष समेता । को कहि सकहु भयठ सुख नेता ॥
 बधु समेत गोव बैसरी । बार बार हियें हसि दुखारी ॥ २ ॥
 राजाने आनन्दसहित पुत्रोंको गोदमें ॥ लिखा । उस समय राजाको नितना सुख
 हुआ उसे कौन कह सकता है । फिर पुत्रवधुओंको प्रेमसहित गोदीमें बैठाकर, बार-बार
 हृदयमें हर्षित होकर उन्होंने उनका दुख (लड़-नाच) किया ॥ २ ॥

देखि समाहु सुदिन सन्निवास । सब कैं उर अनंद कियो भास ॥
 क्योद भूप निजि भक्त विधाह । सुनि सुनि हरिु होत सब काह ॥ ३ ॥
 यह समान (समारोह) देखकर रनिवास प्रसन्न हो गया । सबके हृदयमें आनन्दने
 निवास कर लिया । तब राजाने जिस तरह निवाह हुआ या वह सब कहा । उसे सुन-
 सुनकर सब किसीको हर्ष होत्र है ॥ ३ ॥

जनक राज पुत्र सीछु यहाई । प्रीति रीति संस्था सुहाई ॥
 बहुविधि भूप मात निजि बाले । शरीं सब प्रसुदित सुनि करगो ॥ ४ ॥
 राजा जनकके पुत्र, सीछ, महत्त्व, प्रीतिकी रीति और सुशायनी उम्पटिका वर्णन
 राजाने भावकी तरह बहुत प्रकारसे किया । जनकजीकी करनी सुनकर सब रानियाँ बहुत
 प्रसन्न हुई ॥ ४ ॥

रो—सुतन्ह समेत नहाइ धूप बोलि विप्र गुर ग्याति ।
 भोजन कोन्ह अनेक विधि धरी एंव यह राति ॥ ३५४ ॥
 पुत्रोंसहित स्नान करके राजाने ब्राह्मण, गुरु और कुटुम्बियोंको बुलाकर अनेक
 प्रकारके भोजन किये । [वह सब करते-करते] पाँच बड़ी रात बीत गयी ॥ ३५४ ॥
 चौ—संगच्छगान कराई कर भागिनि । मै सुकसुक सबोहर जागिनि ॥

जैबहू पान सब फाई पाए । सब सुगंध भूषित छवि छाए ॥ १ ॥
 सुन्दर अर्धों मंगलगान कर रही हैं । वह राति सुखकी मूक और मनोहारिणी हो
 गयी । अपने आचमन करके पान खाने और फूलोंकी माला, सुगन्धित द्रव्य आदिसे
 विभूषित होकर सब शोभासे छा गये ॥ १ ॥

रामहि बैसि रत्नमयु पाई । बिज बिज भवन चले सिर नाई ॥
 प्रेसु प्रसोदु विनोदु कहाई । समठ समाहु मनोहरताई ॥ २ ॥
 भीष्मवन्दनकीको देखकर और आज्ञा पाकर सब सिर नवाकर अपने-अपने घरको
 चले । क्योंकि प्रेम, आनन्द, विनोद, महत्त्व, समय, समझ और मनोहरताको—॥ २ ॥
 कहि न सकहि सत सखत सैध । वेद विरंचि महेश गनैध ॥
 सो मैं कहौ कवन विधि बरनै । भूमिनागु सिर चरत ॥ ३ ॥
 नैकजो घरखती, शेष, वेद, ब्रह्मा, महादेवजी और गणेशजी भी नहीं कह सकते ।
 फिर मया मैं उसे किस प्रकारसे बखानकर कहूँ ? कहीं कैतुआ भी घरकीको खिरकर ले
 सकता है ! ॥ ३ ॥

धूप सब भीति सबहि सम्मानी । कहि सहु कवन बोझाई रानी ॥
 बधु सरिकनी पर पर कहाई । शोकेहु नवन बरक की नाई ॥ ४ ॥
 राजाने सबका सब प्रशंसासे सम्मान करते, कोमल वचन कहकर रानियोंको दुःखचा
 मोर कहा—बहुएँ अभी बची हैं, पगले पर आयी हैं । इनको हृदयमें रखना जैसे
 नेत्रोंको फलकें रखती हैं (जैसे फलकें नेत्रोंकी सब प्रशंसासे रक्षा करती हैं और उन्हें सुख
 पहुँचाती हैं, वैसे ही इनको सुख पहुँचाना) ॥ ४ ॥

बिस तिलव जसु जलकि फाई । खाए भवद व्याहि सब भाई ॥
 सकल अमानुष करत सुन्दारे । केवल कीसिन् कुहीं सुधारे ॥ १ ॥
 विश्वविषयके वश और जानकीके पाश; और सब भाइयोंको ब्याहकर घर आवे ।
 दुम्हारे समी कर्म अमानुषी हैं (मनुष्यकी शक्तिके बाहर हैं) जिन्हें केवल विश्वामित्रजी-
 की कृपाने मुधार है (समझ किता है) ॥ २ ॥

आहु सुख जग बनसु दमन । देखि लख विदुषदब सुन्दार ॥
 जे दिन गए दुम्हहि विदु देखें । ते बिरहि छनि पारहि केछें ॥ ३ ॥
 हे साव ! तुम्हारा चन्द्रमुख देखकर आज हमारा चन्द्रगर्भ कम लेना सकल हुआ ।
 तुमको बिना देखे जो दिन बीते हैं, उनको ब्रह्मा गिनतीमें न आवें (हमारी आहुमें शामिल
 न करें) ॥ ४ ॥

दो०—राम प्रयोषी मातु सब कहि विनीत बर बैन ।
 सुमिरि खंसु गुर कि पद किए नीयवस नैन ॥ ३५७ ॥
 विनयमे उत्तम नवन कहकर श्रीरामचन्द्रजीने सब माताओंको स्तुति किया ।
 फिर शिष्यकी, गुरु और ब्राह्मणोंके चरणोंका स्पर्श कर नेत्रोंमें नींदके वश किया
 (अर्थात् वे सो रो) ॥ ३५७ ॥

पौ०—नीचई वदन सोह सुदि जेना । मनु सौँख सरसीसह सोना ॥
 घर घर कहहि जाकरन करी । देखि वस्त्रपर संगठ पारी ॥ १ ॥
 नीचमें भी उनका अवतल सजोगा मुसझ देखे सोह आ या मानो सम्प्रापके
 समका सकल फल सोह रहा हो । भिचों पर-पर जागरण कर रही हैं; और आपत्तमें
 (एक-बूलीकी) मङ्गलमयी गालियों दे रही हैं ॥ १ ॥

पुरी बिरजति सजति रजनी । रानी कहहि बिलोकहु रजनी ॥
 सुंदर बहनु धनु डै सोई । फनिजह चतु सिरमनि घर गौई ॥ २ ॥
 रानियों कहती हैं—हे रजनी ! देखो, [आज] रात्रिकी कैली सोभा है, जिससे
 अयोध्यापुरी विशेष शोभित हो रही है । [यों कहती हुई] अतएव सुन्दर बहनोंको
 लेकर सी रानी । मानो रजनी अपने सिरकी रानियोंको बुदबोले छिपा छिपा है ॥ २ ॥

याव पुगीत कल प्रभु आवे । बसवद कर बोलन लागे ॥
 बंदि मागवन्नि शुक्लन खाए । गुरजन हार जोहारन आवे ॥ ३ ॥
 प्रातःकाल पवित्र ब्राह्मणद्वयमें प्रभु आगे । हुगें सुन्दर बोलने लगे । भाव और
 मागधोंने गुणोंका गान किया तथा नमस्के लोग द्वारपर जोहार करनेको आवे ॥ ३ ॥

बंदि दिप्र सुर गुर पितु माता । कह बसीसं मुदित सब प्राता ॥
 जननिन्द सखर वदन निहारे । नृपति संग हार पगु पारे ॥ ४ ॥
 ब्राह्मणों, देवताओं, गुरु, पिता और माताओंकी कन्दना करके आशीर्वाद पाकर
 सब भाई प्रसन्न हुए । मातृगणोंने आदरके साथ उनके मुखोंको देखा । फिर वे राधाके
 साथ दरवाजे (बाहर) पधारे ॥ ४ ॥

दो०—कीन्हि सौच सब सहन सुधि सरित पुनीत नहाइ ।
 प्रातःमिथ करि तप्त पंदि आप कारित भाइ ॥ ३५८ ॥
 स्वभावसे ही पवित्र पारों मादलोंने सब औचकिते निश्च होकर पवित्र सरयू नदीमें
 स्नान किया और प्रातःकाल (कन्या-कन्दनादि) करके ये पितृके पद आवे ॥ ३५८ ॥
 नवाहुपारमण, वीसरा विनाय

चौ०—सूर किलोकि सिध उर खई। बैठे हरि रखायसु पाई ॥

देखि राम सब समा सुबानी। खेचन खस जखि अनुमानी ॥ १ ॥

राजाने देखते ही उन्हें हृदयसे लगा लिया। तदनन्तर वे आशा पाकर दृष्टि होकर बैठ गये। श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनकर और नेत्रोंके लगनी वल गयी सीमा है ऐसा अनुमानकर सारी समा प्रीति हो गयी। (जहाँ तक उनके तीनों प्रकारके वाप छत्रोंके लिये निज गये) ॥ १ ॥

पुनि बसिहु मुनि कौसिकु आए। सुभा अवनन्दि मुनि वैद्यर ॥

सुतन्ह समेत पुनि पद लाये। निरखि समु दोठ सुर अनुयोगे ॥ २ ॥

फिर मुनि वशिष्ठजी और विश्वामित्रजी आये। राजाने उनके सुन्दर आसनोपर बैठाया और पुत्रोत्पत्ति स्तम्भ की पूजा करके उनके चरणों लगे। दोनों ॥ श्रीरामजीको देखकर प्रेम्में मुग्ध हो गये ॥ २ ॥

काहिं बसिहु बस हसिहसत। सुबहिं महीसु सखित रमिवासा ॥

मुनि मन मगल राखिसुत करवी। सुखि बसिह बिपुल विधि धरनी ॥ ३ ॥

वशिष्ठजी चर्मके शिष्टाव कद रहे हैं और राम रमिवासाहित सुन रहे हैं। जो मुनियोंके मनको भी अगम्य है, ऐसी विश्वामित्रजीकी करनीकी वशिष्ठजीने जानपित होकर बहुत प्रकारसे दर्शन किया ॥ ३ ॥

घोले बामदेठ सब सौंघी। कीरति कसित लोक तिहुं भाषी ॥

मुनि भानहु भयद सब काहु। राम कसन उर अधिक उलाहु ॥ ४ ॥

बामदेवकी घोले—वे लप पाते लप रहे हैं। विश्वामित्रजीकी सुन्दर कीर्ति तीनों लोकोंमें छापी हुई है। यह सुनकर सब किसीको आनन्द हुआ। श्रीराम-कसनके हृदयमें अधिक उल्लाह (आनन्द) हुआ ॥ ४ ॥

चौ०—संगल मोद उलाह गित जाहि दिवस यहि मौंति।

उमगी अवध अमद भरि अधिक अधिक अधिकाति ॥ १५९ ॥

नित्य ही मङ्गल, आनन्द और उत्सव होते हैं; इस तरह आनन्दमें दिन बीतते जाते हैं। अयोध्या आनन्दसे भरकर उमड़ पड़ी; आनन्दकी अधिकता अधिक-अधिक बढ़ती ही जा रही है ॥ १५९ ॥

चौ०—सुदिन सौधि बस बंजन छोरे। संगल मोद विषेद ब बोरे ॥

विश सब सुख सुर देखि सिद्धहीं। मगल जग आर्यहि बिधि पाहीं ॥ १ ॥

अष्टा दिन (शुभ गृहार्थ) शोषकर सुन्दर कङ्कण खोले गये। मङ्गल, आनन्द और विनोद कुछ कम नहीं हुए (अर्थात् बहुत हुए)। इस प्रकार नित्य नये सुखोंके देखकर देवता विहाते हैं और अयोध्यामें जन्म पानेके लिये ब्रह्माजीसे प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

विश्वामित्रि पल्लव किं चहहीं। राम समेध विषय बस रहहीं ॥

दिन दिन सखसुख नूपति जाक। देखि सराह महसुखिचक ॥ २ ॥

विश्वामित्रजी नित्य ही प्रार्थना (कलने आश्रम जाना) चाहते हैं, पर रामचन्द्रजीके स्नेह और विनयबल रह जाते हैं। दिनों-दिन राजासुख सेवुना भाव (प्रेम) देखकर महामुनिराज विश्वामित्रजी उनकी उपह्सा करते हैं ॥ २ ॥

मगल बिदा सब अनुयोगे। सुतन्ह समेत उद- मे जाने ॥

माय समस्त संवद सुमहारी। मैं सेवक समेत सुख भागी ॥ ३ ॥

अन्तमें जब विधाभिन्नजीने विदा भोगी, तब राजा प्रेममग्न हो गये और पुत्रौलहित
भाये खड़े हो गये । [ये बोले—] हे नय । यह सारी सगढ़ा आफकी है । मैं तो
स्त्री-पुत्रौलहित आफ्ता केनक हूँ ॥ ३ ॥

करन सदा ललितन्द पर छोड़ । दरस्तु देव रहन मुनि मोह ॥

अस कहि राठ सहित सुत रावी । परेठ कस सुख आव न वानी ॥ ४ ॥

हे मुनि । लड़कोंपर सदा स्नेह करते रहियेगा और मुझे भी दर्शन देते रहियेगा ।
देसा कहकर पुत्रों और रानियोंलहित राजा दशरथजी विधाभिन्नजीके चरणोंपर गिर पड़े,
[प्रेमविहल हो जानेके कारण] उनके गूँहसे बात नहीं निकलती ॥ ४ ॥

हीनहि असीध विप्र बहु भौंती । चले ब प्रीति रीति कहि जाती ॥

राम सप्रेत संग सब भाई । जायसु वाह फिरे पहुँचाई ॥ ५ ॥

ब्राह्मण विधाभिन्नजीने बहुत प्रकारसे आशीर्वाद दिये और वे चक पड़े, प्रीतिभी
रीति कही नहीं जाती । तब माद्योंको साथ लेकर भीष्मजी प्रेमके साथ उन्हें पहुँचाकर
और भाषा पाकर छोटे ॥ ५ ॥

वो—राम बहु सूपति भगति व्याडु उछाडु अगंदु ।

आत सप्राहल सनहि यम मुदित गाधिकुलचंद ॥ ६१० ॥

गाधिकुलके चन्द्रम विधाभिन्नजी वड़े हर्षके साथ श्रीरामचन्द्रजीके हस, राजा
दशरथजीकी भक्ति, [जायें भाइयोंके] विवाह और [सबके] उत्साह और आनन्द-
को मन्द-हीमन सप्राहल जाते हैं ॥ ६१० ॥

औ—यामवैव एकुल गुर आनी । बाहुरि धाधिसुत कवा बसादी ॥

मुनि मुनि सुकमु मचई मन राक । वरभत अवच पुन्य प्रभाक ॥ १ ॥

यामदेवजी और एकुलके गुह बानी बधिजीने फिर विधाभिन्नजीकी कथा
बखानकर कही । मुनिका सुन्दर कथ सुनकर राजा मन्द-हीमन अपने पुत्रोंके प्रभावका
बखान करने लगे ॥ १ ॥

बाहुरे खेप सज्जमु भयक । सुलन्द लनेत सपति गुरै गयक ॥

बाई तई राज व्याडु लख गाय । सुकमु पुनीत खोक विहू फरा ॥ २ ॥

भाषा हुई तब सब लोग [अपने-अपने घरोंमें] छोड़े । राजा दशरथजी भी
पुत्रौलहित मरुझें गये । जहाँ-तहाँ सब श्रीरामचन्द्रजीके विचारकी याचार्द जा रहे हैं ।
भीष्मचन्द्रजीका पवित्र सुवत जैनों छेकोंमें छा गया ॥ २ ॥

आप व्याहि यमु घर जेव तैं । सतद कन्द कवच सव तैं ॥

प्रभु विवाहै नख भयक उछाह । सकहि ब बरनि सित मदिनाह ॥ ३ ॥

अपने श्रीरामचन्द्रजी निवाह करके घर आये, तपसे सब प्रकारका आनन्द अयोध्यामें
आकर बधने लगा । प्रभुके विवाहमें जैव आनन्द-उत्साह हुआ, उसे सरस्वती और
सगैंके राजा शेषजी भी नहीं कह सकते ॥ ३ ॥

कविहुक नीवनु पवन जन्ती । राम खीष जमु भंगक सजनी ॥

तेदि ते मैं कहु कहा बखानी । करन पुनीत देह निज बानी ॥ ४ ॥

श्रीवीदारामजीके कपको कविहुके नीवनको पवित्र करनेवाला और मङ्गलार्थी
ज्ञान जानकर, इच्छे मेंने अपनी कपको पवित्र करनेके लिये कुल (शोड-य) बखान-
कर कहा है ॥ ४ ॥

शु०—निज निरा पावनि करन धरन राम जसु तुलसी कसो ।

रघुवीर चरित अजर वारिधि पद कवि कौन लखो ॥

उपवीत ध्याइ उछाड़ मंथल सुनि जे सदा भवहीं ।

वैदेहि राम प्रसद ते जन सर्वदा सुख पावहीं ॥

अपनी वाणीको प्रवित्र करनेके लिये तुलसीने रामका कव्य कहा है । [नहीं तो] श्रीरघुनाथजीका चरित्र अजर समुद्र है, निज कविने उसका पार किया है ! जो लोग यशोवती और विवाहके मङ्गलमय उत्सवका वर्णन बादरके साथ सुनकर गवये वे लोग श्रीगान्धीजी और श्रीरामजीकी कृपासे क्या सुख पावेंगे ।

तो०—सिख रघुवीर विवाह जे सप्रेम गवई सुनिहि ।

तिन्ह कहूँ सदा उछाड़ु मंगलप्रयत्न राम जसु ॥ १६१ ॥

श्रीसीताजी और श्रीरघुनाथजीके विवाह-प्रसंगको जो स्नेह प्रेमपूर्वक गायें-सुनैये, उनके लिये क्या उत्साह (आनन्द) ही उत्पन्न है ! क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीका यश मङ्गलका धाम है ॥ १६१ ॥

भातपारायण, चारहवाँ विभाग

इति श्रीमहायक्षरितमानसे सकलकलिकमुद्यविर्भवते प्रथमः सोपायः समाप्तः ।

कलियुगके सम्पूर्ण पापोंको विनष्ट करनेवाले श्रीरामचरितमानसका यह पहला सोपाय समाप्त हुआ ।

(बालकाण्ड समाप्त)



केवटके स्नान



अति आनंद उमगि अनुरागा ।

धन सरोव पत्तान लगा ॥

मस्तकी पादुकादान



प्रभु करि छत्र पाँवों दीन्हों । सादर भगत सीस धरि लीन्हों ॥ [अष्ट ४५६]

श्रीरामचरितमानस
श्रीरामचरितमानस

श्रीरामचरितमानस

द्वितीय सोपान

अबोच्चाकाण्ड
श्लोक

स्योद्धे च विधाति भूधरमुता देवपथ्य मस्तके
ले बाहुविधुरले च बरहं वसोरसि व्यस्रपद्।
सोऽयं भूतिविमूषणः सुरक्तः सर्वोधिषः सर्वदा
शर्वः सर्वमतः शिषः शशिनिभः श्रीरामः पतु मय ॥ १ ॥

जिनकी गोदमें विमानजमुता पार्वतीजी, महाकमर गङ्गाजी, लज्जामर शिरीषका
चन्द्रमा, कण्ठमें हलहल शिप और मधुसूक्तमर सर्वज्य सेवकी सुशोभित हैं, वे भस्मसे
विमूषित, देवताओंमें श्रेष्ठ, सर्वेश्वर, संसारकर्ता [या भक्तोंके परमात्मक], सर्वभाषक,
कल्याणरूप, चन्द्रमाके समान सुप्रकाश भीष्मकृष्णजी सदा मेरी रक्षा करें ॥ १ ॥

प्रसन्नतां वा न गतामिवेकसत्ताया न मन्दे वनवासदुःखतः।
मुताम्बुजधरी रघुमन्दनका मे सदास्तु सः भस्मकमङ्गलप्रदा ॥ २ ॥

रघुकुलकी आनन्द देनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके मुतामिवेककी जो सोमा राग्यामिवेकसे
(राग्यामिवेककी दात मुनकर) न तो प्रसन्नताको प्राप्त हुई और न वनवासके दुःखसे
मथित हो हुई, वह (मुतामन्दनकी छवि) मेरी जिसे सदा सुन्दर मङ्गलोंकी देनेवाली हो ॥ २ ॥

बीलाम्बुजधरामरुक्मिणीमन्त्रार्थं सीतासमस्तोपितकामभागम् ॥ ३ ॥
पाणौ महासात्वककारुणापं वमसि रामं रघुवंशवाच्यम् ॥ ४ ॥

नीले कमलके समान श्याम और क्रोमल जिन्हे जङ्ग हैं, श्रीसीताजी जिनके नाम
भागमें विराजमान हैं और जिन्हे हार्थोंमें [मन्त्रार्थ] नमोव वाच और सुन्दर भनुप
हैं, उन रघुवंशके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

श्रीराम चरण सरोज रज निज मनु मुकुट सुधारि ।
वरनरै रघुवर विमल जसु जो दाबकु फल चारि ॥

श्रीरामजीके चरणकमलोंकी रजसे अपने मनस्वी दर्पणको छाप करके मैं श्रीरघुनाथजीके
उत्त निर्मल चक्रवर्तन करता हूँ जो चारों फलोंको (धर्म, अर्थ, काम, मोक्षको) देनेवाला है ।

चौ०—जब तैं रघु नहि छर बाप । निज कर संभल मोद बहाप ॥
सुवन करिदस मूर भारी । मुहुन मेव बरषई सुख करी ॥ ५ ॥

जयसे श्रीरामचन्द्रजी किन्तु करके घर आने, तबसे [भगोष्पामें] नित्य नये मङ्गल हो रहे हैं और आनन्दके बधाने बन रहे हैं। चौदहों लोकस्त्री बड़े भारी पर्वतोंपर पुष्पस्त्री मेष मुखस्त्री जल बरसा रहे हैं ॥ १ ॥

तिथि सिद्धि संपत्ति नहीं सुखार्थ । दम्पति स्थाय्य अङ्गुलि कहुं आई ॥

मनिगन पुर नर नरि सुखारी । सुनि जगोळ सुंदर सर मौंती ॥ २ ॥

श्रुति-सिद्धि और सम्पत्तिस्त्री सुखस्त्री नदियाँ उमड़-उमड़कर अयोध्यास्त्री समुद्रमें आ मिलीं । नगरके स्त्री-पुरुष अच्छी धार्मिके मन्त्रियोंके समूह हैं जो सब प्रकारसे पवित्र, अमृत्य और सुन्दर हैं ॥ २ ॥

कहि न काइ कहु नगर विनूती । जनु पुराणिन विरिधि करदूती ॥

सब विधि सब पुर खोग सुखारी । रामचंद मुख बंधु निहारी ॥ ३ ॥

नगरका ऐश्वर्य कुछ बड़ा नहीं जाता । ऐसा जान पड़ता है मानो प्रसानीकी कारीगरी बस शली ही है । सब नगरनिवासी श्रीरामचन्द्रजीके मुखचन्द्रको देखकर सब प्रकारसे सुखी हैं ॥ ३ ॥

सुविश साध सब सखी सखेली । कछि निलोकि मनोरथ देखी ॥

राम कपु राव सीधु सुभाक । प्रहृष्ट होइ देखि सुनि राक ॥ ४ ॥

सब साधारण और सखी-सखेलियाँ अपनी मनोरथस्त्री बेलको पत्नी हुई देखकर भ्रान्तिरहित हैं । श्रीरामचन्द्रजीके कम, गुण, सीट और स्वभावको देख-सुनकर राजा दशरथजी बहुत ही आनन्दित होते हैं ॥ ४ ॥

श्रीः—सब सँ सर अमिरातु अस्त कहहि मगार मोहसु ।

भाप भक्तु सुवराज पद रामहि देउ नरेसु ॥ १ ॥

सबके हृदयमें ऐसी अभिजात है और सब महादेवजीके समान (प्रार्थना करते) कहते हैं कि राजा अपने नीतेजी श्रीरामचन्द्रजीको सुवराज-पद दें ॥ १ ॥

चौः—एक समस्त सग संहित समस्त । राजसर्गो सुख्य विराजा ॥

सकल सुख सुखि नरनर । राम सुखसु सुनि अतिहि बखर ॥ १ ॥

एक समस्त सुकुलके राजा दशरथजी अपने घर समस्तसहित राजसर्गमें विराजमान हैं । महापुत्र समस्त पुण्योन्नी मूर्ति हैं, उन्हें श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर बस सुनकर अत्यन्त आनन्द हो रहा है ॥ १ ॥

पुन सब रहहि कृपा अभिजात । समस्त कर्हि प्रीति सब राखें ॥

चिमुवन सीति कल राम माही । सुरिमाय दसरथ सब नाही ॥ २ ॥

सब राजा उनकी कृपा चाहते हैं और लोकलक्षण उनके स्वको रखते हुए (अनुकूल होकर) प्रीति करते हैं । [पृथ्वी, आकाश, पशुपक्ष] तीनों युवतियों और [भूत, भविष्य, वर्तमान] तीनों कालोंमें दशरथजीके समान बड़माया [और] कोई नहीं है ॥ २ ॥

मंगल मूल पशु पुत्र जन्म । जो कहु कहिय और सहु राव ॥

राम सुभास सुख कर सीमा । बहसु बिबेकि सुखसुख सम कीमा ॥ ३ ॥

मङ्गलके मूल श्रीरामचन्द्रजी किन्तु पुत्र हैं, उनके लिये जो कुछ कदा जाय उस पोड़ा है । राजाने सामाजिक ही रूपमें दर्शन के किया और उसमें अपना गौर देखकर सुकुलमें सीधा किया ॥ ३ ॥

अवन समीप अरु निज केसा । मनुहुं अखरसु सब उपदेसा ॥

कपु अवनसु राम कहुं देह । जीवन कर्म सहु किन केह ॥ ४ ॥

[देखा कि] कर्मोंके पात बाल भेद से बने हैं, मानो सुवास्य ऐसा उपदेश कर

रहा है कि हे राजन् । श्रीरामचन्द्रजीको सुनयन-यत्न देख कर जो जीवन और जन्मका काम क्यों नहीं लेते ॥ ४ ॥

दो—यह विचार कर अति नृप सुदिनु सुखसद पार ।

प्रेम पुलकि तब मुदित मन सुरहि सुनांयत आर ॥ १ ॥

हृदयमें यह विचार आकर (सुनयन-यत्न देनेका निश्चय कर) राजा दशरथजीने हृय दिन और सुन्दर समय पाकर, प्रेमसे पुलकितचरीर हो आनन्दगगन मनसे उसे सुख वसिष्ठजीको जा सुनाया ॥ २ ॥

श्री०—कहइ भुवामु सुखि सुनिनन्द । नर राम सब विधि सब करक ॥

लेख सचिब सज्जत पुतासी । जे हमारे धरि मिल उठासी ॥ १ ॥

राजाने कहा—हे सुनिराज । [हुनवा यह निवेदन] सुनिबे । श्रीरामचन्द्र अब सब प्रकारसे तब बोध हो गये हैं । लेखक, सन्नी, सब जगन्निवासी और जे हमारे पास, मिल जा उठासीन हैं—॥ १ ॥

सहहि राहु मिय केहि बिधि मोही । प्रभु बसीत बहुत बहुरि सोही ॥

विप्र सहित परिवार गोसाईं । कहाँ जोहु सब वैरिहि नाई ॥ २ ॥

समीको श्रीरामचन्द्र बैठे ही मिय हैं बैठे वे सुझोते हैं । [उनके रूपमें] आपका भाखीनाई ही मानो करीर धारण करके खेमित हो रहा है । हे स्वामी ! सारे माझण, परिवारसहित, आपके ही सपान उनपर स्नेह करते हैं ॥ २ ॥

जे गुर नार द्यु सिर धरौ । ते बहुत सकल विनय सब करौ ॥

मोहि सम पदु बहुमय न दूखें । सब पार्यै सब पावयि पूर्यै ॥ ३ ॥

जो लोग गुरुके चरणोंकी रज्ज्वे रक्तधर धारण करते हैं, वे मानो कनक ऐश्वर्य को अपने वस्त्रों पर लेते हैं । इच्छा अनुभव में समस्त दूखें खिलीने नहीं किया । आपकी पवित्र चरण-रज्ज्वी पूजा करके मैंने सब कुछ प्राप्त किया ॥ ३ ॥

जब भमिकाय पृष्ठ मन ओरें । पुनि प्रभु सब अनुग्रह ओरें ॥

मुनि प्रभु कहि कह्य सबेह । जेह कोन रक्षासु देह ॥ ४ ॥

अब मेरे मनमें एक ही अभिलाषा है । हे नाथ । वह भी आपहीके अनुग्रहसे पूरी होगी । राजाका सहा प्रेम देखकर मुनिने प्रणम होकर कहा—जोष । बाधा दीजिये (कहिये, क्या अभिलाषा है ?) ॥ ४ ॥

दो—राजन राउर नामु कसु सब अभिमत दस्तार ।

फल अनुगामी महिय मनि मन अभिचारु सुधार ॥ १ ॥

हे राजन् । आपका नाम और वह ही सम्पूर्ण मनवासी वस्तुओंको देनेवाला है । हे राजाओंके मुकुटमणि ! आपके मनकी अभिलाषा फलान अनुगमन करती है (अपना आपके इच्छा करनेके पहले ही फल उत्पन्न हो जाता है) ॥ १ ॥

श्री०—सब विधि कृत प्रसन्न निर्मो जानी । जेहेत राउ कोसि पदु पाली ॥

नाथ राहु कहिहि उपसन् । कहिय कृपा करि करिय समाध ॥ १ ॥

अपने श्रीमं शुक्लीओ सब प्रकारसे प्रसन्न आनन्द, हर्षित होकर राजा कोमत पायीसे बोले—हे नाथ ! श्रीरामचन्द्रको सुनयन कीजिये । उपा करके कहिये (आज्ञा दीजिये) तो तैयारी की जाए ॥ १ ॥

मोहि कसु पदु होइ उपाह । कहाँ कोन सब कोन कहा ॥

प्रभु प्रभु सित सब विनयो । सब सबसक एक मन माहीं ॥ २ ॥

हैं जीते-जी वह आनन्द-उत्सव हो जाय, [मित्रों] सब लोग अपने नेत्रोंका चमक प्राप्त करें। प्रभु (आप) के प्रसन्नसे शिष्योंने सब झुल निहाइ दिया (सब इच्छापूर्वक कर दें); केवल वही एक अस्वस्थ मनमें रह गयी है ॥ २ ॥

मुनि व सोचतु रहत कि साक। जेहि न होइ पाछे पछितक ॥

मुनि मुनि दसरथ वचन सुहाए। नमक खेद मूल मन आप ॥ ३ ॥

[इत लल्लाके पूर्व हो जानेपर] फिर सोच नहीं। शरीर रहे या चल नाय, किन्तु मुझे पीछे पछाया न हो। दसरथकींके मङ्गल और आनन्दके मूल सुन्दर नवन पुनकर मुनि मनमें बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३ ॥

सुद भूष जहु विमुक्त पछितहीं। आपु मन्त्र विनु कृति न जाहीं ॥

भयत सुन्दर वचन खेद स्वामी। राहु पुनीत प्रेम अनुगामी ॥ ४ ॥

[विराजनीने कहा—] हे राक्षस! मुनिप्रेत मित्रसे विमुख होकर लोग पछताये हैं और उनके मन्त्र बिना बीबी अन्न नहीं जाती; वही स्वामी (सर्वलोकमोक्षकर) श्रीरामजी आपके पुत्र हुए हैं, जो पवित्र प्रेमके अनुगामी हैं। [श्रीरामजी विषय प्रेमके पीछे-पीछे चलेगए हैं, इसीसे तो प्रेमकर आपके पुत्र हुए हैं] ॥ ४ ॥

हो—वेगि विहङ्गु न करिअ रूप सखिअ सुदर समाधु।

सुविन सुमंषु तवहि कव राहु होहि सुवपजु ॥ ५ ॥

हे राक्षस! अब हेर न कीजिये; शीघ्र सब सामान संभारो। छत्र दिन और सुन्दर नङ्गल तभी है जब श्रीरामचन्द्रजी सुवराज हो जायें (अर्थात् उनके अभिषेकके लिये सभी दिन छत्र और मङ्गलमय हैं) ॥ ५ ॥

चौ—मुदित महीवति मंदिर आप। केवल सखि सुमंतु खेलाय ॥

कहि वरवीर सौत लिह नाय। भूष सुमंषक वचन सुनाय ॥ ६ ॥

राजा आनन्दित होकर जलमें आये और उन्होंने सेवकोंको तथा मन्त्री सुमन्त्रको बुलाया। उन लोगोंने 'वचन-श्री' कहकर फिर नवाये। सब राक्षसे सुन्दर मङ्गलमय वचन (श्रीरामजीको सुकराज-पद देनेका प्रस्ताव) सुनाये ॥ ६ ॥

✓ श्री पौष्पहि मत लगी नीकर। कहु हरि दिव्य रामहि दीकर ॥ ७ ॥

[और कहा—] यदि पंचोक्त (आम तबसे) वह मत अच्छा लगे, तो हृदयमें रहित होकर आपलोग श्रीरामचन्द्रका राजसिद्ध कीजिये— ॥ ७ ॥

मन्त्री मुदित सुकत प्रिय लखी। अभिमत विजु पैंहिं अनु पानी ॥

चिलती सखि करहि कर जोरी। विजहु अवलपति बरिस करोरी ॥ ८ ॥

इत प्रिय बाणीको सुनते ही मन्त्रीपेदे आनन्दित हुए माने उनके मनोरथपत्नी लैबिस पानी पड़ गया हो। मन्त्री हृद्य खेदकर चिलती करते हैं कि हे जगताति! आप करोही वर्ष दिव्य ॥

जय मंगल मल भल विजयत। केवल सुदु न लखन वारा ॥

नृपहि मोदु सुनि सखि सुभावा। वदत होइ जहु कही सुभावा ॥ ९ ॥

आपने कात्सर्यजनक मङ्गल करनेवाला भय नय सोचा है। हे नाथ! शीघ्रत रीतिये, हेर न लगादो। मन्त्रियोंकी सुन्दर वाणी सुनकर राजाको देख आनन्द हुआ मनो कदाही हुरं वेद सुन्दर अवीर्य छाया पा गयी हो ॥ ९ ॥

हो—कहेइ भूष सुनिराज कर जोइ ओइ आपसु होइ।

राम राज अभिषेक हित वेगि करहु सोइ सोइ ॥ १० ॥

राजाने कहा—भीरामचन्द्रके रत्नाभिषेकके लिये मुनिराज वशिष्ठजीकी कोशिश हो, जलस्रोत वही सब दूरत करे ॥ ५ ॥

बौ०—हरि मुनीस मदेव बहुत बड़ी। जगदु सबकु सुतीरव पानी ॥

औरय सब फूल फल पावे। सबे सब रवि मंगल भाग ॥ ६ ॥

मुनिराजने हर्षित होकर कोमल वाणीसे कहा कि सम्पूर्ण मेघ तीर्थोंका जल ले आओ। फिर उन्होंने सोपधि, मूल, फूल, फल और पत्र आदि अनेकों माहात्मिक वस्तुओंके नाम गिनकर बताया ॥ १ ॥

आमर ^{सुगन्ध} चरमे ^{सुगन्ध} मसक बहु गौरी। ^{सुगन्ध} चरमे ^{सुगन्ध} चरमे ^{सुगन्ध} चरमे ^{सुगन्ध} चरमे ॥

सोपधन मंगल कलु जनेक। जो सब जेसु भूप अनेरेका ॥ २ ॥

चैर, मृगचर्म, बहुत प्रकारके फल, अनेकसी जातियोंकी कली और रेणुमी कण्डे, [नामा प्रकारकी] मणियों (राज) तथा और भी बहुतसी मनुष्य-वस्तुएँ, जो कानूमें रत्नाभिषेकके योग्य होती हैं, [सबसे मैंगानेकी उन्होंने आश दी] ॥ २ ॥

वेद विहित करि सकल विधाक। कदेव रज्जु पुर विविध नितान्त ॥

सकल ^{सुगन्ध} रसायन ^{सुगन्ध} रसायन ^{सुगन्ध} रसायन ^{सुगन्ध} रसायन ^{सुगन्ध} रसायन ॥ ३ ॥

मुनिने देवोंमें कहा हुआ सब विधान बताकर कहा—अगरमें बहुतसे मन्थन (पैलोरे) बचाओ। फलोंमेंसे आम, सुपारी और केलेके रस नमकी गलियोंमें चारों ओर रोप दो ॥

रज्जु मंड मणि चौके मर। कहु ^{सुगन्ध} रसायन ^{सुगन्ध} रसायन ^{सुगन्ध} रसायन ॥

सकल ^{सुगन्ध} रसायन ^{सुगन्ध} रसायन ^{सुगन्ध} रसायन ^{सुगन्ध} रसायन ^{सुगन्ध} रसायन ॥ ४ ॥

सुन्दर मणियोंके मोहर चौक पुरखानेऔर बाजारके दूरत उगानेके लिये कहा दो। भीलोकाजी, गुब और कुलदेवताकी पूजा करो और सूर्य मङ्गलकी सब प्रकारसे सेवा करो ॥

बौ०—अब पलाक औरत कलस सबहु तुरग रथ गाए ॥ ५ ॥

सिर धरि मुनिकर वस्त्र सबु मित्र मित्र काजहि छाया ॥ ६ ॥

भजा, प्रजापति, तोरक, कलस, जोड़े, रथ और हाथी सबको बजाओ। मुनिसे षड्विंशतीके पन्नोंकी विरोधार्थ काले रंग लेन अपने-अपने सारों सब बने ॥ ६ ॥

बौ०—बो मुनीस केहि अकसु बीमर। सी रोहि कहु मरम जनु बीमर ॥

मित्र साहु सुर पूजत छल। फल राम हित मंगल करवा ॥ १ ॥

मुनीभरने जिससे जिस कामके लिये आश दी, उतने पर काम [इतनी भीमतासे कर डाल कि] मानो पड़ेसे ही कर सला था। राजा आशच, साहु और देवताओंको पूज रहे हैं और भीरामचन्द्रकी लिये सब मङ्गलार्थ कर रहे हैं ॥ १ ॥

सुगत राम अभिषेक सुहावा। राज ^{सुगन्ध} रसायन ^{सुगन्ध} रसायन ^{सुगन्ध} रसायन ॥

राम सीय लल सखु जगदु। फलहि मंगल की सुदाए ॥ २ ॥

भीरामचन्द्रनकि रत्नाभिषेककी मुद्रावनी खर मुने ही अवधमरमें वही धूलसे बपावे बतने लगे। भीरामचन्द्रजी और सीताजीके शरीरोंमें भी मृम मज्जन स्थित हुए। उतके सुन्दर मङ्गल सङ्ग पढ़ाने लगे ॥ २ ॥

पुष्पकि लोम परधर कदरी। भरत जगमजु सुख कदरी ॥

✓ मर पञ्चत दिन मणि मससेरी। सखु प्रीति मर मित्र केरी ॥ ३ ॥

पुष्पकि रत्नर ने दोनों प्रेमस्थित एक दूसरेसे कहते हैं कि वे सब बहुत मरते जानेकी वचना देनेवाले हैं। [उनको समझे पर बने] बहुत दिन तो गये, रत्न ही

बावरे जा रही है (बार-बार उनसे मिलनेकी मनमें जाती है) शकुनीसे प्रिय (भरत) के मित्रके विवाह होता है ॥ ३ ॥

बल्लभ सखि प्रिय को जब माहीं । इहहु सुगुन फल दूसर नाही ॥ ३ ॥

शमदि बंधु सोच दिख रही । कंधमिह कमिह इहउ बेहि भौंती ॥ ४ ॥

और भरतके समान जगमें [हमें] कौन प्यारा है । शकुनका बल, यही फल है; दूसरा नहीं । श्रीरामचन्द्रजीको [अपने] माई भरतज दैन-पत देखा सोच रहता है जैसा कछुएका इन्तज कंधोंमें रहता है ॥ ४ ॥

श्री०—एहि अवसर मंगलु परम सुनि रहैसेउ रनिवासु ।

सोमल लखि बिषु वदत जनु वरिधि वीचि विवासु ॥ ७ ॥

इसी समय यह परम भक्त समचार सुनकर सगु रनिवास हर्षित हो उठा । जैसे चन्द्रमाके बढ़ते देखकर समुद्रमें ज्वरोंका विकास (आनन्द) सुशोभित होता है ॥ ७ ॥

श्री०—अयम जाह जिह बचन सुनइ । बचन समन भुरि लिखै ॥ ८ ॥

प्रैम पुलकि लय मन जलुगौं । संगल कलस समन लव कारी ॥ ९ ॥

उन्हे पहले [रनिवासमें] जाकर लिखेंगे ये वचन (समचार) सुनये, उन्होंने बहुत-से आभूषण और कल पाये । रनिवास शरीर प्रेमसे पुलकित हो उठा और मन प्रेममें मग्न हो गया । ये सब महत्त्वका सवाने लगीं ॥ ९ ॥

श्री०—जाह सुनिजौं एहि । नविमय विविध भौंति जति करी ॥

आनंद समन सम भइलरी । दिए लव बहु किज हैलरी ॥ १० ॥

सुमित्राजीसे, मणियों (रत्नों) के बहुत प्रकारके अत्यन्त सुन्दर और मनोहर चौक पुरे । आनन्दमें सगु हुई श्रीरामचन्द्रजीकी भावा श्रीरामचन्द्रजीने माझमौंको सुखपर बहुत बात लिखे ॥

एही प्रमदेवि सुन गला । कहेउ ह्योरि देव बलिभाया ॥ ११ ॥

कैहि विधि होइ राम कवकन । हेतु ह्यार करी सो बरदाइ ॥ १२ ॥

उन्होंने प्रमदेवियों, देवताओं और नायकों पूज की और फिर बलि भेंट देनेको कहा (सर्वात् सर्व सिद्ध होनेपर फिर पूजा करनेकी मनोसी मानी) ; और प्रार्थना की कि किम प्रकारसे श्रीरामचन्द्रजीका कल्याण हो, दया करके यही बरदान दीजिये ॥ १२ ॥

वायडि बंगल कोकिबनयनी । विधुवनीं लयसकलपथी ॥ १३ ॥

कौशल्याजी-सी मीठी भाषीवाली, पल्लवके समान सुलभासी और दिवजके बच्चेके-से मेधावासी लियों महत्त्वगान करने लगीं ॥ १३ ॥

श्री०—राम राजा अभियेकु सुनि हियै हरये भर मारि ।

लगे सुमंगल सज्जन सब विधि मनुकूल विचारि ॥ ८ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका राज्याभिके सुनकर लगी ली-पुष्य इत्यर्थमें हर्षित हो उठे और विधाताके अपने अनुकूल समस्तकर सब सुन्दर महत्त्व-साव सचने लगे ॥ ८ ॥

श्री०—सब नरवाहै बलिहु बेलम् । लय धाम तिल देव पदाए ॥

लल आगमसु सुदत राखल । हर ग्यह लल जवड माया ॥ १४ ॥

तब राजाने बलिहारीको सुझाया और शिक्षा (समर्पित उपदेश) देनेके लिये श्रीरामचन्द्रजीके महत्त्वमें भेजा । सुझा जागमन सुनते ही श्रीरामचन्द्रजीने दरशकेर आकर उनके चरणोंमें महत्त्व नमना ॥ १४ ॥

सादर जल देह भर जने । सोनल भौंति पूजि सनमाने ॥

महे जल सिय खीट वयोरी । खेके लय कमल भर कोरी ॥ १५ ॥

दो०—तेहि सबसर आप सबस प्रभव प्रेम आनंद ।
सबमाने प्रिय वचन कहिं रघुपुत्र फेरवचंद ॥ १० ॥
उही समर प्रेम और आनंदमें सब जंझनबी जाये । रघुपुत्रकी कुमुदके
हिलनेवाले चन्द्रमा श्रीरामचन्द्रजीने प्रिय वचन कहकर उनका सम्मान किया ॥ १० ॥

चौ०—बाबाहिं पावने विविध विधान । पुत्र प्रसोदु महीं जाइ बखान ॥
भक्त भाग्यसु सकल सखबाहिं । आवहुं बेगि जनन फलु पावाहिं ॥ १ ॥
बहुत प्रकारके जात्रे बन रहे हैं । नगरके अविषय आनन्दका सर्जन नहीं हो सकता ।
तब लोग भरतजीका ध्यानमान बना रहे हैं, और कह रहे हैं कि वे भी वीर आर्जुन और
[राम्यापिरोऊ ठाऊन देखकर] नेत्रोंका फल प्राप्त करें ॥ १ ॥

हाट फाट कर नहीं आवाह । सबहिं परस्पर लोग लोभाई ॥
कहिं काल अकि बेतक बाट । पूजिहि विधि अधिकजगु हमारा ॥ २ ॥
पाकार, पाले, फल, मली और चमूतोर (ज्यो-शर्तों) पुष्प और छी आनसों
रही करते हैं कि कब कब पुत्र जग (सुख) मिलने समय है, जब विधाता हमारी
भूमिकाया पूरी करेगा ॥ २ ॥

कलक सिंहासन सीप समेत । बैसिं रघु होइ जितु बैस ॥
सकल कहहिं कब होहिं कबौ । निधन मवाबहिं देव कुलको ॥ ३ ॥
जब सीताजीसहित श्रीरामचन्द्रजी कुलकी सिंहासनपर विराजेंगे और हमारा मनचीता
होगा (भगवान्माया पूरी होगी) । इधर तो सब कह कह रहे हैं कि कब कब होगा,
उपर कुलकी देवता विधन बना रहे हैं ॥ ३ ॥

जिन्हहिं सोहाइ न मगव बधावा । सीरहिं बनेवि सति न मगवा ॥
साराव बोकि विनय सुर कह्यो । जराहिं बार बार है बरही ॥ ४ ॥
उन्हें (देवताओंको) अन्धकारे वषाये नहीं मुराये, जैसे चोरको चोरीनी रात नहीं
भायी । सरलवादीकी कुलकर देवता विनय कर रहे हैं और बार-बार उनके पैरोंको
गद्गद्कर उनपर गिरते हैं ॥ ४ ॥

दो०—विपति हमारि सिरोकि बकि सातु करिअ सोइ आहु ।
रघु जाहिं कब राहु तबि होइ सकल सुरकाहु ॥ ११ ॥
[वे कहते हैं—] हे माता ! हमारी वक्ती विपत्तिको देखकर आज परी कीजिये जिससे
श्रीरामचन्द्रजी राज्य प्राप्तकर जनको बड़े सार्व और देवताओंका सब कार्य सिद्ध हो ॥ ११ ॥

चौ०—सुनि सुनि विनय अकि पतिजखी । सबैं सयोग विपिच हिमराती ॥
देवि देव पुनि कहहिं निहोरी । ब्याह जोहि नहिं भोरेल कोरी ॥ १ ॥
देवताओंकी किन्ती कुलकर परलकीकी लखी-लखी फलत रही हैं कि [शाय !]
मैं कमलजनके लिये हेमन्त आहुती रक्त दुर्ग । उन्हें इस प्रकार फलताये देवता देवता
पित विनय करते कहते द्यो—हे माता ! इसमें ब्रह्मको क्या भी दोष न भरोगा ॥ १ ॥

विपति सुनि बरष रहित रघुपुत्र । सुन्द ब्याह सब राम प्रसन्न ॥
गौन कनन बस सुख दुख समी । ब्याह ब्याह देव दिव समी ॥ २ ॥
भीरुनाथकी विवाद और हर्षित रहित हैं ! जब तो श्रीरामजीके सब प्रभावको
मानती ही हैं । जीव भाग्ये कर्मका ही सुख-दुःख समी होता है । अतएव देवताओंके
दितके लिये भार अपोष्य आदये ॥ २ ॥

॥ ११ ॥ बार बार यहि चम सँझेनी । चली निचरि विरुध मति होनी ॥ ११ ॥

कैव. निवासु नीचि कसली । देखि न सकहि बरह किमती ॥ ११ ॥

बार-बार चरण पदचर देवताओंने सरस्वतीके संश्लेषमें गड़ दिया । उन वह यह विचारकर चली कि देवताओंकी बुद्धि ओली है । इसका निरास हो बैठा है, पर हमली करनी नीची है । वे दूसरेका ऐश्वर्य नहीं देख सकते ॥ ११ ॥

आगि कसु निचरि गहरी । अरिहि चाह कुसल बनि सोरी ॥

हरि हृदयें एसावपुर कहे । ननु यह दख सुख दुखदार् ॥ ११ ॥

परन्तु आगेके कामका निचार करके (श्रीरामजीके कम जबसे राजसीका वध होगा, बिसेछाया जगह सुखी हो जायगा) चतुर कवि [श्रीरामजीके कमसले परिश्रोक वर्ण करनेके लिये] मेरी चाह (कामना) करेगे । देख निचाकर सरस्वती हृदयमें हँसि होकर शरपत्नीकी पुत्री अयोध्यामें आई । मानो दुःख दुःख देनेवाली कोई प्रहृष्टा आयी हो ॥ दो०—नामु मंधरा मंदमति खेरी कैसा केरि ।

असल पैठारी लहि करि गई गिर मति केरि ॥ १२ ॥

मन्धरा नामकी कैकेयीकी एक मन्त्रबुद्धि दासी थी । उसे अक्कासी पिढारी बनाकर सरस्वती उसकी बुद्धिके फेरफर चली गयी ॥ १२ ॥

चौ०—नील मंधरा जगद बन्धरा । मंडल मंगल काल बन्धरा ॥

पूछेसि कोणह कहा उछह । राम छिछु सुनि भा उर दाह ॥ १२ ॥

मन्धराने देखा कि नगर लबाया हुआ है । सुन्दर मङ्गलमय बधाये बर रहे हैं । उसने लगेगते पूछा कि कैसा उत्पन्न है ? [उसके] श्रीरामचन्द्रजीके राजनिर्वाहकी बात सुनते ही उसका हृदय जल उठा ॥ १२ ॥

कहा निचास कुडिह कुचली । होइ समनु कनि विधि लली ॥

देसि छागि मधु कुटिल सिनली । विमि नयें लह केरें केरि भीली ॥ १३ ॥

वह बुझि, नीच नातिवासी दासी विचार करने लगी कि किन प्रकारसे दर काम गलती-सालमें मिगल जब, जैसे कोई कुटिल मीनजी शहरका छपा छपा देखकर बात लगाती है कि इसको किस लक्ष्ये उछाह है ॥ १३ ॥

असल मधु पदि गह निरुजानी । क नमस्ति इसि पद होसि गरी ॥

कलव देह न छेह उछाम । नहि जल्य करि छन्द मय ॥ १३ ॥

वह उदास होकर भरतजीकी माछ कैकेयीके पास गयी । रानी कैकेयीने देवदर कहा—तु उदास क्यों है ? मन्धरा कुछ उत्तर नहीं देखे, केवल लगी लौंछे रही है और निराचरित करके औस दरका खी है ॥ १३ ॥

इसि कह रनि गाछे बज तोरे । होइ लखन सिख बस मन मोरे ॥

१३ ॥ न मोर वेरि कछि पाणिनि । छदइ खास करि बलु लपिनि ॥ १४ ॥

रानी हँसकर कहने लगी कि तूने बड़े गलत है (तू बहुत बड़-बड़कर बोलनेवाली है) । मेरा मन बड़ा है कि लखनने तुझे कुछ लीज दी है (देण्ड दिया है) । तब भी तू मंहपाणिनी दासी कुछ भी नहीं बोलती । ऐसी लयी लौंछ छोड़ दे ॥ मानो कल पाणिन [फुफ्फुस छोड़ रही] हो ॥ १४ ॥

दो०—समय रनि कह कहसि किन कुसल रामु मदिशानु ।

लखनु भरतु रिपुवमनु सुनि भा कुचरी उर छानु ॥ १४ ॥

वह रानीने इसका बड़ा—अरी ! कही क्यों नहीं ? श्रीरामचन्द्र, राम-मन्धरा,

भरत और सुगुण कुशलो दोहैं। यह सुनकर कुन्ती मरपके हृदयमें बड़ी ही पीड़ा हुई ॥१२॥

जो सुगुण सिल देह हमहि ज्येष्ठ माई। मातु नरन केहि कर बहू पार्इ ॥

रामहि छवि हृदय केहि आवै। जेहि बनेसु देह सुवराय ॥ १॥ २॥

[वह कहने लगी—] हे माई! हमें कोई नवीं सीस देना और मैं किसका बेटा पालूँ गालूँ करूँगी (बद-यदकर बोलेगी)! रामचन्द्रको छोड़कर आज और किसी कुशल है, जिसे राजा सुगुण-नर दे रहे है! ॥ १ ॥

मयट कौखिलि निशि सनि द्योहिष। देखात गनब रहत उर आदिन ॥

देखातु कस न जाइ सब सोमा। जो अवलोकि मोर मनु छेभा ॥ २ ॥

आज कैयल्याने पिपाता बहुत ही राहिन (अनुकूल) हुए हैं। यह देखकर इनके हृदयमें गर्व समझा नहीं। तुम स्वयं सागर का गोमा क्यों नहीं देख लेती, जिसे देखकर मैं मनमें छेप हुआ है ॥ २ ॥

एतु पिरेस न सोखु सुहारैं। जाकहि हनु मस मातु हमारैं ॥

भीष बहुत शिव सेव सुहाई। कलहु न रूप करत चहाराई ॥ ३ ॥

तुम्हारा पुत्र परदेशमें है, तुम्हें कुछ खेच नहीं। जानती हो कि स्वामी हमारे घरमें है। तुम्हें तो सोझ-पठानकर पड़े-पड़े नॉद लेना ही बहुत पसन्दा करता है। हावाकी कपटभरी चहुरार तुम नहीं देखती ॥ ३ ॥

सुनि शिव वचन मखिन मनु कानी। सुनि सब सु भगानी ॥

सुनि भस बहोई कदमि घरकोरी। तब चरि भीष कल्पवै सोरी ॥ ४ ॥

मरपके प्रिय वचन सुनकर किन्तु उसको मनकी मैत्री जानकर रानी कृष्णर (बॉटकर) बोली—अब, अब चुप रह पराकोपी करीबी! जो फिर कभी देवा कहा, तो तेरी भीम पकड़कर निकलवा दूँगी ॥ ४ ॥

रो०—काने खोरे कूरे कुटिल कुचाकी जानि।

✓ तिष थिसेदि पुनि जेरि कहि भरत मातु सुभुकाणि ॥ १४ ॥

कानों, लँगों और कुबड़ोंको कुटिल और कुचली जानना चाहिये। उनमें भी श्री और सागर रानी। इतना कहकर भरतजीकी भावा कैकेयी मुसकरायी ॥ १४ ॥

पौ०—त्रिपदादिनि सिल दीगिद्वै तोही। लपेटै सो पर कोय न मोही ॥

सुदिउ दुर्गमक शयकु सोई। तोर कहर केहि विष ॥ १५ ॥

[और फिर बोली—] हे प्रिय वचन कहनेवाली मन्वरा! मैंने तुझको यह चीज दी है (मिश्राके लिये इतनी बात कही है)। मुझे तुझपर सच्चाई भी ज्ञेय नहीं है। दुन्दर महलवाक्य गुप्त दिन पड़ी होगा जिस दिन तेरा कहना सब होष (अर्थात् श्रीपम्मा राजनितक होगा) ॥ १५ ॥

केड सध्या सेवत कहु माई। वह दिनकर कुल खेति सुहाई ॥

एत तिलकु नी सोचैई काली। देवै मातु मन मास्त काली ॥ २ ॥

बका भार स्वामी और जोया माई मेक होता है। यह सर्वव्यापी प्रधानी रीति ही है। यदि सचमुच कल ही श्रीपम्मा विष्णु है, ता है लखी! तेरे मनको अच्छी ओं बड़ी बहुत मांग के, मैं दूँगी ॥ २ ॥

कौसल्या सम सब भगवती। सप्रति सदा सुगुणमें पिपाती ॥

जो पर कहि सनेहु थिसेकी। मैं करि प्रीति परीय देखी ॥ ३ ॥

रामकी सदन समाकते जल मत्तरे कोकिलके समान ही प्यारी हैं। मुझपर तो वे विशेष प्रेम करते हैं। मैंने उनकी पीठिपुष्टि करके देन भी है ॥ २ ॥

औ बिभि जन्म देह करि छोड़ें। सोई कम सिख पुन पुतेहु ॥

मान तें अधिक राखु प्रिय मोरें। विन्दु के तिलके छोड़ु कंस तोरें ॥ ४ ॥

जो विधाता रूप करके जन्म दें, तो [यह भी दें कि] श्रीरामचन्द्र पुत्र और सीता बहुत हैं। श्रीराम मुझे प्रार्थित भी अधिक प्रिय हैं। उनके तिलकसे (उनके तिलककी बात सुनकर) तुमसे खोम कैसा ? ॥ ४ ॥

श्री०—भारत सपर्य तोहि सत्व कह परिहरि कष्ट डुराह ॥ १३ ॥

हरप समय विसमठ करसि कारण मोहि सुनाउ ॥ १५ ॥

तुमसे भारतकी योग्य है, सब-काम छोड़कर सब-सब कह। १३ इसके समय विषय कर रही है। तुमसे इसके कारण सुना ॥ १५ ॥

श्री०—कहि बार जल सज दूजी। नर नरु नरु वीर करि दूजी ॥ १६ ॥

श्री०—श्री० कयाव जगजग। भवेउ कय दुख खरेदि काय ॥ १७ ॥

[मन्थराने कहा—] लारी आसारे तो एक ही बार कलमें पूरी हो गयीं। अब तो दूसरी जीम आकर कुछ कहेंगी। मेरा अमरगा कल तो छोड़ने ही योग्य है, जो अच्छी बात कहनेपर भी आकर कुछ होता है ॥ १८ ॥

कहि कहि पुनि कृपु भूत। वे प्रिय इन्हें कृपु मैं माई ॥ १९ ॥

हमई कहि भल देकुलीदारी। कहि व मौव रहम दिख राती ॥ २० ॥

जो हठी-उछी बातें बनाकर कहते हैं। हे माई। वे ही इन्हें प्रिय हैं, और मैं कभी जाती हूँ। कल मैं भी उकुलहारी (हँसदेसी) ब्या कहती। तभी तो विन-पत सुन रहूँगी ॥ २१ ॥

करि कृपम विधि देखि कोन्हा। क्या सो सुनिम कहि नो सुनिहा ॥ २२ ॥

कोउ दुर होउ हमदि का होय। बेरि कयि न होय कि राती ॥ २३ ॥

विधाताने कृपम बनाकर तुमसे परमा कर दिया। [लरीको कहा दोर] जो बोया सो काटती हूँ, दिया सो पाती हूँ। कोई भी रागा हो, हमारी क्या शक्ति है। दासी छोड़कर क्या अग मैं रागी होऊँगी ! (अर्थात् रागी तो होनेसे थी) ॥ २४ ॥

श्री०—नरु नरु सुमाउ हयस। अयक देखि न जाइ दुम्हास ॥ २५ ॥

काले ककु कल जगुसरी। जनिम देखि कयि पूर हमारी ॥ २६ ॥

हमारा समान तो जगने ही योग्य है। कलेंकि सुम्हाय जलित मुससे देना नहीं जाता। श्रीलक्ष्मिने कुछ बात पसली थी। किन्तु हे देखि। हमारी वही सूख दूर, बना करो ॥ २७ ॥

श्री०—गुल कष्ट प्रिय नचन सुनि खीब जगजगुनि राति ॥ २८ ॥

सुदमाया नल वैरिनिहि सुदय जावि पतिमनि ॥ २९ ॥

श्री०—पारहित (अखिर) बुद्धि की और देवताओंकी यात्राके कलमें होनेके कारण रहस्युक्त जगदमरे प्रिय कचनोंके सुनकर रात्री हीकेलीने वैरिन मन्थरको अपनी सुदय (गौदय दित करनेवाली) बनाकर उत्तर निधात कर लिया ॥ ३० ॥

श्री०—साधर पुनि पुनि देवुनि छोड़ें। सबरी कय दूजी नरु मोरी ॥ ३१ ॥

कसि मति निरी नरुदर जसि मावी। रहती बेरि वात नरु पावी ॥ ३२ ॥

बार-बार रात्री उठते जादरके सब पूर रही है। जानो नीकरीके गाने कीली

सोहि हो गयी हो। नैनी गावी (होन्तर) है, वैसी ही बुद्धि भी मिल गयी। दासी अपना दौब लगा जलकर हर्षित हुई ॥ २ ॥

तुम पूछतु मैं कहत होसई। धोखे सोर धरखेरी नाई ॥
सति प्रतीति कहुनि यहि सोली। अथ सख्यगो लख बोली ॥ २ ॥

तुम पूछती हो, किन्तु मैं कहते डरती हूँ। क्योंकि तुमने पहले ही मेरा नाम धर-
खेरी रख दिया है। बहुत तरहसे गढ़-बोझकर, खूब बिसाव जमाकर, एवं वह
भवोन्मादी सादरगो (शनिनी सहे जल चरकी दवाकसी मंत्र) बोली ॥ २ ॥

प्रिय प्रिय सखु कहा तुम्ह सबी। समझि तुम्ह प्रिय सो पुरि घानी ॥

रह्य प्रथम जब ते दिन बीते। समझ किन्हें रिपु होहि पिरिते ॥ ३ ॥

हे रानी! तुमने जो कहा कि मुझे सीता-राम प्रिय है और रामको तुम प्रिय हो,
जो वह बात सच है। परन्तु वह बात पहले थी, वे दिन अब बीत गये। समय मिल
जानेपर प्रिय भी शत्रु हो जाते हैं ॥ ३ ॥

मनु कसक कुल पोरगिहाय। रिपु अरु भारि करइ सोह छात ॥ ४ ॥

अति कुनारी यह स्वैरि उचारी। कँपतु करि कपट करु भारी ॥ ४ ॥

तुम कसकके कुलका फलन करनेवाली है। ऐसी बिना अन्ते गयी दुर्ग उनको
(कमलको) लगाकर भस्म कर देता है। सीत कौसल्या दुम्हारी बड़ उजाड़ना चाहती
है। अतः उपावसी बड़े बाड़ (वेप) लगाकर उसे रेंव दो (दुरहित कर दो) ॥ ४ ॥

दो—तुम्हदि न सोखु सोहाग बल निख कस आवहु राउ ॥

मन मलीन मुह मीठ नपु राउर सरल सुभाउ ॥ १७ ॥ ५ ॥

तुम्हको अपने सुहागके [छटे] कसम दुष्ट भी सोच नहीं है। राजाको अपने
रामे जानती हो। किन्तु राजा अपने मेले और मुँहके पीछे है। और बाक्य सीक
समाप्त है (आम कष्ट-खटवम अन्तरी ही नहीं) ॥ १७ ॥

चौ—बहुर सँधीर राम महुचारी। कँपु पद विज कप सँघारी ॥

कपट बहुर मूप नमिलदरें। समभाउ मत आवव रहुरें ॥ १८ ॥

रामगी भावा (कौसल्या) बड़ी चतुर और गम्भीर है (उत्तरी-बाहू कोई गरी
पाता)। उलने मौका पाकर अपनी बात बना ली। राजाके जो भयको ननिहाल सेन
विषा, बलन भाव प्रप, रामकी मायाकी ही सखह समझिये ॥ १८ ॥

सैवि सखल सैवि सीदि वीरै। गच्छि भरकभतु बल पूरि कै ॥

साह दुन्हर कौसलदि आई। कष्ट चहुर मई होइ जगई ॥ १९ ॥

[कौसल्या समझती है कि] और सब खेने जो मेरी अच्छी तरह सेवा करती है।
एक भयली मैं पतिके कलम गच्छि रहती है। हसीते है आई। कौसल्याको तुम बहुत ही
साध (सजक) रही हो। किन्तु वह कष्ट करनेमें चतुर है, अतः उसके हृदयका
भाव जाननेमें नहीं आता (वह उसे चतुरावसे छिपाने लगी है) ॥ १९ ॥

एज्जि तुम्ह ॥ २० ॥ मेनु भिसेरी। सखि सुभाउ कष्ट यहि देखी ॥

एज्जि प्रपु सुबहि कौसलदि। राम शिखर विज कसम भयई ॥ २१ ॥

राजाका तुममें विशेष प्रेम है। कौसल्या सीतके स्वभावके उसे देख नहीं सकती।
इसीलिये उसने जल रत्नर, राजाको अपने वधमें करके, [मलकी अनुपस्थितिमें]
रामके राजविरुद्धके लिखे जा निमन कर दिया ॥ २१ ॥

यह कुछ उचित समझें टीका । सुनहि सौहार्द मोहि सुति नोई ॥
अगिति बात समुक्ति कह मोही-^{१३५} दंड दंड छिरी सो फल मोही ॥ १३ ॥

रामको तिलक हो; यह कुछ (सुकुल) के उचित ही है और यह बात सभीको
सुहाती है; और सुने तो बहुत ही अच्छी लगती है । परन्तु सुने तो आगेकी बात विचार-
कर दर सम्यक्त है; दैव उलटकर इसका फल उठी (कौटल्या) को दे ॥ ४ ॥

दो०—एचि पचि कोटिक कुटिलमन कीन्होसि कष्ट प्रबोधु ।

कहिंसि कथा रति सबति कै जेहि विधि बह बिरोधु ॥ १८ ॥

इस तरह करोहों कुटिलमनकी बातें मद्-छोकर मनपरने कैकेयीको उल्लासीका
समझा दिया और सबको सौतेली ज्ञानियों इस प्रकार [बना-बनाकर] कहीं बिच
प्रकार विरोध भवे ॥ १८ ॥

चौ०—मौरी-^{१३६} प्रतीति कर आई । रूख एहि पुनि लपट देवाई ॥

का रूख तुम्ह अबाधुं ब काग । मित्र हितमनहिटपमुपदिशाय ॥ १ ॥

होनहारवचन कैकेयीके मनमें सिखात हो गया । एनी फिर तैराप दिखकर पूछने
लगी । [मन्तरा बोली—] बह पूछती हो ? अरे तुमने सब भी नहीं समझा ? अपने भस्मे-
हरेकी (अथवा मित्र-बापकी) तो पक्ष भी पहचान लेते हैं ॥ १ ॥

अथ पालु दिव सकल समरः तुम्ह पाई मुनि नोहि सन आरु ॥

काकम परिनिम राज तुम्हारे । सब कोई नाहि दीखु हमारे ॥ २ ॥

पूरा पल्लवाका बीत गया समस्त सजते और तुमने खबर पायी है आज सुनते ।

मैं तुम्हारे राजमें छाती-पहनती हूँ, इसलिये सब करनेमें मुझे कोई दोष नहीं है ॥ २ ॥

औ अलस कपु कहव कहाई । तो विधि देहहि हमहि सजाई ॥

रामहि तिलक कलि औ भयक । तुम्ह कहुं विमति बीहविधि बपक ॥ १ ॥

यदि मैं कुछ बनाकर छड़ करती होऊँगी तो विप्रास भूमे रुप देया । यदि का रामको
एकलिक हो गया तो [समझ रखना कि] तुम्हारे लिये विधतानि विचलित कीजें दो दिया ॥ १ ॥

ऐक लौचाइ कहैं कहु भागी । भूमिनि भयु दूब कह भागी ॥

औ सुत सहित करु ऐकजाई । लौ-^{१३७} पर रहत ब आष कजाई ॥ ४ ॥

मैं यह बात अभीर पॉकर कपूरक बदती हूँ, हे भागिनी ! तुम से अप दुबकी
मक्की हो गयी । (वैते दूधमें पड़ी हुई भस्मीको लोग निरालकर छेक ॥ ॥ हैं; वैते ही

तुम्हें भी लोग परते निकाल बाहर करे) ओ. पुनरहित [कौटल्याकी] पाकरी
बजाओगी, तो परमें रह सकोगी; [अन्या करने रहनेका] दूसरा उपाय नहीं ॥ ४ ॥

दो०—कहूँ जिनतहि बनिह-^{१३८} दुख तुम्हहि कौसिल्य देव ।

मरतु बंदिगुह सेहहि लखनु राम के सेव ॥ १९ ॥

कहने जिनताफी दुख दिख या; तुम्हें कौटल्या देवी । मरत कारगारका सेव
करे (केवली हवा जाये) और लक्ष्मण रामके नाव (राक्षसी) होगे ॥ १९ ॥

चौ०—कैकयसुतो सुनत यह पायी । कदि न समर कहु लखसि सुखानी ॥

सम फलै कपुली जिनि कौरी । कुनहीं दसन जीव तब पौरी ॥ १ ॥

कैकेयी मन्तराकी कदवी वाली सुनते ही डरकर लल गयी, कुछ पोक नहीं सकती ।

शरीरमें पसीना हो आता और वह केलेकी तरह काँपने लगी । तब कुनरी (मन्तरा) ने अपनी
श्रीम दंतो-कले दशानी (उसे मग हुवा कि कहीं मयिष्कल बलकत डपकता चित्र सुनकर
कैकेयीके हृदयकी गति न कह जान; जिसके उल्लास कार कम ही रिगद जग) ॥ १ ॥

बहिं कहि कोउछि फट फटाही । भीसु बहुत प्रबोधिनि रानी ॥

फिर कछु त्रिष खानि दुखाली । बरिहि छसहइ मनि मरली ॥ २ ॥

फिर फटकी करोबैं जहानियाँ बह-बहकर उठने रानीको खूब ममझाया कि
वीरज रामो ! कैकेयीका भाव फट गया, उसे कुच्छाह प्यारी लगी । वह रगुनीको
इतिनी मानकर (वैरिनको हित जानकर) उसकी सराहना करने लगी ॥ २ ॥

ममझाया बात फिर तोरी । इहिनि औंछि भित करकद मोरी ॥

दिब प्रति देउठे रुदि कुसमने । कहे न तोहि मोहवस जवने ॥ ३ ॥

कैकेयीने कहा—मन्यरा ! तुम, तेरी बात समझ । येरी दाहिनी ओंछ नित्य पाइका
करती है । मैं प्रतिदिन रातको घुंरे स्नान देसती हूँ । किन्तु अपने मननवश दुखसे कहती नहीं ॥

फरद करौ सकि सुख सुखस । रहिभं काम न जानई कस ॥ ४ ॥

छली ! क्या कहूँ, मेरा तो सीधा समझ है । मैं रायों-मामों कुछ भी नहीं जानती ॥

दो—भयमें खलत न भाहु लरि गलभल काहुक बनिह ॥

बोहिं पब एकदि बार मोदि दैर्ष दुसह दुखु दीन्ह ॥ २० ॥

भयनी चले (जहाँतक प्रेयु कम चले) मैंने आकतक कनी किलिख दुप नहीं
किया । फिर न जाने किन अपने देखने मुझे एक ही माय वह दुःसह दुःख दिया ॥ २० ॥

बो—बहुत जलस मरुत कहु मोहि । बिभल न करहि सवति सेवकाई ॥

आकरि बस बैठ निजबल काही । मरुत शोक बेदि जीवन काही ॥ १ ॥

मैंने मने ही नैहर काफर नहीं जीवन फिट दूंगे । पर जोड़े-जोड़े तकली चाकरी नहीं करूँगी ।

मैंने नितको मरुते कष्टमें रखकर बिबल है, उसके लिये तो जीनेकी अपेक्षा मरना ही अच्छा है ॥ १ ॥

वीर पवन कह मुकुषि रानी । सुनि कुसरी तिमनाया करी ॥

जस कप कहु मरिग मन जगु । सुख सोदगु दुख कहू दिन दूख ॥ २ ॥

रानीने बहुत प्रसन्नके टीन पवन प्ये । उन्हें सुनकर कुसरीने मियाकरीन पैसाया ।

[वह बोली—] तुम समझें न्यानि मानकर ऐसा तरी क्यूँ रही हो ? दुम्हार दुख-सुख

दिन-दिन पुनः दोगा ॥ २ ॥

बोहिं गउर अकि अनमल राफ । सोह दहदि बहु कहु परिपाका ॥

कप से कुलत दुख मैं खासिनि । सुख न कसल नीद न खासिनि ॥ ३ ॥

बिजने दुम्हारी दुखई चाही है, कही परिणाममें वह (दुखई-रूप) फल पवेली ।

हे खासिनि ! मैंने जससे वह कुफल बना है, उसके मुझे न तो दिनमें कुछ सुख लगती है

और न रातमें नींद ही आती है ॥ ३ ॥

उठे गुनिर से तिन बोली । मरुत सुधात होहिं वह सौची ॥

आसिनि कहु न कही उषात । है सुधरी सेव बस राक ॥ ४ ॥

मैंने जोबिपिबोले पूछा, तो उन्होंने सेवा खींचकर (गक्ति करके अपना निश्चय-
पूर्ण) कहा कि मरत उठा होगी, यह खल बात है । हे खासिनि ! तुम करो, तो उषात

मैं बताऊँ । राजा दुम्हारी सेवाके कसमें हैं ही ॥ ४ ॥

दो—परहैं कूप तुम खल पर सकई पूव पति त्यागि ।

कलसि मोर दुखु देखि कहु कस न करव हित लरि ॥ २१ ॥

[कैकेयीने कहा—] मैं तो करवते कुपेँ फिर सकती हूँ, पुत्र और पतिको भी

ओढ़ सकती हूँ । वह वूँ मेरा वड़ा मारी दुख देखकर कुछ कहती है, तो मज्जा मैं अपने

चित्तके लिये उसे क्यों न करूँगी ! ॥ २१ ॥

चौ०—कुम्हारों करि कतली कैरई । कपट सुरी घर पाहल देखै ॥

कपट न राखि निकट दुखु कैरई । कपट हरित तिल बलिपुत्रु कैरई ॥ १ ॥

कुम्हरीने कैकेयीको [सब तरफसे] कनूल करताकर (यर्षाई बलिपुत्र बनाकर)
कपटरूप सुरीको अपने [कठोर] हृदयकली पराएल देखा (उधकी धारको तेज किया) ।
रानी कैकेयी अपने निकटके (सीम जानेकले) कुम्हारको कैरे नहीं देखती, जैसे बलिका
कपट हरी-हरी पास चरता है [पर वह नहीं जानता कि गीत सिपर नाच रही है] ॥ १ ॥

सुनत बात यह सुनू जंतु, कयोरी । देखि मनुहुं मनु भावुर कयोरी ॥ १ ॥

कहइ बेरि सुनि औहुं कि नाही । सामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं ॥ २ ॥

मन्थराकी बातें सुननेमें तो ओमल हैं, पर परिणाममें कठोर (भयानक) हैं ।
भाजो वह शहरमें घोलकर नहर खिज रही हो । राखी कली है—हे सामिनि ! तुमने
मुझको एक कथा कही थी, उसकी कह दे कि नहीं ! ॥ २ ॥

हुइ बरवान सुए सब जाती । मागहु अन्ध ^{२११} दुखानहु जाती ॥

सुतहि राखु जगहि बनबाहु । देखु केहु सब सिकरि दुकाहु ॥ १ ॥

तुम्हारे दो बरदान राजाके पास करोहुर हैं । आन उन्हें राखते मोंगकर भगनी छावी
बंदी करो । पुत्रको राज्य और रामको पनबात दो और गीतकसरात आजन्म दुख छे लो ॥ १ ॥

सुपति राम सनम सब कर्त । सब मनेहु ओहि बचतु न दहई ॥

होइ अनाहु अनाह भिसि मोल । नचतु मोर शिव मानेहु जी लें ॥ २ ॥

सब राजां राजकी सौमन खां लें, सब कर मोंगना, किसी वचन न ठकने पावे ।
आलकी राख बीच राखै, तो कम निमज जाग्या । मेरी बातको हृदयमे शिव [या माणसि
भी प्यारी] समझना ॥ २ ॥

दो०—बहु कुधातु करि फलकिनि कोहसि कोपरई जाहु ।

काहु लैबाहेरु सजग सनु सहसा जनि पतिआहु ॥ २२ ॥

पाणिनी भग्यराने बड़ी सुरी मलक्याकर कहा—कोसमनमें जाओ । सब काम बड़ी
सावधानीसे बनाना, राजापर सहसा विप्रास न कर केना (ठनकी बातोंमें न आ जाना) ॥ २२ ॥

चौ०—कुम्हारिहि राखि शत्रुशिव लाबी । कर बार बारि बुद्धि बसली ॥

लौहि कम दित न मोर संसत । यहै जल कह महसि अबात ॥ १ ॥

कुम्हरीको रानीने प्राणोंके समान शिव लगाकर बार-बार उसकी बड़ी बुद्धिका
बखान किना और बोली—शत्रुमें मेरा ऐसे समान दितकारी और कोई नहीं है । १. तुम
वही जाती हुईके निचे सहाय हुई है ॥ १ ॥

जौ बिधि पुत्र मनेरु कली । कौ ओहि कल पतुरि कली ॥

बहुनिधि येनिहि जदक देई । कोसमन कली कैरई ॥ १ ॥

यदि विधाता कल मेरा मनोरथ पूरा कर दें लो हे कली ! मैं तुझे बोलौकी पुतली
बना दूँ । ॥ प्रकार दासोंको बहुत तरहसे आदर देकर कैकेयी कोसमनमें कली गयी ॥ २ ॥

बिपति बीड कसा रहि केरी । सुई महु कुमति कैरई केरी ॥

पाइ कपट जल अन्ध ^{२१२} जल । कर दोउ ^{२१३} दुल कल परिकर ॥ २ ॥

त्रिति (कपट) बीज है, दासी वर्ण-शत्रु है, कैकेयीकी कुबुद्धि [उस बीजके
सोनेके डिबे] जमीन हो गयी । उसमें कपटकली बल कर जलुर फूट निकल्य । दोनो
नरदान उस अन्धके दो फले हैं और जन्ममें इनके दुःखकारी एक दोगा ॥ २ ॥

कोय समस्त सखि सख छोई । राखु दलत निज कुमति विगोई ॥ २० ॥
 २१ ॥ राखु नयन खेचछछ छोई । यदु छपकि जनु खब न कोई ॥ २१ ॥
 कैसी कोयन सख खब कर [संसजनने] ल रोषी । राज्य करती दुई वह
 भानी दुट दुहिने न हो गयी । राज्यल और नमरों घुसवाम मय रही है । प्र
 दुवालां कोई कुछ नहीं जानता ॥ २४ ॥

सो—प्रमुदित पुर नर नरि सब सुअहि सुमंगलवार ।

एत प्रविर्साहि एक चित्तमहि और भूप दरवार ॥ २३ ॥
 वही है आनन्दित होकर नमके सख सी-पुख शुभ मङ्गलवारके राज सख रही
 है । कोई योतर न है, कोई बाहर निजगत है; राज्यमें नहीं पीव हो रही है ॥ २३ ॥
 सो—बाकलका सुनि द्वै हरपाही । मिनि दस पाँच सय पदि जाही ॥
 नमस्तु आवरहि प्रेष पदिचयी । पूजहि कलस योन सख यानी ॥ २४ ॥
 श्रीरामचन्द्रजीके राजलला राजलिकका समाचार सुनकर दरबारें हर्षित होते हैं ।
 वे दस-पाँच मिन्नकर श्रीरामचन्द्रजीके पास आते हैं । प्रेम पदवानकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी
 उनका आदर करते हैं और क्लेशक वालीसे कुछ-भोग पूछते हैं ॥ २४ ॥

फिरहि भवन प्रिय भाषनु पाई । कत कलकर राम पकाई ॥
 खे राखीर सुनि संसार । सख सख विवाहनिहार ॥ २५ ॥
 अपने प्रिय सखा श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पकर वे आपसमें एक-दूसरेसे श्रीरामचन्द्र-
 जीकी बधाई करते हुए घर लौटते हैं और कहते हैं—संसारमें श्रीरामचन्द्रजीके समान
 शील और स्नेहको निजानेवाला योन है ॥ २५ ॥
 २६ ॥ कोई कोई सोनि करम मत भ्रमरी । तूई तूई ईशु देव यह हमरी ॥
 २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥
 मगवान-हम यही वे कि हम अपने बर्गवश समते हुए किस-किस योगिने बनने,
 बने-पदों (उल-उल योगिने) हम तो देखक हों और खेतपति श्रीरामचन्द्रजी हमारे
 खानी हैं, और यह गदा अन्तक निम जाव ॥ ३४ ॥

असं अभिप्राय कल सख नर । कैलकुल हवई अति राख ॥
 को न कुलसति पाह नख । खर व खेय नने पदपाई ॥ ३५ ॥
 नारयनवली ऐसी ही अभिलषा है । परन्तु कैलकीके हृदयमें यही अन्त ही रही है ।
 दुलसतिपावर सोन नही होख ! नीचके मने अजुअर चकसे चरुपर नहीं रह जाती ॥
 ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥
 सो—सोख समय लागत सुनु गयक खेई मेई ।
 गयतु निदुरता निज सिख अलु वरि देह खेई ॥ २५ ॥
 समवाके समय राजा दसरथ अन्तरके साथ कैलकीके मङ्गल भये । याने वायाव
 लोह ही शरीर वारपकर निमुताके पास गया हो ॥ २५ ॥

सो—कोयनवन सुनि सखदेव सख । अब वरि सख पदु न पद ॥
 २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥
 कोयनवनका नाम सुनकर राजा सहम गये । उनके मारे उनका पौव आगेको-में
 पदा । सर्व देवराज हनर निजनी शुचकोके वलर [राखीते निर्मल होकर] गयदा-
 है, और सम्पूर्ण राजादेव निजस सख देखते खते हैं ॥ २६ ॥

सो सुनि सिख सिख गयत सुपाई । देवदु अम प्रदाय बधाई ॥
 सख सुनि अति सख निजारे । ते रतिनाथ सुमन सख आरे ॥ २७ ॥

“वही राजा दशरथ खींचा मोच सुनकर सब गये । कामदेवका प्रत्यक्ष और महिमा
सो देखिये । जो विद्या, वन और उत्तमर धर्मिणी चोट अपने अङ्गोंपर सहनेवाले हैं
वे रतिनाथ कामदेवके पुष्पवाक्यते खरे गये ॥ २ ॥”

सुमुख नरेसु त्रिभु पति नवक । देखि दूख जलु प्राण नवक ॥

भूमि सख नद सोट पुनक । विदु दारि सब भुवन नका ॥ ३ ॥

राजा दहते-दहते अपनी प्यारी कैकेयीके पास गये । उसकी वशा देखकर उन्हें
बड़ा ही दुःख हुआ । कैकेयी जमीनपर पड़ी है । पुराणों कीय कथा पहले हुए है ।
हरिदेव नाना आभरणोंको उत्तरकर चुन दिया है ॥ ३ ॥

कुमतिहि कति कुपेता । अन्तर्हितानु सख अनु भानी ॥ ४ ॥

काह निरुद मुद कद सुदुखनी । प्रत्यक्ष केहि ॥ ५ ॥

उस दुर्बुद्धि कैकेयीको यह कुपेता (दुःख वेद) कैसी कम रही है, मानो माती
विषयानन्दके सूचना दे रही हो । राजा उसके पल ज्वर कोमल कापीके बोले—दे
माणप्रिये ! किसलिये रिकार्ड (हठी) हो ? ॥ ४ ॥

✓ ४—केहि हेतु पनि रिखायि परसत पानि पतिहि नेकार्य ।

मानहुँ सरोप सुवर्ण भागिमि विषम भीति निहार्य ॥ ५ ॥

दोड बासना रसना दसन धर मरम छाह्य देवार् ।

मुलसी मृपति भवतम्यता वस काम पतिहु लेवार् ।

ये रानी ! किसलिये कटी हो ? यह कहकर राजा उसे हाथसे सारा करते हैं तो
वह उसके हाथको [सडककर] हवा देती है और ऐसे देखती है मानो कोबर्न भरी हुई
नागिन मूढ़ दृष्टिसे देख रही हो । दोनों [करदानीकी] बाधनाएँ उस नागिनकी दो ओरों
हैं, और दोनों करदान दाँत हैं; वह काटनेके लिये समस्तान देस रही है । मुलसीबासनी
करते हैं कि राजा दशरथ होनहारके यहाँ होकर रहे (इस प्रकार हाथ सडकने और
नागिनकी मौति देखनेको) कामदेवकी कोड़ा ही समझ रहे हैं ।

५—बार बार कह राउ सुमुखि सुखेनवि पिकन्यमि ।

कारन मोहि सुनाइ गज्यामिमि विम कोप कर ॥ ६ ॥

राजा बार-बार कह रहे हैं—दे मुलसी ! दे सुखेनवी । दे कोकिलमयी । दे
गज्यामिनी ! मुझे अपने मोचका कारण तो तुना ॥ ६ ॥

६—अगदित चोर प्रिया केहुँ कीमदा । केहिदुख सिरकेहि जसु यह कीमदा ॥

कहुँ केहि रंकहि करी नरेख । कहुँ केहि मृपति निमलसी देख ॥ ७ ॥

हे प्रिये ! किन्तु तेरा अनिष्ट किना ? किसके दो फिर हैं ? बगरान सितको पैना
(अपने लोहको से जाना) चाहते हैं ? यह कि कौशलको राजा कर हैं ? या फिर
रानाको देखते निकल हैं ? ॥ ७ ॥

सकई तोर धरि अमल मारी । कह कीट बपुरे नर मारी ॥

जानसि मोर सुमुख प्रोह । मृदु उप ज्ञानम पद ज्ञेय ॥ ८ ॥

तेरा जानु अमर (देवता) भी हो तो मैं उसे भी मार डालूँ । वेचारे कीड़े-
मकोड़े-सरीसे नर-नारी तो चीन ही क्या हैं । हे कुन्दरि ! तू तो मेरा सम्मान जानती
ही है कि मेरा मन कदा तेरे मुखको पन्नामात्र पकरो दे ॥ ८ ॥

प्रिया प्रेम सुत सरजसु मोर । पतिव्रत प्रज सकल पद मोर ॥

“औं कहुँ कहुँ कहुँ कहुँ मोरी । गतिनि सख सख सख मोरी ॥ ९ ॥”

हे प्रिये ! मेरी प्रबल कुटुम्बी, सर्वस्व (सम्पत्ति), पुत्र, सर्वोत्तम कि मेरे प्राण भी, ये सब तेरे चरणों (अर्चन) हैं। यदि मैं तुझसे कुछ कष्ट करके कहता हूँ तो हे मामिनी ! मुझे तौ बार रामकी चौकण है ॥ ३ ॥

विहसि मातु मल मानसि बाला । भूषण सगहि मनोहर गण्ड ॥ ३ ॥

वरी हृदयी ससुखि विषं बेध् । देखि भिवा पछिहरीहि कुनेपू ॥ ४ ॥

१ हँसकर (प्रसन्नतापूर्वक) अम्मी मनचाही बात मैंने ते और अपने मनोहर अङ्गोंको आनन्दपूर्वक से उजा । मौन-मौनिक तो मैंने निवारण देव । हे प्रिये ! बन्दी इस तुरे बेपको त्याग दे ॥ ४ ॥

बो—यह सुनि मन गुनि सपथ बधि विहसि उठी मतिमद् ।

भूषण सजति विलोकि मृगु मनहुँ किरातिनि फंद ॥ ५ ॥

यह सुनकर और मैंने रामकी भी वही गौमुखसे विचारकर मन्दबुद्धि कैदकी हँसती हुई उठी और गहने पहनने लगी । मनो कोर भीलनी मृगको देखकर फंदा तैयार कर रही हो । १४

बो—सुनि कह राव मुहुर विषं बानी । प्रेम पुष्पकि मृगु मंहुल बानी ॥

मानिनि जगद गोर मनभावा । बर बर नगर अर्जद बघावा ॥ १ ॥

अपने भीम कैदकीको सुद्धर खनकर राजा दशरथकी योगसे पुष्पकि होकर फेमल और सुन्दर बाणीसे फिर बोले—हे मामिनी ! तेरा मनचीता हो गया । नगरमें बर-बर आसुनके बघावे बल रहे हैं ॥ १ ॥

रामहि हेई कथि सुकराह । सगहि मुजोबनि संकट सानू ॥

वकहि जेह सुनि हृदय बरोर । ननु हुर भयद कल बरतो ॥ २ ॥

१ मैं कह ही रामकी दुकराह-पद दे रहा हूँ । इसीसे हे सुनयनी ! तू महाल-साव सत । यह सुनते ही उल्लाह फोर हृदय-हृदय उठा (पढ़ने लगा) । मनो पता हुआ शालोक (फोका) धू गया हो ॥ २ ॥

हेसिठ धर विहसि तेहि गीह । जेर वरि विनि प्रलपि ब रोह ॥

हृदहि न मूष कपट कुराह । कोटि दुसिठ बनि गुरु पहाई ॥ ३ ॥

ऐसी भारी पीड़ाकी भी उसने हँसकर छिपा छिपा, जैसे चोरकी भी प्रकट होकर नहीं रोती (जिसे उल्लाह मेव न सुख जाव) । राजा उल्लाह कपट-चतुराईको नहीं लल रहे हैं । क्योंकि वह करोड़ों दुष्टोंकी निरोमणि गुरु सम्भवाधी पढ़ापी हुई है ॥ ३ ॥

कथि श्रीति भियुन बरवाह । नरिचरिब जलविधि भूषणह ॥ ४ ॥

कद छेहु कदह कहीरी । बीस विहसि बबब मुहु मोरी ॥ ५ ॥

वर्षा राव नीतिमें निपुण है, परन्तु विवाचरिब अथाह समुद्र है । फिर वह कपटमुक्त प्रेम बदाकर (उल्लाहे प्रेम दिलाकर) नेव और बूँद मोड़कर हँसती हुई बोली—॥ ४ ॥

बो—भानु मातु वै कदह पिब कनहुँ न देहु ब लेहु ।

वेन कहेठ परदान दुख तेव पकवत सवेहु ॥ ५ ॥

हे प्रिये ! आप माँग-माँग तो कहा करते हैं, पर देते-देते कभी कुछ भी नहीं । साले दो करदान देनेको कहा जा, उनके भी पिछेमें सनेह है ॥ ५ ॥

बो—जानेठ मसु राव हंसि कहे । कुहनि कोहल परा धिय कहई ॥

१ बाती रावि न भाविह कद । किरि कद मोहि मोर सुभाज ॥ १ ॥

१ जानने हँसकर कहा कि कब मैं तुम्हारा मन (महल) उभला ! नाम करना तुम्हें

परम प्रिय है। दुमने उन बरोंको जाती (बरोहर) रखकर फिर कभी मोंगा ही नहीं।
और मेरा भूलनेका स्वभाव होनेसे मुझे भी कद प्रसन्न भाव नहीं रहा ॥ १ ॥

सुखेहुँ हमहि दोष जानि देहु। इह कै पारि मागि मनु केहु ॥ २ ॥
सुकुल रीति सदा चिकि जाई। जान जाहुँ न क स्वस्तु न जाई ॥ २ ॥

मुझे सुठ-मूठ दोष भाव दो। चाहे दोके बदले चार मोंग लो। सुकुलसे सदाए
एह रीति लखी जायी है कि प्राण मने ही चले जायें, पर वचन नहीं जाता ॥ २ ॥

✓ तहि अस्तव सम पातक पुंज। निरि सम होहि कि कोटिक गुंज ॥

सत्यमूक सब सुकृत सोहाय। वेद सुख विवित मनु गाय ॥ ३ ॥

अस्तवके समान फरोका समूह भी नहीं है। क्या फरोको धुंयकियाँ मिश्रकर भी
वहाँ पहाड़के समान हो सकती है। 'सत्य' ही समस्त उचम सुकृतो (पुण्यो) की जगह
है। यह बात वेद-पुराणोंमें प्रसिद्ध है और मनुष्योंमें भी यही कहा है ॥ ३ ॥

✓ तहि पर राम लख करि जाई। सुकृत लगेह भवनि रघुप्राई ॥

बात बड़ा कुमति होति बोली। कुमल कुबिल्ल कुलह मनु फौली ॥ ४ ॥

उत्तर में पारस भीरामकी स्तुति करनेमें आ गयी (मुझे निमग्न थी)। भी-
रामनाथकी मेरे सुकृत (पुण्य) और स्नेहकी सीमा है। इत प्रकार बात फली करके
बुझि कैनेभी हँसकर बोली। मानो उसने कुमल (बुरे विचार) करी कुछ बोली (बात)
[जो छोड़नेके लिये उस] की कुलही (आँखोंमेंकी दोष) खोल दी ॥ ४ ॥

हो—भूप मनोरथ सुभग वनु सुख सुविहंग समाह ॥

भिड्डिनि जिमि छक्कन कहति बचनु मयंकव बाहु ॥ २८ ॥

राजाका मनोरथ सुन्दर नन है। सुख सुन्दर पक्षियोंका समुदाय है। उत्तर
भीरामकी तरह कैनेभी अपना वचनकारी भयङ्कर बात छोड़ना चाहती है ॥ २८ ॥

मासपारायण, तेरहवाँ विभाग

बौ०—सुमह प्रामाणिक भावत भी का। देहु एक कर भरतहि दीका ॥

सागई दूसर कर कर जोरी। पुखहु साथ मनोरथ मोरी ॥ १ ॥

[यह बोली—] हे प्रामाण्यार! तुमने! मेरे मनको मानेवाला एक कर दो। जोमे भरतको
राशितक। और है साथ। दूसरा कर भी मैं हाथ जोड़कर माँगती हूँ। मेरा मनोरथ पूरा कीजिये—॥ १ ॥

तापस के सिखेहि उदासी। चौदह करिस रघु मनवासी ॥

सुनि सुहु बचन मूष दिवें छोहु। ससि कर पुण्या निकल विमि कोहु ॥ २ ॥

तपसियोंके वेपमें विशेष उदासीन मानके (राज्य और कुटुम्ब आदिकी ओरसे
भलीभाँति उदासीन होकर फिर सुनियोगी भाँति) राम चौदह वर्षतक वनमें निवास
करें। कैनेभीके कोमल (विमलपुष्प) वचन सुनकर राजाके हृदयमें ऐसा शोक हुआ
जैसे चन्द्रमाकी किरणोंके समान चमका निकल हो जाता है ॥ २ ॥

भयत सहमि बहिं कहु कहि जाय। जनु लखन वन हाथेय सया ॥

बिबरन मकल निष्ट कराय। दामिनि हवेय मयहु तह ताह ॥ ३ ॥

राजा सहम गये। उनसे कुछ कहते न बना मनो बात वनमें बड़ेपर सपटा हो।
राजाका रंग विचुल उड़ गया। मनो ताड़के पेड़के निज्जिने घारा हो (जैसे ताड़के
पेड़पर बिजली गिरनेसे वह झलझल बहरंगा हो जाता है, वही हाल राजाका हुआ) ॥ ३ ॥

मायें हाथ भूदि शीत लेखन। तनु छनि सोनु लप जनु सोचन ॥

और मनोरथ सुखत कृष्ण। फल करिनि जिमि हवेय मयका ॥ ४ ॥

भायेपर हाथ रखकर दोनों नेत्र बंद करके राजा ऐसे सोच करने लगे मानों साक्षात् सोच ही क्षीर पारण कर सोच कर रहा हो । [वे सोचते हैं—हय !] मेरा मनोरथलक्ष्मी कलसकृप पूछ चुक्य था परन्तु पहले समय कैकेयीने हविनीकी छत्र उभे जबसमेत उखाड़कर नष्ट कर डाला ॥ ४ ॥

अब उज्ज्वलि कीर्ति कैकेई । दीर्घसि अजल विपति कै नेत्र ॥ ५ ॥

कैकेयीने अबोध्यासे उन्मत्त कर दिया और विपत्तिही अजल (मुह) नीव डाल दी ॥ ५ ॥

दो०—कबमें अथसर छा मयल गयई नारि विलास ।

ओग सिद्धि फल समय निमि जिविदि अविद्या नास ॥ २९ ॥

जिह अवसरर नया हो गया ! खीका विद्यास करके मैं वैसे ही भोग गण चेत योगिनि सिद्धिनी फल मिलनेके समय योगीको वनिवा नष्ट कर देती है ॥ २९ ॥

पौ०—पुष्टि विधि राठ मनहिमय आँखा । देखि कुम्भोठि कुम्भसि मय माया ॥

मनु कि राठर पृथ न होही । आनेहु मोल वेसादि कि मोही ॥ ३० ॥

इस प्रकार राजा मन-ही-मन खीस रहे हैं । राजाका देहा कुप हाथ देखकर कुम्भोठि कैकेयी मनमें कुप दपते मोहित हुई । [और बोले—] क्या मल आपके पुत्र नहीं हैं ! क्या मुझे आप वामदेकर क्षीर रखे हैं ? (क्या मैं आपकी विद्याद्विष पत्नी नहीं हूँ ?) ॥ ३० ॥

जो सुनि सब जग सग्य सुनारें । कहे न ओठहु बचहु सँभारें ॥

देहु उतव हनु कबहु कि पारी । सत्पत्नीस पुनर रहुकुल सारी ॥ ३१ ॥

जो मेरा वचन सुनते ही आपके वाम-सा लगा, तो आप सोच-समझकर बात क्यों नहीं कहते ! उलर दीजिये—हाँ कीजिये, नहीं तो नार्थी कर दीजिये । आप गुरुवंशमें मय प्रतिष्ठावाले [प्रसिद्ध] हैं ॥ ३१ ॥

वैम कोहु नय जावि कइ देहु । उमहु सग्य जग मनबहु केहु ॥

सत्य करादि कहेहु फल देना । बनेहु केइदि मणि चवेना ॥ ३२ ॥

अपने ही घर देनेको कहा था, अब प्रभे ही न दीजिये । सत्यको छोड़ दीजिये और गवाहमें भरपूर दीजिये । उलझी बड़ी गराहण करके घर देनेको कहा था । समझा था कि वह चवेना ही मोग लेगी ! ॥ ३२ ॥

सिद्धि दीर्घसि बलि जीकहु माया । बनु बनु उमेद बचव पनु राजा ॥

बलि कहु बचव कइसि कैकेई । मायई लौच लरे कर रेई ॥ ३३ ॥

राजा भिन्नि, दीर्घसि और बलिने जो कुछ कहा, क्षीर और घन त्यागकर भी उन्मत्त अपने वचनकी प्रतिष्ठाकी निम्ना । कैकेयी बहुत ही कड़वे वचन कह रही है, मानो जलैर नलक छिन्न हो ॥ ३३ ॥

दो०—धरम धुरंधर घीर घरी बचन उचारे रावै ।

सिर धुनि लीहि उचास अरि मारेसि मोहि कुसयै ॥ ३० ॥

कर्ण धुरीने पास कजेबले राजा दखवने घोरव भरकर नेत्र खोले और क्षीर पुनकर तथा लंबा जल लेकर हय प्रकार कहा कि हमने मुझे वषे कुठोर माया (ऐसी कठिन परिस्थिति उत्पन्न कर दी जिससे वचन निराला कर दिया हो गया) ॥ ३० ॥

पौ०—आगे दोदि जल विष बली । मनुं तोष उचारी उचारी ॥

मुनि उठदि पार विहारी । पत्नी कुली • साव मचाई ॥ ३१ ॥

प्रचण्ड कोले कभी हुई कैकेयी अपने हय प्रहार दिलायी पत्नी माने कोवतपी

तखार नंगी (म्यानसे बाहर) लड़ी हो । कुसुदि उस तखारकी मूठ है, निहुरा पार है और वह कुसुरी (मन्थप) लगी खनपर फरफर तेज की हुई है ॥ १ ॥

छली महीर करक करेरा । सख कि ओखतु केरुहि मोरा ॥

बोले राठ कसिन करि लली । लगी सखिन रासु सोहाती ॥ २ ॥

राजाने देखा कि यह (तखार) बड़ी ही भयानक और कठोर है [और मोचन—] क्या सख ही यह मेरा जीवन लेगी ? राजा अपनी लगी कड़ी करके बहुत ही मझताके साथ उसे (केकरीको) धिन छपनेलली लगी बोले—॥ २ ॥

प्रिया वचन कल बहसि कुर्वीती । और प्रीति प्रीति करि दीती ॥

मोरें भए रासु ॥ लीकी सख कहे करि लकी सोहाती ॥ ३ ॥

हे प्रिये ! हे भव ! विवाह और प्रेमको नष्ट करके ऐसे तुरी तहके वचन कैसे कर रही हो । मेरे तो मरत और रासकन हो मोरें (अर्थात् एक मे) है, यह मैं सखलकी लगी देकर सख फरक हूँ ॥ ३ ॥

असि रासु मैं पखव प्रख । ऐरुहि बेगि सुनन दोन अख ॥

धुविन सौधि लख लख सख । केँ भरत कहुँ राठ बजाई ॥ ४ ॥

मैं अवश्य सख ही वृत्त मेरुंगा । दोनों भाई (भगत-रासुप) सुनते ही सुरत का जाँगे । अच्छा दिन (शुभ मुहूर्त) घोषककत सब तैयारी करके जंका बजाकर मैं भरतको रासु दे दूँगा ॥ ४ ॥

रो—लोभु मैं रामहि रासु कर बहुत मरत कर प्रीति ।

मैं बहु छोट बिचारि जियँ करत रहेँ लुपनीति ॥ ५ ॥

रासको एवका ओम नहीं है और मरतक उनका वक्ता ही प्रेम है । मैं ही अपने मनमे सखे-छोटेका बिचार करके राजनीति सपाठन कर रहा था (बड़ेको राजनीति देने का रास्ता) ॥ ५ ॥

बौ—राम सपथ सत कहँ सुभाऊ । रामरासु कहुँ कहेर न कक ॥

मैं सख कीमत् सोहि भिनु दूँ । रोहि तें परत जगोरु दूँ ॥ ६ ॥

रामकी ली बार सौम्य साकर मैं लमावते ही कहता हूँ कि रामकी माता (कौशल्या) ने [इस विषयमे] मुझसे कभी कुछ नहीं कहा । अक्सर ली मैंने तुमसे बिना पूछे पर सख किया । इसीसे मेरा मनोरथ खाली पड़ा ॥ ६ ॥

रिस परिहृद अब संकट साध । लख दिन कहँ भरत दुवकर ॥

एकदि राठ मोहि दुख लख । न एकर अग्रमंथ साया ॥ ७ ॥

अब मोच जोड़ दे और मझ-सख लख । कुछ ही दिनों बाद भरत पुनराग ही जायेगा । एक ही शायका मुझे दुःख लगा कि तुने वृत्त परदान बड़ी लड़वनाज मंगा ॥ ७ ॥

३०—भरत दुख लख रोहि बौ । रिस परिहृद कि सौमि सौचा ॥

कहु तवि रोख राम जगदह । सख कोट लख रासु सुदि साध ॥ ८ ॥

उसकी जाँचते अब भी मेरा हृदय जल रहा है । वह रिहारीमि, ओषधने अपना मन्थप ही (नाखको) सखा है । ओषको लाभ कर रामका जगदह तो कल । अब जोरें तो कहते हैं कि राम बड़े ही लख हैं ॥ ८ ॥

दूँ सराहसि अनसि सखि । नख सुनि मोदि अबत संदिह ॥

नख सुभाऊ करिहि नखदख । सो किमि अनसि रासु प्रतिदख ॥ ९ ॥

तु स्वयं भी रामकी सपादन करती और उनका खेद भिन्न करती थी । अब पर सुनकर मुझे कहेर हो गया है [कि तुमकी प्रीति और मेरे कभी बड़े ही न थे] ।

जिहवा स्वभाव घनुको मी कज्जल है वह माताके प्रतिद्वल अचरण बसोकर अरेण ! ॥४॥

दो०—प्रिया हाथ रिस परिहरहि माधु विचारि विवेकु ।

जेहि देखी धर नवन भरि भरत राज अभिषेकु ॥ ३२ ॥

हे प्रिये ! हँसी और क्रोध छोड़ दे और निरंक (उपित-अनुमति) विचारन कर मोंग, जिससे ऊपर मैं नेत्र बरकर मस्तक राज्याभिषेक देस सई ॥ ३२ ॥

सौ०—सिये रॉन बर भारि छिदीन । सति विहु फविकु लिये दुख दीन ॥

कह्यै सुभाद न छलु मन माहीं । लीखु सोर राम चितु नहि ॥ १ ॥

मछली चाहे बिना फनीके जीती रहे और सौं मी चाहे बिना मषिके डीन-दुली होकर जीना रहे । परन्तु मैं स्वभावसे ही कहल हूँ, ममों [नरा मी] दुख रखकर नहीं; कि मेरा लीखन रामके बिना नहीं है ॥ १ ॥

सुसुति देखु सिधै प्रिया प्रवीन । लीखु राम दूरत भावीन ॥ अ० ॥

झुमि मधु बचन कुमति कति जाई । मरहु अनल भवहि हन परई ॥ २ ॥

हे चतुर प्रिये ! श्रीमि समझ देख; मेरा लीखन भीरवके दर्शनके अधीन है । रामके प्रीति बचन कुमकर हुईकि कैकेयी अवकाश लव रही है । मनो अभिमं पीपी आहुतिवों लव रही है ॥ २ ॥

कह्यै कहु विन छोडि बपाव । इहाँ न कविहि यदरि माधु ॥

हेतु कि हेतु सजगु करि माहीं । सोइ न पडत मर्षन लोहाहीं ॥ ३ ॥

[कैकेयी काही है—] आप करोके उपाय क्यों न करे; यहाँ मारकी मारा (चाखानी) नहीं छोड़ी। क तो मैंने जो मोंगा है सो दीखिने, नहीं तो 'माहीं' करके अपवाद छीनिये । मुझे बहुत प्रसन्न (बलेदे) नहीं छूराते ॥ ३ ॥

लखु लखु दुमद लखु लखन । राममाधु मरि लख पहिवाले ॥

जस कीलिकों सोर मरु लख । लख लख उम्हरि देवे करि लख ॥ ४ ॥

राम लख है, अल लखने लख है और रामकी माता भी मरती है; मैंने लखको लखन किया है । पीपल्यसे मेरा देला भव्य बाधा है, मैं भी बाधा बरके (बाद रखने-बोधा) उम्हरे देला ही पत हुँगी ॥ ४ ॥

दो०—होत माधु सुनिषेय भरि औ न रामु बन जाहि ।

सोर भरतु रावर भजत नृप समुखिय मत माहि ॥ ३३ ॥

सबेर होते ही मुनिका देव बलवकर करि राम बनचो नहीं जाके तो हे राजन ! ममों [निधन] समझ दीखिये कि मेरा मरना होगा और बापका मरक ॥ ३३ ॥

सौ०—जस कीलिक कइ उरि लखी । मरहु लख करिनि लखी ॥

बाप पदर प्रगट कर सोई । बारी कोष लख जाइ न सोई ॥

देला पदर मुटिक कैकेयी उर लखी हुई । माने कोषकी नदी-उमड़ी हो । वह मदी बापकी पदरसे प्रगट हुई है और कोषकी उरसे मरी है; [देवी मयलक है कि] देवी नहीं जाती ॥ १ ॥

रीड कर लख इतिन हन पास । मरै लखी लखन प्रकाश ॥

रादर मृगय लख मृग । लखी निषि वारिनि मरुच्छ ॥ २ ॥

दोनों बदाम उर नहीं कि दो निगारे हैं, कैकेयी इतिन हन ही उमड़ी [लीख] मरा है और दुबरी (मरु) के पवनको प्रेरण ही मकर है । [वह कोषकी नदी] राम दमरुकी दृष्टको लख-मूले सहाई हुई निषिका समुद्रकी ओर [लीखी] चली है ॥ २ ॥

कही नरेस बात कुरि सौची । तब मिस्र गीनु सीस पर नाची ॥

गदि पद विवध गीम्ह बैजरी । अवि दिनकर कुल होसि कुजरी ॥ १ ॥

रानाने समझ जिना कि बात सचमुच (सत्यवर्मे) उच्यै है, किंकि वहाने मेरी मृत्यु ही विरत नाच रही है । [तदनन्तर राजाने कैकेयीके] चरण पकड़कर उसे बिठाकर बिनती की ॥ तू सर्वकुल [स्त्री वृक्ष] के सिने कुल्हाड़ी मत बन ॥ २ ॥

मागु माग अच्यौ देवें तोही । राम कहिँ सुनि मासि मोहो ॥

राजु राम कहुँ बेहि तेहि माँतो । नहिँ व बेहिँ जवम भरि छाती ॥ ४ ॥

तू मेरा मस्तक माँग ले, मैं तुझे जमी दे दूँ । पर-रामने निरुद्ध मुझे मत मार । तिन किसी प्रकारसे हो, तू रामसे रह ले । नहीं तो जगमगर सेरी छाती जमेगी ॥ ४ ॥

दो०—देखी भोधि बसाव नृप फेड धरनि धुनि माय ।

कहत परम अरत वचन राम राम रघुनाथ ॥ १४ ॥

राजाने देखा कि रोग अक्षय्य है, सब बे-व्यवन्त कार्य-पात्रोंसे रहा राम ॥ राम । राम रघुनाथ । कहते हुए फिर पीठपर जमीनपर सिर पड़े ॥ १४ ॥

जो०—व्याकुल राव सिबिष सब गला । करिँ सुखरस महुँ निपाक ॥

कंड सुख सुख भाव न जानी । अनु पात्रेनु रीने बिहु पानी ॥ १ ॥

राजा व्याकुल हो गये, उनकर जारा शरीर खिँक सब गया । मानो इधिनिये कसबूझको उलाह फेंक हो । कंड सुख गया, मुझसे बात नहीं निकलती । मानो पानीके बिना पहिना नामक मछली उड़्य रही हो-॥ २ ॥

धुनि कह कहु कठोर कैहै । मनुहु कब नहुँ बहुर बैहै ॥

सौ भंतहुँ कस कसनु खैक । मागु मागु तुम्ह कैहिँ कस कहेक ॥ २ ॥

कैकेयी फिर कहे और कठोर वचन बोली, मानो कबसे अर भर रही हो । [कहती है—] वो अन्तमें देखा ही करता था, तो आगने 'माँग, माँग' किंतु बकर फटा था ॥ २ ॥

तुम्ह कि होइ एक समस मुनाका । ईसय छगइ कुलबन्ध माका ॥

शशि कदाचन भव कुलकाई । होइ कि सेम कुलक रीताई ॥ ५ ॥

हे राजा ! ठंहाका मारकर ईसन और चाल कुलना; क्या ये दोनों एक साथ हो सकते हैं । दानी भी कहना और कंठही भी करता । क्या रज्जूमैले सेन-कुण्ड-भी रह सकती है ! (कदाहिने बहादुरी भी दिखाने और कहीं चोट भी न छोड़े) ॥ २ ॥

छावहु यचमु कि चीरल धावु । जवि बसका शिमि कसक करहु ॥

तनु तिय तनव धामु धामु बसरी । सत्यतंय कहुँ दूध सय बररी ॥ ४ ॥

या तो वचन (प्रतिज्ञा) ही लोड़-दीविये; या चैन धारण कीविये । मैं अवदाम लौकी भोधि गेदने-भीटिये नहीं । सत्यवतीके शिने तो शरीर, जी, पुच्छ, पर, धन और हृदी सब तिनसेके बराबर रहे गये हैं ॥ ४ ॥

दो०—अरम वचन सुनि राव कहु कहु सोषु न खेर ।

लागेर तोहि पिसाच शिमि कालु कदाचत मोर ॥ ३५ ॥

कैकेयीके समझी वचन सुनकर राजाने कहा कि तू जो चाहे कहे, तेरा कुछ भी खेर नहीं है । मेरा भाल तुझे मनो विखाव होकर गल गया है, वही तुझसे यह का का रहा है ।

चौ०—पद न अरत मूकहि जोरें । शिमि कस कुमति बसी तिय तोरें ॥

सो सजु सौर धप परिनायु । अमर कुग्रहर बेहि शिमि बायु ॥ १ ॥

भरत तो मूक भी राजकर नहीं चाहते । होनामक जे ही भीमें कुमति आ बसी ।

यह नव मेरे पापोंका परिणाम है, मिलते कुसमयमें (बिगड़ेके) विकल विपरीत हो गया ॥१॥

सुखस वसिहि फिरि जगज सुखई । सब गुन धाम राम प्रमुखाई ॥

बनिहहि भाइ लख लख सेवकाई । होइहि तिहुँ पुर राम बदाई ॥ २ ॥

[तेरी ठापी हुई] यह सुन्दर अमोघा फिर मलीमति नयेगी और समस्त गुणोंके धाम औरामचंद्र प्रमुख भी होगे । सब भाई उनकी सेवा करेंगे और तीनों ओरों-
में श्रीरामजी नवाई होगी ॥ २ ॥

सोय कलंक मोर पछितक । सुख न लेहि न जाइहि कल ॥

सब लेहि सीक छाग कर सोई । जेवन ओठ बंद सुख मोई ॥ ३ ॥

केवल तेरा कलंक और मेरा पछितक मज्जेपर भी नहीं मिटेगा, यह किसी तरह नहीं जायगा । अब मुझे जो अच्छा लगे वही कर । मुँह बन्दकर मेरी आज्ञाओं की ओर जा बैठ (अर्थात् मेरे सामने बैठ जा, मुझे सुन न दिला) ॥ ३ ॥

जाय हरि किसी कहूँ कर सोई । सब लज्जिति कहु कहुहि बहोरी ॥

फिरि पीतैहसि संत प्रजापी । मारसि याह नृपक छापी ॥ ४ ॥

मैं जाय जोइकर कष्ट हूँ कि कब तक मैं जीता रहूँ, समस्त फिर कुछ न कहना (अर्थात् मुझसे न बोझना) । जरी अमामेगी ! फिर तू अन्तमें परतनेवाली तू नृपक (संत) के लिये याचके मार रही है ॥ ४ ॥

हो—येदं राव कहि कोटि विधि काहे करसि निदासु ।

कपट सयासि न कहति कहु व्यगति मगई । मसासु ॥ ३९ ॥

राज करोवों प्रकारसे (कहत करते) समस्तकर [और यह कंठकर] कि तू क्यों सर्वनाश कर रही है, पूछीपर फिर पड़े । पर कपट करनेमें चार कैदी कुछ बोलती नहीं । राजे [मौन होकर] मगन न्या रही हो (समस्तमें बैठकर प्रेममग्न विद्वत् कर रही हो) ॥ ३९ ॥

चौ—राज राम यह निष्कल सुखल । बसु बिनु पंत बिदाग मेदासु ॥

हृदई मनाय ओठ लजि होई । रामहि बाहू कहै लजि कोई ॥ ४० ॥

राज राम-राम रत रहे हैं और ऐसे अशुद्ध हैं जैसे कोई पत्नी पंखके बिना पाउ हो । वे अपने हृदयमें मनाते हैं कि लगेपान हो, और कोई जबक औरामचन्द्रजीने मना न करे ॥ ४० ॥

उदर कहु लजि लपि-रुहुक सुर । जगज बिकेकि सुख होइहि दर ॥

भूय प्रीति कैह करिगई । उभय भवधि विधि रपी बगाई ॥ ४१ ॥

है लहलहे दुःख (बड़े, मूलमुल) सर्व मयकार । आप अपना उदय न करे । अमोघाको [वैराग] देखकर आपके हृदयमें बड़ी पीड़ा होगी । राजाकी प्रीति और कैदीकी निरुद्धा दोनोंको मलाने सीकतक रचकर बनाया है । (अर्थात् राजा प्रेमकी सीमा है और कैदी निरुद्धाकी) ॥ ४१ ॥

बिषय नृपहि मकठ मिलुकरा । कैय वेसु संघ पुनि हार ॥

पदई भाउ गुन कवई पक । सुख कृपहि बसु उमई सत्य ॥ ४२ ॥

विषय करते-करते ही राजाको मकठ हो गया । राजाद्वारा नीगा, बँसुरी और राजकी ध्वनि होने लगी । मायकेम निरुद्धाकी कृप रहे हैं और यवने गुणोंका गान कर रहे हैं । सुनकर राजाको वे वाक-जैसे लगते हैं ॥ ४२ ॥

मंगल सफल सोइहि न कैस । सत्यनिधि विधुपन कैस ॥

तेहि निधि नीद पति बदि कहु । सब दल अलस उठाहु ॥ ४३ ॥

राजाको ये सब मन्त्र-राज कैसे नहीं हुआ रहे हैं जैसे पत्थिरे सब सती होनेवाली स्त्रीको आभूषण । श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनकी आँखों और उत्साहके कारण उस रात्रिमें किसीको भी नींद नहीं आयी ॥ ४ ॥

दो०—द्वार भोर सेवक सन्निव कइहि उदित रवि देखि ।

आगेउं अजहुँ न अवधपति कारखु कबलु बिसेषि ॥ ३७ ॥

रामद्वारपर मन्त्रियों और सेवकोंकी भीड़ लगी है । वे सब सर्वको उदय हुआ देखकर कहते हैं कि ऐसा कौन-सा विशेष कारण है कि अवधपति दशरथजी अभी तक नहीं जागे । ३७)

चौ०—पछिले पहर भुँउ निज जागा । बाहु इन्हि बग जवरखु कराता ॥

आहु सुमंगल कालहु आई । कीजिय काहु रघावसु पाई ॥ ३८ ॥

राजा जिस ही रातके पछिले पहर जाग जाग उठते हैं, किन्तु आज हमें क्या आश्चर्य हो रहा है । हे सुमन्त्र ! जगो, जागर राजाको जगाओ । उनकी आज्ञा पाकर हम सब काम करें ॥ ३८ ॥

राग सुमंगल सब शहर भरी । देखि मयाजय अठ बैराही ॥

भग्न साह सखु जाह न देत । जगहुँ निषिद्ध निषाद बैराही ॥ ३९ ॥

तब सुमन्त्र रातके (रामराह) में गये, पर मन्त्रको भयानक देखकर वे जागे हुए न रहे हैं । [देखा जाता है] मानो दौड़कर साट खाया, उसघरी और देखा भी नहीं जाता । मानो निषिद्ध और निषादने जहाँ डेर डाल रखा हो ॥ ३९ ॥

पछे कोट न कलह देई । सर बैहि समन भूप कैशेई ॥

कहि जयजय कै सिर आई । देखि भूप गति गवड सुभाई ॥ ४० ॥

पूजनपर कोई भयान नहीं देता; वे उस महलमें गये जहाँ राजा और कैशेयी थे । 'यावन्भीरु' कहकर फिर नयाकर (बदला करके) बैठे और राजाकी दशा देखकर तो वे झूल ही गये ॥ ४० ॥

सोच बिराड विचारन मदि करेक । मानहुँ कमल सखु बहिरेक ॥

सचिद समीत सखु मदि पूछी । सोकी जगुन भरी सुन कृषी ॥ ४१ ॥

[देखा कि—] राजा सोचते व्याकुल हैं, चेहेरेपर रंग उड़ गया है । जमीनपर देखे गये हैं मानो कमल सब लोकर (बढ़ते उखड़कर) [धूम्रोंवा] पड़ा हो । मन्त्री-मते बरके कुछ पूछ नहीं सकते । तब अश्रुमले सरी हुई और कुमले, चिह्नन कैशेयी बोली— ॥ ४१ ॥

दो०—परी न राजहि नीद निशि हेतु आने जगदीसु ।

रासु रासु रति भोग किम कहर न मरसु मदीसु ॥ ४२ ॥

राजाको रातभर नींद नहीं आयी, इसका कारण जगदीश्वर ही जाने । इन्होंने 'राम-राम' राकर रावेरा कर दिया, परन्तु इसका भोग राजा कुछ भी नहीं बतलाते ॥ ४२ ॥

चौ०—आगु रासहि बैनि सोकाई । समाचार सब रोखु आई ॥

कोट सुमंगल सब सब जानी । सखी सुचरित कनिंद कसु सखी ॥ ४३ ॥

हम सबकी रामकी तुल्य जानो । उन आकर समाचार पूछना । राजाका सब जानकर सुमन्त्रजी-बले, समझ गये कि राजा ने कुछ कुनाहल की है ॥ ४३ ॥

सोच बिराड सब परदु न कर । समदि सोकि कहिहि क न कर ॥

बर बरि भीसु गवड सुभाई । पूछहि सखु देखि मनु मारें ॥ ४४ ॥

सुमन्त्र सोचते व्याकुल हैं, रातभर पैर नहीं पड़ा (जहाँ बड़ा नहीं जाता) ।

[सोचते हैं—] रामजीको बुलकर राजा क्या कहेंगे ! किसी तरह हृदयमें भीरव बरकर
न द्रुपद रावे । सब लोग उनको समझते (उदास) देखकर पूछने लगे ॥ २ ॥

समझावतु करि सो सबही कर । मरत जहाँ दिनकर कुल टीकर ॥

राम सुमंत्रहि भजन देखा । आदर कीन्ह पिता राम लेखा ॥ ३ ॥

सब लोगोंका समाधान करके (किसी तरह कष्टा-मुक्तिकर) सुमन्त्र वहाँ गए
जहाँ सर्वकुलके तिलक श्रीरामचन्द्रजी थे । श्रीरामचन्द्रजीने सुमन्त्रको आते देखा, तो पिताके
समान समझकर उनका आदर किया ॥ ३ ॥

विराजि बहनु कहि सृष्ट बजाई । खुल्लखरीपहि कबैत नेवाई ॥

राजु कुपति सन्निव सैव जाही । देखि लोगे जहाँ तहँ किम्बाही ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके मुखको देखकर और राजाकी आज्ञा सुनाकर वे खुल्लखरीपके दीपक
श्रीरामचन्द्रजीके [अपने हाथ] जिन्ना चोके । श्रीरामचन्द्रजी मन्त्रीके हाथ कुरीतारहो (जिन्ना
किसी छयालमेके) सा रहे हैं, यह देखकर लोग जहाँ-वहाँ निराद कर रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—आह दीव रघुसंसमनि मरपति बिपट कुसाणु ।

उदमि परेउ छवि सिधितिहि मगहँ दृढ गजराजु ॥ ३९ ॥

रघुसंसमनि श्रीरामचन्द्रजीने जाकर देखा कि राजा भक्तान्त ही कुरी हास्यमें पड़े
हैं, मानो सिधनीको देखकर कोई बड़ा गजराज सदमकर गिर पड़ा हो ॥ ३९ ॥

चौ०—सूर्यहिं अवर अरु सख जेगू । मगहँ दीव मविहीन भुजंगू ॥

सख समीप दीकि कैहँ । मगहँ मीनु बरी रावि लेहँ ॥ १ ॥

राजाके ओठ सूख रहे हैं और साथ बरीर जल रहा है । मनो मणिके जिन्ना
सौं दुखी हो रहा हो । पस ही ओपते भरी कैकेयीको देखा, मनो [साधार] मृदु
ही पैरी [राजाके जीवन्ती बनिम] बहिराँ गिन रही हो ॥ १ ॥

कन्यामय सहु राम सुमन्त्र । मय दीव हनु सुख न जाक ॥

सर्वि धीर धरि समर किचरी । पूँछी मधुर बचन महारपी ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका स्वभाव कोमल और कन्यामय है । उन्होंने [अपने शीपनमें]
पक्षी भर वह दुःख देखा । इससे पहले कभी उन्होंने दुःख सुना भी न था । सो भी
समयका विचार करके हृदयमें भीरव बरकर उन्होंने पीठे बचनीके माग
कैकेयीके पूछा—॥ २ ॥

मोहि कहु नहु रात दुख करव । करिब जलन वेहिं दीव निवसव ॥

सुनहु राम सहु कनखु पेट । सखहि तुम्ह पर कहुत सनेहु ॥ ३ ॥

दे भावा ! मुझे पितृकीके दुःखका कारण कहो, ताकि जिससे जलका निवारण
हो (दुःख दूर हो) वह यश किन्ना जाय । [कैकेयीने कहा—] दे राम ! मुने, साग
आप बरी है कि राजका दुमर बहुत स्नेह है ॥ ३ ॥

देन कहनिह मोहि दुर वदना । मनेर्व जो कहु मोहिं सौहाण ॥

सो सुनि भयत रूप रर सोम् । छवि न सखहि दुम्हार संजोप ॥ ४ ॥

इन्होंने मुझे दो वदना देनेको कहा ना । मुने जो कुछ अच्छा क्या, वही मैंने
माँग । उसे सुनकर राजाके हृदयमें सुन हो गया; क्योंकि वे दुम्हार संजोप नहीं
छोड़ सकते ॥ ४ ॥

दो०—उत सनेहु द्रव कचनु द्रव संकट परेत कोसु ।

सकहु ॥ गयसु घरहु तिर येठहु कठिन कनेसु ॥ ४० ॥

हपर तो पुत्रका स्नेह है और उपर वचन (प्रतिज्ञा) राजा हवी धर्मसंकरमें पड़ गये हैं। यदि तुम कर सकते हो तो राजकी आज्ञा शिरोधार्य करो और इनके कठिन श्लेषको मिटाओ ॥ ४० ॥

श्री०—निधरक बैठि कहइ कहू कानी। मुक्त करिजात जहि जगुमानी ॥

श्रीम कमान बचन सर जगन। मनुहुँ अहि सहु कण्ठ समानी ॥ १ ॥

कैकेयी बेबड़क बैठी ऐसी कड़वी कानी बड़ रही है जिसे सुनकर सब कठोरता भी अत्यन्त ध्याकुल हो उठी। जैम बहुत है, वचन बहुत-से तीर हैं और मानो राजा ही कोमल निधानके समान हैं ॥ १ ॥

जहु कठोररतु धरैं सरीरु। विरह प्रकुलिकां नर कीरु ॥

सहु प्रसंगु सूरतिहि सुनई। बैठि मनुहुँ सहु परि भितुनई ॥ २ ॥

[इस सारे श्लोक-समूहके साथ] जानो सब कठोरपन मेह पीरका शरीर धारण करने धनुरविद्या सीख रहा है। श्रीसुनारवलीको सब हाथ सुनकर वह ऐसे बैठी है मानो निष्ठुरता ही शरीर धारण किने हुए हो ॥ २ ॥

मम मुमुकहू आमुकुल भनू। राहु सहव आनंद निमनू ॥

बोके बचन विरह सब रूपन। सहु मंतुल सहु कान विभूजन ॥ ३ ॥

धुंधकुलके धुंध, स्वाभाविक ही आनन्दनिधान औरामयप्रती मनमें मुक्तकंठकर सब चुकीति रहित ऐसे कोमल और सुन्दर वचन बोके जो मानो कर्णके रूपण ही थे—॥ ३ ॥

सुहु जगनी श्रेष्ठ सुहु बचमानी। जो पितु मातु बचन मनुगानी ॥

✓ सच मनु पितु सेवधिदास। दुर्जन जगनि सकल संसार ॥ ४ ॥
हे माता। हुनो। श्री पुत्र बड़मानी है जो पिता-माताके वचनोंका अनुगामी (पावन करनेवाला) है। [आत्मकामके द्वारा] कल-रिक्तको बंधन करनेवाला पुत्र, है जगनी। सारे संसारमें दुर्जन है ॥ ४ ॥

श्री०—मुनिगम मिळनु बिसेसि बच सचहि भौति दित मोर।

तैहि मई पितु जगनु बहुरि संमत जगनी तौर ॥ ४१ ॥

बनमें विशेषकरके मुनिगम मिलना होगा, मिलने में पितृ सही प्रकारसे कल्याण है। जगमें भी, फिर पिताजीकी आज्ञा और है जगनी। दुष्टपरी क्षमति है, ॥ ४१ ॥

श्री०—भारतु प्रापमिष पावई सगु। विविस्तपविधिमोहिसनपुन आगु ॥

श्री न कान बच देसहु कजज। प्रजम यमिष मोहि सतु समजानी ॥ १ ॥

और प्रापमिष भयत राज-फलमें। [इन सभी बातोंको देखकर वह प्रतीत होता है कि] आज विधाता-सब प्रकारसे मुझे सम्मुख हैं (मेरे अनुकूल हैं)। यदि ऐसे कामके लिये भी मैं करको न आऊँ तो मूलोंके समानों लगे पड़े मेरी बिनयी करनी बरिदे ॥ २ ॥

सेवहि कौहु कजजल जगनी। कसिदि कसुन केहि पितु मायी ॥

न पाइ कल सकल पुकीरि। दैख विचारि सहु मन भारी ॥ ३ ॥

जो कसबहालो लोककर रेंडकी सेवा करते हैं और अप्रसन्न लग्न कर फिर सौम्य होते हैं, हे माता। तुम मनमें विचारकर देखो, वे (महामूर्ख) भी ऐसा मौज धार करनी न चुकीये ॥ २ ॥

अब एक [॥] मोहि बिसेसी। विरह विरह मानसकु देखी ॥

मोतिहि बल विरहि दुख भारी। होसि प्रसति न मोहि मखारी ॥ ३ ॥

हे माता ! मुझे एक ही दुःख विशेषरूपसे हो रहा है, वह मोरारामको अत्यन्त व्यथित देखकर । एक छोटी-सी बालकें खिने ही पिताजीको इतना गरी दुःख हो, हे माता ! मुझे इस बातपर विश्वास नहीं होता ॥ २ ॥

राज और गुरु उद्यमि जगद्गुरु ! आ मोहि तें बहुत बन्ध जगद्गुरु ॥

जाते मोहि न बन्धन बहुत राज । मोरि सबस मोहि बहुत सतिभक्त ॥ ४ ॥

प्रत्येक महाराज तो दश ही धीर और गुणोक्तें जगद्गुरु समुद्र हैं । मन्त्र ही मुमसे क्यों क्या अदराज हो गया है, जिसके कारण महाराज मुझे कुछ नहीं करते । तुम्हें मेरी योग्य है, माता ! ॥ ५ ॥

श्री०—सत्य सत्य रघुवर वचन कुमति कुटिल धरि जान ।

सखद बोंक जेक बाझगति जवपि सखिजु समान ॥ ४२ ॥

रघुवरमें प्रेम श्रीरामचन्द्रजीके समानके ही सीते रत्नोंको दुर्द्विद्वि कैसी देवा ही बुरके जान रही है, जैसे, बर्षा का समय ही होता है, परन्तु जेक उसमें देवी भावने ही पाली है ॥ ४२ ॥

श्री०—वहसी राति कम दश पाई । बोली कपट लखेहु जगद्गुरु ॥

सबस हुम्बर सदा के भावा । हेतु न हुम्बर मैं बहुत भावा ॥ १ ॥

राजी कैसी श्रीरामचन्द्रजीका दश पाऊ रहित ही गर्वा और कदमूर्त जेह दिखाकर बोली—दुम्हारी राग्य और मलकी योग्य है, मुझे राजके दुःखका दूसरा कुछ भी कारण विहित नहीं है ॥ २ ॥

हुम्बर अदराज जोगु नहीं जाता । जगदी सबस बांधु सुखदाता ॥

राज सत्य सत्य जो बहुत बन्ध । हुम्बर पिता मातु वचन रत बन्ध ॥ २ ॥

हे राज ! हम भाग्यके योग्य नहीं हो (हमसे मन्त्र-पित्त-अदराज बन पड़े, यह कामग नहीं) । हम से माता पिता और भाग्योके दुःख देनेवाले हो । हे राज ! ॥ ३ ॥ जो दुःख कर रहे हो, एक साथ है । हम पिता-माताके कर्तव्य [के पालन] में कतर हो ॥ २ ॥

पिताहि हमसु बहुत बलि सीई । चौपदस मोहि बन्धु न कोई ॥

हुम्बर दश हुम्बर हुम्बर मेहि सीई । उचित न जातु विरादस कोणे ॥ १ ॥

मैं दुम्हारी बलिप्राप्ति जाती हूँ, हम पिताको समझकर वही बात कहो जिससे चौपदस (दुम्हारे) में इनका अन्तर्गत न हो । जिस पुत्रने इन्तरे हम-मेले पुत्र दिये हैं उसका विराद प्रजा उचित नहीं ॥ २ ॥

जगदि सुमुख दशस हुम्बर सीई । सगई रासविक सीख जेते ॥

राजहि मातु दशस सब मातु । जियि सुखसि गत सखिजु सुदात ॥ २ ॥

कैसे-सीके हो दुःखमें वे हुम्बर कचन कैसे लगते हैं कैसे मन्त्र दशमें मन्त्र आदिका सीध ! श्रीरामचन्द्रजीकी आज कैसी-सी सब नवन ऐसे अच्छे जो जैसे गङ्गाजीमें जाकर [लगे-जो सती मन्त्रके] सब हुम्बर सुन्दर हो जाते हैं ॥ ४ ॥

श्री०—गाइ मुखका रामहि सुमिरि नृप पिरि करजत सीन्ध ।

सखिजु राम भावमन कहि विनय समस सब कीन्ध ॥ ४३ ॥

इतनेमें राजकी मूर्छा दूर हुई, उन्होंने राजका सत्य कहे ('राम ! राम !' करकर) करकर करकर सी । जगदी श्रीरामचन्द्रजीका आज कबकर समस्तदुःख विनती की ॥ ४३ ॥

चौ—अबमिय जखनि राखु राखु घरे । धरि बाँखु सब नख उगरे ॥

सचिवैं सँगारि राठ बैसरे । जस बस नृप राखु निहारे ॥ १ ॥

कथ राजाने मुना कि श्रीरामचन्द्र पगरे हैं तो उन्होंने भीरव बरके नेव लोटे । मन्त्रीने सँभालकर राजाको बैठाया । राजाने श्रीरामचन्द्रजीको अपने चरणोंमें पड़ते (प्रणाम करते) देखा ॥ १ ॥

सिधु सनेह बिनछ कर छाई । नै मणि सबहुँ पजिब किरि पाई ॥

रामहि चितह खेच नरकाहु । जहा मिलेचन करि प्रवाहु ॥ २ ॥

सोइसे दिवस राजाने रामजीको हुदबसे ख्या लिंग । मन्त्रो खँने अपनी सोचो हुई मणि फिरते पा ली हो । राजा स्वभावजी श्रीरामजीको देखते ही रह गये । उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह पड़ी ॥ २ ॥

सोक विषय कहु फई न पाए । दुखैं कलकल बाराहि बर ॥

विधिहि नकल राठ मय साही । जेहि राखय न कवन छाही ॥ ३ ॥

सोकने शोच का होनेके कारण राजा कुछ कर नहीं सकते । वे बार-बार श्रीरामचन्द्रजीको हुदबसे ख्याते है और मन्त्रों तलाबीको मनाते हैं कि मिलते श्रीरामचन्द्रजी वनको न आवें ॥ ३ ॥

सुमिरि मनेसहि कहइ निहोरी । विनयी पुण्डु खगसिब मोरी ॥

आमुतोष दुख कहर हानी । मरति हरहु दीप जहु लानी ॥ ४ ॥

सुमिरि मनेसहि कहइ निहोरी । विनयी पुण्डु खगसिब मोरी ॥ ४ ॥
आमुतोष दुख कहर हानी । मरति हरहु दीप जहु लानी ॥ ४ ॥
मन्त्रों फिर मन्त्रोंकीका कारण करके उनसे निहोरा करते हुए करते हैं—दे वदप्रिय । आप मेरी भिन्ती सुनिषे । आप आमुतोष (दीप प्रसन्न होनेवाले) और मन्त्रोंकी (मन्त्रोंकी) वे मोलनेवाले हैं । मन्त्रों मुझे अपना दीन सेवक बनकर मेरे पुण्डुको दूर लीखे ॥ ४ ॥

चौ—सुम्ह देरक सब के दुखैं खे मति रामहि देहु ।

बचनु मोर तकि रहहि घर परिहरि सीसु सनेहु ॥ ५ ॥

आप प्रेयस्कमसे उनके दुखमें हैं । आप श्रीरामचन्द्रजी ऐसी सुदि होकिने मिलते है मेरे वचनको त्यागकर और सीख-नेहको छोड़कर पर्याप्त रह जायें ॥ ५ ॥

चौ—अबहु होइ नम सुखसु । नकल । नकल वही नम सुखसु साक ॥

सब दुख दुख दुखसु मोरी । सोचन मोर राखु नवि होरी ॥ ६ ॥

आहमें पावे अवस्था हो और सुख नष्ट हो जाय । पावे [नया पाव होनेसे] मैं दरकमें गिरूँ, जयवा । सारा पल जाम (पूर्व पुण्डुकी प्रसन्नता मिलनेवाला सारा पावे मुझे न मिले) । और भी सब प्रकारके दुख दुख आप मुझसे रह्य कर लें । पर श्रीरामचन्द्र मेरी आँखोंकी ओट न हों ॥ ६ ॥

महा राम पुण्डु राठ बहि सोख । सीर राठ खसि राखु सोख ॥

राखति चितहि प्रेमसल लानी । पुनिकहु किरिहि सब अनुमान ॥ ७ ॥

राजा रामजी-मन इस प्रकार विचार कर रहे हैं, सोचते नहीं । उनका मन पीतले पत्थरी तरह होल रहा है । श्रीरामचन्द्रजीने सिपायों प्रेम्के, कल जनकर और यह अनुमान करके कि मन्त्रों फिर कुछ कहेवी [तो मिलीको दुख होय]—॥ ७ ॥

देस । काक कलकर अनुमान । सोके कल किरि विचार ॥

सब कहैं कहु कल किरि । कलकल कलकल कलकल ॥ ८ ॥

देस । कल और कलकरके अनुमान विचारकर विनीत बनन कहे—दे राज । मैं

हुल कहता हूँ, यह दिखाई नस्ता हूँ । हू अनीचिबको मेरी वास्यानस्ता समझकर उमा सीलियेया ॥ ३ ॥

वसि ॥ अत लखि दुख फल । सहै न मोहि स्निह प्रथम जनका ॥

देखि योसाइहि पैरि मात । पुनि प्रसंनु भए सीतल गता ॥ ४ ॥

इस अत्यन्त दुःख बाजके लिये आपने इतना दुःख क्या ! मुझे किसीने पहले कहकर यह बात नहीं कही । स्वामी (राम) को इस दयामे देखकर मैंने मातने प्रसन्न । उन्हे सारा प्रसंग सुनकर मेरी सब अन्ध झील हो गये (मुझे वही प्रसन्नता हुई) ॥ ४ ॥

श्री-संयत्त समय सोहे वस सोच परिवारिअ तत ।

आयसु देख हृत्पि हियँ कहि पुलके प्रभु गत ॥ ४५ ॥

हे निली ! इस मन्त्रके समय स्नेहका होकर सोच करना जोड़ दीजिये और हृदयमें प्रवेश होकर मुझे आशा दीजिये । यह कहते हुए प्रभु श्रीरामचन्द्रजी सर्वज्ञ पुनीत हो गये ॥ ४५ ॥

श्री-प्रभु जगदु जगतीत लख । विचहि प्रगोहु चरित पुनि जाव ॥

आरि एतलय करतल लखें । प्रिय सिनु जानु प्रान सम खखें ॥ १ ॥

[उन्होंने फिर कहा—] इस पृथ्वीतलपर उसका जन्म भन्ध है जिसके चरित्र सुनकर पितामही परम आनन्द हो । जिससे मन्त्र-पिता प्राणके समान प्रिय हैं, वारी वरार्य (अर्थ, प्रेम, काम, मोह) उसके कलकलत (मुझमें) रहते हैं ॥ १ ॥

आयसु पाकि जलम पखु वर । देहँ पैरिहि होत त्नाई ॥ २ ॥

विदा मगु लख जगई मारी । चलिहँ बपहि बहुरि पग छापी ॥ २ ॥

आपकी आज्ञा कर्मन करके और कर्मका फल पाकर मैं लखी ही लौट आऊँगा, अतः हुन्वा आशा दीजिये । मन्त्रके विदा मोग भगता हूँ । फिर आपके पैर लाकर (प्रणाम करके) मनको चर्चेंगा ॥ २ ॥

अस कहि राम जगदु तप कीन्हा । खूब लोख बस बरत व कीन्हा ॥

भगर ब्यपि नइ जान सुखीनी । दुखल की वनु सब तन बीकी ॥ ३ ॥

ऐसा करकर सब श्रीरामचन्द्रजी वहाँसे चले दिये । राजाने शोकवद कोई उच्छ नहीं दिया । वह बहुत ही बीकी (अश्वि) वात नगरममें इतनी जखी पैल गयी मगनी बंक मारते ही निज्जुका मित छोरे धरीमें बंद गया तो ॥ ३ ॥

हुनि भए बिकल सकल नर मारी । केहि मिलि बिनि देखि वृषारी ॥ दावापि

जो गहँ सुख सुख सिध छोई । बह निषाद वहि बीरत होई ॥ ४ ॥

इस बातको सुनकर सब जी-पुष्प ऐसे नालुक हो गये जैसे दावानल (जलने आग लगी) देखकर नेल और कुछ मुरझा जाते हैं । जो क्यों सुस्ता है ॥ वही फिर पुनने (पीने) लगता है । नरा निषाद है, किसीकी वीर्य नहीं बँकता ॥ ४ ॥

श्री-पुल सुखाहि खेवन कुवुहि सोक व हृदयँ समाद ।

मनहुँ करुम रस करुँ कलरी अखं बसार ॥ ४६ ॥

उसके मुल सुखे जाते हैं, आँखोंसे आँसू बहते हैं, शोक हृदयमें नहीं समाता । मानो कनकारनी सेना अवेधर बंधा बन्धकर उतर आती हो ॥ ४६ ॥

श्री-प्रियेहि मोगे खिये बात केमरी । अहँ तहँ देखि कैन्हाहि मारी ॥

एहि पाविनिहि धुलि स परेत । छाहँ मन्त्र पर पावकु धरेत ॥ १ ॥

इस नेत मिल गये थे (सब संयोग जोड़ हो गये थे), अपनेमें ही विधाताने सन

मिमाव दी ! जहाँ-तहाँ लोग कैकेयीको गाली दे रहे हैं ! इस पतिनको क्या सुख पड़ी-
को इसने छाये घरपर आग रख दी ॥ १ ॥

निर कर मगध कादि यह दीक्षा । छरि सुधा विषु बहत पीजा ॥

कुटिल कठोर कुबुद्धि जगाम्नी । यह सुबस वेसु बन भागी ॥ २ ॥

यह अपने हाथसे अपनी आँखोंसे निकलकर (आँखोंके पिना ही) देसना-
चाहती है; और अमृत पेंककर निर नचना चाहती है ! यह कुटिल, कठोर, कुबुद्धि और
अमागिनी कैकेयी सुबसवासी आँखोंके कने लिये गति हो गयी ! ॥ २ ॥

प्राप्त पालन वैदि वेसु पृथि काय । सुख मँदु लोक अह धरि दाय ॥

सदा यशु रूदि प्राय समस्त । परम कुतु कुटिलपनु ठाना ॥ ३ ॥

पसेपर बैठकर इन्ने पेड़को खट दाख । सुखमें लीला ठाठ ठठकर रख दिया ।
प्रीतमधुमजी इसे सदा प्राणोंके समान प्रिय थे । फिर भी न जाने किउ कारण इन्ने
यह कुटिलता ठानी ॥ ३ ॥

सब कहदि कवि छरि सुभास । सब सिने जगदु मगध दुष्टक ॥

विज प्रतिषिधु बहल गदि जाई । कवि न सह करि धति भाई ॥ ४ ॥

कवि सत्य ही करते हैं कि लीला स्वभाव सब प्रकारसे पकड़में न आने योग्य,
अप्राप्त और मेदमग होता है । अपनी परसही मते ही प्रकटी आध, पर भाई ! कवियोंकी
गति (बात) नहीं जानी जाती ॥ ४ ॥

वो—कहा न पावकु छरि सक का न समुद्र सनाइ ।

का न करै भबल प्रयल केदि जग कालु न पार ॥ ५ ॥

आग ज्या नहीं जल धकती ! समुद्रमें क्या नहीं समा सकती ! अथवा कहानेपाती
प्रयल की [गति] क्या नहीं कर सकती ! और आगमें जल किसको नहीं जाता ! ॥ ५ ॥

वो—का सुनाइ विवि कह सुनावा । का देनाइ यह कह देखावा ॥

एक कहदि भल भूप न कीन्हा । कदविचारि नहि कुमतिहि दीन्हा ॥ ६ ॥

विधाताने क्या सुनाकर क्या सुना दिया और क्या दिखानेकर अब यह क्या दिखाने
काता है ! एक करते हैं कि राजाने अच्छा नहीं किया, कुबुद्धि कैकेयीको विचारकर
वर नहीं दिया; ॥ ६ ॥

जो हृदि भयस सकल दुख नाबलु । कबल विषय सुख गुणु या बलु ॥

एक जग परमिति पहिचाने । कबदि होसु नहि देदि खाने ॥ ७ ॥

जो हठ करके (कैकेयीकी बातने पूरा करनेमें जड़े रहकर) स्वयं सब दुर्लोक
प्राप्त हो गये । किन्ति विशेष यह होनेके कारण सन्ने उसका ज्ञान और सुग बात रहा ।
एक (दूरे) जो धर्मकी मर्मादाको जानते हैं और खाने हैं, वे राजको दोष नहीं देते ॥ ७ ॥

विधि दधीचि हरिन्द कहेको । एक एक सब कहदि बतानी ॥ ८ ॥

एक भरत कर संज्ञा कहही । एक उद्यम नहि सुनि रहही मे-१५०

वे शिवि, दधीचि और हरिश्चन्द्रकी कथा एक दूसरेने बतानेकर करते हैं । कोई
एक हममें भरतजीकी सम्मति बताते हैं । कोई एक सुनकर उदासीनमाके रह जाते हैं
(कुछ बोलते नहीं) ॥ ८ ॥

कान सुदि कर सु कहि कीदा । एक कहदि यह बात अजीदा ॥

सुकुत नहि अस कहल सुनारे । सुनु जग कहुँ प्राणविभारे ॥ ९ ॥

कोई हमसे कान सुनकर और जीसको दानोंसे देकर कहते हैं कि यह बात

सूट है, ऐसी बात कहनेसे जुगारे पुष्प नष्ट हो जायेंगे। भरतजीको तो श्रीरामचन्द्रजी प्राणोंके समान प्यारे हैं ॥ ४ ॥

दो०—संदु चबै वह अमल कम सुधा होइ-निषतूल। ७३

सपनेहुँ कबहुँ न करहि किहु भरतु राम प्रतिकूल ॥ ४८ ॥

चन्द्रमा चाहे [घोख करणोंकी जगह] मांगनी चिनगारियाँ बरसाने लगे और अमृत चाहे दिके समान हो जाय, परन्तु भरतजी स्वप्नमें भी कभी श्रीरामचन्द्रजीके विरुद्ध कुछ नहीं करेंगे ॥ ४८ ॥

मौ०—एक दिवसहि दृष्टु देहीं। सुधा बैसाइ दीन्ह किउ-केहीं ॥

हरभर नगर सोखु सब कहू। दुसहं दाहु उर मिया उठाहू ॥ १ ॥

मोई एक विशालाको दोष देते हैं, जिसने अमृत दिलाकर विष दे दिया। नगर भरमें लखबत्ती मच गयी, सब किशोरो-यौवन हो गया। हृदयमें दुःख जलन हो गयी आनन्द-उत्साह भिट गया ॥ १ ॥

पियबधू कुलमाग्य सखी। मे प्रिय परम कैहई कैरी ॥

सखीं देन शिख सखि सुहाही। वचन बलसम लागहि लही ॥ २ ॥

माझणोंकी स्त्रियों, कुलधर्म माननीय बड़ी-बूढ़ी और जो कौटुंबीकी परम प्रिय थी, वे उसके घोखी उरहना करके उसे खींच देवे लगीं। पर उसको उनके वचन बाणसे तमान लगते हैं ॥ २ ॥

भरत न मोहि प्रिय राम समान। सदा कबहु-बहु सह बसु जाना ॥

कबहु राम पर सहज सखेहू। केहि अपराध अह सह बैहू ॥ ३ ॥

[वे काही हैं—] तुम तो सदा कहा करती थीं कि श्रीरामचन्द्रजीके समान तुमको भरत भी प्यारे नहीं हैं। इस बातको सारा जगत् जानता है। श्रीरामचन्द्रजीपर तो स्वामिकी ही स्नेह करती रही हो। आज फिर अपराधसे उन्हें बच देती हो ॥ ३ ॥

कबहु न किबहु समति भविसू। प्रीति प्रीति लग सह बैसू ॥

कौशल्यो न कब कह किउ। दुस केहि लखि बर पुर पार ॥ ४ ॥

तुमने कभी चौधियाबाह नहीं किया। सारा देश दुश्मने प्रेम और विश्वासके जानता है। अब कौशल्यने तुम्हारा जीवन-स विगाड़ कर दिया, जिसके कारण तुमने सारे नगरपर वज्र मिया दिया ॥ ४ ॥

दो०—सीप कि मिय सँखु परिहरिहि सखनु कि रहिहहि भाम।

राखु कि सँखु भरत पुर सखु कि जिहहि बिनु राम ॥ ४९ ॥

क्या सीताजी अपने पति (श्रीरामचन्द्रजी) का साथ छोड़ देंगी? क्या लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके बिना पर रह सकेंगे? क्या भरतजी श्रीरामचन्द्रजीके बिना अयोध्यापुरी का राज्य भोग सकेंगे? और क्या राजा श्रीरामचन्द्रजीके बिना जीवित रह सकेंगे? (अर्थात् न सीताजी यहाँ रहेंगी, न लक्ष्मणजी रहेंगे, न भरतजी राज्य करेंगे और राजा ही जीवित रहेंगे; सब उबाव हो जयका) ॥ ४९ ॥

चौ०—जस विचारि उर लखहु कोहू। सोक कलंक खेदि बधि होहू ॥

भरतहि लखति देहु सुखद। कनक कह राम कर कबहू ॥ १ ॥

हृदयमें ऐसा विचारकर श्रेष्ठ छोड़ दो, शोक और कलङ्ककी फोड़ी मत बनो। भरतको अवश्य सुखदायक दो, पर श्रीरामचन्द्रजीका कर्मों नष्ट काम है ॥ १ ॥

नानिद राघु राघ के भूले । धर्म इहीन निषय सब भूले ॥ ३८ ॥

गुर गृह बसहुँ यमु खनि केहु । नृप खन अरु बह दूसर केहु ॥ ३९ ॥

भारतमन्त्रजी राघके भूले नहो हैं । वे पर्वती दुखको भाग्य करनेवाले और
विश्वरूपने रूप हैं (अर्थात् उनमें विष्णुत्वक है ही नहीं) । [इसलिये तुम
राघ न परो कि श्रीरामजी वन न गये तो भस्मके राघके मिल करोगे; इतनेपर भी मन
न माने तो] तुम गुआने दूसरा ऐसा (बह) कर ले लो कि भीषण पर छोड़कर
गुआने पर रहें ॥ ३९ ॥

जो नहीं समझतु क्यों हमारे । नहीं समझि कहुँ हाथ तुम्हारे ॥

बो परिहास फेन्दि कहुँ होई । भी कहि अष्ट बन्धनहुँ सोई ॥ ४० ॥

जो तुम हमारे करनेपर न फलेगी तो तुम्हारे हाथ कुछ भी न लगेगा । यदि तुमने
दुख होने की हो तो उसे प्रयत्नमें बदल कर आ दो [कि मिन दिलगी की है] ॥ ४० ॥

राघ सखि सुत जगज जोगू । काह कहिहि तुमि सुख कहूँ योगू ॥

उरहुँ केनि मोह कहुँ बगहूँ । जेहि बिधि सोकु कलंक नसाई ॥ ४१ ॥

गम-वरीषा पुन सब बनेके योग्य है । कर सुनकर लोग तुम्हें क्या कहेंगे । जलदी
हटा और वही उधार फरो जित उलझने एन मोह और कलंक सब हटा दो ॥ ४१ ॥

है—जेहि भौति सोकु कलंकु जार उपाय करि कुल पालसी ।

हदि केह रामहि जात वन जनि पात दूसरि बालसी ॥

जिमि भानु विनु विनु प्राण धिनु तनु बंद विनु जिमि जामिनी ।

जिमि भवध मुक्तसीदास प्रभु विनु समुहि धी जिये जामिनी ॥

जित तरह [नगरभरका] घोंक और [गुफाए] बहट मिटे, वही उपाय करके
भूतकी रक्षा कर । वन जाने हुए भीसमजीसों हट बजे लोटा से, बूझी कोई बात न कहा ।
मुक्तसीदासजी करते हैं—जैत धूमि निम्न दिन, प्राणने विना मरीर और चन्द्रमाके विना
मास [निर्वाच तथा जोमाहीन हो जाती है]; वैसे ही श्रीरामचन्द्रजीके विना अयोध्या हो
जायगी; हे भ्रामिनी ! तू अपने हृदयमें हम बातको समझ (विचारकर देख) हो मरी ।

गो—सखिपद सिखावनु दीनक सुखन मधुर परिचयम दित ।

तेई कहुँ कान न कीनक दुटिन प्रयोसी धूयरी ॥ ५० ॥

एन प्रकार मधियोंने ऐसी चीज थी जो सुननेमें सीटी और परिणाममें शिफारी
थी । पर कुटिला कुपरी की सिखायी जाती हुई ऐसी चीजें दनकर अथ भी खन नहीं दिया ॥ ५० ॥

भी—उतक न देह तुम्ह स्वि एहि । सुनिन विषय ननु खसिनि धूपी ॥

अधवि अत्रापि जानिनिन्दमयम् । कर्तुं कृत सतिमोद प्रमगी ॥ ५१ ॥

सीपी कोई उत्तर नहीं देनी, वह दुःख जोपके छोड़ करी (वेसुग्नात) हो रही
है । ऐसे देखती है माना नृपति बाधिन अनिर्वाहो देन रही तो । सखियोंने राघके
काम समझकर उसे छोड़ दिया । सब इसको मन्त्रपुत्र, अगाधिनी कदनी हुई पाव दी ॥ ५१ ॥

पुन करत यह ईजे विनोई । गीतोलि जय जय कहत न कोई ॥

कहि बिधि विष्णुहि पुन पर करी । देहि कृतमिहि कोटिक मारी ॥ ५२ ॥

गल करने हुए इस कैकेयीको देने में अब का देना । अपने विषय कुछ दिया; वेना
है ही न छोड़ा । उसके सब को-गल : उन प्रपन्न निश्चय पर रहें हैं और उन कुनामी
के लोको कोहों गातेवों दे रहे हैं ॥ ५२ ॥

जहिं विषम खर केहिं टसस्य । क्यनि राम विदु जीवन मास ॥

बिपुल विषय प्रजा अछलानी । धनु लखर यव सूखत पानी ॥ १ ॥

छेव विपन्नतर (भयानक दुश्मनी जग) से लड़ रहे हैं । तभी वहाँ ॥ १ ॥
वे कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजीके निज जीनेकी कौन आशा है । मरान्द विषय [जो
आशंका] से प्रजा ऐसी त्रासित हो गयी है जलो पानी लुखनेके मन्द खरकर जीनेका
अनुदाय व्याकुल हो ॥ १ ॥

अति दिवाद् यव खेव लोखई । गद् ननु पहिं राहु गोसाईं ॥

हुल प्रसन्न चित्त चौखत चार । मित्र सोनु बनि राखै रात ॥ ४ ॥

छोटी पुत्र और मित्रों अत्यन्त विपन्नके काम हो रहे हैं । स्वामी श्रीरामचन्द्रजी जग
हैकसाके प्रसन्न रहे । उनका पुत्र प्रसन्न है और विपन्न चौखत चार (उत्साह) है । यह
सोच मित्र गया है कि रात बड़ी लम्बा न मे । [श्रीरामजीकी रामविपत्ती बात सुनकर
विपन्न हुआ था कि अब भावोंको छोड़कर बड़े भाई मुझको ही रातनिद्रा करी दीका है ।
अब माता केकेलीकी आका और पिताकी जैन सम्प्रति पाकर आओनु मित्र गया] ॥ ४ ॥

दो—मय गोपेनु, रघुवीर भनु राहु अछानी समान ।

छूट जाति यत राबनु मुनि उर अर्नहु अधिकान ॥ ५ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका मन कसे पड़े हुए हारीके समान और रामविपत्ती उस छुपीके
बौबनेकी कठिनाय खेड़ीके वनान है । यत समान है यह मुनिक, अनेको
बन्धनसे बंधा जानकर; उनसे हृदयमें आनन्द बढ़ गया है ॥ ५ ॥

चौ—खुल्लिखल सोरि होइ हाथ । मुदित संतु पद बापड माथा ॥

सीन्हि बलीख छाह उर छोन्दे । अपन बसव निहारी छोन्दे ॥ १ ॥

खुल्लिखल श्रीरामचन्द्रजीने दोनों हाथ खोड़कर आनन्दके लय गानाके चरणोंमें
छिर नचाया । माथेमें धर्मदीर्घा दिया, अपने हृदयके लया पिता और उन्मत्त करने
तथा कण्ठे लौछाकर विधे ॥ १ ॥

बार बार हुल चुंकिने माता । नवव वैह वंदु पुनकिन माता ॥

गोद राखि मुनि हृदई लज्ज । कलत प्रेमस पद सुहाय ॥ २ ॥

माता बार-बार श्रीरामचन्द्रजीका हुल चुन रही हैं । बेसोने प्रेमका रूप भर भाया
है और अब पुनकिन हो गये हैं । श्रीरामको अपनी गोदमें बैठाकर फिर हृदयके
लया लिया । हुन्दर रान प्रेमस (वृष) जग्ने हो ॥ २ ॥

हेतु प्रनेहु व कहु कये आई । रंग बरव पदवी कनु पाई ॥

मादर सुंदर बंदु निहारी । बोलै सुंदर बचन सहकारी ॥ ३ ॥

उनका प्रेम और प्रेम् प्रानन्द कुछ कहा नहीं जाता । मांको कंठाग्ने कुनेर
जग लिय हो । कहे सलज्जे मय सुन्दर पुन टेल्कर माता भयुर दचन बोलै—॥ ३ ॥

कहु जय जननी बलिहारी । कबई लगव मुद संगठकारी ॥

सुरत लीख सुत नीवे सुहाई । जनम लख कह अवधि अघाई ॥ ४ ॥

हे माता ! माता बलिहारी अवधि है, कहे, वह आनन्द-नाष्टकारी लगव है; जो
मेरे पुत्र, भोले और दुलभी हुन्दर नीवे है और कय केकेल्यमाफी पूर्णतम मन्त्रि है ॥ ४ ॥

दो—जोहि वाहत नर नारि सख अति आरत पहिं मौति ।

मिमि अतक सतकि छुपित वृष्टि सख रिनु स्वाति ॥ ५ ॥

क्या लिख (क्या) जो मयी ली-मुल्ल अतक नष्टकालसे इव अघार जग्ने है

जित प्रकार पालके चाकल और चकरी घर-घर के स्तम्भिककी बर्तनो चाहते हैं ५२

नौ०—तात जारें बलि लेवि जायह । जो मन मार मरु कहु जायह ॥ १ ॥

✓ पितु समीप तब जायहु मैसा । भइ बहि नर जाइ बहि मैसा ॥ १ ॥

हे तात ! मैं बड़े-छोटी हूँ, तुम जल्दी नहा लो और जो मन चाहे, कुछ मिठाई खा लो । मैसा ! तब पितरके पास जाना । बहुत देर हो गयी है, माल बिक्री-हारी जाती है ॥ २ ॥

मातु पचन मुनि अति अमुकल । जहु समेह सुखर के पूजा ॥ २ ॥

मुल मकरंद भरे शिवमुल । निरति कम मनु भवै न पूजा ॥ २ ॥

माताके अत्यन्त अनुकूल वचन सुनकर—जो मानो छोड़कर गल्लकके पूल से, श्री सुखरूपी मकरन्द (पुष्पराज) के फरे से और श्री (राजकृष्ण) के मूल से—इसे वचनरूपी पुष्पोंकी देखकर श्रीरामचन्द्रजीका मनरूपी मौर उभर नहीं मूल ॥ २ ॥

धरम पुरीन धरम गति जायै । कहेत मनु सन भति सुदु बायै ॥

पितो ईन्द सोहि धरमन राख । नई सन भति और न काय ॥ २ ॥

धर्मपुरीन श्रीरामचन्द्रजीने धर्मकी बलि को जानकर मातासे भयानक कोमल पाणीसे कहा—हे माता ! पिताजीने मुझको कलम रख दिया है, ज्यों वह प्रकृतिसे मेरा बड़ा काम बननेवाला है ॥ ३ ॥

भायसु हेहि सुविता मय मया । बेहि सुद संसल कायव जाय ॥

जनि समेह कच उरसि भोरें । भावैतु संसल मनुमद सोरें ॥ ४ ॥

हे माता ! ह प्रलय करने वाले आया है, जिससे मेरी वनवापसमें आनन्द-संग हो । मेरे लोहकल धूलकर भी करना नहीं । हे माता ॥ ॥ कृष्णसे आनन्द ही होगा ॥ ४ ॥

श्री०—धरम कारिदस्त विपिन वसि करि पितु वचन प्रमाण । २८

भाइ पाय पुनि देखिहर्ष मनु जनि करसि मज्जन ॥ ५ ॥

श्रीराम वर्ष वर्तन रहकर, पिताजीके वचनसे प्रभावित (पाय) कर, फिर लौटकर लो चरणोंका दर्शन करनेगा; ह मनमें मज्जा (दुखी) न कर ॥ ५ ॥

श्री०—बचन विनीत मनु रहकर के । सर सन लो मनु घर कले ॥

सहि सुवि सुवि सीतलि बायै । जनि ज्ञास परं पल्लव बायै ॥ १ ॥

रघुकुलमें श्रेष्ठ श्रीरामजीके ये बहुत ही नम और मोठे वचन माताके हृदयमें रागके नमान करने और कलकसे लगे । उस शील बाणीको सुनकर कौत्सवा जैसे ही नहानकर रह गयी जैसे बरसातका पानी बहनेसे जगल सूख जाता है ॥ २ ॥

कहि न भाइ कहु हृदय निपल । मनु सुखी पुनि केहि न भाइ ॥

हृदय सखल सन भर भर कोषी । मनुहि भाइ मीन जहु मारी ॥ २ ॥

हृदयका किछद कुछ कहा नहीं जाता । मानो सिंदूरी लौना सुनकर हिली फिल हो गयी हो । नेत्रोंमें जल भर जाया; धीरे-धीरे बर-बर खिलने लगा । मानो मछली मीन (पत्नी जहाँस केन) खाकर कटकाय हो गयी हो ॥ २ ॥

चरि पीछ सुत नहत पिछरी । मनुद वचन कहति महतारी ॥

तात पितहि कुरु प्राण विचारै । देखि सुविता विर सति दुखारे ॥ २ ॥

श्रीराम धरकर पुनः मुझ देखकर माता कहकर वचन करने लगी—हे तात ! इस लो पिताको प्राणोंके समान प्रिय हो । तुम्हारे चरित्रोंको देखकर ये मिल प्रजन होवे ॥ २ ॥

राहु देन को सुख दिव छाका । कहेत साव बन केहि जगल ॥

साव सुवायु मोहि निदाव । को दिनकर कुल मकर हुल ॥ ३ ॥

राम देवोंके लिये उन्हें ही छुप दिन सोवतां था । फिर जब कि अमरको
वन जानेको कहा ! हे तब ! मुझे इतना करण सुनयो ! सर्वथा [स्त्री वन] को
जानेके लिये अति कौन हो स्या ! ॥ ४ ॥

दो०—निरखि राम रुख सखिवसुठ करानु कहैव वृंदाद ।

सुनि प्रसंगु यहि मूक जिमि दसा कपनि नहि जाइ ॥ ५४ ॥

तब श्रीरामचन्द्रजीक सब देखकर सबकी पुनः वन कारण समझाकर कहा ।
उक्त प्रसंगको सुनकर वे नृसी-नृसी (जुग) रह गयीं, उनकी दशाक्ष वर्णन नहीं किया
जा सकता ॥ ५४ ॥

चौ०—राखि न सकइ न कहि सक जाइ । दुई बोलि डर जामन जाइ ॥

किछत सुवाकन गा किछि राहु । बिदि भवि कय सदा सब जाइ ॥ १ ॥

न रुख ही सकली है न वह जाल सकली हैं कि कर कहे जाओ । दोनों ही प्रकारसे
हृदयमें क्या भारी संताप हो रहा है । [मनमें सोचती हैं कि देखो—] विवाहकी बात
सदा सबके लिये देरी होती है । जिसने कब कष्टम और निष्ठ गया राहु ! ॥ १ ॥

बसम लगेइ डमरवें मति बेरो । जइ राखि और सुहृदारी केरी ॥

राखत सुखीं फरतं मरुतेहु । बरहु जाइ नर बंधु विरोध ॥ २ ॥

बर्ग और लगे दोनोंने कौसल्याजीकी बुझिसे पर लिता । उनकी दशा नान
कहेंदारीकी हो गयीं । वे सोचने लगीं ॥ यदि मैं अनुपेय (इत) करके पुनः एक
केरी हूँ तो बर्ग जाना है और माद्योंमें विरोध होता है ॥ २ ॥

कहई जामन कब भी कहि जाओ । संकट सोच विवत जाइ सखी ॥

बहुरि ससुति छिप भरतु सखी । राहु मरतु रोइ जल सम जानी ॥ ३ ॥

और यदि वन जानेको कहती हूँ तो वही शानि होती है । इस प्रकारके धर्म-संकटसे
पढ़कर रानी विशेषकरसे सोचके वन हो गयीं । फिर बुझिगती कौसल्याजी की-बर्ग
(पतिव्रत वर्ग) की समझकर और राम तथा भरत दोनों पुत्रोंको समझ जानकर—॥ ३ ॥

सक सुमाइ राम मइखरी । खेकी बचप धरि धरि भारी ॥

तब जाई लखि लोखेहु कोका । निहु खरतु सप पलक दीका ॥ ४ ॥

सक स्वभाववाली श्रीरामचन्द्रजीकी माता दश बीरव परकर बचन बोली—
माता ! मैं बलिहारी जाती हूँ, तुमने अपना किता । जिसकी आज्ञाका पालन करना है
मम धर्मका विरोधगी धर्म है ॥ ४ ॥

दो०—राहु देन कहि दीन्ह वलु मोहि न सो दुख लेहु ।

दुग्ध बिनु मरतीहि मूर्खहि प्रजहि प्रचंड कजेसु ॥ ५५ ॥

राम देनेको कहकर मन दे दिया, उक्त मुझे केवल नही दुःख नहीं है
[दुःख तो इस बातका है कि] तुम्हारे बिना मरतको महाबलको और प्रजको ॥
माता केव्य होगा ॥ ५५ ॥

चौ०—नी केवल निहु जानतु जाय । तौ जनि जाइ जनि कहि माय ॥

✓ जौ निहु मातु कबैव मन जाय । तौ जानन सदा करन सताता ॥ १ ॥

हे माता ! यदि केवल निहुजीकी ही आज्ञा हो, तो माताको [निहाले] बड़ी का-
यर बचकी मत जाओ । निहु यदि निहा-माता दोनोंने कब जानेको कहा हो, तो व
तुम्हारे लिये ऐसी अवस्थाके ममान है ॥ १ ॥

विष्णु बनदेव साधु बनदेवी । सब धुप जल सोलह सेरी ॥
 अंतर्द्वे उचित बुद्धि बनसाधु । सब मिलेकि दिव्य होइ हरीसु ॥ २ ॥
 बनके देवता तुम्हारे भिन्न होने लौरे बनदेवियों माया होती । यहाँके पशु-पक्षी
 तुम्हारे धरणात्मक सेवक होंगे । सबके लिये अन्तर्में तो बनवास करना उचित ही है ।
 केवल तुम्हारी [सुकुमार] अम्बिका देखकर हृदयमें दुःख होता है ॥ २ ॥

ब्रह्मसागी सब भवन ब्रह्मसागी । जो सुखचरितक सुख त्यागी ॥
 जो सुख नहीं सब मोहि छेद । तुम्हारे हृदयें होइ संवेद ॥ २ ॥
 हे सुखचरितक ! तब बड़ा भ्रमसागर है और यह भवन ब्रह्मसागी है, जिसे तुमने
 त्याग दिया । हे पुत्र ! यदि मैं कहूँ कि सुखे में लाभ के लिये तो तुम्हारे हृदयमें संवेद
 होगा [कि मत्ता हरी भरीने सुखे रोचना चाहती हैं] ॥ २ ॥

पूत परम शिव तुम्हें सबही के । प्राय प्राय के जीवन भी के ॥
 ते तुम्हें कहूँ मातृ सब जानै । मैं सुनि कवन वैदि पञ्चवर्ष ॥ २ ॥
 हे पुत्र ! तुम सभीके परम शिव हो । प्रायः प्राय और हृदयके जीवन हो । यही
 (प्राणाधार) तुम कहते हो कि माता । मैं कबसे जानूँ और मैं तुम्हारे कवनोंके
 सुनकर वैदि पञ्चवर्षी हूँ ॥ २ ॥

बो—यह विचारि नहिं करतें हठ हठ लगेहु बड़ाई ।
 प्राणि मातृ कर मातृ बलि सुपति विचारि अनि साह ॥ ५९ ॥
 यह सोचकर हठा लगे बड़ाकर मैं हठ नहीं करती । हेतु । मैं कबसे जानूँ
 माताका माता मानकर मेरी दुष्ट भूत न जान ॥ ५९ ॥

बो—देव विचार सब तुम्हारे मोताई । राखै सकल कवन भी माई ॥
 अवधि भंडु शिव परिकर शीत । तुम्हें कल्याण परम हरीश ॥ ६० ॥
 हे गोसाईं ! सब देव और शिव तुम्हारी वैते ही रखा करे । जैसे सबके भौंछोंको
 रखा करती है । तुम्हारे कल्याणकी अवधि (चौदह वर्ष) सब दे, मित्रपण और कुटुम्बी
 मछली है । तुम दयाकी आन और बर्षकी हरीशको धारण करनेवाले हो ॥ ६० ॥

सब विचारि लोह कहु उपदे । उपदि विचार वैदि नैदु भाई ॥
 ब्राह्म सुखन कबहिं नहिं जानै । करि कल्याण सब परिकर साह ॥ ६१ ॥
 ऐसा विचारकर यही उक्त करन लिये लोह लोहनी तुम का मिले । मैं
 बुद्धिवादी जाती हूँ, तुम सेवकों, परिकरवालों और आरामको अनाथ करके तुल्यपूर्ण
 बनके जाओ ॥ ६१ ॥

सब कर साधु बुद्धि कर लोह । ब्रह्म कल्याण कहु विवेकीता ॥
 बुद्धिनि विवेकि कान कल्याण । परम अन्तर्निधि साधु सानी ॥ ६२ ॥
 आज सबके पुण्यका फल पूरा हो गया । बटिन, कल्याण हमारे विमोक्त हो गया ।
 [इस प्रकार] बहुत विचार करके और अपनेको परम अन्तर्निधि जानकर माता
 श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें लिपट गयी ॥ ६२ ॥

दास्य तुम्हारे साधु कर कल्याण । प्राणि व जाहि विचार कल्याण ॥
 राम कल्याण मातृ कर जानै । नहिं सुख कल्याण साधु साधुसाई ॥ ६३ ॥
 हृदयमें मन्त्रक तुम्हारे शक्ति का सब । उस समयके बहुनि विचारका कर्मान
 नहीं किया जा सकता । श्रीरामचन्द्रजीने अन्तर्को उठाकर हृदयसे क्या किया और फिर
 कोमल वचन कहकर उन्हें समझाया ॥ ६३ ॥

दो०—समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाह ।

जाइ साधु पद कमल जुग बंदि बैठि सिख नाह ॥ ५७ ॥

उसी समय यह समाचार सुनकर सीताजी अकुल उठीं और सबके पास लक्ष्मण उनके दोनों चरणकमलोंकी कदना कर फिर नीचा करके बैठ गयीं ॥ ५७ ॥

चौ०—श्रीभिद असोस साधु सुहु काची । कति मुकुमारि देखि अकुलाची ॥

बैठि नमितमुख सोचति सीता । रूप रासि पति प्रेम पुनीता ॥ १ ॥

सतने कोमल पासीने आदर्शपाद दिवा । वे सीताजीको भवन्त मुकुमारी देखकर व्याकुल हो उठीं । रूपही रासि और पतिके साथ प्रिय प्रेम करनेवाली सीताजी मीठा मुख किये पैठी लेंच रही हैं ॥ १ ॥

अरुण बाह्य बस जीवब नाम् । केहि सुकुली सब होइहि साधु ॥

सी तबु प्राय कि केवल प्राय । विधि कस्तुषु कबु जाइ न जाया ॥ २ ॥

जीवननाथ (प्रणवाय) कबो चला पावते हैं । देखें कि प्रणवानसे उनका साथ होता—शरीर और प्राय दोनों साथ जायेंगे या केवल प्राणहीसे इनका साथ गया ? विधवाकी करनी कुछ जाली नहीं जाती ॥ २ ॥

चाह करन नल केकति करी । नपुर मुकर मधुर कवि वारी ॥

मधु प्रेम बस विपती करी । हमहि सीय पद बनि परिहराई ॥ ३ ॥

सीताजी अपने सुन्दर चरणोंके नखोंसे चरती कुहर रही हैं ! ऐसा करने समय नपुरोंका जो मधुर शब्द हो रहा है, कवि उसका इस प्रकार वर्णन करते हैं कि मानो प्रेमके का होकर नपुर वह मिली कर रहे हैं कि सीताजीके चरण कभी हवाए त्याग न करें ॥ ३ ॥

मह विधोवन नैचति वारी । फेरी देखि राम महुतारी ॥

साधु सुगुह सिध अति मुकुमारी । साधु सधुर रसिकबनि दिवारी ॥ ४ ॥

सीताजी सुन्दर नेत्रोंसे ऊह रहा रही हैं । उनकी यह दृष्टि देखकर भीरामजीकी माता कौसल्याजी रोती—हे तन ! सुनो, सीता भवन्त ही मुकुमारी हैं क्या मय-ममुर और कुटुम्बी सभीको प्यारी हैं ॥ ४ ॥

दो०—पिता जनक भूपाळ मवि । ससुर मातुकुळ भातु ।

पति रसिकुळ कैरव विपिन विषु गुन रूप विधातु ॥ ५८ ॥

इनके पिता जनकजी गजबोंके शिरोमणि हैं । ससुर सर्वकुलके सर्व हैं और पति भवन्तकी कुनद्वयकी सिलनेपले कन्या तथा गुण और रूपके मण्डार हैं ॥ ५८ ॥

चौ०—सै पुनि पुनवू दिय वार् । रूप रासि गुन सीख सुहाई ॥

गपन सुनि करी सीति कराई । रान्तेन प्रान ज्ञानकिहि काई ॥ १ ॥

पिर प्रेमे रूपकी रासि, सुन्दर गुण और सीखनेवाली प्यारी पुनवपू पायी है कि मैंने इन (जानकी) को बालोंकी पुकली बनाकर हमसे प्रेम नवाचा है और अपने प्राण हमसे लगा रखे हैं ॥ १ ॥

कल्पकेति सिमि कृपिणि हन्ती । नैचि सनेह सखिळ प्रतिपाती ॥

पूजित फलत मयध विधि वसत । जनि न सख काह परिचामा ॥ २ ॥

हमें करभयानके समान मैंने बहुत उपदेश कहे स्वधन्वाके साथ स्नेहकरी जलन लेंचकर पावें हैं । अब इस लवके पूजने-पूजनेके समय विवाह नाम हो गये । कुछ जाना नहीं जाता कि इच्छा क्या परिचाम होता ॥ २ ॥

वहै न पीठ छवि गोद हिरोरा । सिमें न बनेह पशु कबनि कठोर ॥
 सिकनमूरि छिमि चोगन रहै । दीन जाति नहि ठारन कहै ॥ १ ॥
 सीताने पर्यटपुष्ट (फर्मके ऊपर) गोद और हिंदोलेको छोड़कर कठोर पृथ्वीपर
 कभी पैर नहीं रक्खा । मैं तथा छद्मीकी जड़के समान [सावधानीसे] इनकी रक्षा
 करती रही हूँ । कभी दीपकभी वत्ती इत्यनेको भी नहीं कहती ॥ २ ॥

सोइ सिय पठन च्छति बन साखा । आबसु काह होइ खुनाया ॥
 चंद किरन रस रसिक चकोरी । रचि कृत नवन सकह किमि बोरी ॥ ३ ॥
 यही सीता अब तुम्हारे साथ वन चलन चाहती है । हे खुनाय । उसे क्या आशा
 होती है ? चन्द्रमाकी किरणोंका रस (अमृत) चाहनेवाली चकोरी सूर्यकी ओर ओंस
 फिर्त कह मिल सकती है ॥ ४ ॥

दो०—कारि कहिरि निसिचर करहि दुष्ट अंतु बन भूरि ।
 बिष बादिकों कि सोह सुत सुप्रम समीचनि मूरि ॥ ५९ ॥
 हाथी, सिंह, राजस आदि अनेक दुष्ट जीव-जन्तु वनमें बिचरते रहते हैं । हे पुत्र ।
 क्या विषकी बादिकामें सुन्दर संबन्धी बूटी बोझा या सकती है ? ॥ ५९ ॥

चौ०—वन हित कोक मिरात मितोरी । रचि विरंचि विषय सुप्र भोरी ॥
 पावन कुमि छिमि कठिन सुमाळ । तिन्हहि कलेसु न कवन काळ ॥ १ ॥
 वनके हिते दो वृक्षाजीने विषयसुलभ न आनेवाली कोक और भीलोंकी छद्मियोंको
 रक्षा है, जिनका पाथरके लोहे-जैसा कठोर स्वभाव है । उन्हें वनमें कभी क्लेश नहीं होता ॥ २ ॥
 के हापस सिय कायन कोनू । जिन्ह तर हेतु तथा सब भोगू ॥
 सिय वन बसिहि बात कहि भौंती । निरखिनि कसि दैसि डेरती ॥ ५ ॥

अथवा वनस्थियोंकी स्त्रियाँ, वनमें रहने योग्य हैं, जिन्होंने तपस्याके लिये वन मोन
 लिये हैं । हे पुत्र । जो तपस्वीके वंदनको देखकर डर जाती हैं वे भी वनमें फिर
 लख रह सकेंगी ॥ ६ ॥

सुरसर सुप्रम वनन वन बाटी । सुप्र कोसु कि इसकुनारी ॥
 अस विचारि अस आबसु होई । सै सिल देई जानकिहि सोई ॥ ३ ॥
 हेकठोरके कमलवनमें विकरल करनेवाली इधियाँ बना गद्दियों (तलियों) में रहनेके
 योग्य है ? ऐसा विचारकर सीता तुम्हारी आज्ञा हो, मैं जानकीको वही ही शिक्षा दूँ ॥ १ ॥
 श्री सिय भवन रहि कह बंसा । मोहि कई होइ खुन अवच्छेदा ॥
 सुमि पशुचर मातु प्रिय कानी । सोक स्पेह सुचो जनु सानी ॥ ४ ॥

माता कहती है—यदि सीता वनमें रहें तो सुताको बहुत सहाय हो जाय । श्रीरामचन्द्रजीने
 ताकी प्रिय बाणी सुनकर, जो गानो शील और स्नेहस्वी अमृतसे सुनी हुई थी, ॥ ४ ॥

दो०—कहि प्रिय वचन विवेकमय कीन्हि मातु परितोष ।
 लगे प्रबोधन जानकिहि प्रगटि बिपिन सुत दोष ॥ ६० ॥

विवेकमय प्रिय वचन कहकर माताको कष्ट रह गया । फिर उनके सुख-शोक प्रकट
 करते वे जानकीजीको समझाने लगे ॥ ६० ॥

मातुशारायक, चौदहवाँ विश्राम

चौ०—मातु लक्ष्मि कहत सकुचाहीं । कोठे लमय ससुनि मन साहीं ॥
 राजकुमारि सिकननु सुनह । लज मोति निरंजनि कहु सुनह ॥ १ ॥ २१

सालके नामसे सीमावर्षि कुल कहलें सकुचते हैं। पर सगरो मह, सगलकर कि
मह समर देना ही है, ये बोलें—हे राजकुमारी। मेरी सिखायन सुनो। समस कुल दूसरी
तरफ न समस्त भेजा ॥ १ ॥

आपन और भीक ली चहु । यवन हुमान भनि रह सह ॥

यावत्तु मौर सत्तु सेवयई । का विधि माग्निदि मवन भयई ॥ २ ॥

जो अपना और मेरा मन्त्र चाहती हो, वो मेरा कवन मनकर घर रहे । हे भामिनी । मेरी भाषा का पठन होना, सत्कर्म सेवा का प्रयोग । घर रहनेमें सभी प्रकारसे भलाई है हर

एहि से भयिक प्रलय नाई दख । सादर समु समु पद पूजा ॥

का सब भाव करिहि मुखि भोरी : होहि प्रेम निबल मति भोरी ॥ २ ॥

आदरपूर्वक सत्क-सम्बन्ध स्थापित करना (पूजा) करनेसे यज्ञ-युद्ध और धर्म नहीं है। तब-तब अज्ञान-मुक्त कर लेनी और प्रेमसे व्यक्त होनेके अन्तर्गत नृत्ति भोजी हो जायगी (ये कर्म-आत्मोक्त नृत्ति जायगी) ॥ ३ ॥

उप एव तुम्ह कहि कथा सुलभी । सुंदरि रसालासुख सुख कभी ॥

कहते सुभाषे सपथ सत मोही । सुमुनि भक्त द्विज रावर्क मोही ॥ १ ॥

हे दुष्टरत्न ! तब-तब तुम को-को गान्धर्वी पुरानी कपारें का-कापर धुँईं समझाना ।
हे दुष्टनि ! मुझे लौकिक लौकिक हैं, वे-वे समझो ही खड़ा हूँ कि मैं तुम्हें कैलाश
जगत् के जिसे ही साज रखता हूँ ॥ ४ ॥

४. दो:-दूर दूति संवत् धरम कल्ल पाइम विवर्ति कलेस ।

॥ १२ ॥

[मेरी भावना सज्जन परम करने] मुक्त और बड़े द्वारा समस्त धर्म [विश्वभारण]
का फल हमें विना ही स्वेच्छे मिल जाता है। किन्तु इसके पक्ष होकर मान्य मुनि और
उन शिष्य आदि करने चाहते ही नहीं ॥ ५१ ॥

श्री-मैं हूँ कभी प्रथम पिता नहीं। जेनी फिर वह सब साक्षि सहायी ।

विष्णु कृत योहिं लम्बिदि कथा । सुंदरी विष्णुपुत्र प्रबुद्ध हस्ताय ॥ १ ॥

हे सुमुखि ! हे उगाली ! सुखे, मैं भी शिवाके लक्ष्मको उख करके खीन ही लीहूँ। दिन काले देख नहीं लोखी। हे सुमुखी ! हमरी नद पील कुने। ॥ १ ॥

ॐ हठ कण्ठ मेलन कर्म । तौ शुद्ध शुद्ध पाठ्य परिक्रमा ॥

५. अस्तु अस्ति सर्वज्ञः सती । योः पञ्च दिवः सति वसति ॥ ५ ॥

६) **शान्ति** ! यदि प्रेमका हठ करोगी, तो तुम भीरुका पुत्र बनोगी । वह बड़ा **भयानक** (खेदास्पद) और **भयानक** है । जहाँही दूध, जहाँ, जहाँ और इस सभी **वै** भयानक है ॥ ३॥

हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वे हमें सही मार्ग दिखा सकें।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । गङ्गा यन्महापद्मं । तस्मै नमः ॥ १ ॥

राष्ट्रमें कुल करी जौर गहुरसे बंधू हैं । उमर बिना बालेके पैहल ही चकना
होला । हमारे चरण-मगल कोकल जौर सुन्दर है जौर । राष्ट्रमें बने-बने दुर्गम पर्वत हैं ॥३॥

संज्ञा सोह की नद घरे । अण्णा पण्डित न चर्हि मिहारो ॥

ममत्वं नास्ति कदाचिदपि । अतः सर्वं भवति । अतः सर्वं भवति । अतः सर्वं भवति ।

पञ्चोत्तरी मुसलै, सोर (सै), नदिबै, नर और नले ऐतै जगम्य और नले

हैं कि उनकी ओर देखातक नहीं जाता । रीक, बाप, मेड़िये, सिंह और हाथी देते [भयानक] शब्द करते हैं कि उन्हें सुनकर खीरब गाग जाता है ॥ ४ ॥

दो०—भूमि सयन परकेले पसीन मसनु कंद फल मूल ।

ते कि सवा सब दिन मिलहि संसुद समय अनुकूल ॥ ६२ ॥

जमीनपर सोना, पेड़ोंकी छालके कज पइनन और कन्द, मूल, फलका भोजन करना होगा । और वे भी क्या उदा उग्र दिन मिलेंगे ? सब कुछ अपने-अपने समयवे अनुकूल ही मिल सकेगा ॥ ६२ ॥

चौ०—गुर अहस रजनीकर करहीं । कष्ट वेव विधि कोटिक करहीं ॥

कागड़ अति पहार कर राखी । निपिन निपति नहि जाइ बसानी ॥ १ ॥
मनुष्योंको खानेकेले निशाचर (राक्षस) फिरते रहते हैं । वे करोड़ों प्रकारके कष्ट-रूप धारण कर लेते हैं । पहाड़का पानी बहुत ही खराब है । वनकी निपति बसानी नहीं ज्ञ सफ़ती ॥ १ ॥

व्याज कराल विद्वग कब चोरा । निशिचर फिर धारि नर चोरा ॥

हरहिं धीर धन्य भुवि जाई । मृगलोचनि तुम्ह भीक्षु भुभाई ॥ २ ॥

वनमें भीषण सर्प, मखनक पत्ती और स्त्री-पुरुषोंको पुरानेवाले राक्षसोंके झुंड-के छत्र रहते हैं । वनकी [भयङ्करता]-बाद जानेमात्रसे धीर पुरुष भी डर जाते हैं । फिर है मृगलोचनि । तुम तो स्वभापसे ही डरपोक हो ॥ २ ॥

हंसगमनि तुम्ह नहि बन चोगू । सुनि अरन्धु भौहि देहि कोगू ॥

मानस सकल भुषीं प्रतिपत्तरी । किञ्च कि कबन पयोधि मराठी ॥ ३ ॥

है हंसगमनी । तुम कबसे योग्य नहीं हो । तुम्हारे मन जानेकी बात सुनकर लोग मुझे अपयश देंगे (बुरा कहेंगे) । मानसरोवरके अमृतके समान जलसे पानी हुई हंतिनी कहीं कारे छत्रद्वयमें जी सकती है ॥ ३ ॥

नव पुलाक बस विहरनसीका । लौह कि कोटिक निपिन करीका ॥

रहहु भवन अस हृदय विचारी । चंदकदनि दुख करन भारी ॥ ४ ॥

नवीन आमके वनमें विहार करनेवाली कोकल क्या करीलके जंगलमें शोभा पाती है ? है चन्द्रमुखी । हृदयमें ऐसा विचारकर दुःख बरहीपर रहो । वनमें बंसा कष्ट है ॥ ४ ॥

दो०—साहज सुहृद गुर स्वामि सिख ओन करइ सिर मनि ॥ ६३ ॥

सो पछिताइ मघाद हर अवसि होइ हित हानि ॥ ६३ ॥

स्वभाविक ही हित चाहनेवाले गुरु और स्वामीकी शीशको जो सिर चढ़ाकर नहीं मानना, वह हृदयमें भरपेट फलकत है और उसके दिवसी हानि अवश्य होती है ॥ ६३ ॥

चौ०—सुनि मंदु वचन मनोहर सिख के । ओचन ललित मरे जल सिख के ॥

शीतल सिख दाहक मज कैसैं । कछहि ससद चंद निशि जैसैं ॥ १ ॥

प्रियतमके कोमल तथा मनोहर वचन सुनकर शीतलीके कुन्दर नेत्र जलसे भर गये । शीतलीकी यह शीतल लीस उनको जैसी जलनेजलने हुई, जैसे चकलीके धरद मृदुकी चौदनी शय होती है ॥ १ ॥

उतक न जल किञ्च नैवेही । तनन पदव सुवि स्वमि सरोही ॥

चरस रोकि निरोचन भारी । धरि धीरु डर जगतिजुमारी ॥ २ ॥

जानेकीजीसे कुछ उत्तर देते नहीं बनता, वे जल खोकर जलकुल हो उठें कि से

कीमती और इसी कीमती को छोड़कर अन्य नहीं है। लेकिन वह (मौसमों) को
छोड़कर ऐसा कोई भी अन्य मौसम दूसरे कीमती नहीं है। ३ : ३

इति शब्दः सः यः तत्र भवति । तस्मिन् भवेत् तर्हि तस्मिन् भवेत् ।

रोगों का फल सदा ही सही है। सही चिकित्सा और सही दवा ही है। ॥ २ ॥

कुल्लो पैर छातन, दान बज्जल, खल्ले ब्याँ—रे देखे । पैरें ह्य बली मारी
बिछाँने पय सीज । उरे मल्लोने पौ निख छीरे निखे मेर सर तिर जे ॥१॥

मैं हूँ, मरुतोय कीति मन काही । निज लिलेन मरु हनु अग काही ॥ ३ ॥

सद्वृत्ति के लक्षण के बिना कि पवित्र विवेक के लक्षण के बिना ही
[४४] ४४

पौ-शुभम पञ्चम्यामि शिरः सुखं सुखम् ।

सुखं विदुः एषाण्डं सुखं विदुः सुखं कथं सुखं । ५३ ।

१. जलकः । २. दलितः । ३. कुलः । ४. कुलितः । ५. कुलः ।
६. कुलः । ७. कुलः । ८. कुलः । ९. कुलः । १०. कुलः ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

समस्त समस्त एव समस्त समस्त : समस्त समस्त समस्त समस्त : १ १

मया हिंसा कदा नृणां कदा चित्, किञ्चिद् भुङ्गादपि यत्
ह्यः लभ्यते (ननु-यथा), तस्मात् सौ पुनरुक्तं सौ पुनरुक्तं इति—॥

सर्वे प्राणि भूत येन भवन्ति । तेषां हि सुखं दुःखं तेषां च मृत्युः ।

सुखं वाचं कथं वाचं । एतं विदितं वाचं वाचं ॥ १ ॥

[illegible]

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

प्रत्यक्षं तुम्हें यह बात प्यारी । मेरी प्रिय प्रिय प्रिय प्रिय ।

ये जमी लया है, धरो गायन है और गङ्गा बग-दुआ / जलसी पीर

॥ नमो भगवते ॥ हे भगवान् । माझे किं सत्य आहे असे मला माहित नाही । ॥

॥ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

नमः प्राणं पुनः नमः पुनः । नमः पुनः नमः पुनः ।

जो कि गैर-विश्वीय है, वह है। जो कि गैर-विश्वीय है, वह है। जो कि गैर-विश्वीय है, वह है।

अपराध का रोडोमी हो गया था।

श्री—एक मर्यादा विचार, मर्यादा का...

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

१ मूल । आदि । अथ । इति । एतत् । इति । इति ।

मै. १९८० ई. का है। विगत १९८० ई. का है।

समस्त आनंद सुखों का जहाँ है वही है

प्रा. पीठे

दुप विचार सारणी

उदार हृदयके कन्देवी और कन्देकल ही लख-सुरके छात्रन मेरी सार-सँभार करंगे, और कुशा और पंचोत्री सुन्दर चाकरी (निहोना) ही प्रभुके साथ कामदेवकी मनीहर तोषकके समान होगी ॥ १ ॥

कंद मूल कल कमल कमल कमल । कल कल कल कल कल ॥

चिनु चिनु प्रभु पद कमल निहोनी । चिनु चिनु चिनु चिनु चिनु चिनु ॥ २ ॥

कन्द, मूल और कल ही जम्भूके समान बाहार होंगे और [कलके] फाह ही अयोध्याके सैकड़ों राजमहलोंके समान होंगे । कल-कलमें प्रभुके चरणकमलोंको देख-देख कर मैं ऐसी आनन्दित रहूँगी जैसी दिनमें चकली खाती है ॥ २ ॥

कल कल कल कल कल कल । कल कल कल कल कल ॥

प्रभु निहोनी लखकेस समान । लख मिलि होहि न कृपानिधान ॥ ३ ॥
हे नाथ ! आपने बंधके बहुत-से दुःख और बहुत-से भय, विषाद और सन्ताप कहे । प्रभु हे कृपानिधान ! वे लख मिलकर भी प्रभु (आप) के विषोय [से होनेवाले दुःख] के लखकेसके समान भी नहीं हो सकते ॥ ३ ॥

जैसे जितने ज्ञानि सुखाने सिरोमणि । जितने संग मोहि जितने जति ॥

जितनी बहुत करी का लखनी । कलकल कल कल कल ॥ ४ ॥
ऐसा जैसा जानकर, हे सुखनिरोगिनि ! आप मुझे साथ ले लेजिये, यहाँ न छोड़िये । हे स्वामी ! मैं अधिक क्या किन्ती करूँ ? आप कलकल हैं और लखके हृदय-के अंदरकी जाननेवाले हैं ॥ ४ ॥

दी०—राखिअ लखअ ओ अखिअ लखि रहत न लखिअहि मान । ॥ ५ ॥

दीनपन्थु सुंदर सुखद सील सनेह निधान ॥ ६ ॥

हे दीनपन्थु ! हे सुन्दर ! हे सुल देनेवाले ! हे सील और प्रेमके भण्डार ! यदि अखि (कौदव वर्ष) तक मुझे अयोध्यामें रहते हैं तो जान लीजिये कि मेरे प्राण नहीं रहेंगे ॥ ६ ॥

कौ०—मोहि नग चकल न होइहि दासी । किनु चिनु चरन सौज निहासी ॥ ७ ॥

लखिअ नीति निग लेख लखिअ । लखिअ लखिअ लखिअ लखिअ ॥ ८ ॥
लख-लखमें आपके चरणकमलोंको देखते रहनेसे मुझे मर्य चतनेमें बकावट न होगी । हे प्रियतम ! मैं सभी प्रकारसे आपकी सेवा करूँगी और मर्य चकलेसे हीमेवाकी सारी बकावटको दूर कर दूँगी ॥ ८ ॥

पाम पजारी बेटि लख लखी । लखिअ कल सुखि लख माहीं ॥

अम कल सहित लख लख देस । लख लख लख लख लख ॥ ९ ॥

आपके पैर चोक, पैरोंकी छायामें बैठकर, मनमें प्रेम होकर हवा करूँगी (पला बाँदूँगी) । पत्नीकी बूँट-सहित काम शरीरको देखकर—प्राणपतिके दर्शन करते हुए दुःखके लिये मुझे अकला ही कहाँ रहेगा ॥ ९ ॥

लख लख लख लख लख लख । लख लख लख लख लख ॥

लख लख लख लख लख लख । लख लख लख लख लख ॥ १० ॥

लखल लखिअ लख और पैरोंके पते निहाकर वह दासी रहकर आपके चरण दबावेगी । बार-बार आपकी कोमल मूर्तियोंको देखकर मुक्तको मर्य हवा भी न लगेगी ॥ १० ॥

कौ प्रभु संग मोहि चित्तविहारा । लखलखि निमि लखल लखल ॥ ११ ॥
मैं सुखकरि लख लख लख । लखल लखल लख लख लख ॥ ११ ॥

प्रभुके साथ [रहते] मेरी और [ओंछ उठाकर] देखनेपास कीन है (अर्थात् कोई नहीं देख सकता) । जैसे सिद्धी स्त्री (सिद्धी) को ससोस और सियार नहीं देख सकते । मैं सुदुर्गामी हूँ और नाथ बनके योग्य है ? आपको तो तस्या उचित है और मुक्तको विल-भोग ! ॥ ४ ॥

दो०—ऐसेउ बचब फटेर सुवि जौ न हृदय विलगाव ।

तौ प्रभु विषम वियोग दुख खसिहहि पावैर प्रात ॥ ६७ ॥

ऐसे फटेर बचब सुनकर भी कब मेरा हृदय न फटा तो, हे प्रभु ! [मायम होता है] ये पामर प्राय आपके वियोगका भीषण दुःख लेंगे ॥ ६७ ॥

चौ०—कस कहि सीय बिकल यह भारी । बचन विषेणु न सकी सँभारी ॥

हेतु दस रापुएति निर्वै जाना । इति राखे नहि खसिहि माना ॥ १ ॥

ऐसा कहकर सीताजी बहुत ही व्यकुल हो गयीं । वे बचनके वियोगकी भी न समझ सकीं । (अर्थात् सारीसे विचोनीकी बात को अलग रही, बचनसे भी वियोगकी बात सुनकर वे अत्यन्त विकल हो गयीं) । उनकी यह दशा देखकर भीरुनाथजीने अपने जीमें बात किया कि हठपूर्वक इन्हें नहीं रखनेसे वे प्राणी-हो न रक्खेंगी ॥ १ ॥

कहेउ कुलस जायकुलगाथा । परिहरि सौनु बचहु बन साया ॥

नहि विषय कर भवसह-भय । बेनि कहु बन गवत सुमाव ॥ २ ॥

तब कृपाह, सूर्यकुलके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीने कहा कि खोच छोड़कर मेरे साथ बनका चलो । विषय करनेका अवसर नहीं है । तुरंत वनगमनकी तैयारी करो ॥ २ ॥

जहि प्रिय बचन सिखु समुझाई । लगे मातु पर आसिब पाई ॥

बेनि प्रजा ॥ मेळ यह । बचनी निदुर कितरि जनि जाई ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने प्रिय वचन कहकर सीताजीको समझाया । फिर माताके मेरी क्यकर बाणीपाद प्राप्त किया । [मातने कहा—] बेदा ! कबरी कौदकर प्रजाके दुःखको मिटाना । और वह निदुर माता दुगई भूक न जान ॥ ३ ॥

(पीतिदि दस विधि बहुरि कि मोरी । देखिहवै नयन मनोहर ओरी ॥

हुविह सुयरी रात कब होइहि । जवनी सिधत बहुरि बिनु मोइहि ॥ ४ ॥

हे विधाता ! क्या मेरी दशा भी फिर फलेगी ? क्या अपने तेजोंसे मैं इस मनोहर जोड़ीको फिर देख पाऊँगी ! हे पुत्र ! वह सुन्दर दिन और सुम घड़ी कब होगी जब तुम्हारी कमी सीते-जी तुम्हारा सौद-सा मुसका फिर देखेगी ! ॥ ४ ॥

दो०—बहुरि वच्छ कहि लखु कहि रापुएति सुयर तात ।

कवहि वोलाह लग्गाह हिर्यै हरषि निरखिहवै गात ॥ ६८ ॥

हे दास ! 'कस' कहकर, 'कस' कहकर, 'पुपुएति' कहकर, 'पुपुकर' कहकर, मैं फिर कब दुगई सुनकर हृदयसे भगाऊँगी और हर्मित होकर तुम्हारे अङ्गोंको देखूँगी ! ॥ ६८ ॥

चौ०—जहि सनेह कतरि महासरी । बचनु न आव बिकल यह भारी ॥

राम प्रणेणु कीन्ह विधि जाना । समउ सनेहु न जाह बलाना ॥ १ ॥

यह देखकर कि मत्ता लेहके बारे अचौर छे गयी हैं और हतनी अधिक व्यकुल हैं कि मुँहसे बचन नहीं निकलता, श्रीरामचन्द्रजीने अनेक प्रयत्नसे उन्हें समझाया । वह समय और लोह वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ १ ॥

तब जाकही लखु पर समी । सुविष साव में परम जनसती ॥

सेक सम्य दैव पनु बनिहा । मोर मनोरथु ससल न कीन्हा ॥ २ ॥

तब जानकीजी ससके पंख लगीं और बोली—हे माता ! सुनिने, मैं बड़ी ही अभागिनी हूँ । जानकी सेवा करनेके समय देवने मुझे नन्काश दे दिया । मेरा मनोरथ सकल न किया ॥ १ ॥

सतय सोयु जनि धर्मिय सोह । कसु कसिब कहु दोसु न मोह ॥
सुनि सिब बचन सासु-कलुखनी । दुसा कसनि विधि कहौ बसावौ ॥ २ ॥
आप होमका स्वाग कर दें, परन्तु कृप न छोड़ियेगा । कर्मकी गति कठिन है, मुझे भी कुछ दोष नहीं है । सीताजीके कचन छुनकर सब व्याकुल हो गयीं । उनकी धयाकी मैं कित प्रकर कलानकर चूँ ॥ ३ ॥

बारहि बार खाइ उर सीन्दी । धरि चीखु सिख गरिष दीन्ही ॥
अचल होइ अविवाहु कुन्दाय । लव लगी रंग अमुन बल भाय ॥ ४ ॥
उन्होंने सीताजीको बार बार हृदयसे ख्याना और चीख करकर धिडा दी और आर्षादि दिया कि जबतक कलुखनी और अमुनजीमें कलसी चारा बड़े तबतक दुम्हारा तुदाग भञ्जल रहे ॥ ५ ॥

दो०—सीताहि सासु मसीस सिख दीन्हि म्मेक प्रकार ।
बली बार पद पदुम सिख अति हित बारहि बार ॥ ६ ॥
सीताजीको ससके अनेकों प्रकारसे आर्षादि और निषादें दीं और वे (सीताजी) धड़े ही प्रेमेसे बार-बार करकचरोंमें फिर नवाकर करीं ॥ ७ ॥

दो०—समाचार लव लखियन बाद । व्यकुल निरुल कव्य कवि भाप ॥
कंठ पुकक लन कवन सनीरा । मुँह बसन अति प्रेम अधीरा ॥ ८ ॥
अब ध्यानकीने वे समझार पके, लव वे व्याकुल होकर उदास हुए ठठ बैठे । शरीर काँप रहा है, रोमाञ्च हो रहा है, नेत्र आँसुबोले भरे हैं । प्रेमेसे अत्यन्त अधीर होकर उन्होंने श्रीरामजीके चरण पकड़ लिये ॥ ९ ॥

कहि न सकत कसु चितवत ग्रहे । मरु दीन अहु जल हैं काये ॥
लोचु हृदयें विधि का होखिदा । सहु सुख सुखइ सिरान हमारा ॥ १० ॥
वे कुछ कह नहीं सकते, सहे-रुने देल रहे हैं । [ऐसे दीन हो रहे हैं]
मानो बलके निकले जानेपर मल्लो दीन हो रही हो । हृदयमें यह सोच है कि हे विधाता ! क्या रोनेधन्य है ! क्या हमारा सब दुख और पुण्य पूरा हो गया ! ॥ ११ ॥

मो कहु बार कव्य धुमका । चिदिहि भवनकि केहि साया ॥
राम मिलोकि रहु कर ओरें । देह रोइ सब सब दुख तोरें ॥ १२ ॥
मुझको श्रीरामायणी क्या कह्यो ! कारण रखेंगे या काय के चुकीं ! श्रीराम-चन्द्रजीने भाई अकम्पने हाथ जोड़े और शरीर तथा पर लगीसे नाना तौरें हुए खड़े देखा ॥ १३ ॥

बोले बचसु राम भव कापर । लोक छोड़ सरल मुख धरार ॥
सात प्रेम बस अवि कुरुकु । सखि हृदयें परिवस जंजल ॥ १४ ॥
लव नीतिमें निपुण और चील स्नेह, करुणा और मुलके समुद्र श्रीरामचन्द्रजी कचन बोले—हे सात ! परिणामों होनेवाले जानकर हृदयमें अकम्पन हुआ प्रेमवश, बचीर मा होगी ॥ १५ ॥

दो०—मातु पितर शुभ स्वमि सिख चिर चरि करहि सुभावे ।
उदेठ कसु सिद्ध जन्म कर मातु कसु जय जय ॥ १६ ॥

लोग माता, पिता, गुरु और स्वामीकी जिम्मेदारी स्वामिका ही फिर नवाकर
पालन करते हैं- उन्होंने ही कम लेनेका जम पाया है नहीं तो बहुतसे जन्म
भर ही है ॥ ७० ॥

चौ०-अस तिमैं जावि दुखहुँ सिम्ब भाई । कहुँ मरु पितु पद सेवकाई ॥

भवन भरा पिपुखुवहु नहीं । राख ब्रह्म सम दुख मन माहीं ॥ १ ॥

हे भाई ! दुखमें ऐसा जानकर मेरी सील तुमो और मरता-पिताके चरणोंकी
सेवा करो । मरत और मरुका परपर नहीं है, मरुकरान ब्रह्म हैं और उनके मनमें मेरा
दुःख है ॥ १ ॥

मैं कम खातै तुम्हारे छह छाया । होइ सयहि बिधि अवध अनाया ॥

पितु मरु प्रजा पतिवम् । सब कहूँ पसद दुखद दुख भाऊ ॥ २ ॥

इस अवस्थामें मैं तुम्हको साथ लेकर कम खातै तो अयोध्या सभी प्रकारसे धनाथ हो
जायगी । गुरु, पिता, माता, प्रजा और परिकर सभीकर दुःखका दुःखह भार भा पड़ेगा ॥ २ ॥

रहहुँ लखु नय कर परितोष । नरुत छान होइहि यद होष ॥

जाहुँ शक सिम प्रजा दुखारी । सो नुपु सबसि नरुत भणिकारी ॥ ३ ॥

भला तुम बही रहो और लखन संतोष करते रहो । नरु तो दे सात । बड़ा दोग
होगा । जिसके राजमें प्यारी प्रजा दुखी रहती है, वह गुना अवध ही नरुका
भणिकारी होता है ॥ ३ ॥

राहुँ बात जसि नीति सिवासी । सुवत कबहुँ मरु दबाकुल भारी ॥

किमरे कपन, सुखि नरु कैसैं । पसवैं सुखि नरु नरुत कैसैं ॥ ४ ॥

तल ! ऐसी नीति विचारकर तुम कर रह जाओ । यह सुनते ही स्वामयसी
मरुत ही ब्यकुल हो गये । इन कीलक यन्त्रोंसे वे कैसे सुख पायेंगे, जैसे पालक स्वामी
कमन सुख जात है ॥ ४ ॥

दो०-उतत न भवत प्रेम, वस गये करन भकुलाइ ।

नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह रजहु ॥ काह वृत्ता ॥ ७१ ॥

प्रेमका लभनगीसे कुछ उत्तर देते बही बनता । उन्होंने भ्रातृकुल होकर
भीष्मजीके चरण पकड़ लिये और कहा—हे नाथ ! मैं राख हूँ और आप स्वामी हैं ।
अतः आप मुझे छोड़ ही दें तो मेरा क्या सम है ? ॥ ७१ ॥

चौ०-दीहि नोहि सिमं नीकि मेसाई । जसि जगम जपवी कइराई ॥

नरुत और वसम पूर भारी । किमन नीति कहूँ ते भणिकारी ॥ १ ॥

हे स्वामी ! आपने मुझे सील तो कड़ी कन्धी दी है, पर मुझे अपनी कायस्थतासे बड़
सेरे लिये जगम (पहुँचने काहर) लगी । साध और नीतिके तो वे ही मोठ पुण्य
अधिकारी हैं जो धीर हैं और धर्मकी धुरीको धारण करनेवाले हैं ॥ १ ॥

मैं सिनु प्रभु समेहें प्रतिभाज । मंदर मेरु कि केहि सराका ॥

गुर पितु मरु न जानैं कहु । कहैं सुमाच नाथ पतिवम् ॥ २ ॥

मैं तो प्रभु (दास) के स्नेहमें पल दुगा लोय बचा हूँ । कहीं इस भी मन्दराचल
का सुमेरु पर्वतको उठा सकते हैं ! हे नाथ ! स्वभावसे ही करता हूँ, आप विश्राम करें,
मैं आपको छोड़कर गुरु, पिता, माता जिवीको भी नहीं जानता ॥ २ ॥

बौं छनि जगम सवेह समझैं । अनि प्रतीति निमन सिनु गाई ॥

मोरे समझ एक तुम्ह समझी । दीनसेनु तर अंतस्त्रासी ॥ ३ ॥

अतर्पित जलित स्नेहा सम्पन्न, प्रेम और विश्रुत है, जिनको खप बेदने गया है—हे स्वामी ! हे दीनकन्धु ! हे अपने हृदयके अंदरही जाननेवाले ! मेरे तो वे सब कुछ केवल आन ही हैं ॥ ३ ॥

धरम भीति उपदेशित गद्दी : कीसति श्रुति सुश्रुति भिन्न गद्दी ॥

मन अमर बचन श्रवण लव होई । कृपाविधु बहिरिनि कि सोई ॥ ४ ॥

धर्म और नीतिज्ञ उपदेश तो उसको करना चाहिये जिसे कीर्ति, विभूति (ऐश्वर्य) या सक्ति प्यारी हो । किन्तु जो मनुष्य बचन और कसि चरनोंमें ही प्रेम रखता हो, हे कृपाविधु ! क्या वह भी त्यागनेके योग्य है ? ॥ ४ ॥

दो०—कर्मनासिधु सुबन्धु के सुनि सुहु बचन विनीत :

समुदाय उर सार प्रभु जानि सनेह संपीत ॥ ७२ ॥

दयाके समुद्र भीषणकर्मजीने मले मारेके कोमल और तनुलुप्त बचन सुनकर और उन्हें स्नेहके कारण हरे हुए जनकर, हृदयके स्थावर समुदाय ॥ ७२ ॥

चौ०—सागधु विद्या साहु सन साई । श्रवणु केनि चहु बच भाई ॥

सुश्रुत भए सुनि श्रुत गद्दी । मरत काम कब बह रवि हाजी ॥ १ ॥

[और कहा—] हे भाई ! जाकर मातासे निरा भोग आओ और सखी बनको जना ! खुशुलमें श्रेष्ठ भीषणजीने यानी मुनकर कर्मजनी आनन्दित हो गये । यही यानि कह दो गयी और कहा काम हुआ ! ॥ १ ॥

इतिवत् इत्ये मातु पदि काय । मरतु मंद फिरि ओचर पाय ॥

साहु जगनि धन मायत माया । मनु खुन्दन सचकि साचा ॥ २ ॥

वे हरित हृदयसे मातृ सुमित्राजीके पल आये, मनसे अथा फिरले नेत्र या गया हां । उन्होंने जाकर माताके चरणोंमें मरत नम्रता । किन्तु उनका मन खुशुलकी आनन्द देनेवाले भीषणजी और जनकीजीके साथ था ॥ २ ॥

द्वि० साहु सचिक मन देखी । सचक कही लप कप बिसेयी ॥

गाई सहस्रि सुनि बचन कपोत । दया देखि दब जनु पदु मोरा ॥ ३ ॥

मातासे उदरत मन देखकर उनकी [कारण] पूछा । कर्मजनीने जब क्या बिलारसे कह सुनायी । सुमित्राजी कठोर नयनोंसे सुनकर ऐसी सख गयीं जैसे हिपनी नानों जोर दाने आम सगी देखकर खाम जाती है ॥ ३ ॥

सकल स्नेह भव मयस्य साव । पदि सखि कत कत अकल ॥

सागधु विद्या सुमय सकुचहीं । काहंसम विधि कहिहि कि गद्दी ॥ ४ ॥

कर्मजने देखा कि कान (जन) जनम हुआ । वे स्नेहका काम दिखावेंगी । इसलिये ये किदा माँसे हुए उसके गले सकुचये हैं [और कर्मजनीने बोले हैं] कि हे विद्या ! मातृ काव नानेको कहेगी या नहीं ॥ ४ ॥

दो०—समुनि सुमित्रा राम शिखरु सुसील सुमाद ।

रूप खनेहु लखि सुनेत सिर पाखिनि दीन कुदाद ॥ ७३ ॥

सुमित्राजीने भीषणजी और भीषणजीके रूप, सुन्दर शिख और संभावको नम्रकर और उनका राजका प्रेम देखकर अपना सिर हुआ (पीटा) और कहा कि प्रपिनी कैकेयीने पुटी तरह पात लगाया ॥ ७३ ॥

चौ०—वीरु मरेत कुमसर जानी । सहस्र सुख सेजी साहु नानी ॥

जत सुमरि साहु मैदेही । निरा रनु सन मीति स्नेह ॥ १ ॥

जाना

परन्तु कुसुमच वानर के वैध धारण किया और स्त्रमावसे ही हित चाहनेवाले मुनिशाली कोमल बापीसे बोली—हे तत्व ! जानकीजी तुम्हारी माता हैं और सब प्रक्रमे लोह करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे पिता हैं ! ॥ १ ॥

जब यह सही जहाँ राम विधासू । तहाँही विष्णु चहें जानु प्रकासू ॥

जो वै सोच राखु मन जहाँ । जयत हुम्हार कानु कानु पाहों ॥ २ ॥

ज्यों श्रीरामचन्द्रका निवास हो वही अयोध्या है ! जहाँ सूर्यका प्रकाश हो वहीं दिन है । यदि निवास ही सीता-राम करने जाते हैं तो अयोध्यामें तुम्हारा कुछ भी काम नहीं है ॥ २ ॥

सुन पितु सखु बंधु सुन छाई । सेहनाहि सकल ज्ञान की नाई ॥

रामु प्राणप्रिय सीतच जी के । सखय रहित सखा सबही के ॥ ३ ॥

सुन, पिता, माता, भाई, देवता और स्वामी, इन सबकी सेवा प्राणके समान करनी चाहिये । फिर श्रीरामचन्द्रजी तो प्राणोंके भी प्रिय हैं, हृदयके भी जीवन हैं और सभीके स्थायीरहित सखा हैं ॥ ३ ॥

पूजनीय प्रिय परम जहाँ से । सब मानिनाहि राम के कहे ॥

अस तिरै जनि संग बन जाहू । केहु छास मन जीवन लाहू ॥ ४ ॥

भगवत्में अर्थात् पूजनीय और परम प्रिय खोज है, वे सब रामजीके नातेसे हैं [पूजनीय और परम प्रिय] मानने योग्य हैं । हृदयमें ऐसा जानकर, हे तत्व ! उनके साथ बन जाओ और जगत्में जीमेका काम उठाओ ! ॥ ४ ॥

सौ—भूमि साग माछनु भयहु मोहि समेत बकि जाई ।

जो तुम्हारे मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद छाई ॥ ५ ॥

मैं बलिहारी जाती हूँ, [हे पुत्र !] मेरे समेत तुम बड़े ही सौभाग्यके पात्र हुए जो तुम्हारे चित्तने छल छोड़कर श्रीरामके चरणोंमें स्नान प्राप्त किया है ॥ ५ ॥

सौ—पुत्रवती कुवती जन सोई । राघवति भगनु रामु सुपु होई ॥

पतय गँस अकि नादि निजानी । सम बिदुष सुत हैं हित दात्री ॥ ६ ॥

संसारमें वही दुखी स्त्री पुत्रवती है जिसका पुत्र श्रीरामचन्द्रजीका भक्त हो । नहीं तो जो रामसे विमुख पुत्रसे अपना हित जानती है, वह तो गँस ही अच्छी । पशुकी भीति उसका भ्रान्त (पुत्र प्रसन्न करता) स्पर्श ही है ॥ ६ ॥

तुम्हारेदि भाग रामु बन जाही । दूसर देह राख कहु नाहीं ॥

सकल सुकृत कर बड़-फळु पढ़ा । राम सीत पद सख्य समेह ॥ ७ ॥

तुम्हारे ही मागसे श्रीरामजी बनको जा रहे हैं । हे तत्व ! दूसरा कोई कारण नहीं है । सम्पूर्ण पुण्योंका सबसे बड़ा फल यही है कि श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें स्नायार्थिक प्रेम हो ॥ ७ ॥

रगु रोपु इमिष नहु मोह । जनि सनेहै हृन्ध के बस होह ॥

सकल प्रमद विकार विहाई । तब तब बचन कहेहु सेवकाई ॥ ८ ॥

रग, रोष, ईर्ष्या, मद और मोह—इनके बस लग्नमें भी मत होना । सब प्रकार के विकारोंका त्याग कर केवल बचन और कहे श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा करना ॥ ८ ॥

हृन्ध कहे मन सब गीति सुपाम । सेव मैलु मायु राखु सिध जाहू ॥

जोहि न रामु बन जाहै कहेसु । सुख सोह कोहु इह उपदेसु ॥ ९ ॥

तुमको बनमें सब प्रकारसे जीराम है जिसके साथ श्रीरामजी और जीतानीराम

पिता-माता हैं । हे पुत्र ! तूग वही करना जिससे श्रीरामचन्द्रजी कर्मों वल्लेख न पारें,
मेरा वही उपदेश है ॥ ४ ॥

छं०—उपदेश सुन्य जेहि बात तुम्हारे राम सिख सुन पावहीं ।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं ॥
तुलसीप्रभुहि सिख देह आयसु दीन्ह पुनि भासिय वर ।
रति होइ अचिरल ब्रम्ह सिख एतुषीर पद नित नित नई ॥

हे बात ! मेरा वही उपदेश है (अर्थात् तूग वही करना) जिससे कर्मों तुम्हारे
कारण श्रीरामजी और सीताजी सुख पावें और पिता, माता, प्रिय परिवार तथा नगरके
सुखोंकी याद भूल जावें । तुलसीदासजी कहते हैं कि सुमित्राजीने इस प्रकार हमारे प्रभु
(श्रीरामजी) को शिक्षा देकर [वन जानेकी] आज्ञा दी और फिर वह आशीर्वाद
दिया कि श्रीसीताजी और श्रीसुग्रीवजीके कारणोंसे तुम्हारा निर्मल (निष्काम और
ब्रह्म) एवं प्रगाढ़ प्रेम नित-नित नया हो ।

नौ०—मातु चरण सिख गह बले तुल्य संकित उपर्यै ।
बागुर बिषम कोराह मगहुँ भय सुनु माग वस ॥ ७५ ॥ ॥ ॥
माताके चरणोंमें सिर नवाकर हृदयमें डरते हुए [कि अब भी कोई निग्रह न
आ जाय] लक्ष्मणजी बुरत इस तरह चला-दिने जैसे सौमन्यका कोई हिरण कठिन
पदको टुटकर भाग निकल हो ॥ ७५ ॥

चौ०—गए लखनु नई जायकिनय । मे. मन सुविध पाइ प्रिय जंघ ॥
बंदि राम सिख चलन सुदृढ । पळे संग चुपमंदिर जाइ ॥ १ ॥
लक्ष्मणजी यहाँ शयने जहाँ श्रीजानकीनायकी थे, और प्रियका साथ पाकर मनमें
थके ही प्रसन्न हुए । श्रीरामजी और सीताजीके सुन्दर चरणोंकी कम्पना करने से उनके
हाथ पळे और राजमनमें आये ॥ १ ॥

कहि बरखर पुर न नारी । भलि बवाह विधि बल विगारी ॥
तन कल मन बुझु बदन मंडीनि । बिकल मगहुँ मन्वी सगु छीने ॥ २ ॥
नगरके स्त्री-पुरुष आपसमें कह रहे हैं कि विधातने खूब बनाकर बात बिगाड़ी ।
उजके छरीर दुबले, मन दुखी और, मुख उदास हो रहे हैं । वे ऐसे व्याकुल हैं जैसे
बार छीन जिये जानेपर शहरकी मस्जिदों व्याकुल हों ॥ २ ॥

कै मीतहि सिख पुनि पछिताही । बनु बिनु कंठ विहय बकुछाही ॥
मह बनि मीन मूष दसला । कनि न जह बिषादु मपरा ॥ ३ ॥
सब हाथ मल रहे हैं और सिर झुनकर (पीटकर) पकटा रहे हैं । मानो बिना
पलके पत्नी व्याकुल हो रहे हों । राजदरबार वही भीड़ हो रही है । अथवा विषादका
कानन नहीं किया जा सकता ॥ ३ ॥

सचिव उठाइ सत बैसरे । कहि प्रिय कथन कसु पशु पारे ॥
सिख समेत दोउ लख विहारी । बकुल बसत सुनिवसि मारी ॥ ४ ॥
श्रीरामचन्द्रजी पछते हैं वे प्रिय वचन कहकर मन्त्रीने राजको उठाकर बैठाया ।
दीनसहित दोनों पुरुषोंके [उनके लिये बैसार] देखकर राज बहुत व्याकुल हुए ॥ ४ ॥
दो०—सीध संहित सुत सुमय दोउ देखि देखि बकुछाह ।
बारहि बार सनेह कस राव लेह वर खाइ ॥ ७६ ॥

सौदागरि होतों सुन्दर पुत्रोंसे देख-देसकर राधा बाकुबने हैं और लंछनम
 यारदार उन्हें हृदयने लगा लेते हैं ॥ ७५ ॥

प्रीति-संसार म धीरहि सिद्धि करिष्येह । लोक जनिष म सुख दारु ॥

नाइ सीलु एर ओरि म्मुसन्न । उरि सुवर्त विरा लव मारा ॥ १ ॥

१॥ नमः शिवाय ॥ १ ॥

विद्युत् चालक पदार्थों में विद्युत् धारा प्रवाहित करने पर ताप उत्पन्न होता है।

कृष्ण विष्णुं विष्णुं विष्णुं प्रसादं । तन्मन्त्रं जपेत् श्रीं भवनात् ॥ २८ ॥

३. शिवाजी ! तुझे आशीर्वाद और आग्रह मिलिये । इसके समय धार होकर बर्षा का रहे हैं । हे सत्त ! इसके प्रेमका प्रभाव (कर्माव्ययमि भुक्ति) करनेसे सगर्भमें यश प्राप्त होगा और निन्दा होगी ॥ २ ॥

अग्नि स्नेह पक्ष यदि तत्साधो । कैन्दरे सुगन्धि गन्धि मर्हो ॥

सुखसुखात् सुखं ब्रह्मे सुखि ब्रह्म । ससुखं चराचरं नास्ति अहर्नि ॥ ५ ॥

भारत का—देहात ! सुनो! सुनो! जिने मुक्तिमेव करते हैं कि शीघ्रम वरपरके सामी है । (७)

सुखं त्वं कुरुष्व नमः भवतु । ईश्वरं त्वं कुरुष्व भवतु ।

हरि वो कर्म कर फल सोई । निगम गीते अति कर स्तु सोई ॥ ४ ॥

कुल और अकुल कर्मेक अनुसार अंधार दुखमें विचारकर देता है। जे
करी जता है वही कल कता है। ऐसी मेरवी नीति है, वह सब कोरे कपरे है ॥ ४ ॥

जो कर्म करे मनुष्य सोर और पाप फल भोगे।

अति दिविम भगवन्त रति को जग आवै कोहु ॥ ७७ ॥

किन्तु इत अन्वय यह तो हमने चिन्तित हो गया है।] अथवा तो कोई और
 ही कर और अन्वय फलका मोहा कोई और ही पाने। अन्वयही अन्वय नहीं ही विभिन्न
 है। उन्ने अन्वयही अन्वय अन्वय ही है ? ॥ ३० ॥

चौ-रावै राम राखन हिन असी । बहुत राखन किन्हु अन्ध राखी ॥

मन्त्री राज दत्त चहूठ न जाने । धर्म दुर्धर धीर सपाये ॥

गमने हन प्रकर अंगप्रकटनीको रत्ननेके खिरे लख छोड़कर बहुतसे उपाय
किय। फ लसे उन्होंने चर्ममुद्राकर और और बुद्धिमान औरप्रसीध दख देत किय।
और ये रहते हुए न कम भये ॥ १ ॥

॥ अथ लक्ष्मी संहारः ॥ अतिशय दुःखं भवति ॥

यदि ॥ के तुल्य तुल्य भुजए । सत्सु सत्सु निह तुल्य स्तुतिमाए ॥ २ ॥

सह रागानि विद्यामयीं हृदये तदा विद्या वीर ये येनैव वदुः प्रकटयति विद्या
दी । बनेषु ॥ इति हस्त श्रेष्ठ मुद्रा । चिर मन्त्र सङ्ग्रह नवा विद्यासु ॥ पाल यन्त्रे ॥
मुद्रासु समाप्ता ॥ २ ॥

सिन्धु रात्रि पलने अनुप्राण । धन ननुप्राण वनु निपु न काणा ॥

मौलाना सचिव सचिव सचिव । यदि कोई विधि विरुद्ध विधि ॥ ३ ॥

पञ्चमः नैराश्वीयः माघीराज्यः नक्षत्रं वनुराहः ॥ इत्येते उक्तं च

अच्छा नहीं लगी और न कन मवानक लगा । फिर और सब लोगोंने भी कनमें कपितियोंकी अधिकता बता-बताकर सीताजीको समझाया ॥ ३ ॥

सचिव पारि शुर नारि सखनी । सहित समेह कहहिं सुहु वानी ॥

हुम्ह कहूँ तो न दीन्ह बनजसू । कस्तु जो कहहिं समुर शुर सासू ॥ ४ ॥

मन्त्री सुमन्त्रजीकी पत्नी, और शुर वशिष्ठजीकी स्त्री अम्बवतीजी, तथा और भी चहुर कियों स्नेहके साथ कोमल वाणीसे कहती हैं कि तुमको तो [राजाने] पनवास दिया नहीं है । इसलिये जो समुर, शुर और सासू कहें, तुम तो वही कपो ॥ ४ ॥

दो०—सिख सीतलि हित मधुर सुहु मुनि सीतहि न सोहानि ।

सरद चंद चंदिनि लगत अनु चर्चई अकुलानि ॥ ७८ ॥

यह सीतल, हितकारी, मधुर और कोमल सीख सुननेर सीताजीको अच्छी नहीं लगी । [वे इस प्रकार व्याकुल हो गयीं] मानो सरद सुहुके चन्द्रमाकी चाँदनी लगते ही चर्चई व्याकुल हो उठी हो ॥ ७८ ॥

चौ०—सीख सकुच कस उत्तम न देखै । सो मुनि नमहि उठी कैकेई ॥

मुनि पट भूषण भाजक आवी । जामें धरि बोली सुहु वानी ॥ १ ॥

सीताजी संकोचकण उत्तर नहीं देतीं । इन बातोंको सुनकर कैकेयी तमककर उठी । उसने मुनियोंके यक्ष, आकुरण (मांस, मेलाल आदि) और वस्त्र (कमण्डलु आदि) लेकर भीरामचन्द्रजीके आगे रख दिये और कोमल वाणीसे कहा— ॥ १ ॥

सुपहि प्राचयिष्य तुम्ह रघुवीर । सील समेह न छविहि भीरा ॥

सुकुल सुजसु बरखेकु मलाक । तुम्हदि जाग बन कहिहि नकाक ॥ २ ॥

हे रघुवीर ! राजाको तुम प्राणोंके समान दिय हो । मीर (प्रेमवास दुर्गल हृदयके) राजा सील और स्नेह नहीं छोड़ेंगे ! पुण्य, सुन्दर वन और परखेक खाते मष्ट हो जाय, पर तुम्हें वन जानेकी वे कभी न कहेंगे ॥ २ ॥

जस विचारि सोइ कहु जो भावा । राम जगदि स्थित मुनि सुसु पावा ॥

सुपहि वचन जगसम लागै । छवि न जाय पृथान भवाने ॥ ३ ॥

ऐसा विचारकर जो तुम्हें अच्छा लगे यही करो । मलाकी सील सुनकर भीरामचन्द्रजीने [बड़ा] सुल पाया । परन्तु राजाको ये वचन वाक्यके समान लगे । [वे सोचने लगे] अब भी अमागे प्राण [क्यों] नहीं निकलते ! ॥ ३ ॥

लोग विचक मुहंलित नरनाह । पाह करिष्य सुस न काह ॥

रामु सुरत मुनि केहु बगई । लखे जनक जगनिहि सिर नाई ॥ ४ ॥

राजा मुहलित हो गये, लोग व्याकुल हैं । किसीको कुछ चला नहीं पड़ता कि क्या करे । भीरामचन्द्रजी सुरत मुनिप्र पेश बनाकर और मला-पिलाको फिर नवाकर सब दिये ॥ ४ ॥

दो०—सखि बन साजु समाजु सबु वनित वंशु समेत ।

ववि विश्र मुर चरन प्रसु चले करि सर्वाहि अचेत ॥ ७९ ॥

पनका सब साज-सामन सबकर (वनके लिये आवश्यक वस्तुओंको साथ लेकर) भीरामचन्द्रकी स्त्री (भीरसीताजी) और भार्द (नक्षत्रजी) सहित ब्राह्मण और मुनिके चरणोंकी बन्दना करके सबको अचेत करके चले ॥ ७९ ॥

चौ०—निकसि पसिह इम मध लड़े । देखे खेय बिरह नव दड़े ॥

कहि प्रिय वचन सखल समुदाय । बिज कुंद रघुवीर बोलाय ॥ १ ॥

रावणहृदये निकलकर श्रीरामचन्द्रजी वशिष्ठजीके दरबारेपर जा सहे हुए और देखा कि सब लोग विराहजी वस्त्रमें बल रहे हैं। उन्होंने प्रिय वचन कहकर मरणा समझाया। फिर श्रीरामचन्द्रजीने ज्ञाहणोंकी कृपाकीसे बुझया ॥ १ ॥

पुर सब कहि जगससन दीन्हे। आहुर हाथ निचय बस कीन्हे ॥

चापक हाथ मान खेले। मीत पुनीत प्रेम परितोपे ॥ २ ॥

गुरुजीके कहकर उन सबको वर्षासन (वर्षाकरा मोक्ष) दिये और आदर, दान तथा जिनयसे उन्हें वस्त्रों कर दिया। फिर रावणको दान और मान देकर सन्तुष्ट किया तथा मित्रोंको पवित्र प्रेम्से प्रसन्न किया ॥ २ ॥

हासीं बाल चोकरा बहोरी। गुरहि सीरि कोक कर जोरी ॥

लप है लल सँभार गोसाईं। करि जनक जननी की नाई ॥ ३ ॥

फिर दास-दासियोंको बुझकर उन्हें गुरुजीको सौंपकर, हाथ जोड़कर बोले—
गुराई। इन सबकी माता-पिताके समान बार-सँभार (देख-रेख) करते रहियेगा ॥ ३ ॥

बारहिं घर जोरि जुग पानी। कहत रासु सब सन सुनु बानी ॥

सोह शव भीते मोर दितकरी। चेदि सँ रई भुआल सुपारी ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बार-बार दोनों हाथ जोड़कर सबसे क्रमशः वाणी कहते हैं कि मेरा सब प्रभुने हितकारी मित्र करी होगा जिसकी चेष्टासे मङ्गलान सुखी रहें ॥ ४ ॥

रो—मातु सकल मोरि बिहई जेहि न होहि दुख दीन।

सोह उपाउ. तुम्ह करहु सब पुर जन परम प्रमीन ॥ ८० ॥

हे परम चतुर पुरवारी समजो! आपलोग सब वही उद्धार करियेगा जिससे मेरी सब माताएँ मेरे विरहके दुःखसे दुखी न हों ॥ ८० ॥

चौ—गुरहि भिदि राम लखि सुखसाया। गुर पर पदुम हरषि सिख नाका ॥

गणपति गौरी भिरिमु मगई। चले ज्योतिष राह राहुराई ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीरामजीने सबको समझाया और हर्षित होकर गुरुजीके शरणकर्मजोंमें फिर नवाया। फिर गणेशजी, पार्वतीजी और ज्योतिषाग्नि महादेवजीको मनाकर तथा भगवान् १५ फकर श्रीरामनाथजी चले ॥ १ ॥

राम क्यदा अति भयक विवाह। सुनि न जाह पुर भवत नाद ॥

कुम्भपुर लंक भयक अति सोह। हरष विवाह विषस सुखलोक ॥ २ ॥

श्रीरामजीके कहते ही कदा मारी विवाह हो गया। नगरका आलंकार (हाहाकार) सुना नहीं जाता। कुम्भमें कुं कुं होने लगे, ज्योतिषाग्नि अत्यन्त शोक का राग और देवलोकां का हर्ष और विषय दोनोंके कर्म हो गये। [हर्ष इस बातका था कि भव राजलोक नाश होगा और निराद ज्योतिषावासियोंके शोकके कारण था।] ॥ २ ॥

गद सुरका सब मूरति लये। जेहि सुमंतु कह्य अस काये ॥

रासु चले सब जान न जाहीं। केहि भूख लागि रहत एक माहीं ॥ ३ ॥

मूर्त्त दूर हुई, उन सबका जाने और सुमन्तको बुझकर ऐसा करने लगे—श्रीराम कुलको चले गये, प्र मेरे प्राण नहीं जा रहे हैं। न जाने वे किस सुराके गरीबों टिक रहे हैं ॥ ३ ॥

एहि सँ जनन ज्यथा कलकल। जे हनु बह लखि तनु प्राना ॥

सुनि धरि चीन जाह बरकह। जे रासु लंक सखा तुम्ह पाह ॥ ४ ॥

इसके अधिक कलकली और चीन-ची ज्यथा होगी जिस दुःखको फकर प्राण

झरि को छोड़ेंगे ! फिर धीरे धीरे राजा कहें—दे सता ! तुम यह लेकर
योगमके साथ जाओ ॥ ४ ॥

दो०—सुति सुकुमार कुमार दोउ जनकभृता सुकुमारि ।

रथ चढ़ाई देखपड़ वनु फिरहु यहाँ दिन चारि ॥ ८१ ॥

अत्यन्त सुकुमार दोनों कुमारोंके और सुकुमारी जनकीके रथमें चढ़ाकर, वन
दिसलाकर चार दिने बाद लौट आना ॥ ८१ ॥

चौ०—जौ नहि फिरहि धीर दोउ माई । सखसख जगत् खुरई ॥

तौ दुग्ध विनय करेहु कर जोई । केरि प्रभु मिथिलेसकिमोरी ॥ १ ॥

यदि धैरवान् दोनों माई न लौटें—क्योंकि श्रीरामायणी प्रणके अपने और दृढ़तासे
नियमका पालन करनेवाले हैं—तो तुम हाथ जोड़कर विनती करना कि हे प्रभो !
जनककुमारी सीताजीको तो लौटा दीजिये ॥ १ ॥

जब सिय कानन देखि बेराई । कहेहु मोरि सिला भवसह पाई ॥

सासु ससुर कल खेद सँवेस । पुनि फिरि स बन बहुत कहेस ॥ २ ॥

जब सीता वनको देखकर उन्हें, तब मौका पाकर मेरी वह सीत उठने काइना कि
कुन्दारे साथ धीरे छुड़ने देस कन्देन कहा है कि हे पुनी ! तुम लौट चले, वनमें
बहुत खेद है ॥ २ ॥

पिहणह कमहुँ कमहुँ कसुरारी । रहेहु यहाँ यधि होइ तुम्हारी ॥

पदि भिक्षि कहेहु तपाय कदंब । फिरहु होइ प्राय भवसंवा ॥ ३ ॥

कभी पिताके घर, कभी ससुराल, यहाँ तुम्हारी इच्छा हो, यहाँ रहना । इस प्रकार
तुम बहुतसे उपाय करना । यदि सीताजी लौट आनी होमेरे प्रणोंको सहारा होजायगा ॥ ३ ॥

माई ते सौर मनु परिषामं । कहुँ न बलाह भयंकिमि कामा ॥ २१-६०

भक्त कहि मुखि-वत महि-राक । उमु कहुँ सिय मति देवाक ॥ ४ ॥

नहीं तो मन्त्रमें मेरा मंत्र ही होगा । विषाक्तके विषाक्त होनेपर कुछ वग नही
मन्त्र । हा ! राम, मन्त्र और सीताको लेकर बिसागो । ऐसा कहकर एका मूर्छित
होकर धूम्रधर फिर पड़े ॥ ४ ॥

दो०—पाइ राजयसु नाइ सिह रतु अति बेग बन्नाह ।

गयल जहाँ बाहेर मगर-सीध सहित दोउ माइ ॥ ८२ ॥

मुमन्त्रकी राजाजी जाकर पाकर, फिर नवाकर और बहुत बरी रथ बुझाकर
वहाँ गये जहाँ नगरके बाहर सीताजीसहित दोनों माईयें ॥ ८२ ॥

चौ०—सब सुख सब वन सुखा । करि विनती रत रतु कहाए ॥

यदि एष सीध सहित दोउ माई । अले दूरसे अवधि सिध-वाई ॥ १ ॥

तब (यहाँ पहुँचकर) मुमन्त्रने राजाके वचन श्रीरामचन्द्रजीको सुनाये और विनती
करके उनकी रथपर चढ़ाया । सीताजीसहित दोनों माई रथपर चढ़कर दूरसे अवधको
लिए नवाकर चले ॥ १ ॥

चकत राम लखि अवध जगता । किन्तु लोग सब जाने सता ॥

कुपसिनु कुविधि संसृज्यहि । फिरहि प्रेम सब पुनि फिरि आवहि ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजीको जाने हुए और अवधको जाना [होते हुए] देखकर सब
लोग व्याकुल होकर उनके साथ हो लिये । कुपके समुद्र श्रीरामजी उन्हें बहुत तपने
जगताते हैं, तो वे [अवधको ओर] लौट जाते हैं; परन्तु प्रेमका फिर लौट आति है ॥ २ ॥

भाषति स्वयं स्वयंवि सती । सबहुँ कालहिँ जीवित ॥
 घोर डंगु स्या फुल नर बाधे । सरहिँ एबाहिँ मूक निहारी ॥ २ ॥
 भयोन्मापुरी पत्नी दरकती तब खी है । मानो कल्पदासी धनदावि दी हो ।
 नवके न-नारी गणनक वस्तुओंके समान एक-दूसरेको देखकर न रहे ॥ २ ॥
 क मलान परितव बलु बूझ । सुख हित रीत डरुं डरुं ॥
 अमरु जिय देखि झुझिवाही । खसि सरोवर बेरि न पानी ॥ ३ ॥
 हर श्रमाल, पुटुमी मूंगे और पुनः दिगैरी और मूंगे । मनो बगलके ॥
 ॥ स्त्रीचर्मों एक और केँ हुंरवा पी हैं । नदी और खालव एगे ध्यानक लागे
 हैं कि उन्नी और देखा भी नहीं जाता ॥ ४ ॥

गो—एक राव फोहियुं बेठिमूम पुरषसु चापल गोर ।

फिर रथोंन सुक सरिख सारख हंस खटोर ॥ ८३ ॥
 कजहो बोले एषी; सेबेने किये फले हुए दिज, नगरके [पाक, पैक, बकरी
 भादि] पक, रती; पांश, कोक, चक्रे, लोले, मना; कल, रस और पकोर—॥ ८४ ॥
 चौ—पुन विवोध विवध सय जने । कई कई सबहुँ गित छिरी कर्ष ॥
 ॥ पात सफल धनु खड्ग, खरी । सबसुख विपुल लभ्य नर करी ॥ १ ॥
 श्रीरामजीके विदोममें सभी व्याकुल हुए नहीं-रही [ऐसे भुरगप फिर होकर]
 कई है । मानो हस्तीरोंमें खिलकर पनाये हुए हैं । समर मानो पड़ते परिपूर्ण बड़ा भारी
 लान बन था । समरनिवासी उन की-पुन बहुत-से मनुष्यी थे । (अर्थात् अय्यपुरी
 अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारो पदोंको देनेवाली नगरी थी और उन की-पुन सुलभे उन
 पदोंको प्राप्त करते थे ।) ॥ २ ॥

विधि कैहई विवदिकि कीन्ही । कैहिँ वन दुखहुँ पसहुँदिसि कीन्ही ॥
 सहि न लके खूपर निरहारी । पके डोम स्र व्याकुल भागी ॥ १ ॥
 विचारने केकेगीको भीन्ही बनाया; मिलने दश दिवसोंमें हुआ बापासि
 (भयानक धाम) गया दी । श्रीरामचन्द्रजीके निरहारी इस अर्थको लगे वह न लगे ।
 का लोग व्याकुल होकर भग्न पड़े ॥ २ ॥

सबहिँ विचरु कीन्ह मय माहीं । सम कजन विष विनु, बुरु नहीं ॥
 कहीं एहुँ कई सङ्ग समसु । विनु खुशीर अथ नहिँ काहु ॥ ३ ॥
 अपने मनमें विचार कर लिया कि श्रीरामजी, लक्ष्मणी और सीताजीके बिना
 सुख नहीं है । कहीं श्रीरामजी रहेंगे, कहीं खरा खालव रहेगा । श्रीरामचन्द्रजीके बिना
 श्रीरामोंमें हमलोगोंका कुछ काम नहीं है ॥ ३ ॥

कले सब मल जंझु ग्रहई । मुर हुलैन दुख सदन पिहई ॥
 गम जल पंकज छिन्न सिन्धुही । विषर योगरुत करहिँ कि सिन्धुही ॥ ४ ॥
 ऐसा विचार हृद करके देवताओंको भी दुर्लभ सुखोंसे पूर्ण नहींको छोड़कर एव
 श्रीरामचन्द्रजीके साथ पक पड़े । किन्तु श्रीरामजीके करणकाळ प्यारे हैं, उन्हें क्या
 कमी विषमोग कछों कर सकते हैं ॥ ४ ॥

गो—बाळक हृद विहाइ रहई लगे खेम सब साथ ।

तमसा तीर निवासु किय प्रथम दिवस रघुनाथ ॥ ८५ ॥
 कबो और बूढ़ोंको कोंमें छोड़कर लगे खेम साथ हो लिये । पहले दिन औररुनाथ-
 लोने श्रम नहीं तीरर निवास किया ॥ ८५ ॥

चौ०—रघुपति प्रजा प्रेमवत् देखी। सदाय दुर्बल पुष्ट भवत विशेषी ॥

कलामय रघुनाथ सोही। केन पाव्यहि नीर पराई ॥ १ ॥

प्रजाको प्रेमवत् देखकर श्रीरघुनाथजीके दयालु हृदयमें बड़ा दुःख हुआ। ॥ श्रीरघुनाथजी कदापि नहीं। परन्ती प्रजाको वे दुरंत पा जाते हैं (अर्थात् दूसरेका दुःख देखकर वे दुरंत स्वयं दुःखित हो जाते हैं) ॥ १ ॥

कहि प्रेम सखु बन्ध सुदृढ़। कहुनिहि राम लोग समुदाय ॥

कि प्रेम उपदेस धरै। लोग प्रेम मत निरहि न करै ॥ २ ॥

प्रेमयुक्त कामल और सुन्दर वचन कहकर श्रीरामजीने बहुत प्रकारसे लोगोंको समझाया और बहुतोंके भयंकरमन्त्री उपदेस दिये परन्तु प्रेमवत् लोग लौटये लौटते नहीं ॥ २ ॥

सीखु सनेहु छवि नहि आई। असमंजस मत से रघुआई ॥

लोग लोग कम मत कर सोई। कहुक देखनवी मति मोई ॥ ३ ॥

सीख और सनेह छोड़ा नहीं जाता। श्रीरघुनाथजी असमंजसके अधीन हो गये (हृदयमें पड़ गये)। शोक और परिमन (वक्कवट) के मारे लोग सो गये और कुछ वक्ताओंकी भाषासे भी उनकी बुद्धि मोहित हो गयी ॥ ३ ॥

कहिहि काम लुग कामिनि धोती। राम सखि सब कहैउ समीची ॥

कोरा मोरि रघु हकिहु लाल। कम उपर्यै बनिहि नहि बात ॥ ४ ॥

जब हो पहर रात पीत गयी, तब श्रीरामचन्द्रजीने प्रेम्पूर्वक मन्त्री सुमन्त्रसे कहा— ॥ बात। रथके खोज मारकर (अर्थात् पहियोंके चिह्नोंसे दिखाकर वज्र न चके इस प्रकार) रथको हँकिये। और किसी उपपत्ते बात नहीं बनेगी ॥ ४ ॥

दो०—राम सकल सिय जान यदि संभु चरण सिद्ध कर।

सखिबैं सकलपद दुरंत रघु इत बत मोह दुराई ॥ ८५ ॥

राक्षसजीके चरणोंमें फिर नयाकर श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी रथमें उभार हुए। मन्त्रीने दुरंत ही रथके, इतर-उपर लोग छिपकर बस दिया ॥ ८५ ॥

चौ०—साये सकल लोग आई लोक। ये रघुनाथ अबत अति लोक ॥

रथ कर लोग कहैं नहि लखी। राम राम कहि लखैं विरि पावहि ॥ १ ॥

खेत होते ही सब लोग जागे, तो कहा शोर मचा कि श्रीरघुनाथजी चले गये। नहीं रथका लोग नहीं पाते। राम राम-॥ राम ? पुकारते हुए चारों ओर दौड़ रहे हैं ॥ १ ॥

मनहुं करिनिहि लुग पहारु। मन्त्र विवक कद बनिह समारु ॥

एकदि एक देहि उपदेसु। लगे राम इन जगि कलेश ॥ २ ॥

माने समुद्रमें जहाज डूब गया हो। किसी जहाजारीबोंका समुदाय बहुत ही आक्रुष्ट हो उठा हो। ये एक दूसरेको उपदेस देते हैं कि श्रीरामचन्द्रजीने हमलोगोंको छोड़ा होगा। यह जानकर खेद दिया है ॥ २ ॥

निदहि आधु सराहि मीन। विन-लोचनु रघुनीर विहीन ॥

सी वै विन विहीनु विधि पमिह। ली कद मरनु नं खों दीनह ॥ ३ ॥

वे लोग अपनी म्रित्यु करते हैं और मछलियोंकी उपहवा करते हैं। [कहते हैं—] श्रीरामचन्द्रजीके विना हमारे जीनेको विचार है। विचारने यदि दूसरेका विमोह ही-रक्षा, तो फिर उसने भोग्यपर रघु क्यों नहीं दी ॥ ३ ॥

एहि बिधि कल प्रलय कलरा । जग भगव भरे परित्याग ॥

विषम कियोसु न वाइ बखान । कदपि अल सख तनहि जान ॥ ४ ॥

इस प्रकार बहुत-से शिष्य करते हुए वे मन्त्रालये भरे हुए श्रवणार्ज्यमें आये । उन लोगोंके विषम निवेदनोंकी दशाका कान नहीं किया जा सका । [चौदह मात्रकी] अवधित्री आवासे ही वे प्राणोंमें स्व रहे हैं ॥ ४ ॥

शे०—यस दरस हित तेम जत छगे करन नर नरि ।

मनहुँ कोक कोसी कमल दीन विहीन तमारि ॥ ८६ ॥

[सप्त] श्री-पुष्प श्रीगणेशजीके दर्शनके लिये नियम आग भन करने लगे और ऐसे दुखी हो गये जैसे जन्मा, मज्जी और कमल सर्वदे पिना छीन हो गये हैं ॥ ८६ ॥

चौ०—सखा सखि सहित रीठ भाई । संसारेपुर पहुँके जाई ॥

वतरे राम देखतरे पैसी । कोइ दंडवत हरतु कितेपी ॥ १ ॥

सीताजी और मन्मथप्रिय दोनों भाई मंगलपुर ना पहुँचे । वहाँ गङ्गाजीका टेककर श्रीरामजी गये उतर पडे और वडे हर्षके साथ उन्होंने दण्डवत् की ॥ १ ॥

कहान सखिनि सिये सिद्ध प्रवाम । सहि सहित सुख बाध राम ॥

गंग सकल सुद मंगल सूख । राम सुख करन हरन सब सुख ॥ २ ॥

लक्ष्मणी, सुमन और सीताजीने भी प्रणाम किया । उनके साथ श्रीरामचन्द्रजी-ने सुख जया । गङ्गाजी समस्त आनन्द-मङ्गलोंकी मूल है । वे सब सुखोंकी करनेवाली और सब पीड़ाओंकी हरनेवाली हैं ॥ २ ॥

कहि कहि कोकिक क्या प्रसन्न । रामु किबोकाहि कंय लरगा ॥

कपिकहि भनुवहि त्रिवि सुखई । विदुष गरी मदिरा अधिकई ॥ ३ ॥

मनके कथ-प्रसंग कहते हुए श्रीरामजी गङ्गाजीकी तरफोंकी देख रहे हैं । उन्होंने मन्मथको, छोटे भाई लक्ष्मणजीको और त्रिवि सीताजीको देखली । गङ्गाजीकी वही मदिरा सुनायी ॥ ३ ॥

मनहुँ कोइ पंथ भन सक । सुचि नारिकेल मुदित सब भयक ॥

सुमिरत नहि मिदु भन भाक । तेहि भन वह कोकिक वषहाक ॥ ४ ॥

इसके बाद लगे भान किया, मिले मार्गका चारा भन (फकावत) दूर हो गया और पशिन सब पीते ही मन प्रसन्न हो गया । जिनके स्मरणमात्रसे [बार-बार सम्मने और मनेभ] मधुन भन मिट जाता है, उनको भन होना—यह केवल शैविक व्यवहार (नस्तीक) है ॥ ४ ॥

शे०—सुद सखिदानंदमय कंद मनुकुल केतु ।
करित करत नर मनुहारत संछवि सागर लेतु ॥ ८७ ॥

शुद्ध (प्रवृत्तिजन मिश्रणसे रहित, भावतीत दिव्य मनुविषय) सखिदानन्द-कन्दसम सर्वकुलके लज्जकम मनुज श्रीरामचन्द्रजी मनुष्योंके कष्ट ऐसे करिष जाते हैं तो संचारस्त्री खुदके घर उतरनेके लिये पुलके समान हैं ॥ ८७ ॥

चौ०—वह सुवि सुई निषाद सब चरई । मुदित सिद्ध जिय बंधु मोहराई ॥

सिद्ध फल मूढ मेट मरि अल । सिद्धन चोख सिद्ध हरतु कवारा ॥ १ ॥

जब निषादराज गुहने वह समर पानी तब आनन्दित होकर उठने लगे भिन्न-भिन्न और भाई-बन्धुओंको कुछ लिया और मेट देनेके लिये फल मूल (कन्द)

लेकर और उन्हें भारों (बर्तनियों) में भरकर मिलनेके लिये चल । उसके हृदयमें
ईर्ष्या घर नहीं था ॥ १ ॥

करि दंडकत मेंट - धरि आगें । प्रभुहि निजोक्त जति अनुरमें ॥

सहज स्नेह जिसत एतुहाई । पूछी कुसल निकट बैठाई ॥ २ ॥

दण्डवत् करके मेंट सामने रखकर वह अत्यन्त प्रेमसे प्रभुको देखने लगा ।
श्रीरघुनाथजीने स्वामाकि स्नेहके क्या होकर उसे अपने पास बैठकर कुछ पूछी ॥ २ ॥

नाथ कुसल पद पंकज देखें । समझै - माययाजय जन ॥ ३ ॥

देव धरति धनु बसु तुम्हारा । मैं बलु नीनु सहित परिवारा ॥ ३ ॥

मित्रादराजने उत्तर दिया—हे नाथ ! आपके करुणामयके दर्शनसे ही कुछ है
[आपके करुणारविन्दोंके स्पर्शनकर] आज मैं माययाजय पुरुषोंकी गिनतीमें आ
गया । हे देव ! यह पृथ्वी, धन और घर सब आपका है । मैं तो परिवारसहित आपका
नीच सेवक हूँ ॥ ३ ॥

कृपा करिक पुर आसि पात । याविक बलु सह जोग सिंहाज ॥ ४ ॥

कहैहु सत्य सख सखा मुखाया । मोहि दीन्य पिहू आबसु भाया ॥ ५ ॥

अब कृपा करके पुर (मृगवैपुल) में पधारिये और इस दासकी प्रतिष्ठा बढ़ाइये,
जिससे सब लोग मेरे भाग्यकी बड़ाई करें । श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे मुत्तान सखा ! तुमने
जो कुछ कहा सब सत्य है । शत्रु पिताजीने मुझको और ही आशा दी है ॥ ५ ॥

दो०—बरष आरिद्रस वासु धन मुनि अत वेपु अहार ।

ग्राम वासु वहि उचित मुनि गुहति भयत दुष्ट भाव ॥ ८८ ॥

[उनके आज्ञानुसार] मुझे चौदह वर्षतक मुनियोंका अन्न और वेप आरण्यकर
और मुनियोंके गोप्य आहार करते हुए वनमें ही बचना है, गाँवके भीतर निवास करना
उचित नहीं है । यह सुनकर गुहको बड़ा दुःख हुआ ॥ ८८ ॥

चौ०—राम, कल्याण सिंग रूप निहारी । कहहि सौम ग्राम नर चारी ॥

तै पिहू मातु कहहु सखि कैसे । किन्ह पदप सब कलक ऐसे ॥ १ ॥

श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीतानीके साथके देखकर गाँवके स्त्री-पुरुष प्रेम्हके साथ
बर्बाद करते हैं । [कोई कहती है—] हे सखी ! कहां तो, वे सता-पिता कैसे हैं,
जिन्होंने ऐसे [सुन्दर सुकुमार] बालकोंको वनों में भेज दिया है ! ॥ १ ॥

एक कहहि सख मूपति सीमा । जोग्य सखु हमहि विधि दीमा ॥

तब निषादपति ठर अनुमाना । तब सिमुषा सनोहर जाना ॥ २ ॥

कोई एक कहते हैं—रामने कल्याण ही किया, इसी कहने हमें सी नरदाने नेत्रोंका
लज दिया । तब निषादराजने हृदयमें अनुमान किया, तो अशोकके-पेड़को [उनके
ठहरनेके लिये] मनोहर समझा ॥ २ ॥

तै रघुनाथहि - तब देखना । कहैत राम-सब मोहि सुहावा ॥

पुरजन करि जोहाइ पर आए । रघुकर संध्या करि सिंहाप ॥ ३ ॥

उसने श्रीरघुनाथजीको ले आकर वह स्थान दिखाया । श्रीरामचन्द्रजीने [देखकर]
कहा कि यह सब प्रकारसे सुन्दर है । पुरवासी लोग जोहार (कन्दना) करके अपने-
अपने घर लौटे और श्रीरामचन्द्रजी रुक्मा करने पवारे ॥ ३ ॥

गुह सँवारी सँवारी बड़ाई । कुस भिसलसख सखु सुहाई ॥

मुनि फल सूख मधुर मधु जानी । सोना मरि मरि राखेले जानी ॥ ४ ॥

गुहने [रही बीच] कुत और कोमल कचोकी कोमल और सुन्दर माथी सजाकर
दिया ही और फिर भीठे और कोमल देल-देखकर दोनोंमें भर-भरकर पल-भूल और
गनी रख दिया [अथवा अपने हाथमें पल-भूल दोनोंमें भर-भरकर रख दिवें] ॥ ४ ॥

नो—सिध सुमुख ब्रह्म लखित कर मूल पद साह ।

लखन कील्ट सुखसुखनि पाय प्रत्येकत गह ॥ ८९ ॥

कोलाही, सुमुख और और उद्यमकर्मरहित बन्ध-मूल-पल साकर सुखसुखनि
मोहमचारी छेद रहे । नहि लखननी उनके धन दधाने लगे ॥ ८९ ॥

नो—बड़े सुख सुख मोहल जगती । नहि लखननि लोचन नदु कनी ॥

एकद बुरि लखि बाव सजलस । जगल के रीति मोहमन ॥ १ ॥

कि प्रभु भोगमन्त्रवीको मोने जलकर जगलमें उठे और कोमल मागीस
मन्त्री सुमुखवीको मोनेके लिये कष्ट करि कष्ट दार भुगवाक गजक, गीतमनी
बैठकर गाने (पद्य देने) लगे ॥ १ ॥

कोलाही कोलाह पावक प्रसीदी और और गले अति प्रीति ॥

भाषु लखन रहि बैठे आई । कोटी माथी सर बाध बहाई ॥ २ ॥

गुहने विशालगुह करेरागीको सुखकर भवन्त प्रेमसे ब्रह्म-ब्रह्म निमुक्त कर
दिया । और बाद फलमें तरफन बाँधकर तथा बनुकर नाप बजाकर कल्याणकी
गत्ता गैठा ॥ २ ॥

लखन प्रभुनि पिहारी पिपाव । नकट प्रेम बल ब्रह्म पिपाव ॥

लु पुष्टिकि लखु लोचन बहई । नचन सप्रेम लखन लल बहई ॥ ३ ॥

प्रभुको जमीनमें होते देखकर प्रेमबल निपादलके हृदयमें पिपाव हो भवक ।
उल्लाहगीर पुष्टिकि हो गया और नेत्रोंमें [प्रेमपुष्पोंका] लल बहने लगा । वह
प्रेमशील सम्पत्तियों बलन बढ़ने लगा—॥ ३ ॥

भूपति भवन सुभार्य सुहृन्ना । सुरगति लखु न सुहृन्ना राधा ॥

भविष्य रहित बाध बीकरी । लु रहिति किं हाथ लैकरी ॥ ४ ॥

महाराज दशरथजीका मूल तो लभाले ही सुन्दर है, इन्द्रमन्त्री भी जिसकी
उमानका नहीं या सकला । उतमें सुन्दर भविष्यके रहे बीकरी (लखने लय में लगे)
हैं, जिन्हें नूनो रतिके प्रति कपड़ेके अन्धे ही हाथों सजाकर बनाया है ॥ ४ ॥

नो—सिध सुखित सुभोगमम सुमम सुगंध सुधास ।

परीय मंडु मन्दिप आई सब विधि सकल सुधास ॥ ९० ॥

नो पवित्र, बड़े ही निरालम, सुन्दर भोगमहायति पूर्ण और मूलकी सुकषणे
मुगधित है, जहाँ सुन्दर कर्म और भविष्यके दीप्त हैं तथा सब प्रकारका पूरा आराम है; ९०

नो—सिध बलन अपेक्षित सुहृन्ना और केव लु पिसद सुहृन्ना ॥

सर्व सिध राहु बलने निरति फहई । किं लखि रहि मनोव मंडु हराई ॥ १ ॥

जहाँ [जोहने-निरति] अनेकी लल, अनेकी और मरे हैं, जो दूकने फेलेके
ममान कोमल, निर्मल (उन्नत) और सुन्दर है, जहाँ (उन बीकरीमें) बीसीलनी
और भोगमन्त्रवी रजसो लोचन करते थे और अपनी-सोमके छे और कोमलके
गर्वकी हरण करते थे ॥ १ ॥

दे सिध रामु सागरी सोध । अलित बलन निनु बहई न जोध ॥

मंडु पित्त परिजव पुनसरी । लल सुखित दल-दल हरी ॥ २ ॥

वही श्रीसीता और श्रीरामजी आज घास-पूतकी खाचरपर पड़े हुए बिना कत्ते ही सोते हैं। ऐसी दशा में वे देखे नहीं जाते। गच्छा सिता, कुटुम्बी, पुरवासी (पत्ता), मित्र, अच्छे रीत-स्वभावके दास और दासियाँ—॥ २ ॥

५१८-२ जोगबहि-विन्दहि प्रभु को कहै। मंहि सोच्य तेह राम मोसाई ॥
पिता जनक जग विदित प्रभाव। समुद्र सुरेश सखा रघुराज ॥ ३ ॥ ५१९
सब जिनकी अपने प्राणोंकी तरह सर-सँभार करते थे, वही मधु श्रीरामचन्द्रजी आज पृथ्वीपर सो रहे हैं। जिनके पिता जनकजी हैं, जिनका प्रभाव जगत्में प्रसिद्ध है। जिनके समुद्र इन्द्रके मित्र रघुराज दशरथजी हैं ॥ ३ ॥

रामचंद्र पति सो बैदेही। सोकत मंहि बिधि नाम न केही ॥
सिय रघुवीर कि कानन सोयू। कर्म प्रदान सब कह कोयू ॥ ४ ॥
और पति श्रीरामचन्द्रजी हैं, वही जलेश्वरीजी आज जमीनपर सो रही हैं। विधाता किसको प्रतिफल नहीं होता। सीतानी और श्रीरामचन्द्रजी क्या उनके योग्य हैं? लोग सब कहते हैं कि कर्म (भाग्य) ही प्रधान है ॥ ४ ॥

५१९-३ कैफयमंविधि मंदमति कठिन कुटिलपंडु कीन्ह।
जोहि रघुमंदन जाचकिहि सुख भवसर दुष्टु दीन्ह ॥ ५१ ॥ ५२०
कैफयराजकी लक्ष्मी नीचकुटि कैफयीने बड़ी ही कुटिलता की, जिसने रघुमंदन श्रीरामजीको और जलेश्वरीजीको सुखके समुद्र दुष्टा दिया ॥ ५१ ॥

५२०-४ भइ विनकर कुल विदप कुमारी। कुमति कीन्ह सब बिल दुखारी ॥
भयल विबाहु निपावहि गरी। राम सीव मंहि लगन निहारी ॥ १ ॥
वह सूर्यकुलकी कुलके लिये कुम्हारी हो गयी। उस कुलदिने सम्पूर्ण विश्वको दुखी कर दिया। श्रीराम-सीताको जमीनपर सोते हुए देखकर निपावकी बड़ा दुःख हुआ ॥ २ ॥

५२१-५ बोले लखन गहुर सखु जानी। म्याव विरल भयति रस साथी ॥
कहु न कोउ सुख दुख कर दाता। किउ कुल करम भोग सहु भाता ॥ ५ ॥
५२२-६ तब लखनगी जान, बैरम्य और भक्ति रसते सनी दुई मीठी और कोमल कीली बोले—हे माई! कोई किसीको सुख-दुःखका देनेवाला नहीं है। सब अपने ही किये हुए कर्मोंका फल भोगते हैं ॥ २ ॥

जीम-विबीग जीम भल भंड। हित अवहित सम्भम भल पंदा ॥
जनमु भरहु जई लमि जग जगह। संसति निवृत्ति कस्तु कर कण्ड ॥ ३ ॥
संयोग (मिलन), वियोग (विचुड़ना), भले-बुरे भोग, राज, मित्र और उदासीन—ये सभी भ्रमके फल हैं। जन्म-मृत्यु, सम्पत्ति-विपत्ति, कर्म और फल—जहाँतक जगतके जंगल हैं ॥ ३ ॥

५२३-७ धरमि धासु धनु पुर बरिवाके। सरयु बलकु जई लमि जगह ॥
देखिअ सुखिअ सुखिअ मन महीं। मोह मूक परमात्सु पाहीं ॥ ४ ॥
धरती, घर, धन, स्मरण, परिवार, सौभाग्य और नरक आदि जहाँतक व्यवहार है जो देखने, सुनने और मनके अंदर विचारनेमें आते हैं, इन सबका मूल मोह (अज्ञान) ही है। परमात्मा ये नहीं हैं ॥ ४ ॥

५२४-८ सपनै होइ भिच्छारि चपु रंकु नाकपति होइ।
जाने लखु न हानि कहु तिमि प्ररंच जियें जोइ ॥ ५२ ॥
जैसे स्वप्नमें उबा भिलारी हो जंग वा जंगल स्वप्नमें इन्द्र हो जाय, तो

जातेपर नाम ॥ हाजि कुछ मी नहीं है; कैसे ही इन दृग्-प्रसक्तों को हृदयसे देखना चाहिये ॥ १२ ॥

की०—भक्त विचारि नहिं कीबिअ रोसु । कहुनि यदि न देख्य होसु ॥

मोद नितो सहु संवनिहात । देखिअ सगल लोक प्रकाश ॥ १३ ॥

ऐसा विचारकर भवे नहीं करण चाहिये और न किसीको व्यर्थ दोष ही देना चाहिये । सब लोग मोहलसी चक्षुमें खोनेवाले हैं और चेतें हुए उन्हें अनेकों प्रकारके भ्रम दिखायें देते हैं ॥ १३ ॥

पुनि लग जसिमि जसहिं जोषी । परमेश्वरी प्रथम दिव्योनी ॥

साक्षिअ रूपरि शीव अम अमर । सब सब विषय मिथस विराग ॥ १४ ॥

इन कानूकी राक्षसों योगीश्वरों आपत्ते हैं जो परमार्थी हैं और प्रसन्न (मानिक कान्) से छूटे हुए हैं । जगत्में जीवको आपा दुष्ठा सभी अन्तर्गत चाहिये ॥ सम्पूर्ण भोग-विषयोंमें वैराग्य हो जान ॥ १४ ॥

होइ विवेक मोह भ्रम नाश । सब रघुनाथ अच जगुनाथ ॥

सगल परम दसलसु पदु । मन कल वचन राम पद कहु ॥ १५ ॥

विवेक होवेज मोहलसी भ्रम भग्न नाश है; सब (अश्रनक नाम होनेपर) भ्रातृनाथकी चरणोंमें प्रेम शेषा है । हे कला ! मन वचन और कर्मसे श्रीरामकी चरणोंमें प्रेम शेषा, परी कर्मभेद परमार्थ (पुरुषार्थ) है ॥ १५ ॥

राम गल परमाथ रूप । अविनाश सकल भगवति भगवत् ॥

सकल पिता रहित गलभेद । कहि नित केते निरुपदि वेदा ॥ १६ ॥

श्रीरामकी परमार्थत्व (परमवस्तु) परम है । वे अविनाश (कानूनमें) मानिक (अलख) रूप इति देखनेमें न आनेवाले ; अन्तरि (आदिरहित) अनुपम (उन्मादित) सब विकारोंमें रहित और मेदलस्य हैं । वेद जिनका दिव्य वेदित-नैति काहपर निरूपण करते हैं ॥ १६ ॥

शे०—भगत भूमि मूसुर सुरभि सुर हित करि कृपाळ ।

करत अरित धरि ममुव तनु सुखत मिठहिं जग जाल ॥ १७ ॥

वही कृपण श्रीरामचन्द्रजी मनु, भूमि, माहव, गौ और देवताओंके हितके लिये मनुष्यभरन करत करके लीजिये करते हैं जिनके सुखमें अन्तर्गत नैकाद मिट जाते हैं ॥ १७ ॥

भासपारायण, पंद्रहवाँ विभाव

की०—सखा सुखी जम पविहरी मोह । नित रघुवीर अच एव होह ॥

सदत राम गुन का भितुसरा । जागे अम अमल भुवना ॥ १८ ॥

हे कला ! ऐसा पञ्च-मोहको त्यागकर श्रीवतीरामजीके चरणोंमें प्रेम करो । इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके गुण श्रद्धा-वृद्धि करे हो गया । तब जगत्का सुख करनेवाले और उसे सुख देनेवाले श्रीरामजी जागे ॥ १८ ॥

गल छीन करि राम नदवा । सुनि सुजान कहु और सगल ॥

अनुव सदेत सिर जग यगद । देखि सुमन कल कल छाप ॥ १९ ॥

शेषके सब धर्म करने [नित] धर्म और सुखान श्रीरामचन्द्रजीने छान किया । फिर यदुका दूध मंगला और छोटे मार्ग लक्षणजीवरित उस दूधसे सिरपर जटाएँ बनाये । यह देखकर नृमन्त्रजी नेत्रोंमें कल छा गया ॥ १९ ॥

हृदयें दाहु अति बदन मल्लेना । कह कर जोरि बचन नति दोना ॥
 राध कहेउ अत कोसलनाथा । है रघु जाहु रम्य के संथा ॥ ३ ॥
 उनका हृदय अकन्त कलमे लगा, मुँह मलिन (उदात्त) हो गया । वेहाय जोड़कर
 अत्यन्त दीन वचन बोले—हे नाथ ! मुझे कोसलनाथ दशरथजीने ऐसी आशा दी थी
 कि तुम रथ लेकर श्रीरामजीके साथ जाओ; ॥ ३ ॥

बनु देवाइ सुरसरि मन्दवाई । जानहु केरि बेगि दोउ भाई ॥
 लखतु राहु सिध जानहु केरी । संस्र सख सँकोच निषेरी ॥ ४ ॥
 बन दिखाकर, गन्नाखान करकर दोनों भाइनोंको तुरंत छोटा लगा । सब संस्र
 और संकोचको दूर करके लक्ष्मण, राम, सीताको फिर लगा ॥ ४ ॥

दो०—सूय अस कहेउ गोसाईं अस कहइ करीं बलि सोइ ।
 करि विनती पायन्ह फेरि दीन्ह वास विमि रोइ ॥ ५ ॥

महाराजने ऐसा कहा था, अब प्रभु जैसा कहें, मैं वही करूँ; मैं आपकी बलिहारी
 हूँ । इस प्रकार विनती करके ये श्रीरामचन्द्रजीके कर्णोंमें गिर पड़े और उन्होंने
 वासुकी तरा रो दिया ॥ ५ ॥

चौ०—तात कुस करि कीचिज सोई । तातें अन्न अन्न न होई ॥
 संविधि सख उठाइ प्रबोधा । तात धरम मनु कुस सख सोघा ॥ ६ ॥

[और कहा—] हे तात ! कुस करके वही कीचिये मिलते अयोध्या अनाथ न हो ।
 श्रीरामजीने मन्त्रीको उठाकर कैयें बँचाते हुए समझाया कि हे तात ! आपने तो धर्मके
 सभी सिद्धान्तोंको जान गलत है ॥ ६ ॥

सिधि वधीच हरिचंद जेतस । सहे धरम हित कोरि कहेसा ॥
 रतिदेव बलि सूय सुजाना । बरसु बरेव सहि संकट माना ॥ ७ ॥

शिधि, वधीच और राजा हरिश्चन्द्रने धर्मके लिये करोड़ों (अनेकों) कह लगे
 थे । मुक्तिनाथ राजा रतिदेव और बलि बहुतसे संकट सहकर भी धर्मको पकड़े रहे
 (उन्होंने धर्मका परिचय नहीं किया) ॥ ७ ॥

धरसु न दूसर संस्र समाया । आपसु निमसु पुरत बँसाना ॥
 मैं सोइ धरसु सुखम करि पाया । लखें सिद्धि पुर अरजसु ज्ञया ॥ ८ ॥

वेद, शास्त्र और पुराणोंमें कहा गया है कि संस्रके समान दूसरा धर्म नहीं है ।
 मैंने उस धर्मको सहन ही पा लिया है । इस [उत्पत्ती धर्म] का त्याग करनेसे तीनों
 लोकोंमें अपना लज आयया ॥ ८ ॥

संभाषिष फहुँ अन्नस्य उग्र । मरय कोटि सम दान्य दगहु ॥
 सुभ सन तात बहुत का कह्यो । दिहुँ उलक निरि पावहु लह्यो ॥ ९ ॥

प्रतिष्ठित पुरुषके लिये आपसकी प्राप्ति करोड़ों मृत्युके समान भीषण होता
 देनेवाली है । हे तात ! मैं आपसे अधिक क्या कहूँ ! लौटकर उत्तर देनेमें भी आपका
 भागी होता हूँ ॥ ९ ॥

दो०—पितु पद पवि कहि कोटि नति विनय करण कर जोरि ।
 चित्त कचकिहु वात के तप्त करिज जनि मोरि ॥ १० ॥

आप जाकर पिताजीके चरण पकड़कर करोड़ों नमस्कारके साथ ही हाथ जोड़कर
 विनती करियेगा कि हे तात ! आप मेरी किसी बातकी विनय न करें ॥ १० ॥

जो—तुम्हें पुनि शिव सस्य प्रतिष्ठित भोरें । विवर्जि करवैं तात कर जोरें ॥

सब बिधि सोइ करतव्य कुहारें । दुष्ट व परत विहु सोच हमारें ॥ १ ॥

आप भी पिताके समान हो भैंर बड़े रिश्ते हैं । हे लाल ! मैं शाय जोड़कर आपसे
विनती करता हूँ कि आपका जो सब प्रयत्नसे नहीं करन्या है जिसमें पितृजी हमलोगोंके
मोचने दुःख न पायें ॥ १ ॥

पुनि सुगन्ध सन्धि मंदाह । सकल स्मरिजन प्रियत निपाह ॥

पुनि कष्ट हरण करी कह सावी । प्रभु वरसे बड़ अनुचित जानी ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजी और मुमन्य यह संवाद सुनकर निराश राज कुटुम्बियोंतक
प्राकृत हो गया । फिर लज्जामर्षने कुछ पदवी वाद करी । प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने उनके
शुन ही अनुचित जानकर उनको मना किया ॥ २ ॥

सकृपि राम तित नपद देखाई । कलम रोदेसु कहिय ननि जाई ॥

कह सुगंध पुनि भूष भेदेसु । महि नमकिदिस्तिमिलि कलेसु ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने सकृपकर, अपनी मांगव दिखकर मुमन्यजीसे कहा कि आप
आकर लज्जामर्ष यह संदेश न कहियेगा । मुमन्यने फिर राजका संदेश कहा कि मीमा
यनके बलेक न यह समझी ॥ ३ ॥

हेदिमिधि भवत भवत फिरितीत । नौह रघुवरदि तुम्हदि करनीया ॥

महस निपट अयकंष विहोना । मैं नमिधवविमि कर विहु मीमा ॥ ४ ॥

भलापस किछ छह पीता अयोध्याको लौट आवें, तुमसे और श्रीरामचन्द्रजीको बड़ी
उपाय करना चाहिये । नहीं तो मैं निरंकुश हो बिना सहारेका होकर बैठे हूँ, नहीं जीर्ण
मैले बिना कलके मल्लकी नहीं जीती ॥ ४ ॥

जो—शहरें सज्जुरें सकल सुख अवहि जाहौं मनु मान ।

तहाँ तव रहिदि सुखेन सिय अब लखि विपति विधान ॥ ५ ॥

नीतिके मायके (शिके घर) और सज्जुरमें सब सुख है । जबतक यह विपति
दूर नहीं होती, तबतक ये सब जहाँ की चाहें, वहाँ सुखसे रहेंगी ॥ ५ ॥

जो—बिनती भूष कीन्ह जेहि भीती । अरति प्रीति न सो कहि जाती ॥

विहु भेदेसु पुनि कृपप्रियाना । सिमधि कीन्ह सिख छेदि विधाना ॥ ६ ॥

राजाने भिन्न तरह (भिन्न दीनता और प्रेम्से) बिनती, की है, यह दीनता और
प्रेम कहा नहीं जा सकता । कृपानिधान श्रीरामचन्द्रजीने पिताका संदेश सुनकर
गणपतीको फरोहों (अनेकों) प्रकाशे लीख दी ॥ ६ ॥

सामु समुद गुर प्रिय परिवार । फिनु त सब कर भिदै समार ॥

पुनि पति नवन कसति बँदेही । सुनहु मानपति परम समेही ॥ ७ ॥

[उन्होंने कहा—] जो तुम पर लौट जाओ, तो साह, समुद, गुरु, प्रियजन एवं
कुटुम्बी सबकी चिन्ता छिट जाय । पतिके नवन सुनकर मानपती कहती हैं—हे
प्रणयति ! हे परम छोटी ! सुनिये ॥ ७ ॥

प्रभु करुणामय परम विवेकी । तनु अवि रहि छैह किमि लँको ॥

प्रमा काइ कहै भानु विहवै । कहै चंद्रिका छेहु ताति जाई ॥ ८ ॥

हे प्रभो ! आप करुणामय और परम ज्ञानी हैं । [इस प्रकारके विचार तो कीजिये]
मरीको छोड़कर अपना अस्व कैसे रोखी यह सकती है ? स्वर्णकी प्रमा दुर्बको छोड़कर
कहाँ जा सकती है ? और चन्द्रिका चन्द्रमाको त्यागकर कहाँ जा सकती है ॥ ८ ॥

पतिहि प्रेममय विनय सुनई । कहति सुखि सन गिरा सुनई ॥

हुम्ह पितु ससुर ससित हितकारी । उक्त देखे फिरि अनुचित भारी ॥ ४ ॥

इस प्रकार पतिको प्रेममयी विनयी सुनाकर सीतली ग्रन्थोसे सुहावनी वाणी करने लगी—आप मेरे पिताजी और ससुरजीके साथ न भेद दित करनेवाले हैं । आपको मैं बदलेमें उत्तर देती हूँ, वह बहुत ही अनुचित है ॥ ४ ॥

दो०—आरति बस सममुख भाई बिलुगु न मानव तात ।

भारतसुत भव कमल बिनु बादि अहाँ जगि नात ॥ १७ ॥

किन्तु हे तात ! मैं आर्त होकर ही आपके समुख हुई हूँ, आप बुरा न मानियेगा ।

अर्पण (स्वामी) के चरणकमलोंके मित्र जुगजुमैं जहाँतक नाते हैं सभी मेरे लिये अर्थ हैं ॥ १७ ॥

चौ०—विनु दैमव किमल में योग्य । कृपामिमुकुट मिलेन पदवीज ॥

सुखविधान बस विनु रूढ़ मोर । विन बिहीन मय भाव न मोर ॥ १ ॥

मैंने पिताजीके ऐश्वर्यकी कथा देखी है, किन्तु केवल रखनेकी शौकीने सर्वश्रेष्ठमयि राजाओंके मुकुट मिलते हैं (अर्थात् बड़े-बड़े राजा उनके चरणोंमें प्रणाम करते हैं) ऐसे पिताका घर भी, जो तब प्रकारके सुखोंका मन्थर है, पतिके बिना मेरे मनको भूल-का भी नहीं माल ॥ १ ॥

ससुर पण्डित जेसनाद । बुचन पारिवस प्रकट प्रभाक ॥

आप होइ जेहि सुरपति कै । भव विमलमय नासु पै ॥ २ ॥

मेरे ससुर कीर्तनान चक्रवर्ती सम्राट हैं, किन्तु प्रभाव चौदहों लोकोंमें प्रकट है; हस्त,मी जागे-हीकर निजका साम्राज्य करता है और अपने भावे विहासकर, बैद्यके लिये खान देता है ॥ २ ॥

सुखद एवाप्त भव विना । प्रिय परिहार ननु सन साव ॥

विनु रागति पद पदुम परम । मोहि केउ सपनेहु सुखद न साव ॥ ३ ॥

ऐसे [ऐश्वर्य और प्रभावशाली] ससुर [उनकी राजधानी] अपौरुषाका विना; प्रिय कुटुम्बी और माताके समान ससुर—ये जोर भी औरसुनावलीके चरणकमलोंकी चमके बिना, उसे समझमें भी सुखदायक नहीं लगे ॥ ३ ॥

अमम पंथ नमस्सुमि पड़ा । करि केरि सँ सरित भारा ॥

कोल किमल कुंज विहंग । मोहि सब सुखद प्रचरति सँ ॥ ४ ॥

इसमें रास्ते, ज्योती, परी, पक्ष, सुखी, विह, अण्ड, त्रस्य एवं नदियाँ, कोल, नील, हिरण और ली—अन्य (औरसुनावली) के साथ रहते हैं, सभी मुझे सुख देनेवाले होंगे ॥ ४ ॥

दो०—ससुर ससुर सन मोरि हूँति विनय करि पारि पाय ॥

मोर सोखु अनि करिब कहु मैं बन सुखी सुमाय ॥ १८ ॥

जतः सब और ससुरके पैर पकड़, मेरी ओरसे किती कीवियेय कि वे मेरा सुख भी खोच न करें; मैं वहाँ खानेसे ही सुखी हूँ ॥ १८ ॥

चौ०—प्राननाय प्रिय देव साव । नीर पुरीन परे पदु साव ॥

नहि मा प्रभु प्रभुदुख मय मोर । मोहि कमि सोखु करिब अनि मोर ॥ १ ॥

कीर्तमें अग्रगण्य तथा पण्डित और [वाणीसे मेरे] तरुण चरण किये मेरे प्रणनाय और प्यारे देव साव हैं । हलके मुझे न राखेकी वजहसे मैं न भ्रम दे, और न मेरे मनमें कोई दुःख ही है । आप मेरे लिये भूखक भी खोच न करें ॥ १ ॥

सुनि सुमंतु सिख सीतलि खानी । यमद विकल बहु पनि मनि हानी ॥

मयम मृदा महि सुनह ब काना । कहि बसवह कहु अति अकुलाना ॥ २ ॥

सुमन्त सीतलीकी सीतल बाणी सुनकर ऐसे व्याकुल हो गये जैसे सोंप मणि खो जाने पर । नेत्रोंसे कुछ सूझता नहीं, मनमें सुनायी नहीं देता । वे बहुत व्याकुल हो गये, कुछ कह नहीं सकते ॥ २ ॥

राम प्रबोध कीन्ह बहु मौती । तदपि होति बहि सीतलि छाती ॥

असन अनेक साथ दित कीन्है । उचित उत्तर सुनन्दन दीन्है ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने उनकी बहुत प्रशंसा समाधान किया । तो भी उनकी छाती ठंडी न हुई । साथ पक्ष्मणे के बिये मन्त्रीने अनेकों कल किये (युक्तियों ऐसा कीं) पर सुनन्दन श्रीरामजी [उन सब युक्तियोंपर] बयोंपित उत्तर देते भये ॥ ३ ॥

मेदि जाह बहि राम रखाई । कठिन करम गति कहु न दसाई ॥

राम कलम सिख बह सिख जाई । किनै बभिक जिमि मूर गयोई ॥ ४ ॥

श्रीरामजीकी आज्ञा मेरी नहीं जा सकती । कर्मकी गति कठिन है, उसपर कुछ भी बह नहीं चलता । श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजीके चरणोंमें फिर नचाकर दुग्मन्त इस तरह छौटे जैसे कोई व्यापारी अपना मूखन (पूँजी) गँवाकर लौटे ॥ ४ ॥

वो—रघु हाँकिट हव राम तब हेरि हेरि छिदिनाहि ।

देखि निषाद बिषादबस धुनहि सीस पछिताहि ॥ १९ ॥

दुग्मन्तने २५वें दौंका, बोले श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देख-देखकर दिनदिनाते है ।

बह देखकर निषादलोग निषादके का होकर फिर पुन-पुनकर (पीट-पीटकर) पछताते हैं ॥ १९ ॥

वो—जासु विनोय विकल पसु पेंस । प्रभा मासु पितु छिदहाहि ॥

परवत राम सुमंतु पडाए । सुरसरि तीर जासु तब भाए ॥ १ ॥

जिमके विनोयमें पसु इस प्रकार व्याकुल हैं, उनके विनोयमें प्रभा, माता और पिता जैसे जीते रहेगे । श्रीरामचन्द्रजीने जहाँसी दुग्मन्तको लौटाया । तब वन गङ्गाजीके तीरपर आये ॥ १ ॥

मागी नम न केवहु आनह । कहइ सुम्हार मसु मैं जाना ॥

करम फलह एव कहै ससु कहाई । मासुव कवि मूरि कहु भइहै ॥ २ ॥

श्रीरामने केवढे नाम मोंगी, पर वह छाता नहीं । वह कहने लगा—मैंने दुग्मन्त मर्म (मेह) जान लिया । तुम्हारे चरणकमलोंकी धूलके बिये सब लोग कहते हैं—कि कहु मनुष्य बना देनेवाली कोई कही है ॥ २ ॥

सुजत सिला अह नरि सुहाई । चाहन तैं न कस कहिनाई ॥

तगिन सुनि धरिषी होह जाई । नाट परह मोरि नाव उभाई ॥ ३ ॥

जितके दूते ही फलपत्री अति सुन्दरी की हो गयी [मेरी नाव तो फाँटकी है] । फाँट पथरसे फाँट तो होता नहीं । मेरी नाव भी मुनिकी की हो जायगी और इस प्रकार मेरी नाव उड़ जायगी, मैं छूट जाऊँगा [अपना राजा-रक्त जायगा जिससे आप पर न हो संभोग और मेरी रोखी गयी जायगी] (मेरी फलपत्री-सन्तानी यह ही मारी जायगी) ॥ ३ ॥

पहि अनेपाकळैं ससु परिवाह । नहि जगते कहु अउर कयाह ॥

अँ प्रसु पार जगति या चहइ । मोहि बह पदुम पकरन कहइ ॥ ४ ॥

मैं तो दूनी नावने ओर परिवारका पालन-पोषण करता हूँ । दूसरा कोई भँचा नहीं

अनन्ता । हे प्रभु ! यदि तूम अवश्य ही पार जाना चाहते हो तो मुझे पहले अपने चरण
ममल पतारने (धो लेने) के लिये कह दो ॥ ४ ॥

श्री—पद कमल छोड़ चढ़ाई नख न नख उतराई चढ़ौ ।

मोहि राम राउरि ज्ञान दसरथ सपथ सब सत्ता कहौ ॥

पर तीर मारहुँ लखतु पै जख छगि न पाव पसारिहौ ।

सथ छगि न तुलसीदास नाथ कृष्ण पार उतारिहौ ॥

हे नाथ ! मैं चरणकमल छोड़ आपलोगोंको नकर चढ़ा लूँगा; मैं आपसे कुछ
उतराई नहीं चाहता । हे राम ! मुझे आपकी दुहाई और दशरथजीकी तीव्रता है, मैं सच
सच-सच करता हूँ । लक्षण भले ही मुझे तीर मारें, पर नवतक मैं पैरोंको पसार न लूँगा,
नवतक हे तुलसीदासके नाथ ! हे कृष्ण ! मैं पार नहीं उतारूँगा ।

श्री—सुनि केवट के पैच प्रेम छोटे भटपटे ।

विदसे कदनपेज फितर ज्ञानकी छलन सन ॥ १०० ॥

केवटके प्रेममें छोटे हुए भटपटे बचन सुनकर कल्याणाम श्रीरामचन्द्रजी जानकी-
जी और लक्ष्मणजीकी ओर देखकर हैंते ॥ १०० ॥

श्री—छपासिधु बोले सुसुकरई । छोड़ कब बेहि तब नाम न जाई ॥

बेगि भातु नख पाव पसार । होत बिहंडु उतारहि पार ॥ १ ॥

कृष्णके समुद्र श्रीरामचन्द्रजी केवटसे सुसुकरकर बोले—भाई ! तू बही कर जिससे
तरी नाथ न नाथ । जल्दी पानी ल और पैर धो के । देर हो रही है, पार उतार दे ॥ १ ॥

जानु नाम सुमिरत भूक वारा । उतरहि पर अवसिधु भवारा ॥

होइ कृपासु केवटहि निहोरा । बेहि जहु फियसिधु पवतु तेधोरा ॥ २ ॥

प्रथम बार जिनका नाम-स्मरण करते ही मनुष्य अपार भक्त्यारके पार उतर जाते
हैं, और जिनोंने [वामनावतारमें] जगत्को तीन भागों में छोटा कर दिया था (दो
ही भागों जिसेकीको नाथ किया था), वही कृपासु श्रीरामचन्द्रजी [वल्लभीसे पार
नगरानेके लिये] केवटका निहोरा कर रहे हैं ॥ २ ॥

श्री—पद नख भिरसि देवतरि हरषी । सुनि प्रभु बचन सोई वति करषी ॥

केवट राम दक्षपुत्रु पावा । पवन कल्याण सरि लेह भावा ॥ ३ ॥

प्रभुके इन वचनोंको सुनकर गङ्गाजीकी बुद्धि मोहते विच गयी थी [कि ये साधार
मगवाय होकर भी पार उतरनेके लिये केवटका निहोरा कैसे कर रहे हैं] । परन्तु [समीप
अर्नपर अपनी उत्पत्तिके खान] पदनलोंको देखते ही [उन्हें पहचानकर] देवकी
गङ्गाजी हर्षित हो गयीं । (वे समझ गयीं कि मय्यान् नरलीन् कर रहे हैं, इच्छे उनका
मोह नष्ट हो गया; और इन चरणोंका स्पर्श प्राप्त करने मैं फन होऊँगी, यह विचारकर ये
हर्षित हो गयीं ।) केवट श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पालन करनेमें सरकर नष्ट हो जाया ॥ ३ ॥

जति आनंद उद्यमि अनुपम । चब सरोज पत्तारन छगन ॥

वरपि सुमन सुन लख सिद्धाही । यहि सम पुनपुन खेद भाई ॥ ४ ॥

अनन्ता आनन्द और प्रेम्में उद्यमकर वह मय्यान्के चरणकमल कोने जमा । मय
देखा फूल बरताकर सिद्धाने लगे कि इसके समान पुष्पकी राखि कोई नहीं है ॥ ४ ॥

श्री—पद पसारि जहु पाव करि आपु सहित परिकर ।

पितर पार करि प्रभुहि धुनि सुदित मखत लेह पार ॥ १०१ ॥

चरणोंको छोड़ और ओर परिकरसहित स्पर्श उस जग (चरणोदक) को पीकर,

कहे [उस महान् पुष्पके हाथ] अपने किरौने सकलसो परकर फिर आनन्दपूर्वक
प्रभु श्रीरामचन्द्रको गह्वरीके घर ले गया ॥ १०१ ॥

चौ०—उत्तरी ठाठ सत् धुरधरि रेश। सखि सखु सुह छबन समेत ॥

केवट उतारि इन्द्रपथ कीन्हा। प्रसुहि सखु पृदि नहि कहु दीन्हा ॥ १ ॥

निरादरान और लम्पटकीतलित श्रीसीतानी और श्रीरामचन्द्रजी [नाथे] उतर-
कर गह्वारीकी धै (कन्हू) से खड़े हो गये। तब केवटने उतरकर दण्डवत् की।
[उरको दण्डवत् करते देखकर] प्रसुहिने संकोच हुवा कि इतको कुछ दिया नहीं ॥ १ ॥

रिप हिय एहि सिख बाधसिहारी। सनि सुदरी मन मुदित उतारी ॥

कहेव हृयाक केहि उतारि। केवट चरण गहे भकुकाई ॥ २ ॥

एतके हृदयकी बाधनेवाली सीतानीने आनन्दमें मनसे अपनी रत्नजडित अँगूठी
[अँगूठीसे] उतारी। कुछत श्रीरामचन्द्रजीने केवटसे कहा, माचकी उतारि ले।
केवटने आकुल होकर चरण पकड़ लिये ॥ २ ॥

नाथ धरु सै कद न पावा। मिते दोष दुख दारिद बाव ॥

कहुत धरु ले कीन्हि सबूरी। भाहु दीन्हा बिधि बनि भक्ति भूरी ॥ ३ ॥

[उतने कहा—] हे नाथ ! आन मैंने क्या नहीं पाया ? मेरे दोष, दुःख और
हरितालके आन आज कुछ गयी। मैंने बहुत समझकर सबूरी की। बिचाराने आज
बहुत अच्छी भरपूर सबूरी है वी ॥ ३ ॥

अब कहु नाथ न पाकि मोरें। दीन्हावाक अनुग्रह मोरें ॥

किन्तो कर मोहि नो देवा। सो प्रसुहु में तिर परि केस ॥ ४ ॥

हे नाथ ! हे दीन्हावाक ! आपकी कृपासे अब मुझे कुछ नहीं चाहिये। औटली प्रात
आम मुझे जो कुछ देगे, वह प्रसन्न में तिर चढ़ाकर लूँगा ॥ ४ ॥

चौ०—बाहुत कीन्हा प्रभु कृपान सिखें नहि फलु केवटु लेर ।

विश कीन्हा कदमपथन भगति विमल वर देर ॥ १०२ ॥

प्रभु श्रीरामजी, लम्पटजी और सीतानीने बहुत आग्रह [वा बल] किया, तब
केवट कुछ नहीं देता। तब कृपाके नाथ सम्मान श्रीरामचन्द्रजीने निर्मल भक्तिका
परदान देकर उसे विश किया ॥ १०२ ॥

चौ०—उम मखु करि रसुल बाधा। पवि पारसिष बाकद सभा ॥

सिखें सुरसरिदि ध्येठ कर मोरी। मखु मनोरथ पुरवधि मोरी ॥ १ ॥

फिर रसुलके लानी श्रीरामचन्द्रजीने स्नान करके पारिवर्तना की और शिष्यजीको
सिर नवाया। सीतानीने हाथ मोड़कर गह्वरीके कहा—हे मात ! मेरा मनोरथ पूरा
कीलियेगा, ॥ १ ॥

पवि केवर सैम हसक चोरी। जह कौ लेहि खूब तोरी ॥

सुनि सिय दिनन प्रेम सख सखी। मख तब निमल बरि वर बानी ॥ २ ॥

मिलनेमें पति और देवके साथ कुछपूर्वक लौट जाकर प्रसन्नरी पूरा करें। सीतानीकी
प्रमत्त सती हुई विनयी सुनकर तब मन्त्राधिक-निर्गल कर्मसे ओष्ठ बाणी हुई— ॥ २ ॥

झुट रसुनीर- धिक्- कीही। तब प्रसाद वष बिधि न केरी ॥

मोक्ष होहि निमल तोरें। लेहि सेवहि सन सिधि का जोरें ॥ ३ ॥

रसुनीरकी प्रियमा बानकी ! तुमने, दुष्टारा प्रमान जगत्में किने नहीं माधम दे !

तुम्हारे [कृपादृष्टि] देखते ही खेग खेकल हो जाते हैं । सब मित्रियों हाथ जोड़े तुम्हारी सेवा करती हैं ॥ ३ ॥

तुम्हें जो हमदि बनि निनय सुनवाई । कृपा कीन्हि मोहि दीन्हि कहाई ॥

मदपि देवि मैं देवि कसीसा । सफल होय हित बिज कागीसा ॥ ४ ॥

तुमने जो मुझको बड़ी विनती सुनायी, वह तो तुझपर कृपा की और मुझे बड़ा ही है । तो भी हे देवि । मैं अपनी पानी सफल होनेके लिये तुम्हें आशीर्वाद दूँगी ॥ ४ ॥

दो०—प्राणनाथ देवर सहित कुसल कोसल आइ ।

पूजिहि सब मनकामना सुमुख रहिहि अग छाइ ॥ १०१ ॥

तुम अपने प्राणनाथ और देवरसहित कुशलपूर्वक अयोध्या छोड़ोगी । तुम्हारी सारी मनःकामनाएँ पूरी होंगी और तुम्हारा सुन्दर कन कात्स्न्यमें ॥ जाका ॥ १०१ ॥

चौ०—नाग वचन सुनि अंगल मूख । मुक्ति सौच सुरसरि प्रसूता ॥

तब प्रभु गृहहि कहेउ घर जाइ । सुगत सब मुख आ डर दाइ ॥ १ ॥

महाकले भूत गङ्गाजीके वचन सुनकर और देवनदीको अनुकूल देखकर सीताजी ध्यानमग्न हुई । तब प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने निषादराज गृहसे कहा कि मैसा । अब तुम घर जाओ । वह सुनते ही उत्कल हुए वृक्ष गवा और हृदयमें दाह उत्पन्न हो गया ॥ १ ॥

दीन वचन गृह कह कर जोरी । विनय सुखु रघुकुलमणि मोरी ॥

माय साथ रहि पंडु देखाई । करि दिन चारि चरन सेवकाई ॥ २ ॥

गृह हाथ जोड़कर दीन वचन बोले—हे रघुकुलसिरोमणि । मेरी विनती सुनिये । मैं माय (आप) के लक्ष्य रखकर, खड़ा दिखाकर, चार (कुल) दिन चरणोंकी सेवा करके—॥ २ ॥

कैहि बन जाइ रहय रघुराई । भरकुली मैं करि सुझाई ॥

तब मोहि कहँ जसि देय कहाई । सोइ करिहँ रघुवीर दोहाई ॥ ३ ॥

हे रघुराज ! जिस वनमें आप आकर रहेंगे, वहाँ मैं सुन्दर पर्वतकुटी (पत्तोंकी कुटिया) बना दूँगा । तब मुझे आप मैसी, भाला देंगे, मुझे रघुवीर (आप) की दुहाई है, मैं वैसा ही करूँगा ॥ ३ ॥

गहन समै राम कवि लागू । लख कीन्ह गृह इवँ हुकूम ॥

पुनि गृहँ ग्रासि मोलि सब छोड़े । करि परितोषु विदा तब कीन्ह ॥ ४ ॥

उसके स्वभाविक प्रेमसे देखकर श्रीरामचन्द्रजीने उसको खाय ले लिया, इसके गृहके हृदयमें बड़ा आनन्द हुआ । फिर गृह (निषादराज) ने अपनी जातिके लोगोंको बुला लिया और उनका संतोष करके तब उनको विदा किया ॥ ४ ॥

दो०—तब गन्तपति सिख सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माय ।

सखा अनुज सिय सहित बन गवनु कीन्ह रघुनाथ ॥ १०४ ॥

तब प्रभु श्रीरघुनाथजी गणेशजी और सिन्धुजीका स्मरण करके तथा गङ्गाजीको महाक नवाकर सखा निषादराज छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजीसहित वनको चले १०४

चौ०—बेहि दिन भयत बिटव कर बासू । लख लख सब कीन्ह सुपासू ॥

प्रात प्रातकृत करि सुरुवाई । तीरकराह दोऊ प्रभु आई ॥ १ ॥

उस दिन पेड़के नीचे निवास हुआ । लक्ष्मणजी और सखा गृहने [विभागमें] सब सुव्यवस्था कर दी । प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने सभी प्रातःकाली सब निगाएँ करके जाकर तीर्थोंके राज प्रपत्तके दर्शन किये ॥ १ ॥

मलिन रुख अन्ध मित्र बारी । माघव सरित मीन हितकारी ॥

बाहि पदात्म मग मेहराह । पुन्य प्रदेय दैव अति भार ॥ १ ॥

उस राजाका-सब मन्त्री हैं मझा धारी लो है जौ ओकेबीसपक्षजीसीले
हितकारी मित्र हैं । चान फागों (परम, अर्थ- काम और मोक्ष) मे मन्वार भूग है और
सह पुन्यमय शान्त हो उस राजाका सुन्दर देव है ॥ २ ॥

छेनु प्रथम यह पक्ष चुलका । सबदेहु नहि प्रसन्नकिम्ह पाव ॥

सेन सकल तीरज कर बीरा । कछुप अनीक दहन रनधीरा ॥ ३ ॥

प्रथम क्षेत्र ही दुर्बल- मजबूत और सुन्दर सह (किन) है- जिसको स्वयं भी
[पारपी] शत्रु नहीं प सके हैं । सम्पूर्ण तीर्य ही उनके जेठ और सैनिक हैं, जे
पापकी पैनासो कुछक शस्त्रनेकले और बड़े रणवीर हैं ॥ ४ ॥

संगलु सिंहवत्पु सुनि सोहा । कछु अलमलु सुनि मनु मोहा ॥

चरै अमुम जल संग करंग । ऐति हीहि दुख दारिग मंग ॥ ५ ॥

[गङ्गा- यमुना और सरस्वती] सह्य ही उसका अत्यन्त सुशोभित सिंहासन
है । भयपट रुख है, जो सुनिनेके भी मनको मोहित कर लेता है । यमुनाजी और
गङ्गाजीकी तरङ्गें उसके [स्वाम और सेन] चरै हैं, जिनको देखकर ही दुष्ट और
गरिष्ठता नष्ट हो जाती है ॥ ४ ॥

दो-—सेवाहि सुकृती साधु सुनि पावहि सख- ममकाम ।

बंदी वेद पुराण गन कहहि विमल गुण प्राम ॥ १०५ ॥

पुण्ड्रात्म, पवित्र साधु उसकी सेवा करते हैं और सब मनोरथ पाते हैं । वेद और
पुराणोंके समूह भाट हैं, जो उसके निर्मल गुणगणोंका बखान करते हैं ॥ १०५ ॥

बी-—जो कहि लख-प्रथम प्रनाक । कछुप पुन कुंजर वृषपाक ॥

कस तीरवपदि ऐलि सुहाय । सुख लागर राखर सुख पाया ॥ १ ॥

पावेंके समूहकी क्षणिकें मारनेके लिये विद्वज्ज प्रयागराजका प्रधान (महन्—
माहात्म्य) कौन कह सकता है । ऐसे सुहावने तीर्यराजका दर्शन कर मुलके समूह
गुलुलमेष्ट श्रीरामजीने भी मुल गया ॥ १ ॥

कहिसिप लखवि सखहि सुहाई । बीसुख दीनभराज कहाई ॥

करी प्रकलु टेकल बन जाग । कछुप महात्म अति अमुरमा ॥ २ ॥

उन्होंने अपने भीमुखसे तीरानी, लक्ष्मणजी और सदा गुहोंको तीर्यराजकी महिमा
फहर सुनायी । तदनन्तर प्रथम करके, सब और बगीचोंको देखते हुए और दई प्रेम्में
मायात्म करते हुए—॥ २ ॥

एहि लियि अह निजोखी बेनी । सुमिरव- लखक सुबंगल देवी ॥

मुदित नगद कीन्दि सित सेवा । पुनि अवादिनि तीर्य देवा ॥ ३ ॥

एक प्रकार कीउमने जाकर त्रिवेणीका दर्शन किया; जो स्मरण करनेके ही सब
मुन्दर महासेवा देनेवाली है । फिर अमन्दपूर्वक [विनेमोसे] जान करके गिरवीकी
मत्ता (पूज) की और विधिपूर्वक तीर्यवत्तयोंका पूजन किया ॥ २ ॥

कच प्रभु महात्म पवि भाव । कच दंडवत सुनि कर लाग ॥

सुनि मग मोन न कछु कहि आई । प्रहरन्द रामि खु पाई ॥ ४ ॥

[काल पूजन आदि सब करने] सब प्रभु श्रीरामजी महाप्राप्तीके सब श्रुति ।

उन्हें दण्डित करते हुए ही मुनिने हृदयसे कहा कि । मुनिके मनका आनन्द कुछ कहा नहीं जाता । मानो उन्हें अज्ञानन्दकी राशि मिल गयी हो ॥ ४ ॥

दो०—दीन्हि असीस मुनीस उर अति अर्बुद अस जानि ।

लोचन गेचर मुकुट फल मनुहुँ किम विधि आनि ॥ १०६ ॥

मुनीश्वर मरदाजीने आशीर्वाद दिया । उनके हृदयमें ऐसा ज्ञानकर अत्यन्त आनन्द हुआ कि 'आज विधाताने [श्रीसीताजी और लक्ष्मणजीसहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन कराकर] मानो हमारे सम्पूर्ण पुण्यके फलको लेकर आँसुके सामने कर दिया ॥ १०६ ॥

चौ०—कुशल प्रथ करि आसन दीन्हे । पृथि प्रेम परिपूरन कीन्हे ॥

कंद मूल फल अर्बुद नीके । दिष्ट आनि मुनि मनुहुँ अमो के ॥ १ ॥

कुशल पृथक्कर मुनिराजने उनको आसन दिये और प्रेमसहित पूजन करके उन्हें समुद्र कर दिया । फिर मानो असुक्तके ही कने हों, ऐसे बगळे-बगळे कंद, मूल, फल और अर्बुद काफिर दिये ॥ १ ॥

सीध कज्जल जन सहित मुद्राष्ट । अति ह्वि राम मूल फल काष्ट ॥

षष्ट किमलभ्य राम सुखारे । मरदाज सुदु वचन उचारे ॥ २ ॥

सीताजी, लक्ष्मणजी और सेवक गुरुसहित श्रीरामचन्द्रजीने उन सुन्दर मूल-फलको बड़ी दृष्टिके साथ खाया । बकाफ्त दूर होनेसे श्रीरामचन्द्रजी खुशी हो गये । तब मरदाजीने उनसे कोमल वचन कहे— ॥ २ ॥

आहु सुफल छष्ट त्रीत्य त्यागू । आहु सुफल कर ओष विरगू ॥

सफल सफल सुद संपन्न सगू । राम सुहृदि अन्धलोकेत सागू ॥ ३ ॥

हे राम ! आपका दर्शन करते ही आज मेरा तप, तीर्थसेवन और त्याग सफल हो गया । आज मेरा कष्ट योग और वैराग्य सफल हो गया और आज मेरे सम्पूर्ण शुभ कार्योंका समुदाय भी सफल हो गया ॥ ३ ॥

काम अवधि सुख अवधि न दूकी । सुहृदें दत्त अस्त सब दूकी ॥

अव करि कृपा देहु कर पट्ट । वित पद सस्त्रिज सहज सहेहु ॥ ४ ॥

कामकी बीमा और सुखकी बीमा [प्रभुके दर्शनको छोड़कर] दूसरी कुछ भी नहीं है । आपके दर्शनसे मेरी सब आशाएँ पूर्ण हो गयीं । अब कृपा करके पद धरवान दीजिये कि आपके चरणकमलोंमें मेरा स्वाभाविक प्रेम हो ॥ ४ ॥

दो०—कारम वचन मन स्रष्टि तनु जब लयि अनु न सुम्हार ।

तब लयि सुख सफेहुँ नहीं किरैं कोटि उपचार ॥ १०७ ॥

अवतक कर्म, वचन और मनसे छल छोड़कर मनुष्य आपका दास नहीं हो जाता, तबतक करोड़ों उपाय करनेसे भी, स्वप्नमें भी वह सुख नहीं पाता ॥ १०७ ॥

चौ०—मुनि मुनि वचन राम सुकुचाने । भाव भगति आनंद अवाने ॥

तब राघवर मुनि मुनसु सुहृद्व । कोटि सौति कदि स्वदि सुपरा ॥ १ ॥

मुनिके वचन सुनकर, उनकी माध-यक्षिके कारण आनन्दसे तब हुए मगवान श्रीरामचन्द्रजी [सीताजी सहित] समुत्था गये । तब [अपने ऐश्वर्यको दिखाते हुए] श्रीरामचन्द्रजीने मरदाज मुनिका सुन्दर मुख कपोलों (जनेकों) प्रकाशते कदकर सबको मुनाया ॥ १ ॥

सो मद सो सब गुन राम केहु । कोटे मुनीस सुख अदर देहु ॥

मुनि राघवीर पससर बबहीं । वचन आशेषर मुसु अनुभवहीं ॥ २ ॥

[ठ-होने कहा—] हे मुनीश्वर । जिसको आप आदर दें, वही वडा है और वही सब गुणसमूहों पर है । सब प्रकार श्रीरामजी और मुनि महात्मजी दोनों परस्पर विनम्र हो रहे हैं और अर्निर्वचनीय मुक्तका अनुभव कर रहे हैं ॥ २ ॥

यह सुधि पाद प्रयाग निवासी । बट्ट तापस मुनि सिद्ध उदासी ॥

भरहाज अग्रिम सब जाणु । देसन दसरस सुखन सुहाणु ॥ ३ ॥

यह (श्रीराम, जगन्नाथ और सीताजीके जानेकी) खबर पाकर प्रयागनिवासी ब्रह्मचारी, तपस्वी, मुनि, सिद्ध और उदासी सब श्रीहरिजीके सुन्दर पुर्जाको देखनेके लिये मरदान्जलीके आश्रमपर आये ॥ ३ ॥

होम प्रवाम कीन्दु सच कन्दु । मुदिष मष्ट कदि कोयन कन्दु ॥

देहि असीस परम सुख पाई । फिरे सराहस सुंदरताई ॥ ७ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने सब किस्मोंसे प्रणाम किया । नेत्रोंका लज्ज पाकर सब आनन्दित हो गये और फल कुछ पाकर आशीर्वाद देने लगे । श्रीरामजीके शौर्धर्षकी शराहला करते हुए वे लौटे ॥ ४ ॥

दो०—एतन् क्रीण्ड विद्याम नित्ति प्रातः प्रयाय मन्त्राह !

बले चक्षित सिय लखन जन मुदित मुनिहि सिरु नाइ ॥ १०८ ॥

और प्रसन्नताके साथ मुनिजो फिर नयाकर भीरावाही, सत्यकी और सेवाक गुणके साथ थे वही ॥ १०८ ॥

श्री०—राम लोमै कौड मुनि नहीं । पाव रहिम इस बेहि मन जाहीं ।

सुनिमनविहसिधमसंनकाहरी । सुगमसकलमयतुम्हकहुआहरी ॥ १ ॥

[चक्रोत्थानम्] वदे प्रेमसे श्रीरामजीने मुनिसे कहा—हे नाथ । बताइये हम किस मार्गसे लौं । मुनि ने मनमें हँसकर श्रीरामजीसे कहते हैं ॥ आपके लिये सभी मार्गें सुगम हैं । साथ हीगि मुनि सिद्ध होनाए । मुनि ने मुनि कहित पञ्चसक आय ॥

सजगिह राम पर प्रेम भवारा । सकल कष्टहि मगु दीक हमारा ॥ ५ ॥

फिर उनसे आपके बिने मुझने शिष्योंको हल्लाया । [साब जानेकी बात] सुनते ही शिष्योंमें हारित हो केरे पचास सिध्द आ गये । सभीका भीरामजीपर अपार प्रेम है । सभी कहते हैं कि मर्मा हमारा देखा हुआ है ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ तस्यैव तस्यैव तस्यैव ॥ तस्यैव तस्यैव तस्यैव ॥

करि प्रणामु विधिं जाम्बु पाई । प्रसुरित हृदये पडे धराई ॥ २ ॥

तस्य पुनिते [पुनित] चार ग्राह्यादिषोडशे साय कर दिवा, जिह्वाने बहुत जम्मा-
तक सब कुतव (पुण्य) किये थे । गीर्धुनायकी प्रणाम कर और भूमि की माथा पाकर
हृदयमें बड़े ही आनन्दित होकर चले ॥ ३ ॥

ग्राम निम्नतम नर निम्नतम नर । देवतं वसु नरि नर पदं ॥

होहि सनाथ बनम जगु पाई । किछि सुखित मनु संग पढाई ॥ १४ ॥

सब ने किसी गोपिके पाव होकर निराले हैं सब जी-पुख रोज़कर उनके हमको देखने
 लगते हैं। जनमभ फल पाकर ये [बढ़ाके बनाय] बनाय हो जाते हैं और मन्ती
 नायके साथ भेदकर [शरीरों साथ न रहनेके कारण] दुखी होकर जैठ जाते हैं ॥४॥

दो०—विद्या छिप धनु विनय करि किये पाह मन काम ।

उत्तरि नहाय धुमुन जल नो लरीर सम स्वाम ॥ १०९ ॥

तदनन्तर श्रीरामजीने किसी करके चारों जगत्चारियोंको विद्या किया। वे मनचाही वस्तु (अनन्य भक्ति) पाकर लौटे। यमुनाजीके पार उतरकर अपने यमुनाजीके जलमें स्नान किया, जो श्रीरामचन्द्रजीके शरीरके छानान ही स्वयं रंगका था ॥ १०९ ॥

चौ०—सुनत 'तीरवासी' नर वासी। पाए बिज बिज काम बिसारी ॥

लखन राम सिख सुंदरसाईं। देखि कहहि बिज बान्ह बहाईं ॥ १ ॥

यमुनाजीके किनारेपर रहनेवाले छी-पुरुष [वह सुनकर कि निबाइके साथ दो परम सुन्दर सुकुमार नवयुवक और एक परम सुन्दरी स्त्री आ रही है] तब अपना-अपना काम भूलकर दौड़े और छमछमी, श्रीरामजी और लीलाजीका सौन्दर्य देखकर अपने भाग्यकी बहाई करने लगे ॥ १ ॥

अति छाछता बसाहि मन माहीं। चरै गहै सुख सजुवाहीं ॥

ले सिन्ह भूँ बसबिरिध सबावे। सिन्ह करि लुपति समु पहिचावे ॥ २ ॥

उनके मनमें [परिचय जाननेकी] बहुत-सी कल्पनाएँ मरी हैं। पर वे नाम-गौण पुरुषों से कुचाते हैं। उन लोगोंमें जो स्योहद और बाहर थे; उन्होंने मुकिते श्रीरामचन्द्रजीकी पहचान किया ॥ २ ॥

सकल कथा सिन्ह सबहि सुचाईं। बरहि चले पितु आबसु पाईं ॥

सुनि सबिबाइ सकल पहिचाहीं। रानी सबै कीन्ह भक्त साहीं ॥ ३ ॥

उन्होंने सब कथा सब लोगोंको सुनायी कि मित्रकी आज्ञा पाकर ये धर्मको चले हैं। वह सुनकर सब कोन दुःखित हो पछता रहे हैं कि रानी और रामने अच्छा नहीं किया ॥ ३ ॥

सैहि भवसर एक तापसु आया। तेज पुंन लखुसस सुहाया ॥

कहि अलखित गति केतु बिसयी। मन क्रम लख राम अनुपयी ॥ ४ ॥

उसी अवसरपर वहाँ एक तपस्वी आया, जो तेजका पुत्र, छोटी भवसाफ और सुन्दर था। उसकी गति कवि नहीं जानते [अथवा वह कवि था जो अपना परिचय नहीं देना चाहता]। वह वैरागीके वैशेष था और मन, वचन तथा कर्मसे श्रीरामचन्द्रजीका प्रेमी था ॥

[इस तेजःपुत्र तापसके प्रसंगसे कुछ टीकाकार श्रेष्ठ मानते हैं और कुछ लोगोंके देखनेसे वह असाधारण और ऊपरसे जोका हुआ-सा जान भी पड़ता है, परन्तु वह सभी प्राचीन मतियोंमें है]। सुखाईजी अस्मैक अनुभवी पुरुष थे। पता नहीं, क्यों इस प्रसंगके रखनेमें क्या रहस्य है; परन्तु वह श्रेष्ठ तो नहीं है। इस तापसको जब कवि अलखित गति कहते हैं, तब निश्चयपूर्वक यौन क्या कह सकता है। इसी समझते ये तापस या तो श्रीहनुमान्जी थे अथवा ध्यान्सु सुखीदासजी ।]

दो०—सबल नयन उन पुलकि बिज इष्टदेव पहिचानि ।

परेठ दंड जिमि धरनिजल दसा न आइ बरकानि ॥ ११० ॥

अपने इष्टदेवको पहचानकर उसके नेत्रोंमें लज भर गया और शरीर पुलकित हो गया। [दण्डकी मोति पृथ्वीपर फिर पड़ा; उसकी [प्रेमविह्वल] दशाका वर्णन नहीं किया जा सकता] ॥ ११० ॥

चौ०—राम सप्रेम पुलकि उर झला। परम रंक जनु पारसु पया ॥

मरहुँ प्रेसु परमासु होऊ। मिलन घरे तब कह सजु फोक ॥ १ ॥

श्रीरामजीने प्रेमपूर्वक पुलकित होकर उसको दृष्टव्यसे क्या किया [उसे इतना आनन्द हुआ] गानो कोई महादरिद्री अनुभव पास पा गया हो। तब कोई [देखनेवाले] करने लगे कि मानो प्रेम और परमार्थ (परम सत्य) दोनों शरीर पारस्य करके मिल रहे हैं ॥ १ ॥

बहुनि छवत पाकन्ह जेह छावा । कीन्ह उवाह जमनि मनुसावा ॥
 पुनि सिय कम पूरि पारि खीसा । बनवि खनि सिनु दीन्हि बखीसा ॥ २ ॥
 फिर क लक्ष्मणीके घरवाँ लावा । उन्होंने प्रेम्मे लम्बेकर उठको उठा दिया ।
 फिर उठने सीताजीकी चरणपूजिके अपने सिरपर धारण किया । माता सीताजीने भी
 उसके अपने छोटा कन्हा बानपर बाधीनाँव दिया ॥ २ ॥

कीन्ह निराह दंडवत वेही । मिलेन सुदित लखि राम खनेही ॥
 निमत बचन पुन उखु विवृषा । सुदित सुखमस्तु पाइ बिभिभूषा ॥ ३ ॥
 फिर निराहरामने उठको दण्डवत् की । श्रीरामचन्द्रजीका प्रेमी जानकर वह उठ
 (निराह) वे आनन्दित होकर मिथ । यह लम्बी अपने नेत्रस्त्री दोनोंते श्रीरामजीकी
 सौन्दर्य-मुखाका पान करने लगा और ऐसा आनन्दित हुआ जैसे कोई भूखा आदमी
 सुन्दर भोजन पाकर आनन्दित होता है ॥ ३ ॥

हे पितु मस्तु कहहु सखि कैसे । किन्ह करु वन काकल ऐसे ॥
 राम लक्ष्मण सिय बपु मिहारी । होहि सखेह विच्छन्न वर नारी ॥ ४ ॥
 [हजर गोंवकी बियाँ बह रही हैं—] हे सखी ! कहे खे, वे माता-पिता कैसे हैं
 किन्हींने देते (सुन्दर सुकुमार) बालकोंको अपने मेव दिया है । श्रीरामजी, लक्ष्मणजी
 और सीताजीके रूपको देखकर सब की-पुत्र लोहेरे म्बकुल हो जाते हैं ॥ ४ ॥

रो—सब रघुबीर अनेक विधि सखहि सिखावनु दीन्ह ।
 राम रजायनु सीत धरि भयन रावन तेहँ कीन्ह ॥ १११ ॥
 सब श्रीरामचन्द्रजीने सखा गुहको अनेकों तरहे [वर लौट जानेके लिये] समझाया ।
 श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे फिर चढ़ाकर उठने अपने घरको गमन किया ॥ १११ ॥

चौ—पुनि सिद्ध राम लखन कर लोरी । कसुनिहि कीन्ह प्रवासु बहोरी ॥
 कहे रासीय सुदित होइ आई । रमितहुका कह करत बड़ाई ॥ १ ॥
 फिर सीताजी, श्रीरामजी और लक्ष्मणजीने सब बोककर सगुनारीको पुनः प्रणाम
 किया और दुर्गन्ध सबुतानीकी बड़ाई करते हुए खैलजीबहित दोनों भाई
 प्रसन्नतापूर्वक भागे कहे ॥ १ ॥

पथिक अनेक मिलहि मग करता । कहहि सखेस बेचि दीव जाता ॥
 राम लखन सब अंग छुटारैं । देखि सोनु अति दुख्य हमारैं ॥ २ ॥
 रासोमें जाते हुए उन्हें अनेकों पानी मिलते हैं । वे दोनों माइबोको देखकर उनसे प्रेम-
 पूर्णक कहते हैं कि हमारे सब वस्त्रोंमें राखबिह देखकर हमारे हृदयमें क्या शोक होता है २
 माग पछु पचवेदि पछै । कबेरिषु छल हमारैं भावै ॥
 अगस्त्य पंडु निरि कवन सारी । देखि गहि साथ पारि सुकुमारी ॥ ३ ॥
 [देखे राखबिहोके होते हुए—] हमलोग रासोमें पैदा हो कर रहे हो। इससे
 हमारी समझमें आता है कि न्योतिन-छल बड़ा ही है । मारी अंधक और बड़े-बड़े
 पशुकीका दुर्गम रास्ता है । सिम्पर हमारे साथ सुकुमारी की है ॥ ३ ॥

हरि केहरि वन कन्ह न सोई । हम सँग चरहि जो कामसु होई ॥
 साथ जहाँ लगी गई पहुँचई । चित्त बहोरि सुन्दरि सिद्ध ताई ॥ ४ ॥
 हमी और चिहोते मग कह भवानक वन देवातक नहीं जाता । यदि आशा हो
 तो हम साथ चरें । जब धौतक जगमें पहुँचक पहुँचावक फिर आत्मको प्रणाम करके
 हम लौट आनेवे ॥ ४ ॥

दो०—एहि विधि पूँछहि प्रेम बस पुलक गात कछु नैन ।

छपासिषु केरहि तिन्हहि कहि विनीत सुदु बैच ॥ ११२ ॥

इस प्रकार वे नाची प्रेमका पुत्रकित करि हो और नेत्रोंमें [प्रेमानुओंका] जल भरकर पूछते हैं । किन्तु कृष्णके समुद्र श्रीरामचन्द्रजी केमल विनयपुत्रक वचन कहकर उन्हें खेद देते हैं ॥ ११२ ॥

बौ०—जे पुर गाँव बसहि भग गाँधी । तिन्हहि जंगे सुर नम सिद्धाहीं ॥

केहि सुकृतां केहि धरी बसबई । कन्य पुष्पमय परम सुहार ॥ १ ॥

जो गाँव और पुरवे रास्तेमें बसे हैं, नाचों और देवताओंके नगर उनको देखकर प्रार्थनापूर्वक ईर्ष्या करते और उल्लासते हुए कहते हैं कि किस पुष्पमयने कित्त झुम ध्वजोंमें इनको रक्ताया था; जो आज ये इतने मन्य और पुष्पमय तथा परम सुन्दर हो रहे हैं ॥ १ ॥

कहैं सई राम जंगम जति जाहीं । तिन्ह समान जगमगति नाहीं ॥

पुष्प पुंन मय विष्णु भिखारी । तिन्हहि सराहिं सुरपुर-बासी ॥ २ ॥

जहाँ-जहाँ श्रीरामचन्द्रजीके चरण चले जाते हैं, उनके समान इन्हीं पुरी जगमगती भी नहीं है । रास्तेके समीप बसनेवाले भी ऐसे पुष्पमय हैं—सबसे रहनेवाले देवता भी उनकी सराहना करते हैं—॥ २ ॥

जे सरि मयम बिलोकिहि राजहि । सीता कखन सहित बनबासीहि ॥

जे सर सरित राम जंगमसहि । तिन्हहि देव सर सरित सराहिं ॥ ३ ॥

जो नेत्र सरकर सीताजी और लक्ष्मणीसहित बनबासी श्रीरामजीके दर्शन करते हैं, जिन राजाओं और नदियोंमें श्रीरामजी स्नान कर लेते हैं, देवसेनके और देवतारिजों भी उनकी बधाई करती हैं ॥ ३ ॥

केहि राव तर मनु बैसहि जाई । करहि कलपवत्त लक्ष्म जवाई ॥

परसि राम पद पदुम परगा । नाचति भूमि भूरि चित्त भागा ॥ ४ ॥

जित रुद्धके नीचे मनु बैसते हैं, कलपवत्त भी उसकी बधाई करते हैं । श्रीरामचन्द्रजीके चरणमालोंकी रजका सर्प करके पृथ्वी अपना बड़ा सौभाग्य मानती है ॥ ४ ॥

दो०—छाँह करहि धन विबुधमय वरपाई सुमन सिद्धाहि ।

देखत गिरि वन विहग मय राम सखे मय जाहि ॥ ११३ ॥

रास्तेमें चादर जमा करते हैं और देखत भूल जरावाते और विहाते हैं । पर्वत, वन और पशुपक्षियोंको देखते हुए श्रीरामजी रास्तेमें चले जा रहे हैं ॥ ११३ ॥

बौ०—सीता कखन सहित रघुसाई । गाँव फिछत जव किन्सहि-साई ॥

सुनि सन बाज कृद जग जरी । फाँहि पुस्त राह कष्ट विहारी ॥ १ ॥

सीताजी और लक्ष्मणीसहित श्रीरघुनाथजी जब किसी गाँवके पास या निकलते हैं तब उनका आना सुनते ही बाज-गूँहे, स्त्री-पुरुष सब जागते कर और कलम-काखों पूँछकर दूरत उन्हें देखनेके लिये पल देते हैं ॥ १ ॥

राम कखन सिन कन चिहारी । पद नयन कछु दोहि सुचारी ॥

सखल बिलोचन पुलक सरीरा । सब मय धन्य देखि दोन बीरा ॥ २ ॥

श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजीका सब देखकर, नेत्रोंका [परम] कल पाकर वे खुशी होते हैं । दोनों मादगोत्रों देखकर सब प्रेमानन्दों मग हो गये । उनके नेत्रोंमें जल भर आया और करीर पुलकित हो गये ॥ २ ॥

वरीन न चाह हसा तिनह केरी । छहि जनु रंकन्ह मुर मनि ऐरी ॥
 एकन्ह एक कोकि सिख देहीं । छोचन जनु केहु छन पहीँ ॥ ३ ॥
 लुनकी दशा बर्षन महीं की ज्यती । मनो हरिद्वारे चिन्तामणिही देरी पा ली हो ।
 ये एक-एकको पुकारकर सीख देते हैं कि इसी लष नेजोष जप छे ज्ये ॥ ३ ॥
 समहि देखि एक अनुगमे । चितवत जले गहि सँग छामे ॥
 एक नवच मन ज्ये उर आवी । होहि सिधिल तव मन कर जानी ॥ ४ ॥
 कोई श्रीरामचन्द्रजीको देखकर ऐसे अनुगमों पर गये हैं कि वे उन्हें देखते हुए
 उनके साथ जो चले वा रहे हैं । कोई नेत्रमण्डि उनकी छविमें इन्द्रयमें लकर धरीर,
 मन और ओष्ठ बाणीते सिफिक हो जाते हैं (अर्थात् उनके धरीर, मन और बाणीका
 व्यवहार बंद हो जाता है) ॥ ४ ॥

दो—एक देखि पट छौह मणि ज्यति महुल दन पात ।

कहि गवौंर छिनुकु भ्रमु गवमव अवहि कि पात ॥ ११४ ॥

कोई बड़की मुन्दर जाया देखकर, ब्राम्हम पात और कते बिछकर कहते हैं कि भ्रमभर
 यहाँ बैठकर यकावद मिया खींचिये । फिर चारो भर्मा चले जावेगा, चारो तवरे ॥ ११४ ॥

चौ—एक कलस मरि कायाहि पानी । बँचल नाव कहि महु पानी ॥

जुनि प्रिय वचन प्रीति अति देखी । राम कृपाक मुसिक बितेपी ॥ १ ॥

कोई बड़ा भरकर पानी ले जाते हैं और बोमक बाणीते कहते हैं—नाय ! भावमन
 तो कर लीजिये । उनके प्यारे वचन सुनकर और उनका भावमन प्रेम देखकर बड़ा
 और परम सुखी श्रीरामचन्द्रजीने—॥ १ ॥

जानी धरित सीव मन मारी । वरि क विन्दु जीव पट छाहीं ॥

मुपित करि नर देखाहि सोमा । रूप अनूप मय मनु खेना ॥ २ ॥

मनमें वीताजीको धरी हुई जानकर बर्षाभर बहती लपामे बिकाम किया ।
 जी-रूप आनन्दित होकर घोमा देखते हैं । अनुपम रूपने उनके नेत्र और मनोको
 छमा लिया है ॥ २ ॥

एकटक मन सोहहि चहुँ ओरा । समबंध गुन बंद बकीर ॥

छन तमक वरन तनु लोहा । देखत कोहि सदन मनु मोहा ॥ ३ ॥

सर लोग टकटकी लगाये श्रीरामचन्द्रजीके तुल्यचन्द्रको बचोएकी तरह (तन्मय
 होकर) देखते हुए चारों ओर सुशोभित हो रहे हैं । श्रीरामजीका वहीन तमक वृक्षके
 रंगका (त्वाम) धरीर भावमन बोमा दे रहा है, विते देखते ही करोड़ों कामदेवोंके
 मन मोहित हो जाते हैं ॥ ३ ॥

दामिनि जम कलन मुनि शीक । नम सिख सुमय भावते जी-के ॥

मुनिपट कटिन्ह कते त्वीर । सोहहि कर कमलति चहुँ तीर ॥ ४ ॥

विलीकेसे रंके लज्जाली बहुत ही मले भंडम होते हैं । वे नकते गिलातक सुन्दर
 हैं और मनको बहुत भाते हैं । दोनों मुनिबंध (कलक आदि) कल पहने हैं और
 कमरमें तरक्त कते हुए हैं । कमरके खमन हावामे अनुप-नाम शोभित हो रहे हैं ॥ ४ ॥

दो—अष्ट मुकुट सीसनि सुमय कर मुख नयन विसाल ।

सरद परव विनु वदन कर लसत स्वेद कन जाल ॥ ११५ ॥

उनके विरोंपर सुन्दर कपडोंके मुकुट हैं : कमलक, मुखा और नेत्र विद्याल हैं और
 शरद्वर्णिकके चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखोंपर लीने की बूंदोंका समूह शोभित हो रहा है ॥ ११५ ॥

चौ०—बरनि न पसह मनोहर मोरी । सोभा बहुत मोरि मति मोरी ॥

राम उसन छिय सुंदरसई । सब फिरोहि जित मन मति लई ॥ १ ॥

उस मनोहर जोड़ीअ कर्णन नहीं किया का सकता; क्योंकि सोभा बहुत अधिक है और मेरी बुद्धि थोड़ी है । श्रीराम; उसका चौर सीताजीकी सुन्दरताको सब जग मन, चित और बुद्धि तीनोंको व्यापक देख रहे हैं ॥ १ ॥

धके नारि कर प्रेम सिखाये । मनहुं छली सुख देखि दिमा से ॥

सीय समीप आगतिन चाहैं । पूछत जाति सवेई, सकुचावैं ॥ २ ॥

प्रेमके प्यासे [वे गाँवोंके] जी-पुत्र [इनके सौन्दर्य-गानुयकी छटा देखकर] ऐसे धकित रह गये जैसे दीपकको देखकर शिनी और शिरन [निराश्वय रह जाते हैं] ! गाँवोंकी छियाँ सीताजीके पास जाती हैं; परन्तु अन्ततः लोभके कारण पृच्छते सकुचाती हैं ॥ २ ॥

बार बार सब छावई पावैं । कहाँ नचन सहु सरल सुभावैं ॥

राजकुमारि विना हम कहाँ । शिव सुभावेँ, कम रूठत वहाँ ॥ ३ ॥

बार-बार सब उनके पास जाती और राज ही सीधे-साधे कोमल वचन कहती हैं—हे राजकुमारी ! हम विनाही करती (कुछ निवेदन करना चाहती) हैं, परन्तु श्री-स्वभावके कारण कुछ पृच्छते हुए जाती हैं ॥ ३ ॥

सामिति अनिख बचि हमारी । विरजु न मानव जाचि गवैसी ॥

राजकुमार होत सख सुकोने । इन्हें वहाँ सुवि भरकत सोने ॥ ४ ॥

हे सामिति ! हमारी डिडार्ह क्या कीजियेगा और हमको सँभारी जानकर दुरा न मानियेगा । वे दोनों राजकुमार स्वभावके ही स्वयम्भवा (परम सुन्दर) हैं । भरकतमणि (पत्थर) और सुकन्ये का प्रति इच्छति पायी है (अर्थात् भरकतमणिमें और स्वर्णमें जो हरित और सर्पवर्णकी आभा है वह इनकी हरितामनीक और स्वर्णकान्तिके एक करने नगर भी नहीं है) ॥ ४ ॥

चौ०—सामल गौर किसोर वर सुंदर सुवसा ऐन ।

सख सबरीनय सुख सख सरोक नैन ॥ ११६ ॥

रंगम और गौर वर्ण है; सुन्दर किसोर भवता है। दोनों ही परम सुन्दर और सौभाग्य के धाम हैं । शरत्कालके कन्दमाके समान इनके मुख और शरद-शुद्धके कलके समान इनके नेत्र हैं ॥ ११६ ॥

असपारमय, सोलहवीं विश्राम

नवाव्धारमय, चौथा विश्राम

चौ०—कोटि मनोज जगामिहारे । सुमुखि कहु को भादि तुम्हारे ॥

सुखि सनेहमय मंजुल वाणी । सकुची स्थि सब सहु सुसुकारी ॥ १ ॥

हे सुमुखि ! कौ तो अपनी सुन्दरतासे करोड़ों कमदेवीको कलानेवाले से तुम्हारे कीन हैं । उनकी ऐसी प्रेममयी सुन्दर वाणी सुनकर सीताजी सकुचा गयी और मन-ही-मन मुक्तकर्षी ॥ १ ॥

विन्दहि कितोकि किलोमति धरथी । बुद्धि सबोध सकुजति वचनरी ॥

सकुचि प्रेमा कळ दृग नवनी । बोधी मधुर वचन विवचनी ॥ २ ॥

उत्तम (गौर) वर्णवाली सीताजी उनकी देखकर [संकोचमय] धृष्टीकी ओर देखती हैं । वे दोनों ओरके संकोचसे सकुचा रही हैं (अर्थात् न कलामें प्रेमकी स्थितियोंको दुरा

होनेका संकोच है और वलनेमें स्वास्म संकोच) । हिरनके कन्धेमें सहस्र नेत्रवाली और कोकिलकी-सी नाकीवाली सीताजी सकुचाकर प्रेमचरित मधुर गवन बोलीं—॥ २ ॥

सहस्र सुवस्त्र सुवन्धन जन गौर । नम्र कन्धनु कबु देवर गौर ॥

बहुरि बहनु बिभु बंछक डौली । निचसव दिव्य मोह करि बाँकी ॥ ३ ॥

ये जो सज्जनभाव, सुन्दर और गौर झररके हैं, उनका नाम लम्पण है: ये मेरे छोटे देवर हैं । फिर सीताजीने [लम्पण] अपने कन्धमुखमें ओंछलये दन्तक और प्रियतम (श्रीरामजी) की ओर निहारकर मोह देदी करके, ॥ ३ ॥

लम्पण मंथु लीरीटे कनकि । निचसवि कबुत तिनहिदिसिर्षे सबबनि ॥

॥ बहुरि मुवित सव भ्रमनपूरी । रंज्य सव रामि कबु छट्टी ॥ ४ ॥

जंजन लकीरे से सुन्दर नेत्रोंको सिरछ करके सीताजीने झाररे डण्ड कहा कि ये (श्रीरामचन्द्रजी) मेरी प्रीति हैं । यह जानकर गँवकी सब दुखी स्त्रियों इस प्रकार आनित्त हुए मानो बगालेने उनकी रागियों छट की हो ॥ ४ ॥

जो—अति सप्रेम स्त्रिय फरिँ परि बहुविधि देहि अलीस ।

सदा सोहागिनि होहु तुम्ह जब छगि महि अहि सीस ॥ ११७ ॥

ये आनन्द प्रेमसे सीताजीके पैरों पकड़ बहुत प्रकरसे आश्रित होती हैं (शुभ कामना करती हैं) कि कबचक नेत्रोंके लिएर पृथ्वी रहे सतक हुए सदा सुहागिनी बनी रहो ॥ ११७ ॥

जो—भारवही कम पछिप्रिय होहु । देखि व दम पर कट्य होहु ॥

पुनि पुनि विनय करिष कर जोरी । जी एहि मारग फिरिष बहोरी ॥ ११८ ॥

और चर्यहीनीके समान अपने पछिकी प्यारी होभो । हे देखि । हमपर कृपा न छोड़ना (बनाये रखना) । हम बार बार हाथ चोड़कर निमती करती है जिसने आन फिर रही पाने लौटे, ॥ ११८ ॥

वसतु दैव जानि निज राखी । कली सीरिँ सव प्रेम रिमासी ॥

मदुर वचन कहि कहि परितोकी । बहु कुसुमिनीँ कीसुवीँ रोपी ॥ ११९ ॥

और हमे अपनी बाली जानकर दर्शन दे । सीताजीने उन सबको प्रेमकी श्वासी देखा, और मधुर वचन कह-कहकर उनका असीमोति सन्तोष किया । मानो चोंदनीने कुसुमिनीको सिलकर पुष्ट कर दिया हो ॥ ११९ ॥

वहहि कथन रघुकर सब जानी । वैकुण्ठ मनु कोसनिँ बहु बाजी ॥

सुख नारि नर मय दुखनी । सुखनिँ सब विखोज्य करी ॥ १२० ॥

उसी समय श्रीरामचन्द्रजीका वक्त जानकर लम्पणजीने कोसल राजाजीके कोमल राता पूछा । वह सुनते ही क्री-पुष्प दुखी हो गये । उनके वरिँ पुष्पकित हो गये और नेत्रोंमें [विनोदनी सम्प्राप्तासे प्रेमका] बँक मर जाया ॥ १२० ॥

मिट्य मोहु मय मय भली । मिति विधि रीन्द केत मनु छीने ॥

समुझि काम गति पीरु कीन्द । सोचि सुखम मनु विन्द कहि कीन्हा ॥ १२१ ॥

उनका मानन्द मिट गया और मन ऐसे उदात्त हो गये मानो विवादा की हुई क्षमति छीने केत हो । ऊपरकी गति समझकर उन्होंने वैयं धारण किन्ना और अच्छी तरह निर्णय करके दुःख मार्ग चलान दिया ॥ १२१ ॥

जो—उदात्त मानकी सहित सब गवसु कीन्द रघुकथ ।

फेरि सब प्रिय वचन कहि छिप लख मय साथ ॥ १२२ ॥

तब लक्ष्मणजी और ज्वनकीजीसहित श्रीपुत्राक्षजीने यमन किया और सब लोगोंको प्रिय वचन कहकर लौटाया; किन्तु उनके मनोंको अपने साथ ही ख्या किया ॥ ११८ ॥

चौ०—किरत नरि घर गति पछिताई। वैचहि देखु देहि मन माई ॥

सहित बिधाव परसर कह्यो। विधि करतन कछे सप बह्यो ॥ १ ॥

लौटते हुए ये स्त्री-पुरुष बहुत ही पछताते हैं और मन-ही-मन वैचको दोष देते हैं। परसर [बड़े ही] विचारके साथ कहते हैं कि विधाताके सभी काम उल्टे हैं ॥ २ ॥

निपट विरंकुस बिहुर भिंसहु। चेहि ससि कीन्ह सकल सकलहु ॥

कल कलपतक सातव करार। वेहि पदपु भव राजकुमार ॥ १ ॥

एक विधाता निरंकुस विरंकुस (स्वतन्त्र) निर्दय और निडर है, जिसने चन्द्रमाको रोगी (घटने-बढ़नेवाला) और कलकषे बनाया, कल्पवृक्षको पेड़ और समुद्रको खारा बनाया। उसीने इन राजकुमारोंको जनमें भेजा है ॥ २ ॥

जौ ये हम्हहि दीन्ह कलपवृक्ष। कीन्ह कदि विधि भोग किराम ॥

ए विचरहि सग बिजु पक्षमा। रवे कदि विधि साइन माया ॥ ३ ॥

जब विधाताने इनको कलपवृक्ष दिया है, तब उसने भोग-विलास व्यर्थ ही बनाये। जब ये बिना जूतेके (नेने ही पैरों) रास्तेमें चल रहे हैं, तब विधाताने अनेकों बाहन (सवारियों) व्यर्थ ही रचे ॥ १ ॥

ए महि परहि काति कुस पाता। सुभय सेव कल सजत विधाता ॥

सखर बास हम्हहि विधि दीन्ह। बसल बास रवि रवि भसु कीन्ह ॥ ४ ॥

जब ये कुस और पते किराकर जमीनपर ही पड़ रहते हैं, तब विधाता सुन्दर रत्न (पलंग और-विछौने) किस लिये बनाता है? विधाताने जब इनको कवे-कवे पैरों [के नीचे] का निवास दिया, तब उल्लसक महलोंको बना बनाकर उसने व्यर्थ ही परिभ्रम किया ॥ ४ ॥

दो०—जौ ए मुनि पद धर अटिठ सुवर सुठि सुकुमार।

विचिचि भौंति भूषण बसन बादि फिर करतार ॥ ११९ ॥

जो ये सुन्दर और अत्यन्त सुकुमार होकर मुनियोंके (दलाल) पक्ष पहन्ते और जटा धारण करते हैं, तो फिर करतार (विधाता) ने भौंति-भौंतिके सब्जे और कपड़े क्या ही बनाये ॥ ११९ ॥

चौ०—जौ ए कीद, मूल कल अहीं। कदि सुधादि भस्म अग माई ॥

एक कहहि ए सख्य सुधार। धनु प्रगट भए विधि न बनए ॥ १ ॥

जो ये कन्द, मूल, फल लाते हैं तो फलमें अमृत गादि मोक्षन व्यर्थ ही हैं। कोई एक कहते हैं—ये समाकषे ही सुन्दर हैं [इनका खेन्द-मधुपद तिल और स्वाभाविक है]। ये अपने आप प्रकट हुए हैं, ब्रह्माके बनाने नहीं हैं ॥ १ ॥

जई लमि वेद कही विधि करी। अवनं कवन मन खेचर बरनी ॥

देखहु खेचि सुबन दस चारी। कई बस पुस कहीं अखि नारी ॥ २ ॥

हमारे कानों, नेत्रों और मनके द्वारा अनुभवमें आनेवाली विधाताकी करनीको जहाँतक वेदोंने वर्णन करके कहा है, जहाँतक चौदहों लोकोंमें हँट देखो, ऐसे पुरुष और ऐसी स्त्रियाँ कहाँ हैं? [कहाँ भी नहीं हैं, इसीसे सिद्ध है कि ये विधाताके चौदहों लोकोंसे बलम हैं और अपनी गतिगते ही आप निर्मित हुए हैं] ॥ २ ॥

इन्हहि देखि विधि मनु अनुसरा । पठत सोभ बनावै अगा ॥
 कीन्ह बहुत अम ऐक न आए । तेहि इरिषा भन जाचि दुराग ॥ ३ ॥
 इन्हें देखकर विधातका मन अनुरक्त (मुग्ध) हो गया, तब वह भी इन्हींकी
 उपमाके योग्य दूसरे स्त्री-पुरुष बनाने लगा । उसने बहुत परिश्रम किया, परन्तु कोई
 उसकी भटकलमे ही नहीं आये (पूरे नहीं उठे) । इसी ईर्ष्याके मारे उसने इनको
 जंगलमें टाकर छिया दिया है ॥ ३ ॥

एक कहहि हम बहुत न जानहि । अपुहि परम कन्य करि मानीहि ॥
 ते पुनि पुन्यपुनं हम लेले । जे देखहि देखिहहि किन्ह देखै ॥ ४ ॥
 कोई एक करते हैं—हम बहुत नहीं जानते । हों, अपनेको परम कन्य अवश्य
 मानते हैं [जो इनके दर्शन कर रहे हैं] । और हमारी समझमें वे भी बड़े पुण्यवान्
 हैं जिन्होंने इनको देखा है, जो देख रहे हैं और जो देखेंगे ॥ ४ ॥

रो०—यहि विधि कहि कहि बचन प्रिय लेहि मवन भरि नीर ।

किमि चलिहहि मारन अयम सुनि सुकुमार सरीर ॥ १२० ॥
 इस प्रकार प्रिय बचन कह-कहकर सब नेत्रोंमें [प्रेमशुद्धि] एक भर लेते हैं और कहते
 हैं कि ये अत्यन्त सुकुमार सरीरवाले दुर्गम (कठिन) मार्गमें कैसे चलेंगे ॥ १२० ॥

चौ०—गारि लगेह पिकल बस होही । बकई सौंख समय जनु सोही ॥

सुनु एव कमल कलिय मनु जानी । पाहुनरि हृदय कहहि बर वाली ॥ १ ॥
 कियों स्नेहपथ विकल हो जाती हैं । मनो कन्याके समय चक्रीय [भावी वियोगकी
 पीड़ासे] सोह रही हों (दुखी हो रही हों) । इनके चरणरत्नमेंसे कीमल तथा, मार्गकी
 कठोर जानकर वे व्याधित हृदयसे उत्तम वाणी कटती हैं—॥ १ ॥

परसत सुकुल परम अनुमारे । सकुचति यदि किमि हृदय हसारे ॥
 बीं लादीस इन्हहि मनु दीन्हा । कस न सुखवसप मायु कीन्हा ॥ २ ॥
 इनके कोमल और लाल लाल चरणों (लक्ष्मियों) को छूने ही पृथ्वी वैसे ही सकुचा
 जाती है जैसे हमारे हृदय सकुचा रहे हैं । लादीधरने यदि इन्हें वनवास ही दिया, तो
 चार रातोंकी पुष्पमय क्यों नहीं बना दिया ! ॥ २ ॥

बीं माया पाहुन किमि पही । ए रसियहि सति चोकिन्ह नही ॥
 जे नर नारि न लखसर आए । किन्ह छिय रासु न देखन पाए ॥ ३ ॥
 यदि प्रकाशे मने किं तो हे लखि । [इस से उनसे योग्यकर] इन्हें अपनी औरों-
 में ही लखें । जो स्त्री-पुरुष इस अवसरपर नहीं आये, वे श्रीसीतारामजीको नहीं देख सकें ॥ ३ ॥

इति सुकुल वृद्धि अनुसह । अब समि राघु कहाँ कनि भाई ॥
 समस्य भाइ किलोकिहि जाई । प्रसुचित फिहि नमसपहु पाई ॥ ४ ॥
 उनके लौन्दर्यको सुनकर वे जलकुल होकर पूछते हैं कि भाई ! अवतक वे कहाँ तक
 गये लोगे ! और जो समय है, वे दीक्षित हुए जाकर उनके दर्शन कर लेते हैं और वन-
 का परम पक पाकर, विशेष आनन्दित होकर बैठते हैं ॥ ४ ॥

रो०—अवला वालक वृद्ध जन कर गीकाहि पछितारहि ।

होहि प्रेमवल लोग इमि रासु कहाँ जाई जाहि ॥ १२१ ॥
 [गर्मपत्नी, प्रसन्न आदि] अवल किमि, कन्ये और जुड़े [दर्शन न पानेसे] हाथ
 मलने और पछताते हैं । इस प्रकार नहीं-चहाँ औरमकज्जी खाते हैं, वहाँ-वहाँ लोग
 प्रेमके वयमें हो खाते हैं ॥ १२१ ॥

चौ०—गावँ गावँ बस होइ कबहुँ । देखि मातुल्ल कैंस वहुँ ॥

ये कबु समाचार सुनि पावहि । ते नृप छनिहि सोसु उगावहि ॥ १ ॥

सूर्यकुलरूपी कुमुदिनीके प्रफुल्लित करनेवाले चन्द्रमास्वरूप श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन-
कर गाँव-गाँवमें ऐसा ही आनन्द हो रहा है । जो खेय [वनवास दिव्य जानेका] कुल
भी समाचार सुन पाते हैं, वे रात्ता-राती [दधरय-कैनेनी] को दोष लगाते हैं ॥ १ ॥

कहहि एक अति मल्ल बरवाहु । दीन्ह हमहि बोह कोचन छाहु ॥

कहहि परसपर लोग खेगह । कतें सख सनेह सुहाई ॥ २ ॥

कोई एक कहते हैं कि रात्ता बहुत ही अच्छे हैं, जिन्होंने हमें अपने नेत्रोंका लज्ज
दिया । श्री-पुत्र सभी आपसमें सीधी, स्नेहमयी सुन्दर बातें कह रहे हैं ॥ २ ॥

ते पितु मातु धन्य किन्ह जाय । धन्य सो भगव जहाँ तें भाय ॥

धन्य सो वैसु सैसु बस गार्ह । जहाँ जहाँ जाहि धन्य सोइ सार्ह ॥ ३ ॥

[कहते हैं—] ये माता-पिता धन्य हैं जिन्होंने इन्हें जन्म दिया । यह तब धन्य
है जहाँसे ये आये हैं । जहाँ देव, पर्वत, वन और गाँव धन्य है, और वही स्थान धन्य है
जहाँ-जहाँ वे जाते हैं ॥ ३ ॥

सुख पायइ विरिधि रचि लेही । ए लेहि के सब भीति समेही ॥

राम लखन बधि फला सुहाई । रही सकल मग कानन छाई ॥ ४ ॥

प्रधाने ठीकी रचकर सुख पाया है जिसके ये (श्रीरामचन्द्रजी) सब प्रकारसे
लौही हैं । प्रपिकल्प श्रीराम-लखनकी सुन्दर कथा खरे रास्ते और जंगलमें छा गयी है ॥ ४ ॥

चौ०—पहि विधि रघुकुल कमल रवि मग खेगन्ह सुक देत ।

जाहि बळे देखत विपिन सिय सौमित्र समेत ॥ १२२ ॥

रघुकुलरूपी कमलके खिलनेवाले सूर्य श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार मार्गके लोगोंको
सुख देते हुए सीताजी और लक्ष्मणजीसहित वनको देखते हुए चले जा रहे हैं ॥ १२२ ॥

चौ०—आगँ राहु कबहुँ बने पाछें । खस बस विराजत काछें ॥

जमय बौध सिंग सोइति कैसैं । मल्ल लीब विष मया कैसैं ॥ १ ॥

आगे श्रीरामजी हैं, पीछे लक्ष्मणजी सुशोभित हैं । लक्ष्मणजीके वेव बनाये दोनों
बड़ी ही शोभा पा रहे हैं । दोनोंके बीचमें सीताजी कैसी सुशोभित हो रही हैं, जैसे मल्ल
और जीवके बीचमें नावा ॥ १ ॥

बहुरि कहैं छवि असि मन मसई । बसु बसु मदन संग रति कसई ॥

अपमा बहुरि कहैं चिरि जोही । जसु बसु विषु विष रोहिनि सोही ॥ २ ॥

फिर जैसी छवि मेरे मनमें बस रही है उससे कहता हूँ—भाबो वसन्तशुद्ध और
कामदेवके बीचमें रति (कामदेवकी स्त्री) शोभित हो । फिर अपने हृदयमें खोजकर
अपमा कहता हूँ कि मनो बसु (चन्द्रमाके पुत्र) और चन्द्रमाके बीचमें रोहिणी
(चन्द्रमाकी स्त्री) खड़े रही हो ॥ २ ॥

अधु पव रेस बीच विष सीता । घाति परब मग जलवि समीता ॥

सीत राम पद कंक नराई । लखन कहहि मधु दादिन काई ॥ ३ ॥

अधु श्रीरामचन्द्रजीके [जमीनपर अंकित होनेवाले दोनों] चरणविहोंके बीच-
बीचमें पैर रखती हुई सीताजी [कहीं समानानुके चरणचिह्नोंपर पैर न ठिक पाय इस
वातसे] इरती हुई मगसैं चक रही हैं, और लक्ष्मणजी [सर्वादात्री खाके लिने]

सीताजी और भीरामचन्द्रजी दोनोंके चरणचिह्नको दबाने हुए उन्हें दाहिने रखकर रात्ता चढ़ रहे हैं ॥ ३ ॥

राम उसन सिध ज्योति बुझाई । बचब सोचर किम कहि जाई ॥

राम कुछ समझ देखि छवि होहीं । सिधु कोरि चित राम बढोहीं ॥ ४ ॥

भीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजीको सुन्दर प्रीति वाणीय किम नहीं है (अर्थात् अनिर्वचनीय है) । अतः वह कैसे कही जा सकती है ! पत्नी और पति भी उस छविको देखकर (प्रेमानन्दमें) नम्र हो जाते हैं । परिकरस भीरामचन्द्रजीने उनके भी चित्र गुण विदे हैं ॥ ५ ॥

दो—सिद्ध सिद्ध देखे पथिक प्रिय सिध समेत दोह माह ।

भय मरु शयमु अर्जु तेह विहु अम रहे सिपाह ॥ १२३ ॥

ज्यो पथिक सीताजीके दौनों भाइयोंको भिन्न-भिन्न खेतीने देखा, उन्होंने भयका अग्रम मार्ग (जन्म मृत्युकी सत्कारने मरणके भयानक मार्ग) सेना ही परिश्रम आनन्द-के साथ तो कर दिया (अर्थात् वे भ्रातृनामके कष्टसे छद्म ही छूटकर मुक्त हो गये) ॥ १२३ ॥

बो—भयानु जगु डर सपनेहु कान । बसतुं छलहु सिध राम गदाक ॥

राम भयम पथ पाइहि सोई । जो पथ पाव कबहुं मुनि कोई ॥ १ ॥

जान भी निकले हृदयमें स्वप्ने में वही सम्मल, सीता, राम दोनों बढोही आ बढे, तो वह भी भीरामजीके परमभागके उक्त मार्गको या जायत चित मार्गको कभी कोई निखरे ही मुनि पावे हैं ॥ १ ॥

उप रघुवीर अमित सिध जानी । देखि किछ बहु सीतक पानी ॥

वहै पति कंठ सूख फल जाई । प्रात गहाह कले रघुराई ॥ २ ॥

उप भीरामचन्द्रजी सीताजीको यन्त्रि हुई जानकर और समीप ही एक वक्ता वृक्ष और टँका पानी देखकर उस दिन वहाँ ठहर गये । कन्द, मूल, फल लाकर [रातभर वहाँ रहकर] प्रातःकाल स्नान करके भीरामनाथजी आये चले ॥ २ ॥

ऐकत बन सर सैक सुहाए । कलमीकि आश्रम प्रभु आपा ॥

राम पीछ मुनि गनु सुखवन । सुंदर गिरि कावतु अहुं पावन ॥ ३ ॥

सुंदर बन, लक्ष्मण और परित देखते हुए प्रभु भीरामचन्द्रजी वाल्मीकिजीके आश्रममें आये । भीरामचन्द्रजीने देखा कि मुनिव्र निवासस्थान बहुत सुन्दर है, जहाँ सुंदर पर्वत, बन और पवित्र झील हैं ॥ ३ ॥

सतने सरोज विहप बष फूले । पुंछव मंजु मधुप रस फूले ॥

राम सुग विपुल जोलहल कहीं । विरहिय और मुनित मन बहीं ॥ ४ ॥

उदात्तोंमें कमल और कोंमें वृक्ष फूल रहे हैं और मकरन्द-रसमें मस्त हुए और सुन्दर पुंजाय कर रहे हैं । वटुलसे पक्षी और पक्ष जोलहल कर रहे हैं और बैरसे रहित होकर प्रसन्न मनसे विकर रहे हैं ॥ ४ ॥

१०—मुनि सुंदर आश्रम निरखि हरये राजिषेन ।

मुनि रघुवर आश्रमनु मुनि आगे आयउ लेन ॥ १२४ ॥

पथिक और सुन्दर आश्रमको देखकर फलजन्मक भीरामचन्द्रजी हर्षित हुए । रघुप्रेष्ठ भीरामजीका आश्रम सुन्दर मुनि वासीकिजी उन्हें लेनेके लिये आगे आये ॥ १२४ ॥

बो—मुनि कहुं राम दंडवत कीन्हा । अरिभयानु विप्रकर दीन्हा ॥

नेत्रि राम छोदे भयन बुझने । करि रामभानु अकलहि आवे ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने मुनिको दण्डवत् किया । विप्रथेष्ठ मुनिने उन्हें आशीर्वाद दिया । श्रीरामचन्द्रजीकी छवि देखकर मुनिके नेत्र झीलक हो गये । सम्मानपूर्वक मुनि उन्हें आश्रममें ले आये ॥ १ ॥

मुनिवत् अतिथि प्राप्तप्रिय पादः। कंद मूल फल मधुर भक्षणम् ॥

सिध सौमित्रि राम फल साष्टास्य मुनि आश्रम दिष्ट मुहाष्ट ॥ २ ॥

भेष्ट मुनि वाल्मीकिजीने प्राणप्रिय अतिथियोंको पंकर उनके लिये मधुर कन्द, मूल और फल भोगवाये । श्रीसीतानी, लक्ष्मणजी और रामचन्द्रजीने फलोंको खाया । तब मुनिने उनको [विश्राम करनेके लिये] सुन्दर स्थान बतला दिये ॥ २ ॥

वाल्मीकि मधु जाचँदु मारी मंसल मूरति जवज निहारी ॥

तप कर कमल जेरि धनुर्दई सोढे बचन अवग मुखदार्द ॥ ३ ॥

[मुनि श्रीरामजीके पास बैठे हैं और उनकी] मङ्गल-मूर्तिको नेत्रोंसे देखकर वाल्मीकिजीके मनमें बड़ा भारी आनन्द हो रहा है । तब श्रीरामचन्द्रजी कमलसदृश हावोंको बोझकर, कानोंको कुछ देनेवाले मधुर वचन बोले—॥ ३ ॥

मुग्ध भिक्षाल वरसी मुनिव्याधा। सिध बंदर बिभि मुम्हरे हाथा ॥

अस कहि प्रभु सब कथा जलानी। जेहि जेहि भँति हीन्ह बनु रागी ॥ ४ ॥

हे मुनिनाथ । आप भिक्षालवर्सी हैं । सम्पूर्ण विध आपके लिये हथेलीपर रखते हुए धरके समान हैं । प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहकर फिर जिस-जिस प्रकारसे रानी सैकेपीने वनवास दिया, वह सब कथा विश्वाससे सुनायी ॥ ४ ॥

बो०—सात बचन पुनि मातु हित भाद भरत अस राव ।

मो कहँ दरस तुम्हार प्रभु सबु मम पुम्य प्रभाव ॥ १२५ ॥

[और कहा—] हे प्रभो ! पिताजी आज्ञा [का पालन], माताका हित और भरत-जैव [स्नेही एवं धर्मात्मा] भाईका राज्य होना और फिर मुझे आपके दर्शन होना, यह-सब मेरे पुण्योंका प्रभाव है ॥ १२५ ॥

बो०—देखि सब मुनियस तुम्हारे। मप मुकुल सब मुफल हमारे ॥

अब जहाँ राखर नाम्मु हीई। मुनि जवयेण न पावै कोई ॥ १ ॥

हे मुनिराज । आपके चरणोंका दर्शन करनेसे अब हमारे सब पुण्य उपलब्ध हो गये (हमें सारे पुण्योंका फल-मिल गया) । अब जहाँ आपकी आज्ञा हो और जहाँ कोई भी मुनि उद्देश्यको प्राप्त न हो—॥ १ ॥

मुनि आपस निन्द तँ मुहु छहहीं। ते जैसे बिनु पावक बहहीं ॥

मंगल मूल किं पस्तिपू। बहह कोहि फल नसुर रोप ॥ २ ॥

क्योंकि जिनसे मुनि और जसवी दुःख पाते हैं, वे राजा बिना जलिनके ही (अपने दुष्ट कर्मोंसे ही) गलकर भरा हो जाते हैं । ज्ञातपूर्वक संतोष सब मनुष्योंकी नद है और भूदेव ब्राह्मणोंका क्रोध करोड़ों दुर्जनोंको मरना कर देता है ॥ २ ॥

अस जिवँ जाति कहिअ सोह सकँ। सिध सौमित्रि सहित जई जाई ॥

तई रधि इधिर परल एन सख। बासु कौत ननु कल कपाळा ॥ ३ ॥

ऐसा हृदयमें समझकर—वह स्थान कलत्रहथे जहाँ मैं अस्त्र और शीतलहित जाऊँ । और वहाँ सुन्दर पत्नी और पातकी कुटी बनाने, हे दमाछ ! कुछ समय निवास करूँ ॥ ३ ॥

सहन सकल मुनि सखन जवनी। साष्ट साष्ट जेके मुनि ग्यानी ॥

कल व कहहु अस सुखसुखे। मुम्ह फलउ संतप मुति सेव ॥ ४ ॥

औरामनोकी सहच ही सरल वाणी सुनकर अपनी मुनि कल्पिका बोले—धन्य ! धन्य !
हे रघुलाले ध्यातास्वरूप ! आप ऐसा क्यों न करेंगे ! आप सर्वैव वेदकी मर्यादाका पालन
(रक्षण) करते हैं ॥ ४ ॥

छं—श्रुति सेतु पाछक राम तुम्ह बगर्दीस माया जानकी ।

जो सृजति अमु फलति हरति सब पाइ कृपानिधान की ॥

जो सहस्रसंस्तु धाहीसु महिषस लखनु सचराचर धनी ।

सुर काज धरि करराज तनु चले दलन सब निखिनर धनी ॥

हे राम ! आप वेदकी मर्यादाके रखक जगदीश्वर हैं और जनकजी [आपकी
स्वरूपभूता] माया हैं, जो कृपाके मण्डप आपकी सब पाकर जगत्का सृजन, पालन
और संहार करती हैं । जो हजार मन्त्रकवाले त्योंके स्वामी और पृथ्वीको अपने चिरपर
धारण करनेवाले हैं, वही जगत्करके स्वामी मेरवी ज्योत्स्न हैं । देवताओंके कार्यके लिये
आप राजाका तरी धारण करके कुछ राजाओंकी उपासना नाम करनेके लिये बने हैं ।

५. छं—राम सरूप तुम्हारे वचन अमोचर बुद्धिपर ।

अविगत अकथ अपार नेति नेति मित्र निगम कह ॥ १५६ ॥

हे राम ! आपका स्वरूप वाणीके अमोचर, बुद्धिसे परे, अकथ, अकथनीय और
अपार है । वेद निरन्तर उक्त 'नेति-नेति' कहकर वर्णन करते हैं ॥ १२६ ॥

बौ—अमु देखन तुम्ह देखनिहारे विधि हरि संतु वचननिहारे ॥

तेज न आवहि मासु तुम्हारा जैसे तुम्हहि को जाननिहारा ॥ १ ॥

हे राम ! जगत् दृश्य है, आप उसके देखनेवाले हैं । आप ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर-
को भी नचानेवाले हैं । जब वे भी आपके मर्मको नहीं जानते, तब और कौन आपको
जाननेवाला है ! ॥ १ ॥

सोह जागह मोहि देहु कनाई । जगत तुम्हहि तुम्हह सोह काई ॥

तुम्हहि छुनी तुम्हहि खुलन । खनहि अगत भगत कर भदन ॥ २ ॥

वही आपको जानता है किसे आप जग देते हैं और जानते ही वह आपका ही
स्वरूप बन जाता है । हे मुनन्दन ! हे भक्तोंके हृदयके औरत करनेवाले चन्दन ! आपकी ही
कृपासे भक्त आनन्दो जान पाते हैं ॥ २ ॥

चिदात्ममय देह तुम्हारी । विगत विकार जग-अधिकारी ॥

नर तनु भीरु संत सुर कान्त । कहु कहु सब प्राकृत राज ॥ ३ ॥

आपकी देह चिदात्ममय है, (वह प्रकृतिकय आत्मामूर्त्तोंकी वनी हुई कर्म-
बन्धनमुक्त, निदेशविशिष्ट भाविक नहीं है) और [उत्तचिन्ता, बुद्धि-शय आदि] सब
विकारोंसे रहित है; सब जगत्को अधिकारी मुख्य ही जानते हैं । आपने देवता और सत्तोंके
कार्यके लिये [दिव्य] नर-जन्म धारण किया है, और प्राकृत (प्रकृतिके तत्त्वोंसे निर्मित
देहवाले, साधारण) राजाओंकी तरहसे कहते और करते हैं ॥ ३ ॥

राम देखि मुनि खरिह तुम्हारे । नद मोहिनि वृष-सोहि सुखारे ॥

तुम्ह नो कहु कहु सब सोचा । सब काठिन सब चाहिज पाचा ॥ ४ ॥

हे राम ! आपके चरित्रोंको देख और सुनकर मूर्ख लोग जो मोहको प्राप्त होते हैं
और नानीक दुखी होते हैं । आप जो कुछ कहते, करते हैं, वह सब सत्य (उचित)
ही है; क्योंकि वैसा सोच और वैसा ही वाचना भी तो चाहिये (इस समय आप मनुष्य-
रूपमें हैं, अतः मनुष्योचित व्यवहार करना ठीक ही है) ॥ ४ ॥

दो०—पूछेहु मोहि कि रह्यो कह्यँ मैं पूछत सकुचार्यँ ।

जहँ न छोडु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौ ठाउँ ॥ १२७ ॥

आपने मुझसे पूछा कि मैं कहाँ हूँ ? परन्तु मैं यह पूछते सकुचाता हूँ कि जहाँ आप न हों, वह स्थान बता दीजिये । तब मैं आपके रहनेके लिये स्थान दिखाऊँ ॥ १२७ ॥

चौ०—मुनि मुनि बचन प्रेम रस सने । सुनि राम मग भहुँ सुसुकाने ॥

बाळमीकि हँसि कहहि बहोरी । बानी मधुर अमिष रस घोरी ॥ १ ॥

मुनिके प्रेमरससे सने हुए बचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी [रहस्य सुल जानेके डरसे] सकुचाकर मनमें मुसकड़ाये । बाळमीकिनी हँसकर फिर अभूत-रसमें हुनोरी हुई मीठी बानी बोले—॥ १ ॥

मुनहु राम अब कह्यँ निकैस । जहाँ नसहु सिव कलम समेता ॥

किन्हु के अवस ससुद्र समाना । कवा तुम्हहि सुमग सारि नाना ॥ २ ॥

हे रामजी ! मुनिये, अब मैं वे स्थान बताता हूँ जहाँ आप वीताजी और लक्ष्मणजी-समेत निवास करिये । जिनके कान समुद्रकी भाँति आपकी सुन्दर कथाकपी धनेकों सुन्दर नदियाँ—॥ २ ॥

भरहि विरहर होहि न पूरे । किन्हु के हिय तुम्ह कह्यँ गृह खरे ॥

औचम चातक किन्हु करि ससे । रहहि दस अक्षर अमिलये ॥ ३ ॥

निरन्तर भरते रहते हैं, परन्तु कभी पूरे (तृप्त) नहीं होते, उनके हृदय आपके लिये सुन्दर घर हैं और जिन्होंने अपने नेत्रोंको चातक बना रखा है, जो आपके दर्शनरूपी मेघके लिये सदा अलम्बित रहते हैं; ॥ ३ ॥

निराहि सरित सिंधु सर मारी । खर सिंधु अब होहि मुजारी ॥

सिन्हु के हृदय सदन सुखदायक । नसहु बंधु सिव सह रहनायक ॥ ४ ॥

तथा जो मारी-मारी नदियों, समुद्रों और सीधोंका निरावर करते हैं और आपके सौन्दर्य [रूपी मेघ] के एक बूँद बरसे सुखी हो जाते हैं (अर्थात् आपके दिव्य शशिदानन्दमय स्वरूपके किसी एक अक्षरी जरा-सी भी झँकीके सामने स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों, अग्राह्य, अर्थात् धृष्टी, स्वर्ग और नक्षत्रैक्यके सौन्दर्यका तिरस्कार करते हैं) हे रहनायकी ! उन ओगेंकि हृदयरूपी सुलभासी भवनोंमें आप भाई लक्ष्मणजी और वीताजीलहित निवास कीजिये ॥ ४ ॥

दो०—जसु तुम्हार मानस विमल हँसिनि जीहा जासु ।

मुफताहल गुन बग जुनह राम बसहु हियँ तासु ॥ १२८ ॥

आपके वशरूपी निमोल मानसरोवरमें भिस्की जीम हँसिनी बनी हुई आपके गुण-धर्मरूपी मोतियोंको चुम्बती रहती है, हे रामजी ! आप उसके हृदयमें बसिये ॥ १२८ ॥

चौ०—प्रभु प्रसाद मुनि मुमग मुवास । सादर जासु कहाँ नित नास ॥

तुम्हहि निवेदित औचम करहीं । प्रभु प्रसाद पट खूष परहीं ॥ १ ॥

जितकी नास्तिक्य प्रभु (आप) के प्रति और सुमन्वित [युष्मादि] सुन्दर प्रसादको नित्य आदरके साथ ब्रह्मण करती (लुँसती) है, और जो आपको अर्पण करके भोजन करते हैं और आपके प्रसादरस ही कर्मागुण्य कारण करते हैं ॥ १ ॥

सीस नवहि धुर शुभ द्विष देखी । शीति सहित करि निगम निषेदी ॥

कर नित करहि राम पद पूज । राम असेस हृदयँ कहि दूजा ॥ २ ॥

जिनके मस्तक देवता, शुभ और आशुप्राप्तोंके देवकर यही नमस्ते साथ प्रेमसहित

रुत जाते हैं; जिनके हाथ सिरस्य सौजन्यन्दनी (आप) के चरणोंकी पूजा करते हैं और जिनके हृदयमें श्रीरामचन्द्रजी (आप) का ही भगवत् है; वृत्त गतः ॥ २ ॥

चरण राम वीर्य चरि जहै । राम चन्दु तिन के मन साहीं ॥

मोदसाहु निर जगहि सुन्दार । पूजहि सुमहि सहित परिवारा ॥ ३ ॥

तथा जिनके चरण श्रीरामचन्द्रजी (आप) के तीर्थोंमें चरकर जाते हैं; हे रामजी ! आप उनके मनमें निराश कीजिये । जो जिस आपके [रामनामस्य] मन्त्ररत्नको अपने हृदय और वरिष्ठ (परिधर) उद्धृत जानकी पूजा करते हैं ॥ ३ ॥

रुतसह होम जहहि विधि नह । चिन्त जेनीह देहि जहु शक्त ॥

सुख में अधिक सुखदिविमें जानी । समस्त भाव जेहि सममानी ॥ ४ ॥

जो कतेफों प्रकाशते तर्पण और हवन करते हैं, उक्त त्रासकोंको भोजन कराकर बहुत दान देते हैं। तथा जो सुखसे सुखमें आपसे भी अधिक (वडा) चावकर सर्व-भाषसे सम्मान करने उनकी सेवा करते हैं ॥ ४ ॥

दो०—सधु करि मागहि एक फलु राम चरण रति होत ।

तिन्ह में मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन बोट ॥ १९९ ॥

और वे सब कर्म करके अपना एकमात्र वही फल मांगते हैं कि श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें हमारी प्रीति हो; उन लोगोंके मनकी मन्दिरमें सीताजी और रघुनाथकी स्थापित करनेवाले आप दोनों बरिये ॥ १९९ ॥

चौ०—बान कोह सद् मान न मोह । खेम न खेम न राम न होहा ॥

चिन्ह के फल हंभ नहि माग । तिन्ह के हृदय बसहु रघुनाथ ॥ १ ॥

जिनके न दो काम, खेम, मद, अभिमान और मोह है न खेम है, न भोग है; न राम है, न दोष है; और न फल, दम और माग ही है—हे रघुनाथ ! आप उनके हृदयमें निवास कीजिये ॥ १ ॥

सब के प्रिय सब के हितकारी । दुख सुख सरित प्रसन्न गरी ॥

कहहि सत्य मित्र बनन विकरी । बानस खेवत खरब सुन्दारी ॥ २ ॥

जो सबके प्रिय और सबका हित करनेवाले हैं, जिन्हें दुःख और सुख तथा श्रेष्ठता (बवाई) और गली (मिन्दा) समान है, जो विचारकर सत्य और मित्र बचन बोलते हैं तथा जो मांगते-सोते आपकी ही धारण हैं ॥ २ ॥

सुमहि लखि यधि दूसरी काही । राम-बसहु तिन्ह के मन माही ॥

सगनों राम जानहि परमारी । धनु पणव विष में विष मारी ॥ ३ ॥

और जानने कोइकर जिनके दूसरी कोई बलि (कायम) नहीं है, हे रामजी ! आप उनके मनमें रहिये । जो परकी सोचके जग देनेवाली मयाके समान जानते हैं, और परमा धन जिन्हें प्रियते भी मारी फिर है ॥ ३ ॥

वे हरहि पर संपति-बेसी । बुझि दोहि पर विपति नितेसी ॥

चिन्हहि राम सुख प्रवर्धनारे । तिन्ह के मन सुख सदा सुन्दारे ॥ ४ ॥

जो दूसरी सम्पत्ति देखकर हर्षित होते हैं और दुखेकी विपत्ति देखकर विरोध-स्पन्दे दुखी होते हैं, और हे रामजी ! जिन्हें आप प्रबोके समान प्यारे हैं, उनके मन आपके प्रवर्धनोप सुख यत्न हैं ॥ ४ ॥

दो०—बानि सकल पितु मातु गुरु तिन्ह के सब सुख तत्त ।

मन मंदिर तिन्ह के बसहु सिय सहित बोट अत ॥ २०० ॥

हे तात । जिनके स्वामी, सखा, पिता, माता और गुरु उन कुछ आप ही हैं, उनके मनरूपी मन्दिरमें सीतासहित आप दोनों भाई निवास कीजिये ॥ १३० ॥

चौ०—अबसुन जनि सब के गुन गढ़हीं । निज प्ये दित संकट सहहीं ॥

नीति निपुन सिन्ध कहूँ, सीमा । घर सुन्दर सिन्ध कर सनु पीका ॥ १ ॥

जो अबगुणोंको छोड़कर सबके गुणोंमें प्रहण करते हैं, नान्न-और गौके लिये संकट सहते हैं, नीति-निपुणतामें जिनकी अत्यन्त मर्यादा है, उनका सुन्दर मन आपका पर है ॥ १ ॥

गुन सुन्दर ससुन्दर निज दोसा । जेहि सब नीति सुन्दर भरोसा ॥

राम भगत प्रिय सम्बन्धि तेही । तेहि घर नसहु सहित बड़ेही ॥ २ ॥

जो गुणोंको आपका और दोषोंको अपना समझता है, जिसे सब प्रकारसे आपका ही भरोसा है, और रामभक्त जिनसे प्यारे लगते हैं, उनके हृदयमें आप सीतासहित निवास कीजिये ॥ २ ॥

जाति पौति, धनु धरसु बड़ाई । प्रिय परिवार सदन सुकड़ाई ॥

सब लसि सुन्दरि रहइ घर कड़ाई । तेहि के हृदय रहइ खुदाई ॥ ३ ॥

जाति, पौति, धन, धर्म बढ़ाई, प्यारा परिवार और सुख देनेवाला घर—सबको छोड़कर जो केवल आपको ही हृदयमें धारण किये रहता है, हे रामावली ! आप उसके हृदयमें रहिये ॥ ३ ॥

सरसु नरसु अमरसु समाना । जहाँ तहाँ देस बरें धनु बाना ॥

परम वचन जग, राखर बेरा । राम नरसु तेहि कैं घर बेरा ॥ ४ ॥

सर्व, नरक और मोक्ष जिसकी दक्षिमें समान हैं, क्योंकि वह सर्वोत्तम (सब समान) केवल शत्रु-बाण धारण किये आपको ही देखता है; और जो समस्त, वचनसे और मनसे आपका दास है, हे रामजी ! आप उसके हृदयमें बस जाइये ॥ ४ ॥

दो०—आदि न चाहिम कयहुँ कहुँ तुम सब सह्य समेहु ।

पसहुँ निरंतर तसु मन सो राउर, निज गेहु ॥ १३१ ॥

जिसको कभी कुछ भी नहीं चाहिये, और जिसका आपसे स्वाभाविक प्रेम है, आप उसके मनमें निरंतर निवास कीजिये; वह आपका अपना घर है ॥ १३१ ॥

चौ०—पुहि विधि मुनिवर भवत त्रैसाय । नरन सप्रेम राम मन भाय ॥

कह मुनि सुनहु । मातकुलधरक । स्वयं कहेँ सम्य, सुखदायक ॥ १ ॥

इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ वासीकिजीने श्रीपद्मन्दजीको पर दिताने । उनके प्रेमपूर्ण वचन श्रीरामजीके मनको अच्छे लगे । फिर मुनिने कहा—हे सर्वकुलके स्वामी ! मुनिमें अब मैं इस समयके लिये सुखदायक आशुम-काता हूँ (निवासस्थान बतलाता हूँ) ॥ १ ॥

चिरकूट गिरि, करहु । निजम् । जहाँ सुन्दर सब नीति सुपाय ॥

सैछ, सुखदायक । कानन । करि केहरि सार विद्या निहाल ॥ २ ॥

आप चिरकूट पर्वतपर निवास कीजिये, वहाँ आपके लिये सब प्रकारकी सुविधा है—सुखदायक पर्वत है और सुन्दर कानन है—न-क-सुखी, सिंह, हिरन और प्रविषोंका विहारस्थल है ॥ २ ॥

बड़ी पुनीत पुरान बखानी । अत्रिप्रिया निज तर बल बानी ॥

सुरसरि धार पाउँ मंगलकिनि । जे सन पावक प्रोक्त बखनि ॥ ३ ॥

वहाँ पवित्र भरी है, जिसकी पुराणोंने प्रशंसा की है, और जिसको अत्रि ऋषिकी

पत्नी अनसूयाजी अपने लगेलेखे लगी थीं । वह मन्दाकिनी बारा है, उसका मन्दाकिनी नाम है । वह सब पापपत्नी बालक्यों को खा जानेके लिये जालिनी (जालन) रूप है ॥ ३ ॥

अग्नि आदि मुनेष्वर बहुत मरहों । तबहिं जेव जप तप तन कसहीं ॥

बहुत सकल धर्म सब कर कहूँ । उन देहु औरव गिरिबद्ध ॥ ४ ॥

अग्नि आदि बहुत-से भेद मुनि हैं, निवास करते हैं, जो योग, जप और तप करते हुए शरीरों को कसते हैं । हे राजा ! तबहिं, सबके परिश्रमको सकल बीजिये और पर्वतश्रेष्ठ चित्रकूटको भी औरव दीजिये ॥ ४ ॥

दो—चित्रकूट यहिमा व्यसित कही महामुनि गाइ ।

शाह नहाय सरित बर सिय समेत दोह भद्र ॥ १३२ ॥

महामुनि कालमीकिजीने चित्रकूटकी अवसिति महिमा बजानकर कही । तब सीताजीसहित दोनों मादनोंने आकर जेठ नदी मन्दाकिनीमें स्नान किया ॥ १३२ ॥

चौ—रघुवर कहेन लक्षण मल बाहु । कंठहु कसहुं जय शहर काहु ॥

लक्षण होत पय उतर करान । चहुँ विमि भिरेत धनुष जिमि नारा ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—लक्षण ! बड़ा अच्छा बाट है । थप यहाँ कहीं ठहरनेकी व्यवस्था करो । तब लक्षणजीने पयसिनी नदीके उत्तरके छेने किनारेको देखा [और कहा कि—] इसके चारों ओर धनुषके-जैसा एक नामा फिटा हुआ है ॥ १ ॥

नदी पयच सर सम दस दासा । सकल कसुब कलि सोढन माना ॥

चित्रकूट जहु अच्छ जेरी । जुकह न बात मार सुठनेरी ॥ २ ॥

नदी (मन्दाकिनी) उस धनुषकी प्रत्यक्षा (दोरी) है और क्षम, दम, दान बाण हैं । चित्रगुप्तके समस्त पाप उसके अनेकों हिसक फट [रूप निशाने] हैं । चित्रकूट ही मानो अच्छा शिकारी है, जिसका निशाना कभी झूठा नहीं, और जो नामनेने मारता है ॥ २ ॥

जस कहि कृतव ठाई देखरावा । बहुत खिलोनि खुबर सुनु पावा ॥

मेठ राम गहु देवाह जान । चके सहित सुर भपति प्रभावा ॥ ३ ॥

ऐसा कहकर लक्षणजीने स्नान दिखलया । स्नानको देखकर श्रीरामचन्द्रजीने कुछ पाया । जब देवताओंने जाना कि श्रीरामचन्द्रजीका मन यहाँ रम गया, तब वे देवताओंके प्रधान यक्ष (मन्त्रन बनानेवाले) विश्वकर्माको लावा लेकर चले ॥ ३ ॥

कोल किशत केर सब आप । ऐसे परब दूब सदन सुहाय ॥

वरान न जाहि मंहु दुइ सख । एक कलिय सहु एक विसाख ॥ ४ ॥

सब देवता कोल-मीलोंके वेपमें आये और उन्होंने [दिव्य] पत्तों और शर्तोंके सुन्दर वर बना दिये । दो ऐसी सुन्दर कुटियों बनायीं जिसका वर्णन नहीं हो सकता । उनमें एक नदी सुन्दर छोटी-सी थी और दूसरी बड़ी थी ॥ ४ ॥

दो—लखन जांकाई सहित प्रभु राजत रचिर निकेत ।

सोह मधु सुनि वेव बहु रति रितुपज समेत ॥ १३३ ॥

लक्षणजी और कालमीकिसहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी सुन्दर बाण-पत्तोंके घरमें आभासमान हैं । मानो कालदेव मुनिज वेव घाण करके पत्नी रति और वस्तुवस्तुके साथ सुशोभित हो ॥ १३३ ॥

सप्तपारम्य, सत्रहवीं विधाय

चौ—अमर नाम किबर विमिश्रण । चित्रकूट आप जेहे कावा ॥

राम प्रसन्न कोन्ह सब काहु । मुनिव देव कीहे कोचन काहु ॥ १ ॥

उस समय देवता, नाग, किन्नर और दिग्गज चिक्कूटमें आये और भीरामचन्द्र-
जीने सब किसीको प्रणाम किया । देवता नेत्रोंका अम्र पाकर आनन्दित हुए ॥ १ ॥

वरधि सुमन कह वेच समान् । अव सताय भए इस भाव् ॥

करि बिनती दुख दुसह सुभाए । हरषित निज किञ्च सदन सिधाए ॥ २ ॥

पूज्योंकी कर्पा करके देवस्थानने कहा—हे नाथ । जान [आपका दर्शन पाकर]
॥ सनाय हो गये । फिर बिनती करके उन्होंने अपने अपने दुःख, दुःख सुनाये और [दुःखोंके
नाशका आशासन पाकर] हर्षित होकर अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥ २ ॥

चिक्कूट खुबंदसु खम् । संग्रहकर सुवि सुधि मुनि जाए ॥

आवत देखि मुदित मुनिहुंदा । कनिह दंडवत रघुछन्ददा ॥ ३ ॥

भीरुनाथजी चिक्कूटमें आ गये हैं, यह समाचार सुन-सुनकर बहुत-से मुनि
आये । रघुकुलके सख्खा भीरामचन्द्रजीने मुदित हुई मुनिमण्डलीको आते देखकर
दण्डवत्-प्रणाम किया ॥ ३ ॥

मुनि रघुवरहि काह उर केहीं । सुकळ होन दिव आसिष देहीं ॥

सिप सौमित्रि राम छवि देखहि । साधन सकळ सकळ करि लेखहि ॥ ४ ॥

मुनिगण भीरामजीको दृष्टवसे क्या छेते हैं और सकल होनेके छिये-आशीर्वाद देते
हैं । वे सीताजी, लक्ष्मणजी और भीरामचन्द्रजीकी छवि देखते हैं और अपने-अपने
साधनोंको सकल हुमा समझते हैं ॥ ४ ॥

दो०—अथाजोष सनमामि प्रभु विदा किय मुनिहुंदा ।

करहि जोग अप जग्य तप किज आधमहि सुछंद ॥ १३४ ॥

प्रभु भीरामचन्द्रजीने वचनयोग सम्मान करके मुनिमण्डलीको विदा किया ।
[भीरामचन्द्रजीके आ जानेसे] वे सम-अपने-अपने आधर्ममें अब स्वतन्त्रताके साथ
योग, जप, व्रत और तप करने लगे ॥ १३४ ॥

चौ०—यह सुधि छेक किरातन पाई । हरषे जनु नव विधि घरः जाई ॥

कंद नूळ कळ करि भरि दोरा । चले रंक जनु खडवः सोबा ॥ १ ॥

यह (भीरामजीके आज्ञामन्त्र) समाचार जब कोल-मीलोंने पाया तो वे देखे
हर्षित हुए मानो नवों-विधियों उनके घरहीपर आ गयी हों । वे दोतोंमें कन्द, नूळ, कळ
भर-भरकर चले । मानो दरिद्र लोग खटने चले हों ॥ १ ॥

किन्ह महीं किन्ह देखे दोत आछ । कपर किन्हहि पूछहि मनु जाछा ॥

कहात सुमत रघुबीर किन्हई । बाह सबहि देखे रघुराई ॥ २ ॥

उनमेंसे जो दोनों माहवोंके [पूछे] देख लुके थे, उनसे दूसरे लोग रास्तेमें
जाते हुए पूछते हैं । इस प्रकार भीरामचन्द्रजीकी सुन्दरता, कहते-सुनते अपने-आपके
भीरुनाथजीके दर्शन छिने ॥ २ ॥

करहि जोहार मूँट धरि जाये । प्रभुहि भिजोकिहि अति अलुरागे ॥

चित्र बिछे जनु बहै छह दारै । सुकळ सरीर कवच कळ जादे ॥ ३ ॥

मूँट आगे रखकर वे लोग जोहार करते हैं और अत्यन्त अलुरागे : साथ प्रभुको
देखते हैं । वे मुग्ध हुए जहाँ के-उहाँ मानो चित्रबिछे-से सहे हैं । उनके शरीर पुष्किल
हैं और नेत्रोंमें प्रेमाश्रुओंके कण्ठी बाद आ रही है ॥ ३ ॥

राम सनेह अगल छव जाये । कहि त्रिष बचन सकळ समजाने ॥

प्रभुहि जोहारि बहीरि बहीरी । कपर बिजित कहहि कर जोरी ॥ ४ ॥

श्रीरामजीने उन सक्के प्रेमे मग जाना, और प्रिय कवन कहकर सबका सम्मान किया । वे बार बार ॥१॥ श्रीरामचन्द्रजीके जोहार करते हुए राम जोड़कर बिनीत वचन कहते हैं—॥ ४ ॥

दो०—अब हम नाथ सनाथ सब मग देखि प्रभु पाय ।

समय हमारै आगमनु शरर कोसलराय ॥ १३५ ॥

हे नाथ ! प्रभु (राम) के चरणोत्तर दर्शन पाकर अब हम सब सनाथ हो गये । हे कोसलराज ! एगरे ही मागसे आपका वहाँ आगमन हुआ है ॥ १३५ ॥

चौ०—अम्ब भूमि पन पंग पहार । अबे नई नाथ पाठ तुम्ह धारा ॥

अम्ब सिन्हा मूक कानकचारी । सखल जनम सग दुन्दहि निहारी ॥ १ ॥

हे नाथ ! अबे-अहाँ आपने अपने चरण रखे हैं, वे धृषी, वन, मार्ग और पहाड़ धम्ब हैं, वे पनमे विचरनेवाले पक्षी और पशु धम्ब हैं, जो आपको देखकर सकलजन्म हो गये ॥ १ ॥

हम सब धम्ब सहित परिवारा । हीन बरसु मरि कयल तुम्हारा ॥

कीन्ह बाधु मल छहें विचारी । इहाँ सखल रिनु रहब सुकारी ॥ २ ॥

हम सब भी अपने परिवारसहित धम्ब हैं, किसीने नेत्र भरकर आपका दर्शन किया । आपने वही अच्छी जगह विचारकर निवास किया है । यहाँ नमी शत्रुओंमें आप सुखी रहियेगा ॥ २ ॥

हम सब भँडि कयल सेवकाई । करि केहरि अबि बाध बरार्ह ॥

बन केहरि गिरि कंदर सोहा । सब हमार प्रभु पम पंग जोडा ॥ ३ ॥

हमसब सब प्रकारसे हाथी, सिंह, सर्प और बाघीसे बचाकर आपकी सेवा करेंगे । हे प्रभो ! यहाँके बाढ़, वन, पहाड़, गुफाएँ और सोह (दरें) सब पम-पंग हमारे ठेके हुए हैं ॥ ३ ॥

तहाँ छहें तुम्हहि मरि सेवकाय । सर विचरि अकलार्ह केकाढय ॥

हम सेवक परिवार समेत । कय व सखल आबसु देता ॥ ४ ॥

हम वहाँ वहाँ (उन-उन स्थानोंमें) आपकी गिम्हर किल्लबेंगे और शालाब, करने बादि जलजयोको दिखायेंगे । हम दुन्दभसमेत आपके सेवक हैं । हे नाथ ! इसलिये हमें आशा देनेमें सकोच न कीजियेगा ॥ ४ ॥

दो०—येह सखल मुनि मन जगम से प्रभु कदना देल ।

पवन किरासइ के सुखल जिमि पितु धालक वैल ॥ १३६ ॥

जो वेदोंके वचन और मुनियोंके मनको भी जगम हैं, वे कदनाके धाम प्रभु श्रीराम-चन्द्रजी भीलोंके वचन इस तरह सुन रहे हैं जैसे पिता बालकोंके वचन सुनता है ॥ १३६ ॥

चौ०—रामहि केवल प्रेम् पियारा । छवि लेठ सो आचनिहारा ॥

राम सखल कनक सब छेपे । करि सखु वचन प्रेम परिपोषे ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीको केवल प्रेम प्यारा है; जो जाननेवाला हो (जानना चाहता हो), वह जान ले । तब श्रीरामचन्द्रजीने प्रेमसे परिपुष्ट हुए (प्रेमपूर्व) कोकल वचन कहकर उन सब बान्से विचरग करनेवाले जोगियोंको संतुष्ट किया ॥ १ ॥

बिबा किहु शिर नाह सिन्हाय । प्रभु पुन कहत मुनत घर आय ॥

एहि बिधि सिय ममेक जोड आई । यसरि बिसिख सूर मुनि मुखराई ॥ २ ॥

पितृ तनको निदा किया । वे सिर नवाकर चले और प्रभुके गुण कहते-सुनते घर आये । इस प्रकार देवदा और मुनियोंके मुक्त देनेवाले दोनों आई सौदागीसमेत वनमें निवास करने लगे ॥ २ ॥

जब तें भद्र रहे खुगायक । तब तें अमर बसु मंगलदायक ॥

भूषहिं फलहिं विष्ट विधि माना । मंह बलि नर बेलि बिशाना ॥ ३ ॥

जबसे श्रीरघुनाथजी वनमें जाकर रहे तबसे वन मङ्गलदायक हो गया । अनेकों प्रकारके वृक्ष फूलों और फलों है और ऊपर लिखी हुई सुन्दर नैलेके मण्डप तने हैं ॥ ३ ॥

सुस्तसु सरिस सुभासैं सुहृष्ट । मन्दै विष्ट वन परिहरि भाष्ट ॥

गुन मंजुतर मधुकर ग्रेनी । विष्टि वनारि बहइ सुष्ट वेनी ॥ ४ ॥

ये कल्याणके समान स्वाभाविक ही सुन्दर हैं । मानो वे देवताओंके वन (मन्दनवन) को छोड़कर आये हो । औरोषी पक्षियों बहुत ही सुन्दर गुंवार करती है और सुख देनेवाली चीतल, मन्द, सुगन्धित हवा चक्की रखती है ॥ ४ ॥

दो०—नीलकण्ठ कलकण्ठ सुक चातक वल चकोर ।

भौति भौति बोलहिं बिहग मवन सुखई चित खोर ॥ १३७ ॥

नीलकण्ठ, कोयल, तोते, पीछे, चक्रे और चकोर आदि पक्षी वनोंको सुख देनेवाली और चित्तको सुखानेवाली तरह-तरहकी बोलियों बोलते हैं ॥ १३७ ॥

बौ०—करि केहरि कवि कोल सुरंग । मितमरि विष्टहिं सब संग ॥

फिरत भोर राम छवि देखी । होहिं सुविष्ट सुग बंद विष्टेपी ॥ १ ॥

हाथी, सिंह, बंदर, खर और हिरन, वे सब कैर छोड़कर साथ-साथ विचरते हैं । शिकारके लिये फिरते हुए औरामचन्द्रजीकी छविको देखकर पशुओंके समूह विशेष आनन्दित होते हैं ॥ १ ॥

विष्ट विष्टि अई कमि जागहीं । ऐति समस्त सकल सिद्धाहीं ॥

सुरसरि सरसइ दिवकर कन्या । मेकसुता योदावरि धन्या ॥ २ ॥

जागृतमें जाहोतक (जितने) देवताओंके वन हैं, सब औरामजीके वनको देखकर सिद्धाते हैं । गङ्गा, सरस्वती, सरकुमारी यमुना, नर्मदा, योदाजी आदि धन्य (पुण्यमयी) नदियाँ, २

सब सर विष्ट नदी नद बाग । मंदकिनि कर कहि बखाना ॥

उष भक मिरि भव कैमधू । मंदर मेत सकल सुरगाम् ॥ ३ ॥

सारे ताड़व, समुद्र, नदी और अनेकों नर वन सदाकिसीकी वढ़ाई करते हैं । उदघाचल, भद्राचल, कैलास, मन्दराचल और सुमेरु आदि सब, वो देवताओंके रहनेके स्थान हैं ॥ ३ ॥

सैक हिमाचल आदि कहि । विष्ट बसु गाम्हि सुवे ॥

विष्टि सुविष्ट मन सुख न समाई । अम विष्ट विष्ट बहाई पाई ॥ ४ ॥

और हिमाचल आदि जितने पर्वत हैं, सभी चित्रकूटका वन गाते हैं । विन्ध्याचल बड़ा आनन्दित है, उसके मनमें सुख समाया नहीं; क्योंकि उसने बिना परिश्रम ही बहुत पानी बढ़ाई पा ली है ॥ ४ ॥

दो०—चित्रकूट के बिहग सुन बेलि विष्ट सुन जाति ।

पुन्य पुंख सब धन्य अस कहहि देव दिन राति ॥ १३८ ॥

चित्रकूटके पक्षी, पशु, बैल, गाय, एक-अनुरादिकी सभी वस्तुओं पुण्यकी राति

हैं और धन्य है—देवता दिन-रात देख करते हैं ॥ १३८ ॥

बौ०—नमनवंत खुबरहिं निजेकी । बह जनम फल होहिं बिलोकी ॥

परसि नरन सब अम सुखारी । मय परम पद के अधिकारी ॥ १ ॥

आँसोंवाले जीव औरामचन्द्रजीको देखकर जनम फल होहिं बिलोकी ॥

हो जाते हैं, और अचर (पर्वत, वृक्ष, मृत्ति, नदी बाढ़ि) भगवान् की चरण-स्पर्शका सगं
पात्र मुखी होते हैं । जो सभी परमाद (मोक्ष) के अधिकारी हो गये ॥ १ ॥

जो वस्तु लैछ सुखार्थ सुखावत् । संयत्तमय नति पावन पावन ॥

महिमा कहिअ कबनि विधि सत् । सुखसामग्य ज्ये कीन्ह विवाह ॥ २ ॥

यह धन और पर्वत स्वाम्यधिक ही सुन्दर, मङ्गलदाय और अत्यन्त पवित्रोंको भी
पवित्र करनेवाला है । उसही महिमा किस प्रकार कही जाय, वहाँ सुखके समुद्र
भीरामजीने निवार किया है ? ॥ २ ॥

पर पयोपि तजि अवध दिहाई । ज्ये सिध कछहु राखु रहे भाई ॥

जहि न सकहि सुखसाजसि कतन । औ सत सहस होहि सहसाग ॥ ३ ॥

भीरामजीने त्यागकर और अवोध्याको छोड़कर जहाँ सीताजी, लक्ष्मणजी और
भीरामचन्द्रजी आकर रहे, उस जगह की वैसी परम छोटा है, उसको हजार मुखवाले जो
साथ लेगी वो तो वे भी नहीं चले सकते ॥ ३ ॥

सो मैं बसि रहैं धिधि केरी । हावर् काम कि मंदर छहैं ॥

सेनहि कछहु करत मय बासी । जग न सीछु सखै बखानी ॥ ४ ॥

उसी भवा, मैं जिस प्रसरते वर्णन करके कह सकता हूँ । कही दोफरेफा [भुद्र]
कछुआ भी मन्दराचल उठा सकता है ! लक्ष्मणजी मन, बचन और कर्मसे भीरामचन्द्रजीकी
सेवा करते हैं । उनके गीत और लेहका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ४ ॥

वो—छिनु छिनु सखि सिय राम पर आनि मातु पर नेहु ।

कत न सपनेहुँ छलनु छिनु रंघु मातु पितु रोहु ॥ १३९ ॥

जग-जगपर भीषीतराजकी चरणोंको देखकर और अपने ऊपर उनका स्नेह
सामकर लक्ष्मणजी स्वप्ने भी भाइयों, माता-पिता और परकी याद नहीं करते ॥ १३९ ॥

जौ—गम संग सिय रहति सुखारी । गुर परिजन गृह सुखति बिसारी ॥

छिनु छिनु मिय बिनु भद्रनु निहारी । प्रसुखित मनहुँ चकोर कुमारी ॥ १ ॥

भीरामचन्द्रजीके साथ सीताजी अयोध्यापुरी, कुटुम्बके लोग और परकी याद
भूलकर बहुत ही सुखी रहती हैं । जग-जगपर पति भीरामचन्द्रजीके चन्द्रमाके समान
नृत्यो देख कर वे दैसे ही परम प्रसन्न रहती हैं जैसे चकोरकुमारी (चकोरी) चन्द्रमाको
देखती ॥ १ ॥

महा—महा देहु कित जग विहोरी । हरविष रहति विषस विमि सोकी ॥ १४० ॥

सिय मनु सग सरथ अनुसगा । अवध सहस सम वनु प्रिय काया ॥ २ ॥

सामोता प्रेम करने प्रति नित्य बढ़ता हुआ देखकर सीताजी ऐसी हर्षित रहती हैं
जैसे हिनये चण्डी ! सीताजीका मन भीरामचन्द्रजीके चरणोंमें अनुरक्त है, इससे उनको
बन हवाए अवधके समान प्रिय लगता है ॥ २ ॥

परवट्टी प्रिय प्रियतम संग । प्रिय रसियाहँ कुंठ्य विहंगा ॥

सासु समुद्र सम मुनिस्ति सुखिर । बसनु जमिन सम कंद भूल ॥ ३ ॥

प्रियतम (भीरामचन्द्रजी) के साथ सर्वोत्तुटी प्यारी लगती है । मृग और पक्षी
प्यारे कुटुम्बियोंके समान लगते हैं । मुनिवोंकी मित्रों साके समान, भेड़ मुनि समुद्रके
समान और कन्द-मूल-प्रत्येक वाहार उनको समान समान लगता है ॥ ३ ॥

नाम साथ रसिनी सुहाई । मनु सख सब सम सुफवाई ॥

मोक्ष रोहि विहोक्त जाय । रोहि विहोक्त सख विहोक्त ॥ ४ ॥

स्वामीके नाम सुन्दर सायरी (कुल और पत्तेकी सेल) सैकड़ों कामदेवकी सेनोके समान सुन देनेवाली है । बिस्के [कृष्णपूर्वक] देखनेमानसे जीव ब्लेकपाल हो जाते है, उनको कहीं भोग-विवास मोहित कर सकते है ! ॥ ४ ॥

दो०—सुमिरत रामहि तजहि जन तुन सम विषय बिलासु । .

रामप्रिया जग जन्नि सिध कहु न आनखहु तासु ॥ १४० ॥

जिन श्रीरामचन्द्रजीका सारण करनेसे ही मत्तजन तथास भोग-विलासको तिनकेके समान त्याग देते है, उन श्रीरामचन्द्रजीकी प्रिय पत्नी और बगलकी माता सीतानीके लिये यह [भोग-विलासका त्याग] कुछ भी आश्चर्य नहीं है ॥ १४० ॥

चौ०—सीध लखन जेहि बिधि सुसु कहही । सोइ राहुनाथ कहि सोइ कहही ॥

कहिं पुरातन कहा कहानी । सुनिहि लखनु सिरअति सुख मामी ॥ १ ॥

सीताजी और लक्ष्मणजीको मिल प्रकार कुछ मिले, श्रीरामनाथकी वही करते और वही करते है । भगवान् प्राचीन कथाएँ और कहानियाँ करते हैं और लक्ष्मणजी तथा सीताजी अत्यन्त दुःख मानकर सुनते है ॥ १ ॥

जब जब रामु मन्त्र सुधि करहीं । तब तब मारि किलोचन भरही ॥

सुमिरि मातु पितु परिजब आई । भरत सपेहु सीतु सेवकाई ॥ २ ॥

जब-जब श्रीरामचन्द्रजी अयोध्याकी याद करते है, तब तब उनके नेत्रोंमें आँस भर आता है । माता-पिता, कुटुम्बियों और माइको तथा भरतके प्रेम, भीख और सेवाभावको याद करके—॥ २ ॥

कृपासिंधु प्रभु होहि दुखारी । भीरु बरहि ^{पुनः}कुसुमदु पिचारी ॥

कहि मिथ लखनु विरुद्ध होइ काही । किमि पुरुषहि जनुसर परिछाही ॥ ३ ॥

कृपाके समुद्र प्रभु श्रीरामचन्द्रजी दुखी हो जाते है, किन्तु फिर कुसुमपुष्प समझकर भीरु धारण कर लेते है । श्रीरामचन्द्रजीको दुखी देखकर सीताजी और लक्ष्मणजी भी व्याकुल हो जाते है, जैसे किसी अनुपमकी परछाई तब समुद्रके समान ही रोना करती है ॥ ३ ॥

प्रिया बंधु गति कसि धुनंजनु । प्रीर कुराक अगत डर बंधनु ॥

छो कहन कहु कथा पुनीता । सुबिसुख कहि लखनु बस सोदा ॥ ४ ॥

तब भीर, कृपालु और भक्तोंके हृदयोंको सीतल करनेके लिये चम्पनरस, रघुकुलको आनन्दित करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी प्यारी पत्नी और भाई लक्ष्मणजी दृशा देखकर कुछ पवित्र कथाएँ कहन लगते हैं, जिन्हे सुनकर लक्ष्मणजी और सीताजी मुख प्राप्त करते है ४

दो०—रामु लखन सीत लखित सोदय परम निजेत ।

किमि बासुव वस अमरपुर खची जयंत समेत ॥ १४१ ॥

लक्ष्मणजी और सीताजीसहित श्रीरामचन्द्रजी कर्णकुटीमें ऐसे सुशोभित है जैसे अमरावतीमें इन्द्र अपनी पत्नी शची और पुत्र ज्यन्तुसहित बैठते है ॥ १४१ ॥

चौ०—^{मंगल}बासुकि प्रभु सिध लखनि कैसे । पलक धिक्कोच खोळ जैसे ॥

सेवहि लखनु सीध राहुनीहि । किमि अविनेकी पुख्य सरीरहि ॥ १ ॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजी सीताजी और लक्ष्मणजीकी कैसी संपाल रखते हैं, जैसे पद्मे नेत्रोंके गोलकोपी । दृष्टर लक्ष्मणजी सीताजी और श्रीरामचन्द्रजीकी [अथवा लक्ष्मणजी और सीताजी श्रीरामचन्द्रजीकी] ऐसी सेवा करते है जैसे अम्बजी मनुष्य शरीरकी करते है ॥ १ ॥

एहि विधि प्रभु स्वच्छहि सुसारी । खन मृग मुर तापस हितकारी ॥

करैत राम कव मवन सुहाय । सुनहु सुमंत्र कवब विमि आवा ॥ २ ॥

पत्नी, पशु, देवता और तपस्वियोंके हितकारी प्रभु इस प्रकार मुखपूर्वक वनमें निवास कर रहे हैं । तुलसीदासजी कहते हैं—मैंने श्रीरामचन्द्रजीका सुन्दर वनगमन कहा । अब जिस तरह सुमन्त्र अयोध्यामें आये वह [कथा] सुनो ॥ २ ॥

फिरेन निपादु प्रभुहि पहुँचाई । सखि सखित रथ देखेसि आई ॥

अंश बिलस थिछोकि निपादु । फहि न जाइ अस मयद विपादु ॥ ३ ॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके पहुँचाकर जब निपादराज बौटा, तब आकर उसने रथको मन्त्री (सुमन्त्र) सहित देखा । मन्त्रीको व्याकुल देखकर निपादको जैसा दुःख हुआ, वह कहा नहीं जाता ॥ ३ ॥

राम राम सिय छुंछब पुकारी । पोर बंनिमल ज्यकुल भारी ॥

देखि दखि विमि दुखे दिहिनाही । जसु विनु पंख विहम बहकाही ॥ ४ ॥

[निपादको अकेले आवा देखकर] सुमन्त्र हा राम ! हा राम ! हा सीते ! हा लक्ष्मण ! पुकारते हुए, बहुत व्याकुल होकर धरतीपर गिर पड़े । [रथमें] थोड़े सखि-विद्याकी ओर [जिसपर श्रीरामचन्द्रजी राखे थे] देख-देखकर दिनदिनाते हैं । मानो विसा पंखके पक्षी व्याकुल हो रहे हों ॥ ४ ॥

रो—महि दन चरहि न पिमहि जलु मोचहि लोचन वारि ।

व्याकुल मूढ़ निपाद सख रघुवर बानि निहारि ॥ १४२ ॥

वे न तो दान चरते हैं न पानी पीते हैं । केवल आँखोंसे लड़ रहा रहे हैं ।

श्रीरामचन्द्रजीके घोड़ोंको इस दृष्टांत देखकर सब निपाद व्याकुल हो गये ॥ १४२ ॥

चौ—अरि धीरु तप जहइ निपादु । अब सुमंत्र परिहरहु विपादु ॥

मुन्य पणित कसराव आवा । घरहु धीरकवि विमुच विधावा ॥ १ ॥

तब भीरज भरकर निपादराज कहने लगा—हे सुमन्त्रजी ! अब निपादको छोड़िये । आप पण्डित और परमार्थके ज्ञानेवाले हैं । निपादको प्रसिद्ध ज्ञानकर वेद पारण कीजिये ॥ १ ॥

विदिधि क्या कहि कहि सुहु बानी । तब बैसनेन बरकस आनी ॥

सोक सिपिछ-रुह सकह न होकी । रघुवर सिख पीर वर बौकी ॥ २ ॥

कोमल बाणसे मोंति-मोंतिकी कण्ठमें फहरा निपादने जख्मसी छकर सुमन्त्रको रथपर बैठाया । परन्तु सोमके भोर, वे इतने विचित्र हो गये कि रथको हँक नहीं सकते । उनसे दूरमें श्रीरामचन्द्रजीके निरहारी बड़ी तीव्र वेदना है ॥ २ ॥

चरकहि—मम चरहि न घोरि । बन मृग मवनहु बानि स्थ घोरि ॥

अरुहि पछि फिरि हेरहि पीछे । राम भिनोषि बिलस दुख तीछे ॥ ३ ॥

थोड़े तड़पझटते हैं और [ठीक] राखेर नहीं चले । मानो जंगली पशु लफेर रथमें जोत दिये गये हो । वे श्रीरामचन्द्रजीके विनोषी थोड़े कमी ठीकर लाकर गिर पड़ते हैं, कमी घूमकर पीछे की ओर देखने लगते हैं । वे तीव्र दुःखसे व्याकुल हैं ॥ ३ ॥

जो फन्द रामु जखनु वैदेही । हिकरि हिकरि दित हेरहि तेही ॥

बानि धिरह गति कहि विमि जानी । विनु अनि पणिक चिखत केहि मोंती ॥ ४ ॥

जो बोहें राम, लक्ष्मण या ज्ञानपीठ नाम ले लेता है, थोड़े दिकर-दिकरकर

उसकी ओर प्यारसे देखने लगते हैं। बोदोनी विरहदशा कैसे कही जा सकती है। वे ऐसे व्याकुल हैं जैसे मणिके बिना सौंफ व्याकुल होता है ॥ ४ ॥

दो०—भयद निपादु विषादवश देखत सचिव तुरंग ।

घोड़ों सुसेवक चारि तब विष सारथी संग ॥ १४३ ॥

मन्त्री और घोड़ीकी यह दशा देखकर निपादराज विषादके बंध हो गया। तब उसने अपने चार उत्तम सेवक बुलाकर सारथीके साथ कर दिये ॥ १४३ ॥

चौ०—गुह सारथिहि धिरेठ पहुँचाई। बिहू विषादु बसि नहि जाई ॥

चले अवध सेह खोदि निपादा। होहि उनहि छन मम्य विषादा ॥ १ ॥

निपादराज गुह सारथी (सुमन्त्रजी) को पहुँचाकर (बिदा करके) लौटा। उसके विरह और दुःखका बर्णन नहीं किया आ सकता। वे चारों निषाद रथ लेकर अवधकी ओर चले। [सुमन्त्र और घोड़ोंको देख-देखकर] वे भी अग्न क्षणपर विषादमें डूबे जाते थे ॥ १ ॥

लोच सुमन्त्र किछु हुल दीचा। बिग जोवर रघुबीर बिहीना ॥

रहिहि न मरहुँ अघम सरीक। मनुष कहेत विधुस्त रघुबीक ॥ २ ॥

व्याकुल और दुःखसे रीन हुए सुमन्त्रजी सोचते हैं कि औररघुबीरके बिना जीनेको बिचार है। आखिर यह अघम कष्टीर रहेगा तो है ही नहीं। अभी श्रीरामचन्द्रजीके विधुक्ते ही झूटकर इतने यत्न (बचो) नहीं ले लिया ॥ २ ॥

अप अजस अघ मावन प्राणा। ^(विधि) हेतु नहि कसत पनामा ॥

महद मंद मनु अवसर धूर। अजहुँ न हृदय हीत धूर हूर ॥ ३ ॥

वे प्राण अप्रत्यक्ष और पापके भंडि हो गये। अब वे किस कारण कुछ नहीं करते (निकलते नहीं) ? हाय ! नीच मन [बड़ा अच्छा] मोड़ा चूक गया। अब भी तो हृदयके दो झुक्ने नहीं हो जाते ॥ ३ ॥

मीति हृद्य सिध पुनि पछितार्ह। मरहुँ सुवर धर सखि गदोई ॥

बिदिद मीति कर बीह कड़ाई। चलेठ समर बनु सुसद पराई ॥ ४ ॥

सुमन्त्र हाथ मल-मलकर और फिर पीठ-पीठकर सज्जते हैं। मानो कोई संग्रह घनका खजाना खो बैठता हो। वे इस प्रकार चले गये जो कोई बड़ा मोटा बीरका बाना पहनकर और उत्तम धनुर्वीर कलाकर युद्धते भाग लब्ध हो ॥ ४ ॥

दो०—विप्र विभेकी वेदविद संमत्त साधु मुजाति ।

जिमि घोखें मय पान कर सचिव सोच तेदि मीति ॥ १४४ ॥

जैसे कोई विवेकशील, वेदका ज्ञाता, साधुसम्पन्न आचरणोपमा और उत्तम कांतिका (कुलीन) ब्राह्मण घोलेसे मरिच पी ले और पीले पछतावे, उसी प्रकार मन्त्री सुमन्त्र सोच कर रहे (पछता रहे) हैं ॥ १४४ ॥

चौ०—जिमि कुलीन तिव सगु सग्वनी। बतिदेवता करम भव पानी ॥

रहै कसम कस परिहरि नहु। सचिव हृदयें सिमि वस्तु वाहु ॥ १ ॥

जैसे किसी उत्तम कुलवाली, साधुसम्पन्नकी समझदार और मन, वचन, कर्मसे पतिको ही देवता माननेवाली प्रतिभा स्त्रीको भाग्यवश पतिको छोड़कर (पतिसे अलग) रहना पड़े, उस समय उसके हृदयमें जैसे भयानक सन्ताप होता है, वैसे ही मन्त्रीके हृदयमें हो रहा है ॥ १ ॥

लोचन सबल सीमि यह मोरी। सुखद न भवविकल सति मोरी ॥

सुखीद अवर जामि सुहँ कष्टी। बिड न साह्य कर भवधि कष्टारी ॥ २ ॥

मेजोंमें जल भरा है, रटि, कन्द हो गयी है। जनोंमें सुतायी नहीं पड़ता, व्याकुल हुई बुद्धि बेचिखाने हो रही है। थोड़ा सुख रहे है, मुँहमें लट्टी लम गयी है। किन्तु [ये सब धुन्धुके कण्ठ हो जानेस मी] श्रवण नहीं निकल्यो; क्योंकि हृदयमें अवधिरूपी दिनाबू लगे हैं (अर्थात् चौदह वर्ष नीत जनेसर-गणेशान् फिर मिलेगे, यही आज्ञा स्वयम्भूत दाल रही है) ॥ २ ॥ -

चिचरन भयत न ताह निहारी । अरेसि सन्धुं पिता महगारी ॥

शामि गरागि सिद्ध मन जगदी । जगपुर-पंच सोच त्रिमि पायी ॥ १ ॥

सुमन्त्रजीके मुसक-रंग बदल गया है, जो देखा नहीं जाता। ऐसा मादम होता है याने इन्होंने माता-पिताको मर दाला हो। उनके मनमें रामध्वनिगर्भी हानिरी महान् ग्लानि (यथा) छा रही है, जैसे कोई कपो मनुष्य नरकको जाता हुआ रास्तेमें सोच कर रहा हो ॥ ३ ॥

बचतु न आय हृदयें रजिहई । जगज काह में देखव जाई ॥

राम रहित स्व देखिहि कोई । सखिपति मोहि विखेफत कोई ॥ ४ ॥

हैरसे बचन नहीं निकल्यो। हृदयमें फलताये हैं कि मैं अवश्यामें जाकर क्या देखूँगा ? श्रीरामचन्द्रजीके सुख रचने जो मी देखेगा, वही मुझे देखनेमें संकोच करेगा (अर्थात् मेरा मुँह नहीं देखना चाहेगा) ॥ ४-॥

दो—घाह रूँछिहई मोहि जेह विकल नमर नरं नारि ।

उतव देव में सपदि स्व हृदयें बधु बैछारि ॥ १४५ ॥

ममरके सब व्याकुल जी-मुसक जब दौड़कर मुझसे पूछेंगे, तब मैं हृदयपर पत्र रखकर सबको उत्तर दूँगा ॥ १४५ ॥

बी—रूँछिहई दीन दुखित सब माता । काह काह में रजिहि विधाता ॥

रजिहि जगहि कलम महतारी । कदिहरे कबच सेवेस सुखारी ॥ १ ॥

जब दीन-दुखी सब माताएँ पूछेंगी, तब हे विधाता ! मैं उन्हें क्या कहूँगा ? जब कलमजीकी माता मुझसे पूछेंगी, तब मैं उन्हें कौन-का सुखदायी सेवेस कहूँगा ? ॥ १ ॥

राम लगनि जग अहहि जाई । सुनिहि बन्धु विमि भेषु कथाई ॥

रूँछत बलव देव में तेही । ये बधु राम कबलु देखेही ॥ २ ॥

श्रीरामजीकी माता जब इस प्रकार बीबी आर्नेगी जैसे नयी म्यासी हुई गी पछने-को बार कपड़े दोही आती है, तब उनके पूछनेके मैं उन्हें वह उत्तर दूँगा कि श्रीराम, लक्षण, बीबा भगवो चले गये ! ॥ २-॥

बीर रूँछिहि तेहि कलम देव । काह अलख जग बधु मुखु छेवा ॥

रूँछिहि कथाई रात दुख नीन । निखल कबलु सुखज अवीना ॥ ३ ॥

ओ मी पूछेगा उठे वही उत्तर देना पड़ेगा ! हाय ! अवोच्य जाकर जब मुझे परो दुख जेता है ! जब बुझते, दीन महाराज, निमज्ज जीवन श्रीराम/पत्नीके [दर्शने] ही यकीन है, मुझसे पूछेंगे ॥ ३ ॥

देवदे । कलम नीलु खहु जहाँ । कावटे कलम कौन पछेचाई ॥

सुनत कलम निव राम सेवेसु । कब विमि तबु परिहरीहि चरेसु ॥ ४ ॥

तब मैं कौन-का मुँह लेकर उन्हें उत्तर दूँगा कि मैं रामकुमारको कुछपूर्वक पछेचा आया हूँ ! लक्षण, जीत और श्रीरामजी काचचार सुनते ही महाराज तिनकेही तरह सारीको त्याग देंगे ॥ ४ ॥

दो०—दृढ न विदरेष पंक मिमि विह्वल प्रीतु नर ।

जानत हीं मोहि वीन्ह विधि यहु ज्ञाना सरीर ॥ १४६ ॥

श्रियतम (श्रीरामजी), स्त्री बलके विह्वल हो गेय हृदय कीचड़की तरह फट नहीं गया, इससे मैं जानता हूँ ॥ विधाताने मुझे यह श्वातनाम्नरि ही दिया है [जो पापी जीवोंको नाम भोगनेके लिये मिलता है] ॥ १४६ ॥

चौ०—एहि विधि कस्य पंक पछिगया । तमसा वीर तुल्य यहु जाना ॥

बिदा किम् करि विनय विधादा । फिरे पार्य धरि विनय विधादा ॥ १ ॥

सुमन्त्र दस प्रकार मर्त्यमें फलवाना कर रहे थे, इनमें ही रूप तुरंत तमसा मर्त्यके सदृश आ पहुँचा । मन्त्रीने विनय करने काहीँ निपातोंको बिदा किया । वे विधातसे व्याकुल होते हुए सुमन्त्रके पैरो पकड़ लीं ॥ १ ॥

पैठत पकर सखि सङ्गचाई । जहु मरेसि गुर वीरन काई ॥

बैदि विदर तर दिवसु गर्वीष । सोई समय कब आसस पया ॥ २ ॥

मगरसे प्रवेश करते मन्त्री [मन्त्रिके कारण] ऐसे लज्जित हैं, मानो गुरु, ब्राह्मण या गौत्रो मारकर आवे हों । क्या दिन, एक पक्षके नीचे बैठकर बिना [जब सम्प्रदाय दुर्ग तब मौका मिले] ॥ २ ॥

जगद प्रेम्तु कीन्ह वीरिपार । कै जगन सहु सखि बुझारें ॥

जिन्ह विनय सजाचार सुनि पाए । सुए शूर सहु देखन आए ॥ ३ ॥

औंवेरा होनेपर उन्होंने अयोध्यामें प्रवेश किया और रक्षके दरवाजेस लड़ा करके वे [कुलेन्द्रे] महारमें हुते । अग्नि-जिन लोगोंने वह समाचार-सुन पाया, वे सभी रूप देखनेको राजद्वारपर आये ॥ ३ ॥

सहु पहिचावि विनय कवि सोरे । तरहि बात जिमि बखन सोरे ॥

मगर तरि नर व्याकुल कैसैं विचरत नीर प्रीयन जैसैं ॥ ४ ॥

रामको पञ्चानन और बोलोंको व्याकुल देखकर उनके शरीर ऐसे गले का रहे हैं (भीष हो रहे हैं) जैसे धाममें ओले । मगरके ली-पुका कैसे व्याकुल हैं जैसे जलके बल्लेपर मन्त्रियों [व्याकुल होती हैं] ॥ ४ ॥

दो०—सखिच आगमनु सुमंत सहु विनय भयत रविषांसु ।

मवलु मर्यादह । ठग तेहि मानहु । प्रेत निवांसु ॥ १४७ ॥

मन्त्रीका [अकेले हीं] आता हुनकर साथ रविषास व्याकुल हो गया । रामनेही ठगनेकी ऐसा भयानक कथा मन्त्रीने प्रेषित निम्नचलन (भ्रमण) हो ॥ १४७ ॥

चौ०—कति आरति सन पैछहि राणी । जस न कब विनय नद जायी ॥

सुनइ न अवन नवन बहि सुखा । कईहु कहीं राय तेहि तेहि सुखा ॥ १ ॥

अत्यन्त आर्त होकर कन रानियों फूली हैं; पर सुमन्त्रके कुछ उत्तर नहीं आता, उनकी राणी विनय हो गयी (रुक गयी) है । नकानोंसे सुनायी पड़ता है और न आँसोंसे कुछ झलता है । वे जो भी वाक्यें आता है उस-उसके फूलते हैं—कहो, राजा कहाँ हैं ? ॥ १ ॥

दासिन्ह दीख सखि विनय । जैसकय रुई चई सवाइ ॥

जाइ सुमंत दीख कब राजा । कसिब रसिच भदु चंदु पिराया ॥ २ ॥

दासियों मन्त्रीको व्याकुल देखकर उन्हें औसवाजीके यकलों लिया गया । सुमन्त्रने आकर चढ़े राजासे कैस [कैते] ऐसा मन्त्री किना अमृतका चमत्कार हो ॥ २ ॥

कामद भवत किन्तुन ईना । परंतु अनिमग निवट मर्षिता ॥

छेह इसुनु सोच दुहि कीती । सुगुन में कहु मेरुंउ जगनी ॥ ३ ॥

राम जगन, राम जग आनन्दते रहि, किन्तुल मर्षित (दुःख) दुःखीर
पड़े हुए हैं । वे क्यों सोच लेकर इस प्रकार रोय करते हैं, क्यों सदा अनिमग
होकर सोच कर रहे हैं ॥ ३ ॥

कैत सोच भनि छिनु तेहु छाती । उनु उरी फंय बरेह मंषाती ॥

राम राम कह राम सन्दी । छुनि नह राम कथन देहेई ॥ ४ ॥

राम आ-क्षणमें सोचते छाती भर छेते हैं । ऐसी विकट दशा है मामों [गी. वा. १
लघुगुण भाई] कभीकी पछोके लल जनेम गिर पड़ा हो । रामा [वा. वा.] 'राम,
राम' हा सोहो (प्यारे) राम ! कहते हैं कि 'हा राम, हा लक्षण, हा जानसी'
ऐसा कहने लगते हैं ॥ ४ ॥

दो—देखि सचिई अय जीव कहि करिनेह दुंठ प्रतामु ।

सुनत उठेह व्याकुल चपति कहु सुमंष कहैं राम ॥ १४८ ॥

मन्त्रिने बैकुण्ठ 'मन्त्री' कहकर दुःखवा-प्रधान किता । सुनते ही राम व्याकुल
होकर उठे और बोले—सुमन्त्र ! क्यों, राम क्यों है ? ॥ १४८ ॥

बौ—भूत सुनहु सीन्ह नर जई । वृत्त कहु अछार 'जहु पाई ॥

सहित सनेह निवट बेजरी । पूछत राव कवत करि बारी ॥ १ ॥

रामने दुःखको हृदयमें बसा लिया । जानो वृत्तें हुए आरमीली कुछ कदारा मिल
गया हो । मन्त्रीकी सनेहके साथ-साथ बैठाकर, नेचोंमें लल मकर रामा पूछने लगे— ॥ १ ॥

राम कुशल कहु सका सनेही । कहैं राघवाहु कबहु बैदेही ॥

जाने केरि कि कबहि सिधाय । सुनत सचिष कोचन लल छाय ॥ २ ॥

हे मेरे प्रेमी उता ! श्रीरामकी कुशल करो । बताओ, श्रीराम, लक्षण और जानकी
कहाँ हैं ? उन्हें लौटा लाने हो कि वे बनकी बने बने ? यह सुनते ही मन्त्रीके नेत्रोंमें
लल भर आता ॥ २ ॥

सोक निवट पुनि ईल बोच । कहु सिष राम कथन सनेहु ॥

राम लल पुन सीक सुभाह । सुमिरी सुमिरी नर सोचत राह ॥ ३ ॥

शोकते व्याकुल होकर राम फिर पूछने लगे—सीक, राम और लक्षणका सँदेश
तो करो । श्रीरामचन्द्रजीके रूप, गुण, सीक और लक्षणको याद कर-करके राम हृदयमें
सोच करते हैं ॥ ३ ॥

राम पुनह सीन्ह कववाच । सुनि नन भयन व इच्छु हरौच ॥

सो सुत किहुल गए न प्राण । को पावी जव 'जोहि' समाया ॥ ४ ॥

[और कहते हैं—] मैंने एका होनेकी वस्तु सुनकर कववाच दे दिया; यह
सुनकर भी जित (राम) के मनमें हर्ष और निराद नहीं हुआ, ऐसे पुनः किहुलनेर
भी मेरे प्राण नहीं गये; तब मेरे समन बड़ा पावी कौन होगा ? ॥ ४ ॥

दो—सखा रामु सिष लच्छु जाई तहाँ मोहि एहँचाव ।

कहि त चाहत चलन अय प्राण कहैं सविनाह ॥ १४९ ॥

हे सखा ! श्रीराम-जानकी और लक्षण वहाँ हैं, मुझे भी वहीं पहुँचा दो । नहीं
तो मैं तब तक भावते रहता हूँ कि मेरे प्राण जब चलन ही चाहते हैं ॥ १४९ ॥

चौ०—पुनि पुनि पूँजत मंत्रिहि राऊ । प्रियतम-मुखन संदेश सुनाऊ ॥
 कराहि सखा सोइ बेगि चपाऊ । रामु लखनु सिख बनन देखाऊ ॥ १ ॥
 राजा बार-बार मन्त्रीते पूछते हैं—येरि प्रियतम पुत्रीका संदेश सुनायो । हे सखा !
 तुम ज्ञात वही उपाय करो जिससे श्रीराम, लक्ष्मण और सीताको मुझे ओझों दिखा दो ॥ १ ॥
 सचिव धीर धीर कह्य सुहु पाबी । महाराज तुम्ह पठित ग्यानी ॥
 धीर सुधीर पुरंकर देवा । सधु समाज सदा तुम्ह सेवा ॥ २ ॥
 मन्त्री धीरज धरकर कोयल वाणी बोले—महाराज । आप पण्डित और जानी हैं ।
 हे देव ! आप शूरवीर तथा उत्तम वैयक्तिक पुरुषोत्तम श्रेष्ठ हैं । आपने महा राजाओंके
 समाजका सेवन किया है ॥ २ ॥

। जलम मरण सब कुछ सुख भोग । हानि कष्टु प्रिय मित्रन विभोग ॥
 काज कसम बस होहि गोसाईं । बनबस राति दिवस बरि गार्ह ॥ ३ ॥
 सप्त मरण, दुःख दुःखके भोग, एनि जय, प्यारोका मित्रना विमुक्तना, ये सब हे
 स्वामी ! काज और कसमें अधीन रात और दिनकी तरह बरबस होते रहते हैं ॥ ३ ॥
 कुछ हस्तहि कज कुछ मित्रनाही । दोउ सम धीर धरहि मन माई ॥
 धीरज धरहु विवेक विचार । कविम सोच समझ हितकारी ॥ ४ ॥
 मूर्खजोय सुखमे हानि होत और दुःखमे रोते हैं, पर धीर पुरुष अपने मनमें
 दोनोंको समान समझते हैं । हे आपके हितकारी (राजा) । आप विवेक विचारकर धीरज
 धरिये और शोकका परित्याग कीजिये ॥ ४ ॥

दो०—प्रथम बासु तमसा भेयठ दूसर सुरसरि तीर ।

— नहाइ रहे जलपानु करि सिख समेत दोउ वीर ॥ १५० ॥
 श्रीरामसीता पहल निगल (मुकाम) तमसाके तटपर हुआ, वृद्धा गङ्गातीरपर ।
 सीतासीताहि दोनो माई उठ दिन ज्ञान करके जल पीर ही रहे ॥ १५० ॥
 चौ०—केवट कीन्हि बहुत सेवगई । सो आनिनि सिंगसै राखी ॥
 होत जात कट कीक मगधा । धरा मुकुट गिर सीम बनावा ॥ १ ॥
 केवट (निषादराज) ने बहुत सेवा की । यह रात सिंगरौर (भृगुवैरपुर) में ही
 बितायी । दूसरे दिन उठेरा होते ही बहका दूध मँगवाना और उसके श्रीराम लक्ष्मणों
 अपने सिरोपर गड़ाओके मुकुट बनाने ॥ १ ॥

राम सखां तब भव भगाई । प्रिया कराइ चढे रघुराई ॥
 कसन कान धनु धरे बजाई । बाणु चढे प्रभु बरबसु पाई ॥ २ ॥
 तब श्रीरामचन्द्रजीके सखा निषादराजने नाव मँगवायी । पहले प्रिया सीताजीको
 ऊपर चढाकर फिर श्रीरघुनाथजीके । फिर लक्ष्मणजीने धनुष बाण सजाकर रथसे
 और प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर सब चढे ॥ २ ॥

मित्र बिलोकि सोहि रघुवीर । जोके मज्जर धवन धरि जीस ॥
 तब प्रबसु जल सब कहेह । बार बार पव पंखन गयेह ॥ ३ ॥
 मुझे ब्याकुल देखकर श्रीरामचन्द्रजी धीरज धरकर धनुष बंधन बोले—हे दात !
 बिताजीसे मेरा प्रणाम करना और मेरी ओरसे बार बार उनके वरकमल पढ़ना ॥ ३ ॥
 कनि कर्षे बरि विनय बहोरी । तब कसिब बनि किन मोरी ॥
 बन सब मंगल कुलक हजारे । कृपा अमुण्ड पुन्य तुम्हारे ॥ ४ ॥

किर पाँव पकड़कर निगली करना कि हे मित्रके ! भाग मेरी चिन्ता न कीजिये !
आपकी हुमा, अनुग्रह और पुण्यसे मनमें और सर्वमें हमारा कुशल-मंगल होगा ॥ ४ ॥

सौ०—सुन्दर अनुग्रह तात कानन जात सब सुख पावहीं ।

प्रतिपालि बाधसु कुसल देखन पाव पुनि फिर भावहीं ॥

अननी लखल भरितीति परि-परि पावैं करि विनती धनी ।

मुलसी करेहु सोइ जगहु जेहि कुसली जहि कुसल बनी ॥

हे मित्रजी ! आपके अनुग्रहों से मैं क्या चाहे हुए सब प्रकारका सुख पाऊँगा ।

आशाका भयभोगि पावन करके करणोंका दर्शन करने कुशलपूर्वक फिर बैठ भाऊँगा ।

रूप माताओंके पैरों पद-पदन बनका-समाधान करके और उनके बहुत विनती करके—

कुशलदाता करते हैं—हुए वही प्रणम करना जिसमें भोक्तृवृत्ति मित्रजी मुगल रहें ।

सौ०—गुर सब कह्य सँवेसु बार बार पद पदम गहि ।

सरस सोइ उपदेशु जेहि न सोच मोहि सबधपरि ॥ १५१ ॥

बार-बार बरकबमकोषे पकड़कर गुन बलिष्ठजोषे मेरा संबेदा करना कि हे श्री

उपदेश दे जिससे सबधपरि मित्रजी मेरा सोच न करें ॥ १५१ ॥

सौ०—गुराज परिसम सकल विहारी । तात सुभाषु विनती मोरी ॥

सोइ सब भीति और हितकारी । जहाँ रह नरनाहु सुखारी ॥ १ ॥

हे तात ! सब पुरस्कारियों और कुटुम्बियोंसे निहारा (अनुरोध) करते मेरी विनती

हुमाना कि वही मनुष्य मेरा सब प्रकारसे हितकारी है जिसकी सेवासे मन्त्राज सुखी रहें ॥ १ ॥

कदापि सँदेसु भरत के कार्य । नीति न बलिष्ठ राजसु पावैं ॥

पतेहु प्रताहि जल नग गयी । मेपहु गह्य सकल सम गयी ॥ २ ॥

भरतके आनेपर उनकी मेरा सिखा करना कि राजाका पर-पा चानेपर नीति न

छोड़ देना; फर्म, वचन और मन्त्रे प्रभुका शब्द करना और सब सत्ताओंको समान

मानकर उनकी-सेवा करना ॥ २ ॥

और किसाहेहु आशय भाई । करि दित गह्य सुखन सेवकाई ॥

सक भीति तेहि सम्यक उठ । सोच और जेहि करे न काळ ॥ ३ ॥

और हे भाई ! मित्रा, सत्ता और स्वयंसेवी सेवा करने भाईपनेको, भक्तवत्

निवाहना । हे तात ! राजा (मित्रजी) को उसी प्रकारसे रहना जिससे वे कभी

(किसी तरह भी) मेरा सोच न करें ॥ ३ ॥

जलन करे कहु नवन करेरा । कलि राम पुनि मोहि निहोरा ॥

बार बार निज खनय देवाई । कही न तात जलन करिकाई ॥ ४ ॥

जलनपलीने कुछ कटोर वचन करे । किन्तु श्रीरामजीने उन्हें बरकरार फिर सुहावे

अनुरोध किया; और बार-बार अपनी सेवाच दिवसी [और कह—] हे तात !

जलनपक्ष बढ़कमन नहीं न करना ॥ ४ ॥

सौ०—कहि प्रतासु कहु कहन छिन्न छिन्न भाइ सिधिल सवेद ।

धकित वचन लोचन सज्जल पुलक पल्लवित वेद ॥ १५२ ॥

प्रगल्भकर सीतानी मी कुछ कहते छड़ी थीं, परन्तु स्नेहक ये सिधिल हो गयीं ।

उन्नी कभी रुक गयी; नेत्रोंमें जल भर आया और अंगूर रोमछले जलत हो गया ॥ १५२ ॥

सौ०—तेहि अवसर खुकर लख-पाई । केवट पावहि गान चलाई ॥

खुल्लुल्लिखत जेहि रहि-भीती । देखै अङ्ग-द्विष्य बरि छाती ॥ १ ॥

उसी समय श्रीरामचन्द्रजीका हाथ पाकर केवटने धर जानेके लिये नाथ चला दी । इस प्रकार रघुवंशविराज श्रीरामचन्द्रजी चले दिये और मैं उत्तम वज्र रखकर खड़ा-खड़ा देखता रहा ॥ १ ॥

मैं आपन विमिश्र कहौ कहेसु । विमिश्र फिरेल केहु राम सँदेसु ॥

अब कहि सचिद बचन रहि गयल । इनि गलावि सोच बस भयल ॥ २ ॥

मैं अपने बड़ेबड़े कैसे कहूँ, जो श्रीरामजीका यह संदेश लेकर जाता ही औट थाया ! ऐसा कहकर मन्त्रीजी वाली रुक गयी (वे जुप हो गये) और वे हानिकी ग्लानि और सोचके बड़ा हो गये ॥ २ ॥

सूत बचन सुनसहि करवाहु । परेड वरवि कर दाख्य वाहु ॥

तछफल बिषम मोह भय भय । सत्ता भयहुँ भीष कहूँ व्यापा ॥ ३ ॥

सारथी सुमन्त्रके बचन सुनते ही राजा वृषभीरु गिर पड़े, उनके हृदयमें भयानक जलन होने लगी । वे तड़पने लगे, उनका मन भीषण मोहसे व्याकुल हो गया । मानो मछलीको मोंरा व्याप गया हो (पक्षी धर्वाँक जल खा गया हो) ॥ ३ ॥

हरि विचार सख रोवहि सखी । महा विपति किमि जाहु बलानो ॥

हृनि विचार दुखहु दुखु काय । भीखहु कर भीखु भाया ॥ ४ ॥

सब रानियों विलप करके रो रही हैं । उस ग्लानि विपत्तिमें कैसे बर्चन किया जाय ? उस समयके निरापकी सुनकर दुःखको भी दुःख लगा और भीरवका भी भीरव भाग गया ॥ ४ ॥

दो०—भयड कोलाहलु भयध अति सुनि रुप पठर सोद ।

विपुल बिहग वन फेड निसि मानहुँ कुलिस कठोर ॥ १५३ ॥

राजाके रायसे (रानिवास) में [रानेज] और सुनकर अयोध्याभरमें बड़ा मारी कुहराम भग गया ! [ऐसा जान पड़ता था] मानो पक्षियोंके किताब बनने रातके समय फटीर वज्र गिरा हो ॥ १५३ ॥

चौ०—प्राण कंठगत भयल सुगल । हरि बिहीन बसु व्याकुल व्याल ॥

हृद्री सकल किकल भई भारी । बसु सर सरित्थ बसु बिनु भारी ॥ १ ॥

राजाके प्राण कण्ठमें आ गये । मानो मछिके बिना सँप व्याकुल (मरणावस) हो गया हो । इन्द्रियों सब बहुत ही विकल हो गयी, मानो बिना जलके तालाबमें कमल-का बन मुरझा गया हो ॥ १ ॥

कौसल्या गुरु दीक्ष ब्रह्मण । समिक्क रवि बँबयद जियँ जाना ॥

उर घरि धीर शुभ भइतारी । कोरै बचव सम्य भनुसारी ॥ २ ॥

कौसल्याजीने राजाको बहुत दुखी देखकर अपने हृदयमें जान लिया कि अब सूर्य-कुलका सूर्य सस्त हो चला ! उस श्रीरामचन्द्रजीकी सत्ता-कौसल्या हृदयमें धीरज धरकर समयके अनुकूल वचन बोली— ॥ २ ॥

नाथ समुक्षि भय करिख विचार । राम विद्योय पचोधि अपार ॥

करनघार तुम्ह भयध जहणु । परेड सकल प्रिय पथिक समाद ॥ ३ ॥

हे नाथ ! आप मनमें समझकर विचार कीजिये कि श्रीरामचन्द्रका विद्योय अपार समुद्र है । अयोध्या जहाज है और आप उसके कर्माधार (खेनेवाले) हैं । सब त्रिमयन (कुटुम्बी और प्रभ) ही वाकियोंमें समाप्त है, जो इस जहाजमें बड़ा हुआ है ॥ ३ ॥

धीरु धर्मि व फल पाक । कीदि व बुद्धि सहु पेरिवाल ॥

औ जियँ धरिख बिन्य पिय भोरी । रामु लखनु धिय विकलै बहोरी ॥ ४ ॥

आर शीरज धरिवाय, सो सब भूँच जायै । नहीं तो सग परिवार ह्व
लवण । हे प्रिय खात्री ! यदि मेरी विनयी इन्द्रज्ये चारण नीचिबेछ तो श्रीराम,
कल्पन, सीता फिर आ मिलेंगे ॥ ४ ॥

श्री०—प्रिया वचन मृदु सुमन नृपु चितवट गौलि उचारि ।

तलफत मोन महीव जनु सौचत सीनल वारि ॥ १५३ ॥

प्रिय पत्नी कौसल्याके कोमल वचन सुनते हुए राजने अपने खोलकर देखा ।
माने तपस्वी हुए दीन मन्त्रवैर कोई खोल कर निकल रहा हो ॥ १५४ ॥

श्री०—धरि वीछु कठि कैट सुखल । मृदु सुमन कहै राम कृपाल ॥

कही कबहु कहै राखु सबेरी । कहै प्रिय पुत्रवत् वैदीही ॥ १ ॥

शीरज भरकर राजी उठ बैठे और बोले—सुमन ! कबो, कबहु श्रीराम कहाँ हैं ?
कहाँ हैं ? स्नेही राम कहाँ हैं ? और मेरी प्यारी बहू नानदी कहाँ हैं ? ॥ १ ॥

विकरत राउ किछल खु जीती । यह ह्वन सरिल सिउति न राखी ॥

सावध सब साध धुपि कहाँ । कौसल्याहि सब कथा सुनाई ॥ २ ॥

राजा व्याकुल होकर बहुत प्रफरते विछल कर रहे हैं । यह रात मुझे हमान
कही हो राखी, होवती ही नहीं । राजाको भये तपस्वी (अवबहुमाके पिता), के शापकी
बाद आ गयी । उन्होंने उन कथा कौसल्याको कह सुनायी ॥ २ ॥

अथ विच्छल वारण इतिहास । राम रहित प्रिय जीवव भवत ॥

सो ॥ राखि करव मै कहा । कैहि न हेम बहु भेर विवाहा ॥ ३ ॥

सब इतिहासक कर्न करते-करते राजा व्याकुल हो गये और कहने लगे कि
श्रीरामके बिना भीनेकी मायाको विचार है । मैं उत मरीखो रसकर स्वा करेगा
विछने मेरा प्रेमका प्रेम नहीं मिलाया ॥ ३ ॥

हा सुखरन प्राग विरीते । तुमबिनु विमल बहुत दिन बीते ॥

हा आम्ही कल्प हा सुखर । हाविनुहित प्रिय वातक सकल ॥ ४ ॥

हा राखुलको आनन्द देनेको मेरे प्रायश्चारे राम ! तुम्हारे बिना जिते हुए मुझे
बहुत दिन बीत गये । हा नानदी, कल्पन । हा सुखर ! हा विनाके निरपेक्ष
आपको हित करनेको मेरा ॥ ४ ॥

श्री०—राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम ।

तनु परिधरि यखुवर बिहई राउ मयउ झुरधाम ॥ १५५ ॥

राम-राम कहकर, फिर राम कहकर फिर राम-राम कहकर और फिर राम
कहकर राजा भीरमके किराने सीर लम्बर सुरलोको सिधार गये ॥ १५५ ॥

श्री०—विनन अथ मृदु दसरा पाया । कठ कोक काक खु छया ॥

विमल राम विनु खनु विहरा । राम निह करि मनु सीरत ॥ १ ॥

सीने और मनोपत्र फल से दसराखीने ही पाया, विमल निर्मल नथ कोको
महाब्रह्मों का गया । जैनेजी तो भीरमचन्द्रकी कद्राको छान मुखको देखा और
श्रीरामके विरहको निमित्त काकर कल्प मरु सुखर-लिया ॥ १ ॥

सोच किछ सव रोपहि राखी । खु सीछु खनु कैट वसाने ॥

परहि किछव कोक प्रकटा । परहि मृमिल वारहि वरा ॥ २ ॥

राम राजनी कोको मेरे व्याकुल होकर रो रही हैं । वे राजाके साथ, श्रीराम, राम

और तेजका बखान कर-करके अनेकों प्रकारसे विलाप कर रही हैं और बार-बार धरती-पर गिर-गिर पड़ती हैं ॥ २ ॥

विलापहिं बिलक दास अरु दासी । घर घर वदनु कहहिं धुरपासी ॥

अँयवद आनु मानुकुल भानू । घरम अवधि गुण रूप निभानू ॥ ३ ॥

दास-दासीगण ब्याकुल होकर विलाप कर रहे हैं और नगरनिवासी घर-घर रो रहे हैं। कहते हैं कि आज धर्मकी सीमा, गुण और रूपके मन्दार-सर्वकुलके सुर्व भरा होगये ॥ ३ ॥

गारीं सकल कैकहहिं देहीं । नवन विहीन कीन्ह जग जेहीं ॥

एहिं विधि बिलपत रैन विद्यावी । आप सकल महासुनि ग्यानी ॥ ४ ॥

सब कैने-गोको गालियाँ देते हैं, जिसने मन्दारमूलको बिना नेत्रका (अंश) कर दिया ! इस प्रकार विलाप करते रात बीत गयी । प्रातःकाल सब बड़े-बड़े शानी मुनि आये ॥ ४ ॥

गो०—सब वसिष्ठ मुनि समय सम कहिं अनेक इतिहास ।

सोक नेचारेख सबहिं कर निज विग्यान प्रकास ॥ १५६ ॥

सब वसिष्ठ मुनिने समयके अनुकूल अनेक इतिहास कहकर अपने विगानके प्रकाशसे सबका मोह दूर किया ॥ १५६ ॥

चौ०—देख भावें भरि नृप वनु राधा । वृत्त कोसल बहुरि अस भाषा ॥

बाबहु धेनि भरत पदिं आहू । गुण सुधिकतहुं कष्टहुं जनि जाहू ॥ १ ॥

वसिष्ठजीने नायमें ठेल भरवाकर राजाके शरीरको उठाने रक्षा दिसा । फिर वृत्तोंको सुलझकर उनसे देखा करा—तुमलोग जल्दी दौड़कर भरतके पास जाओ । राजाजी मृत्युका समाचार कहीं किसीसे न कहना ॥ १ ॥

पूतमेद कहहु भरत जन जहं । गुर पीछाह कलक होव भाई ॥

सुनि मुनि आचसु बचन भाए । चले वेग वर बधि जगपद ॥ २ ॥

जाकर भरतसे इतना ही कहना कि दोनों भाइयोंको गुरुजीने बुलाया है। मुनिकी आज्ञा सुनकर भावन (वृत्त) दौड़े । वे अपने वेगसे उत्तम घोड़ोंको भी लगाते हुए चले ॥ २ ॥

भरतसु अवध अरिभेड जग हैं । कुसमुन होहि भरत कहूँ तब हैं ॥

देखहिं राति भवाचक सनत । जाति कहहिं कहु कोहि कल्पना ॥ ३ ॥

जैसे अयोध्यामें जनार्दन प्रारम्भ हुआ, तभीसे भरतजीको अपाङ्गन होने लगे । वे रातको भयङ्कर स्वप्न देखते थे और आचनेर [उन स्वप्नोंके कारण] करोड़ों (अनेकों) तरद्वी बुरी-बुरी कल्पनाएँ किया करते थे ॥ ३ ॥

मित्र जेवाइ देहिं दिन दास । सिव अभिषेक कहहिं विधि नाग ॥

मागहिं इवैं महेस मनाई । कुसल मास पिय परितष माई ॥ ४ ॥

[अनिष्टान्तिके स्थले] वे प्रतिदिन जाहाणोंके सोझ फराकर दास होते थे । अनेकों विधियोंके द्वाभिमेष करते-थे । महादेवजीको हृदयमें मन्त्रकर उबते माता-पिता, कुटुम्बी और भाइयोंका कुशल-बेम गोंगते थे ॥ ४ ॥

गो०—एहिं विधि सोचत भरत मन आका पहुँचे आइ ।

गुर अनुसासन अचन सुनि चले गनेसु मनाइ ॥ १५७ ॥

भरतजी इस प्रकार मन्त्रों किन्ता कर रहे थे कि दूत आ पहुँचे । गुरुजीकी आज्ञा कानोंसे सुनते ही वे गणेशजीको मनाकर चल पड़े ॥ १५७ ॥

चौ०—चले समीर केव हन हीके । नाथत सरित सैक वन बँके ॥

इदयें खेनु वद कहु न सोहाई । अस जानहिं बिबैं जवैं उदरई ॥ १ ॥

हमके समान बेगवाले घोड़ोंको हॉकते हुए वे विकट नदी, पहाड़ तथा जंगलोंको लोंघते हुए चले। उनके हृदयमें बड़ा सोच था; कुछ सुझाव न था। मनमें ऐसा सोचते थे कि उड़कर पहुँच जाऊँ ॥ १ ॥

एक निमेष मग्न सदा जाई। मुहि बिधि मस्त नगर निभराई ॥

असुन होई मगर पैअरा। सटि कुमरिनि कुलेत कराउ ॥ २ ॥

एक-एक निमेष नर्वक समान वीत रहा था। इस प्रकार भरतजी नगरके निकट पहुँचे। नगरमें प्रवेश करते समय अशक्त होने लगे। कौए बुरी जगह बैठकर बुरी तरहसे काँव-काँव कर रहे हैं ॥ २ ॥

पर सिंघार योखई द्यौतकुला। सुनि सुनि होइ भरत मग सूझा ॥

औरत सर सरिता बन धागा। नगद बिसेपि अचक्षु लग्ना ॥ ३ ॥

गहरे और सिंघार विपरीत योंक रहे हैं। यह सुन-सुनकर भरतके मनमें बड़ी पीड़ा हो रही है। राजमग, नदी, बन, कर्णारे सब मोमाईन हो रहे हैं। नगर बहुत ही मयानक लग रहा है ॥ ३ ॥

का मृग हृद मग जाई व जोए। राम वियोग कुरोग भिरोप ॥

भगर गारि नर निपट हुचारी। मनहुँ लखमिह सब संवसि हारी ॥ ४ ॥

भीरामजीके वियोगकी वृत्ति रोगसे सदासे हुए पक्षी-मृग, खोजे-हापी [देखे दुखी हो रहे हैं कि] देखे नहीं सकते। नगरके स्त्री-पुरुष अत्यन्त दुखी हो रहे हैं। मानो सब अपनी सारी सम्पत्ति हार बैठे हों ॥ ४ ॥

दो०—पुरखन मिछरि न कहहि कछु गर्वहि जोहारहि जाई।

भरत कुसल पूछि न सकहि मग विपाद मग माई ॥ १५८ ॥

नगरके छोटा मिछते हैं, पर कुछ कहते नहीं; गाँव (कुपकेसे) जोहार (बगना) करके बहे जाते हैं। भरतजी भी किसीके कुसल नहीं पूछ सकते, क्योंकि उनके मनमें मग और विपाद का रहा है ॥ १५८ ॥

चौ०—हाट कट गई जाइ निहारी। ननु उर रहै विसि कायि बहारी ॥

भयत कुत सुनि, कैअमर्दिनि। हस्पी रथिहुक अछरह चरिनि ॥ १ ॥

आँखों और रास्ते देखे नहीं जाते। मानो नगरमें दर्जे दिशाओंमें दावाझि लगी है। पुनको आते पुनकर लयकुलकी कमलके लिये चौदनीरूपी कैनेनी [यही] उचित हुई ॥ १ ॥

सजि आरती मुखित ठठि जाई। हरेहि सँदि भवन केइ भाई ॥

भरत बुझित पसिअह निहारा। मानहुँ सुदिन बखस बहु मारा ॥ २ ॥

यह जारती लगाकर आनन्दमें भरकर ठठ चौकी और दरवाजेपर ही मिछकर भरत-शुनको महलमें ले आयी। भरतने खरे परिचारको दुखी देखा। मानो कमलोंके बन्को पाल मार मग हो ॥ २ ॥

कैनेई हरपित एहि मॉले। मनहुँ मुखित दय कद किराती ॥

सुतारि ससोच देखि मनु भवै। पूछति नैहर कुसल हनार ॥ ३ ॥

एक कैनेवी ही इस तरह उचित दीखती है मानो मौलवी जंगलमें आग लगाकर आनन्दमें मग रही हो। पुनको खेचम और मनगरे (बहुत उदास) देखकर न पूछने लगी—हनार नैहरमें कुसल ले है ? ॥ ३ ॥

सकल कुसल कहि असं सुनारै। पूछी निच कुत कुसल सकारै ॥

अनु कहँ ताव कहँ सब गाव। कहँ सिंग राम लखन दिव जता ॥ ४ ॥

भरतजीने सब कुशल कह सुनायी । फिर अपने कुलजी कुलधाम पूरी ।
[भरतजीने कहा—] बड़ो मिताजी कहाँ है ? मेरी सब माताएँ कहाँ है ? सीताजी और
मेरे प्यारे माई राम जगज्ज कहाँ है ? ॥ ४ ॥

दो०—सुनि सुत वचन सनेहमय कष्ट नीर भरि नैन ।

भरत श्रवण मन सुख सम पाषिणि छोटी बैन ॥ १५९ ॥

पुत्रके स्नेहमय वचन सुनकर नेत्रोमें जलधारा बह मरकर पाषिणि छोटी भरतके
फानोमें और मनमें सुखके समान धुमनेवाले वचन बोली— ॥ १५९ ॥

चौ०—रात बात भी सखल सँवारी । नै मंषात सहाय विचारी ॥

अधुन कस्त किंचि बीच विचारै । मूरति मुरपति पुर पदु भारै ॥ १ ॥

हे रात ! मैंने सारी बात बना ली थी । बेचारी मरणा सहायक हुई । ॥ विधाताने
बीचमें करा-सा काम बिगाड़ दिया । वह कह कि राधा देखलोऊके पधार गये ॥ १ ॥

सुगत भरतु मर विवस विचार । बहुत सहमेठ करि केहरि काज ॥

रात रात हा रात पुकारी । परे धुमिलक म्याकुल खारी ॥ २ ॥

भरत यह कुलते ही विचारके प्यारे विषय (वैहाल) हो गये । मानो सिंहको
गर्जना सुनकर हाथी सहम गया हो । वे प्लास ! सत ! हा तार ! पुकारते हुए अत्यन्त
व्याकुल होकर जमीनपर पिर पड़े ॥ २ ॥

बल्लभ न वैराग्य धाममें लोहरी । तात न रामहि लौंविदु मोही ॥

बहुरि धीर धरि ठके संजारी । कहु पिदु सरन ॥ महापरी ॥ ३ ॥

[और विवस करने लगे कि] हे रात ! मैं आत्मको [स्वर्गके लिये] चली समय
देख भी न पाता । [हाय !] आप मुझे श्रीरामजीको संग भी नहीं गये । फिर बीरज
परकर वे सम्झकर उठे और गीते—माता ! तिराके मनेअ बारब तो बताओ ॥ १ ॥

धुमि सुत वचन मयति कैकेई । मरु पण्डि जहु साहुर हैई ॥

आविनु तँ सब आपनि करनी । कुटिल कठोर सुनिध मन बरनी ॥ ४ ॥

पुत्रका वचन सुनकर कैकेयी कहने लगी । मानो मर्मस्त्रान्तरो पाठकर (चाहते
बीरकर) उसमें बहर भर रही हो । कुटिल और कठोर कैकेयिने अपनी सब करनी
छुस्तो [आत्मीयता बंधे] प्रसन्न मनसे सुना दी ॥ ४ ॥

दो०—भरतहि बिसरोड पितु मरज सुकत राम वन गौलु ।

हेतु मफनपठ ज्ञानि मिर्बै वकित रहे धरि मौलु ॥ १६० ॥

श्रीरामचन्द्रजीका वन जाना सुनकर भरतजीको भित्तब भरप भूज गया और
हृदयमें उस बारे अनर्थका कारण अपनेको ही जानकर वे मौन होकर साक्षित रह गये
(अर्थात् उनकी बोली बंद हो गयी और वे राज रह गये) ॥ १६० ॥

चौ०—सिखल बिलोकि सुतहि सुखान्वति । मवहुँ जरे पर खेनु कषावति ॥

तात रात नहि लोचै जोगू । सिख सुख जसु कोन्देठ मोए ॥ १ ॥

पुत्रको व्याकुल देखकर कैकेयी सम्मानने लगी । मन्त्रों जलेश नमक लगा रही
हो । [वह बोली—] हे रात ! राजा वीच करने खेप नहीं है । उन्होंने पुत्र और
पथ कनाअ उषका वर्जित योग किया ॥ १ ॥

जीवत सकल जन्म फल पाए । जंत जन्मपति सदन सिवाए ॥

अस जलुमानि लोच परिहरू । सखि सम्मज सब पुर करू ॥ २ ॥

जीवनकालमें ही उन्होंने क्या केनेके सम्पूर्ण ॥ ५ ॥ छिने और जन्तुमें वे इन्द्रलेफको चले गये । ऐसा विचारकर सोच छोड़ दो और समस्तसहित नगरका राज्य करो ॥ २ ॥

मुनि मुनि सहस्रेष्ट राजकुमार । पक्षों छत्र अनु कामा अंगार ॥

धीरज धरि भरि केहि बसासा । पापिनि सबाहि गोंति कुरु मासा ॥ ३ ॥

राजकुमार भरतज्ये यह मुनकर बहुत ही चक्षु बने । मानो पक्षे धनपर अंगार छू गया हो । उन्होंने धीरज धरकर बड़ी लंबी सोंच केने हुए कहा—पापिनी ! तुने सभी तरहसे मुझका नाश कर दिया ॥ ३ ॥

जौं मैं कहूँच रही अति तोही । लवजठ काहे ॥ मारे मोही ॥

पक्ष काटि तैं पालन सोचा । जीव जिजन निशि धरि ठहोका ॥ ४ ॥

हाय ! यदि तेरी ऐसी ही अकन्त डुरी करि (हुष्ट टप्का) थी, तो तूने सम्मते ही मुझे मार क्यों नहीं बाध ? तूने वेहको काटकर पक्षेको सोचा है और मछलीके जीनेके छिने पानीको उल्लिख डाल्य ! (अर्थात् मेरा हित करने बाहर उलझा तुने मेरा अहित कर डाला) ॥ ४ ॥

दो०—हंसवंसु वसन्तु लज्जु राम लज्जत से बाह ।

जननी तैं जननी भाई विधि सन कछु न बसाइ ॥ १६१ ॥

मुझे हंसवंग [-अ वंश], दशरथजी [-सरीखे] पिता और रामलक्ष्मणसे भाई मिले । पर हे जननी ! मुझे जन्म देनेवाली मता तू दुर् ! [क्या किया जाय ?] विधातासे कुछ भी क्या नहीं करता ॥ १६१ ॥

पौ०—नव तैं कुमति कुमत निर्वै उपक । संद संद होइ हृदय न गणक ॥

वर भागवत नव भइ नहि पीरा । गरि न बीह मुहँ परैठ न बीरा ॥ १ ॥

अरी कुमति ! जन तूने हृदयमें यह दुरा विचार (निश्चय) डाला, उसी समय तेरे हृदयके दुकड़े-दुकड़े [क्यों] न हो गये ? वरदान योग्यते समय तेरे मनमें कुछ भी पीका नहीं हुई ! तेरी जीम बल नहीं गयी ! तेरे मुँहमें कड़वे नहीं पड़ गये ? ॥ १ ॥

मूर्ख प्रतीति छोरे किमि कीमती । मरबकाळ विधि मति हरि कीमती ॥

विधिहुँ न नारि हृदय गति जायी । सकल कपट अथ अक्षुध खायी ॥ २ ॥

रामाने ऐसा विचार कैले कर दिया ! [नवन पड़ा है,] विधाताने मरनेके समय उनकी बुद्धि हर की थी । निश्चयके हृदयकी गति (चाल) विधाता भी नहीं जान सके । वह सम्पूर्ण कपट, पाप और अक्षुधोक्सी खान है ॥ २ ॥

सरल सुधांल वसम स रस । सो किमि नाई तीव सुभाक ॥

भरत को बीच चंदु बना मही । बेदि रसुअथ प्राप्तिप्रिय नाही ॥ ३ ॥

फिर राज्य तो सीधे, सुधीर और धर्मरक्षण ये । वे मत्त, ली-समाजको कैसे जानते ? भरे, काटके बीच-जन्तुजोमें देख मौन है जिसे बीरमुनाकजी प्रायोंके समान प्यारे नहीं हैं ॥ ३ ॥

मे अति अहित रामु वेठ तोही । सो दू लक्ष्मि सख बन्धु मोही ॥

को हंसि सी दसि मुहँ मसि लई । धीरि खेट उठि बैरि जाई ॥ ४ ॥

वे श्रीरामजी भी तुने अप्रित हो गये (बैरि छने) ! तू क्यों है ? मुझे सख-सख नद । तू नो है, खे है, लव मुँहमें समझी पेतकर (मुँह खला करके) उठकर मेरी आँखोंकी मोटमें का रेत ॥ ४ ॥

दो०—राम विरोधी हृदय तैं प्रवृत्त कौन विधि मोहि ।

मो समान को पालन नारि कहैं कछु तोहि ॥ १६२ ॥

विधाताने मुझे श्रीरामजीसे विरोध करनेवाले (तू) हृदयसे उत्पन्न किया [अथवा विधाताने मुझे हृदयसे सम्पन्न विरोधी चाहिए कर दिया]। मेरे कपड़ों पर पापी दूसरा क्यों है ? मैं व्यर्थ ही तुझे कुछ कहता हूँ ॥ १६२ ॥

चौ०—मुनि सशुभ्र बभ्रु कुटिलकई। जगहि गात रिस कबु न बसई ॥

देहि अबसर कुबरी तई अई। बसव विमृषव विनिष बगई ॥ १ ॥

माताजी कुटिलका सुनकर शत्रुपक्षीके कम अन्न प्रेषणसे बच रहे हैं, पर कुछ बच नहीं चलता। उसी समय भौंति-भौंतिके कपड़ों और गद्दोंसे सजकर कुबरी (मनपरा) बहो जायी ॥ १ ॥

छात्रि रिस भरेत कलम कबु माई। बरव समल कृत अहृति पाई ॥

बुनगि कल छकि कृषर मार। परि सुह मन मदि करत पुकार ॥ २ ॥

उसे [सखी] देखकर लक्ष्मणके छोटे भाई शत्रुपक्षी श्रेष्ठमें मर गये। मानी जल्दी हुई आगको पीसी आहुति मिश्र गयी हो। उन्होंने जोरसे शक्रर कुवकपर एक क्षत जमा दी। वह चिल्लाती हुई मुँहके कम समीपपर गिर पड़ी ॥ २ ॥

कृषर दूरेत। कृष कपार। रक्षित दसव बुन कषिर प्रवक ॥

आह दहल है काह मरणा। करत बीच कबु अहस पावा ॥ ३ ॥

उसका कृषर दूर गया, कपार फूट गया, दाँव दूट गये और मुँहसे खून बहने लगा। [वह कपारही हुई बोली—] काम देव ! मैं क्या विनाश ? जो भय करते हुए फल पाया ॥ ३ ॥

बुनिरिपुन कलि नवसिख बोटी। कगे पसीठन बरि बरि शोटी ॥

भरत दयानिधि दीगिह छई। कौसल्या रवि मे रोव माई ॥ ४ ॥

सखी वह बात सुनकर और उसे नखसे फिसलत हुए जानकर शत्रुपक्षी शौंटा पकड़-पकड़कर उसे पसीठने लगे। तब दयानिधि भरतजीने उचको झुका दिया और दोनों भाई [दूरत] कौसल्याजीके पास गये ॥ ४ ॥

दो०—मलिन बसव विवरन विकल कृषर शरीर बुन मार।

कनक कलप बर केठि बल मावहुँ हनी तुसार ॥ १६३ ॥

कौसल्याजी मीले कम पड़ने दे, धेरेका रंग बदल हुआ है, व्याकुल हो रही हैं, हुआके बोझसे शरीर खल गया है। ऐसी बीख रही हैं मनी रोनेकी सुन्दर कलकलाको धनमें पला मार गया हो ॥ १६३ ॥

चौ०—भरतहि देखि मातु बटि घई। सुखित अवि परी आई आई ॥

देखत भरतु किमल मए मारी। परे नरव कव दसा विसारी ॥ १ ॥

भरतको देखते ही माता कौसल्याजी उठ दौड़ी। पर नकर आ जानेसे मुचलित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। वह देखते ही भरतजी बड़े व्याकुल हो गये और शरीरकी दुःख झुलकर चरणोंमें गिर पड़े ॥ १ ॥

मातु लल कई देखि देसाई। आई भिर रागु कषलु रोव माई ॥

कैकई काव जगमी अग माझ। जी लवमि व अह काहे न पौसा ॥ २ ॥

[फिर बोले—] माता ! भिताजी कहाँ हैं ? उन्हें दिखा दे। शीतली तथा मेरे दोनों भाई श्रीराम-लक्ष्मण कहाँ हैं ? उन्हें दिखा दे। [कैकीजी जगतोंसे क्यों जगती ! और यदि जगती ही तो फिर क्यों क्यों न हुई !—] ॥ २ ॥

हुल कहेहु मोहि लमसेह मोही । जरजस भावन त्रियजन प्रोही ॥
 को तिसुखन मोहि खरिष खगामी । गति बसि लेरि माहु मोहि लागी ॥ ३ ॥
 सितने कुलके कलक अवलकके सोहि और विवज्जोके प्रोही मुख-जो पुवको
 उत्पन्न किया । तीनों जेठोंमें मेरे सम्मान जगामा फौन है ! जिसके कारण है माता !
 तेरी यह वक्त हुई ! ॥ ३ ॥

मिद सुखपुर सब रघुवर केतु । मैं केवल सब अवसर हेतु ॥
 जिस मोहि भवतें वेनु वन आये । तुसह रुह रुख रूपन भोगी ॥ ४ ॥
 पिताजी स्वयंमें हैं और भीरामजी वनमें हैं । केतुके लगन केवल मैं ही इन सब
 अवसरोंका कारण हूँ । मुझे पिकार है । मैं वौंके वनमें आऊँ उत्पन्न हुआ और कठिन
 राह, दुख और दोषोंका भोगी बना ॥ ४ ॥

बो—मातु भरत के वचन सुहु सुनि पुनि उठी सँवारि ।
 फिर उठार लगाह उर लोचन मोसति वारि ॥ १६४ ॥
 भरतजीके कोलाक स्थान सुनकर महा क्रोधलागी फिर सँमलकर उठी । उन्होंने
 भरतको उठाकर छातीसे लगा लिया और नेकसे ओंखें बहाने लगीं ॥ १६४ ॥
 चौ०—साह सुखन माई धियँ जाय । बसि हित मनहुँ राम फिरि आय ॥
 सँवैत प्युरि लखन कहु भाई । सोहु सँवैत न हरै सगई ॥ १ ॥
 लख स्वभाववाली लखने सबे प्रेम्से भरतजीका छातीसे लगा लिया; मानो
 भीरामजी ही खैरदार था बने हों । फिर लखनजीके छोटे भाई लखनको हृदयसे
 लगाया । सोह और सोह हरकमें सगई नहीं है ॥ १ ॥

ऐहि सुखन कहुत नहु कोई । राम नालु मल बाधे न होई ॥
 भाई मातु गीह बैठारि । नालु पोंते सुहु वचन उचारि ॥ २ ॥
 भीरामजीका समाज देखकर सब कोई कह रहे हैं—भीरामजीका माताका ऐसा
 समाज क्यों न हो ? मताने भरतजीको गोदमें बैठा लिया और उनके ओंखें पोंछकर
 मोलक बंधन तोड़ी— ॥ २ ॥

भगई कलक बलि वीरन करहु । कसमत समुक्ति खोज परिहरहु ॥
 जनि भावहु धियँ क्षति लखनी । काल करन बलि अघटित जायी ॥ ३ ॥
 है मल ! मैं बघैना टेवी हूँ ! तुम अब भी वीरन करो । तुम समय जानकर खोज त्याग
 दो । काल और कर्मकी बलि अमिट जानकर हरदमैं क्षति और यज्ञनि मत मानो ॥ ३ ॥
 समुक्ति दोहु देहु बलि तार । सा मोहि सब विधिवास विधाता ॥
 को एतेहुँ दुख मोदि विधाता । बगई को खानहु का ॥ ४ ॥
 नै गत ! किसीको दोष मत दो । विधाता मुझको सब प्रकारसे उच्छाद हो गया है, जो
 इतने दुःखकर भी मुझे भिन्न रहा है । अब जो कौन जानता है उसे क्या मा रहा है ! ॥ ४ ॥
 बो—मिदु आयस रूपन वसन तात तजे रघुवीर ।
 विसमत हरणु न हदयँ कहु पहिने बलकल चीर ॥ १६५ ॥
 हे जात ! मिताली आनखे भीखुकीरने नृप-नर लग्न दिव्य और वरकल-नर
 पहन लिये । उनके हृदयमें न कुछ निपाद था; न दर्प ॥ १६५ ॥
 चौ०—सुख प्रसन्न सब रंग न रोय । समन सम विधि करि परिलोय ॥
 चले विपिन सुनि सिव सँगलगी । रहह न राम करन नरुपायी ॥ १ ॥
 उनका मुख प्रसन्न था; मनमें न आसक्ति थी, न रोम (द्वेष) । सबका वन लखने

सन्तोष कराकर ये वनकी चले । यह सुनकर सीता भी उनके साथ लग गयी । और उसके चरणोंकी अनुगमिणी ये किसी तरह न रही ॥ १ ॥

सुनतहि छत्रपु चले उठि साया । सहै न जतन किए रघुनाथा ॥

तब रघुपति सबही सिंगे साथ । चले संग सिंगे यह वन माई ॥ २ ॥

सुनते ही लक्ष्मण भी साथ ही उठ चले । श्रीरघुनाथने उन्हें रोकनेके बहुत मन किया, पर वे न रहे । तब श्रीरघुनाथजी सबको सिंगे जवाकर सीता और छोटे भाई लक्ष्मण को साथ लेकर चले गये ॥ २ ॥

रामु कछपु सिंगे कन्हि निवाय । सहै न संग न प्राप्त कराय ॥

यहु सख भ्रम हृदय अस्मिन् जगों । उठ न सख उठु जीव भभागों ॥ ३ ॥

श्रीराम, लक्ष्मण और सीता वनको चले गये । मैं न तो साथ ही गयी और न मैंने अपने माता ही उनके साथ भेजे ! यह जब हन्ती आँखोंके अग्नये दुखा । तो भी अभागे जीवने शरीर नहीं छोड़ा ॥ ३ ॥

सोहि न करि निज वेदु भिहारी । राम सखि सुख मैं नह्यारी ॥

जिहै मरै यह रघुपति जाना । और हृदय सह इच्छिह समाया ॥ ४ ॥

अपने स्नेहकी ओर देखकर मुझे खान भी नहीं आती ; राम-सखीके पुनको मैं माता । सीता और मरना तो राजाने खूब खाना । मेरा हृदय तो कैकयी महोदयमान फटोर है ॥ ४ ॥

दो०—कौसल्या के बचन सुनि भरत सदित रनिवाय ।

व्याकुल विरपत राजपुत्र मानहुँ स्नेह नेवाय ॥ १९६ ॥

कौसल्याजीके बचनोंको सुनकर भरतखदित वारा रनिवास व्याकुल होकर विषय करने लगा । राजभक्त मनो बोधका निवास बन गया ॥ १९६ ॥

सौ०—विहारी निमल भरत रीठ भाई । कौसल्यों किए हृदयें कषाई ॥

असि स्नेह भरत समुदाय । कहि विषमव बचन सुनाय ॥ १ ॥

भरत, शत्रुघ्न दोनों भाई विरक्त होकर विषय करने लगे । अब कौसल्याजीने उनको हृदयसे लगा लिया । अनेकों प्रकारसे भरतजीको समझाया और बहुत-सी विवेकमयी बातें उन्हें कहकर सुनायी ॥ १ ॥

भरतहुँ माहु ककल समुदाय । कहि पुराण सुनि कथा सुनाई ॥

इह विहीन सुनि सरल सुभाषी । सोचे कथ जोरि हृण पायी ॥ २ ॥

भरतजीने भी सब कथाओंको पुराण और केदोंकी सुन्दर कथाएँ कहकर समझाया । दोनों साथ जोड़कर भरतजी छलखदित, धर्म और सीधी सुन्दर वाणी बोले— ॥ २ ॥

ये जब माहु पिता सुन गए । गह गेह अहिभुर पुर गए ॥

ये जब सिंग बाकल बच कीन्हें । सीत गहोपति माहुर कीन्हें ॥ ३ ॥

जो पाप माता-पिता और पुनके भलेसे होते हैं और जो मोक्षत्व और ब्रह्मजीके मार्ग अलगसे होते हैं । जो पाप सी और वाक्यकी दस्ता करनेसे-होते हैं और जो मित्र और राजाको नष्ट देनेसे होते हैं— ॥ ३ ॥

ये पापक उपपन्नक कह्यो । कलमचनभन सब कनि कह्यो ॥

ये पापक सोहि होहु निपाता । जी यहु होइ और सत माता ॥ ४ ॥

कर्म, कवन और मन्ते होनेवाले मित्रने पापक पण उपपन्नक (बड़े-छोटे पाप) हैं, जिनको कवि लोग कहते हैं, वे निपाता । यदि इस कर्ममें तेरा मत हो, तो हे माता । वे सब पाप मुझे लगे ॥ ४ ॥

तो—जे परिहरि हरि हर चरख भजहि भूतमान घोर ।

तेहि कह गति मोहि देत विधि औ लखी यत्न मोर ॥ १६७ ॥

जो लोग भीरि और शीर्षकबिके चरणोंको छोड़कर ममानक भूत-मोनोंको भजते हैं वे माया ! यदि इतने मेधा भव हो तो विनाश मुझे उनकी गति दे ॥ १६७ ॥

औ—बेचहि बेहु बरसु दुहि केहीं । निमुन परब पाव कहे देहीं ॥

करी कुटिल कइमिन ज्योषी । जेद निवृत्त निह विरोधी ॥ १ ॥

जो लोग बेचोचो बेचते हैं, चर्को हार खेते हैं, युगुलखोर हैं, दूसरोंके पापोंको कह देते हैं; जो कट्टी, कुटिल, कइमिन और ज्योषी हैं तथा जो बेचोचो निम्ना करनेवाले और निवृत्तके विरोधी हैं ॥ १ ॥

ज्योषी छंफत लोभुपकरा । जे लखहि परबहु बरवारा ॥

कपि में सिंह के गति मोर । औ बचौ यहु संगत मोर ॥ २ ॥

जो लोभो, लज्ज और लोभियोंका आचरण करनेवाले हैं; जो परादे धन और पराधी जोषी ताकते रहते हैं; वे ज्योषी ! यदि इस कार्यमें मेरी सम्मति हो तो मैं उनकी ममानक गतिक्षा फलें ॥ २ ॥

के गई साधुसंग बसुगो । परमात्मा दय विमुक्त समझे ॥

के न भयोई हरि कर लख पाई । भिन्दि न हरि हर दुग्गु सोदाई ॥ ३ ॥

जिनका सत्संगमें प्रेम नहीं है; जो अभावे परमार्थके प्राप्ति विमुक्त हैं; जो मनुष्य-शरीर पाकर भीरिज ममान नहीं करते; जिनको हरि-कर (परमात्मा विष्णु और संवत्सी) का दुरूप नहीं छुआछा ॥ ३ ॥

जनि मुनि पंथु बस पथ पछहीं । बंधक निरति वेप जनु छटहीं ॥

सिंह है गति मोहि संकर देक । ज्योषी औ यहु वाली भेक ॥ ४ ॥

जो वेदमार्गको छोड़कर माय (वेदप्रतिद्वन्द्व) मार्गपर चलते हैं; जो ठग हैं और वेप बनाकर बगहनी कहते हैं; वे माया ! यदि मैं इस भेदको जानता भी होता तो संवत्सी मुझे उन लोभोचो गति दें ॥ ४ ॥

तो—यातु मरत के वचन छुनि सखि सरल सुभायें ।

कइति राम प्रिय तात तुम्ह सदा वचन मत कायें ॥ १६८ ॥

माता लौकिकानी मरतकी स्ताभविष ही वचने और सरल वचनोंको हुनकर कइने मत—हे तात ! इससे मरत, वचन और खरीखे कदा ही श्रीरामचन्द्रके प्यारे हो ॥ १६८ ॥

औ—राम प्रियु में जान सुझाने । दुग्ग सुपतिहि प्रबन्धु में प्यारे ॥

विषु विष ज्यौ ज्यौ हिम ज्योषी । होइ करिफ करि विरानी ॥ १ ॥

भीराम दुग्गने ज्योषी में बहकर प्रिय (प्रिय) हैं और दुग्ग में भीरघुनायको प्राप्ति में अधिक प्यारे हो । जन्मज्य प्यारे विष दुग्गाने लगे और पावक व्याप करवाने लगे; लोभकर लोभ लगे निरल हो जाय, ॥ १ ॥

कौं मनुष्य कस मिटे न भेट । दुग्ग राखि प्रीति न होइ ॥

मन दुग्गार यहु औ बय ज्योषी । जो उपजेहुं मुक्त मुक्ति न कहहीं ॥ २ ॥

और मन हो ज्योषी में ज्योषी न भेटे; पर हम भीरामचन्द्रके प्रीति न करी नहीं हो सकते । इन्हे दुग्गारी सम्मति है; काव्यों जो कोई देख सकते हैं वे लज्जों में कुछ और दुग्ग गति नहीं कइने ॥ २ ॥

अस कहि गहतु गस्तु हियँ लाग्य । थप पय स्वर्द्धि नयन'कळ छाए ॥

करत विलास बहुत दुहि भौली । बैठहि नीजि गई सब गली ॥ ३ ॥

ऐसा कहकर माता झोकरवाने भरतनीको हृदयसे लज लिया । उनके खानेसे दूध बहने लगा और नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुमौला] अल छा गया । इस प्रकार बहुत विलास करते हुए रात्री रात बैठे-ही-बैठे बीत गयी ॥ ३-॥

बामदेव स्तित्त सब आए । सचिव महाजन सकळ बोलाए ॥

मुनि बहुत भौंति चरत उपदेशे । कहि परमारथ नयन सुदेसे ॥ ४ ॥

तब बामदेवजी और वशिष्ठजी गये । उन्होंने सब मन्त्रियों उपा महाननोंको बुलाया । फिर मुनि वशिष्ठजीने परमारथके सुन्दर उपबानुक्क नयन कहकर बहुत प्रकारसे भरतनीको उपदेश दिया ॥ ४ ॥

पो०—सात हृदयँ धीरजु घरहु करहु जो मखसर भाजु ।

उठे भरत गुर बजम मुनि करत कहैत सतु साजु ॥ १६९ ॥

[वशिष्ठजीने कहा—] हे राज ! हृदयमें धीरज करो और आज किछ कार्यके करनेका अवसर है, उठे करो । शुम्भजीके बचन सुनकर भरतजी उठे और उन्होंने सब तैयारी करनेके लिये कहा ॥ १६९ ॥

बी०—सुप सतु वेध विविध अन्धकार । रस विविध विमानु वक्रता ॥

गहि पद भरत जगु सब राखी । त्यों रति वरदाय अमिकापी ॥ १ ॥

वेधोमे बलापी हुई विभिन्ने राजाजी देहको सज्ज करवा गया और परम विविध विमान बनावा गया । भरतजीने सब माताओंको करण एकत्रकर रक्सा (अर्थात् प्रार्थना करते उनको ली होनेसे रोक लिया) । वे पानियों भी [ओपामे] दर्शनभी अमिकावासे ख गयी ॥ १ ॥

अंधकार जग जग बहु आए । समित भौक सुगंध सुदाए ॥

सरल हीर रति पिता बगई । जतु सुखर सोदाय सुदाई ॥ २ ॥

बन्धन और अन्धकारके तथा और भी अनेकों प्रकारके अपार [कपूर, गुग्गुलु, फेरा आदि] द्रुगन्ध-द्रव्योंके बहुत-से मोल आये । सरजूजीके सठपर सुन्दर पिता रचकर बनायी गयी, [जो ऐसी माहम होली थी] मनो खर्गधी सुन्दर खीरी हो ॥ २ ॥

दुहि विधि दाह क्रिडासक कीन्ही । विधिगत न्दाह सिद्धांतुधि हीन्ही ॥

सीपि सुखसि सब वेद पुसता । कोन्ह भरत वसन्त विषाता ॥ ३ ॥

इस प्रकार सब दाहक्रिडा की गयी और लवने विधिपूर्वक खान करके सिद्धांतुधि थी । फिर वेद, स्मृति और पुराण सबका अर्थ निम्नच करके उसके अनुषार भरतजीने पिताका दशमान विधान (दस दिनोंके कृत्य) किया ॥ ३ ॥

आई अल मुनिवर जगजु दीन्हा । त्यों उस सखस मौंति सतु कोन्हा ॥

भाए बिजुद दिष्ट सब दाया । वेतु बाणि गव बाहन नाग ॥ ४ ॥

मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजीने ज्यों जैसी आज्ञा दी, वहाँ भरतजीने सब वैशा ही हजारों प्रकारसे किया । शुद्ध हो गयेअ [विधिपूर्वक] उन दान दिने ! गौए तथा घोड़े, हाथी आदि अनेक प्रकारकी लमारियाँ ॥ ४ ॥

पो०—सिधासन भूषव बसन अथ घरवि घन धाम ।

दिप भरत कहि भूमिपुर मे परिपूरज करम ॥ १७० ॥

सिदासन, गह्वरे, फाड़े, जल, पृष्ठी, वन और मकान भरतजीने दिये, कूदेन

महाग दान पाकर परिपूर्ण हो गये (अर्थात् उनकी सारी मनोकामनाएँ अच्छी तरह से पूरी हो गयी) ॥ १३० ॥

श्री०—विशुद्धि भक्त श्रीनिह सखि करणी । सो मुखं सख्य जगद नहि बरनी ॥

सुनिनु सोधि सुनिधर तव जगत् । सखि महाजन सकल बोधाय ॥ १ ॥

पिताजीके विषे मन्तजीने सैती करनी की बहू बाबों दुखोंसे भाँ दपन नहीं की जा सकती । तब शुभ दिन चाँकन अथ नुनि बगैडजी आगे और उम्हने मन्त्रियों तथा सब महाजनोको बुझाव ॥ १ ॥

बैठे राक्षसभी सब जाहँ । बहू बोधि भरत डोढ भाई ॥

भगवु बसिए भिऊत बैठारे । नीति परममव वधन ड्यारे ॥ २ ॥

सब लोग राक्षसोंने आकर बैठ गये । तब नुनिने मन्तजी तथा दशरुजजी दोनों भाइयोंको बुझा नेत्र । मन्तजीको बगैडजीने अपने पास बैठा किया और नीति तथा धर्मसे भरे हुए वचन कहे ॥ २ ॥

प्रथम कथा सब सुनिब बरनी । कैरु दुष्टि कीमिह सखि करनी ॥

भूप परमप्रभु सख्य सगङ्गा । नेहि कपु परिहरि प्रेमु निवाहा ॥ ३ ॥

पहले तो कैरुजीने डैखे दुष्टि करनी की थी, भेड नुनिने क सापी कथा कही । फिर राजाके धर्मगत और वषडो नपुनाखें, जिन्होंने भरोर त्याग करधर्मको निवाहा ॥ ३ ॥

कहत राम गुण सीह सुभाक । सखक लख पुलकैड सुनिराक ॥

बहुरि कृष्ण सिध प्रीति वन्याम । लोक सबेह मयन सुनि ग्यानी ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके गुणः सीह और त्यागवान् दर्शन करते-करते हो सुनिराक नेत्रोंमें लज भर आया और वे क्षीरसे पुलकित हो गये । फिर कृष्णजी और सीताजीके प्रेमी बहुरि करते हुए अपनी सुनि शोक और स्नेहने मन हो गये ॥ ४ ॥

श्री०—सुनहु भरत भाषी प्रबल विदलि कहेड सुनिनाथ ।

हानि छामु जीवसु मरसु जसु अपजसु विधि हाथ ॥ १३१ ॥

सुनिनाथने विदलकर (दुखी होकर) कहा—हे भरत । सुनो, भाषी (होनहार) वही बलवान् है । हानि-हानि, जीवन-मरण और सब-अपसब ये सब विधाताके हाथ हैं ॥ १३१ ॥

श्री०—भक्त विशदरे कहुँ देहज शीसु । ब्यस्य बाहि, पर कीर्तिभ रोसु ॥

हाल बिचार करहु मन भाई । सोच सोसु दसरु सु सु नहीं ॥ १ ॥

देख विचारकर छिटे दोष दिना क्षय ? और व्यर्थ किठन कोष किया जाय ? हे हाल ! नमने दिखत नरो । राज दसरस सोच करनेके योग्य नहीं है ॥ १ ॥

सोचिअ विप्र जो वेद बिहीन । तवि निज भरसु विषय लपटीन ॥

सोचिअ नुनि जो नीति न चाख । नेहि न प्रया छिय प्राण समाना ॥ २ ॥

सोच उस प्रसन्नपन्न करन चाहिये जो वेद नहीं जानता, और जो अपना धर्म छोड़कर विषय-भोगमें हो डीन रहता है । उस राजसख सोच करना चाहिये जो नीति नहीं जानता और जिसको मृत्यु, मरणोके समान प्यारी नहीं है ॥ २ ॥

सोचिअ दसु सुपन बनवान । जो न अविधि सिन सखति मुनान ॥

सोचिअ सहु चिन्त ^{अवमानी} सुकर मामयिष ब्यव गुमानी ॥ ३ ॥

उस वैराग्य सोच करना चाहिये जो वदवान् होकर भी कर्मसु है, और जो क्षतिभिलकर तथा सिन्धीकी मरिच करनेमें कुजब नहीं है । उस ब्रह्मज्ञा सोच करना चाहिये

को ब्राह्मणोंका अपमान करनेवाला, बहुत बोलनेवाला, मान-वर्षाई चाहनेवाला और ज्ञानका प्रसङ्ग रखनेवाला है ॥ १ ॥

सोचिब पुनि पति बंधक नारी । कुटिल कलहप्रिय हृच्छाधारी ॥
सोचिब बहू निच बहू परिहर्य । जो बहिं गुर व्यम्सु बसुसरई ॥ ४ ॥

पुनः उस स्त्रीका सोच करना चाहिये जो पतिको छलनेवाली, कुटिल, कलहप्रिय और स्वेच्छाचारिणी है । उस मल्लकारीका सोच करना चाहिये जो अपने ब्रह्मचर्य-व्रतको छोड़ देता है और गुरुकी आज्ञाके अनुसर नहीं करता ॥ ५ ॥

श्री०—सोचिब गृही को मोह वस करइ करम पथ त्याग ।

सोचिब सेती प्रपंच रत विगत धिवेक विराग ॥ १७२ ॥

उत परस्वका सोच करना चाहिये जो मोहवश कर्ममार्ग त्याग कर देता है; उस संन्यासीका सोच करना चाहिये जो दुनियाके प्रसङ्गमें पँसा हुआ है और ज्ञान-वैराग्यसे हीन है ॥ १७२ ॥

श्री०—येनानल सोह सोचै योग । एतु विहाइ जेहि भावइ भोग ॥

सोचिब विभुन भरपल ओघो । जगनि जन्म गुर संतु विरोधो ॥ १ ॥

मानप्रद नहीं सोच करने योग्य है जिससे जगत्ता छोड़कर भोग अच्छे लगते हैं । सोच उसका करना चाहिये जो सुगलखोर है, बिना ही कारण शोध करनेवाला है तथा भला, पिता, गुरु एवं माई-पशुओंके साथ विरोध रखनेवाला है ॥ २ ॥

सब बिधि सोचिब पर अनकारी । निम तनु पोचक निरुप भारी ॥

सोचनीय सखी विधि सोई । जो न छवि छलु हरि न होई ॥ २ ॥

सब प्रकारसे उसका सोच करना चाहिये जो दूसरोंका भविष्य करता है, अपने ही शरीरका पोषण करता है और बड़ा भारी निर्दयी है । और वह जो कभी प्रकारसे सोच करने योग्य है जो छल छोड़कर हरिभक्त भक्त नहीं होता ॥ २ ॥

सोचनीय नहिं कोसलराज । भुवन पालिस भणत प्रभाक ॥

भयन न अहं न लज होविदगत । रूप भरत कस पिता तुम्हारा ॥ १ ॥

कोसलराज दशरथजी सोच करने योग्य नहीं हैं, बिनका प्रथाप चौदहो लोकमें प्रकट है । हे भरत ! तुमको पिता-वैद्य राजा तो न हुआ, न है और न अब होनेका ही है ॥ २ ॥

विधि हरि हरि सुपति विनिमया । बरबहिं सब दसरथ गुन गाथा ॥ ४ ॥

प्रसा, विष्णु, शिव, इन्द्र और दिक्पाल सभी दशरथजीके गुणोंकी कथाएँ कहाँ करते हैं ॥ ४ ॥

श्री०—कहहु तात केहि माँति कोइ करिहु वर्याँ तासु ।

राम लक्षण तुम्ह सत्रुहम सरिस सुभिन सुचि जासु ॥ १७३ ॥

हे तात ! कहो : उनकी बड़ाई कोई किस प्रकार करेगा जिसके श्रीराम, लक्ष्मण, हनुम और वायुप्रभृति केवल पुत्र हैं ! ॥ १७३ ॥

श्री०—सब प्रकार सुचि कह्यो नारी । कहि निपाहु करिब केहि कारी ॥

बह सुनि सुसुनि सोलु करिहव । शिर परि राज रजससु जह ॥ १ ॥

राजा सब प्रकारसे बढ़ावाती थे । उनके लिये विवाद करना व्यर्थ है । वह

और समझकर सोच त्याग दो और राजाकी आज्ञा लिख कटाकर तबतुसार करो ॥ २ ॥

रायें राजपटु तब कह्यो दीक्षा । निम वचसु पुर बाहिब कीन्हा ॥

छने पसु केहि वचनके कभी । एतु पछिरेन राम विरहाम ॥ २ ॥

रामने रावन्द्र पुत्रने दिवा है । तिसका वचन तुम्हें सत्य करना चाहिये; जिन्होंने वचनके लिये ही श्रीरामचन्द्रजीको त्याग दिया और रामचन्द्रजी की ज़िम्मे अपने शरीरकी आहुति दे दी ॥ २ ॥

भृशहि वचन प्रिय कहि प्रिय प्रजा । कष्टु वात पितु वचन प्रजाना ॥
 काहु सौम धरि रूप त्याहै । इदुगुन्हकहैं सय भौति नहाई ॥ ३ ॥
 राजाको वचन प्रिय ये, प्रायः प्रिय नहीं थे । इसलिये देवात । तिसके वचनोंको प्रमाण (सत्य) करते । रामाजी काग तिर चढ़ाकर पावन कपो; इसमें तुम्हारी लज तब भलाई है ॥ ३ ॥
 परशुराम मितु अम्हा राखी । गारी मावु जेक सब लाजो ॥
 सव्य जगतिहि ज्यैसु दुष्ट । पितु अम्हो स्या जनसु न भयक ॥ ४ ॥
 परशुरामजीने तिसको आश्व रक्षी; और जगत्को नर अश्व; सब लोक वातके प्राधी हैं । राजा यथातिके पुत्रने तिसको अपनी जानो दे दी । तिसकी आश्व पालन करनेसे उन्हें नर और भयन नहीं हुआ ॥ ४ ॥

दो०—अनुचित उचित विचार तबि ने पालहि पितु वैम ।
 ते भाजव सुख सुखस के बसहि ममरपति ऐन ॥ १७४ ॥
 जो अनुचित और उचितका विचार छोड़कर तिसके दुश्नोंका पालन करते हैं, वे [यों] सुख और दुःखके प्राय होकर अन्तमें शम्भुपुरी (स्वर्ग)में निवास करते हैं ॥ १७४ ॥
 चौ०—अवसि नैक वचन पुर करहु । पावतु प्रजा सौकु परिहरहु ॥
 दुष्टर वृत्त पावहि परितोष । दुष्ट कहुं सुकृत सुगुह नहि दोष ॥ १ ॥
 राजाका वचन नैक सत्य करो । शोक त्याग दो और प्रवादा पालन करो । ऐसा करनेसे स्वर्गमें राधा वन्देव नर्तके और पुत्रको पुष्प और सुन्दर वध मिलेगा, दोष नहीं छोगेगा ॥ १ ॥
 वेद विहित संमत समही क । जेहि पितु देह सो पावइ दीका ॥
 मातु गह परिहरहु गळगी । मानहु सोर वचन हिउ सारी ॥ २ ॥
 यह वेदमें प्रसिद्ध है और [स्मृति-पुराणादि] सभी शास्त्रोंके द्वारा सम्मत है कि तिस जितको वे वही रामचन्द्र पात्र है । इसलिये पुत्र उन्म करो, यानिका त्याग कर दो । मेरे वचनको हित समझकर मानो ॥ २ ॥

सुनि सुख लख राम भैरही । अनुचित कहव न पणित केही ॥
 कौतल्यादि सबल महतारी । तेव प्रजा सुख होहि मुक्तारी ॥ ३ ॥
 इस बातको सुनकर श्रीरामचन्द्रजी और कान्तजीभी सुख पावेंगे और कोई पणित इष्ट अनुचित नहीं करेगा । कौतल्यादी आदि तुम्हारी लज नवायेंगी प्रत्येकके सुखसे सुखी होगी ॥ ३ ॥
 परम सुन्दर राम क्य चाहिहि । सो सब विधि तुम्ह सय महु मानहि ॥ ४ ॥
 सौपहु उठु सम के कहै । सेवा करहु सनेह सुहावै ॥ ४ ॥
 जो तुम्हारे और श्रीरामचन्द्रजीके अष्ट सम्बन्धकी ध्यान लेगा, वह सभी प्रकारसे तुम्हारे भक्त मानेगा । श्रीरामचन्द्रजीके लौट जानेपर रावन् उन्हें सौंप देगा और सुन्दर सेवते उनकी सेवा करेगा ॥ ४ ॥

दो०—कोविध गुर वापसु अवसि कहहि सचिव कर जेरि ।
 रघुपति अवै उचित जस तस तव करव बहोरि ॥ १७५ ॥
 नन्ही हाथ जोड़कर कह रहे हैं—गुरुजी की आज्ञा अवश्य ही पालन कीजिये । श्रीरामचन्द्रजीके लौट जानेपर वीण उचित हो, वह फिर वैया की भीजियेगा ॥ १७५ ॥

चौ०—कौसल्या धरि धौल कहई । पूत पध ॥ आपसु भइई ॥

सो आदरिब करिब हित मानी । तखिब विषादु कल गति जानी ॥ १ ॥

कौसल्याजी भी वीरव धरकर कह रही हैं—हे पुत्र । गुरुजीकी आज्ञा पथ्यरूप है । उसका आदर करना चाहिये और हित मानकर उसका पालन करना चाहिये । कल-की गतिको जानकर विषादका त्याग कर देना चाहिये ॥ १ ॥

रत रघुपति सुखपति बनवाहु । तुम्ह एहि सीति सब कदराहु ॥

परिजन प्रजा सखिब सब संवा । तुम्हही सुत सब कहें अवलंबा ॥ २ ॥

वीरघुनायजी कर्मों हैं, महापुत्र सर्वका रक्षण करने वाले होंगे । और हे दात ! हम उस प्रकार कातर हो रहे हो । हे पुत्र । कुटुम्ब, प्रजा, मन्त्री और सब माताओंके—उपके एक तुम ही सहारे हो ॥ २ ॥

लखि विधि नाम काहु कठिनाई । वीरसु घरहु मरु बलि जाई ॥

खिर धरि गुर आपसु मनुसहु । प्रजा कलि परितन दुख हरहु ॥ ३ ॥

विधावाको प्रतिकूल और कालको कठोर देखकर धीरव धरो, माता तुम्हारी बलिदारी जाती है । गुरुकी आज्ञाको खिर बढ़ाकर उसीके अनुवार कार्य करो और प्रजाका पालन कर कुटुम्बियोंका दुःख हरो ॥ ३ ॥

गुर के वचन सखिब धर्मिबंदसु । सुने भरत हिय हित बहु बंदसु ॥

सुनी बहोरि जसु सुनु मानी । सील समेह सख सब सायी ॥ ४ ॥

भरतजीने गुरुके वचनों और मन्त्रियोंके अभिनन्दन (अनुमोदन) को सुना; वो उनके हृदयके लिये मनो चन्दनके समान [सीतल] थे । फिर उन्होंने सील, समेह और छायाके समान सभी दुई माता कोसल्याकी कोमल बाणी सुनी ॥ ४ ॥

छ०—सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरतु म्याकुल भय ।

लोचन सरोवरु सबत सीधत चिरह उर भंडुर भय ॥

सो दसा देखत समय तेहि विसरी सबहि सुधि वेद की ।

मुलसी सराहत सकल सादर सीधें सबज समेह की ॥

सरलताकेरसमें सभी दुई माताकी बानी सुनकर भरतजी व्याकुल हो गये । उनके तेरह कमल जल (आँसु) बढ़ाकर हृदयके विरहलसीनवीन भंडुरको सींचने लगे । (तेरोके आँसुओं-ने उनके विषाद-दुःखाको बहुत ही बढ़ाकर उन्हें अत्यन्त व्याकुल कर दिया) । उनके वह दसा देखकर उस समय सबको अपने शरीरकी सुध भूल गयी । तुलसीदासजी कहते हैं—सामाधिक प्रेमकी सीमा भीमभक्तजीकी सब जोग आदरपूर्वक सज्जना करने लगे ।

चौ०—भरतु कमल कर जोरि धीर घुरंधर धीर धरि ।

वचन धर्मिबैं जसु जोरि देत उचित उत्तर सपदि ॥ १७६ ॥

धैर्यकी धुरीको धारण करनेवाले भरतजी धीरव धरकर, कमलके समान हाथोंको मोड़कर, वचनोंको मानो अभूतों बढ़ाकर सबको उचित उत्तर देने लगे—॥ १७६ ॥

मासपारावण, अठमहर्षी विषाय

चौ०—सोहि उपदेहु दीन्ह गुर कीका । प्रजा सखिब संमत सबही क ॥

मातु उचित धरि आपसु दीगह । अवधि सीध धरि पाहउँ कोइहा ॥ १ ॥

गुरुजीने मुझे सुन्दर उपदेश दिया । [फिर] प्रजा, मन्त्री आदि सभीको वही सम्मत है । मानने भी उचित समझकर ही आज्ञा दी है और मैं भी अवश्य उसको खिर बढ़ाकर देना ही करना चाहता हूँ ॥ १ ॥

गुर पितु मातु स्वाभि द्वित जानी । सुनि मन मुदित करिअ भलि कानी ॥

वचिति कि अनुचित किए बिचार । करु चाह सिर पावक भार ॥ २ ॥

[कौंक] गुरु, पिता, माता, स्वामी और मुहूर्त (भित्र) की वाणी सुनकर प्रसन्न मनसे उसे अच्छी समझकर करना (मानना) चाहिये । उचित-अनुचितका विचार करनेसे धर्म जाता है और सिरपर पापका भार बढ़ता है ॥ २ ॥

तुम्ह तो देखु सरल सिध सोई । जो व्यक्त मोर गल होई ॥

नक्षत्रि यह समुद्रात हने नीके । उदधि होत पतितोषु व जी के ॥ ३ ॥

साध तो मुझे यही सरल शिक्षा दे रहे हैं, जिसके आचरण करनेमें मेरा भला हो । — यद्यपि मैं इस बातको मयीमोक्षि सम्मता हूँ, तथापि मेरे हृदयको सन्तोष नहीं होता ॥ ३ ॥

अथ तुम्ह चिन्त मोरि सुनि कैह । मोहि अनुदरत सिखावतु देह ॥

कतव वेडें समथ सपरध । धुलित ओष गुन बनहि न साध ॥ ४ ॥

अब आपलोग मेरी विनती सुन लीजिये, और मेरी योग्यताके अनुसार मुझे शिक्षा दीजिये । मैं उत्तर दे रहा हूँ, यह अपराध क्षमा कीजिये । साधु पुरुष-दुष्टी मनुष्यके दोष-गुणोंको नहीं मिनते ॥ ४ ॥

दो०—पितु सुरपुर सिध रामु बन करव कहहु मोहि राहु ।

पदि तें जानहु मोर हित कै अपन वद काहु ॥ १७७ ॥

जिज्ञासु स्वर्गमें हैं, श्रीगीतासक्तों वनमें हैं और मुझे आप राज्य करनेके लिये कह रहे हैं । इसमें आप मेरा कल्याण समझते हैं या अपना कोई बड़ा काम [होनेकी भाशा रखते हैं] ? ॥ १७७ ॥

चौ०—हिंस हमार सिधपति सेवकाई । सो हरि कीन्ह माहु कुटिखाई ॥

मैं अनुमानि दीख मन माहीं । आप उपार्थ मोर हित ताहीं ॥ १ ॥

मेरा कल्याण तो सीतापति श्रीरामजीकी चाफरीमें है, सो उसे माताकी कुटिलताने छीन लिया । मैंने अपने मनमें अनुमान करके देख लिया है कि वृत्ते किसी उपायसे मेरा कल्याण नहीं है ॥ १ ॥

लोक समाहु राहु केहि कैस । लखन राम सिध बिनु पद वैस ॥

बादि नसन बिनु सूख भाक । कोदि बिसि बिनु प्रथमिनाक ॥ २ ॥

यह शोकका समुदाय राज्य लक्षण, श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीके चरणोंको देखे बिना किन गिनतीमें है (इसका क्या मूल्य है) ? जैसे कपड़ोंके बिना गहनोंका बोझ व्यर्थ है । बैराग्यके बिना नष्टविचार व्यर्थ है ॥ २ ॥

सख सरीर कादि वहु योग्य । बिनु हरि भक्ति खावै अप योग ॥

कार्य बीव बिनु देह सुखम् । बादि मोर सजु बिनु राहुराई ॥ ३ ॥

रोगी शरीरके लिये नाना प्रकारके योग व्यर्थ हैं । श्रीहरिजी मलिके बिना अप और योग व्यर्थ है । जीवनके बिना सुन्दर देह व्यर्थ है । जैसे ही श्रीगुणरायजीके बिना मेरा सब कुछ व्यर्थ है ॥ ३ ॥

साव राम, कहि आपसु देह । एकाहि लोक मोर हित पद ॥

मोहि रूप करि मक अपन जह । सोन सनेह कदा वस कहहु ॥ ४ ॥

मुझे आका दीजिये, मैं श्रीरामजीके पास गऊँ ! एक ही लोक (निश्चयपूर्वक) मेरा हित इन्हीं है । और मुझे राज बनाकर आप अपना मज्जा खाते हैं; यह भी आप स्नेही गड़वा (मोह) के बम होकर ही कह रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—कैकेई सुख कुटिलमति राम विमुख गलज्वल ।

तुम्ह चाहत सुख मोहवस मोहि से अघम कैं राज ॥ १७८ ॥

कैकेयीके पुत्र, कुटिलबुद्धि, रामविमुख और निर्लज्ज मुख-से अधमके राज्यसे आप मोहके पग होकर ही सुख चाहते हैं ॥ १७८ ॥

चौ०—कहवैं साँधु सब सुनि पठिबहु । चाहिय परमसील जगनाहू ॥

मोहि राहु एहि देइरहु जगदी । रहा रसखल कहहि खगदी ॥ १ ॥

मैं सत्य कहता हूँ, आप सब सुनकर विस्मय करें, धर्मशीलसे ही राजा होना चाहिये । आप मुझे दूध करके ज्यों ही राज्य देंगे त्यों ही पृथ्वी जगतको बँस जायगी ॥ १ ॥

मोहि सम्मान को पाप दिवाम् । बेहि जगि सीग राम जनकाम् ॥

रामें राम कहूँ कबहु दोन्हा । विद्वरत समनु जगन्पुर कीन्हा ॥ २ ॥

मेरे समान पापेच्छ पर कौन होगा, जिसके कारण सीताजी और भीरामजीका जनवास हुआ ! रामाने भीरामजीको कन दिया, और उनके विद्वद्वते ही स्वयं स्वयंको गमन किया ॥ २ ॥

मैं सब सत्य अनर्थ कर देहू । पैत वस सब सुनवैं सचेहू ॥

विनु राखीर चिह्नोकि, जगाम् । रहे प्राग सहि जग उपहासू ॥ ३ ॥

और मैं वृद्ध, जो सारे अनर्थोंका कारण हूँ, होस-रुनासमे पैत सब बातें सुन रहा हूँ । श्री-रामनाथजीविरहित घरको देखकर और जगत्का उपहास सहकर भी ये प्राण बने हुए हैं ॥ ३ ॥

राम दुगीत विषय त्त कले । छोछुर भूमि भोग के भूखे ॥

कहैं जगि कहीं कृष्ण कठिमाई । बिदरि कुछिमु मेहि खही बजाई ॥ ४ ॥

[इसका यही कारण है कि वे प्राण] श्रीरामजी पवित्र विषय-रसमे आसक्त नहीं हैं । वे जलजी भूमि और भोगोंके ही भूखे हैं । मैं अपने छुटपटी कठोरेटा कहाँतक कहूँ ! जिसने ब्रजका भी तिरस्कार करके यहाँ पायी है ॥ ४ ॥

दो०—कारण सैं कारणु कठिन होइ दोहू तहि मोर ।

कुछिस मसिह तैं उपल तैं सोह कराल कठोर ॥ १७९ ॥

कारणसे कार्य कठिन होता ही है, इससे मोर बोर नहीं । इसीसे ब्रज और पञ्चरसे कोहा भवानक और कठोर होता है ॥ १७९ ॥

चौ०—कैकेई भव तनु अक्षुण्णी । पावैं प्राग जगह अभागो ॥

जी मिय बिरहें प्राग मिय लागै । देखव सुख बहुत अव भागै ॥ १ ॥

कैकेयीसे उद्वेग देखते प्रेम करनेवाले वे प्यार प्राण भरेपेट (पूरी तरहसे) अभागो हैं । जब प्रियके विषयमें भी मुझे प्राण मिय लग रहे हैं तब अभी आगे मैं और भी बहुत कुछ देखूँ-सुनूँगा ॥ १ ॥

कलम राम सिध कहूँ नल दीन्हा । पठह जगन्पुर पति दित कीन्हा ॥

कीन्ह विषयपथ अक्षय्यु गपू । दीन्होत प्रजदि छोड़ संतापू ॥ २ ॥

कल्याण, श्रीरामजी और सीताजीको जो कन दिया, स्वयं भेजकर वसिष्ठा कल्याण किया; स्वयं विषयपथ और अक्षय्य लिया; प्रजको खोत और संताप दिया ॥ २ ॥

मोहि दीन्ह सुख सुखसु सुखान् । कीन्ह कैई सब कर कय ॥

एहि तैं मोर कहव जव नीन्हा । तेहि पर होव कहहु सुह टीका ॥ ३ ॥

और मुझे सुख, सुन्दर यश और उत्तम राज्य दिया ! कैकेयीने सबको काम बना दिया । इससे अच्छा अब मेरे लिये और क्या होगा ! उसपर भी आपकीया मुझे राख-सिक्क देनेको कहते हैं ॥ ३ ॥

कैहू छठ बगमि छा गहीं । नह मोहि कई कहु अनुचित नहीं ॥
 मोरि सब सच बिधिहि ब्याहै । जस पाँच कत करहु सहई ॥ १ ॥
 कैलीके पैठे जगत्में जस डेहर यह मेरे लिये कुल भी अनुचित नहीं है । मेरी
 सब बात तो विधातने ही बना दी है । [फिर] उसमें प्रवा और पंच (आप लोग)
 क्यों सहायता कर रहे हैं ? ॥ ४ ॥

दो०—ग्रह ग्रहीत पुनि वात वस तेहि पुनि वीली भर ।

तेहि पियाइय काली कहु काह उपचार ॥ १८० ॥

जिसे कुहर छो हो [कबवा जो विश्रच्छा हो], फिर जो वायुरोगसे पीड़ित
 हो, और उसीको फिर बिन्धू बंध मार दे, उसको यदि मंदिरा पिबनी जब, तो कहिये
 यह जेल प्लान है । ॥ १८० ॥

चौ०—कैहू सुख जोनु जन कोई । चतुर बिधि दीन्ह मोहि सोई ॥

वृत्तरव तव्य राम कहु माई । दीन्ह मोहि बिधि यदि ब्याहै ॥ १ ॥

कैलीके लकड़के लिये संगरमे जो कुल योग वा, चतुर विधातने मुझे यही दिया ।
 पर 'दशरथजीक पुत्र' और 'रामका छोटा भाई' होनेसे ब्याह मुझे विधातने
 क्यों ही दी ॥ १ ॥

हुन सच कहहु कथावन टीका । राम रत्नामरु सब कहैं बीका ॥

उत्तर देहें केहि बिधि केहि केही । करहु सुखेन जया कधि केही ॥ २ ॥

आप सब लोग भी मुझे टीका कथानके लिये कह रहे हैं । रामाको आशा सभीके
 लिये भली है । मैं किस-किसको किस-किस प्रकार से ज्ञात हूँ । जिसकी बेटी बचि हो,
 जानलोप मुक्तपूर्वक यही करें ॥ २ ॥

मोहि हुनप्रु समेह विदाई । कालु कहिहि के दीन्ह सहाई ॥

मो विहु जो सचराचर गहीं । केहि सिय गनु प्रपन्निय नहीं ॥ ३ ॥

मेरी कुमता कैलीकमेत मुझे छोड़कर, कहिये, और क्यों करेगा कि वह जान
 बच्चा भिया गया । कड़-केतन जगत्में मेरे लिये और जीवन है जिसको श्रीरामरामजी
 प्राणीके समान प्यारे न हों ॥ ३ ॥

परम हनि सब कहैं सब कहू । बरिहु मोर बहि रूपन काहू ॥

संसम सीक जेम सब कहू । सपुइ वचिह सब को कहु काहू ॥ ४ ॥

जो परम हनि है, उसीमें उनको वड़ा कम दीख रहा है । मेरा बुरा दिन है
 किसीका दोष नहीं । जान उन जो कुछ कहते हैं वो सब उचित ही है । क्योंकि 'जान
 जेम सदाय, सीक और जेमेके वरा हैं ॥ ४ ॥

दो०—राम मातु छुटि सरलचित मो पर जेमु विरोधि ।

कहर सुमाय समेह कस मोरि दीनव मेधि ॥ १८१ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी माता बहुत ही सरलहृदय हैं और मुक्तपर उनका विरोध
 है । इसलिये मेरी दीनव देखकर वे स्वाभाविक समेहता ही ऐसा कर रही हैं ॥ १८१ ॥

चौ०—गुर विदेह सम्पन्न मनु जाक । जिन्हहि किल कर बरदा छावा ॥

मो कई शिकर सल सब सोक । मरै बिधि विमुक्त विमुक्त सब भेक ॥ १ ॥

मुक्ती जानेके लक्ष्य है, इस बातको सब जगत् जानता है, जिसके लिये विश्व
 हरेलीपर रखे हुए मेरे स्थान है, वे भी मेरे लिये राक्षसजन्म सब सब रहे हैं ।
 कम है, विधातने किसीत होनेपर सब कोई किसीत हो जाये हैं ॥ १ ॥

परिहरि रामु सीय जय माहीं । कोठ न कहिहि मोर मत नाही ॥

सो मैं सुनय सहय सुख मानी । जेहुँ क्षीय तहाँ जहाँ पानी ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजी और सीताजीसे जोड़कर जगत्में कोई बह नहीं कहेगा कि इस अनर्थमें मेरी सम्पत्ति नहीं है । मैं उसे सुखपूर्वक दुर्गेय और सहूँगा । क्योंकि वहाँ पानी होता है, वहाँ अन्तमें क्षीय होता ही है ॥ २ ॥

उह न मोहि जय कहिहि कि पोच । बसोन्कहु कर नाहिन सोच ॥

पुनह् उर बस दुसह दयाही । मोहिलगि मेसिम रामु दुखारी ॥ ३ ॥

मुझे इसका बर नहीं है कि अम्बर मुझे घुरा करेगा और न मुझे पल्लोकका ही सोच है । मेरे हृदयमें तो बस, एक ही दुःख दावानल बधक रहा है कि मेरे कारण श्रीसीतारामजी दुखी हुए ॥ ३ ॥

जीवन कहु कलन मल पाव । सहु तमि राम जलन महु काया ॥

मोर जलन रघुवर बस कायी । इह कह पछितार्जे अमायी ॥ ४ ॥

जीवनका उत्तम काम तो स्वयम्भवे पाना, जिन्होंने सब कुछ समझ भीरामजीके कारणोंमें मन काया । मेरा जन्म तो श्रीरामजीके बनवासके लिये ही हुआ था । मैं अभाग्य इह मूठ क्या पछताता हूँ ! ॥ ४ ॥

दो०—आपनि दाखन दीनता कहार्जे सबहि सिह माह ।

वेखें चितु रघुनाथ पद जिय कै करनि व आह ॥ १८२ ॥

तबको सिह छुटकर मैं अपनी दाखन दीनता कहता हूँ । श्रीरघुनाथजीके चरणोंके दर्शन किये बिना मेरे जीमें जलन न जायगी ॥ १८२ ॥

चौ०—मान ठपाठ मोहि नहि सुहा । खे जिय कै रघुवर चितु वृथा ॥

एकहिँ ओंक इहह मय माही । मातकाक चलिहर्जे महु पाही ॥ १ ॥

मुझे दूसरा कोई उपाय नहीं सुझता । भीरामके बिना मेरे हृदयकी बात कौन जान सकता है ! मनमें एक ही ओंक (निश्चयपूर्वक) रही है कि मातृशोक मनु श्रीराम-जीके पात चल दूँगा ॥ १ ॥

बचपि मैं बननक अपराधी । मैं मोहि करन सकल उपाधी ॥

तदपि सरन समस्तक मोहि देखी । जमि सब कहिहि कृपा बिलेपी ॥ २ ॥

बचपि मैं बुरा हूँ और अपराधी हूँ, और मेरे ही कारण वह सब उग्रव हुआ है, तथापि श्रीरामजी मुझे शरणमें सम्मुख आया हुआ देखकर सब अपराध क्षमा करके मुझपर विशेष कृपा करेंगे ॥ २ ॥

सील सकुच छुटि सकल सुभाक । कृपा सबैह सदन रघुनाक ॥

अरिहृक अवमल ज्येह न लमा । मैं सिधु सेवक जवपि पामा ॥ ३ ॥

श्रीरघुनाथजी बल, लज्जेच, अकन्त सरल स्वभाव, कृपा और स्नेहके भर हैं । श्रीरामजीने उम्मी शत्रुका भी जनिष्ट नहीं किया । मैं बचपि ठेका हूँ वर हूँ तो उनका बन्धा और गुलाम हो ॥ ३ ॥

गुहद है पोंच भोर मल मानी । आबसु आसिष वेहु सुकानी ॥

मेहि मुनि विमलमोहि जलु जानी । जवहिं बहुरि तसु रजपानी ॥ ४ ॥

आप पच (सप) ज्येग मी इलीमें मेरा कल्याण मानकर सुन्दर वाणीसे भाग और आशीर्वाद दीजिये, किन्तु मेरी निन्ता सुनकर और मुझे अपना दान जानकर श्रीरामचन्द्रजी राक्षसानीसे छोट आवे ॥ ४ ॥

दो०—जद्यपि अबहु कुमातु तैं मैं सह सदा सदेस ।

आपन जनि न त्यागिहहि मोहि रघुवीर भरोस ॥ १८२ ॥

यद्यपि मेरा जन्म कुमातसे हुआ है और मैं हुए तथा सदा दोस्तकु भी हूँ, तो भी मुझे श्रीरामजीका भरोसा है कि वे मुझे अपना जानकर त्यागमें नहीं ॥ १८२ ॥

चौ०—भरत भवन सब कहैं प्रिय जगो । राम खेह सुधी अनु पागे ॥

जोग विशेष विषम विष दामे । मंत्र छवीअ सुनत अनु जामे ॥ १ ॥

भरतजीके वचन सबसे प्यारे लगे । मानो वे श्रीरामजीके प्रेमस्त्री अमृतमें पगे हुए थे । श्रीरामविशेषरूपी भोजन किसी सब लोग को हुए थे । ये मानो बीजकहित मन्त्रको सुनते ही जाग उठे ॥ १ ॥

मातु सखिद पुर पुर घर भारी । सकल सगेहैं विरल भए भारी ॥

भरतहि कहहि सखि सखाही । राम प्रेम मूरति तनु भारी ॥ २ ॥

माता, मन्त्री, गुरु, नानाके ली-पुत्रपत्नी सहेहके कारण बहुत ही व्याकुल हो गये । सब भरतजीको सखा-सखाकर कहते हैं कि आपका खीर श्रीरामप्रेमकी साक्षात् मूर्ति ही है ॥ २ ॥

सात भरत भक्त कहे न कहहु । प्रात समात-राम प्रिय भइहु ॥

जो पार्षद भवति सबदाई । तुम्हहि सुगह मातु कुटिलाई ॥ ३ ॥

हे सब भरत ! आप ऐसा क्यों न कहें ! श्रीरामजीको आप प्राणोंके समान प्यारे हैं । जो नीच भवति मूर्खतासे आपकी मातृ कैकेयीकी कुटिलताको लेकर आपपर सन्देह करेगा, ॥ ३ ॥

जो सहु कोटिक पुष्य समेत । बसिहि कल्प सत नरक भिकेत ॥

अहि अब भवतु नहि नहि गदह । हरह परल दुख बारिद बहह ॥ ४ ॥

यह कुछ करोहों पुरखोंसहित जो कल्पोंतक नरकके घरमें निवास करेगा । सौंपके पाप और अवशुणको मर्ति नहीं ग्रहण करती । बल्कि यह विषको हर लेती है और दुष्ट तथा दण्डिताको भस्म कर देती है ॥ ४ ॥

दो०—अद्यसि खलिन वन रामु जहैं भरत मंथु मल कीन्ह ।

लोक सिंधु वृक्षत सखहि तुम्ह अवलंबतु दीन्ह ॥ १८४ ॥

हे भरतजी ! ननको अवलन चखिने, जहाँ श्रीरामजी हैं; आपने बहुत अच्छी सलाह दिया । शोकसमुद्रमें डूबते हुए तब जेगोंने आपने [वृक्ष] सहाय दे दिया ॥ १८४ ॥

चौ०—आ सब सैं मम मोहु न मोरा । अनु वन पुनि पुनि पासक मोरा ॥

पलत प्रत कधि निरनड गीके । भरतु अवप्रिय जे सखाही के ॥ १ ॥

सबके मर्मे कम आनन्द नहीं हुआ (अर्थात् बहुत ही आनन्द हुआ) । मानो मेवोंकी गर्वना सुनकर जलक और शेर आनन्दित हो रहे हों । [दूसरे दिन] मादाकाक चरनेका सुन्दर निर्गम देखकर भरतजी सभीको प्राणप्रिय हो गये ॥ १ ॥

सुनिहि बंदि भरतहि सिख नहि । पळे सकल घर विदा कराई ॥

धन्य भरत भवितु जय भारी । सीतु समेहु सखाह्य जाही ॥ २ ॥

हुनि विश्वगीत्री कन्दना करके और भरतजीको सिर नवाकर, सब लोग विदा लेकर अपने-अपने घरको चले । अन्तमें भरतजीका जीवन धन्य है, इस प्रकार कहते हुए वे उनके सीक और सहेही अग्रहण करते जाते हैं ॥ २ ॥

कहि परसराम मा नह कहू । सकल पलै कर सखाहि साद ॥

मेहि राक्षसि रघु घर रखवारी । सो अबह अनु भरदनि सारी ॥ ३ ॥

आपमें कहते हैं, वृक्ष काम हुआ । सभी चखनेकी तैयारी करने लगे । जिसको

भी घरणी रखवाजीके लिये रहके ऐसा कहकर रहते हैं, वही सम्मता है मानो मेरी गर्दन मारी गयी ॥ ३ ॥

कोइ कह खूब कहिय यहि कहू । को न कहइ जब कीवन लागू ॥ ४ ॥

कोई-कोई कहते हैं—रहनेके लिये निजीको भी मत्त कहो, मर्यमें जीवनका क्षम कौन नहीं चाहता ॥ ४ ॥

दो०—अरउ सो संपत्ति सदन सुख सुख मातु पितु भार ।

सनमुख होत जो राम पद परै व सहस सदा ॥ १८५ ॥

यह सम्पत्ति, घर, सुख, मित्र, माता, पिता, भाई सब जग जो श्रीरामजीके चरणोंके समुख होनेमें ईसते हुए (प्रसन्नतापूर्वक) कहा जाता न करे ॥ १८५ ॥

चौ०—हर घर सखिहि कह्य नारा । हरहु द्वारे परबस पनाता ॥ १८६ ॥

भरत जाइ घर कीन्ह विचार । कन्ह कहि गन भवन भंडार ॥ १८७ ॥

हर-हर लोग अनेकों प्रकारकी सवारियों बना रहे हैं । हरद्वारे [घर] द्वारे है कि छोटे बस्ता है । भरतजीने घर बाहर विचार किया कि नगर, बोहे-हाथी, महल-खाना आदि—॥ १ ॥

संपत्ति सब रघुपति कै नही । ओं पितु अनु नही जनि राही ॥

सौ परिणाम न मोरि भवई । पाप सिरोमणि सोई दोषारू ॥ २ ॥

सारी संपत्ति श्रीरघुनाथजीकी है । यदि उसको [रक्षा] करवा लिये किना उसे, ऐसे ही छोड़कर बल दें, तो परिणामसे मेरी भवई नहीं है । क्योंकि स्वामीका जोह सब पापोंमें सिरोमणि (मोह) है ॥ २ ॥

कहू स्वामि हित सेवक सोई । रूप न कोइ देह दिन सोई ॥

जह विचारि सुनि सेवक कोहे । ने समझे निज घर न कोहे ॥ ३ ॥

सेवक वही है जो स्वामीका हित करे, चाहे कोई करोही दोष क्यों न दे । भरतजीने ऐसा विचारकर ऐसे विश्वासपात्र सेवकोंको मुझपा को कभी स्वामी भी अपने घरमें नहीं लिये थे ॥ ३ ॥

कहि सहु मरहु बरहु भक्त भाषा । जो कोइ शक्य हो कोहि राखा ॥

फरि सहु बलहु राखि रक्षनारे । हम सहु पहि भवतु सिनारे ॥ ४ ॥

भरतजीने उनको सब भेद समझाकर फिर उसका धर्म बखाया; और जो जिस योग्य था, उसे उसी कामकर नियुक्त कर दिया । सब व्यवस्था करके, एकको रक्षकर भरतजी राममाता कौसल्याजीके पास गये ॥ ४ ॥

दो०—भारत जननी जनि सब भरत सनेह सुख ॥

कहेउ बनावन पाठकी सजल सुखसुख जान ॥ १८६ ॥

सनेहके सुखान (प्रेम्हके लक्ष्मीको बननेवाले) भरतजीने सब माता-पिताकी आर्त (दुखी) बनकर उनके लिये पाठकीयाँ तैयार करने तथा सुखान बन (दुखनाश) करनेके लिये कहा ॥ १८६ ॥

चौ०—बहु बलि विनि जा नर नारी । जह प्राय हर बल्ल भरी ॥

सागत सब विनि भय विमान । नष्ट बोजध खिच मुनाता ॥ १ ॥

भरतके नर-नारी चक्रे-चक्रीकी भेंटि हरको बल्ल-नर बार्त होकर प्रातःकालका सेवा चाहते हैं । सारी रात जागते-जागते खेराहो गया । अब भरतजीने चतुर मन्त्रियोंको बुझाया—

कोइ छेडु सहु सिकर समझ । कहि देव छवि सखि राख ॥

बेधि कहू सुनि सखि सोहारे । सुख सुख रज सब सँवारे ॥ २ ॥

और कहा—किन्तिन स्रव समान ले चले । बनमें ही मुनि बसिठनी श्रीराम-
चन्द्रजीको राज्य देगे, जवही चले । यह सुनकर मन्त्रियोंने वन्दना की और तुरंत बोहे,
रथ और हाथी सज्जा दिये ॥ २ ॥

अबैशही कर ज्योति संसाक । रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराज ॥

विप्र हूँ चढ़ि जाइय वास । चले सकल स्रव तेज निघास ॥ ३ ॥

सबसे पहले मुनिराज बसिठनी अकम्पनी और अग्निहोत्रकी संघे सामग्रीसहित
रथपर सवार होकर चले । फिर ब्राह्मणोंके समूह, जो सबके-सब उपस्था और तेजके
भण्डार थे, अनेकों उपारियोंपर चढ़कर चले ॥ ३ ॥

हरर लोग स्रव रनि सजि बान्ध । पित्रहूट जई कीम्ह रवाना ॥

गिबिहस सुभान न जई बखानी । चढ़ि चढ़ि चलत जई स्रव रानी ॥ ४ ॥

नगरके सब लोग रथोंको सज-सजाकर विनम्रतासे चल पड़े । किन्तु वर्षा नही
हो सकता, ऐसी सुन्दर प्राकटियोंपर चढ़-चढ़कर सब रनिचें चली ॥ ४ ॥

दी०—सौंपि क्यार सुखि सेवकावि सादर सकल बलार ।

सुमिरि राम सिख चरन सब चले भरत दोउ भाइ ॥ ५ ॥

विश्रांत्यसे सेवकोंको नगर सौंपकर और सबको आदरपूर्वक रवाना करके, तब
भीलीनारायणीके चरणोंको स्पर्श करके भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई चले ॥ ५ ॥

दी०—राम वरस बस सब नर नारी । जनु कीर्ति करीनि चले सकि वारी ॥ ५ ॥

बनसिपराजु समुक्ति भेग माहीं । सज्जन भरत पयाहीहि जाहीं ॥ ६ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनके लक्ष्मणे हुए (दर्शनकी अनन्य स्वाकृताते) सब नर-नारी
ऐसे चले मानो प्याले हाथी-हाथिनी जलको तककर [वही तेजीसे बावलेसे हुए] जा
रहे हैं । भीलीनारायणी [सब सुखोंको छोड़कर] बनमें हैं, बनमें ऐसा विचार करके
छोटे भाई शत्रुघ्नजीसहित मल्लकी पैदल हो चले जा रहे हैं ॥ ६ ॥

देसि सनेहु लोग अगुगने । उत्तरी चले ह्रव राव सब लपगे ॥

जाइ ससीप राशि मिय होकी । राम मातु संतु बाबी होकी ॥ ७ ॥

उनका स्नेह देखकर लोग प्रेम्मे मग हो गये और सब बोहे, हाथी, रथोंको
छोड़कर, उनसे दूरकर पैदल चलने लगे । तब श्रीरामचन्द्रजीकी माता कौसल्याजी
भरतजीके पास जाकर और अपनी पाल्खी उनके समीप खड़ी करके कोमल बाणीसे बोली—॥ ७ ॥

मातृ पदहु स्रव बलि गदवारी । छोड़हि प्रिय पसिवाय दुखारी ॥

हमरें चलत चलिहि जनु लोग । सकल लोक हस रहि मग लोग ॥ ८ ॥

देवेरा । माता कौसल्याजी हैं, हम रथपर चढ़ जायेंगे । नहीं तो सारा प्यारा परिवार
दुखी हो जायगा । इससे पैदल चलनेसे सभी लोग पैदल चलेंगे । ओंकारे मारे सब दुखले
हो रहे हैं, पैदल राखेंगे (पैदल चलनेके) योग्य नहीं हैं ॥ ८ ॥

सिर धरि वनज चरन सिद्ध नाई । रथ चढ़ि चलत अरु दोउ भाई ॥

तमना प्रथम दिवस करि कसू । दुखर गोमति तीर निवास ॥ ९ ॥

माताजी आशङ्कते सिर चढ़ाकर और उनके चरणोंमें सिर नवाकर दोनों भाई
रथपर चढ़कर चलने लगे । पहले दिन लगाव भर पास (मुकाम) करके दूसरा मुकाम
गोमतीके तीरेपर किया ॥ ९ ॥

दी०—पय आहार फल असन एक निशि भोजन एक लोग ।

वरत राम हित नेम ब्रत परिहरी सुख मोग ॥ १० ॥

कोई बूध ही पीले, कोई फलहार करते और कुछ लोग रातको एक ही बार भोजन करते हैं । भूषण और योग-विश्वस्तके जोड़कर सब लोग श्रीरामचन्द्रजीके लिये नियम और मत करते हैं ॥ १८८ ॥

चौ०—सई तीर बसि चले बिहाने । संगनेसपुर सब निबारने ॥ ५५५ ॥
समाचार सब सुने बिबाह । हृदयें विचार करहु सपिपादा ॥ १ ॥

रातभर सई नदीके तीरपर निराश करके सबके वहाँसे चला दिये और सब शृंगवेर-पुरके समीप जा पहुँचे । निषादराजने सब समाचार सुने, तो वह दुखी होकर हृदयमें विचार करने लगा—॥ १ ॥

कारण कवन भवतु धन जाहीं । है कहु कष्ट भवत मन माहीं ॥ ५५६ ॥
औ पै तिवैं न होति कुटिबहई । तौ कल कीन्ह संग कटकाई ॥ १ ॥
इया कारण है जो भरत धनघरे जा रहे है । मर्ममें कुछ कष्टभाव अवश्य है । यदि मनमें कुटिलता न होती, तो सबमें सेना क्यों ले कहे है ॥ २ ॥

जागहि साजुन रामहि भरी । करैं कष्टक रहत सुखारी ॥
भरत न राजसीति हर जायो । तब कष्टहु धन जीवन हानी ॥ १ ॥
समझते हैं कि छोटे भाई जयमलजित श्रीरामको मारकर मुखसे मिथ्याकफ राख फेंका । भरतने हृदयमें राजनीतिको खान नही दिया (राजनीतिका विचार नहीं किया) । तब (पहले) तो कलंक ही लगा था, अब तो जीवनसे ही हाथ धोना पड़ेगा ॥ १ ॥

सकल सुपसुर जुहिं सुखवा । रामहि सम न जीतनिहार ॥
का आधाररु भवतु अस करहीं । नहि विषकेलि अशिर फल पतहीं ॥ ५ ॥
सम्पूर्ण देवता और दैत्य गीर कुट जायें, तो भी श्रीरामजीकी रणमें जीतनेवाला कोई नहीं है । भरत जो ऐसा कर रहे हैं, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? किसी बेलें समूह-कल कभी नहीं फलती ! ॥ ४ ॥

दो०—भल विचारि गुह्यं ग्याति सब कहेउ सगल सब होहु ।
हरावैसहु बोरहु तपि ब्रिजिज आचारीहु ॥ १८९ ॥
ऐसा विचारकर गुह्य (निषादराज) ने अपनी अतिवाक्यें कहा कि सब लोग साधवान ही जाओ । नाकैके हाथमें (कन्धमें) कर लो और फिर उन्हें हुवा दो, तथा सब पादोंको रोक दो ॥ १८९ ॥

चौ०—दोहु सैगीइक रीकहु जाय । छरहु सकल भरे के जाय ॥
समसुख लोह भरत सब केरें । बिजत न सुखसरी बतरन केरें ॥ १ ॥
सुखमित होकर पादोंको रोक लो और सब लोभ मरनेके धांच सजा लो (अर्थात् भरतसे युद्धमें लड़कर मरनेके लिये तैयार हो जाओ) । मैं भरतसे सामने (मैदानमें) लोहा खेंगा (युद्धमें लड़ूँगा) और जीति-जी उन्हें यज्ञासार न उतरने दूँगा ॥ १ ॥

समर मरतु पुनि सुखसरी छीर । राम कहु जयभयु सरीर ॥
भरत माह नृप मै जन नीच । कयें साब बसि पखल नीच ॥ २ ॥
युद्धमें मरण, फिर गङ्गाजीका तट, श्रीरामजीका काम और शम्भुपुर शरीर (जो चाहे जब नाश हो जाय) ; भरत श्रीरामजीके भाई और राजा (उनके हाथसे मरना) और मैं नीच सेवक—बड़े माम्मे ऐसी मूर्ख मिली है ॥ २ ॥

स्वामि कबल करिहैं सन रासी । अस प्रकटिहैं सुख दस पारी ॥
सचरें प्राण शकुनाथ निहोरे । गुह्यं हाथ सुख जेवक मोरे ॥ ३ ॥

मैं खामीके समके छिने रुपमें नकई करूँगा और चौबहुँ ओकोंको अपने कबले
नकल कर दूँगा । श्रीरघुनन्दजीके निमित्त प्राण त्याग दूँगा । मेरे तो दोनों ही हाथोंमें
आनन्दके सङ्ग हैं (अर्थात् बीत गया तो रामसेनकबल कब प्राप्त करूँगा और मरा
गया तो श्रीरामजीकी मिल सेवा प्राप्त करूँगा) ॥ ३ ॥

उसके समाज न चाकर केवल । उस सबत गये जायु न रेखा ॥

जायै निजत उस सो सहिमान्द । जगजी जीवन विप्र. कुटारु ॥ ४ ॥

राजुओंके समाजमें निजकी गिनती नहीं और श्रीरामजीके भक्तोंमें निजका स्थान
नहीं, वह कदातमें पूर्णतया मार होकर व्यर्थ ही जाता है । वह जाताके जीवनरूपी चूके
काटनेके छिने कुत्तादामन है ॥ ४ ॥

रो—विगत विषाद निषादपति सबहि वधुह उछाडु ।

सुमिरि राम मागेउ तुल्य तरफस वनुष सनाहु ॥ १९० ॥

[इस प्रकार श्रीरामजीके छिने प्राणसमर्पणकर निषाद करते] निषादराज निषादसे
रहित हो गया और सबका उत्साह बधुकर तथा श्रीरामचन्द्रजीका सरण करते उठने
द्वंद्व ही तरफस, वनुष और कवच भोंपा ॥ १९० ॥

पौ—जगहु भाडु सगहु सँकोह । सुमि रवाह कवराह न कोह ॥

सोहि नब सब कहि सहरा । पुरहि एक बरषाह करषा ॥ १ ॥

[उठने कहा—] हे मादयो ! जल्दी करो और उस सामान बचाओ । मेरी भाषा
सुनकर कोई मनमें काकल न आवे । उस एकके शपथ बोले उठे—हे माय ! बहुत
भयभा । और आपकी एक-दूसरेका जोर बढ़ाने लगे ॥ १ ॥

चके निषाद सोहारी जोहारी । सूर सकल रन रुषाह गरी ॥

सुमिरि राम पद पंजव पगही । मरही भीति कहराहि बगही ॥ २ ॥

निषादराजको जेहर कर-करके उस निषाद चके । सभी चके शूरवीर हैं और
संयाममें लक्ष्मण उन्हें बहुत भयान लगता है । श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंकी धूलियोंका
कारण करते उन्होंने प्राणियों (छोटे-छोटे तरकत) बाँधकर वज्रिणी (छोटे-छोटे वज्रों)
पर प्रायश्चा-सदासी ॥ २ ॥

अंगी पहिरे कूनि फिर बरही । परल भीत सेह सब करही ॥

एक कुलक भति लोचन कौनि । कुरहि नान ग्रहं निजि छौनि ॥ ३ ॥

कवच पहनकर निषाद जेहेका टीन रखते हैं और परके, मासे तथा बरलोंको सीधा
कर रहे हैं (सुधार रहे हैं) । कोई लक्ष्मणके कार रोक्नेमें अकन्य ही कुशल हैं । वे
देखे डरगमे मेरे हैं मनो मली छोड़कर आपकी कूर (उलक) रहे हों ॥ ३ ॥

निज निज फल सगलु बगही । पुह रावहि जोहारे जाई ॥

देनि कुलक सय समक जाने । कै कै नान सकल सपसावे ॥ ४ ॥

अपना-अपना फल-सगल (कदाचित् रामान और एक) बगकर उन्होंने ककर
निषादराज गुरको जोहर धी । निषादराजने सुनकर सोझाओंको देखकर, कवको सुयोग्य
जना और नाम सेकेकर सकल समान किज ॥ ४ ॥

रो—भाडु जगहु, छोच जनि जाहु काज कद मोहि ।

सुमि सरोय नोके सुमर और अधीर न होहि ॥ १९१ ॥

[उठने कहा—] हे मादयो ! बोला न जग (अर्थात् मरनेसे न बचाना),

आज मेरा क्या गारी काम है । यह सुनकर सब योद्धा को बोझों का षण बोझ उठे—हे वीर ! अधीर मत हो ॥ १९१ ॥

चौ०—राम प्रसन्न जब वह खड़े । कहिं कछु बिनु नम बिनु धीरे ॥

जीवत बाढ न पाछें चरहीं । ईद सुंदरम तेहिनि करहीं ॥ १ ॥

हे नाथ ! श्रीरामचन्द्रजीके प्रसन्नते और आपके कलसे हमलोग मरतही सेनाकी बिना वीर और बिना घोड़ोंको फर देंगे (एक-एक वीर और एक-एक घोड़ेको मार डालेंगे) जीवें-जी खड़े पोंछ न रखेंगे । पृथ्वीको बन्ध-मुक्तकामी कर देंगे (खिरे और धक्कोसे छा देंगे) ॥ १ ॥

दीन निपट्रण्य सक टोह । कहे बजाव हलक होह ॥

एतन कहत छीक नह बाँध । कहे सगुनिबन्ध सेत सुहाए ॥ २ ॥

निपट्रण्यने वीरोंका बर्षिया सब देखकर कहा—सुनाऊ (स्फार्डका) होल बजाओ । इतना कहते ही बाजी और छीक हुई । शत्रुन विचारनेवालेने कहा कि सेत सुन्दर है (जीत होगी) ॥ २ ॥

दूह पछ कह सगुन विचार । जलाहि मिलिब न होइहि तारी ॥

रामहि भय नवादन माहीं । सगुन कहा अस मिथु माहीं ॥ ३ ॥

एक घूँसे शत्रुन विचारकर कहा—भरलसे मिल लीजिये, उनल ज्वायें नहीं होगी । भय श्रीरामचन्द्रजीको नलाने का रहे हैं । शत्रुन ऐसा कह रहा है कि विरोध नहीं है ॥ ३ ॥

सुनि गुह कहा नीक कह सुन । सहसा करि एलिगहि बिमुक्त ॥

भयत सुनात सीकु बिहु बहें । कबि दित इति जाचि बिहु बहें ॥ ४ ॥

यह सुनकर निपट्रण्य गुरने कहा—बूढ़ा ठीक कह रहा है । जल्दीमें (बिना विचार) कोई काम करने दूसरोंको फलाने है । मरतवीर धीर-समाय बिना समी और बिना जाने युद्ध करनेमें शिकी बहुत पड़ी रहने है ॥ ४ ॥

दो०—गहजु घाट भट खमिटि सब सेहें मरम मिथि आए ।

बुद्धि मिथ करि मध्य गति तब तब करिदर्ये आए ॥ १९२ ॥

अतपस है वीरो । हम खेन इच्छे होकर सब धक्कोसे रोक लेंगे, मैं वापर भरलकीसे मिलकर हमका मेद केरा हूँ । उनका नाम मिथन्न है या जगुध न उपरधनका, यह जानकर सब भाकर बैठा (ठीकसे अनुसर) प्रत्यक्ष करेंगे ॥ १९२ ॥

चौ०—कवच धनेषु सुभाषं सुहार्द । बैध प्रीति नहि दुर्यें दुर्यें ॥

भय कहि भेंट संबोधन कम्मे । कंद मूक पछ अप सुग माये ॥ १ ॥

उनके सुन्दर सम्भाषणे मैं उनके स्नेहको पहचान लूँगा । वैर और प्रेम छिचानेसे नहीं छिपते । ऐसा कहकर गई मेरका सामान लाने लया । उसने कन्ध, कूँ, पछ, पछी और शिरन में बांधे ॥ १ ॥

सीम पीन पासीन बुराने । नहि नहि आर कहरन्य आवे ॥

मिलन छानु लमि मिलन मिथन्य । संकात कूड सगुन सुच पाए ॥ २ ॥

कहर लोग पुरानी और मोटी पहिना नामक कल्लिमेके मार मर-मरकर लगे । मेरका सामान समीकर मिलनेके लिये चले तो सगुनवाक झग सगुन मिले ॥ २ ॥

सेबि दूरि से कदि निव पाए । कन्द हुलीसहि भेंट प्रयाए ॥

कानि रसप्रिय वीरिह कहीसा । जलहि कहेड प्रसन्न हुलीसा ॥ ३ ॥

निपट्रण्यने सुनिगल बलिगलीको देखकर अपना नाम कलकर दूरिसे दण्डक-

प्रवास दिया। मुनीश्वर वशिष्ठजीने उससे रामका प्यारा मानकर जादवीचंद दिया और भरतजीको समझाकर कहा [कि यह श्रीरामजीका मित्र है] ॥ २ ॥

राम सख सुनि सुंदरु लाय। चले उरहि सखसत, अनुसरा ॥

चारों नालि सुई चले सुनाई। लीन्ह जोहल मय मदि लाई ॥ ४ ॥

यह श्रीरामका मित्र है, इतना सुनते ही भरतजीने रथ त्याग दिया। वे रथसे उतरकर प्रेम्मे उमंगसे हुए चले। निम्नदराज गृहने अपना बाँध, भाति और नाम सुनाकर पूरवपर माया टेककर जोहार की ॥ ४ ॥

दो—कहत धंढवत देखि देखि मरत लीन्ह सर सख।

रानहुँ लखत सख मेट यह प्रेसु न हृदय समार ॥ १९३ ॥

हरदल करत देखकर भरतजीने उठाकर उसको छातीसे लगा लिया। हृदयमें प्रेम समाया नहीं है, नामो खनं ब्रह्मजीसे मेट हो गयी हो ॥ १९३ ॥

चौ—मेटल मरत सखि कवि प्रीती। खेग सिद्धहि प्रेम है रीती ॥

कन्य धन्य पुनि मंगल सूख। सुर सखि देखि बरिछहि पूज ॥ १ ॥

भरतजी गुरुको अत्यन्त प्रेम्मे रखे लग रहे हैं। प्रेमकी रीतिको सब खेग सिद्ध रहे है (ईश्वरपूर्वक मरता कर रहे हैं)। मन्त्रजाली सूख 'कन्य-धन्य' की श्रुति करके देवता उसकी उपासना करते हुए पूज करता रहे हैं ॥ १ ॥

कोक वेद सब मंथिहि सीमा। कसु जई सुख केहुन सीमा ॥

तेहि भरी बंक राम कसु माता। मिश्रत पुष्प परिपुष्टि माता ॥ २ ॥

[वे कहते हैं—] जे खेक और वेद दोनोंमें सब प्रकारसे सीमा माना जाता है, जिसकी छायाके दू शब्दोंसे भी स्नान करना होता है, उन्हीं निष्कारसे अंकुशार भरकर (हृदयसे चिपटाकर) श्रीरामचन्द्रजीके छोटे माई भरतजी [कन्य-धन्य और प्रेमका] धरीमे पुष्पावलीसे परिपूर्ण हो मिल रहे हैं ॥ २ ॥

राम राम कहि जे कसुहारी। तिन्हहि ब पाप पुंख सङ्गहारी ॥

यह री राम कह उर लीन्ह। सुख समेत का पवन कीन्ह ॥ ३ ॥

जो खेग राम-राम कहकर लैमाई खे है (अर्थात् आत्मस्वसे भी शिनेके मुँहसे रामनामका उच्चारण हो जाता है) परन्ति समुद्र (कोई भी पाप) उनके सामने नहीं बाते। फिर इस गृहकी तो स्वयं श्रीरामचन्द्रजीने हृदयसे क्या दिया और कुलधर्मसे इसे आस्थापन (जगत्को प्रविष्ट करनेवाला) बना दिया ॥ ३ ॥

करमनाह बहुत भुस्तारि पयै। तेहि को कसु सीमा कहि पयै ॥

उठय पापु जगत ननु जाय। नालमीकि मय मय समाना ॥ ४ ॥

कर्मनाशा नदीका गह नालजीमें ल गाता है (गिर जाता है), तब करिये, उसे कौन किंकर धरप नहीं चला। अन्ध जानता है कि उठय नाम (मर-मर) कभी-काले वाल्मीकिजी तकसे श्रम हो गये ॥ ४ ॥

दो—सपच सखर सख जयम जद पौर्वर कोख किरात।

राहु फहत पावन परत होत सुवन विषयात ॥ १९४ ॥

मूर्त और पामर कायका, उदार, लक्ष, कल, कोल और किरात भी राम-नाम परत ही परम पवित्र और निःशुक्लसे विषयात हो गये हैं ॥ १९४ ॥

चौ—नहि मर्कितु हय हय मर्कितु। केहि न कीछि सुखर बहाई ॥

राम नाम मर्कितु सुर बहाई। सुनि सुनि कवच कोम सुख बहाई ॥ १ ॥

हमें कोई आश्रय नहीं है, शून्य-शुणान्तरसे यही चीज चली आ रही है। श्रीरघुनाथजीने किसको बढ़ाई नहीं दी ! इस प्रकार देवता रामनामकी महिमा कह रहे हैं और उसे सुन-सुनकर जयोंवाके लोग मुक्त पड़े हैं ॥ १ ॥

रामसखहि मिलि भरत खेसा । पूछी कुसल सुमंगल खेसा ॥

देखि भरत कर सीधु सनेहु । आ निषाद रोहि समय विदेहु ॥ २ ॥

रामसखा निषादराजसे प्रेमके साथ मिलकर भरतजीने कुसल, मङ्गल और श्रेय पूछी। भरतजीका शीघ्र और प्रेम देखकर-निषाद सब समय विदेह हो गया (प्रेममुग्ध होकर देखकी मृग भूल गया) ॥ २ ॥

सकुच सनेहु मोहु मन बाधा । भरतहि चित्तवत पकटक छादा ॥

अरि धीरजु पद बंदि बहोरी । बिनव सप्रेम कस्त कर खोरी ॥ ३ ॥

उसके मनमें संकोच, प्रेम और आनन्द इतना बढ़ गया कि वह खड़ा-खड़ा टपटपी लगाये भरतजीको देखता रहा। फिर धीरज चरकर भरतजीके चरणोंकी बन्दना करके प्रेमके साथ हाथ भेदकर निनती करने लगा—॥ ३ ॥

कुसल मूल पद पंकर देखी । मैं तिहुँ करत कुसल निज लेखी ॥

अब प्रभु परस जगुप्रद तोरें । सहित कोटि कुल मंगल मोरें ॥ ४ ॥

हे प्रभो ! कुसलके मूल आपके चरणकमलोंके दर्शन कर मैंने तीनों काशोंमें अपना कुशल जान लिया। अब आपके परम अनुग्रहसे करोड़ों कुलों (पीड़ियों) सहित मेरा मङ्गल (कल्याण) हो गया ॥ ४ ॥

पौ०—समुद्रि मोरि करतुति कुलु प्रभु महिमा जियें जोह ।

जो न भजइ रघुबीर पद जग बिचि बंघित सोह ॥ १९५ ॥

मेरी करतु और कुलको समझकर और प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी महिमाको मनमें देख (विचार) कर (अर्थात् कहें तो मैं नीच जाति और नीच कर्म करनेवाला भीम, और जहाँ जनताकोटि ज्ञानियोंके स्वामी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ! पर उन्होंने मुझ-जैसे नीचको भी अपनी अद्वैतकी कृपाकण्ड अम्ना किया—यह समझकर) जो रघुबीर श्रीरामजीके चरणोंका मन्त्र नहीं करता, वह जगत्में निगाहके द्वारा जगत् मत्त है ॥ १९५ ॥

पौ०—कपटी कपड कुमति कुजगटी । कोठ वेद बाहेर सब मोती ॥

धम धीन्द अवन अवही हैं । भवतें मुक्कन भूवन लवही हैं ॥ १ ॥

मैं कपटी, कपट, कुब्रि और कुमति हूँ और लोक-वेद दोनोंसे सब प्रफारते बाहर हूँ। पर जबसे श्रीरामचन्द्रजीने मुझे जगन्नाथ है, उसीसे मैं शिक्षा भूषण हो गया ॥ १ ॥

देखि प्रीति भुनि चिन्म सुहाई । मिलेउ ज्योति मस्त करु आई ॥

कहि निषाद निज धम सुवाणी । सावर सकल जोहमों रानी ॥ २ ॥

निषादराजकी प्रीतिको देखकर और सुन्दर धिनव सुनकर फिर भरतजीके छोटे भाई शत्रुघ्नजी लउसे मिले। फिर निषादने अपना नाय छेकेकर सुन्दर (नम्र और मधुर) वाणीसे सब रानियोंको वादपूर्वक जोहार की ॥ २ ॥

जानि लखन सम देहि मसीसा । निजहु सुखी सब साध बरीसा ॥

निरति निषादु कस कर नारी । जप सुधी जनु लखनु निहारी ॥ ३ ॥

रानियाँ उसे लक्ष्मणजीके समान समझकर वाणीपूर्वक देती हैं कि तुम यो साध वर्षोंतक मुझपूर्वक भिओ। नगरके स्त्री-पुरुष निषादको देखकर ऐसे सुखी हुए मानो लक्ष्मणजीको देख रहे हैं ॥ ३ ॥

कहिं कहेत एहिं जीवन्त सहु । मैठ रामभद्र मरि बाहु ॥

सुनि निषाहु निज भाग बडाई । प्रसुदित मन छह चलेउ छेवाई ॥ १ ॥

सब कहते हैं कि जीवन्तका स्वप्न तो इलीने पावा है; जिसे कल्याणस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीने मुजगोमे बाँफर गले लगावा है । निषाद अपने भाग्यकी बड़ाई सुनकर मनमें परम आनन्दित हो स्वको अपने साथ लिवा ले चल ॥ ४ ॥

दो०—सुनकरो सेवक सकल चले स्वामि दख पाव ।

घर तर तर सर बाग वन बास बनस्पन्दि जाइ ॥ १९६ ॥

सबने अपने सब सेवकोंको इशारेसे धके दिया । वे स्वामीका रुख पाकर चले और उन्होंने घरोंमें, वृक्षोंके नीचे, तालबोसर तथा कगीचो और जंगलोंमें ठहरनेके लिये स्थान बना दिये ॥ १९६ ॥

चौ०—संगबेरपुर भरत इति सब । मे सनेई सब जंग सिधिल सब ॥

लोहत दिई निषादहिं कागु । सहु सहु बरें किम्य अनुरागु ॥ १ ॥

भरतजीने लप मृद्वेकेपुरको देखा, सब उनके सब जङ्ग प्रेमके कारण शिथिल हो गये । वे निषादको खग दिये (अर्थात् उनके कंधेपर हाथ रखे चरुते हुए) ऐसे शोभा है रहे हैं मानो विनय और प्रेम शरीर धारण किये हुए हो ॥ १ ॥

एहिं विधि भरत सेहु सहु संग । इति कहि अब पावनि रांग ॥

रामघाट कई कीन्ह प्रथम । अब मनु मनु मिते जनु रागु ॥ २ ॥

इस प्रकार भरतजीने लप सेनाको खयमें लिये हुए जगत्को पथिप्र करनेवाली गङ्गाजीके दर्शन किये । श्रीरामघाटको [जहाँ श्रीरामजीने स्नान-सन्ध्या की थी] प्रणाम किया । उनका मन इतना आनन्दग्रस्त हो गया मानो उन्हें स्वयं श्रीरामजी मिल गये हों ॥ २ ॥

कहिं प्रणाम करि कर नारी । सुनिह ब्रह्मचरि मिहारी ॥

करि सकल मागहि कर जोरी । रामचंद्र पद प्रीति न पौरी ॥ ३ ॥

नगरके नरनारी प्रणाम कर रहे हैं और गङ्गाजीके ब्रह्मरूप जङ्गको देख-देखकर आनन्दित हो रहे हैं । गङ्गाजीमें स्नानकर हाथ जोड़कर सब नारी घर माँगते हैं कि श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें हमारा प्रेम कम न हो (अर्थात् बहुत अधिक हो) ॥ ३ ॥

भरत कहेउ सुसखी सब देन । सकल सुखद सेवक सुरपेन ॥

जोरी पामि कर अबई पेहु । सीध राम पद सहल सनेहु ॥ ४ ॥

भरतजीने कहा—दे मझे । आपकी रज सबको सुख देनेवाली तथा सेवकोंके लिये सौ कामधेनु ही है । मैं हाथ जोड़कर वही करदान योग्य हूँ कि श्रीसीतारामजीके चरणोंमें मेरा स्वाभाविक प्रेम हो ॥ ४ ॥

दो०—पदि विधि मखनु भरतु करि शुर अनुसासन पाव ।

मातु नहानो कबि सब डेर चले लवाइ ॥ १९७ ॥

इस प्रकार भरतजी स्नानकर और गुह्यजीकी आज्ञा पाकर तथा यह जानकर कि सब माताएँ स्नान कर चुकी हैं, डेर उठा ले चले ॥ १९७ ॥

चौ०—गई कई लोगन्ह डेर कीन्हा । भरत सेहु सखी कर कीन्हा ॥

सुर सेवा करि जायसु पाई । राम मनु पदि मे पोट भाई ॥ १ ॥

सोमोने कहाँ-साँ डेर दल दिया । भरतजीने सभीका पता लगाया [कि सब लोग आकर नगरमें टिक गये हैं या नहीं] ! फिर देवपूजन करके आज्ञा पाकर दोनों भाई श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा कीज्जाजीके पास गये ॥ १ ॥

चरण चौंकि कहि कहि सहु खानी । जपनी सखल सरत सनमानी ॥

भाहहि सौंवि मालु सेवकहई । आपु निषादहि जेन्ह मोकाई ॥ २ ॥

चरण दवाकर और सोमल वचन कह-कहकर मरतजीने सब माताजीका सत्कार किया । फिर भाई शत्रुघ्नको माताजीकी सेवा सौंपकर आपने निषादको बुला लिया ॥ २ ॥

चले सखा कर सौं कर जोरें । सिखि सरीर सम्ह न धोरें ॥

पूछत सखहि सो अहं देखाऊ । नेह नयन भव जरनि सुझाऊ ॥ ३ ॥

सखा निषादराजके हाथसे हाथ मिलाने लूट मरतजी चले । प्रेम कुछ बोधा नहीं है (अर्थात् बहुत अधिक प्रेम है) । जिससे उनका शरीर सिखि हो रहा है । मरतजी सखासे पूछते हैं कि मुझे वह खान दिसव्यओ-और नेत्र और मन्त्री जडन कुछ ठंडी करो-॥ ३ ॥

जहँ सिंग राहु कसतु निशि सोइ । कहत मरे अह जेचन कोइ ॥

मरत वचन सुनि मरत निषाद । कुल तहाँ कह गवत निषाद ॥ ४ ॥

जहाँ सीताजी, श्रीरामजी और अग्रज राजको छोड़े थे । ऐसा करते ही उनके नेत्रोंके भोपोंमें [प्रेमाभ्रमोंका] जल भर आया । मरतजीके वचन सुनकर निषादको बड़ा विषाद हुआ । वह दुरंत ही उन्हें जहाँ ले गया-॥ ४ ॥

दो०-जहाँ सिंसुपा पुनीत तर रघुबर किंव विजानु ।

अति सनेह सादर मरत कीन्हैत दंड प्रजामु ॥ १९८ ॥

जहाँ पवित्र अशोकके वृक्षके नीचे श्रीरामजीने विज्ञापन किया था । मरतजीने वहाँ अत्यन्त प्रेमसे शारदपूर्वक अण्डवत् अणाम किया ॥ १९८ ॥

चौ०-कुल सौंपरी निहारि सुझाई । कीन्ह प्रजामु प्रवर्णिन जहँ ॥

चरण देख सख औंकिन्ह सखई । बगद व पछत प्रीति अथिसाई ॥ १ ॥

कुसौंकी दुन्दर सखरी देखकर उसकी प्रशिक्षा करके प्रयास किया । श्रीरामचन्द्रजीके चरणचिह्नोंकी रत्न औंलोंमें सजानी । [उस समयके] प्रेमाकी अधिकता करते नहीं बनती ॥ १ ॥

कानन बिंदु दुर पारिक देखे । चले सखि सखि संभ सेवे ॥

सखल बिलोचन दुरव गहानी । जहस सखा सख वचन सुजानी ॥ २ ॥

मरतजीने दो-चार स्वर्णचिन्ह (जेनेके कम ना तारे आदि जो सीताजीके हाथने-कापड़ोंके गिर पड़े थे) देखे तो उनको सीताजीके समान समझकर सिरपर रफ किया । उनके नेत्र [प्रेमाभ्रमके] झलके मरे हैं और हृदयमें व्यंजि भरी है । वे खेलाते सुन्दर बाणीमें ये वचन बोले-॥ २ ॥

भीहत सखि बिरहँ दुसिहीन । अथा जेवध बर चारि बिहीन ॥

पिता जनक देवँ पछत केही । फरतल सोयु जेगु जग केही ॥ ३ ॥

ये स्वर्णके कम ना तारे भी सीताजीके विरहसे ऐसे भीहत (शोभाहीन) एवं कान्तिहीन हो रहे हैं जैसे [रामविजयमें] अयोध्याके भर-नारी बिलीन (शोकके कारण क्षीण) हो रहे हैं । निज सीताजीके पिता राजा जनक हैं, इस जगत्में योग और योग दोनों ही जिनकी मुझमें हैं, उन जनकजीको मैं किसकी लगन दूँ ? ॥ ३ ॥

ससुर भक्तुल आपु सुजहँ । जेहि सिद्धत अनरावतिपाह ॥

प्रामवाहुं राघनाम जेसाई । जो बड होच सो राम यदाई ॥ ४ ॥

सूर्यकुलके सूर्य राजा दसरथजी जिनके ससुर हैं, जिनको अमरपत्नीके स्वामी इन्द्र भी सिद्धते थे (ईर्ष्यापूर्वक उनके-जैसा ऐश्वर्य और प्रताप पाना चाहते थे) और प्रभु

श्रीगुणधारी निम्नै प्राणनाथ हैं, जो हाने गहे हैं कि जो कोई भी बड़ा होता है वह श्रीरामचन्द्रजीकी [दी हुई] व्याप्ति ही होता है ॥ ४ ॥

दो०—यदि देवता सुखीय मनि सौय खँचरी देखि । अ. ११
बिहरत हृदय न डेरि एर यनि तैं कठिन विसेषि ॥ १९९ ॥

उन में प्रसन्नता विगमने निरोधण श्रीगुणधारी साधरी (कुणवाया) देखकर मेरा हृदय हलकर (दहकर) पट नहीं जाता; हे गंधर्व! यह नज़रों में अधिक कठोर है! १९९
चौ०—साधन खँसु कठन लघु होने । भे न माह अस अहंति न होने ॥

गुरजन प्रिय श्रेष्ठ मनु दुखरे । सिय खुशीरहि प्रानपिआरे ॥ १ ॥

मेरे छोटे गार्द लक्षण बहुत ही सुन्दर और प्यार करने योग्य हैं । ऐसे भाई न तो रिश्ते के दुःख न हैं, न होनेके ही हैं । जो सम्मान अवश्यके योग्योंके प्यारे, माता-पिताके दुखरे और श्रीगुणधारीजीके प्राणप्यारे हैं ॥ १ ॥

महु नूरति-सुकुमार सुभाक । तात बाध सय लग न काक ॥

हे दन सहृदि विवसि सय राँती । निदरे कोटि दुखिस मूर्हि छाती ॥ २ ॥ अ. ११

मिलनी कोमल मूर्ति और सुकुमार स्वभाव है, निनके शरीरमें कमी गरम हवा भी नहीं होती, वे हममें सब प्रकारकी पिष्टियों सह रहे हैं । [हाथ] इस मेरी छातीमें [कठोरतामें] करोड़ों पत्रोंपर भी निपटकर कर दिया [नहीं] तो यह कमीकी फट दयी दाँज ॥ २ ॥

राम वसनि अनु कोण्ड कचारा । कय सोढ सुख सब गुण सागर ॥

पुलक परितन गुर पितु माता । राम सुभाड सखि सुखवाता ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने कम (अच्छा) ठेकर जातको प्रकटित (परम सुशोभित) कर दिया । वे कम, लीक, सुख और समस्त गुणोंके समुद्र हैं । पुष्कली, कुटुम्बी, गुह, मिठा-माता रानीकी श्रीगणेशकी स्वभाव सुख देनेवाला है ॥ १ ॥

ऐरिह राज दगाई करहीं । वोढधि मिळधि विषय मन हरहीं ॥

सारद कोटि कोटि सत सेख । करि न सखि प्रभु गुन घन छेका ॥ २ ॥

शत्रु भी श्रीरामजीकी वड़ाई करते हैं । वोढ-प्राप्त, मिलनेके ढंग-और मिलनेके वे सबको हर डेते हैं । करोड़ों सरस्वती और अरबों शेषमी भी प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके गुण-समूहोंकी मिलती नहीं कर सकते ॥ ४ ॥

दो०—सुखसख्य रघुवंसमनि मंसक मोक्ष निधान ।

ते सोषत कुस बलि मदि विधि गति अति बलवान ॥ २०० ॥

जो सुखस्वस्थ रघुवंशशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी मङ्गल और जानन्दके मन्थार हैं वे पृथ्वीपर कुशा पिछाकर खेते हैं । विघ्नतापी यति उड़ी ही बलवान् है ॥ २०० ॥

चौ०—राम सुना दुख कम न काक । जीवन्सय जिमि योगवद् साक ॥

पलक मयन पणि मनि वेदि भोजी । जोगवहि पणधि सकल दिन रात्री ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने कानोसे भी कमी दुःखत्रय नाम नहीं सुना । महाराज स्वर्ग जीवन-पूजाकी तरह उनकी सार-सँगांध किया करते हैं । सब मातापै भी रात-दिन उनकी देवी सार-सँगांध करती या जैसे फल नेमोती और सोंप अपनी मणिकी करते हैं ॥ १ ॥

वे सब पित्रस विविध पदधारी । कय मूल फल फूल जहारी ॥

विग कैकई भगमण्ड मूल । मङ्गलि प्रान प्रियतम प्रतिकूल ॥ २ ॥

वही श्रीरामचन्द्रजी अब कालमें पैदल फिरते हैं और कन्द-मूल तथा फल-पूजोंका

भोजन करते हैं। अमरकान्तकी बल कैकेयीको विरहकर है, जो मरने प्राण-प्रियवत्ता पतिसे भी प्रतिवृत्त हो गयी ॥ २ ॥

अं विग विग कब चरिषि कबानी । सब उत्पन्न नवत बेहि कानी ॥

कुल कलंक करि खलैत विधार्ता । छहँसोह सोहि कौन्हे कुमार्ता ॥ ३ ॥

मुक्त पापोंके समुद्र और अमरोंको विरहकर है, विरहकर है, भिन्नके कारण वे लज्जात हुए। विधातने मुक्त कुलज कलङ्क बनाकर पैदा किया और कुमाताने मुक्त स्वामिदोही बना दिया ॥ ३ ॥

मुनि सप्रेम समुत्पन्न विषाद । नाथ करिष कब वादि विषाद ॥

राम दुःखहि प्रियतुह प्रिय रामहि । यह निरञ्जोस दोसु निधि वामहि ॥ ४ ॥

यह मुनिकर निरुदराव प्रेमपूर्वक सम्मानने लया—हे नाथ। आप धर्म विषाद कितलिये करते हैं। श्रीरामचन्द्रजी आपके प्यारे हैं और आप श्रीरामचन्द्रजीको प्यारे हैं। यही निबोध (निश्चित सिद्धान्त) है, दोष तो प्रतिकूल विधाताको है ॥ ४ ॥

मं—विधि धाम को करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही यावरी ।

वेहि रति पुनि पुनि करहि प्रभु सादर सपदमा रावरी ॥

मुलसी न मुख सो राम प्रीतनु फलतु हौं लौं किनै ।

परिनाम मेराल जनि अपने धानिग धीरहु हिरे ॥

प्रतिकूल विधाताको करनी बड़ी कठोर है, किन्तु माता कैकेयीको बावली बना दिया (उलकी मति फेर दी)। उस रातको प्रभु श्रीरामचन्द्रजी बार-बार आदरपूर्वक आसकी बड़ी लड़ाई करते थे। मुलसीदासजी कहते हैं—[निषादराज कहता है कि—] श्रीरामचन्द्रजीको आपके समान प्रतियोग प्रिय और कोई नहीं है, मैं सौवध काकर कहता हूँ। परिणाममें मङ्गल होगा, वह जानकर आप अपने हृदयमें कैर बारन कीजिये।

मो—अंतर्जामी राहु सङ्ग सप्रेम कृपापठन ।

चलिष करिष विधातु यह विचारि बड़ जनि मम ॥ २०१ ॥

श्रीरामचन्द्रजी अन्तर्जामी तथा संकोच, प्रेम और कृपाके जग हैं, वह विचारकर और मनमें दृढ़ता लाकर चलिये और विनाश प्रीतिमें ॥ २०१ ॥

मो—सखा बचन मुनि कर धरि धीरा । बाल जके मुनिरत सुधीरा ॥

यह सुधि पाह नगर नर नारी । कब विहारेन आस आरी ॥ २ ॥

सखाके वचन सुनकर, हृदयमें धीरज भरकर श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करते हुए भरतजी डेरको चले। मरके खरे ली-पुरुष यह (श्रीरामजीके उदरके स्तनका) समाचार पाकर वड़े शाहुर होकर उस स्तनको देखने चले ॥ २ ॥

परबलिषा करि करहि प्रथमा । देहि कैन्हीहि लीरि विनामा ॥

नरि नरि नरि मिलेचन केहीं । जग विषादहि दूषर देहीं ॥ २ ॥

वे उस स्तनकी परीक्षा करके प्रथम करते हैं और कैकेयीको बहुत दोष देते हैं। नेत्रोंमें लज भर-नर छेते हैं और प्रतिकूल विधाताको दूषण देते हैं ॥ २ ॥

एक सखाहि मरल समेह । जीव यह क्षति विषादेह केह ॥

निर्दहि आपु सखाहि विषादहि । को कहि सखद मिलेह विषादहि ॥ ३ ॥

कोई भरतजीके लोहरी लड़ाई करते हैं और कोई कहते हैं कि राजाने अपना प्रेम फल निबद्ध। सब अपनी निन्दा करके निषादकी प्रशंसा करते हैं। उस वक्ताके विमोह और निषादको कौन कह सकता है ॥ ३ ॥

एहि बिधि रहित छोडु सब जाग । भू मित्रुखर हृदय सगा ॥
 सुहि सुनयै बहम् सुहम् । नई नम सब भनु बहम् ॥ ४ ॥
 इस प्रकार उत्तमर सब लोग जानते हैं । मकर देखे ही खेव सगा । मुन्दर
 नाकर गुहलीको बहम्कर फिर नयी नाकर सब यन्त्रियोंका चढ़ाया ॥ ४ ॥
 दंत चारि मई भा उरु पात । जेहि मस्त तब खचिह सँभार ॥ ५ ॥
 चार पड़ौमे सब गह्वानीके फार टकर गये । सब मस्तबीने ठठकर
 चरमे लँका ॥ ५ ॥

श्री०—प्रतर्जना करि मातु पर बंदि गुहहि सिख भाइ ।

आतां किए निपाद मन दीन्हेव कटकु चढाई ॥ २०२ ॥

प्रातःकाली विद्यायोगो करके माताके चरणोंकी कन्दना कर और गुहलीको तिर
 स्वाकर भरखलीने निपादयोगो [एका दिक्कालके विषे] आने कर लिया और
 सैना चला दी ॥ २०२ ॥

श्री०—विषय निपादवाहु अनुग्रह । मातु पाछो सल्ल चढाई ॥

साय खोजह भाइ अनु दीन्हा । विपन्द सहित गवतु गुर कोन्हा ॥ १ ॥

नित्यरामको आये करके छोडे सा माताआँधी चरकिले चलायी । छोटे भाई शत्रु-
 नीको धूमकर उनके साथ कर दिया । फिर ब्राह्मणोक्तित गुहलीने गमन किया ॥ १ ॥

मातु हृत्तरिहि कोन्हा प्रवाह । सुमिरे कलम समित विष राम ॥

जबने भला बपादेहि पाए । कोन्हा संग जाहि कोरिषाए ॥ २ ॥

तदनन्तर काम (मरखली) ने गह्वानीको प्रवास किया और सम्मलचरित मीरीता-
 रचनीका स्मरण किया । भरखली देख ही चले । उनके साथ कोन्हा (बिना सवारके)
 घोड़े वागडोसे धँसे हुए चले जा रहे हैं ॥ २ ॥

बहहि सुसेवक जाहि भरा । होइत साथ सल्ल कसारा ॥

राहु बकादेहि भाई लिलाए । इन कहै रस सब जालि बरीए ॥ ३ ॥

उत्तम सेवक वाह-गार कहते हैं कि हे भाव ! आप बोखेर सवार हो लीजिये ।
 [भरखली बवाए देखे हैं कि] श्रीरामचन्द्रजी तो देख ही चले और हमारे साथ
 राही और छोडे कलामे गये हैं ॥ ३ ॥

सिर मर जाइ टछि भल खीरा । सब तँ सेवक परसु कडोरा ॥

देखि भरा भति सुनि सुहु भनी । सब सेवक गत जाहि गडानी ॥ ४ ॥

मुझे उचित तो ऐसा है कि मैं शिरके कल चमकर खर्कें । सेवकका शर्त सज्जे
 कटिम होता है । भरखलीकी कल देखकर और कोन्हा चानी मुनकर सब सेवकगण
 स्थानिके मरे गये जा रहे हैं ॥ ४ ॥

श्री०—भरत जीसे पहर कहै कीन्हा प्रवेसु प्रयास ।

कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुयाय ॥ २०३ ॥

क्रेमो उमँग जाँचकर सौताराम-सौताराम कहते हुए भरखलीने जीसे पहर प्रयासमे
 प्रवेष्ट किया ॥ २०३ ॥

श्री०—कलम प्रकट पामक केस । कलम कोसि जोस कल जैस ॥

भला बकादेहि भाइ भाइ । मस्त हुसित सुनि समस्त समार ॥ १ ॥

उनके चरणोंके छोडे कल चमकते हैं । जेने कलमकी कलियार मोलकी बूँद चमकती

हों । भरतजी आज, पैदल ही चलकर आवे, हैं, यह समाचार सुनकर आप समाज दुखी हो गया ॥ १ ॥

खबरि छीन्ह सब कोन बहस । कहे प्रजसु त्रिवेनिहि आस ॥

सविधि सितासित नीर पहावे । दिव दान अहिमुर सनमाने ॥ २ ॥

जब भरतजीने यह पता पा लिया कि सब लोग खान कर चुके, तो त्रिवेणीर आकर उन्हें प्रणाम किया । फिर विशिष्टपूर्वक [यज्ञ-यज्ञादि] स्वेत और स्वाम जलमें स्नान किया और दान देकर ब्राह्मणोंका सम्मान किया ॥ २ ॥

प्रेक्षत स्वामल चकल हलोरे । पुत्रकि सति मरस कर जोरे ॥

सकल काम प्रद तीरथराज । वेद विहित जग प्रगट प्रभाक ॥ ३ ॥

स्वाम और सप्रेम (यजुर्वाची और यजुर्वीची) लहरोंसे देखकर भरतजीका शरीर पुलकित हो उठा और उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—हे तीरथराज । आप समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं । आपका प्रभाव वेदोंमें प्रसिद्ध और संसारमें प्रकट है ॥ ३ ॥

मावर्त भीष स्वणि निब करस । आरत काह न करइ कुरस ॥ ४ ॥

अस चिरै जाति सुखान सुखानी । सकल करहि जग आचल वासी ॥ ५ ॥

मैं अपना धर्म (न मोगनेका धर्मवचन) त्यागकर आपसे भीष मोगता हूँ । भारत-यजुर्वीची भीष कुपर्म नहीं करता । ऐसा हृदयमें खनकर सुखान उसका दानी काममें मोगने-वालेकी वाणीको सदाक दिन करते हैं (अर्थात् यह जो मोगता है तो दे देते हैं) ॥ ४ ॥

दो०—अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहुँ मिरवाव ।

जगम जगम रति राम कह यह बरदातु न मान ॥ २०४ ॥

मुझे न धर्मकी रुचि (इच्छा) है, न कामकी, न कामकी और न मैं मोक्ष ही चाहता हूँ । जग-जगमें मेरा श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम हो, वह सबी बरदान मोगता हूँ, वृत्त कुछ नहीं ॥ २०४ ॥

बौ०—आनहुँ राखु कुटिक करि मोही । कोन कहव गुर सावित्र मोही ॥

सोता राख करन रति मोरें । अनुदिन कह अनुमद सोरें ॥ १ ॥

स्वयं श्रीरामचन्द्रजी भी मने ही मुझे कुटिक समझें और कोन मुझे पृथ्वी तथा स्वामिनीही भैं ही कहें । पर श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें मेरा प्रेम आपकी कृपासे दिन-दिन बढ़ता ही रहे ॥ १ ॥

अछु बचन थरि सुनि विमल । आचल जहु पवि पाहन राख ॥

वातहु छवि कैं छति जाई । नैं प्रेसु सब चरि अछाई ॥ २ ॥

मेरा चाहे अनुमद परमेश्वरी, मुच मुछा दे और वह मोगनेपर वह चाहे वचन और पत्थर (जोले) ही मिरावे । पर पावनकी रत्न पटनेसे तो उसकी बात ही बट जायगी (प्रसिद्धा ही नष्ट हो जायगी) । उसकी तो प्रेम बढ़नेमें ही सब तरहसे मछाई है ॥ २ ॥

ककहि बाल कष्ट भिमि कहैं । सिमि सिक्कम पद प्रेम निजहैं ॥

मरत बचन सुनि माझ त्रिवेनी । नद सुधु ननि सुमंगल देनी ॥ ३ ॥

जैसे तपानेसे सोनेपर गाव (लम्क) का जाती है, वैसे ही प्रियतमसे चरणोंमें प्रेमका नियम निवाहनेसे प्रेमी केकल गौरव बढ़ जाता है । भरतजीके वचन सुनकर बीच त्रिवेणीमेंसे सुन्दर मछल देनास्त्री जोमल वासी हुई ॥ ३ ॥

ताव भरत हुम् सब विधि कपू । राम चरन अनुयाय अछा ॥

बादि मलवि कहु मन महीं । तुम्ह सब समदिकोदयिवाही ॥ ४ ॥

हे तात भरत ! तुम सब प्रकारसे साधु हो । श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें तुम्हारा
अथाह प्रेम है । तुम व्यर्थ हो मनमें खल्लि कर जं रो । श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे समान
प्रिय कोई नहीं है ॥ ४ ॥

श्री०—ससु पुलकेत हिरी हरपु मुनि येनि वचन अनुकूल ।

मरत व्यस कहि धन्य हुर हरपित घरपति फूल ॥ २०५ ॥

त्रिवेणीजीके धनुकूल वनस जुनकर भगवतीका परीर पुष्पकित हो गया, हृदयमें हर्ष
गया । भगवती धन्य है, धन्य हैं कङ्कर देखा हर्षित होकर फूल बरसने लगे ॥ २०५ ॥

चौ०—प्रमुदित तीर्थसख निवास । दैत्यबधे पहुँची उदासी ॥ २०६ ॥

कहि पञ्चर निदि दस पाँच । भरत जनेहु सील सुधि साँच ॥ १ ॥

सौर्यांग प्रपन्नमें जनेबाने जानप्रस, वसुधाचारी, वृद्धव्य और उदारार्थ (सन्वासी)
मग बहुत ही आनन्दित हैं और दस-पाँच मित्रर धायसमें करते हैं कि भरतजीका
प्रेम और मोल पवित्र और सख है ॥ १ ॥

सुनत राम सुन प्रस सुबाए । भरतस मुनिपर पति आगु ॥

ईद प्रवास सत मुनि देहे । सुनिर्मल भाग्य चित लेखे ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर गुणगुणोंको सुनते हुए वे मुनिगण भरतजीको पास आये ।
मुनिने भरतजीको वृद्धव्य-प्रवास करते देखा और उन्हें अमल पूर्विकामुखी भाग्य समझा ॥ २ ॥

बाह उठई काह कर सीन्हे । दीन्ह असीस सुतारख कीन्हे ॥

भासहु दीन्ह नद सिर पैटे । चहत सकुच गुरे कपु भजि पैटे ॥ ३ ॥

उन्होंने दीङ्कर भरतजीको उठाकर हृदयसे सग मिया और असीसाई देकर
कपार्थ किया । मुनिने उन्हें आसन दिया । ये मिर नङ्गाकर उस वरई बैठे मानो
भागकर सकेनके घरमें पुत्र आना चाहते हैं ॥ ३ ॥

मुनि पूछ्य कहु यह वष खेचू । कोले लेपि कवि सीलु सँकोचू ॥

सुपहु भरत हम सब मुनि पदे । विधि कलक पर किछु न पतार्ह ॥ ४ ॥

उनके मनमें यह वष खेच है कि मुनि कुछ पूछेंगे [तो ये क्या उत्तर देंगे] ।
भरतजीके सील और तकीवजो देखकर मुनि बोले—भरत ! मुने, लाल खर खबर प
बुके हैं । विधातके कर्तव्यकर कुछ का नहीं करता ॥ ४ ॥

श्री०—गुह्य गलानि त्रिर्य मचि करहु समुधि मानु करतुति ।

सात कैकहि दोसु गहि नई पिरा मति धूति ॥ २०६ ॥

भरतजी करतुको समझकर (बाह करके) तुम हृदयमें खल्लि मत करो । हे
तम ! कैकेयीका कोई दोष नहीं है, उसकी बुद्धि तो सरस्वती निवाह गयी थी ॥ २०६ ॥

श्री०—सदह कल मल कहिदि न कोऊ । लोहु वेहु सुप संमत दौऊ ॥

तत सुन्दर मिळ नहु पाई । पवहि लोहउ वेहु बडाई ॥ १ ॥

यह कहते थी कोई मल न छोड़ा, क्योंकि लोह और वेद दोनों ही विद्वानोंको मान्य
हैं । किन्तु हे तात ! तुम्हारा निर्भयव्यथाकर तो लोह और वेद दोनों बड़ाई पावेंगे ॥ १ ॥

लोह वेद संमत सब कहई । वेदि विदु वेद सब सो कहई ॥

उठ सकलत सुददि कोहई । वेत सब सुख भस्सु बडाई ॥ २ ॥

यह लोक और वेद दोनोंको मान्य है और सब यही कहते हैं कि रिता जिसको
राज दे चरी पात्र है । राजा सत्कृती ने। तुम्हारे सुखकर राज देते, तो मित्राः
भरत रहता और बड़ाई होती ॥ २ ॥

राम गवधु बध अनन्य मूल । जो सुनि सकल विप्र भद्र मूल ॥
 सो भावी भव राशि कमान्नी । करि कुन्निहि भंजुं पक्षितानी ॥ ३ ॥
 सारे अनर्पकी चह तो श्रीरामचन्द्रजीक कसामन है, जिसे सुनकर समस्त संचारको
 पीड़ा हुई । यह श्रीरामक कसामन भी मानीवश हुआ । नेसमहा रानी तो मानीवश
 कुचाल करके अन्तमें पकड़ली ॥ ३ ॥

तहाँ तुम्हारे मरु अरुण । कई सो कसम कथाव असाध ॥
 कन्तेहु राख त तुम्हारे न दोष । समहि होत सुबत संतोष ॥ ४ ॥
 उसमें भी तुम्हारा कोई तनिक-सा भी अपराध-कहे, तो वह अवध, अज्ञानी और
 असाध है । यदि तुम राख करते तो भी तुम्हें दोष न होता । सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको
 भी सन्तोष ही होता ॥ ४ ॥

तो—भव अति कीन्हेहु भरत मल तुम्हारे उचित मत यह ॥ ५ ॥
 सकल सुमंगल मूल जग रघुवर चरण सनेहु ॥ २०७ ॥
 हे भरत ! अब तो तुम्हारे बहुत ही अच्छा किया; वही मत तुम्हारे लिये उचित था ।
 श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रेम होना ही संसारमें समस्त सुख मङ्गलका मूल है ॥ २०७ ॥

चौ—सो तुम्हारे बसु जीवहु प्राण । भूरिमान को तुम्हारे समान ॥ २०८ ॥
 यह तुम्हारे मरु अरुण । दसव सुखन राम मिय आत ॥ १ ॥
 सो यह (श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका प्रेम) तो तुम्हारा धन, जीवन और प्राण ही
 है। तुम्हारे समान वधुभागी कौन है ? हे रात ! तुम्हारे लिये यह आवश्यक बात नहीं है ।
 क्योंकि तुम दशरथजीके पुत्र और श्रीरामचन्द्रजीके प्यारे भाई हो ॥ १ ॥

सुनहु भक्त रघुवर मय माहीं । प्रेम पातु तुम्ह सन कोर माहीं ॥
 कलन राम लीकहि अति प्रीति । निस्ति सब तुम्हारे छराहत प्रीति ॥ २ ॥
 हे भरत ! सुनो, श्रीरामचन्द्रके मर्मों तुम्हारे समस्त प्रेमका दूरा कोई नहीं है ।
 कश्मणजी, श्रीरामजी और सीताजी तीनोंके लारी रात उच दिन अत्यन्त प्रेमके साथ
 तुम्हारी सहायना करते ही नीती ॥ २ ॥

जाणा मरु यहत प्रेमप्र । समन होहि तुम्हें अनुप्राण ॥
 तुम्ह पर भक्त सनेहु रघुवर कें । सुख जीववचन कात जब कर कें ॥ ३ ॥
 मयागरागमे सब व कान कर खे ये, उत सत्य मैंने उनका यह मर्म जाना । हे
 तुम्हारे प्रेममें मम हो खे ये । तुमपर श्रीरामचन्द्रजीका ऐसा ही (अगाध) स्नेह है जैसा
 मूर्ख (विषयासक्त) मनुष्यका सवासे सुखमय जीवनपर होता है ॥ ३ ॥

यह व अधिक खुबोरे बसाई । प्रचल तुम्हें फल रघुवाई ॥ २०९ ॥
 तुम्ह ली भक्त मोर भक्त यह । जरे देह जनु राम सनेहु ॥ ४ ॥
 यह श्रीरघुनाथजीकी बहुत बढ़ाई नहीं है । क्योंकि श्रीरघुनाथजी तो शरणागतके
 कुटुम्बपरको पालनेवाले हैं । हे भरत ! मेरा यह मत है कि तुम तो मानो शरीरधारी
 श्रीरामजीके प्रेम ही हो ॥ ४ ॥

चौ—तुम्ह कई मरत कलंक यह हम सब कहीं उपदेश ।
 राम मगति रस सिद्धि हित भा यह समझ गनेहु ॥ २१० ॥
 हे भरत ! तुम्हारे लिये (तुम्हारी कसमें) यह कलङ्क है, पर हम सबके लिये तो
 उपदेश है । श्रीराममहिम्नारी रसकी सिद्धिके लिये यह समझ गबोध (बड़ा ध्रुम)
 हुआ है ॥ २०८ ॥

चो०—नमः किं विमल हात लखु सोस । राहुवर किंकर कुमुद चकोर ॥

कहिल सख जैवहि कर्णू नव । बहिरि बचनमदिन दिन हुना ॥ १ ॥

हे रात ! तुम्हारा क्या निर्मल नवीन चन्द्रमा है और भीरामचन्द्रकी दास कुमुद और चकोर हैं [वह चन्द्रमा तो प्रतिदिन बल होत और बढत है, सितते कुमुद और चकोरको दुःख होता है] : परन्तु यह तुम्हारा कलसी चन्द्रमा क्या बढत रहेगा; कभी अल होगा ही नहीं । तत्प्राप्त्यीष्टाच्छास्त्रमें यह धरणा नहीं; वर दिन-दिन दुःख होत ॥ १ ॥

चो०—कोक शिखर प्रीति बसि बरिही । प्रभु प्रलय रवि छविहि न हरिही ॥

विशि दिव सुखद सख सख कहू । बहिरि न केवळ करखु रहू ॥ २ ॥

त्रैलोक्यवर्ती चक्रवा इत बचसी चन्द्रमापर मलमल प्रेम करेगा और प्रभु भीरामचन्द्रकी प्रत्यक्ष रूपी सूर्य इतकी छविचे हरण नहीं करेगा । यह चन्द्रमा रतन-दिन का सब किरणों से सुख देनेवाला होगा । केनेभीज कुकर्मासी राहु ऐसे काय नहीं करेगा ॥ २ ॥

चो०—पूरत राम सुखे सिबुहा । नर कर्मसाधु शीब कहि दुपा ॥ ३ ॥

चो०—राम भगत भग बसिजे गमहू । कीर्तन सुख सुख बसुधाई ॥ २ ॥

यह चन्द्रमा भीरामचन्द्रकी तुन्दर प्रेमरूपी अमृतसे पूर्ण है । यह तुम्हके अपमानकर्त बोरते वृषित नहीं है । तुम्हने इस राक्षसी चन्द्रमाकी छवि करके दृष्टीपर भी अमृतकं कुलम कर दिया । सब भीरामजीके माह इस अमृतसे कृत हो लें ॥ ३ ॥

नृप जयैरथ सुखसि जानी । सुनिहत सकल सुमंगल कामी ॥

बसव नृप रथ बसि न जाहीं । भविष्य कहा वेदि छम लग जाहीं ॥ ४ ॥

राजा भवित्य सहायको लये, किन (सहायी) का कारण ही सम्पूर्ण दुःख मल्लोकी जान है । अरपय्यके शुभसमूहोंका तो वर्णन ही नहीं किना जा सकता; भविष्य ज्ञान, किनकी बराबरीका सफल कोई नहीं है ॥ ४ ॥

चो०—शाहु सखेह सकोच बस राम प्रमद भय माह ।

चो०—जे हुर हिय नयननि कर्णू निरखे गहीं भवाह ॥ २०९ ॥

किन्हे प्रेम और सकोच (सीत) के कर्णों होकर तब [त्रिबलानन्दवन] भगवान भीराम आकर प्रकट हुए, किन्हे भीमहादेयजी अपने हृदयके नेत्रोंसे कभी अवकाश नहीं देख पाये (अर्थात् किन्हा सकल हृदयमें देखते-देखते बिपत्ती कभी वृत्त नहीं हुए) ॥ २०९ ॥

चो०—सीति विहु दुख कीन्ह भयल । खैं बस राम येव सुखला ॥

रात गछवि कहू किबें भायें । उरहु परिदि पाखु पायें ॥ १ ॥

[परन्तु उनके भी बदकर] तुम्हने श्रीरामजी गलुपन चन्द्रमाको उलम किना शिल्पमें भीरामप्रेम ही दिखते [बिहारे] रूपमें बसत है । हे रात ! तुम स्वयं ही हुरपा नानि कर रहे हो । भयल पाकर भी तुम बखितवसे कर रहे हो ! ॥ १ ॥

कुमुद नख इस छत्र न कहहीं । उदासीन जपस बन रहहीं ॥

कय सखन कर सुख सुखवा । कसब राम सिव दसमु पाबा ॥ २ ॥

हे रात ! सुख, इस छत्र नहीं कहते । हम उदासीन हैं (किरीका फल का बरत), सखी हैं (किसीकी दुःख-देखी नहीं करते) और वनमें रहते हैं (किरीके कुल मणोलन नहीं रहते) । कय सखनों का उलम फल हमें ज्ञानवली, भीरामजी और सीत कीका दर्शन प्राप्त हुआ ॥ २ ॥

वेदि फल कर रहू बसल पुनहा । खेहि बसव सुभास हमारा ॥

भगत पश्य दुख ननु जसु कसक । कहि बस येव मगवसुनि मयक ॥ ३ ॥

[सीता-व्यसमपवित श्रीरामदर्शनम्] उक्तं महान् प्रसन्न परम फल यद् तुम्हारा दर्शनम् । प्रयापरागसमेतं हर्षणं बद्धा भाग्यम् है । हे मन्त्र ! तुम धन्य होते तुमने अपने मन्त्र से आत्मीको जीत लिया है । देख कर तुम प्रेमी में आ हो गये ॥ ३ ॥

मुनि मुनि बचन सभासद हरये । सखि सखि तुम्हारे सुर धरये ॥

धन्य धन्य मुनि गन्धर्व धन्य । धुनि मुनि मन्त्र मन्त्र अमुता ॥ ४ ॥

भरद्वाज मुनिके बचन सुनकर सभासद हर्षित हो गये । 'सखि-सखि' कहकर सराहना करते हुए देवताओं ने पूछ करताने । आकाशमें और प्रयागपरागमे धन्य, धन्य श्री धुनि मुनि सुनकर भरद्वाजी प्रेमी में गये हो रहे हैं ॥ ४ ॥

श्री०—पुलक गात हिर्षे रसु त्वि सखि सखि सखि नैम ।

करि प्रनामु मुनि मन्त्रिहि वोले यदयद वैम ॥ २१० ॥

मरतबीका धारी पुलकित है, हृदयमें भीतीतरामयी है और कमलके समान नेत्र [प्रेमधुके] गलते भरे हैं । वे मुनियोंकी मन्त्रजीको प्रणाम करते यदयद बचन बोले—॥ २१० ॥

श्री०—मुनि समस्त भव लीरवधम् । सखिहि सखि सखि अन्तः ॥

एहि धन्य श्री किमु कहिय बनावै । एहि सखि धनिक य सख मन्त्राई ॥ १ ॥

मुनिबोका उभाव है और फिर लीरवध है । वहाँ सभी लीरवध साजते भी भरपूर हानि होती है । इस स्थानमें यदि कुछ बनाकर कहा जाय, तो इसके समान कोई बड़ा पाप और नीचता न होगी ॥ १ ॥

तुम्हारे सर्वभूत कहैं सखिभक्त । कर अंतर्यामी एतुक्त ॥

सौहि न मातु कलम कर सोचू । यदि तुम्हारे भिन्न भुक्त भिन्निये ॥ २ ॥

मैं अपने भावों के प्रकृत हूँ । आप सर्वज्ञ हैं, और भीरुनामकी हृदयके भीतरकी जाननेवाले हैं (मैं कुछ भी कहकर कहूँगा तो आपसे और उन्ने छिपा नहीं रह सकता) । तुमसे माता कैलीकी करनीय कुछ भी सोच नहीं है और न मेरे मने इसी बातका दुःख है कि काल तुमसे नीच समझाया ॥ २ ॥

बाहिल धन्य विगारिहि करकोट । विपुल मन्त्र कर सौहि न सोचू ॥

सुष्ठुत सुष्ठुत धरि सुष्ठुत सुष्ठुत । कलिमन राम सरित सुत पाए ॥ ३ ॥

न गयी कर है कि मेरा परलोक किम्ह जन्मवा और न पिताजीके मरनेका ही तुमसे शोक है । क्योंकि उनका सुन्दर पुत्र और सुयश विषमराम सुखोभित है । उन्होंने भीराम-सखन-सखीले पुत्र पाये ॥ ३ ॥

राम बिरहें सखि सखि सखि सखि । धन्य लीन कर कनक मन्त्र ॥

राम कलम त्वि धिनु का पमही । करि मुनिवेध फिर्हि बच चमही ॥ ४ ॥

फिर जिन्होंने भीरामचन्द्रजीके विराहमें अपने भवमन्त्र धरिस्के त्याग दिया, येते राजाके लिये सोच करनेका कौन प्रसन्न है ? [सोच इसी बातका है कि] भीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी वैरोधे निना शरीके मुनिबोका नेत्र बनाये बन-कामे चिले हैं ॥ ४ ॥

श्री०—अजित शत्रुज फल असन गहि सखि सखि सखि पात ।

बलि सखि सखि सखि सखि हिम अन्तः परया वात ॥ २११ ॥

वे बलक-बल परानते हैं, फलैक भोजन करते हैं, वृषीर-कुश और पते पिताकर सोते हैं और वृषीके नीचे निवास करके नित्य सखी, गर्म, गर्म और हवा सहते हैं ॥ २११ ॥

श्री०—एहि दुख दाई दहद दिव लखी । पूछ न कलम नौद य राती ॥

एहि कुटोम कर जीवत गही । सोचें सखि नित मन्त्र भाटी ॥ १ ॥

रही दुःखकी जगजसे मिलनर येरी छाती बढी रहती है । मुझे न दिनमें मूख लगती है, न रातको नींद आती है । मैंने राम-ही-मन समझ विषको खोल बाधा, पर हच कुतोगी औरक कहीं नहीं है ॥ १ ॥

मरुत कुम्भन चढ़ै जय मूल । तेहि हमर हित कीन्ह बैसुल ॥

कहि गुण्य कर कीन्ह कुर्व । नादि नयनि पदि करिन कुमंजू ॥ २ ॥

माताका कुम्भ (गुण विचार) पत्तेका मूल बढ़ाई है । उसने हमारे हितका धरल बनाया । उसने परब्रह्मी कुम्भ-कुम्भ बनाया और चौदह वर्षकी अवधिकी कठिन पुन्य पदकर उस कुम्भको गाड़ दिया । [यहाँ माताका कुम्भ-विचार बढ़ाई है, भरतको राजा बरुल है, रामका वनवास पुन्य है और चौदह वर्षकी अवधि कुम्भ है] ॥ २ ॥

मोहि कति पंडु कुण्ड रोहि गल । बाकेसि सय जगु बरुलकाट ॥

मिह कुण्डो राम चिरि आई । बरु मरु बहि आन ठपाई ॥ ३ ॥

मेरे लिये उसने वह सय कुण्ड (गुण सय) रचा और लारे बरुको बरु-काट (छिन-मिन) करके नष्ट कर बाधा । यह कुण्डो श्रीरामचन्द्रजीके लौट आनेपर ही मिल सकता है और तभी अनोखा बस सकती है, दूसरे किसी उपायसे नहीं ॥ ३ ॥

मरुत बचन सुनि मुनि सुख सई । सगहि कीन्हि वहु मोहि बरु ॥

जात जगु जनि सोनु मिलेरी । सब सुख मिहिहि सम दग बेसी ॥ ४ ॥

मरुतजीके वचन सुनकर मुनिने सुख प्राप्त और सभीमें जननी बहुत प्रकरसे बढ़ाई की । [मुनिने कहा—] दे जात । अधिक सोच मत करो । श्रीरामचन्द्रजीके वरगोका दर्शन करते ही सारा दुःख मिट जाना ॥ ४ ॥

रो०—हरि प्रबोधु मुनिवर कहेव अतिथि प्रेमप्रिय होहु ।

कंद मूल फल फूल हम देहि लेहु करि छोहु ॥ ५ ॥

इस प्रकार मुनिबोधु भुरजावलीने उनका स्थापान करके कहा—अब आपलोग हमारे प्रेमप्रिय अतिथि बनिये और हम करके कन्द-मूल, फल-फूल को कुछ हम दें, स्वीकार कीजिये ॥ ५ ॥

बो०—मुनि मुनि वचन भरत द्विये छोव । भवत कुम्भवर कलि सँवोव ॥

जाति गल गुर मिरा बहोरी । बरु बंदि बोके कर मोरी ॥ ६ ॥

मुनिने वचन सुनकर भरतके हृदयमें सोच हुआ कि यह वेदीके बड़ा वेदव संकोच आ पड़ा । फिर गुरजनौकी शणीको महापुरुष (आत्मरपीय) समझकर, वरगोकी कन्दना करके शय जोड़कर बोले— ॥ ६ ॥

सिर धरि कायसु करिज गुम्हारा । परम परम वहु काय हमारा ॥

भरत वचन सुनिवर मय माप । सुविसेरक सिव विवक बोकाप ॥ ७ ॥

दे नाथ । आपकी आज्ञाको सिर चढ़ाकर उसका फलन करना, यह हमारा परम धर्म है । भरतजीके ये वचन मुनिबोधुके मनको अच्छे लगे । उन्होंने निचावगव सेवकों और शिष्योंको पास बुलाया ॥ ७ ॥

काहेन कीन्ह सरत पधुनाई । कंद मूल फल आबहु आई ॥

भलेहि नाथ कदि निह सिर माप । प्रमुदित विव निवकन सिधाप ॥ ८ ॥

[और कहा कि] मरुतजी बहुत ही बरनी चाहिये । आपका कन्द, मूल और फल लो । उन्होंने दे नाथ । बहुत अच्छा कहकर सिर सजवा और लव वे बने आनन्दित होकर अपने-अपने कामको चल दिये ॥ ८ ॥

मुनिहि सोच पाहुन कइ केता । तसि पूजा चाहिअ कइ देवता ॥

मुनिविधि सिधि अनिमादिक जाई । जानहु होइ सो कर्नाई मोछाई ॥ ४ ॥

मुनिको चिन्ता हुई कि हमने बहुत को भोगमनको न्योता है । अब जैसा देखा हो, नैसी ही उसकी पूजा भी होनी चाहिये । वह मुनकर श्रुतिवाँ और अणिमादि सिद्धिवाँ आ गयो [और बोली—] हे योगाई । जो आपसी वात्स्य हो सो हम करें ॥ ४ ॥

दो०—राम विरह व्याकुल भरतु साजुन सहित समाज ।

पाहुनाई करि हरहु अम काज मुदित मुनिपज ॥ २१२ ॥

मुनिराजने प्रसन्न होकर कदा-छोटे भाई शकुन और रामनन्दन मरतजी श्रीरामचन्द्रजीके विरहमें व्याकुल हैं; इनकी पाहुनाई (आतिथ्य-सत्कार) करके इनके भग्नको दूर करो ॥ २१२ ॥

चौ०—रिधि सिधि धिर धरि मुनिबर साची । कवमागिनि जगुहि कतुमायी ॥

कहिदि परतनर सिधि समुदाई । अमुनिव कहियि राम लघु भाई ॥ १ ॥

श्रुति-सिद्धिने मुनिराजजी आज्ञाको धिर चढकर अपनेको बढमागिनी समझा । सब सिद्धिवाँ आत्मसमं करने लगीं—श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई भरत ऐसे कतिपि हैं जिनकी तुल्यतामें कोई नहीं आ सकता ॥ १ ॥

मुनि पर धेदि करिअ सोइ जानू । होइ मुनी उम धाम समाज ॥

भल कहि रवेव खरि राइ बाण । केहि निहोकि विरहसाई विमाना ॥ २ ॥

अज्ञः मुनिके बरगोष्ठी पन्दना करके आज बही करना चाहिये किन्तु सारा राम-समाज छुड़ी हो । ऐसा कहकर उन्होंने बहुत-से सुन्दर वर बनाये, जिन्हें देखकर विमान भी विह्वलते हैं (क्या करते हैं) ॥ २ ॥

भोग विमृति श्रुति धरि लखे । देखत किन्हिदि, अमर अनिमलये ॥

दासी दास लख लख कहिये । भोगसत कहिये नन्दि मनु दीर्घ ॥ ३ ॥

उन बरोंमें बहुत-से भोग (इन्द्रियोंके विषय) और ऐश्वर्य (डाढ-बाढ) का सत्तान भरकर रस दिया; जिन्हें देखकर देवता भी लज्जित बने । दासी-दास लख प्रकार-की सामग्री लिये हुए मन अवसर उनके मनोको देखते राते हैं (अर्थात् उनके मनकी शक्ति अनुसार करते रहते हैं) ॥ ३ ॥

सम समाज सति सिधि कर महीं । के भुक् सुखर सगैहूँ काहीं ॥

प्रथमहि बाज दिव सब केही । सुख सुखद सब कहि केही ॥ ४ ॥

जो मुनिके सामान स्वर्गमें भी सप्तर्षमें भी नहीं हैं ऐसे सब सामान विद्विषोंने पद-मदमे छन दिये । पहले तो उन्होंने उन कित्तीको, कित्ती केही वधि भी बैसे ही, सुन्दर सुखदायक निकालसान दिये ॥ ४ ॥

दो०—बहुरि सपरिजान मरत कहूँ रिधि अम अवसु दीन्ह ।

विधि विसमय दासकु विमल मुनिवर सपथके कीन्ह ॥ २१४ ॥

और फिर कुटुम्बकहित मरतजीको दिये, क्योंकि श्रुति मरदाजनीने ऐसी ही आज्ञा दी रखी थी । [मरतजी चाहते थे कि उनके लघु संतानोंको अराम मिले, इसलिए उनके मनकी बात जानकर मुनिने पहले उन लोगोंको खान देकर पीके स्मरितार मरत-जीको खान देनेके लिये आज्ञा दी थी ।] मुनिने उन तपोन्मुख अज्ञानों की चरित्र कर देनेवाला वैभव रच दिया ॥ २१४ ॥

चौ०—मुनि प्रगाढ जग मरत निहोका । सब कहु लो कोकपति कोक ॥

सुख समाज यहि कहि कहाने । देखत निरि विरहसाई गवाने ॥ १ ॥

वय भरतजीने मुनिके प्रसन्नको देखा। तो ठहरे सामने उन्हें [इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर आदि] सभी लोकपालके लोक तुच्छ नान पड़े। सुखकी सामग्रीका रचन नहीं हो सकता। निसे देखकर अनीलोग भी वैराग्य मूल जाते हैं ॥ १ ॥

आसन सयन सुबसन बिलस। वय काटिअर विद्वय धूम माना ॥

सुरभि फूल फल अमिल समन्ता। विमल जलसय विविध विधाना ॥ २ ॥

आसन, वेद, मुन्दर वस्त्र, चैद्योच, वट, वलीचे, भोंसि मोंसिके पत्ती और पशु, सुगन्धित फूल और अमृतेके समान स्वादिष्ट फल, अनेकों प्रकारके (जलान, कुएँ, धाकड़ी आदि) निर्मल जलधनुः ॥ २ ॥

असय पास सुनि अमिल समी से। देखि लोच सकुचात समी से ॥ ३ ॥

सुर सुरभी सुसल सखी हैं। सबिअमिलसु सुरेस सखी हैं ॥ ३ ॥

तथा अमृतके भी अमृत-सरीसे फविष खान-पानके पदार्थ थे, जिन्हें देखकर सब लोग संपत्ती पुरी (चिरक मुनिके) की भोंसि सकुचा रहे हैं। समीके डेरमें [नजोपाकिष्ट वस्तु देनेवाले] अमनेतु और अमरुह हैं, जिन्हें देखकर इन्द्र और इन्द्राणीको भी अमिमात्र होती है (उनका भी मन ललचा जाता है) ॥ ३ ॥

रितु बलत यह विविध बचारी। सब कहँ सुकल पदार्थ चारी ॥

सक संदुख सविशेषि भीषा। देखि हरर बिलसय बल लोषा ॥ ४ ॥

सकल शत्रु है। शीतल, गरम, सुगन्ध तीन प्रकारकी दवा वह रही है। समीको [धर्म, धर्म, काम और मोक्ष] चारों पदार्थ सुकल हैं। मल, चन्दन, श्री आदिक भौमिकों के देखकर सब लोग हर्ष और विषादके बन्ध हो रहे हैं। [हर्ष को भोग-सामग्रियोंकी और मुनिके दयाप्रभावको देखकर होना है और विषाद इस बातके होता है कि भौगमके कियोगमें नियम-अवस्था रखनेवाले हमलोग भोग-विलासमें क्यों आ गये, कहीं इनमें आसक्त होकर हमारा मन नियम-अवस्थाकी न त्याग दे] ॥ ४ ॥

श्री—उपति सबहँ भरत एक मुनि भाएत खेखार। ॥ ५ ॥

तेहि भिक्षि नामम पिछरी पावे मा मिमसार ॥ ५ ॥

उपति (भोग-विलासकी सामग्री) बचती है और भरतजी चकता हैं, और मुनिकी भाषा श्रेष्ठ है, जिसने सब शत्रुको आश्रयस्वी सिंजमें दोमोंको बंद कर रक्ता और ऐसे ही खेरा हो गया। [जैसे किसी कोठिके द्वारा एक सिंजमें रखे जानेपर भी चकती-चकनेवाला रातकी संयोग नहीं होता, वैसे ही भद्रावलीकी आज्ञासे रातमर भोग-सामग्रियोंके साथ रहनेपर भी भरतजीने सबको भी उनका स्पर्शक नहीं किया।] ॥ ५ ॥

ससपारासण, सचीसर्वा विशाम

श्री—कीर्त निमन्त्रुं वीरवराणा। काह मुनिहि सिम लहित समन्त्रा ॥

रिपि वाक्यु लीस सिर रासी। करि दंडवत विनय खु मारी ॥ ६ ॥

[प्रातःकाल] भद्रावलीने वीर्यधर्मों खान किया और सम्भवतः मुनिकी सिर नचाकर और शक्तिहीन आज्ञा तथा व्याख्यादिके सिर चढ़ाकर दण्डकर करके बहुत निनती की ॥ ६ ॥

यय गति कुलक लाम सब लीये। सबे विमन्त्रहि सिम दीये ॥

रामसभा कर दीये कर। सब देह करि खु मारी ॥ ७ ॥

उदन्तर रासोत्री पहनन रखनेवाले लोगों (कुलक पकड़नेवाले) के साथ सब

लोगोंको लिये हुए भक्तजी विचकृत्यों पित्त लहाने लगे । भक्तजी रामकहा तुम्हारे हाथ-
में दाय दिने हुए ऐसे ना रहे हैं, मनो साक्षात् प्रेम ही सपरि परम पिने हुए हो ॥२॥

नहिं ॥ प्राण सीध नहिं, जल ॥ वेसु वेसु मनु परसु असावा ॥ ३ ॥

कमान राम सिव पंथ कहानी । पूरुत सखि कहत मनु कानी ॥ ३ ॥
न तो उनके पैरोंमें खुले हैं, और न सिलर जमा है । उनका प्रेम: नियम, मत
और धर्म निष्कमट (॥३॥) है । वे सखा निषादरान्धो केसवजी, श्रीरामचन्द्रजी और
भोजनीके रास्तेकी बातें पूछते हैं, और वह प्रेमका वाणीसे कहता है ॥ ३ ॥

राम पाठ कह किन्तु बिलोके । हर मनुष्य कहत नहिं सेकें ॥

हेलि रसा मुर परिसिद्धि पूछ । गहमदुमहि मनु मंगल मूल ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके ठहरनेकी चकड़ों और छल्लोंके देखकर उनके हृदयमें प्रेम रोके
नहीं सकता । भक्तजीकी यह, रस देखकर देखत पूछ बरकाने लगे । पुष्पी कोमल हो
गयी और मार्ग मङ्गलका मूढ बन गया ॥ ४ ॥

दो०—किर्ये जाहिं छाक सखद सुखद बहद बर वस ।

तस मनु मयच न राम कहैं अस भा भरखहि जस ॥ २१६ ॥

बादल छाया किये लगे रहे हैं, ॥३॥ देनेवाली मुन्दर हवा यह रही है । भक्तजीके
माते समय मार्ग लैला सुखदप्रक दुखा, वेस श्रीरामचन्द्रजीके ही नहीं दुखा का ॥२१६॥

चौ०—बाद बैलन जग जीम जमेरे । जे बिलद मनु बिन्द मनु देरे ॥

हे लज भए परम पद जोग । वसत रस मेध भव पैनु ॥ १ ॥

रास्तेमें भटवय जग-बैलन जीव वे । उदमेंसे बिनको मनु श्रीरामचन्द्रजीने देखा,
अथवा निनौने मनु श्रीरामचन्द्रजीके देखा वे लव [उही समय] परमपदके अधिकारी
हो गये । परन्तु अब भक्तजीके दर्शनने लगे उनका भग (जन्म-मरण) स्त्री रोग मिटा
ही दिया । [श्रीरामदर्शनसे लगे वे परमपदके अधिकारी ही हुए थे, परन्तु भक्तवर्धनके
उन्हें यह परमपद प्राप्त हो गया] ॥ १ ॥

बह बने बात मल कह कहैं । सुमित्ति बिनहि मनु भव माहीं ॥

बाक राम कहत लज मेध । होत लव लव बर सेक ॥ २ ॥

भक्तजीके लिये यह कोई नयी बात नहीं है, जिन्हें श्रीरामजी स्वयं अपने मनमें
स्मरण करते रहते हैं । जगत्में जो भी मनुष्य एक बार राम का लगे हैं, वे भी अपने-
तारनैवाले हो जाते हैं । ॥ २ ॥

मनु राम मिय पुनि लु पाछ । मस न होइ मनु मंगलदा ॥

बिन्द साधु सुनिपर मस कहैं । मलहि किन्ति हरि दिखै कही ॥ ३ ॥

किर भक्तजी तो श्रीरामचन्द्रजीके प्यारे तथा उनके छोटे भाई ठहरे । उन मज
उनके लिये मार्ग मङ्गल (सुख) दाक कैसे न हो ! सिद्ध साधु और मोक्ष पुनि देख
कह रहे हैं और भक्तजीकी देखकर हृदयमें हर्ष लज्ज करते हैं ॥ ३ ॥

वेकि प्रमद सुरेसि सोय । मनु भव जमेरे सोय कहैं सोय ॥ ३ ॥
पुन सन कहै करि लु सोई । समहि मलहि जे न होई ॥ ४ ॥

भक्तजीके [इस प्रेमके] प्रभावसे देखकर देखत हृदयके खोज हो गया [कि
कहीं इनके प्रेमका श्रीरामजी लौट न जायें और इसका बल-बलना भग सिद्ध जग] ।
मगर मछेके ॥ मज और लुके लिये हुए थे (मनुष्य लैला जग देख है मनुष्य

उने बैठा ही दीखता है) । उसने गुन बहसकीबीसे कहा—हे शत्रो ! वही उपाय कीजिये जिससे श्रीरामचन्द्रजी और भरतजीकी मर्द ही न हो ॥ ४ ॥

दो०—राम सँकोची प्रेम बस भरत सेवम पयोधि । २१७

बनी बात वेगारन चहुति करिअ जतनु छलुं सोधि ॥ २१७ ॥

श्रीरामचन्द्रजी सँकोची और प्रेमके कष्ट हैं और भरतजी प्रेमके समुद्र हैं । बनी-बनायी बात विगड़ना चाहती है, इसलिये कुछ छट हँदकर इसका उपाय कीजिये ॥ २१७ ॥

बो०—अबन सुगत सुरगुह सुमुझने । साहसवपन बिनु सोचन जाने ॥

मायापति सेवक सन माया । मरहू ठ उरुति परहू सुरराया ॥ १ ॥

इन्द्रके वचन सुनते ही देवगुन बहसकीबी मुसकराये । उन्होंने हजार नेत्रोंवाले इन्द्रको [शानरूपी] देखते रहित (मूर्ख) समझा और कहा—हे देवराल ! मायाके साथी श्रीरामचन्द्रजीके सेवकके साथ कोई मया करता है तो वह उल्टकर अपने ही ऊपर आ पड़ती है ॥ १ ॥

तब किछु कीन्ह राम सब जाणी । अब झुकाकि करि होइहि हानी ॥

मुहुं भुरेस खनुनाथ सुभाऊ । निज अपराध रिखाई न काऊ ॥ २ ॥

इस समय (पिछी वार) ही श्रीरामचन्द्रजीका सब जानकर कुछ क्रिया था । परन्तु इस समय झुकाऊ करनेसे हानि ही होगी । हे देवराल ! श्रीखुनाथजीका स्वभाव झुनो, वे अपने प्रति किये हुए अपराधसे कभी सब नहीं होते ॥ २ ॥

जो अनराधु भगत कर करई । राम रोष पावक सी जराई ॥

लोकहुं नेह विहित इतिहास । यह महिमा जगहिं दुरावास ॥ ३ ॥

पर जो कोई उनके भक्तका अपराध करता है, वह भीरमकी शोभासिमें मग जाता है । लोक और नेह दोनोंमें इतिहास (कथा) प्रसिद्ध है । इस महिमाको दुर्वासाजी मानते हैं ॥ ३ ॥

भरत सखिअ को राम समेही । जनु अप राम रामु अप जेही ॥ ४ ॥

बारा बार श्रीरामकी कथा है, वे श्रीरामजी, बिनकी कथते हैं उन भरतजीके समान श्रीरामचन्द्रजीका प्रेमी कौन होगा ! ॥ ४ ॥

दो०—ममहुं न जानिम अमरपति रघुवर भगत भकाहु ।

अबहु लोक परलोक दुख दिन दिन सोक समाहु ॥ २१८ ॥

हे देवराल ! रघुकुलसेठ श्रीरामचन्द्रजीके मरुका कथ विगड़नेकी बात मनमें भी न लाइये । ऐसा करनेसे लोकमें अपयश और परलोकमें दुःख होभा और धोक्का सागान दिनोदिन बढ़ता ही चल आकगा ॥ २१८ ॥

बो०—मुहुं भुरेस जगहेसु हमार । रामहिं सेवक परम विचार ॥

मानत मुहुं सेवक सेवजई । सेवक पैर पैर भक्तिहई ॥ १ ॥

हे देवराल ! हमारा उपदेश झुनो । श्रीरामजीको अपना सेवक परम प्रिय है । वे अपने सेवककी सेवसे कुछ मानते हैं और सेवकके साथ वैर करनेसे कदा मारी वैर मानते हैं ॥ १ ॥

जराबि सम बहिं राम व रोष । गहहिं न पाप पण्डु गुन दोष ॥

कथ प्रभाव निज करि राखा । जे अस कहे सो सस कहु बाखा ॥ २ ॥

यदिनि वे सम हैं—उनमें न राम है न रोष है । और न वे किसीका पाप-गुण और गुण-रोष ही प्रत्यक्ष करते हैं । उन्होंने किसीमें कर्मको ही प्रधान कर रखता है । जो जैसा करता है, वह वैसा ही फल भोगता है ॥ २ ॥

३३-सदयि करहि सम विषम विद्वान् । अतः अमगत हृदय अनुसारा ॥
अतः अतः अतः अतः । राम स्युन सप सगत पैम वस ॥ ३ ॥

तथापि वे भक्त और अमक्तके हृदयके अनुसार सम और विषम व्यवहार करते हैं (भक्तको प्रेमसे सके लगा हैं और अमक्तको मारकर तार देते हैं) । गुणरहित, निर्दोष, मनरहित और सदा एकरस मगवान् श्रीराम भक्तके प्रेमवश ही स्तुण हुए हैं ॥ ३ ॥

राम सदा सेवक रुचि रखी । वेद पुस्तक साधु सुर साधी ॥

अस विषे आभि तबहु कृतिछाई । करहु मस्त पद प्रीति सुहाई ॥ ४ ॥

श्रीरामजी सदा अपने सेवकों (भक्तों) की रुचि रखते आये हैं । वेद, पुराण, साधु और देवता इसके साधी हैं । ऐसा हृदयमें जानकर कृतिरता जोद दो और भरतजीके चरणोंमें सुन्दर प्रीति करो ॥ ४ ॥

दो०—राम भगत परहित निरत पर दुख दुखी ब्याल ।

भगत सिरोमणि भरत तें अवि करपहु सुरपाल ॥ २१९ ॥

हे देवराज इन्द्र ! श्रीरामचन्द्रजीके भक्त उद्य दुखोंके हितमें लगे रहते हैं, वे दुखोंके हलसे दुखी और दबाष्ट होते हैं । किन्तु भरतजी तो भक्तोंके सिरोमणि हैं, उनसे विस्तृत न हरो ॥ २१९ ॥

चौ०—सत्यसंघ प्रभु सुर दिलकारी । नस्त राम आवस अनुसारी ॥

कारण विषय शिकल मुन्द होहु । भरत दोखु गहि करर सोहु ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजी सत्यप्रतिष्ठा और देवताओंका हित करनेवाले हैं । और भरतजी श्रीरामजीकी आज्ञाके अनुसार चलनेवाले हैं । हम स्वयं ही स्वार्थके विशेष बंध होकर ब्याकुल हो रहे हो । इसमें भरतजीका कोई दोष नहीं, तुम्हारा ही मोह है ॥ ३ ॥

मुनि सुत्तर सुत्तर कर, कभी । भा प्रमोदु सब मिटी गझानी ॥

वरपि प्रभु हरपि सुत्तरत । कभी ससहच भरत सुभाक ॥ ४ ॥

देवकुल नृत्पतिजीकी मोठ वाणी सुनकर इन्द्रके मनमें बड़ा आनन्द हुआ और उनकी चिन्ता मिट गयी । तब इन्द्रित होकर देवराज पूर करताकर भरतजीके सम्भावनी सपहमा करने लगे ॥ ४ ॥

एहि विधि भरत चले आ आहीं । वल पैकि मुनि सिद्ध सिहाई ॥

जहाँ राहु करि केहि असाध । असाध पैसु नखु नखु पासा ॥ ३ ॥

इस प्रकार भरतजी मार्गमें चले जा रहे हैं । उनकी [प्रेममयी] दशा देखकर मुनि और सिद्ध लोग भी सिंहाते हैं । भरतजी कभी पराग पड़कर लकी लौल छेरे हैं, तभी मानो चारों ओर प्रेम उमड़ पड़ता है ॥ ३ ॥

द्रवहि बचन मुनि कुलित पत्रायां । सुखन पैसु न जाइ वलगा ॥

वीध पास करि अमुनि के । निरति नीध कोचन जल छप ॥ ४ ॥

उनके [प्रेम और दीनतासे पूर्ण] बचनोंको सुनकर वज्र और पत्थर भी पिघल जाते हैं । मयोध्यावासियोंका प्रेम झट्टे नहीं बनता । बीक्यों निवास (मुकाम) करके भरतजी मनुनाजीके तटपर आये । मनुनाजीका जल देखकर उनके नेत्रोंमें जल भर आया । ४ ॥

दो०—रघुवर घरन बिलोकि घर वारि समेत समान ।

होत मगल कारिणि विरह के विवेक जहाज ॥ २२० ॥

श्रीरामनाथजीके (स्वयं) रंगना सुन्दर जल देखकर करे समानवर्धित भरतजी [प्रेमविह्वल होकर] श्रीरामजीके निरदरमी समुद्रमें डूबते-डूबते विवेककमी जहाजपर

बह गये (अर्थात् यमुनावीक्ष्य स्वामर्क्यं तत्र देखकर सब खोप स्वामर्क्य भगवान्‌को प्रेम्मे विह्वल हो गये और उन्हें न पाकर निराश्रयान्ते पीड़ित हो गये; तब भरतजीको यह ध्यान आया कि अच्छी चल्कर उनके वाछात् दर्शन करेंगे, इस निवेदने से फिर उत्साहित हो गये) ॥ २२० ॥

चौ०—अमुन तीर तेहि दिन करि याव । मयत सम्य सम सखि सुपाव ॥

रातिहि घाट घाट की तरवी । भाई कान्हि अर्ध न बरवी ॥ १ ॥

उस दिन यमुनावीके किनारे निवास किया । सम्यक्तुष्टर सबके लिये [खान-पान आदिकी] सुन्दर व्यवस्था हुई । [निगदराजका सङ्केत पाकर] रात-दि-रातमें घाट-पाटकी अगणित नौवें वहाँ आ गयीं; किन्तु कर्मन नहीं किया जा सकता ॥ १ ॥

प्राप्त पार मय पकहि खेरी । तोषे लखलखा की खेरी ॥

चले बहाइ मरिहि छिर भाई । साथ विहायघाय दोड भाई ॥ २ ॥

सखी एक ही खेवेमें सब खोप पार हो गये और श्रीरामचन्द्रजीके सखा निगदराजकी इस सेवासे क्लृप्त हुए । फिर खान-पानके और नदीको छिर नवाकर निगदराजके साथ दोनों भाई चले ॥ २ ॥

भारों मुमिकर कह्य अछि । शकसमाज कह्य छु पाछे ॥

तेहि पाछे होय बंधु पयार्हे । मयन बसव केव मुनि सार्हे ॥ ३ ॥

भारों अच्छी-भच्छी चचारियोंमें ओह मुनि हैं, उनके पीछे सदा रखवमान जा रहा है । उनके पीछे दोनों भाई बहुत सारे भूषण-वस्त्र और वेणुके पैरुका बंध रहे हैं ॥ ३ ॥

सेवक मुहुड सखिमुह सखा । मुमिरत कह्यु सीय खुदाभा ॥

सई सई राम यास विभासा । सई सई कहि सखेम प्रतासा ॥ ४ ॥

सेवक, मित्र और भगवीके पुत्र उनके साथ हैं । सम्यक, सीताजी और श्रीरामाय-जीका करण करते जा रहे हैं । जहाँ-जहाँ श्रीरामजीने निवास और विश्राम किया था, वहाँ-वहाँ वे प्रेमसहित प्रणाम करते हैं ॥ ४ ॥

चौ०—मगवासी नर मारि मुनि ग्राम ग्राम रात्रि धार ।

देखि सरूप खनेह सब मुवित खनम फल्यु पार ॥ २२१ ॥

मार्गमें रहनेवाले स्त्री-पुरुष बह झुनकर घर और काम-काम छोड़कर दौड़ पड़ते हैं और उनके रक्त (लीम्बर) और प्रेमको देखकर वे सब जन्म केनेका त्रास पाकर आनन्दित होते हैं ॥ २२१ ॥

चौ०—कहि सखेन मरु एक पाहीं । राखु लखलु सखि होहि कि नाहीं ॥

सब मयु बसव मयु सीइ वाली । सीछु सखे सुखि-सम वाली ॥ १ ॥

गौनोंकी सियाँ एक-दूसरीसे प्रेमपूर्वक कहती हैं—सखी ! ये राम-कल्याण हैं कि नहीं ? हे सखी ! इनकी अवस्था, अरि और रंग-रक्त जो वही है । खोख, स्नेह उन्हींके सरय है और जाज भी उन्हींके सगान है ॥ १ ॥

येव न सो सखि खोय न संख । जहाँ जनी चली चरुरिया ॥

महि प्रसन्न मुख भागस खेय । सखि खिडु, होइ परि मेव ॥ २ ॥

परन्तु हे सखी ! इनका न तो वह वेध (यत्कलमज्जपारी मुनिवेध) है, न सीताजी ही संग है । और इनके आगे चतुरङ्गिणी सेना चली आ रही है । फिर इनके मुख प्रसन्न नहीं हैं, इनके मनमें खेद है । हे सखी ! इसी खेदके कारण खेदेह होय है ॥ २ ॥

साधु सरक तिबगन मन् मन्नी । कहहि सखल तेहि सम न सयाही ॥

तेहि सराहि नानी पुरि पृथ्वी । भोली मधुर बचन तिय मुखी ॥ ३ ॥

उसका तर्क (बुद्धि) अन्य चिन्मय मन गाथा । सब कहती हैं कि इसके समान सबानी (चहुर) कोई नहीं है । उसकी स्थापना करके और 'पेरी' वाली सत्य है' ॥ प्रकार उसका सम्मान करके दूसरी जी मीठे बचन बोली ॥ ३ ॥

कदि सपेम सय कवाप्रसंगू । नेहि विधि राम राज सस मंगू ॥

भरतहि बहुरि सरावन कानी । सील सवेद सुभाष सुभाषी ॥ ४ ॥

श्रीप्रभुकी राजसिखाए आनन्द बिच प्रकरसे मंग दुआ वा वह सब कथाप्रसंग प्रेमपूर्ण
कहकर फिर वह भरतवीके शील, स्नेह और सौम्याम्बर सहायना करने लगी ॥ ४ ॥

दो०—सलत एवार्दे सात फल पित्त दीन्ह तजि पण ।

आत मनायन रघुनरंदि मरत सरिस को आह ॥ २९९ ॥

[मह. बोली—] देहो, मैं मरतीजी पिताके दिने हुए राज्यको त्याग कर पैरुल चली और फलदायक करते हुए भीरामजीको मन्त्रनेके लिये ला रही हूँ। इनके समान भावि नौन है ? ॥ २२२ ॥

चौ०-नाम भगति अस्त व्यावस्तु । कस्त मुक्त हुन दुख हस्त ॥

जो किहू कह्यो धीर सखि सोई । राम बंधु कस सखे न होई ॥ १ ॥

भरतजीका भाईपना, भक्ति और इनके आचरण करने और सुननेसे दुःख और दोषोंके हरनेवाले हैं। हे सखी ! उनके सम्मन्धमें जो कुछ भी कहा जाय, वह थोड़ा है। अग्रिमचन्द्रजीके भाई ऐसे क्यों न हैं । ॥ १ ॥

हम सब साक्षरों भरतहि देखें । मांग्य चन्म सुबली जन केहें ॥

हुनि धुन देखि हस्त पंजिवाहीं । कैह अवतनि सोरा सुद माहीं ॥ २ ॥

छोटे भाई शपुत्तजित भरतजीको देखकर हम सब भी आत्मा चम्क (पद्ममणिनी) झिल्लोकी गिनतीमें आ गयीं । इस प्रकार भरतजीके गुण सुनकर और उनकी बधा देकर कियों पछताती हैं और बहती हैं—यह पुत्र कैकेयी-जैसी भद्राके योग्य नहीं है ॥ ९ ॥

कोट नह धूवमु रागिहि माहिन । विवि सजु कीन्ह हमहि जो शरिज ॥ ३३ ॥

कहैं हम लोक केद विधि,हीरी । जनु तिय कुल सारति महीरी ॥ ६ ॥

कोई कहती है—इसमें पानीफ भी दोष नहीं है। वह सब दिपाताने ही किया है, जो हमारे अनुकूल है। जहाँ तो हम लोभ और वेद दोनोंही सिधि (मर्षादा) से हैं, कुल और फरद्व दोनोंमें मलिन रूप—सिधियाँ ॥ ३ ॥

असहिं कुदेस कुर्वन् कुलमा । नहं यहं वसु पुण्य परिनामा ॥ ५५६॥

कस्य भर्तुः गच्छिष्यति इति प्रामा । अनु सप्तमि कस्यतः ज्ञाना ॥ ४ ॥

ओ बुरे देव (जंगलमें प्रान्त) और बुरे सर्वोमें बसती हैं और [खिचोमें भी] नीच
 किया हैं । और कहाँ वह महान् पुण्यका परिणामकल्प इनका दर्शन । देव ही आनन्द
 और आश्चर्य गाँव-गाँवमें हो रहा है । मनो महामूर्खिमें कल्पवृक्ष उग गया हो ॥ ४ ॥

दो०—भरत दरसु देखत खुलेत मय. लोगन्ह पर भापु ।

अनु लिख्यंवासिन्ह मयव विधि वस सुलभ प्रयागु ॥ २२३ ॥

भारतजीका स्वस्व देवते ही रास्तेमें रहनेवाके ओगठि भाग्य खुल गये । मनी
देवकोमने सिद्धलडिफे वसनेवालेको तीर्थराज प्रनाम मुल्य हो गन्य हो । ॥ २२३ ॥

बौ०—निज मुख सहित राम जुन खया । सुखत आदि सुमिरत रघुनाथा ॥

हरिष सुखि स्मरता सुरचासा । विरहि निमज्जहि करहि प्रणामा ॥ १ ॥

[इस प्रकार] अपने गुणोत्कृष्ट श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंकी कथा सुनते और श्रीरघुनाथजीको स्मरण करते हुए भरतजी चले जा रहे हैं । वे तीर्थ देखकर स्नान और मुनियोंके आश्रम तथा देवताओंके मन्दिर देखकर प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥

मगहीं मन मागहि कब गूह । सीप राम पद बहुम खनेहू ॥

मिलहि किरत कोठ बदनारी । पैदानस बहु बली ठढ़ासी ॥ २ ॥

और मन ही-मन वह वरदान मांगते हैं कि बीछीतरामजीके चरणकमलोंमें प्रेम हो । मागमें भीन, कोल आदि वनवासी तथा बानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, धन्यासी और विरक्त मिलते हैं ॥ २ ॥

करि प्रयासु पैछहि केहि ठेही । केहि वन कखहु रम्हु बेदेही ॥

वे प्रभु रामचरित सब कहहीं । भरतहि देखि मनम कहु कहहीं ॥ ३ ॥

उनमेंसे किस-किससे प्रणाम करते पूछते हैं कि कल्याणी, श्रीरामजी और रामकी-सी किस वनमें हैं ? वे प्रभुके सब चरणचर कहते हैं और भरतजीको देखकर अन्धका, कल पाते हैं ॥ ३ ॥

वे सब कहहि कसल हम देखे । वे दिव राम कखन सम देखे ॥

एदि बिधि बृहत सचहि सुकानी । सुखत राम बगवास कहानी ॥ ४ ॥

जो लोग कहते हैं कि हमने उनको कुछपूर्वक देखा है, उनको वे श्रीराम-कल्याण-के स्थान ही प्यारे मानते हैं । इस प्रकार अपने सुन्दर बानीसे पूछते और श्रीरामजीके चरणचरकी कहानी सुनते जाते हैं ॥ ४ ॥

बौ०—तेहि धामर वसि प्रातही चले सुमिरि रघुनाथ ।

राम दरस करि कालस्ता भरत सरित सब साथ ॥ २९४ ॥

उस दिन वहीं ठहरकर वृत्ते दिन प्रातःकाल ही श्रीरघुनाथजीका स्मरण करते चले । उनके सब लोगोंको भी भरतजीके समान ही श्रीरामजीके दर्शनकी, कालका [लगी हुई] है ॥ २९४ ॥

बौ०—संगत सख्य होहि सब काहू । कसहि धुक्क निमोचन बाहू ॥

भरतहि सहित समस्त उठाहू । मिलिहहि सखु मिलिहि हू ॥ १ ॥

अपको मङ्गलसूचक उठान हो रहे हैं । सुख देनेवाले [पुरुषोंके दाहिने और स्त्रियोंके बायें] नेत्र और सुनारें चढ़क रही हैं । सम्बन्धित भरतजीको उल्लाह हो रहा है कि श्रीरामचन्द्रजी मिलने और दुःखका दाह मिट जायगा ॥ १ ॥

कल मनोरथ कस बिधे काके । काहि कसै सुखे सग छके ॥

मिथिल संग पम प्रेममिलीकहि । बिहसल बचन वेम कल बोकिहि ॥ २ ॥

जिसके बीमें जैसा है, वह देखा ही मनोरथ कस्ता है । सब सोहसनी सदिरस छके [प्रेमें मतवाले हुए] चले जा रहे हैं । अथ मिथिल हैं, यत्नेमें पैर लगमगा रहे हैं और प्रेममय मिथिल ककल बोले रहे हैं ॥ २ ॥

रामकर्मों तेहि समय देखेया । सैल सिनेमनि सहस्र मुहाको ॥

आसु समीप सरित पम सीध । सीध समेत सचहि दोह बीध ॥ ३ ॥

रामलला निषादराज्ये उसी समय सामासिक ही 'मुहावना पर्वतशिरोमणि कामरगिरि दिगम्बरा' मिलके निकट ही पमलानी नदीके तटपर सीढानीधौल दोनों मार्ग मिलान करते हैं ॥ ३ ॥

• देवि कहीं सय दंड प्रनाम । कहि जय जबकि नोहन सम ॥

प्रेम मगन अस राज समान । जनु फिर जय चले खुराजू ॥ ४ ॥

सब लोग उस पर्वतको देखकर आनखीनीन श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो । ऐसा कहकर दण्डक प्रणाम करते हैं । राजसमान प्रेममें ऐसा मग्न है मानो श्रीखुनापत्री अयोध्याको लौट चले हों ॥ ४ ॥

दो०—भरत प्रेमु तेहि समय जस तस कहि सकइ न सेधु ।

कविदि अगम निमि ब्रह्मसुख अह मम मलिन जनेसु ॥ २२५ ॥

भरतजीका उस समय जैसा प्रेम था, वैसा श्रेष्ठी भी नहीं कर सकते । कविके लिये तो वह वैसा ही अगम है जैसा अर्द्धा और समतासे मलिन मनुष्योंके लिये प्रधानन्द ॥ २२५ ॥

बौ०—सकल सनेह सिधिल खुरार कैं । सय कोस दुह दिगकर डरकैं ॥

जनु पलु देखि चले निमि धौलैं । कोह गन्ध खुरानव पिरीलैं ॥ १ ॥

सब लोग श्रीरामचन्द्रजीके प्रेमके मारे सिधिल होनेके कारण सूर्यास्त होनेतक (दिनभरमें) दो ही कोस चल पावे और जल-सम्पत्ति सुवास देखकर रातको नहीं [बिना लाये-पीये ही] रह गये । रात बीतनेकर श्रीखुनापत्रीके प्रेमी भरतजीने आगे गमन किया ॥ १ ॥

उहाँ रासु रानी अवस्था । आवे सोवैं सवन अस देखा ॥

सहित समान भस्त जनु आए । नय विखेय लप सन ताए ॥ २ ॥

उत्तर श्रीरामचन्द्रजी रात घेप रहते ही आगे । रासको सीताजीने देखा लग देखा [जिसे वे श्रीरामजीकी सुनने लगीं] मन्दे समवस्थित भरतजी नहीं आवे हैं । मनुके पियोगकी अवस्थे उनका शरीर संतप्त है ॥ २ ॥

सकल मलिन मन दीन दुखारी । देखीं रासु आन अनुहारी ॥

सुनि सिम सवन भरे अल कोसम । अय सोचस लोच विमोचन ॥ ३ ॥

सभी लोग मग्नमें उदात्त, दीन और दुखी हैं । रासुगोंसे दूरी ही श्रुतमें देखा । सीताजीका स्वम सुनकर श्रीरामचन्द्रजीके नेत्रोंमें अल भर आया और सबको भीचते हुआ दैमागले मनु स्वर्ण [अलसे] रोचके बह हो गये ॥ ३ ॥

कलन सवन अह भीन न होई । कदिन कुफल सुवाण्णि कोई ॥

भस कहि रंजु समेत बढ़ाये । पूषि पुरारि सखु सनसाये ॥ ४ ॥

[और बोले—] अगम । वह लग्न अच्छा नहीं है । कोई भीकण कुलमाचार (बहुत ही बुरी खबर) सुननेवा । ऐसा कहकर उन्होंने भारितहित स्नान किया और विपुरारि महादेवजीका पूजन करते तापुर्गोंका सम्पन्न किया ॥ ४ ॥

छ०—सममानि सूर मुनि वंदि बैठे उत्तर दिशि देखत मय ।

नम धूरि खग मुख भूरि मागे विंकल प्रसु मध्यम गय ॥

तुलसी उठे अवलोकि करारु कहि छित सचकित रहे ।

सब समान्तर किरात कोलन्दि आह तेहि अवसर फरे ॥

देवताओंका सम्मान (पूजन) और मुनिगोंकी कन्दन फरके श्रीरामचन्द्रजी बैठ गये और उत्तर दिशाकी ओर देखने लगे । आकाशमें पूल छा रही है; द्युत-वे रानी और पशु व्याकुल होकर माने हुए प्रभुके आगमको वा रहे हैं । तुलसीदासजी कहते

हैं कि प्रभु श्रीरामचन्द्रजी वह देखकर उठे और खेदने लगे कि क्या करण है ! वे चित्तमें आश्वस्त्युक्त हो गये । उसी समय कोल-मीलोंने आकर सब समाचार कहे ।

सौ०—सुनत सुमंगल वैच मन प्रमोद उन पुलक भर ।

सरद सरोख दैन तुछसी मरे स्नेह जल ॥ २२६ ॥

तुछसीदातनी कहते हैं कि सुन्दर मङ्गल वचन सुनते ही श्रीरामजीके मनमें वड़ा आनन्द हुआ । शरीरमें पुष्पकज्यौ का यमी, और शब्द-श्रुतिके कमलके समान नेत्र प्रेमाभुषणें भर गये ॥ २२६ ॥

सौ०—बहुरि सोचवत मे चितवत् । करन कवन भरत आगवत् ॥

एक आह् अक्ष कहा कहीरी । सैन सैन चतुरंग न धोरी ॥ १ ॥

सीतापति श्रीरामचन्द्रजी पुनः सोचके क्या हो गये कि भरतके आनेका क्या कारण है ? फिर दफने आकर ऐसा कहा कि उनके साथमें वही मारी जहुरक्षिणी सेना भी है ॥ १ ॥

सो सुनि रामहि भा अति सोच । विह वच इत बंधु सकोच ॥

भरत सुनाइ समुक्ति मन मारी । प्रभु चित हित विधि राखत मारी ॥ २ ॥

वह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीके अत्यन्त सोच हुआ । श्वर तो पिताके बचन और श्वर मारै भरतकीका संकोच । भरतजीके स्वभावको मनमें समझकर तो प्रभु श्रीरामचन्द्रजी जिसको ठहरानेके लिये कोई खान ही नहीं पाते हैं ॥ २ ॥

समाधान तब भा यह जाने । भरत कहे मूर्ख साहु सपाने ॥

छाक छेके प्रभु इहवै सभास । कहत समय सम नीति विचार ॥ ३ ॥

तब यह जानकर सम्पादन हो गया कि भरत बाहु और सपाने है तथा वेद कहनेमें (आशाकारी) हैं । लक्ष्मणजीने देखा कि प्रभु श्रीरामजीके द्वारबर्षे विपत्ता है तो वे हमके अनुसार अपना नीतिमुक्त विचार कहने लगे—॥ ३ ॥

विह पुछै कहु कहके गोसाई । सेवक समर्थ व डीठ विडाई ॥

सुन्द सर्मग सिरीमणि खामी । अपवि समुक्ति कवै सगुगामी ॥ ४ ॥

हे खामी ! आपके बिना ही कुछ मैं कुछ कहता हूँ ; सेवक समयपर विडाई करनेसे डीठ नहीं समझा जात (अर्थात् आप पूछे तब मैं पढ़ूँ, ऐसा भास्कर नहीं है इसीलिये वह मैरा कहना विडाई नहीं होगा) । हे खामी ! आप सर्वश्रेष्ठमें शिरोमणि हैं (ज्ञानते ही हैं) । मैं केवल तो अपनी समझकी बात कहता हूँ ॥ ४ ॥

सौ०—नथ सुहव सुठि सरल चित सील समेह विधान ।

सब पर प्रीति प्रतीति सिधैं जनिम आपु समान ॥ २२७ ॥

हे माय ! आप परम सुहृद् (बिना ही कारण परम हित करनेवाले), सरलहृद् तथा शील और स्नेहके मण्डर हैं, आपका स्वीकार प्रेम और निष्ठास है, और अपने हृदयमें सबको अपने ही समान जानते हैं ॥ २२७ ॥

सौ०—विषई जीव पाव प्रसुवाई । सुड मोह कस होहि जनाई ॥

प्रभु नीति रत सगु सुखान । प्रभु पर प्रेम, सकल सगु जानत ॥ १ ॥

पण्डु मूढ निम्नी जीव प्रसुता पाकर मोहमय अपने अन्तरी स्वरूपको प्रकट करते हैं । भरत नीतिप्रमाण, बाहु और चतुर हैं तथा प्रभु (आप) के चरित्रों उनका प्रेम है, इस कारणसे क्या अवत् जानता है ॥ १ ॥

तेस अहु राम पडु पाई । फले चरम मत्साद मेताई ॥

कुटिल कथंहु इत्यसत्य कही । जनि राम कनकस एककी ॥ २ ॥

वे भरत भी आज्ञा श्रीरामजी (आप) का पद (सिंहासन या अधिकार) पाकर धर्मकी मर्यादाको भिन्नकर चले हैं । कुटिल छोटे गार्ह मरुत कुसमय देखकर और यह जानकर कि रामजी (आप) कन्यास्थमें अकेले (अन्धकार) हैं, ॥ २ ॥

करि कर्मभु मग सानि समान् । अप्प करै कर्कश खम् ॥

कोटि प्रकान फलसि कुतिलगई । अप्प दस कटोरि दोउ भाई ॥ ३ ॥

अपने मनमें बुरा विचार करके, समस्त लोककर राजाको निष्कण्ठक करनेके लिये यहाँ जाये हैं । करोड़ों (अनेकों) प्रकारकी कुटिलकार्यें रचकर तेना कटोरकर दोनों भाई आये हैं ॥ ३ ॥

जौ भियै होति न कष्ट कुचारी । केहि खेहाति रच बाति गवाही ॥

भरतहि दोहु बेह को जाएँ । बग बीधइ राज पट्टु पाएँ ॥ ४ ॥

यदि इनके हृदयमें कष्ट और कुचाल न होती, तो रथ, घोड़े और हाथियोंकी कतार [ऐसे समय] कितने सुसती ! परन्तु भरतको ही न्याय खीन होय है । राजपद या कानिअ साथ कगइ ही पताल (मन्त्रालय) हो जात है ॥ ४ ॥

श्री०—सत्ति गुर तिय गामी नपुषु चवैठ भूमिभुर आम ।

लोक येइ तें विमुक्त म्म अद्यय न वेन समान ॥ ५२८ ॥

चन्द्रमा गुणग्रीवामी हुआ, राजा नहुष ब्राह्मणोंकी पासकीपर चढ़ा । और राजा केनके समान नीच तो कोई नहीं होगा, जो लोक और वेद दोनोंसे विमुक्त हो गया ॥ ५२८ ॥

श्री०—सहसबाहु सुरमाधु मिलिह । केहि न समसव दीन्ह कर्कश ॥

भरत कीन्ह यह उचित उपाय । रिपु रिग रच न समसव काज ॥ ५२९ ॥

सहसबाहु, देवान इन्द्र और निरंकु आदि कृतिभे राक्षसदेने कष्ट नहीं दिया ! भरतने यह उपाय उचित ही किया है । क्योंकि शत्रु और मन्त्रको कभी बरा भी रोग नहीं रजना चाहिये ॥ ५ ॥

एक कीन्हि बहि भरत भगई । बिदरे राहु जनि असहाई ॥

सङ्गति परिहि सोइ जगु मिलेनी । समर खोच सम मुहु पेयी ॥ ६ ॥

हाँ, भरतने एक बात मन्त्री नहीं की, जो रामजी (आप) को असहाय जानकर उनका निरादर किया । पर आज संशयमें श्रीरामजी (आप) को मोक्षपूर्ण मुख देखकर यह बात भी उनकी समक्षमें विशेषरूपसे आ जायगी (अर्थात् इष्ट निरादरता फल भी वे खन्ती तरह पा सकेंगे) ॥ ६ ॥

एतना कहय नीति । एह मूल्य । एह एस बिदु पुच्छ मिल पूज ॥

प्रभु पद धदि सीस रज रणी । कोले सल सहज बनु भायी ॥ ७ ॥

इतना कहते ही लक्ष्मणजी नीतिरत मूल गये और सुहरसखी वृष पुष्पावलीके चहानेसे पूर उठा (अर्थात् नीतिरती बात कहते-कहते उनके शरीरमें भीर रत का गया) । वे प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी कन्दना करके, चरण-रजको सिरपर रखकर तथा और स्वाभाविक बल कहते हुए बोले— ॥ ७ ॥

अनुचित भाव न मानव मोत । भरत हमहि उपचार न दोत ॥

कई जगि सहिष रहिह मनु मरै । राव सव मनु हल हमरै ॥ ८ ॥

हे नाथ ! मेरा कहना अनुचित न मानियेगा । भरतने हमें कब नहीं प्रचारा दे

(हमारे साथ कम छेड़छाड़, नहीं की है) । आखिर कष्टोक्त सहा जय और मन मारे रहा जाय, जब स्वामी हमारे जय हैं और मनुष्य हमारे हाथमें है । ॥ ४ ॥

सौ०—छवि जाति रघुकुल जन्म सु राम अनुभवं अनु जान ।

ज्यतहुँ मारें चढ़ति सिर नीच को धूरि समान ॥ २२९ ॥

शत्रिय जाति, रघुकुलमें जन्म और फिर मैं श्रीरामजी (आप) का अनुगामी (सेवक) हूँ; वह क्यों जानता है । [फिर मन्त्र कैसे सहा जाय ?] धूलके समान नीच कौन है, परन्तु वह भी ज्यत मारनेपर सिर ही चढ़ती है ॥ २२९ ॥

सौ०—उडि कर जोरि रज्जुमनु माय । मरहुँ और रख सोवत जाग ॥

बौधि जग सिर कसि कछि भाव । सावि सरासनु साधकु हाया ॥ १ ॥

मैं बहकर लम्पणजीने उठकर, हाथ बंधकर आशा मँगी । मानो पीररख सोवते जाग ठठा हो । विरपर जडा बौधकर कमरमें तरफत कस किया और मनुष्यको सजकर सपौ बाणको हाथमें लेकर कहा— ॥ १ ॥

बाहु राम सेवक जनु ॥ ॥ भरतहि समर सिखावन देखै ॥

राम निरादर कर चहुँ चढ़ै । सोवहुँ समर-सेन बौध भाई ॥ २ ॥

आज मैं भीराम (आप) का सेवक होनेवाला बड़ा हूँ और भरतको संगममें शिक्षा दूँ । भीरामचन्द्रजी (आप) के निरादरका फल पाकर दोनों भाई (भरत-रघुपति) रण-सज्जापर सोचें ॥ २ ॥

आइ बग मक सकल समान । प्रकट करतैं रिस पाकि बाण ॥

जिमि करि निकर, दहइ सुगन्ध । केह कोरि-कवा जिमि बाण ॥ १ ॥

अच्छा हुआ जो साथ समान आकर प्रकट हो गया । आज मैं जिसका सेवक प्रकट करूँगा । जैसे सिंह हाथियोंके झुंडको कुचल डालता है और बाण जैसे लपेटी लपेटमें ले लेता है ॥ १ ॥

तैसहि भरतहि सेन समेख । साधुन निररि बिसदई सेन ॥

जौ सहस्र कर संकट आई । सै मारतैं रण राम दोहाई ॥ २ ॥

ही भरतको सेनासमेत और छोटे भाईसहित विरसावर करके मैदानमें पड़ाव गा । यदि शत्रुजी भी आकर उनकी सहायता करें, तो भी, मुझे राम जीकी सौभाग्य है मैं उन्हें युद्धमें [अवश्य] मार टाँकूँगा (छोड़ूँगा नहीं) ॥ २ ॥

सौ०—अति सरोष भाखे लखनु लखि सुनि सपथ प्रधान ।

समय लोक सय लोकपति चाहत मारि मगान ॥ २३० ॥

कर्मणजीको अत्यन्त प्रीतिसे लम्पणजी हुआ देखकर और उनकी प्रामाणिक (सत्य) तौगथ सुनकर सब लोग मन्मथ हो जाते हैं और लोकपाल धनदाकर भागना चाहते हैं ॥ २३० ॥

सौ०—अनु मय अमन गाथ सह बाणी । लखन बाहुबल सिद्ध बजानी ॥

सद प्रसाध प्रमथ लुम्हात । को कहि सकइ को जाननिहारा ॥ १ ॥

सारा अमल मकलें होय बन्ध । तब लखनजीके वार बाहुबलकी प्रमाण करती है । आत्मशुद्धि हुई—देखत । दुष्टोंपर अंत्य और प्रमात्तको कौन कह सकता जान सकता है ॥ १ ॥

उचित काल सिद्ध होत । समुद्रिकसिन्ध मर कह सङ्ग कोट ॥

करि पावैं यजिहारी । कहहि केह युव ते दुष नाहीं ॥ २ ॥

परन्तु कोई भी काम हो। उसे अनुचित-उचित सब समझ-बूझकर किया बाप तो सब छोड़ अन्धा कहते हैं। वेद और विद्वान् कहते हैं कि जो निरा विचारे बलीमें किसी कामको करने पीछे पड़तावे हैं, वे बुद्धिमान नहीं हैं ॥ २ ॥

मुनि सुर मचन छानन सकुचने । राम सीवै साधुर सनामाने ॥

कही तात तुम्ह नीति सुहाई । सब सँ कठिन सबमदु भाई ॥ ३ ॥

देवकाणी मुनकर लक्ष्मणजी सकुचा गये। श्रीरामनन्दजी और सीताजीने उनका आदरके साथ सम्मान किया [और कहा—] हे तात। तुमने बड़ी सुन्दर नीति कही। हे भाई। राज्यका मद सबसे कठिन मद है ॥ ३ ॥

जो भवर्षत रुप मताहि तेहै । कहिन साधुसका मेहि तेहै ॥

मुनहु लखन मल भल सरीसा । विधि प्रपंचमहै मुना बदीसा ॥ ४ ॥

जिन्होंने साधुओंकी समस्त सेवा (सत्कर्म) नहीं किया, वे ही राजा राजमन्त्री मंदिरका आचमन करते ही (पीते हैं) मरवाते हो जाते हैं। हे लक्ष्मण! मुनो, भरत-सरीसा उत्तम पुत्र मन्त्राधीन स्थिति में तो कहीं मुना गया है, न देखा ही गया है ॥ ४ ॥

दो—मरतहि होइ न राजमदु विधि हरि हर पद पाइ ।

कबहुँ कि कौंसी सीकरनि छीरसिधु विनसाइ ॥ २३१ ॥

[अयोध्याके राज्यकी तो बात ही क्या है] जहा, विष्णु और महादेवका पद पाकर भी मरतको राज्यका मद नहीं होनेका। क्या कभी कौंसीकी धूर्तसे छीरकट्टर नष्ट हो सकता (फट सकता) है ॥ २३१ ॥

चौ—सिनिव सबन तरनिहि महु गिरई । बगनु भयन महु मेवहि मिलई ॥ २३२ ॥

गोपद एक पुरहि बरकीनी । सहज छल न्य छनै छोनी ॥ १ ॥

अन्धकार चाहे लक्षण (मन्त्रादिके) सर्वको निगल जाय। आकाश चाहे बादलोंमें समाकर मिल जाय। गौके घुर-दत्ते जहाँ अनासपनी दूब जायें और वृषी चाहे अपनी स्वाभाविक क्षमा (सहनशीलता) को छोड़ दे ॥ १ ॥

महा-ससक झूठ नकु मेह ठकई । हीह न रुपसु भरतहि भाई ॥

कबन दुन्दर सबन पितु जाय । सुधि सुचै नहि भरत समाना ॥ २ ॥

मन्त्रकी छँकते चाहे झूठे ठक जाय। परन्तु हे भाई। भरतको राजमद कभी नहीं हो सकता। हे लक्ष्मण। मैं दुन्दरी शत्रु और पिताजीकी खोश खाकर कहता हूँ, भरतके समान पवित्र और उत्तम भाई संसारमें नहीं है ॥ २ ॥

सगुनु सीवै अनगुन कलु साता । मिहद रचै परपनु विधाता ॥

भरतु ईस बरिषत सदाया । जगमि भीन्ह गुन दोष विनाया ॥ ३ ॥

हे तात। गुणरूपी पूष और अकृपणरूपी कलको फिलकर विधाता इस दम्प-भ्रमण (जगत) को रचता है। परन्तु भरतने सर्वबंधरूपी लाक्षणको हंसकर जगत्के गुण और दोषका विभाग कर दिया (दोनोंको अलग-अलग कर दिया) ॥ ३ ॥

नहि गुन पन तनि कयगुन जरी । विम बस समल कीन्ह उन्निपारी ॥

कहत भरत गुन सीधु सुभात । वेस पयोधि सपन सुरुत ॥ ४ ॥

गुणरूपी पूषको ब्रह्मण, और अकृपणरूपी कलको त्यागकर भरतने अपने पदों अगत्में उलियाल कर दिया है। भरतकीके गुण, सीध और समानको करते-करते श्रीरघुनाथजी प्रेमसमुद्रमें मग हो गये ॥ ४ ॥

दो०—सुनि रघुकर धनी विबुध देखि भज्य पर हेतु ।

सफल सहाहत राम सो प्रभु को कृपानिकेतु ॥ २३२ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके बापी तुलसी और भक्तबीर उदय प्रेम देखकर समस्त देवता उनको सहायता करने लगे [और बहने लगे] कि श्रीरामचन्द्रजीके समान कृपाके धाम प्रभु और जोन है ॥ २३२ ॥

बौ०—सो न होत कम लग्य भक्त को । सकल घरन पुर धरनि घसत को ॥

कदि दूख कम भल्य गुन गथा । को कन्ह नुह धिनु रघुनाथा ॥ १ ॥

यदि लगनें भक्तक कम न होत तो धृष्टीर मन्त्र्य-धर्मकी धुरीको कौन धरत कत ? हे रघुनाथजी ! कष्टिहृत्के लिये अरुण (उनकी करुणासे जलीत) भक्तजोके सुगौनी क्या मानके सिवा और कौन काम सज्ज है ? ॥ १ ॥

लखन राम सिन्धे सुनि सुर गनी । भति मुहुं कहे न सह बहानी ॥

इही भल्य सब तरिठ सहाय । मन्त्रिकीं भुजिग नहाय ॥ २ ॥

लखनजी, श्रीरामचन्द्रजी और संतजोने देवताओंकी बापी तुलसी अत्यन्त कुछ पाला, सो गान नही केया ना सज्ज । यही भक्तजोने सारे सम्राजके साथ पवित्र मन्त्रिकीने सान किया ॥ २ ॥

तरिठ कलीय तकि सब लोग । मणि मनु गुर सचिव नियोग ॥ ३ ॥

बके भल्य कहे सिध रघुनाथ । साथ निषादाहु कहु भाई ॥ २ ॥

भिर सबको नदीके समीप उदयर तथा नाता-गुर और मन्त्रीकी बाहा सौंगकर निगहरान और कनुष्कको साथ लेकर भक्तजी बहोको चले गये श्रीसीताजी और श्रीरघुनाथजी से ॥ ३ ॥

मनुमि मातु फलत सङ्गजही । कम इतरक सौति नय मारी ॥

रघु फलतु सिध सुनि मन गार्डे । ददि लगे मयत बाहि तकि डारै ॥ ४ ॥

मल्लकी अर्द्धा मातु कैन्दर्वा की कर्माके उनसकर (याद करके) रघुनाथे ॥ और मने कपोत (मनेक) इतरक कले है [तोचते हैं—] श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजी मेरा नाम तुलसी सात उदयर गयीं बूझी जाद उदयर न चले जायें ॥ ४ ॥

बौ०—मातु मते महुँ मणि मोहि को कहु करहि सो थोर ।

अय भवगुन छमि आधरहि समुद्रि आपनी ओर ॥ २३३ ॥

इसे साहाये भयं नमक ने जो कुछ भी करे सो थोड़ा है, पर है अपनी ओर समझकर (अपने निरुद्ध और तन्मयको देखकर) मेरे पास और अकणुओंको क्षमा करने मेरा साधर ही कहे ॥ २३३ ॥

बौ०—बौं परिहरहि मतिन मनु खकी । जीं समभवहि लेखु मानी ॥ ५ ॥

नोरें लग्न रगहि की पतही । राम मुलामि चैखु सब जनही ॥ १ ॥

चाहे नलिमग्न जानकर जोे स्वयं हैं, चाहे वचना सेक मानकर मेरा समान करे, (कुछ भी करे) ; मेरे लो श्रीरामचन्द्रजीकी बलिमें ही शरण है । श्रीरामचन्द्रजी लो अच्छे स्वामी हैं, थोर लो अब दासता ही है ॥ १ ॥

सग लख भाजन चातक सीक । देन पैम विम विपुन लवीन ॥

सग मन गुनत चले नय चला । सङ्गसनेह सिमिल सब गाथा ॥ २ ॥

लगाने चलेके पास लो चातक और खटवी ही हैं लो अपने नेम और प्रेमको बढ

नया बनाये रखनेमें निपुण हैं। ऐसा मनमें सोचते हुए भरतजी मार्गमें चले जाते हैं। उनके साथ अङ्ग संलोच और प्रेमेसे शिथिल हो रहे हैं ॥ २ ॥

फेरति मनहुँ मातु कृत्त खोरी । चलत भवति बह धीरज धोरी ॥

जब समुद्रत खुलाव सुमर्द । जब पथ परत उतारुल पाठ ॥ ३ ॥

माताजी की हुई बुराई मनो उन्हें बैयसी है, पर धीरजकी धुरीको धारण करने-वाले भरतजी भक्तिके बलसे चले जाते हैं। जब श्रीसुनायनीके स्वभावको समझते (संरण करते) हैं तब मार्गमें उनके पैर जख्मी-जख्मी पड़ने लगते हैं ॥ ३ ॥

भरत बड़ा तेहि जगसर कैसी । जल प्रवाहैं बह बलि गति जैसी ॥

देखि भरत कर सोनु सनेह । मा निपाद तेहि समर्थ बिदेह ॥ ४ ॥

उस समय भरतको दया कैसी है ! जैसी बहने प्रवाहमें जलके मीरकी गति होती है। भरतजीका सोच और प्रेम देखकर उस समय निपाद बिदेह हो गया (देहकी धुन-हुप भूल गया) ॥ ४ ॥

दो०—लगे होत मंगल समुप जुनि जुनि कहत निपादु ।

मिदिहि सोनु सोपहि हरपु पुनि परिनाम पिपादु ॥ २१३ ॥

मङ्गल-शकुन होने लगे। उन्हें सुनकर और विचारकर निपाद कहने लगा—सोच मिदिगा, हर्प होगा, पर फिर अन्तमें दुःख होगा ॥ २१४ ॥

बौ०—सैबक कथन सख सख जाये । कथन निकट जाह निस्तये ॥

भरत दीन जब सैल समान् । मुदित सुखि प्रपु पद सुभा ॥ २१५ ॥

भरतजीने सेवक (गुह) के साथ बचन सल जाने और वे आश्रमके समीप जा पहुँचे। वहाँके पत और पर्याप्तिके समूहको देखा तो भरतजी इतने आनन्दित हुए मानो, कोई भूखा भण्डा वाच (भोजन) पा गया हो ॥ २१५ ॥

इति भीति जहु प्रभा दुखारी । त्रिविध साय धीरिद्वि प्रह तारी ॥

जाह सुराज सुदेस सुखारी । होहि भरत कवि तेहि भलुहारी ॥ २१६ ॥

जैसे इतिके भयसे दुखी हुई और तीनों (अध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक) तानों तथा मूल प्रती और महाभरिबोले पीकित प्रजा किसी उत्पन्न देश और उत्तम राज्यमें आकर सुखी हो जाय, भरतजीकी वृत्ति (दशा) दीन उसी प्रकारकी हो रही है ॥ २१६ ॥

[अधिक जल शरणा, न बनना, नृहोत्र उत्पन्न, त्रिदिव्य, तोते और दूसरे राजा-की चढ़ाई—लेतोंमें बाध-देनेवाले इन छः उपद्रवोंको 'इति' कहते हैं।]

राम पास बचें संवति भ्रमा । सुखी प्रजा जहु जाह सुखज ॥

सखि विपारु विवेकु नरेसु । विविन सुहावर-रायन रेसु ॥ २१७ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके निपादसे कनकी सम्पत्ति ऐसी सुखोत्पिष्ट है मानो अच्छे राजाकोपात्त प्रजा सुखी हो। सुहावना वन ही पवित्र देवा है। विवेक उत्कृष्ट राजा है और वैराग्य मन्वी है ३

जट कम निम्न, सैल राजधानी । खति सुखति सुखि सुखर सती ॥

सकल भवा संपद सुराज । राम चलन अभित चित जाक ॥ २१८ ॥

यस (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अहंस्वर्ग और अगति) तथा निम्न (धीन, सन्तोष, सप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान) बोद्धा हैं। फलतः राजधानी है, शान्ति तथा सुखदि दो सुन्दर पवित्र-राजियाँ हैं। वह जो राजा राज्यके सब व्यक्तियों पर्य है और श्रीरामचन्द्रजीके कारणोंके आश्रित रहनेसे उसके चित्तमें पाप (आनन्द वा उत्साह) है ॥ ४ ॥

[स्वामी, अमृत, सुन्दर, फल, राहु, दुर्ग और सेना—राज्यके सब अङ्ग हैं।]

दो०—जीति मोह महिपालु दल सहित विवेक मुमोखु ।

करत बसंतक राखु पुरै सुख संपदा सुखलु ॥ २३५ ॥

मोहहारी राधाको सेनासहित जीतकर विवेकहारी राख निष्कण्टक राज्य कर रहा है ।
उसके नगरमें सुख, समृद्धि और सुकाळ वर्तमान है ॥ २३५ ॥

चौ०—यम प्रदेश मुनि वास धरै । जल पुर कर गार्ह गन धरै ।

विपुल विविध विद्या गुण नाम । प्रका समालु न जाइ बलाना ॥ १ ॥

वनस्पती प्राणियों को धुनिमेंके बहुत-से निष्कण्डलान हैं कहीं मानो छहों, नगरों,
गाँवों और सेवकोंका समूह है । बहुत-से विचित्र पत्तों और अनेकों पशु ही मानो प्रशमोंका
समाल है, जिसका वर्णन नहीं किना जा सकता ॥ १ ॥

अगहा करि हरि वास बसाहा । देवि महिष दृष साखु सरहा ॥

अथ बिहाइ अहाँ एक संप । जहाँ जहाँ मन्हुँ सेम चतुरंग ॥ २ ॥

गैंडा, हाथी, सिंह, बाघ, खर, भैंसे और कैतोंको देखकर राजाके सातको सराहते
ही दनता है । ये सब आपसका बैर छोड़कर जहाँ-जहाँ एक साथ बिचरते हैं । यही मानो
चतुराङ्गी सेना है ॥ २ ॥

हरषा हरषि मय गन गबहि । मन्हुँ विहाय विविध विधि कबहि ॥

अथ चकोर पातक मुक फिक गव । फूँछत संतु मरत सुदिन मन ॥ ३ ॥

पानीके छरने छर रहे हैं और मतवाले हाथी चिंता रहे हैं । वे ही मानो- वहाँ
अनेकों मण्डलके नगाड़े बज रहे हैं । चक्रवा, चकोर, पक्षी, घोडा तथा कीबड़ोंके समूह
और सुन्दर इस प्रवचन मनके बूझ रहे हैं ॥ ३ ॥

अजिगम वायत मचत मोर । जनु सुदल मंगल जनु खेर ॥

धैरि निधन गुन सखल सखल । दम समालु सुर मंगल सुख ॥ ४ ॥

मोरोंके समूह गुंजार कर रहे हैं और मोर नाच रहे हैं । मानो उस अच्छे राज्यमें
बारों ओर मङ्गल हो रहा है । पैर, दृष्टि, गुण सब फल और फूलोंके मुक्त हैं । साथ
समान भगवन् और मङ्गलका मूक बन रहा है ॥ ४ ॥

पौ०—राम सैल सोमा निरखि मरत हृदयें अविषेसु ।

सायस उप फलु पाह विमि सुखी सिरमों तेसु ॥ २३६ ॥

भीरामजीके पर्वतही सोमा देखकर मरतीके हृदयमें अकन्त प्रेम हुआ । जैसे
तपस्वी नियमकी समृद्धि होनेपर तपस्याका फल पाकर सुखी होता है ॥ २३६ ॥

सातपरायण, बीसवाँ विग्रह

नवाह्वपरायण, पाँचवाँ विग्रह

पौ०—एग केनट ठेठ छदि मार्य । कहेव मरत सन भुवा उठार्य ॥

नाय देखिअहि विहाय विहाय । पाकरि जनु सखल मरत ॥ १ ॥

एग केनट बौद्धकर जिते पद गया और भुवा उठकर मरतीके कहने लगा—
नाय ! ये जो पाकर, खपुन काम और लगानके निहाय कुछ दिखायी देते हैं, ॥ १ ॥

किन्तु सखल-ह मय पदु सोहा । मनु विहाय धैरि मनु मोहा ॥

नील सधन पछुन पछु लछ । खिरल जौह सुखल दम बाल ॥ २ ॥

नील मोह वृक्षोंके बीजों एक सुन्दर निहाय कदा कुछ प्रशोभित है, जिसको
देखकर मन मोहित हो जाता है, उसके पत्ते नीले और खन हैं और उसमें जल फल
उपे हैं । सधनी पत्ती जलाने का श्रुतियोंमें सुन देनेवाली है ॥ २ ॥

मानहुँ तिमिर अन्धमय ससी । विरची विधि सैकलि सुपमा सी ॥
 ए तब सरित समीप गोसीहैं । खुबर परवकुटी आई छाई ॥ १ ॥
 मानो ब्रह्माजीने परम शोभाकी एकत्र करके अन्धकार और जालिमामयी राशि-सी
 रच दी है । हे गुहादे ! ये गङ्गा नदीके समीप हैं, जहाँ श्रीरामकी पर्णकुटी छापी है ॥ २ ॥
 तुलसी तद्वर विविध सुहाए । कहुँ कहुँ सिनै कहुँ छवन लगाए ॥
 बट छायाँ भेदिका बचाई । सिनै निज पानि सरोज सुहाई ॥ ४ ॥
 वहाँ तुलसीजीके बहुतसे सुन्दर वृक्ष सुशोभित हैं, जो कहीं-कहीं सीताजीने और
 कहीं लक्ष्मणजीने छाने हैं । इसी वक्षकी छायामें सीताजीने अपने करकमलोंसे सुन्दर
 वेदी बनायी है ॥ ४ ॥

दो०—जहाँ बैठि मुनिगन सहित नित, सिव राम सुजान ।

सुनहि कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान ॥ २१७ ॥

जहाँ सुजान श्रीसीतारामजी मुनिके बुन्दलमें बैठकर नित शास्त्र, वेद और
 पुराणोंके सब कथा-इतिहास सुनते हैं ॥ २१७ ॥

चौ०—सखा बचन सुनि धित्य विहारी । उमये भरत किलोचन नारी ॥

करत प्रणाम फले होय भाई । कहत प्रीति सुहाए सजुचाई ॥ १ ॥

सखाके बचन सुनकर और वृद्धोंको देखकर भरतजीके नेत्रोंमें जल-उमड़ आया । दोनों
 भाई प्रणाम करते हुए बसे । उनके प्रेमका दर्पण करनेमें सरस्वतीजी भी सजुचाती हैं ॥ १ ॥

हरपहि निरखि राम पद अंकु । मानहुँ पारसु पावत रंका ॥

रक्त सिर धरि दिवै भयमहि आवहि । खुबर मिलत सरिस सुख पावहि ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके चरणचिह्न देखकर दोनों भाई ऐसे हर्षित होते हैं मानो वरिष्ठ
 पारस पा गया हो । वहाँकी रक्तरे मस्तकर रखकर हृदयमें और नेत्रोंमें लगाते हैं और
 श्रीरामचन्द्रजीके मिलनेके लगान सुख पाते हैं ॥ २ ॥

वैसि भरत गति अकल अतीता । प्रेम मगन सुख सब जग जीता ॥

सजहि सनेह विस्त भुनै भूख । कहि सुपथ सुर चरवि फूका ॥ ३ ॥

भरतजीकी अप्रमत्त अनिर्वचनीय दशा देखकर वनके पशु, पक्षी और जड़ (श्वादि)
 जीव प्रेमीय मग्न हो गये । प्रेमके विशेष वश होनेसे सखा निराश्रयत्वके भी रास्ता भूल
 गया । तब देवता सुगन्ध रास्ता बतलकर फूल बरसाने लगे ॥ ३ ॥

निरखि सिद्ध साधक अनुमाने । सहेज सनेहु सरखन काने ॥

हीत व मृतक अठ, भरत को शिवर सचर पर जकर करत को ॥ ४ ॥

भरतके प्रेमकी दृष्ट-स्थितिकी देखकर सिद्ध और साधकभोग भी अनुरागसे भर
 गये और उनके स्वाभाविक प्रेमकी प्रशंसा करने लगे कि यदि दृष्ट पृथ्वीतलपर भरतका
 जन्म [अर्थात् प्रेम] न होता, तो लोको केवल और चेतनको चढ़ जौन करता ॥ ४ ॥

दो०—प्रेम अमिम मंवेदु निरहु भरतु पयोधि यँसीर ।

मधि प्रगटेड सुर साधु हित, कृपासिधु रघुबीर ॥ २३८ ॥

प्रेम अमृत है, विरह मन्दराक्षक पर्व है, भरतजी गहरे समुद्र हैं । हृदयके समुद्र
 श्रीरामचन्द्रजीने देवता और, जगुओंके हितके लिये स्वर्ग [दृष्ट भरतजी गहरे समुद्रको
 अपने विरहसूत्री मन्दराक्षसे] भयकर बह-प्रेमरूपी अमृत प्रकट किया है ॥ २३८ ॥

चौ०—सखा समेत मनोहर ज्योत । छकेत न छत्रम सखन चन ज्योत ॥

भरत दीख प्रभु आनखु पावन । सनक सुमंजस अदभु सुहावन ॥ १ ॥

सखा निवादावस्थित इस मनोहर जोड़ीको सखन बनसी बादके कारण लक्षणजी नहीं देख पाये। भरतजीने प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके समस्त सुमुखोंके पास और सुन्दर पवित्र आश्रमको देखा ॥ १ ॥

फरत प्रवेश भिटे गुल दाया। जनु जोयीं पसरायु पखा ॥ १ ॥
देके भरत लखव प्रभु जाये। पूछे पचन कह्य बरुरागे ॥ २ ॥

आश्रममें प्रवेश करते ही भरतजीका दुःख और बड़ा (बढ़न) भिटे गया, मानो योगीको परमार्थ (परमत्व) की प्राप्ति हो गयी हो। भरतजीने देखा कि लक्षणजी प्रभुके आगे खड़े हैं और पूछे हुए वचन प्रेमपूर्वक कह रहे हैं (पूछी हुई बातका प्रेमपूर्वक उत्तर दे रहे हैं) ॥ २ ॥

सीप लख करि मुनि पट नौं। धन कौं कर सखु वनु कौं ॥

केही पर मुनि लख समाय। सीप सहित राजत खुराद ॥ ३ ॥

सिरपर लटा है। कमरमें मुनिबोझ (कपड़) फल बाँधे हैं और उद्योग तरकश कसे हैं। हाथमें बाण आकाशके भगुन है। केहीपर मुनि सखा साधुओंका समुदाय बैठा है और सीताजीपरित श्रीरघुनाथजी विराजमान हैं ॥ ३ ॥

गणक लख लखि लख लख। जनु मुनिबेध कीन्ह रति काम ॥

कर कामलवि भनु समस्त केत। जिय की जतिन हरत हंसि हेरत ॥ ४ ॥

श्रीरामजीके कपड़ बक हैं, कटा बारण लिये हैं, स्वाम सरीर है। [सीतारामजी ऐसे लगते हैं] मानो रति और कामदेवने मुनिका वेग धारण किया हो। श्रीरामजी अपने करकनकोंसे धनुष-बाण फेर रहे हैं, और हँसकर देखते ही जोड़ी लखन हर लेते हैं (अर्थात् पिलकी और भी एक बार हँसकर देख लेते हैं, उद्योगी वन आनन्द और धानि मिश्र वाली है।) ॥ ४ ॥

वो—लखत मंहु मुनि मंछली मध्य सीप रघुचंड।

म्यान सभी जनु तनु चरें मगति सखिदानंद ॥ १३६ ॥

द्वार मुनिमण्डलीके बीचमें सीताजी और रघुनाथचन्द्र श्रीरामचन्द्रजी ऐसे दुरोगित हो रहे हैं मानो गानकी समझें सखात् भक्ति और सखिदानन्द शरीर धारण करके विराजमान हैं ॥ १३६ ॥

वो—सामुह सख समेत भवन गव। बिसरे हरद सोक सुख हुष गन ॥

पहि नाथ करि पहि गोसाईं। मुक्त पने लखत की पाई ॥ १ ॥

जोई भाई शत्रु और सखा निवादावस्थित भरतजीका मन [प्रेम्में] मग हो रहा है। हृष-शोक, सुख-दुःख आदि सब भूल गये। ये नथ! रखा कीजिये, है गुसाईं! रखा कीजिये! ऐसी फरकत वे पृथ्वीपर दण्डकी तरह खिर पड़े ॥ २ ॥

पचन लखे लख सहिधाने। कल प्रचंडु, भरत भिये जाने ॥

रघु सनेह सख पदि नौर। उख सखि सेवा बल जोरा ॥ ३ ॥

प्रेममें वचनोंसे लक्षणजीने लक्षण लिये और मनमें जान लिया कि भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। [वे श्रीरामजीकी ओर मुँह लिये खड़े हैं, भरतजी पीठ-पीछे ये प्रभुके दर्शन देना नहीं।] अब श्रवण और तो माई भरतजीका सख प्रेम और उपर सामी श्रीरामचन्द्रजीकी सेवाकी प्रभु परकाय ॥ २ ॥

मिलि न जाइ पहि सुरल पगई। सुखिलखन सखकी रति सगई ॥ १३७ ॥

रहे सखि सेवा पर माफ। चही चंगु जनु बंध सेवाक ॥ ३ ॥

न तो [अथर्वके लिये भी देखते धृषक होकर] मिलते ही बनता है और न [प्रेमवश] छोड़ते (उपेक्षा करते) ही । कोई भी यदि ही लक्ष्मणजीके चित्तकी इस गति (दुविधा) का वर्णन कर सकता है । वे केवल मार रखकर रह गये (धवाको ही विशेष महत्त्वपूर्ण समझकर उसीमें लगे रहे) मगनो चढ़ी हुई पतंगको खिलड़ी (पतंग उड़ानेवाला) सींच रहा हो ॥ ३ ॥

कहत सभेस नहि मदि मर्या । मरुत प्रसन्न कस्त खुनाया ॥

उठे राखु सुनि ऐस कवीरा । कहूँ पद कहूँ निर्वन्ध धनुतीरा ॥ ४ ॥

लक्ष्मणजीने प्रेमसहित पृथ्वीपर मरुत नवाकर कहा—हे रघुनाथजी ! भरतजी प्रणाम कर रहे हैं । यह सुनते ही श्रीरघुनाथजी प्रेममें अधीर होकर उठे । कही कस्त मिरा, कही तरकत, कही धनुष और कही बाण ॥ ४ ॥

दो—बरवस छिप उड़ाह ऊर छापर छुपानिधान ।

भरत राम की मिलमि लखि बिसरे सबदि अपान ॥ ५ ॥

छुपानिधान श्रीरामचन्द्रजीने उनको जबरदस्ती उठाकर हृदयमें लुका लिया । भरतजी और श्रीरामजीके मिलनेकी रीतिको देखकर सबको अपनी भुव भूछ गयी ॥ ५ ॥

चौ—मिलमि प्रीति किमि जगह बखानी । कसिहुल भगम कसम मम बानी ॥

परम ऐस पूरव सोद भाई । ममहुचिभित्तबहमिति बिसराई ॥ ६ ॥

मिलनकी प्रीति कैसे बखानी भव ! वह तो कसिहुलके लिये कर्म, मन, बाणी चीनीसे भगम है । दोनों भाई (भरतजी और श्रीरामजी) मन, बुद्धि, चित और अहंकारको भुलकर परम प्रेमेसे पूर्ण हो रहे हैं ॥ ६ ॥

कहहु सुनेम प्रणय को कर्तु । केहि जगक कवि मति बलुसराई ॥

कहिदि धरथ जगवर बसु सौख । मनुहमि ताक गतिदि नदु भाषा ॥ ७ ॥

कहिये, उस छेद प्रेमको कौन प्रकट करे ! कविभी बुद्धि किसकी छायाका अनुसरण करे ! कविको तो अक्षर और अर्थका ही क्या बल है । नद वालकी गतिके अनुसार ही नाचता है ॥ ७ ॥

भगम सनेह भरत रघुवर को । जौँव जगहसु विधि हरि हर को ॥

सो मैं कुमति कहीं केहि भौली । बान सुराय कि गौँवर चौली ॥ ८ ॥

भरतजी और श्रीरघुनाथजीका प्रेम अहम्य है, जहाँ जगह विष्णु और नारायणका भी मन नहीं जा सकता । उस प्रेमको मैं कुमति किस प्रकार खूँ ! भल, गौँवरकी तौलके भी नहीं सुन्दर राम बल सकता है ॥ ८ ॥

[वालकी और कील्लेमें एक तराईकी भाँति होती है, उसे खँवर कहते हैं ।]

मिलमि बिलोकि जस्त रघुवर की । सुखम सम्य बसवकी परकी ॥

सुखसाय सुखक जग चले । कवि प्रसून प्रसंसन छागे ॥ ९ ॥

भरतजी जोर श्रीरामचन्द्रजीके मिलनेका दंग देखकर देखता मगनीत हो गये, उनको दुःखकी धड़कने लगी । देखाव नृहरिजीने समझाया, तब कही वे मूर्ख चले और भूल करवाकर प्रसन्न करने लगे ॥ ९ ॥

दो—मिलि खपेम ^{प्रिय} ^{प्रिय} नहि केवल मतेउ पय ।

भूरि मार्य मुँद भरत खलिमाष करत प्रनाम ॥ १० ॥

शिर श्रीरामजी प्रेमेके बाण शत्रुको मितकर तब केवट (निचरवान) से मिले । प्रणाम करते हुए लक्ष्मणजीसे भरतजी कहे ही प्रेमेसे मिले ॥ १० ॥

सौ०—मोटठ लखन कछकि लघु माई। च्युरि निपहु छीन्ह उर लाई ॥

पुनि मुचिपन बुद्धे साहन्ह बने। बधिरास अरिप-पाह् अनदि ॥ १४ ॥

तब लखनजी लखकर (लकी उमंगके लक्ष्म) छोटे भाई शत्रुघ्ने मिले। फिर उन्होंने निपादराजको हृदयसे लगा लिया। फिर भरत-शत्रुघ्न दोनों माइयोंने [उपसित] मुनियोंको प्रणाम किया और श्रुतिगत वाणीवाँद पाकर वे आनन्दित हुए ॥ १ ॥

सालुब भरत उमंगि अनुसगा। परिसरिस्त्रि पद प्लुभ परगा ॥

पुनि पुनि करत प्रणाम उखए। सिर कर कमल परसि बैठाए ॥ २ ॥

छोटे भाई शत्रुघ्नसहित भरतजी प्रेमों उमँगकर सीताजीके चरणकमलोंकी रज किरपर धारणकर बार-बार प्रणाम करने लगे। सीताजीने उन्हें उठाकर उनके सिरको अपने करकमलोंसे स्पर्शकर (किरपर हाथ फेरकर) उन दोनोंको बैठाया ॥ २ ॥

सीधे असीधे दीन्ह मन माहीं। मग्न सनेहैं वेद सुधि माहीं ॥

तब धिधि साधुपूज कलि सीख। ने निसोच उर अनुसर बीता ॥ ३ ॥

सीताजीने मन-ही-मन आशीर्वाद दिया। क्योंकि वे कोहमें मग्न हैं, उन्हें देहकी छुप-छुप नहीं है। सीताजीको सब प्रकारसे अपने अनुकूल देखकर भरतजी सोचरहित हो गये और उनके हृदयका धरित मन जाता रहा ॥ ३ ॥

बोब किपु कह्य न कोच किछु रूँझ। मग्न मन धिध गति रूँझ ॥

तेहि अवसर केवहु बीतलु धरि। जोरि पायि धिक्कत प्रणामु करि ॥ ४ ॥

उस समय न तो कोई कुछ कहता है; न कोई कुछ पूछता है। मन प्रेमसे परिपूर्ण है, वह अपनी गतिसे लाली है (अपना संकल्प-विकल्प और चाञ्चल्यसे छूट्य है)। उस अवसरपर केवट (निपादराज) भीरव धरं और हाथ जोड़कर प्रणाम करके विनयी करने लगे—॥ ४ ॥

सौ०—नाथ साय मुनिनाथ के मातु सकल पुर ज्येस।

लेखक लेख सचिन लख आप विफल वियोग ॥ २४२ ॥

हे नाथ ! मुनिनाथ पशिष्ठजीके साथ हम मताएँ, नयरनिवासी, सेवक, सेनापति, मन्त्री सब आपके विद्योत्तसे व्याकुल होकर लगे हैं ॥ २४२ ॥

सौ०—सीकसिधु पुनि गुर आकम्ब। सिम समीप एके रिपुबन्ध ॥

चके सयैव यहु तेहि कला। धीर धरम गुर दीक्षववाला ॥ १ ॥

गुरुका आग्रहान सुनकर सीकके लख श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीके पास शत्रुघ्नजीको रज दिया और वे परम धीर, धर्मधुरन्धर, दीनदवाह्य श्रीरामचन्द्रजी उसी समय वेगके साथ चले गये ॥ १ ॥

गुरहि देखि संपुत्र बलुराग। दंड प्रणाम करव प्रभु कले ॥

मुनिवर धम्ब लिष्ट उर लन्ह। प्रेम उमंगि येँ, दोन, लाई ॥ २ ॥

गुरुजीके दर्शन करके लखनजीसहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी प्रेमसे मर गये और बण्डवत्-प्रणाम करने लगे। मुनिने पशिष्ठजीने दौटकर उन्हें हृदयसे लगा लिया और प्रेमसे उमँगकर वे दोनों माइयोंसे मिले ॥ २ ॥

प्रेम पुलकि केवट कहि चहु। बनिह पुरि हैं, दंड प्रणाम ॥

रामसखा रिधि करवस मेटा। अनुमति छुप्य सनेह प्रमेदा ॥ ३ ॥

फिर प्रेमसे पुलकित केवट (निपादराज) ने अपना नाम लेकर दूरसे ही

वशिष्ठजीको दण्डका-प्रचाम किया। ऋषि वशिष्ठजीने रामसत्ता ज्ञानकर उसको खपदती हुदयसे लगा लिया। मानो जमीनपर लोटते हुए प्रेमको समेट लिया हो ॥ १ ॥

रघुपति भगति सुमंगल मूल। नम सराहि सुर धरिहहि फूल ॥

एहि सम निपट नीच कोट नाहीं। वड वसिष्ठ सम को जग माहीं ॥ ४ ॥

श्रीरघुनाथजीकी भक्ति सुन्दर मङ्गलका मूल है, इस प्रकार कहकर सराहना करते हुए देवता आकाशसे फूल बरसाने लगे। वे कहने लगे—जगतमें इसके समान सर्वथा नीच कोई नहीं और वशिष्ठजीके समान बड़ा कौन है ? ॥ ४ ॥

दो०—जेहि लखि लखनहु तँ अधिक मिले सुदित मुनिराज।

सो सीतापति भजन को प्रगट प्रताप प्रभाज ॥ २४३ ॥

जिस (निराद) को देखकर मुनिराज वशिष्ठजी स्वामजीसे भी अधिक उल्लेख भानन्दित होकर मिले। वह सब सीतापति श्रीरामचन्द्रजीके भजनका प्रत्यक्ष प्रताप और प्रभाव है ॥ २४३ ॥

चौ०—भारत छोड़ राम सजु जाय। कलककर सुजान भगवाना ॥

जो केहि भय रह्य अमिलपायी। तेहि तेहि कै तसि तसि एक एकी ॥ १ ॥

दयाकी खान, दुःखन भगवान् श्रीरामजीने सब जेगोंको हुसी (भिल्लेके शिथिल व्याकुल) जाना तब जो जिस भावसे भिल्लेका अगिलापी था, उस-उसका उस-उस प्रकारका वल रखते हुए (उसकी वचिके अनुसार) ॥ १ ॥

साधुन मिलि एक सहै सब कहू। संग्ह दुरि दुख दायन वाहू ॥

यह यदि पाठ राम कै माहीं। किमि घट कोटि एक रहि छाहीं ॥ २ ॥

उन्होंने स्वामजीसहित फलभरमें सब किरीसे मिलकर उनके दुःख और कठिन संतापको दूर कर दिया। श्रीरामचन्द्रजीके लिये वह कोई बड़ी बात नहीं है। जैसे कतौहीं वहाँमें एक ही सुईकी [पृथक्-पृथक्] धागा (प्रतिविम्ब) एक साथ ही दीखती है ॥ २ ॥

मिलि केष्टहि उमगि अनुराग। पुरजन सकल सराहहि भाग ॥

देखीं सम दुखित महत्तर। जसु सुखेसि अबडीं दिन मारी ॥ ३ ॥

समस्त पुरवासी प्रेममें उमंगकर केष्टसे मिलकर [उसके] भाग्यकी सराहना करते हैं। श्रीरामचन्द्रजीने सब माताओंको हुसी देखा। मानो सुन्दर जगजोंकी पंक्तिमेंकी पाछा मार गया हो ॥ ३ ॥

१ प्रथम राम भेंटी कैकेई। सकल सुमार्ब भगति मति भेई ॥

परा परि कीन्ह प्रप्रेषु नहीरी। काल करम विधि सिर परि लोरी ॥ ४ ॥

सबसे पहले रामजी कैकेयीसे मिले और अपने सरल स्वभाव तथा भक्तिसे उसकी श्रद्धाको तर कर दिया। फिर चरणोंमें गिरकर काल, कर्म और विधातके विर दोष मँद-कर, श्रीरामजीने, उनको खन्तना दी ॥ ४ ॥

दो०—मेटीं रघुवर मातु सब करि प्रबोधु परितोषु।

अथ ईस ज्ञानीन जसु काहु न देख्य दोषु ॥ २४४ ॥

फिर श्रीरघुनाथजी सब माताओंसे मिले। उन्होंने सबको समझा-बुझाकर खतोष कराया कि हे माता ! जगत् ईश्वरके अधीन है। किसीको भी दोष नहीं देना चाहिये। २४४ ॥

चौ०—गुरुधिय पद बंदे बुद्ध माई। सहित चिन्तिय जे सँय भाई ॥

गंग गौरि सम सब समानाहीं। देहि जसुसि सुखित सह्य चार्ती ॥ १ ॥

फिर दोनों माइयोंने ब्राह्मणोंकी शिखेंसहित—जो मरतजीके साथ जायी थीं, गुरु-

कीकी पत्नी दहनपतीकी करौती कन्दन की और उन सबका गङ्गाजी तथा गौरीजी-
के समान समान किया। वे सब अक्रन्दित होकर कोमल चापीसे आशीर्वाद देने लगीं ॥६॥

गति पद छी सुविश्राम अंश ॥ अट्ट मंटी संवसि गति रंका ॥

हुनि अतनी अवनति होत जाता ॥ परे पैम व्याकुल सब गाता ॥ २ ॥

तब दोनों भाई पैर एकजुट सुविश्रामकी बोहने जा लिपटे। मानो किसी अत्यन्त
दरिद्रको स्पर्शसे भेंट हो गयी हो। फिर दोनों भाई माया कौसल्याजीके सरणोंमें गिर
पड़े। प्रेम्से मरे उनके चरे बहुत सिफिक हैं ॥ २ ॥

अति धनुराय संघे नीर काए। नवन सनेह सकल अङ्गवाण ॥ १ ॥

बेदि अक्षर तर हरष बिवाह। केमि कवि कहै मूक निमि साह ॥ २ ॥

ये ही श्लेषसे मारते उन्हें हृदयसे लगा लिया और नेत्रोंसे बड़े हुए प्रेमाश्रुओंके
बलसे उन्हें नहा दिया। उस समयके हर्ष और विषादको कवि कैते कैसे ! जैसे गुँगा
सागरको कैसे बतावे ! ॥ ३ ॥

मिलि जनविहि सखुन रघुनाथ ॥ गुर सब अहोय कि वारिम पाक ॥

पुरजन पाह मुनीस विचोरी ॥ कह वच अकि अतिरेह लीग ॥ ४ ॥

श्रीरघुनाथजीने छोटे भाई लक्ष्मणजीकेहित मत्ता कौशल्यासे मिलकर गुह्यसे
कहा कि आप्रमत्त पचारिये। तदनन्तर मुनीकर कविश्रुजीकी याच पकर अयोध्या-
वासी सब लोग बह और पकर मुनीस देख-देखकर उठर गये ॥ ४ ॥

दो—महिमुन मंत्री मातु गुर गने लोग छिप साध ॥

पाकम आश्रम गयनु किय भरत कन्दन रघुनाथ ॥ २४५ ॥

मार्दान, मन्त्री, यत्तारों और गुरु आदि भिने चुने जेनोंको साथ लिये हुए, भरत-
जी, लक्ष्मणजी और श्रीरघुनाथजी पवित्र आश्रमको चले ॥ २४५ ॥

चौ—सोय भाए सुनिकर पग समी ॥ उचित वसीस कही सब सती ॥

गुरपतिनिहि सुनिनिह सहस्र ॥ मिली वेनु कवि बह न लीता ॥ १ ॥

सीताजी आप्रमत्त मुनिश्रेष्ठ कविश्रुजीके सरणों लगीं और उन्होंने मन्त्राली उचित
वाचिप पायी। फिर मुनिश्रेष्ठों की शिरोसेहित शुद्धमती अक्षरपतीजीसे मिली। उनका
विदना प्रेम था, वह कहा नहीं जाता ॥ १ ॥

पैरि बनि वग विष समरी के ॥ अतिस्वच्छ छे प्रिय जी के ॥

साधु सज्जन, सब सौम्य निहायी ॥ सदैव नम्र, तहमि सुकुमार्य ॥ २ ॥

सीताजीने सभीके करणोंकी लज्जा-अल्ला कन्दन करके अपने हृदयको, प्रिय,
(अनुकूल) लगानेवाले आशीर्वाद पाये। सब सुकुमारी सीताजीने सब सखियोंको देखा,
तब उन्होंने रहस्यरत जपनी ओंखें बंद कर लीं ॥ २ ॥

परी पथिक बस मनुहुं अगण ॥ काह किन्ह करतार कुत्राली ॥

किन्ह सिपभित्ति निफटहुषु पाया ॥ सो सख सखिओ जो पैरुं सहाया ॥ ३ ॥

[साधुओंकी हुरी देखा देखकर] उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो राजहंसिनियों
वचिकके अगम पड़ गयी हो। [अपने खेचने लगीं कि] कुत्राली विषालाने क्या कर
जाया ! उन्होंने भी सीताजीको देखकर बड़ा दुःख पाया ! [खेच] जो कुछ देव
सहाये, वह सब सहना ही पड़ता है ॥ ३ ॥

सकसुता सब तर परि घीरा ॥ बीच सकल खेचन मरि नीरा ॥

मिली ललक साधुनह रिय बाई ॥ बेदि अक्षर कल्या-सहि साई ॥ ४ ॥

तव जानकीजी हृदयमे धीरज भरकर, नील कमलके समान नेत्रोंने जल भरकर,
सब धातुओंसे जाकर मिलीं । उस समय पृथ्वीपर कण्ठा (कण्ठ-रस) छा गयी ॥ ४ ॥

दो०—छागि छागि पन सखनि सिय मँडति नति अनुराग ।

हृदयें असोसहिं पेम कस रहियहु भरी सोहाग ॥ २४६ ॥

सीतानी सबके पैरों छत्र-छाकर अत्यन्त प्रेम्से मिल रही हैं और सब सासुएँ स्नेहन-
हृदयसे आशीर्वाद दे रही हैं कि तुम सुहागसे भरी रहो (अर्थात् सदा सौभाग्यवती रहो) ॥ २४६ ॥

चौ०—विकल सनेहें सोय सख सर्नी । कैऊ सखहि कहेउ गुर न्यानी ॥

कहि जग गति मायिक मुनिनखा । कहे कहुक परमारथ पावा ॥ १ ॥

सीतानी और सब रानियाँ स्नेहके मारे व्याकुल हैं । तब ज्ञानी गुरुने सबको बैठ
जानेके लिये कहा । फिर मुनिनाथ वशिष्ठजीने जगत्की यतिको मायिक कहकर (अर्थात्
जगत् मायाका है, इतने ज्ञान भी नित्य नहीं है, ऐसा कहकर) कुछ परमार्थकी कथाएँ
(बातें) कहीं ॥ १ ॥

रूप कर सुरुर गवसु सुखावा । सुधि रघुनाथ हुसह हुसह पावा ॥

भरण हेतु निज केहु पिचारी । ने नति विरल धीर दुर धारी ॥ २ ॥

सदनन्तर वशिष्ठजीने राजा दशरथजीके स्वर्गगमनकी बात सुनायी । लिये सुनकर
रघुनाथजीने हुसह हुसह पावा । और अपने प्रति उनके स्नेहको उनके मरनेका कारण
विचारकर धीरधुरन्वर श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त व्याकुल हो गये ॥ २ ॥

हुनिष कडोर सुनत कहु बाणी । किरण कखन सीय सब राणी ॥

लोक विकल नति सकल समाध । गान्हे राहु अकाशेंद जाल ॥ ३ ॥

बज्रके समान कठोर, कड़वी बाणी सुनकर रामराज्यकी, सीताजी और सब रानियाँ विजग
करने लगीं । सारा समाज होकर अत्यन्त व्याकुल हो गया । मानो राजा आज ही मरे हो ॥ ३ ॥

मुनिषर बहुरि राम सतुषाए । सहित समाज सुसरित नगाए ॥

प्रभु निरंजु तेदि दिन प्रभु कीन्हा । मुनिहु कहेँ जहु काहुँ न कीन्हा ॥ ४ ॥

फिर मुनिने वशिष्ठजीने श्रीरामजीको समझाया । तब उन्होंने समाजवहित भेद
नही मन्दाकिनीजीमें स्नान किया । उस दिन प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने निर्जल मत
पिया । मुनि वशिष्ठजीके कहनेपर भी किसीने जल ग्रहण नहीं किया ॥ ४ ॥

दो०—भोद भयै रघुनन्दनहि ओ मुनि अपसु दीन्ह ।

अद्या भगति समेत प्रभु सो सखु सादर कीन्ह ॥ २४७ ॥

दूसरे दिन रात्रि होनेपर मुनि वशिष्ठजीने श्रीरघुनाथजीको जो-जो आशा दी, वह
सब कार्य प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने अद्या-भक्तिवहित आदरके साथ किया ॥ २४७ ॥

चौ०—अरि पिहु किया वेद जलि बस्नी । मे पुचीत पातक कम ठरनी ॥

जासु नाम पातक जव क्लृप्त । मुनिस्त सकल सुसंमल सूक्ष्म ॥ १ ॥

वेदोंमें जैसा कहा गया है, उसीके अनुसार मितानी किया करके, पापक्षयी अन्धकार-
के नष्ट करनेवाले स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी बुद्ध हुए । विनम्र नाम पापक्षयी कहे [तरत
(नष्ट) हाजनेके] लिये अग्नि है और विनम्र सरणमात्र समस्त कुम मद्भजोंका मूल है ॥ १ ॥

बुद्ध सो मयद साधु संमल जल । तीरव जगज्जल सुसरि जल ॥

बुद्ध भयै बुद्ध वासर धीति । थोके दुर सन राम पिराते ॥ २ ॥

वे [नित्य बुद्ध-बुद्ध] मन्वान् भीरवजी बुद्ध हुए ! साधुओंकी ऐसी सम्मति है
कि उनका बुद्ध होनेसे वे ही हैं जैसा तीर्थोंके आवाहनसे मन्वान् बुद्ध होती हैं ! (राजाजी

नो समानते ही बुद्ध हैं, उनमें जिन तीनोंमें आकाश किन्ना जाता है उल्टे वे ही गद्गा-
जीके सम्पर्कमें आनेसे झूट हो जाते हैं। इन्हीं प्रकार सच्चिदानन्दस्वर श्रीराम तो निरु-
द्ध हैं, उनके संगसे कहीं ही बुद्ध हो गये।) जब बुद्ध हुए दो दिन, बीच भये तब
श्रीरामचन्द्रजी प्रीतिके साथ मुस्कीसे बोले—॥ २ ॥

नाथ लोग सब निपट दुखारी : कंठ मूळ फल धनु जाहारी ॥

साधुस मलु सचिव सब मातक । देखि मोहि एक विमिश्रुग जाता ॥ ३ ॥

हे नाथ ! सब खेम नहीं अत्यन्त दुखी हो रहे हैं। फन्त, मूल, फल और जलका
ही आश्रय करते हैं। भयं शत्रुनरहित मरखको, मन्त्रिबोंको और सब माताओंको देखकर
हुते एक-एक पल दुःखके समान बीच रहा है ॥ ३ ॥

सब समेत पुर आनिध पाठ । कष्ट इहाँ कमलवति रात ॥

धनुत कहे हैं सब किमैं किगई । उचित होइ सब करिग रोसोंई ॥ ४ ॥

सतः सबके साथ आप अयोध्यापुरीको पचारिये (जैट जाइये) ! आप यहाँ हैं,
और राजा अमरावती (स्वर्ग) में हैं (अवोधा घुसी है)। मैंने बहुत कष्ट टाक्य, पर
सब यही किगई फी है। हे योग्यदे ! जैसा उचित हो, वैसा ही कीजिये ॥ ४ ॥

दो०—धर्म सेतु कसनामस्तन कस न कहहु अख राम ।

लोग दुखित बिन दुर दरख देखि रहहु विभ्राम ॥ २४८ ॥

[बाणभनीने कहा—] हे राम ! तुम कसके सेतु और दयाके काम हो; तुम भला देना

क्यों न करो ! लोग दुखी हैं। दो दिन दुःखारा दर्शन कर मानि खम कर लें ॥ २४८ ॥

चौ०—राम दखन धुनि समय समान् । जनु सत्यविधि महुं बिलस कहान् ॥

धुनि दुर गिरा धुर्मगल सूख । सयक समझे भाव धनुकान् ॥ १ ॥

श्रीरामजीके पक्षन पुनकर साथ समाव भवमीत हो गया। गानो बीच समुद्रमें
झूटन लगाया गया हो। परन्तु जब उन्होंने गुप्त बहिष्कृतीकी श्रेष्ठ कल्याणमूलक बाणी
सुनी, तो उस काहलके लिये मानो हन्त अनुकूल हो गयी ॥ १ ॥

पावन पर्व ठिठु काक कहाही । ओ किमोकि अब भोव नसाही ॥

मंगलदूतवि डोचन भरि भरि । निरखहि हरपि वृषभ करि करि ॥ २ ॥

जब लोग पवित्र पवलिनी नदीमें [अपना पवलिनी नदीके पवित्र जलमें] धीनों
समय (तब, दोहर और सारंगल) स्नान करते हैं, तबसे सर्वसे ही पापोंके उद्धार
नष्ट हो जाते हैं और मङ्गलमूर्ति श्रीरामचन्द्रजीको दण्डवत्-प्रणाम कर-करके उन्हें नेत्र
भर-भरकर देखते हैं ॥ २ ॥

राम सैक कम देखन जाही । यहुं सुख सफल सफल दुख जाही ॥

हरना प्रार्थि सुखभ्रम जासी । विविध तापहर विविध वपारी ॥ ३ ॥

जब श्रीरामचन्द्रजीके गर्व (कम्बुगिरि) और वनसे देखने जाते हैं जहाँ सभी
मुल हैं और सभी दुःखोक्त अभाव है। हरने जगत्के समान कम-करते हैं और तीन
प्रकारकी (शीतल, शनद, सुमन्व) दण्ड धीनों प्रकारके (आध्यात्मिक, आधिभौतिक,
आधिदैविक) तपोंको हर लेती है ॥ ३ ॥

विश्व येनि हन अनन्ति जाती । फल प्रसूत पक्ष्य बहु मीली ॥

सुंदर सिला सुखद सब जाही । जह् ज्योति सब जनि केहि पाही ॥ ४ ॥

अशंख्य जलिके वृक्ष, जहाँ और रूप हैं तथा बहुत तरहके फल, फूल और फी

हैं। सुन्दर किलाएँ हैं। कृष्णकी जाया सुत देनेवाली है। वनकी छोम्र किलते बर्षन की जा सकती है ॥ ४ ॥

८ दो०—सरणि सरोरुह अल विहग कूजत गुञ्जत सुंग ।

येर बिरात बिहरत विपिन सुय विहंग वहुरंग ॥ २४९ ॥

तालाबोमें कमल खिल रहे हैं, जलके पक्षी कूब रहे हैं, भीरे गुंगार कर रहे हैं और बहुत रंगोंके पक्षी और पशु वनमें बैरहित होकर बिहार कर रहे हैं ॥ २४९ ॥

चौ०—ओल किरात भित्त चनवासी । मधु सुंघि सुंदर खदु सुधा सी ॥

भरि भरि परनपुटीं रचि करी । कंद मूल फल अंकुर खरी ॥ १ ॥

कोल, किरात और भील आदि वनके रहनेवाले लोग पवित्र, सुन्दर एवं अमृतके समान स्वादिष्ट मधु (राइद) को सुन्दर होने बनावर और उनमें भर-भरकर तथा कन्द, मूल, फल और अंकुर आदिकी जड़ियों (औषधियों) को ॥ १ ॥

कहहि देखि करि भिनय प्रथमा । कहि कहि खदु भेद गुन नामा ॥

देहि लोग ओल न केही । फेरव राम दोहरई देही ॥ २ ॥

सबको भिनय और प्रथम करके उन चीजोंके लक्षण-लक्षण बता, भेद (प्रकार), गुण और नाम बता-बताकर देते हैं। लोग उनका बहुत दाम देते हैं, पर वे नहीं लेते और लौटा देनेमें औरामजीकी दुहाई देते हैं ॥ २ ॥

कहहि खनेह समर सधु बाणी । मानव साधु पैम पहिचानी ॥

गुह्य सुकुषी हन नीच निपटवा । पावा दरखु राम प्रसादा ॥ ३ ॥

प्रेममें भग्न हुए वे कोमल बाणोंसे कहते हैं कि साधु लोग प्रेमको पञ्चायकर उसका सम्मान करते हैं (अर्थात् आप साधु हैं, आप हमारे प्रेमको देखिये, राम देकर या बसुएँ लौटाकर हमारे प्रेमका तिरस्कार न कीजिये।) आप ही पुण्यात्मा हैं, हम नीच निपाद हैं। श्रीरामजीकी कृपासे ही हमने आपलोगोंके दर्शन पाये हैं ॥ १ ॥

हमहि भगम अति परखु गुह्यतम । बस सब बरणि देखुनि धारा ॥

राम कृपात विपाद निवादा । परिजब प्रजत चहिम जस एवा ॥ ४ ॥

हमलोगोंको आपके दर्शन थके ही दुर्लभ है, जैसे मरुभूमिके लिये राजाजीकी धारा दुर्लभ है। [देखिये,] कुम्भछ श्रीरामचन्द्रजीने निपादपर डौरी कृपा की है। जैसे राजा हैं, वैसा ही उनके परिवार और प्रजाको भी होना चाहिये ॥ ४ ॥

दो०—यह जियँ जानि सँकोनु तसि करिअ छेहु कछि नेहु ।

हमहि कृतारथ करन लगि फल दन अंकुर लेहु ॥ २५० ॥

हृदयमें ऐसा जानकर संकोच छोड़कर और हमारा प्रेम देखकर कृपा कीजिये और हमको कृतार्थ करनेके लिये ही फल, दान और अंकुर लीजिये ॥ २५० ॥

चौ०—गुह्य प्रिय पाहुने नव पशु धारे । सेवा जोसु न भाग हमारे ॥

देव काद हम तुम्हहि बोसई । हँचनु पाव किछत मिताई ॥ १ ॥

आप प्रिय पाहुने कनो पधारे हैं। आपकी सेवा करनेके योग्य हमारे भाग्य नहीं है। हे स्वामी! हम आपको क्या देये! मीथेकी मित्रता तो बस, ईषल (जकड़ी) और फलों ही तक है ॥ १ ॥

यह हमारी अति बड़ि सेवाफाई । देखि न बालव बसल चोराई ॥

हम खद जीव जीव नन जाती । कुटिल कुलकी कुमति कुलपटी ॥ २ ॥

हमारी तो बड़ी बड़ी मारी सेवा है कि हम आपके कम्पे और वर्तन नही चुप

छे। हमलोग सब जीव हैं जीवोंमें हिंस करनेवाले हैं। कुटिल, कुचावी, कुबुद्धि और कुजाति हैं ॥ २ ॥

पाप कस्त निस्ति बसत जाहीं। बहिं पट कटि नहिं बेट कवाहीं ॥

सबनेहुँ परमबुद्धि कसत फल। यह खुबदख बसत प्रभाक ॥ ३ ॥

हमारे दिन-रात पाप करते ही बीतते हैं। तो भी व तो हमारी कमरमें कपड़ा है और न पेट ही भरते हैं। हममें सज्जनों भी कमी परमबुद्धि कैसे! यह सब तो औरगुणार्णवके वर्णनका प्रभाव है ॥ ३ ॥

जय ते मधु एव पशुम निहारे। मिटे बुझह दुख दोष हमारे ॥

पशुन मुक्त पुराण धनुराये। सिन्द के नाग सराहण लगे ॥ ४ ॥

जैसे प्रभुके पराक्रमक देखे। तैसे हमारे दुःखदुःख और दोष मिट गये। वनवासियोंके बचन सुनकर भयोन्माके लोग प्रेम्में भर गये और उनके मायकी सराहना करने लगे ॥ ४ ॥

छ०—जैसे सरसहन मान सब मरुपग वचन सुनावहीं।

पौकनि सिधनि खिय राम बरष सनेहु छवि सुसु पावहीं ॥

नर नारि मिदरहि तेहु भिज मुनि कोरु मिहनि की गिरा।

हुकसी कृपा खुबंसमनि की दोह डै डौका सिरा ॥

सब उनके मायकी सराहना करने लगे और प्रेम्के वचन सुनने लगे। उन लोगोंके शोक्ने और मिलनेका दंग तथा भीषीतरामजीके चरणीमें उनका प्रेम देखकर सब झुक पा रहे हैं। उन भोज-भीषीकी वाणी सुनकर सभी नर-नारी अपने प्रेमका गिरावर करते हैं (उसे चिन्तित करते हैं)। हुकसीदासजी करते हैं कि यह खुबंसमनि श्रीरामचन्द्रजीकी कृपा है कि लोग नौचको धन्य ऊपर लेकर ठेर गया।

जै०—गिराहिं धन कहु और प्रतिदिन प्रमुदित लोच सब।

सक ज्यों दाहुर मोर भए पीम पावल प्रथम ॥ २५१ ॥

सब लोग दिनोंदिन परम आनन्दित होते हुए कर्मों चरों और चिन्तित हैं। जैसे पहली कपकि बकते मेदुल और गोर मोटे हो जाते हैं (जसक होकर माचते-कूदते हैं) ॥ २५१ ॥

पौ०—सुर वन गति भजन भक्ति प्रीति। कसर काहिं एक सन कीती ॥

सीप सखु गति केव बचाई। साक्षर कर खरित सेवकाई ॥ १ ॥

भयोन्मापुरीके पुत्र और सभी सभी प्रेम्में अत्यन्त मग्न हो रहे हैं। उनके दिन मलके समान बीत जाते हैं। कितनी साधुएँ यहाँ उठने ही केव (रूप) बनाकर बीताती तब साधुलोक की गायरपूर्वक एक-ही सेवा करती हैं ॥ १ ॥

कहा न मरु उम बिनु काहूँ। माया सब सिव साया भाहूँ ॥

सोयें साधु सेवक फल कीन्हों। सिन्द कदि मुख सिलकसिप दीन्हों ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके ठिक दस मेरको और मिथीने नहीं जाना। सब साधारण [पराधमि महाभाषा] भीषीदासजीकी मायामें ही हैं। बीतातीने साधुओंको सेवाके वकमें कर लिया। उन्होंने सुख पाकर सीध और आशीर्वाद दिये ॥ २ ॥

लखि सिम सहित सख सोढ भाहूँ। कुटिल रावि पछितनि भवाहूँ ॥

अवनि काहिं जावति कैनेहें। यहि न बीनु बिधि मीनु न देहें ॥ ३ ॥

सीताजीकेउ दोनों भाइयों (श्रीरामचन्द्रजी)को साक स्वभाव देखकर कुटिल रावि कैनेपी भरपेट पछतायी। वह पृथ्वी तथा वनपजते वाक्य करती है। किन्तु धरती बीच

(फटकर राम जानेके लिये यथा) नहीं देती और विधाता मौत नहीं देता ॥ ३ ॥

लोकहुँ वेद विवित कबि कह्यौ । राम विमुख बहुत नरक न लह्यौ ॥

यहु संसद सन के मन मझौ । राम गनतु विधि अनघ कि नाहौ ॥ ४ ॥

लोक और वेदमें प्रसिद्ध है और कवि (ज्ञानी) भी कहते हैं कि जो श्रीरामजीसे विमुख हैं उन्हें नरकमें भी ठौर नहीं मिलती । उनके मनमें यह धन्देश हो रहा था कि हे विधाता ! श्रीरामचन्द्रजीका अयोध्या जाना होगा या नहीं ॥ ४ ॥

दो०—निजि न नीद नहि भूख दिन भरतु विकल सुचि सोच ।

नीच कीच निच मयन जस मौनहि सलिल सँकोच ॥ २५२ ॥

भरतजीको न सो रातको नीद आती है, न दिनमें भूख ही लगती है । वे पवित्र सोचमें ऐसे विकल हैं, जैसे नीचे (तल) के झीपकमें हूयी हुई मछलीको जलकी कमीसे व्याकुलता होती है ॥ २५२ ॥

चौ०—कीन्हि मातु मिस कल कुचाली । ईसि सीति जस पाकल साखी ॥

केहि विधि होइ राम अभियेकु । मोहि अवकलत उपाय न एकु ॥ १ ॥

[भरतजी सोचते हैं कि] मरतकें मिलते कलने कुचाल सी है । जैसे धानके पकते समय ईतिका भग आ उपसित हो । मन श्रीरामचन्द्रजीका राख्याभियेकु कित प्रकार हो, मुझे तो एक भी उपाय नहीं सुझ पड़ता ॥ १ ॥

अवलि किहिहि शुभ आगमु मायी । मुनि मुनि कह्य राम कबि जानी ॥

मातु कह्यौ सुगुहं सुगुहं । सम जनि हठ करमि कि काहु ॥ २ ॥

सुचलीकी भाषा मनकर तो श्रीरामजी अवश्य ही अयोध्याको छूट चलेंगे । परन्तु मुनि वशिष्ठजी तो श्रीरामचन्द्रजीकी कवि जानकर ही कुछ कहेंगे (अर्थात् वे श्रीरामजीकी कवि देखे बिना जानेको नहीं कहेंगे) । माता कौसल्याजीके कहनेसे भी श्रीरघुनाथजी छूट सकते हैं; पर भय, श्रीरामजीको जन्म देनेवाली माता क्या कभी हठ करती ? ॥ २ ॥

मोहि भुजुर कर केतिक बाता । रोहि मोह कुसमद काम बिधाता ॥

भी हठ करैं त निपट कुकरसु । हरगिरि तें सुख सेवक भरसु ॥ ३ ॥

मुझ सेवककी तो बात ही मिशनी है ! उसमें भी समय खराब है (मेरे दिन अच्छे नहीं हैं) और विधाता प्रतिकूल है । यदि मैं हठ करता हूँ तो वह पौर कुकर्म (अधर्म) होगा; क्योंकि सेवकका धर्म शिवजीके पर्वत कैलाशसे भी भारी (निबाहनेमें कठिन) है ॥ ३ ॥

एकत सुगुहं न मन उदराने । सोचत भरतहि रैवि बिहानी ॥

प्रात कहाइ प्रसुहि सिर नहि । कैलत पद रिषई बोलहि ॥ ४ ॥

एक भी युक्ति भरतजीके मनमें न उठती । सोचते-ही-सोचते रात बीत गयी ।

भरतजी प्रातःकाल स्नान करके और प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके लिए नवाकर बैठे ही थे कि श्रुति वशिष्ठजीने उनको बुलवा मेवा ॥ ४ ॥

दो०—गुर पद कमल प्रबन्धु करि बैठे आगमु पाइ ।

विप्र भद्राजन सचिव सब गुरे समासद आव ॥ २५३ ॥

भरतजी गुरुके चरणकमलोंमें प्रणाम करके आज्ञा पाकर बैठ गये । उषी समय ब्राह्मण, महाजन, मन्त्री आदि सभी समासद् आकर जुट गये ॥ २५३ ॥

चौ०—बोके मुनिवद समय समान । सुबहु सवासद मरत मुजाना ॥

वरम धुरीन मातुकुल भागु । थाना वसु सख्य समवान ॥ १ ॥

बेह मुनि वशिष्ठजी सम्प्रेक्षित वचन बोले—हे समासदो ! हे मुजान भरत !

मुने । सर्वदुल्लेख सर्व महागुण श्रीरामचन्द्र परमपुरुष और स्वतन्त्र भगवान् हैं ॥ १ ॥

उत्पत्तिस्थ पालक भूषि सेह । राम कस्य भग मंगल हेह ॥

पुर चित्त मनु वचन अनुसारी । एक द्रष्टु दलन देव हितकारी ॥ २ ॥

वे सत्यप्रतिष्ठ हैं और वेदकी मर्मांशके रक्षक हैं । श्रीरामजीका अवतार ही सगत्के फलप्राप्तके लिये हुआ है । वे गुरु पिता और माताके वचनोंके अनुसार चलने-पाले हैं । दुष्टोंके दलका नाश करनेवाले और देवताओंके हितकारी हैं ॥ २ ॥

नीति प्रीति परमार्थ स्वरह । ज्ञेय न राम सम जाय जगत्पु ॥

विधि हरिहृदसि सिद्धिदक्षिणाल । माया जीव कर्म कुटिल काश ॥ ३ ॥

नीति, प्रेम, परमार्थ और स्वार्थके श्रीरामजीके समान वार्थ (तत्त्व) कोई नहीं जानता । श्रद्धा, विष्णु, महादेव, चन्द्र, सूर्य, दिग्पाल, भद्रा, जीव, सभी कर्म और काल, इन्द्रिय महिष जहाँ छिपे प्रकृताई । ज्ञेय सिद्धि निगमायम गाई ॥

करि विचार निर्वै देणहु नीके । राम रक्षाह सीस सब हो के ॥ ४ ॥

दोषजी और [पृथ्वी एवं पातालके जन्मात्मा] राजा आदि जहाँतक प्रभुता है और बोलकी विधियों को वेद और शास्त्रोंमें गाबी गयी हैं, हृदयमें अच्छी तरह विचार-कर देखो; [तो यह सब दिखानी देगा कि] श्रीरामजीकी आज्ञा इन सभीके विरुद्ध है (अर्थात् श्रीरामजी ही सबके एकमात्र महान् भ्रक्षक हैं) ॥ ४ ॥

दो—राखें राम रक्षाह सब हम सब कर हित होह ।

समुक्ति सचाने करहु अब सब मिलि संमत होह ॥ ५ ॥

अतएव श्रीरामजीकी आज्ञा और सब रत्नमें ही हम सबका हित होगा । [इस सब और राखणी समझकर] अब हम सबाने संग जो सबके सममत होह वही मिलकर करो ॥ ५ ॥

दो—सब सहे सुखद राम अभिसेह । मंगल सीव सुख सब पवह ॥

कैहि विधि मग्य चलाई रघुराज । कहहु समुक्ति सोह करिब उपाय ॥ ६ ॥

श्रीरामजीका राज्यभित्तिक सबके लिये सुखदायक है । सहाय और आनन्दका मूल वही एक मार्ग है । [अब] श्रीरघुनाथजी जगोष्ठा किछ प्रकार वलें विचारकर कहो; वही उपयुक्त किया जाय ॥ ६ ॥

सब सारव सुनि मुनिमर गावी । सब परमार्थ स्वरथ सावी ॥

इतव न आज सोम भद्र भरे । सब सिध चाह भरत कर जोरे ॥ ७ ॥

मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजीकी नीति, परमार्थ और सार्थ (जैतिक हित) में सभी हुई बाणी सबने आदरपूर्वक सुनी । पर किसीको कोई उपर नहीं आता, सब लोग भोले (विचाररहित) रहे । सब भरतने फिर सबकर श्राव बोले ॥ ७ ॥

नानुबंश भए सुख भरे । अधिक एक ते पत्र भरे ॥

कर्म हेतु सब कहे पिछु माता । कर्म सुमधुसूय देश-विधाता ॥ ८ ॥

[और कहा—] सर्वकर्ममें एक-दो-एक व्यक्ति बड़े बहुरासे राजा हो गये हैं । सभीके जन्मके कारण पिता-माता होते हैं और जन्म-जन्म कर्मोंको (कर्मोंका फल) विधाता देते हैं ॥ ८ ॥

दकि ज्ञान सन्द संन्य कल्याण । अत मसीस राहरि, जगु जाना ॥

सो गोसाईं विधि राखि वेदि लैछी । सबह को दरि ठेक सो देनी ॥ ९ ॥

आपसी आश्रित ही एक ऐसी है जो दुःखोंका दमन करके, समस्त कल्याणोंको

सज देती है; यह जगत् जंकल है। हे स्वामी ! आप कहीं हैं किन्होंने विधाताकी गति (विधान) को भी रोक दिया। आगे जो टेक टेक की (जो निश्चय कर दिया) उसे कौन टाक सकता है ? ॥ ४ ॥

श्री०—वृद्धिभ मोहि उपाड मंत्र सो सब मोर अमानु ।

सुनि स्नेहमय वचन गुरं चर उमग्य अनुराग्य ॥ २५५ ॥

अब आप मुझसे उपाय पूछते हैं; वह सब मेरा अमान्य है। भरतजीके प्रेममय वचनोंको सुनकर वृद्धजीके हृदयमें प्रेम उमड़ आया ॥ २५५ ॥

श्री०—सात बात फुरि राम पुनर्हैं। राम निमुक्त सिधि सपनेहैं नाहीं ॥

सकलदैं तात कहत बुक काल। अथ एतहिं बुझ सरसस नात ॥ १ ॥

[ये बोले—] हे सात ! बात क्या है; पर हे रामजीमें कुराए ही। रामविमुख हो तो स्वप्नमें भी सिद्धि नहीं मिलती। हे सात ! मैं एक बात करनेमें सज्जुता हूँ। बुद्धिमान् लोग सर्वस्य जाता देखकर [आपकी रक्षाके लिये] आज्ञा छोड़ दिया करते हैं ॥ १ ॥

मुन्द काकर मन्त्रहु दोन भई। केरिभई कलत्र स्त्रीय रघुपाई ॥

सुनि सुवचन हस्ये होक प्रजा। ये प्रसोद परिपुन गाता ॥ २ ॥

अतः तुम दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न) बनकर जाओ और छत्रपति, सीता और श्रीरामचन्द्रको कौटा दिखा जाय। ये सुन्दर वचन सुनकर दोनों भाई हर्षित हो गये। उनके लिये अन्न परमात्मन्ते परिपूर्ण हो गये ॥ २ ॥

५ नम प्रसन्न सब तेहु बिराजा। खु सिध सब राहु भय राजा ॥

बहुत खय लोगन्द कहु हानी। सम बुझ मुख सर रोवहिं रानी ॥ ३ ॥

उनके मन प्रसन्न हो गये। शरीरमें तेज सुशोभित हो गया। भानो राजा दशरथ जी उठे हैं और श्रीरामचन्द्रजी राज हो गये हैं। अल्प लोगोंको तो इसमें काम अधिक और इन्हीं काम प्रतीत हुई। परन्तु रानियोंको दुःख-मुक्त लगान ही थे (राम-छत्रपति बनने रहें वा भरत-शत्रुघ्न; दो पुत्रोंका विभोग तो रहेगा ही)। यह समझकर वे सब रोने लगीं ॥ ३ ॥

कहिं भरतु सुनि कहा सो कीन्हे। कहु नय जीवन्द अभिमत कीन्हे ॥

कालन करैं वचन भरि-कसु। बहिं सैं अधिक न सोर सुपासु ॥ ४ ॥

भरतजी कहने लगे—सुनिने जो कहा; वह करनेसे जगत्भरके जीवोंको उनकी इच्छित वस्तु देनेका फल होगा। [चौदह वर्षकी कोई अवधि नहीं;] मैं जन्मभर वनमें बात करूँगा। मेरे लिये इससे बढ़कर और कोई सुख नहीं है ॥ ४ ॥

श्री०—मंतरजामी राहु-सिध तुम्ह सरसस्य सुजान ।

जौ फुर कहहु त नाय निज कीजिअ वचनु प्रवान ॥ २५६ ॥

श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी हृदयकी जाननेवाले हैं और आप सर्वज्ञ तथा सुजान हैं। यदि आप यह कृत्य कर रहे हैं तो हे नाय। अपने वचनोंको प्रमाण कीजिये (उनके अनुसार व्यवस्था कीजिये) ॥ २५६ ॥

श्री०—भरत वचन सुनि देखि सखेहू। सखा सहित सुनि मय भिदेहू ॥

भरत भ्राता महिमा कहसखी। सुनि सति छदि कीर भवहा सी ॥ १ ॥

भरतजीके वचन सुनकर और उनका प्रेम देखकर सखी सभासहित सुनि परिग्रही निवेद हो गये (किसीको अपने देखी सुधि न रही)। भरतजीकी महान् महिमा मनु है; सुनिकी बुद्धि उसके लक्षण अन्तर्गत रीति समान सबी है ॥ १ ॥

या वह पार करतु दिमें हेरा । पावति कय न मोहित केरा ॥
 और करिहि को भरत जयई । सरस छीवि कि सिद्ध समई ॥ २ ॥
 वह [उर समुद्रके] पार आना चाह्यो है, इसके लिये उछने दुदयमें उषय भी
 हैं। पर [उसे पार करनेका वाक्य] नाम, ज्ञान या वेदा कुछ भी नहीं पायी । भरत-
 जीकी बहाई और कौन करेगा ! ऊँकरी छीमें भी कहीं समुद्र सम सकता है ! ॥ २ ॥
 अतः सुनिदि मन और आणु । सहित समान राम पदि भाणु ॥
 प्रभु प्रणाम करि दीन सुखस्यु । नै छव मुनि मुनि अनुसालनु ॥ ३ ॥
 मुनि बसिष्ठजीके वनराज्यालो भरतजी बहुत अच्छे लगे और वे समाकथित
 श्रीरामजीके पाठ श्रवणे । प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने प्रणामकर उच्चम आसन दिया । सब लोग
 मुनिजी आवा सुनकर बैठ गये ॥ ३ ॥
 शोक मुनिव नवन विचारी । हेत कक अवसर अनुहारी ॥
 सुनहु राम सरस्य सुकसा । परम नीति ज्ञान स्यात् निधान ॥ ४ ॥
 श्रेष्ठ मुनि देख, कस और अवसरके अनुसर विचार करके वचन बोले—हे
 सर्वज्ञ ! हे कुशल ! हे धर्म, नीति, गुण और ज्ञानके मन्दार राम ! सुनिने—॥ ४ ॥
 दो—सब के उर अंतर बसतु जगदु मात कुमात ।
 पुत्रजन जननी भरत हित होर सो कहिय उपाद ॥ ५ ॥
 आप सबके हृदयके भीतर बसे हैं और सबके मतेबुले भावको जानते हैं !
 जिसमें पुत्रजातिप्रेम, माताप्रेम और भ्रातृप्रेम हित हो, वही उपाय बताविये ॥ ५ ॥
 दो—आज कहैं विचारी न कद । सुख दुःखहि जगन वाद ॥
 मुनि मुनि कय कहत खुतक । नाथ कुम्हनिहि हाथ उपाद ॥ ६ ॥
 सारी (दुखी) लोग कभी विचारकर नहीं करते । कुम्हनीको अपना ही हाथ
 नुहाता है ! मुनिके वचन सुनकर श्रीरामाचारी कहने लगे—हे नाथ ! उपाय
 तो आपहीके हाथ है ॥ ६ ॥
 सब क हित सब राखि राखें । अवसु किई मुनिहु ज्ञान भाषें ॥
 जगन जो अवसु नो कहैं होई । भाषें भाषि करी सिद्ध सोई ॥ ७ ॥
 भावका सब रसनेमें और भावकी भावको सब कहकर प्रवचनपूर्वक पावन
 पाठमें ही स्वयं हित है । पहले तो मुझे जो आशा हो, मैं उसी किशकाको
 मायेपर बदाकर कहैं ॥ ७ ॥
 मुनि नेदि कहैं जस कह्य योछाई । सो सब नीति बरिहि सेवकाई ॥
 कद मुनि रात सब जगदु भाष । मरत सबै विचार न राखा ॥ ८ ॥
 फिर हे गोवर्ध ! आप जिसको जैसा कहेंगे वह सब तरहसे सेवामें लय बाण्य
 (आशा पावन प्रेरण) । मुनि बसिष्ठजी कहने लगे—हे राम ! तुम्हने सब कहा । पर
 भरतके प्रेमाने विचारको नहीं करने दिसा ॥ ८ ॥
 केहि तें कह्ये कहौनि बहोरी । भरत भावति कय कह्य मति होरी ॥
 भोरे सब घरत कवि राखी । जे कीकिय सो सुन सिद्ध साखी ॥ ९ ॥
 इच्छाजिने मैं बारम्बार कह्य हैं, मेरी बुद्धि भरतकी अधिकसे बढ़ हो गयी है ।
 मेरी समझमें तो भरतकी कवि रखकर जो कुछ किता अवगत, शिकवी कही है,
 वह सब सुन ही होगा ॥ ९ ॥

दो०—भरत बिनव सादर सुनिज करिज निचार बहोरि ।

करव साधुमत लोकमत नृपतय विगम निचोरि ॥ २५८ ॥

पहले भरतकी चित्ती आदरपूर्वक सुन लीबिये; फिर ठहर विचार कीबिये । तब साधुमत, लोकमत, राजनीति और वेदोंका निचोड़ (धर) निकालकर बैठा ही (उसीके अनुसार) कीबिये ॥ २५८ ॥

चौ०—शुर अनुरागु भरत पर देखी । राम 'द्वर्ष' आबहुं विलेपी ॥

भरतहि वस्य पुरंधर जानी । किं सेक वन मावस जानी ॥ १ ॥

भरतजीपर गुदबीका स्नेह देखकर श्रीरामचन्द्रजीके हृदयमें विशेष आनन्द हुआ । भरतजीको धर्मपुरन्दर और तन, मन, पचनसे अपना सेवक जानकर—॥ १ ॥

बोले शुर मावस अनुकूल । वचन मंडु सुदु मंगल सूझा ॥

नाथ सरव विदु चरन होहाई । गवड न भुवन भरत सम भाई ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजी गुदबी आसके अनुकूल मनोहर कोमल और कल्याणके मूल वचन बोले—हे नाथ । आपकी लीला और पिताजीके चरणोंकी दुहाई है (मैं तब कहता हूँ कि) विश्वभरमें भरतके समान भाई कोई हुआ ही नहीं ॥ १ ॥

जे शुर यह भंडुन प्लुरणी । ते लोकहुं देखुं बड़भागी ॥

राजराजा ॥ अस अनुरागु । को कहि सकइ भरत कर भागु ॥ २ ॥

जो लोग गुलके चरनकमलोंके अनुगामी हैं, वे लोकमें (लौकिक दृष्टिसे) भी और वेदमें (पारमार्थिक दृष्टिसे) भी बड़भागी होते हैं ! [फिर] विश्वरूप (शिव) का देखा स्नेह है; उब भरतके मान्यको कौन कह सकता है ! ॥ २ ॥

उक्ति कहु बंधु बुद्धि सज्जनार् । करत बच पर भरत कहाई ॥

भरत कहहि सीढ़ किई मझाई । अस कहि राम रौ अपाई ॥ ३ ॥

छोटा भाई जानकर भरतके मुखपर उलझी बहाई करनेमें मेरी बुद्धि सज्जनायी है । (फिर भी मैं तो यही कहूँगा कि) भरत जो कुछ कहे, वही करनेमें मझाई है । देता कहकर श्रीरामचन्द्रजी चुप हो रहे ॥ ४ ॥

दो०—तब मुनि बोले भरत सम सब सँकोषु लजि छल ।

कृपासिंधु प्रिय बंधु सब कहइ इत्य कै बात ॥ २५९ ॥

तब मुनि भरतजीसे बोले—हे तात ! सब लज्जोच त्यागकर हमके समुद्र मलने प्यारे भाईसे अपने हृदयकी बात कहे ॥ २५९ ॥

चौ०—मुनि मुनि वचन राम रस छई । सुख सहिव अनुकूल कहाई ॥

उक्ति अंगमें सिर रसु रूप मङ्ग । कहि वसई कहि करहि निचार ॥ १ ॥

मुनिके वचन सुनकर और श्रीरामचन्द्रजीका वचन पाकर—गुद तथा स्वामीको भरोषा अपने अनुकूल जानकर—सारा बोझ अपने ही ऊपर आसकर भरतजी कुछ कह नहीं सकते । वे विचार करने लगे ॥ १ ॥

पुलकि लखि समौ भय लदे । नीत्य नमन नैद कह सते ॥

कहव मोर मुनिवचन निजहा । पृष्टि में अधिक कहौ मैं काहा ॥ २ ॥

घरील्ले पुलकित होकर वे समझें लड़े हो गये । कमलके समान नेत्रोंमें प्रेमाश्रुओंकी चाद छा गयी । [वे बोले—] मेरा कहना तो मुनिमाफने ही निषाद दिया (जो कुछ मैं कह सकता था वह उन्होंने ही कह दिया) । इससे अधिक मैं क्या कहूँ ! ॥ २ ॥

तै जाकई बिअ नाथ सुखद । अपराधिह पर कोह न काह ॥

तो पर छपा खेहु तिलेपी । खेखत सुमिख न कबहुँ देखी ॥ ३ ॥

अरने स्वामीका स्वभाव सै जानता हूँ । वे अमराधीन भी कभी क्रोध नहीं करते ।
मुत्तर वो उनकी विशेष छ्वा और स्नेह है । मैंने खेखत भी कभी उनकी रीत
(अप्रसन्नता) नहीं देखी ॥ ३ ॥

सिनुपन तैं पखिरेई न संग । कबहुँ न खीन्ह मोर मन भंगू ॥

मै प्रभु छ्वा रोति किन्तु जोही । हारेहुँ सैक जितविहि मोही ॥ ४ ॥

रचपनसे ही मैंने उनका साथ नहीं छोड़ा और उन्होंने भी मेरे मनको कभी नहीं
तोड़ा (मेरे मनके प्रतिबुद्ध कोई काम नहीं किया) । मैंने प्रभुकी कृपाकी रीतिको
हृदयमें भलीभाँति देखा है (अनुभव किया है) । मेरे हारनेपर भी खेखत
प्रभु मुझे जिता देते रहे हैं ॥ ४ ॥

गो०—मैंने खेखत सकोच वस समसुख कही न वैक ।

हरसन तृपित न आहु छमि पेम पिमासे नैव ॥ २६० ॥

मैंने भी प्रेम और संकोचपन कभी सामने नुँह नहीं खोख । प्रेमके प्यासे मेरे नेत्र
आनन्द प्रभुके दर्शनसे तृप्त नहीं हुए ॥ २६० ॥

गौ०—बिधि न सकेह सहि मोर दुखरा । नीच बीनु अवधी मिस पात ॥

बहद कहत मोहि आहु न सोमा । अपनी समुक्ति साधु मुनि को ना ॥ १ ॥

परन्तु विवादा मेरा दुखर न ख सका । उसने नीच माताके बहाने [मेरे और
स्वामीके बीच] अन्तर डग़ दिया । वह भी कहना आन मुझे सोमा नहीं देता । क्योंकि
अपनी समझसे नीच साधु और पवित्र हुआ है ? (जिसने दूसरे साधु और
पवित्र माने, यही साधु है) ॥ १ ॥

साधु मरि मै साधु सुखाही । जर वस जानत कोहि सुखाही ॥ १ ॥

साहू कि कोहल बाकि सुखाही । सुखत प्रसर कि सुख कही ॥ १ ॥

माता नीच है और मैं सदाचारी और साधु हूँ, ऐसा हृदयमें जाना ही करोड़
दुष्टाचारोंके समान है । क्या कोईही वाली उत्तम धान फल सकती है ? क्या काली बीवी
मोती उत्पन्न कर सकती है ? ॥ २ ॥

अपनेहुँ दोख सैनु न काह । मोर बसना दरधि नवगतहू ॥

बिनु सपुसैं बिअ अब पसिआह । अस्तिं जयैं जगमि कहि झाहू ॥ ३ ॥

स्वप्नमें भी किलेखे दोषका छेद भी नहीं है । मेरा वाशग्व ही अथाह समुद्र है । मैंने
अपने पापीका परिणाम समझे बिना ही माताको बहुत बचन कहकर व्यर्थ ही जलाया ॥ ३ ॥

हृदय देरि खेवैं सब ओर । एकहि मौसि भलेहि सज मोर ॥

गुर कोसाई साद्विध सिव राम । खगल मोहि नीक परिनाहू ॥ ४ ॥

मैं अपने हृदयमें सब और लोकर हार गया (मेरी अन्तरात्मा कोई साधन नहीं चलाता) ।
एक ही प्रकार भले ही (निश्चय ही) मेरा मूल है । वह यह है कि शुभ-महाराज सर्वसमर्थ
हैं और भीदीतारामजी मेरे स्वामी हैं । इसीसे परिणाम मुझे अच्छा जान पड़ता है ॥ ४ ॥

गो०—साधु खगल गुर प्रभु निमिष्ट खरवैं सुखल सतिमाड ।

प्रेम प्रपंडु कि छूठ फुर आवहि मुनि रघुराज ॥ २६१ ॥

साधुओंकी समाप्ति शुक्ली और स्वामीके समीप इत पवित्र तीर्थ-स्थानमें मैं मत्स्य

भावसे कहता हूँ । यह प्रेम है या प्रसन्न (कल-कपट) ? झूठ है वा सच ? इसे [सर्वज्ञ] मुनि वशिष्ठजी और [अन्तर्दामी] श्रीरघुनाथजी जानते हैं ॥ २६१ ॥

चौ०—भूपति मरन पैस धनु राखी । जमनी कुमति जगत्तु सहु साखी ॥

वेखि न साहिं बिकल महतारी । अहिं दुसह जर पुर नर नारी ॥ १ ॥

प्रेमके प्रणफो निभाकर महाराज (पिताजी) का मरना और माताजी कुबुद्धि, दोनोंका सारा संवार, अक्षी है । माताएँ व्याकुल हैं, वे देखी नहीं जातीं । अवधपुरीके नर-नारी दुःसह तापसे जल रहे हैं ॥ १ ॥

महीं सकल अवश्य कर मूल । सो मुनिसमुझि सहितै सब मूल ॥

मुनि पन मयलु कीन्ह रखवाया । करि मुनि बेध लखन सिंग साया ॥ २ ॥

बिनु पानहिन्ह क्यादेहि यार्दै । संकल लखि रहेई यदि यार्दै ॥

बहुरि निहारि विषाद सनेह । कुछिस कठिन डर भकड न देखे ॥ ३ ॥

मैं ही इन सारे जनबोंका मूल हूँ, यह कुब और समस्तकर मैंने सब दुःख सहा है । श्रीरघुनाथजी लक्ष्मण और सीताजीके साथ मुनियोंका-सा वेध धारणकर बिना कट्टे पलने पौष-प्यादे (पैदल) ही इनको चले गये, बह-मुनकर, हांकरबी जाती हैं, इस घावसे भी मैं जीता रह गया (यह मुनते ही मेरे प्राण नहीं निकल गये) । फिर निषादराजका प्रेम देखकर भी इस बलसे भी कठोर हृदयमें छेद नहीं हुआ (बह पटा नहीं) ! ॥ २-३ ॥

जब सहु लीलहिन्ह देखेई आई । बिभल कीब जब सख सहारै ॥

जिन्हहि निरखि मय सौंपिनि खोछी । लखहि विषम बिनु कामल लोछी ॥ ४ ॥

जब यहाँ आफर लव आँखों देल लिया । यह सह बीर जीता रहकर रानी सहायेगा । जिनको देखकर रास्तेकी लॉमिनी और कीछी भी अपने भयानक विष और तीव्र मोषको त्याग देती हैं—॥ ४ ॥

दो०—सह रघुनंदन लखनु सिंग अलहित छाये जाहि ।

ताहु तमय लखि दुसह दुख देव सहाय कहि ॥ २६२ ॥

वे ही श्रीरघुनंदन, लक्ष्मण और सीता जिसको मनु मान पड़े लव कैकेयीके पुत्र मुसको छोड़कर देव दुःसह दुःख और फिसे सहायेगा ! ॥ २६२ ॥

चौ०—मुनि अति बिकल भरल कर बाधी । आसति प्रीति विनय कर साधी ॥

॥ ५ ॥ सोक मगन सब सर्गो भुल्लख । मयहुं कमल कव परेड मुल्लख ॥ १ ॥

अत्यन्त व्याकुल तथा दुःख, प्रेम, विनय और नीतिमें सभी दुई भरतजीकी ओर बाजी मुनकर सब लोग शोकमें मग हो बने, सभी स्यामों निषाद लज गया । मानो कमलके धनपर पात्र पड़ गया हो ॥ १ ॥

कहि लनेक विधि क्या पुरखी । मल धनैषु कीन्ह मुनि रखायी ॥

बोळे उचित वचन रखनै । दिक्कर कुल कैस्य बन जेदू ॥ २ ॥

तब बानी मुनि वशिष्ठजीने अनेक प्रकामकी पुरानी (ऐतिहासिक) कथाएँ कहकर भरतजीका समाधान किया । फिर सर्वकुलकी कुमुदवनके प्रकृष्टित करनेवाले चन्द्रमा श्रीरघुनन्दन उचित वचन बोले—॥ २ ॥

साध जार्प कियै करहु कलाखी । ईस अवीन जीव-मति जानी ॥

तीनि कल विमुज्जय सत गोरे । पुनरिलोक लख तरं खेरे ॥ १ ॥

हे तात ! हम अपने हृदयमें व्यर्थ ही मरानि करते हो । जीवनकी गतिकी ईश्वरके

अपनी जानो । मेरे भक्तों [सूत, गणिक, वरुण] दोनों कर्षों और [सर्प, जूनी और पाताल] दोनों ओरोंके सब पुण्यात्मा सुख तुमसे नीचे हैं ॥ १ ॥

उन कास्य तुम्हें वर सुखिदाई । माह लोक परलोक सब ॥

कोय देहि नखीवि न्य वर है । निन्द गुर साधु सभा बहि है ॥ ४ ॥

इससे भी दूसरे कुशिकथा आरोप करनेसे वह लोक (वहोके सुख, वर मादि) निगल जाता है और परलोक भी नष्ट हो जाता है (भलेके बाद भी अच्छी गति नहीं मिली) । माला कैदेमोको तो वे ही पूर्ण दोग देते हैं किन्तुने गुरु और साधुओंकी वमाल सेवन नहीं किया है ॥ ५ ॥

श्लो०—मिष्टिदाई पाप प्रदंय सब अधिक धर्मपथ मार ।

लोक सुखसु परलोक सुख सुमिरत नानु तुम्हार ॥ २६३ ॥

हे भक्त ! दुष्टान्ध अन्ध-साधक करते ही सब पाप, प्रपञ्च (अज्ञान) और समस्त अपभ्रान्तिके समूह मिल जायेंगे तथा इस लोकमें सुखर वर और परलोकमें सुख प्राप्त होगा ॥ २६३ ॥

श्लो०—वदई सुखसु सब विज लासी । मल भूमि पर सहरि लसी ॥

तथा सुखसु कहु नखि जहँ । वैर येन बहि दुख दुख ॥ १ ॥

हे भक्त ! मैं समझते ही सब कहता हूँ, जिसकी लसी है वह पूर्वी दुष्टापी ही लसी पर लसी है । हे दास ! तुम स्वयं दुखई न करो । वैर और प्रेम विनये नहीं मिलते ।

सुनिगल निन्द विदग्न दुख जाई । काक नखि किसेकि पराई ॥

विह नखिदु पनु पनेकद काक । सनुव वनु पुन न्याय विनाय ॥ २ ॥

पक्षी और मनु सुनिशिके पक्ष [वेपथु] चले जाते हैं, पर हिंसा करनेवाले बर्षिकानो देखते ही भगा जाते हैं । निष और सनुसे पक्ष्याणी भी पक्ष्यानी हैं । निर मनुष्यद्वारा तो पुन और अन्धका भणार ही है ॥ २ ॥

तथा सुखदि मैं समझै नीट । कीं पद नानावस, कीं ॥

उपेठ लसी साथ नीदि लसी । तनु परिहोर येन पर करी ॥ १ ॥

हे दास ! मैं तुम्हें अपनी तरह समझा हूँ । क्या कहें । जैसे कहा अपमान्य (सुनिषा) है । रामने पुत्रो त्यागकर कनको राजा और प्रेम-प्रसक्ते सिने प्रद्विर छोड़ दिया ॥ १ ॥

तनु पद नैठ ल लीपू । तेहि मैं अधिक तुम्हार कैसीपू ॥

स पर गुर तीहि नखनु बोझ । कासिके कहु पदैं सोइ बोझ ॥ २ ॥

उपेठे वपनको देखे करने सोच दीया है । उपेठे भी नदकर दुष्टारा लोचन है । उल्लस भी तुफानी मुझे आता ही है । इतनीसे सब पुन जो कुछ कहें, सबन ही मैं बरी करता चाहता हूँ ॥ ४ ॥

श्लो०—पनु प्रसन्न करि पक्षुव तवि कहु कहीं सोर मज्जु ।

सावसीध रघुवर वक्त सुनि जा सुखी समाधु ॥ २६४ ॥

तुम मनको प्रसन्न कर और कभी-कभी लक्ष्य कर जो कुछ कहो, मैं काल भी कहूँ । नानप्रतिप रघुजलसेठ श्रीरामजीका यह वचन सुनकर सारा समाज मुसक्री हो गया ॥ २६४ ॥

श्लो०—सुर गध लखि सयक सुखसु । सोवई नखर टोप नखर ॥

कल वरुण सल कहु नदी । सल सल सल ये सब माई ॥ १ ॥

देवताओंकीव देवताय वरु मन्वीत होकर सोचने को कि जब नन्द-नन्दाया काय

भिरहना ही खाता है । कुछ स्याव करते नहीं बनता । तब वे सब मन-ही-मन श्रीरामजीकी शरण गये ॥ १ ॥

यदुरि विचारि परस्पर कहाँ । रह्यति भगत भगति नय अहाँ ॥

मुधि धरि अंघरीय दुखासा । भे नुर सुरपति निषट निरासा ॥ २ ॥

दिर ये विचार करते आपसमें कहने लगे कि श्रीरघुनाथजी तो भक्तकी भक्तिसे नर है । अन्धरीय और दुर्वासाकी [घटना] बाद करके तो देवता और इन्द्र विन्तुल ही निरास हो गये ॥ २ ॥

सठे मुरन्द यहु कास विपादा । गरहरी किन्द् प्रसट प्रह्लादा ॥

लगेसनि कवन कहाँ धुनि साध । जद नुर करज भरत के हाथ ॥ ३ ॥

पढ़के देवताओंने बहुत समयतक दुःख खाये । तब भक्त प्रह्लादने ही तर्कित भगवान्‌को प्रसट किया था । सब देवता परस्पर खर्नामें सब लगकर और सिर घुनकर कहने लगे कि भय (इस बाद) देवताओंका काम भरतजीके हाथ है ॥ ३ ॥

आन उपास न ऐश्वर्य देवा । मानन राहु सुखैक सेवा ॥

हिये नपेम मुनिरहु सप मरति । निज गुन सीक राम बस करहि ॥ ४ ॥

हे देवताओं ! और कोई उपास नहीं दिसायी देवा । श्रीरामजी अपने मोह सेवकोंकी शंकाओं मानते हैं (अर्थात् उनके भक्तकी कोई सेवा करता है तो उसपर बहुत प्रसन्न होते हैं) आग्रह अपने गुण और सीखने श्रीरामजीको यत्न करनेकसे भरतजीका ही नय लोग अपने-अपने हृदयमें प्रेमसहित साक्षात् करो ॥ ४ ॥

दो०—सुनि सुन मत्त सुरगुर कहेउ मल तुम्हार यहु भागु ।

सफल सुमंगल मूल जय भरत चरन अङ्गरागु ॥ २६५ ॥

देवताओंका मत सुनकर देवगुरु बृहस्पतिजीने कहा—अच्छा विचार किया, तुम्हारे यह भाग्य है । भरतजीके करणोंका प्रेम जगत्में समस्त सुख यज्ञार्थका मूल है ॥ २६५ ॥

चौ०—सीतापति सेवक सेवकाई । करमपेसु सय ससि सुहाई ॥

भरत भगति तुहरे मन आई । तबहु सोनु किधि जात बधारी ॥ १ ॥

सीतानाय श्रीरामजीके सेवककी सेवा सेकहीं कामसेनुओके समान सुन्दर है । तुम्हारे मनमें भरतजीकी भक्ति आयी है, तो भय बीच छोड़ दो । विधाताने बात बना दी ॥ १ ॥

बैद्य वैद्यपति भरत प्रशङ्क । सङ्क सुमार्ये विवस रघुराज ॥

मन धिर करहु देव हक नहीं । अस्तदि नाथि राम परिकाहीं ॥ २ ॥

हे देवराज ! भरतजीका प्रभाव जो देखो । श्रीरघुनाथजी सङ्क स्वभावसे ही उनके पूर्णकामे कथमें हैं । हे देवताओं ! भरतजीको श्रीरामचन्द्रजीकी परछाई (परकाईकी भाँति) देखना अनुसरण करनेवाला) जानकर मन स्थिर करो, बरकी बात नहीं है ॥ २ ॥

सुनि सुगुर सुर संमत सोच । मंतरनामी प्रभुदे सकोच ॥

निज सिर माथ भरत जिन्हें जाना । कस्त कोटि विधि उर अङ्गुमाना ॥ ३ ॥

देवगुरु बृहस्पतिजी और देवताओंकी सम्मति (आपसका विचार) और उनका सोच सुनकर अन्तर्यामी प्रभु श्रीरामजीको संकोच हुआ । भरतजीके अपने मनमें सब बीड़ा अपने ही निर जाना और वे हृदयमें कपेहों (कनेत्रों) प्रभुके अनुमान (विचार) करने लगे । ३ ॥

करि विचार मन् ऐश्वर्य ठीका । राम राजाचम आपस भीका ॥

निज मन तजि राखेउ पनु मोरा । जेहु सनेहु कौन्द बहि बीरा ॥ ४ ॥

सब तरहसे विचार करके अन्तमें उन्होंने मनमें कही निश्चय जिना कि श्रीरामजीकी

आश्रमे ही अपना ब्रह्मण है । उन्होंने अपना प्रण छोड़कर मेरा प्रण रक्खा । यह कुछ
बरा बरा और स्नेह नहीं किया (अर्थात् अत्यन्त ही अनुग्रह और स्नेह किया) ॥ ४ ॥

दो०—जोन्ह शत्रुग्रह अमित अति सब विधि सीतानाथ ।

हरि प्रानतु गेले मरतु जेरि बटख जुग हाथ ॥ २६६ ॥

धीमानकीनाथजीने सब प्रसंगसे मुझपर अत्यन्त अपार अनुग्रह किया । तदनन्तर
मरतजी दोनों सरङ्गखोजो छोड़कर प्रणाम करते बोले—॥ २६६ ॥

बो०—सहीँ पदार्थ हर धर्म समी । क्या बलुनिधि मत्तसत्तमी ॥

पुर प्रसन्न रहिह्य अमुकस्य । किटी अकिन मन कल्पित सुख ॥ १ ॥

हे सार्ध ! हे तुम्हारे शत्रु । हे अनर्थवासी ! मम मैं [वचिक] क्या कहूँ और
क्या कहूँ ! तुम भगवानको प्रसन्न और स्वामीको अनुकूल जानकर मेरे मलिन मनकी
कल्पित पीड़ा मिट गयी ॥ १ ॥

भयकर बोले मैं तोच समूर्ण । रहिह्य न दोषु देव दिशि शूर्ण ॥

मौर जगज्जु मनु कुटिह्यह । विधि गति विपन बस कठिनार्थ ॥ २ ॥

मैं मिथ्या बरसे ही अर गया था । मेरे सोचकी जड़ ही न थी । दिशा भूल जाने-
नर है देव । सर्वथा ग़ोप नहीं है । मेरा दुर्भाग्य, मत्तसत्तमी कुटिलता, विधाताकी देदी
पाप और कालकी कठिनता ॥ २ ॥

पाठ ऐषि रूप मिति सोहि धन्य । प्रसन्न पाठ एक समन पाठ्य ॥

सम यह रीति न तवरी होई । लोकहुं वेद विदित रहि गोई ॥ ३ ॥

इन धामने निष्कलन पैरोपातर (प्रसन्नकरे) मुझे नष्ट कर दिया था । परन्तु शरणागतके
रक्षण आपने अपना [शरणागतकी रक्षाकर] प्रण निच्छदा (मुझे क्या दिया) । यह आपकी
तोई नहीं रीति नहीं है । यह लोक और वेदमें प्रसन्न है, किमी नहीं है ॥ ३ ॥

क्यु जगज्जु मनु एकु गिराई । कहिय होइ भव कस्य भगार्थ ॥

रै देवस्य धर्मस्य सुनस्य । समसुख दिसुख न कसुहि पाठ ॥ ४ ॥

क्या जगज्जु मनु [करनेवाला] ही मित्र है स्वामी ! केवल एक आपही मते (अनुकूल)
हो, ते फिर कहिये, किन्तु मन्त्रादि भग्न हो सकता है । हे देव ! भगवान स्वामन कस्यार्थके
समान है ; वह न कभी किसीके अनुकूल (अनुकूल) है, न विमुख (प्रतिकूल) ॥ ४ ॥

दो०—जाइ दिगट पहिचानि तव छाई समगि सब सोच ।

भयत अदिमत्त पाव जग एक रीठु मत्त पोच ॥ २६७ ॥

एक पुरु (स्वपुरुष) को पहचानकर जो उसके पास गया तो उसकी छाया ही
मारी दिनाशोक नाश करनेवाली है । राज-रंक, भले-बुरे, जगत्सो सभी उससे भाँगे
हैं । मन्त्रादी बहुत पते हैं ॥ २६७ ॥

बो०—कलि का विधि पुर स्वामि समेह । मिटेय जेसु नहि मम सदेह ॥

सम जगज्जु रीतिक सोई । सम हित प्रसुचित जेसु न ॥ १ ॥

तुम और स्वामीका यह प्रसंगसे स्नेह देखकर मेरा धर्म मिट गया, मममे कुछ भी
सन्देह नहीं रहा । हे स्वामी जान ! मम वही कीजिये जिससे शत्रुके सत्ते प्रसुके
निचले भोग (किसी प्रसन्नकर विचार) न हो ॥ १ ॥

जो सेवक साहिबहि सेवेवो । निज हित चाह तसु सति पोचो ॥

सेवक हित समुचित सेवकह । परै समस्त पुत्र जेन बिहार्थ ॥ २ ॥

जो स्वामीको सर्वोपर्य ब्रह्मणर अपना मत्ता चाहता है, उसकी बुद्धि नीच

हे । तेवकका दित तो इन्हीं है ॥ वह समस्त सुखों और खेमोंको छोड़कर स्वामीकी सेवा ही करे ॥ २ ॥

स्वस्थ भाव फिरें सगरी कन । किन्तु रज्जु कोटि बिधि नीकां ॥

यह स्वस्थ परस्पर साह । सकल सुख फल सुगति सिंघार ॥ १ ॥

हे नाथ ! आपके लौटनेमें समीका स्वार्थ है, और आपकी बाधा शून्य करनेमें करोड़ों प्रकारसे कल्याण है । यही स्वार्थ और परमार्थका धार (निचोड़) है, समस्त पुत्रोंका फल और सम्पूर्ण शुभ गतिबौद्ध शृङ्खल है ॥ २ ॥

देव एक बिनती सुनि सोरी । उचित होइ वस कथ बहोरी ॥

तिलक समस्त सन्नि सनु जाक । करिषु सुख प्रभु जी मनु मामा ॥ ४ ॥

हे देव ! आप मेरी एक बिनती चुनकर, फिर जैसा उचित हो वैसा ही कीजिये । राजनिष्कपी सब सामग्री लज्जाकर लानी गयी है, जो प्रभुका मन माने तो उसे सकल कीजिये (उसका उपयोग कीजिये) ॥ ४ ॥

दो०—सालुख पटश्म मोहि दन कीर्त्तिम नवहि समाध ।

नतच फेरिभरि बंधु दोड भाव खरौ मैं साथ ॥ २६८ ॥

छोटे भाई बन्धुल्लेख सुखे कल्पे मेक दीक्षिये और [अयोध्या लौटकर] सबको समाध कीजिये । नहीं तो फिर तरह भी (यदि आप अयोध्या जानेको तैयार न हो) हे नाथ । लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनों भाइयोंको लौटा दीजिये और मैं आपके साथ रहूँ ॥ २६८ ॥

चौ०—वसत आई कन लोभित भाई । मरुतिन स्निग्ध सहित रह्योई ॥

बेदि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई । कृपा सखर कबिनि सोई ॥ १ ॥

अथवा हम तीनों भाई कन चले आये और हे औरसुनापनी । आप कीर्त्तिलोहित [अयोध्याको] लौट आइये । हे दवासागर ! जिस प्रकारसे प्रभुका मन प्रसन्न हो, वही कीजिये ॥ १ ॥

देव दीन सह्य मोहि कमाक । मोरें नीति व धरम बिचार ॥

कहैं बचत सब सखल हेत । रहत व काल में फिर येत ॥ १ ॥

हे देव ! अपने समस्त भार (जिम्मेदारी) मुझपर रख दिया । पर मुझमें न तो नीतिका विचार है, न धर्मका । मैं तो अपने स्वार्थके लिये सब बातें कर रहा हूँ । आतं (दुष्टी) मनुष्यके चित्तमें भेद (भिन्न) नहीं रहता ॥ २ ॥

उतक देव सुनि सन्नि सखाई । सो सेवक कवि सख कजाई ॥

अस मैं अननुक कवि अवाह । सन्नि सवेह सखल सा ॥ १ ॥

स्वामीकी आज्ञा चुनकर जो उत्तर दे, ऐसे सेनको देखकर कदा भी कदा जाती है । मैं अननुक का ऐसा अपाह समझ हूँ [कि प्रभुको उत्तर दे रहा हूँ] । किन्तु स्वामी (आप) स्नेहवश वाहु कहेकर मुझे कराहते हैं ॥ २ ॥

अप हवाह मोहि सो मत मन्ना । सखल सन्नि सख आई पयास ॥

प्रभु पद सपय कहैं सखि साक । कन भैक हित सुख उपास ॥ ४ ॥

हे सुपास ! अप तो कही मत मुझे माता है, मिलते स्वामीका मन संकोच न पावे । प्रभुके चरणोंकी लक्ष्य है, मैं सल मानसे उन्नत हूँ, अतएव भक्त्यापके लिये एक गरी उपास है ॥ ४ ॥

दो०—प्रभु प्रसन्न मन सखल सखि जो बेदि जावसु देव ।

सो सिर धरि धरि करिदि सखु मिदिदि अन्त मकरेव ॥ २६९ ॥

प्रसन्न मनसे संकोच त्याग कर प्रभु जिने छो आल देंगे, उसे सब लोग फिर चढा-
चढाकर [पलन] करेंगे और सब उपजव और उलझनें मिट जावेंगी ॥ २६९ ॥

चौ०—भरत स्वयं सुनि सुनि सुर हरये । मरु सरहि सुमन सुर बरये ॥

असमंजस कर अवध बेवली । प्रसुदित मच तपस बनवासी ॥ १ ॥

भरतजीके पवित्र वक्ता सुनकर देखा हर्षित हुए और 'मरु-मरु' कहकर सराहना
करते हुए देवताओंने पूछ बरखाये । अयोध्यानिवासी असमंजसके बच्चा हो गये [कि देखो
श्वश्रु श्रीरामजी क्या करते हैं] तबसी तथा बनवासी लोग [श्रीरामजीके दनमें बने
राजकी आवाज] मनमें परम आनन्दित हुए ॥ १ ॥

सुनि रहै खुनाव सैकोची । प्रभु उठि देखि सम्य सच सोची ॥

अनघ दूत तेहि कबसर गए । सुनि बसिपैं सुनि बेगि कोछार ॥ २ ॥

किन्तु उकोची श्रीरामजीकी चुप ही रह गये । प्रभुजी यह विपत्ति (मौन) देख
घाती समा खोचमें पड़ गयी । उसी समय जनकजीके दूत आये, यह सुनकर मुनि वशिष्ठ-
जीने उन्हें तुरंत बुला लिया ॥ २ ॥

करि प्रमान तेह ससु निहारे । केतु बैकि गए निपट हुकारे ॥

वृत्तह सुनिवार बूली बात । कहहु विदेह गए कुसलाता ॥ ३ ॥

उन्होंने [भाकर] प्रभाव करके श्रीरामचन्द्रजीको देखा । उनका [सुनिर्वाका-का]
ए देखकर वे बहुत ही दुखी हुए । मुनिवेश वशिष्ठजीने बूतोंसे बात पूछी कि ऐसा जनक-
॥ कुशल-समाचार कहे ॥ ३ ॥

सुनि सकुचाइ गए मरि भावा । रोके कबसर ओरें हाथा ॥

कृष्ण रावर सावर सार । कुसल हेतु सो मपट गोसाई ॥ ४ ॥

यह (सुनिका कुसलप्रश्न) सुनकर सकुचाकर पृथ्वीपर मल्लक नवाकर वे भेड़ दूत
नाथ जेठपर रोके-हे लामी । आपका आदरके साथ पूछना, वही है गोसाई । कुशल-
का कारण हो गया ॥ ४ ॥

दो०—मरि त कोसलनाथ के साह कुसल यह नाथ ।

मिथिला भवध विसेय तें जगु सब भवत भवध ॥ २७० ॥

नही तो है नाथ । कुशल-भेम तो सब कोसलनाथ दशरथजीके साथ ही बली गयी ।

[उनके बलि जानेके] बी तो तारा जेठ ही अनाथ [स्वामीके बिना अलहाय]

हो गया, किन्तु मिथिला और अवध से विशेषतमसे भनाथ हो गये ॥ २७० ॥

चौ०—शेसरवि बति सुनि बनसीस । से सब लोक खोकस बौर ॥

देहि बेले तेहि सम्य निदेह । जगु सब भव जय न केहू ॥ १ ॥

भरत-शानपत्नी गति (दशरथजीका मरण) सुनकर जनकपुरवासी सभी लोग
शोकग्रस्त बाने हो गये (सुषुप्त मूक बने) । उस समय जिन्होंने विदेहको [शोकग्रस्त]
देखा, उनमेंसे किसीसे ऐसा न कहा ॥ उनका विदेह (देहमिथिलानाहित) नाम सत्य
है । [क्योंकि देहमिथिलाने जगु पूर्यमें शोक कैसा ?] ॥ १ ॥

राजि कुवालि सुकत करतहि । सुख नक्यु बस मरि तेषु जगतहि ॥

भरत राज खुनक बनवाइ । मा मिथिलेसहि हजूरें हरीइ ॥ २ ॥

राजीकी कुसल सुनकर राजा जनकजीको कुछ खल न पड़ा, जैसे गणिके बिना
सोपकों नहीं पड़ाता । फिर मल्लकीको राज्य और श्रीरामचन्द्रजीको कनकात सुनकर
मिथिलेश्वर-जनकजीके हजूरमें वड़ा दुःख हुआ ॥ २ ॥

नृप पृष्टे वृष सचिव समान् । कहहु विचारि सचिव का भागू ॥

समुत्ति अवध अरामचर दौढ । चलिम कि रहिय न कह कहू कोढ ॥ ३ ॥

राजाने विद्वानों और मन्त्रियोंके समानसे पूछा कि विचारकर कहिये, आज (इस समय) क्या करना उचित है ? अयोध्याकी दशा समझकर और दोनों प्रकारसे अरामचर जानकर 'चलिये या रहिये ?' किसीने कुछ नहीं कहा ॥ ३ ॥

सुपहि धीर धरि इदमें विचारी । पठ्यु मन्त्र पुर पर चारी ॥

ब्रूति भरत सति भ्रात कुमाव । अबहु बेनि न होइ कृपाव ॥ ४ ॥

[जब किसीने कोई सम्मति नहीं दी] तब गजाने धीरवश पर इदमें विचारकर चार भद्ररसुमचर (आसुर) अयोध्याको भेजे [और उनसे कह दिया कि] तुमलोग [श्रीरामजीके प्रति] भरतजीके सहाय (अच्छे भाव, प्रेम) या दुर्भावं (दुरा मान, भिरोष) कर [वधार्थ] पता लगाकर अग्नी लौट आना, किसीको दुष्टारा पता न काने पावे ॥ ४ ॥

दो०—गण भवध चर भरत गति बृद्धि देखि करतुति ।

चले चिधकूटहि भरतु चर चले तेरहाते ॥ २७१ ॥

गुप्तचर अवधको गये और भरतजीका रंग जानकर और उनकी करनी देखकर, जस ही भरतजी चिधकूटको चले, वे तिरहुत (मिथिला) को चले दिये ॥ २७१ ॥

चौ०—वृत्तइ आइ भरत कहू करनी । नवक समग्र जयामति बरनी ॥

सुनिगुरपरिजनसचिवमहीवति । भे सय सोच सनेई बिकल गति ॥ १ ॥

[गुप्त] वृत्तने आकर राजा जनकजीकी समामें भरतजीकी करनीका अपनी बुद्धिके अनुसार वर्णन किया । जस सुनकर गुप्त, कुटुम्बी, मन्त्री और राजा सभी सोच और संकटसे अत्यन्त व्याकुल हो गये ॥ १ ॥

धरि धीरहु धरि भरत बड़ाई । निगु सुमद साहबी बोलाई ॥

धर धुर देख समि रक्खवते । इव यम रथ चहु आन सँभारे ॥ २ ॥

धर जनकजीने धीरवश बरकर और भरतजीकी बड़ाई करके अच्छे बोझाओं और नादुनियाँको बुलाया । पर, नगर और देशमें रहस्योंको रक्षकर छोड़े, हाथी, रथ आदि बहुत-सी सवारियाँ सज्जयाँ ॥ २ ॥

बुधरी साजे चले गतककर । किम् विष्णु न भग सहिपाक ॥

भीरहि जाइ नहाइ प्रसंग । चले अमुन उत्तरव सखु जाग ॥ ३ ॥

वे बुधबिया मुहूर्त साधकर उसी समय चल पड़े । राजाने रास्तेमें कहीं विभाग भी नहीं किया । आज ही सबरे प्रयागप्रजमें खान करके चले हैं । जब सब लोग बहुला-बी उतरने लगे, ॥ ३ ॥

सचरि केन इम पठ्यु पाया । किन्ह कहि अस भहि नापद पाया ॥

साय किरात छ सातक दीन्हे । सुखिर तुल्य बिदा कर कीन्हे ॥ ४ ॥

तब हे नाथ । हमें सत्कर लेनेको भेजा । उन्होंने (वृत्तोंने) ऐसा कहकर पृथ्वीपर फिर नवाया । सुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजीने कोई छ-सात मीलको साय देकर वृत्तोंको दूरत बिदा कर दिया ४

दो०—सुमत जनक आगधनु सखु हरषेन अवध समायु ।

रघुनंदनहि समेतु वह सोच विचस सुरराहु ॥ २७२ ॥

जनकजीका आगमन सुनकर अयोध्याका सारा समग्र हर्षित हो गया । श्रीरामजी-को बड़ा संकोच हुआ और देवराज इन्द्र तो विशेषरूपसे सोचके काममें हो गये ॥ २७२ ॥

चौ०—राज गजनि कुटिल जेहैं । जहि कैं कैं दृष्टु देखैं ॥

अथ गज भानि मुनिन पर गरी । जगद गहोनि दृष्टु दिव गरी ॥ १४ ॥

कुटिल कहैनी तब होमन गजनि (गजावन) से गरी गरी है । किसे कहें और किसे दोष दे ? और सब नर-नारी भयों ऐश विचरकर प्रसन्न हो रहे हैं कि [अन्ध हुआ; जनकजी के जाने] बार (द्वार) दिन और रात्रि हो गया ॥ १ ॥

एहि प्रसन्न गज पकर खंड । जग बहान छव सगु खंड ॥

एहि अस्तु पर्वद पर गरी । गज गौरि सिधुगिरि छवरी ॥ २ ॥

एन तरह पर श्री० श्री० गजा । दुरी दिन प्रकटक क वरें भान करन लगे । जग परक क नर-नारी लगेनी, गौरिनी, गहारेनी और सर्व भयकारी दृष्ट करत हैं ॥ २ ॥

एक सप्त पद कैं गरी । गिरिनी बंधुनि अंचल गरी ॥

गजा अस्तु लखनी छरी । अर्धद भवनि अथ रसगरी ॥ ३ ॥

गिरि गरीनी यथावत् दिव्युके चर्चोनी करना जगै, दोनों सब लोकां, भौवन पारपर निराले करते हैं कि औरमयी राजा हो, सातवीनी राजी हो तथा राजनी भयोनी आनन्दनी सीम सेन—॥ ३ ॥

दुष्ट पसद जिने छरित समाज । गजहि सगु कहे सुपराज ॥

गहि सुग सुगो सीति सग कहू । देव हेतु जग अंचल कहू ॥ ४ ॥

गिरि समाजगिरि सुकपूर्वक को और औरमयी मरलीको सुपराज मानें ॥ ३ ॥
१५ ॥ एह सुकली मरलीके लोकां क विलोको कहीनी सीम सेन वरिधि ॥ ४ ॥

दो०—गुर समस्त भ्रातृ सहित राम राजु बुर होव ।

महत राम राजा अथ मरिच ज्ञान सगु होव ॥ ५३ ॥

हनु, अथ और गहारेनीके औरमयीके राम अवतारों हो और औरमयी-
के राजा ५३ ॥ (अन्ध) अनेकानों में । क कहें गरी मोले हैं ॥ २५३ ॥

चौ०—गुरि लोकां गजनि गरी । गिरिनी जेव गिरिनि मुनि गरी ॥

एहि गिरि निरालाव गिरिगिरि । गजहि गहो प्रसन्न पुनरि दन ॥ १ ॥

अथ गजनिगरी गिरिनी गरी सुककर गरी गुरि नी अने योग और वैराग्यनी निराला करते हैं । अथगरी एह गज निराला करके औरमयीको सुककरगरी के गजाव करते हैं ॥ १ ॥

गैव सीम अथ गज गरी । गहो दृष्टु गिरि निराला गरी ॥

मथगज गरी समस्तगिरि । गज गहो सुपराजगिरि ॥ २ ॥

ऊँच नीच और गज गरी गैवगरी नीचुला अने-अने मानके अनुपरा औरमयीके ज्ञान प्रसन्न करते हैं । औरमयीके लोकां अने अने समस्त करते हैं और सभी सुनिगिरि औरमयीके लोकां करते हैं ॥ २ ॥

गिरिगहो वं लोकां गरी । गज गहो गिरि गिरि गिरिनी ॥

गैव समस्त गिरि गिरि । सुक सुगिरि समस्त सुगिरि ॥ ३ ॥

औरमयीके लोकां गरी वं वं है कि वे गैवगरी पृथक्कर गिरिनी गज गरी हैं । औरमयीके गैव और गहोके लोकां हैं । वे सुक सुक [या लोके अनुपरा गरी] सुक गैवगरी [या लोके लोकां और गैवगरी गैवगरी] और लोकां गरी हैं ॥ ३ ॥

कहत राम धुन बन बलुरागे । सब विज मग सराहन लागे ॥

हम सब पुन्य पुन जग धीरे । जिन्हहि राहु बधत करि मोरे ॥ ४ ॥

श्रीरामजीके गुणसमूहोंको कहते-कहते सब लोग प्रेमीं भर गये और अपने भाग्यकी सराहना करने लगे कि जहाँमें हमारे सम्मान पुण्यकी बड़ी पूँजीवाले थोड़े ही हैं; जिन्हें श्रीरामजी अपना करके जानते हैं (ये मेरे हैं ऐसा जानते हैं) ॥ ४ ॥

दो०—प्रेम भगन तेहि समय सब सुनि आवत मिथिलेसु ।

सहित सभा संभ्रम उठेउ रबिकुल कमल दिनेसु ॥ २७७ ॥

इस समय सब लोग प्रेमीं भरा हैं । इतनेमें ही मिथिलावर्षि जनकजीकी आते हुए झुनझुन सर्यकुलरूपी कमलके पूर्व श्रीरामचन्द्रजी समावहित आदरपूर्वक नदरीसे उठ सके हुए ॥ २७४ ॥

चौ०—आइ सखि गुर बुरवन सया । अगें गवतु कीन्ह खुवाधा ॥

विरिचक दीख जनकपति जयहीं । करि प्रवासु रव त्यागेन लखहीं ॥ १ ॥

भार्य, मन्त्री, गुरु और पुरवासियोंको साथ लेकर श्रीरामनाथजी आगे (जनकजीकी अगवाणीमें) चले । जनकजीने क्यों ही पर्यवशेष्ट कामनापको देखा, क्यों ही प्रणाम करके उन्होंने रम छोड़ दिया (पैरल पल्ला शुरू कर दिया) ॥ १ ॥

राम वरस केवल उल्लाह । पय भ्रम केसु कहेसु न गावू ॥

मग तहँ जहँ रघुवर सैवैही । विनुमनजनदुख सुख सुखिकैही ॥ २ ॥

श्रीरामजीके दर्शनको ललता और उत्साहके कारण किसीको रास्तेकी पकायद और हेषा बरा भी नहीं है । मन तो वहाँ है जहाँ श्रीराम और जानकीजी हैं । बिना मनके घरीरके सुख-दुःखकी सुष किसीसे हो ॥ २ ॥

कावत जगहु चले एहि भौती । सहित समाव प्रेम सति माती ॥

आयु निष्ठ देखि अतुरागे । सादर भिकन परस्पर खगै ॥ ३ ॥

जनकजी इस प्रकार चले आ रहे हैं । समावसहित उनकी बुद्धि प्रेमीमें मन्दाकी हो गयी है । निष्ठ आगे देखकर सब प्रेमीं भर गये और आदरपूर्वक आपसमें भिजने लगे ॥ ३ ॥

लगे बचक सुमित्रन पद बंदन । विभिन्ध प्रवासु कीन्ह छुनंदन ॥

भाइन्ह सहित राहु निष्ठि राजहि । चले छत्राह संसेत समानहि ॥ ४ ॥

जनकजी [वशिष्ठ आदि अयोध्यावासी] मुनियोंके बरबोंकी कन्दना करने लगे और श्रीरामचन्द्रजीने [अतनन्द आदि जनकपुरवासी] मुनियोंको प्रणाम किया । फिर मादबों-समेत श्रीरामजी राजा जनकजीसे मिलकर उन्हें समावसहित जाने आश्रमको लिखा चले ॥ ४ ॥

दो०—आश्रम सागर सांत रस पूजन पावन पायु ।

सेन मनहुँ करुना सरित छियँ जाहि रघुनायु ॥ २७५ ॥

श्रीरामजीका आश्रम शान्तरसस्त्री पवित्र जलसे परिपूर्ण समुद्र है । जनकजीकी सेना (समाज) मानो करुणा (करुणरस) की नदी है, जिसे श्रीरघुनाथजी [उग्र आश्रमरूपी शान्तरसके समुद्रमें मिलनक लीने] लीये जा रहे हैं ॥ २७५ ॥

चौ०—बोरेति स्थान विहाय करारे । लघन सखेक मिलत नव-कारे ॥

सोच ठसल समीर तरंगा । चौरस तट नद्वर कर संग ॥ १ ॥

यह करुणाकी नदी [इतनी बड़ी हुई है कि] अतनन्दरामजी किनारोंको छुवाती जाती है । शोकमेरे बचन नर और नाचे हैं, जो इस नदीमें मिलते हैं; और सोचकी

हवीं सोंते (आई) ही नयुके अक्षरेसे उठनेवाली तरङ्गें हैं, जो चैत्यरूपी किनारेके उपरम बुझोंको तोड़ रही हैं ॥ १ ॥

विषम विषाद सोरगसि धार । मय भ्रम भयँर कर्त क्वारा ॥

केसव धुर विधा बहि जावा । सकहि न सेह ऐक नहि जावा ॥ २ ॥

भयानक विषाद (शोक) ही उस नदीकी तेज धारा है । मय और भ्रम (मोह) ही उसके अतंज्य भँवर और फट हैं । विद्वान् मछ्राह हैं, विधा ही वही नाव है । परन्तु वे उसे से नहीं चढ़ते हैं (उस विषादका उपयोग नहीं कर सकते हैं), किसीको उसकी अटक ही नहीं आती है ॥ २ ॥

यमघर कोल किरात बिचारे । कके बिलोकि पचिक दिहैं हारे ॥

आश्रम उधुधि सिन्धी जव आई । मगहुँ उठै बंधुधि अकुलाई ॥ ३ ॥

यममें विचरनेवाले केचारे कोल-किरात ही वासी है, जो उस नदीको देखकर हृदयमें हारकर पक गये हैं । वह कल्याण-नदी जब आश्रम-समुद्रमें जाकर सिन्धी, तो मानो वह समुद्र अकुल उठा (खौल उठा) ॥ ३ ॥

सोक बिकल होठ राज समझा । रहा न ग्वातु न जीसु लावा ॥

धुर कप गुन सीठ सताही । रोवहि सोक सिंधु अकुलाई ॥ ४ ॥

दोनों राजसमान होठोंसे व्याकुल हो गये । किसीको न शान रहा, न धीरज और न काज ही रही । राज दसकयोंके रूप गुन और मोलकी सपना करते हुए खर गे रहे हैं और धोकरसमुद्रमें डुबकी लगा रहे हैं ॥ ४ ॥

छ—अक्षगाहि सोक समुद्र सोचहि नारि कर व्याकुल महा ।

है दोष सकल सरोष बोलाई वाम विधि कीन्हो कहा ।

सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा विदेह की ।

तुलसी न समरधु कोउ ओ तरि सकै सरित स्नेह की ॥

शोकसमुद्रमें डुबकी लगाते हुए सभी श्री-गुरु मन्त्र व्याकुल होकर लेख (चिन्ता) कर रहे हैं । वे सब विधाताको रोप देते हुए कोषयुक्त होकर कह रहे हैं कि प्रसिद्ध विधाताने यह क्या किया ? तुलसीदासजी कहते हैं कि देवता, सिद्ध, तपस्वी, योगी और मुनिगणोंमें कोई भी कर्म नहीं है जो उस सम्य विदेह (कनकराज) की दृष्टा देखकर प्रेमी नदीको पार कर सके (प्रेममें मग्न हुए बिना रह सके) ।

लो—किप अमित उपदेश आई हैं लोगन्ह मुनिवरन्ह ।

धीरधु धरित नरेस पछेउ बसिष्ठ विदेह सन ॥ २७६ ॥

महाँ-तहाँ भेद मुनिगोंने छेनोको अपरिमित उपदेश दिये और बसिष्ठजीने विदेह (कनकजी) से कहा—हे राजा ! आज कैयं पारण कीजिये ॥ २७६ ॥

बौ—बासु ग्वातु सवि मय निसि गमता । कषम कितवमुदिकमल पित्रसा ॥

वेदि कि मोह ममता जिझाई । खर सिम्य राम सनेह बजाई ॥ १ ॥

जिन राजा जनकजी जनकजी सर्व मय (अन्धकर्म) करी रात्रिका नाथ कर देता है, और किन्हीं वचनरूपी किरणों मुनिरूपी कमलोंको सिद्ध देती हैं, (आनन्दित करती हैं) । क्या मोह और ममता उनके निकट भी आ सकते हैं ? वहाँ तो भीरीतारामजीके प्रेमी महिमा है । [वचन यावा जनकजी यह दत्ता श्रीरामचरणजीके लौकिक प्रेमके कारण हुई, लौकिक मोह-ममताके कारण नहीं । जो लौकिक मोह ममताको पार कर चुके । उनपर भी श्रीरामचरणजीके प्रेम अपना प्रभाव दिसाने बिना नहीं रहता] ॥ १ ॥

विषय सचक सिद्ध समाने । त्रिविध जीव जय सेव बखाने ॥

राम सनेह सरस मन भाव । साधु समीं बड़ आदर ताम् ॥ १ ॥

विषयी साधक और ज्ञानवान् सिद्ध पुरुष—अर्थात् ये तीन प्रकारके जीव वेदोंने बताये हैं । इन तीनोंमें जिसका चित्त श्रीरामजीके स्नेहसे सरस (सज्जोर) रहता है, साधुओंकी समीं उरीन्ध बड़ा आदर होता है ॥ २ ॥

सोह न राम केम बिनु ग्यन । करमचार बिनु निमि जलनाम् ॥

मुनि बहुविधि विवेक समुदाय । तम बट सब योग नहाय ॥ ३ ॥

श्रीरामजीके प्रेमके बिना ज्ञान प्रोभा नहीं देख, जैसे कर्मचारके बिना जहाज । षष्ठिजीने विदेहराज (जनकजी) को बहुत प्रकारसे समझाया । तदनन्तर सब लोगोंने श्रीरामजीके पाठपर स्नान किया ॥ ३ ॥

सकल लोक संकल कर गारी । लो कसर बंदिद बिनु बारी ॥

पशु मग मृगन्द न कोन्ह अहार । शिव परिजान कर धौन बिचार ॥ ४ ॥

श्री-पुरुष सब लोकसे पूर्ण थे । वह दिन किना ही कच्चे बीत गया (भोजनकी बात तो दूर रही; किसीने जलतक नहीं पिया) । पशु, फली और हिरनोतकने कुछ आहार नहीं किया । तब प्रियकों एवं कुटुम्बियोंका तो विचार ही क्या किना मन । ॥ ५ ॥

दो०—बोह सम्राज निमिराजु रघुपञ्च नहाने प्राप्त ।

बैठे सब बट बिटप तर मन मलीन छुस नात ॥ २७७ ॥

निमिराज जनकजी और रघुराज रामचन्द्रजी तथा दोनों ओरके सम्राजने दूसर विन चर्चे स्नान किया और सब बड़े बड़े नीचे जा बैठे । उनके मन उदात्त और धीरे हुए हैं ॥ २७७ ॥

चौ०—जे महिपुर दत्तपथ पुर कसी । जे मिथिलापति नगर निवासी ॥

ईस बंस सुर ब्रह्म पुरोषा । सिन्द बन मय परमारपु लीषा ॥ १ ॥

जो दत्तपथकी नगरी अयोध्याके रहनेवाले और जो मिथिलापति जनकजीके नगर जनकपुरके रहनेवाले ब्राह्मण थे तथा सर्व्वर्णके शुद्ध वर्णधारी तथा जनकजीके पुरोहित गतानन्दजी, जिन्होंने सांसारिक अमृदवत्ता मार्ग तथा परमार्थवत् मार्ग ज्ञान प्राप्त था ॥ १ ॥

जो कहन उपदेश कहेक । लहित वसन वन विरति विषेक ॥

कौशिक कहि कहि कथा पुरानी । समुदाई सब समा सुषानी ॥ २ ॥

ये सब धर्म, नीति, वैराग्य तथा विवेकानुक्त अनेकों उपदेश देने लगे । विश्वामित्रजीने पुरानी कथाएँ (इतिहास) कह-कहकर खरी समाधि सुन्दर बाणीसे समझाया ॥ २ ॥

तब रघुराज कौशिकहि कहेक । सब कलि जल बिनु सतु रहेक ॥

मुनि कह उचित कहत रघुराई । कबल नीति दिष पहर अडाई ॥ ३ ॥

तब श्रीरघुनाथजीने विश्वामित्रजीसे कहा कि हे गुरु ! कल सब लोभ बिना कल मिले ही रह नये ये [अब कुछ आहार करना चाहिये] । विश्वामित्रजीने कहा कि श्रीरघुनाथजी उचित ही कह रहे हैं । हाई फिर दिन [आज भी] बीत गया ॥ ३ ॥

रिपि सब कलि कह तेहुतिछाव । इहाँ उचित यदि वसन मनान् ॥

कहा मूष मळ सम्हि सोहावा । पाहू रत्नयस्तु छडे कहना ॥ ४ ॥

विश्वामित्रजीका ज्ञान देखकर विरहूतप्राय जनकजीने कहा—यहाँ अब खाना उचित नहीं है । राजाका सुन्दर कथन उनके मनको अच्छा लगे । सब आका पाकर नहाने पड़े ॥ ४ ॥

दो०—तेहि भवसर फल फूल दूध मूक अनेक प्रकार ।

छह धाप बनवर बिपुल सरि सरि कँवरि भार ॥ २७८ ॥

उसी वसर बनेसों प्रसरके बहुतने फल, फूल, फल, मूक आदि कईयों और
बोझोंमें भर-भरकर बनवाही (बेज-किरात) जेव ते जाये ॥ २७८ ॥

चा०—कान्हू जे गिरि राम प्रसाद । कान्होकर भवसर विषादा ॥

सर सखि कव सुमि दिगमाय । जनु वसमत आनंद मजुराया ॥ १ ॥

श्रीरामकृष्णजी कुछसे सब फल मनवाही कछु देनेकले हो गये । ने देखनेमात्रसे
हो दुखोंको सर्वथा हर ॥ ये । वहाँके लक्ष्मी, नरिनी, कन और पृथ्वीके सभी भागोंमें
मानो आनन्द और प्रेम वमड़ रहा है ॥ १ ॥

हेहि बिदर ॥ ॥ लखल सखि । लोकर कव मूक अनेक प्रकार ॥

हेहि भवसर कव अधिक दाम्प । विविध समीर सुखद सब काहु ॥ २ ॥

॥ और कुछ सभी फल और फलोंसे युक्त हो गये । फली, कछु और भीरे अनुकूल
बोझी लो । ॥ भवसर कर्म बहुत उत्साह (आनन्द) था, सब किछीको धुप
देनेवाली शोच, मन्द, दुःखद हवा चक रही थी ॥ २ ॥

काहु न वरणि मनोहरवाई । जनु मदि कछि कवक पडुवाई ॥

कव सब जोष नहाइ नहाई । राम कवक सुमि भवसु पाई ॥ ३ ॥

हेहि देखि लखल मजुराये । कई कई दुःखन बसरन जाये ॥

॥ एक, एक मूक कव विभि बाधा । कवक सुंदर सुखा समया ॥ ४ ॥

बनकी मनोहरता कर्मन नहीं की आ उम्मी, मानो पृथ्वी बनफलीकी पडुवाई कर
रही है । सब कर्मदुरासी सब जेग नहा-नहाकर श्रीरामकृष्णजी, जनकजी और सुनिजी
भासा पाकर, सुन्दर बूझोंके देख-देखकर प्रेममें सरकर वहाँ-वहाँ उतरने लगे । पवित्र,
सुन्दर और भवसरके समान [स्वर्ग] अनेकों प्रकारके फल, फूल और कव—[१-४]

दो०—सादर सब कई रामपुर फटप धरि भरि भार ।

सुमि पितर सुर अतिथि सुर कले करन करहार ॥ २७९ ॥

श्रीरामजीके हुए अतिथीने सबके पास बोझें भर-भरकर सादरपूर्वक भेजे । भव के
पितर, देवता, अतिथि और सुखकी पूजा करके प्रसाद करने लगे ॥ २७९ ॥

चौ०—एहि मिथि नगर नीके चारी । सखु निरखि सर चारि सुखारी ॥

हुहु समाज अति रुचि मज गही । किंहु सिय राम पितर भज नाही ॥ १ ॥

इस प्रकार नगर दिन बीत गये । श्रीरामकृष्णजीके देखकर सभी नर-नारी सुखी हैं ।
गलों गमलोंके भ्रमों सेही इच्छा है कि श्रीरामकृष्णजीके बिना जीवन अच्छा नहीं है ॥ १ ॥

सखि लख संग बनवास । जेहि भवसर सखि सुवास ॥

परिहरी कवन सखु कैदेही । तेहि कव चर चर भिचि तेही ॥ २ ॥

श्रीरामकृष्णजीके साथ कर्मों रहना करोहों देखेबोके [निवाले] समान
सुखदायक है । श्रीरामकृष्णजी, श्रीरामजी और श्रीरामकृष्णजीके छोड़कर जितनों पर अच्छा
को, विधावा उसके विपरीत है ॥ २ ॥

वाहिन ददत छोड़ कव सखी । राम समीर सखि कव लखी ॥

मंदगतिनि मजनु किंहु कव । राम दखु सुख संकल साका ॥ ३ ॥

जब देव उनके अनुकूल हो, सभी श्रीरामकृष्णजीके साथ कर्मों निवास हो जाता है । मन्दगतिनी-
श्रीरामजीके साथ कर्म और आनन्द तथा मन्दगतिनीके साथ (संग) सब श्रीरामकृष्ण दर्शन ॥ ३ ॥

अतः राम गिरि बब वापस थल । अतः अग्निय सम कं वृत्त फल ॥

सुख समेत संवत् हुइ सात्त । फल सम हीहि न जनिअहि सात्त ॥ १७ ॥

श्रीरामजीके फल (अपदनाथ), वन और वासिकेके स्थानोमे धूमना और अमृतके समान फल, मूल, फलोंका भोजन । चौदह वर्ष सुखके साथ फलके समान हो जायेंगे (दीत जायेंगे), जाते हुए जान ही न पड़ेंगे ॥ ४ ॥

दो०—एहि सुख जोग ब लोभ सब कहहि कहाँ अस भाग्य ।

सहज सुभायै समाज बुद्ध राम चरन अतुराग्य ॥ २८० ॥

सब लोग कह रहे हैं कि हम इस सुखके योग्य नहीं हैं, हमारे ऐसे भाग्य कहीं ! दोनों समाजोका श्रीरामचन्द्रजीके चरणोमे सहज स्वभावसे ही प्रेम है ॥ २८० ॥

चौ०—एहि बिधि सकल मनोरथ कह्यो । वचन स्वीन सुख बब हर्यो ॥

सीध मातु तेहि समय पढ़्यो । हस्तों देखि सुखसद भाई ॥ १ ॥

इस प्रकार वह मनोरथ कर रहे हैं । उनके प्रेम्सुक वचन सुनते ही [सुमनेवालेके] मनोको हर लेते हैं । उसी समय सीताजीकी माता धीमनुषनाबीकी भेजी हुई दासियों [कौत्सवाजी आदिके मिलनेका] सुन्दर अवसर देखकर आयी ॥ १ ॥

सावकास मुनि सब सिध साध । अथवा अथक सब विधाध ॥

कौत्सवाजी साधर सबमाधी । अतन विदु समय सब धारी ॥ २ ॥

उनसे यह सुनकर कि सीताजी सब साधुओं इस समय फुरसतमे हैं, पलकानका रनिवास उनसे मिलने आया । कौत्सवाजीने आदरपूर्वक उनका सम्मान किया और सम्योचित आसन व्यवहार दिये ॥ २ ॥

सीध सतेहु सकल हुहु भोस । इन्हि देखि मुनि मुक्ति कौस ॥

सुख सिधिल सन करि बिलोचन । सहिगन सिनन कनो सब सोचन ॥ ३ ॥

दोनों ओर सबके शील और प्रेमको देखकर और सुनकर कठोर पत्र भी पिघल जाते हैं । शरीर पुलकित और चिपिक हैं, और नेत्रोमे [शोक और प्रेमके] आँसू हैं । सब अपने [पैरोंके] नखोंसे जमीन फुरेदने और खोचने लगी ॥ ३ ॥

सब सिध राम प्रीति कि सि सुखि । बडु कव्य बडु वेध विस्तृति ॥

सीध मातु कह बिधि मुनि कोली । जो पथ केहु छोर बनि तीली ॥ ४ ॥

सभी श्रीसीतारामजीके प्रेम्मी मूर्तिन्ती हैं, मान्ये स्वयं कदाही बहुतने वेध (सम) धारण करके विदुर रही हो (बुझ कर रही हो) । सीताजीकी स्वता सुनपनाबीने कहा—विधावाजी बुद्धि बड़ी टेढ़ी है, जो दूधके फेन जैसे कोमल वस्तुको वज्रकी टोंकीसे फोड़ रहा है (अर्थात् जो अत्यन्त कोमल और निद्रोष हैं उनपर विचित्र विपरीत दृष्टि रहा है) ॥ ४ ॥

दो०—सुनिम सुख देखिअहि गरल सब करतूति फणल ।

जई तहै काक उलूक कक मानस सहत सराल ॥ २८१ ॥

अमृत केवल सुननेमे मात्रा है और विष नहीं-तहाँ प्रस्थ देखे जाते हैं । विधावाजी सभी करतूतें भण्डार है । नहीं-तहाँ कौए, उल्लू और बगुले ही [दिलायी देते] हैं इस से एक मानसोपरमे ही है ॥ २८१ ॥

चौ०—सुनि सबोच कह देखि मुनिम । बिधि बति बति विपरीत विचित्रा ॥

जो धुनि पढ़्यो इह पयोरी । नाकके सिध बिधि गति सीरी ॥ १ ॥

यह सुनकर देवी सुमिनाबी शोकके साथ कहने लगी—विधावाजी पाठ बढी ही

पृ० स० २८—

विरहित और विचित्र है, जो सुखको उत्पन्न करके फलता है, और फिर नष्ट कर डालता है । विधाताही बुद्धि बालकोंके खेलके समान माली (क्लेशकृत्स्न) है ॥ १ ॥

औसम्य यह दोष न चाहू । कस्तु किस धुल सुख छति काहू ॥

कठिन कर्म यति ज्ञान शिवाय । जो सुख अनुभुन सकल कल दाता ॥ २ ॥

दौलतवाजीने कहा—किसीका दोष नहीं है; दुःख-सुख, हानि-लाभ सब कर्मके अधीन हैं । कर्मकी गति अठिन (बुद्धिमेव) है, उसे विधाता ही जानता है, जो शुभ और अशुभ लयी फलोंका देनेवाला है ॥ २ ॥

हैस रवाइ सौस सखी कै । उतपति भिति छव भिषहु अभी कै ॥

कौन मोह कस सोच्य कहा । किंच प्रपद्यु मस अवक अनाही ॥ ३ ॥

इश्वरी आज्ञा सर्वके लिएपर है । उत्पत्ति, स्थिति (पलन) और क्षय (संहार) तथा वसुल और दिवसे भी लिएपर है (ये सब भी उसीके अधीन हैं) । हे देवि ! मोहका बोध करना ध्येय है । विधाताका प्रत्यक्ष ऐसा ही अवक और अनादि है ॥ ३ ॥

सुपति निजव भव्य घर जगती । सोचिअसुखिअसुखि निज हित हागी ॥

शेष मातु कह सब सुधानी । सुकुली अथि सबप्रपति रानी ॥ ४ ॥

महाराजके करने और जीनेकी बातको हृदयमें याद करके जो चिन्ता करती है, वह जो है उसी । इस अपने ही हिस्से हानि देकर (स्वार्थका) करती है । सीताजीकी माताने कहा—आपका कथन उत्तम और सत्य है । आप पुष्पात्माजीके सीमाकर अवधपति (महाराज वनरचर्यी) को ही तो रानी हैं । [फिर भक्त, ऐसा क्यों न कहेंगे] ॥ ४ ॥

हो—छछनु रामु रुचि जहूँ वन भक्त परिणाम न पोखु ।

गह्वरि हियँ वह कौसल्य मोहि मरत कर सोखु ॥ ५ ॥

कौसल्याजीने दुःखधरे हृदयसे कहा—भीराम, लक्ष्मण और सीता वनमें जायें, इसका परिणाम तो आपका ही होगा, भ्रम नहीं । मुझे तो भरतकी चिन्ता है ॥ ५ ॥

चौ—ईस प्रसव भलीस तुमारी । सुल सुतवर् देवसति बासी ॥

एम सपन मैं कीन्ह न करक । सो करि कहैं सखी सति भाक ॥ ६ ॥

इश्वरके अनुग्रह और आनेके आशीर्वादसे मेरे [चारों] पुत्र और [चारों] बहुएँ पञ्चमीके लक्ष्मी समान भविष्य हैं । हे स्त्री । मैंने सभी भीरामकी सीमा नहीं की, जो आज भीरामकी शपथ करके सत्य भावसे कही है—॥ ६ ॥

भक्त सखि तुम निजव भवई । आपन भवति अरोच नकाई ॥

कहच सारदहु कर मति दीये । समर सौर कि जहि उलीये ॥ ७ ॥

भरतके पीक, दुःख, नाशों, कष्टों, स्मरण, भक्ति, भरोसे और अन्त्येष्टिकर वर्णन करनेमें सत्यसीताजी बुद्धि भी हिचकती है । सीतेसे कहीं समुद्र उलीये जा सकते हैं ? ॥ ७ ॥

जानई समर भक्त दुखदीपर । नर नर मोहि कहैद महीना ॥

कयँ नमक भवि करिअि पार । पुन पतिअहि समयँ सुभायँ ॥ ८ ॥

मैं भरतकी क्या दुःखका टीका जानती हूँ । महाराजने भी बार-बार मुझे यही कहा था । सोना दुखदीपर कहे जानेपर और रत्न वास्ती (जूहरी) के मिश्रण ही पहचाना जाता है । वैसे ही पुष्पकी परीक्षा समान फलोंसे उसके समानसे ही (उत्कृष्ट चरित्र देखकर) हो जाती है ॥ ८ ॥

मनुचित जहनु बहव कस सोल । लोक लयेई सखनन थोर ॥

सुनि सुतरि पवननि पानी । भई समेह निकल सब रानी ॥ ९ ॥

किन्तु आज मेरा ऐसा कहना भी अनुचित है। शोक और स्नेहने स्थानाप्त (विवेक) कम हो जाता है (खेद कहेंगे कि मैं स्नेहवश मरती बड़ाई कर रही हूँ)। कौसल्याजीकी गह्वाबीके समान पवित्र करनेवाली बाणी सुनकर अब रानियों स्नेहके मोरे विफल हो उठीं ॥४॥

दो०—कौसल्या कह खीर घरि सुन्दर देवि मिथिलेसि ।

को बिचेकनिधि बह्महि तुम्हहि सकइ उपदेसि ॥ २८२ ॥

कौसल्याजीने फिर धीरेज धरकर कहा—हे देवि मिथिलेश्वरी ! तुमने, ज्ञानके भण्डार भोजनफलकी दिया, आपसे कौन उपदेश दे सकता है ? ॥ २८२ ॥

बौ०—रानि राख सन भवसह पाई । जपनी मोति कदम समुपाई ॥

रसिवाहि लक्ष्म सुन्दर बनवहि बन । बौ कह सत मनै सहोप भग ॥ १ ॥

हे रानी ! मौका पकर जाय राजाको जपनी ओरसे बहोतक हो सके समझाकर कहियेगा कि लक्ष्मणको घर रक्त स्त्रिया जाय और मरत बनके नार्थ । यदि वह राय राजाके मनमें [ठीक] बँच जाय ॥ १ ॥

औ मरत कतु करत सुनिषत्तै । मोरें छोडु अस्त कर मारी ॥

गुरु स्नेह भलत सब मोही । रहैं कीक मोहि लगत गही ॥ २ ॥

हो मर्यभोति लूय विचारकर ऐश सब करें । मुझे मरतका अत्यधिक शोक है । भरतके मनमें गुरु प्रेम है । उनके घर रहनेमें मुझे भलाई नहीं जान पड़ती (यह कह लगता है कि उनके श्रावणोंको कोई भय न हो जाय) ॥ २ ॥

कहिं सुभाष सुनि ससु सुजानी । सब भइ भगव कसन सत राणी ॥

बन प्रसूत हरि कन्य धन्य पुनि । सिधिल सनेहें सिद्ध कोषी पुनि ॥ ३ ॥

कौसल्याजीका स्वभाव देखकर और उनकी सरल और उत्तम बाणीको सुनकर अब रानियों कवचरसमें निमग्न हो गयीं । आकाशमें पुष्पपर्वाकी लकी लग गयी और धन्य धन्यकी भवित होने लगी । सिद्ध, सोमी और पुनि स्नेहसे विप्लित हो गये ॥ ३ ॥

सब रसिवाहु विपकि कलि खेक । सब धरि खीर सुमिर्षी क्येक ॥

देवि वंश सुगु जामिनि सीती । राम सब सुनि उठी सजोती ॥ ४ ॥

सारा रनिवात देखकर यकित ख मया (निराश्व हो गया) । तब सुमित्राजीने धीरेज धरके कहा कि हे देवि ! दो फड़ी रात बीत गयी है । यह सुनकर श्रीरामजीकी माता कौसल्याजी प्रेमपूर्वक उठी—॥ ४ ॥

दो०—वेनि पाठ धारिख धरहि कह सनेहें सतिभाष ।

हमरें सी अब ईस यति कै मिथिलेस सहाय ॥ २८३ ॥

और प्रेमवसित लज्जाको बोली—अब आप खीर डेरेंगे पधारिये । हमारे दो भन ईश्वर हो गति हैं, अथवा मिथिलेश्वर जनकजी सहायक है ॥ २८४ ॥

बौ०—कलि सनेह सुनि धन्य निनीत । जन्मजिन्म यह पाय पुनीत ॥

देवि उचित कसि किनव तुम्हारी । दूसरव वसित सब महसारी ॥ १ ॥

कौसल्याजीके प्रेमको देखकर और उनके विनम्र कवचोंको सुनकर जनकजीकी प्रिय पत्नीने उनके पवित्र चरण पद्म स्निग्ध और कहा—हे देवि ! आप राजा दशरथजी की पत्नी और श्रीरामजीकी माता है । आपकी ऐसी नम्रता उचित ही है ॥ १ ॥

प्रभु कल्पे यीचहु जगद्विधि । कलिनि भूषविनि सिर विनु चरही ॥

सोचत राख करत मन खानी । सदा सहाय यहेषु भजानी ॥ २ ॥

प्रभु अपने नीच कर्मोंका भी आधार करते हैं । कलि दुष्टोंको और पर्वत वृण (पारु)

को अपने विरपर पालन करते हैं । हमारे राजा तो कर्म मन और वाणीसे आपके सेवक हैं और सदा श्रावक तो श्रीमहारेण-पार्वतीजी हैं ॥ २ ॥

हरे शंख जोगु जन को है । दीप सदास कि दिक्कर सोई ॥

राजु काहूँ फिर घुर करूँ । अछट बनबसुर करिहहिं राखू ॥ ३ ॥

आपका सहायक होने योग्य जगत्में कौन है ! दीपक स्वर्णकी सहायता करने जाकर कहीं शोभा पा सकता है ! श्रीरामचन्द्रजी वनमें जाकर देवताओंका कार्य करने भवपुरीमें अछट राजन करते हैं ॥ ३ ॥

जसर कथा सर राम कह्यु नक । सुख बसिहहिं जलमें अपनों मक ॥

बहूँ सब जगजगिह कहिं राखा । देखि न छोड़ु मुखा मुनि नाका ॥ ४ ॥

देवता, नान और मनुज सब श्रीरामचन्द्रजीकी मुखाओंके कण्ठर अपने-अपने स्थानों (क्षेत्रों) में सुखपूर्वक बसोंगे । सब सब वाक्पुत्र मुनि पदमेहीति कह सकते हैं । हे देखि ! मुनिका कवन भव (हठ) नहीं हो सकता ॥ ४ ॥

दो०—अस कहिं पग फिर पैम अति सिय हित विमय सुनाह ।

सिय समेत सिबमातु सब धर्यी सुमायसु पाइ ॥ २८५ ॥

देहा कहकर चले प्रेमसे पैरों पदकर सीताजी [जो राम मेजने] के शिरे विनती करके और सुम्हर आका पाकर सब सीताजीसंग सीताजीकी मत्त होके चली ॥ २८५ ॥

चौ०—सिय परितःहिं मिली बैदेही । जो लेहि जोगु भंति तेहि ठेही ॥

हापस कैव जगजी देखी । सर सतु बिकक बिबाह मिलेसी ॥ १ ॥

जानकीकी अपने प्यारे कुटुम्बियोंके—ये तिस योग्य था उलझे लकी प्रकार मिली । जानकीजीको संशयोंके वेधमें देखकर सभी छोड़के अरुन्धत जाकुल हो गये ॥ १ ॥

बनबस राम गुा माकसु पाई । चले बसहिं सिय देखी भाई ॥

कीर्ति छाहूँ जग जगक जानकी । पाहुनि पावक पैम प्रान की ॥ २ ॥

जानकी श्रीरामजीके सुख वसिहकीकी आका पाकर होरेछे चले और आकर उन्होंने सीताजीको देखा । जानकीने अपने पवित्र प्रेम और प्रार्थना से कुटुम्बी जानकीकी को हृदयसे छाप दिया ॥ २ ॥

हर उममैह भंति जगुलसु । मरुत मूर जगु सबहुँ पचासु ॥

सिय सनेह बहूँ जानत कोहा । जलर राम पैम सिसु सोहा ॥ ३ ॥

उनके हृदयमें [वाक्पुत्र] प्रेमसंग समुद्र उमड़ पड़ा । राकाका मन मानो प्रयाप्त हो गया । उस समुद्रके अंदर उन्होंने [वाक्पुत्र] सीताजीके [जलौकिक] लोहसूरी अस्त्रमण्डलों से दृढ़ होकर देखा । उस (सीताजीके प्रेयसी बट) पर श्रीरामजीका प्रेम रूपी शालक (वाक्पुत्रप्राप्ति सम्बन्ध) सुखोन्मिष्ट हो रहा है ॥ ३ ॥

विखीली मुनि नाग बिकक जगु । कलस जहेत जग भवजगनु ॥

मोह भगन अति नहिं बिदेह की । सहिअ सिय राखर सनेह की ॥ ४ ॥

जानकीका जगजग विरंजीली (भर्तृप्रेम) मुनि न्याकुल होकर बुरे-भूषणे मानो सब श्रीरामजीकी वाक्पुत्र काया पाकर नच बचा । जलजगः [जलविशेष] बिदेहजलनी मुदि मोहमें मग नहीं है । वह तो श्रीसीतापुत्रजीके प्रेयसी सहिअ है [जिसने उन-जैसे महान् शक्ति उनको भी निज कर दिया] ॥ ४ ॥

दो०—सिय पितु मातु सनेह बस बिकक न सकी छँमारि ।

परितःसुर्वो घौण्डु जनेह समत सुवसु बिकारि ॥ २८६ ॥

पिता-माताके प्रेम्भे गये सीताजी ऐसी निकल हो गयीं कि अपनेको सँभाल न सकीं । [परन्तु परम धैर्यवती] पृथ्वीकी कन्या सीताजीने समस्त और सुन्दर धर्मका विचार कर धैर्य धारण किया ॥ २८६ ॥

चौ०—तापस वेद अन्तः सिध देखी । मयत येसु परितोषु तिसैपी ॥

पुत्रि पवित्र किष्ट कुल दोष । मुजस चकल वसु कह सतु कोल ॥ १ ॥

सीताजीको तपस्विनी केसो देखकर जनकजीको विशेष प्रेम और स्तुति हुआ । [उन्होंने कहा—] बेटी ! तूने दोनो कुल पवित्र कर दिये । तूने निर्मल वस्त्रों से सारा शरीर उज्ज्वल हो रहा है; ऐसा रंग कोई कहते हैं ॥ २ ॥

जिति सुस्तरि कीरति सरि तोरी । गधसु धीन्ह निधि भंड कठौरी ॥

राज अवनि बल तीरि बडेरे । एहि किष्ट सगु समस्त भनेरे ॥ २ ॥

तेरी कीर्तिरूपी मदी देवमदी गङ्गाजीमें मी सीतकर [जो एक ही तन्मात्रमें बहती है] करोड़ो ब्रह्माण्डोंमें बह चली है । गङ्गाजीने वो पृथ्वीपर तीन ही स्थानों (हरिद्वार, प्रयागराज और गङ्गातटार) को बसा (तीर्थ) बनाया है । पर तेरी इस कीर्तिनदीने तो अनेकों संततमात्ररूपी तीर्थस्थान बना दिये हैं ॥ २ ॥

पिष्ट कह सत्य सनेहें सुधानी । सीध सकुच महुं मनहुं समानी ॥

पुनि पिष्ट मसु जोनिह कर कर्ह । सिध अस्तिव हित रोनिह सुहाई ॥ ३ ॥

पिता जनकजीने सो स्नेहसे सभी सुन्दर वाणी कही । परन्तु अपनी बचारी छुनकर सीताजी माया स्नेहमें समा गयी । पिता-भ्राताने उन्हे फिर हृदयसे लगा लिया और हितमयी सुन्दर सीख और आशिर दी ॥ ३ ॥

कहति न सीध सकुचि मन मारी । इहाँ वस्तव सबकी भल सारी ॥

कलि एक लजि जमाकठ राक । इदवै सराहत सीध सुभाक ॥ ४ ॥

सीताजी कुछ करती नहीं हैं, परन्तु मममें छुट्का रही है कि रातमें [राहुजीकी सेवा छोड़कर] यहाँ रहना अच्छा नहीं है । रात्रि सुनयनजीने जानकीजीका वस्त्र देखकर (उनके मनकी वस्तु समझकर) राजा जनकजीको ज्ञात दिया । तब दोनों अपने हृदयोंमें सीताजीके शील और स्वभावकी स्मरण करने लगे ॥ ४ ॥

दो०—बार बार मिळि भेंटि सिध बिदा कीनिह सनमानि ।

कही समथ सिर सरत गति रानि सुनानि सयानि ॥ २८७ ॥

राजा-रानीने बार-बार मिलकर और हृदयसे लगाकर तथा सम्मान करके सीताजीको बिदा किया । बहुत रानीने समस्त पाकर राजासे सुन्दर वाणीमें सरतजीकी दशाका वर्णन किया ॥ २८७ ॥

चौ०—मुनि भूपाठ मस्त ब्यवहार । सीध सुबध सुधा सति सार ॥

मूदे सजक नयन पुलके सब । मुजसु सराहत को मुक्ति मन ॥ १ ॥

सोनेमें दुग्ध और [सुधसे निकली दुध] सुधामें चन्द्रमाके शर अमृतके समान भरतजीका व्यवहार सुनकर राजा ने [प्रेमनिष्ठ होकर] अपने [प्रेमाभुजोंके] जल्ले भरे नेत्रोंको मूँद लिया (वे भरतजीके प्रेम्भे मानो जानसक हो गये) । वे क्षीरसे पुलकित हो गये, और मनमें आनन्दित होकर भरतजीके सुन्दर कण्ठी स्मरण करने लगे ॥ १ ॥

सावधान मुहु मुमुलि मुजोचधि । मस्त कया भव बंध बिगोचनि ॥

धरम राजनय अस्तिव्यार । इहाँ जगज्जति गोर मचार ॥ २ ॥

[वे बोले—] हे मुमुक्षु ! हे सुनयनी ! अवधान होकर सुनो ! भरतजीकी कथा

संसारके दल्पनते छुड़ानेवाली है। धर्म, राजनीति और ब्रह्मविचार इन तीनों विषयोंमें अपनी बुद्धिके अनुसार मेरी [बोधी-बहुत] अति है। (अर्थात् इनके सम्बन्धमें मैं कुछ जानवा हूँ) ॥ २ ॥

सो मति मेरी भस्त अहिमाही। कही कह छछि सुधति व छौंही ॥

जिहि गनपति अहिपति सिव सारथ। कवि कोविद बुध बुद्धि बिसारथ ॥ ३ ॥

वह (धर्म, राजनीति और ब्रह्मज्ञानमें प्रवेष्ट रहनेवाली) मेरी बुद्धि भरतनीकी महिमाका वर्णन तो क्या करे, छल करके भी उसकी छायातकसे नहीं छू पाती। ब्रह्मानी, गणेशजी, देवजी, महादेवजी, अस्तसीजी, कनि, ज्ञानी, ऋषि और बुद्धिमान्—॥ ३ ॥

भस्त चरित कीरति फलछौ। चरम सीध गुन निमल निमूली ॥

समुच्चर सुगत सुवाद सब कहा। सुधि भुस्सरि खच मिश्र सुवाह ॥ ४ ॥

वह किरीको भस्तनीके चरित, कीर्ति, करनी, धर्म, शील, गुण और निर्मल ऐश्वर्य समस्तमें और तुममें मुक्त देनेवाले हैं और पवित्रतामें राज्ञासीका तथा स्वाद (मधुरता) में भक्तका भी तिरस्कार करनेवाले हैं ॥ ४ ॥

यो—निरक्षि गुन निरपम पुबहु मरु भस्त खम जानि।

सहिभ सुमेव कि सेर सम कविकुल मति सङ्गुधानि ॥ २८८ ॥

भरतजी असीम गुणसम्पन्न और उपमाहित पुबहु हैं। भरतजीके समान वध, भरतजी ही हैं, ऐसा जानो। सुमेव पर्वतको क्या सेरेके बराबर कह सकते हैं ? इसलिये (यहाँ किसी पुबहुके साथ उपमा देनेमें) कविसमाजकी बुद्धि भी सङ्कुचा गयी। ॥ २८८ ॥

यो—अगम सखी बरगत बरवरनी। किमि अछरीन कीज राहु धरनी ॥

भरत भविष्य महिमा जुहु राणी। जानहि राहु व सखी बखानी ॥ ३ ॥

हे जोड़ बर्णवाली। भरतजीकी महिमाका वर्णन करना सम्पत्तिके लिये वैसे ही अगम है जैसे गङ्गादेह पृथ्वीपर भ्रष्टीका चरना। हे राणी ! तुमने भरतजीकी अपरिमित महिमाको एक श्रीरामचन्द्रजी ही जानते हैं; किन्तु वे भी उसका वर्णन नहीं कर सकते ॥ १ ॥

धरनि समेन भस्त अनुभाऊ। सिव सिवही सखि सखि कह राऊ ॥

बहुएहि कछहु मरु कन काही। सब कर कछ सब के मन माही ॥ २ ॥

इस प्रकार प्रेमपूर्वक भरतजीके प्रशंसाका वर्णन करके, फिर पत्नीके मनकी कवि जानकर एजाने कहा—छलपनी नौठ बायें और भरतजी बनको बायें; इसमें समीका मात्र है और नदी सबके मनमें है ॥ २ ॥

हेरि परहु भक्त खुन्न की। प्रीति प्रतीति जाइ कहि सरकी ॥

भरत भवधि सखेह ममल की। बखनि सखु सीम ससता की ॥ ३ ॥

परनु हे देवि। भरतजी और श्रीरामचन्द्रजीका प्रेम और एक-दूसरेपर विश्वास बुद्धि और निचारकी सीमासे नहीं आ सकता। कल्पि श्रीरामचन्द्रजी सम्पन्नको सीमा है, तथापि भरतजी प्रेम और गच्छाधी सीमा हैं ॥ २ ॥

परमार्थ सारथ सुल सरे। भरत व सखेहुं भवहुं निहारे ॥

सखन सिद्धि तम भव नेह। मोहि कसि फल भरत मरु पद ॥ ४ ॥

[श्रीरामचन्द्रजीके प्रति अनन्ध प्रेम्को ज्योड़कर] भरतजीने समस्त परमार्थ, स्वार्थ और सुखीकी ओर स्वार्थ भी मनसे भी नहीं ताका है। श्रीरामजीके चरणोंका प्रेम ही उनका साधन है और कही सिद्धि है। सुमे तो भरतजीका वध, नही एकाग्र निद्रा-तन मन पड़ा है ॥ ४ ॥

दो०—भोरेहुँ भरत न पेकिहहिँ मनसहुँ राम रजाह ।

करिअ न सोचु सनेह बस कहैउ मूर विठजाह ॥ २८९ ॥

रामने बिलखकर (प्रेमसे गद्गद होकर) कहा—भरतजी भूलकर भी श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाको मनसे भी नही टाँसे। अतः उनके क्या होकर चिन्ता नहीं करनी चाहिये ॥ २८९ ॥

चौ०—राम भरत सुन गवत समीती । बिछे बँवातेहिँ पकरु सम बीती ॥

राज समान प्राप्त भुल जग्ये । नहाइ नहाइ मूर पूजत जग्ये ॥ १ ॥

श्रीरामजी और भरतजीके गुणोपरी प्रेमपूर्वक कल्पना करते (कहते-सुनते) पति पत्नीको रात पलकके समान बीत गयी। प्रकट-प्रकट दोनों राजसमाज जागे और महा-नहाकर देवताओंकी पूजा करने लगे ॥ १ ॥

गो नहाइ मूर वहिँ खुराई । बंदि चरन बोले बस पाई ॥

बाध भरत पुरजग भइतरौ । सोक बिरल बनबास दुखारौ ॥ २ ॥

श्रीरघुनाथजी स्नान करके गुह बसिछत्रीके पास गये और चरणोंको कन्दना करके उनका रक्त शरिर बोले—हे नाथ ! भरत, अवधपुरवासी तथा माताई सब शोकने व्याकुल और वनवासले दुखी है ॥ २ ॥

सहित समाज राह मिथिलेसु । बहुत बिरस भए सहत कहेसु ॥

उचित होइ स्पेइ कीजिय वाधा । हित सबही कर रोई हाथा ॥ ३ ॥

मिथिलपति राजा जनकजीको भी समाजस्थित ज्ञेय उल्टे बहुत दिन हो गये। इसलिये हे नाथ ! जो उचित हो वही कीजिये। आश्रीके हाथ तनीस हित है ॥ ३ ॥

जस कहि भति सकुचे खुसक । मुनि पुढे कवि खीछु सुभास ॥

गुह बिनु राम सरल सुख साज । नरक खरिस दुहुँ राज समाज ॥ ४ ॥

ऐसा कहकर श्रीरघुनाथजी भक्तन्त ही चक्रवा गये। जनका शोक-मगधाध देखकर [प्रेम और आनन्दसे] मुनि बसिछत्री पुलकित हो गये। [उन्होंने ऊँचकर कहा—] हे राम ! तुम्हारे बिना [घर-बार आदि] सम्पूर्ण सुखोंके साथ दोनों राजसमाजोंको नरकके समान है ॥ ४ ॥

दो०—प्राप्त प्राप्त के जीव के जिव सुख के सुख राम ।

गुह तजि तात सोहात गुह जिन्हहिँ सिन्हाहिँ बिधि वाम ॥ २९० ॥

हे राम ! तुम प्राणोंके भी प्राण, आत्मके भी आत्मा और सुखके भी सुख हो। हे तात ! तुम्हें छोड़कर जिनमें घर सुहात है, उन्हें विवादा विपरीत है ॥ २९० ॥

चौ०—सो सुह कसु गरु जरि जल । जहाँ व राम पव पँकज मात ॥

भोगु कुनोसु म्बलु लम्पन । जहाँ वहिँ तस पैम परबान् ॥ १ ॥

जहाँ श्रीरामके चरणकमलोंमें प्रेम नहीं है, वह सुख, कर्म और धर्म अल जय ! जिसमें श्रीरामप्रेमकी प्रधानता नहीं है, वह योग कुनोप है और वह ज्ञान अज्ञान है ॥ १ ॥

गुह बिनु कुली सुखी गुह वेही । गुह जान्यु जिय बी ब्रेहिँ केही ॥

छाडर बापहुँ सिर खन्दी कैं । बिदित कृष्णकहिँ गते सब नीकैं ॥ २ ॥

तुम्हारे बिना ही सब सुखी हैं और जे सुखी हैं वे तुम्हें सुखी हैं। जिस कियेके जीमें जो कुछ है वम सब जानते हो। आपकी आज्ञा सभीके निरार है। कृपासह (आप) को सभीकी स्थिति अच्छी तरह माझ्य है ॥ २ ॥

भापु आजगहिँ चारिय छत । सकल सनेह सिन्धि मुनिछत ॥

करि प्रयासु जव रम्य सिन्धा । सिन्धि भरि भरि जवक वहिँ बापु त है ॥

दशः आप आत्मको पवारिये । इतल कह सुनिराज स्नेहसे विपित हो-अये ।
तब औरमनी प्रभाव करके चले गये और श्रुति चरितनी जीव भरकर जनकजीके
पाठ आये ॥ २ ॥

राम बचन सुन बृषदि मुखात् । सीत स्नेह सुगम सुहाय ॥

महारण्ड जब कीविय सोई । सब कर वचन सहित हित होई ॥ १ ॥

गुरुजीने श्रीरामचन्द्रजीके सीत और स्नेहके पुनः समान्ये ही सुन्दर वचन उक्त
जनकजीको सुनये [और कहा—] हे महाशय । जब कीविये जिसमें सबका
वर्णनहित हित हो ॥ ४ ॥

दो—आम निधाम सुगम सुचि चरम चीर मरपाक ।

मुन्य विनु असमंजस समय को समरय यहि काळ ॥ २९१ ॥

हे राजन् ! हम सबके मन्त्रालय कुलान्त पवित्र और वर्धन चीर दो । इस समय
हमारे बिना यह बुविबाको दूर करनेमें और कौन समर्थ है ॥ २९१ ॥

श्री—मुनि मुनि बचन बचक भवुसने । छवि गति न्यासु विरगुनिरागे ॥

सिद्धि सखे पुनत मय माहीं । आप इही कीन्ह सक माहीं ॥ १ ॥

मुनि चरितजीके बचन सुनकर जनकजी प्रेम्में मग्न हो गये । उनकी दशा देखकर राम
और लक्ष्मणसे भी बेचैन हो गया (अर्थात् उनके झन-झणद हृदयसे गये) । वे प्रेम्में सिद्धि
हो गये और मनमें विचार करने लगे कि इन यहाँ आये यह अच्छा नहीं किया ॥ १ ॥

रामहि रावै कहेन बग सभा । कीन्ह मातु त्रिब प्रेम प्रसन्ना ॥

हम अब बग में बसी रहेंगे । प्रसुक्ति निरव विवेक बड़ाई ॥ २ ॥

एक दशरथजीने श्रीरामजीको बग आनेके लिये कहा और सर्व अपने प्रियके
प्रेमको प्रमाणित (समा) कर दिया (प्रियाप्रेममें प्रथम त्याग दिये) । परन्तु हम
अब इन्हें करने [और गहन] बगमें सेवक अपने विवेकही बड़ाईमें आनर्निष्ठ होके
हुए औरोंके [कि हमें आप भी कोह नहीं है । हम श्रीरामजीको बगमें छोड़कर चले आये ।
दशरथजीकी तरह तो नहीं] ॥ २ ॥

रामस मुनि मरिमुन्य मुनि देखी । मरु प्रेम बस निष्कल विवेकी ॥

जनक समुक्ति यदि कीवु राजा । चले भरत पहि सहित समाला ॥ ३ ॥

रामजी, मुनि और राजा मरु सब सुन और देखकर प्रेमदश बहुत ही न्यायपूर्ण हो गये ।
जनक विचार करने लगे जब जनकजी जीव भरकर वचनवर्णित मरुतकी पाठ पढ़े ॥ ३ ॥

मरुत मरु मरु मरु मरु । मरुत सखि सुगमसग दानि ॥

सब भरत कह देखुनि राज । हुम्माई विदित खुशी सुमाई ॥ ४ ॥

मरुतजीने जाकर उन्हें आने छेकर किया (आनेमें जाकर उनका स्वागत किया)
और जनपदमूल अपने आसन दिये । विपुलताय जनकजी अपने लगे—हे भरत मरुत !
तुमसे श्रीरामजीका समाव गहन ही है ॥ ४ ॥

दो—राम सखजत धरम रत सब कर सीखु स्नेह ।

संनत सहत सखेय वत्त कहिय जो आपसु देहु ॥ २९२ ॥

श्रीरामचन्द्रजी जनकजी और वर्धनपवन हैं जनक-सीत और स्नेह-रत्नके लिये
हैं । रत्नलिये हैं संवेकनय छेकर सब रहे हैं अब हम जो आज्ञा दो, वह उनके
भी नाम ॥ २९२ ॥

चौ०—सुनि तब पुरुकि भयन भरि भारी । बोले ससु धीर बरि भारी ॥

प्रभु प्रिय दूष्य पिता सम आपू । कुलगुरु सम हित माय न आपू ॥ १ ॥

मरतजी यह सुनकर पुरुनिचारीर हो नेत्रोमे बल भरकर कहा भारी धीरज धरकर बोले—हे प्रभो ! आप हमारे पिताने समान प्रिय और पूज्य है । और कुलगुरु भीवशिष्ट जीके समान हितैषी तो मरता पिता भी नहीं है ॥ १ ॥

कौसिकावि मुनि सन्धि समान् । अथ भन्तुनिवि जगुसु धन ॥

सिसु सेवक आपसु अनुगामी । जावि सोहि सिद्ध वेदम स्वामी ॥ २ ॥

विश्वामित्रजी आदि मुनियो और मन्त्रियोका समान है । और आजके दिन शान्ति समुद्र आप भी उपस्थित है । हे स्वामी ! मुझे अपना बन्धु, सेवक और आशानुसार चत्वनैवाला समझकर शिवा दीजिये ॥ २ ॥

एहि समान सब सुख राखर । और सन्धि मैं बोकन साठर ॥

छोटे बदन कहैं बलि जाता । कमलदात खनि बाम विधाता ॥ ३ ॥

इस समान और [पुण्य] स्वामी आप [जैसे जानी और दूष्य] का पूजना । इसपर यदि मैं मौन रहता हूँ तो मर्लिन समझा जाऊँगा, और बोकना पागलपन होगा । तथापि मैं छोटे मुँह बड़ी बात कहता हूँ । हे तात ! विश्वामित्रको प्रतिकूल जानकर शमा कीजियेगा ॥ ३ ॥

आशम शिखर प्रसिद्ध पुराना । सेवकसु बहिन ससु जाय ॥

स्वामि भक्त स्वयंवि विरोध । वैद अथ प्रेमहि न प्रबोध ॥ ४ ॥

वैद, शास्त्र और पुराणोमे प्रसिद्ध है और अज्ञानता है कि सेवाधर्म क्या कहिये है । स्वामिधर्ममे (स्वामीके प्रति कर्तव्यपालनमे) और स्वार्थमे विरोध है (दोनों एक साथ नहीं निभ सकते) वैद अथ होता है और प्रेमको जान नहीं रहा [मैं स्वार्थपर कहूँगा या प्रेमपर, दोनोंमे ही भूल होनेका भय है] ॥ ४ ॥

चौ०—यदि राम सब धरसु प्रभु पराधीन मोहि जानि ।

। सब कैं समस्त सर्व हित करिष पेसु पहिचानि ॥ २९३ ॥

अतएव मुझे पराधीन मानकर (मुझसे न पूछकर) श्रीरामचन्द्रजीके सब (बन्धि), धर्म और [स्वयंके] सबकी रक्षते हुए, जो उनके सम्मत और उनके लिये हितकारी हो आप सबका प्रेम पहचानकर बड़ी कीजिये ॥ २९३ ॥

चौ०—मरत बचन सुनि देखि सुमनस । सहित समान सखत राख ॥

सुगम अथ ससु मनु कछेरे । अथ समित अति जागर घोरे ॥ १ ॥

मरतजीके बचन सुनकर और उनका स्वभाव देखकर समानसहित राजा जनक उनकी सहायता करने लगे । मरतजीके बचन सुगम और अथम, सुन्दर, कोमल और कछेरे हैं । उनमे अक्षर घोड़े हैं, फलनु अर्थ मालन्त अक्षर मरा हुआ है ॥ १ ॥

अथ सुख सुख सुख निज पानी । यहि वसाह अथ मदमुव बानी ॥

भूप मरसु मुनि सहित समान् । मे अथ शिखर कुल्लव द्विजयन् ॥ २ ॥

जैसे सुख [का प्रतिनिध] दर्पणमे दीखता है और दर्पण अपने हाथमे है, फिर भी वह (सुखाका प्रतिनिध) पकड़ा नहीं जाता, इसी प्रकार मरतजीकी यह अद्भुत वाणी भी पकड़ने नहीं आसके (बन्धोंसे उसका आग्रह समझने नहीं आता) । [किसीने कुछ उत्तर देते नहीं बना] तब राजा जनकजी, मरतजी तथा मुनि बहिनजी समस्तमे

साथ बहो गये जहाँ देवताकभी कुछदोके शिखरदेवाके (मुक्त देनेवाके) जङ्गम श्रीराम-
चन्द्रकीये ॥ २ ॥

सुनि सुनि सौच निज सब छोड़ । सन्तुं खीसस सब बह छोड़ ॥

देव प्रथम कुम्भपुर जाति देखी । निरिधि विदेह खनेह भित्ति ॥ ३ ॥

यह समाचार सुनकर सब जेव छोड़के व्याकुल हो गये; जैसे नये (पहले वक्कि) बल्ले संयोगते मज्झिमी व्याकुल होती है । देवताजोंने पहले कुम्भपुर बसिहारीकी [प्रेरणित] द्वारा देखी कि विदेहकी कियो खेहको देखा; ॥ ३ ॥

राम भगतिमय भगु विहरि । कुल त्याग्यो हरि दिव्य हारे ॥

सब छोड़ राम प्रेममय पेश । नय ज्येष्ठ सौच सब छेला ॥ ४ ॥

और सब श्रीराममणिके जोतजोत भरतीकी देखा । इन सबको देखकर तांची देखा बकाकर इदको हर मन गये (निराश हो गये) । उन्होंने सब स्त्रीको श्रीरामप्रेममें सरजोर देखा । इन्हें देखा इनने छोड़के जा हो गये कि जिसका कोई विलास नहीं ॥ ४ ॥

दो०—रामु खनेह संकोच सब कह ससोच सुररासु ।

रचतु प्रपंचदि पंच मिलि नहि त भयन बकासु ॥ २९४ ॥

हेराज इत जोचमें भरकर करने लगे कि श्रीरामचन्द्रजी तो खेह और संकोचके चरणों हैं । इन्होंने सब जेव मिळकर कुल प्रपञ्च (भय) रचो; नहीं तो काम विपदा [ही समझो] ॥ २९४ ॥

जो०—सुन्दर सुमिति कहरा कहाँ । देखि देव सरसज्जा पाही ॥

केरि नल बलि बरि निज मल । पाहु विदुष कुम्भपुरि छल छाव ॥ १ ॥

देवताजोंने राजकीय समज कर उनकी समझ (सुनि) की और कहा—देहि । देखा जानके सरसज्जा है, उनकी रखा कीजिये । जैसी जस रचकर भरतीकी बुझिको फेर दीजिये । और इसकी जस कर देवताजोंके कुलका फलन (रस) कीजिये ॥ १ ॥

विदुष निज सुनि देखि समझी । जेकी नुर सारन बह पाही ॥

सो ज्ञान कहु ज्ञान नहि केर । कोकर सखत व सुख सुनेर ॥ २ ॥

देवताजोंकी विन्ती सुनकर और देवताजोंको साथके वाह होमेते पूर्ण-जनक बुझिगती भरतीकी जेकी—मुझसे कह खे हो कि भरतीकी यति ज्ञान दो । इसार नैजि भी तुमको छुमेर नहीं छल पवता ॥ २ ॥

विधि हरि हर साध बधि यही । सौठ व भंसत बसि सखद विहारी ॥

जो भीत खेदि कहुत बंध मोरी । बसिधि कन कि चंकर पोरी ॥ ३ ॥

प्रधान निधु और मोदकी यथा बड़ी प्रकट है । किन्तु यह भी भरतीकी बुझिकी और ताउ नहीं खती । उत बुझिके हुम मुझसे कह खे हो कि, मोली कर दो (मुझेसेम हल दो) । बरे । चंदनी कहीं प्रकट निरकाले खेको पुरा सखती है ॥ ३ ॥

यस इदमें जिय राम निजसु । जेहि विधिरि बरि लखि प्रसासु ॥

भस बरि सखर बह भित्ति जेव । विदुष निरुधिसि नामु खेका ॥ ४ ॥

भरतीकी इदमें श्रीरामराजकीय निजस है । जहाँ दूतमें यथा है, जहाँ जहाँ भेजिए रह सखता है । ऐसा बकर राजकीकी ज्यज्येष्ठको जेकी यही । देवता देते म्याकुल हुए जैसे रात्रिमें जलन म्याकुल होता है ॥ ४ ॥

दो०—सुर स्वार्थी मलीन मन कीन्ह कुमंत्र कुठाटु ।

रचि प्रपंच माया प्रबल भय भ्रम भरति उचाटु ॥ २९५ ॥

मलिन मनवाले स्वार्थी देवताओंने सुरी उत्पन्न करके ॥१॥ ठाट (घड़यन्त्र) रचा । प्रबल माया-जाट रचकर भय, भ्रम, भ्रमोति और उच्चाटन फैल दिया ॥ २९५ ॥

चौ०—करि कुचलि सौंफा सुराष्ट्र । भक्त हाथ सहु काल भवन् ॥

गद मनहु खुनाय समीरा । सनमाने सब रविकुल दीपा ॥ १ ॥

कुचल करके देवराज इन्द्र खोचने लगे कि भ्रमका बनना-विगड़ना सब भरतजीके हाथ है । इधर राजा जनकजी [मुनि वशिष्ठ आदिके साथ] श्रीरघुनाथजीके पाठ भये । सर्वकुलके दीपक भीरामचन्द्रजीने सफा सम्मान किया ॥ १ ॥

समय समाज भरत अधिरोषा । बोले सब खुमंस पुरोषा ॥

जनक भरत संवाद सुनाई । भक्त कहावति कही सुनाई ॥ ५ ॥

सब खुकुलके पुरोहित वशिष्ठजी समय, समाज और कर्मके अधिरोषी (अपात भनुकूल) बचन बोले । उन्होंने पहले जनकजी और भरतजीसे संवाद सुनाया । फिर भरतजीकी कही हुई सुन्दर बातें कह सुनायीं ॥ २ ॥

सात राम जस आयसु वेहू । सो सहु करि मोर मत पहु ॥

मुनि रघुनाथ मोरि तुम पावो । बोले सब सात सुदु बाणी ॥ १ ॥

[फिर बोले—] हे सात राम ! मेरा मत तो यह है कि तुम नैराशा हो, वैसी ही सप करे । यह सुनकर दोनों हाथ जोड़कर श्रीरघुनाथजी उत्पन्न, सल और कोमल वाणी बोले—॥ १ ॥

विद्यमान भगुनि मिथिकेसु । मोर कह्य सब मौंसि भदेसु ॥

रावर राय स्वायसु होई । उदरि सख्य सही सिर सोई ॥ ४ ॥

आपके और मिथिलेकर जनकजीके विद्यमान रहते मेरा कुछ कहना उप प्रस्ताव नही (अनुचित) है । आपकी और गहराजकी जो आज्ञा होगी, मैं आपकी आज्ञा करके कहता हूँ यह सब ही आपको सिरोधार्य होगी ॥ ४ ॥

दो०—राम सख्य मुनि मुनि जबहु सकुषे समा समेत ।

सकल विलोकत भरत मुमुक्षु वनद न ऊतद देत ॥ २९६ ॥

भीरामचन्द्रजीकी शपथ सुनकर समप्रसन्न मुनि और जनकजी सकुचा गये (सम्मिश्र रा गये) । किलोते उत्तर देते नही कतल, सब काम भरतजीसे पूँछ आकर रहे हैं ॥ २९६ ॥

चौ०—समा सकुष कस भरत विहारी । राम बंधु परिं प्रीतु भारी ॥

कुसमद देखि सनेहु सँभास । पण्ड विधि विधि वदत निवार ॥ १ ॥

भरतजीने समाको संकोचके क्या देखा । रामकंधु (सखी) ने बड़ा भारी प्रीति करकर और कुसम देखकर अपने [उमड़ते हुए] प्रेमका संभास, जैसे बढ़ते हुए विन्म्याचलको अगस्त्यजीने रोका था ॥ १ ॥

सोक जनककोचन भति छोनी । हरी विमल गुन कन जगजोनी ॥

भरत बिषेक बराई विमल । जनकसत हवरी 'देहि' काका ॥ ३ ॥

शोकपूर्ण हिरण्याग्ने [सारी सपाकी] बुद्धिरूपी प्रण्वीको हर दिया जो विमल गुण-समूहकी आत्माकी योनि (उत्पन्न करनेवाली) थी । भरतजीके विनेकहनी विशाल नगह ('करोहरूपधारी भगवान्') ने [शोकपूर्ण हिरण्याग्ने को नष्ट कर] मिना ही परिश्रम उत्तमा उद्धार कर दिया ॥ २ ॥

करि प्रणामु सब कहैं कर मोरि । समु राउ गुर साधु निहोरे ॥ १ ॥

समय आहु धरि अनुचित मोर । कहैं नवन सधु वचन कठोरा ॥ २ ॥

भारतवीने प्रणाम करके उनके प्रति हाथ जोड़े, तथा श्रीरामचन्द्रजी, राम जनक जी, गुरु वशिष्ठजी और सधु सरा समझे निनारी की और कहा—आज मेरे इस अनुचित अनुचित वर्तनको क्षमा करियेगा । मैं क्रोध (छोटे) मुखसे कठोर (बृहत्पूर्ण) वचन कह रहा हूँ ॥ १ ॥

हिणें सुमिरी सारदा सुहाई । जामस तें मुख पंकज जाई ॥

विमल बिजेक प्रथम चव सखी । सरत मास्ती मंडु मण्डी ॥ ३ ॥

फिर उन्होंने हृदयमें सुहावनी सरस्वतीजीका स्मरण किया । वे मानसते (उनके मनहारी मानसरोवरके) उनके मुखपरिन्दपर आ विरजी । निर्मल बिजेक, धर्म और नीतिसे युक्त भारतसीकी वाणी सुन्दर इंसिनी [के समान गुण-दोषका विवेचन करनेवाली] है ॥ ४ ॥

दो०—निजि बिजेक पिछोचमनिहि सिंचिउ समोई समाधु ।

करि प्रणामु बोले भरतु सुमिरि सीव रघुराजु ॥ २९७ ॥

विवेकके नैबोले सारे समजको प्रेमसे विचित्र देख, सबको प्रणामकर, श्रीसीताजी और श्रीरामनाथजीका स्मरण करते भारतजी बोले—॥ २९७ ॥

बौ०—प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी । पूज्य परम हित अंतरवामी ॥

सरल सुसाहिबु सीक विधान् । प्रवतपाठ सबन्ध सुकातु ॥ १ ॥

हे प्रभु ! आप पिता, माता, सुहृद (मित्र), गुरु, साथी, पूज्य, परम हितैषी और भक्तवर्मा हैं । सरलपुत्र, मेरा भाविक, सीकके मन्थार, करपाठकी रक्षा करनेवाले, सर्वज्ञ, सुमान, ॥ १ ॥

समरथ समाम्पत दिखकारी । गुदगहड़ु अथकुन कब हाती ॥

स्वामि गोसाईंदि सनित गोसाईं । मोहि समाच सै साईं दोहाई ॥ २ ॥

समर्थ, क्षमतायुक्त हित करनेवाले, गुणोंका आदर करनेवाले और स्वगुणोंका प्राप्तिको करनेवाले हैं । हे गोसाईं ! आप-सीसे स्वामी आप ही हैं और स्वामिके, आप श्रोत करनेमें मेरे समान मैं ही हूँ ॥ २ ॥

प्रभु पितु वचन मोह कल देखी । अमर्ष इहाँ समाधु सखी ॥

सां मल पोष ठैल मल सीन् । अमिष अमरप मातुद सीन् ॥ ३ ॥

मैं मोहवश प्रभु (आप) के और मित्रजीके वचनोंका उत्तरान कर और, तमन बहोरकर, वहाँ आया हूँ । अमर्षमें भले-भूले, सँचि और नीचे, अमृत और अमरपद (देवताओंका पद), मित्र और भूलु गारि—॥ ३ ॥

सम रजद मेत मन मण्डी । देवा सुधा कर्तुं खेद जाई ॥

सो मैं सब बिचि कीन्दि दिगई । प्रभु अपनी स्नेह सेवकाई ॥ ४ ॥

विचिकी मैं कहीं ऐसा नहीं देखा-मुना जो मनमें श्री श्रीरामचन्द्रजी (आप) की आकांक्षी मेत दे । मैंने सब प्रकारसे नहीं दिगई थी, परन्तु प्रभुने उस दिगईको स्नेह और सेवा मान लिया ॥ ४ ॥

दो०—ऊर्पां गरुडई अथनी नाथ कीन्दि मल मोर ॥

धूपन मे भूषन सरित सुजसु चारु चहु मोर ॥ २९८ ॥

हे नाथ ! आपने अपनी ऊँचा और अजहरी मेरा मल किया, जिससे मेरे भूषण (दोष) भी भूषण (गुण) के समान हो गये और चारों ओर मेरा सुन्दर वन छा गया ॥ २९८ ॥

चौ०—रादरि रीति सुखनि बढाई । सगत चिदित निगसागत गढ़ाई ॥

१० कूर कुटिल सल कुमति कलंकरी । नीच निसील विरीस निर्मलकी ॥ १ ॥

हे नाथ ! आपकी रीति और सुन्दर लगानकी बड़ाई अवतरो प्रसिद्ध है, और वेद शास्त्रोंने गायी है । जो कूर, कुटिल, दुष्ट, कुलुहि, कलंकरी, नीच, शोषरहित, निर्गन्धरशरी (नक्षिक) और निष्काहु (निर) हैं ॥ १ ॥

तेज सुनि सरन समुहें आए । सङ्गत प्रबन्ध किहें अपनाए ॥

१० देखि दोष कन्हू न कर जाने । सुधि सुख साधु सम्मज बसाने ॥ २ ॥

उन्हें भी आपने शरणमें सम्मुख आया सुनकर एक बार प्रणाम करनेपर ही अपना लिया । उन (शरणगतों) के दोषोंको देखकर भी आप कभी दुःखमें नहीं आये और उनके गुणोंको सुनकर साधुओंके समझमें उनका बसान किया ॥ २ ॥

जो सादृष्ट सेवकहि मेलाजी । आपु समाध छात्र सब साधी ॥

१० निज करतुति व समुद्धिम साधों । सेवक सङ्घ सोधु दर अपनों ॥ ३ ॥

ऐसा सेवककर कृपा करनेवाला स्वामी कौन है जो आप ही सेवकका चारा सान-नामान सज दे (उनकी खारी आवश्यकताओंको पूर्ण कर दे) और स्वयंमें भी अपनी कोई कमी न समझकर (भयान में सेवकके लिये कुछ किया है ऐसा न जानकर) उल्टा सेवकको संकोच होगा, इसका सोच अपने दुःखमें रखे ॥ ३ ॥

सो गोसाईं बहि ब्रह्म कोरी । गुण बढाई कहैं एक रोपी ॥

पद्म नाथन तुल फल प्रवीण । गुण गति बट पल्लव लाधीना ॥ ४ ॥

मैं गुहा उठाकर और प्रण रोपकर (बड़े ओरके लव) कहाँ हूँ, ऐसा स्वामी आपके लिये ब्रह्मा कोई नहीं है । [बंदर आदि] पद्म नाथने और गोते [लीके हुए] पाठमें प्रवीण हो जाते हैं । परन्तु गोतेका [पाठप्रवीणताका] गुण और पद्मके नाथने-की गति [ज्ञानवा] पद्मनेवाले और नवानेवालेके अर्थन है ॥ ४ ॥

दी०—यों सुपारि सममानि जन किए खाधु सिरमोर ।

जो कृपाक विनु पाठिहै विविधाधरि बरजोर ॥ १११ ॥

१० इस प्रकार अपने सेवकोंकी [निगदी] रात सुपारकर और सम्मान देकर आपने उन्हें खाधुओका शिरोमणि बना दिया । कृपाका (आप) के विना अपनी किरायाकीका और कौन अवदसी (इष्टपूर्वक) पकान करेगा ॥ १११ ॥

चौ०—सौक सगैँ कि पाक सुमझै । कबहँ कन्हू रजपसु बाधै ॥

सबहुँ कुमाल हेरि मित्र जोल । सखि सँधि सक सखैव सोल ॥ १ ॥

१० मैं जोकसे या स्नेहते या नानकसम्प्रदाये आज्ञाको बाधे लकर (न मानकर) पल्लव बाधा; सो भी कृपाका स्वामी (आप) ने अपनी और सेवककर सभी प्रकारसे मेरा भक्षण ही माना (मेरे लिये अनुचित कार्यको अच्छा ही समझा) ॥ १ ॥

देखैँ पाम सुमंगल नृप । जनेँँ स्वामी सदाच अनुकूल ॥

बड़े समाज चिन्तेनेँँ मागू । कबो भूक साहिब मरुमार ॥ २ ॥

मैंने सुन्दर मन्त्रलोके मूक आपके जगन्नाथ दर्शन किया, और वह जान लिया कि स्वामी सुन्दर समाजसे ही अनुकूल हैं । इस बड़े समाजमें अपने माय्यको देखा कि स्वामी वही नृप होनेपर भी स्वामीका सुन्दर किता अनुकूल है ॥ २ ॥

१० कृपा अनुकूल ॥॥ कदाई । कीन्हि कुलनिधि सय बधिबढ़ाई ॥

१० राख और दुखर कोसाई । कबो सोल सुमन्य अगई ॥ ३ ॥

कृपानिधानने मुहापर साहोपाह भरणे-कृप और अमुग्रह, सब अधिक ही किये हैं (अर्थात् मैं जिसके कर भी व्यर्थ नहीं या उसनी अधिक सर्वोत्तम कृपा अपने मुहापर की है) । हे गोसाईं ! अपने अपने शील, स्वभाव और मन्दाईसे मेरा दुःखार रक्षा ॥ ३ ॥

साय विपद मैं कीन्हि बिछाई । स्वामि समाज सकोध बिहाई ॥

अर्थवत्थ विपद बचावधि बाणी । छसिहि देउ कति आरति नानी ॥ ३ ॥

हे नाथ ! मैंने स्वामी और समाजके सकोचको छोड़कर अविनय या विनयमयी कैसी रचि हुई देवी ही बाणी कहकर सर्वथा बिछाई की है । हे देव ! मेरे आर्तभाव (आतुरता) को जानकर आप क्षमा करने ॥ ४ ॥

श्री०—सुदृढ़ सुभाव सुस्मरिषहि बहुत कह्य कहि खोरि ।

आयसु देख्य देख्य अब सनह सुधारी मोरि ॥ ३०० ॥

सुदृढ़ (विना ही हेतुके हित करनेवाले), सुदिगन् और मोड़ नाटिकसे बहुत करना बड़ा क्लेश है । इसलिये हे देव ! अब मुझे आज्ञा दीजिये ; अपने मेरी कमी रात सुधार दी ॥ ३०० ॥

श्री०—प्रभु पर प्रभु परमा होहाई । सब सुकृत सुख सीवें सुहाई ॥

सो करि कह्यै दिष्ट करने की । कधि जाग्य सोयल सपने की ॥ ३०१ ॥

प्रभु (आप) के चरणकमलोंकी रक्ष, जो कल्प, सुकृत (पुण्य) और सुखकी सुहावनी घीसा (अर्थात्) है, उसकी दुहाई करके मैं अपने सुदृढ़की जागते, सोते और सपनें भी वनी रहनेवाली रचि (रचना) करता हूँ ॥ ३०१ ॥

कह्य सनेहें स्वामि सेवकाई । सारय सक कळ गारि बिदाई ॥

अप्य कम न सुभाविष सेवा । सो प्रसाहु अब पावै देवा ॥ ३०२ ॥

कह रचि है—कदा स्वयं और [अर्थ-अर्थ-अर्थ-मोक्षक] चारी कर्मोंको छोड़कर सामाजिक प्रेमसे स्वामीकी सेवा करना । और आज्ञापालनके समान भेद स्वामीकी और कोई सेवा नहीं है । हे देव ! अब वही आज्ञाकम प्रसाद सेवकको मिल जाय ॥ ३०२ ॥

अत कहि प्रेम विवस नए भारी । पुच्छ सकीर विवोचन चारी ॥

प्रभु पर कमल गहै अमुकह । समर सनेहु न सो कहि कारी ॥ ३०३ ॥

भरतकी ऐश कहकर प्रेमके बहुत ही विषय हो गये । कदर पुच्छित हो उठा, नेमीमें [प्रेमाशुभौका] जल भर आया । अमुककर (अमुक होकर) उन्होंने प्रभु और भवन्त्रजीके चरणकमल पकड़ लिये ; उध कमलको और सेहको कहा नहीं जा सकता ॥ ३०३ ॥

रुपासिहु सममानि सुवाची । बैराग समीप कहि वाली ॥

सख विनय मुनि देसि सुगच्छ । सिखि सनेहें समर रघुराज ॥ ३०४ ॥

रुपासिन्धु श्रीमभक्तजीने सुन्दर बाणीसे भरतजीका सम्मान करके हाथ पकड़कर उनको अपने पास बिठा लिया । भरतजीकी निनरी सुनकर और उनका समाज देखका चरी समा और भीरुनायकी सेहसे विचित्र हो गये ॥ ३०४ ॥

श्री०—रघुराज सिखि सनेहें साधु समाज मुनि मिथिला धनी ।

मन महुँ सपह्य भरत भावप अगति की महिमा धनी ॥

भरतहि प्रसंसत विबुध वरषत सुमन मानस मलिन से ।

सुलसी बिच्छ सब लोग मुनि सङ्गसे निराश्रम नलिन से ॥

श्रीभुनयवी, सधुयोंका सम्मन, मुनि सङ्गकी और मिथिलापति जनकजी सेहसे विचित्र हो गये । सब मन-ही-मन भरतजीके मार्दन और उनकी महिमी अतिशय

सहिमाजी, पुराने लगे । देखा मछिन-से मगधे भलजीकी प्रशंसा करते हुए उनपर पूछ बरसाने लगे । तुलसीदासजी कहती हैं—सब लोग मछलीभ मगध मुनकर व्याकुल हो गये, और ऐसे लज्जा का बने जैसे राजाके धानमगधे कमल ।

बो०—देखि दुखारी धीन दुष्ट समाज नर चरि सख ।

। मघवा मछ मछीन मुए गारि मंगल चाहत ॥ ३०१ ॥

दोनों समाजोंके सभी नर-नारिणोंकी धीन और दुष्टी देखकर भयमछिन-मन इन्द्र मरे हुओंको मारकर अपना मज्जुल चाहता है ॥ ३०१ ॥

बो०—कष्ट कुचालि सौँ सुखार । पर कलस धिय मारन काय ॥

काय समाज, पाकनिधु रौटी । कभी मछीन कहतुं न प्रतीति ॥ १ ॥

देवराज इन्द्र कष्ट और कुचालकी शीमा है । उसे अपनी हानि और अपना लाभ ही मिय है । इन्द्रकी रीति कोएके समान है । पर कभी और मछिन-मन है, वरका कभी किसीपर विभक्त नहीं है ॥ १ ॥

प्रथम कुलत करि कष्ट सेवेज । सो उषट्ट सब के सिर मेला ॥

। सुरमापी सब जेव विमोहे । राम प्रेम बलिखन न चिछोहे ॥ २ ॥

पहले तो कुलत (सुर निघार) करके कष्टको बटोरा (अनेक प्रकारके कष्टका नाम लगा) । फिर वह (कष्टबलित) उषाट सबके सिरपर डाल दिया । फिर देवमातासे सब लोगोंको विमोहमगधे मोहित कर दिया । किन्तु श्रीरामचन्द्रजीके प्रेमसे उनका अग्रान्त विमोह नहीं हुआ (क्योंकि उनका श्रीरामजीके प्रति प्रेम तो बना ही रहा) ॥ २ ॥

अब उषाट सब मग मिर बाही । उनक बलिखन सबसोहाही ॥

हुबिह ममोपति प्रजा दुखारी । सति सिधु रसम जनु बाही ॥ ३ ॥

मग और उषाटके सब निखील मग सिर बाही है । कभीसे उनकी कसमे रहनेकी इच्छा होती है और कभीसे उन्हें पर अपने काने बताते हैं । मगकी इस मगधरकी बुविधामयी भित्तिये प्रजा दुखी हो रही है । मनो नहीं और समुद्रके लक्ष्मणा मग कुपय हो रहा हो । (वैसे मग और समुद्रके लक्ष्मणा एक सिर नहीं रस्ता, कभी दूर भाला और कभी उपर जाता है, उसी मगधरकी दशा प्रजाके मनकी हो गयी) ॥ ३ ॥

हुबिह कष्टुं बलिखु न कहही । एक एक सा मगधु न काही ॥

कवि हिमं हिंसि कह सुगमिबान् । सति स्वाम जयमान सुबान् ॥ ४ ॥

विष बोटारफा हो जेजेमे ने कही सन्तोष नहीं पाते और एक दूसरेसे अपना मर्म भी नहीं कहते । सुगमिबान् श्रीरामचन्द्रजी कह दश देवधर हृदयों में लकर कहने लगे—कुछा; इन्द्र और नययुक्त (कभी पुत्र) एक तरीसे (एक ही स्वभावके) हैं । [पाणिनीय व्याकरणके अनुसार मन्, मुक्त् और मयन् शब्दोंके समी एक तरीसे होते हैं] ॥ ४ ॥

बो०—अरतु जम्कु मुनिज्ज सचिव साधु सकेत विहार ।

सावि देवमाया समहि ज्ञायाओनु जनु वाह ॥ ३०२ ॥

मछली, जम्कली, मुनिज्ज मन्त्री और ज्ञानी साधु संतोको जोड़कर भाव उचीकर निक मनुजोंको दित बोध (विष प्रवृत्ति और विष विनिध) प्रका उतरने से ही देवमाया लग गयी ॥ ३०२ ॥

बो०—सुगमिधु कति जेव दुखारे । निह सकेहें सुखति उक करे ॥

। सम कव हुर बलिखु रौटी । मग मयति सब से भति नवी ॥ १ ॥

अपवित्र श्रीरामचन्द्रजीने लोगोंको अपने स्नेह और दयारूप हृदयके भारी छत्रसे ढुकी देखा । तथा राज-जनक, सुग, ज्ञानदा और मन्त्री आदि लोगोंकी बुद्धिको भरतजीकी यत्निके नीचे दिया ॥ १ ॥

रामहि स्थित्यत चित्र दिखे से । सकुचत बोझत नयन सिते से ॥

भक्त प्रीति नति विनय कहाई । सुखत सुखत बरनत कठिनाई ॥ २ ॥

यव श्रेय निश्चितसे-से श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देख रहे हैं । सकुचाते हुए सिसाये हुए-से बदन मोछते हैं । भरतजीकी प्रीति, नम्रता, विनय और कहाई सुननेमें छुल देनेवाली है, पर उसके वर्णन करनेमें कठिनाई है ॥ २ ॥

बाहु विभोधि भरतत कनेसेम् । प्रेम सगत सुभिन्न मिथिले ॥

महिमा वामु कहै किमि तुजवी । यगधिभुवानें सुगति दिवें हुकसी ॥ ३ ॥

तिलकी भक्तिप्र उत्तमेश देखकर सुनिमग और मिथिलेकर जनकजी प्रेममें नम हो गये । उन भरतजीकी महिमा तुलसीदास कैसे करे ! उनकी भक्ति और सुन्दर भावसे [कथिके] हृदयमें तुझहि हुम्न रही दे (विकसित हो रही है) ॥ ३ ॥

जागु होदि महिमा बदि बावी । कबिकुल कावि मनि सङ्गवावी ॥

कोहि न सकथि गुन कवि भविष्यई । मति कसे बल बचन की नाई ॥ ४ ॥

परम बड़ बुद्धि अपनेको छोटी और भरतजीकी महिमाको बड़ी जानकर कविपरम्पराकी सर्वाधिको मानकर सकुचा गयी (उसका वर्णन करनेका साहस नहीं कर सकी) । उसकी गुणोंमें कवि से बहुत है ; पर उन्हें कह नहीं सकती । बुद्धिकी गति कलकले बचनोंकी तरह हो गयी (वह कुण्ठित हो गयी) ॥ ४ ॥

रो—भरत विमल कमल विमल विषु सुगति चकोरकुमारि ।

उदित विमल जन हृदय-रम ऐक्यरूप रही निहारि ॥ ३०३ ॥

भरतजीका निर्मल वश निर्मल चन्द्रमा है और कविकी सुदृष्टि चकोरी है, जो भोलीके हृदयकमी निर्मल भावधाममें उठ चन्द्रमाको उदित देखकर उसकी ओर ऐक्यकी आगवे देखती ही रह गयी है [तब उत्तर वर्णन क्यों करे ?] ॥ ३०३ ॥

नौ—भरत सुखद न सुखम निमगहूँ । कमल सति चरितका कवि कहूँ ॥

कहत सुखत सति भक्त मस्त को । सीध राम पर छोड़ूँ न रात को ॥ १ ॥

भरतजीके स्वभावका वर्णन कहेके लिये भी सुख नहीं है । [भरतः] मेरी तुच्छ बुद्धिकी चक्षुताको कवि लोग धन्य करें । भरतजीके चरित्रको कहते-सुनते कौन मनुष्य श्रीगीतारामजीके चरणोंमें अनुरक्त न हो सकता ॥ १ ॥

सुमिरत-भरतहि हेतु राम को । जेहि न सुकमुतेदि सरिस धाम को ॥

रेखि दण्ड बल सखी की । राम भुजब जनि बल जी की ॥ २ ॥

भरतजीका स्मरण करनेसे तिलकी श्रीरामजीका प्रेम सुख न हुआ ; उसके समान धाम (जगन्नाथ) और जैन लोग ! दण्ड और भुजब श्रीरामजीने समीची दण्ड देखकर और मरु (भरतजी) के हृदयकी स्थिति जानकर ॥ २ ॥

धरम धृतिन और नम यागर । सल सनेह सीक सुख सगल ॥

देखु कालु लखि समत समस्त । सीति प्रीति पावक पुराण ॥ १ ॥

धर्मधुरन्धर, धीर, नीलिते चरु, सत्य, स्नेह, सीत और सुखके समुद्र ; नीति और प्रीतिके फलन करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी देख, कर्म, मन्त्र और समावद्ध देखकर ॥ १ ॥

बोले यवन गानि सखसु से । हित परिग्रह सुबत सखि रसु से ॥

सात भक्त तुम्ह धर्म प्रवीण । लोक कैद विद प्रेम प्रवीण ॥ ४ ॥

[तदनुसार] ऐसे वचन बोले जो मानो बाणीके सर्वत्र ही थे, परिणामसे रित्तारी थे और सुननेसे चन्द्रमाके रस (अमृत) मरीचे थे । [उन्होंने कहा—] हे सात भक्त ! तुम धर्मकी धुरीमें धारण करनेवाले हो, लोक और कैद दोनोंके जाननेवाले और प्रेमे प्रवीण हो ॥ ४ ॥

दो०—करम यवन मानस विग्रह तुम्ह समान तुम्ह जात ।

गुरु समाज लक्षु बंधु गुन कुसमर्थ किमि कहि जात ॥ ३०५ ॥

हे सात ! करम, वचनके और करने निर्मल तुम्हारे समान तुम्हों ही । गुरुजनके समानसे और ऐसे कुसमर्थसे छोटे भाईके गुण किंतु क्या बड़े का सकते हैं ! ॥ ३०५ ॥

चौ०—आमहु तात तरनि कृष्ण रीती । सत्यसंध पिदु कीर्ति प्रीती ॥

समस्त समाज काज सुखन की । उदासीन हित अनहित मन की ॥ १ ॥

हे सात ! हम सर्वलोककी रीतिसे, सत्यप्रतिष्ठा विद्याजीकी नीति और प्रीतिसे, समय, ममान और गुणजनोंकी लज्जा (कर्वाय) को तथा उदासीन, मित्र और शत्रु भेदके मनकी सातको जानते हो ॥ १ ॥

दुष्टहि विदित सबही कर करम् । अन्ध और बस हित बरम् ॥

सीहि सच नीति भरोस सुखस । तपि कहीं अन्धर अनुसार ॥ २ ॥

तुमने सबके कर्मों (कर्माणो) का और अपने तथा मेरे परम हितकारी धर्मका पता है । यद्यपि सुते तुम्हारा सब प्रकाशसे भरोसा है, तथापि मैं सबके अनुसार कुछ करता हूँ ॥ २ ॥

तात तात बिदु पात हजारी । कैक सुखस कहीं सँभारी ॥

भरत मजा परिक्रम पत्रिक । हमहि सहित रखु होत सुचार ॥ ३ ॥

हे सात ! विद्याजीके भिन्न (समग्र अनुपलक्षित) हजारी भात कैक सुखसकी कृपाने ही सम्पन्न रहती है, नहीं तो हमारे समस्त मज्जा, कुटुम्ब, परिवार सभी बर्बाद हो जाते ॥ ३ ॥

औ बिदु भवत अहाँ दिनेम् । कम केहि कहहु न होइ फलेम् ॥

तब उपपातु तात विधि कनिहा । मुनि भिक्षुकेसरसिख सुखीनिहा ॥ ४ ॥

यदि पिता सम्यके (सम्पाते पूर्व ही) पूर्व अज्ञ हो अप, 'तो फल अज्ञानसे पित्तके श्लेश न होगा ! हे सात ! उसी प्रकारसे उत्पन्न भिक्षुतासे वह (पिताकी अद्यात्मिकमृत्यु) किय है । पर मुनि म्हात्मानने तथा भिक्षुकेसरने सबको पचा लिया ॥ ४ ॥

दो०—राज काज सब लज फति घरम घरनि वन घाम ।

गुरु प्रमाद पालिहि समहि अन्ध होरहि परिजाम ॥ ३०५ ॥

राज्यका सब कार्य, अन्न, प्रतिष्ठा, धर्म, पुण्य, धन, पर—इत मनीषा पालन (रक्षण) गुरुजीका प्रमाद (असमर्थ) कोणा और परिणाम भ्रम होय ॥ ३०५ ॥

चौ०—सहित समाज तुम्हारे हस्तगत घर वन गुरु प्रमाद सबबाध ॥

मातृ पिता गुरु समानि निवेस । सकल प्रसन्न धनवीधर सेम् ॥ १ ॥

गुरुजीका प्रमाद (अनुग्रह) ही फल और कर्म समानतद्विह तुम्हारा और हमारा रक्षक है । माता, पिता, गुरु और लाभकी अन्ध [का प्रसन्न] समस्त धर्मरूपी पृथ्वीको चरण करनेमें श्रेष्ठकी समान है ॥ १ ॥

सो दुग्ध कहु कहु कहु सोह । तात लखिहु पावक होह ॥

सखक एक सखक सिधि देवी । खीरति सुखसि सुखिम देवी ॥ २ ॥

हे तात ! दुग्ध खीर करो और सुखसे भी करो तो तथा सर्वदुःखके रक्षक बने ।
पावकके लिये यह एक ही (आजमाऊलखी साधना) सम्पूर्ण सिद्धिवाँकी देनेवाली,
कीर्तिमयी, सहस्रमयी और ऐश्वर्यमयी विशेषी है ॥ २ ॥

सो विचारि सदि संकट गरी । कहु प्रजा परिवार सुखारी ॥

बौटी विपति खरिह सोहि माई । दुग्धहि खरिह नरि कदि कठिनार्थ ॥ ३ ॥

हमे विचारकर भारी संकट खड़ा भी प्रजा और परिवारको सुखी करो । हे
माँ ! मेरी विपति समीपे बौटी ही है परन्तु तुमको छे अन्धवि (बोद्धव्य) तब
वही पठिनार्थ है (उम्मे अधिक दुःख है) ॥ ३ ॥

जाति दुग्धहि खु कहुँ कहेस । कुलमर्षे सख ब अनुचित मोस ॥

होहि कुलमर्षे सुखे सदा । ओहिबोहि हाथ कठिनहु केनाप ॥ ४ ॥

तुमको कुलमर्षे खानकर भी मैं खोर (विशेषकी बात) कह रहा हूँ । हे तात !
जो सपने में लिये वह कोई अनुचित बात नहीं है । कुटोर (कुलमर्षक) मैं और
माँ ही खड़ावक होते हैं । कलके अन्धत्व भी हाथसे ही रोके जाते हैं ॥ ४ ॥

रो—सैकक कर पर नयन से मुख सो खरिहु सोह ।

हुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुखवि सराहि सोह ॥ ५०६ ॥

केक-राय, रै और देखके समान और स्वामी मुखके समान होना चाहिये ।
हुलसीपयी कहते हैं कि केक स्वामीकी ऐसी प्रीतिकी रीति सुनकर सुखसे उदकी
काहना करते हैं ॥ ५०६ ॥

बौ—समा सखक सुनि राखर गरी । देस बौधि बसिबै बसु गरी ॥

विधिबै समान सख समीह समीही । देसि दसा सुख सखर गरी ॥ ॥

भीखुनापनीकी कलौ सुनकर, जो यन्त्रे प्रेमकी समुद्रके [संयन्त्रे निकले
हुए] कन्दर्प की हुई थी, सारा समान विधिबै हो गया। उसके प्रेमसमाधि जा
गयी । यह रक्षा देसकर कलकलीने सुख प्राप्त की ॥ १ ॥

अलहि भयत बस खरिहु । सखसुख खरिहिसुख दुख सोह ॥

सुख प्रसन्न मन मित्रा विनाद । था बसु गौहि मित्रा मसल ॥ २ ॥

मरतीकी फल कलौ दुःख । समीके समुद्र (अनुकूल) होते ही उनके
दुःख और रोनेने मुँह मोड़ लिया (मैं उन्हें खड़ाकर मान गये) । उनका मुख प्रसन्न
हो गया और मनम विनाद गिर गया । यन्त्रे गौहर कलकलीकी बुझ हो गयी ॥ २ ॥

खीर सखक प्रमसु खरी । खेले पनि रंजक खरी ॥

नय नयन सुख सख बसु को । खेलेबसु भग बसु बसु को ॥ ३ ॥

उन्होंने फिर प्रेमपूर्ण प्रमसु मित्र और करकलौको खड़ाकर वे खेले—दे
नाय । मुझे आपके सख अनेक दुःख ज्ञात हो गया और मैंने कलकलीके वन केनेका
नम भी पा लिया ॥ ३ ॥

नय नयन सख बसु खरी । खीर खीर खरि सखर खरी ॥

सो अन्धवि देस खरिह बोई । खरिह पन खरी खरिह सेई ॥ ४ ॥

हे दुग्ध ! वन भीही अन्ध है, लखीको मैं फिर फलकर आह्वानक हल ।

परन्तु देव ! आप सुने वह अवलम्बन (कोई उधार) दें निजकी सेवा कर मैं अवशिका
पार पा जाऊँ (अवधिको किरा दूँ) ॥ ४ ॥

दो०—देव देव अभियेक हित धुर अनुससनु पाइ ।

धानेई सब तीरथ सखिलु तेहि कहैं काह रजाइ ॥ ३०७ ॥

हे देव ! स्वामी (आप) के अभियेकके लिये मुझकी आला पाकर मैं सब
तीर्थोंका लाल जेता आया हूँ । उसके लिये नवा धान्न होती है ! ॥ ३०७ ॥

चौ०—एक मनोरथु बड़ मय सखी । समर्थ सखेच अत कहि नाही ॥

कहहु तात प्रभु अवलु पाई । कोरे कवि खेद सुहाई ॥ १ ॥

मेरे मनमें एक और बड़ा मनोरथ है, जो मय और सखेचके कारण कहा नहीं
जाता । [श्रीरामचन्द्रजीने कहा—] हे भाई ! कबो । तब प्रभुकी आज्ञा पाकर भरतजी
सौहृपूर्ण सुन्दर वाणी बोले— ॥ १ ॥

चित्रकूट मुनि बक तीरथ बच । कम कल सर सरि निर्भर निरिगल ॥

प्रभु पद भक्ति भवति पिलोपी । आपसु होइ त भवौ देशी ॥ २ ॥

आशा हो तो चित्रकूटके पवित्र स्थान, तीर्थ, कम, कल, पली-पल्ल, तालप-नदी, कलने और
पर्वतोंके समूह तथा विशेषकर प्रभु (आप) के चरणपिछोसे भक्ति समितो पैस जाऊँ ॥ २ ॥

अवति अत्रि आपसु सिर बरहु । तात निगलभय कान्ध बरहु ॥

मुनि प्रसाद खु सुख दाता । कबच करम सुहायन जाता ॥ ३ ॥

[श्रीरामनाथजी बोले—] अवश्य ही अत्रि श्रुतिषी आशको सिरपर धारण करो
(इनसे पूछकर वे जैता करे वैसा करो) और निर्भय होकर कममें पिचरो । हे भाई ! अत्रिमुनिके
प्रसादसे कम मङ्गलका देनेवाला, परम पवित्र और अत्यन्त सुन्दर है— ॥ ३ ॥

रिषिभाषकु जई आपसु वैदी । राखेहु तीरथ कहु पद तेरी ॥

मुनि प्रभु वचन भरत सुखु पाव्य । मुनि पद कमल मुदित सिध नाच ॥ ४ ॥

और श्रुतिषीके प्रभुल अविनी जहाँ आम्न दे, वही [जया हुआ] तीर्थोंका
बाल लापित कर देना । प्रभुके वचन सुनकर भरतजीने सुख जया और आनन्दित
होकर मुनि अविनीके चरणकमलोमें सिर नवाया ॥ ४ ॥

दो०—भरत राम सँवाहु मुनि सकल सुसंगल मूल ।

सूर सारथी सपदि कुल करपत धुरतव फूल ॥ ३०८ ॥

समस्त सुन्दर मङ्गलका मूल भरतजी और श्रीरामचन्द्रजीके सँवाह सुनकर स्वामी
देवता खुदकुली सहाय्य करके कर्मशुचके फूल बरखाने लगे ॥ ३०८ ॥

चौ०—शम्भ भरत भव राम मोलई । कहत देव दूरवत सविधाई ॥

मुनि मिथिलेस समी सन कहहु । मस्त कवच मुनि मय उठाहु ॥ १ ॥

भरतजी भव है, स्वामी श्रीरामजीकी जन हो ! ऐस कहते हुए देवता बल-
पूर्वक (जलधिक) हर्षिता होने लगे । भरतजीके वचन सुनकर मुनि मिथिली,
मिथिलान्धवि बनकली और समाने सब किशकिसे बड़ा उत्साह (आनन्द) हुआ ॥ १ ॥

मस्त शम्भ मुन प्रभु सखे । कुलिक प्रसन्न राख भिदेहु ॥

सेवक स्वामि सुमान सुहायन । पैसु पैसु कति पवन पावन ॥ २ ॥

भरतजी और श्रीरामचन्द्रजीके शुभसूहृकी तथा मोक्षकी विदेहज जनकजी
पुत्रकित होकर प्रसन्न कर रहे हैं । सेवक और स्वामी दोनोंका सुन्दर समाव है । इनके
नियम और प्रेम पवित्रको भी अत्यन्त पवित्र करनेवाले हैं ॥ २ ॥

मति अनुसार सहाइन लगे। सचिव समासद् सब अनुसारे ॥

सुनि सुनि राम भरत संबाहु। दुहु समाच हियँ हरणु विपादु ॥ ३ ॥

मन्त्री और समासद् सभी प्रेममुख होकर अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार सहाइना करने लगे। श्रीरामचन्द्रजी और भरतजीका नवद मुन-मुनकर दोनों समाजोंके हृदयोंमें हर्ष और विपाद (भरतजीके सेवधर्मको देखकर हर्ष और रामविशेषकी सम्भावनासे विपाद) दोनों हुए ॥ ३ ॥

राम मातु ॥ पुत्रु राम गयी। कहि गुन राम प्रबोधी रानी ॥

एक कहहि रघुवीर दबाई। एक सहाइत भरत भलाई ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी माता कौसल्याजीने दुःख और सुखको समान जानकर भीगम-लीके गुण कहकर बूझी रानियोंको धैर्य बँचाया। कोई श्रीरामजीकी बड़ाई (वक्ष्यन) की प्रार्थना कर रहे हैं; तो कोई भरतजीके अन्धेयनकी सहाइना करते हैं ॥ ४ ॥

दो०—अत्रि सहेल तब भरत खन सैल समीप दुःख ॥

राखित तीरथ तोप सही पावन अमिअ अनूप ॥ ३०९ ॥

तब अत्रिलीने भरतजीसे कहा—इस पर्वतके समीप ही एक सुन्दर कुओं है। इस पवित्र, अनुपम और अमूल्य-जैसे तीर्थजलको उसीमें स्थापित कर दीजिये ॥ ३०९ ॥

चौ०—भरत भक्ति अनुसासन पाई। बह भोजन सब दिए बड़ाई ॥

साधुन आयु भक्ति मुनि साधू। सहित गए सही रूप जगाधू ॥ १ ॥

भरतजीने अभिमुनिजी आश्रम पाकर जलके सब पत्र खाना-कर दिये और छोटे सार्थ शत्रु भक्ति मुनि तथा अन्य साधु-संतोंसहित आप वहाँ गये जहाँ यह अथाह कुओं था ॥ १ ॥

पावन पत्र पुन्यवत् जला। प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाषार ॥

सात जलादि सिद्ध बह पदु। लोपेह काक विदित सही कैहू ॥ २ ॥

और उस पवित्र जलसे उस पुण्यस्थलमें रस दिया। तब अत्रि ऋषिने प्रेमसे आनन्दित होकर ऐसा कहा—हे राव ! यह अथादि सिद्धस्थल है। कलकलसे यह लोप हो गया था; इच्छिये किसीसे इसका पत्र नहीं था ॥ २ ॥

तब सेवकजह सारस बह देखा। कीन्ह सुबह दित रूप विसेशा ॥

विधि बस प्रपठ दित उपकार। सुमम अगम अति धरम विचार ॥ ३ ॥

तब [भरतजीके] सेवकोंने उस जलकुल स्थलको देखा और उस सुन्दर [तीर्थको] जलके छिये एक सात कुओं बना लिया। देवबोरासे विश्वभरका उपकार हो गया। धर्मका विचार जो अत्यन्त अगम था, वह [इस रूपके प्रभावसे] भुगत हो गया ॥ ३ ॥

भरतभूष बस कहिहहि लोभा। अति पावन तीरथ बल भोगा ॥

प्रेम सनेम विमज्जा प्रावी। होइहहि विमल करम सन बानी ॥ ४ ॥

अब इसको लेव भरतभूष कह्यो। तीर्थोंके जलके संयोगसे तो यह अत्यन्त ही पवित्र हो गया। इसमें प्रेमपूर्वक निवसते रहन करनेपर प्राणी मनः 'वचन और कर्मसे निर्मल हो जायेंगे ॥ ४ ॥

दो०—कहत छूप भविमा सकल गए जहाँ रघुराज ॥

सत्रि सुतापठ रघुवरहि तीरथ पुण्य प्रभाद ॥ ३१० ॥

रूपकी भविमा कहते हुए सब लोग वहाँ गये जहाँ श्रीरघुनाथजी थे। श्रीरघुनाथजीने उस तीर्थका पुण्य प्रमाण सुनवा ॥ ३१० ॥

चौ०—कहत धरम इतिहास सखीती । मरत भोर निरि सो मुख बीती ॥

नित्ख निवसहि भरत दोन भाई । राम जनि सुर भावसु पाई ॥ १ ॥

प्रेमपूर्वक धर्मके इतिहास कहते यह राज सुखसे बीत गयी और खेरा हो गया । भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई नित्खनिया पूरी करके, श्रीरामजी, अत्रिजी और गुरु वशिष्ठजी-की आशा पाकर, ॥ १ ॥

सहित सम्पत्त सत्तन सब सावैं । कहे तम जब बटन पयावैं ॥

कोमल चरण चकत बिलु पनहीं । बहसु नृनि सङ्गि भगमवहीं ॥ २ ॥

समानताहित सब साधे सम्पत्ते श्रीरामजीके कर्मों भ्रमण (प्रदक्षिणा) करनेके लिये पैदल ही चले । कोमल चरण हैं और किना जूतोंके चर रहे हैं, यह देखकर पृथ्वी-मन-ही-मन सङ्कुचाकर कोमल हो गयी ॥ २ ॥

कुल कंटक कँकरी कुलहैं । कटुक कठोर कुबलु दुलहैं ॥

सहि नंदक सुहु मात्म बीन्हे । बहउ समीर निविच सुल छीन्हे ॥ ३ ॥

कुल, कंटि, कंकरी, दरारें आदि कटु, कठोर और कुरी वस्तुओंको छियाकर पृथ्वीने सुन्दर और कोमल मार्ग कर दिये । कुलोको साथ लिये (सुखादायक) शीतल, मन्द, सुगन्ध हुआ चले लगी ॥ ३ ॥

सुनब बरषि सुर जष करि जहाँ । बिटव फुलि फलि वृष सुहुताहीं ॥

सुग बिछोकि लय छोडि सुखानी । सेवहि सकल राम प्रिय जानी ॥ ४ ॥

रास्तेमें देवता फूल बरसाकर, बावल छाया करके वृष फूल-पातकर, वृष अपनी कोमलतासे, सुग (पट्ट) देखकर और पक्षी सुन्दर वाणी बोलकर—सभी भरतजीको श्रीरामचन्द्रजीके प्यारे जानकर उनकी सेवा करने लगे ॥ ४ ॥

दो०—सुखम सिद्धि सब प्राकृतहु राम कहत कसुहात ।

एत मानमिय भरत कहूँ यह ब होइ बहि बात ॥ ३११ ॥

जब एक जाधारण मनुष्यको भी [अज्ञातसे] बँभाई केते समय राम कह देनेसे ही सब सिद्धियाँ सुखम हो जाती हैं तब श्रीरामचन्द्रजीके प्राणप्यारे भरतजीके लिये यह कोई बड़ी (आश्चर्यकी) बात नहीं है ॥ ३११ ॥

चौ०—एहि बिधि मरत फिल सब भाहीं । देखु देखु कलि मुनि सङ्गुपाहीं ॥

पुण्य अज्ञातय नृनि निमग्न । कल सुग सब वन निरि बष बाग ॥ १ ॥

इस प्रकार भरतजी कर्मों फिर रहे हैं । उनके निबम और प्रेमको देखकर मुनि भी सङ्कुचा जाते हैं । पवित्र-बल्के खान (नदी, वाकरी, कुण्ड आदि), पृथ्वीके पुष्प-पुष्पक, माग, पक्षी, पशु, वृक्ष, वृण (फल), फल, वन और बगीचे—॥ १ ॥

चाह बिचित्र बलिज कितेवी । कलत मस्तु दिव्य सब देखी ॥

सुनि मन मुदित कहत विचित्रक । देखु कल सुन पुण्य प्रमत्त ॥ २ ॥

सभी विरोधरूपसे सुन्दर, निविच पवित्र और दिव्य देखकर भरतजी पूछते हैं और उनका प्रश्न सुनकर श्रुतिराज अत्रिजी प्रत्येक प्रश्नसे सके कारण, नाय, गुण और पुण्य प्रभावको कहते हैं ॥ २ ॥

कतहु निमज्ज कहुँ प्रनाम । कतहुँ निमोक्त मय कमिराम ॥

कतहुँ बैठि मुनि कानसु पाई । सुमित सब छहित दोन भाई ॥ ३ ॥

भरतजी कही सत्तन करते हैं, कही प्रनाम करते हैं, कही मनोहर खानोंके दर्शन

करते हैं और कहीं सुनि मनिनीकी जात्रा पकर बैठकर, सीतावीरहित श्रीराम-समग
होनो भाव्योंका सरण करते हैं ॥ ३ ॥

देहि सुखस सनेहु सुखेन । देहि बलीस सुदिन बनदेवा ॥

फिरहि यहँ विनु यहँ ब्याई । प्रभु पद कमल बिलोकहि आई ॥ ४ ॥

मरालीके समान, श्रेय और सुन्दर चेष्टाभावसे देखकर वनदेवता आनन्दित
होकर आशीर्वाद देते हैं । यों घूम-फिरकर आई फिर दिन बीतनेपर छोट पड़ते हैं और
भाकर प्रभु श्रीरघुनाथजीके चरणमूर्च्छा दर्शन करते हैं ॥ ५ ॥

हो—देखे यहँ तीरथ सकल मरल पाँच दिव मग्न ।

फहत सुनत हरि हर सुखसु शयन विवसु यहँ साँझ ॥ ३१२ ॥

मरालीने पाँच दिनों तक तीर्थस्थानोंके दर्शन कर स्थित । मगना विष्णु और
महादेवीका सुन्दर रूप कहे-सुनते वह (पंचवर्षों) दिन भी बीत गया, सम्प्रा
प्त हो गयी ॥ ३१२ ॥

हो—सोर ग्राह सहु सुख समग्र । मरल भूमिसुर तेसुति राह ॥

मरल दिन आहु आनि सब माही । राम कृपाल कहत सहुपाही ॥ १ ॥

[अगले छंदे दिन] कबरे खान करके भरतजी, ब्राह्मण, राजा जनक और जारा
समान आ गेहा । आहु सचने फिदा करनेके लिये अपना दिव है, यह भयसे जानकर भी
हृषाङ्ग श्रीरामजी कहनेमें सज्जना रहे हैं ॥ १ ॥

दुर दुर भरत सदा अवलोक्य । सुखसि राम फिर भक्ति बिलोकी ॥

सील सगहि समा सब सोची । कह्यु न राम राम स्वामि लँकोची ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने मुक्त बलिहारी, राजा जनकजी, भरतजी और जारा समानी और
देखा, किन्तु फिर सज्जनाकर दृष्टि केकर ये धृष्टीसे और ताकने लगे । समा उनसे सील-
की उपज्ञान करके सोचती है कि श्रीरामचन्द्रजीके समान संतोषी स्वामी कहीं नहीं हैं ॥ २ ॥

मरल सुमान राम कह देखी । उठि सप्रेम धरि नीर बिलेरी ॥

करि दंडवत कृत कर जोरी । राखी बाध सकल रुचि भोरी ॥ ३ ॥

हृषाङ्ग भरतजी श्रीरामचन्द्रजीका रूप देखकर प्रेम्पूर्णक उठकर, बिशेषरूपसे
धीरज धारण कर दण्डवत् करके शयन लोड़कर पड़ने लगे—हे नाथ । आपने मेरी सभी
बचियाँ रखी ॥ ३ ॥

मोहि कति सखी सखी संगार । बहुत भीति दुख कथा आए ॥

भव गीतार्थ मोहि देत सखी । सेवी अवत अवधि, गरि जाई ॥ ४ ॥

मेरे लिये सब लगेने कल्याण लक्ष और वापने भी बहुत प्रकारसे दुःख पाया ।
भव स्वामी मुझे साक्षात् दें । मैं लक्ष अवधिपर (चौरास वर्षक) अवस्था केमन करूँ ॥
हो—जोहि उपाय, पुनि पाय जसु देखे दीवदयाल ।

सो सिल देख्य कबिचि लागि कोसलपाठ कृपाल ॥ ३१३ ॥

हे दीवदयाल । जिस उपायसे वह इस भिर चरित्रोंका दर्शन को-दे कोसलपाठी !
हे कृपाल । अवधिभरके लिये मुझे वही विद्या दीजिये ॥ ३१३ ॥

हो—पुरगन परिक्रम जस लोखार्थ । सब सुनि समस सखेई संगार्थ ॥

सगर बहि यहँ भव दुख दाह । प्रभु विनु यदि परम पद काह ॥ १ ॥

हे गोखार्थ । आपके प्रेम और समकक्ष भक्तपुरवर्तकी कुटुम्बी और प्रजा सभी
पथि और सब (आनन्द) से मुक्त हैं । आपने लिये मनुष्य (अन्य-मरणके दुःख)

की ज्वाला में जलना भी अच्छा है और प्रभु (आप) के बिना परमात्म (मोक्ष) का लाभ भी न्यर्थ है ॥ १ ॥

स्वामि भुजानु जानि सब हो की । सखि बलराम रहनि जन की की ॥

प्रवतपाहु पाकिहि सब काहु । देठ दुहु विधि और निबाहु ॥ २ ॥

हे स्वामी ! आप मुझसे हैं, सभी हैं इन्द्रकी और मुझ से वक्रके मनकी सखि, बाल्या (शर्मिलाया) और रानी जानकर, हे प्रवतपाहु । आप सब विरीका पावन करेंगे और हे देव ! दोनों तरफों से अन्तर्गत निबाहेगे ॥ २ ॥

कस मोहि सम बिधि भूरि अरोरो । भिरै बिबाह व सोनु खरो सो ॥

आरति और भाव कर छोड़ । मुहँ सिद्धि कीन्ह दीह हडि मोह ॥ ३ ॥

मुझे सम प्रकारसे ऐसा बहुत बढ़ा भरोषा है । विचार करनेपर तिनके बराबर (जगन्मा) भी सोच नहीं रह जाता । मेरी दोनों और स्वामीय स्नेह दोनोंने मिलकर मुझे जगदीश की दीठ बना दिया है ॥ ३ ॥

पह बब दोषु पूरि करि स्वामी । तबि सबेच सिखहुन भुजगामी ॥

भरत विनय सुनि सबहि प्रसंसी । और और विवरत गति ईसी ॥ ४ ॥

हे स्वामी ! इस बड़े दोषों से दूर करके सर्वत्र लाभ कर मुझ सेवकों को सिखा दीजिए । दूष और जलसे अलग-अलग करनेमें हठिनीकी-सी गतिनाली भक्तकी की विनती सुनकर उसकी संपत्ति प्रसंसा की ॥ ४ ॥

वो—दीनदण्ड सुनि बंश के बचन दीन छलहीन ।

देस फाट अवसर सरिस बोले रामु प्रवीन ॥ ११४ ॥

दीनबन्धु और परम चतुर भीष्मजी भाई भक्तोंके दीन और छलहीन बचन सुनकर देश, फाट और अवसरके अनुकूल बचन बोले— ॥ ११४ ॥

चौ—सात तुम्हारी मोहि परिलख की । किंता गुरहि बुरहि पर बह की ॥

माथे पर छुर सुनि मिथिलेच । हमहि तुम्हहि सभेहुँन कहेच ॥ १ ॥

हे सात ! तुम्हारी, मेरी, बरियारसी, बरकी और बरकी गरी किन्ता ॥१॥ बहिषदी और भूराज जनकजीकी है । हमारे सिपर जब शुक्ली, सुनि मिथामिथी और मिथिल-पति जनकजी हैं, तब हमे और तुम्हें स्वप्नमें भी ड्रोग नहीं है ॥ १ ॥

और तुम्हारा परम पुरुषार्थ । खरख सुखसु बसु परमार ॥

पितु मायसु पाकिहिं शुद्ध आई । कीक वेद सब भूप मलाई ॥ २ ॥

मेरा और तुम्हारा जो परम पुरुषार्थ, सार्व, सुख, धर्म और परमार्थ इसीमें है कि हम दोनों भाई पिताजीकी आज्ञात्म पावन करें । यन्त्राधी मलाई (उनके भक्तकी रक्षा) से ही लोक और वेद दोनोंमें मजा है ॥ २ ॥

गुर पितु माहु क्यमि सिल पाले । कहेहुँ कुमरा वग बरहि व साँके ॥

कस बिचारी सब सोच विहाई । पालहु कसव बरहि अरि भाई ॥ ३ ॥

गुरु, पिता, माता और स्वामीकी शिक्षा (आज्ञा) का फलन करनेसे कुमार्ग में चलनेसे पैर गड़ने नहीं पड़ता (फलन नहीं होता) । ऐसा विचारकर सब सोच छोड़कर अवश्य जाकर अनभिन्न उत्तका फलन करो ॥ ३ ॥

देसु कोसु पखिबन परियारु । गुर पद खरि-लगा छरमार ॥

तुम्हें सुनि मालु सखि सिद्ध भामी । कहेहुँ सुनि प्रसा रनकारी ॥ ४ ॥

देश, खसना, कुदृष्ट, परिवार आदि सबकी निमोदारी को शुद्धीकी चरण-

रजपर है। तुम तो मुनि धर्मिष्ठनी, मातृश्री और भक्तिबोधी शिक्षा मानकर सदानुसार पृथ्वी, प्रजा और राजधानीका पालन (रखा) कर करते रहना ॥ ४ ॥

दो०—मुखिया मुखु सो चाहिये खान खान कहुँ एक।

पाछर पोषर सकल जैग तुलसी सहित विवेक ॥ ३१५ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं—[श्रीरामजीने कहा—] मुखिया मुखके समान होना चाहिये, जो खाने-पीनेको तो एक (अवेद्य) है; परन्तु विवेकपूर्वक सब अन्नोका पालन-पोषण करता है ॥ ३१५ ॥

चौ०—राजधरम सरखु एखोहँ। खिमि मन भाई मनोरथ गौहँ ॥

बन्धु प्रकोपु कीन्ह बहु सौती। बिनु अहार मन लोपु न सौती ॥ १ ॥

राजधरम सर्वस्व (कार) भी इच्छा ही है। जैसे मनके भीतर मनोरथ छिपा रहता है। श्रीरघुनाथजीने भाई भरतको बहुत प्रकाशसे समझाया। परन्तु कोई अवलम्बन पाये बिना उनके मनमें न उन्मत्त हुआ, न खलित ॥ १ ॥

भरत सीक शुर सखिप समाख। सकुच सगेह विवस रहुराख ॥

प्रभु करि कृपा पोखी दुँहो। साधर भरत सीस धरि कीन्हो ॥ २ ॥

इधर तो भरतजीका सीक (प्रेय) और उधर गुणगनों, मन्त्रियों तथा समाजकी उपस्थिति। यह देखकर श्रीरघुनाथजी संकोच तथा स्नेहके विषेय बखीभूत हो गये। (अर्थात् भरतजीके प्रेमबन्ध उन्हें पोंचरी देना चाहते हैं, किन्तु आप ही मुक्त व्याधिका संकोच भी होता है।) आखिर [भरतजीके प्रेमबन्ध] प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने कृपा कर जवाबों दे दी और भरतजीने उन्हें आपरपूर्वक छिपर धारण कर लिया ॥ २ ॥

चलपीठ कल्पविधान के। मनु जुग आविक प्रजा ज्ञान के ॥

संशुद्ध मस्त सगेह रतन के। अखर धुग बहु पीय जलन के ॥ ३ ॥

कल्पविधान श्रीरामचन्द्रजीके दोनों सङ्काटों प्रजाके प्राणीकी रक्षाके लिये माने दो पहरेदार हैं। मरतजीके प्रेमरसी रक्तके लिये माने विष्णु है और जीवके साधनके लिये माने राममानके दो अक्षर हैं ॥ ३ ॥

कुल कपाड कर कुलक करम के। विमल नयन सेवा भुषन के ॥

भरत मुदित अवलोक करे सँ। अस मुख बस सिय एतु खे सँ ॥ ४ ॥

सुकुल [की रक्षा] के लिये दो विमल हैं। कुलक (श्रेष्ठ) कर्म करनेके लिये दो हाथकी भाँति (सहायक) हैं और सेवास्वी श्रेष्ठ परमके सुखानेके लिये निर्मल नेत्र हैं। भरतजी इस अवलम्बके श्रेष्ठ जनेसे परम आनन्दित हैं। उन्हें सेवा ही सुख हुआ, सेवा श्रीरघुनाथजीके रहनेसे होता ॥ ४ ॥

दो०—मानेन विदा प्रणामु करि राम छिप उर छहर।

लोग उचाढे अमरपति कुटिल कुलवसत पाह ॥ ३१६ ॥

भरतजीने प्रणाम करके विदा माँगी। वह श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें छुड़पते लगा लिया। इधर कुटिल इन्तने सुग यौवन पाकर लोगोंका लक्ष्मण कर दिया ॥ ३१६ ॥

चौ०—सो कुचाकि सन कई मढ़ नौकी। अखिप जस सस जीवनि की की ॥

नकद फजन सिय सस विवेक। इहरि मस्त सब जेय कुरोग ॥ १ ॥

यह कुचाक भी उसके लिये दितकर हो गयी। अखिपकी आवाजके समान ही वह जीवनके लिये संजीवनी हो गयी। नहीं तो (लक्ष्मण न होता तो) अमरणजी, सीतानी और श्रीरामचन्द्रजीके विशेषरूपी कुरोगेसे सब जेय धनकर (हय-सयकरके) भर ही जाते ॥ १ ॥

रामझूँसों जवरेष सुधारी । बिबुध धारि भद्र गुणद गोहाते ॥

मैंतत भुज मरि भाइ भरत सो । राम प्रेस खु कहि न परत सो ॥ १ ॥

श्रीरामजीकी कृपामे सारी उच्छ्वसन सुधार दी । देवछाँसोंकी सेना जो छूटने आयी थी, वही गुणदायक (हितकारी) और रक्षक बन गयी । श्रीरामजी भुजामेमे भरकर भाई भरतसे मिल रहे हैं । श्रीरामजीके प्रेम्भक्त कदर (वानन्द) कहते नहीं बनता ॥ २ ॥

तब मन धचन उमय अनुसंग । धीर धुरंधर धीरखु आगा ॥

बारिज लोचन भोक्त बारी । देखि दस्य सुर सभा दुजारी ॥ ३ ॥

उन, मन और चचन छीनेमे प्रेम उमड़ पड़ा । धीरजीकी धुरीको धारण करनेवाके श्रीरघुनाथजीने भी धीरज त्याग दिया ! ये कम्मलदृष्ट नेत्रोसे [प्रेमाभुमोका] अल वहाने लगे । उनकी यह दृष्टा देखकर देवताओंकी समा (समान) घुसी हो गयी ॥ ३ ॥

मुनिमन गुर धुर धीर जगद से । न्यस्य भयल भग कर्षे कमल से ॥

से विरहि निरलेय ब्याए । पट्टम पत्र निमि जग जल जाए ॥ ४ ॥

मुनिगण, गुर वसिष्ठजी और जनकजी-सरीखे धीरधुरन्धर जो अपने मनोको धानरूपी अभिमे छोनेके समान कर चुके थे, जिनको ब्रह्मजीने निर्वेय ही रखा और जो जगत्-रूपी जलमे कमलके पत्तेकी तरह ही (जगत्मे रहते हुए भी जगत्से जनाच्छ) पैदा हुए ॥ ४ ॥

दो—लेख बिलोकि रघुवर भरत प्रीति मनूप भवार ।

भय भगव भग तन वचन सहित विरग्य विचार ॥ ३१७ ॥

ये भी श्रीरामजी और भरतजीके उपमावहित अगर प्रेम्भक्त देखकर वैराग्य और विवेकसहित तन, मन, वचनसे उस प्रेम्भक्त भग्न हो गये ॥ ३१७ ॥

चौ—जहाँ जनक गुर गति मति जोरी । प्राकृत प्रीति खटत कवि खोरी ॥

भरत रघुवर भरत कियेन । मुनि कठोर कवि जाविहि लोच ॥ १ ॥

जहाँ जनकजी और गुर वसिष्ठजीकी मुद्रिकी गति कुण्ठित हो गयी, उस दिग्ग प्रेम्भक्तो प्राकृत (लौकिक) कहनेमे बड़ा दोष है । श्रीरामचन्द्रजी और भरतजीके विधोयका वर्णन करते मुनिकर लोग कविको कटोपद्वय समझेगे ॥ १ ॥

सो सकौच खु जगद सुधारी । समर सचेष्ट मुनिरि लकुबारी ॥

भैंटि भरत रघुवर समुद्राय । मुनि निपुणवधु हरवि हिमें जाए ॥ २ ॥

वह सकौच रत अकयनीय है । अतएव कविको सुन्दर बाँधी उस समय उसके प्रेम्भक्तो स्मरण करके वकुचा गयी । भरतजीको भेंटकर श्रीरघुनाथजीने उनको समझाया । फिर हर्षित होकर शत्रुघ्नजीको हृदयसे उखा लिया ॥ २ ॥

सेवक सचिव भक्त सब पाई । निज निज कर्म समे सब आई ॥

मुनि दास्य धुल धुई समझा । लगे चलन के सामन सजा ॥ ३ ॥

सेवक और मन्त्री परमजीवन रख पाकर उन अपने-अपने कामसे जा लगे । यह मुनिकर दोनों समानोमे दास्य धुल्ल ल गये । वे चलनेकी तैयारियाँ करने लगे ॥ ३ ॥

प्रभु पद पटुम बंदि बोट नई । चले खोस धरि सम स्नाई ॥

मुनि तावत कन्देव बिहोरी । सब समझानि कठोरि बहोरी ॥ ४ ॥

प्रभुके चरणकमलोंकी कन्दना करके तथा श्रीरामजीकी आज्ञासे किरपर रखकर भरत शत्रुघ्न दोनों भाई चले । मुनि, उसली और कन्देवस सब बर-बार सम्मान करके उनकी किछी की ॥ ४ ॥

दो०—लखनहि मँटि प्रनामु करि सिर धरि सिय पद धरि ।
 चले सप्रेम बसीस सुनि सकल सुमंगल मूरि ॥ ३१८ ॥
 फिर लक्ष्मणजीको क्रमशः मँटकर तथा प्रणाम करते और सीताजीके चरणोंकी धूलिको
 तिरकर धारण करते और समस्त मङ्गलके मूढ आशीर्वाद सुनकर वे प्रेमवहित चले ॥ ३१८ ॥
 चौ०—साधुन राम चुपहि सिर गार्ह । कीन्हि बहुत विधि विनय बढाई ॥
 देव दस वस बड़ गुण पावत । सहित समाज सबवाहि जायत ॥ १ ॥
 छोटे भाई लक्ष्मणजीसमेत श्रीरामजीने राम बनकजीको सिर नवाकर उनको
 बहुत प्रकारसे विनती और वढ़ाई की [और कहा—] हे देव ! दयावश अपने बहुत
 गुण पाया । आज समानवर्धित बनमें जाने ॥ १ ॥
 पुर पशु धरिब देह बसीसा । कीन्ह और धरि गबनु महीसा ॥
 सुनि सहिदैव सब समाने । विदु किन् हरि ह्य सम जाये ॥ २ ॥
 सब मासीर्वाद देकर जगको पधारिसे । यह सुन राम बनकजीने भीरज वरकर
 गमन किया । फिर श्रीरामचन्द्रजीने तुनि, ब्राह्मण और साधुओंको विष्णु और शिवके
 समान जानकर सम्मान करके उनको विदा किया ॥ २ ॥
 साधु समीप गय दोह भाई । फिर बँटि पय आसिब पाई ॥
 जीतिव जगदेव जावाही । पुनकन परितब सखि सुखाही ॥ ३ ॥
 हर श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाई साथ (सुनयनाओं) के पात गये और उनके
 चरणोंकी धूलना करके आशीर्वाद लेकर छोट जाये । फिर विशाखि, जगदेव, जवाहि
 और ह्यम आचारणको कुटुम्बी, नगरनिवासी और ग्रामी—॥ ३ ॥
 गया जोशु करि विनय प्रनामा । विदा किन् सब साधुन रामा ॥
 करि पुन सब लहु मय बहरे । सब सबभयि ह्यमविधि भरे ॥ ४ ॥
 छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित श्रीरामचन्द्रजीने यथायोग्य विनय एवं प्रणाम
 करके विदा किया । कुटुम्बिकान श्रीरामचन्द्रजीने छोटे, मध्यम (मछले) और बड़े सभी
 भेनोंके साथ-सबको सम्मान करके उनके साथै जाया ॥ ४ ॥
 दो०—परत माहु पद बँटि प्रभु सुनि सनेहँ मिळि मँटि ।
 बिदा कीन्ह सखि पाठकी सकुच सोच सब मेदि ॥ ३१९ ॥
 भरतकी माता कैकेयीके चरणोंकी कन्दन करके प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने पवित्र
 (निष्कल) प्रेमके साथ उनके मिल-मैठकर तथा उनके सारे संकोच और सोचको मिटाकर
 पाठकी समाकर उनको विदा किया ॥ ३१९ ॥
 चौ०—परितब माहु पितहि मिळि सीता । किन् प्रपथिव प्रेम सुखीता ॥
 करि प्रनामु मँटि सब समु । अक्षि कष्ट करि हिय न बुझाय ॥ १ ॥
 प्राणमिय पति श्रीरामचन्द्रजीके साथ पवित्र प्रेम करनेवाली सीताजीने हरके कुटुम्बियोंके
 तथा माता-पिताके मित्र-बेट आदी । फिर प्रणाम करके सब साधुओंके गले लगाकर मिली ।
 उनके प्रेमका वर्णन करनेके शिथे जिनके हृदयमें दुःख (उत्पन्न) नहीं होता ॥ १ ॥
 सुनि सखि बनिमल आसिब पाई । की सीब ह्य प्रीति समझै य
 पुरुषि पद पाठकी संगई । करि प्रवीच सब माहु बढाई ॥ २ ॥
 टनकी प्रीति सुनकर और कनकहा आशीर्वाद लेकर सीताजी साधुओं तथा माता
 पिता—दोनों भोरी प्रीतिमें समझी (बहुत देखकर निमग्न) रहीं [वर] श्रीरामचन्द्रजीने
 सुन्दर पाठियों मंगलार्थ और सब मङ्गलोंको आवाक्य देकर उनपर चढ़ाया ॥ २ ॥

पार पार हिलि मिलि बुहु भार्य । सम सवेहँ जननी पहुँचाई ॥
सासि बाजि गज कहन नाचा । अस्त भूष दल कीन्ह पयान ॥ ३ ॥
दोनों भाइयोंने गताजोति सम्मान प्रेमसे बार-बार मिल-जुलकर उनको पहुँचाया ।
भरतजी और राजा जनकजीके दर्शने बोड़े, हाथी और अनेकों छद्मकी सवारियाँ
सजाकर प्रस्थान किया ॥ ३ ॥

उदय राम सिय लखन समेत । चले जाहि सब लोग भवेता ॥
बसह राजि गज पशु हियँ धरौ । चले जाहि बसवस मन मारौ ॥ ४ ॥
सीतानी एवं लक्ष्मणजीसहित श्रीरामचन्द्रजीको हृदयमें रखकर सब लोग वैकुण्ठ
हुए चले जा रहे हैं । चैल, घोड़े, हाथी आदि पशु हृदयमें धरे (विधित) हुए परब
मनगरे चले जा रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—गुर गुर तिय पद बँदि प्रभु सीता लखन समेत ।

फिरे हरष विषमष सहित आप परम निकेत ॥ ३२० ॥
गुरु बशिष्ठजी और गुरुजी भक्तजीके चरणोंकी कन्या करके सीतानी और
लक्ष्मणजीसहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी हृदय और विशदके साथ जीठकर पर्णकुटीर भावे ॥ ३२० ॥

चौ०—विद्या कीन्ह सनमाणि विद्याह । कहेउ हृदयँ बड़ विरह विद्याह ॥

कौल किरात भिल बनवरी । केरे फिरे जोहारि जोहारि ॥ १ ॥
फिर सम्मान करके निषादराजको विद्या किा । गङ्गा तथा तो चढ़ी, किन्तु उसके
हृदयमें विरहका बड़ा भारी विषाद था । फिर श्रीरामजीने खेक, किरात, भील आदि
बनवासी लोगोंको लौटया । वे सब जोहार-जोहारकर (बन्दना कर-करके) लौटे ॥ १ ॥

प्रभु सिय लखन वैडि पट जहाँ । मिय करिबन विषेय विहलहाँ ॥

भरत सवेह सुभाउ सुपायी । प्रिया अनुब सन कहत मजानी ॥ २ ॥
प्रभु श्रीरामचन्द्रजी, सीतानी और लक्ष्मणजी वृक्षकी छावामें बैठकर विषमण एवं
परिवारेके विषयसे दुःखी हो रहे हैं । भरतजीके स्नेह, स्वभाव और हृदय वाणीकी
बलान-बलानकर वे प्रिय पत्नी सीतानी और छोटे भाई लक्ष्मणजीसे कहने लगे ॥ २ ॥

प्रीति प्रतीति बचन मन करनी । जीसुल राम प्रेम बस चली ॥

हेहि भवसर खग मृग गज गीना । फिरेकूट पर अक्षर मझीना ॥ ३ ॥
श्रीरामचन्द्रजीने प्रेमके क्या होकर भरतजीके बचन, मन, तर्जनीकी प्रीति तथा
विश्वासका अपने भीमुखसे कर्मान किया । सब समय पत्नी, प्रभु और बलकी मञ्जुषी,
चित्रकूटके सभी जैन और गज जीव उदास हो गये ॥ ३ ॥

विषय चिह्नोकि दसर खुम्ब की । बसि सुभग कहिषति घरघर की ॥

प्रभु प्रतापु करि दीन्ह ज़रोखो । चले भुविष मन कर न खारे सो ॥ ४ ॥
श्रीरघुनाथजीकी दशा देखकर देवतायोंने उनपर फूल बरसकर अपनी घर-घरकी
दशा कही (बुलका बुलाया) । प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें प्रणाम कर आश्वासन दिया ।
तब वे प्रसन्न होकर चले, मनमें करा-का भी कर न रहा ॥ ४ ॥

दो०—सालुन सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर ।

भगति ग्यानु कैरान्य जनु खेहत धरँ सरीर ॥ ३२१ ॥
छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीतानीसमेत प्रभु श्रीरामचन्द्रजी पर्णकुटीरमें ऐसे सुशोभित
हो रहे हैं मानो वैष्णव, भक्ति और जन शरीर धारण करके शोभित हो रहे हों ॥ ३२१ ॥

चौ०—मुनि महिपुर नृप नरस गुणसु । सम विष्टै ससु ससु विहास ॥

प्रभु गुन प्राप्त नरस नरस महीं । ससु पुनःचर चले मग महीं ॥ १ ॥

मुनि, ब्राह्मण, गुण, वसिष्ठजी, भरतजी और राजा जनकजी—सारा समान श्रीरामचन्द्रजीके विरहमें विह्वल है । प्रभुके गुणसुखोंका मनमें स्मरण करते हुए सब लोग यहाँमें चुपचाप चले जा रहे हैं ॥ १ ॥

अमुना उरि पर ससु मरु । सो कससु विनु मोनन मरु ॥

उरि देवउरि कूसर मरु । समससी ससु कीन्ह सुपासु ॥ २ ॥

[पहले दिन] सब लोग यमुनाके उतरकर गए हुए ! वह दिन बिना भोजनही बीत गया । दूसरा मुकाम मन्दावी उतरकर (मन्नापर शृङ्गधरपुरमें) हुआ । यहाँ रामलका निपादराजने सब सुप्रसन्न कर दिया ॥ २ ॥

सई उरि सेमती मरु । सोई दिवस मगधपुर मरु ॥

मरु छे नृप मरु । सोई दिवस मगधपुर मरु ॥ ३ ॥

निर सई उतरकर सेमतीजीमें जान किया और चौथे दिन सब अयोध्याजी जा पहुँचे । जनकजी चार दिन धर्मोपासीमें रहे और रामलका एवं सब राज-सामानको सम्हालकर । ॥

सौदि मरु मरु । मरु मरु । सोई दिवस मगधपुर मरु ॥

मरु मरु मरु नृप मरु । सोई दिवस मगधपुर मरु ॥ ४ ॥

हवा मरु, सुखी हवा भरतजीको राज्य चौपकर, सारा राज-सामान ठीक करके तिरहुतके चले । मरुके श्री-पुत्र गुणजीकी शिक्षा जानकर श्रीरामलकाकी राजधानी मयोध्याजीने सुखपूर्वक रहने लगे ॥ ४ ॥

चौ०—राम दरस छपि सेग सब करत सेम उपवास ।

उरि ललि भूपन भोग सुख सिमल मरुचि की व्यास ॥ १२२ ॥

सब लोग श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनके लिये निराम और उपवास करने लगे । वे भूषण और भोग-सुखोंको छोड़-छाड़कर अन्धविश्वासी आधार छोड़े हैं ॥ १२२ ॥

चौ०—सदिव सुखे मरु प्रसीधे । किं विव मरु पाह विव मोधे ॥

गुरि ललि दीर्घि कीर्ति मरु भाई । सौरी मरु मरु सेवकाई ॥ १ ॥

भरतजीने मन्त्रिणी और निपासी सेवकोंको सम्हालकर उपास किया । वे सब लीफ पकर अपने-अपने काममें लग गये । फिर छोटे-मार्दे धनुषजीको बुद्धकर शिक्षा दी और सब माताओंकी सेवा उनमें लीफ ॥ १ ॥

मरु मरु मरु मरु मरु । करि मरु मरु विव मरु ॥

सौरी मरु मरु मरु मरु । मरु मरु मरु मरु मरु ॥ २ ॥

ब्राह्मणोंको बुद्धकर भरतजीने सब बुद्धकर प्रणाम कर सबसाके अनुसर विनय और निहोरा किया कि आपलोग सैन्य-सेवा (सेव-मरु), अच्छ-मरु जो कुछ भी कार्य हो, उसके लिये जाया दीजियेगा । समेच न दीजियेगा ॥ २ ॥

परिनन मरु मरु मरु मरु । मरु मरु मरु मरु मरु ॥

समुन मे मरु मरु मरु मरु । मरु मरु मरु मरु मरु ॥ ३ ॥

भरतजीने फिर परिवारके लोगोंको, नामरिजोंको तथा अन्य प्रजाको बुद्धकर समुपासन करके उनमें सुखपूर्वक वसला । फिर छोटे-मार्दे धनुषजीसहित वे गुणजीके घर गये और दण्डकर करते हुए बुद्धकर चले—॥ ३ ॥

आयु होट न रहै मनेसा । छोटे मुनि तन बुलकि सरेसा ॥
 समुद्रप साव करव तुम्ह चोई । धरम माक जग होइहि सोई ॥ ४ ॥
 जाग । सोई निकमपुत्र रहे । मुनि नमिछपी पुनक्तिअरीर हो प्रेमके साथ बोले—
 'भग ! तुम सो कुछ नमताये, कहेमे और करोगे, मदीज्यतुमे धर्मका सार होमा ॥ ४ ॥
 ६०—मुनि सिंग पाद असीस बडि गनक बोलि दिनु साधि ।

मिमासतन प्रभु पादुका बैठाये निरुपाधि ॥ ३२३ ॥

भरतजीने वर मुनकर जोर निषा तथा बड़ा आर्षावार्द धरम ज्योतिषियोओ
 गुनवा जोर दिन (अच्छ सुहृद) गधरर प्रभुरी कणसदुक्तमोओ निर्विन्तापूर्वक
 निगमन गिराजित वगवा ॥ ३२३ ॥

चौ०—राम मातु गुर वर निग नाई । प्रभु पद पीठ मजपसु वाई ॥

मंत्रिगावे बरि परन कुटीर । बंदि निषासु धरम गुा धीरा ॥ १ ॥

किर भीरमजीरी माता वीरम्यानी जौर गुदकीके चरणोंमि सिर नयाऊर और
 प्रभुरी चरणशुद्धभाओरी आग्य धरम धर्मरी धुरी धारण करनेमे भीर भरतजीने
 मन्त्रिगावमे पदकुटी वनाकर उलीमे निषासु किया ॥ १ ॥

जटावृट मिर मुनिपद घासी । मडि मरि कुस सोधरी सेवारी ॥

अमन समन धामन मन नेमा । कत कतिम रिपिधरम मनेमा ॥ २ ॥

गिरर जटावृट जोर शरीरमे मुनिगंठे (वस्त्रक) रत्न धारण कर, पृथ्वीको
 गोदरर उमके अंदर कुमारी भागनी बिठायो । भोजन, वस्त्र, यस्तन, मय, नियम—
 सभी बातोंमे ये ऋषियोंके उठिन धर्मका प्रेममूर्ति आचरण करने लगे ॥ २ ॥

भूधन घसन भोग सुग नूरी । मन तन वचन लखे सिंग लूरी ॥

अथ राहु सुर राहु सिद्धई । उमरध धनु मुनि बसतु सम्राई ॥ ३ ॥

गहने-काटे और अनेकों प्रकारके भोगसुखोंको मन, तन और वचनके रूप
 तांदवर (प्रतिभा करने) द्वारा दिया । जिस ज्योत्स्वके राज्यको देवराज इन्द्र सिद्धाते
 थे और [ताँके राजा] दशरथजीकी उपाधि मुनकर कुचेर भी लजा आते थे, ॥ ३ ॥

हैरि पुर समत भरत मिलु रणा । चंचरीक निमि चंपक धारा ॥

रमा बिलासु राम धनुरागी । उज्जवचमर निमि जव वदनागी ॥ ४ ॥

उसी अयोध्यापुरीमे भरतजी कनातक होकर इस प्रकार निवृत्त कर रहे हैं जैसे
 शम्भुके वागमे भोरा । श्रीरामचन्द्रजीके प्रेमी बहुभाषी पुष्ट लक्ष्मीके विजय (भोगेश्वर)
 को वसनकी मूर्ति स्वाम देते हैं (किर उठरी और लफते भी नहीं) ॥ ४ ॥

दो०—राम पेम भाजन भरतु बड़े न यहि करवृत्ति ।

आतक हंस सपाहिअत टंक निवेक विभूति ॥ ३२४ ॥

किर भरतजी को [स्वयं] श्रीरामचन्द्रजीके प्रेम्मे पाव हैं । वे इस (भोगेश्वरसत्ता-
 रूप) करनीसे बड़े मर्ी हुए (अर्थात् उनके लिये वह कोई बड़ी बात नहीं है) ।
 [पृथ्वीपराज बल न धनन] देखे चातुर्ग और नीर-वीर-निवेकनी विभूति (शक्ति)
 से रंमकी भी सपाहता होती है ॥ ३२४ ॥

चौ०—वेद दिगहुँ दिन दूचरि होई । कव्व तेजु पव्व सुखअधि सोई ॥

जित नव राम प्रेम पनु पीव । नकत धरम वल्लु मनु न मलीन ॥ १ ॥

भरतजीका सरीर दिनेदिन दुबला होता जात है । तेज (अन्तःपुत्र आदिसे

उरसा होनेवाला होद०) घट रहा है। कल और मुलजनि (मुलकी कानि अथवा सोमा) बैसी ही बनी हुई है। रामसेमका प्रभु निष नया और पुष्ट होजा है, धर्मका रस बढ़ा है और मन उत्पन्न नहीं है (अर्थात् प्रसन्न है) ॥ १ ॥

४ संस्कृत शेषों 'तेज' का अर्थ होद प्रियत है और यह अर्थ लेनेसे 'अर' के अर्थमें भी किसी प्रकारकी खींच-खन नहीं करनी पड़ती।

मिथि सङ्ग निवसत सत्त्वं प्रकरोः। मिथस्त वैतसं कस्य विवरो ॥

सम दम संमन विमन अकस्य। सतत सतत द्विष विप्रलभसास ॥ २ ॥

जैसे बादल के प्रसन्न (मिथस्त) से घट पड़ता है, किन्तु घट सोमा पाते हैं और कस्य विवस्थित होते हैं। सम दम संमन, निषम और उपवास आदि मरतरीने हृदयवशी निर्मल आकाशके समान (अकस्य) हैं ॥ २ ॥

पिबन्तु अन्ति रजः सी। सन्नि मुनि मुनिवि विवशी ॥

रजः वेग सिधु कण्ठ अयोध। सहित समान सोह नित बोधा ॥ ३ ॥

विवात ही [उत आकाशमें] प्रसरता है, चौदह वर्षकी अवधि [का प्रान] पूर्णपणे समान है और साथी भीरवनीकी हृष्टि (सृष्टि) आकाशवाता-धरीकी प्रकाशित है। रामसेम ही अकस्य (अर) रजःपात्र और अकस्यविषय अकस्य है। यह अन्ते समान (आन्ते) रहित नित सुन्दर मुखेभित है ॥ ३ ॥

अस्य सन्नि सन्निमुनि मुनिवि। सन्निमिथिमुनिविमलविपरी ॥

अस्य सन्नि मुनिमुनि सन्निवि। सन्निमिथिमुनिविमलविपरी ॥ ४ ॥

मरतरीने रजः, समान, करनी, मरि, वेरमन, निर्मल हृष्ट और ऐश्वर्यका वर्ण करनेमें अन्ते अन्ते सन्निमुनि है; अन्ते अन्ते [ओरोंकी ओर अन्त ही अन्त] अन्त वेग, गवेष्ट और मरतरीने की ओर नहीं है ॥ ४ ॥

सो—मिथि पुनः प्रभु पर्वरी मीति न हृष्टी समति।

आनि आनि अन्तिमुनि करत रजःपात्र वधु मीति ॥ ५ ॥

ये नित्यप्रति प्रभुकी बाहुकायोंका पूजन करते हैं, हृदयमें प्रेम लगाता नहीं है। बाहुकायोंके अन्त मीति-मौलिक के बहुत प्रान (अन्त प्रानके) रजःपात्र करते हैं ॥ ५ ॥

सो—अन्त सन्नि विमल सन्निवि। सन्निमुनि सन्निमुनि मीति ॥

अन्त सन्नि विमल सन्निवि। अन्त सन्नि विमल सन्निवि मीति ॥ ६ ॥

अन्त प्रभुकी है। हृदयमें मीति-मौलिक-मौलिक हैं। मीति-मौलिक-मौलिक का रजःपात्र है, मीति-मौलिक का मरतरीने है। मरतरीने, मीति-मौलिक और मीति-मौलिक के अन्त में करते हैं। मरतरीने मरतरीने अन्त सन्नि विमल सन्निवि मीति ॥ ६ ॥

सो—मिथि सन्निमुनि सन्निमुनि। सन्नि विमल सन्निमुनि मीति ॥

मिथि सन्नि सन्निमुनि सन्निमुनि। सन्नि विमल सन्निमुनि मीति ॥ ७ ॥

अन्ते ओरोंकी मीति सन्निमुनि का अन्त सन्निमुनि है कि मरतरीने सन्निमुनि सन्निमुनि मीति है। अन्ते अन्त और मीति-मौलिक सन्निमुनि सन्निमुनि मीति है और अन्त मीति सन्निमुनि सन्निमुनि मीति है ॥ ७ ॥

अन्त सन्नि सन्निमुनि सन्निमुनि। सन्नि विमल सन्निमुनि मीति ॥

अन्त सन्नि सन्निमुनि सन्निमुनि। सन्नि विमल सन्निमुनि मीति ॥ ८ ॥

मरतरीने सन्नि सन्निमुनि सन्निमुनि। सन्नि विमल सन्निमुनि मीति ॥ ९ ॥

का करनेवाला है। कटिगुणके कटिन पापों और वधेघोंघे हरनेवाला है। महामोहरूपी रात्रिको नष्ट करनेके लिये सूर्यके समान है ॥ ३ ॥

राय पुंन पुंनर सुगन्धू। समन सकल संताप समाहू ॥

जन ईश्वर संजय भव भाहू। राम सनेह सुवन्दन साहू ॥ ४ ॥

पापसमूहकी दाशोने लिये हिह है। रामे सन्तुष्टके दलका नाश करनेवाला है। मर्तोंको आनन्द देनेवाला और मर्के भार (संसारके दुःख) का भक्षण करनेवाला तथा श्रीरामयोगरूपी चन्द्रमन्त्र साह (अमृत) है ॥ ४ ॥

छं०—सिय राम प्रेम पियूष धूरज होत अवमु न मरत को।

मुनि मम अखर जम नियम खम दम विषम व्रत आचरत को ॥

दुख दाह दारिद्र्य दंस दूषन सुखस मिस अपहरत को।

कलिकास मुखसी से सतभि हठि राम सममुख करत को ॥

श्रीसीतारामजीके प्रेम्हृषी अवतसे परिपूर्ण भरतजीका जन्म यदि न होता, तो मुनियोंके मनको भी खगम यम, निषम, शम, दम आदि कटिन मर्तोंका आचरण कौन करता ! दुःख, सन्ताप, दारिद्र्यता, दम्भ आदि दोषोंको अपने मुखसे कहाने कौन हरण करता ! तथा कलिकासे मुखसीदास-जैसे शत्रुको हठपूर्वक कौन श्रीरामजीके सममुख करता !

सो०—भरत चरित करि वेसु मुखसी जो सादर सुनिहि।

सिय राम पद ऐसु अकसि होइ अग रस विरति ॥ १२६ ॥

मुखसीदासजी कहते हैं—जो कोई भरतजीके चरित्रको निबन्धे आदरपूर्वक सुनै, उसको अवश्य ही श्रीसीतारामजीके चरणोमे प्रेम होना और साधारण विषय-रससे वैराग्य होगा ॥ १२६ ॥

मासपारम्य, इकीसवाँ विभाग

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषभिर्भसचे द्वितीयः सोपानः समाप्तः ।

कलिकुलके सम्पूर्ण पापोंको विध्वंस करनेवाले श्रीरामचरितमानका

यह दूसरा सोपान समाप्त हुआ।

(अयोध्याकाण्ड समाप्त)



बनिके बरिसि



हरि पूज हरि - वचन सुनार ।
दिए मूक पठे मनु मय नार ॥



श्रीमद्भागवतम्

श्रीमन्नारायणाय नमः

श्रीरामचरितमानस

तृतीय सोपान

अरण्यकाण्ड

श्लोक

सूतं धर्मतपोर्विकेकजलधेः पूर्वमुत्तमानन्दं
वैराग्याभ्युज्जमास्करं ह्यद्यत्तमन्त्राणापहं तापहम् ।
मोहान्मोहरपूगपतञ्जविधौ लोभसम्पदं शङ्करं
कन्दे प्रहसकुलं कलहशमनं श्रीरामभूषणियम् ॥ १ ॥

धर्मरूपी हृदयके मूक, विकेकली समुद्रको अमन्द देनेवाले पूर्णचन्द्र, वैराग्यरूपी कमलके [विकसित करनेवाले], सूत, पापरूपी घोर अन्धकारको निधन ही मिटानेवाले, तीनों तापोंको हरनेवाले, मोहरूपी बादलोंके समूहको छिन्न-भिन्न करनेकी विधि (विद्या) में आकाशसे उत्पन्न पवनस्वरूप, नक्षत्रोंके बंशज (आत्मज) तथा कलहनाशक महाराज श्रीरामचन्द्रजीके प्रिय श्रीसहचरजीकी मैं कन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

साध्वानन्दपयोदसौमगतस्तु पीताम्बरं सुन्दरं
पाणौ बाणधारास्तर्त कटिलसत्पूगिरम्बरं वरम् ।
रासीवायतलोचनं धृतमष्टासूदेन संतोषितं
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिमतं रामसिंघमं भजे ॥ २ ॥

जिनका शरीर लज्जुक्त मेघोंके समान सुन्दर (स्वामवर्ण) एवं आनन्दमय है, जो सुन्दर [यत्कलता] पीतकल धारण किये हैं, जिनके हाथोंमें बाण और वज्र हैं, कमर उत्तम तरकशके भाँसे हुए संतोषित है, कमलके समान विप्राजल नेत्र हैं, और महाकमल भटानन्द धारण किये ॥ उन अत्यन्त शोभायमान श्रीपौताजी और लक्ष्मणजीसहित मार्गमें चलते हुए, आनन्द देनेवाले श्रीरामचन्द्रजीकी मैं भजता हूँ ॥ २ ॥

श्लो०—उमा राम गुन गूढ़ पंडित मुनि पार्श्वहिं विरति ।

पार्श्वहिं मोह विमूढ जे इन्दि निमुच न धर्म रति ॥ ३ ॥

हे पार्वती ! श्रीरामजीके गुण गूढ़ ॥ पण्डित और मुनि उन्हें समझकर वैराग्य प्राप्त करते हैं । परन्तु जो भगवान्से निमुच हैं और जिनमें धर्ममें प्रेम नहीं है, वे महामूढ़ [उन्हें सुन्दर] मोहको ग्रस्त होते हैं ॥ ३ ॥

श्लो०—पुर पर मक न प्रीति मैं कई । यदि लज्जुक्त जगद सुहृद ॥

जब प्रभु पति सुख्य अति पवन । कल जे कब सुर नर मुनि मान ॥ ४ ॥

पुत्रवशितेके और भरतकी वहुताय और सुन्दर प्रेम्बध गीने अपनी बुद्धि के
बहुतर गान किया । आ देवता, मनुष्य और मुनिने मनको भलेबाधे प्रभु श्रीराम-
चन्द्रजीके वे अत्यन्त पवित्र चरित्र सुनो, किन्हीं ने कर्म कर रहे हैं ॥ १ ॥

एक बार पुनि कृष्ण सुहाए । निज कर धूपन राख बनार ॥

सीतहि परिराम प्रभु सावर । छिटे पत्थि सिख पर सुंदर ॥ २ ॥

एक बार सुन्दर बृहत्तुलभ श्रीरामजीने अपने हाथोंसे भौंछि-भौंछिके गहने बनाये और
सुन्दर स्फटिकरत्नपर बैठे हुए प्रभुने बाहरके खस वे गहने श्रीसीताजीको भेजाये ॥ २ ॥

सुराति ॥ धरि ककस देस । सठ जाहल रघुपति बस देस ॥

बिनि पिपीलिका सखल मगल । नहा मंदमति पावन चाह ॥ १ ॥

देवराज इन्द्रका सूर्य पुत्र अकल चौएका रूप धरकर श्रीरघुनाथजीका बस देखना
चाहता है । जैसे मगल मन्दबुद्धि पीपीलिका चाह पाना चाहती हो ॥ १ ॥

सीता चरन चौंघ इति भवत । ननु मंदमति कनक सख ॥

बहा हरि रघुनाथक जग । सीक प्रनुष सायक संकाषा ॥ २ ॥

वह मूढ़, मन्दबुद्धि कनकसे (भावनाके कदमों परीक्षा करनेके लिये) बना हुआ
कौसा सीताजीके चरणोंमें चौंघ मारकर भागा । जब रक्त रंग चला, तब श्रीरघुनाथजीने
जाना और रघुनाथ सीक (सरकते) का वाच सम्मान किया ॥ २ ॥

ऐ०—कति सुप्रसन्न रघुनाथक सदा दीन पर मेह ।

छा सल गह कीन्द सनु मूरख मवसुन मेह ॥ १ ॥

श्रीरघुनाथजी, जो अत्यन्त ही कृपण हैं और सिलका रोमोंपर सदा प्रिय खला है,
उन्हें भी उस भक्तुमूर्खके पर मूर्खी बचाने भाकर छल किया ॥ १ ॥

ऐ०—देरित मंग मगसर बाध । भल गति पावत मय पाव ॥

धरि निज बन गहल सिधु पाही । राम विमुक्त छप्पा लेहि गही ॥ २ ॥

जन्मसे प्रेरित होकर वह मगसाल रौद्र । कौसा मयसीत होकर मगल कल । वह
भयवा भल्ली हम दरकर मिला इन्द्रके पास गया, पर श्रीरामजीके विरोधी जानकर
इन्द्रने उसको नहीं रक्खा ॥ २ ॥

म निराल बमकी मय जल । मय बल मय विनि दुर्बल ॥

मगसाल सिधुस सल कील । निरा गति मगसुन मय लोका ॥ २ ॥

उस वह मिराल हो गया, उसके मर्मों मय उलझ हो गया, जैसे दुर्बला क्षुब्धको
बलसे मय हुना या । वह जालीक, शिक्केक अदि समस्त जेकोमें बल हुआ और
मयकोकले व्याकुल होकर मागल मिरा ॥ २ ॥

कई बैल कल व खेही । राम को सम्ह राम कर होही ॥

मग सल गिह समल कलक । सुख होद फिर धुन हरिजापा ॥ ३ ॥

[पर रहना छोड़ रहा] निखीने उसे बैलकेलके लिये नहीं कहा ! श्रीरामजीके
होहीको सौन रल कला है ! [कलकलकली बलते हैं—] हे मगद ! तुमने, उसके लिये
माहा मगसुके समान, मगल मगसुके समान और मगल लिके समान हो जाया है ॥ ३ ॥

निज बरद सल सिधु कै कलकी । ता कई सिधुपन्नी बैलरपी ॥

सल ननु ताहि कलकलु के लल । सो रघुनाथ विमुक्त मगल ॥ ४ ॥

निज लैकहीं उभुभौरी-सी कलते करने लगा है । देवकी बलकी उसके लिये

वैतरणी (यमपुरीकी नदी) हो चली है । हे माई ! सुनिये, जो भीरुनाथजीके विमुख होता है, समस्त जगत् उसके लिये अग्निसे भी अधिक गरम (जलनेवाला) हो जाता है ॥४॥

बारद देखा . बिकल जयन्त । ज्योति दया कोमल पित संता ॥

पठवा तुरत राम . पढ़ि छाही । कहेसि पुकारि प्रवत हित पाही ॥ ५ ॥

नारदजीने जयन्तको व्याकुल देखा, तो उन्हें दया आ गयी; क्योंकि संतोंका निच बड़ा कोमल होता है । उन्होंने उसे [सम्भाकर] तुरंत श्रीरामजीके पास भेज दिया । उसने [जाकर] पुनःपुनः कहा—हे शरणागतके हितकारी ! मेरी रक्षा कीजिये ॥५॥

आतुर समथ कहेसि पद आई । प्राहि प्राहि दंकल रघुराई ॥

अतुलित कल अतुलित प्रभुआई । मैं मतिमंद जाकि गई पाई ॥ ६ ॥

आतुर और शयभीत जयन्तने जाकर श्रीरामजीके चरण पकड़ लिये [और कहा—] हे दयालु रघुनाथजी ! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये । आपके अतुलित कल और आपकी अतुलित प्रभुता (सम्पत्ति) को मैं मन्दबुद्धि जन नहीं पाया था ॥ ६ ॥

भिक्ष कृत कर्म कथित कल पार्यौ । जब प्रभु प्राहि स्तन तकि आक्यौ ॥

सुनि छपल भक्ति आरस वाली । एकनवन करि कल भवानी ॥ ७ ॥

अपने किये हुए कर्मसे उत्पन्न हुआ कल मैंने पं लिया । अब हे प्रभु ! मेरी रक्षा कीजिये । मैं आपकी शरण तककर आया हूँ । [भिक्षजी कहते हैं—] हे पार्यौ ! कृपाश्रु भीरुनाथजीने उसकी अत्यन्त आर्त्त (दुःखमयी) वाली सुनकर उसे एक ओसका काना करके छोड़ दिया ॥ ७ ॥

तो०—कीन्ह मोह बस द्रोह जघपि रोहि कर बच उचित ।

प्रभु छादेउ करि छोड़ को कृपाल रघुबीर सम ॥ ९ ॥

उसने मोहवश द्रोह किया था, इसलिए जघपि उत्तम बच ही उचित था, पर प्रभुने कृपा करके उसे छोड़ दिया । श्रीरामजीके समान कृपाल और कौन होगा ? ॥९॥

बी०—रघुपति चित्रकूट कसि नाग । शरित निम्न मुति बुधा समग ॥

बहुरि राम बस मन भुजुमाक । होइहि भीर सखीहि मोहि जाना ॥ १० ॥

चित्रकूटमें बसकर श्रीरघुनाथजीने बहुत-से चरित्र किये, जो कानोंको अमृतके समान [शीघ्र] हैं । फिर (कुछ समय पश्चात्) श्रीरामजीने मनमें ऐसा अनुमान किया कि मुझे सब ज्ञान गये हैं, इससे [नहीं] फड़ी मीढ़ हो जायगी ॥ १० ॥

सख्य मुक्तिह सब विदा करई । सीता सहित जले ही आई ॥

अत्रि के आश्रम जब प्रभु बसल । मुक्ता महासुखि हरषित मयक ॥ ११ ॥

[इदलिये] सब सुनियोंसे विदा लेकर जीतजीपक्षि दोनों भारी जले । जब प्रभु अग्निजीके आश्रममें गये, तो उनका आश्रम सुनवे ही महासुखि दर्पित हो गये ॥ ११ ॥

पुलकित गत अग्नि सति सांध । देखि संभु आतुर चलि आए ॥

कस्त दंकल सुनि सर जयप । प्रेम करि हौ जन अम्बरार ॥ १२ ॥

शरीर पुलकित हो गया, अकिम्भी उठकर बैठे । उन्हें दौड़े आते देखकर श्रीरामजी और भी शीघ्रतासे चले गये । दण्डवत् करते हुए ही श्रीरामजीको [उठाकर] सुनिनेन्द्रवसे कर्मा स्त्रिया और प्रेमाश्रुयोंके कलसे दोनों कनियोंको (दोनों प्रादुर्बोध) नहला दिया ॥ १२ ॥

देखि राम छवि मयब बुझाने । सखर भिन्न आश्रम सब जगने ॥

करि पूजा कइ बचन सुहाए । विष्ट शूल कल प्रभु मन माए ॥ १३ ॥

श्रीरामजीकी छवि देखकर सुनिके नेत्र भीतर हो गये । जब वे उनको आदर-

पूर्वक अपने आग्रहों के आवे । वृत्त करके पुनर वृत्त कटकर मुनिने मूल और फल दिये, जो मनुके मन्त्रों बहुत स्वे ॥ ४ ॥

सो—प्रभु आसन आसीन भरि लोचन सोमा निरपि ।

मुनिवर परम प्रवीन जोरि पापि अस्तुति करत ॥ ३ ॥

आसनपर निराचमन है । नेत्र मलकर उनकी सोमा देलकर परम प्रवीन मुनिजैष्ठ शाप बोधकर स्तुति करने लगे—॥ ३ ॥

सं—समाप्ति भक्त कसलें । कृष्णलु शील कोमलें ॥

मज्जामि ते फलानुत्तम । भक्तमित्रां स्वधामर्ष ॥ १ ॥

हे भक्तनलल ! हे कृष्णल ! हे कोमल सयामन्त्रके । मैं आपको नमस्कार करता हूँ । मित्रताम पुत्रोंको अपना परमधाम देनेवाले आपके चरणकमलोंको मैं भजता हूँ ॥ १ ॥

विक्रम श्याम सुन्दर । मन्त्रानुवाच मन्त्र ॥

प्रफुल्ल कंज खेचन । मन्त्रादि दोष मोचन ॥ २ ॥

आम निरान्त पुनर, श्याम, संसार (आवागमन) स्त्री समुद्रको मयनेके छिमे सदाचक्रक, फुले हुए कमलके समान नेत्रोंवाले और मन्त्र जादू दोषोंसे छुड़ानेवाले है ॥ २ ॥

प्रलंब फलु विक्रम । प्रमोऽप्रमेय वैभवं ॥

निर्वण चाप सत्यकं । धरं त्रिलोक नायकं ॥ ३ ॥

हे प्रमो । आपकी लंबी मुष्णधौका परक्रम और आपका देशर्षी अप्रमेय (बुद्धिके परे अथवा अधीन) है । आप करुण और धनुष-बाण धारण करनेवाले हैं और लोकोंके स्वामी ॥ ३ ॥

विशेष बंधा मंदनं । मोक्ष चाप खंडनं ॥

सुनील संत रंजनं । सुपरि सुंद मंजनं ॥ ४ ॥

सर्वबंधोंके नूलन, महादेवजीके धनुषको तोड़नेवाले, मुनिराजों और सत्तोंको आनन्द देनेवाले तथा देवताओंके धनु अक्षरोंके समूहका नाश करनेवाले हैं ॥ ४ ॥

ममोक्त वैरि बंदिता । भक्त्यादि देव खेचितं ॥

विशुद्ध बोध विमर्ष । समस्त बुधपापहं ॥ ५ ॥

आम कामदेवके धनु महादेवजीके द्वारा बन्धित, भक्त्या आदि देवताओंके वैरि विधुत शानमय विमर्ष और समस्त दोषोंको नाश करनेवाले हैं ॥ ५ ॥

नमामि इंदिरा पति । सुखाकर सतां गति ॥

मजे लज्जिक सानुजं । शशी पति मियानुजं ॥ ६ ॥

हे कर्णभते ! हे सुतोषी ज्ञान और कपुपुष्पोंकी एकमात्र गति । मैं आपको नमस्कार करता हूँ । हे शशीपति (चन्द्र) के मित्र छोटे मर्द (वामनजी) । स्वस्व-शक्ति कीर्तितापी और छोटे मर्द लज्जनीयविषय आपसे मैं भजता हूँ ॥ ६ ॥

त्वद्वि मूल ये नपः । मज्जति हीन मत्सराः ॥

पतंति ये मवाध्वे । विक्रमं क्षीयि सङ्कुले ॥ ७ ॥

जो धनुष्य मल्ल (बाण) रहित छोकर आपके चरणकमलोंका सेवन करते हैं, वे शर्क-विक्रम (अनेक प्रकारके कन्देह) स्त्री लसोंसे पूर्ण संसारस्त्री समुद्रमें नहीं गिरते (आवागमनके चक्रमें नहीं फँदते) ॥ ७ ॥

विषिक वसिमः सदा । यज्जति सुकये मुदा ॥

निरस्य इंदिराविकं । प्रयाति ते गति स्वकं ॥ ८ ॥

जो एकान्तवासी मुख्य मुक्तिके लिये, रुद्रिवादिप्रति निग्रह करके (उन्हे विषयोले हटा-
कर) प्रसन्नतापूर्वक आपको भजते हैं वे स्वकीय यशिके (अपने स्वस्वको) प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

तमेकमद्भुतं प्रभुं । विरोद्धभीभवं विभुं ॥

जगद्गुरुं च शाश्वतं । तुष्यमेव केवलं ॥ ९ ॥

उन (आप) को जो एक (अद्वितीय), अद्भुत (यायिक बगत्ते विच्छन्न),
प्रभु (सर्वसमर्थ) : इच्छासहित ईश्वर (उनके स्वामी); व्यापक, जगद्गुरु, सनातन
(नित्य), द्वितीय (दोनो गुणोले सर्वथा परे) और केवल (अपने स्वस्वमे स्थित) है ॥ ९ ॥

भजामि भाव चतुर्भ । कुयोपिनां सुदुर्लभं ॥

सम्पत्त कल्प पादपं । समं सुखेव्यमन्वहं ॥ १० ॥

[तथा] जो भावमय, कुयोपिनां (विषयी पुरुषो) के लिये अत्यन्त दुर्लभ,
अपने भक्तोके लिये कल्पवृक्ष (अर्थात् उनकी समस्त कामनाओको पूर्ण करनेवाले); सम
(पक्षपातहित) और सदा सुखपूर्वक सेवन करनेयोग्य है, मैं निरन्तर भजता हूँ ॥ १० ॥

अनूप रूप भूपति । नतोऽधुमुर्विज्ज पति ॥

प्रसीद मे भजामि ते । पद्माब्ज भक्ति रेहि मे ॥ ११ ॥

हे अनुपम सुन्दर ! हे पृथ्वीपति ! हे जाननीनाथ ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ । तुझ-
पर प्रसन्न होइये, मैं आपको नमस्कार करता हूँ । मुझे अपने चरणकमलोकी भक्ति दीजिये ॥ ११ ॥

पठति ये स्तव इह । नरादरेण ते पदं ॥

ब्रजति नाथ संसयं । त्वदीय भक्ति संयुता ॥ १२ ॥

जो मनुष्य इस स्तुतिको आदरपूर्वक पढ़ते हैं, वे आपकी भक्तिसे युक्त होकर
आपके परमपदको प्राप्त होते हैं, इसमें संदेह नहीं ॥ १२ ॥

दो०—बिन्ती करि मुनि नाइ सिद्ध कइ कर जोरि बहोरि ।

चरण सरोरुह भाय जनि कबहुँ तजै मति मोरि ॥ ४ ॥

मुनिने [इत प्रकार] बिन्ती करके और फिर फिर नवाकर, हाथ जोड़कर
कहा—हे नाथ ! मेरी बुद्धि आपके चरणकमलोको कभी न छोड़े ॥ ४ ॥

चौ०—अनुसुहृष्ट के पद गहि सीता । निशि बहोरि सुसतीक विनीता ॥

रिषिपतिनी मय सुख अधिकाई । नानिव देह चिह्न पैराई ॥ १ ॥

फिर परम शीलवती और विभक्त भीषीतानी [अग्निजीकी पत्नी] कनकदासीकी
चरण पकड़कर उनसे मिली । श्रुतिपत्नीके मनमें क्या सुख हुआ । उन्होंने आधिप
देवता सीताजीको पास बैठा किया— ॥ १ ॥

दिन्य बसय मूषम पहिराए । के वित भूतच अमल मुहाए ॥

कइ रिषिबधू सस्य चहु कानी । चरिधर्म कहु न्याच बखानी ॥ २ ॥

और उन्हे ऐसे दिव्य कन और आभूषण पहनाये, जो नित्य नये निर्मल और
मुहावने बने रहते हैं । फिर श्रुतिपत्नी उनके बहाने मधुर और कोमल वाणीसे शिष्योके
कुछ धर्म बखानकर कहने लगीं— ॥ २ ॥

मातु पिता माता हितकरी । मित्राह सब सुख रक्खुमारी ॥

अमिठ दावि अर्ज्य अपदेही । अक्षय सो जरि ओ सेव न चेही ॥ ३ ॥

हे राजकुमारी ! मुनिने—माता, पिता, भाई सभी हित करनेवाले हैं, परन्तु वे
सब एक सीतातक ही [सुख] देनेवाले हैं । परन्तु हे जानकी ! प्रति जो [मोक्षरूप] असीम
[सुख] देनेवाला है । वह कौी अपस है, जो ऐसे पतिनी सेवा नहीं करता ॥ ३ ॥

शरीर धर्म सिद्ध करे नही । धापव काक परिशिर्भाहि चारी ॥
 बुद्ध सेवकस सब धनहीन । नव अधिर प्रोधी जति दीना ॥ ४ ॥
 धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री—इन चारोंकी विषयिके समय ही परीक्षा होती है ।
 बुद्ध, योगी, मूर्ख, निर्बल, जंघा, कहर, क्रोधी और अत्यन्त ही दीन—॥ ४ ॥
 देखेहु पति कर किन्तु अमानस । यदि पान्धु कसुर दुष्ट मान ॥
 एकहु धर्म एक ऋतु नेमा । कर्म वचन मन पति पद प्रेमा ॥ ५ ॥
 ऐसे भी प्रतिका अपमान करनेसे स्त्री कसुरमें मौलिके दुष्ट मानती है ।
 शरीर, वचन और मनसे बरिष्ठे चरणोंमें प्रेम करना स्त्रीके लिये, बल, यह एक ही
 धर्म है, एक ही ऋतु है और एक ही नियम है ॥ ५ ॥

मम पतिव्रता चारि विधि अहर्ही । वेद पुराण संत सब कह्यौ ॥
 वचन के अल वल मन सह्यौ । सपनेहुँ अपन पुत्र सब मान्यौ ॥ ६ ॥
 जगत्में चार प्रकारकी पतिव्रताएँ हैं । वेद, पुराण और संत सब ऐसा कहे हैं
 कि उत्तम भोगीकी पतिव्रताके मन्में ऐसा मान सझ रहता है कि जगत्में [मेरे पतिको
 छोड़कर] दूसरा पुरुष स्वर्गमें भी नहीं है ॥ ६ ॥

मन्मथ परपति वेचार्ज कैसैं । प्रसा रिज पुत्र भिल लैसैं ॥
 धर्म विचारि समुक्ति कुरु रह्यौ । सो विनिष्ट त्रिबलुति अस कह्यौ ॥ ७ ॥
 मन्मथ भोगीकी पतिव्रता पढ़ने पतिको कैसे देखती है, जैसे वह अपना सगा
 भाई, पिता या पुत्र हो । (अर्थात् समान अवस्थावालेको वह भाईके रूपमें देखती
 है, बड़ेको पिताके रूपमें और छोटेको पुत्रके रूपमें देखती है ।) जो धर्मको विचारकर
 और अपने कुलधर्म मर्यादा समझकर बची रहती है, वह निष्ठ (निम्न भोगीकी)
 स्त्री है, ऐसा वेद कहे हैं ॥ ७ ॥

बिनु अन्तर भव तैं रह जोई । जानेहु जगम बारि कर सोई ॥
 पति बंधक करति रति कर्यौ । रौरव नरक कव सत पर्यौ ॥ ८ ॥
 और जो स्त्री मौका न मिलनेसे क मकसस पतिव्रत बनी रहती है, जगत्में ठके
 अधम स्त्री मानना । पतिको बोला देनेवाली जो स्त्री पढ़ने पसिसे रति करती है, वह
 तो सौ संवत्सर रौरव नरकों पड़ी रहती है ॥ ८ ॥

अब सुख लागि जगम सब कोटी । दुष्ट व सखुख सेहि समको खोटी ॥
 बिनु मन गारि पस्य नहि कह्यौ । पतिव्रत धर्म अपि छल कह्यौ ॥ ९ ॥
 छत्रमरने सुखके लिये जो स्त्री करेव (अवलंब) जन्मोंके दुःखको नहीं
 समझती, उसके समान दुष्ट कौन प्रोधी ! जो स्त्री छल छोड़कर पतिव्रत-धर्मको ग्रहण
 करती है, वह यिना ही परिणाम परम गतिसे प्राप्त करती है ॥ ९ ॥

पति प्रतिकूल जगम जई कह्यौ । निषया छोड़ पद बरवाह्यौ ॥ १० ॥
 किन्तु जो पतिके प्रतिकूल चलती है वह जहाँ भी जाकर कम लेती है, नहीं
 जानी पाकर (मरी जगममें) निषया हो जाती है ॥ १० ॥

सो—सहज अपवर्गनि चारि पति सेवक सुम गति लहर ।
 जसु गवत श्रुति चारि अहर्ही तुलसिकन हरिहि प्रिय ॥ ५ (क) ॥
 जो जन्मसे ही अशक्ति है, किन्तु पतिकी सेवा करके वह अनायास ही शुभ गति
 प्राप्त कर लेती है । [पतिव्रत-धर्मके कारण ही] आज भी 'तुलसीदास' मगवान्को
 प्रिय है और चारों वेद उनका वस बाधे हैं ॥ ५ (क) ॥

मुनु सीखा तब पाषा मुमिरि वारि पतिव्रत करहि ।

सोहि प्रानप्रिय, राम कहिहैं कथा संसार द्वि ॥ ५ (ख) ॥

हे सीता ! मुने तुम्हारा जो नाम ही लेकेकर शिवों पतिव्रत-वर्मा का पालन करेंगे । तुम्हें तो श्रीरामजी प्राणोंके समान प्रिय है वह (पतिव्रत-वर्मा) कथा तो मैंने संसारके द्वितीये छिने पड़ी है ॥ ५ (ख) ॥

चौ०—मुनि जानकी वरम मुमु पाल । सार सारु जग सिख गाल ॥

वच मुनि सन कद काननिवाला । जगसु होइ कारें बन लावा ॥ १ ॥

जानकीजीने मुनिकर परम मुक्त पाया और आदरपूर्वक उनके चरणोंमें शिर नवाया । तब कृपाकी क्षात्र श्रीरामजीने मुनिके कहा—जाया हो तो अब दूखे कागें बाँटें ॥ १ ॥

संतत मो पर कृपा करेह । केक खाति छोड़ु बसि नेह ॥

बन पुरंघर प्रभु है जयी । मुनि सोम कोडे मुनि व्यापी ॥ २ ॥

मुनिकर निरन्तर कृपा करते रहियेगा और अपना केक जानकर सोद न छोड़ियेगा । वर्माहृत्पर प्रभु श्रीरामजीके वचन मुनिकर जानी मुनि प्रेमपूर्वक बोले— ॥ २ ॥

कोसु कृपा गाल सिख लक्ष्मणी । चहु सख परसरन सरी ॥

हे तुम्हें राम जगसु पिछारे । हीन कहु चहु बचन उचारे ॥ ३ ॥

मन्ना, शिर और सनघरि सरी परमार्थशायी (तपनेत्र) झिन्की कृपा चाहते हैं, हे रामजी ! आप सरी निष्काम पुरुषोंके भी प्रिय और सोनेके चन्दु समकाल हैं, जो इस प्रकार बोमल बचन बोम रहे हैं ॥ ३ ॥

जग जानी मैं भी चतुर्ह । बनी तुम्हदि सब देव विहारी ॥

केहि समान जगिषम बहि कोई । त कर सीख कस व मन होई ॥ ४ ॥

अब मैंने छद्मीकी चतुर्हरे लक्ष्मी, जिन्होंने सब देवताओंको छोड़कर अपनी-को मन्ना । जिसके समान [उन बातोंमें] अल्प बड़ा और कोई नहीं है, उरका शील, भला, ऐसा कौन न होगा ! ॥ ४ ॥

केहि किहि कही नाहु भन लक्ष्मी । कहहु बच तुम्ह संतरलानी ॥

अब कहि प्रभु भिजेकि मुनि जेरा । जेबच अब चर पुंछक सरी ॥ ५ ॥

मैं किंतु प्रभु कहूँ कि हे लक्ष्मी ! आप अब चाहते हैं वे बच । आप अन्तर्धानी हैं, आप ही कहिये । देखा कष्टर और मुनि प्रभुके देखने कोये । मुनिके नेत्रोंसे [प्रेमभुम्भिका] अब वह रहा है और शरीर पुष्पित है ॥ ५ ॥

क०—तन पुलक निर्मर प्रेम पूरन नवन मुख पंछ विच ।

अन म्यान गुन गोतीव प्रभु मैं लीन जप तप का किए ॥

अप जोग धर्म समूह तैं मर मयति अनुपम पावई ।

रखुबीर बरित पुनीत निशि दिन दस मुखी गावई ॥

मुनि अत्यन्त प्रेम्मे पूर्ण हैं उनका शरीर पुष्पित है और नेत्रोंको श्रीरामजीके मुख-कमलमें लपाने हुए हैं । [मनमें निवचन रहे हैं कि] मैं ऐसे कौनसे बच-तप क्रिये थे जिसके फलमें मन, अन्त, गुण और अन्तिमोंके मे प्रभुके दर्शन पाये । जग, जोग और धर्मसमूहसे मनुष्य अनुपम अधिको पाया है । जोखुबीरके वचन बरितको मुखीवाच रात-दिन गाया है ।

दो०—कलमल समम दयम मन राम मुख मुख मुख ।

आदर मुखहि जे सिद्ध पर राम रहि अनुहूत ॥ ६ (क) ॥

श्रीरामचन्द्रजीका सुन्दर वध कछिपुष्पके पाखेंछ नम्र करनेवाला; मनको दमन करनेवाला और सुखका मूल है। जो जेग हूँ आदरपूर्वक बुझते हैं उनपर श्रीरामजी प्रसन्न रहते हैं ॥ ६ (क) ॥

सौ—कठिन काठ मल कोस धर्म न भ्रान न जोग लप ।

परिहरि सखल मयोस रामहि मज्झि ते चतुर नर ॥ ६ (ख) ॥

वह कठिन, कठिनाल पाखेंका खजाना है; इसमें न धर्म है, न भ्रान है और न जोग तथा लप ही है। इसमें तो जो जेग सब मयोसोंको छोड़कर श्रीरामजीको ही भजते हैं, वे ही चतुर हैं ॥ ६ (ख) ॥

सौ—मुनि पद कमल चह करि सीता । कले बरहि सुर नर मुनि हैसा ।

सायें राम अनुज पुनि पाछें । मुनि कर देव बने कति फाछें ॥ १ ॥

मुनिके चरणफरसें सिर नवाकर देवता; अनुज और मुनिबोके स्वामी श्रीरामजी वनको चले। आगे श्रीरामजी हैं और उनके पीछे छोटे भाई लक्ष्मणजी हैं। दोनों ही मुनिबोका सुन्दर देव बनाये अत्यन्त सुसोमित हैं ॥ १ ॥

कनक बीच भी सोहै कैसी । मझ बीच विष जग्या लैसी ।

सरिता कम निरि अवलद बाढ । फरी पहिचानि हैहि कर बाढा ॥ २ ॥

दोनोंके बीचमें श्रीरामजीकी कैसी सुसोमित हैं, जैसे मझ और बीचके बीच माया हो। नदी, वन, पर्वत और दुर्गम, पाटियों; सभी अपने स्वामीको पहचानकर सुन्दर रास्ता दे देते हैं ॥ २ ॥

जहाँ जहाँ जहि देव सुरान । करहि मोह जहाँ जहाँ बध जग्या ॥

मिझ असुर विराज भग बाढा । अवलही रहवीर विपाढा ॥ ३ ॥

जहाँ-जहाँ देव श्रीरामजीकी जाते हैं, जहाँ-जहाँ बाध आनाशने काया करते जाते हैं। रास्तेमें कति हुए निराश राजस मिझ। रामने आगे ही श्रीरामायणीने ठसे मार बाढा ॥ ३ ॥

दुखहि रुचि कय ठैहि कथा । देखि हुषी निज बस पखवा ॥

हुनि भाए जहाँ मुनि धरमम । सुंदर अनुज साकसी संग ॥ ४ ॥

[श्रीरामजीके हाथों मरते ही] जसने दुरंत सुन्दर (दिग्गज) रूप प्राप्त कर लिया। इसी देखकर प्रभुने ठसे अपने परम भाग्यो जेव दिवा। फिर वे सुन्दर छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीतलकी साथ बहाँ जाये जहाँ मुनि धरममजी थे ॥ ४ ॥

सौ—देखि राम मुख पंकज मुखिवर लोचन भृंग ।

साधर पाव कलत अति कम-जम्-सुरमंग ॥ ७ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका मुख-कमल देखकर मुनिबोछने जेवरुती सौरे अत्यन्त आदर-पूर्वक उठका [मन्दिररस] पल कर रहे हैं। धरममजीका कम धन्य है ॥ ७ ॥

सौ—अब मुनि कुछ खुशी हुमाका। संज साजस राजमराठा ॥

जात रोहें किधि के जस । मुनेहें जवन बज पेहहि राम ॥ १ ॥

मुनिके कहा—हे जगल खुशी ! हे अंजलीके सनसनी मानसरोवरके राजहंस ! मुनिने मैं अत्यन्तकी जा रहा था। [इत्येते] कनोते मुन कि श्रीरामजी वनमें आयेगे ॥ १ ॥

जिसस प्रेव खेहें दिव राती । कम मख देखि लुपानी काती ॥

राज ठकल खानन-जै हीन । कौनही दुख जानि धन दीका ॥ २ ॥

तबसे मैं दिन-रात आपकी राह देखता रहा हूँ। अब (गाल) प्रभुको देखकर मेरी छाती पीतल हो गयी। हे नाथ ! मैं उन साधनोंसे हीन हूँ। आपने अपना दीन सेवक जानकर मुझपर कृपा की है ॥ २ ॥

तो कहू देव च-मोहि निहोरा । निज पम राखेन जन मन चोरा ॥

तब कथि रहहु दीन हित धर्यी । जय कथि मिली तुम्हहि सतु त्यागी ॥ ३ ॥

हे देव ! वह कुछ सुखपर आपका एहसान नहीं है। हे भक्त-मन-चोर ! ऐसा करके आपने अपने प्रणकी ही रखा की है। अब इस दीनके कल्याणके लिये तबतक यहाँ ठहरिये जबतक मैं शरीर छोड़कर आपसे [आपके धर्ममें न] मिलूँ ॥ ३ ॥

जोग नय्य अब तब मत कीन्हा । प्रभु कई वेद भगति कर कीन्हा ॥

एहि विधि सर सधि मुनि सरभत्ता । बैसे इदर्ये जयि सब रत्ता ॥ ४ ॥

योग, यज्ञ, जप, तप जो कुछ मत आदि भी मुनिने किया था, सब प्रभुको समर्पण करके 'यदस्ते' भक्तिका यज्ञान के लिए। इस प्रकार [दुर्लभ भक्ति प्राप्त करके फिर] बिना रुककर मुनि धर्ममग्न होइते सब जातकि छोड़कर उत्तर का बैसे ॥ ४ ॥

दो—सीता धनुज समेत प्रभु गीळ जळद तनु स्वाम ।

मम हिर्ये बसहु निरंतर सगुणरूप श्रीराम ॥ ८ ॥

हे नीले मेघके समान स्वाम शरीरवाले सगुणरूप श्रीरामजी ! सीताजी और छोटे भाई लक्ष्मणजीवहित प्रभु (आप) निरन्तर मेरे हृदयमें निवास कीजिये ॥ ८ ॥

चौ०—अस कहि सोय भगिनि सतु जरा । राम कृपा बैकुण्ठ सिंहास ॥

ताते मुनि हरि छीन न भवत । प्रभुसहि भेद भगति कर कपळ ॥ १ ॥

ऐसा कहकर शरद्वंशीने योगाग्नि अपने शरीरको जला डाल और श्रीरामजीकी कृपासे वे बैकुण्ठको चले गये। मुनि भगवान्में छीन इसलिये नहीं हुए कि उन्होंने पहले ही भेद-भक्तिका कर के लिया था ॥ १ ॥

रिचि निराम मुनिर गति देखी । सुखी सपु निज इदर्ये विसेकी ॥

भक्तुति करहि लख्य मुनि मुंहा । जयति प्रकट हित कल्या क्यो ॥ २ ॥

श्रुतिस्मृत्य, मुनिभेद, धर्ममग्निकी वद [दुर्लभ] गति देखकर अपने हृदयमें विशेषसंग्रहे सुखी हुए। समस्त मुनिवृन्द श्रीरामजीकी सति कर रहे हैं [और प्रभु रहे हैं] शरणागतहितकारी करुणाकन्द (करुणाके मूल) प्रभुकी अब हो ॥ २ ॥

मुनि रघुनाथ चले बग्न जगमे । सुनिबर छंद विपुल सैत काये ॥

अस्ति समूह देखि रघुराया । पूज्य मुनिर्ये सगति भति दाया ॥ ३ ॥

फिर श्रीरघुनाथजी आगे बढ़ते चले। श्रेष्ठ मुनिकेन्द्र-रघुनाथ समूह उनके साथ हो लिये। इन्द्रियोंका डेर देखकर श्रीरघुनाथजीको बड़ी दया आयी, उन्होंने मुनिकेन्द्र पूजा ॥

जानवहुं भुक्तिर्यस्य स्वामी । सत्त्वसो तुम्ह प्यारसामी ॥

निश्चिन्त निज सकल मुनि साय । सुवि रघुवीर मकर जल जाय ॥ ४ ॥

[मुनिकोंने कहा—] हे स्वामी ! जलप्य सर्वदशी (सर्वत्र) और अन्तर्पामी (सबके हृदयकी जाननेवाले) हैं। जानते हुए भी [जलवायकी तरह] हमसे कैसे पूछ रहे हैं ! राखोंके दलोंने उन मुनिकोंको सा जल्य है [ये सब उनकी रक्षियोंके डेर हैं]। यह-मुनिके ही श्रीरघुनाथके, नेत्रोंमें जल आ गया (उनकी आँखोंमें करुणाके आँसू भर गये) ॥ ४ ॥

दो०—मिसिचर हीन करहैं यहि मुल उठर सब कीन्ह ।

सकल मुनिन्ह के व्याघ्रमनिह जाइ बार सुख दीन्ह ॥ ९ ॥

भीरमजीने भुजा उठाकर प्रण किया कि मैं दृष्टीको रखौंते रहित कर दूँगा । फिर
[समस्त मुनियोंके आश्रमोंमें जा-आकर उनको [दर्शन एवं संभाषणका] सुख दिया ॥ ९ ॥

चौ०—भुनि जगति कर सिध्द भुजाना । नम सुतीक्ष्ण रति भगवाना ॥

प्रम प्रम बचन राम पद सेवक । छपनेहुँ भाव भरोस न देखेक ॥ १ ॥

भुनि जगत्पतीने एक सुतीक्ष्ण नामक सुबन (शरीर) शिष्य थे, उनको
भगवान्में प्रीति थी । वे मन्त्र वचन और कर्मों की प्रशंसाकी चरणोंके सेवक थे । उन्हें
स्वप्नमें भी किसी दूसरे देवताका भरोसा नहीं था ॥ १ ॥

प्रभु आनन्द भगव मुनि पावा । फल भरोस भगुर पावा ॥

हे किंचि बोवबुध खुरावा । सो से बड पर करिहहि हावा ॥ २ ॥

उन्होंने क्यों ही प्रभुका भावमान कर्मोंसे सुन पावा, क्यों ही अनेक प्रकारके
मनोरथ करते हुए वे आनुराग (प्रीति) से दीव करते । हे विद्वान् ! क्या दीनबन्धु
कीर्तुनाथकी मुक्त-जैसे दुष्टता भी दवा करेंगे ॥ २ ॥

सहित भगुर बोधि राम गोसाई । सिद्धिहि निज सेवक की भाई ॥

सोरे किचि भरोस दह कहीं । भयति विरति दग्धानमभाई ॥ ३ ॥

क्या स्वामी भीरमजी छोटे भाई अस्मकनीरहित मुक्तसे अपने सेवककी तरफ
मिलेंगे ! मेरे हृदयमें इद विधात नहीं होया; क्योंकि मेरे मनमें यकि, वैराग्य या हाव
कुछ भी नहीं है ॥ ३ ॥

बहि सतसंग जोग सब जाया । बहि सब करव काल भगुराया ॥

एक भयि कलमनिघन की । सोप्रिय कालें कति न भाव की ॥ ४ ॥

मैंने न तो सत्सङ्ग, योग, सब अपना कुछ ही किये हैं और न प्रभुके चरणकमलों-
में मेरा इद अनुराग ही है । हाँ, दवाके मन्त्राद प्रभुकी एक वान है कि बिने किसी
दुष्टका सहाय नहीं है वह उन्हें प्रिय होता है ॥ ४ ॥

सोहैं सुखल काल मम लोक । देखि सब पंकज सब मोचन ॥

सिमेर मेम समन भुनि गायी । करि न जाइ लो दुख भवानी ॥ ५ ॥

[भगवान्की इत वानका कारण आते ही भुनि आनन्दमय होकर मन-ही-मन
कदने लगे—] अह ! भगवन्पदोंके सुगन्धोंके प्रभुके सुचारुचिन्तोंके देखकर, आज मेरे
मेव सुख होये । [किन्तु कहते हैं—] हे भगवन् ! कर्मों भुनि प्रेममें पूर्णरूपसे
निमग्न है । उनकी वह बला कही नहीं जाती ॥ ५ ॥

विशि मत् विदिसि पंथ बहि सुखा । सो से चलेहैं कहीं बहि सुखा ॥

कमहुँक किमि कालें भुनि जाई । कमहुँक सुख कष्ट गुन भाई ॥ ६ ॥

उन्हें दिग्ग-विदिसि (दिशाएँ और उनके कोण आदि) और रास्ता, कुल भी
नहीं सुख एव है । मैं कौन हूँ और क्यों आ रहा हूँ, वह भी नहीं जानते (इतका भी
मान नहीं है) । वे कभी किसी दूसरेके फिर आगे चलने छाते हैं और कभी [प्रभुके]
गुण या-गाकर नाचने लगते हैं ॥ ६ ॥

अनिरुध मेम भयति भुनि भाई । प्रभु देखे तब छोड सुकाई ॥

अतिप्रिय प्रीति देखि खुशीस । प्रभु देखे हृदय हृदय सब सीर ॥ ७ ॥

भुनिने भगवद् प्रेममयकि प्राप्त कर ली । प्रभु भीरमजी मुक्तकी आहुते निगकर

[भक्तकी प्रेमोन्मत्त दशा] देख रहे हैं । मुनिका सत्त्वेन्त प्रेम देखकर भक्तियोग (आचारामनके भय) को हरनेवाले श्रीसुनायजी मुनिके हृदयमें प्रकट हो गये ॥ ७ ॥

मुनि मग मातृ ज्वल होय बैसा । फुल्ल सरिर वनस फल बैसा ॥

तब सुनाय निकट चकि जाय । देखि दसा किछ बच मन भाय ॥ ८ ॥

[हृदयमें प्रभुके दर्शन पाकर] मुनि बीच रास्तेमें ज्वल (सिर) होकर बैठ गये । उनका शरीर रोमाञ्चके कटहलके फलके समान [कण्टकित] हो गया । तब श्रीसुनायजी उनके पास चके आये और अपने भक्तकी प्रेमदश देखकर मनमें बहुत प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥

मुनिहि राम बहु जौति ककया । जग न ज्वायअधि सुख पाया ॥

भूप रूप सब राम हुपया । हृदयें चतुर्मुख रूप देखाया ॥ ९ ॥

श्रीरामजीने मुनिसे बहुत प्रशंसा जगावा । पर मुनि नहीं जागे; क्योंकि उन्हें प्रभुके स्नानका सुख प्राप्त हो रहा था । तब श्रीरामजीने अपने राजस्वरको लिया लिया और उनके हृदयमें अपना चतुर्भुक्क रूप प्रकट किया ॥ ९ ॥

मुनि भक्तगह उठा तब कैलें । किछ हरि मरि कबिहर कैलें ॥

भारों देखि सम सग स्यामा । सीता अनुज सहित मुख धामा ॥ १० ॥

तब (अपने हृदय-स्वरूपके अन्तर्धान होते ही) मुनि कैले व्याकुल होकर उठे, जैसे श्रेष्ठ (मणिधर) सर्व मणिके बिना व्याकुल हो जाता है ! मुनिने अपने रामने सीताजी और लक्ष्मणजीसहित स्वामन्दरविग्रह मुखधाम श्रीरामजीको देखा ॥ १० ॥

परोड लकुट ह्व वरचन्हि छागै । प्रेम माय मुक्तिवर वडभागी ॥

मुख चित्तल पदि लिप बडाई । परम प्रीति रपदे हर काई ॥ ११ ॥

प्रेममें मग हुए वे नङ्गमागी श्रेष्ठ मुनि लठीकी तरह बिरकर श्रीरामजीके चरणोंमें लगा गये । श्रीरामजीने अपनी चित्तल भुजाओंसे पकड़कर उन्हें उठा लिया और वड़े प्रेम्से हृदयसे कृपा रक्सा ॥ ११ ॥

मुनिहि मिलत भक्ष सोह कृपाकर । कबक कचिद अनु बँद समका ॥

राम बचु । विलोक मुनि अप्प । मगहुँ चित्त मगस किमि काकर ॥ १२ ॥

कृपाशु श्रीरामचन्द्रजी मुनिसे मिलते हुए ऐसे सोमिल हो रहे हैं मानो सोनेके धूलके समानका वृक्ष राखे काकर मिल रहा हो । मुनि [निस्तम्ब] खड़े हुए [टकटकी लगाकर] श्रीरामजीका मुख देखा रहे हैं । अपने चित्रमें लिखकर बढाये गये हैं ॥ १२ ॥

दो०—सब मुनि हृदयें घीर धरि यदि पदं पारहि पार ।

निज आश्रम प्रसु जनि करि पूजा विविध प्रकार ॥ १० ॥

तब मुनिने हृदयमें धीरज वस्तर बार-बार चरणोंको स्पर्श किया । फिर प्रभुको अपने आश्रममें लाकर अनेक प्रकारसे उनकी पूजा की ॥ १० ॥

चौ०—कह मुनि प्रसु सुनु जियती मेरी । मस्तुति करी कबह बिधि तोरी ॥

महिमा बसित मोरि मरि मेरी । रवि समुद्र खलोल बँवोरी ॥ ११ ॥

मुनि कहने लगे—हे प्रभो ! मेरी मिनती सुनिये । मैं जिस प्रकारसे आपकी स्तुति करूँ आपकी महिमा अपार है और मेरी बुद्धि अल्प है । जैसे सूर्यके सामने जुगन्का उजाड़ा । १

स्वाम तामरस दाम सरीर । कथा सुकट पतिधन मुनिचरि ॥

पाणि चाह बार कटि सुधीर । जैमि विरलर श्रीसुधीर ॥ १२ ॥

हे नीलकण्ठजी मातृके समान स्वाम सरीरवाले । हे बढाजीक सुकट और

मुनिवोंके (वल्कल) वस्त्र पहने हुए, हाथोंमें धनुष-बाण लिये तथा कमरमें तरफत कने हुए श्रीरामजी ! मैं आपको निरन्तर नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

मोह विविध धम दहन कुवाण्डु । संत सरोवह वननव भाहु ॥

दिशिधर करि वस्त्र सुगराज । जगु सदा नो भव खम बाणः ॥ ३ ॥

जो मोहरूपी भने कनको लज्जनेके लिये अग्नि हैं, संतलूपी कमलोंके बनके प्रफुल्लित करनेके लिये स्वर्ग हैं, रासलूपी हाथिभेके समूहके पहाड़नेके लिये सिंह हैं और भव (आश्रयभर) रूपी पत्थीके जलनेके लिये बाणरूप हैं, वे प्रभु सदा हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥

भस्त्र वस्त्र रावीच सुषेर्ष । सीता वनन वकीर निरीर ॥

हर इदि माकस वाक भवळ । नमि राम न्ना वाहु विवाळ ॥ ४ ॥

हे सात कमलके समान नेत्र और सुन्दर चेहरेके । सीताजीके नेत्ररूपी बकरोके चन्द्रमा, शिवजीके हृदयरूपी मानसरोवरके वाह्यंश, विष्णुके हृदय और बुझानेके श्रीरामचन्द्रजी ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥

संक्षय सार प्रथम उरगद । वनन धुक्कैत तर्क विवाहः ॥

सब भवन रंजन सुर यूप । जगु सदा नो ह्वा वक्ष्यः ॥ ५ ॥

जो संक्षयकपी सर्वको प्रथनेके लिये गच्छ हैं, भस्त्रक छोटे तर्कों उत्पन्न होनेवाले विचारका नाश करनेवाले हैं, आश्रयभरके मिटानेवाले और देखानेके समूहको आनन्द देनेवाले हैं, वे कृपाके समूह श्रीरामजी सदा हमारी रक्षा करें ॥ ५ ॥

विशुच सपुण विषम सम धर्म । ज्ञान गिरा योहीतममूर्ध ॥

अमकमकिवननवचमवार । नमि राम नमि भदि भार ॥ ६ ॥

हे मित्रों, वसुध, विषम और समरूप । हे ज्ञान, वाणी और इन्द्रियोंके आसीत ! हे अनुभव, निर्मल, सम्पूर्ण, दीपराहित्य अनन्त एवं पूज्यका भार उठानेवाले श्रीरामचन्द्रजी ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ६ ॥

भक्त कल्पपाद आराम । सर्वव शोध क्षेत्र मध वननः ॥

भति ननर भव सागर सेतु । जगु सदा दिवकर पुक केतुः ॥ ७ ॥

जो भक्तिके लिये कल्पवृक्षके बगिचे हैं, शोध, शोध, मध और कामको करनेवाले हैं, भक्तन ही चतुर और संसाररूपी समुद्रके तटनेके लिये सेतुकम हैं, वे सर्वकुलकी भूजा श्रीरामजी सदा मेरी रक्षा करें ॥ ७ ॥

समुहित भुज प्रताप वल वननः । ककिमक विपुल विभक्तव ननः ॥

वनन - वनन नर्मद शाक प्रमनः । संतत नो एनोदु भव रासः ॥ ८ ॥

मिनकी भुजाभोजन प्रताप अतुलनीय है, जो कलके घाम हैं, किन्ना नाम कलिभुग-के बड़े भारी पत्थोंका नाश करनेवाला है, जो धर्मिक कल्प (रक्षक) हैं और भित्तके गुणसमूह आनन्द देनेवाले हैं, वे श्रीरामजी निरन्तर मेरे कल्याणका विचार करें ॥ ८ ॥

वदपि विरल व्यापक अविनाशी । सब के हृदयें विरंतर वासी ॥

वदपि अलुन श्री सदित सवारी । कस्तु सवसि मम कावकपायी ॥ ९ ॥

वदपि आप निर्मल व्यापक, अविनाशी और सबके हृदयमें निरन्तर निवास करनेवाले हैं, तपामि हे सवारी श्रीरामजी ! व्यापकी और सीताजीवहित बनमें विचरने-वाले आप इरी, रुपाँ में हृदयमें निवास कीजिये ॥ ९ ॥

वे जानाई वे अनहुँ सासी । समुच अमुच दर अंतरवासी ॥

जो कोसक वसि रविन वक्ष्य । कस्त सो राम हृदय मम वननः ॥ १० ॥

हे स्वामी ! आपने जो स्तुति, निर्गुण और अन्तर्गामी जानते हैं, वे जाना करें, मेरे हृदयको तो कोसछवि कमलनयन श्रीरामजी ही अपना घर बनावें ॥ १० ॥

अस धर्ममात्र जाहू जनि मोरे । मैं सेवक स्तुति पति मोरे ॥

मुनि मुनि बचन राम मन भाए । बहुरि हरि मुनिवर कर आए ॥ ११ ॥

ऐसा अमिमान भूछकर भी न कूटे कि मैं तेवक हूँ और श्रीरघुनाथजी मेरे स्वामी हैं । मुनिके बचन सुनकर श्रीरामजी मनमें बहुत प्रसन्न हुए । तब उन्होंने हर्षित होकर ओष्ठ मुनिको हृदयसे लगा लिया ॥ ११ ॥

परम प्रसन्न जानु मुनि सोही । जो कर मगनु देखैं सो तोही ॥

मुनि कह मैं कर कहूँ न जाय । सखि न पद कू क ताया ॥ १२ ॥

[और कहा—] हे मुनि । मुझे परम प्रसन्न जानो । जो कर मँगो, वही मैं हूँ हूँ । मुनि सुतीक्ष्णजीने कहा—मैंने तो कर कभी मँगवा ही नहीं । मुझे उमर ही नहीं पड़ता कि क्या कहूँ है और क्या उत्तर दे (क्या मँगूँ, क्या नहीं) ॥ १२ ॥

गुरहि नीक कनै खुरद । सो मोहि देहु वास सुखदाई ॥

अविस्स भगति । विरति । विम्वारा । होहु सकल गुन स्वात निषाया ॥ १३ ॥

[अता] हे रघुनाथजी । हे दासोंको सुख देनेवाले ! आपको जो अच्छा लगे मुझे वही दीजिये । [श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे मुनि ।] इस प्रसन्न भक्ति, वैराग्य, विज्ञान और समस्त गुणों तथा ज्ञानके निधान हो जाओ ॥ १३ ॥

प्रभु हो वीर्य सो अब मैं पाया । अब सो देहु मोहि जो भाया ॥ १४ ॥

[तब मुनि बोले—] प्रभुने जो करदान दिया वह तो मैंने पा लिया । अब मुझे जो अच्छा लगा है वह दीजिये— ॥ १४ ॥

दो—अनुज जानकी सहित प्रभु पाए वान कर राम ।

मम हिय गवन ईदु इय बसई सुख निहकाम ॥ ११ ॥

हे प्रभो ! हे श्रीरामजी ! जोटे माई लक्ष्मणी और सीताजीसहित वनप्रवाणचारी आप निष्काम (स्विर) होकर मेरे हृदयको आपका मर्म चन्द्रमाकी भाँति सदा निवास कीजिये ॥ ११ ॥

बो—एवमस्तु करि । एवमिवास्तु । हरि चले कुंभज सिधि रासा ॥

बहुत दिवस गुर बससु पाई । भए मोहि एहि आश्रम भाई ॥ १२ ॥

एवमस्तु (देवा ही हो) ऐसा उच्चारण कर लक्ष्मीनिवास श्रीरामचन्द्रजी हर्षित होकर अगस्त्य ऋषिके पास चले । [तब सुतीक्ष्णजी बोले—] गुरे अगस्त्यजीका दर्शन पाये और इस आश्रममें आये मुझे बहुत दिन हो गये ॥ १२ ॥

अब प्रभु संग जालें गुर पाही । तुम्ह कहैं नाम विहीन कही ॥

हेरि कृपानिधि मुनि खुरद । निरु संग विरसे हो माई ॥ १३ ॥

अब मैं भी प्रभु (आप) के साथ गुस्तीके पास चला हूँ । हमें हे नाथ ! आपपर मेरा कोई परेशान नहीं है । मुनिकी खुरदा देखकर कुपाके मन्दार श्रीरामजीने उनको साथ ले लिया और दोनों माई होने लगे ॥ १३ ॥

पय कहत निज भगति कथा । मुनि आश्रम पहुँचे सुखदा ॥

सुख सुखीजन हुए एहि गच्छ । करि ईश्वर कहत अस भक्त ॥ १४ ॥

रास्तेमें अपनी अनुपम भक्तिक कर्मन करते हुए, देवतागणों राजराजेश्वर श्रीरामजी अगस्त्य मुनिके आश्रमपर पहुँचे । सुतीक्ष्ण तुरंत ही मुन अगस्त्यजीके पास गये और दण्डवत् करके ऐसा कहने लगे— ॥ १४ ॥

तब कोऊलप्रीत कुमरा । कष्ट मिलत जगत आधारा ॥
 राम अनुज समेत वैदेही । निशि शिशु देव जगत बहु जेही ॥ ४ ॥
 हे नाथ ! असोआके राजा दशरथजीके कुमार जगदाधार श्रीरामचन्द्रजी छोटे
 भाई लक्ष्मणजी और सीताजीपक्षित आपसे मिलने आवे हैं, जिनका हे देव ! आप रात-
 दिन बर करते रहते हैं ॥ ४ ॥

मुनत, कष्टहि मुनत उठि धाए । हरि कियोकि कोवन बल छाप ॥
 मुनि पद कमल परे हो भाई । तिथि धति प्रीति छिप उर लाई ॥ ५ ॥
 वह सुनते ही जयसत्त्वजी तुरंत ही उठ दौड़े । भगवान्को देखते ही उनके नेत्रोंमें
 [आनन्द और प्रेमेके आँसुओंका] जल भर गया । दोनों भाई मुनिके चरणकमलोंपर
 गिर पड़े । ऋषिने [उठाकर] बड़े प्रेमेसे उन्हें हृदयसे बसा लिया ॥ ५ ॥
 कायर कुसक पृथि मुनि ग्यानी । जलन कर बैहारे, आनी ॥
 मुनि करि बहुत प्रकार प्रभु पूजा । मोहि सम आत्मवंत मरि दूजा ॥ ६ ॥
 गानी मुनिने आचरपूर्वक कुशल पूछकर उनको लेकर बैठ आसनपर बैठाया । फिर
 बहुत प्रशंसासे प्रभुकी पूजा करके कहा—मैं छान मान्यवान् आज दूसरा कोई नहीं है ६
 काहें कवि को जयर मुनि दूता । हरये सब कियोकि सुखकांछा ॥ ७ ॥
 वहाँ ज्योतक (जितने भी) अन्य मुनिगण थे, सभी आनन्दकन्द श्रीरामजीके
 दर्शन करके हर्षित हो गये ॥ ७ ॥

श्री०—मुनि समूह महीं बैठे सन्मुख सब की ओर ।

सज्ज होहु लग चितवत मातहुँ निहदर बकोर ॥ १२ ॥
 मुनियोंके समूहमें श्रीरामचन्द्रजी सबकी ओर सम्मुख होकर बैठे हैं (अर्थात्
 प्रत्येक मुनिकी श्रीरामजी अपने ही सामने मुख करके बैठे दिखायी देते हैं और सब मुनि
 एकदली छाये उनके मुखको देख रहे हैं) । ऐसा बात पढ़ता है मानो चकोरीका
 समुदाय परतूर्णिकीके चन्द्रमाकी ओर देख रहा हो ॥ १२ ॥

चौ०—तब रामजीर कहा मुनि पाहीं । सुन्द लग प्रभु दुख कहु ताहीं ॥
 सुन्द बामहु बेहि कारण बामहीं । ताते तब व कहि ससुभायई ॥ १३ ॥
 तब श्रीरामजीने मुनिके कहा—हे प्रभो ! आपसे तो कुछ छिपाव है नहीं ।
 मैं जिस कारणसे आया हूँ वह आप जानते ही हैं । इसीसे हे राजा ! मैंने आपसे
 समझाकर कुछ नहीं कहा ॥ १३ ॥

शब सो मंत्र देखे प्रभु खेही । बेहि प्रकार तानी मुनिजोही ॥
 मुनि समुदायने मुनि प्रभु जानी । पछेहु कब मोहि क्य तानी ॥ १४ ॥
 हे प्रभो ! जब आप मुझे वही मन्त्र (मन्त्रह) दीजिये, जिस प्रकार मैं मुनियोंके
 छोटी राखणोंको मार्के । प्रभुजी बाणी सुनकर मुनि मुखपरसे और बोले—हे नाथ !
 आपने क्या समझकर मुझसे वह प्रश्न किया है ? ॥ १४ ॥

‘सुन्दरेई’ मन्त्रन प्रकृत जगदी । बाचई महिमा कयुक सुन्दारी ॥
 उमरि तब बिसाल जग जगत् । पल पलाने कबैक निकाया ॥ १५ ॥
 हे पर्योका नाथ करनेवाले ! मैं तो जानतीके मन्त्रके प्रभावसे आपकी कुछ मोदी-
 सी महिमा जानता हूँ । आपकी तथा मन्त्रके निजाल मुझके समान है, अनेकों
 नरानोंके समूह ही जिनके पल हैं ॥ १५ ॥

जीव चराचर जंतु समस्त । नीतर कसहि न जातहि जाना ॥

ते फल भक्षक कठिन बनस्य । सब सर्व परत सदा सोन काका ॥ ४ ॥

पर और अकर जीव [गूलरके फलके नीतर रहनेवाले छोटे छोटे] जन्तुओंके समान उन [ब्रह्माण्डरूपी फले] के नीतर बसते हैं और वे [अपने उस छोटे से जगतके सिवा] दूसरा कुछ नहीं जानते । उन पक्षोंका भक्षण करनेवाला कठिन और कराछ काछ है ! वह काछ भी सदा आपसे मगमीव रहल है ॥ ४ ॥

ते गुह्य सकल लोकप्रति साईं । ऐंतिहु मोहि मनुज की आई ॥

बह बर मागउं कृपानिकेत । बसहु इवयें श्री अनुम समेत ॥ ५ ॥

उन्हीं आपने समस्त लोकप्रत्येके स्वामी होकर भी मुझसे मनुष्यनी तरह प्रभ किया । हे कृपाके धाम ! मैं तो कह कर गंगाया हूँ कि आप श्रीजीवाजी और छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित मेरे हृदयमें [रहा] निवास कीजिये ॥ ५ ॥

अचिरत भगति विरति सखसंग । अवन शरीरह प्रीति वर्मगा ॥

सदापि अन्न अक्षय्य अमरता । अनुभव गम्य अर्थाह्नेहि संता ॥ ६ ॥

मुझे प्रगाढ़ भक्ति, वैराग्य, कलह और आपके चरणकमलोंमें अटूट प्रेम प्राप्त हो । यद्यपि आप अक्षय्य और अमर अन्न हैं, जो अनुभवके ही जाननेमें आते हैं और भिक्षा सहेजन भोजन करते हैं; ॥ ६ ॥

अस तब एक कलावर्षे आयते । छिरि छिरि समुद्र अन्न हवि मानते ॥

संतत शरान्ध रेडु अर्थाह्ने । तर्हि मोहि ऐंतिहु रघुसाई ॥ ७ ॥

यद्यपि मैं आपके ऐसे समको जानता हूँ और उसका कर्त्तव्य भी करता हूँ तो भी लौट-लौटकर मैं सदा प्रसन्न (आपके रत्न सुन्दर स्वरूपके) ही प्रेम मानता हूँ । आप सेवकोंको सदा ही नकाई दिया करते हैं इसीसे हे रघुनाथजी ! आपने मुझसे पूछा है ॥ ७ ॥

है प्रभु परम अक्षय्य अमर । पावन पंचवटी रेडि वाकें ॥

इवयं वन पुनीत प्रभु अर्थाह्ने । उन्नत सख सुविबर कर हरहु ॥ ८ ॥

हे प्रभो ! एक परम अमोहर और पवित्र स्थान है; उसका नाम पंचवटी है । हे प्रभो ! आप पंचवटीको [क्यों पंचवटी है] पवित्र कीजिये और अन्न मुनि चौतम जीके बठोर आपको हर कीजिये ॥ ८ ॥

वास करहु तर्हि रघुनाथ सम । कीजे सकल मुनिप्रद दवा ॥

अल राम मुनि अक्षय्य अर्थाह्ने । मुस्ताहि पंचवटी विमरार्थ ॥ ९ ॥

हे रघुनाथके स्वामी ! आप सब मुनिप्रद दवा करके नहीं निवास कीजिये । मुनि की आज्ञा पाकर श्रीरामचन्द्रजी वहाँसे कल दिये और श्रीवही पञ्चवटीके निकट पहुँच गये ॥ ९ ॥

दो०—श्रीधराज से मेट यह वह विधि प्रीति बढ़ाई ।

गोदावरी निकट प्रभु रहे परन यह छार ॥ १३ ॥

वहाँ रघुराज जहाजसे मेट हुई । उसके वन बहुत प्रकारके प्रेम वटाकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी गोदावरीजीके समीप पञ्चवटी आकर रहने लगे ॥ १३ ॥

चौ०—जब ते राम कौन्ये जहाँ बसत । सुखी अर्थाह्ने मुनि बीतो जसत ॥

गिरि वन नदी ताल छवि अमर । दिन दिन प्रति प्रति होई सुहाय ॥ १४ ॥

जबसे श्रीरामजीने वहाँ निवास किया तबसे मुनि सुखी हो गये, उनका हर जाता रहा । पर्वत, वन, नदी और तालों छवि अमर । वे दिनोदिन अधिक सुहावने [महत्त्व] होने लगे ॥ १४ ॥

रूप सुख बृंद लब्धित रहति । मयूर मयूर पुंजित छवि कहहीं ॥
 सो बन बंशनि न सक अद्विष्टा । जहाँ प्रगट शृंगार विराज ॥ १ ॥
 एष और एषुओंके समूह अनन्दिता रहते हैं और मीरे मयूर बुलार करते हुए
 शोभा पा रहे हैं । जहाँ प्रत्यक्ष श्रीरामजी विराजमान हैं उस वनप्रान्त वर्णन उपरान्त शेरजी
 भी नहीं कर सकते ॥ २ ॥

एक बार प्रभु सुख जासीया । सखिमान बचव कहे सकहीया ॥
 दूर पर मुनि सच्यप्तर छाई । मैं पूछवैं विषय प्रभु की नाई ॥ ३ ॥
 एक बार प्रभु श्रीरामजी सुखते बैठे हुए थे । उस समय लक्ष्मणजीने उनसे कल-
 रीत (वचन) प्रकट कहे—हे देवता, मनुष्य, मुनि और चर्याचरके स्वामी । मैं
 अपने प्रभुकी तरफ (अपना स्वामी समझकर) जानसे पूछता हूँ ॥ ३ ॥
 मोहि समुद्राह कबहु सीह देव । सब लखि करीं चरण रज सेवा ॥
 कबहु स्वाय विराज यह माया । कबहु सो भवति कबहु मोहि दया ॥ ४ ॥
 हे देव । तुझे समझाकर यही कहिये, जिससे सब लोगकर मैं यापकी चरणारवकी ही
 सेवा करूँ । काल देवता और महाप्रान्त वर्णन कीजिये और उस भक्तिकी कहिये
 जिसके कारण आप दया करते हैं ॥ ४ ॥

यो—हेरार जीव मेर प्रभु सकल कही समुद्राह ।
 लखें होइ चरण रति सोक मोह भ्रम जाह ॥ ५ ॥
 हे प्रभो । हेरार और जीवका मेर भी सब समझाकर कहिये, जिससे आपने
 चरणोंमें मेरी प्रीति हो और सोक, मोह तथा भ्रम नष्ट हो जायें ॥ ५ ॥
 यो—योहि नईं सब कहैं सुहाई । सुनुत तब भवि सब पित लाई ॥
 मैं यह मोर लीर हैं मान । वेहिं बत कीन्हे जीव विद्यापा ॥ ६ ॥
 [श्रीरामजीने कहा—] हे ताल । मैं योहिजीसे सब समझाकर कहे देता हूँ ।
 तुम लीर, विष और छुदि लगाकर सुनो । मैं और मेरा, तू और तेरा—यही माया है,
 जिसने मनुष्य जीवोंको बन्धन कर रक्ता है ॥ ६ ॥

तो मोर कहैं छवि नग जाई । सो सब माया जायेहु जाई ॥
 सोहि कर मेर सुनुत तुम लीर । विद्या भ्रम भविषा दोह ॥ ७ ॥
 श्रुतिप्रति विपरीत और अर्थरहित मन जात है, हे मार्ग । उस सबको माया
 जानत । उसके भी—एक विद्या और दूसरी जगिया, इन दोनों मेंसे जो तुम सुनो— ॥ ७ ॥
 एक हुए अविद्या दुष्टरूप । वह सब जीव पर भवकृपा ॥
 एक रह्य जग गुन बह जाई । प्रभु प्रेति नहिं विव बह लाई ॥ ८ ॥

एक (अविद्या) हुए (दोषरूप) है और अत्यन्त दुष्टरूप है जिसके पर मोर
 जीव संसारकी दुर्घटि पड़ा हुआ है । और एक (विद्या) जिसके बन्धन गुण है और जो जग-
 की रचना करती है, वह प्रभुसे ही प्रेरित होती है, उसके अन्तर्गत वह कुछ भी नहीं है ॥ ८ ॥

मान सब जईं लख नाहीं । देव ब्रह्म सखान सब मोहीं ॥
 कहिं तब सो परा विद्यापि । तुम सब सिद्धि सीनि गुन स्वामी ॥ ९ ॥
 नाम कहैं नईं (निरम) मन आदि एक भी [होय] नहीं है और जो सब
 में समानतासे ब्रह्मके देखता है । हे तब ! जहाँसे परा वैराग्यवान् कहना चाहिये जो
 जगदीश्वरोंको और तीनों गुणोंके निरन्तर समान लागू करता हो ॥ ९ ॥

[मित्रमें मान, दम्भ, हिंसा, बाधराहित्य, टेढ़ापन, आचार्येयान्न अमान, अनिष्टता, अस्थिरता, ममका निपटहीत न होना, इन्द्रियोंके विषयमें आसक्ति, अहंकार, जन्म-मृत्यु-नरा-व्याधिमय ज्ञातमें सुखबुद्धि, स्त्री-पुत्र-धन आदिमें आसक्ति तथा भमता, इष्ट और अनिष्टकी प्राप्तिमें हर्ष-शोक, भक्तिश्च अमान, एकान्तमें मन न लगना, विषयी मनुष्योंके संगमें प्रेम—ये अठारह न हों और नित्य अच्चात्म (आत्मा) में स्थिति तथा तत्त्वज्ञानके अर्थ (तत्त्वज्ञानके द्वारा ज्ञाननेयोग्य) परमात्मान्न नित्य दर्शन हो, वही ज्ञान कदाता है। देखिये गीता अध्याय १३।७ से ११]

शो०—माया ईस न जायु कह्यु ज्ञान कहिअ सो जीव ।

बंघ मोछ्य प्रद सर्वपर भया प्रेरक सीच ॥ १५ ॥

जो मायाको, ईश्वरको और अपने स्वरूपको नहीं जानता, उसे जीव कहना चाहिये। जो [कर्मानुसार] कष्टन और मोक्ष देनेवाला, अपने परे और मायाका प्रेरक है वह ईश्वर है ॥ १५ ॥

शो०—धर्म में निश्चि जोय सें म्बध । म्बध मोछ्यप्रद वेद कज्ञान ॥

जार्तें बेरि प्रवर्तें में आई । सो मम अगति भग्न सुखदाई ॥ १ ॥

धर्म [के वाच्यरूप] से वैराग्य और योगसे ज्ञान होता है तथा ज्ञान मोक्षका देने-वाला है—ऐसा वेदोंने वर्णन किया है। और हे आई। जिससे मैं जीव ही प्रसन्न होता हूँ, वह मेरी भक्ति है जो मर्कोंको सुख देनेवाली है ॥ १ ॥

सो सुखंत अमखं न ज्ञान । तेहि म्बधीन म्बध निष्काय ॥

भगति तात अनुकम सुखमूल । मिच्छ ओ संत होई ननुकूल ॥ २ ॥

वह भक्ति स्वतन्त्र है, उसके [ज्ञान-विज्ञान आदि किसी] बूटरे साधनका सहारा (अपेक्षा) नहीं है। ज्ञान और विज्ञान तो उसके अधीन हैं। हे तात ! भक्ति अनुपम एवं सुखकी मूल है; और वह सभी मिलती है जब संत अनुकूल (प्रसन्न) होते हैं ॥ २ ॥

भगति कि साधन कह्यें अछानी । सुखस पंच मोहि पावहि माणी ॥

प्रथमहि बिप्र कब अति प्रीति । निज निज कर्म भिरत मुक्ति सीति ॥ ३ ॥

अब मैं भक्तिके साधन पिलाते कहता हूँ—यह सुख मार्ग है; जिससे जीव सुख-को सहज ही पा जाते हैं। पहले तो प्राणार्थिक चरणोंसे अत्यन्त प्रीति हो और वैश्वी सीतिसे अनुसार अपने-अपने [कर्मात्मके] कर्मोंमें लगा रहे ॥ ३ ॥

एहि कर फल पुनि निज निरमा । तब नम धर्म उषस अनुसमा ॥

अथवादिन भव अति कदाही । मम सीता सति अति मन भाही ॥ ४ ॥

इसका फल, फिर निर्वर्ति वैराग्य होगा। तब (वैराग्य होनेपर) मेरे धर्म (भागवत धर्म) में प्रेम उत्पन्न होगा। तब अन्त आदि नौ प्रकरकी भक्तियों दृढ़ होंगी और मनमें मेरी वीणावर्णिके प्रति अत्यन्त प्रेम होगा ॥ ४ ॥

संत चरन पंक्रम अति प्रेम । यब क्रम नवन नवन छ मेल ॥

गुण पिपु माधु बंधु पति देया । सब मोहि कह्ये जाने दृद सेवा ॥ ५ ॥

मित्रका संतोंके चरणकमलोंमें अत्यन्त प्रेम हो; मन्त्र, वक्ता और कर्तेसे मदनका दृढ़ नियम हो और जो मुझसे ही गुण, भिन्न, माता, माई, पति और देवता सब कुछ जाने और सेवामें दृढ़ हो ॥ ५ ॥

मम गुन गणत मुक्त सीता । यदुद्ध मित्र भवन बंधु सीरा ॥

अथ आदि मन्त्र पंथ न जानें । तात निरंतर कब मैं लानें ॥ ६ ॥

मेरा गुण गाते समय निष्कल शरीर पुण्यविह हो जल, वाणी मद्ध हो, जल और जेहोसे [प्रेमाशुभोका] बल वहने को और काम, मद और दम्भ आदि विसमें न हो, हे भाई । मैं सदा उसके कर्म रहता हूँ ॥ ६ ॥

दो०—वचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहि निष्काम ।

तिन्ह के हृदय कमल भहुँ करवैं सदा विधाम ॥ १६ ॥

जिनको कर्म, वचन और मनसे मेरी ही गति है; और जो निष्काम भावसे मेरा भजन करते हैं, उनके हृदय-कमलों में सदा निवास किया करता हूँ ॥ १६ ॥

चौ०—मगति योग मुनि वशि मुख पावा । लखिअन प्रमुत्तरतन्हि सिंह नावा ॥

एहि विधि गष्ट कहुक दिन बीती । कहत विराम स्वामि गुन बीती ॥ १ ॥

इस भक्तियोगको सुनकर लखनजीने अत्यन्त सुख कहा और उन्होंने प्रभु श्रीराम-चन्द्रजीके चरणोंमें सिर मवाया । इस प्रकार वैराग्य, खन, गुण और नीति कहते हुए कुछ दिन बीत गये ॥ १ ॥

सुपनका राखन कै बहिन । बुढ़ हृदय दाखन कम कहिनी ॥

पंचमरी सो, वह एक बारा । वैशि विरल भइ सुगल कुमार ॥ १ ॥

सूर्यका नामक राखनकी एक बहिन थी, जो नागिनके समान भयानक और बुढ़ हृदयकी थी । वह एक बार पञ्चमरीमें गयी और दोनों राजकुमारोंको देखकर विरल (क्रमसे पीड़ित) हो गयी ॥ १ ॥

जाता पिछ सुन उरखरी । पुख मनीहर निरपगत वारी ॥

होइ विरल सक भवहि न रोकी । जमि रमियनि जल रहिहि बिलोकी ॥ २ ॥

[काकभृगुशिवजी कहते हैं—] हे गच्छजी । [सूर्यका-जैसी राखरी, धर्मज्ञान-शून्य कामान्व] की मनोहर पुखको देखकर, चाहे वह भार्गव, विवा, पुत्र ही हो, विरल हो जाती है और मनकी नहीं रोक सकती । जैसे सूर्यकान्तिमणि सूर्यको देखकर द्रवित हो जाती है (ज्वालाते पिघल जाती है) ॥ २ ॥

शरिर कम यदि प्रभु परहि आई । सोखी दखन बहुत सुसुकाई ॥

गुण सम पुख न ओ सम काही । यह लोकोप विधि रवा विचारी ॥ ३ ॥

यह सुन्दर रूप भरकर प्रभुके पाव जाकर और बहुत सुचक्राकर दखन बोली— न तो तुम्हारे समान कोई पुख है, न मेरे समान स्त्री । विचस्ताने यह संयोग (जोड़ा) बहुत विचारकर रवा है ॥ ३ ॥

मन कहुकम पुख जाना जाही । देखेई सोखि सोख विहु नाही ॥

ताते अब लखि रहिहैं कुमारी । मनु मान्य कम सुमहि निहारी ॥ ४ ॥

मेरे सोख पुख (नर) जगत्तरमें नहीं है, मैंने हीने, सोखीको खोज देला । इसीसे मैं अचतक कुमारी (अविवाहित) रही । जब तुम्हको देखकर कुछ मन माना (चित्त उद्वारा) है ॥ ४ ॥

सीतहि बिलह कही प्रभु कथा । नहइ कुमार और कहु आता ॥

गद लखिअन रिपु मनिषी जन्वी । प्रभु बिजोकि, जोके सहु बानी ॥ ५ ॥

सीतानीकी ओर देखकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने यह बात कही कि मेरा छोटा भाई कुमार है । उस वह लक्ष्मणजीके पाव गयी । लक्ष्मणजी उसे शत्रुकी नहिन समझ्य और प्रभुकी ओर देखकर क्रोधित वाणीसे बोले— ॥ ५ ॥

सुंदरि सुनु मैं उन्हें कर दास । पराधीन नहीं तोर मुपासा ॥

प्रभु समर्थ कोसलपुर राधा । जो कहु कहिं वनहि सब छाया ॥ ७ ॥

रे सुन्दरी ! सुन : मैं तो उनके दास हूँ । मैं पराधीन हूँ, अतः तुम्हें सुभीता (सुख) न होगा । प्रभु समर्थ है, कोसलपुरके राजा हैं, वे जो कुछ करे, उन्हें सब फलता है ॥ ७ ॥

सेवक मुख वह मान सिखारी । ज्योती धनसुमनसिभिनिचारी ॥

शोभी जसु वह चार सुभावी । नम हुहि वृष वह पृ प्राची ॥ ८ ॥

सेवक मुख चाहे, भिक्षारी सम्मान चाहे, ज्योती (जिसे जूट, शराय आदि का व्यवहार हो) धन और व्यविचारी दुमराति चाहे, ज्योती वध चाहे और अग्निमानो चारो फल अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चाहे, तो वे सब प्राची आकाशको दुहर वृष जेना चाहते हैं (अर्थात् अस्मत्त्व वस्तुको सम्भव करना चाहते हैं) ॥ ८ ॥

पुनि फिरि राम विरह सो भाई । प्रभु लक्ष्मिन पहि कुरि वझाई ॥

कछिमन कहा सोहि सो भाई । जो वृष तोरि कस्य परिहराई ॥ ९ ॥

वह औरकर फिर श्रीरामजीके फल आनी । प्रभुने उसे फिर लक्ष्मणजीके दास भेज दिया । लक्ष्मणजीने कहा—तुम्हें वही होगा जो क्षत्रको वृष वीरकर (अर्थात् प्रतिष्ठा करके) शपथ देगा (अर्थात् जो निपट मिलेगा होगा) ॥ ९ ॥

तब किसिबानि राम पहि आई । हम मर्यादा प्रगट आई ॥

सीताहि समथ देखि खुलाई । कहा अजुन सब खण्ड दुलाई ॥ १० ॥

तब वह किसियायी हुई (क्रुद्ध होकर) श्रीरामजीके दास गयी और उसने अपना मथङ्कर रूप प्रकट किया । सीताजीको मदपीत देखकर श्रीरघुनाथजीने लक्ष्मणजीको इशारा देकर कहा १०

दो—लक्ष्मिमन प्रति लाज्यौ सो नरक काय विनु कोन्हि ।

ताके कर राखन कहैं मझी कुनौती हीन्हि ॥ १७ ॥

लक्ष्मणजीने वही उतावे उसको मिन नरक-जन्मकी कर दिया । मानो उसके हाथ राखणको कुनौती ही हो ! ॥ १७ ॥

चौ—नाक कान विनु यह विहरात । जसु सब सैक गैर है जारा ॥

कर वृषन पहि यह विवरात । बिन बिना सब पौरुष कह आता ॥ १ ॥

बिना नाक कानके वह विहरात हो गयी । [उसके घरीरके रफ इस प्रकार बहने-छगा] मानो [काके] पर्वतके गेरुश्री घास वह रही हो । वह विवरात करती हुई कर वृषनके दास गयी [और बोली—] हे भाई ! तुम्हारे पौरुष (वीरता) को बिकार है, तुम्हारे बलको बिकार है ॥ १ ॥

देहि पूछा सब कोसि जुलाई । जगुवान सुनि सेव बनवाई ॥

भाए गिसिधर निरु बख्खा । जसु सगळ कळळ निरि जूपा ॥ २ ॥

उन्होंने पूछा, तब हर्षजवाने सब सम्झाकर कहा । सब सुनकर राजाजीने सेना तैयार की । राजाजसूत्र छुट के छुट दौड़े । मनो पक्षधारी वनजके पर्वतोंका छुट हो ॥ २ ॥

माना बाहून बाकल्ला । नाकबुध धर जोर कभारा ॥

सुपमखा भागें करि जीयी । जसुध रुब भुति नाख हीनो ॥ ३ ॥

वे उनके प्रकारकी छपारियोर चढ़े हुए तथा उनके अङ्ग (एतों) के हैं । वे अपार हैं और उनके प्रकारके अक्षय मयानक हथियार धारण किये हुए हैं । उन्होंने नाक कान कटी हुई अस्त्ररूपिणी छपारियाको आगे कर दिया ॥ ३ ॥

अलपुत्र मगित होहिं सयकरी । गनहिं भ मृत्यु विबस सब हारी ॥
 गनहिं तजहिं गमव बदाही । देखि कटक मट अति हरपाही ॥ १ ॥
 अतनिगत भयकर भयकुन हो रहे हैं । परन्तु मृत्युके वश होनेके कारण वे सब-के-
 सब उनको कुछ गिनते ही नहीं । गरजते हैं, उलझाते हैं और आकाशमें उड़ते हैं ।
 सेना देखकर बोझालोग बहुत ही दर्शित होते हैं ॥ २ ॥

कोट कह निजत घबहु ही आई । बरि मारहु तिय केहु उदाई ॥
 धूरि धूरि नभ मंदक रहा । राम वोकाइ अनुब सन कहा ॥ ५ ॥
 कोई करता है दोनों भाइयोंके बीच ही पकड़ ले, पकड़कर मार डाले और
 स्त्रीको छीन ले । आकाशमें उड़ते मर गया । तब भीरामजीने छम्पनजीको बुलाकर
 उनसे कहा ॥ ५ ॥

है शास्त्रिहि बाहु गिरि कंवर । जया निशिचर कटक भयंकर ॥
 रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बापी । चले सहित श्री सर धनु बापी ॥ ६ ॥
 रावर्षेकी मरणात् सेना आ गयी है । जानकीजीके लेकर तुम पर्वतकी कन्दरामें
 चले जाओ । सावधान रहना । प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर छम्पनजी आपने
 प्रभु-प्राण लिये जीसौताजीसहित चले ॥ ६ ॥

देखि राम रिपुबल चलि अवा । विहसि कठिन कोरुह चढावा ॥ ७ ॥
 मनुष्योंकी सेना [समीप] चली आयी है, वह देखकर भीरामजीने हँसकर कठिन
 वनूपको बुलाया ॥ ७ ॥

छं—कोरुह कठिन जगद सिर ऊट ऊट बाँधत सोह क्यों ।
 मरकत लपल पर करत द्रुमिनि कोटि सों युग भुजग ज्यों ॥
 कटि कसि निधंय बिसाल भुजग गहि बाप विसिख सुधारि कै ।
 चितवत मनहुँ सुगणक प्रभु यवराज छदा निहारि कै ॥
 कठिन वनूप बड़ाकर सिरपर वटाव बड़ा बाँधते हुए प्रभु कैसे घोमित हो रहे
 हैं, जैसे मरकतमणि (पत्त) के कर्तपर करोड़ों बिजलियोंसे दो छाप उड़ रहे हैं । कमरमें
 लपकत कटकर, बिसाल भुजगोंमें वनूप लेकर और बाप बुधाकर प्रभु भीरामचन्द्रजी
 राखवोंकी ओर देख रहे हैं । मनो मतवाले शयियोंके समूहको [अस्त] देखकर सिद्ध
 [उनकी ओर] तब राख हो ।

छं—माद गण वगमेक भरहु भरहु धावत सुमट ।
 जया विलोकि मनेल दास रविहि धेरत दनुज ॥ १८ ॥
 'पत्तों-पकड़ों' पुकारते हुए राखत बोझा बाण छोड़कर (बड़ी तेजीसे) दौड़े
 हुए आये [और उन्होंने भीरामजीको चारों ओरसे घेर लिया], जैसे बाजद्वय (उद्यम-
 सलीम द्वय) को जकेल देखकर मन्देह नामक दैत्य घेर ली है ॥ १८ ॥

छं—प्रभु विलोकि सर सजहि न बारी । बलिह भई रजनीचर धारी ॥
 सचिव दीलि छोडे सर वृषन । वह कोट कृपाजक नर मूषन ॥ ३ ॥
 [सौन्दर्य-प्राप्त्यभिधि] प्रभु श्रीरामजीको देखकर राखवोंकी सेना बलिह रह
 गयी ! वे उनपर बाण नहीं छोड़ सके । मन्त्रीको बुलाकर सर-दूषणने कहा—यह
 राजकुमार कोई मनुष्योंका मूषण है ॥ १ ॥

गग अमुर सुर नर मुनि जेते । देखे जिते हते हम केते ॥
 हम भरि ज्यम धुनहु सब भाई । देखी यहि अलि सुंदरताई ॥ २ ॥

जिन्ने भी जान-अनुर-देवता, मनुष्य और मुनि है, उनमेंसे हमने न जाने किन्ने ही देते, जिते और मार खाते हैं। पर ते सन मादयो ! सुनो, हमने जन्मभरमे ऐसी मुन्दरता नहीं देखी ॥ २ ॥

अपि भगिनी कीन्दि कुरुषा । मध खयक बहिं पुरप अनूषा ॥

देर तुलत निज करि दुखार्ह । जीवत भवन बाहु हो भार्ह ॥ ३ ॥

यदिपि जगोने हमारी बहिनको कुरुष कर दिख गयाहि ये मनुष्य पुरुष दध करने पोन्त नहीं है। अपिभी हुन जपनी ली हमे तुलत दे दो और दोनो भार्ह जीते-ली पर मोट जानो ॥ ३ ॥

मोर करी मुक्त कानि मुक्तबहु । सासु खचन सुनि आनुर भावहु ॥

मृतम वरा राम मन जाई । सुनत राम बोले मुसुकाई ॥ ४ ॥

मोरा वह काम मुक्तबहु उने मुनाओ और उठरा वचन (उत्तर) सुनकर धीम जानो। वहीने आर व सन्देस 'गीतमचन्द्रजीने कहा। उठे सुनते ही श्रीरामचन्द्रजी स्मरणार बोले—॥ ४ ॥

राम छत्री सुमग मन करी । तुलत सेयल सुम मोवत फिरी ॥

रिपु बलवत डेरि बहिं उरही । एक बार काछु सन करही ॥ ५ ॥

राम धीम है, मनमें मिहार करते हैं और तुलते छीते हुए पशुभोको तो हँवते ही फिरते हैं। 'म वक्रान् मनुको देवतर नहीं द्रवते। [सङ्केतो आये तो] एक बार तो राम जानने भी हट ग्वते हैं ॥ ५ ॥

अपि मनुष्य प्रभुसु दुल पाठक । मुनि पाठक पल मालक बाळन ॥

तो न होत बड वर किनि जाहू । मगर सिधुय में हवते न काहू ॥ ६ ॥

रानी राम मनुष्य है, परन्तु संस्वदुलता जाय कजेवाले और मुनिबोकी रसा करनेवाले हैं। हम पाठक हैं, जान्ते हैं दुष्टोंका दण्ट देमेवाले। यदि बड न हो तो पर मोट जानो। मशामसे पीट विरानेवाले दिनीसे मैं नहीं मारता ॥ ६ ॥

राम यदि बहिम कपट चतुर्दार्ह । रिपु पर कृपा परम करार्ह ॥

दुखर जाहू तुलत सय कईक । मुनि पर दुखन उर बति बहेक ॥ ७ ॥

रामने वह आरर स्फट-चतुर्दार्ह करना और अनुर कृपा करना (यथा विधाना) तो बड़ी भारी मारता है। दुष्टोंने औरकर तुलत सय बातें कही, किन्हे सुनकर सर-दुषणन हृदय अत्यन्त खल उठा ॥ ७ ॥

४०—उर दरेड कयेड कि करहु छाप विकट भट रजनीधरा ।

सर चाप तोमर सकि छल कृपान परिध परसु धरा ॥

प्रभु कीन्दि धनुष टकोर प्रथम कयेर धोर भयावहा ।

भय वधिर व्याकुल जातुधान न ब्यथन तेहि अवसर रखा ॥

[सर-दुषणन] हृदय खल उठा। तब उन्होंने कहा—पकड़ लो (कैद कर लो)।

[वह सुनकर] मयानक राक्षस मोटा चक्र, धनुष, तोमर, सकि (छोप), छल (घरती), कृपाण (फटार), परिध और फरका धारण किने हुए दौड़ पड़े। प्रभु श्रीरामजीने पहले धनुषन बड़ा फटोर, धोर और भयानक टट्टार किया, जिसे सुनकर राक्षस वहाँ और व्याकुल हो गये। उक्त समय उन्हें कुछ भी शेष न रहा।

दो०—सावभन छोड़ छाप आनि सखल धारति ।

छाने वरपन राम पर मल्ल सख बहूमति ॥ १९ (क) ॥

फिर वे शत्रुको बलवान् जानकर सावधान होकर चौक्य और श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर बहुत प्रकारके अज्ञ-बल सरताने लगे ॥ १९ (क) ॥

तिन्ह के आयुष तिल सम करि कटे रघुवीर ।

तानि सरपसब अवन छपि पुनि छटि निल तीर ॥ १९ (ख) ॥

श्रीरघुवीरजीने उनके इशियारोंको तिलके समान (टुकड़े-टुकड़े) करके काट डाला । फिर शत्रुको कानतक तनकर अपने तीर छोड़े ॥ १९ (ख) ॥

छं—सब चले बाज कराल । फुंकरत जुहु बहु व्याल ॥

कोपेड समर श्रीराम । चले विसिख विसित निराम ॥ १ ॥

एक भयानक बाण ऐसे चले गये जो फुफफरते हुए बहुतसे लो ज रहे हैं । श्री-रामचन्द्रजी संग्राममें लगे हुए और अत्यन्त तीक्ष्ण बाण चले ॥ १ ॥

अचलोकि सरजर तीर । मुरि चले निसिचर वीर ॥

भय कुछ सीमित भाइ । जो भयि रन ते आव ॥ २ ॥

अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंको देखकर रामचन्द्र जी पीठ दिखाकर भाग चले । तब पर-पूषण और विरिध सीनों भाई कुछ होकर बोले—जो हमसे मागकर आयागा ॥ २ ॥

तेहि वधय हम किन पुनि । फिरे मरन मम मई छपि ॥

आयुष अवेक प्रहार । सममुख ते करहि प्रहार ॥ ३ ॥

उत्तम हम अपने हाथों बंध करेंगे । तब मरने भयना डालकर भागते हुए रामचन्द्र जीसे और सामने होकर वे अपने-अपने प्रकारके इशियारोंसे श्रीरामचन्द्रजी पर प्रहार करने लगे ॥ ३ ॥

रिपु पलन छोये जानि । शत्रु शत्रुप सर संघाणि ॥

छोडि विपुल नाराध । लगे कदम विकट पिसाच ॥ ४ ॥

शत्रुको अत्यन्त कुपित जानकर शत्रुने शत्रुपर बाण पड़ाकर बहुत-से बाण छोड़े, जिन्हें भयानक राक्षस कह्ये लगे ॥ ४ ॥

हर सीध भुज कर धरन । जई तई लगे मदि परन ॥

बिहारत लगत बाज । पर परत कुहर समान ॥ ५ ॥

उनकी छाती, शिर, मुखा, हाथ और पैर जहाँ-जहाँ पहुँचीपर गिरने लगे । बाण काते ही वे शरीरी बरत निगवाये हैं । उनके आँखोंके समान बड़-बड़कर गिर रहे हैं ॥ ५ ॥

मठ कटत तन लत बंड । पुनि उडत करि पारबंड ॥

मम उडत बहु मुख मुंड । पितु मीलि धवत बंड ॥ ६ ॥

योदान्ति शरीर कटकर वे ज्यों टुकड़े हो जाते हैं । वे फिर माया करके उठ खड़े होते हैं । अन्तर्यामी बहुत-सी मुजहों और शिर तब रहे हैं तथा बिना सिरके बंध होद रहे हैं ॥ ६ ॥

सग एक एक सुफल । कटकटहि कटिन कराल ॥ ७ ॥

चोक [या मौच] और आदि फली और सिंगार बजोर और मयङ्गर कट-कट शब्द कर रहे हैं ॥ ७ ॥

छं—कटकटहि जंबुक मूत प्रेत पिसाच जर्जर संचर्ही ।

नेताल वीर कपाळ लल घञ्ज । ज्येपिनि बंचर्ही ॥

रघुवीर काज प्रचंड बंछर्ही मठह के उर भुज सिरा ।

जई तई परहि छति छरहि घर बर अक्षरहि भयकर गिर ॥ १ ॥

सिंहार कटकटते हैं, मूठ, प्रेत और सिंगार खोपड़ियों बटोर रहे हैं [अथवा खपर भर रहे हैं] । श्रीरामचन्द्र जीके शिरोंपर लाल दे रहे हैं और योगिनेयों नाथ रही

है। श्रीसुवीरके प्रचण्ड बाण बोझावोंके नश्वरान्त, मुखा और चिरोंके टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं। उनके फड़ झँझों मिर पड़ते हैं, फिर उठते और लड़ते हैं, और 'पकड़ो-पकड़ो' का भयङ्कर शब्द करते हैं ॥ १ ॥

अंताचर्य यहि उकृत धीरव पिशाच कर गहि धावहीं ।

संग्राम पुर वससी मन्हूँ बहु बाल गुह्री उड़ावहीं ॥

मारे पछारे उर बिदारे निपुल मठ कहँरत फेरे ।

अवलोकित निश दल विकल मठ विसिरावै सर दूषन फिरे ॥ २ ॥

अंतर्द्वारोंके एक छोरेको फड़फड़ कर गीध उड़ते हैं और उन्दीका दूध और हाथसे पकड़कर पिशाच दौड़ते हैं। ऐसा मालूम होता है मन्त्रो संग्रामरूपी नगरके निवासी बहुत-से बालक फँस उड़ा रहे हों। अनेको बोझा मारे और पछाड़े गये, बहुत-से, जिनके हृदय विदीर्ण हो गये हैं, पड़े कहाँ खड़े हैं। अपनी केन्द्रको व्याकुल देखकर विधिरा और सर-दूषन आदि बोझा भीरुमन्त्री और मरे ॥ २ ॥

सर सकि सोमर परसु सुल कृपन एकहि धारहीं ।

करि फरेप भीरुवीर पर मगनित निराकर धारहीं ॥

प्रभु निमिष महुँ रिपु सर निवारि पचारि डारे सामका ।

वस वस विसिख सर माह मारे सकल निसिबर नायका ॥ ३ ॥

अननित राक्षस जोध करके बाण, राशि, सोमर, फल, शूल और कृपाण एक ही बारमे भीरुवीरपर छोड़ने लगे। प्रभुने एकभरमे शत्रुओंके नाशोंको फाड़कर, ललकारकर उनपर अपने बाण छोड़े। सब राक्षस-सेनापतियोंके हृदयमे दह-दह बाण मारे ॥ ३ ॥

महि परत उठि मठ भिरत मरत न करत माया अति बानी ।

सुर उरत बीरह सहस प्रेत बिलोकित एक अवध धनी ॥

सुर मुनि समय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक करयो ।

देखहि परसरपर राम करि संग्राम रिपु दल करि मरयो ॥ ४ ॥

बोझा पुष्पीपर फिर पड़ते हैं, फिर उठकर मड़ते हैं। मरते नहीं, बहुत प्रकारकी अतिमाय माया रचते हैं। देखा वह देखाकर करते हैं कि प्रेत (राक्षस) गौदह हजार हैं और अनोमानाथ भीरुमन्त्री अकेले हैं। देखा और मुनियोंको भयभीत देखकर मायाके स्वामी प्रभुने एक बड़ा कौतुक किया, जिससे शत्रुओंकी सेना एक दूसरेको रामरूप देखने लगी और आपसमे ही युद्ध करने लग गयी ॥ ४ ॥

दो०—राम राम कहि उनु उज्जहि पर्वहि एव निर्वाण ।

करि उषम रिपु मारे उज्ज महुँ कृपानिधान ॥ २० (क) ॥

■ ['जही राम है, इसे मारो' इस प्रकार] राम-राम कहकर धीरे छोड़ते हैं और निर्वाण (मोक्ष) पर पाते हैं। कृपानिधान भीरुमन्त्रीने वह उपाय करके क्षणभरमें शत्रुओंको मार डाला ॥ २० (क) ॥

हृषित धरणीहि सुमन सुर वाज्जहि गणय निसान ।

अस्तुति करि करि सब चले सोमिनि विविध विमान ॥ २० (ख) ॥

देवता हर्षित होकर मूढ करछते हैं, जात्राधमे नगाड़े बज रहे हैं। फिर वे स्व स्तुति कर करके अनेकों विमानोंपर सुसोमिनि हुए चले गये ॥ २० (ख) ॥

चौ०—नव रघुनाथ समर रिपु जंजे । सुर सर मुनि ज्ञान के मय जीते ॥

तब लहिमन सौगहि कै जग । प्रभु पद पल हृषि उर काए ॥ १ ॥

जब श्रीरघुनाथजीने युद्धमें शत्रुओंको जीत लिया तथा देवता, मनुष्य और मुनि सबके भय नष्ट हो गये, तब लक्ष्मणजी सीताजीको ले आये । चरणोंमें पकड़ते हुए उनके प्रभुने प्रसन्नतापूर्वक उदाकर हृदयसे कहा कि ॥ १ ॥

सीता चित्तव चाम सद्यु गता । परम प्रेम लेखन न अथाता ॥

पंचवर्षीं धरति श्रीरघुनाथक । कस्त चरितसुरमुनि सुखदायक ॥ २ ॥

सीतानी श्रीरामजीके स्वाम और कोमल खरीखो परम प्रेमके साथ देख रही है, नेत्र अथाते नहीं हैं । इस प्रकार पञ्चवर्षीमें बसकर श्रीरघुनाथजी देवताओं और मुनियोंको हृत्पद देनेवाले चरित्र करने लगे ॥ २ ॥

जुवाँ देखि कर दूषन केत । बह सुपनवाई रावन प्रेता ॥

दीली बचन श्लेष करि भाटी । देस कोस कै सुवर्ति बिलाटी ॥ ३ ॥

सुर-रूपका विधेय देखकर क्षुब्धलाने जाकर रावणको भड़काया । वह बड़ा क्रोध करके बचन बोली—तुने देश और राजानेकी मुधि ही मुझ दी ॥ ३ ॥

करति पाव सोवति दिहु राती । मुधि नहि हव छिर पर आरती ॥

राव नीति बिनु भव बिनु धर्मी । हरिहि समर्थ बिनु सतकर्मा ॥ ४ ॥

विद्या बिनु विवेक उपनार्थ । सम फल पदं किई बह पार्थ ॥

संग तैं जाही कुमंत्र से सज । मान ते न्यान पाव तैं काजा ॥ ५ ॥

राज भी होता है और दिन-रात पड़ा सोता रहता है । तुझे खबर नहीं है कि राहु तैं छिरपर छाड़ा है । नीतिके बिना राज्य और धर्मके बिना धन प्राप्त करनेसे, मगवानकी समर्पण बिना बिना उक्त कर्म करनेसे और विवेक उत्पन्न किये बिना विद्या पढ़नेसे परिणाममें भय ही हाथ लगता है । विषयोंके चक्रेसे संन्यासी, धुरी खलबते राजा, मानते दान, मोहरापानसे कजा, ॥ ४-५ ॥

भीति प्रभव बिनु मद से सुनी । नखलिं देखि नीति अथ सुनी ॥ ६ ॥

नम्रताके बिना (नम्रता न होनेसे) भीति और मद (अहंकार) से गुणधर भीम ही नष्ट हो जाते हैं, इस प्रकार नीति मैंने सुनी है ॥ ६ ॥

चौ०—रिपु रक्ष फलक पाप प्रभु यहि यमिख न छोड करि ।

अस कहि विविध विरूप करि जग्यी रोषव करन ॥ २१ (क) ॥

दण्ड, रोग, अग्नि, पाप, लागी और सर्वको छोड़ करके नहीं समझना चाहिये ।

देख कहकर शूर्पणखा अनेक प्रकारसे विरूप करते रोने लगी ॥ २१ (क) ॥

दो०—समा मास परि ज्वलकुल यह प्रकाश कह रोह ।

तोहि विप्रत वसकंकर मोरि कि असि गति होह ॥ २१ (ख) ॥

[रावणजी] समझे नीच वह ज्वलकुल होकर पड़ी हुई बहुत प्रकारसे रो-रोकर कह रही है कि अरे दशरथ ! तैं बंदिनी मेरी क्या ऐसी दसा होनी चाहिये । ॥ २१ (ख) ॥

चौ०—सुनत सगासर उठे ज्वलकुल । समुद्रार्ध यहि बह दठार्ध ॥

सह जंमि कहसि किज जाव । केई तव नास काय निपाता ॥ १ ॥

शूर्पणखाके लफन सुनते ही सम्मर ज्वलकुल उठे । उन्होंने शूर्पणखाकी बाँह पकड़कर उठे उठाय और समझाया । बहूनाति रावणने कहा—अभी बात तो बता । फिरने तैं नाक-कान काट डिने ? ॥ १ ॥

अवध सुवर्ति दसव के जाए । पुनर सिंग बन सेलन जाए ॥

समुधि बरी मोहि उन्ह कै जग्यी । रहित गितावर करिदहि खरती ॥ २ ॥

[वह बोली—] अबोच्चाके राज दशरथके पुत्र, जो पुरुषोंमें सिंहके समान है, यन्में गिरकर रोहने आवे है। मुझे उमन्नी कज्जी ऐसी समझ पड़ी है कि वे पृथ्वीको लक्ष्मणोंके रहित कर देंगे ॥ २ ॥

भिन्द कर सुनवत पाद् दसानन । अमय अद् विफल मुनि कानन ॥

देवता बालक कल समान । परम धीर धनी मुन नाता ॥ ३ ॥

मिनकी भुवाभोका कल पाकर है दशमुक्त । मुनिजोग कर्म निर्भय होकर विचरने लगे हैं । वे देखनेमें लो बलक है, पर है कलके समान । वे परम धीर, भेद अनुपम और अनेको गुणोंके युक्त हैं ॥ ३ ॥

जलसित बल प्रताप औ ज्ञान । सब जग सब सुर मुनि सुखादाता ॥

सोभा धाम राम भक्त नाम । हिन्द के संग नारि एक जामा ॥ ४ ॥

दोनों भाइयोंका बल और प्रताप अनुकनीय है । वे दुष्टोंके वध करनेमें लगे हैं और देखा गया मुनियोंके मुक्त देनेवाले हैं । वे सोयके धाम है, 'राम' ऐसा ठनका नाम है । उनके साथ एक तरफ़ी सुन्दरी ली है ॥ ४ ॥

रूप राशि विधि नारि सेवारी । रति सब कोटि हाथु बलिहारी ॥

हाथु भङ्गुत कले धुलि नाता । मुनि तब भविनि कर्हि परिहाता ॥ ५ ॥

विद्यामाने उस स्त्रीको ऐसी रूपकी राशि बनाया है कि लो करोड़ रति (कामदेवकी ली) उचपर निष्ठापर हैं । उन्हें छोटे माँने में नाक-कान काट बलि । मैं ली बहिन हूँ, यह सुनकर वे मेरी हँसी करने लगे ॥ ५ ॥

रूप दूषण मुनि लगे पुकता । तब गहू सकल सकल जग माता ॥

पर दूषण विमिश्र कर बाधा । मुनि दससीस जरे सब गाता ॥ ६ ॥

मेरी पुकार सुनकर सर-दूषण बहिनता करने आवे । पर उन्होंने छत्रमरमै लारी सेनाकी मार बाध । सर-दूषण और विमिश्रक बध सुनकर राजके सरे अज्ञ जग उठे ६ चौ—सुपनलहि समुद्राद करि बल बोलेसि बहु भौंसि ।

गण्ड भयन भसि सोचबस भौद परा भौद राति ॥ ७ ॥

कहने शूरपेशको सम्झकर बहुत मन्त्रसे अपने कलक बचान किना, किन्तु [मनमें] वह भयानक किन्तावका होकर अपने सहजमें गया, उसे रसमर नींद नहीं पड़ी ॥

चौ—सुर हर अशुर भाग सब जहाँ । और जलुपर कर्हे खेद ताहो ॥

रूप दूषण भौदि सम कर्मता । हिन्दहि लो मारु भिनु भयवता ॥ ८ ॥

[वह मन ही-मन विचार करने लगा—] देवता, मनुष्य, जगुर, नाग और पक्षियोंमें कोई देवा नहीं जो मेरे सेवकको गी पा सके । सर-दूषण लो मेरे ही समान बलवान् वे । उन्हें भयानकके विना और कौन मार सकता है ? ॥ ८ ॥

सुर रंसन संवध भौदि माता । लो संवध लीन्द भवताता ॥

लौ मैं जादू कैद हदि कर्क । प्रसु सर जान लगे भव लर्क ॥ ९ ॥

देवताओंको आनन्द देनेवाले और पृथ्वीका मार हरण करनेवाले भगवान् लौ यदि अवतार लिया है तो मैं जानू उनसे दृष्टपूर्वक कै करूँगा और प्रभुके धान [के आघात] से प्रान छोड़कर संवधगरसे लर जाऊँगा ॥ ९ ॥

होइदि मज्जु न तामस देहा । मग क्रम बचन संज लख पहा ॥

लौ सरकम भुवसुत खेद । इच्छिँ नारि बौदि रज रोक ॥ १० ॥

इस साम-शरीरसे सबन लो होगा नहीं जलएव मन, बचन और कर्म पड़ी ॥

निश्चय है। और यदि वे अनुष्कल कोई राजकुमार होते तो उन दोनोंको राममें बीतकर उनकी स्त्रीको हर लेंगा ॥ ३ ॥

कहा अकेल छाव चढ़ि उद्यौ । सब गारीष सिधु उर जह्यौ ॥

इहाँ राम जसि छुवि बनाई । सुनहु उमर सो कथा सुहाई ॥ ४ ॥

[जो विचारकर] रावण रणर बदकर अकेल ही क्यों कहा जाँ सभने तहार मारीच कहा था [सिनवी कहते हैं कि—] हे पार्वती ! यहाँ श्रीरामचन्द्रजीने बेसी दुक्ति रची; वह सुनकर क्या सुनो ॥ ४ ॥

सो—छद्मिभन थर बनौहि सब लेन मूल फल काल ।

जनकमुखा सब बोले विदुशि कृप मूल बुद ॥ ५ ॥

अपनाही खर बन्द-मूल-फल लेनेके लिये वनमें गये; सब [अकेलेमें] हनु और तुलके समुद्र श्रीरामचन्द्रजी हैंकर जानकीसे बोले— ॥ ५ ॥

सो—सुनहु भिन भद्र खरि सुखीका । मैं कहू करि कलित बर बीका ॥

हम रामक महुं कहु बिबाह । कौ खसि कौ भिन्नपर बासा ॥ ६ ॥

हे भिये ! हे सुनकर प्रतिग्रह-धर्मके पालन करनेवाली सुखीके । तुनो । मैं अब मजोर भगवतीक कहेंगा । इसलिये कलक मैं राजहौका गाव कहें, तबक कल्पमें निवास करो ॥ ६ ॥

कहाँ हम सब कहा बसायो । प्रभु पद परिधिमें जगल समायो ॥

बिब प्रतिविम कलि कई सीता । वैराखीक बन सुखीला ॥ ७ ॥

भीरामजीने ज्यों ही सब समझाकर कहा; त्यों ही श्रीसीतानी प्रभुके चरणोंके दूरमें धरकर भीममें राख बसी। सीताजीने अपनी ही स्वामूर्ति यहाँ राख दी; जो उनके सेते ही शील-समाज और शम्भारी तथा वेते ही निवास थी ॥ ७ ॥

बसिगहई बह मखु न जावा । सो कहु खरिद राख भगवता ॥

बसहुच कमल बाई श्रीका । बाह भव खास रत बीका ॥ ८ ॥

भगवान्ने जो तुल लीख रची; इस राखको जगज्जकीने भी नहीं वाला । स्वार्पण और नीच राख नहीं क्या कहाँ मारीच था और उसको फिर लावा ॥ ८ ॥

कलि नीच है जति हुकवाई । बिसि अंकुश धनु तला बिकाई ॥

ममदामक फल है भिब बापी । बिसिजगल के कुसुम भवापी ॥ ९ ॥

नीचका कुकना (कल) भी यत्नरा दुःखदारी होता है । जैसे अंकुश, धनुष, बाण और बिल्लीका कुकना । हे मानी ! तुलसी गीरी कपी भी [उन्हीं प्रकार] मय देनेवाली होती है; जैसे भिला बहुके पूछ ॥ ९ ॥

सो—खरि पूजा मारीक तव सखर पूछी बात ।

कवन हेतु मन जगल खसि जगसर मायहु सत ॥ १० ॥

तब मारीकने उसकी पूजा करके आदरपूर्वक बात पूछी—हे बात ! शम्भर मन भिन्न करण इत्यादि कपिक जग है और जग अकेले भावे हैं ॥ १० ॥

सो—रसमुच सकल कहा लेहि ॥ कही सखि खसिख भवापें ॥

होहु कष्ट मग हम जगलसी । वेदि बिनि हनि खसौ सुखारी ॥ ११ ॥

मज्जकीन राजवने सारी कहा कर्मिमानवहित उसके खमने कही [और फिर फल—] हुय दल करनेके कष्ट-भूय कने; बिब उपकसेमें तब राजपूको हर लेंगे । ॥ ११ ॥

तेहिं पुनि कहा सुनहु दससीस । ते नरक पतार ईसा ॥

तासों तात कय कहि कीजै । मरैं भविष जियाई जीजै ॥ १ ॥

तब उसने (मारीचने) कहा—हे ब्रह्मचरि ! सुनिये । वे मनुष्यरूपमें चराचरके ईश्वर हैं । हे तात ! उनसे बैर न कीजिये । उन्हींके मानसे मना और उनके कियेनेसे जीना होता है (सदा जीवन-मरण उन्हींके अधीन है) ॥ २ ॥

सुनि मख रसतन गयस जुवासा । बिलु फर सर खुपति मोहि मारा ॥

सत जोजन आवतैं उय माहीं । तिन्ह सब बयस किहू भळ नाही ॥ ३ ॥

यही राजकुमार सुनि विषामित्रके बरुषी रक्षाके लिये गये थे । उक्त समय श्रीरघुनाथजीने बिना फल्यत्र बाण मुझे मारा था, जिससे मैं ज्वरभरमें सौ योजनपर आ गिरा । उनसे बैर करनेमें भयार्ह नहीं है ॥ ३ ॥

भइ मन कीट भुंश की माई । जहैं तहैं मैं देखतैं दोह माई ॥

जी मर तात तद्वि जति सूर । तिन्हहि भितोधि न भगहि पूरा ॥ ४ ॥

मेरी रक्षा तो भुंजीके कीड़ेकी-सी हो गयी है । अब मैं जहाँ-तहाँ भीराम-रक्षण दोनों भाइयोंको ही देखता हूँ । और हे तात ! यदि वे मनुष्य हैं, तो भी बड़े शूरवीर हैं । उनसे विरोध करनेमें पूरा न पड़ेगा (चक्रव्या नहीं मिलेगी) ॥ ४ ॥

दो०—जोहिं तादका सुवाहु हति संखेड हर कोइड ।

सर दुपम तिसिरा वधेउ मनुज कि अस वरिपड ॥ ५ ॥

जिसने ताड़का और सुपाहुको मारकर शिवजीका वनुष दोष दिया और सर, दुपम और तिसिरा काट कर उखा, ऐसा प्रचण्ड बली भी कही मनुज हो सकता है ॥ ५ ॥

चौ०—जाहु भवन कुल कुसल विचार । सुगत बस दीन्हिहि बनु गारी ॥

गुन विनि मूड कजि मम बीबा । फटु बन मोहि सवायकी जोषा ॥ ६ ॥

अतः अपने कुलकी कुशल विचारकर आप खैद जाइये । वह सुनकर रावण जल उठा और उसने बहुत-सी गालियाँ दी (दुर्वचन कहे) । [कहा—] ओरे भूर्ख ! तू गुनकी तरह मुझे शान सिखाता है ! क्या तो, संसारमें मेरे समान बोझ कौन है ? ॥ ६ ॥

तब मारीच इतने अनुमानों । बरहि भितोमें नहिं कयवाया ॥

सखी मरीं प्रभु खड धनी । बैद बंदि कधि भयस सुनी ॥ ७ ॥

तब मारीचने इदयमें अनुमान किया कि सखी (सखाचारी), सखी (भेद शनने-बाझ); समर्थ स्वामी, मूर्ख, कमजोर, वैद्य, साधु, कवि और खोहवा—इन नौ न्यायियोंसे विरोध (बैर) करनेमें कल्याण (कुशल) नहीं होता ॥ ७ ॥

ब्रह्म भति देखा विष मन्त्र । तब ताकिसि खुवायक सरना ॥

उतल देत मोहि बन्ध जगामें । कस म मरीं खुपति सर जायें ॥ ८ ॥

अब मारीचने दोनों प्रकारसे अपना मर्त्य देखा, तब उसने श्रीरघुनाथजीकी शरण ली (अर्थात् उनकी शरण जानेमें ही कल्याण समझा) [सोच कि] उत्तर दिशि ही (नहीं करते ही) वह जगामा मुझे मार दावेगा फिर श्रीरघुनाथजीके बाण जानेसे ही मरी न मरें ? ॥ ८ ॥

अब त्रिपें जानि दलान्त संख । चख सय पद प्रेम कर्मम ॥

मन अति हल्य कन्याय न लेही । जसु देखिहैं परम खनेही ॥ ९ ॥

इदयमें देख छात्रकर वह राजाके साथ चख । श्रीरामजीके चरणोंमें उतरा

असुख प्रेम है । उसके कर्मों इस बातका अत्यन्त दुर्घ है कि जब मैं अपने परम स्नेही श्रीरामजीको देखूँगा; किन्तु उसने कह हर्ष रावणको नहीं जाना ॥ ४ ॥

छं०—निज परम प्रीतम देखि खेचव सुफल करि सुख पावहीं ।

श्री सहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मग लावहीं ॥

निर्बान दायक प्रोच जा कर भगति अवसहि बसकरी ।

निज पानि सर संचानि सो मोहि वधिहि सुखसागर हरी ॥

[यह मन-ही-मन सोचने लगा—] अपने परम प्रियतमको देखकर नेत्रोंको सकल करके सुख पाऊँगा । जानकीजीसहित और छोटे भाई लक्ष्मणजीसमेत कृपानिकेत श्रीरामजीके चरणोंमें मग लगऊँगा । निजप्र प्रोच भी मोक्ष देनेवाला है; और जिनकी मति उन अवस्था (भित्तियोंके भ्रमों में होनेवाले, स्वतन्त्र भगवान्) को भी ब्रह्ममें करनेवाली है, भगवा । वे ही आनन्दके समुद्र श्रीहरी अपने हाथोंसे वाण उन्धानकर मेरा वध करेंगे ।

दो०—यम पाछें घर आवत धरें खरासम वान ।

फिरि फिरि प्रभुहि धिरोकिहैं धन्य न मो राम जान ॥ २६ ॥

धनुष-बाण धरण किये मेरे पीछे-पीछे पृथ्वीपर [पकड़नेके लिये] चौकते हुए प्रभुको मैं फिर-फिरकर देखूँगा । मेरे कमान कब दूरा कोई नहीं है ॥ २६ ॥

चौ०—देहि वर विषय दसावध गच्छ । सब मारीच कष्टमूल अयक ॥

कति विविध कष्ट करि ब जाई । कबत देह मरि लक्षित बनाई ॥ १ ॥

सब रावण उक्त कहे (जिस कर्मों श्रीरामजी रहते थे) निकट पहुँचा; सब मारीच कष्टमूल बन गया ! वह अत्यन्त ही विविध था, कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता । सोनेका शरीर भीबोले बढ़कर बनाया था ॥ १ ॥

सीता परम कबि सुग देवा । मग अंग सुमनोहर देवा ॥

सुगह के रघुवीर कृपाळा । एहि मग कर कति सुंदर कृपा ॥ २ ॥

सीताजीने उक्त परम सुन्दर हिरनको देखा, जिसके अङ्ग-अङ्गकी छटा अत्यन्त मनोहर थी । [वे कहने लगी—] हे देव ! हे कृपाळु रघुवीर ! मुनिये । इस मृगकी छटा बहुत ही सुन्दर है ॥ २ ॥

सत्पराय प्रभु वधि करि गही । बधुतुं धर्म कहति बेदेही ॥

सब रघुपति जानत सब वारस । कटे हरषि सुर कष्ट सँवारस ॥ ३ ॥

जानकीजीने कहा—हे सत्पराय प्रभु ! इसको खरकर इसका चमड़ा का दीजिये । सब श्रीरामजी [मारीचके कष्टमूल कर्नेका] सब वारस जानते हुए भी, देवताओंका कार्य बनानेके लिये लक्षित होकर उठे ॥ ३ ॥

सुग धिरोकि कति पस्तिर गौवा । नरकत घर खरि सर साँपा ॥

प्रभु लक्ष्मणहि कहा समुदाई । भित्त खिरिब निस्त्रिच बहु भाई ॥ ४ ॥

हिरनको देखकर श्रीरामजीने कानमें फँटा बाँधा और हाथमें धनुष लेकर उत्तर सुन्दर (दिग्ग) बाण चढ़ाया । फिर प्रभुने लक्ष्मणजीको समझाकर कहा—हे भाई ! कर्म बहुत-से राक्षस भित्ति है ॥ ४ ॥

सीता केरि कनेहु रक्षकरी । बुधि विवेक कष्ट सम्य विनारी ॥

प्रभुहि धिरोकि पछ भग गाली । धनुष बधु सत्पराय सानी ॥ ५ ॥

सीता और विवेकके द्वारा सब और सम्यक् विचार करके सीताजी रखवाली

करना । प्रभुको देखकर मृग भाग पड़ा । श्रीरामचन्द्रजी भी धनुष बढ़ाकर उसके पीछे दौड़े ॥ ५ ॥

निगम नेति सिन्धु ध्यान व रत्ना । मन्वास्तुन पाठें सो पावा ॥

कबहुँ निकट पुनि दूरी पराई । कबहुँक प्रगट्ह कबहुँ छपाई ॥ ६ ॥

वेद जिनके विषयमें ऐति-नेति कहकर रह जाते हैं और शिवजी भी जिन्हें ध्यान में नहीं पाते (अर्थात् जो मन्म और वाणीसे निकलने परे हैं), वे ही श्रीरामजी भावासे पने हुए मृगके पीछे दौड़ रहे हैं । वह कभी निकट रह जाता है और फिर दूर भाग जाता है । कभी तो प्रकट हो जाता है और कभी छिप जाता है ॥ ६ ॥

प्रगटत दूरत करत छल सूरी । दृष्टि विधि प्रभुहि गपद छै दूरी ॥

सब तकि राम कठिन सर भरा । सरति परेत करि और पुकारा ॥ ७ ॥

इस प्रकार प्रकट होता और छिपता हुआ तथा बहुतोंसे छल करता हुआ वह प्रभुको दूर ले गया । तब श्रीरामचन्द्रजीने तबकर (निगमों काकर) कठोर श्राप मारा, [जिसके समते ही] वह घोर शब्द करके धृष्टीपर गिर पड़ा ॥ ७ ॥

छकिमन कर प्रथमहि छै नमरा । पाठें सुमिरैसि मन भई रमा ॥

प्राप्त तजत प्रगटेसि बिल देहा । सुमिरैसि राम समेत स्नेहा ॥ ८ ॥

पहले लक्ष्मणजीका नाम लेकर उठने पीछे मनमें श्रीरामजीका स्मरण किया । प्राप्ततया करते समय उसने अपना (राजसी) कटोर प्रकट किया और प्रेमसहित श्रीरामजीका स्मरण किया ॥ ८ ॥

अंतर मेम छासु पदियाना । सुनि दुर्लभ गति दीन्ह सुजाया ॥ ९ ॥

सुजान (सर्पिल) श्रीरामजीने उसके हृदयके प्रेमसे प्रज्ञानकर उसे यह गति (अपना परमपद) दी जो सुनिबोधे भी दुर्लभ है ॥ ९ ॥

वो—विपुल सुमन सुर वरपहि गावहि प्रभु शुच पाय ।

भिला पद दीन्ह असुर कहुँ दीनबंधु रघुनाथ ॥ १० ॥

देवता बहुत-से पूजकराये रहे हैं और प्रभुके गुणोंकी याचारी (लुपिर्षी) गारो हैं [कि] श्रीरघुनाथकी देवेदीनयन्यु है कि उन्होंने असुरसे भी अपना परमपद दे दिया ॥ १० ॥

वो—तब बधि दुरत फिरे रघुवीर । सोह पाव बन कति लुपौरा ॥

भारत तिरा सुधी बन सीता । कह छकिमन सब परम सनीता ॥ ११ ॥

हुष्ट मारीचकी मारकर श्रीरघुवीर दूरत लौट पड़े । इसमें धनुष और कमरमें तरफश शोभा दे रहा है । दूसरे नय-संतानीने दुःखमयी वाणी (मरते समय मारीचकी 'हा लक्ष्मण' की आवाज) सुनी तो वे बहुत ही मन्मगीत होकर लक्ष्मणजीसे कहने लगे— ॥ ११ ॥

जाहु बेगि संकट नति आता । छकिमन बिहसि पहा सुनु माता ॥

भुकुटि बिलास सृष्टि जय होई । सपनेहुँ संकट पद कि सोई ॥ १२ ॥

धूम शीघ्र जाओ, तुम्हारे मार्ग नये संकटमें हैं । लक्ष्मणजीने हँसकर कहा—दे माता । सुनो बिनके भुकुटिबिलास (भौंके इशारे) माथसे सारी सृष्टिका जय (मलय) हो जाता है, वे श्रीरामजी क्या कभी सपनों में भी संकटमें पड़ सकते हैं ? ॥ १२ ॥

सरम बचन जय सीता बोध । हरि जेसि छकिमन सब बोध ॥

बन दिशि देव सीमि सब काहु । जो जहाँ लखन सखि राहु ॥ १३ ॥

इसपर अब सीताजी कुछ गर्म-बचन (हृदयमें शुभनेकलेखन) कहने लगीं, जब मन्वास्-

की प्रेरणासे लक्ष्मणजीसब मन भी चञ्चल हो उठा । वे श्रीसीताजीको वन और दिशाओंके देवताओंको चौपत्तर बहों चले जाहों रावणरुमी चन्द्रमाले लिये राहु रूप श्रीरामजी थे ॥ ३ ॥

सुन चीन दसहँवर देखा । जाका चिह्न जती कें देखा ॥

जाहें हर मुर अमुर देखाहीं । जिसि न नींद दिन अथ न आहीं ॥ ४ ॥

रावण सुना मौका देखकर बलि (संन्यासी) के वेपमें श्रीसीताजीके समीप आया । जिसके हरसे देवता और दैत्यसक इतना डरते हैं कि रातको नींद नहीं आती और दिनमें [भरपेट] भोजन नहीं खाते—॥ ५ ॥

सो दसहीस स्थान की गई । इत सब चित्त अछा भविहार्द ॥

हमि कुपंथ पयें देव खगेसा । रह ब लेन तन दुषि धल लेसा ॥ ५ ॥

वही दस किरणाल रावण कुत्तेकी तरह हथर-उपर जकता हुआ मदिहार्द (चोरी) के लिये चला । [अन्धशुश्रूषिणी कहते हैं—] हे मन्थनी ! इस प्रकार कुमार्गपर पैर रखते ही शरीरमें तेज तथा बुद्धि एवं बलका लेख भी नहीं रह जाता ॥ ५ ॥

* सुना पाकर कुचा चुपकेसे वर्जन-मर्दिमें गूँह डालकर कुछ घुरा ले जाता है उसे 'भविहार्द' कहते हैं ।

गता विधि करि कथा सुदार् । राखीति मय प्रीति देखाई ॥

कह सीता सुनु जती गोसाई । सोकेहु बचन दुष्ट की गई ॥ ६ ॥

रावणने अनेकों प्रधाली सुश्रवणी कपारें रखकर सीताजीको राजनीति, भय और प्रेम शिक्षाया । सीताजीने कहा—हे बति गोसाई । मुनो, दुम्ने तो दुष्टकी तरह बचन कोरे ॥ ६ ॥

तब रावण मिल रूप देखाय । अई सम्य नव बस सुभाषा ॥

कह कीसां बरि, प्रीति धायां । अइ गपठ प्रभु रहु सक काय ॥ ७ ॥

तब रावणने अपना अस्सी रूप दिखाया, और जब नाम सुनाया तब तो सीताजी मयपीत हो गयीं । उन्होंने गहरा पीरज भरकर कहा—अरे दुष्ट ! लड़ा तो रू, प्रभु आ गये ॥ ७ ॥

जिसि हरिवदुहि छुट सक काय । भवति कयकस जिसिचर लहा ॥

सुनत बचन दसहीस रिखाय । मय मई बरब बँह भुल माना ॥ ८ ॥

जैसे सिंहकी लीको तुपक सरगोश पाहे, वैसे ही अरे राजतराय । ६ [मेरी चार करके] कालके बंध हुआ है । वे कचन सुनते ही रावणको कोष आ गया । परन्तु मनमें लड़ने सीताजीके चरणोंकी कन्दना करके मुल मया ॥ ८ ॥

दो—कोषधत्त तब रावण लीनिहसि रथ बैठाइ ।

बला यमामय आतुर भई रथ हँके स जाइ ॥ २८ ॥

फिर कोषमें मरकर रावणने सीताजीको रथपर बैठा लिया और वह बढ़ी उठानकीके साथ आकाशमार्गसे चला; किन्तु बरके अरे उससे रथ हँका नहीं सज था ॥ २८ ॥

चौ—हा जग एक थीर शुरावा । केहि अपराध बिसारेहु क्षमा ॥

आरति हरन सब सुखदायक । हा खकुल खगेन दिननायक ॥ १ ॥

[सीताजी विलप कर रही थीं—] हा कायके अहितीय वीर श्रीरामनाथजी ! आपने किब अपराधसे मुष्णर दया भुल दी । हे दुश्मनों! हरनेवाले, हे धारणागतको सुल देनेवाले, हा खकुलरुपी जगलके स्वर्ग ॥ १ ॥

हा लक्ष्मन तुम्हारे नहीं दोसा । सो फल पावतें लीनेहें रोसा ॥

विविध विजाय कति बैवेसी । मुरि छत्र प्रभु दूरि खनेही ॥ २ ॥

॥ लक्ष्मण ! तुम्हारा दोष नहीं है। मैंने श्रेष्ठ किया, उसका फल पाया।
श्रीजानकीजी बहुत प्रकारसे विक्षय कर रही हैं—[शय ।] प्रभुकी कृपा तो बहुत है,
परन्तु वे स्नेही प्रभु बहुत दूर रह गये हैं ॥ २ ॥

विपत्ति मेरि ओ प्रभुहि सुनावा । बुलैवास यह ससभ कथा ॥
सीता कै विवक्ष्य सुनि गरी । नष्ट वसन्त जीव दुखारी ॥ ३ ॥
प्रभुको मेरी यह विपत्ति कौन सुनाये ! उसके अन्तको नदहा खाना चाहता है !
सीतानीका भारी विलाप सुनकर धन-नेत्र लमी धीन दुखी हो गये ॥ ३ ॥

गीधराज सुनि कात्त कानी । रघुकुलतिष्ठ नरि पहिचानी ॥
अधम निराकर छीन्हें जाई । बिनि मलेछ बस कविछ गाई ॥ ४ ॥
धर्मराज जटापुने सीतानीकी दुःखमयी बाणी सुनकर पहचान लिया कि ये
रघुकुलतिष्ठ श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नी है । [उसने देखा कि] नीच राक्षस इनको
[घुरी सरह] छिये जा रहा है, जैसे कविछ गाव मलेछके फले पड़ गयी हो ॥ ४ ॥

लौगै पुति करसि कवि ज्ञाता । करिहैं आहुधान कर नासा ॥
बाबा क्रोधवन्त काग कैसैं । कूट्य पनि परकट कहुँ जैसैं ॥ ५ ॥
[यह बोझ—] हे लौगै पुनी ! भय मत कर । मैं इस राजसका नाश करूँगा । [यह
कहकर] यह पक्षी क्रोधमें भरकर जैसे दौड़ा, जैसे पर्वतकी ओर वज्र कूटता हो ॥ ५ ॥

२ २ हुड ठाढ़ किम होही । चिरन चलेसि न जानेहि मोही ॥
आगत हैकि कुशल समाज । किरि दसकंधर कर अनुमाना ॥ ६ ॥
[उसने लज्जकारक कहा—] रे-रे हुड ! कदा नवी नहीं होता ! निबर होकर
चक दिया [मुझे देने नहीं आना] उसको वसराके समान आता हुआ देखकर रावण
घुमकर मनमें अनुमान करने लगा—॥ ६ ॥

की मैवाक कि लगपति होई । यम बल बल सक्षित पति सोई ॥
घाना जगद जटायू पुरा । मन कर शीघ्र लीपिहै देहा ॥ ७ ॥
यह बा तो मैवाक सर्वत है, बा पक्षियोंका स्वामी गन्ध । पर यह (गन्ध) तो अपने
स्वामी विष्णुवहित मेरे बलको जगत्ता है ! [कुछ पास आनेपर] रावणने उसे पहचान लिया
[और बोझ—] यह तो भूढ़ा जटायु है। यह मेरे हाथरूपी तीरोंमें घरीर छोड़ेगा ॥ ७ ॥

सुगत गीध क्रोधाहुर बाबा । कद सुनु रावण गौर सिखावा ॥
तति जानकिहि कुसल गृह आहू । नहि स जस होइहि बहुपाहू ॥ ८ ॥
यह सुनते ही गीध क्रोधमें भरकर जैसे वेगसे दौड़ा और बोझ—रावण ! मेरी
सिखावन सुन । जानकीजीको छोड़कर कुललपूर्वक अपने घर चला जा । नहीं तो हे
बहुत मुजाबोजाके ! ऐसा होगा कि—॥ ८ ॥

राम रोष पानक बंति घोरा । होइहि समस्त सख्य कुल खोरा ॥
उसक न देस दसभन जेवा । जगहिं गीध घाव करि क्रोधा ॥ ९ ॥
श्रीरामजीके क्रोधरूपी अस्त्रान्त भगवान्क अजिये तेरा सारा वंश पतिगा [होकर मर]
हो जयगा ! बोझा रावण कुछ उत्तर नहीं देता । इस गीध क्रोधफरके दौड़ा ॥ ९ ॥

हरिकचविरध कोन्ह महि गिरा । सीतहि राखि गीध पुति फिस ॥
चोचन्ह मरि बिबारेसि देही । दंड एक यह मुखन देही ॥ १० ॥
उसने [रावणके] बाल फड़ककर उसे रखके नीचे उतार लिया ; रावण पृथ्वीपर
गिर पड़ा । गीध सीतानीकी एक ओर बैठाकर फिर ऊँट और चोंचोंसे मार मारकर

रावणके शरीरको विदीर्ण कर दास । इससे उसे एक चढ़ीके छिन्ने मूर्छा हो गयी ॥१०॥

तब स्मरणे चित्तियार चित्तियान्न । जड़ेसि परम कष्ट कृपाता ॥

कटेसि रंछ बरा सग चली । सुमिरियम करि जदभुत करनी ॥११॥

तब चित्तियाने हुए रावणने ज्येष्ठकु होकर अतन्त्र भवानक कटार निकाले और उससे जदभुके रंछ कर कटे । फी (अट्ट) श्रीरामजीकी भद्रुत, लीलाका स्मरण करके पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ११ ॥

सीताहि जग चढ़ाई बहोरी । कछ उताहल प्राप्त व पीरी ॥

करति विभ्रम जाति नम सीता । व्याघ्र विहस बनु मृगी समीता ॥१२॥

सीताजीको फिर रथपर चढ़ाकर रावण बड़ी उतावलीके साथ चला । उसे भय कम न था । सीताजी आकाशमें निक्षेप करती हुई जा रही हैं । मानो व्याघ्रके बरामें फी हुई (जलमें डूबी हुई) कोई मयमीन दिरनी हो । ॥ १२ ॥

गिरि पर कै करिन्ह चित्तारी । छदि हरि नाम हीन्ह पट दारी ॥

एहि विधि सीताहि लो लै गफ । वन भ्रमोक्त मई राक्षस भयक ॥१३॥

पर्वतपर बैठे हुए बंदरोंको देखकर सीताजीने हरिनाम लेकर बड़ा हास दिया । इस प्रकार वह सीताजीको ले गया और उन्हें यशोवनमें जा रक्का ॥ १३ ॥

दो—हारि हार कछ बहु विधि सय भव प्रीति देखाइ ।

तब भ्रमोक्त पावप तर राक्षसि अतम कराइ ॥१४ (क)॥

सीताजीको बहुत प्रकटते भय और प्रीति दिखलकर वह हार गया । तब उन्हें बल कराके (सब व्यवस्था ठीक कराके) भ्रमोक्त वृक्षके नीचे रख दिया ॥ १४ (क) ॥

नवभुपारायण, छठा विभ्रम

जेहि विधि कष्ट कुरंग लैग धाइ बढे श्रीराम ।

लो छदि सीता राक्षि उर रटति रहति हरिनाम ॥१५ (ख)॥

जिब प्रकार कष्टमृगके साथ श्रीरामजी दौड़ पड़े थे, उसी छविको हृदयमें राखकर वे हरिनाम (रामनाम) रटती रहती हैं ॥ १५ (ख) ॥

चौ—छुपति भुजबहि अकत देखी । बाहिल चित्त कीन्हि चितेवी ॥

जगज्जुल परिहरिहु अकेली । अच्युत तत वचन प्रम पैली ॥ १६ ॥

[इकर] श्रीरामजीकी छोटी भाई लक्ष्मणजीको आगे देखकर बाह्यरूपमें बहुत चिन्ता की [और कह—] हे भाई ! तुम्हने लक्ष्मणजीको अकेली छोड़ दिया और मेरी माताका उद्धारन कर कहाँ चले आये ! ॥ १६ ॥

चित्तियार निकर चित्तियन साही । मम बच सीता कायम चाहौ ॥

गदि पद कमत अनुन कर जोरी । जदेव नाथ कहु मोदि व सोरी ॥ १७ ॥

राक्षसोंके छंद कर्मों फिरते रहते हैं । मेरे मनमें ऐसा आता है कि सीता आश्रममें नहीं है । छोटे भाई लक्ष्मणजीने श्रीरामजीके वरकर्मोंको पढ़कर हाथ जोड़कर कहा— हे नाथ ! मेरा कुछ भी दोष नहीं है ॥ १७ ॥

भनुन छोले बध प्रभु ताहीं । गोदावरि छत वाचस लह्यौ ॥

भायम हेमि ज्यज्जी हीन । भय विफल जस प्राकृत दीन ॥ १८ ॥

लक्ष्मणजीपक्षि प्रभु श्रीरामजी वहाँ गये जहाँ गोदावरीके तटपर उभका आश्रम था । आश्रममें जानकीजीने रहित देखकर श्रीरामजी काधारण मनुष्यकी भाँति व्याकुल और दीन (दुखी) हो गये ॥ १८ ॥

हा गुन खनि नाखी सीख । रूप सीख मत नैत पुनीता ॥
 कलिभन समुदाए बहु मंजी । पूछत चले उवा तव पाँती ॥ ४ ॥
 [वे मिलाए करने को—] हा गुणोंकी खान खनकी ॥ रूप, सीख, मत और
 नियमोंमें पवित्र सीते । लक्ष्मणजीने बहुत प्रकारसे समझाया । तब श्रीरामजी स्तावो
 और वृक्षोंकी पत्तियोंसे पूछते हुए चले— ॥ ५ ॥

हे सग मुन हे भुज्ज खेनी । तुम्ह देखी सीता मृगनैनी ॥
 खंवर सुक खोसत सुख सीना । सपुत्र बिन्द कोकिला प्रवीणा ॥ ५ ॥
 हे पक्षियों ! हे पक्षियों ! हे भौंरोंकी पंक्तियों ! तुम्हने कहीं मृगनयनी सीताको
 देखा है ? खंजन, तोख, झूतर, हिन, मल्लखी, भौंरोंका समूह, प्रवीण कोकिल, ॥ ५ ॥
 हुंवर कड़ी दादिम दामिनी । कमल सरद ससि अहिभामिनी ॥

यवन पल्ल मन्वोज धनु हंसा । मय केहरि मित्र सुमत प्रसंता ॥ ६ ॥
 कुन्दकरी, अनाद, विलखी, कमल, सरदका चन्द्रमा और नागिनी, वसुधा
 पाग, कामदेवका धनुष, हंसा, मय और सिंह, ये सब आज अपनी प्रशंसा गुन रहे हैं । ॥ ६ ॥
 श्रीकल कम्क कल्लि हरबाही । नेहु न संत सङ्कष मय माही ॥

सुनु जागकी लोहि भिनु अन्ध । हरये सकल पाह जनु राख ॥ ७ ॥
 बेल, सुवर्ण और केला इतित हो रहे हैं । इनके मन्त्रे जय भी बाझा और सफोच
 महीं है । हे जानकी ! सुनो, तुम्हारे बिना ये सब आज ऐसे इतित हैं मानो राज पा मये
 हो । (अर्थात् तुम्हारे अङ्गोंके सम्मने ये सब वृक्ष, जपमानित और खचित ये । आज
 तुम्हने न देखकर ये अपनी सोभाके अमिमानमें फूल रहे हैं) ॥ ७ ॥

किमि सहि वल्ल अमल लोहि पानी । बिषा केमि प्रगल्लि कस नाहीं ॥
 एहि बिधि कोकल बिछपत स्वामी । मगहुं मदा विरही अति कामी ॥ ८ ॥
 तुमसे पर अमल (सर्वा) कैसे सही जाती है ? हे प्रिये ! तुम नीच ही प्रकट
 क्यों नहीं होती ! इस प्रकार [अनन्त जलप्रवाहोंके अपवा महामहिमामयी लक्ष्मणा शक्ति
 भीरीतालीके] स्वामी श्रीरामजी सीताजीको सोचते हुए [इस प्रकार] विवर्ण करते
 हैं मानो कोई महाविरही और अत्यन्त कामी पुरुष हो ॥ ८ ॥

पूरनराम राम सुख शली । मनुप्रकरित कर अल अधिकारी ॥
 जागो वरा गीषवलि देखा । सुमिरत राम चरन बिन्द देखा ॥ ९ ॥
 पूर्णराम, आनन्दकी राशि, अकल्प और अविनाशी श्रीरामजी मनुष्योंके वे चरित्र
 कर रहे हैं । आगे [जानेष्ट] उन्होंने राजवति जटायुको बड़ा देखा । वह श्रीरामजीके
 चरणोक्त संरण कर रहा था, जिसमें [जन्म, कुलवि आदिखी] स्मरण (चिह्न) हैं ॥ ९ ॥

दो—कर सरोज खिर परसेठ कृपासिधु रघुवीर ।
 निरखि राम छवि घाम मुख-विगत गई खच सीर ॥ ३० ॥
 कृपाशाली श्रीरघुवीरने अपने कर-कमलसे उसके चिरका सखे किया (उसके
 चिरपर कर-कमल केर दिया) । सोमाधाम श्रीरामजीका [परम सुन्दर] मुख देखकर
 उसकी स्ता पीका जाती रही ॥ ३० ॥

चौ—तब कह गीध बचन चरि धीर । सुनहु राम जंघन खन सीर ॥
 नाथ दसानन कह गति कीन्ही । देखि सल जनकसुता हरि छोम्दी ॥ १ ॥
 तब धीरज धरकर गीधने वह वचन कहा—हे भव (जन्म-मृत्यु) के मयका
 रा० स० ३२—

नाथ करनेवाले श्रीरामजी ! सुनिये । हे नाम ! रावणने मेरी यह दृष्टि की है । उसी दुष्टने जानकीजीको हर लिया है ॥ १ ॥

तै दक्षिण दिशि राख गौसाई । किरपति अति कुसरी की नाई ॥

दरस लखि प्रसु रखैत प्राण । चखन चहुँ अरु कृपा बिधाना ॥ २ ॥

हे गौसाई ! वह उन्हें लेकर दक्षिण दिशको गया है । सीताजी कुसरी (कुर्व) की तरह अत्यन्त दिख्य कर रही थीं । हे प्रभो ! मैंने आपके दर्शनोके लिये ही प्राण रोक रखे थे । हे कृपानिधान ! अब ये चलना ही चाहते हैं ॥ २ ॥

राम कहा तसु राखहु तात । मुख मुमुकाद कही ठैहि बाता ॥

आकर नम भरत मुख खबा । अबमठ मुकुट होइ भुति गावा ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे तात ! शरीरको बनाये रखिये । अब उसने मुकुटापे हुए मुँहसे यह बात कही—मझे उम्म निम्न नाम मुझमें आ जानेसे अबम (महान् पापी) भी मुक्त हो जाता है, ऐसा वेद गाते हैं—॥ ३ ॥

सो मम लोचन गोचर आयें । राखी देह नाथ केहि लोभें ॥

कल भरि लपन कहहि रघुराई । तात कर्म बिज सँ गति पाई ॥ ४ ॥

यही (आप) मेरे नेत्रोंके निम्न होकर सामने खड़े हैं । हे नाम ! अब मैं किस कमी [की पूर्ति] के लिये देखको रखूँ ? नेत्रोंमें कल भरकर औरमुनायनी करने लगे—हे तात ! आपने अपने गेह कर्मोंसे [दुर्लभ] गति पायी है ॥ ४ ॥

परहि कस बिन्द के मग माई । बिन्द कहुँ अग दुर्लभ कहुँ नाहीं ॥

तहु लखि तात बाहु मम बाझ । देई काह तह्य पूरनकामा ॥ ५ ॥

जिनके मनमें दूरेका हित बसता है (उभासा रहता है), उनके लिये बगलमें कुछ भी (कोई भी गति) दुर्लभ नहीं है । हे तात ! शरीर छोड़कर आप मेरे कस बाझमें आइये । मैं आपको क्या दूँ ! आप तो पूर्णकाम हैं (जब कुछ पा चुके हैं) ॥ ५ ॥

दो—सीता हरन तात अति कहहु पित्र सन जाह ।

जौ मैं राम स कुछ सहित कहिहि दसावन जाह ॥ ६ ॥

हे तात ! सीताहरणकी कस आप नाकर पित्रवृत्ति स कहियेगा । यदि मैं राम हूँ तो वरामुक्त रावण दुष्टव्यवहारियों नाकर स्वयं ही कहेगा ॥ ६ ॥

बौ—गोच देह लखि भरि हरि कृपा । भूषन बहु पद पीत जदूस ॥

साम गाह बिछात भुज बाही । अस्तुति कस नयन भरि बाही ॥ १ ॥

दयामुने गोचकी देह लक्षण कर इस्तिन्न रूप धारण किया और बहुतसे अनुपम (दिव्य) वामूषण और [दिव्य] पीताम्बर पहन लिये । ध्याम शरीर है, विष्णुका भार मुझमें है और नेत्रोंमें [प्रेम तथा आनन्दके अँसुओंका] लव भरकर वह लुत्ति कर रहा है—॥ १ ॥

४०—अथ राम रूप अनूप निर्गुन सगुन शुन प्रेरक सही ।

दसलीस बाहु प्रचंड सँडन चंड सर मंडन मही ॥

पायोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचन ।

नित नीमि रामु छपाल बाहु विखाल भव मय मोचन ॥ १ ॥

हे रामजी ! आपकी कस हो । आपका रूप अनुपम है; आप निर्गुन हैं, सगुन हैं, और कस ही गुणोंके (मायाके) प्रेरक हैं । दस किरवाले रावणकी प्रचण्ड भुजाओंकी जम्ब-जम्ब करनेके लिये प्रचण्ड बाण धारण करनेवाले, दृष्टीको मुशोभित

करनेवाले, जलसुक्त जैसेके समान स्वाम शरीरवाले, कमलके समान मुख और [लाल] कमलके समान विद्याल नेत्रोंवाले, विद्याल भुजाओंवाले और भक्त-भक्तों के हृदयनेवाले कृपाल श्रीरामजीको मैं नित्य नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

बलमप्रमेयमनादिमन्त्रमन्त्रकमेकमणोचरं ।

गोविन्द गोपल इंद्रहर विष्णुनखन घटनीधरं ॥

जे राम मंत्र वर्णत संत अर्चत जन मन रंजनं ।

नित नौमि राम अक्षय प्रिय कामादि खल दल गंजनं ॥ २ ॥

आप अपरिमित बलवाले हैं अनादि, अक्षय, अन्वक्त (निराकार), एक, भगोचर (अक्षय), गोविन्द (वेदवाक्योंद्वारा जानने योग्य), इन्द्रियोषे जलित, [सन्त-मरण, सुख-दुःख, हर्ष-शोक] इन्द्रोंको हरनेवाले, विज्ञानकी वन मूर्ति और दृष्टीके आचार हैं तथा जो संत राम-मन्त्रोंसे जपते हैं, उन अमन्त्र सेकहीं मनुष्यको भानन्द देनेवाले हैं । उन निष्कामप्रिय (निष्कामजनोके प्रेमी अपना उन्हें प्रिय) तथा काम आदि दुष्टों (दुष्ट इष्टियों) के दण्ड दण्ड करनेवाले श्रीरामजीको मैं नित्य नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

जेहि धृति निरंजन ब्रह्म व्याकृत विरह भक्त कहि गावहीं ।

करि ध्यान ग्यान बिपग जेग अनेक मुनि जेहि पावहीं ॥

खो प्रगट करुम कंद खोमा बृंद भग खख मोहरें ।

मम हृदय पंकज भृंग भंग अनंग बहु छवि खोहरें ॥ ३ ॥

जिनको धृतिमें निरंजन (सायाके परे), ब्रह्म, व्याकृत, निर्विकार और जन्म-रहित कहकर गान करती हैं । मुनि जिन्हें ध्यान, ज्ञान, वैराग्य और भोग आदि अनेक साधन करके पाते हैं ; वे ही करुणाकन्द, खोमाके समूह [खोमे श्रीभागवान्] प्रकट होकर लज्ज-चेतन समस्त जगत्को मोहित कर रहे हैं । मैं हृदय-कमलके समस्तकमल उनके मङ्गल-मङ्गलों बहुत-से कामदेवोंकी छवि खोमा या रही है ॥ ३ ॥

जे भगम सुमम सुमाय विरह भंजन खग सीतल सदा ।

पर्यापति जं जोगी जतन करि करत मम गो बस सदा ॥

खो राम रमा विवास संतत दस्त दस्त त्रिभुवन घसी ।

मम उर बसठ खो समन संसृति आसु कीपति पावनी ॥ ४ ॥

जो भगम और सुमम हैं, निर्दोषस्वभाव हैं, विषय और सम हैं और सदा शीतल (शान्त) हैं । मन और इन्द्रियोषे उदा कर्म करते हुए योगी बहुत साधन करनेसे जिन्हें देख पाते हैं । वे ही लोकोके स्वामी, रमाविवास श्रीरामजी निरन्तर अपने दासोंके बचने रहते हैं । वे ही मैं हृदयमें निवास करें, जिनकी प्रिय स्त्री मैं मावगमन-को मिटानेवाली है ॥ ४ ॥

दो—अचिरल मगति भाषि कर गीष गवध हरिचम ।

तेहि की प्रिय जयोचित निज कर कीन्ही राम ॥ ३२ ॥

अक्षय भक्तिका कर गौगकर यशराज जयपु श्रीहरिके परमधामको बत गया । श्रीरामचन्द्रजीने उतकी [दाहकर्म] आदि करी । भिनारों बचानेमें अपने हाथोंसे कीं ॥ ३२ ॥

चौ—कोमल चित जहि दीनवत्सल । कराय बिनु राहुनाय कृपाळा ॥

गीष जयम खल भाषिष खेनी । रहि कीन्ही खो जानत खेनी ॥ ३३ ॥

श्रीरघुनाथजी अत्यन्त कोमल चित्तवाले, दीनदवाह, और बिना ही कारण
क्रुपाछ हैं। गीष् [पक्षियोंमें भी] अकम् पक्षी और मांसहारी था, उसको भी
बुद्धिमान गति दी जिसे बोधीमान मानते रहते हैं ॥ १ ॥

सुनहु उमा ते लोग अमान्नी । हरि तबि होई किन्तु अनुरागी ॥

पुनि सीतहि खोजत ह्री आई । चले बिलोकत बन बहुतारै ॥ २ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे पार्वती ! सुनो, वे लोग अमाने हैं, जो भगवान्‌को
छोड़कर विषयोंसे अनुराग करते हैं। फिर दोनों भाई सीताजीको खोजते हुए आगे
चले। वे जनकी उपनयन देखते जाते हैं ॥ २ ॥

संकुल छाया बिटप बन कामन । बहु जन सुन गई मग पंचानन ॥

आवत पंच कंच निपात । मोहि सब कही साय कै बात ॥ ३ ॥

वह सघन बन कछुओं और घुड़ोंसे मरा है। उसमें बहुतसे पक्षी, मृग, हाथी
और सिंह रहते हैं। श्रीरामजीने रास्तेमें जाते हुए कईय राक्षसोंको मार डाला। उनमें
अपने शापकी वारी बात कही ॥ ३ ॥

दुरबासा मोहि दीन्दी सखा । प्रभु वद पेक्षि मित्रा सो पाय ॥

सुनु गंधर्व कहैं मैं तोही । मोहि न सोहाइ मगकुल होही ॥ ४ ॥

[वह बोले—] दुरासजीने मुझे शत्रु दिया था। अब प्रभुके चरणोंको देखनेने
मैं पाप मिट गया। [श्रीरामजीने कहा—] हे गन्धर्व ! सुनो, मैं तुम्हें कहता हूँ,
महागण्डके द्वारे करनेवाले मुझे नहीं सुनाता ॥ ४ ॥

दो—भक्त क्रम बखन कपट तबि ओ कर भूसुर सेव ।

मोहि समेत विरंचि सिध वसं ताकें सुख देव ॥ ५ ॥

मन, वचन और कर्मसे कपट छोड़कर जो भूदेव ब्राह्मणोंकी सेवा करता है, भूरा-
जसेत ब्रह्मा, शिव आदि सब देवता उसके चरणमें हो जाते हैं ॥ ५ ॥

चौ—सायक लख बरन कहैता । निप्र पूज्य अरु गान्धि संता ॥

पुनिभ विप्र सील पुन हीन । सुह न सुख यन ज्ञान प्रवीन ॥ ६ ॥

शाप देता बुद्ध, मारता बुद्धा और कठोर बचन करता बुद्धा भी
ब्राह्मण पूजनीय है; ऐसा संत कहते हैं। सील और गुणसे हीन भी ब्राह्मण पूजनीय है
और गुणगणोंसे युक्त और ज्ञानमें निपुण भी बूढ़ पूजनीय नहीं है ॥ ६ ॥

कहि शिव धर्म चाहि समुदाया । शिव कद श्रीति देखि मन भाया ॥

रघुपति चरन कमल सिद्ध आई । गच्छ गच्छ आपनि गति पाई ॥ ७ ॥

श्रीरामजीने अपना धर्म (मायकृतधर्म) कहकर उसे समझाया। अपने चरणों-
में प्रेम देखकर वह उनके भक्तसे माना। तदनन्तर श्रीरघुनाथजीके चरण-कमलोंमें शिव
नयाकर वह अपनी गति (कर्मकृत स्वर्ग) जाकर आनन्दमें लल गया ॥ ७ ॥

साहि वैद गति सम उदारा । सबरी कैं आश्रम पशु पारा ॥

सन्तरी देखि राम राहें आए । मुनि के वचन समुक्ति किई माय ॥ ८ ॥

उदार श्रीरामजी उसे गति देकर सन्तरीकी आश्रममें पधारे। सबरीजीने श्रीराम-
चन्द्रजीको धर्म माने देखा। उन मुनि महात्माजीके वचनोंको श्रद्धा करके उनका मन
प्रसन्न हो गया ॥ ८ ॥

सरसिल खेचन बहु मिसाख । म्या मुकुट सिर सर वदमाका ॥

साम रौर सुंदर सोठ भाई । छक्की परी चन रुपदाई ॥ १ ॥

कमलसदृश नेत्र और विद्याल मुचानले, सिरपर ज्योषोक्क मुकुट और हृदयपर वनमाला धारण किये हुए सुन्दर खेचले और गोरे दोनो भाइयोंके चरणोंमें शयरीनौ लिपट पड़ी ॥ ४ ॥

प्रेम समय मुख बचन न आया । पुनि पुनि पद सरोज सिर नाया ॥

सादर बल छै चन पसारे । पुनि सुंदर आसन बैठाया ॥ ५ ॥

वे प्रेमीमें मग्न हो गयी, मुखसे वचन नहीं निकलता । बार बार चरण कमलोंमें सिर नचा रही है । फिर उन्होंने बल छेड़कर आदरपूर्वक दोनो भाइयोंके चरण धोये और फिर उन्हें सुन्दर आसनोपर बैठाया ॥ ५ ॥

दो०—कह सुख फल सुरस अति दिए राम कहूँ आनि ।

प्रेम सहित प्रभु कष्य बारबार बखानि ॥ ६ ॥

उन्होंने भक्त्यन्त रसीके और स्वादिष्ट कन्द, मूक और एक खरूर श्रीरामजीको दिये ॥ प्रभुने बार बार प्रशंसा करके उन्हें प्रेमसहित लाया ॥ ६ ॥

बौ०—नामि कोरि धामे नई सगरी । प्रभुहि पिछोकि प्रीति अति वासी ॥

केहि बिधि असुखि करो दुन्दारी । जयम अति मै जयमति भारी ॥ ७ ॥

फिर वे द्वार्य ओढकर जाने लगी हो गयी । प्रभुको देखकर उनका प्रेम अत्यन्त बढ़ गया । [उन्होंने कहा—] मे किस प्रकार आसकी खुति करे ॥ मैं नीच जातिवा और भक्त्यन्त भूखुदि हूँ ॥ १ ॥

जयम दे जयम जयम अति वासी । तिन्ह जहाँ मै सतिमद बधारी ॥

कह रह्यति सुनु भामिनि जाता । मगजें एक भगति कर जाता ॥ ८ ॥

जो अपमते भी जयम है, जिनको उनमें भी अत्यन्त अधम हो और उनमें भी है पाप्मापाम । मैं मन्त्रमुदि हूँ । श्रीरामनाथजीने कहा—हे भामिनि । मेरी बात सुन । मैं तो केवल एक भक्तिहीनका सम्मुख आगता हूँ ॥ २ ॥

जाति पोंति कुल धर्म बदाई । कब कब परिकर तुल बहुराई ॥

भगति हीन कर सोइह लैज । विनु लल करिद वैसिक भैसा ॥ ९ ॥

जाति, पोंति, कुल, धर्म, बदाई, कब, कब, कुटुम्ब, गुण और बहुरता—इन सबके होनेपर भी भक्तिसे रहित गलुप्प कैसा जाता है, जैसे जलहीन बादल [शोभाहीन] दिखायी पड़ता है ॥ ३ ॥

बबसा भगति कहैं लोहि वाही । खलबखल सुनु धन मन भाही ॥

प्रथम भगति संजह कन सग । तूसरी लति मग कया भलगा ॥ १० ॥

मैं दुष्टसे अब अफनई नवचा मँकि कहता हूँ । ए खलबखल होकर धन और मनमें धारण कर । पहली भक्ति है उच्छेन्न उत्तम । दूसरी भक्ति है मेरे कल्याणप्रयोगे प्रेम ॥ ४ ॥

दो०—गुर कह पंकज सेवा तीसरि मयति लभन ।

चौथि भगति मग गुन रान करइ कष्ट सजि यान ॥ ११ ॥

तीसरी भक्ति है अभिमानरहित होकर गुणोंके चरण कमलोंमें सेवा । और चौथी भक्ति वह है कि कष्ट छोड़कर मेरे गुणसमूहोंमें आनन्द करे ॥ २५ ॥

चो०—संज्ञ जाय सम दद विद्यासा । एवम भवत सो वेद प्रकासा ॥

एत दम शील विनिति बहु करमा । निस्त निरंतर सज्जव वरमा ॥ १ ॥

मेरे (राम) मन्त्रज्ञ जाय और मुझमें दद विद्यासे—यह पौर्वर्षी भक्ति है, जो वेदोंमें प्रविष्ट है । उही भक्ति है इन्द्रियोंका निग्रह, शील (अच्छा स्वभाव या चरित्र) ; बहुत कामोंसे वैराग्य और निरन्तर संत-पुरुषोंके भर्मा (आचरण) में लगे रहना ॥ १ ॥

सातवें सम मोहि मय जय देख । मोतें संत अधिक करि सेवा ॥

आठवें सवात्सम संतोषा । सपनेमें नहि देखइ परदोषा ॥ २ ॥

सातवीं भक्ति है कात्स्न्यको सममान्ते मुझमें ओतप्रोत (राममय) देखना और संतोषे मुझसे भी अधिक करके मानना । आठवीं भक्ति है जो कुछ भिन्न जाय उसीमें संतोष करना और स्वयंमें भी परमे दोनोंमें न देखना ॥ २ ॥

नवम सकल सब सप छछरीया । अस भरोस दिह्य हरष न दीका ॥

दस महुँ एकद निन्द कें होई । भारि पुख सचराचर कोई ॥ ३ ॥

नवीं भक्ति है सरलता और सबके साथ कष्टहित कर्षण करना; हरषमें मेरा भरोसा रहना; और किसी भी अस्मानमें हर्ष और दैन्य (विषाद) का न होना । दस नवींभक्ति निन्दके एक भी होती है; वह जो-पुरुष, तनु-वेदन, कोई भी हो—॥ ३ ॥

सोइ भक्तिसम प्रिय भासिनि सोई । सकल प्रकार भक्ति छ सोई ॥

जोति हूइ भुखन यति जोई । सो कहुँ बानु सुखन सह सोई ॥ ४ ॥

हे भासिनि ! इसे वही अत्यन्त प्रिय है । फिर तुममें तो कभी प्रकारही भक्ति दृष्ट है । भगवन् जो यति योगियोंको भी दुर्लभ है, वही आज तेरे लिये सुलभ हो गयी है ॥ ४ ॥

सम दृष्टन फल परम समूपा । जीव पाव निव सहज सत्प्रा ॥

दमकमुखा कह मुनि भासिनी । नागहि कहु करिबलमिनी ॥ ५ ॥

मेरे दर्शनका फल अनुग्रह फल यह है कि जीव अपने स्वयं स्वस्वको प्राप्त हो जाता है । हे भासिनि ! जब यदि तू यत्नामिनी जानकीकी कुछ खबर खानेकी हो, सो बता ॥ ५ ॥

परा सखि गहुँ खुराई । तई होइदि सुप्रोक्त निताई ॥

सो सब कहिदि देव खुसीया । जाकाई पृच्छु मतिबोरा ॥ ६ ॥

[शरीरने कहा—] हे खुरायली ! आप परा नामक शरीरको जाइये । वहाँ आपकी सुप्रोक्ते मित्रता देखे । हे देव ! हे खुसीर ! यह सब कह कह बतावेगा । हे श्रीखुदि ! आप सब जानते हुए भी मुझसे पूछते हैं ॥ ६ ॥

पार पार गहुँ पद सिद्ध साई । प्रेम सहित सब कथा सुनाई ॥ ७ ॥

पार-पार गहुँके करबोंमें फिर न्नाकर, प्रेमसहित उसने सब कथा सुनायी ॥ ७ ॥

छं०—कहि कथा सकल किलोकि हरि मुख हृदयें पद पंक्तज घरे ।

तमि ओग पावक देह हरि पद जीव सह जाई नहि फिरे ॥

बर विविध कर्म मधर्म बहूँ मत सोकंपद सब त्यागइ ।

विस्तार करि कह दास तुलसी राम पद असुरागइ ॥

उस कथा परंपर मंगलार्थके मुझके दर्शन कर, हरषमें उनके चरणकमलोंको धारण कर लिया और योगमित्रसे देहको त्याग कर (यत्नकर) वह उत दुर्लभ हरिपदमें लीन हो गयी; जहाँसे लौटना नहीं होता । तुलसीदासजी कहते हैं कि अनेकों प्रकारके

कर्म, अपर्म और बहुत-से भव—ये सब शोकप्रद हैं हे मनुष्ये ! इन्हीं त्याग कर दो और विश्रुत करने श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम करो ।

दो०—जाति हीन अब जन्म भदि मुक्त कीन्हि असि नारि ।

महामन्द मन सुख चहसि ऐसे प्रमुहि विसारि ॥ ३६ ॥

तो बीच जातिनी और पार्षणी जन्ममृति यो, ऐसी लीको भी जिन्होंने मुक्त कर दिया, अरे महादुर्बुद्धि मन ! तू ऐसे प्रभुको भूलकर सुख चाहत है ! ॥ ३६ ॥

नौ०—एके राम त्याग बन सोऊ । बहुलिख कहु न केहरि दोऊ ॥

बिरही ह्व प्रभु करत विषया । कहत क्या अनेक संवाद ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने उस मनको भी छोड़ दिया और वे आगे चले । दोनों भाई अनुपमनीय यत्नान् और मनुष्योंमें सिद्धके सम्मान हैं । प्रभु बिरहीनी तरह विचार करते हुए भयंसीं कपारों और संवाद कहते हैं—॥ १ ॥

छाँड़ि मन हेतु विषय कह सोआ । ऐसव केहि कर मन यदि छोआ ॥

नारि सहित सब राग सुख चूँहा । मनहुँ मोरि कस्त हहि निहा ॥ २ ॥

हे लक्ष्मण ! जरा बनघी सोमा तो देखो; ऐसे देखकर किसका मन धुन्ध नहीं होगा ! पत्नी और पट्टभोंके समूह सभी छाँड़ि दिस हैं । मनो वे मेरी निन्हा कर रहे हैं ॥ २ ॥

हमहि देखि सुग निबर पतही । सुग कहि कहि कहि कहि अच नहि ॥

गुन भानंद कहु नृग बाप । कंचन भूत सोऊन द काए ॥ ३ ॥

हमे देखकर [भग्न एरके मोर] हिरनोंके गुंड भगमने लगते हैं, तब हिरनियों उनमें पड़ती हैं—गुनको भव नहीं है । गुन तो लभारण हिरनोके पैरा हुए हो; अतः गुन भानन्द करो । ये तो सोनेका हिरन सोओने भाये हैं ॥ ३ ॥

संग छाह करिष्यो करि लेहीं । मागहुँ मोहि सिखायहुँ वेहीं ॥

साक सुनिहित पुनि पुनि देखिअ । भूष सुसेवित पस नहि कैसिअ ॥ ४ ॥

छापी दृष्टिमनोको साथ क्या लेते हैं । वे मनो तुझे शिक्षा देते हैं [कि लीको कभी भलेसे नहीं छोड़ना चाहिये] । भलीमौलिक निम्नत किने हुए ग्राहको भी बार-बार देखते रहना चाहिये । अच्छी तरह सेवा किने हुए भी राधाको कहीं नहीं वनहना चाहिये ॥ ४ ॥

रान्दिन नारि नदमि उर माहीं । बुकती साक नृसि कस माहीं ॥

ऐकहुँ दस्त बसंत सुहाव । प्रिय हीन मोहि अब उपजाव ॥ ५ ॥

और लीको पावे हृदयमें ही नयों न रखता जब; परन्तु बुकती ली, भास और राधा किसीके वधमें नहीं रहते । हे सात ! इस सुन्दर वन्यको छो देखो । प्रियके विना तुमको यह भय उत्पन्न कर रहा है ॥ ५ ॥

दो०—विरह विकल बलहीन मोहि जनेसि निषट अनेक ।

सहित विषिन अशुकर खग मदम कीन्ह जगमेक ॥ ३७ (क) ॥

मुझे निरहते आकुल, बलहीन और निष्कुल अनेक जानकर समझने के बन, मर्ते और पक्षियोंको साथ लेकर मुझपर चला चला दिला ॥ ३७ (क) ॥

देखि गपड आता सहित लसु दूत सुनि बात ।

डेर कीन्हेड मनहुँ तब फटक हटकि अबजत ॥ ३७ (ख) ॥

परन्तु अब उत्तर दूत यह देख गया कि मैं गार्हिके साथ हूँ (अनेक नहीं हूँ) ।

तब उसकी बात सुनकर क्रमदेवने भानो; येनाओ रोकर देरा डाल दिया है ॥ ३० (ख) ॥

नौ—बिचर विस्तार छावा झड़ानी। बिचिब फितान दिष्ट जलु तानी ॥

कदकि ताल बर पुता पतकर। केहि न मीद घोर मन जाका ॥ १ ॥

विशाल वृक्षोंमें लताएँ जलकी हुई ऐसी मान्य होती हैं मानो नाना प्रकारके तंतु तान दिये गये हैं। नेत्र और ताल सुन्दर ध्वजा-पताकाके समान हैं। इन्हें देखकर वही नहीं मोहित होता, जिसका मन धीर है ॥ १ ॥

बिचिब भौति पूछे लल नावा। जलु कनैत नवे यलु काना ॥

कहुँ कहुँ सुंदर बिचर मुद्राव। जलु भटकिगकिग होइ छाप ॥ २ ॥

अनेकों वृक्ष नाना प्रकारके पूछे हुए हैं। नमो अलख-अलख बाना (वही) धारण किने हुए बहुत-से तीरंदाज हों। कहीं-कहीं सुन्दर वृक्ष खोमा दे रहे हैं मानो मोक्षलोक सकल-अकल होकर छावनी बाले हों ॥ २ ॥

कूनव विक मावहुँ पज मते। केह महोष जँड बिस्तारते ॥

मोर कबोर कौर बर बाकी। पाछवत मरल सब तानी ॥ ३ ॥

कौचलें कूल रही है, वही मानो मतलबे हाथी [चिंगाड रहे] हैं। केह और महोष वही मानो जँड और लक्षर हैं। मोर, कबोर, ताँते, कबूतर और इंस मानो सब सुन्दर ताकी (धरती) बोके हैं ॥ ३ ॥

तीतिर छबक पक्षर पूवा। कर्णि न लख मखोस बक्या ॥

रथ निरि निरुा हुँदुमी झरना। बातक वंदी गुल राव चरना ॥ ४ ॥

वीतर और बटेर पैदल सिद्धिसेनिके झंड हैं। क्रमदेवकी सेनाका कर्णन नहीं हो सका। पर्वतोंकी शिखरें रथ और लकड़ के झरने लगने हैं। पक्षी माछ हैं, जो गुणतमूह (विराटवली) का कर्णन करते हैं ॥ ४ ॥

मधुकर मुकर नेदि सहगार्ह। बिचिब क्यारि कसीटी भाई ॥

चतुर्गिणी सेव सँग छीन्हें। बिचस्त सबदि चुनौती दीन्हें ॥ ५ ॥

मौरोंकी गुलार मेरी और सहगार्ह है। शीशक, मन्द और सुगन्धित हवा मानो बूलका क्रम जेवर आयी है। इस प्रकार चतुर्गिणी सेना साथ बिचे क्रमदेव मानो सबको चुनौती देता हुआ निघर रहा है ॥ ५ ॥

कछिमन दिखत काम कनीका। सहि घोर तिन्ह के जप लीका ॥

कहि के एक परम बल घसी। तेहि से ठवर मुसट सोह मारी ॥ ६ ॥

है कछम। क्रमदेवकी इस सेनाकी देखकर जो घीर बने रहते हैं, अगलमें टर्नीकी [वीरोसे] प्रतिष्ठा होती है। इस क्रमदेवके एक लीका क्या मारी बल है। उससे जो बच जाय, वही श्रेष्ठ होता है ॥ ६ ॥

दो—तात तीनि जति प्रबल लल परम प्रोष जल छेम।

मुनि बिग्यान चाम मत कहि निमिष महुँ छेम ॥ ३८ (क) ॥

है तात ! काम, प्रोष और छेम—ये तीन अत्यन्त प्रबल गुण हैं। ये निजानके चाम मुनियोंकी भी मनोको फलमसे मुख्य कर देते हैं ॥ ३८ (क) ॥

लोम के इच्छा दम बल काम के केवल बरि।

प्रोत्र के परम वचन बल मुनिवर कहि विचारि ॥ ३८ (ख) ॥

लोभको इच्छा और दम्भका बल है, क्रोधको केवल लीला बल है और क्रोधको कठोर वचनोका बल है; श्रेष्ठ बुद्धि विचारकर ऐसा कहते हैं ॥ ३८ (स) ॥

चौ०—गुनातीत सत्कारचर स्वामी । राम उमा सब अंतरजामी ॥

कामिन्द कै दीनता देखई । धीरन्द के भव निरति दबाई ॥ १ ॥

[गिनदी कहते हैं—] हे पार्वती ! श्रीरामचन्द्रजी गुणातीत (तीनों गुणोंसे परे) : चराचर जगत्के स्वामी और उनके अन्तरजी जाननेवाले हैं । [तर्ह्युक्त बातें कहकर] उन्होंने कामी लोगोकी दीनता (देवकी) दिखावयी है और धीर (विजेकी) पुरुषोंके मनमें वैराग्यको दृढ़ किया है ॥ १ ॥

क्रोध मनोज क्रोम मद मान्य । कृष्टहि सकल राम की दास्य ॥

सी सर इन्द्रजात नहि सुख । जा पर होइ सरे नर अनुसुख ॥ २ ॥

क्रोध, काम, लोभ, मद और मान्य—ये सभी श्रीरामजीकी शक्तसे छूट जाते हैं । यह नर (नरराज भगवान्) विश्व परम होता है, वह मनुष्य इन्द्रजात (मान्य) में नहीं भूकता ॥ २ ॥

उमा कहते हैं मनुष्य अत्यन्त । सत् हरि भक्तु जगत सब सपना ॥

बुद्धि प्रभु गन्त सरोवर सीत । पंच नाम सुभा नभीरा ॥ ३ ॥

हे उमा ! मैं तुम्हें अपना अनुभव कहता हूँ—हरिक भक्त ही सत्य है, यह सारा जगत् ही सपना [की भोक्ति श्रुति] है । फिर प्रभु श्रीरामजी पंच नामक सुन्दर और गहरे सरोवरके तीर पर गये ॥ ३ ॥

संत हृदय जल निर्मल कही । लीचे घट मनीषर कही ॥

जहाँ सहे पिबहि विविध सृज सीरा । अनु उदार गृह बाष्पक सीरा ॥ ४ ॥

उर का जल संतोके हृदय-जैसा निर्मल है । मन्त्रों इतनेवाले सुन्दर चार घट बंधे हुए हैं । भोक्ति-भोक्तिके प्रभु जहाँ-तहाँ जल पी रहे हैं । मानो उदार कनी पुरुषोंके घर बाचकौशी भीष कही हो ॥ ४ ॥

चौ०—पुरुषहि सखन ओट ऊठ बेगि न पाइय मर्म ।

सायाछाज न देखिये जैसे निर्गुन ब्रह्म ॥ ३९ (क) ॥

कनी पुरुषों (कर्मोंके लोभ) की छात्रों अत्यन्त कठोर पत्र नहीं मिलता । जैसे मादासे बच्चे रहनेके कारण निर्गुण ब्रह्म नहीं दीसता ॥ ३९ (क) ॥

सुखी भीष सब पक्षरस जति मगाध जल माहि ।

जथा धर्मसीलन्द के दिन सुख संजुत जाहि ॥ ३९ (ख) ॥

उस सरोवरके अत्यन्त जगाह जहाँ सब पक्षीयों सदा एकरस (एक समान) सुखी रहती हैं । जैसे धर्मशील पुरुषोंके सब दिन सुखपूर्वक बीतते हैं ॥ ३९ (ख) ॥

चौ०—बिकसे सरसिक नाथ रंज । मधुर सुखर जुंजत बहु संग ॥

बोसत नरकुंडलुटे कजहंस । प्रभु विरोधि अनु कस्त प्रसंसा ॥ १ ॥

उसमें रंग-मिरने कमल लिले हुए हैं । बहुतसे और मधुर स्वरसे गुंजार कर रहे हैं । नालके मुँगे और रानहंस बोळ रहे हैं । कनो प्रभुओं देखकर उनकी प्रशंसा कर रहे हो ॥ १ ॥

नारदाक एक कन्य ससुदाई । देखत बहद करि नहि जाई ॥

सुंदर सख मन मित सुदाई । जात पक्षि अनु केत कोकाई ॥ २ ॥

चक्राक, झुले यदि पकिरोंका स्वरूप देखते ही बचता है, तबका वर्णन नहीं किया जा सकता। सुन्दर पकिरोंकी बोली बड़ी सुझबुझकी छाती है, मनो [रास्तेमें] जाते हुए पकिरोंको मुझसे बेसी हो ॥ २ ॥

तब समीप सुनिम्न मूढ़ जाए। बहुत दिखि कानन विद्वध सुहाए ॥

सौंके बहुत कर्षण समझा। पाठक पलक बरसत रसोका ॥ ३ ॥

तब लौक (पञ्चतपोकर) के समीप सुनिम्नोने व्यामस बना रखे हैं। उसके चारो ओर बने सुन्दर वृक्ष हैं। चम्पा, मौलसीरी, कदम्ब, तमाल, पाटल, कटहल, दाग और आम आदि—॥ ३ ॥

यह पञ्च कुमुदित सब पाक। चंचरीक पछली कर गाना ॥

सीतल मेद सुगंध सुमन। संतत बहार मनोहर भाक ॥ ४ ॥

बहुत प्रकारके वृक्ष नये-नये फूलों और [सुगन्धित] पुष्पोंसे युक्त हैं, [किनार] मौलोंके समूह गुंलात कर रहे हैं। समानसे ही खीरक, मन्द, कुमन्धित एवं मनको हरने-वाली हवा चला बहती रहती है ॥ ४ ॥

ऊँ ऊँ कोकिल पुनि कह्यो। सुनिम सखत व्यान सुनि हर्यो ॥ ५ ॥

कोकिलें 'कुहू', 'कुहू' का शब्द कर रही हैं। उनकी खली बोली सुनकर सुनिम्नोका भी ध्यान टूट जाता है ॥ ५ ॥

दो—कल मरत नमि विद्वध सख रहे मूमि निमराए।

पर उपकारी पुनस सिमि ममहि सुलंपति पाए ॥ ४० ॥

मौलिके बोझते लकड़ कर वृक्ष धूम्रिके बल भा खे हैं। जैसे परोपकारी पुनस बड़ी समर्पित पाकर [निमन्त्रणे] युक्त जाते हैं ॥ ४० ॥

सौं—देखि राम जति कथि लखना। मन्त्रु कीन्त परम सुख पना ॥

देखी सुंदर लखन जल। के बहुत खलित स्वरुपा ॥ १ ॥

श्रीरामजीने अत्यन्त सुन्दर लखन देखकर खान किया और परम सुख पना। यह सुन्दर लखन बूझी छाया देखकर श्रीरामजीजी छोटे भाई लक्ष्मणजीके साथ बैठ गये ॥ १ ॥

हैं पुनि लख देव सुनि व्याप। अस्तुति करि विज जान सिवाए ॥

के परम प्रसन्न हुआ। कदम बहुत सब कहा रसाका ॥ २ ॥

जिन्हें वहाँ लख देख और सुनि जाये और स्तुति करते करने-अने धामको चले गये। बहुत श्रीरामजी परम प्रसन्न बैठे हुए छोटे भाई लक्ष्मणजीके खली कथाएँ कह रहे हैं ॥ २ ॥

विरहवत मन्त्रवहि देखी। कल तक या खोच विसेरी ॥

मौर सख करि लंकीकात। सख राम जाना हुष असा ॥ ३ ॥

भगवान्को विरहयुक्त देखकर लखजीके मनमें निरोधको खोच हुआ। [उन्होंने विचार किया कि] मेरी ही लक्ष्मणजी स्वीकार करते श्रीरामजी नामा प्रभुके दुःखोंका मार वह रहे हैं (दुःख उठा रहे हैं) ॥ ३ ॥

देखे प्रभुहि निरोधवत आई। पुनि न कनिहि अत कनसद आई ॥

यह दिखारि नास कर खीन। कद आई प्रभु सुख असीना ॥ ४ ॥

देखे (मन्त्रवतः) प्रभुको लख देखें। फिर देख लकड़ न बन आगेगा। यह निचरकर लखजी हाथमें लीला लिये हुए नहीं गये जहाँ प्रभु सुखपूर्वक बैठे हुए थे ॥ ४ ॥

गानत राम चरित सुहु बानी । प्रेम सहित कहु मीति वसानी ॥

कनत दंडवत किए उठायें । राखे कहुत कर डर कायें ॥ ५ ॥

वे कोमल वाणीसे प्रेमाके साथ बहुत प्रचारते नखान-बखानकर रामचरितका गान कर [ते हुए चले आ] रहे थे । दण्डवत् करते देखकर श्रीरामचन्द्रजीने नारदजीको उठा लिया और बहुत देखाक देखाके लगाये लखा ॥ ५ ॥

म्यागत पूछि भिष्ट बैसारे । छत्रिमान सावर पवन पसरि ॥ ६ ॥

फिर स्वागत (कुशल) पूछकर पास बैठा लिया । लक्ष्मणजीने आदरके साथ उनके चरण धोये ॥ ६ ॥

दो०—जाना विधि विनती करि प्रभु प्रसन्न कियें जानि ।

नारद बोले बचन तब ओरि सरोख पानि ॥ ४१ ॥

बहुत प्रचारते विनती करके और प्रभुको मनमें प्रसन्न जानकर तब नारदजी कमलके समान हाथोंको जोड़कर बचन बोले— ॥ ४१ ॥

बौ०—मुनहु उदार सहज सुमानक । सुंदर अमम सुगम वर दायक ॥

बहु पुत्र कर मान्यें सखी । अथपि जानत अंतरजामी ॥ १ ॥

हे स्वभावसे ही उदार भीरपुनायजी ! मुनिये । आप सुन्दर अमम और सुगम वर देनेवाले हैं । हे स्वामी ! मैं एक वर माँगता हूँ, वह मुझे दीजिये, यद्यपि आप अन्तर्दामी होनेके भाते सब जानते ही हैं ॥ १ ॥

जानहु मुनि दुम्ह मोर सुभाऊ । जन सन कबहुँ कि कर्तें दुराऊ ॥

कवन वस्तु असि मित सोहि काली । जो मुक्तिवर व सकहु ज्ञान मागौ ॥ २ ॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे मुनि ! तुम मेरा स्वभाव जानते ही हो । क्या मैं अपने भक्तोंसे कभी कुछ छिपाव करता हूँ ? मुझे ऐसी कौन-सी वस्तु मित लगती है, जिसे हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम नहीं माँग सकते ! ॥ २ ॥

जब कहूँ कहुँ अश्वेन बहि मोरें । अस विस्वास तजहु जनि मोरें ॥

तब नारद बोले हरखई । अस कर मान्यें कर्तें दिखाई ॥ ३ ॥

मुझे भक्तके लिये कुछ भी अश्वेन नहीं है । ऐसा विशास भूलकर भी मत छोड़ो । तब नारदजी हर्षित होकर बोले—यही ऐसा कर माँगता हूँ, वह पूछता करता हूँ— ॥ ३ ॥

अथपि प्रभु के नाम अनेक । भुति कह अधिक बुर तैं एका ॥

राम सकल नामन्ह है अधिक । होत नाम अथ अथ नाम अधिक ॥ ४ ॥

यद्यपि प्रभुके अनेकों नाम हैं और कैर कहते हैं कि वे सब एक से एक बढ़कर हैं, तो भी हे नाम ! रामनाम सब नामोंसे बढ़कर हो और पापलसी पक्षियोंके समूहके लिये यह वधिकके समान हो ॥ ४ ॥

दो०—राख राजनी मगति तब राम नाम सोर सोम ।

अपर नाम उदयन विमल बसहुँ मगत डर ज्योम ॥ ४२ (क) ॥

आपकी भक्ति पूर्णकारी रात्रि है। उल्लेख 'राम' नाम वही पूर्ण चन्द्रमा होकर और अन्य सब नाम तारकाण्य होकर भक्तोंके हृदयलसी निर्मल अक्षतगमे निवास करें ॥ ४२ (क) ॥

एवमस्तु मुनि सन कहेव कृपासिधु एमुचय ।

तब नारद मन हरष गति प्रभु पद नायक माय ॥ ४२ (ख) ॥

कृपासागर श्रीरघुनाथजीने हुनिसे पदमस्तु* (देखो ही हो) कहा । तब नारदजी-
ने मनमें अत्यन्त हर्षित होकर प्रभुके चरणोंमें भक्तक नवाया ॥ ४२ (ख) ॥

चौ०—जति प्रसन्न रघुनाथहि जानी । पुनि नारद कोउ स्युद्ध जानी ॥

राम-जकीह प्रेरेत किन्न भक्त । मोहिहु मोहि सुबहु रघुराया ॥ १ ॥

श्रीरघुनाथजीको अत्यन्त प्रसन्न ध्यानकर नारदजी फिर कोमल वाणी बोले—हे
रामजी । हे रघुनाथजी । तुमने, जब आपने अपनी मन्वाने प्रेरित करके मुझे मोहित
किया था ॥ १ ॥

तब विवाह मैं चाहते जाँझा । प्रभु केहि कारण कौं न दीन्हा ॥

सुहु मुनि मोहि कह्यो सहरोसा । मकहिजे मोहि सखि सकल भरोसा ॥ २ ॥

तब मैं विवाह करना चाहता था । हे प्रभु ! आपने मुझे किन्न कारण विवाह
नहीं करने दिया ! [प्रभु बोले—] हे मुनि ! तुमों, मैं तुम्हें हर्षित थाय करता हूँ कि
जो समस्त आशा-भरोसा छोड़कर केवल सुखको ही भजते हैं, ॥ २ ॥

कहाँ सखा तिन्ह के स्तवारी । किमि कष्टक रहव महतारी ॥

पह सिधु कष्ट भवत भवि चाहै । तहें राखइ जननी भरपाई ॥ ३ ॥

मैं सदा उनकी वैसे ही रखवाली करता हूँ जैसे माता बालककी रक्षा करती है ।
छोटा बच्चा जब दौड़कर भाग और सोंपको पकड़ने जाता है, तो यहाँ सखा उसे [अपने
हाथों] जकड़ करके बचा लेती है ॥ ३ ॥

प्रौढ मर्ये तेहि सुत पर मरता । प्रीति कष्ट बहि पाकिमि जाता ॥

मोरें प्रौढ कसम छम आनी । बलक सुख सुख राख जमानी ॥ ४ ॥

क्याना हो बालेपर उठ पुष्पर माला प्रेम तो करती है, परन्तु पिछली बात नहीं
राखी (क्योंकि नाट्यप्रधान मिथुकी तरह फिर उसको रचानेकी चिन्ता नहीं करती;
क्योंकि वह मातापर निर्भर न कर अपनी रक्षा आप करने लगा दे) । शानी मेरे प्रौढ
(क्याने) पुष्पके समान है और [दुम्हारे-बैसा] अपने कष्टका मान न करनेवाला
केवक मेरे शिशु पुष्पके समान है ॥ ४ ॥

कहि मोर कल किन्न लल लाही । सुहु कौं काम शोध रिपु जाही ॥

पह विचारि रचित मोहि भवही । परपहुं ग्यात अवधि बहि तजही ॥ ५ ॥

मेरे सेवकको केवल मेरा ही कल रहता है और उसे (शानीको) अपना बल होता
है । पर काम-शोधरूप धनु तो दोनोंके लिये हैं । [भक्तके अनुश्रुतको मारनेकी विम्वेवारी
मुक्षपर रहती है, क्योंकि वह मेरे पराजय होकर मेरा ही कल मानता है; परन्तु अपने
बलको माननेवाले शानीके अनुश्रुतका नाश करनेकी विम्वेवारी मुक्षपर नहीं है ।] देखा
विचारकर पण्डितवन्द (बुद्धिमान लोग) मुक्षको ही मन्ते हैं । वे ज्ञान ज्ञात होनेपर भी
भक्तिको नहीं छोड़ते ॥ ५ ॥

दो०—काम शोध जेभादि मद् प्रवल मोह कै धारि ।

तिन्ह मर्ये जति वस्तुन दुखाव मायाकपी नारि ॥ ४३ ॥

काम, शोध, लोभ और मद आदि मोह (अज्ञान) की प्रवल वेना है । इनमें
मायाकपीणी (मायाकी लक्ष्मण मूर्ति) ली तो अत्यन्त दारुण दुःख देनेवाली है ॥ ४३ ॥

चौ०—सुहु मुनि कह पुपन धृति लख । मोह विनिन नहुं खरि बसंत ॥

जप छप नेम जलजल्य हारी । होइ प्रीयम सोपइ सब नारी ॥ १ ॥

हे मुनि ! मुनो, पुराण, वेद और संत कहते हैं कि मोहलसी धन [को विकसित करने] के लिये स्त्री वस्तुमय के समान है । वन, तप, निषमस्त्री सम्पूर्ण जलके खानो-को स्त्री ग्रीष्मरूप होकर सर्वाथा शोष लेती है ॥ १ ॥

काम क्रोध मद मत्सर मेघ । इन्हि हृत्पद्म कावा एका ॥

दुर्वासना असुख समुदाई । निन्द कई सरद सदा सुखदाई ॥ २ ॥

काम, क्रोध, मद और मत्सर (डाह) आदि मेघक हैं । इनको वर्षाश्रुत होकर हर्ष प्रदान करनेवाली एकमात्र वही (स्त्री) है । तुरी अरुणाएँ कुसुमोंके समूह हैं । उनको नदय सुख देनेवाली वह सरद श्रुत है ॥ २ ॥

धर्म सकल सस्तेकह भुंदा । होइ हिमहिमहिपदह सुखभंदा ॥

भुवि समस्त क्वाल बहुताई । पतुइ हरि विसिर रिनु दाई ॥ ३ ॥

समस्त धर्म कमलके हैं । वह नीच (निषमस्त्री) सुख देनेवाली स्त्री हिम श्रुत होकर उन्हे क्वाल डालती है । फिर समस्तकपी अक्षयज समूह (वन) खीरपी शिथिर श्रुतको पाकर हृत्पद्म हो जाता है ॥ ३ ॥

पाप बल्लक निकर मुचकरी । हरि निविह रबनीअं विभारी ॥

भुवि कल सील सख सख मीमा । बकरी छम त्रिप कइई प्रमीमा ॥ ४ ॥

पापलपी उल्लुभोंके समूहके लिये वह स्त्री मुल देनेवाली घोर अशकारमयी रात्रि है । भुवि, कल, सील और सख—ये सब मल्लिकों हैं । और उन [सो कैलाकर नष्ट करने] के लिये स्त्री वंशीके समान है, चतुर पुष्प ऐसा करते हैं ॥ ४ ॥

श्री०—अध्वरुण मूल सुखप्रद प्रमदा सख सुख आनि ।

ताते वीन्ह निचारन मुनि मैं धंह जियँ आनि ॥ ४४ ॥

मुक्ती स्त्री अध्वरुणोंकी मूल, पीदा देनेवाली और सख दुःखोंकी खान है । इतलिये हे मुनि ! मैंने जीमे ऐसा जामकर तुमको विवाह करनेसे रोका था ॥ ४४ ॥

श्री०—भुवि रघुपति के बचन सुहाय । भुनि तन पुलक बचन हरि धाय ॥

कहहु कवन प्रभु कै कही रीती । सेवक पर समस्त कइ मीती ॥ १ ॥

श्रीरघुनाथजीके सुन्दर वचन सुनकर भुनिका प्रतीर पुलकित हो गया और नेत्र [प्रेमाभुगोंके जलसे] भर आये । [वे मन-ही-मन कहने लगे—] कदो तो फिर प्रभुकी ऐसी रीति है, जिसका सेवकपर इतना समस्त और प्रेम हो ॥ १ ॥

जै न बजहि अस प्रभु प्रसन्न रह्यो । ग्याव हंक पर मंद अभारी ॥

भुनि सावर बोले भुनि नारद । सुबहु राम विभजन बिसारद ॥ २ ॥

जो मनुष्य भ्रमको त्यागकर ऐसे प्रभुको नहीं मन्ते, वे जानके कंगाल, दुर्बुद्धि और अभाग्य हैं । फिर नारद भुनि आदरसहित बोले—हे किशनविचारद श्रीरामजी ! भुनिये—॥ २ ॥

संतन्ह के उच्छन रघुवीर । कहहु नाथ अब संजय भीरा ॥

सुहु भुनि मंतन्हके श्रुन कहकँ । निन्द ते मैं उम्हकँ बस रहकँ ॥ ३ ॥

हे रघुवीर ! हे श्व-मन्थ (अन्य मरणके मय) का नाथ करनेवाले नि नाथ । अब कृप कर संतोके व्यथन कहिये । [श्रीरामजीने कहा—] हे मुनि ! मुनो, मैं संतोके शुणोंको कहता हूँ, जिनके कारण मैं उनके यमसे रहता हूँ ॥ ३ ॥

✓ पद विकार जित जलज जकाला । जकल जकिन्धन भुनि सुखपासा ॥

अभितमोष बनीह मितमोषी । सुखसार कनि कोन्दि छोपी ॥ ४ ॥

वे संत [काम, मोघ, जोग, मोह, मद और मत्सर—इन] छः विकारों (दोषों) को जीते हुए, अपरहित, कामनाहित, निष्कल (शिर बुद्धि), अकिञ्चन (सर्वलागी), बाहर-भीतरसे पवित्र, सुलके धाम, असीम धनवान्, इच्छारहित, मित्राहारी, सत्निष्ठ, कवि, विद्वान्, योगी, ॥ ४ ॥

सावधान समजद मद्दीना । धीर धर्म गति परम प्रवीना ॥ ५ ॥

सावधान, दूसरोंको सम देनेवाले, अभिमन्युरहित, धैर्यवान्, धर्मके ज्ञान और आचरणमें अत्यन्त निपुण, ॥ ५ ॥

शे०—गुनागार संसार दुख रहित विगत संदिह ।

तजि मम चरन सरोज प्रिय सिन्धु कहूँ देह न मोह ॥ ४५ ॥

गुणोंके घर, संसारके दुःखोंसे रहित और धन्देदोसे सर्वथा छूटे हुए होते हैं । मेरे चरणकमलोंको छोड़कर उनको न देख ही प्रिय होती है, न घर ही ॥ ४५ ॥

चौ०—निज गुण अथवा गुणत सङ्ग्राहों । पर गुण सुकल अधिक हरषाहीं ॥

सम सीतल नाहि त्यागहि नीती । सल सुनाठ सगहि सम प्रीती ॥ १ ॥

कानोंसे अपने गुण सुननेमें सज्जुचाते हैं, दूसरोंके गुण सुननेसे विशेष हर्षित होते हैं । सम और सीतल हैं, त्यागका कभी त्याग नहीं करते । सलसम्भाव होते हैं और समीचे प्रेम रखते हैं ॥ १ ॥

कद कव मल दम संजम वेन । सुख गोविन्द विरद बह प्रेमा ॥

भक्ता प्रेमा मयली बापा । सुविदा मम बह प्रीति अनाया ॥ २ ॥

वे कम, लप, मल, दम, संजम और नियममें रह रहते हैं और सुख, गोविन्द तथा ब्रह्मणोंके चरणोंमें प्रेम रखते हैं । उनमें भक्ता, भय, गैबी, दया, सुविदा (प्रसन्नता) और मेरे चरणोंमें निष्कण्ट प्रेम होता है, ॥ २ ॥

विरति विवेक विनय विद्याया । बोध बधाय बह दुरागा ॥

दम मम बह कर्हि न कल । मुक्ति न देहि कुमारा पाव ॥ ३ ॥

सदा वैराग्य, विवेक, विनय, विज्ञान (परमात्माके लक्ष्य ज्ञान) और वेद-प्राप्त्यर्थ यथार्थ ज्ञान रहता है । वे दम, अभिमन्य और मद कभी नहीं करते और मूलतः भी कुमारापर वैर नहीं रखते ॥ ३ ॥

नागहि सुबहि सदा मम लीला । देव रहित परहित रह सीला ॥

मुनि सुद बाहुन के शुभ लेते । कहि न सकहि सखद मुनि तेते ॥ ४ ॥

सदा मेरी लीलाओंको गाते-सुनते हैं और किना ही अरण्य दूसरोंके हितमें छोड़ देनेवाले होते हैं । हे मुनि ! ज्ञाने, ज्योंके जितने शुभ हैं उनको सरस्वती और वेद भी नहीं कह सकते ॥ ४ ॥

उ०—कहि सक न सारद सेप नारद मुनत पर पंकज गहे ।

अस दीनवंधु कृपाळ अपने मयत शुभ निज मुख कहे ॥

खिच नाह वारीहि वार अरुमहि ब्रह्मपुर नारद भप ।

ते धन्य तुलसीदास अक्ष विद्या ओ हरि रैय रैय ॥

शेव और शारदा भी नहीं कह सकते यह ज्ञाने ही नारदजीने श्रीरामजीके चरण-कमल पकड़ लिये । दीनवंधु कृपाळ प्रसूने यह प्रश्नर अपने श्रीमुखसे अपने भक्तोंके गुण

कहे । भगवान्‌के चरणोंमें बारबार छिन्न नवाकर नारदजी ब्रह्मलोकमें चले गये ।
हुलसीदासजी कहते हैं कि वे पुरुष धन्य हैं जो सब माया छोड़कर केवल श्रीहरिके
रंगमें रँग गये हैं ।

दो०—राघनारि जसु पावन गार्वहिं सुनहिं जे जोग ।

राम भगति दह पावहिं बिनु विराग जप जोग ॥ ४६ (क) ॥

जो जोग रावणके अनु श्रीरामजीका पतिव रक्ष_गानेमें और सुनै, वे वैराग्य,
जप और योगके बिना ही श्रीरामजीकी दह'भक्ति पानेमें ॥ ४६ (क) ॥

दीप सिखा सम जुचति तब मन अनि होति परंग ।

भजहि राम तकि पदम मद् करहि सदा सतसंग ॥ ४६ (ख) ॥

सुखी शिखीका छरीर दीपकी जैके समान है। हे मन । तू उठका पहिगा न
धन । काम और मदको छोड़कर श्रीरामचन्द्रजीका भजन कर और सदा सतसङ्ग
कर ॥ ४६ (ख) ॥

भासपारायण, बर्द्धसर्वो विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकटुपापवशसे तृतीयः सोपानः समाप्तः ।

कलिकुम्भके सम्पूर्ण पापोंको विध्वंस करनेवाले श्रीरामचरितमानसेका यह
तीसरा सोपान समाप्त हुआ ।

(अरण्यकण्ठ समाप्त)



हनुमान्जीका प्रयाण



जिमि मनोव रघुपति करं वाच ।
श्री गीति चलेन हनुमान् ॥

पर्वताकर हनुमान्नी



सुनारि भवत पर्वताकर ।

[पृष्ठ ५३६]

श्रीकृष्णाय नमः
श्रीवृन्दकीर्तनार्थे निम्नलिखिते

श्रीरामचरितमानस

चतुर्थ सोपान

किञ्चिन्वाक्यान

—०—

श्लोक

कुन्वेन्द्रीवरसुन्दरपतिवन्द्यौ विद्वानध्यामाधुमौ
शोभायौ परधन्विकौ भुविभुतौ योगिप्रबुन्दप्रियौ ।
मायामाजुषरूपिणौ रघुकरी सद्गमचमौ द्वितौ
सीतान्वेषणतरपौ परिमतौ भक्तिप्रदौ तौ ॥ १ ॥

कुन्हेपुष्प और नील कमलके समान सुन्दर और एवं स्वामय्य, अत्यन्त वरवान्, विद्वानके धाम, शोभासम्पन्न, श्रेष्ठ धनुर्धर, वेदोंके द्वारा बन्धित, गौ एवं शास्त्रोंके समूहके मित्र [अथवा प्रेमी], मायासे मनुष्यरूप धारण करने हुए, श्रेष्ठ धर्मके लिये कल्पलक्ष्म, स्वके हितकारी, श्रीसीतानीकी लोकमें लगे हुए, पवित्ररूप [सुन्दर]के श्रेष्ठ श्रीरामजी और श्रीलक्ष्मणजी दोनों भाई निश्चय ही हमें भक्तिप्रद हों ॥ १ ॥

ब्रह्मात्मोचितसमुद्भवं कलिमलप्रपञ्चसर्वं चाप्ययं
श्रीमच्छम्भुमुपेनुसुन्दरजले संलेशितं सर्वदा ।
संसारामयमेपलं सुकफरं श्रीवृन्दकीर्तनं
धम्पास्ते रुतिनः पिकथितं सततं श्रीरामचरितमृतम् ॥ २ ॥

वे सुशुद्धी (पुण्यात्मा पुण्य) कथ हैं जो वेदरूपी समुद्र [के मयने] से उत्पन्न हुए, कलियुगके प्रकृति सर्वथा नष्ट कर देनेवाले, भविनाशी, भगवान् श्रीधाम्भुके सुन्दर एवं श्रेष्ठ सुखरूपी चन्द्रमार्ग तथा शोभावर्धन, कथ-भरवल्ली रोमके औषध, लम्बको सुख देनेवाले और श्रीवृन्दकीर्तनके पीयूषलक्ष्म श्रीरामनामकी अमृतका निरन्तर पान करते रहते हैं ॥ २ ॥

श्रीः—मुक्ति कर्म अहि ज्ञानि भ्याम ज्ञानि भव इति कर ।

जहाँ बंस संसु म्वाभि सो कासी सेवक कस न ॥

जहाँ श्रीशिव-पार्वती करते हैं, उस कक्षीको मुक्तिकी कथाश्रुति, कर्मकी ज्ञान और पापोंका नाश करनेवाली जानकर उसका सेवन क्यों न किया जाय ?

जरत सकल सुख हूँद विषम गरल जेहि पान किए ।

तेहि न भजसि मन मंद को कृपाळ संकर सरिस ॥

जिस शीघ्रता दृष्टादृष्ट निम्ने का देवताभाव कर रहे थे उनके जिन्होंने स्वयं पान कर लिया, वे मन्द मन [वृत्ति] उन कष्टकरजीको क्यों नहीं भजता ? उनके समान कृपाळ [और] कोन है ?

उठे ही खोजते फिरते हैं। हमने तो अपना चरित्र कह सुनाया। अब हे ब्राह्मण ! अपनी कथा समझाकर कहिये ॥ २ ॥

प्रभु पहिचाति परेठ छवि चरन । सो मुख उम्र लह नहि करन ॥

पुलकित तन मुख अंग बचन । देखत धरि जेव कै रचना ॥ ३ ॥

प्रभुको पहिचानकर हनुमान्जी उनके चरण पङ्कजकर धृष्टीपर गिर पड़े (उन्होंने राघव दण्डवत्-प्रणाम किया) । [प्रियजी कहते हैं—] हे पार्वती ! वह तुझ वर्षन नहीं किया था सकता । खरीर पुलकित है, मुखसे कणन नहीं निकलता । वे प्रभुके सुन्दर वेषकी रचना देख रहे हैं ॥ ३ ॥

पुनि धीखु वरि अस्तुति कीन्दी । हरष हृष्य निज बायहि बौन्दी ॥

मोर न्यस्र मैं छुग साई । पुनः पुनः कस नर की नाई ॥ ४ ॥

फिर धीरज बरकर स्तुति की । अपने नायको पहिचान लेनेसे हृदयमें हर्ष हो रहा है । [फिर हनुमान्जीने कहा—] हे स्वामी ! मैंने जो पूछ वह मेरा पूछना तो न्याय था, [क्योंकि बाद आपको देखा, वह भी तपस्वीके वेषमें और मेरी वानरी मुक्ति, इससे मैं तो आपको पहिचान न सका और अपनी परिस्थितिके अनुसार] आपसे पूछा । परन्तु आप मनुष्यकी तरह कैसे पूछ रहे हैं ! ॥ ४ ॥

तब माया कस फिरि जुकान । तब ते मैं नहि प्रभु पहिचाना ॥ ५ ॥

मैं तो आपकी भाषाके बल मूक थिरता हूँ ; इसीसे मैंने अपने स्वामी (आप) को नहीं पहिचाना ॥ ५ ॥

दो—एक मैं भंव मोहवस कुटिल हृदय भगवान ।

पुनि प्रभु मोहि विसारेत दीगर्भतु मगवान ॥ ६ ॥

एक तो मैं यों ही मन्द हूँ, वल्ले मोहके लयमें हूँ, तीखे हृदयका कुटिल और अज्ञान हूँ, फिर हे दीनबन्धु भगवान् ! प्रभु (आप) ने भी मुझे भुल दिया । ॥ ६ ॥

बौ—जदपि नाय बहु अवशुल मोरें । तेवक प्रभुहि परे बनि मोरें ॥

नाय जीव तब मानैं मोहा । सो निस्तार सुन्दरेहि छोहा ॥ ७ ॥

हे नाय ! यद्यपि मुझमें बहुत-से अवशुल हैं, तथापि तेवक स्वामीकी विरमूर्तिमें न पड़े (आप उठे न भूक जायें) । हे नाय ! जीव मोक्षकी भाषासे मोहित है । वह आपहीकी कृपासे निस्तार पा सकता है ॥ ७ ॥

ता पर मैं रघुवीर होसाई । जानैं वहि कहु भजन उपसाई ॥

तेवक सुत पति मातु भरोसे । रहै कलेश बन्ध प्रभु पोसे ॥ ८ ॥

उत्तर है रघुवीर ! मैं आपकी दुहाई (शपथ) करके कहता हूँ कि मैं भजन-साधन कुछ नहीं जानता । तेवक स्वामीके और पुत्र माताके भरोसे विभिन्न रहता है । प्रभुको तेवकका प्राण-पौषण करते ही मनुता है (करना ही पड़ता है) ॥ ८ ॥

जस कहि परेठ चरन अमुखई । किम तनु प्रमदि प्रीति चर जई ॥

तब रघुपति उखई उर लजा । किम कोचन कहु सीति लुकाया ॥ ९ ॥

देख कहकर हनुमान्जी अतुल्यकर प्रभुके चरणोंपर गिर पड़े, उन्होंने अपना अलसी शरीर प्रकट कर दिया । उनके हृदयमें प्रेम छा गया ! तब भीरुनायकीने उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया और अपने नेत्रोंके कलशे सींचकर सीता किया ॥ ९ ॥

सुनु कपि किम भावसि बनि कथा । तैं सम शिव कसिप्रव ते दृष्ट ॥

समदरसी मोहि कह स्रव कोठ । तेवक शिव कस्य बनि लोक ॥ १० ॥

[सिर कहा—] हे कपि ! मुनी, मनमें स्थानि भव मान्य (मन छोटा न करना) । तुम मुझे स्तुतसे भी दूने प्रिय हो । ॥ कोई मुझे समझाई कहते हैं (मेरे लिये न कोई प्रिय है, न अप्रिय) । पर मुझको केवल प्रिय है, क्योंकि वह अनन्यगति होता है (मुझे छोड़कर उसको कोई दूसरा स्वरूप नहीं होता) ॥ ४ ॥

दो०—सो असाध्य जाकें अति मति म टरद हनुमंत ।

मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ॥ ३ ॥

और हे हनुमान ! अनन्य गद्दी है जिसकी ऐसी बुद्धि कभी नहीं टरती कि मैं सेवक हूँ और वह चराचर (जड़-चेतन) जगत् मेरे स्वामी भगवान्का रूप है ॥ ३ ॥

श्री०—वेचि पवनसुत पति जलुल्ला । इन्हें इरष सीसी सब सुला ॥

नाथ सैक पर कविपति रहै । सो सुग्रीव दास तब महरै ॥ १ ॥

स्वामीको अनुकूल (प्रसन्न) देखकर पवनकुमार हनुमानजीके हृदयमें हर्ष हुआ और उनके सब गुण जाते रहे । [उन्होंने कहा—] हे नाथ ! इस पर्वतराज मानसराज सुग्रीव रहता है, वह आरक्षण दास है ॥ १ ॥

हेहि सच नाथ भयनी कीये । दीन आनि हेहि असय करीये ॥

सो सीता कर पौन कराइदि । कई कई गरुड कोटि पठाइदि ॥ ५ ॥

हे नाथ ! उसके भित्ति कीजिये और उसे दीन बान्धक निर्मल कर दीजिये । वह सीताजीकी पोज करायें और अहाँ-वहाँ करोड़ों बान्धकों भेजना ॥ २ ॥

एहि बिधि सकल कथा समुदाई । किए दुनौ जग पीठि कहाई ॥

जब सुग्रीव राम कहै देका । अतिसर कथ्य धन्य करि लेका ॥ ३ ॥

इस प्रकार सब बातें सम्झाकर हनुमानजीने (श्रीराम-लक्ष्मण) दोनों कनोंको पीठपर धरा दिया । जब सुग्रीवने श्रीरामचन्द्रजीको देखा तो अपने कन्यको अत्यन्त धन्य समझा । ॥ ३ ॥

सम्बर मिलेन यह पद माथा । मेटेन अकुल सहित श्रुताथा ॥

करि कर मन विचार एहि सीता । करिइहि बिधि सो सब दू प्रीती ॥ ४ ॥

सुग्रीव चरणोंमें मस्तक नवाकर आदरसहित मिले । श्रीरामाथको भी छोटे माथे सहित उनसे गले लगाकर मिले । सुग्रीव मनमें इस प्रकार सोच रहे हैं कि हे विधाता ! क्या ये तुमसे प्रीति करेंगे ? ॥ ४ ॥

दो०—तब हनुमंत उमय निशि की सब कथा सुनाइ ।

पावन सम्पत्ति देर करि ओरी प्रीति बढाइ ॥ ४ ॥

तब हनुमानजीने दोनों ओरकी सब कथा सुनाकर अतिसे सखी देकर परस्पर हृद करके प्रीति जोड़ दी (अर्थात् अतिसे साथी देकर प्रीतिपूर्णक उनकी मैत्री करवा दी) ॥ ४ ॥

श्री०—भीन्हि प्रीति कहु भीन न राखा । लखिअव राम चरित सब भाषा ॥

कह सुग्रीव जलन गरि करी । सिद्धिदि नाथ सिद्धिसेन कुमारी ॥ १ ॥

दोनोंने [हृदयसे] प्रीति की, कुछ भी अन्तर नहीं रहता । जब लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीका स्वरूप इच्छित कहा । सुग्रीवने नेत्रोंमें जल भरकर कहा—हे नाथ ! सिद्धिदातृकुमारी अनन्दीजी मिल जायेंगी ॥ १ ॥

सिद्धि सहित इहाँ एक कर । सैक खेडें में कल विधाता ॥

गगन पंथ देखीं मैं जाता । परबस पति कृत सिद्धता ॥ २ ॥

मैं एक बार यहाँ सन्निवसि साथ बैठे हुआ कुछ विचार कर रहा था । तब मैंने

पराये (शत्रु) के कर्मों पदी बहुत विचार करती हुई रीतानीको आकाशमगसि जाते देखा था ॥ २ ॥

राम राम हा राम पुकारती । हमहि देखि दीन्हेट पट छारी ॥

माया राम तुलत तेहि कीन्हा । पट उर झड़ खेच बलि कीन्हा ॥ १ ॥

हमें देखकर उन्होंने पाय । राम । हा राम । पुकारकर वज्र गिरा दिया था । श्रीरामजीने उसे मोंया, तब सुग्रीवने तुरंत ही दे दिया । उसको हृदयसे लगाकर रामचन्द्रजीने बहुत ही तोच किया ॥ ३ ॥

यह सुग्रीव सुनहु । खुबीरा । उज्जु खेच मय व्याप्तु वीर ॥

सब प्रकार करिहैं सेमकाई । वेदिबिधि मिछिहि भावजो आई ॥ ४ ॥

सुग्रीवने कहा—हे रघुवीर ! सुनिसे । खेच छोड़ दीजिये और मनमें भीरव छाड़िये । मैं सब प्रकारसे आपकी सेवा करूँगा, जिस उपायसे जानकीजी आकर आपको मिलें ॥ ४ ॥

दो—सखा वचन सुनि हरये छपासिबु यऊसीव ।

कारन कवन बसहु बन मोहि कहहु सुग्रीव ॥ ५ ॥

छपाके समुद्र और बरखी सीमा श्रीरामजी सखा सुग्रीवके वचन सुनकर हर्षित हुए । [और बोले—] हे सुग्रीव ! मुझे बताओ, [] बनमें किस कारण रहते हो । ॥ ५ ॥

बौ—नाथ बाकि अब मैं ही आई । प्रीति रही कबु बरि न आई ॥

अपसुत माफ्यो तेहि वार्ते । आया खे प्रभु हमरें गार्ते ॥ १ ॥

[सुग्रीवने कहा—] हे नाथ ! बाकि और मैं दो आई हैं । हम दोनोंमें ऐसी प्रीति थी कि कर्न नहीं की जा सकती । हे प्रभो ! यद्यपि हमका एक पुत्र था, उसका नाम मायाजी था । एक बार वह हमारे गोंयमें आया ॥ १ ॥

अब राखि डुर द्वार पुकारा । बाकी रिपु बक सई न पार ॥

आया आकि देखि तो आया । मैं पुनि गवई बंधु सैंग करवा ॥ २ ॥

उसने आधी रातको हमारे फाटकर आकर पुकारा (छलकार) । बाकि धनुके बक (छलकार) को वह नहीं सका । वह चौका, उसे देखकर मरणाधी भागा । मैं भी आईके संग आया आया ॥ २ ॥

गिरिबर गुहौ पैठ जी आई । तब बखौ मोहि कहा फुलाई ॥

परिलेसु मोहि एक बसवरा । आई आबी तब जनेसु माप ॥ ३ ॥

वह मायाजी एक पर्वतमें गुफामें जा चुका । तब बाकिने मुझे समझाकर कहा—तुम एक पत्रवाले (पत्रद दिन) एक बेरी बात देखना । परि मैं उतने दिनोंमें न आऊँ तो जान केना कि मैं माप गया ॥ ३ ॥

मास दिवस छैं रहेउं करारी । निखरी बरि वार सई भारी ॥

बाकि हरेसि मोहि आरिहि आई । सिखा देह सई पकेउं पराई ॥ ४ ॥

हे श्वरारि ! मैं वहाँ महीनमस्तक रहा । जहाँ (उस गुफामें) रक्ती बड़ी भारी धारा निकली । तब [मैंने समझा कि] उसने बाकिने वार दाक, अब आकर मुझे मारेगा । इसलिये मैं वहाँ (गुफाके दूसरे) एक स्थल लगाकर भाग आया ॥ ४ ॥

अत्रिन्द डुर देखा बिडु साई । दीन्हेट मोहि राख बरिजाई ॥

बाकी तहिं मरि गृह आया । देखि मोहि बिर्से सेह कदावा ॥ ५ ॥

अत्रिगोंने नमस्को निना खागी (राजा) का देखा, तो मुझको कबईसी शुभ दे दिया ।

बालि उसे मारकर घर का गन्ना । मुझे [राजसिंहासनपर] देखकर उसने जीमें भेद बढ़ाया
(बहुत ही विरोध माना) । [उसने समझा कि वह राज्यके लोभसे ही गुफाके द्वारपर थिला
के आया था, जिससे मैं बाहर न निकल सकूँ; और वहाँ आकर राजा बन बैठूँ] ॥ ५ ॥

रघु सम मोहि मारेसि जसि भारी । हारि कीन्हेसि सर्वसु भव भारी ॥

तार्के मय रघुवीर कुलध्वज । सकल सुवन मैं फिरेउँ बिहाला ॥ ६ ॥

उसने मुझे झुके सम्मान बहुत अधिक मारा, और मेरा सर्वस्व तथा मेरी स्त्रीको
भी छीन लिया । हे कलकल रघुवीर ! मैं उसके मयसे समस्त स्वेच्छोंमें बेहाल होकर
फिरता रहा ॥ ६ ॥

इहाँ साथ बस आवत जाहीं । छापि समीक रहैं मन माहीं ॥

सुनि लेखक हुआ दीनदयका । फरकि उठी है मुखा विधाका ॥ ७ ॥

वह आपके कारण वहाँ नहीं आता । तो भी मैं मनमें मयमत्त रहता हूँ । लेखकका
हुकूम सुनकर दीनोंपर हवा करनेवाले और पुनायत्रीकी दोनों विद्यासु मुझाहँ कदक उठी ॥ ७ ॥

दो०—सुनु सुग्रीव मारिहउँ बाखिहि एकहि बान ।

प्रभु रुद्र सरनामत पाउँ न उबरिहि मान ॥ ८ ॥

[उन्होंने कहा—] हे सुग्रीव ! सुनो, मैं एक ही बाणसे बाखिने मार बाँझगा ।
प्रभु और शत्रुकी शरणमें जानेपर भी उसके प्रभु न बचेंगे ॥ ८ ॥

चौ०—जे न मित हुल होहि हुकारी । किन्हाहि विखेकव फलन भारी ॥

मिल कुछ गिरि सम रज करि जावा । मितक हुआ रज मेव समाधा ॥ ९ ॥

जो लोग मितके दुःखसे दुखी नहीं होते, उन्हें देखनेसे ही बड़ा पाप लगता है ।
अपने पर्वतके समान दुःखको धूलके समान और मितके धूलके समान दुःखको सुनेव
(पर्व भारी पर्वत) के समान जाने ॥ ९ ॥

किन्हा कौ जसि मति सहज न भाई । ते सत कर इदि करत मिताई ॥

कुपय निवारि सुपथ चळवा । पुन प्रमदै जन्मपुनहि दुराधा ॥ १० ॥

जिन्हें स्वभावसे ही ऐसी बुद्धि प्राप्त नहीं है, वे मूर्ख इत करके क्यों फितीसे मित्रता करते
हैं ? मित्रका धर्म है कि वह मित्रको भुरे मार्गसे रोककर अच्छे मार्गपर चलावे । उसके
गुण प्रकट करे और अशुशुणोंको सिपावे ॥ १० ॥

इत लेत मन संक न भाई । सब अनुमान सदा हित करई ॥

विपति कल पर सतगुन केहा । क्षुति कइ संत मित्र गुन मूढा ॥ ११ ॥

देने-लेनेमें मनमें संका न रखे । अपने कलके अनुसार सदा हित ही करता रहे ।
विपत्तिके समयमें तो सदा सौगुना स्नेह करे । केद कहते हैं कि संत (श्रेष्ठ) मित्रके
गुण (लक्षण) ये हैं ॥ ११ ॥

भाषे कह मुहु बचन बनाई । पाछे जगहित मन कुटिछाई ॥

जा कर चित अहि गति सम भाई । कस कुमित्र परिहरेहि भलाई ॥ १२ ॥

जो सामने तो बना बनाकर सौमल बचन कहता है और पीछे-पीछे दुराई करता
? तथा मनमें कुटिलता रखता है—हे भाई ! [इस तरह] जिसका मन दौलती चालके
प्रमाण देता है, ऐसे कुमित्रको खो त्यागनेमें ही मलाई है ॥ १२ ॥

मनस सब नृप कृपन कुनारी । कपटी मित्र सूख सम चारी ॥

मगरा मोच लगलहु कइ मोरे । सब विधि वलव काज मैं सोरे ॥ १३ ॥

भूत-मनक, ईश्वर राव, कुलदय ग्री और कपटी मित्र—ये चारों शूलके समान [पीड़ा

देनेवाले] हैं। हे सखा ! मेरे बन्धन अब तुम निन्ता छोड़ दो। मैं सब प्रकरते तुम्हारे काम आऊँगा (तुम्हारी सहायता करूँगा) ॥ ५ ॥

कह सुग्रीव सुनहु खुनीर। बाकि मझमक अति रचनीर ॥

तुन्दुभि करिष तख देखराए। किनु प्रकख खुनीर बहाए ॥ ६ ॥

सुग्रीवने कहा—हे खुनीर ! सुनिये, बाकि महान् बन्धन और अत्यन्त रणवीर है। फिर सुग्रीवने श्रीरामजीको तुन्दुभि राक्षसको हथियाँ और तालके दूध दिलाये। श्रीरघुनाथजीने उन्हें निन्ता ही परिश्रमके (आत्मनीते) दहा दिया ॥ ६ ॥

देखि अमित बह कही प्रीति। बाकि बरब इन्ह महु बलीरी ॥

बार बार बमह बह सीसा। प्रभुहि जाधि मन हरष कपीसा ॥ ७ ॥

श्रीरामजीका अपरिमित बल देखकर सुग्रीवकी प्रीति बढ़ गयी और उन्हें विधास हो गया कि ये बाकि का बच अवश्य करेंगे। वे बार-बार चरणोंमें छिर नहने लगे। प्रभुको पहचानकर सुग्रीव मनमें दर्शित हो रहे थे ॥ ७ ॥

उपका स्याम बचन ठव कोका। मय सुनो मय भयन बलीका ॥

हुक संपति बलिबह बहाई। सब परिहरी करिहुँ सेवकाई ॥ ८ ॥

यह श्रान उत्पन्न हुआ, तब वे ये बचन बोले कि हे नाथ ! आपकी कृपासे अब मेरा मन स्थिर हो गया। हुक, सम्पति, परिवार और नदारी (बन्धन) सबको त्यागकर मैं आपकी सेवा ही करूँगा ॥ ८ ॥

पू सर्व राम भक्ति के बाधक। बहाई संत ठव पद अवराधक ॥

सगु मित्र हुक हुक कम मारी। मरामक परमानय मारी ॥ ९ ॥

क्योंकि आपके चरणोंकी आराधना करनेवाले संत कहते हैं कि वे सब (वृत्त, सम्पति बादि) रामभक्तिके विरोधी हैं। अतः मैं जिसने भी शत्रु-मित्र और सुल-शुभल [जाति इन्ध] हैं, सब-के-सब आराधित हैं, परमार्थतः (वास्तवमें) नहीं हैं ॥ ९ ॥

बाकि परम हित मय प्रसादा। मिछेहु राम हुक समन विवादा ॥

सर्वमें केहि सब होइ कराई। काम सगुसत सब सगुकाई ॥ १० ॥

हे श्रीरामजी ! बाकि तो मेरा परम हितकारी है, जिसकी कृपासे कोका नाथ करनेवाले आप मुझे मित्र; और जिसके साथ अब स्वामी भी कराई हो तो आगनेपर उसे समस्तकाममें संकोच होगा [कि स्वामी भी मैं उसके क्यों लदा] ॥ १० ॥

अब प्रभु कृपा कसहु बहि नीली। सब तबि सबकुकी दिव रादी ॥

सुनि बिराम संछत कपि कावी। जोके बिहिस राख बलुपानी ॥ ११ ॥

हे प्रभो ! अब तो इस प्रकार कृपा कीजिये कि सब छोड़कर दिन-रात मैं आपका भजन ही करूँ। सुग्रीवकी कैराम्युक्त वाली सुनकर (उसके क्षणिक वैराग्यकी देखकर) हाथमें धनुष धारण करनेवाले श्रीरामजी मुसकराकर बोले— ॥ ११ ॥

तो कसु कहेहु सत्य सब सोई। सत्य बचन मय सुषा ब होई ॥

नर मरकट इम सवाहि नयनत। राखु खोस केद बस वाजत ॥ १२ ॥

तुमने जो कुछ कहा है, वह सभी सत्य है; परन्तु हे सखा ! मेरा बचन मिथ्या नहीं होता (क्योंकि बाकि मराम वागवा और तुम्हें सब मित्रता)। [कांकशुशुभिणी कहते हैं कि—] हे पक्षिकों राख बरद ! नर (मधारी) के बंदरकी तरह श्रीरामजी सपको नचाते हैं, वेद ऐश कहते हैं ॥ १२ ॥

है सुग्रीव संग रघुनाथ । चले ब्रह्म सख्य कहि दाय ॥

तब रघुपति सुग्रीव पश्य । भवैति बहू निकट बस साव ॥ १३ ॥

तदनन्तर सुग्रीवको साथ लेकर और सुग्रीवों अनुग्रह चरण करने श्रीरघुनाथजी चले । तब श्रीरघुनाथजीने सुग्रीवको बाँधिये पास मेवा । वह श्रीरामजीका वन पकर बाँधिये निकट नाकर गत्त ॥ १३ ॥

सुगत बाँधि कोषधर बाध । कहि कर कर करि अनुसूय ॥

सुनु परि निन्दहि मिथि सुग्रीव । ते हौ बंधु तेव बह सौवा ॥ १४ ॥

बाँधि सुनते ही कोषमें भरकर केले दौड़ा । उसकी स्त्री खपने चरण पकड़कर अरे समझावा कि हे जय । सुनिसे, सुग्रीव मिले मिले हैं वे दोनों भाई तेव और बहनी लीग हैं ॥ १४ ॥

कोषधर सुत कश्मिल राम । कलहु नीति सखी संसारा ॥ १५ ॥

वे कोषधरजीक दशरथजीके पुत्र राम और कलहु सखीमें कलहुको भी जीत सकते हैं ॥ १५ ॥

दो०—कह बाँधी सुनु भीष कुम्भिष सम्वरसी रघुनाथ ।

जौ कदाचि मोहि मारहि तौ पुनि होवै सनाथ ॥ ७ ॥

बाँधिये कहा—हे भीष । (बरकोष) भिये । तुनो, श्रीरघुनाथजी सम्वरसी हैं ।

जो कदाचित् वे तुमसे मारेंगे तो मैं सनाथ हो बर्द्धन (परमदण्ड पावेंगे) ॥ ७ ॥

बौ०—अस कहि बह सख्य बसिबासी । दण्ड समान सुग्रीवहि भासी ॥

मिरे बहो कलौ अति ठका । मुम्भिस मारि मारुनि मारौ ॥ १ ॥

ऐसा कहकर वह मारु भूमिपती बाँधि सुग्रीवको तिनके लिये लालकर चला । दोनों मिल गये । बाँधिये सुग्रीवको बहुत भयकथा और बूँछ मरकर बने बोले गत्त ॥ १ ॥

तब सुग्रीव निकट होइ अम्ब । मुनि गगन पर सम जम्ब ॥

मैं भी क्या खुश होऊँ । बंधु व दोह सोच कह काका ॥ २ ॥

तब सुग्रीव आनन्द होकर मग्य । बूँछी चोर उठे कल्ले समान लगी ।

[सुग्रीवने कहा—] हे कलहु रघुपति । मैंने आने पहले ही कहा था कि बाँधि मेरा भाई नहीं है, कल है ॥ २ ॥

पुत्रको छत्र प्राप्त होकर । तेहि अम्ब से बहि मारेवैं लौक ॥

कर परछ सुग्रीव करीव । खुँ या कुम्भिस भई सब पीव ॥ १ ॥

[श्रीरामजीने कहा—] तुम दोनों खलौक एक-ठा ही रत है । इसी भयसे मैंने उसको नहीं मारा । फिर श्रीरामजीने सुग्रीवको शरीरको छत्रसे सब मित्र, जिससे उसका शरीर चले समान हो गया और खरी पल्ल बसने लगी ॥ २ ॥

जेही कंड सुमन से सखा । ब्रह्मा पुनि क कह निराका ॥

पुनि गत्त मिथि बई कलई । मित्र लौट देखि रघुपति ॥ ३ ॥

तब श्रीरामजीने सुग्रीवके बरतमें बूँछी गत्त उठ ली और फिर उठे क्या भापी बल देकर मेवा । दोनोंमें पुनः अनेक प्रसंगे कुछ हुआ । श्रीरघुनाथजी बूँछी जाये देख रहे थे ॥ ३ ॥

दो०—बहु उठ कल सुग्रीव पर दिवैं दारा जय भक्ति ।

मारा बाँधि राम तब हृदय गत्त सर लवि ॥ ८ ॥

सुग्रीवने बहुत-से उल-बल किये, किन्तु [अन्तमें] मग मगकर दृष्टको हार गया।
तब श्रीरामजीने तानकर बाणिके हृदयमें बाण मारा ॥ ८ ॥

चौ०—वह विक्रम मही सर के ज्यों। पुनि तडि बैठ देखि प्रभु ज्यों ॥

स्वाम कात सिर जटा चनाई। अल्प भवन सर पक्ष चदाई ॥ १ ॥

बाणके समते ही बाणिके आकुल होकर सुग्रीव गिर पड़ा। किन्तु प्रभु श्रीरामचन्द्रजी-
को आगे देखकर वह फिर उठ बैठा। गममानका श्वास धरीर है, सिरपर जटा चनाये हैं,
हाल नेत्र हैं, बाण लिये हैं और पलुव चढ़ाने हैं ॥ २ ॥

पुनि पुनिचितह चरवक्ति दीन्हा। सुकल जन्म मग्न प्रभु चीन्हा ॥

हृदय प्रीति मुख पक्ष कठोर। बोला चितह राम को ओर ॥ २ ॥

बाणिके बार-बार भगवान्जी ओर देखकर निश्चय उनके चरणोंमें लजा दिया।
प्रभुको पहचानकर उसने अपना जन्म सफल माना। उसके हृदयमें प्रीति थी, पर सुखमें
कठोर वचन थे। वह श्रीरामजीकी ओर देखकर बोला— ॥ २ ॥

जर्म हेतु भवसेतु गोसाईं। मरेतु मोहि कथम की साईं ॥

मैं वैरी सुग्रीव पितामह। भवगुन जवन बाध मोहि मारा ॥ ३ ॥

हे गोसाईं! आपने जर्मकी रक्षाके लिये अवतार लिया है और मुझे व्यापकी तरङ्ग (छिपकर)
मारा। मैं वैरी और सुग्रीव प्यारा। हे नाथ! किस दोषसे आपने मुझे मारा ॥ ३ ॥

भक्तु बहू भगिनी सुत धारी। सुत सठ कण्ठ सम ए धारी ॥

इन्द्रादि कुटिलि बिलोक्य जोई। तदि बरें कहु पाप न होई ॥ ४ ॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे मूल! सुन, छंटे माईकी जी, शहिन, पुष्पकी जी
और कम्प—ये धारी लगन हैं। इनको जो कोई धुपी इधिये देखता है, उसे मारनेमें
कुछ भी पाप नहीं होता ॥ ४ ॥

मूढ तोहि अतिरस्य अभिमानी। गरि सिद्धावन कसि न काच ॥

ममभुजबल आश्रित तेहि पाके। सरा चाहसि भवम अभिमानी ॥ ५ ॥

हे मूढ! तूसे अत्यन्त अभिमान है। तूने अपनी खोपी छीलकर भी कात (भयान)
नहीं दिया। सुग्रीवको मेरी मुखाश्रिति सम्पन्न आश्रित जनकर भी मेरे अधम अभिमानी।
तूने उसको मारना चाहा ॥ ५ ॥

दो०—सुनहु, राम स्वामी सन बल न बाहुपी मोरि।

प्रभु जखई मैं पापी अंतकाक चरि तोरि ॥ ६ ॥

[बाणिके कहा—] हे श्रीरामजी! सुनिये, स्वामी (नाथ) ये मेरी चतुराई नहीं बल
सकती। हे प्रभो! अन्तकालमें आपकी गति (सरण) करके मैं जब भी पापी हो रहा हूँ ॥ ६ ॥

चौ०—सुनत राम कसि कोमल जानी। बाकि सीख बसेठ बिज पाणी ॥

अचल करौ तनु रामहु प्रथा। बाकि धर सुनु, कृपाविधान ॥ १ ॥

बाणिकी अत्यन्त कोमल कानी सुनकर श्रीरामजीने उसके सिरको अपने हाथसे स्पर्श
किया [और कहा—] मैं तुम्हारे सिरको अचल कर दूँ, इस प्रणालीको रखो।
बाणिके कहा—हे कृपाविधान। सुनिये ॥ १ ॥

जन्म जन्म सुनि कतलु कलहीं। अंत राम कहि अवत नारी ॥

बाहु नाम फल संकर कलही। देव सबहि सम गति बदिनारी ॥ २ ॥

सुनिगण जन्म-जन्ममें [प्रत्येक जन्ममें] [जनेहों प्रकाश] साधन करते रहते
हैं। फिर भी जन्मजन्ममें उन्हें प्यास नहीं कह जाता (उनके मुँहसे रामनाम नहीं

निमज्जा) । किन्ते नायके काले अंतरही अस्सीमें उनको उल्लसलसे अविनाशिनै गति
(मुक्ति) देते हैं ॥ २ ॥

मम खेचन नीचर सोइ पाषा । बुद्धिनि प्रसुप्त उ बनिहि कवासा ॥ ३ ॥

इह श्रीरामजी स्वयं मेरे जेवोंके पाषाणे आ धरने हैं । हे प्रभो ! ऐव अक्षय कदा
निर कभी धन जेवो ॥ ३ ॥

४—सो सकल योवर जसु सुन मित नेति कहि सुति गावहीं ।

मिति पवन मग यो निरस करि मुनि ध्वज कवहुंक पाषाहीं ।

मोहि जानि अति अभिमान कल प्रभु कहेव पछु सरीखी ।

अस कवन सट छटि करि सुरख बरि करिहि बबूखी ॥ १ ॥

सुनिवों नेति-जैव कहकर निरंतर भिनन्न गुणजन कली रहती हैं, तथा प्राय और
मनको जोवर एवं इन्द्रियोंके [विषयोंके रखे सर्वत्र] निरस बनाकर मुनिगण ध्वजोंमें
विनयी कभी कबिहू ही सटक पाते हैं, वे ही प्रभु (राम) काकाई मेरे कान्हे प्रष्ट हैं ।
आपने मुझे अत्यंत अभिमानका अंजनर वह कहा कि प्रभु कछीर रख लो । नरद ऐसा
मूर्ख होत होता वो इतनेक फलप्रको काटकर उसके बबूके बाइ लगायेगा (सर्वांत
पूर्वका इना देतेकले आपको कोठकर आपसे इत नकर सरीखी छा: बाहेगा) ॥ १ ॥

अब नय करि कवन बिहोखहु देहु जो वर मागहीं ।

जोहि कोनि जगमें कर्म बस तई राम छु अनुपगई ॥

अब तब मम सम विनय बस कन्याकन प्रभु सीजिये ।

पहि बौह सुर कर गह पकल दस अंगद कीजिये ॥ २ ॥

हे माय ! अब मुझपर इतरहि कीजिये, और मैं ने वर मांगता हूँ उसे कीजिये । मैं
कर्मका निष्ठ योनिमें जन्म हूँ, वहाँ जोरगली (भाग) के कर्मोंमें प्रेम करूँ । हे कन्याकाय
प्रभो ! वह मेरा पुत्र भवद निरव और कर्मों मेरे ही कलन है, इसे लीकार कीजिये ।
और हे देवता और मनुष्योंके माय ! बौह पकलकर इसे अपना दास बनाइये ॥ २ ॥

४०—सम जलन दनु प्रीति करि बरिह कीन्ह तनु त्याग ।

सुमन माल विनि कंट ते मिरत न जाना माग ॥ १० ॥

श्रीरामजीके वल्लभों दंड प्रीति करके बाहिने करीरको जो ही (भावनीये)

त्याग दिया लेंगे हाजी अपने जोसे प्रीत्येकी मालमाल मिरत न जाने ॥ १० ॥

४१—सम बाहि निज मम पाला । कल खेचन सब अचकुल पाषा ॥

बाधा विधि विनय कर ताप । बूटे केव न देह संभार ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने बलिबो अपने परमदाय देव रिख । उनके सब लो भावुक
होकर बौदे । बलिबो की ताप जनेसे प्रसले विनय करने लगे । उनके कल विनये
हुए हैं और देहकी संभार नहीं है ॥ १ ॥

सम विनय जेहि सुख । धीन भवन हरि कीन्ही जल ॥

मिति जल पकल पाल समीर । पंच कीचत अति लक्ष्य सरीर ॥ २ ॥

सारा तो आचुक देकर श्रीरामचन्द्रजीने उसे धान दिया और उसकी माता
(भजन) कर ली । [उन्होंने कहा—] धूम्रः कल, अति व्यापक और बलु—इन पांच
मायोंसे वह आपका अंगर करीर रहा गल है ॥ २ ॥

अप सो तनु लज जने खेच । धीन विनय जेहि लक्ष्य सुन्द रोच ॥

उपका पाल जल लज कली । कीन्ही कल जलित कर साथी ॥ ३ ॥

वह शरीर तो प्रकट तुम्हारे सामने खोला हुआ है, और जीव नित्य है फिर तुम किसके लिये रो रही हो। जब ज्ञान उत्पन्न हो गया, तब वह भयानक चरणों लगी और उसने परम भक्ति कर गौर किया ॥ ३ ॥

उमा दाम्य जोषित की नाई। स्वहि नवाक्त समु गोसाई ॥

तब सुग्रीवहि अमरु दीन्द्र। सुतक कर्म विविक्त सब कीन्द्र ॥ ४ ॥

[विजयी करते हैं—] हे उमा [स्वामी श्रीरामजी-सबको कठमुतलीकी तरह नचाते हैं। तदनन्तर श्रीरामजीने सुग्रीवको आज्ञा दी और सुग्रीवने विधिवत्क रात्रिक सब सुतक कर्म किया ॥ ४ ॥

राम कहा मनुजहि समुझई। राम रेडु सुग्रीवहि जाई ॥

रघुपति चरण भाई करि मया। चले सकल प्रेरित रघुनाथ ॥ ५ ॥

तब श्रीरामचन्द्रजीने छोटे भाई लक्ष्मणको समझाकर कहा कि तुम जानकर सुग्रीवको राज्य दे दो। श्रीरघुनाथजीकी प्रेरणा (आज्ञा) से सब लोग श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें सलाम नवाकर चले ॥ ५ ॥

श्री०—छद्मिमां तुष्ट बोधाय पुत्रजन विप्र समाज ।

राहु दीन्द्र सुग्रीव कई अंगद कई कुम्भराज ॥ ११ ॥

लक्ष्मणजीने दुरंत ही सब नगरनिकसियोंको और ब्राह्मणोंके समानके कुछ किया और [उनके सामने] सुग्रीवको राज्य और अंगरको कुम्भराज-वद दिया ॥ ११ ॥

चौ०—उमा राम सम हित जगं मदीं। गुप्त विदु मातु रघु भा माहीं ॥

सुर गर मुनि सब कै यह सीतो। सारथ कथि करई सब प्रीतो ॥ १ ॥

हे पार्वती! जगत्में श्रीरामजीके समान शिव करनेवाला गुप्त, पिता, माता, बन्धु और स्वामी कोई नहीं है। देवता, मनुष्य और मुनि सबकी यह सीति है कि स्वामीके लिये ही सब प्रीति करते हैं ॥ १ ॥

बाकि अस म्हाकुल दिन रात्री। तब यह जन विर्ती कर जाती ॥

सोई सुग्रीव कीन्द्र कपितथ। अति कृपाक, राहुीर सुभाक ॥ २ ॥

जो सुग्रीव दिन-रात बालिके मगसे म्हाकुल रहता था, जिसके शरीरमें बहुतसे भाव हो गये थे और जिसकी छतरी चिन्ताके मारे जल करती थी, उसी सुग्रीवकी उन्होंने जानकोंका राज्य बना दिया। श्रीरामचन्द्रजीका स्वभाव अत्यन्त ही कृपाळु है ॥ २ ॥

मानवई मरु प्रभु पविहरीं। कहे न विजति ज्ञाक कर वारीं ॥

मुनि सुग्रीवहि दीन्द्र मोहमई। मनु प्रकर मृपनीति सिसाई ॥ ३ ॥

जो लोग जानते हुए भी ऐसे प्रभुको त्याग देते हैं, वे क्यों न विपत्तिके जाजमें पैंतें? फिर श्रीरामजीने सुग्रीवको कुछ दिया और बहुत प्रकारसे उन्हें राक्षसीतिथी सिखा दी ॥ ३ ॥

कह प्रभु सुत सुग्रीव हरोसा। सुर न जाई इस चारि बरोसा ॥

गत प्रीमम करया विदु जाई। रहिहई निकट सैक कर छाई ॥ ४ ॥

फिर प्रभुने कहा—हे वामरपति सुग्रीव! सुनो, मैं चौदह वर्षतक गाँव (वस्ती) में नहीं जाऊँगा। श्रीभन्धुव्रत भीतर नगाँवछाड़ ला गयी। जहाँ मैं रहूँगा ही पर्वतपर टिक रहूँगा ॥ ४ ॥

अंगद सहित कछु एवं चन्। संतत हृदयें पहेहु राम कान् ॥

जब सुग्रीव मगव फिरि आए। राम प्रत्येक निरि पर आए ॥ ५ ॥

हुम धारावद्विज राज कटो । गेरु कर्मभूत दूधमै कटु ज्वलन रहता । तदनन्तर
जल सुखीवरी भर बैठे जाये । सब बीरगणबी प्रकाश करैतार न्य टिके ॥ १ ॥

श्लो०—प्रथमहि देवान् विरि मुझ राखेन खसिर बन्धर ।

राम कृपाविधि कहु दिन वास करहिमे म्हाइ ॥ १२ ॥

देवताओंने पहलेही सब फलभरी एक गुच्छको सुन्दर बना (रखा) रखा था ।
उन्होंने सोच रखा था कि कृपाही राजा बीरगणबी कुछ दिन यहाँ आकर निवास करेंगे १२
श्लो०—सुन्दर बन नुसुमित गये सोया । कुसुम मण्डप भिन्न मधु होय ॥

जैद सूक फल पत्र सुहाय । मधु सुदुत जल वे मधु भाय ॥ १३ ॥

सुन्दर बन पूजा हुआ जलमय सुसज्जित है । मधुके लोमसे भीरीके छाह गुंजार
कर रहे हैं । अपने मधु जाये । लगे लगे सुन्दर फल, सूक, पत्र और पत्तोंकी बहुतायत
हो गयी ॥ १३ ॥

देखि सरोवर सैब कल्या । रो जई भक्तुन सहित सुरमय ॥

मधुकर वाग सुन ॥ वरि देवा । करहि मिर सुखि मधु कै देवा ॥ १४ ॥

सरोवर और अनुपम फलोंको देखकर देवताओंके सखाट बीरगणबी छोटे भाईवहित
बाँई रह गये । देखत, निज और सुनि पाँचों, पक्षियों और वृक्षोंके ज्वर आरज करने
मधुकाँ देवा करने लगे ॥ १४ ॥

संगठनन नवन बन लगे है । कौनहि निजस रक्षणहि जल वे ॥

कलिक विद्या सति सुख सुहाई । सुख मन्वीन कहीं हो भाई ॥ १५ ॥

जैसे पक्षी बीरगणबीने वहाँ निवास किया करते वन मनुष्यसंलय हो गया ।
सुन्दर सज्जितमणिको एक अलक जलमय विद्या है, उसपर दोनों भाई कुक्षार्ण
विपन्नता ॥ १५ ॥

कहुन मधुन लव कया कलेवा । भयति विरिहि सुखीवरी विवेका ॥

कया कल वेग वन जल । मरुत कायत पयस सुहाय ॥ १६ ॥

बीरगणबी छोटे भाई कल्पवृक्षोंके भक्ति, वैष्णव, राजकीय और हानकी भावनों कयाई
करते हैं । वचनमय भावनाओं लगे हुए बदल भरते हुए बहुत ही सुहावने लगते हैं ॥ १६ ॥

श्लो०—कलियत देखु मोर सब नचन ध्वजि ऐषि ।

पानी विरति रा हरण जल विष्णुमगत कई देखि ॥ १७ ॥

[बीरगणबी कहते लगे—] देखत । देखो । जेरेके हृदय पाखोंको देखकर मग्न
रहे हैं । जैसे देवताओं अमृत बदल निज विष्णुमयको देखकर हर्षित होते हैं ॥ १७ ॥

श्लो०—वन बर्चन वन नरकां घोष । निषा हीन कलक मन मोष ॥

शमिनी वन्य रह न वन महीं । काज कै प्रीति जल विर गहीं ॥ १८ ॥

बागवतों नायक हुमक-सुमन्य और गौतम कर रहे हैं निषा (वीरगण) के
निषा मेरा मत कर रहा है । निजकीही कलक कलाओं ज्वरही नहीं, जैसे दुखी पीने
सिर नहीं रहते ॥ १८ ॥

बरगई कलक सुनि निजगई । जल । पानी सुख निज करई ॥

सुंद भयत सज्जि निजि देव । कल के वचन लंग सह जैवें ॥ १९ ॥

मग्न पृथ्वी जल काकर (जैसे जलमय) कल रहे हैं, जैसे निषा पकर
देख रहे लगे हैं । वृक्षोंकी चोट पर्वत जैसे करते हैं, जैसे वृक्षोंके वचन लंग करते
हैं ॥ १९ ॥

धुध नदी भरि 'कहीं' तोयई । जल सोरेहुँ धन सब इतराई ॥

भूमि परत मा खानर पानी । जल जीवहि माया उपरानी ॥ ३ ॥

छोटी नदियाँ मरकर [बिनारोंको] दुहायी हुई चली, जैसे सोई धनते भी दुष्ट इतरा जाते हैं (मर्यादाका त्याग कर देते हैं) । पृथ्वीपर पड़े ही पानी गँदला हो गया है, जैसे शुद्ध जीवनके माया लिप्त गयी हो ॥ ३ ॥

समिति समिति ललमरहि तलवा । जिमि सद्युन सज्जन पहि आवा ॥

सरिता अल नलनिधि गहूँ खई । होइ बलक सिमि निव हरि पाई ॥ ४ ॥

अब एकत्र हो-दोकर तालबोंमें भर रहा है, जैसे अलक [एक-एककर] सज्जनके पास चले आते हैं । नदीका जल समुद्रमें जाकर बैठे ही खिर हो जाता है, जैसे जीव भीहरिको पाकर बलक (आश्रयमानसे मुक्त) हो जाता है ॥ ४ ॥

शे०—हरित भूमि तुन संकुल समुद्रि परहि नहि पंध ।

जिमि पारबंद वात् तैं युत होहि सद्गंध ॥ १४ ॥

पृथ्वी धास्ते परिपूर्ण होकर हरी हो गयी है, जिससे रास्ते सम्मल नहीं पड़ते । जैसे पाषाण्ड मतके प्रचारसे अद्भुत गुण (कुत) हो जाते हैं ॥ १४ ॥

सौ०—राहुर धुनि चहुँ दिख सुहाई । वेद परहि अनु चहुँ समुदाई ॥

तब पल्लव अद् विप अनेक । लावक मन बल सिमें विवेक ॥ १५ ॥

चारों दिशाओंमें मेढकोंकी ध्वनि ऐसी सुश्रवणी कर्णवी है, मानो विचारियोंके समुदाय वेद पढ़ रहे हों । अनेकों वृक्षोंमें नये पत्ते भा गये हैं, जिससे वे ऐसे हरे-भरे एवं सुशोभित हो गये हैं जैसे लपकका मन विवेक (ज्ञान) प्राप्त होनेपर हो जाता है ॥ १५ ॥

बल जवात पात भिनु मयक । वल सुगत सब उपन तपक ॥

खोलात फलहुँ मिळइ नहि दूरी । करइ शेष जिमि बरमहि दूरी ॥ १६ ॥

नवार और लपका बिना पत्तेके हो गये (उनके पत्ते हट गये) । जैसे ओष्ठ शपकमें बुझका उधम जाता रहा (उनकी एक भी नहीं चली) । दूक कहीं लोकोनेपर भी नहीं मिलती, जैसे शेष धर्मको दूर कर देता है (अपात कोषका आश्रय होनेपर धर्मका ज्ञान नहीं रह जाता) ॥ १६ ॥

सखि संपन्न सोइ नहि कैसी । उपकारी कै संपत्ति कैसी ॥

मिसि लम वन कखोल विराजा । धनु ईभिन्ध कर मित्र ससाजा ॥ १७ ॥

अससे युक्त (लहलहाती हुई सेतोंसे हरी-भरी) पृथ्वी कैसी शोभित हो रही है, कैसी उपकारी-पुरुषकी सम्पत्ति । रातके घने अन्धकारमें धुगन् शोभा पा रहे हैं, मानो शर्मियोंका समाज आ जुटा हो ॥ १७ ॥

महावृष्टि पकि फुटि किजली । जिमि सुतंत्र अई विगडि पारी ॥

कुम्भी गिरावहि चक्र किजला । जिमि बुध लखहि सोइ मद मावा ॥ १८ ॥

भारी वर्षासे छेतोंकी वगारियाँ फूट चली हैं, जैसे स्वतन्त्र होनेसे जियाँ बिगड जाती हैं । चक्र किजान सेतोंको निरा रहे हैं (उनमेंसे पात आदिसे निकलकर फँक रहे हैं) । जैसे विद्वान् शेष सोइ, मद और सन्नता त्याग कर देते हैं ॥ १८ ॥

देखिनत चक्रवाक सग नाहीं । कजिहि पद जिमि धर्म पराहीं ॥

ऊपर वरबद तुन नहि जाया । जिमि हरिजन दिव उपनयनामा ॥ १९ ॥

चक्रवाक पक्षी दिखायी नहीं दे रहे हैं, जैसे कलियुगको पाकर धर्म भाग जाते हैं ।

उत्तरमें क्यों होती है, पर क्यों क्षमक नहीं उठती । जैसे हरिमन्त्रके सुदर्मों काम नहीं उलग होता ॥ ५ ॥

विचित्र जंतु संकुल रहि प्रसन्न । प्रजा एक निमि पाह् सुरसज्ज ॥

कई कई नखे पथिक थकि नाया । निमि इंड्रिय कम उपजै म्याना ॥ ६ ॥

पृथ्वी अनेक तरहके जीवोंसे भरी हुई उसी तरह सोमानमन है, जैसे सुपात्र पात्र प्रजायी बूझि होती है । जहाँ-तहाँ अनेक पथिक भ्रमर उड़े हुए हैं, जैसे शान उलग होनेपर इन्द्रियों [विचित्र होकर विषमोंकी ओर जाना छोड़ देती हैं] ॥ ६ ॥

धो—कचहूँ प्रसन्न वह मास्त जहाँ जहाँ भेष विजाहि ।

निमि कपूत के उपजै कुल सस्रमै मसाहि ॥ १५(५) ॥

कमी-कमी पशु वड़े छोले कलमे जगती है, बिछोड़े बादल जहाँ-तहाँ गायब हो जाते हैं । जैसे कुपुनके उलग होनेसे कुलके उलग बर्ष (भेड़ बाघरज) नष्ट हो जाते हैं ॥ १५ (५) ॥

कचहूँ विचल गई निचि क कम कचहूँक प्रसन्न परम ।

विचसह उपज्ज म्यान निमि पाह् कुसंभ सुसंग ॥ १५(६) ॥

कमी [बादलोंके क्षरण] दिनों धोर भ्रमरका का जाता है और कमी सर्व प्रकट हो जाते हैं । जैसे कुसंभ भकर कम नष्ट हो जाता है और कुसंभ पाकर उलग हो जाता है ॥ १५ (६) ॥

धो—कचहूँ विचल करह रिह जहाँ । उकिमान देवदु पल सुहाई ॥

पूछे कल ललक रहि छाई । जनु कर्ता हल प्रसन्न सुहाई ॥ १ ॥

हे कचहूँ ! देखो, क्यों सोच गयी और परम सुन्दर उपद्रुष्ट आ गयी । पूछे हुए कासे धारी पृथ्वी का गयी । सोचो क्यों शत्रुने [कचहूँकी छोड़ काँचके कर्म] अलग सुकल प्रकट किता है ॥ १ ॥

उचित कचहूँक कम एक सोहा । निमि कचहूँक सोहा संतोषा ॥

उरिहा सर निमि एक सोहा । सेत हृदय ललक मर सोहा ॥ २ ॥

कचहूँकके सोहे उदय होकर माँके कलमे सोच विहा, निमि कचहूँकके सोच केता है । नदियों और तालाबोंका निर्मल जल देखी योग्य या रहा है जैसे मर और मोहसे पलित बंधीया हृदय ॥ २ ॥

ललक एक सुकल कलक कर पायी । मल्ला ल्याय कचहूँक निमि म्यानी ॥

जनि करह रिह कचहूँक कर । परह सस्रम निमि सुजन सुहाए ॥ ३ ॥

नदी और तालाबोंका जल धीरे-धीरे सूख रहा है । जैसे शानी (विवेकी) पुरुष ममताका ल्याय करते हैं । उपद्रुष्ट लानेकर सर्वत्र फले आ गये । जैसे समय शक सुन्दर सुकल का जाते हैं (पुनः प्रकट हो जाते हैं) ॥ ३ ॥

एक म रेनु छोड़ जल कचहूँक । नीति विचल सुप कचहूँक कचहूँक ॥

ललक संतोष निमि कई सोहा । ललक सुकल निमि कचहूँक ॥ ४ ॥

न नीति है न ललक, एकी कचहूँक [निर्मल होकर] देखी सोहा दे रही है जैसे नीतिनिपुण राजाकी कचहूँक ! ललके का सो जानेसे मल्लिकों का सुकल हो रही है, जैसे मूल (विवेक) सुकल (ललक) कलमे बिना पलकृत होता है ॥ ४ ॥

विचल मर निमि छोड़ मल्लिक । हरिचल धन परिहरि कर आस ॥

कचहूँक कई बूझि कचहूँक मोरी । कचहूँक कचहूँक निमि मोरी ॥ ५ ॥

बिना वादलोंका निर्मल आकाश ऐसा शोधित हो रहा है जैसे भगवद्भक्त सब आद्यात्मिको छोड़कर मुग्धोन्मत्त हो गये हैं। कहीं-कहीं (निरले, ही खानों में) शरद्भक्तकी बोझी-बोझी क्या हो रही है। जैसे कोई निरले ही मेरी मक्ति पाते हैं ॥ ५ ॥

दो०—चले हरषि तजि नगर नृप खंपस ननिक मिस्कारि।

जिमि हरिभक्ति पाद भ्रम उत्तर्हि भावमी चारि ॥ १६ ॥

[शरद्भक्त पाकर] राज्य, उपस्ती, व्याकरी और मिस्कारी [क्रमशः विजय, उप, व्यापार और मित्राके लिये] इर्षित होकर नगर छोड़कर चले। जैसे श्रीहरिकी भक्ति पाकर चारों आश्रमवाले [नाना प्रकारके पावनस्थली] भगवन्के त्याग देते हैं ॥ १६ ॥

चो०—सुखी नीम से बीर भगाया। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा ॥

फूलें कमल सोद सर कैसा। निरुध्वं तब समुद भएँ जैसा ॥ १७ ॥

जो मलिनियों अबाध बलों हैं, ये सुखी हैं, जैसे श्रीहरिकी सरनमें चले मानेन एक मी बाधा नहीं रहती। कमलोंके फूलनेसे तात्पर्य कैसी शोभा ये रहा है, जैसे निरुध्वं प्रसन्न समुद्र होनेपर शोधित होता है ॥ १७ ॥

गुंजत मधुकर सुकर जगुपर। गुंजर नाम सब गाना बना ॥

पातपाक मन बुझ निशि पेची। जिमि दुर्धन पर खंपति देखी ॥ १८ ॥

मीरे अनुपम शब्द करते हुए गुंज रहे हैं, तथा पक्षियोंके गाना प्रकारके सुन्दर शब्द ही रहे हैं। राशि देखकर चक्रेके सममें देखे ही बुझ हो रहा है, जैसे दूधके सम्पत्ति देखकर दुग्धको होता है ॥ १८ ॥

जातक रक्त दूपा नति मोही। जिमि सुख खदह, न संकषोही ॥

सरप्रातप भित्ति धत्ति अपहरई। संत दरख जिमि एकक ठरई ॥ १९ ॥

पपीदा रक्त लगाये है, उसको मदी प्यास है, जैसे श्रीसहस्रनामकी शोही सुख नहीं पाता (सुखके लिये हीनता रहता है)। शरद्भक्तके पासको रक्तके समय पत्रमा हर होता है, जैसे लीनोंके दर्शनसे पाप दूर हो जाते हैं ॥ १९ ॥

देखि ईदु चकीर समुदाई। धितवाहि जिमि, हरिद्वय हरि काई ॥

मसक ईस कीट हिम लख। जिमि द्विष्ट शोह किई, कुछ बासा ॥ २० ॥

चकोरीके समुदाय चन्द्रमाकी देखकर हल प्रकार उठकी लगाये हैं जैसे भगवद्भक्त भगवान्की पाकर उनके [निर्मिमेग नेमीने] दर्शन करते हैं। गच्छर और डॉल जाकेके हरते इस प्रकार नष्ट हो गये जैसे ब्राह्मणके साथ बैर करनेसे कुलध्वंस हो जाता है ॥ २० ॥

दो०—भूमि जीव संकुल रहे मय सरद रिखु पार।

सदगुर भित्तों जाहि जिमि संसृज्य भ्रम समुदाह ॥ २१ ॥

[सर्वाश्रयके कारण] पृथ्वीपर जो जीव मर गये थे, ये शरद्भक्तकी पाकर जैसे ही नष्ट हो गये जैसे लवणके मित्र नाचेपर सन्देश और भ्रमके समूह नष्ट हो जाते हैं ॥ २१ ॥

चो०—बरषा गत निर्मल रिखु जाई। सुधि न लख सीता के पाई ॥

एक बार कैसेहुँ सुधि जावै। काखतु सीति विमिष, बहु जानी ॥ २२ ॥

वर्षा नीट गयी, निर्मल शरद्भक्त आ गयी। परन्तु हे सात। सीताकी कोई खबर नहीं मिली। एक बार जैसे मी फल पाईं तो काखों की नीटकर फलमर्मों जानकीको से आऊँ ॥ २२ ॥

कतहुँ रहत जो जीवति होई। कथ जतन करि जानई कोई ॥

सुधीबहुँ सुधि कोरि निरासी। बसा राज कोस पुर जनी ॥ २३ ॥

मैं तो रो, करे लीला रोही तो हे राग ! नम जगते मैं उठे अकल सखेंग ।
रक्त, खलना, नम और मैं व मनु, हकीमे सुखिये तो मेरी मुण मुण दो ॥ २ ॥

केहि सभक सपन में रहने । जेहि सः हयै मूढ कहै गाली ।

बाल कृष्ण हृष्टिं मय मोद ॥ त्वं कर्तुं त्वत्त किं सपनेषु बोद्धा ॥ २५

सिद्ध बाबाएँ मैंने बालिकों बाप या, उसकी बाबते सब सब सुनने को मर्ते ! [चिक्की
करते हैं—] हे राम ! तिनको सुझाते सब और बोले सुन गये हैं सबको कहीं सपना
की ओर हो रहता है ! [उड़ते सीताबाब है] ॥ २ ॥

अथर्वि कः चरित्रमुनिः प्रसीदति । विष्णुः सुखीरः प्रलयः सति भवति ॥

सज्जनान् शोधयन्तं प्रभु ज्ञानम् । प्रभुः जगद् गच्छेत् कर दानम् ॥ ४ ॥

श्री मुनि जिन्होंने श्रीगुरुदेवकी चरणोंमें शीतल माला की है (जोड़ की है), वे ही इस चरित्र (कीर्तन) को चढ़ाते हैं। जलमयकी नदर श्रुती श्रोतबुद्ध बनाते। इस ठगनेमें धन्य साक्षर राज हरमल ने लिखे ॥ ४ ॥

ॐ—अथ कलुषादि उत्पत्त्याया एतन्नि कस्य सौख्यं ।

मय वेद्या है अबाहु तव शक्त मुनीष ॥ १८ ॥

कहा दुधरेको देसक मय दिक्कमय के भानो [दूरे जानेकी बात नहीं है] ॥ १८ ॥

श्री०-इसी पदमस्तु हरे विजारा । राम कस्तु मुनीय विजारा ।

मिथरः सः बालमिहः सिद्धः यथा । अग्निदुर्धितेति कश्चिन्मुद्रावा ॥ १ ॥

वर्त (विष्णुवा नरवर्ते) पञ्चकुमार ओष्ठनाम्नये विचार किया कि मुनीकै
 नीलमणि वर्तके मुख देखा । उन्होंने मुनीके तब बाहर करवैँ निर नवावा ।
 [चण्ड, दान, दूध, मेर] वार्ते प्रकरके नीति कष्टन जवै समझाया ॥ २ ॥

सुनि सुनीने पसत तस्य तस्य । तिसरे मेरे इति त्रीनेव ज्ञाता ॥

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

[गुरुदेवी ने नन कुंवर मुझसे बहुत ही मर कला। और कहा—
 जिसने मेरे लाले हर किया। धन से कमकु। जहाँ-जहाँ कानसे दूर पड़े है।
 वहाँ दखि जाऊँगे मेरी मर ॥

अब हम सब मिलकर चलो। यहाँ से निकलेंगे।

सर्वे भद्राणि कुरुते । सर्वे भद्राणि कुरुते । सर्वे भद्राणि कुरुते ॥

मैं हनुमान को बड़ा दुःख था। मैं कह कर सपना देख रहा हूँ ॥
 और आज ही कि एक फलवाले (बड़ा दिन) जो मैं था साक्षात्, उसका
 मैं हूँ नव हो। मैं हनुमान की दुर्गति और उसका बहुत श्रमान
 करते—॥ २ ॥

॥ ५ ॥

श्री भक्तानुसन्ध्यायः । प्रोप वेदि श्रद्धां कति पादः ॥ १ ॥

सबको मम, प्रीति और नीति सिखायी । सब जगत् चरणों में दिव्य भवाक्षर ली ।

सकल मङ्गल प्रीति और नीति सिखवही । सब बर चरणों में दिये नवाकर चले
इसी समस्त अष्टावली नाममें सबले । अष्टावली प्रोक्त देवदत्त संतर नवार्चन नामो ॥ ४ ॥

कमर अचानक नीचे गिरने लगा। उसका शरीर देखकर घंटा बजा-रहो या
हो-... (अचानक रुक गया) ...

धनुष बाण कह तब जहिर कलैं दुर सर ।

अथ कुल नगर देवि त्वं जगत्तु वसिष्ठम् ॥ १९ ॥
 वसन्तः प्रसन्नः सन् पश्यन् जगत्तु वसिष्ठम् ॥ २० ॥
 देवि ॥ गणेशाय नमः ॥ देवताय नमः ॥ देवताय नमः ॥ २१ ॥

बौ०—चरन सिंह बिनती कीन्ही । छत्रिमन कस्य बौह तेहि दीन्ही ॥

बोधवत छत्रिमन सुनि कथा । कह कवीश-अति मर्ग जकुलाना ॥ १ ॥

अंगदने उनके चरणोंमें शिर नवाकर बिनती की (छात्रवाक्यतः इति) तब लक्ष्मणजी ने उनको अंगुष्ठ बौह दी (मुखां सठाकर कहा कि-इसे मर) । सुग्रीवने अपने कानोंसे लक्ष्मणजीको श्रोत्रमुक्त सुनकर भक्ते अत्यन्त आक्रुष्ट होकर कहा— ॥ १ ॥

सुनु हनुमंत संग, है कर । करि बिनती समुद्रात सुमार ॥

तार सहित आइ हनुमाथ । चरन यदि प्रसु सुनस बखाना ॥ २ ॥

हे हनुमान् ! सुने, प्रथम तारको साथ ले आकर, बिनती करके रावकुमारको समझाओ (समझा-शुक्रान्तर शान्त करो) । हनुमान्जीने तारसहित आकर लक्ष्मणजीके चरणोंकी चन्दना की और प्रसुके सुन्दर कसब बखान किया ॥ २ ॥

करि बिनती मंदिर है आए । चरन पकारि पड़ै पैंदाए ॥

तब करीस परबन्ध सिंह बाबा । नहि भुज छत्रिमन की कथा ॥ ३ ॥

वे बिनती करके उन्हें मूढ़ों से आये तथा चरणोंको पोंकर उन्हें पैंदापर बैठाया । तब वातराज सुग्रीवने उनके चरणोंमें शिर नवाया और लक्ष्मणजीने हाथ पकड़कर उनको थलेसे लगा लिया ॥ ३ ॥

बाब विषय सम मर कहु नहीं । सुनि प्रब मोह कह कन साहीं ॥

सुनत बिनीत कनक मुक्त पावा । छत्रिमनतेहि बहुविधि समुद्रावा ॥ ४ ॥

[सुग्रीवने कहा—] हे नाथ ! विषयके समान और खेद भव नहीं है । यह मुनियोंके मनमें भी, क्षणमनमें मोह उत्पन्न कर देता है [फिर मैं तो विषयी जीव ही ठहर] । सुग्रीवके निमग्न कनक सुनकर लक्ष्मणजीने मुक्त पावा और उनको बहुत प्रकारसे समझाया ॥ ४ ॥

पवन प्रपन्न सब, कथा सुनाई । केहि बिधि गए कहु समुद्राई ॥ ५ ॥

तब पवनसुत हनुमान्जीने जिस प्रकार सब दिशाओंमें दूले, उड़ने, गये ये सब सब हाक सुनाया ॥ ५ ॥

बौ०—हरषि कळे सुग्रीव सब भ्रमसादि करि सांथ ।

रामासुत भाग्य करि कथ्य आई रघुनाथ ॥ ६ ॥

तब अंगद आदि वानरोंको साथ लेकर और भीरुसत्त्वके छोटे भाई, लक्ष्मणजीको भागे करके (अर्थात् उनके पीछे-पीछे) सुग्रीव हर्षित होकर कळे और आई रघुनाथजी से वहाँ आये ॥ ६ ॥

बौ०—साह चरन सिंह कह कर लोरी । बाब मोहि कहु कहिय लोरी ॥

अतिमम प्रकल देव कय भाषा । कृत्य राम कहु जौ पाया ॥ १ ॥

भीरुनाथजीके चरणोंमें शिर नवाकर हाथ जोड़कर सुग्रीवने कहा—हे नाथ ! मुझे कुछ भी दोष नहीं है । हे देव ! आपकी माया अत्यन्त ही प्रबल है । आप जन दया करते हैं, हे राम ! तभी यह कृत्य है ॥ १ ॥

विषय बन्ध सुब, न सुनि लक्ष्मण । मैं पर्वत प्रसु करि अति कभी ॥

नारि नयन सर आहि न कथा । और श्रोष संग बिधि जो जगता ॥ २ ॥

हे स्वामी ! देवता, मनुष्य और मुनि सभी किसके बंधमें हैं । फिर मैं तो पामर पशु और पक्षियोंमें भी अत्यन्त कभी-बंदर हूँ । स्त्री-पुरुष नयन-साथ निरवकी नहीं लगा, जो मनुष्य श्रोत्ररूपी औषधी राखें भी अज्ञता रहता है (श्रोत्रान्ध नहीं होता) ॥ २ ॥

जोभे पौंस जेहि गर न बँधावा । सो नेर तुम्ह समान रह्यावा ॥
 वह गुन समान तँ पहि होई । तुम्हरी हँसी पाव कोइ कोई ॥ १ ॥
 और सोभकी पँखीसे बिसने अपना गल नहीं बँधावा; हे रहनायत्री ! वह
 मनुष्य आपकी समान है । ये गुण सभसे नहीं प्राप्त होते । आपकी कृपासे ही कोई-
 कोई हनै पाते हैं ॥ ३ ॥

तब रघुपति बोले मुसुकाई । तुम्ह प्रिय सोहि भरतभिम भाई ॥
 अब सोइ वतलु कइहु मन लाई । जेहि बिधि सीता कै मुधि पाई ॥ ४ ॥
 तब भीरधुनायत्री मुसकानकर बोले—हे भाई ! तुम मुझे भरतके समान प्यारे
 हो । अब मन लगाकर वही उपाय करो जिस उपायसे सीताकी खबर मिले ॥ ४ ॥
 दो—एहि बिधि होत बतकही आए धनर जूय ।
 माना करन सकल दिसि देखिय कोस वरुण ॥ २१ ॥

इस प्रकार बालवीत हो रही थी कि बानरोंके यून (हुँह) आ गये । अनेक
 रंगोंके बानरोंके एक सब दिशाओंमें दिशावी देने लगे ॥ २१ ॥

जो—बानर कलक रंग में देखा । सो मूलक जो करन कह देखा ॥

आइ राम पद गमहि मग्या । बिरसि बनु सब होहि सनाथा ॥ १ ॥

[शिष्यजी कहते हैं—] हे उमा ! बानरोंकी वह सेना मैंने देखी थी । उसकी
 जो गिनती करना चाहे वह मग्य मूल है । सब बानर आ-आकर भीरामजीके चरणोंमें
 मलक मवाते हैं और [लौन्दर्य-माधुर्यनिधि] भीरुसके शर्मान करके कृतार्थ होते हैं ॥ १ ॥

अस कबि एक न सेना माहीं । राम कुसल जेहि पूछी माहीं ॥

यह कह्यु पाई मनु कह अधिकाई । बिसरक्य अलपक रह्यु पाई ॥ २ ॥

सेनामें एक भी बानर ऐसा नहीं था जिसने भीरामजीने कुशल न पूछी हो ।
 प्रभुके छिदे यह कोई बड़ी बात नहीं है । क्योंकि भीरधुनायत्री विशद्वय तथा सर्वव्यापक
 हैं (चारे सभी और सब स्थानोंमें हैं) ॥ २ ॥

झड़े लहैं तहैं अमरु पाई । कह सुग्रीव सबहि समुझाई ॥

राम कह्यु अर मीर मिहोरा । चानर सब कह्यु चहुँ ओरा ॥ ३ ॥

आका पाकर सब जहाँ-तहाँ झड़े हो गये । तब सुग्रीवने उसको समझाकर कहा कि
 हे बानरोंके समूहो ! यह भीरामचन्द्रजीका कार्य है, और मेरा मिहोरा (अतुरोप)
 है; तुम चारों ओर जाओ ॥ ३ ॥

जन्मकुता कहैं सोलहु जाई । सास दिवस महीं आयहु भाई ॥

अवधि मोटि जो बिलु मुधि पाई । अवधु यन्त्रि से मोहि मराई ॥ ४ ॥

और नाकर जनजीजीको खोजो । हे भाई ! महीनमरसे बरत आ जाना । जो
 [महीनमरकी] अवधि वितानर बिना पता लगावे ही लौट आयेगा उसे मेरेद्वारा मरवाते
 ही वनेगा (अर्थात् तुम उलझ कर करवाना हो फलेगा) ॥ ४ ॥

दो—धनन सुमत सब वाकर लहैं तहैं चले नुरंत ।

तब सुग्रीव बोलेख अंगद नलं हनुमंत ॥ २२ ॥

सुग्रीवके यथन मने ही अब बानर नुरंत लहैं-तहैं (भिन्न-भिन्न दिशाओंमें)
 चल दिये । तब सुग्रीवने अंगद, नल, हनुमन् आदि प्रधान-प्रधान-बोझाओंको बुलाया
 [और कहा—] ॥ २२ ॥

चौ०—सुन्दर नील बंधु हनुमान् । कामवन्त सतिपीर सुखाना ॥

सकल सुभद्र मिथि वधिज्ज जाहू । सीता सुधि पूछेहु खब फाहू ॥ १ ॥

हे धीरुहि और चतुर नील, बंधाद, कामवान् और हनुमान् ! तुम सब बोध
बोधा मिलकर दक्षिण दिशाको जानो और सब मिलीये सीतानीका पता पूछना ॥ १ ॥

मन काम बचन सो चतुर्व विचारेहु । समर्थहु कर कहहु । सँघारेहु ॥

भाहु पीछे सेहूत दर आगी । सतिगिहि सर्व भाव लल आगी ॥ २ ॥

मन, वचन तथा कर्मसे उरीका (सीतानीका पता लगानेका) उपाय सोचना ।
भीरामचन्द्रनीका कार्य सम्पन्न (सफल) करना । सर्वको पीछे और अधिको हृदयसे
(समनेसे) सेवन करना चाहिये । परन्तु स्वामीकी सेवा तो कुछ छोड़कर सर्वभाषसे
(मन, वचन, कर्मसे) करनी चाहिये ॥ २ ॥

तकि मलय सेहूत परलोक । मिथि सकल अवसंनय सीका ॥

देह बरे कर कह फहु भाहू । अस्मिन् राम खब काम बिहाहू ॥ ३ ॥

माला (विपत्तीकी समता-आवृत्ति) को छोड़कर परलोकका सेवन (भगवान्‌के
दिव्य धामकी प्राप्तिके लिये भगवत्सेवास्य तापन) करना चाहिये, जिससे भव (जन्म-
मरण) से उत्पन्न चारे शोक मिट जायें । हे भाई ! देह धारण करनेका यही फल है
कि सब कामो (कामनाओ) को छोड़कर भीरामश्रीका भजन ही किया जाय ॥ ३ ॥

सीह दुरास्य सीहूँ कह्यभागी । जो रघुवीर करव बलुसारी ॥

भापसु भागि करव सिद्ध चाहै । कहे हरषि सुमित रघुसाहू ॥ ४ ॥

रघुपुत्रोंको पहचाननेवाला (गुणवान्) तथा बद्धमानी नहीं है जो भीरुपुत्रावलीके
चरणोंका प्रेमी है । आज्ञा मँगकर और चरणोंमें छि नवाकर भीरुपुत्रावलीका स्मरण
करते हुए सब शक्ति होकर चले ॥ ४ ॥

पाछे पवन तक्षक सिद्ध बाबा । भागि काव प्रभु किन्नर बीकाबा ॥

परमा सीस सरोह पानी । कस्तुरिगिह दीप्ति जब जली ॥ ५ ॥

उपके पीछे पवनसुत भीरुमान्‌जीने छि नवाया । कार्यका विचार करके प्रभुने
उन्हें अपने पाद छुलवाया । उन्होंने अपने कर-कमलसे उनके सिखा स्पर्श किया तथा
अपना शेषक जानकर उन्हें अपने हाथकी औगूठी उत्तरकर दी ॥ ५ ॥

बहु प्रकार सीखि हनुमान्‌पहु । कहि कहबिरह बेधि दुख आपहु ॥

हनुमत काम सुफल करि मान् । कहेत हनुमँ धरि कुरानिधान ॥ ६ ॥

[और कहा—] बहुत प्रकारसे सीतको सम्मानना और मेरा कल तथा विरह (प्रेम)
कहकर तुम भीम और धीम । हनुमान्‌जीने अपना काम सफल सफल और कुरानिधान
प्रभुको हृदयमें धारण करके वे चले ॥ ६ ॥

अथपि प्रभु जानत सब यज्ञा । राजनीति राक्षस भुरज्ज ॥ ७ ॥

यद्यपि देवताजीकी रक्षा करनेवाले प्रभु सब बात जानते हैं, जो भी, वे राजनीतिभी
रक्षा कर रहे हैं (नीतिकी मर्यादा रखनेके लिये सीतानीका पता लगानेको नहीं-नाहों
बानरोंको भेज रहे हैं) ॥ ७ ॥

दो०—चले सकल वच सोलत सरिता सर गिरि कोह ।

राम काम सखलौन मन विसरा सब कर छोह ॥ २३ ॥

सब काम मन, नदी, सावन, वर्षा और पर्वतोंकी कन्दराओंमें खोजते हुए

चले जा रहे हैं। नन श्रीरामजीके चरणों तकनीन है। श्रीरामका प्रेम (भक्त्य) भूल गया है ॥ २३ ॥

चौ०—कहाँ होइ दिसिन्धर सैं भेट। प्राग लेहि एक एक चपेट ॥

बहु प्रकार गिरि जानल हेरहि। कोठ मुनि मिछइ चाहि सब धेरहि ॥ १ ॥

कहाँ किसी राखले भेट हो जाती है, तो एक-एक चपटमें ही उसके प्राण ले लेते हैं। परंतु और वनोंको बहुत प्रकारसे खोज रहे हैं। कोई मुनि मिछ जाता है तो पना पूछनेके लिये उसे सब फेर लेते हैं ॥ १ ॥

कानि कृपा अतिसय भवुंछाये। निछइ न बल धन गहन भुलाये ॥

मन हनुमान कीन्ह अनुमाना। मरन चहुन सब बिनु जल पाना ॥ २ ॥

इतनेमें ही सचको कल्पन प्राप्त होगी; किंतु तब अत्यन्त ही व्याकुल हो गये। किन्तु लक्ष्मी नहीं मिल। बने संगलमें जब भुल गये। हनुमानजीने नममें अनुमान किया कि कब पिये बिना तब लोग मरना ही चाहते हैं ॥ २ ॥

बहि गिरि सिद्धर चहुँ दिसि देखा। मूमि बिबर एक कौमुद पेखा ॥

पक्षपाक बक हंस उड़ाहीं। बहुठक जन प्रविर्साहि तेहि नाहीं ॥ ३ ॥

उन्होंने पहाड़की चोटीपर चढ़कर चारों ओर देखा तो घूमके अंदर एक गुफामें उन्हें एक कौमुद (आभय) दिखायी दिया। उसके ऊपर बकबै, शृंगे और हंस उड़ रहे हैं; और बहुतसे वृक्ष उसमें प्रवेश कर रहे हैं ॥ ३ ॥

गिरि ते उगरी पवनसुत नावा। सब कहुँ लै सोइ बिबर देखावा ॥

भार्यो कै हनुमंतहि कीन्हा। पै बिबर बिछइ न कीन्हा ॥ ४ ॥

पवनकुमार हनुमानजी पर्वतसे उतर आने और सबको ले कर, उन्होंने वह गुफा दिखायी। सबने हनुमानजीको आने का किया और वे गुफामें घुस गये, देर नहीं की ॥ ४ ॥

चौ०—बीछ जाइ उपवन कर सर विगसित। बहु कंज।

मंदिर एक खरि रई वैडि गरि तप पुंज ॥ २४ ॥

मंदर जाकर उन्होंने एक उत्तम उत्कृष्ट (वर्गीय) और ताजा देखा; किन्तु बहुतसे कमल छिड़े हुए हैं। वहाँ एक कुन्वर मन्दिर है; किन्तु एक स्तोत्रदि स्त्री बैठी है ॥ २४ ॥

चौ०—दूरि से ताहि सकन्हि सिद्ध नावा। पुछें निज कृपास सुनावा ॥

तेहि सब कदा करु सल पामा। जाहु सुख सुंदर फल नावा ॥ १ ॥

इससे ही अपने उठे निज मन्त्रों और पूछनेपर मन्त्र जब कृपावत् कह सुनाया। तब उसने कहा—कल्याण करो और मोक्षि-मोक्षिके लक्ष्मि कुन्वर फल लाओ ॥ १ ॥

मन्त्रनु कीन्ह मन्त्र फल पाए। तामु निरुत पुनि सब चले जाए ॥

तेहि सब आपनि कथा सुनई। सैं अब जाय जहाँ खुराई ॥ २ ॥

[वाप्य फल] अपने जान किया, जैसे फल खाये और फिर सब उसके पत्र चले गये। तब उसने अपनी सब कथा कह सुनाई [और कहा—] मैं अब जहाँ जाऊँगी वहाँ भीखुनायकी है ॥ २ ॥

गुरु नवन बिबर लक्षि जाह। पैहु सीतहि अनि पछि जाह ॥

नवन मुदि मुनि देखहि वीर। गते लक्ष्मि सिद्ध के वीर ॥ ३ ॥

इत्येक बोलें भूर लो और सुनको होकर बाहर आयो। इस सीतजीको

प्र जाशोगे, पछताओ नहीं (निराश न होओ) । क्यों रूंदकर फिर जब ओखें
खोखें तो सब धीर क्या देखते हैं कि सब समुद्रके तीरेपर खड़े हैं ॥ ३ ॥

सो पुनि गई नहीं रघुनाथा । जाइ कमल पद काण्डि माथा ॥ ४ ॥

माना भीति चित्त तेहि कीमदी । कमलपदी संगति प्रभु दीन्ही ॥ ५ ॥

और वह स्वयं यहाँ सभी वहाँ श्रीरघुनाथजी के । उठने जाकर प्रभुके चरणकमलोंमें
भक्तक नवाया और बहुत प्रसन्न हो- निवृत्ती नही । प्रभुने उसे अपनी कमलपिनी
(अचल) भक्ति दी ॥ ४ ॥

शो—बदरीवन कहूँ खे गई प्रभु जग्या धरि सीस ।

डर धरि राम धरन कुच जे संसत अन्न ईस ॥ २५ ॥

प्रभुजी आज्ञा मिलकर चारणकर और श्रीरामजीके मुगल चरणोंकी, जिनकी तला
और मोह नो कन्दका करते हैं, हृदयमें भरकर वह (स्वयंभू) बदरिकाश्रमको
पहुँची गयी ॥ २५ ॥

शो—इहाँ विचारहि कवि मन साही । बीछी सबधि काम कहु माही ॥

सब सिद्धि कहहि बरसर पाया । विनु सुधि कई करन का भावो ॥ १ ॥

यहाँ वानरराज मनमें विचार कर रहे हैं कि अन्धविशेष तो बीस गयी, पर काम कुछ
न हुआ । सब मिलकर आपसमें बात करने लगे कि हे भाई ! अब तो सीताजीकी
खबर किये बिना लौटकर भी क्या करेंगे ! ॥ १ ॥

कह अंगद कोचन भरि पारी । दुहुँ मकर यह बसु हमारी ॥

इहाँ न सुधि सीता के पार । इहाँ गई मारिहि कपिराई ॥ २ ॥

अंगदने नेत्रोंमें लज भरकर कहा कि दोनों ही प्रसन्न हो हमारी मृत्यु हुई । यहाँ तो
सीताजीकी सुख नहीं मिली और वहाँ जानेपर वानरराज सुभीत मार खाएँगे ॥ २ ॥

विद्या बधे पर मरत मोही । रक्षा राम विहोर न मोही ॥

पुनि पुनि अंगद कह सब पाहीं । भरन सबद कहु संसत पाहीं ॥ ३ ॥

ये तो पिताके बन्ध होनेपर ही हुते मार बन्दे । श्रीरामजीने ही मेरी रक्षा की,
इसमें सुभीतका कोई प्रस्ताव नहीं है । अंगद बार-बार उसके कह रहे हैं कि अब भ्रम
हुआ, इसमें कुछ भी समझ नहीं है ॥ ३ ॥

अंगद बचन सुनत कवि बीस । बोकि न सकहि कवच यह सीस ॥

कन एक सोच भगवत होइ रहे । पुनि अस बचन कहत सब भये ॥ ४ ॥

वानर वीर अंगदके वचन सुनते हैं । किन्तु कुछ शोक नहीं सकते । उनके नेत्रोंमें
लज बह रहा है । एक क्षणके लिये सब लोकमें भय हो गये । फिर सब देखा बचन
कहने लगे— ॥ ४ ॥

हम सीता के सुधि कीन्हें बिधा । जहि जहि सुपथं प्रवीना ॥

अस कहि कवच सिद्ध तट जाई । केहे कवि सब दूर दसाई ॥ ५ ॥

हे सुयोग्य सुवराज ! हमलोग सीताजीकी खोज लिये बिना नहीं लौटेंगे । ऐसा
कहकर स्वर्णवागारके तटपर जाकर सब वानर कुछ निश्चिन्त बैठ गये ॥ ५ ॥

जामरुच संगद दुख देखी । कहाँ कवच उपदेस बिसेपी ॥

रात राम कहुँ मर कवि सम्बुद्ध । विरुन नहि अविन मज राखु ॥ ६ ॥

जामरुचने अंगदका दुःख देखकर विशेष उपदेशभी कहाँ देती । [ये बोले—]
हे राजा ! श्रीरामजीको अनुभव न मानो । उन्हें निर्गुण तत्व, अजन्म और अकल्मष समझो ॥ ६ ॥

हम सब सेवक बलि बद्धासी । संतत समुद्र अहं अनुगतो ॥ ७ ॥
हम सब सेवक अकल्प कर्माणी हैं, जो निरन्तर समुद्र ब्रह्म (श्रीरामजी)
में प्रीति रखते हैं ॥ ७ ॥

तो—निज इच्छा प्रभु अवतरत सूर महि यो द्विन छगि ।

सद्युत उपासक संव तहँ रहहि मोछ सख त्पगि ॥ २६ ॥

देवता, प्रची, गौ और ब्राह्मणों के लिये प्रभु अपनी इच्छासे [किसी कर्मवन्धनसे
नहीं] अवतार लेते हैं । यहाँ समुद्रमासक [मन्मथ वामदेव, समीप, वारुण्य, सार्द्ध
और राघव्य] सब प्रकारके मोक्षोंको त्याग कर उनकी सेवामें लाग रहते हैं ॥ २६ ॥

बौ—एहि बिधि कथा कहहि बहु सीखी । गिरि कंदरीं सुखी संपातो ॥

बहोर होइ देखि बहु जीव । मोहि अहार दीन्ह मगदीसा ॥ १ ॥

इस प्रकार सम्पन्न बहुत प्रकारसे कथाएँ कह रहे हैं । इनकी बातें पारंगतों
कन्दारमें सम्पातीने सुनीं । बाहर निकलकर उठने बहुतसे काम देखे । [तब वह
बोले—] वाराणसीमें मुझको घर बैठे बहुत-सा आहार भोज दिया । ॥ १ ॥

अबहु सुगहि कई मण्डन करई । दिन बहु चले अहार पितु मरई ॥

कर्महुं न भिन्न मरि उर अहारा । अबहु दीन्ह विधि पुरहि बारा ॥ २ ॥

मात्र इत सबको सा ज्ञाईगा । बहुत दिन बीत गये, भोजनके दिना भर रहा था ।
पेटभर भोजन कभी नहीं भिन्ना । मात्र विधानसे एक ही रातमें बहुत सा भोजन दे दिया । २ ॥
करते तीव्र वचन सुनि जाना । जब था मरन समय इस जाना ॥

कहि सब बडे गौरव कई देखी । अजरत सब सोच मिलेपी ॥ ३ ॥

गीतोंके वचन जानैते सुनते ही जब हर भये कि अब उपद्रव ही मरना हो गया,
वह हमसे खान किया । फिर मात्र भीष (सम्राज्ञी) को देखकर सब वातर उठ खड़े हुए ।
काम्यवाक्यके मनमें विशेष सोच हुआ ॥ ३ ॥

कह फाँव विचारि मन माहीं । चन्व नयनू सा कोट बाहीं ॥

राम जान, मरन लहु लागी । हरि पुर गवत परम वदभागी ॥ ४ ॥

बागदारे मनमें विचारकर कहा—महा ! नरमुकेसवान कब कोई नहीं है । श्रीरामजीके
कारण लिये बाहर निकलकर वह परम कर्माणी मन्मथके परमधामको चला गया ॥ ४ ॥

सुनि कौ हार्य सोच लुत जानी । जका विकट कर्मिन्ह भग जानी ॥

किन्हादि भयम करि पुरेति जाई । कथा सकल किन्हा उहि भुनाई ॥ ५ ॥

हर्ष और शोकसे कुछ चम्पी (सम्राज्ञी) सुनकर कह कही (सम्पाती) वानरोंके
पात जाना । कातर हर भये । उनको जमन करके (समय-वचन देकर) उठने पात
कातर बटाकुका वृत्तान्त पूछ लव उन्होंने सारी कथा उसे कह सुनायी ॥ ५ ॥

सुनि संपति वेड के करवी । सुपति यहिया लहु बिधि बरनी ॥ ६ ॥

मार्द नयमुखी कली सुनकर उपासीने बहुत प्रकारसे सीखुनायकीकी महीना
वर्णन की ॥ ६ ॥

तो—भोदि के आह सिधुल देवें तिलान्वलि जादि ।

चचन ससुर करवि मैं पैहू कोअह जादि ॥ २७ ॥

[उठने कहा—] उसे कालके भितरे के चले, मैं नयमुखी तिलाञ्जलि दे दूँ ।
इस सेनाके पहले मैं मुखारी वचनसे आशय करूँगा (अर्थात् सीखानी कहाँ हैं सो
बतला दूँगा) जिसे हम सोच रहे हो उसे वह जानोगे ॥ २७ ॥

चौ०—अनुश किन्ध करि सागर तीरा । कहि किष्किन्धवासुबहु कपि बीरा ॥

हम ही शत्रु प्रथम उरुबाई । सम्यक गए रवि निरुद्ध उदाई ॥ १ ॥

समुद्रके तीरपर छोटे माई जटासुती क्रिया (बाढ़ आदि) करके सम्पादी अपनी कथा कहने लगा—हे वीर जानरो ! सुनो हम दोनो माई उठती जगनीमे एक बार आकाशमें उड़कर सूर्यके निकट चले गये ॥ १ ॥

तेज न सहि सक सो धिरे जाया । मैं अमिमानी रवि निजराया ॥

जरे पंस धति तेज जपारा । बरेछें भूमि करि घोर विजारा ॥ २ ॥

यह (जटासु) तेज नहीं सह सकत, इससे खैट जाया । (किन्तु) मैं अमिमानी या, इसलिये सूर्यके पास चला गया । अत्यन्त अपार तेजसे मेरे पल नष्ट गये । मैं बड़े जोरसे पीछे भागकर जमीनपर गिर पड़ा ॥ २ ॥

सुनि एक नाम चन्द्रमा जोही । जगती दया देखि करि मोही ॥

बहु प्रकार छेहि ग्यान सुनाय । बहूँ कथित अमिमाम कथाय ॥ ३ ॥

यहाँ चन्द्रमा नामके एक मुनि थे । सुने देखकर उन्हें बड़ी दया लगी । उन्होंने बहुत प्रकारसे मुझे गान सुनाया और मेरे देहकलित (देहदुःख) अमिमामको सुना दिया ॥ ३ ॥

प्रेतां प्रभु सपुत्र सनु धरिही । लघु नारि विमिश्र पति हरिही ॥

तासु कोन पछहि प्रभु दूता । किन्दिहि मिछें हैं होव दुनीला ॥ ४ ॥

[उन्होंने कहा—] प्रेतासुनामे सखत प्रजस मनुष्यधारीर कारण करेगे । उनकी छोटी राजसोका राज इन्हे जानया । उससे खोजने में [मुझे] मेहनत । उनसे मिलनेपर वृ पति हो सकया, ॥ ४ ॥

जमिहहि पल कलसि कवि पिता । किन्दिहि देख्य देखेसु हैं सीता ॥

सुनि कह गिरा सत्य भद्र जगत् । सुनि मग बचनकहु मनु काय ॥ ५ ॥

और तैरे पक्ष उग आवेंगे; किन्तु न कर । उन्हें वृ सीताजीको विज्ञा देना । मुनिकी यह वाणी आज सत्य हुई । अब मेरे कथन सुनकर तुम प्रयुक्त कार्य करो ॥ ५ ॥

गिरि निकट कपल पल जल । ताई रह रावन सहय जलज ॥

ताई असोक उपवन आई छई । सीता बैसि सोच सत भई ॥ ६ ॥

निकट पर्यन्त लघु कसी हुई है । कहीं लम्बासीसे निकर राक्य रहता है । यहाँ अशोक नामका उपवन (कपीया) है, जहाँ सीताने रहती हैं । [इस समय भी] वे सोचने मग बैठी हैं ॥ ६ ॥

चौ०—मैं देखई सुम्ह गच्छी गीचहि छति कपल ।

बहु मयई न त करतई कलुष सहस्य तुम्हार ॥ १८ ॥

मैं उन्हें देख रहा हूँ, तुम नहीं देख सकते; क्योंकि गीचसी इति अपार होती है (बहुत दूर तक जाती है) । कलुष ऊँचें ! मैं बूढ़ा हो गया; नदी से तुम्हारी कुछ तो सहायता अवश्य करत ॥ १८ ॥

चौ०—जो नाथइ सत जोचन समर । फरइ सो राम काज बसि जगन ॥

सोहि विनोकि धनु अज सीरा । राम कुहाँ कत अवत सरीरा ॥ १९ ॥

जो ही सोचन (चार सौ चेत) समुद्र छँव सकेगा और बुद्धिनिधान होगा वही श्रीरामजीका कर्ष कर सकेगा [विप्रास होकर पहाड़ी मत] सुने देखकर मनमें

धीरव धरो । देखो, श्रीरामजीको कुपसे [देखते-ही-देखते] मेरा शरीर कैसा हो गया (बिना बाँखका चेहरा था, बाँख उभरनेसे दुन्दर हो गया) ॥ १ ॥

पापिदे आ कर काम सुमिरहीं । अति अवार मन्त्रसागर तरहीं ॥
राघु दूध तुम्ह तजि कह्यहै । राम हृदय धरि कहु उपाई ॥ २ ॥
पापी भी गिनका नाम सरण करके, अकन्त अपार मन्त्रसागरसे तर जाते हैं, तुम उनके दूत हो; अतः अमरता छोड़कर श्रीरामजीको हृदयमें धारण नरके उपाय करो ॥ २ ॥

अथ यदि गुरुग्रीध जन मरु । तिनहूँ सन अति विरमय मरु ॥
मिल मिल यह सब कहूँ माया । पर जाह कर संसय राखा ॥ ३ ॥
[काकमुकुटिनी कहते हैं—] हे गुरुदत्त ! यह प्रकट कहकर जब ग्रीध मारा गया, तब उन (वानरों) के मनमें अकन्त विरम हुआ । सब किरौने अपना-अपना बल करा । पर समुद्रके पार जानेमें लपीने समुद्र प्रकट किया ॥ ३ ॥

करह भयई अब कहह भिखार । नाहि सब ज्ञा प्रथम कब कैसा ॥
कहाँ भिषिकम सप सचरी । तब मैं उपन रहैँ कब भारी ॥ ४ ॥
शुशराय जानबान्ने करने लगे—मैं जद बूढ़ा हो गया । शरीरमें पहलेवाले बलका केरा भी नहीं रहा । अब चारि (करके राघु श्रीराम) रामन बने ये, तब मैं पशान या और मुझमें क्या बल था ॥ ४ ॥

दो०—बलि बाँधत प्रभु पावैत सो तनु बधनि न जाह ।
वसय धरी मई दीर्घी सात प्रदक्षिण धाह ॥ २९ ॥
बलिसे बाँधते तमय प्रभु होने बटे कि उस शरीरका कर्म नहीं हो सकता । किन्तु मैंने दो ही पक्षोंमें दौड़कर [उस शरीरकी] सात प्रदक्षिणाएँ कर लीं ॥ २९ ॥
बौ०—अंगद कहह जहाँ मैं पल । जियँ संसय कहु फिरती मास ॥

सामर्थ कहु तुम्ह सब समक । कहुच भिषि सबही कर मायक ॥ १ ॥
अंगदने कहा—मैं पार तो कम जानता हूँ । परन्तु खैरते समयके लिये हृदयमें कुछ समुद्र है । सामर्थवान्ने कहा—तुम सब प्रकारसे योग्य हो । परन्तु तुम सबके मेला हो, तुम्हें कैसे मेला काम ॥ १ ॥

कहु रीजपति सुख दुःखमाक । का पुन सावि खेहु कदावा ॥
पवत तमय बर पवन समान । बुधि विवेक विम्वर सिधारा ॥ २ ॥
शुशराय सामर्थवान्ने मोहनमन्त्रीसे कहा—हे अनुमान ! हे बलवान् ! सुनो, तुम्हने यह क्या ज्ञान प्राप्त रक्खी है ! तुम पवनके पुत्र हो और बलमें पवनके समान हो । तुम बुद्धि, विवेक और विज्ञानकी साम हो ॥ २ ॥

कवन सो कावकठिनजग माहीं । जो नाहि होह सख तुम्ह पाहीं ॥
राम काव कवि सब सावतार । सुखहीं अमर परवैकार ॥ ३ ॥
अतएव खैन-सख देख कठिन काम है जो हे राघ । तुम्हसे न हो सके । श्रीरामजीके कार्यके लिये ही तो दुःखद्वारा मन्त्रार हुआ है । वह तुम्हसे ही अनुमानकी पर्यवर्तने आकारके (अत्यन्त विद्यालक्षण) हो बने ॥ ३ ॥

कनक बरन उन तेज विद्यया । मानहुँ अपर निरिन्द कर राखा ॥
सिंहनाद करि कहहि, कय । सीताहि मापई अकविधि कार ॥ ४ ॥
कनक खेनक-ख रव है, शरीरपर तेज प्रकीर्णित है, मनो दुःख परवैकार राखा

सुमेरु हो । हनुमान्जीने बार बार चिहनाद करके कहा—मैं इस सारे समुद्रको लेकमें ही लीज सकता हूँ ॥ ४ ॥

सहित सहाय रत्नचूड़ि भारी । अकट्टे इहाँ किष्ट उपाही ॥

जामवंत हैं पूँछटें छोड़ी । उचित सिंघावसु दीन्हू मोड़ी ॥ ५ ॥

और सहायकोंसहित रावणको मरफट किष्ट पर्वतको उखाड़कर यहाँ ला सकता हूँ । हे जामवान् । मैं तुमसे पूछता हूँ, तुम मुझे उचित चीज देना [कि मुझे क्या करना चाहिये] ॥ ५ ॥

एतना करहु सात तुम्ह आई । सीखहि देखि कदहु सुधि भाई ॥

तब निज मुख बळ राखिनीश । नैकुल जनि संग कपि सेना ॥ ६ ॥

[जामवान्ने कहा—] हे राव ! तुम जाकर इतना ही करो कि सीताजीको देखकर लौट जाओ और उनकी खबर कह दो । फिर कमलनका श्रीरामजी अपने बाहुबलसे [ही राक्षसोंका संहार कर सीताजीको ले आवेंगे, केवल] खेल्ने लिये ही है वानरोंकी सेना साथ लेने ॥ ६ ॥

छं०—कपि सेन संग सँघारि विसिखर रामु सीतहि जानिहैं ।

वैलोक पथन सुखसु सुर मुनि नारदादि बखानिहैं ॥

जो सुनत गावत कहत समुद्यत परम पद नर पावई ।

रघुवीर पद पाखोज मधुकर दास तुलसी गावई ॥

वानरोंकी सेना साथ लेकर राक्षसोंका संहार करके श्रीरामजी सीताजीको ले आयेगे । तब दैवता और नारदादि मुनि भगवान्के तीनों श्लोकोको पवित्र करनेवाले सुखर वषाका बखान करेंगे, जिसे सुनें, गाने, कहने और समझनेसे मनुष्य परमपद पावे है और भिसे भीरुवीरके चरणकमलका मधुकर (भ्रमर) तुलसीदास गाता है ।

दो०—भव भेषज रघुनन्द अमु सुनहि जे नर भव नारि ।

तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहि विसिधारि ॥ १० (क) ॥

भीरुवीरका नव भव (कम-मरण) रूपी रोगघ्नी [भक्षक] दसा है । जो पुरुष भीरुजी इसे सुनें, विशिष्टाके शत्रु श्रीरामजी उनके सब मनोरथोंसे सिद्ध करेंगे ॥ १० (क) ॥

छं०—नीलोत्पल तन स्वामि काम कोटि सोम्य अधिक ।

सुनिज तसु शुभ काम जसु नम सब लग पधिक ॥ १० (ख) ॥

कमलका नीले कमलके समान स्वामि शरीर है, स्निग्ध शोभा करोड़े कामदेवोंसे भी अधिक है, और जितका नाम पापरूपी पक्षियोंके मारनेके लिये अधिक (न्याया) के समान है, वन भीरुकाके गुणोंके समूह (शीला) को अत्यन्त सुनना चाहिये ॥ १० (ख) ॥

सासपारायक, तेईसर्वा विनाम

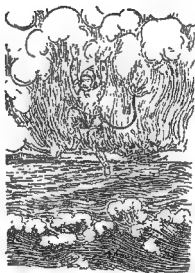
इति श्रीमद्रामचरितमानसे सप्तशतिकावलिपुष्पसंज्ञे चतुर्थः सोपानः समाप्तः ।

कलिगुणके समस्त पापोंके नाश करनेवाले श्रीरामचरितमानसस्य नव चौथा सोपान समाप्त हुआ ।

(किष्किन्वाकाव्य समाप्त)



लंकादहन



महत्सय करि मर्त्य कपि बहि लाग् ज्वालास ॥

हनुमान्जी मुस्ताके हुस्से



बन पधति पुनि बाहेर मगवा ।

मगवा निदा ताहि सिरु मगवा ॥

[श्रु ५४१]

श्रीगणेशाय नमः
श्रीवदनप्रैक्यमो विनयते

श्रीरामचरितमानस

पञ्चम सोपान

सुन्दरकाण्ड

श्लोक

शान्तं शाश्वतमग्रमेवमनघं निर्माथश्रमिप्रवं
ब्रह्माशस्त्रमुपमीन्यसेभ्यमनिशं वेशन्तवेधं विमुमुम् ।
रामाश्वं जगादोष्वरं सुखं मायामनुष्यं हरिं
चन्नेऽहं करुणाकरं रघुवरं भूषणचूडामणिम् ॥ १ ॥

शान्त, सनातन, अग्रमेव (प्रमाणोत्ते परे), निर्माथ, मोहसम परम शान्ति
देनेवाछे, ब्रह्मा, शम्भु और ऐक्यसे निरन्तर सेवित, वेशन्तवेधं द्वारा बाननेयोग्य, सर्व-
व्यापक, देवताभोमे सक्ते बड़े, भवासे मनुष्यरूपमे दीक्षनेवाछे, स्वका पापेनो हरनेवाछे
करुणाशी शान, रघुकुलमे भेद तथा रामाभाके शिरोमणि, राम कृष्णनेवाछे जगदीश्वर
को मैं कन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽसदीपि
सत्यं धरमि च भवावच्छिन्नतरात्मा ।
मर्कि प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरं मे
कामादिवोपरहितं कुरु मावसं ख ॥ २ ॥

हे रघुनाथजी ! मैं क्या करता हूँ, और फिर आप सच्चे अन्तरात्मा ही हैं (उन
जानते ही हैं) कि मेरे हृदयमे दूसरी कोई इच्छा नहीं है । हे रघुकुलभेद ! मुझे
अपनी निर्भर (पूर्ण) मर्कि दीजिये और मेरे मनमे काम आदि दोषोसे रहित कीजिये ॥ २ ॥

अतुलितबलधामं हेमरीलामदेधं
वज्रप्रवणकुशानुं शान्तिमप्रगण्यम् ।
सकलशुणनिघानं बानराणामचीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वसन्तं वसामि ॥ ३ ॥

अतुल बलके धाम, सोनेके पर्वत (कुमेरु) के समान शान्तिपुत्र बारीरवाछे,
दैत्वस्ती वन [जो ध्वस करने] के लिये अक्षिरूप, आनिबोसे अज्ञान्य, सम्पूर्ण गुणोंके
निधान, बानरोके स्वामी, और रघुनाथजीके प्रिय भक्त पद्मपुत्र श्रीरघुनाथजीको मैं प्रणाम
करता हूँ ॥ ३ ॥

चौ०—आमर्षत के समय सुखम् । सुनि हनुमंत हृदय भक्ति सागर ॥

तब कवि मोहि परिच्छेद सुन्द साई । सहि कुछ बंद मूल पद साई ॥ १ ॥

आम्बुधरके सुन्दर वचन सुनकर हनुमान्जीके हृदयके बहुत हो पाये । [वे बोले—
हे माई ! तुमलोग दुःख सहकर, कष्ट भूख-पान खाकर उत्पन्न मेरी राह देखना ॥ १ ॥

तब कवि आनी सीताहि देखीं । होइहि कछु मोहि हृष्य बिलेखी ॥

वह कहि नाइ सुखनि कहुँ अया । जेउत हरि हियँ परे रघुनाथ ॥ २ ॥

जबतक मैं सीताजीको देखकर [छोट] न आऊँ । काम अवश्य होगा, क्योंकि मुझे बहुत ही हर्ष हो रहा है । यह कहकर और छाबे मलक नम्रकर तथा हृदयमें श्रीरघुनाथ-जीको धारण करके हनुमान्जी हर्षित होकर चले ॥ २ ॥

सिंधु सीर मूक भूधर सुंदर । मँडुक कूँटि चढ़ैत ता ऊपर ॥

बार बार रघुवीर संभारी । जखेउ पवष तनय बल भारी ॥ ३ ॥

समुद्रके तीरपर एक सुन्दर पर्वत था । हनुमान्जी देखे ही (अनायास ही) कूदकर उसके ऊपर जा चढ़े और बार-बार श्रीरघुवीरका स्मरण करते अत्यन्त बलवान् हनुमान्जी उसपरसे बड़े बेगसे उछले ॥ ३ ॥

सेहि गिरि करष देइ हनुमंता । जखेउ सो न पान्यछ दुरंत ॥

जिमि अमोघ रघुपति कर पावा । एही भौंति जखेउ हनुमांवा ॥ ४ ॥

जिस पर्वतपर हनुमान्जी पैर रखकर चढ़े (जिसपरसे वे उछले) वह दुरंत ही पातालमें रेंत गया । जैसे श्रीरघुनाथजीका अमोघ बाण चला है, उसी तरह हनुमान्जी चले ॥ ४ ॥

जलमिनि रघुपति दूत विचारी । सैं मैलछ होहि अमहारी ॥ ५ ॥

छात्रने उन्हें श्रीरघुनाथजीका दूत समझकर मैलक पर्वतसे कहा कि हे मैनाक ! तुमकी एकवचन दूर करनेका हो (अर्थात् अपने ऊपर इन्हें विश्वास है) ॥ ५ ॥

यो—हनुमांवा सेहि परसा कर पुनि करिन्ह प्रनाम ।

राम काहु करिन्ह विनु मोहि कहाँ विभाम ॥ १ ॥

हनुमान्जीने उसे हाथसे छू दिया; फिर प्रणाम करते कहा—माई ! श्रीरामचन्द्रजी-का काम किने बिना मुझे विभाम कहाँ ! ॥ १ ॥

पौ—जात पवनसुत ऐक्य देखा । जानै कहुँ बल बुद्धि विसेष ॥

सुरसा नाम अहिन्ह कै भाव । पड़हि आइ बारी देखि जात ॥ १ ॥

देवताजीने पवनपुत्र हनुमान्जीको भाते हुए देखा । उनकी विशेष बल-बुद्धिसे जानलैके लिये (परिहार्य) उन्हेंने सुरसा नामक जंगली मत्तानी भेजा, उसने आकर हनुमान्जीसे यह बात कही—॥ १ ॥

जात सुख भौहि दीन्ह बहारा । सुखत वचन कह पवनसुता ॥

राम काहु करि फिरि मैं जानै । सीत कह सुधि प्रहृषि मुनारी ॥ २ ॥

जात देवताजीने मुझे भोजन दिया है । वह वचन सुनकर पवनसुत हनुमान्जीने कहा—श्रीरामजीका कार्य करने में शीघ्र भाई और सीताजीकी खबर पशुको मुन हो, ॥ २ ॥

जब तब वदन बैठिन्हें आई । सब कहलें भौहि जाय दे माई ॥

कबहुँ जतन देइ कहि जाय । प्रसवि न मोहि कहैत हनुमांवा ॥ ३ ॥

रघु से आकर तुम्हारे मुँहमें मुँहसे चले जाऊँ [तुम मुझे खा केना] । हे माता ! मैं जल कहाँ हूँ; अभी मुझे जाने दे । जब किसी भी उपायसे उसने जाने नहीं दिया, तब हनुमान्जीने फट—तो फिर मुझे खा न ले ॥ ३ ॥

बोका भरि देहि अजु पसल । कपि रघु करिन्ह तुंग पिलास ॥

ऐक्य जोकां सुत-देहि कनक । सुख पवनसुत कपिज संकट ॥ ४ ॥

उत्तने योजनकर (चार कोसमें) हुई बैठक्य । तब हनुमान्जीने अपने शरीरको उल्टे दूना बना लिया । उत्तने खोखे योजनकर मुक्त किया । हनुमान्जीने दुरंत ही बत्तीत योजनके हो गये ॥ ४ ॥

जस उस सुररा बदतु बड़ा । तसु दून कपि रूप देखाया ॥
सत जोवन तेहि आवन कीन्हा । अति ससु रूप पवनसुत कीन्हा ॥ ५ ॥

जैसे-जैसे सुररा मुखका विस्तार बढ़ाती थी, हनुमान्जी उत्तम दूना रूप दिखलते थे । उत्तने ही योजन (चार ही कोस) का मुक्त किया । तब हनुमान्जीने बहुत ही छोटा रूप धारण कर लिया ॥ ५ ॥

बदत पढ़ि पुनि कहै कथा । मन्ना पिदा चाहि सिद्ध भावा ॥
मोहि सुल्ह जेहि लागि पक्या । बुधि धर मरु खेर मैं पावा ॥ ६ ॥
और ये उसके मुखमें पुष्कर [दुरंत] फिर बाहर निकल लाये और उसे फिर नवाकर विदा भोगने छोड़े । [उत्तने कहा—] मैंने तुम्हारे बुद्धि-बलका मोह था लिया; जिसके लिये देवशाश्वेने मुझे भेजा था ॥ ६ ॥

बो०—एक काल ससु करिदहु तुम्ह वल बुधि निधान ।

भासिय देह गई सो हरषि चलेठ हनुमान ॥ ७ ॥

तब भीरामचन्द्रजीका सब कार्य फरोगे; क्योंकि तब सब-बुद्धिके भण्डार हो । यह भागीश्वर देकर वह चली गयी, तब हनुमान्जी हर्षित होकर चले ॥ ७ ॥

बो०—निसिचरि एक सिद्ध सहुँ रहई । करि माक मनु के सम गहई ॥

सीध सहुँ जे गमन उदई । जठ बिडीकि सिद्ध कै परिजई ॥ १ ॥

समुद्रमें एक राखती रहती थी । वह भावा करके आकाशमें उड़ते हुए पवित्रोंको पकड़ लेती थी । आकाशमें जो जीव-जन्तु उड़ा करते थे, वह जलमें उनकी परछाईँ देखकर ॥ १ ॥

गहई छाईँ सक सो न उदई । यदि निधि सरा गामकर जाई ॥

सोइ कल हनुमान कहै कीन्हा । तसु कपड कपि दुरावि कोन्हा ॥ २ ॥

उस परछाईँको पकड़ लेती थी, जिससे वे उड़ नहीं सकते थे [और जलमें गिर पड़ते थे] । इस प्रकार वह सब आकाशमें उड़नेवाले जीवोंको खाया करती थी । उसने वही छल हनुमान्जीसे भी किया । हनुमान्जीने दुरंत ही उसका कपट पारचान लिया ॥ २ ॥

सादि मारि भरतसुत जीरा । अरिधि पार भयन मतिबोरा ॥

जहाँ बाहू देखी कब सोमा । गुंजत चंचरीक मनु कोमा ॥ ३ ॥

पवनपुत्र भीरबुद्धि वीर श्रीहनुमान्जी उसको खरनर समुद्रके पार गये । वहाँ जाकर उन्होंने वनकी घोषा देखी । मनु (पुष्कर) के जेमसे मरि गुंजार कर रहे थे ॥ ३ ॥

जावा तब फल फूल सुहम् । सम सग ब्रह्म देखि सब भाव ॥

सक विमल देखि एक जलमें । सब पर बाहू जेदे सब लामें ॥ ४ ॥

अनेकों प्रकारके फल-फूलको शोभित हैं । पत्ती और पत्रोंके समूहको देखकर तो वे मनमें [बहुत ही] प्रसन्न हुए । जलमें एक विशाल पर्वत देखकर हनुमान्जी भय लागकर उत्तर दौड़कर ना चढ़े ॥ ४ ॥

कमा न कसु कपि कै जयिगहई । मनु प्रजप जो कलवि उदई ॥

गिरि जल बधि जंगल तेहि देसी । कहि न कह्य अति पुरी बिलेसी ॥ ५ ॥

[शिवजी कहते हैं—] वे ठग ! इसमें वाकर हनुमान्जी कुछ बढ़ाई नहीं है ।

वह प्रभुका प्रताप है, जो बालको भी खा जाता है। परंतु पर चढ़कर उन्होंने लंका देखी। बहुत ही बड़ा किला है, कुछ कहा नहीं जाय ॥ ५ ॥

अति उत्तम नाननिधि धनुषास्त्रा । कथक कोट कर परम प्रशस्ता ॥ ६ ॥

वह अत्यन्त उत्तम है, उसके चारों ओर समुद्र है। सोनेके परछोटे (चहारादिवारी) का परम प्रकाश हो रहा है ॥ ६ ॥

छं०—कनक कोट विचित्र भस्मि कृत सुंदरपयत्ना धन ।

चन्द्रदृष्ट दृष्ट सुवद्व नीर्या चर पुर बहु विधि बना ॥

राज वाजि खड्ग निकर पदचर रथ वरुणहि को गौ ॥

बहु रूप निसिचर जूय भस्मि कृत सेन बरजत नहि नै ॥ १ ॥

विचित्र भस्मिसे बना हुआ सोनेका परछोटा है, उसके अंदर बहुत-से सुन्दर-सुन्दर घर हैं। चौराहे, बानार, सुन्दर मार्ग और गलियाँ हैं। सुन्दर नगर बहुत प्रकारसे सजा हुआ है। हाथी, घोड़े, खच्चरोंके समूह तथा पैदल और रथोंके समूहोंको कौन गिन सकता है? अनेक रूपोंके राजघोंके दल हैं, उनकी अत्यन्त बलवती सेना बर्जित करते नहीं बनती ॥ १ ॥

वन वान कपयन वाटिका सर रूप बापी सोहर्षी ।

नर नम लुर गंधर्व कन्या रूप मुनि मम मोहर्षी ॥

कहूँ माल देह विसाल सैल समान भस्मि कृत गर्हर्षी ।

माना मणारेण्ड मिरहि बहुविधि एक एकम्ह तर्जर्षी ॥ २ ॥

वन; वान, उष्यन (बाँचे), कुल्लादी, तालव, कुएँ और बाग़ियों सुशोभित हैं। समुध्य; नाग, देवताओं और भस्मोंकी कन्याएँ अपने सौन्दर्यसे मुनियोंके भी मनोमोहि लेती हैं। कर्हो पर्वतके समान विशाल शरीरवाले बड़े ही बलवान् मनु (पक्षकान) गरज रहे हैं। वे अनेकों मन्त्राओंमें बहुत प्रकारसे भिन्न और एक दूसरेको छलकाते हैं ॥ २ ॥

करि जतम मट कोटिन्द विफट तम नगर चहुँ दिशि रचछर्षी ।

कहूँ महिष मालुष धेनु कर भज छल निसाचर भञ्जर्षी ॥

पदि लागि तुलसीवास शृंग की कथा कहु एक है कही ।

रघुवीर सर तीरथ सपीरनि त्वनि गति पैदहि सही ॥ ३ ॥

भयकर शरीरवाले करोहो मोटा बल करके (नयी अवधानीसे) नगरकी चारों दिशाओंमें (छव मोछे) रखवाली करते हैं। कर्हो दुष्ट राक्षस मैली, समुध्यों, गंधर्वों, गंधर्वों और वक्रोको खा रहे हैं। तुलसीदासने इनकी कथा इसीधर्ये कुछ गोदी-सी कही है कि ये निश्चय ही श्रीरामचन्द्रजीके वानरजी तीर्थमें शरीरोंको त्यागकर परमगति पावेंगे ॥ ३ ॥

रो०—पुर रखवारे देखि बहु कपि मम कीन्द विचार ।

अति छद्म रूप करी निसि नगर करौ पदसार ॥ ३ ॥

नगरके बहुवर्णयुक्त रखवालीको देखकर शृगमन्त्रजीने मनमें विचार किया कि अत्यन्त छोटा रूप धरूँ और राजके समक्ष गमनमें प्रवेश करूँ ॥ ३ ॥

चौ०—ममक समान रूप कपि वरी । कंधहि गलेठ मुमिर नद्वरी ॥

नाम लंकिनी एक निसिचरी । सो कह चलेसि सोहि निदरी ॥ १ ॥

शृगमन्त्रजी मन्त्रदके समान (छोटा-सा) रूप धारण कर भरतसे लौका करनेवाले मगवान् श्रीरामचन्द्रजीके सारण करके लंकाको चले ।—[कंधाके द्वारापर] लंकिनी

नामकी एक राक्षसी रहती थी। वह बोली—मेरा निरादर करके (बिना सुनते देखे)
कहाँ चला आ रहा है ? ॥ १ ॥

जानेहि नहीं मरुतु सठ भोव । भोर छाहर जहाँ कनि प्योस ॥

सुझिा एक महा कनि हनी । क्षिर बल भरनी उदमरी ॥ २ ॥

रे मूर्ख ! तुने मेरा भेद नहीं जाना ! जहाँकि (जितने) चोर है, वे सब मेरे
आहार हैं। मदाकपि हनुमानजीने उसे एक घँसा मारा; जिससे वह झुकती उल्टी करती
हुई पृथ्वीपर छड़क पड़ी ॥ २ ॥

जुनि संभरि उठी औ छंछ । भोरि धनि कर विचय ससंक ॥

तब रावन्हि ब्रह्म कर चीन्हा । फलत बिचनि कहा मोहि चीन्हा ॥ ३ ॥

वह लंकिनी फिर अपनेको सँभालकर उठी और उसके भरे हाथ मोड़कर
बिनती करने लगी। [यह बोली—] रावणको जब ब्रह्माजीने कर दिया था, तब चलेते
समय उन्होंने मुझे राक्षसोंके निरादरकी वह पहचान कहा दी थी कि—॥ ३ ॥

बिच्छ होसि मैं कपि के मरे । तब जानेहु विचित्र संभारे ॥

तात भोर जति पुन बहता । देखेँ कब राव कर बुझा ॥ ४ ॥

जब तू बंदरके मारनेसे ब्याकुल हो जाय, तब तू राक्षसोंका संहार हुआ था। तेना । हे
तात ! मेरे बड़े पुण्य है जो मैं श्रीरामचन्द्रजीके दूत (भाग) को नेपासे देख पायी ॥ ४ ॥

यो—तात स्वयं अप्सरों मुख परित तुल्य एक भंग ।

तू न ताहि सकल मिलि ओ मुख कब सतसंग ॥ ५ ॥

हे तात ! स्वयं और मोक्षके सब सुखोंको उपार्जके एक पल्लवे रक्ता जाय, तो
मैं वे सब मिलकर [दूसरे पल्लव पर रक्ते हुए] उस मुखके बराबर नहीं हो सकती
जो सब (धन) मात्रके सतसंगे होता है ॥ ५ ॥

यो—अबिसि बगर छीने सब कता । हृदयें तसि कोसकतुर एका ॥

गल सुधा शिु करहि मित्राई । गोपद शिु अक सितधरई ॥ १ ॥

अयोध्यापुरीके राजा श्रीरघुनाथजीको हृदयमें रखते हुए नगरमें प्रवेश करके
सब काम कीजिये । उसके छिने निप अमृत हो जाता है; शत्रु मित्रता करने लगते हैं;
समुद्र गायके बुरके बराम्बर हो जाता है; अग्निमें शीकला आ जाती है, ॥ १ ॥

गण सुमेध शिु सम लारी । सम हुआ करि मित्रता पाही ॥

जति छठु सब धरेख हनुमान । वैद्य बगर सुमिरि भगवान ॥ २ ॥

और हे गंधर्व ! सुमेध पर्वत उसके छिने रखके समान हो जाता है; जिसे
श्रीरामचन्द्रजीने एक बार कुत्र करके देख लिया । तब हनुमानजीने बहुत ही छोटी सम
धारण किया और भगवान् सब धरके नगरमें प्रवेश किया ॥ २ ॥

मंदिर मंदिर प्रति करि खेवा । देखे जहाँ जहाँ अर्चनित सोवा ॥

गणत प्रसन्नन मंदिर अहीं । जति विचित्रकहि बात सो नाहीं ॥ ३ ॥

उन्होंने एक एक (प्रत्येक) मन्त्रीको खोज ली । जहाँ-तहाँ अर्चनय योद्धा देखे ।

फिर वे राजाके महलमें गये । वह अत्यन्त विचित्र था; जिसका वर्णन नहीं हो सकता ॥ ३ ॥

समन प्रियु देखा कपि तेही । मंदिर गहुँ न दीक्षि चैदेही ॥

मदन एक पुनि दीक्ष सुहाय । हरि मंदिर तहाँ निवस कला ॥ ४ ॥

हनुमानजीने सब (राजा) को समन छिने देखा । परन्तु मन्त्रीमें अनकीजी

नहीं दिलायी दीं। फिर एक सुन्दर मन्त्र दिखायी दिया। वहाँ (उत्तम) भयचान्का
एक अन्तर मन्दिर बना हुआ था ॥ ४ ॥

दो—रामायुध अंकित बृह सोमा धरनि न जाह।

नव तुलसिका वृन्द तहाँ देखि हरष करिपाइ ॥ ५ ॥

वह महल श्रीरामजीके आयुध (मग्न-नाम) के चिह्नसे अंकित था; उसकी
सोमा वर्णन नहीं की जा सकती। वहाँ नवीन-नवीन तुलसीके वृक्षवृन्दोंको देखकर
रामायुध श्रीरामजीकी हर्षित हुए ॥ ५ ॥

चौ—संका तिलिक्क निखर निखरा। इहाँ कहीं समान कर यात्रा ॥

नव महुँ तरक करै कपि सम्रा। तेहीं सम्य विधीयतु यात्रा ॥ १ ॥

संका तो रामजीके वृक्षवृन्द निवासस्थान है। वहाँ समान (अधु पुर्य) का निवास
कहाँ! इन्द्रमन्त्री मनमें इस प्रकार तर्क करने लगे। उसी समय विधीयतु आगे ॥ १ ॥

राम राम तेहीं सुमित्त कीन्हा। इहाँ हरष कपि समान कीन्हा ॥

पूरे सग इति करिहवै पहिचानी। साहु ते होइ प काश्च हासी ॥ २ ॥

उन्होंने (विधीयतुने) रामनामका स्तरण (उच्छरण) किया। इन्द्रमन्त्रीने
उहाँ समान जाना और इतकमें हर्षित हुए। [इन्द्रमन्त्रीने विचार किया कि] इनसे
हट करके (जल्दी ओरसे ही) परिचय करूँगा; क्योंकि साहुते कार्यकी हानि नहीं होती
[प्रत्युत लाभ ही होता है] ॥ २ ॥

विम कय बनि नवन कुम्प। सुगत विनीयन कति वहाँ जाय ॥

करि प्रणाम वृद्धि कसकई। विम कसहु विम कया कुसाई ॥ ३ ॥

माधवाका स्तन भरकर इन्द्रमन्त्रीने उन्हें नवन कुम्प (कुम्प)। इनसे ही
विनीयनकी उठकर वहाँ जाये। प्रणाम करके कुम्प वृद्धि [और कहा कि] है
माधवादेव। अपनी कया समस्तकर कहिये ॥ ३ ॥

की सुन्द इति कसकई कोई। मोरें इदप प्रीति बलि होई ॥

की सुन्द राम दीव ननुपमी। अकहु मोहि करव नदनागी ॥ ४ ॥

क्या आप हरिमन्त्रीसे कोई हैं? क्योंकि आपके देखकर मैं इतकमें अत्यन्त प्रेम
उभय पर है। अथवा क्या आप दीर्घसे प्रेम करनेवाले स्वर्ग श्रीरामजी हो हैं, जो मुझे
बनाना बनाते (कर-बैठे खाने देख कर कुत्तार करने) जाते हैं? ॥ ४ ॥

दो—तब इन्द्रमन्त्र कही सब राम कथा निज नाम।

सुगत कुम्पल तम पुलक मन भगव सुमिरि गुण प्राम ॥ ५ ॥

तब इन्द्रमन्त्रीने श्रीरामचन्द्रजीकी सभी कथा कहकर अपना नाम बताया।
इनसे ही दोनोंके शरीर पुनर्जित हो गये और श्रीरामजीके गुणधूतोंका स्तरण करके
दोनोंके मन [प्रेम और आनन्दमें] मग्न हो गये ॥ ५ ॥

चौ—सुन्द पवनसुख रहनि हमारी। निमिदसकमिद महुँ जीम विधारी ॥

तब नवहुँ मोहि बानि जेका। करिहहि कृपा बाहुकुल नाथ ॥ १ ॥

[विनीयनजीने कहा—] हे परमपुत्र। मेरी यही बुनो। मैं वहाँ बैठे ही रहता
हूँ जैसे दोनोंके बीचमें वेचारी जेम् [हे राव] मुझे अपना आनन्दकर एवंकुलके नाथ
श्रीरामचन्द्रजी क्या कभी सुत्तर कुल करके ॥ १ ॥

समस्त तनु कहु साधन नहीं। प्रीति न कद सरोच नव माहो ॥

अब मोहि न करोम हनुमन्त। विनु हनिव्या मिहहि नहि संक ॥ २ ॥

मेरा वामही (राक्षस) शरीर होनेसे साधन तो कुछ बचता नहीं और न मनमें श्रीरामचन्द्रजीके चरणफलमें प्रेम ही है । परन्तु हे हनुमान् ! अब मुझे विश्वास हो गया कि श्रीरामजीकी मुसफर कृपा है, क्योंकि हरिकी कृपाके बिना संत नहीं मिलते ॥ २ ॥

जो रघुवीर अनुग्रह कीन्हा । तो तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा ॥

मुनहु विभीषन प्रसु कै रीती । कहि सदा सेवक पर प्रीती ॥ ३ ॥

जब श्रीरघुवीरने कृपा की है, तभी तो आपने मुझे हठ करके (अपनी ओरसे) दर्शन दिये हैं । [हनुमान्जीने कहा—] हे विभीषनजी । मुनिने, प्रसुकी वही रीति है कि वे सेवकपर कृपा ही प्रेम किया करते हैं ॥ ३ ॥

कहहु ध्वन मैं परम कुलीन । कहि चंचल सनहीं विधि हीमा ॥

प्रातः केहू को नाम हमारा । तेहि दिव त्रहि न मिले अहारा ॥ ४ ॥

मला कहिये, मैं ही कौन बड़ा कुलीन हूँ ! [चारित्र्य] कबल नाम हूँ और सब प्रकारसे मीच हूँ । प्रातःकाल जो हमसेबों (बंदरों) का नाम लेते तो उस दिन उसे भोजन न मिले ॥ ४ ॥

दो०—अस मैं अथम सखा सुनु मोह पर रघुवीर ।

पानीही कुछ सुमिरि गुन भरे विलोचन नीर ॥ ५ ॥

हे सखा ! मुनिने, मैं ऐसा अथम हूँ; पर श्रीरामचन्द्रजीने तो मुसफर भी कृपा ही की है । भगवान्के गुणोंका साराज करके हनुमान्जीके रोनों नेत्रोंमें [प्रेक्षामोका] लज भर आया ॥ ५ ॥

चौ०—आगतहु भग्न छात्रि विस्तरी । फिरहि ते कहे न होहि दुखरी ॥

एहि विधि कहत राम गुन ब्राम्ह । पचा अविनाश विनामा ॥ ६ ॥

जो जानते हुए भी ऐसे स्वामी (श्रीगुणायजी) को भुलकर [विषयोंके पीछे] मटकते फिरते हैं, वे दुखी क्यों न हों ! इस प्रकार श्रीरामजीके गुणसमूहोंकी कहते हुए उन्होंने अनिर्वचनीय (परम) शान्ति प्राप्त की ॥ ६ ॥

हुनि सर कथा विभीषन कही । तेहि विधि अवलमुता छौं खरी ॥

तब हनुमंत कहा सुनु आता । देखी चढ़त आवसी साता ॥ ७ ॥

फिर विभीषनजीने, श्रीरामजीकी मित्र प्रकार वहाँ (जङ्गलमें) खती थीं, वह सब कथा कही । तब हनुमान्जीने कहा—हे भाई ! मुने, मैं जानके पासको देखना चाहता हूँ ।

श्रुति विभीषन सकल सुनाई । कहेउ एवमुत चित्त कटाई ॥

करि सोइ रूप गमठ जुनि छवाई । नन बलोक सीत रह जावौ ॥ ८ ॥

विभीषनजीने [मातृके दर्शनकी] सब युक्तियों (उपाय) कह सुनायीं । तब हनुमान्जी शिवा लेकर चले । फिर वही (पत्थरका मकर-चरीखा) रूप धरकर वहाँ गये जहाँ अशोकवनमें (वनके भिन्न भागमें) सीतजी खती थीं ॥ ८ ॥

देखि मनहि भई कीन्ह प्रणाम । बैसिहि सीसि सात चिसि जात ॥

हुत सनु सीस अटा एक बेनी । अपति हवै खुपति गुन सेनी ॥ ९ ॥

सीताजीको देखकर हनुमान्जीने उन्हें मन्त्रीमें प्रणाम किया । उन्हें घेरे-ही-वैठे रात्रिके चारों पहर रीत जाते हैं । शरीर दुकल हो गया है, सिर्फ अटायोंकी एक बेनी (अट) है । हृदयमें श्रीरघुनाथजीके गुणसमूहोंका जल (सरस) भरती खती है ॥ ९ ॥

दो०—निज पद तयन दिप्ये मन राम पद कमल लीन ।

परम पुसी मा एवमुत देखि जानकी दीन ॥ ८ ॥

भीखनकीली नेत्रोंको अपने चरणोंमें लगावे हुए है (नीचेकी ओर देख रही हैं)
और जन भीरमन्त्रीके चरणप्रक्षालनमें लीन है । जानकीजीको दीन (दुखी) देखकर
पवनपुत्र हनुमान्जी बहुत ही डुली हुए ॥ ८ ॥

चौ०—सब पक्ष्य महुँ खा चुकाई । करइ विचार करी का माई ॥

तेहि भवसर राखतु तहँ ध्यावा । संग मारि बहु किरँ बनावा ॥ १ ॥

हनुमान्जी वृद्धके पक्षीमें छिप रहे और विचार करने लगे कि हे माई ! क्या करें
(इनका दुःख कैसे दूर करें) ? इसी समय बहुतसी शिवाँको साथ लिये तन-भनकर
राक्षस वहाँ आया ॥ १ ॥

बहु विधि सकल सीतहि समुझावा । साम दान भव भेद देखावा ॥

कर राखतु सुनु सुसुखि सकलार्थ । मंहोदरी भादि सब रानी ॥

उप दुष्टने सीतलीको बहुत प्रकारसे समझाया (साम, दान, भव और भेद दिखाकर) ।
राक्षसने कहा—हे सुसुखि ! हे रानी ! सुनो । मन्दोदरी आदि सब रानियोंको—॥ २ ॥

एव भुजुर्चरि करहँ एन मोरा । एक बार बिलोकु मम भोरा ॥

एन धरि ओट कइति वेदेही । सुमिरि अवधपति परम सनेही ॥ ३ ॥

मैं हुम्हारी दासी बना हूँवा, यह मेरा प्रण है । तुम एक बार मेरी ओर देखो तो
सही । अपने परम स्नेही फेरछायाई भीरमन्त्रवीर्य सरण करके जानकीजी तिनकेकी
आठ (परवा) करके करने लगीं—॥ ३ ॥

सुनु दसमुक लखोल प्रकासा । कबहुँ कि गलिनी करइ बिकासा ॥

अस मन समुझ कइति जानकी । शर सुधि नहि रखीर बाज की ॥ ४ ॥

हे दसमुख ! सुनः कुल्लूके प्रकाशते कभी कमलिनी खिल सकती है । जानकीजी
फिर कहती है—वृ [अपने लिये भी] ऐसा ही मनमें समझ ले । हे दुष्ट । तुझे
औरतुवीरके बाणकी समर नहीं है ॥ ४ ॥

सब सुनँ हरि अमेहि मोही । अक्षम मिलज काम बहि सोही ॥ ५ ॥

रे पापी । तू मुझे स्नेहमें हर लाया है । रे अक्षम ! निर्जन । तुझे सज्य नहीं आती ॥ ५ ॥

दो०—आपुहि सुनि खचोत सम रामहि भातु समान ।

पश्य दखन सुनि कादि असि कोसा अति खिसिमान ॥ ९ ॥

अपनेको सुगमके समान और रामचन्द्रजीको दूरके समान सुनकर और सीताजीके
कठोर वचनोंको सुनकर राक्षस दलवार निष्प्राणकर बड़े गुस्सेमें आकर बोझ—॥ ९ ॥

चौ०—सीता हैं मम हृत अग्रमना । नदिहँ कर सिर कटिन कृपाना ॥

माहि त सपदि मातु मस बानी । सुसुखि होति म त जीवन हानी ॥ १ ॥

सीता ! तुने मेरा अग्रमन किया है । मैं तेरा सिर हठ कठोर कृपागते काट दानूँगा ।
नहीं तो [अब भी] जल्दी मेरी बात मान ले । हे सुसुखि ! वहाँ तो जीवनते हाथ मोना
पड़ेगा ॥ १ ॥

साम सरोव बास सम सुंदर । प्रभु मुख करि कर सम वसकंधर ॥

सौ सुत कंत किछ अस्ति सोरा । सुनु सब अस प्रवाद पन भोरा ॥ २ ॥

[सीताजीने कहा—] हे स्वामीन ! प्रभुजी सुना तो क्षम्य कमलकी माछके समान
सुन्दर और हाथीके चूँके समान [पुष्ट तथा मिश्रित] हैं ना तो वह सुना ही मेरे कण्ठमें
पड़ेगी ना तेरी ममानक तककर ही । रे वर ! तुझ वही मेरा सखा प्रथ है ॥ २ ॥

पंद्रहास हर मम परिवार्य । खुपति बिह्व लज्ज संसारतं ॥
 सीतल निसित बहसि घर घनार । कह सीता हर मम दुख भार ॥ १ ॥
 सीतानी कहती है—हे चन्द्रहास ! (लज्जार !) श्रीरघुनाथजीके पिराईकी आगिसे
 उलझ मेरी बड़ी भारी जलनको दू हर ठे । हे लज्जार ! दू सीतल, तीव्र और भेद्य धारा
 बराती है (अर्थात् तेरी भार ठंडी और ठेक है)- दू ॥ बुझके बोसको हर ठे ॥ २ ॥
 सुनत बचन पुनि मारन घण्य । मकननहीं कहि नीति कुलाव ॥
 कहसि सकल निसिचरिन्ह पोछाई । सीतहि नहु बिधि प्रसह जाई ॥ ४ ॥
 सीताजीके ये बचन सुनते ही वह मरने दीया । तब मम दानवकी पुत्री मन्दोदरीने
 नीति कदकर उठे समझाया । तब रावणने सब राक्षसियोंको बुझकर कहा कि साकर
 सीताको बहुत प्रकारसे मय दिखलाओ ॥ ४ ॥
 ' नास दिवस महु कहा न मान । सी मैं मारिहि कदि कुलाव ॥ ५ ॥
 यदि महीनेभरने यह कहा न माने तो मैं इसे ठलवार निकालकर मार बाँधेंगा ५
 दो०—भयन गयस वसकंचर इहाँ पिसाचिनि भुं ।
 सीतहि आस देवाचहि चरहि रूप बहु मंद ॥ १० ॥
 [दो कहकर] रावण घर चला गया । वहाँ राक्षसियोंके समूह बहुत-से डरे, कम
 धरकर सीताजीको भय दिखलाने लगे ॥ १० ॥
 चौ०—जिहटा नाम राखसी एक । राम चरण रति मियुन बिभेक ॥
 सगहौ बोकि सुचारसि सपना । सीतहि सेह कहि दिख अपना ॥ १ ॥
 उनमें एक जिहटा नामकी राक्षसी थी । उसकी श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रीति
 थी और वह विभेक (मान) में मियुन थी । उसने लोकोके मुखकर अपना लज्जन हुनाया
 और कहा—सीताजीकी सेवा करके अपना कल्याण कर ले ॥ १ ॥
 सपने जगन लंका जारी । जगुधान सेवा सब मारी ॥
 कर अकल जगन वसलीस । सुंकिव सिर संकिव मुख बीसा ॥ २ ॥
 स्वप्नमें [मैंने देखा कि] एक बहने लड़ा कम थी । राखसीकी सारी सेवा मार
 बाजी गयी । रावण नम्र है और गदोहर लज्जार है । उसके सिर ऊँचे हुए हैं, बीजो
 मुजायें कटी हुई हैं ॥ २ ॥
 एहि बिधि सो दमिजन विसि जाई । लंका नबहु बिभीषण पाई ॥
 नगर पिली रघुवीर दोहार्ह । कम प्रभु सीतल बोकि पठाई ॥ ३ ॥
 इस प्रकारसे वह दक्षिण (नमपुरीकी) दिशाको जा रहा है और मानो लड़ा
 बिभीषणने पायी है । नगरमें श्रीरामचन्द्रजीकी दुहाई फिर गयी । तब प्रभुने सीताजीको
 बुला भेजा ॥ ३ ॥
 यह सपना मैं कहतें पुकारी । होइहि सब यहाँ दिख पास ॥
 तासु बचन सुनि ते, सब सी । जन्मसुता के चरनन्ह परे ॥ ४ ॥
 मैं पुकारकर (निधनके साथ) कहती हूँ कि यह स्वप्न चार (कुछ ही) दिनों
 बाद सत्य होकर रहेगा । उसके वचन सुनकर ये सब राक्षसियाँ डर गयीं और जानकीजीके
 चरणोंपर गिर पड़ी ॥ ४ ॥
 दो०—जहाँ तहाँ गईं लखल तब सीता कर मन खोज ।
 मास दिवस बीतें मोहि मारिहि निसिचर खोज ॥ ११ ॥

तव (इसके बाद) वे सब जहाँ-जहाँ चली गयीं । सीताजी मनमें सोच करने लगीं कि एक महीना बीत जानेपर नीच राखस रावण मुझे मरेगा ॥ ११ ॥

चौ०—त्रिवेदा सन बोलीं कर बोरी । मातु विषसि संसिनि तैं मोरी ॥

सखीं देह कह वेगि उग्राई । बुराई बिरहू जब कहि सति जाई ॥ १ ॥

सीताजी हाथ जोड़कर त्रिवेदासे बोलीं—हे माता । तू मेरी विपत्तिकी संगिनी है । कभी कोई ऐसा उपाय कर जिससे मैं शरीर छोड़ सकूँ । बिरह अमर हो चला है, अब यह सहा नहीं जाता ॥ १ ॥

आनि काठ विता वचाई । मातु अमर प्रणि देहि लयाई ॥

सत्य करहि मन प्रीति सयानी । मुचै को अवन सूख सम बानी ॥ २ ॥

काठ काकर-चिता बनकर सजा दे । हे माता ! फिर उसमें आग लगा दे । हे सयानी ! तू मेरी प्रीतिको सत्य कर दे । राखणकी शूलके समान दुःख देनेवाली काली कानोंसे कौन छुने ॥ २ ॥

हुनत बचन पद गहि समुत्सवसि । प्रसु प्रयाप बह मुकुमु झुनासि ॥

मिसि बलबल सिल मुहु मुकुमारी । लस कहि सो मिस अवन सिधारी ॥ ३ ॥

सीताजीके वचन सुनकर त्रिवेदा ने चरण पकड़कर उन्हें समझाया और प्रशुका प्रयाप, बल और सुयश सुनवाया । [उत्तरे कहा—] हे मुकुमारी ! मुझे, रात्रिके समय भाग नहीं मिलेगी । ऐसा कहकर वह अपने घर चली गयी ॥ ३ ॥

कह सीता मिथि आ प्रसिद्धि । मिसिहि न पावत मिसिहि ब सुखा ॥

देहिमत प्रगट अवन अंवार । अवन न अवनत एवत सारा ॥ ४ ॥

सीताजी [मन-ही-मन] करने लगीं—[कहा करते] विषयता ही विपरीत हो गया । न आग मिलेगी, न पीड़ा मिलेगी । आकाशमें अंगारे प्रकट दिखायी दे रहे हैं, पर पृथ्वीपर एक भी शर नहीं आता ॥ ४ ॥

पावकमय ससि कल न अगरी । प्रसुहुँ भीहि अवि हलमारी ॥

मुगहि विनम मम निठप लखेकर । सत्य वास कह हय मम लोका ॥ ५ ॥

चन्द्रमा अग्निमय है, किन्तु वह भी ममो मुझे स्वनायिनी जानकर भाग नहीं वरछता । हे भयौकहल ! मेरी निमती सुन । मेरा शोक हर ले और अपना [अयोध] मान लय कर ॥ ५ ॥

नूतन किसलय अमर समाना । देहि अविधि कवि करहि निरुता ॥

देकि परम विरहाकुल सीता । सी छन कपिहि कलय सम बीता ॥ ६ ॥

धरे नये-नये कोमल फले अत्रिनि समान हैं । अत्रि दे, विरह-रोगका अन्त मत कर (अर्थात् विरह-रोगको बढ़ाकर सीतावक न पहुँचा) । सीताजीको विरहसे परम न्याकुल देखकर वह लला इनुमान्जीको करते समान बीता ॥ ६ ॥

गो०—कपि करि हृदय विचार दीन्हि मुद्रिका हारि तव ।

जनु असोक अंगार दीन्ह हरि उठि कर गहव ॥ १२ ॥

वह इनुमान्जीने हृदयमें विचारकर [सीताजीके सामने] अँगूठी बाक दी, मानो असोकने अंगारा दे दिया । [यह उलझकर] सीताजीने हर्षित होकर उठकर उठे हाथमें ले लिया ॥ १२ ॥

चौ०—सच देखी मुद्रिका मनोहर । राम नाम अंकित कति धुंधर ॥

अंकित चित्त मुदरी पहिचानी । हरप विषाद हृदय अकुमारी ॥ १ ॥

तब उन्होंने रामनामसे अंकित अस्मत्त मुद्रा एवं मनोहर अँगूठी देखी ।

अँगूठीको पहचानकर सीताजी आश्चर्यचकित होकर उसे देखने लगीं और हर्ष तथा विधादसे हृदयमें अकुला उठीं ॥ १ ॥

जीति को सबद जवन सुगई । मग्य हैं कसि रचि नहि जाई ॥

सीता मन विचार कर जया । मगुर जवन बोलेउ हनुमान ॥ २ ॥

[वे सोचने लगीं—] भीरब्रुनाथजी तो सर्वथा अज्ञेय हैं, उन्हें कौन जीत सकता है ! और भगवान् ऐसी (भगवान्के उपादनसे सर्वथा रहित दिव्य, चिन्मय) अँगूठी बनायी नहीं जा सकती । सीताजी मनमें अनेक प्रकारके विचार कर रही थीं । इसी समय हनुमान्जी मधुर वचन बोले— ॥ २ ॥

रामचंद्र गुन वरुनै लगन । सुनतहि सीत कर दुख भगन ॥

जगौं सुनै भयव मन काई । यदिहु तैं सब कथा सुगई ॥ ३ ॥

वे श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंपर वर्णन करने लगे, [जिनके] सुनते ही सीताजीका हृत्क भाग गया । वे जान और मन लगाकर उन्हें सुनने लगीं । हनुमान्जीने आदिसे लेकर सारी कथा कह सुनायी ॥ ३ ॥

भगवान्मुत बेहि कथा सुगई । कही सो प्रगट होति किन जाई ॥

सब हनुमंत निकट पकि गयउ । फिरि बैसैं मन विनमय भयउ ॥ ४ ॥

[सीताजी बोलीं—] जिसने कनोकि लिये अमृतस्य यह सुन्दर कथा कही, वह है भाई । प्रकट क्यों नहीं होता ? सब हनुमान्जी पास चले गये । उन्हें देखकर सीताजी फिरकर (मुख फेरकर) बैठ गयीं ; उनके मनमें आश्चर्य हुआ ॥ ४ ॥

राम हूत मैं मातु जगदी । सब सयव कथानिधान की ॥

यह सुनिषर मातु मैं जाकी । दीन्हि सम मुख कई सहिदानी ॥ ५ ॥

[हनुमान्जीने कहा—] हे माता जानकी ! मैं श्रीरामजीका वृत्त हूँ । कथानिधानकी सभी शपथ करता हूँ । हे माता ! यह अँगूठी मैं ही खबा हूँ । श्रीरामजीने मुझे आपके लिये यह सहिदानी (निधानी या पहिचान) दी है ॥ ५ ॥

नर वानरदि संग कहु कैसैं । कही कथा कह संगति जैसैं ॥ ६ ॥

[सीताजीने पूछा—] नर और वानरका संग कहां कैसे हुआ ? सब हनुमान्जीने जैसे संग हुआ था, वह सब कथा कही ॥ ६ ॥

दो०—कपि के कथन सप्रेम सुनि उपज्य मन विस्वास ।

जाना मन क्रम बचन वह कथसिन्धु कर दास ॥ १३ ॥

हनुमान्जीके प्रेमसुक्त वचन सुनकर सीताजीके मनमें विश्वास उत्पन्न हो गया । उन्होंने जान लिया ॥ यह मन, वचन और कर्मसे कृष्णधर भीरब्रुनाथजीका दास है ॥ १३ ॥

चौ०—हरिजन जनि प्रीति अति गहरी । सज्जक वचन-पुष्पकवलि गहरी ॥

पूज्य विरह जसवि हनुमान । मखु जत भे कहुँ लज्जाना ॥ १४ ॥

मगवान्का जन (सेक) ज्ञानकर जलन्त गहरी प्रीति हो गयी । नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर गया और करीर अत्यन्त पुञ्जित हो गया । [सीताजीने] कहा—] हे दास हनुमान् ! निरुद्धागममें हनती हुई प्रकृति तुम जलज द्रव्य ॥ १ ॥

जब कहु फुल्ल अर्ध कलिहारी । जनुब सहित मुख मयन खारी ॥

जोमलच्छि फुल्ल सुगई । कपि बेहि हेतु बरी निदुराई ॥ २ ॥

मैं बलिहारी जाती हूँ, मन छोटे गहरे जलजलीवहाण सरके सज्ज सुखवाय

प्रभुका कुशल-पत्र कहो । श्रीधुनापत्नी तो क्रोमलहृदय और कृपण है । फिर हे हनुमान् ! उन्होंने किस कारण यह निष्ठुरता धारण कर ली है ? ॥ २ ॥

संजव बामि सेवक सुख दासक । कबहुँक सुरभि कस्त वसुनामक ॥

॥ कबहुँ नवन सम-स्वीयक ताव । होइहहि विरहि खाम मनु गाता ॥ ३ ॥

सेवकको सुख देना उनकी सामानिक वान है । वे श्रीधुनापत्नी क्या कमी मेरी भी पाद करते हैं ! हे ताव ! क्या कमी उनके क्रोमल लौकिक अश्वोंको देखकर मेरे नेत्र शीतल होंगे ॥ ३ ॥

बचनु न आव नवन चरे मारी । बहइ-बाव ही गियट विहारी ॥

हेहि परम मिहलकुल सीता । बोलम करि मनु बचन विनीता ॥ ४ ॥

[दुँहते] बचन नहीं निकलता, नेत्रोंमें [विरहके अँसुओंका] जल भर आया । [बड़े दुःखसे वे बोलीं—] हा नाथ ! आपने मुझे बिल्कुल ही भुल दिया ! सीताजीको बिरहसे परम व्याकुल देखकर हनुमान्जी बोलक और विनीत बचन बोले— ॥ ४ ॥

मातु कुसुम प्रभु भुल्य समेत । तव दुख दुखी सुखी मिलेता ॥

जमि तबभी मागहु विषं ऊना । दुँह से मेसु राम कँ दूना ॥ ५ ॥

हे माता ! सुन्दर कृष्णके चाम प्रभु भाई कम्पनजीके रहित [शरीरसे] कुशल है, परन्तु आपके दुःखसे दुखी है । हे माता ! मनमें-मनमें न मानिये (मन छोटा करके दुःख न सीजिये) । श्रीरामचन्द्रजीके हृदयमें आपसे दूना प्रेम है ॥ ५ ॥

दो—रघुपति कर सदिनु अब सुनु जगनी धरि धीर ।

अस कहि कपि गदगद भयउ भरे दिलोचन नीर ॥ ६ ॥

हे माता ! अब धीरज धरकर श्रीधुनापत्नीका सन्देश सुनिये । ऐसा कहकर हनुमान्जी प्रेमसे गदगद हो गये । उनके नेत्रोंमें [प्रेमानुश्रवण] जल भर आया ॥ ६ ॥

चौ—कहेव राम विसेस कम सीता । जो कहूँ सकल मय विपरीता ॥

मम तव किसकय मनुहुँ कृतान् । कलमिखा सम विधि लसि भादू ॥ १ ॥

[हनुमान्जी बोले—] श्रीरामचन्द्रजीने कहा है कि हे सीते ! हमारे विवोगमें मेरे किये सभी पदार्थ प्रतिफल हो गये हैं । क्योंकि नये-नये कोयल पक्षे मखो अधिके समान, राशि काष्ठानिके समान, अन्धमा सूँके समान, ॥ १ ॥

कुशल्य विपिन ऊँत कम सरिस । बारिद उपत ठेक मनु बरिसा ॥

॥ ने दिव रई कस्त सेइ बीरा । उदय स्वस सम निमिष समीरा ॥ २ ॥

और कमलोंके कम भावोंके कल्ले समान हो गये हैं । शेष मानो लौकिका हुआ ठेक बरसते हैं । जो दिव करनेवाले वे वे ही कम पीड़ा देते खो हैं । त्रिविध (शीतल, मन्द, सुगन्ध) वायु सौँके सामने समान (ज्वरपीसी और चरम) हो गयी है ॥ २ ॥

कहेहुँ रँ कहुँ कुल घटि होई । काहि कहौ यह अन्ध न कोई ॥

तव प्रेम मम मन बर तोरा । जानत प्रिया पणु मनु मोरा ॥ ३ ॥

मनका दुःख कह दलनेसे भी कुछ घट जाता है । पर कहूँ किससे ! यह दुःख कोई जानता नहीं । हे प्रिये ! मेरे और तेरे प्रेमका तल (रहस्य) एक मेरा मन ही जानता है ॥ ३ ॥

सो मनु सदा रहत छोदि पाही । जनु भीति मनु ह्मनेहि माही ॥

प्रभु सदिनु सुख्य कैदेही । मगन प्रेम तव सुखि बाँहि तेही ॥ ४ ॥

और वह मन सदा तेरे ही पास रहता है । वल, मेरे प्रेमका सार हानेमें ही

समस्त से। प्रभुका रुदेव सुनते ही जानकीजी प्रेम्मे मग्न हो गयी। उन्हें शरीरकी सुष न रही ॥ ४ ॥

कह कपि हृदयें धीर वह साज। सुनि राम लेक सुखदाता ॥

हर आनहु रघुपति प्रसुताई। सुनि मम वचन तबहु कहराई ॥ ५ ॥

हनुमान्जीने कहा—हे माता ! हृदयमे धैर्य धारण करो और सेवकोंको सुख देनेवाले श्रीरामजीका स्मरण करो। श्रीरघुनाथजीकी प्रसुताको हृदयमें खमो और मेरे वचन सुनकर कायरता छोड़ दो ॥ ५ ॥

श्लो०—निःसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसासु।

जगनी हृदयें धीर वह जरे निःसाचर जासु ॥ १५ ॥

राक्षसोंके समूह पतंगोंके समान और श्रीरघुनाथजीके बाण अग्निके समान हैं। हे माता ! हृदयमे धैर्य धारण करो और राक्षसोंको जल ही समझो ॥ १५ ॥

श्लो०—तौ रघुधीर होति सुधि पाई। कल्ले बहि बिबिध रघुपाई ॥

राम बान रधि उरें जानकी। सम बल्य कहैं जातुबाण की ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने यदि सबर पानी होती तो वे विकल्प न करते। हे जानकीजी ! रामबाणकी तीक्ष्ण होमेर राक्षसोंकी केनाकुषी अन्धकार कहाँ रह सकता है ॥ १ ॥

अबहि सासु मैं कहैं कहराई। प्रसु भाषसु नहिं सम होहाराई ॥

कल्लुह दिवस जानकी घर पीर। कपिन्ह सहित अहहि रघुधीर ॥ ५ ॥

हे माता ! मैं आपको अभी कहोचि लिया जऊँ। पर श्रीरामचन्द्रजीकी शपथ है, मुझे प्रसु (उन) की आज्ञा नहीं है। [अतः] हे माता ! कुछ दिन और धीरव चरो। श्रीरामचन्द्रजी वानरोमरहित कहाँ आवेगे, ॥ २ ॥

निःसिचर भारि सोहि कै जैहहि। तिहुं पुर नरदापि बहु गैहहि ॥

है सुत कपि सख तुमहि समान। जातुबाण कपि भर पळवाना ॥ १ ॥

और राक्षसोंको मारकर आपकी से आवेंगे। नारद आदि [ऋषि-मुनि] जीनो सेकोमे उनका यश गावेंगे। [सीताजीने कहा—] हे पुत्र ! सब पानर तुम्हारे ही समान (नन्दे-नन्दे-से) होने, राजस तो बड़े बलवान् होता है ॥ १ ॥

मोरें हृदय वसम संवेदा। सुनि कपि प्रपद कोटि मिल वैदा ॥

कनक भूषणकर सरीरा। समर अयंकर अतिविक पीरा ॥ ४ ॥

अतः मेरे हृदयमे बड़ा भारी रुदेव होता है [किं तुम-सेसे बंदर राक्षसोंको कैसे जीतेंगे]। यह सुनकर हनुमान्जीने अपना शरीर प्रकट किया। सोनेके परंत (तुम्हारे) के आकारका (अत्यन्त विशाल) शरीर था, जो मुझसे शत्रुओंके हृदयमे भय उत्पन्न करनेवाला, अत्यन्त बलवान् और नीर था ॥ ४ ॥

सीता मन मरोक्ष लय अकल। सुनि कहु रज पवकसुत कलक ॥ ५ ॥

तब (उत्ते देखकर) सीताजीके मनमे विचार हुआ। हनुमान्जीने फिर छोटा रूप धारण कर लिया ॥ ५ ॥

श्लो०—सुनु माता साक्षात्सुग नहिं बल बुद्धि विसाल।

प्रसु प्रताप तैं गहदहि खाह परज कहु व्याल ॥ १६ ॥

हे माता ! सुनो, कानोंमें बहुत बल-बुद्धि नहीं होती। परन्तु प्रसुके प्रतापसे बहुत छोटा सर्प भी गहकने ला सकता है (अत्यन्त निर्बल भी गहान् बलवान्को मार सकता है) ॥ १६ ॥

चौ०—मन संतोष सुखा कवि बानी । भगति प्रताप तेज बल सानी ॥

आसिष दीन्ह रामप्रिय जान । होहु सत बल सील निधाना ॥ १ ॥

भक्ति, प्रताप, तेज और बलसे लगी हुई हनुमानजीकी बाणी सुनकर सीताजीके मनमें संतोष हुआ । उन्होंने श्रीरामजीके प्रिय जानकर हनुमानजीको आशीर्वाद दिया कि हे सात ! तुम बल और सीलके निधान होओ ॥ १ ॥

अजर अमर गुनविधि सुत होहु । कहुँ कहुँ खनुनयक होहु ॥

करहुँ कृपा, प्रभु मत्त सुवि धन । निरै प्रेम भग्न हनुमान् ॥ २ ॥

हे पुत्र ! तুম अजर (बुढ़ापेसे रहित), अमर और गुणोंके खनाने होओ । श्रीरघुनाथजी तूमपर बहुत कृपा करें ! प्रभु कृपा करें ऐसा जानेंसे सुनते ही हनुमानजी पूर्ण प्रेमें मान हो गये ॥ २ ॥

बार बार नमस्सि पद सीता । बोझ बचन ओरि कर कीसा ॥

अथ कुतकृत्य भयर्थें मैं भाता । आसिष छत्र अमोघ विद्यादाता ॥ ३ ॥

हनुमानजीने बार-बार सीताजीके चरणोंमें सिर नवाया और फिर हाथ जोड़कर कहा—हे माता ! अब मैं कृतार्थ हो गया । आपका आशीर्वाद अमोघ (अचूक) है, वात प्रविष्ट है ॥ ३ ॥

सुनु महु मोहि भक्तिसव सूखा । कायि देखि सुंदर फल रुखा ॥

सुनु छुट करहि विपिन रत्नकारी । परम सुमठ राजनीचर भारी ॥ ४ ॥

हे माता ! सुनो, सुन्दर फलवाले इहाँको देखकर मुझे बड़ी ही भूल लग आयी है । [सीताजीने कहा—] हे बेटा ! सुनो, यहाँ भारी सोडा राखत इस धनकी रत्नवाली करते हैं ॥ ४ ॥

सिंह कर भय माता ओहि गहीं । लौह सह सुक मानु मन माहीं ॥ ५ ॥

[हनुमानजीने कहा—] हे माता ! यदि आप मनमें सुख मर्ते (प्रसन्न होकर भगवा हैं) तो मुझे ठनका मन तो बिस्कुल नहीं है ॥ ५ ॥

दो०—देखि बुद्धि बल विपुल कपि कहेउ जानकी जाहु ।

रघुपति घरन इदर्थें धरि जत मधुर फल खाहु ॥ १७ ॥

हनुमानजीकी बुद्धि और समर्थ विपुल देखकर जानकीजीने कहा—जानो ! हे सात ! श्रीरघुनाथजीके चरणोंको इदर्थें धारण करके सीते फल खाओ ॥ १७ ॥

चौ०—बहेउ नाह सिद्ध सिद्ध भग्न । फल आपसि सह खेदै काया ॥

ये तहाँ बहू मर्त रहनारि । कहुँ मरेसि कहुँ जाइ पुकारे ॥ १ ॥

हे सीताजीकी सिर नवाकर चले और नाममें पुन गये । फल खाये और इहाँको छोड़ने लगे । वहाँ बहुत-से सोडा राखवाले थे । उनमेंसे कुछसे मार डाल और कुछने जानकर रावणसे पुकार की—॥ १ ॥

नाथ एक ब्रह्म कवि नारी । तेहि अंशक कथिअ उमारी ॥

आपसि फल सह बिटप उपारे । एकक मर्दि मर्दि मर्दि करे ॥ २ ॥

[और कहा—] हे नाथ ! एक ब्रह्म मारी बंदर ब्रह्म है । उसने अशोकवाटिका उखाड़ डाली । फल खाये, फलोंको उखाड़ डाल और रत्नवालोंको मरल-मरलकर जमीनपर डाल दिया ॥ २ ॥

भुलि सबन पछु मट पाव । सिद्धि देखि कहेउ हनुमान् ॥

अथ राजनीचर कपि संवारे । कहुँ सुकस्त कहुँ कथमारे ॥ ३ ॥

वह सुनकर रावणने बहुत-से योद्धा भेजे । उन्हे देखकर हनुमान्जीने गर्जना की ।
हनुमान्जीने सब राक्षसोंको मार डाला । कुछ बचे बचकर वे चिन्ताते हुए गये ॥ ३ ॥

पुनि पटम्ब तेहि बचकुमार । चर सँग छै मुनट अपारा ॥

आवत देखि बिटथ गहि तनौ । चाहि निपाति महापुनि गर्जौ ॥ ४ ॥

फिर रावणने अक्षयकुमारको भेजा । वह मरुत्स्य जेह योद्धाओंको साथ लेकर
चला । उसे भाते देखकर हनुमान्जीने एक वृक्ष [हाथी] लेकर ललकारा और उसे
मारकर महापुनि (बड़े जोर) से गर्जना की ॥ ४ ॥

दो०—कछु मारेसि कछु मरैसि कछु मिलएसि भरि बूरि ।

कछु पुनि अह पुकारे प्रभु मर्कट कठ भूरि ॥ १८ ॥

उन्होंने सेनामेंसे कुछको मार डाला और कुछको मरवा दिया और कुछको पकड़-
कर धूलमें मिला दिया । उन्होंने फिर आकर पुकारा कि हे प्रभु ! कर बहुत
ही बख्शाम् है ॥ १८ ॥

बौ०—सुनि सुत जब छंकेत रिसाण । परपुनि मेघनाद कलनाक ॥

मारसि जहि सुत बौंघेसु ताही । देखि बरिहि कहें कर नाही ॥ १९ ॥

पुत्रका जब सुनकर रावण मोहित हो उठा और उसने [अपने लोटे पुत्र]
यक्षनाभ मेघनादको भेजा । [उसके कहा कि—] हे पुत्र ! मारना नही, उसे शोक
लाना । उस बदरको देखा जब कि कहीं है ॥ १९ ॥

चला इन्द्रविज अतुलित मोघा । वहु निबन सुनि उपजा मोघा ॥

कपि देखा दण्ड अह जगा । कटकाइ गर्जौ बल पावा ॥ २० ॥

हनुको जीतनेवाला अतुलनीय योद्धा मेघनाद चला । ध्वंश नारा माना सुन
उसे मोघ हो गया । हनुमान्जीने देखा कि भयभीत भयानक योद्धा गया है । तब वे
कटकदाकर गर्जें और दौड़े ॥ २० ॥

जति बिसाल लव बृक अपारा । बिरव कीन्ह छंकेस कुमार ॥

रौ महाभट लखे लंग । गहि गहि करि मरै सिन संग ॥ २१ ॥

उन्होंने एक बहुत बड़ा वृक्ष उखाड़ किया और [उसके प्रहारसे] छंकेसर
रावणके पुत्र मेघनादको बिना रक्ता कर दिया (रक्ता तोड़कर उसे नीचे पटक
दिया) । उसके साथ जो बड़े-बड़े योद्धा थे, उनमेंसे पकड़-पकड़कर हनुमान्जी अपने
शरीरसे मलने लगे ॥ २१ ॥

तिन्हदि निपाति ताहि सन कामा । भिरे लपक मानहुँ बजरस ॥

मुल्लि मारि कहा तह जहै । लहि एक कन सुख भाई ॥ २२ ॥

उन सबको मारकर फिर मेघनादसे लड़ने लगे । [कहते हुए वे ऐसे माछन होवें
वे] मानो वो गलराज (जेह हाथी) मिया गये हो । हनुमान्जी उसे एक घुँगा मारकर
धूँधल जा पड़े । उसको छगमरके जिने मूर्खों का गवी ॥ २२ ॥

उठि बहोरि कीन्हिसि कहु मरवा । जीति न काइ प्रसन्न बन ॥ २३ ॥

फिर उठकर उसने बहुत मारा रवी । परन्तु पकड़के पुन उसके जीते नहीं जाते ॥ २३ ॥

दो०—ब्रह्म अह तेहि सँका कपि भव कीन्ह विचार ।

जौ न ब्रह्मसर मानहुँ महिमा मिटइ अपार ॥ २४ ॥

अन्तमें उसने ब्रह्माक्षर कन्वान (प्रयोग) किया । वह हनुमान्जीने मनमें विचार
किया कि यदि ब्रह्माक्षरको नहीं मानता हूँ तो उसकी जगह महिमा मिट जायगी ॥ २४ ॥

चो—ब्रह्मबाध कपि कहँ तेहिं मारा । परसिहुँ बार कंठहु संधारा ॥

तेहिं देखा कपि मुसलित मयक । नगप्रसन्न बँधेसि छै गयक ॥ १ ॥

उसने हनुमानजीको ब्रह्मबाध मारा, [विष्णुके ज्योते ही वे वृक्षते नीचे गिर पड़े] परन्तु गिरते समय भी उन्होंने बहुत-सी ठेका मार डाली । जब उसने देखा कि हनुमानजी मुर्छित हो गये हैं, तब वह उनके नामपाठसे बौध्दर के गया ॥ १ ॥

जासु नाम जपि सुबहु मन्त्रांनी । भव बंधन काटीहि नर ग्यानी ॥

रासु दूत कि बंध सख अन्वा । प्रभु कसरत छनि कपिहि बँधावा ॥ २ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे मन्त्राणी ! सुनो, बिनका नाम जपकर शानी (विघ्नेत्री) मनुष्य सखार (तन्म-मरण) के बन्धनको काट डालते हैं, उनका दूत कहीं बन्धनमें आ सकता है ? किन्तु प्रभुके कार्विके लिये हनुमानजीने स्वयं अपनेको बँधा लिया ॥ २ ॥

कपि बंधन मुनि विसिधर पाए । कौतुक लागि समीं सब आए ॥

वसमुष्ट सभा होसि कपि जाई । कहि न जाइ कसु भसि प्रभुताई ॥ ३ ॥

बंदरका बँधा जाना सुनकर रामस दौड़े और कौतुकने लिये (तमाशा देखनेके लिये) सब सभामें आये । हनुमानजीने जाकर रावणकी स्त्रिया देखी । उसकी अत्यन्त प्रशंसा (ऐश्वर्य) कुछ करी नही जाती ॥ ३ ॥

बार कोरें पुर विसिध विकीता । सृष्टि विलोकन सकल समीता ॥

देसि प्रसाद न कपि मन संका । किमि अहिगन महुँ मरुह कर्तका ॥ ४ ॥

देवता और दिग्गज हाथ जोड़े यही नमस्कारके साथ भयभीत हुए तब रावणकी भी तक रोहें (उसका कल देख रोहें) । उसका ऐसा प्रसाद देखकर भी हनुमानजीके मनमें भय भी बर नहीं हुआ । वे ऐसे निःशङ्क 'खदे' रहे जैसे सरोंके समूहमें गरुड़ निःशङ्क (निर्भय) रहते हैं ॥ ४ ॥

दो—कपिहि विलोकि दसानन विहसा कहि दुर्वाध ।

सुत वच सुपति कीमिह पुनि उपज्ज हृदयें बिपाव ॥ २० ॥

हनुमानजीको देखकर रावण दुर्बलम कहता हुआ खूब रोता । फिर पुनर्वचका कारण किया तो उसके हृदयमें विषाद उत्पन्न हो गया ॥ २० ॥

चो—वह लक्ष्म कवन तैं कीसा । केहि के कह बालेहि वन कीसा ॥

की थी अवनमुनेहि नाहि मोही । देखैं गति अर्क सठ तोही ॥ १ ॥

लक्ष्मण रावणने कहा—रे शत्रु ! तू कौन-है ? किसके बलपर तूने वनको उखाड़कर नष्ट कर डाला ? क्या तूने कभी भुले (भेष नाम और वध) कानोंसे नहीं सुना ? रे शत्रु ! मैं तुझे अत्यन्त निःशङ्क देख रहा हूँ ॥ १ ॥

मारे किसिधर केहि अपराधा । कसु सठ जेहि न प्रभु कह बाधा ॥ २ ॥

सुत रावण म्हाष्ट निमिष । पाइ जासु वल विरक्ति माया ॥ २ ॥

तूने किस अपराधसे रावणको मारा ? रे मूर्ख ! क्या, क्या तुझे प्राण जानेका मय नहीं है ? [हनुमानजीने कहा—] हे रावण ! मुन, बिनका, वल, पाकर मारा समूर्ध्व ज्ञात्योंके समूहोंकी रक्षण करती है ॥ २ ॥

जार्ने वल गिराँच हवि ईसा । फलत सुखत दुखत दससीसा ॥

जा वल सीस घसत सहसाधन । अन्धकोस अन्धेस - गिरि कानन ॥ ३ ॥

जिनके बलसे हे देवसीध ! जहा, विष्णु, ब्रह्मा [क्रमशः] सृष्टि, सुवन, पावन

और संहार करते है; जिनके कण्डो सहस्र मुख (कण्ठो) वाले रोषनी पर्यंत और बनसहित समस्त ब्रह्माण्डको सिरपर धारण करते है; ॥ ३ ॥

धरत जो विविध देह सुसज्जत । तुम्हसे सज्ज सहस्रसिंहासनु धात ॥

हर कोटि कठिन केहि मन्त्र । तेहि ससेव नृप दल मद गन्त ॥ ४ ॥

जो देवताओकी रक्षाके लिये नाना प्रभारकी देह धारण करते है और जो तुम्हारे-
जैसे मूलोंको शिष्टा देनेवाले है; जिन्होंने शिवजीके कठोर अनुषङ्गको तोड़ डाल्य और उरीके
साथ राजाओके समूहका सर्व नृप कर दिया ॥ ४ ॥

हर वृषत त्रिशिरा कन्द वाली । कचे सज्ज व्युक्ति बलसम्पदी ॥ ५ ॥

जिनहोने सर, दूषण, त्रिशिरा और बालिको मर डाल्य, जो सबके सब
अतुलनीय दलबाल थे; ॥ ५ ॥

दो०—आके बल लखलेख तैं जितेहु चरचर शारि ।

तासु दूत मैं आ करि हरि आनेहु प्रिय नारि ॥ २१ ॥

जिनके लेखमात्र बलसे तुमने समस्त चरचर जगत्को जीत लिया और जिनकी
प्रिय पत्नीको तुम [जोरीसे] हर लये हो; मैं उन्दीक दूत हूँ ॥ २१ ॥

चौ०—आवर्त मैं सुम्हारे प्रभुताई । सहस्रबाहु सन परी कटाई ॥

समर बालि सन करि जनु पाया । सुवि कवि बचन विहरि सिद्धपाया ॥ १ ॥

मैं तुम्हारी प्रभुताको खूब जानता हूँ ! सहस्रबाहुसे तुम्हारी कटाई हुई थी और
बालिके मुक्त करने तुम्होने कब प्राप्त किया था ! अनुमानकी [मार्मिक] बचन सुनकर
रावणने हँसकर बात टाल दी ॥ १ ॥

आपसे बल प्रभु छापी चूसा । कवि सुभाष से खेरेतें कला ॥

सब के देह परज प्रिय स्वामी । मर्याद मोहि कुमारता रासी ॥ २ ॥

हे [राजसीके] स्वामी ! मुझे मूल लगी थी, [इसलिये] मैंने फल छाये
और वानर-सभाके कारण ब्रह्म तोड़े । हे [निष्ठाचरोके] मालिक ! देह सबको परम
प्रिय है । कुमार्गपर बहनेवाले (दुष्ट) राजस जग मुझे मारने लगे, ॥ २ ॥

जिन्ह मोहि मारा से मैं मारे । तेहि पर बोधितें कलैं तुम्हारे ॥

मोहि न कहु बोधि कहु छाया । कीन्ह बहते विष प्रभु कर काया ॥ ३ ॥

जब जिनहोने मुझे मारा, उनकी मैंने भी मारा । उसपर तुम्हारे पुत्रने मुझको
बोध दिया । [किन्तु] मुझे अपनी बोधि देनेकी कुछ भी छाया नहीं है । मैं तो अपने
प्रभुका कार्य किया चाहता हूँ ॥ ३ ॥

जिनती करतें जोरि कर राख्य । सुबहु सब तजि सोर सिखाव्य ॥

देखहु तुम्ह जिज कुलधि निवारी । सम तजि सबहु मगल सा हारी ॥ ४ ॥

हे रावण ! मैं हाथ छोड़कर तुमसे जिनती करता हूँ, तुम अविमान छोड़कर मेरी
सीख सुनो । तुम अपने पवित्र कुलध्वज निवार करके देखो और प्रयत्न छोड़कर भक्त-
महारी भगवान्को मनो ॥ ४ ॥

आके हर जति कल देखाई । जो सुर असुर बलकर साई ॥

तासो मरु कबहुं बहि कीजै । मोरे कहे जानकी सीजै ॥ ५ ॥

जो देवता, राक्षस और समस्त जगत्को खा जाता है, वह काल भी जिनके
हरसे अत्यन्त डरता है, उससे क्याहि कैर न करो और मेरे कहनेसे जानकीजीको
दे दो ॥ ५ ॥

दो०—प्रानतपाठ रघुनायक करना सिंधु खपरि ।

नई सरन प्रभु राखिहैं तब अपराध विस्तारि ॥ २२ ॥

हरके शत्रु श्रीरघुनायकने शरणागतोंके रक्षक और दयाके समुद्र हैं । शरण जानेपर प्रभु दुन्दुभ्य अपराध क्षुब्धकर उन्हें अपनी क्षरणमें रख लेंगे ॥ २२ ॥

चौ०—राम करन पंकज तर बरह । छंका जचल राख दुम्ह करह ॥

रिधि पुलति ननु विमल मयंका । तेहि समितहुँ अनि होहु कलंक ॥ १ ॥

हम श्रीरामजीके चरनमूर्च्छोंके हृदयमें धारण करो और छंकाका अवल राख्य करो । श्रद्धाविपुलस्वजीका कल निर्मल चन्द्रमाके समान है । उस चन्द्रमामें तुम कलंक न बनो ॥ १ ॥

राम राम बितु गिरा न सोहा । देखु विचारि त्यागि मद मोहा ॥

बल्लभ हीन नाहिँ सोह सुपरी । सब भूपन भूषित वर नारी ॥ २ ॥

रामनामके बिना काली धोमा नहीं पती; नर-नोहको छोड़, विचारकर देखो । हे देवताओंके शत्रु ! तब गहनोते सजी हुई दुन्दरी की भी कण्ठोंके बिना (मीमांसा) धोमा नहीं पाती ॥ २ ॥

राम वितुल संपति प्रसुताई । माह रही पाई बितु पाई ॥

सजल मूढ निम्न सरितन्ह माहीं । बरषि गप्यै पुनि सबहिँ सुझाई ॥ ३ ॥

रामविपुल पुत्रकी सम्पत्ति और प्रसुता रही हुई भी कली जाती है और उसका पाना न पानेके समान है । जिन नदियोंके सूखमें कोई लज्जित नहीं है (अर्थात् निम्न) केवल दरशातका ही आकर है) वे वर्षा बीच जानेपर फिर तरंग ही सूख जाती हैं ॥ ३ ॥

सुनु इसकं कह्यै एक रोपी । बितुल राम चाहा नाहिँ कोपी ॥

संकर सखल भिन्नु मन तोही । सकाई न राखि राम कर प्रोही ॥ ४ ॥

हे रावण ! तुझे मैं प्रतीक्षा करके कहता हूँ कि रामविपुलकी रक्षा करते-करते कोई भी नहीं है । हजारों संकर, भिन्नु और ब्रह्मा भी श्रीरामजीके साथ प्रोह करनेवाले तुमको नहीं बचा सकते ॥ ४ ॥

दो०—मोहमूढ वह सुख प्रद त्यागहुँ तम अभिमान ।

भगहुँ राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान् ॥ २३ ॥

मोह ही निरुद्धा मूढ है ऐसे (अज्ञानबलित), बहुत पीड़ा देनेवाले, तमहम अभिमानका त्याग कर दो और रघुनायकके लगनी, कृपाके समुद्र भयवान् श्रीरामचन्द्रजीका भजन करो ॥ २३ ॥

चौ०—नदपि कहाँ कपि नहिँ क्षित जाती । समस्ति तिलक विरसि बर सागी ॥

जोला बिहसि महुँ अभिमानी । मिला हसहिँ कपि पुर बर न्यानी ॥ १ ॥

यद्यपि हनुमान्जीने मछि, जल, वैराग्य और नीतिसे सजी हुई बहुत ही शक्ति की धानी की; तो भी वह नदाल् अभिमानी रावण बहुत हैकर (जंगले) बोला कि हमें यह बंदर बड़ा जानी कुछ मिला ! ॥ १ ॥

सुखु निकट नहिँ खल तोही । लगेसि जकम तिलजब मोही ॥

उलटा होइहिँ वह हनुमान् । मखिमम तोर प्रवद हैं जाना ॥ २ ॥

हे दुष्ट ! तेरी सुख निकट आ गयी है । जकम ! तुझे सिखा देने वाला है । हनुमान् जीने कहा—इससे उलटा ही होगा (अर्थात् सुख तेरी निकट आयी है, मेरी नहीं) । यह वेद मखिमम (बुद्धिबिषय) है, मैंने प्रत्यक्ष जान लिया है ॥ २ ॥

सुनि करि नयनबहुत निमिषानक । बेनी न हस्तु सुत कर जाना ॥

सुगत निमिषकर मारन धातु । सकिन्दसहित विभीषणुभात ॥ ३ ॥

हनुमान्जीके वचन सुनकर वह बहुत ही कुपित हो गया [और बोला—] ओ ! इस मूर्खका प्राण शीघ्र ही क्यों नहीं हर देते ! सुनते ही राक्षस उन्हें मारने बैठे । उसी वरम मन्त्रियोंके साथ विभीषणजी वहाँ आ पहुँचे ॥ ३ ॥

नाह सीस करि किय बहूछ । नीति विरोध न आरिज तूत ॥

आन बंद कस्तु करिब बोसई । सखी कष्ट मंत्र भल भाई ॥ ४ ॥

उन्होंने सिर नवाकर और बहुत क्लिप्त करके राक्षसे कहा कि दूसको मारना नहीं चाहिये, वह नीतिके विरुद्ध है । देखोसाई ! कोई दुष्ट दण्ड दिया जाय । अपने कहा—भाई ! नर कष्ट उद्यम है ॥ ४ ॥

सुगत विहसि बोस्य स्तब्धकर । जंग जंग करि दख्य बंदर ॥ ५ ॥

यह सुनते ही राक्षस हँसकर बोला—जन्म तो बंदरकी जंग-मंत्र करके भेज (लौटा) दिया जाय ॥ ५ ॥

रो०—कपि के ममका पूँछ पर सचहि कहाई समुद्राह ।

तेल बेरि पद बाँधि पुनि जावक देह लगाए ॥ ५४ ॥

मैं उसकी समझाकर कहता हूँ कि बंदरकी ममका पूँछपर होती है । अतः तेलमें भरका हुबोकर उसे इसकी पूँछमें बाँधकर फिर आग लगा दो ॥ ५४ ॥

पौ०—पूँछहीन बाकर धई कहाहि । सब सट मिल बाकहि काल जाइहि ॥

किन्तु कैकीहिहि कस्तु बहाई । देखई मैं तिम्र कै प्रमुखाई ॥ १ ॥

जब किना पूँछका वह बंदर ज्यों (अपने स्वामीके पाद) चबका, तब वह मूर्ख अपने मात्तिको साथ के आगेगा । मिनकी इसने बहुत बहाई की है, मैं क्या उनकी प्रमुखा (धामर्ष) को देखूँ ! ॥ १ ॥

वचन सुनत कपि मन मुसुक्कन । सब कहाय सार मैं कवन ॥

पातुपात सुनि राजन कवक । लगे रई सुह सोह रचना ॥ २ ॥

यह वचन सुनते ही हनुमान्जी मनमें मुसकाने [और मन-ही-मन बोले कि] मैं जान गया, तदस्वामीजी [ऐसे ऐसी बुद्धि देनेमें] कहावक बुराई हैं । राक्षसके वचन सुनकर मूर्ख राक्षस वही (पूँछमें आग लगानेकी) तैयारी करने लगे ॥ २ ॥

रहा न मगर कवन पल लेख । कभी पूँछ सीन्ध करि सेख ॥

कौटुक कई थाए पुरकसी । मरहि कल करहि बहू हौछे ॥ ३ ॥

[पूँछके छेदनेमें इतना कष्ट और पी-सेल लगा कि] जयमें कम्हा, वी और लेलनहीं रह गया । हनुमान्जीने ऐसा सेल किना कि पूँछ बहू यही (लंबी हो गयी) । मगरवासी लोग समाधा देखने लगे । वे हनुमान्जीको पैरसे टोककर खरते हैं और उनकी बहुत हँसी करते हैं ॥ ३ ॥

बाकहि छेद देहि सब तारी । कल केरि पुनि पूँछ प्रकसी ॥

पावक जस्त देखि हनुमंत । मन्त्र पल जगुस्थ दुरंग ॥ ४ ॥

टोकवन्ते हैं, सब लोग तस्किनों पीछते हैं । हनुमान्जीको मन्त्रमें क्लिप्तकर फिर पूँछों आग लगा दी । अस्त्रिको नलते हुए देखकर हनुमान्जीदुरंग ही बहुत छेदते खरते हो गये ॥ ४ ॥

निलुकि ज्येष्ठ कपि कवक जटारी । धई समीत विराकर जारें ॥ ५ ॥

दण्डनसे निकलकर वे सोनेकी अटारिवोंपर जा खड़े । उनकी देखकर राक्षसोंकी
स्त्रियों भयभीत हो गयीं ॥ ५ ॥

दो०—हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उन्नास ।

अट्टहास करि गर्वा अपि वढ़ि लग्न अकास ॥ २५ ॥

उस समय भगवान्की प्रेरणासे उन्नासचले फन चलने लगे । हनुमान्की अट्टहास
करके गर्व और बढ़कर आकाशसे जा लगे ॥ २५ ॥

बौ०—देह विसाख परम हकूमई । मंदिर सँ मंदिर चढ़ चाई ॥

जखु नगर सा लोग निहक्य । छपट छपट कहु कोटि कराला ॥ १ ॥

देह वही विसाख, परन्तु बहुत ही हल्की (फुर्तीली) है । वे दौड़कर एक महलसे
दूरी महलपर छट जाते हैं । नगर लूट रहा है, लोग बेहوش हो गये हैं । आगकी करोड़ों
भयङ्कर लपटें छपट रही हैं ॥ १ ॥

सात मासु हा सुखि जुलस । एहि अवसर को हमहि उल्लास ॥

हम जो कहा यह कवि बहि होई । बानर कम बरें सुर कोई ॥ २ ॥

हाय बप्पा ! हाय मैया ! इस अवसरपर हमें कौन बचावेगा ! [चारों ओर] यही
पुकार सुनायी पड़ रही है । हमने तो पहले ही कहा था कि वह बानर नहीं है, बानरका
रुम बरे कोई देवता है ! ॥ २ ॥

सासु जगन्मा कर फलु पैसा । जखु नगर अकास कर जैसा ॥

बारा मास निमिष एक माहीं । एक निमीषण कर गूढ माहीं ॥ ३ ॥

सासुके अमानका यह फल है कि नगर अनायके नगरकी तरह लूट रहा है । हनुमान्
जीने एकही क्षणमें सारा नगर जग्न जाका । एक निमीषण पर नहीं गलाया ॥ ३ ॥

हा कर धुव भग्न कैहिं गिरिजा । बरा म स्त्री तेहि बरस गिरिजा ॥

उलटि पलटि झंका सब जाते । कुरि का पुनि सिद्ध मंगरी ॥ ४ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे पार्वती ! जिन्होंने अग्निको बनाया, हनुमान्जी
उन्हींके वृत्त हैं । इसी कारण वे अग्निते नहीं जले । हनुमान्जीने उलट-पलटकर (एक
ओरसे दूसरी ओरलाफ) सारी झंका जग्न दी । फिर वे समुद्रमें कूद पड़े ॥ ४ ॥

दो०—पूँछ हुसल खोइ कम बरि छसु रूप बहोरि ।

जनकसुता कँ आगेँ ठाढ़ मयल कर जोरि ॥ २६ ॥

पूँछ हुसलका थकावट दूर करके और फिर लौटा-या कम धारण कर हनुमान्जी
भीजानकीकी सामने हाथ जोड़कर जा खड़े हुए ॥ २६ ॥

बौ०—माछ मोहि दीये कहु खेन्हा । जैसँ खुनाक मोहि दीन्हा ॥

पूजामणि उबारि, तब धकल । हरष समेत पवचसुव लपक ॥ १ ॥

[हनुमान्जीने कहा—] हे माछा ! मुझे कोई चिड़ (पहचान) दीजिये, जैसे
भीखुनाजीने मुझे दिया था । तब लीलाजीने चूड़ामणि उबारकर दी । हनुमान्जीने
उसको हर्षपूर्वक ले लिया ॥ १ ॥

करोहु तात फल जोर प्रकजा । सब प्रकार प्रभु प्रत्यक्षमा ॥

दीन, ब्याक निरिहु संकरी । हस्तु नाथ मर्म संकट भारी ॥ २ ॥

[अन्कजीजीने कहा—] हे तात ! मेरा प्रणाम निवेदन-करना और इस प्रकार
कहना—हे प्रभु ! यद्यपि नाथ सब प्रकारसे पूर्वकम है (शास्त्रों किसी प्रकारकी कामना
नहीं है), तथापि दीनों (दुस्त्रियों) पर दया करना आफ्मा निरुद्ध है [और मैं दीन

हूँ] अतः उच विरहको बाद बरके हे भाग । मेरे मारी लंछटको दूर कीजिये ॥ २ ॥

रात सकसुत कया सुनपहु । धान प्रवत्त प्रभुहि समुझाएहु ॥

भास विवस महु नख न बचा । तौ पुनि मोहि विगत महि पावा ॥ ३ ॥

हे रात ! इन्द्रपुत्र जबतकी कया (पटना) सुनाता और प्रभुको उनके वाणका प्रताप समझाना (सरण कराना) । यदि महीनेभरसे नायन आवे तो फिर मुझे जैती न पायेगे ॥ ३ ॥

कहु कपि केहि बिधि राखीं माना । तुम्हहु वस्त कहत अब जाना ॥

सोहि देखि सीतकि मइ छाती । पुनि मो कहु सोह विनु सो राखी ॥ ४ ॥

हे हनुमान् ! कहो मे किछ प्रश्न प्राप्त रखूँ । हे रात ! तुम भी अब जानेकी कह रहे हो । तुमको देखकर छाती ठवी हुई थी । फिर मुझे वही दिन और वही रात ! ॥ ४ ॥

दो०—जनकसुतहि समुझाव करि बहुत बिधि धीरछु दीन्ह ।

चरण कमल सिर नवह कपि यवतु राम पहि कीन्ह ॥ २७ ॥

हनुमान्जीने जानकीजीके समझाकर बहुत प्रश्नसे धीरव दिया और उनके चरणकमलोंसे सिर नवाकर श्रीरामजीके पाव गगन किया ॥ २७ ॥

चौ०—वत्स महापुनि गर्जैसि भारी । गर्भ क्यहिं पुनि भिक्षिभ राखी ॥

नाचि सिंधु पृथि पारहि आवा । सयद भिक्षिभिका कपिन्ह सुनावा ॥ १ ॥

बछसे समय उन्होंने महाबलिसे मारी गर्जन किया, जिसे सुनकर रामचोकी क्षियोके गर्म गिरने लगे । समुद्र लोंककर वे इस पार आवे और उन्होंने बानरोको किछकिया धन्य (हर्षभनि) सुनाया ॥ १ ॥

हरये सब किलेकि हनुमावा । भूतन वम्म कपिन्ह तब जाना ॥

सुख प्रसन्न तन ठेक निराका । कीन्हेसि समर्चा कर कया ॥ २ ॥

हनुमान्जीको देखकर सब हर्षित हो गये और तब बानरोने भयना तथा जन्म समझा । हनुमान्जीका मुख प्रसन्न है और शरीरमें ठेक निरावसान है, [जिससे उन्होंने समझ लिया कि] ये श्रीरामचन्द्रजीका कर्म कर आवे हैं ॥ २ ॥

मिले सकल अति भद सुखारी । ललकत सीव पाव बिनि पारी ॥

बछे हरणि हनुमान्क दसा । रूँकत कहत नवक हविदास ॥ ३ ॥

सब हनुमान्जीसे मिले और बहुत ही सुखी हुए । जैसे लक्ष्मी हुई मछलीको चक्र मिल गया हो । सब हर्षित होकर नये नये हविदास (हृषान्व) पूछते-कहते हुए श्रीरामचन्द्रजीके पाव चले ॥ ३ ॥

सब मधुयव भीतर सब बाप । कंगद संमत नख कर बाप ॥

रत्नचारे अब भजन लगे । मुष्टि प्रहार दस्त सब भागे ॥ ४ ॥

■ सब लोग मधुयवके भीतर आवे और लंबदक्षी सम्पत्तिसे अपने मधुर पत्र [या मधु और पत्र] काये । अब रत्नचाले नखने लगे, तब नखेकी मार मारते ही सब रत्नचाले भाग छूटे ॥ ४ ॥

दो०—आह पुकारे ते सब बन उबार झुपराज ।

सुनि सुग्रीव हरष कपि करि आप प्रभु काज ॥ २८ ॥

उन सनने आकर पुकारा कि सुवराज अबद फन उबार रहे हैं । अब सुनकर सुग्रीव हर्षित हुए कि बानर प्रमुखा कर्म कर आवे हैं ॥ २८ ॥

चौ०—जौ न होति सीता सुनि बाई । मधुयव के फल सकहि कि बाई ॥

पहि बिधि भव निवारक राज । जहं यद करि सहित सम्पदा ॥ १ ॥

यदि सीताजीकी खबर न प्यसी होती तो क्या वे मरुवनके फल खा सकते थे ?
प्रकार राम सुग्रीव मनमें निश्चार कर ही रहे थे कि समस्तसहित वानर जा गये ॥ १ ॥

आह सबनिह नाका पद सीस । मिळेउ सबनिह खति प्रेम कपीसा ॥

पूँछी कुसल कुसल पद देखी । राम कूर्मी आ कहउ मिलेपरी ॥ २ ॥

सबने आकर सुग्रीवके चरणोंमें सिर नवाया । कपिपुत्र सुग्रीव तभीसे बड़े प्रेमके साथ
मिले । उन्होंने कुशल पूछी, [तब वानरोंने उत्तर दिया—] आपके चरणोंके दर्शनसे सब
कुशल है । श्रीरामजीकी कृपासे विशेष कर्म हुआ (कर्ममें विशेष सफलता हुई है) ॥ २ ॥

नाथ कहउ कैन्हेट दनुमान । राखे सकल कपिन्ह के प्राण ॥

मुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिळेउ । कपिन्ह सहित रघुपति रहि पछेउ ॥ ३ ॥

हे नाथ ! हनुमान्ने ही सब कार्य किना और सब वानरोंके प्राण बचा लिये । यह
सुनकर सुग्रीवजी हनुमान्जीसे फिर मिले और सब वानरोंसमेत श्रीरघुनाथजीके पास गले ॥ ३ ॥

राम कपिन्ह सब आबल देखा । किहू कहउ मन हरष मिलेबा ॥

कठिक सिद्ध बडे द्वौ आई । परे सकल कपि चरनहि आई ॥ ४ ॥

श्रीरामजीने सब वानरोंको कर्म किये हुए आते देखा, तब उनके मनमें विशेष हर्ष
हुआ । दोनों आई तदिक सिद्ध बड़े थे । सब सन्न आकर उनके चरणोंपर गिर पड़े ॥ ४ ॥

दो०—प्रीति सहित सब मेरे रघुपति कल्या पुंज ।

पूँछी कुसल नाथ अब कुसल देखि पद कंज ॥ २९ ॥

दवासी राशि भीरघुनाथजी उनके प्रेमसहित गले लगाकर मिले और कुशल पूछी ।

[वानरोंने कहा—] हे नाथ ! आपके चरणकमलोंके दर्शन पानेसे अब कुशल है ॥ २९ ॥

चौ०—आमर्षत कह सुहु रघुनाथ । जग पर नाथ कहहु दुख दाया ॥

राहि सदा सुख कुसल निरंजन । सुर नर मुनि प्रसन्न छ करन ॥ १ ॥

बाम्बवान्ने कहा—हे रघुनाथजी ! मुनिने । हे नाथ ! जिसपर आप दया करते हैं,
उसे हवा कल्याण और निरन्तर कुशल है । देवता, मनुष्य और मुनि सभी उसपर प्रसन्न
रहते हैं ॥ १ ॥

सोइ भित्तई विगई शुच समर । तामु सुखहु कैलेक जनमर ॥

महु की कृपा कपल सहु कान् । बन्म हमार सुख न भान् ॥ २ ॥

वही दिवली है, वही चिन्नी है और वही गुणोंका समुद्र बन जाता है । उसीका
सुन्दर कण तीनों लोकोंमें प्रकाशित होता है । मनुष्यकी कृपासे सब कर्म हुआ । आज
हमारा जन्म-सफल हो गया ॥ २ ॥

नाथ पवनपुत्र कीन्हि जो कलसी । सहसहुँ मुख न चाह सो बरनी ॥

पवनतन्त्र के चरित सुहाव । आमर्षत रघुपतिहि मुनाप ॥ ३ ॥

हे नाथ ! पवनपुत्र हनुमान्ने जो कलसी की उसका हवा-सुल्लोचि भी वर्णन नहीं किया
जा सकता । तब बाम्बवान्ने हनुमान्जीके सुन्दर चरित्र (कर्म) श्रीरघुनाथजीको सुनाये । ३ ॥

सुनत कृपाविधि मन खति आप । पुनि हनुमान हरषि दिव्य लाप ॥

कहहु कत केहि जीति बाल्मी । रहति कति रख समान की ॥ ४ ॥

[वे चरित्र] सुननेपर कृपाविधि श्रीरामचन्द्रजीके मनको बहुत ही अच्छे लगे ।
उन्होंने दर्पित होकर हनुमान्जीकी फिर हृदयसे कृपा सिखा और कहा—हे तत ! कदो,
सीता किस प्रकार राखी और अपने प्राणोंकी रक्षा करी है ? ॥ ४ ॥

दो०—नाम पादरु दिक्ख निस्स ध्यान तुम्हार कपाट ।

लोचन निस्स पद् अञ्चित जहिं प्राच केहि बाट ॥ ३० ॥

[हनुमानजीने कहा—] आपका नाम रात-दिन पढ़ा देनेवाला है, आपका ध्यान ही निमाड़ है । नेत्रोंको अपने चरणोंमें लगाये रखी है, वही रात्रि क्या है; फिर प्राण जायें तो किस मार्गसे ? ॥ ३० ॥

चौ०—चलत मोहि चूषामरि दीन्ही । खुपति हृदयें काह सोइ छीन्ही ॥

नाथ शुण्ड लोचन मरि घारी । बचन कहे कहु बन्धकुमारी ॥ १ ॥

चलोये रामय उन्हेने मुखे चूषामरि [उत्तरकर] ही । श्रीरघुनाथजीने उठे लेकर हृदयसे लग्न लिया ! [हनुमानजीने फिर कहा—] हे नाथ ! दोनो नेत्रोंमें बल भरकर जानकीजीने मुझसे कुछ बचन कहे— ॥ १ ॥

अनुज समेत गेहु प्रभु परमा । दीन संतु प्रवधारति हरना ॥

नाथ कम बचन करन अनुयायी । जिहि अपराध मय हीं स्थानी ॥ २ ॥

छोटे भाईसमेत प्रभुके चरण पम्पना [और कहा कि] आप दीनकण्ठ हैं, शरणागतके दुःखोंको हरनेवाले हैं । और मैं मन, बचन और कर्मसे आपके चरणोंकी अनुगमिणी हूँ । फिर स्वामी (आप) ने मुझे छिन्न अपराधसे क्षमा दिया ! ॥ २ ॥

जयगुन दक्ष और मैं नाथ । विस्तृत भाव न कीन्ह वचना ॥

नाथ सो नयनमि को अपराधा । निरस्त भाव कहिं हकि बाधा ॥ ३ ॥

[हं] एक दोष मैं अपना [अवश्य] भगती हूँ कि आपका नियोग होते ही मेरे प्राण नहीं चले गये । किन्तु हे नाथ ! वह तो वेधोक्ष अपराध है जो प्रभुके निरालसे इतपूर्वक बाधा देते हैं ॥ ३ ॥

बिरह अगिनि तनु दूख समीरा । स्वप्न भरु छव नाहिं सरीरा ॥

मयम कहिं बहुत निज हित छापी । जै ब पाव देह बिरहारी ॥ ४ ॥

बिरह अग्नि है, शरीर रुई है और स्वप्न बचन है; इस प्रकार [भाग्य और पवनका संयोग होनेसे] वह शरीर क्षणमात्रमें खल सकता है । परन्तु मेरा अपने हितके लिये (प्रभुका स्वप्न देखकर सुखी होनेके लिये) का (ओह) बरखते है, जिससे बिरहकी आगले भी देह जलने नहीं पती ॥ ४ ॥

सीता कै अति निरति निरालम । बिबाहिं कहे चलि दीनदराज ॥ ५ ॥

सीताजीकी विपत्ति बहुत बड़ी है । हे दीनदराज ! वह बिना पती ही भगती है, (कहनेसे आपको बड़ा कष्ट होगा) ॥ ५ ॥

दो०—निमिष निमिष करुणानिधि जहिं कलप सम बीति ।

बेगि चलित प्रभु जनिम मुज करु कल दल जीति ॥ ३१ ॥

हे करुणानिधान । उनका एक-एक पल कलसे समान कीजता है ! अतः हे प्रभु ! दूरत चलिये और अपनी मुखावधि कलसे दुष्टोंके दलको जीतकर सीतानीको के आइये ॥ ३१ ॥

चौ०—सुधि सीता दुख प्रभु मुख अकल । मरि कहु कल राजिव नवरा ॥

बचन कार्य मन मग गति बाही । लफेहुं क्षिति विपति कि छाही ॥ १ ॥

सीताजीका दुःख सुनकर मुखके कम प्रभुके कमलनेत्रोंमें कल भर आया [और वे बोले—] मन, बचन और शरीरसे लिये मेरी ही गति (भेष ही आश्रय) है उठे क्या स्वप्नमें भी विपत्ति हो सकती है ! ॥ १ ॥

कर हनुमंत विपति प्रभु छोड़ै । सब सब सुमितन भजन न होई ॥
 केतिक बात प्रभु बनुधान की । विपुहि कीति अनिकी लागकी ॥ २ ॥
 हनुमान्कीने कहै—हे प्रभु ! निषिद्ध तो नहीं (तपी) है अब आपका भजन-
 सारण न हो । हे प्रभो ! रामकींकी बात ही किन्तु है ! आप खुज्जे नीचकर जानकी-
 बीजो मे आयेगे ॥ २ ॥

सुनु कथे लोहि समान उपकारी । बहि कोट सुन नर भुजितकुमारी ॥
 प्रति उपकार छरी का तोर । प्रभुसुख होइ न सकत मन मोरा ॥ ३ ॥
 [भगवन् करने लगे—] हे हनुमान् ! तुन जैसे समान मेरा उपकारी देखाः
 मनुष्य भयवा तुनि कोइ भी शरीरधारी नहीं है । मैं तेरा प्रत्युपकार (कहेमें उपकार)
 तो क्या करूँ, मेरा मन भी तेरे समाने नहीं हो सकता ॥ ३ ॥
 सुनु सुत लोहि करिष मैं नाहीं । देखैँ करि विचार मन माहीं ॥
 पुनि पुनि करिहि चित्त बुरजका । कोचन नीर पुष्क अति गाथा ॥ ४ ॥
 हे पुत्र ! तुन मैंने समझें [कृत] विचार करते देख लिया कि मैं तुझसे उम्मान
 नहीं हो सकता । देखतमेंकि एक प्रभु बार-बार हनुमान्कीने देस रहे हैं । नेकीमे
 प्रेमाभुओंका लल मर है और करि अत्यन्त पुत्तिय है ॥ ४ ॥

श्री—सुनि प्रभु वचन दिलोकित सुख गाठ हरिषि हनुमंत ।
 करन परेठ प्रेमाकुल जादि बाहि भगवंत ॥ ३२ ॥
 मरुके वचन सुनकर और उनके [प्रवच] सुन तथा [पुष्कित] जहाँकी
 देखकर हनुमान्की दलित हो गये । और प्रेमें निवृत्त होकर वे भगवन् । मेरी रक्षा
 करो । आ करो कहते हुए औत्तमकि करणमें गिर पड़े ॥ ३२ ॥
 श्री—बार बार प्रभु कहइ उठवा । प्रेम मनन वेहि उठव न भावा ॥
 प्रभु कर वचन करि मैं होला । सुमिति सो दसा मयन गौरिदा ॥ ३३ ॥
 प्रभु उनको बार-बार उठाना चाहते हैं । परन्तु प्रेमें डूबे हुए हनुमान्कीने
 करणों उठना सुझावा नहीं । प्रभुका कन्-कल हनुमान्कीने किरार है । उच किरिषा
 करण करके शिवजी प्रेममय हो गये ॥ ३३ ॥

सावधान मन करि पुनि संकर । काये कहन कया अति सुंदर ॥
 करि बगव प्रभु इहयै ललावा । कर गदि परम निकर बैरावा ॥ ३४ ॥
 फिर मनमें सावधान करके संकरजी अत्यन्त सुन्दर कया करते लो—हनुमान्की-
 ने उठाकर प्रभुने हरको जगया और रूप पकड़कर अत्यन्त निकट पैठा किया ॥ ३४ ॥
 सुनु कवि रासन पाकित संकर । केहि विधि बहैन दुर्घणति बंकर ॥
 प्रभु प्रसन्न वाचा हनुमान् । बोला वचन विगत अमिनका ॥ ३५ ॥
 हे हनुमान् ! नकलने लो, रामके द्वारा सुकृत संकर और उसके बड़े बौद्धे
 किलेको तुनने किह तज लक्ष्य ! हनुमान्कीने प्रभुको प्रसन्न वाचा और वे अमिमल-
 रहित वचन बोले—॥ ३५ ॥

सावधान मैं बनि मरुछाई । समता तें समता पर जाई ॥
 भावि विपु इष्टकल लला । निश्चिन्तन कवि विविध उभारा ॥ ३६ ॥
 बदरना वर । पड़ी बड़ा पुष्कर्म है कि वह एक जगते बुरी बगवन् चढा जावा
 है । मैंने को दण्ड कोकर लोकेन नर लक्ष्य और रामलक्ष्मणों बारकर अयोध
 कको उन्मद दला ॥ ३६ ॥

तो सब सब प्रथम खुरमाई । सब न कहूँ मोरि प्रभुताई ॥ ५ ॥
यह सब तो हे श्रीरामायणी ! आपहीका प्रथम है । हे नाथ ! इसने मेरी प्रभुता (बढ़ाई) कुछ भी नहीं है ॥ ५ ॥

दो०—ता कहूँ प्रभु कहूँ जगम सहिँ आ पर तुम्ह अनुकूल ।

तब प्रमाथै बड़वानलहिँ जारि सकाइ खलु तल ॥ ३१ ॥

हे प्रभु ! जिसपर आप प्रसन्न हो, उसके लिये कुछ भी अठिन नहीं है । आपके प्रभावसे रुई [जो स्वयं बहुत जल्दी जल जानेवाली वस्तु है] बड़वानलको निश्चय ही जला सकती है (अर्थात् अतम्मन भी सम्मन हो सकता है) ॥ ३१ ॥

चौ०—नाथ भवति भक्ति सुखदायनी । देहु कृपा करि अमयायनी ॥

सुनि प्रभु परम उत्तम करि माथी । वृषमस्तु तब कहैत भवानी ॥ १ ॥

हे नाथ ! मुझे अत्यन्त सुख देनेवाली अपनी निश्चय भक्ति कृपा करके दीजिये । हनुमान्जीकी अत्यन्त उत्तम वाली सुनकर, हे भवानी ! तब प्रभु श्रीरामकण्ठजीने 'एवमस्तु' (देखा ही हो) कहा ॥ १ ॥

कसा राम सुभाष केहिँ जाण । ताहिँ मज्जु तनि जाय न जाना ॥

यह संवाद जासु कर थावा । एतुपति बरन भवति छोड़ पावा ॥ २ ॥

हे राम ! जिसने श्रीरामजीका समाधि ज्ञान किया, उसे भजन छोड़कर दूसरी बात ही नहीं सुनायी । यह स्वामी-सेवकका संवाद जिसके हृदयमें जा गया, वही श्रीरामायणीके चरणोंकी भक्ति था गया ॥ २ ॥

सुनि प्रभु बचन कहहिँ कपिहुँदा । जय जय शब्द कृपाक सुकर्तवा ॥

तब एतुपति कपिपतिहिँ बोलावा । कहा कहीं कर कहूँ बनाव ॥ ३ ॥

प्रभुके बचन सुनकर जानराज कहने लगे—कृपाक आनन्दकन्द श्रीरामजीकी जय हो, जय हो, जय हो ! तब श्रीरामायणीने कपिराज सुग्रीवको बुलाया और कहा—

जय विरहुँ केहिँ काल अक्षि । तुरत कपिन्ह कहूँ आचसु हीबे ॥

कौतुक हैकि सुमन बहु बली । बज तें भवत बले सुर दरपी ॥ ४ ॥

अब विजय कि कारण किना जय ? जानरोखे तुरत आका हो । [भगवान्की] यह सीख (रावणवधकी तैयारी) देखकर बहुत-से झूठ बरवाकर गौर हरित होकर श्रेष्ठ भाकाशसे अपने-अपने लोकको चले ॥ ४ ॥

दो०—कपिपति बेगि चोलाय जाय जूयय जूय ।

गाना हरन अमुल कल कानर मासु बक्षय ॥ ३४ ॥

जानराज सुग्रीवने शीघ्र ही जानरोखे बुलाया, चैनपतिबेके समूह आ गये । जानर-भाइबेके हुँद अनेक रंगके हैं और उनमें बहुतसीय कल है ॥ ३४ ॥

चौ०—प्रभु बड़ पंकज नाथहिँ छीया । गर्वहिँ साहु सहायक कीसा ॥

देखी राम सकल करि सेवा । फिह कृपा करि राखिज पैना ॥ १ ॥

वे प्रभुके चरणकमलोंमें सिर नवाते हैं । मछन कमान् रीक और जानर गरज रहे हैं । श्रीरामजीने जानरोखी साथी सेवा देखी । तब काम्बोजेसे कृपापूर्वक उनकी ओर दृष्टि डाली ॥ १ ॥

राम कृपा कल पाइ कपिदा । जय बच्छुत मज्जु विरिदा ॥

हरपि कम तब कीन्ह पयान । सज्जन भय सुंदर सुम कान ॥ २ ॥

रामकृपाका सब पाकर ओठ वानर सबने पंखवाले बड़े पर्वत हो गये । तब श्रीरामजीने इर्षित होकर प्रस्थान (कूच) किया । अनेक सुन्दर और शुभ शकुन हुए ॥ २ ॥

जासु सकल संस्कार सब कीती । तासु पवान सगुन वह नीती ॥

प्रभु पवान जाना बैदेहीं । फरकि मय सब अनु कहे देहीं ॥ ३ ॥

दिनकी कीर्ति सब मनुजोंके पूर्ण है, उनके प्रस्थानके समस्त शकुन होना, यह नीति है, (लीलाकी मर्यादा है) । प्रभुका प्रस्थान जानकीजीने भी जान लिया । उनके साथ अष्ट पदक-पद्मककर मान्दों कहे देते थे [कि श्रीरामजी आ रहे हैं] ॥ ३ ॥

मोह मोह सगुन साबनिहि होई । अशुन सबद राजनिहि सोई ॥

बड़ा बड़ा को बरसै पारा । गर्वहि बाहर भासु अपारा ॥ ४ ॥

जानकीजीको सो-सो शकुन होते थे, चढ़ी-चढ़ी राखके छिये अफसकुन हुए । ऐसा चली, उसका वर्णन कौन कर सकता है ! अस्वस्थ वानर और भालू गर्वना कर रहे हैं ॥ ४ ॥

बस जायुष गिरि पादपधारी । जले मयल महि इच्छाचारी ॥

केहरिमाद भासु कपि कहीं । उगमगतिहि दिग्मय चित्तही ॥ ५ ॥

नख ही जिनके शक हैं, वे इच्छानुसार (सर्वत्र वेरोक-टोक) चलनेवाले रीछ-वानर पर्वतों और वृक्षोंको चरान किये कोई आकलनमगति और कोई पृथ्वीपर चले आ रहे हैं । वे दिग्गते वयान गर्वना कर रहे हैं । [उनके चलने और यर्जनेसे] विशाखोंके हाथी विचलित होकर किण्वाय रहे हैं ॥ ५ ॥

छं—विजयगिहि दिग्मय खोल महि गिरि खोल सागर सरनरे ।

मन हरष सम गंधर्व सुर मुनि नग किन्नर बुद्ध उरे ॥

कटकटाहि मर्कट विमल मठ बहु कोटि कोटिन्ह घायहीं ।

जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ शुन सब गावहीं ॥ ६ ॥

विद्याओंके हाथी किण्वाइने लगे, पृथ्वी खोलने लगी, पर्वत चञ्चल हो गये (काँपने लगे) और समुद्र सलमल उठे । गन्धर्व, देवता, मुनि, नाग, किन्नर, वक्-केसव मनुष्य इर्षित हुए कि [अब] हमारे दुःख टल गये । अनेकों करोड़ भयानक वानर मोटा कटकटा रहे हैं और करोड़ों ही रौक रहे हैं । प्रबलप्रताप कोसलनाथ श्रीरामचन्द्रजीकी जब हो ऐसा पुकारते हुए वे उनके गुणधूँहोंको गा रहे हैं ॥ ६ ॥

साहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहि मोहई ।

साह दखन पुनि पुनि कमल वृष्ट कटोर खो किमि सोहई ॥

रघुबीर कचिर प्रयान प्रसिति सानि परम सुहावनी ।

जनु कमल खर खरपज खो लिखत अविचल पावनी ॥ ७ ॥

उदार (परम श्रेष्ठ एवं महान्) सर्वराज सेवनी श्री सेनका रौल नहीं सह सकते, वे बार-बार मोहित हो जाते (फट्टा जाते) हैं और पुनः-पुनः कच्छपकी कटोर पीठको दाँतोंसे पकड़ते हैं । ऐसा करते (अर्थात् बार-बार दाँतोंको गड़ाकर कच्छपकी पीठपर सड़ी-सी सींचते हुए) वे कैसे शोभा दे रहे हैं मानो श्रीरामचन्द्रजीकी सुन्दर प्रसादयात्राको परम सुहावनी जानकर उसकी अचल पवित्र कथाकी सर्वराज सेवनी कच्छपकी पीठपर लिख रहे हों ॥ ७ ॥

दो—एहि विधि जाइ कृपानिधि उठे समर तीर ।

अई तई सयै जान फल भासु विपुल कपि वीर ॥ ८ ॥

इस प्रान्त कृपाविधान श्रीरामजी समुद्रतटपर जा उठे । अपनेको रीति धार
धीर जहाँ-तहाँ पल रखने लगे ॥ १५ ॥

चौ०—उठो निमाचर रहहि ससंक । जब तैं जाहि मयल कधि छंका ॥

निज निज गृह सच करहि विचारा । नहि निसिचर कुल केर उचारा ॥ १ ॥

वहाँ (सन्तान) जगते हनुमान्जी संकाची जलकर गये, तबसे राघव भयभीत
रहने लगे । अपने-अपने घरोंमें सब विचार करते हैं कि अब राघवकुलकी रक्षा [का
कोरें उपाय] नहीं है ॥ १ ॥

जामु दूत पल कधि न जाई । तेहि बाणें पुर कथन भलाई ॥

दूतिन्ह मन सुनि पुरजन बासी । मंदोदरी अधिक अकुलानी ॥ २ ॥

जिसो दूतका पल कथन नहीं किया जा सकता, उसके स्वयं मगरमें आनेपर फौज
भरत है (हमलोगोंकी वही पुरी दया होगी) । दूतियोंमें नगरनिवासियोंके वचन
सुनकर मंदोदरी बहुत ही व्याकुल हो गयी ॥ २ ॥

रक्षति जोरि ऊर बति पग लगी । सोछी कथन नीति रस पायी ॥

कंस कप हरि भव परिहरहु । मोर कदा अति दित दिवें धरहु ॥ ३ ॥

इस प्रकारसे लाभ छोड़कर पति (राघव) के चरणों लगी और नीतिरसमें
पनी हुई बाणी बोलती—हे श्वशुर ! श्रीरक्षिते विरोध छोड़ दीजिये । ॥ कान्हेको
आपत्त ही तितर जानकर हृदयमें धारण कीजिये ॥ ३ ॥

समुद्रव जामु दूत कइ करनी । राखि गर्भ रजनीकर बरनी ॥

जामु नारि निज सखि बोल्यो । पयहु कंस जो बहहु भलाई ॥ ४ ॥

जिनके दूतकी फरनीका विचार करते ही (सरण आये ही) राघवों
की स्त्रियोंके गर्भ गिर जाते हैं, वे प्यार स्वामी । यदि भय चाहते हैं, तो अपने मन्त्रीको
हुलाकर उसके साथ इनकी स्त्रीको भेज दीजिये ॥ ४ ॥

सब कुल कल विपिन दुष्यदर्ह । सीता सीत विरम छम जाई ॥

हुनहु नाम सीता मिलु दीन्हें । दित वहुनहार संसु अब कीन्हें ॥ ५ ॥

सीता आपने कुलकी कमलके वनको दुःख देनेवाली जाड़ेकी रात्रिके समान जायी
है । ॥ २ नाप । सुनिये, सीताको दिये (लीटाने) बिना बम्भु और अक्षयके किने भी
आवका भला नहीं हो सकता ॥ ५ ॥

दो०—राम बाग अहि गन सरिस निरु निरुचर भेक ।

जब लगि असत न तब लगि जसतु करहु सखि टेक ॥ ३६ ॥

श्रीरामजीके बाग वनके समूहके समान हैं और राघवोंके समूह भेदके समान ।
वपराक वे इन्हे मत नहीं देत (निमत नहीं जाते) तबतक इन्हें छोड़कर उपाय का
लीजिये ॥ ३६ ॥

चौ०—यवन सुनी सठ सा करि वासी । बिहसा जगत बिदित अभिमानी ॥

समय सुभाव नारि कर सखा । संकष्ट सहे भव मय अति अजा ॥ १ ॥

मूर्ख और अवाद्यविद्वज् अभिमानी राघव कान्हेसे उसकी बाणी सुनकर खूब ईषा
[और धोखे—] क्रियाका समान संवसुल ही बहुत डरपोक होता है । मनुष्यों में
मय करती हो । इन्द्राग मन (छुटव) बहुत ही कृपा (कान्हे) है ॥ १ ॥

जी कावह मरुट कइलाई । सिताहि निचारे विरिजय जाई ॥

कंधाहि लेकर जायी अरुण । जामु अरि सखीत कधि हाकर ॥ २ ॥

यदि वानरोंको सेना जायेगी तो वेचारे राक्षस, उधे खाकर अपना जीवननिर्वाह करेंगे। लोकपाल भी जिसके डरते हैं, उसकी ली डरती हो, वह बड़ी हँसीकी बात है ॥ २ ॥

अस कहि बिहसि ताहि तर जगई। जेठ सबौ भगवत अधिकई ॥

मन्दोदरी हृदयें कर चित्त। मगड फंट पर विधि विपरीत ॥ ३ ॥

रावणने ऐसा कहकर हँसकर उधे हृदयसे लबा छिया और भगवत बढ़ाकर (अधिक स्नेह दर्शाकर) वह लभामें चला गया। मन्दोदरी हृदयमें विन्ता करने लगी कि प्रतिपक्ष विधाता प्रतिकूल हो गये ॥ ३ ॥

जैठ सबौ खबरि जसि पाई। सिद्ध पार सेवा सब जाई ॥

बुझेसि सखि जसि मत कहहु। वे सब हँसे मग करि रहहु ॥ ४ ॥

ज्यों ही वह लभामें आकर बैठा, उधने ऐसी खबर पायी कि शत्रुकी सारी सेना समुद्रके उस पार आ गयी है। उधने मन्त्रियोंसे पूछा कि उचित उपाय कहिये [भय क्या करना चाहिये]। उन वे सब हँसे और बोले कि चुप किये रहिये (इसमें सलाहकी कौन-सी बात है ?) ॥ ४ ॥

जिसेहु सुगुणर ज्ञान नहि। नर जबर केहि केहे माहीं ॥ ५ ॥

आपने देवताओं और राक्षसोंको जीत लिया, उन तो कुछ भय ही नहीं हुआ। फिर मनुष्य और वानर किस गिनतीमें हैं ? ॥ ५ ॥

श्री०—सखिच वैद गुर तीनौ औ प्रिय बोलहि मय भास।

राज धर्म तन खेनि कर होइ बेगिहीं सास ॥ ६ ॥

मन्त्री, वैद्य और गुरु—ये तीन यदि [अग्रजन्तुके] मय वा [लाभकी] आशासे [द्वितीय बात न कहकर] प्रिय बोलते हैं (उद्धरणवादी कहने लगते हैं) ; तो [लाभका] राज्य, शरीर और धर्म—इन तीनोंका क्षीय ही नाश हो जाता है ॥ ६ ॥

श्री०—सीह राजन कहूँ कभी सहाई। अशुचि करहि सुखा सुगई ॥

अवसर नानि किरीपतु भाषा। प्राप्ता पार सीमु तेहि भाषा ॥ ७ ॥

रावणके लिये श्री कभी सहायता (संयोग) आ कभी है। मन्त्री उधे झुना-झुनाकर (हँसकर) श्रावित करते हैं। [हली समय]-भगवत जानकर विनीक्षणबो आये। उन्होंने बड़े भाईके चरणोंमें सिर नवाया ॥ ७ ॥

पुरि सिद्ध नाह पैठकिस आनन। कौन कबह पाह अनुसासन ॥

औ कृपाक पूँछि नोहि नाह। मति अनुकर, कहैं हित ताता ॥ ८ ॥

फिर वे सिर नवाकर अपने आसनपर बैठ गये और आका फाकर, वे कवन बोले—हे कृपाक ! कब आपने मुझसे बात (राय) पूछी ही है, तो हे ताता ! मैं अपनी बुद्धिके अनुसार आपके द्वितीय बात कहता हूँ— ॥ ८ ॥

जो आपन जाई जन्मनाह। सुखसुखमति सुखधनि सुख पाव ॥

जो परनाहि सिद्ध नोहाई। खल पतन के बंद कि नाई ॥ ९ ॥

जो मनुष्य अपना जन्मनाह, सुखर गय, सुखदि, सुख गति और जाना प्रकारके सुख चाहता हो, वह है स्वामी ! परन्तुकि कलहमें जोयके चन्द्रमाकी तरह खान दे (अपात ऐसे लोग चौयके चन्द्रमाको नहीं देखते, उसी प्रकार परलोकका सुख ही न देखे) ॥ ९ ॥

चौदह सुवन एक पति होई। सुखहोई तिहड़ नहि सोई ॥

गुन छपर नागर नर जोक। कल्प खेन मग कहहु न कोक ॥ १० ॥

चौदहों शुक्नोंका एक ही स्वामी हो, वह भी जीवोंसे बैर करके ठहर नहीं सकता (नष्ट हो जाता है) । जो मनुष्य शुक्नोंका समुद्र और चतुर हो, उसे चाहे योद्धा भी लोभ क्यों न हो, तो भी कोई मन्त्र नहीं करता ॥ ४ ॥

दो०—काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पथ ।

सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भर्षाहैं जेहि संत ॥ ३८ ॥

दे नाथ ! काम, क्रोध, मद और लोभ—ये सब नरकके रास्ते हैं । इन सबको छोड़कर श्रीरामचन्द्रजीको भजिये, निरर्थ संत (सत्पुरुष) गन्ते हैं ॥ ३८ ॥

बौ०—सात राम नहीं नर भूषण । भुवनेस्तर अछहु कर काका ॥

ब्रह्म भनामय जल भगवन्त । ज्वाफक ज्वित भनादि जनता ॥ १ ॥

हे सात ! राम मनुष्योंके ही राज नहीं है । वे समस्त लोकोंके स्वामी और कालके भी काल हैं । वे [सम्पूर्ण ऐश्वर्य, वन, शी, धर्म, वैराग्य एवं ज्ञानके भण्डार] भगवान् हैं । वे निरामय (विकाररहित), अनन्या, ज्योति, अनेक, अनादि और अनन्त ब्रह्म हैं ॥ १ ॥

गो द्विज धेनु देव हितकारी । कृपा सिद्ध मायुष रघुधारी ॥

जन रंजन संजय नन्द प्राता । वेद धर्म स्पष्टक सुनु ज्ञाता ॥ २ ॥

उन कृपाके समुद्र भगवान्ने धृष्टी, आरुण, गौ और देवताओंका शिव करनेके लिये ही मनुष्यद्वारे भरण किया है । हे माई ! सुनिये, वे एककोई आनन्द देनेवाले, दुष्टोंके समूहका नाश करनेवाले और वेद तथा धर्मकी रक्षा करनेवाले हैं ॥ २ ॥

साहि धर्म सजि नाह्य माया । प्रवतारवि संजन रघुनाथा ॥

देहु तप प्रभु कहे वैदेही । भजहु राम बिनु हेतु सनेही ॥ ३ ॥

बैर त्याग कर उन्हें भक्त नव्याये । वे भीरुनाथजी करुणागतका दुःख नाश करनेवाले हैं । हे नाथ ! उन प्रभु (सर्वेश्वर) को जानसीजी दे बीजिये और बिना ही कारण स्नेह करनेवाले श्रीरामजीको भजिये ॥ ३ ॥

सरन गई प्रभु साहु न स्वया । किल जौह कृत बच बेदि काल ॥

जामु नाम प्रय ताप भगवन् । सीहप्रभु प्रयत सखसु निर्वै रावन ॥ ४ ॥

जिते सम्पूर्ण जगत्से श्रेष्ठ करनेका वास जग है, धारण करनेपर प्रभु उसका भी त्याग नहीं करते । जिनका नाम तीनों रामोंका नाश करनेवाला है, वे ही प्रभु (भगवान्) मनुष्यकर्म प्रकट हुए हैं । हे राजा ! हृदयमे यह समझ लीजिये ॥ ४ ॥

दो०—बार बार पद खमहैं निनय करउँ वससीस ।

परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस ॥ ३९(क) ॥

हे दशग्रीवा ! मैं बार-बार आपके चरणों लम्बता हूँ और विनती करता हूँ कि मान, मोह और मदको त्याग कर जग कोसलपति श्रीरामजीका भजन कीजिये ॥ ३९(क) ॥

मुनि पुलस्ति बिज सिष्य सन कहि फई यह बात ।

तुरत सो मैं प्रभु सन कही पाह सुमन्सर तात ॥ ३९(ख) ॥

मुनि पुलस्त्यजीने अपने शिष्यके हाथ कह बात कह्य मेची है । हे सात ! सुन्दर अनन्तर धाकर मैंने तुरन्त ही कह बात प्रभु (आप) से कह दी ॥ ३९(ख) ॥

बौ०—भारवन्त जति सखि सखान् । जमु भवन सुनि बति सुल मान् ॥

सात अनुज तक नीति नियुक्त । सो उर कहु जो काल बिभीषन् ॥ १ ॥

माल्यवान् नामका एक बहुत ही बुद्धिमान् मन्त्री था । उसने उन (विभीषण) के वचन सुनकर बहुत मुक्त माना [और कहा—] हे सात ! आपके छोटे भाई नीति-

विभूषण (नीतिको मूल्यांकनमें धारण करनेवाले अर्थात् नीतिमान) हैं। विभीषण को
 उ फर रहे हैं उसे हृदयमें धारण कर लीजिये ॥ १ ॥

रघु उत्तराय कहत छर दोऊ। दुरि न फण्डु झरौ इह कोठ ॥

भाष्यमें छर कहत छोटीसी। कहत विभीषण सुनि कर जोरी ॥ २ ॥

[रावणने फण्ड—] ये दोनों वृक्ष शत्रुकी मर्हिमा बसतन रहे हैं। वहाँ कोई है !
 इन्हें दूर करो न ! तब मारवधान तो भर खोद गया और विभीषणकी शपथ भेदकर फिर
 कहने लगे— ॥ २ ॥

सुमति कुमति सब कैं कर रहौ। सब पुछन निगम कह कहौ ॥

कहाँ सुमति छैं लेवति वास। कहाँ कुमति छैं बिचरि निदाना ॥ १ ॥

हे माय ! पुराण और वेद ऐसा कहते हैं कि सुकुदि (अच्छी कुदि) और कुकुदि (खोटी
 कुदि) एकते इदयमें रहती हैं, वहाँ सुकुदि है, वहाँ नाना प्रकारकी सम्पदाएँ (सुखकी
 स्थिति) रहती हैं और वहाँ कुकुदि है वहाँ परिणाममें विपत्ति (दुःख) रहती है ॥ १ ॥

एक कर कुमति कही विपरीत। हित अवहित भावहु रिगु प्रीता ॥

काकराति मिलिअर कुल केरी। तेहि सोचा पर प्रीति चनेरी ॥ २ ॥

भाष्यके हृदयमें अच्छी कुदि भा कही है। इसीसे भाव हितको अवहित और
 शत्रुको हित मान रहे हैं। जो राक्षसकुलमें किये काकराति [के समय] हैं, उन
 सोचान भाषकी कही प्रीति है ॥ २ ॥

पौ०—सात बारन गहि भागई राक्षहु मोर दुखर।

सीता देखु राम कहौ महित न होइ दुष्कार ॥ ५० ॥

हे सात ! मैं कल्प फण्डकर आपसे भीत भोंबता हूँ (विनम्री करता हूँ) कि आप
 मेरा दुष्टार रहिये (तुम वाक्यके आशयको कोरपूर्वक स्वीकार लीजिये)। श्रीरामजीको
 सीताजी दे दीजिये, जिसमें भावना अवहित न हो ॥ ५० ॥

पौ०—युव पुछन सुति संमत कयी। कही विभीषण नीति बखानी ॥

सुखत वसतन उठ रिछाई। कल तोहि विष्ट बलु सब भाई ॥ १ ॥

विभीषणने पण्डितों, पुराणों और वेदोंद्वारा समस्त (अनुमोदित) भाषीसे नीति
 बखानकर कही। पर उसे सुनते ही रावण कोपित होकर उठा और बोला कि रे दुष्ट !
 अब मृत्यु तेरे निकट आ गयी है ॥ १ ॥

मिअति सय सब और निगम। रिगु कर पण्ड बुर कोहि भाषा ॥

कहति न कल अस को बग साही। सुख कह कहि विना मैं नाहीं ॥ २ ॥

और मूर्ख ! ए बीज तो है क्या मेरा निगमया युवा (अर्थात् मेरे ही अण्डसे पल
 रहा है) पर रे मृत ! पर तुझे अनुमति ही मण्डा लगा है। जरे दुष्ट ! बखान नः अण्डमें
 देला बीज है जिसे मैंने अपनी मुक्तमूर्ति बखाने न बीज हो ? ॥ २ ॥

सम दुर वसि उपस्थित पर प्रीती। सब सिद्ध जगह छिन्हहि बहुत मोरी ॥

सब करि सोनेहि चरन प्रहस। अनुब गहे पद बरहि बारा ॥ ३ ॥

मेरे नगरमें रहकर मेरा करता है उपस्थितपर। मूर्ख ! उन्नीति का मित
 और उन्नीति नीति का। ऐसा कहकर रावणने उन्हें खत मारी। फलतु छोटे माई
 विभीषणने [माजेर भी] बार-बार उनके चरण ही पकड़े ॥ ३ ॥

उमा संत कह इहद पण्ड। संव कल 'बो कल' मण्ड ॥

दुष्ट सिद्धि खोलेस भवेहि मोहि भव। राघु भवै हित बाध दुष्कार ॥ ४ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा ! संतुष्टी यही भवार्ह (अहिमा) है कि वे बुराई करनेपर भी [बुराई करनेवालेकी] भलाई ही करते हैं । [विभीषणजीने कहा—] आप मेरे पिताके समान हैं, हुंसे क्या जो जो अच्छा ही किया, परन्तु हे नाथ ! आपका भला भीरामजीको मननेमे ही है ॥ ४ ॥

सचिव संघ है नभ पव गन्ध । सबहि सुगन्ध कहत कस भयल ॥ ५ ॥

[रतना कहकर] विभीषण अपने मन्त्रियोंको खय डेकर आकाशमार्गमे गये और सबको सुनाकर वे ऐसा कहने लगे—॥ ५ ॥

दो०—राघु सत्पसंकल्प प्रभु समस्त काष्ठवस तोरि ।

मैं रघुवीर सरन अब ज्वरें रेडु जनि खोरि ॥ ४१ ॥

श्रीरामजी सत्पसंकल्प पर्यु [सर्वसमर्थ] प्रभु हैं और [हे राजन !] तुम्हारी उमा काष्ठके वसा है । अतः मैं अब श्रीरघुवीरकी शरण जाता हूँ, हुंसे दोष न देना ॥ ४१ ॥

चौ०—अस कहि कब विभीषणु जवही । अग्रहीन भए सब तवही ॥

राघु भयन्मा गुरल भलाभी । कर कथाम अमिल है हारी ॥ १ ॥

ऐसा कहकर विभीषणजी जो ही चले, सो ही सब राक्षस आयुहीन हो गये (उनकी मृत्यु निश्चित हो गयी) । [शिवजी कहते हैं—] हे भवानी ! राघुका भयमान गुरत ही सम्पूर्ण कल्याणकी शानि (नाथ) कर देता है ॥ १ ॥

राक्षस जहाँहि विभीषन लग्ना । अथ विषय विनु सबहि अभागा ॥

चक्रे हरि रघुवत्क पाही । करत मनोरथ बहु सब भाही ॥ २ ॥

राजपने जिस क्षण विभीषणकी त्यागा उसी क्षण वह अमाता वैसन (देवर्ष) से हीन हो गया । विभीषणजी इर्षित होकर मनमे अनेको मनोरथ करते हुए श्रीरघुनाथकी पाँच चक्रे देखिहुँ जाइ जवन अब जाता । भयन खूब सब सुखदाता ॥

वे पद परसि ली विविचरी । एक कथन पावनकारी ॥ ३ ॥

[वे होचते जाते थे—] मैं जानर भगवातके कोमल और लज्ज कर्णके सुन्दर करणकमलोंके दर्शन करेगा, जो सेवकोंको सुल देनेवाले है, जिन चरणोंका सर्व पाकर श्रुतिपत्नी अहस्ता तर गयी और जो दम्बकमनको पवित्र करनेवाले है ॥ ३ ॥

वे पद सबसुखी कर अथ । कस कुर्ण संग घर थाय ॥

हर हर सर सरोज पर खेई । अहोभाग मैं देखिहुँ हैई ॥ ४ ॥

जिन चरणोंको सान्त्वनीने हृदयमे धारण कर रक्ता है, जो कस्तूरमाले साथ पृथ्वीपर [उसे पकनेको] रोड़े वे और जो करणकमल साक्षात् शिवजीके हृदयकी शरीरमे विराजते हैं, मेरा अहोभाग्य है कि उन्हींसे आज मैं देखूँगा ॥ ४ ॥

दो०—जिन्ह पायन्ह के पादुकिन्ह मरगु रहे सब खह ।

ते पद माहु निचोकिहुँ हन्ह नयननि जन जाह ॥ ४२ ॥

जिन चरणोंकी पादुकाजोमे मरतजीने सपना सब सख सखा है, जहाँ आज मैं उन्हीं चरणोंको अमी जाकर इन नेत्रोंसे देखूँगा । ॥ ४२ ॥

चौ०—पुदि विधि कस खेम निवस । अबत सदि सिधु पुदि कर ॥

कपिन्ह विभीषणु अवस देखा । जना खेउ रिधु दूत मिलेपा ॥ १ ॥

इस प्रकार प्रेम्साहित विचार करते हुए वे शीघ्र ही समुद्रके दल पार (बिपर श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा थी) आ गये । वनरोने विभीषणकी आते देखा वो उन्होंने जाना कि राजा कोई साधु है ॥ १ ॥

ताहि रक्षि करीस पहि जाए । समचार सब ताहि सुनाए ॥
 कह सुग्रीव सुगह रघुराई । कथा मिलन इसानन भाई ॥ २ ॥
 उन्हें [पहरेपर] उहराकर वे सुग्रीवके पास आये और उनको सब समाचार कह
 सुनाये । सुग्रीवने [श्रीरामजीके पास जाकर] कहा—हे रघुनाथजी ! सुनिये, रावणका
 भार [आपसे] मिलने आया है ॥ २ ॥

कह प्रभु सखा कृदिये काहा । कहइ करीस सुबहु बरबाहा ॥
 जानि न चाह निराचर साखा । करमस्य केहि करन आधा ॥ ३ ॥
 प्रभु श्रीरामजीने कहा—हे मित्र ! तुम क्या समझते हो (तुम्हारी क्या राय
 है) ! वानरराम सुग्रीवने कहा—हे महाराज, सुनिये । राक्षसोंकी प्रथा जानी नहीं जाती ।
 वह हृच्छानुसार रूप बदलनेवाला (छली) न जाने किस करण आया है ॥ ३ ॥

मेव हमार सेव सब अथा । रक्षित बौधि मोहि भस भावा ॥
 सखा नीति सुहृ भीकि बिचारी । मन पन सरनागत भयहारी ॥ ४ ॥
 [जान पड़ता है] वह पूर्ण हमारा भेद छेने आया है । इसलिये मुझे तो यही
 भयला लगाता है कि इसे बौध रक्षता जान । [श्रीरामजीने कहा—] हे मित्र ! तुमने
 नीति तो अच्छी बिचारी । परन्तु मेरा प्रण यो है शरणागतके मनको हर छेना ॥ ४ ॥

सुनि प्रभु वचन हरप हनुमान । सरनगत पच्छ अन्धबाहा ॥ ५ ॥
 प्रभुके वचन सुनकर हनुमानजी हर्षित हुए [और मन-ही-मन करने लगे कि]
 भगवान् कैसे शरणागतपच्छ (शरणमें आने हुएपर पित्तकी भाँति प्रेम करनेवाले) हैं ॥ ५ ॥

यो—सरनागत कहूँ जे तजहि मित्र अमहित मनुमानि ।

ते नर पाईर पापमय तिन्हहि मिलेकत हनि ॥ ४३ ॥

[श्रीरामजी फिर बोले—] जो मनुष्य अपने बहिष्कृत मनुमान करके शरणमें आये
 हुएका त्याग कर देते हैं, वे पाप (छुद्र) हैं, पापमय हैं; उन्हें देखनेमें भी हानि है
 (पाव लगाता है) ॥ ४३ ॥

यो—कोदि मित्र नव जगहि जाहू । अर्थ सरन तजई नहि ताहू ॥

सगहृद होइ भीन मोहि नवाहीं । नम्र कोदि अब वासहि तहाँ ॥ ४४ ॥

जिसे करोड़ों भासगैकी इत्यादणी हो, शरणमें जानेपर मैं उसे भी नहीं त्यागता । नीच
 क्यों ही मेरे सम्मुख होता है, त्यो ही उसके करोड़ों कमोंके पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ४४ ॥

पापवंत कर अहं सुमन । संस्तु और तेदि नव न काक ॥

जी है दुष्टदय सोइ होई । जोरें सम्मुख जान कि सोई ॥ ४५ ॥

पापीका वह चदन समान होता है कि मेरा मज्जन उसे करी नहीं सुहाता । यदि वह
 (रावणका भाई) निमग्न ही दुष्ट दुष्टमत्ता होता तो क्या वह मेरे सम्मुख आ सकता था ॥ ४५ ॥

निर्मल मन जब सो मोहि पाया । मोहि कपट जह किह न भावा ॥

मेद जेन पत्था दसहीसा । तन्हूँ न कहुँ भव हानि करीसा ॥ ४६ ॥

जो मनुष्य निर्मल भक्त होता है, वही मुझे पता है । मुझे कपट और छल-छिद्र
 नहीं सुहाते । यदि उसे रत्नमने मेद छेनेको मेला है, तब भी हे सुग्रीव ! अपनेको कुछ
 भी भव या हानि नहीं है ॥ ४६ ॥

जग महुँ सखा निराचर छेते । कठिमुल इन्ह भिनिष महुँ तेते ॥

जौ समीत आवा सरनार्ह । रक्षित ताहि प्रब की नई ॥ ४७ ॥

सर्वोद्दिष्टे भवे ! जगत्में जिनने भी राखत है, लक्ष्मण छत्रमर्मों उन सबको मार सकते हैं। और यदि ना भयभीत होकर मैं धरण आया है तो मैं उसे प्रार्थना की तरह रखूँगा । ४१

दो०—उभय भौति तेलि आबहु हँसि कह कृपानिकेत ।

जय कृपाल कहि कपि चले वंगद इन्नु समेत ॥ ४४ ॥

कृपा के धाम श्रीरामजीने हँसकर कहा—दोनों ही स्थितिबोधमें उसे ले आओ। तब आद और अनुमानवर्तित सुग्रीवजी कृपालु श्रीरामजी जन हो कहते हुए चले ॥ ४४ ॥

चौ०—आदर तेलि आर्य हरि वानर । चले जहाँ रघुपति कल्पाकर ॥

दुष्टि से देगे हँ आस । नयनानन्द दान के दास ॥ १ ॥

विभीषणजीको आदरसहित आगे करके वानर फिर वहाँ चले जहाँ कृपाकी खान श्रीरामजी थे। नेत्रोंसे आनन्दका दान देनेवाले (अनन्त सुखद) दोनो भाइयोंको विभीषणजीने दूररीसे देखा ॥ १ ॥

रघुरि राम उपिधान मिलेकी । छेड छुटि पकटक चल सेकी ॥

सुख प्रसन्न पंजकन होयव । व्यामल वस प्रथम भय शोचन ॥ २ ॥

फिर शोभाके धाम श्रीरामजीको देखकर वे पलक [मरणा] रोककर बैठकर (नय होकर) एकटक देखते ही रह गये। भगवान्की विमल मुखाई है, लल कमलके समान नेत्र और वस्त्रागतके मयरा नाश करनेवाला शोकन क्षीर है ॥ २ ॥

मिथ कथ आगत उर खेदा । भजन अमित महन सब मोहा ॥

नयन नीर पुलकित अति गता । मन परि धरि कही मृदु वाता ॥ ३ ॥

सिंहकेने कथे है, विमल वस्त्रस्थल (चौड़ी छाती) अत्यन्त शोभा दे रहा है। भ्रंशरूप कामदेवीके मनको मोहित करनेवाला मुख है। भगवान्के स्वरूपको देखकर विभीषणजीके नेत्रोंमें [प्रेमाभूषण] जल भर आया और क्षीर अत्यन्त पुलकित हो गया। फिर मनमें धीरे धीरे परकर उठने के योग्य वचन बड़े—॥ ३ ॥

नाथ दुमानन कर मैं आस । निसिचर यस जयन सुरमात ॥

सहज वापतिव तामस देहा । जया उच्छ्रदि तम पर गेहा ॥ ४ ॥

हे नाथ ! मैं दशमुख राजगण भाई हूँ। हे देवताओंके राजा ! मेरा जन्म राजसकुलमें हुआ है। मेरा तामसी क्षीर है, स्वभावसे ही मुझे वाप मिल है, जैसे उत्क-को अम्बकासर वहन स्नेह होता है ॥ ४ ॥

दो०—धवन सुजसु सुनि भावई प्रभु मंतन भव भीर ।

प्राहि प्राहि आरति हरन सरन मुखद रघुवीर ॥ ४५ ॥

मैं कानोंसे वापका मुख सुनकर आया हूँ कि प्रभु भव (जन्म-मरण) के भयका नाश करनेवाले हैं। हे दुष्टियोंके दुष्ट दूर करनेवाले और धरणागतको सुख देनेवाले श्रीरघुवीर ! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥ ४५ ॥

चौ०—अस कहि कस्त वंजव देखा । दुस्त नडे प्रभु हरष भित्त ॥

दीन वचन सुनि प्रभु मन भावा । मुख विमल यहि हरष कागा ॥ १ ॥

प्रभुने उन्हे ऐसा कहकर दण्डक करके देखा तो वे अत्यन्त हर्षित होकर दूरत उठे। विभीषणजीके दीन वचन सुनकर प्रभुके मनमें बहुत ही माने। उन्होंने अपनी विमल मुवांशोंसे पकड़कर उनको हृदयसे लगा लिया ॥ १ ॥

अनुन सहित मिलि निग बैसरी । ओके वचन अकत अन्वारी ॥

कहु ओकेस सहित बरिवासा । कुसक कुजतर वास सुन्हाए ॥ २ ॥

छोटे भाई लगनशील हैं गले मिलकर उनको अपने पास बैठाकर श्रीरामजी भक्तिके मयको हलवाते वचन बोले—हे लज्जित ! परिवाररहित अपनी कुशल कहो । तुम्हारा निवास सुरी जगद्वर है ॥ २ ॥

साध मंदलों बसहु दिवु राखी । सुता फल निबडह केहि भौंती ॥

। मैं जानदैं तुम्हारे सब सीरी । अति नम विपुन न भव भगीती ॥ ३ ॥

दिन-रात दुष्टोंकी मण्डलीमें बसते हो । [देखी दशार्में] हे लज्जित ! तुम्हारा धर्म किस प्रकार निपटा है । मैं तुम्हारी सब रीति (आचार-व्यवहार) जानवा दूँ । तुम अत्यन्त नीतिनिपुण हो, तुम्हें कनीति नहीं चुहाती ॥ ३ ॥

बहु भक्त बाल फल कर साध । दुष्ट संग कवि देख बिधाना ॥

अब यह देखि कुशल खुलत । जो दुष्ट कीन्ह जानि जन दया ॥ ४ ॥

हे लाल ! नरकोंमें रहना करं बयल है; परन्तु विद्वत् दुष्टका लड़ [कभी] न है । [विनीतजनै कहा—] हे खुनायकी ! अब आपके घरलौका दर्शन कर कुशलते हैं, जो आपने अपना सेवक जानकर कुशल दया की है ॥ ४ ॥

रो—तब छवि कुशल व जीप कहूँ सुपनेहुँ मन विभ्राम ।

जब छवि यज्ञत न राम कहूँ सोरु घाम तसि काम ॥ ५ ॥

सदतक जीवकी कुशल नहीं और न लग्नमें भी उसके मनको शान्ति है, अतएव यह शोकसे घर काम (विषय-व्ययना) को छोड़कर श्रीरामजीको नहीं ममता ॥ ५ ॥

चो—तब छवि दुखै कलक सक लाग । सोम सोह भयल न म माहा ॥

जब छवि कर न बसत खुगया । बरें बाप सायक बडि माया ॥ ६ ॥

छोम, मोह, मातर (बाह) ; मंद और मान आदि अनेकों दुष्ट लसीक दुःखमें बसते हैं, अतएव कि धनुष-बाण और कलमें ललकत धारण किये हुए भीखुनायकी दुःखमें नहीं बसते ॥ ६ ॥

ममता लक्ष लसी जीविलारी । राम होय उल्लुख सुककारी ॥

तब छवि बसति जीव मन माही । जब छवि प्रभु प्रताप रवि माही ॥ ७ ॥

ममता पूर्ण जेहरी रात है, जो राम-रूपकी उल्लुखोंको कुल बेनेकाही है । यह (ममताकी राति) लसीक जीवके मनमें बसती है, अतएव प्रभु (भग्न) का प्रतापकी सूर्य उदय नहीं होता ॥ ७ ॥

जब मैं कुशल भिदे अम बार । देखि राम पद कमल तुम्हारे ॥

दुष्ट दुष्ट ज पर बसुआ । राहिय न्याय विविध मन सुख ॥ ८ ॥

हे श्रीरामजी ! आपके चरणारविन्दके दर्शन पर जब मैं कुशलते हूँ मेरे भारी मन मिट गये । हे कुशल ! जब विद्वत् अनुकूल होते हैं, उन्हे तीनों प्रकारके मनश्च (आन्तरिक, आधिदैविक और आधिभौतिक छाप) नहीं आवते ॥ ८ ॥

मैं निश्चित अति अवम सुमयक । सुन अक्षरतु कीन्ह वही काक ॥

अंधु रूप मुनि व्याव न व्याव । तेहि प्रभु दरि दुखमें मोहि काक ॥ ९ ॥

मैं अत्यन्त नीच समानता रखत हूँ । मैंने कभी प्रभु जानकर नहीं किना । मिनका रूप मुनिवोंके भी जानमें नहीं आता, उन प्रभुने लक्ष हस्त होकर दुष्ट दुष्टते जग किया ॥ ९ ॥

रो—अहोभाग्य मम अमिल अति राम छया सुख मुंज ।

देखेई भयन विरंचि सिब सेव्य जगल पद फल ॥ १० ॥

हे कृष्ण और सुखके पुत्र श्रीरामजी ! मेरा अत्यन्त असीम लोभाग्र है, जो मैंने
ब्रह्मा और शिवजीके द्वारा सेमित युगल चरणकमलोंने अपने नेत्रोंसे देखा ॥ ४४ ॥

चौ०—सुगन्ध सखा निज कह्यै सुभास । जान सुमुष्टि संसु गिरिजास ॥

औं नर होइ चराचर द्रोही । जलै समग्र सरन सकि मोही ॥ १ ॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे सखा ! सुखे, मैं तुम्हें अपना स्वभाव कहता हूँ, जिसे
ग्राकमुष्ठाण्ड, शिवजी और पार्वतीजी भी जानती हैं । कोई मनुष्य [सम्पूर्ण] बड़-बड़न
सगत्का द्रोही हो, यदि वह भी भवभीत होकर मेरी चरण तककर आ जाय, ॥ १ ॥

तजि मद मोह कपट छल जाना । कर्तै सब तेहि सखु समाना ॥

जननी जनक बंधु सुत दास । तनु धनु भवन सुदृढ़ परिचार ॥ २ ॥

और मद, मोह तथा माना प्रकारके छल-कपट त्याग दे सो मैं उसे बहुत क्षीर साधुके
समान कर देता हूँ । ग्राह्य, मित्र, भाई, पुत्र, स्त्री, सरीर, वन, घर, मित्र और परिवार ॥ २ ॥

सब कै भगता सब छोटी । मम पद मगहि बाँध बरि दोरी ॥

समदरसी इच्छा कबु नाहो । हरष सोक भव यहि भगभाही ॥ ३ ॥

इन सबके भक्तवत्सली तमोने बंदोरकर और उन सबकी एक डोरी बटकर उसके
द्वारा जो अपने मनको मेरे चरणोंमें बाँध देता है (चारे सांसारिक सम्बन्धोंका केन्द्र
सुखे बना होता है), जो समदर्शी है, जिसे कुछ इच्छा नहीं है और जिसके मनमें हर्ष,
शोक और भय नहीं है, ॥ ३ ॥

भस सज्जन मम तर बस कैसँ । छोभी हृदयँ बसइ तनु कैसँ ॥

तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरँ । भरवै देह यहि जान दिहीरँ ॥ ४ ॥

ऐसा स्वजन मेरे हृदयमें कैसे वसता है, जैसे लोभीके हृदयमें वन पड़ा करता
है । तुम-सारीखे संत ही मुझे प्रिय हैं । मैं और किसीके लिएरिखे (इच्छावाचक) देह
धारण नहीं करता ॥ ४ ॥

बो०—सगुण उपासक परहित निरत नीति बड़ बेम ।

ते नर प्राय समान मम जिह्म कँ द्विष पद प्रेम ॥ ४८ ॥

जो सगुण (साकार) भगवान्के उपासक हैं, दूसरेके हितमें लगे रहते हैं, नीति और
नियमोंमें दृढ़ हैं और जिनमें माझनोंके चरणोंमें प्रेम है, वे मनुष्य मेरे प्राणोंके समान हैं ॥ ४८ ॥

चौ०—सुख छकेस सकल सुन छोरे । ताँतें तुम्ह अलिख्य प्रिय मोरँ ॥

राम यवन सुनि कजर जूया । सकल कह्यै जय कृपा वरुमार ॥ १ ॥

हे संकापति ! सुनो, तुम्हारे अंदर उपसृत सब सुन हैं । इतने द्रुम मुझे अत्यन्त
ही प्रिय हो । श्रीरामजीके वचन सुनकर सब धान्तोंके समूह कहने लगे—कृपाके समूह
श्रीरामजीकी जय दो ॥ १ ॥

सुगत विनीषतु प्रभु कै बाबी । यहि अचल अचलसुत जानी ॥

पद अंजुन यहि अपहँदा बल । हृदयँ समस्त व प्रेसु कपाट ॥ २ ॥

प्रभुकी वाणी सुनते हैं और उसे कानोंके लिये अमृत जानकर विनीषणी
अघाते नहीं हैं । वे बार-बार श्रीरामजीके चरणकमलोंको फलते हैं । अथार प्रेम है,
हृदयमें समाता नहीं है ॥ २ ॥

सुगन्ध देव सचराचर एकमी । प्रकृतफल उर अंतरजामी ॥

उर कयु प्रथम ज्ञानया रही । प्रभु पद प्रीति सखि सो बही ॥ ३ ॥

[विनीषणीजीने कहा—] हे देव ! हे चराचर सबके स्वामी ! हे धरणागदके

रक्षक ! हे सनके हृदयके भीतरकी जगनेवाले ! सुनिधे, मेरे हृदयमें पहले कुछ वाचना थी । वह प्रभुके चरणोंकी प्रीतिल्ली नदीमें बह गयी ॥ ३ ॥

अब कृपासिद्धि संपत्ति पावनी । देहु सदा सिद्धि सब भावनी ॥

एवमस्तु कहि प्रभु स्वेधीय । माया हस्त सिद्धि कर नीरा ॥ ४ ॥

अब तो हे कृपासिद्धि ! शिवजीके मनको सदैव प्रिय लगानेवाली अपनी पवित्र भक्ति भूसे दीजिये !
एवमस्तु (ऐसा ही हो) कहकर रणधीर प्रभु श्रीरामजीने तुरंत ही समुद्रका लल माँगा ॥ ४ ॥

जदपि सखा सब दुष्टा नहीं । भोर देखु अमोघ जग माहीं ॥

अस कहि राम तिलक तोहि सारा । धुवन दृष्टि नम भई अपारा ॥ ५ ॥

[और कहा—] हे सखा ! वदपि तुम्हारी दुष्टता नहीं है, पर जगत्में मेरा वर्धन अमोघ है (वह निष्फल नहीं जात) । ऐसा कहकर श्रीरामजीने उनको रामचिह्न कर दिया । आकाशसे पुष्पोंकी जपार दृष्टि हुई ॥ ५ ॥

दो०—राघव अमोघ अमल निज खास समीर प्रचंड ।

जगत विभीषणु एखेउ दीन्हैउ राहु अखंड ॥ ४९ (क) ॥

श्रीरामजीने राघवके अमोघकी अग्निमें, जो अपनी (विभीषणकी) श्वास (वचन) करी एवमसे प्रचण्ड हो रही थी, जलते हुए विभीषणको बचा लिया और उसे अक्षय्य राख दिया ॥ ४९ (क) ॥

जो संपत्ति सिद्ध राघवहि दीन्हि दिरैं वस माघ ।

सोइ संपदा विभीषणहि सङ्गुधि दीन्हि राघुनाथ ॥ ४९ (ख) ॥

शिवजीने जो सम्पत्ति राघवको वहाँ स्थिरी की बलि देनेपर भी थी, वही सम्पत्ति श्रीरामजीने विभीषणको बहुत उज्ज्वलते हुए दी ॥ ४९ (ख) ॥

चौ०—अब प्रभु जदपि नजहि जे जाना । ते नर वधु सिद्धि पैछ विद्वाना ॥

निज जन जानि ताहि अपमाना । प्रभु सुभाष कपि कुल सब भावा ॥ १ ॥

ऐसे परम कृपासिद्धि प्रभुके ओढ़कर जो समुच्च दूतोंके भजते हैं, वे विद्या सींग-
रूढ़के पक्ष हैं । अपना लेक नानकर विभीषणको श्रीरामजीने अपना लिया । प्रभुका समाप कानरकुलके मनको [बहुत] भावा ॥ १ ॥

जुनि सर्वग्य सर्व जर जाती । सर्वरूप सब रहित वरासी ॥

बोले वचन नीति प्रतिपादक । नारद मधुसूत धनुष कुल पादक ॥ २ ॥

फिर सब कुल जगनेवाले, उनके हृदयमें बसनेवाले, सर्वरूप (सब रूपोंमें प्रकट),
सबसे रहित, उदासीन, कारणसे (मर्कटोंपर कृपा करनेके लिये) मधुसूत बने हुए तथा
राक्षसोंके कुलका नाश करनेवाले श्रीरामजी नीतिकी रक्षा करनेवाले वचन बोले — ॥ २ ॥

मुहु कवीस कंठप्रति वीर । केहि किये करिष कलधि गंभीर ॥

संजुल मकर उदय द्वय जाती । अति कथाय हृत्तर सब सीदी ॥ ३ ॥

हे वीर कानरराज सुग्रीव वीर कंठाक्षि विभीषण ! सुनो, इस गहरे समुद्रको किस
प्रकार पार किया नव ? अनेक ज्वलिते मगर, साँप और मत्तलियोंसे भरा हुआ वह
मायन्त अगाह समुद्र पार करनेमें तब प्रवृत्तसे कठिन है ॥ ३ ॥

कह उकित सुनहु राघवाक । कोहि सिद्ध सोयक सब सायक ॥

जदपि वदपि नीति अति नई । निनय करिष खयर सन् जाई ॥ ४ ॥

विभीषणजीने कहा—हे राघुनाथजी ! सुनिधे, वदपि आपका एक वाच ही करोड़ों

समुद्रोंको मोलनेवाला है (सोख सकता है) ; तथापि नीति ऐसी कही गयी है (उचित यह होगा) कि [पहले] ज्वर समुद्रके मार्गना की जाय ॥ ४ ॥

दो०—प्रभु तुम्हारे कुलमुख बलधि कहिहि उपाय विचारि ।

बिनु प्रयास सागर तरिहि सकल माछु कपि धारि ॥ ५० ॥

हे प्रभु ! समुद्र आपके कुलमें बड़े (पूर्वव) हैं, वे विचारकर उपाय बतल देंगे । सब रोछ और जानरोंकी खारी सेना बिना ही परिष्कलके समुद्रके तर उतर जायगी ॥ ५० ॥

बौ०—सदा कही तुम्ह नीतिके उपाई । करिल दैव जौ होइ सहाई ॥

मंत्र न कह लक्ष्मण मन साधा । राम बचन सुनि धरि दुख पावा ॥ १ ॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे सदा ! तुमने अच्छा उपन बताया । यही किया जाय ; यदि दैव सहायक हो । वह समग्र लक्ष्मणजीके मनको अच्छी नहीं लगी । श्रीरामजीके वचन सुनकर तो उन्होंने बहुत ही दुःख पाया ॥ १ ॥

साध दैव कर कबह भरोसा । सोपिब सिंधु करिब मन रोसा ॥

काहर मन कहूँ एक अघार । दैव दैव आलसी पुकारा ॥ २ ॥

[लक्ष्मणजीने कहा—] हे नाथ ! दैवका कौन भरोसा ! मनमें कोष कीजिये (से आराम) और समुद्रको गुला बालिये । यह दैव तो कबहके मनका एक आघार (तत्संगी देनेका उपाय) है । आलसी लोग ही दैव-दैव पुकार करते हैं ॥ २ ॥

सुनत बिहसि योके रघुबीरा । ऐसीहि करब धरहु मन बीरा ॥

भल कहि प्रभु अजुगहि समुझाई । सिंधु समीप यह रह्यो ॥ ३ ॥

यह सुनकर श्रीरघुबीर हँसकर बोले—ऐसे ही करेंगे, मनमें बीरता रखेंगे । ऐसा कहकर छोटे भाईकी वनहाकर प्रभु श्रीरघुनाथजी समुद्रके समीप गये ॥ ३ ॥

प्रथम प्रणाम कीन्ह सिध नाई । बैठे धुनि यह दर्शन कसाई ॥

जबहि विभीषन प्रभु बहि आए । पाछे सबन दूत पठाए ॥ ४ ॥

उन्होंने पहले छिर नवाकर प्रणाम किया । फिर किन्तोरपर कुछ दिखाकर बैठ गये । इस वृत्ति ही विभीषणजी प्रभुके पास आये थे, त्यों ही रामजीने उनके पीछे दूत भेजे थे ॥ ४ ॥

दो०—सकल चरित किह देखे धरें कपट कपि देख ।

प्रभु गुन हृदयें सराहहि सरनायक पर नेह ॥ ५१ ॥

कपटके जानरका शरीर धारण कर उन्होंने सब नीलपर्व देखीं । वे अपने हृदयमें प्रभुके गुणोंकी ओर शरणागतपर उनके स्नेहकी छपाहना करने लगे ॥ ५१ ॥

बौ०—प्रगट यथार्थहि राम सुनास । जति सोम ना बिसरि दुराज ॥

सिंधु के दूत कपिन्ह सब जाने । सकल बोंधि कपीस पटि जाने ॥ १ ॥

फिर वे प्रकटस्वरमें भी अत्यन्त प्रेमके शब्द श्रीरामजीके स्वभावकी बधाई करने लगे, उन्हें दुःख (कपट-नेत्र) सूख गया । सब जानरोंने जाना कि ये शत्रुके दूत हैं और वे उन सबको बौधकर सुग्रीवके पास ले जाने ॥ १ ॥

कह सुग्रीव सुनहु सब जानर । जंग जंग करि पल्लव निस्तर ॥

सुनि सुग्रीव कवन कपि धाए । बोंधि कटक घट्ट पास फिराए ॥ २ ॥

सुग्रीवने कहा—सब जानरो ! जंग-जंग करि पल्लव निकल कर दो । सुग्रीवके वचन सुनकर जानर दौड़े । दूतोंके बौधकर उन्होंने सेनाके चारों ओर मुद्राया ॥ २ ॥

बहु प्रकार मारत कपि जाने । दीव पुनस्तव लक्षि न खरो ॥

तो हमारे हर जगहा जगहा । तेहि कोसकपीस कै जान ॥ ३ ॥

बानर उन्हें बहुत लखते मारने लगे । वे दीन होकर पुकारते थे; फिर भी बानरोंने उन्हें नहीं छोड़ा । [तब वृत्तेने पुकारकर कहा—] जो हमारे नाक-कान बाँटगा, उसे कौशल्यापीठ श्रीरामजीकी सौम्य है ॥ २ ॥

जुनि लक्ष्मण पद चिन्ह छोड़ा । लखि हँसि तुल्य छोड़ा ॥

राघव कर हीमनु बड़ पाती । लक्ष्मण सबन बाधु कुलपाती ॥ ३ ॥

वह तुल्यकर लक्ष्मणजीने सबको निकट बुलाया । उन्हें बड़ी दया लगी, इससे ईश्वर उन्होंने राक्षसोंको तुरंत ही बुझा दिया । [और उनसे कहा—] राक्षसोंके हाथमें यह चिड़ी देना [और कहना—] हे कुलपातक ! लक्ष्मणके अन्दों (लेंते से) जो गोँघो ॥ ४ ॥

शे—कहोड़ मुखागार सुख सन मम खैसु उधार ।

सीता वेद मिट्टु न त ब्यथा कालु तुम्हार ॥ ५ ॥

फिर जब गूँघे ज्वानीयह मेरा उधार (कृपासे मेरा दुआ) लक्ष्मण कहना कि सीताजी-को देकर उनसे (श्रीरामजीसे) बिछो; नहीं तो तुम्हारा लाल आ गया [समझो] ॥ ५ ॥

शे—तुल्य बाह लक्ष्मण पद आया । चले हूत बरसत गुन गंधा ॥

कहत गन उहु संको बाए । राघव बरन खैस विन्द बाए ॥ ६ ॥

लक्ष्मणजीके चरणोंमें सबक नवाकर श्रीरामजीके गुणोंकी कथा वर्णन करते हुए वह तुरंत ही चले दिये । श्रीरामजीका वस्त्र कहते हुए वे लक्ष्मणमें आये और उन्होंने राक्षसोंके चरणोंमें फिर नवाये ॥ ६ ॥

बिहसि दृष्टान्त हैसी बला । कहसि न बुझ आपनि दुसकाका ॥

जुनि कहु कथरि बिलीपन केरी । नहि कुराु बाई बसि तेरी ॥ ७ ॥

एतनुक राघवने ईश्वर बात पूछी—ओ मुक ! अपनी कुलका क्यों नहीं कहता ! फिर तब विनीतपणा समझाकर मुन, मनु जिसके अव्यक्त निजक आ गयी है ॥ ७ ॥

कहत राम लंका सब त्यागी । होहदि नव कर कीद जमतागी ॥

जुनि कहु भाहु कीस कलकई । कजिन काठ प्रेरित बलि बाई ॥ ८ ॥

मूर्खने राघव करते हुए लक्ष्मणको त्याग दिया । अभाग्य भव लौका कीड़ा (कुन) भोगे (जोके साथ बैठे कुन भी भिन्न जाता है, वैसे ही नर-बानरोंके साथ वह भी मारा जायगा) । फिर माह और बानरोंकी सेनाका हाल कह, जो कठिन काकरी प्रेरणासे यहाँ बड़ी आयी है ॥ ८ ॥

जिन्ह के लीव कर लखसा । अथ सुख मिल सिंधु बिचारा ॥

कहु लपसिन्ह है दात महेरी । जिन्ह के दुखें जल बसि मोरी ॥ ९ ॥

और जिनके नीकनर राक्षस क्रोड निरुपम वेचारा तुल्य बन गया है (अर्थात् उनके और राक्षसोंके बीचमें यदि कुछ व होता तो अवश्य राक्षस उन्हें मारकर खा गये होते) । फिर उन लक्ष्मणजीकी बात बता, जिनके दुखसे मेरा बड़ा कर दे ॥ ९ ॥

शे—की भइ भेंट कि फिरि कर अथन सुखसु सुनि मोर ।

कहसि न रिपु दल तेव बल बहुत बलित चित तोर ॥ १० ॥

उन्ते तेरी भेंट हुई आ वे जनसे मेरा दुखत तुल्य ही छोट गये । सन्तु-सेनाका सेव और दल बताओ क्यों नहीं ? मेरा चित बहुत ही भक्ति (मौन-वचन) हो रहा है ॥ १० ॥

शे—गाय हमा करि ईछेहु वैंस । मानहु कदा ओष रजि ॥

मिला बाह सब जलुव तुम्हार । नालहि राम तिलक तेहि साध ॥ ११ ॥

[इतने कहा—] हे नाथ ! जानने वैंस कुछ करते पूछ है, वैसे ही जोष होकर

मेरा कहना मानिये (मेरी बातपर विश्वास कीजिये) । नव आपका छोटा भाई श्रीरामजीते जाकर मिठा, तब उसके पहुँचते ही श्रीरामजीने उसको उन्मत्तिलक कर दिया ॥ १ ॥

रावन दूत हमदि सुनि कथा । कपिन्ह नीचि दीन्हें दुस्त पाता ॥

अवन नासिका फटै जाले । राम सख दीन्हें । हम जगने ॥ २ ॥

हम रावणके दूत हैं; यह कहनेसे सुनकर वानरोंने हमें नीचकर बहुत कष्ट दिये, यहाँतक कि वे हमारे नाक-कान काटने लगे । श्रीरामजीने अपना दिखतीपर कही उन्होंने हमको छोड़ा ॥ २ ॥

दूखिहु सख राम कंठकाई । बदन कोटि सत करनि न जाई ॥

नासा बख भावु कवि पाते । निकटावद विहाक भयकारी ॥ ३ ॥

हे नाथ ! आपने श्रीरामजीकी सेवां पूरी कीं वह तो सौ करोड़ें सुखोंते भी वर्जित नहीं की जा सकती । उनके रोंगेके माछ और वानरोंकी सेवा है, जो भयङ्कर मुखावाले, विहाक शरीरवाले और भयानक हैं ॥ ३ ॥

जेहि पुर खेद हवेद सुख तोरा । सकल कपिन्ह मई वैहि म्लघोरा ॥

अमित नाम मठ रहित करावे । अमित नाम कठ विपुल विहाका ॥ ४ ॥

जिसने नगरको जलाया और आपके हुए नक्षत्रकुमारको मारा, उतका म्लघोरा सब वानरोंमें योद्धा है । अरुण्य नामके बड़े ही कठोर और भयङ्कर योद्धा हैं । उनमें अरुण्य हाथियोंका बल है और ये बड़े ही विहाक हैं ॥ ४ ॥

रो—हिबिद मरद बीर कल बगद गद बिकटाति ।

बहिमुख केहरि निसल सठ आमवत बकरासि ॥ ५ ॥

हिबिद मरद, नीर, नर, अंगद, गर, निकटस, बहिमुख, केहरि, निराद, शठ और आमवान्—ये सभी कन्नड़ राशि हैं ॥ ५ ॥

बौ—ए कवि सब सुनीव समावा । हृन्त सम कोटिह कन्ध को बाना ॥

राम कुर्या अद्वित कल सिन्हाही । तुन समस—कैकेयि रागही ॥ ६ ॥

ये सब वानर बलों सुनीवके समान हैं और इनके जैसे [एक ही नहीं] करोड़ों हैं । उन बहुत-बोको गिन ही कौन सकता है । श्रीरामजीकी कृपासे उनमें अद्वितीय बल है । वे तीनों लोकोंकी तुल्य समान [तुल्य] समझे हैं ॥ ६ ॥

अस मैं सुका अवम वसकवर । पलुम अवरह बखर बहर ॥

नाथ कटक मई सो कवि गहरी । बी व तुम्हदि जैले रन-माही ॥ ७ ॥

हे दशग्रीव ! मैंने कानोंसे ऐसा सुना है कि अवरह पक्ष तो आपके वानरोंके सेनापति हैं । हे नाथ ! उस सेनामें ऐश कोई वानर नहीं है जो बाणभोरणमें न जीव सके ॥ ७ ॥

परम शोध सीवहि सब दया । आगसु पै न रीति रघुवाया ॥

शोधहि सिधु सहित हथ म्याका । फुहि न व भरि कुपर विहाका ॥ ८ ॥

सबके-सब अत्यन्त श्रेष्ठसे हथ म्याके हैं । पर श्रीरघुनाथजी उन्हें आज्ञा नहीं देंगे । हम मछलियों और कोंजसहित छुद्रछे सोल लगे । नहीं तो, बड़े-बड़े फलितोंसे उचे भरकर पूर (पाट) देंगे ॥ ८ ॥

महि गद मिखाहि वससीका । वेसेह पवन कहि अम फीका ॥

गर्वाहि तर्वाहि, सख असाका । गान्दु अरुन जल, दहि लंका ॥ ९ ॥

और रावणको मल्लंकर धूलमें गिन्न देंगे । सब वानर ऐसे ही वचन कह रहे हैं । सब सज्जन ही निरर हैं; इस प्रकार गलते और उगटते हैं अनो कछुको निगल ही जाना चाहते हैं ॥ ९ ॥

दो०—सहज सूर कपि मानु संव पुनि, सिंर पर प्रभु राम ।

रावन फास कोटि कहै बीति सकहि संगम ॥ ५५ ॥

सब बाहर-भर खच ही सुखी है, फिर उनके फिर प्रभु (सर्वेश्वर) श्रीरामजी है । वे-रावण ! वे-संगममें फरोही कलमेंसे जीत सकते हैं ॥ ५५ ॥

चौ०—राम तेज कह बुधि विदुष्यह । सेव सहस सत सकहि न गार्ह ॥

सक कर एक सोधि सत सागर । तब आरति पूछेद मय नागर ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके तेज (सम्पूर्ण), वह और बुद्धि की अधिकताको त्यों शेष भी नहीं गा सकते । वे एक ही बातसे सैकड़ों समुद्रोंको सोस सकते हैं, परन्तु नीतिनिपुण श्रीरामजीने [नीतिही रहाने के बिना] आपके माईसे उपाय पूछा ॥ १ ॥

रामु बचन सुनि सागर पाही । माय संव कृपा मय माहीं ॥

मुनत बचन बिहसा दलसीस । औ बसि मति सहज कृत बीसा ॥ २ ॥

उनके (आपके माईके) बचन सुनकर वे (श्रीरामजी) समुद्रसे राह माँग रहे हैं, उनके मनमें कृपा भरी है [हृदयमें वे उसे सोचते नहीं] । इसके वे बचन सुनते ही रावण खल बैसा [और बोला—] क्या ऐसी बुद्धि है, सभी दो जनोंको सहज बनाना है ॥ २ ॥

सहज मति कर बचन कहाई । सागर सम खरी मचसाई ॥

बूढ़ दया का ! करति कहाई । रिपु कह बुद्धि बाह मै पाई ॥ ३ ॥

सामाधिक ही इसके किसी-एकके बचनको प्रमाण करते उन्होंने समुद्रसे मचलना (शक्य) जना है । ओरे मूर्ख ! इटी कहाई सब करता है ! वह ! मि तपु (राम) के वह और बुद्धिही बाह पा ली ॥ ३ ॥

सखि क्षणीत विभीषण-काहें । विलस विभूति कहाँ जग ताहें ॥

सुनि जग बचन दूत तिस बाढ़ी । समव विचारि पथिका काढ़ी ॥ ४ ॥

सिनेके विभीषण-जैला इत्येक मन्त्रीहो, उसे समझमें विभव और विभूति (देख्य) कहाँ हुए आपनेके बचन सुनकर दूतको शोध नद आया । उसमें सैकड़ समझकर पथिका निकाली ४

रामाहुँब दीन्ही यह शरी । बाध बचाह । दुखबहु छाती ॥

बिहसि बाध कर दीन्ही तब । सखि बोकि सत कथा बचनन ॥ ५ ॥

[और कहा—] श्रीरामजीके छोटे माई अक्षयसे यह पथिका दी है । हे नाथ ! इसे बंधनकर छाती ठेकी थीजिये । रावणने हँसकर उसे बाधें हाथसे लिया और मन्त्रीको बुझाकर वह मूर्ख-उठे नैचाने जगा ॥ ५ ॥

दो०—पातनह मनहि सिद्ध सह जनि चालसि कुछ बीस ।

राम विरोध न उपरासि सरन विष्णु मज ईस ॥ ५६(क) ॥

[पथिकोंमें लिया का—] ओरे मूर्ख ! केवल बातोंसे ही मनको रिहाकर अपने मुक्तो नष्ट-प्रष्ट न कर । श्रीरामजीसे विरोध करके तू निष्णु, बल और मोहपकी धरम जानेपर भी नहीं बचेगा ॥ ५६ (क) ॥

कौ लखि मान मनुज हव प्रभु पर पंकज सुंय ।

होदि कि राम स्यामल बल कुछ सहित पतंग ॥ ५६(ख) ॥

या तो अमिमान छेदकर अपने छोटे माई विभीषणकी भोति प्रभुके चरण कमलेंक अक्षर-वन जा । जगत् है दुष्ट । श्रीरामजीके बाणस्त्री जगिमें अस्त्रिरसहित पतंगा हो जा (दोनोंमेंसे जो अच्छा कमे तो कर) ॥ ५६ (ख) ॥

चौ०—सुनत समय मन सुख सुसुधाई । कहत दसामन सबहि सुनाई ॥

भूमि परा कर गहत शनसरा । सधु तापस कर धरा बिकसा ॥ १ ॥

पश्चिम सुनते ही राकष मनमें मयभीत हो गया, परन्तु सुधरे (अनरते) सुकयता हुआ वह सबको सुनाकर कहने लगा—जैसे कोई पृथ्वीपर पड़ा हुआ हाथसे आकाशको पकड़नेकी चेष्टा करता हो, वैसे ही वह छोटा तपस्वी (उद्गम) वाग्मिजस्य करता है (भीम हाँकता है) ?

कह सुक नाथ सत्य सब बाखी । समुद्रहु जगि प्रकृति अभिमानी ॥

सुखु घषत मम परिहरि श्रेषा । नाथ राम सब तबहु बितोषा ॥ २ ॥

शुक (दूत) ने कहा—हे नाथ ! अभिमानी स्वभावको छोड़कर [इस पत्रमें लिखी] सब बातोंको सत्य समझिये । श्रेष छोड़कर मेरा वचन सुनिये । हे नाथ ! श्रीरामजीसे वैर त्याग दीजिये ॥ २ ॥

भक्ति कोमल छुपीर सुमनस । बहुरि बहिरु लोक कर राज ॥

निजत रूप तुह पर प्रभु करिही । तर अवराध न एकद बरिही ॥ ३ ॥

यद्यपि श्रीरघुवीर समस्त लोकमें स्यामी हैं, पर उनका सम्भाव आनन्द ही कोमल है । मिलते ही प्रभु आपस छुप करके और भावका एक भी अवराध से हृदयमें नहीं रखेंगे ॥ ३ ॥

जगकसुता रघुनाथहि दीजे । एतवा कहा मौर प्रभु कीजे ॥

जग तेहि कहा ऐव बैदेही । परम प्रहार कीन्ह सब तेही ॥ ४ ॥

जानकीजी श्रीरघुनाथजीको दे दीजिये । हे प्रभु ! इतना कहकर मेरा कीजिये । जब उस (दूत) ने जानकीजीको देनेके लिये कहा, तब दुष्ट रावणने उसको जत मारी ॥ ४ ॥

नाह परम सिध जग से तहाँ । कृपासिधु रघुनाथक चहाँ ॥

करि प्रणामु बिच कहा सुनाई । तम कृपां लपति बलि पाई ॥ ५ ॥

वह भी [बिभीषणकी मौलि] चरणोंमें सिर नवाकर वहीं चला गहाँ कृपाशगर श्रीरघुनाथजी से । प्रणाम करके उसने अपनी कथा सुनायी और श्रीरामजीकी कृपासे अपनी गति (मुक्ति) लस (पायी) ॥ ५ ॥

विधि आसि कीं सधु भवानी । राक्षस जघट रहा मुचि भानी ॥

बेदि राम बह बरहिं बारा । मुचि विज आसन कहै पनु बारा ॥ ६ ॥

[शिवजी फटते हैं—] हे मन्थनी ! वह अपनी मुनि या, आरंभ मुनिके शापसे राक्षस हो गया था । बार-बार श्रीरामजीके चरणोंमें नन्दना करके वह मुनि अपने आश्रमको बल गया ॥ ६ ॥

दो०—बिनय न मानत जखनि जहु गर तीनि दिन बीति ।

बोले राम सकोष तब सथ बिनु छोड़ न प्रीति ॥ ७ ॥

इधर तीन दिन बीत गये, किन्तु वह समुद्र विनय नहीं मानता । सब श्रीरामजी को बसहि बोले—बिना मयके प्रीति नहीं होती ! ॥ ७ ॥

चौ०—कछिमन बान समस्त जन् । सोयी करिधि विविध जन्म ॥

सब सग विनय कुटिल सब प्रीति । सहज कृपन सध सुंदर नीति ॥ १ ॥

हे उद्गम ! धनुष-बाण धारण, मैं जमिनाको समुद्रको घोल दार्ज । मूर्खसे विनय, कुटिलके साथ प्रीति, सामानिक ही कर्मसे सुन्दर नीति (उदात्ताका उपदेश), ॥ १ ॥

ममता सब सब ग्याल कहानी । बति छोटी सब बिति पजानी ॥

मोधिहि सम कामिहि हरि कया । परसर नीध कहै एक बया ॥ २ ॥

ममतामें कैसे हुए मनुष्यके जानकी कथा, अलन्य जेमीसे वैराग्यका वर्णन, मोधीसे

शम (शान्ति) की बात और कामीसे मनवन्शी क्या, इनका पैसा ही फल होता है जैसा उत्तरमें बीच बोलनेसे होता है (अर्थात् उत्तरमें बीच बोलनेकी भाँति वह सब व्यर्थ जाता है) ॥ १ ॥

अस कहि रघुपति अक्ष चक्षक ॥ यह भूत कछिमन के सर भावा ॥

संभवेन प्रभु निमिष कल्पन ॥ वही तदधि तर अंतर व्यासा ॥ ३ ॥

ऐसा कहकर श्रीरघुनाथजीने प्रभु चढ़ाया ॥ वह गत, लक्षणजीके मनको बहुत मन्त्रा लगा ॥ प्रभुने सभानक [जगि] बाण सन्धान किया, जिससे समुद्रके द्वारके अंदर अग्निजी लज्जा उठी ॥ ३ ॥

नकर तरप हय शव बहुमने ॥ जख जाँहु गच्छविधि जन जाने ॥

कक वाह अरे मनि नव नाथ ॥ किप्र सब भायक तकि नामा ॥ ४ ॥

भगर, सौं तथा भक्तियोंके समूह व्याकुल हो गये ॥ सब समुद्रने जीर्णोन्नी लखे जाना, तब सोनेके चाखमें अनेक मणियों (रत्नों) को भरकर अभिमान छोड़कर वह प्राक्षणके रूपमें आया ॥ ४ ॥

दो०—काटेहि पर करी पर छोटे जल कोर सींच ।

यित्य न भाव खनेस सुतु काटेहि पर नव नीच ॥ ५ ॥

[काकपुष्पावली करते हैं—] हे मन्कुषी ! तुमिने, चाहे कोई करोषीं उपाय करके सींचे, पर केवल तो काटेनेर ही फल है ॥ नीच बिनबटे नहीं मानता, वह बाँटेनेर ही फल है (राखेर भाव है) ॥ ५ ॥

औ०—समय सिद्ध यहि पद प्रभु करे ॥ समुद्र नाथ सब जगमुन मेरे ॥

सयन समीर भक्त कक धरनी ॥ इन्द्र कह नाथसहस्र अक्ष करी ॥ १ ॥

समुद्रने मयमोद होकर प्रभुके चरण पकड़कर कहा—हे नाथ ! मेरे सब अधिपति (दोष) क्षमा कीजिये ॥ हे नाथ ! आश्रय, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—इन सबकी करनी सम्भावने ही अक्ष है ॥ १ ॥

तब धरित समीं उपस्य ॥ यहि हेतु सब प्रबंधि यह ॥

प्रभु भ्राम्यु कैहि कईलत यहै ॥ सो तेहि मीति रहै सुख कहै ॥ २ ॥

आपकी प्रेरणासे भगवाने इन्हीं श्रुतिके लिये उत्पन्न किया है, उन श्रुतियोंकी वही गाम्य है ॥ जिसके लिये स्थायीकी जैसी आकाश है; वह तभी प्रकारसे रहनेमें सुख पाता है ॥ २ ॥

प्रभु भक्त कोन्ह मोहि किस दीपरी ॥ सखावा पुनि दुखरी दीपरी ॥

दोष गौरि यह प्रभु गरी ॥ समस्त सखा के अधिकारी ॥ ३ ॥

प्रभुने मन्त्रा किया जो मुझे निष्ठा (दण्ड) की ॥ किन्तु मर्यादा (जीर्णोन्नी सभाय) भी आपकी ही बनानी हुई है ॥ दोष, यैवार, भूत, पाप और क्षी—ये सब दण्डके अधिकारी हैं ॥ ३ ॥

प्रभु प्रसन्न मैं जात सुखार्थ ॥ उचरिहि कच्छ प्र. मोरि, कहाई ॥

प्रभु जन्म अपेक्ष सुनि आई ॥ कहीं जो केहि जो इन्द्रहि सोहार्थ ॥ ४ ॥

प्रभुके प्रतापसे मैं सुख नार्जना और तेना पर उत्तर जावनी, इन्हीं मेरी कहाई नहीं है (मेरी मर्यादा नहीं देखी) ॥ तथापि प्रभुजी वास्तव अपेक्ष है (अर्थात् आपकी आशाका उत्पन्न नहीं हो सकता) ॥ ऐसा वेद गाते हैं ॥ जब आपको जो अच्छा लगे, मैं हुरंग वही करूँ ॥ ४ ॥

दो०—सुखत विनीत वचन मति फल कृपात सुमुखाय ।

अहि निधि उतरै अपि कटक तात से कहहु उपर ॥ ५ ॥

समुद्रके अत्यन्त विनीत बचन सुनकर कुपारु भीरमजीने मुसकराकर कहा—हे ताव !
जिस प्रकार वानरोंकी सेना पर उतर जाय, वह उपाय बताओ ॥ ५९ ॥

चौ०—नाथ नील नल कधि हौ आई । छरिकाईं रिनि आसिष पाई ॥

तिन्द कें परस किं विरि मारे । तरिहदि जलधि प्रताप तुम्हारे ॥ १ ॥

[समुद्रने कहा—] हे नाथ ! नील और नल दो खनर भाई हैं । उन्होंने
समुद्रकपनमें श्रुषिते आजीर्वाद पाया था । उनके स्वर्ग कर सेनेसे ही भारी-भारी पहाड़
भी आपके प्रतापसे समुद्रपर तैर जायेंगे ॥ १ ॥

मैं पुनि दर धरि प्रभु प्रभुचर्य । कछिउं कल मनुमान सहाई ॥

एहि विधि नाथ पयोधि वेधाहक । वेदिं यह सुबसु लोक तिहुं गाह्य ॥ २ ॥

मैं भी प्रभुकी प्रभुताको हृदयमें धारण कर अपने बलके अनुसार (जहाँतक
मुझसे बन पड़ेगा) सहायता करूँगा । हे नाथ ! इस प्रकार समुद्रको बँधाह्ये, जिससे तीनों
लोकोंमें आपका सुन्दर वल गाया जाय ॥ २ ॥

एहि सर मम उत्तर तट वाली । इसहु नाथ सख कर कल रासी ॥

मुनि कुपारु सागर मम पीर । तुलहि इरी तम रणधीरा ॥ ३ ॥

इस बाणसे मेरे उत्तर तटपर रहनेवाले पापके घाति दुष्ट मनुष्योंका वध कीजिये ।
कुपारु और रणधीर भीरमजीने समुद्रके मन्त्री कीड़ा सुनकर उठे तुरंत ही हर किना
(अर्थात् बाणसे उन दुष्टोंका वध कर दिया) ॥ ३ ॥

देखि राम कल प्रीत्य भारी । इरि पयोविधि मयस सुखारी ॥

सकल चरित कछि प्रभुदि भुगवा । यत्न वेदि पायोधि सिधाया ॥ ४ ॥

भीरमजीका भारी वल और प्रीत्य देखकर समुद्र हर्षित होकर मुसी हो गया । उसने
उन दुष्टोंका वध चरित प्रभुसे कह सुनाया । फिर चरणोंकी कल्पना करके समुद्र बल्य गया ॥

छं०—निज भवन गवनेउ सिंधु भीरघुपतिहि यह मत भायक ।

पह चरित कलि मलहर अघामति दास तुलसी गायक ॥

सुख भवन संसय समन दचन विपाद् रघुपति गुन गवा ।

तलि सकल भास भरोस गावहि सुनहि संतत सट मवा ॥

समुद्र अपने घर चला गया, श्रीरघुनाथजीके वह मत (उसकी लकाह) अच्छा
लगा । यह चरित कलियुगके पापोंको हरनेवाला है, इसे दुखहीदायने अपनी
हृदिके अनुसार गाया है । श्रीरघुनाथजीके गुणगान सुनकरे नाम सन्देशना नाथ करने-
वाले और विषादका दमन करनेवाले हैं । मेरे मूल मन ! तु सँभारको सब आस्था-भरोसा
त्यागकर निरन्तर इन्हें गा और सुन ।

दो०—सकल सुमंजस दायक रघुनाथक शुभ गाव ।

सावर सुनहि ते त्र्यहि मम सिंधु चित्त जलजान ॥ ६० ॥

श्रीरघुनाथजीका गुणगान सम्पूर्ण सुन्दर मन्त्रोंका देवेनात्म है । जो इसे आदर-
सहित सुनेगे, वे बिना किसी जहाज (जन्म साधन) केही मकसागरको तर अवधिगे ॥ ६० ॥

मासपारायण, चौबीसवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविचित्रं पञ्चमः सोपानः समाप्तः ।

कलियुगके लम्बा पापोंका नाश करनेवाले श्रीरामचरितमानसका यह चौबीसवाँ सोपान
समाप्त हुआ । (सुन्दरकाण्ड समाप्त)

अनागतवत्सलता



हुण किभीपन पाछें मेल ।
सन्मुख राम सहै सोर सेल ॥

•

1

|
3
4

5

6

7

मन्दोदरीकी पतिसे प्रार्थना



बल नार सिंह भंडारु रोष ।

सुनहु वसन पिय परिहरि कोष ॥ [छ ५८०]

मोक्षदायकः
श्रीवृन्दकीर्तनमो निबन्धने

श्रीरामचरितमानस

षष्ठ सोपान

लंकाकाण्ड

श्लोक

रामं कामारिसेव्यं भवभयहरणं कलत्रप्रसेमसिंहं
योगीन्द्रं शत्रुघ्नं गुणविधिमन्त्रितं निर्गुणं निर्विकारम् ।
मायातीतं सुरेशं कलत्रधनिरतं ब्रह्महृन्महोदधेयं
वन्दे कन्दावदातं सरसिजनन्यनं देवमुर्वीशरूपम् ॥ १ ॥

कामदेवके शत्रु मित्रजीके सेव्य, भव (जन्म-मृत्यु) के भयको हरनेवाले, कालकस्य मतवाले शत्रुकी छिमे सिंहके समान, योगियोंके स्वामी (योगीश्वर), रामके द्वारा जामने योग्य, गुणोष्की निधि, अजेय, निर्गुण निर्विकार, मायासे परे, देवताओंके स्वामी, ब्रह्मके वक्षमें तत्पर, ब्राह्मणहृन्महोदधके प्रक्रमान देवता (रक्षक), कलशके मेघके समान शुद्धर वराम, कमलजे-से नैववाले, वृक्षीश (राजा) के रूपमें परमदेव श्रीरामजीकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

राज्येन्द्रममतीवसुन्दरतुल्यं साङ्ख्यधर्ममन्त्रं
कालव्यालकपालमूषणधरं गङ्गाशाश्वप्रियम् ।
काशीशं कलिकलमयीवशमर्थं कल्याणकल्पद्रुमं
सौमीक्यं गिरिजापतिं मुष्कनिधिं कन्दर्पहं शङ्करम् ॥ २ ॥

राज्य और चन्द्रमाली-सी कान्तिके अत्यन्त सुन्दर शरीरवाले, व्याधचर्मके धारवाले, कालके समान [अथवा काले रंगके] मयानक सर्रास मूषण धारण करनेवाले, गङ्गा और चन्द्रमाके प्रेमी, काशीपति, कलियुगके पाप-समूहका नाश करनेवाले, कल्याणके कल्पद्रुम, शुभोंके निधान और कल्याणके मयार करनेवाले पार्वतीजीके वन्दनीय श्रीशङ्करजीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

यो ददाति सर्वां शम्भुः कैवल्यमपि दुर्लभम् ।
सत्त्वार्ना दण्डकयोऽसौ शङ्करः शं तनोतु मे ॥ ३ ॥

जो सत्त्वस्थो तो अत्यन्त दुर्लभ कैवल्यश्रुतिक दे गळते है और जो दुष्टोंको दण्ड देनेवाले है, वे कल्याणकारी श्रीशम्भु मेरे कल्याणमें निश्चार करें ॥ ३ ॥

दो—जब निमेष परमातु जुग वरण कलत्र सर चंड ।

ममसि न भव तेहि राम को कलत्र जायु कोदंड ॥

कह, निमेष, समान, सब युग और कल बिनके प्रचण्ड राग हैं और काह
त्रिनका भनुप है, हे भन ! तू उन श्रीरामजीके क्यों नहीं भजत !

श्री—सिधु बयास सुनि राम सचिव बोलि प्रभु प्राप्त कहेउ ।

अब बिलंबु केहि काम करहु सेतु उतरै कउकु ॥

सुनके वचन सुनकर प्रभु श्रीरामजीने लक्ष्मणजीके बुझकर ऐसा कहा—अब
सिद्ध बिलंबु हो रहा है ! सेतु (पुल) तैयार करो, विलम्ब सेना उठे !

सुबहु मातृकुल केतु गामर्ष्य कर औरि कह ।

साथ नाम तब सेतु तर चढ़ि मय सागर तरहि ॥

जानकाने हाथ छोड़कर कहा—हे सूर्यकुलके जल-स्वल्प (कीर्तिसे बढ़ने-
वाले) श्रीरामजी ! मुनिने । हे नाभ ! [जलै बड़ा] सेतु तो जानक नाम ही है, भिन्न
बचकर (बिना प्राण्य लेकर) मातृ कुलकी अनुपम पार हो जाते हैं ।

श्री—यह सब कहवि लख कति बात । अब सुनि मुनि कह परमकुमार ॥

प्रभु प्रभाव ब्रह्मविक भारी । सोईह प्रथम पद्येविधि भारी ॥ १ ॥

फिर यह श्रेष्ठ-तब उक्त पार करनेमें किन्ती देर होगी ! ऐसा सुनकर फिर
जानकामा श्रीरामजीने कहा—प्रभुका प्रचार माटी ब्रह्मविक (अनुपम भाग) के
समान है । इसने पहले उक्तके लक्ष्य को खोज लिया ॥ १ ॥

तब रिपु गरी रह्य लख धारा । नरेड, बहोरे भयद केहि कार ॥

सुनि कवि कहवि पवनपुत्र केरी । हरे करि लखति कर हेरी ॥ २ ॥

परम भावसे अनुपमोंके चित्तोंके आँखोंकी चमके यह फिर मर गया और उसीसे
कार भी हो गया । इन्द्रजितकी यह भलुकि (भयङ्कर-लूच-पुकि) सुनकर जानक
श्रीरामजीकी और रसकर वर्णित हो गये ॥ २ ॥

गामर्ष्य बोले होत माई । लख गीहहि सब कहा सुनाई ॥

तब प्रचार सुनिनि मय माई । कहु सेतु प्रवास कहु माई ॥ ३ ॥

जानकाने गम-नील रोमी माइयोंको बुझकर उन्हें चारी कहा वह सुनायी
[और कहा—] मर्त्य श्रीरामजीके प्रवाससे स्तब्ध बने के लक्ष्य देख करों [रामप्रान्तसे]
कुछ भी परिभन नहीं होता ॥ ३ ॥

बोले किहू कवि बिचर कोरी । लख सुबहु विपत्ति कहु मोरी ॥

तब बल पंजन कर कहू । कौतुक एक मातु करि कहू ॥ ४ ॥

फिर जानकीके आँखोंके बुझ लिया [और कहा—] अब सब लोग मेरी कुछ
मिली मुनिने । जन्मे हृदयमें श्रीरामजीके ललामयल्लोके भावण कर लेनिये और वह
माइ और जानक एक लेक कीजिये ॥ ४ ॥

काबहु मर्ष्य बिचर बहमा । जाबहु बिचर विविन्ध के दूषा ॥

सुनि कवि मातु फले करि हूहा । तब लुबध प्रवास समुद्रा ॥ ५ ॥

विषम जानकीके लख (जल) बौद्ध खावे और कुछों तथा पर्वतोंके समुद्रोंके
उत्साह हारये । यह सुनकर जानक और माइ हुए (हुंकार) करके और श्रीरामजीके
प्रवास-समुद्रों [जल-प्रवाहोंके पुंज श्रीरामजीके] क्या पुकारते हुए फले ॥ ५ ॥

श्री—कति उताव निरि लख लीलाहि केहि उताह ।

अबि केहि नल चीलहि रचहि ते सेतु कवह ॥ ६ ॥

बहुत लेंचे-जेंचे पर्वतों और बुझाओ खेसकी तरह ही [सखाकर] उठा लेते हैं और छा-साकर नल-नीलको देते हैं। वे अच्छी तरह गढ़कर [सुन्दर] सेतु बनाते हैं ॥१॥

चौ०—सैल बिसाल जगति कपि देहीं। कंधुक दृष्य बलं वीर्य ते केहीं ॥

देखि सेतु अति सुन्दर रचना। विहसि ह्यगिनि बोले वचना ॥ १ ॥

बानर बड़े-बड़े पहाड़ ज-साकर देते हैं और नल-नील उन्हें गंदकी तरह ले लेते हैं। सेतुकी अत्यन्त सुन्दर रचना देखकर कुमायिन्नु श्रीरामजी हँसकर वचन बोले— ॥ १ ॥

परम, रम्य उत्तम यह वस्ती। महिमा अमित साह महिं धरती ॥

करिहैं इहाँ संसु थापना। मेरे हृदय परम कल्पना ॥ १ ॥

आ (यहाँकी) भूमि परम रमणीय और उत्तम है। इसकी असीम महिमा वर्णन नहीं की जा सकती। मैं यहाँ शिकारीकी स्थापना करूँगा। मेरे हृदयमें यह महान् संकल्प है। ॥२॥

सुखि करील माह दूत फटाए। मुनिवर सकल धेकि लै जाए ॥

किंग थापि विधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न पाया ॥ १ ॥

श्रीरामजीके वचन सुनकर बानरराज सुप्रोचने बहुतसे लाल मेले, जो सब ब्रह्म मुनियोंको बुलाकर ले आये। शिवलिंगकी स्थापना करके विधिपूर्वक उच्छ्वास पूजन किया। [फिर भाग्यार बोले—]

शिवजीके समान मुझको वृत्त कोई प्रिय नहीं है ॥ २ ॥

सिख द्रोही मम भगत कहाहा। सो नर सरनेहुँ मोहि न पाया ॥

संकर विमुक्त भक्ति यह मेरी। सो कसकी मूल मति मेरी ॥ २ ॥

जो शिवसे प्रेम रखता है और मेरा आत्म कदवता है, वह मनुष्य स्वप्नमें भी मुझे नहीं पाया। बाह्यराजीसे विमुक्त होकर (विरोध करके) जो मेरी भक्ति चाहता है, वह नरकनाभी, मूर्ख और अत्युद्धि है ॥ ४ ॥

चौ०—लंकाप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास ।

ते नर करहिं कल्प भरि घोर नरक महुँ पास ॥ २ ॥

जिनको शङ्करजी प्रिय है, परन्तु जो मेरे द्रोही हैं; एवं जो शिवजीके द्रोही हैं और मेरे दास [बनना चाहते] हैं, वे मनुष्य इत्यादि घोर नरकमें निवास करते हैं ॥ २ ॥

चौ०—जो रामेश्वर दसहुँ करिहहिं। ते तबु तजि मम लोक सिबिहहिं ॥

जो रामानन्द थापि कहाहि। सो समस्त मुक्ति नर पाहि ॥ ३ ॥

जो मनुष्य [मेरे स्थापित किये हुए इन] रामेश्वरजीका दर्शन करेंगे, वे शरीर छोड़कर मेरे लोकको जायेंगे। और जो शङ्करजीका स्मरण इनपर चढ़ायेगा, वह मनुष्य श्रापमुक्त मुक्ति पावेगा (अर्थात् मेरे पास एक हो जायगा) ॥ १ ॥

होइ अकाम जो छल तजि सेहहि। भक्ति जोनि तेहि संकर देहहि ॥

मम छल सेतु जो दसहुँ करिही। सो विपु मम अलगावर तरिही ॥ २ ॥

जो छल छोड़कर और निष्काम होकर श्रीरामेश्वरजीकी सेवा करेंगे, उन्हें शङ्करजी मेरी भक्ति देंगे। और जो मेरे मनसे सेतुका दर्शन करेगा, वह निन्द ही परिश्रम संचाररूपी समुद्रसे तर जायगा ॥ २ ॥

राम वचन सब के प्रिय भाए। सुनिकर निज निज आनन भाए ॥

गिरिजा रघुपति कै यह सीती। संसु करहिं प्रवध पर प्रीती ॥ ३ ॥

श्रीरामजीके वचन सबके मनमें अच्छे लगे। उदयनर ने ब्रह्म मुनि अपने-अपने भाषमोंको लौट आये। [शिवजी कहते हैं—] हे पार्वती! श्रीरघुनाथजीकी यह रीति है कि वे शरणभाष्यर क्या प्रीति करते हैं ॥ ३ ॥

बौधा सेतु पीछ नल वानर । राम कुर्यो जसु मयद उजागर ॥
 बहहि आनहि बोरहि बैदै । मए उषक मोहित सम तेई ॥ ४ ॥
 चतुर नल और नीछने सेतु बाँधा । श्रीरामजीकी कृपासे उनका यह [उज्जल]
 यश सर्वत्र फैल गया । जो फरपर आप हूवते हैं और दूसरोंको बुझा देते हैं, वे ही जहाजके
 समान [स्वयं तैरनेवाले और दूसरोंको पार ले जानेवाले] हो गये ॥ ४ ॥
 महिमा यह न छलधि कह करवी । पाइव सुव न कपिन्ह कह करवी ॥ ५ ॥
 यह न तो समुद्रकी महिमा वर्णन की गयी है, न फरपोंका गुण है और न वानरोंकी
 ही कोई बरामदा है ॥ ५ ॥

दो०—श्री रघुवीर प्रताप से सिंधु तरे पाषाण ।
 ते मतिमंद जे राम लखि मखहि जह प्रभु आन ॥ १ ॥
 श्रीरघुवीरके प्रतापसे पत्थर भी समुद्रपर तैर गये । ऐसे श्रीरामजीको छोड़कर जो
 किसी दूसरे स्वामीको जाकर मजते हैं वे [निश्चय ही] मन्दबुद्धि हैं ॥ १ ॥
 चौ०—बौधि सेतु भलि सुख बचवा । देखि कृपानिधि से मन भावा ॥
 बाँधी सेन कहु बचनि न जाई । गजहि मर्छत मट समुद्राई ॥ १ ॥
 नल-नीछने सेतु बाँधकर उसे बहुत मजबूत बनाया । देखनेपर वह कृपानिधान
 श्रीरामजीके मनको [बहुत ही] अच्छा लगा । सेना चली, जिसका कुछ वर्जन नहीं हो
 सका । बोझा वानरोंके समुदाय गरम रहे हैं ॥ १ ॥
 सेतुबंध भिग बहि रघुवई । पितव कृपाक सिंधु बनुताई ॥
 देखन काँहु प्रभु कवना कंहा । प्रकट भए सब जलधर बुंदा ॥ १ ॥
 कृपासे श्रीरघुनाथजी सेतुबन्धके तटपर चढ़कर समुद्रका बिसार देखने लगे ।
 कवनाक (कवनाके मूक) प्रभुके दर्शनके लिये सब जलधरोंके समूह प्रकट हो गये
 (जलके सगर निकल आये) ॥ २ ॥

मकर मक बाजा सब म्माकर । सब बौबब सब परम बिसाका ॥
 म्मासेठ एक तिन्हहि जे काहीं । पृच्छत केँ कर तेरि बैराहीं ॥ १ ॥
 बहुत तरहके मगर, नाक (बकियाक), मच्छ और सर्प ये, मिलके सौ-सौ बोजनके
 बहुत बड़े विशाल शरीर थे । कुछ ऐसे भी जन्तु थे जो उनके भी-सा जायें । किसी-
 किसीके करछे ती वे भी डर रहे थे ॥ १ ॥

प्रभुहि विडीकहि टाहि न लरे । मन हरषित सब भए सुखारे ॥
 तिन्ह कोँ जोट न देखिन धरी । मगम भए हरि कम निहारी ॥ ४ ॥
 वे सब [वैर-विरोध गूल्कर] प्रभुके दर्शन कर रहे हैं, हटनेसे भी नहीं हटते ।
 सबके मन हर्षित हैं, सब सुखी हो गये । उनकी आदके कारण सब नहीं दिखायी पड़ता ।
 वे सब मगवानका रूप देखकर [आनन्द और प्रेममें] मग हो बरे ॥ ४ ॥
 चला कटक प्रभु आपसु जाई । जे कहि सक कपि एक विपुजाई ॥ ५ ॥
 प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर सेना चली । वानर-सेनाभी विपुला (अत्यधिक)
 हस्ता) की कौन कह सकता है ॥ ५ ॥

दो०—सेतुबंध भइ भीर अति कपि नम पंच बह्महि ॥
 अपर जलचरनिह ऊपर चढ़ि चढ़ि पावहि जाई ॥ ४ ॥
 सेतुबन्धपर वही भीड़ हो गयी, इससे कुछ वानर-आकांक्षमार्गसे उठने लगे । और
 दूसरे [कितने ही] ऊपर नीचे चढ़-चढ़कर पार का रहे हैं ॥ ४ ॥

चौ०—भस कौतुक बिलेकि हो गार्ह । बिहिसि चले अनास . रघुराई ॥
 सेन सहित खरे खुबीस । कहि न जाइ अपि नृपन मीरा ॥ १ ॥
 कृपलु रघुनायकी [तथा अलमनी] दोनों गार्ह ऐस कौतुक देखकर हँसते हुए
 चले । श्रीरघुवीर सेनासहित समुद्रके पार हो गये । वानरों और उनके सेनापतिपौकी भीड़
 कही नहीं जा सकती ॥ १ ॥

सिंधु पार प्रभु ॥ कीन्हा । सकल अपिन्ह कई अवसु दीन्हा ॥
 शाहु खइ फल सूख सुखइ । सुखत बखु अपि कई तई धाए ॥ २ ॥
 प्रभुने समुद्रके पार डेर डाल्य और सब वानरोंने आवा दी कि तुम जाकर सुन्दर
 फल-मूल खाओ । यह सुनते ही रीक-बानर बहाँ-तहाँ दौड़ पड़े ॥ २ ॥

सब सह परे राम हित छासी । सिंधु अरु कुसिन्धु फल बलि ध्यानी ॥
 जाहि मरुत फल भितप हलवाई । कंक सम्पुत्र सिन्धु पकामहि ॥ ३ ॥
 श्रीरामजीके हित (सेवा) के लिये सब इस शत्रु-कुशत्रु—समयकी गतिसे
 छोड़कर फल उठे । वानर-आइ मीठे-मीठे फल खा रहे हैं, धुजोंको दिख रहे हैं और
 पर्वतोंके शिखरोंको झुकाकी और फेंक रहे हैं ॥ ३ ॥

अई कई निमत निसरकर पामहि । घेरि सकल बहु नाच नचामहि ॥
 दसबन्दि जाहि वासिका काप । कहि प्रभु मुमसु देखि सब बाजा ॥ ४ ॥
 भूतते-फिते गहाँ-कहीं किसी राखकसे पा जाते हैं तो सब उसे घेरकर सब नाच
 नचाते हैं और दोंधे उसके नाच-खन काटकर, प्रभुका सुख कहकर [अपना
 कहाँकर] सब उसे जाने देते हैं ॥ ४ ॥

किन्हा कर भला काज निपाता । किन्हा राखनि कही सब बाता ॥
 सुगत सबन जातिधि वंछन । दस मुख बोकि सब बलुकावा ॥ ५ ॥
 जिन राखकोंके नाक और कान काट डाले गये, उन्होंने राखणसे सब समाचार
 कहा । छत्र [पर छेद] का बोंचा जाना जानते सुनते ही राखण सबकाकर वहाँ मुसँसे
 बोल उठा—॥ ५ ॥

दो०—बौज्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस ।
 सत्य सोधनिधि कंठधि उदधि पयोधि नवीस ॥ ५ ॥
 बननिधि, नीरनिधि, जलधि, सिंधु, बारीस, सोधनिधि, कंठधि, उदधि, पयोधि,
 नवीसको क्या सबमुख ही बोंच लिया ॥ ५ ॥

चौ०—निज बिलकल बिभारि बहोरी । बिहिसि गमइ गुह करि सब भोरी ॥
 मंदोदरी सुन्यो प्रभु आव्यो । कौतुकहीं बाधोधि बैचायो ॥ १ ॥
 फिर अपनी बिलकलको बिभारि [समरसे] हँसत हुआ, सबको सुलकर,
 राज्य महलको गया । [जन] मन्दोदरीने सुना कि प्रभु श्रीरामजी आ गये हैं और
 उन्होंने सेलमें ही समुद्रको बैसना किया है, ॥ १ ॥

कर गहि पतिहि अवन विज जानी । सोनी परस मनोहर जानी ॥
 चरन भाइ सिंधु बाँछु रोष । सुगुह बचन सिंधु परिहरि कोषा ॥ २ ॥
 [तब] बड़ हाव पड़कर, पतिसे अपने महलमें लकर परस मनोहर वाणी
 बोली । चरणोंमें सिंधु नगाकर उसने अपना बाँछ पत्थर और कड़ा—ये प्रियतम ।
 क्रोध त्याग कर भेरा कवन सुनिने ॥ २ ॥

नाथ बच्य कीजे ताही सों । बुधि बंध सुनिज जीति जाही सों ॥
 दुम्हहि स्तुपतिहि बंधर कैसा । स्तुतु बंधोष दिवकसहि जैसा ॥ १ ॥
 हे नाथ ! वेर उरीके साथ करना चाहिये जिससे बुद्धि और बलके द्वारा जीत
 सके । आपने और श्रीरघुनाथजीमें निग्रह ही कैसा अन्तर है, जैसा जुगन् और स्वयं ॥ १ ॥
 अति बल महु कैटम जेहि मारे । महावीर दितिमुस संवारे ॥

जेहि बलि सौंधि सहस्रसुव भाग । छोड़ अन्तरैठ हरन महि भाग ॥ ४ ॥
 जिन्होंने [विष्णुरूपसे] अत्यन्त बलवान् महु और कैटम [दैत्य] मारे और
 [बाराह और वृत्तिरूपसे] मदान् शूरीर दिशिके युद्धों (हिरण्यक और हिरण्यकशिपु)
 का संहार किया; जिन्होंने [वामनरूपसे] बलिको बाँधा और [परशुरामरूपसे]
 सहस्रबाहुको मारा; वे ही [भगवान्] पृथ्वीका मार हरण करनेके लिये [रामरूपमें]
 अवतीर्ण (प्रकट) हुए हैं ॥ ४ ॥

ताहु बिरोध न कीनिज नाथ । काळ कलम निव जाई हाथ ॥ ५ ॥
 हे नाथ ! उनका बिरोध न कीजिये, जिनके हाथमें कलम, कर्म और जीव
 समी हैं ॥ ५ ॥

सो—रामहि सौंधि जानकी जाइ कमल पद माथ ।
 सुत कहैं राज समर्पि वन जाइ भविज रघुनाथ ॥ ६ ॥
 [श्रीरामजीके] चरणकमलोंमें स्त्रि नवाकर (उनकी शरणमें जाकर) उनको
 जानकीजी सौंप दीजिये और आप पुत्रको राज्य देकर वनमें जाकर श्रीरघुनाथजीका
 भजन कीजिये ॥ ६ ॥

सो—नाथ दीनदयाल रघुराई । काबल सगमुस गर्ह न काई ॥
 चाहिज करन सो सब करी बौते । दुम्ह धुर भुल चरचर जीते ॥ १ ॥
 हे नाथ ! श्रीरघुनाथजी तो दीनोपर दया करनेवाले हैं । सम्मुख (शरण) जाने-
 पर तो बार भी नहीं काटा । आपको जो कुछ करना चाहिये था, वह सब आप कर
 चुके । आपने देवता, राक्षस तथा चर-अचर समीको जीत लिया ॥ १ ॥

संत कहहि बधि जीति दसगन । शौचोपन जहहि धुर कानन ॥
 ताहु मनुष्य कीनिज तहैं भती । सो कर्ता पावक संवर्ता ॥ १ ॥
 हे दधमुक ! संतजन ऐसी नीति कहते हैं कि शौचोपन (बुढ़ापे) में रानाको वनमें
 चला जाना चाहिये ! हे रामजी ! वहाँ (वनमें) आप उनका भजन कीजिये जो सृष्टिके
 रक्षनेवाले, पावनेवाले और संहार करनेवाले हैं ॥ २ ॥

सोह खुबीर अनत मनुतापी । मनुष्य नाथ भगवा सब खली ॥
 मुनिपर सत्तु कहि जेहि खली । मूष राज वलि होहि विरली ॥ १ ॥
 हे नाथ ! आप निरवैली सभी मनुष्य छोड़कर उन्हीं शरणागतवर प्रेम करनेवाले
 भगवान्का भजन कीजिये । जिनके लिये श्रेष्ठ मुनि साधन करते हैं, और राजा राज्य-
 छोड़कर वैरागी हो जाते हैं—॥ २ ॥

सोह कोसलाधीस रघुराम । काबल करन जेहि पर दाय ॥
 सौं पिय मानहु मोर मितावन । सुखहु होह तिहुं धुर कति पावन ॥ १ ॥
 वही कोसलाधीश श्रीरघुनाथजी आपका दाय करने आये हैं । हे प्रियतम ! यदि
 आप मेरी सौख्य मान लेंगे, तो आपका अत्यन्त पवित्र और सुन्दर कथ तीनों लोकोंमें
 फैल जायगा ॥ ४ ॥

दो०—अस कहि नयन नीर भरि यहि पद कंपित गात ।

माथ सज्जु रघुनाथहि अचल होइ अहिवात ॥ ७ ॥

ऐसा कहकर, नेत्रोंमें [कम्पाका] जल भरकर नीर पविके चरण एकदकर, कंपते हुए शरीरसे मन्दोदरीने कहा—हे नाथ ! श्रीरघुनाथजीका भजन कीर्तने, जिससे मेरा मुहान् अचल हो जाय ॥ ७ ॥

चौ०—तब सबन मयसुता उखई । कहै लग सक किन प्रभुताई ॥

सुनु तैं प्रिय ब्या सख माना । जग बोधा को मोहि समाधा ॥ १ ॥

तब रावणने मन्दोदरीको उठाया और वह कुछ उससे अपनी प्रभुता कहने लगी—
हे प्रिये ! सुन, तुने व्यव ही भय मान रक्खा है । क्या तो जगत्में मेरे समान कोई है कौन ? ॥ १ ॥

बहान कुबेर पवन जग काका । सुन सक नितेउ सकल दिगपाका ॥

ऐव वसुध नर सख बल मोरैं । कबह हेतु उदक भय तीरैं ॥ २ ॥

वहण; कुबेर; पवन; वसुधा आदि सभी दिग्पालोंको तथा फलसे भी मैंने अपनी भुजाओंके बलसे जीत रक्खा है । देवता, दानव और मनुष्य सभी मेरे बरामे हैं । फिर तुझको वह भय किस कारण उत्पन्न हो गया ? ॥ २ ॥

नाथ पिधि लेहि कहेसि दुहाई । समों बहोरि बैठ सो जाई ॥

मन्दोदरी दुबई जस जगना । फल बल सपक अभिमाना ॥ ३ ॥

मन्दोदरीने उसे बहुत तरहसे समझाकर कहा [किन्तु रावणने उसकी एक भी बात न सुनी] और वह फिर समझने जाकर बैठ गया । मन्दोदरीने हृदयसे ऐसा जान लिया कि कालके क्या होनेसे पलिके अभिमान हो गया है ॥ ३ ॥

समों आइ मंथिह देखि वृत्ता । करव कबह बिधि रिपु सैं वृत्त ॥

कहाहि सचिव सुनु निशिधर काहा । कर कर प्रभु पृथु काहा ॥ ४ ॥

समाने आकर उसने मन्त्रियोंसे पूछा कि शत्रुके साथ किस प्रकारसे युद्ध करना होगा ? मन्त्री कहने लगे—हे राजाके साथ ! हे प्रभु ! सुनिसे, आप बार-बार क्या पूछते हैं ? ॥ ४ ॥

कहाहु करव भय करिअ विचार । पर कपि भाहु अहार इलाहा ॥ ५ ॥

कहिये तो [ऐसा] कौन वा बड़ा भय है, जिसका विचार किया जाय ? (मण्डी बात ही क्या है ?) मनुष्य और कानर माल तो हमारे भोजन [की सामग्री] हैं ॥ ५ ॥

दो०—सब के वचन धन्य सुनि कह प्रहस्त कर जोरि ।

नीति विरोध न करिअ प्रभु मंथिन्ह अति अति थोरि ॥ ८ ॥

कानौसे उनके वचन सुनकर [राजाका पुत्र] प्रहस्त हाथ जोड़कर कहने लगा—
हे प्रभु ! नीतिके विरुद्ध कुछ भी नहीं करना चाहिये, मन्त्रियोंसे बहुत ही थोड़ी बुद्धि है ॥ ८ ॥

चौ०—कहाहि सचिव सठ ठकुरसौदासी । जग न पूर जाव यहि मॉती ॥

बारिधि नाथि पठ कपि आका । तासु पवित्र नव महुँ सहुँ गावा ॥ १ ॥

ये सभी मूर्ख (बुद्धाभरी) मन्त्री ठकुरसुदासी (सुदृढ़सौ) कह रहे हैं । हे नाथ ! इस प्रकारकी बातोंसे पूरा नहीं पड़ेगा । एक ही बान्धव समुद्र ज्योंकर आया था । उसका चरित्र सब लोग भय भी भय-ही-भय जाय करते हैं (कारण किन करते हैं) ! ॥ १ ॥

बुद्धा न रही सुन्दरि तब कहा । जगत् जगत् कस न भरि साहू ॥

सुन्दर भीक क्यों हुल पाया । सचिव जस मत प्रभुदिसुक्का ॥ २ ॥

उस समय तुमलोगोंमेंसे किसीको-मृत न थी ! [बंदर तो तुम्हारा मोहन ही है, फिर] अगर जहाजे समय उसे एकदुकर क्यों नहीं खा लिया ! इन भगिनयोंने स्वामी (आप) को ऐसी सम्मति सुनायी है जो सुननेमें अच्छी है पर जिससे आगे चक्कर दुःख पाना होगा ॥ २ ॥

बेहि बारिष धँसवत हेळ । जतरेठ सेम समेध सुवेळा ॥

'तो मनु मनुष्य खाप हम माई । वचन कहहि सब गळ फुकाई ॥ ३ ॥

'जिसने खेळ-ही-खेळमें समुद्र वेंचा लिया और जो केनावस्थित मुनेछ पर्वतपर आ उतरा ! हे माई ! इहो वह मनुष्य है, जिसे कहते हो कि हम खा लेंगे ! सब गाल फुल-फुलाकर (फगलोंकी तरह) वचन कह रहे हैं ॥ ३ ॥

तात वचन मम सुनु अति आदर । जनि मर गुनगुमोहि करि फावर ॥

'जिन घान्ही के सुनहि जे कहहीं । ऐसे जर निकाय कम अहहीं ॥ ४ ॥

हे तात ! जैसे वचनोंको बहुत आदरसे (धीरे गौरसे) सुनिये । मुझे नममें 'फावर न समझ लीजियेगा । जगत्में ऐसे मनुष्य दुर्लभ-के-दुर्लभ (बहुत अधिक) हैं, जो प्यारी (हुँदर सींदी खानेवाली) बात ही सुनते और कहते हैं ॥ ४ ॥

वचन परम दित सुनत कठोरे । सुनहि जे कहहि ते तर प्रभु धोरे ॥

प्रथम बहोव पठत सुनु नीली । सीता रैह कहु सुनि प्रीती ॥ ५ ॥

हे प्रभो ! सुननेमें कठोर परन्तु [परिणाममें] परम दिवकारी वचन जो सुनते और कहते हैं, वे मनुष्य बहुत ही बोझे हैं । नीति सुनिये, [उसके अनुसार] पहले दूत भेजिये, और [फिर] सीताको देख कर श्रीरामजीसे प्रीति (मेळ) कर लीजिये ॥ ५ ॥

दो०—नारि पार फिरि जाहि औ लौ न बड़ाइम रादि ।

जाहि त समुच्च समर महि तात करिष हडि मारि ॥ ६ ॥

यदि वे ली पाकर लौट जवें, तब तो [व्यर्थ] सगढ़ न बढ़ाव्ये । नहीं तो (यदि न फिरें तो) हे तात ! समुच्च युद्धभूमिमें उनसे इतपूर्वक (बटकर) खर-काट कीजिये ॥ ६ ॥

बौ०—वह मत ली मानवु प्रभु सोछ । उभय प्रकर सुचसु नग तोरा ॥

सुच सन कह दसकई सिसाई । अति मति सत केहि होहि सिसाई ॥ ७ ॥

हे प्रभो ! यदि आप मेरी वह सम्मति, समनेगे, तो जगत्में दोनों ही प्रकारसे आपका प्रवाद होगा । रामजीने गुस्सेमें भरकर पुत्रों कहा-और मूर्खों ! तुझे देखी हुई किछने सिखायी ! ॥ ७ ॥

अवहीं ते जर संसल होई । वेतुसूख सुत अणहु भयोई ॥

सुनि पितु मित परम अति घोरा । खल समन कहि वचन कठोरा ॥ ८ ॥

'अभीचे हृदयमें रुतेह (मय) हो रहा है ! हे पुत्र ! तू तो बौतकी जड़में पनोर हुआ (तू मेरे वंशके अनुकूल या अनुसृत नहीं हुआ) । सिसाकी अत्यन्त मोर और कठोर वाणी सुनकर प्रह्लाद ने कहे वचन श्रद्धा हुआ परको चला गया ॥ ८ ॥

दिख मळ छोदि न लगवत कैतें । कळ विकळ कहुं मेवज जैतें ॥

संज्या समन जाधि दससीसा । खल पळोव निरखत गुन बीसा ॥ ९ ॥

हिताकी कष्ट आपको कैसे नहीं लगती (वापस कैसे अस्तर नहीं करती), जैसे मृत्युके वह हुए [रोमी] को दस नहीं लगाती । संज्याका समय जाकर रावण अपनी बीसों मुनामोंकी देखता हुआ मालूमो चल ॥ ९ ॥

लंका सिखर उपर ध्वजधरा । जवि विचित्र छौं होइ अक्षरा ॥
 चौं छाहूँ देखि मंदिर शवन । कसी किन्नर गुन गन गावन ॥ १ ॥
 लंकाकी चोटीर एक अत्यन्त निचिन मल्ल ना । वहाँ नाच-गानका असाढ़ा
 समता था । रावण उच गहलौं जाकर बैठ गया । किन्नर उसके गुणसमूहोंको गाने लगे ॥ ५ ॥
 बाजहिं तमक पसावत ब्रीषा । नृत्य करहिं अपरस प्रबीना ॥ ५ ॥
 साह (करताल), पखावज (मुरंग) और बीणा बज रहे हैं । नृत्यमें प्रवीण
 अन्यराएँ नाच रही हैं ॥ ५ ॥

दो०—सुनासीर सत सरिस सो संतत करद बिलस ।
 परम प्रबल रिपु सीस पर तथपि खोच न दास ॥ १० ॥
 यह निरन्तर सैकड़ों शत्रुओंके समान भोग-विषय करता रहता है । यद्यपि [श्री-
 रामजी-शरीर] अत्यन्त प्रबल मनु सिरपर है, फिर भी उसको न तो धिक्का है और न
 डर ही है ॥ १० ॥

चौ०—वहाँ सुकेक सैह छुपीरा । उतरे शेष खडिग भक्ति जीरा ॥
 सिखर एक वर्तग भक्ति वेली । वस्त्र एक सम सुभ्र मिलेदी ॥ ११ ॥
 वहाँ श्रीरघुवीर सुकेक वर्षावर सेनाकी बड़ी भीड़ (बड़े समूह) के साथ उतरे ।
 पर्वतका एक बहुत ऊँचा, परम रामजीव, समस्त और विशेषरूपसे उज्ज्वल सिखर
 देखकर— ॥ ११ ॥

तहाँ सह-विद्युत्तय सुजय धुहाए । कछिमन रचि निज हाथ कसाए ॥
 ता पर कबिर सुहुत सुगलछा । देखि असन मालीन कृपाका ॥ १२ ॥
 वहाँ लक्ष्मणजीने वृषोंके कोमल पत्ते और सुन्दर फूल अपने हाथोंसे लगाकर बिछा
 दिये । उसपर सुन्दर और कोमल भृंगछात्र बिछा दी । उसी थासनपर कृपासे श्रीराम
 जी विराजमान थे ॥ १२ ॥

प्रभु छुट सीस कसीस कर्जना । राम दक्षिण दिशि पार निर्वाणा ॥
 हुहुँ कर कमल सुधारत नाच । कद कँकस मंत्र खसि काँचा ॥ १३ ॥
 प्रभु श्रीरामजी बानरराज सुग्रीवकी गोदमें अपना सिर रखते हैं । उनके बायीं ओर
 भद्रप तथा दाहिनी ओर तरकश [रक्षा] है । वे अपने दोनों कर-कमलोंसे बाण धुमार
 रहे हैं । विभीषणजी कानोंसे लगाकर सहाइ कर रहे हैं ॥ १३ ॥

बनुभागी अंगद हनुमन्ना । बरच कमल पापत विधि मन्ना ॥
 प्रभु पाछें कछिमन भीरासन । कदि निर्वाण कर जग धरासन ॥ १४ ॥
 परम भाग्यशाली अंगद और हनुमान् अपने-अपने प्रकारसे प्रभुके चरणकमलोंको बसा
 रहे हैं । लक्ष्मणजी कमलों तरकश कते और हाथोंमें धनुष-बाण लिये भीरासनसे प्रभुके
 पीछे सुशोभित हैं ॥ १४ ॥

दो०—एहि विधि कृपा रूप गुन नाम राम आसीन ।
 धन्य ते नर एहि प्पन्न जे रहत सब सयसीन ॥ ११ (क) ॥
 इस प्रकार कृपा, रूप, (सौन्दर्य) और गुणोंके नाम श्रीरामजी विराजमान हैं ।
 वे अनुष्ण धन्य हैं जो उदा हठ ज्ञानमें ली लगाने रहते हैं ॥ ११ (क) ॥
 पूरव दिक्षा बिच्छेकि प्रभु देखा उदित मर्याक ।
 कहत सबहि देखहु सखिहि मृगपति सरिस असंक ॥ ११ (ख) ॥
 पूर्व दिशाकी ओर देखकर प्रभु श्रीरामजीने कन्दमाको उदय हुआ देखा ।

तब वे सबसे कहने लगे—चन्द्रमण्डो वो देखो। कैसा चिह्नके समान निरर है ! ॥११(ख)॥

चौ०—पूख धिसि भिन्निबुदा भिवासी। एसम प्रभाव कैअ बर रासी ॥

सत भास तम कुंम बिहारी। ससि केसरी गगन बन चारी ॥ १ ॥

पूर्व दिशाकरी पर्वतकी गुफामें रहनेवाला, अत्यन्त प्रकाश, तेज और बलकी राशि यह चन्द्रमण्डो सिंह अन्धकारकरी मतवाले हाथीके भस्त्रकण्ठे निर्दोष करके आकाश-करी बनमें निर्मल विकर रहा है ॥ २ ॥

बिहारे बल सुकृतहल लहर। सिसि सुंदरी केर सिगास ॥

कह प्रभु ससि महुं सेवकताई। कहुहु कह भिब भिब ससि भाई ॥ २ ॥

आकाशमें बिहारे हुए तारे मोदिमोंके समान हैं, जो रात्रिकरी सुन्दर लीके गज्जर हैं। प्रभुने कहा—माइयो ! चन्द्रमण्डो जो कलकपन है वह क्या है ! अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार कहो ॥ २ ॥

कह सुधीव सुभद्रु रघुराई। ससि महुं प्रभट भूमि कै झोंई ॥

मारेव ॥ ससिदि कह कोई। उर मई परी समझा सोई ॥ ३ ॥

सुधीवने कहा—हे रघुनाथजी ! सुनिये। चन्द्रमण्डो भूमीकी आभा दिखायी दे रही है। किसीने कहा—चन्द्रमण्डो राहुने मारा था। वही [चोटक] काका दाग हृदयपर पड़ा हुआ है ॥ ३ ॥

कोर बल सव भिन्नि रसि सुम्व कीन्दा। सार भास ससि कर हरि लीन्दा ॥

चिह्न सो प्रभट झंडु उर भाई। तेहि मग देखिब बन परिकहाँ ॥ ४ ॥

कोई कहता है—जब बसाने [अमदेवकी ली] रसिक मुक्त बनाया, तब उठने चन्द्रमण्डो सार भाग निकल गया [जिससे रसिक मुक्त तो परब सुन्दर बन गया, परन्तु चन्द्रमण्डो हृदयमें छेद हो गया] ; वही छेद चन्द्रमण्डो हृदयमें अमानव है; जिसकी राहसे आकाशकी काकी छाया उसमें दिखायी पड़ती है ॥ ४ ॥

प्रभु कह परब बंडु ससि कैरा। कति प्रिय भिब उर इन्ध मसेरा ॥

बिब संकट कर बिबर पसाही। जगत बिरहबंत बर चारी ॥ ५ ॥

प्रभु श्रीरामजीने कहा—जब चन्द्रमण्डो बहुत प्यारा भाई है। इतने उलने विषको अपने हृदयमें खान दे रहता है। जिससे अपने फिरकमूहको फैलाकर वह विषोपी नर-नारियोंको जलाता रहता है ॥ ५ ॥

दो०—कह बनुमंत सुभद्रु प्रभु ससि सुम्हार प्रिय दास ।

तब सूरति बिधु उर पसति सोइ स्वाभता अमास ॥ १२(क) ॥

इतुमानजीने कहा—हे प्रभो ! सुनिये चन्द्रमण्डो आकाश प्रिय दास है। अपनी सुन्दर श्याम मूर्ति चन्द्रमण्डो हृदयमें बसती है, वही स्वाभताजी सज्जक चन्द्रमण्डो है ॥ १२(क) ॥

नवाहपारायण, सातवौं विद्याम

पवन तमव के वचन सुनि निर्हंसे रासु सुजान ।

दक्षिण दिशि अन्धलेकि प्रभु बोले कृष्ण विद्यान ॥ १२(ख) ॥

पवनपुत्र इतुमानजीके वचन सुनकर सुजान औरमंजी होंसे। फिर दक्षिणकी ओर देखकर कृष्णनिधान प्रभु बोले— ॥ १२(ख) ॥

चौ०—देख भिन्निबन दक्षिण बंसा। पव बसंत दक्षिण विद्यासा ॥

मधुर मधुर कबहु भव मोरा। होइ कृष्टि कवि उषक कथेरा ॥ १ ॥

हे निमीषण ! दक्षिण दिशाकी ओर देखो, वादल कैसा सुन्दर रहा है और बिसली

चमक रही है। मयानक बादल भीटे-भीटे (इले-इले) स्वरसे गरज रहा है। कहीं कठोर झोलैली वर्षा न हो ॥ १ ॥

कहत विभीषण सुन्दर कुशल । होइ न छिद्य व क्षरित माता ॥

कंका सिंहर उपर आगया । जहाँ रसकंठर देख आहारा ॥ २ ॥

विभीषण बोले—हे कुण्ड ! मुनिवे, यह न तो बिजली है, न बादलोंकी घटा । कंकाकी ओटीपर एक महल है । दशग्रीव रावण वहाँ [नाच-गानका] अलाहा देख रहा है ॥ २ ॥

छत्र मेघदंठर खिर घारी । सोइ ननु जगद बड़ा भति करी ॥

मंदोदरी खनन साठका । सोइ प्रभु ननु दामिनी धमका ॥ ३ ॥

रावणने सिंहर मेघदंठर (बादलोंके डंठर-जैसा विशाल और काज) छत्र कारण कर रक्खा है । वही माने बादलोंकी अत्यन्त काली घटा है । मंदोदरीके कानोंमें जो कर्णमूल हिल रहे हैं, हे प्रभो ! वही मानो बिजली चमक रही है ॥ ३ ॥

बासीहि साठ घटका जगता । सोइ एव मधुर सुन्दर धुरधुरा ॥

प्रभु सुसुखाय समुक्ति अभिमान । चाव चक्रह बाध संवाना ॥ ४ ॥

हे देवताओंके सम्राट् ! मुनिवे, लघुपम साठ और मूर्धन बज रहे हैं । वही मधुर [गर्जन] ध्वनि है । रावणका अभिमान समस्तकर प्रभु मुक्तपणे । उन्होंने, धनुष बड़ाकर उत्तर बाणका सम्मान किया, ॥ ४ ॥

धौं—छत्र सुकुट तटका तब हते एकही बाध ।

सब के देखत महि परे भरमु न कोक जान ॥ १३ (क) ॥

और एक ही बाधते [रावणके] छत्र-सुकुट और [मन्दोदरीके] कर्णमूल काट गिराये । सबके देखते-देखते वे जमीनपर धा पड़े, पर इसका भेद (कारण) किसीने नहीं जाना ॥ १३ (क) ॥

अस कौतुक करि राम सर प्रविसेव भार विषय ।

रावन समा ससंक सब देखि मझ रसमंग ॥ १४ (ख) ॥

ऐसा चमत्कार करके श्रीरामजीका बाण [बाण] भाकर [फिर] तरफसे जा चुका । वह महान् रस-भंग (रंगमें भंग) देखकर रावणकी खरी समा मयभीत हो गयी ॥ १४ (ख) ॥

चौं—कंप न मुमि न मस्त निसेका । अस सब कहु बचन न दैसा ॥

सोचहि सब किन हृदय अहरी । अस्तुन सबद भयकर भारी ॥ १ ॥

न दूकम्प दुखा, न बहुत जोरकी हवा (जोंपी) लगी । न कोई अर्ध-शक्त ही मैत्रीसे देखे । [फिर ये छत्र, सुकुट और कर्णमूल कैसे कटकर गिर पड़े ?] सभी अपने-अपने हृदयमें सोच रहे हैं कि यह क्या मजदूर अपभक्तुन हुआ ! ॥ १ ॥

बसकुल देखि सबका जग पाई । किसि-बचन कह लुपति मनाई ॥

सिरद गिरे संतत सुख-साही । सुकुट परे कस अस्तुन ताही ॥ २ ॥

समाको भयभीत देखकर रावणने—हैंकर-मुक्ति रचकर वे वचन कहे—सिरीका गिरना भी बिलके बिन्दे निरन्तर, सुम होख रहा है, उसके बिन्दे सुकुटका गिरना अपभक्तुन-कैसा ! ॥ २ ॥

सबन कहहु निज किन गूढ़ साई । रावने मयन समस्त फिर पाई ॥

मंदोदरी, सोच उर कैसेक । सब ते खननपर महि जसेक ॥ ३ ॥

अपने-अपने घर जाकर सो रही [टरनेकी कोई बात नहीं है] । तब सब लोग फिर नवाकर धर गये । जलसे कर्णमूल धुवनीपर गिरा, उसके मंदोदरीके हृदयमें सोच-बस गया ॥ ३ ॥

सबक नवन कह छग कर खेरी । सुनुहुं प्रावयेति विनती मोरी ॥

कंत राम विरोध परिहरहु । जानि मनुजबनि हठ मन धरहु ॥ ७ ॥

नेत्रोंमें लज भरकर, दोनों हाथ जोड़कर कह [राक्षसे] कइने लगी—हे प्राणनाथ ! मेरी विनती सुनिये । हे प्रियतम ! श्रीरामसे विरोध छोड़ दीजिये । उन्हें मनुष्य जानकर मनमें हठ न पकड़े रहिये ॥ ४ ॥

दो०—विस्तरूप रघुर्जस मनि करहु धचन विस्वाप्तु ।

लोक करुणता वेद कर अंग अंग प्रति जानु ॥ १४ ॥

मेरे इन चरणोंपर विद्यात कीजिये कि वे रघुकुलके त्रिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी विश्वरूप हैं—(यह सारा विश्व उनकीका रूप है) वेद जिनके अङ्ग-अङ्गमें लोकोंकी कल्पना करते हैं ॥ १४ ॥

चौ०—यह पातक सौस मल धाम । अपर लोक जैन जैन विजामा ॥

बुद्धि विद्यात मयकर काका । नवन दिवाकर कच घन माका ॥ १ ॥

पातक [जिन विषयम मगनात्का], चरण है, ब्रह्मलोक फिर है, अन्य (बीचके सब) लोकोंका विजाम (स्थिति) जिनके अन्य भिन्न-भिन्न अङ्गोंपर है । भयङ्कर काल जिनका बहुदुष्टिचालन (भौहोंका चलना) है । पूर्व नेत्र हैं, बाइलेंका समूह काल है ॥ १ ॥

जामु प्रथम अस्मिनीकुमार । निमि अंग दिक्स निमेष अपार ॥

अवन विद्या इस केव वलावी । मास्त स्रंस विषम निम घानी ॥ २ ॥

अस्मिनीकुमार जिनकी नासिका हैं, रात और दिन जिनके अपार निमेष (पलक मारना और खोलना) हैं । इस विद्यामें जन हैं, वेद ऐसा कइते हैं । बापु स्वात है और वेद जिनकी अपनी घानी है ॥ २ ॥

अवर लोभ सम दसन करका । माया हस बधु दिगपाका ॥

आगम अन्त वदुति जीहा । बतपति पावन प्रलय समीहा ॥ ३ ॥

लोभ जिनका अवर (होठ) है, यमराज भवान्क हाँठ है । माया हँसी है, दिव्यात बुझाएँ हैं । अग्नि तुल है, कर्म जीम है । उत्पत्ति, पावन और प्रलय जिनकी बोटा (मिया) हैं ॥ ३ ॥

सम राशि अद्यावत आरा । अस्मि सैक सतिता मस आरा ॥

उवर उदधि भङ्गो जातका । जामय प्रभु का बहु कलपना ॥ ४ ॥

बठारा प्रकारकी असंख्य कल्पितियों जिनकी रोगाकरी हैं, पर्वत अस्त्रियाँ हैं, नदियों नलोंका बाल है, समुद्र वेद है और नरक बिल्ली जीचेकी इन्द्रियाँ हैं । इस प्रकार प्रभु विधनम है, अधिक कल्पना (उद्यमोह) क्या की जाय ! ॥ ४ ॥

दो०—अहंकार सिध बुद्धि अल मन ससि चित्त महान ।

मनुज कास सचराचर रूप राम मगवान ॥ १५ (क) ॥

विष निनकर अहङ्कार हैं, जला बुद्धि हैं, फलम मंर हैं और महान् (विष्णु) ही चित्त हैं । उनकी चराचररूप मत्कार श्रीरामजीने मनुष्यरूपमें निवास किया है ॥ १५ (क) ॥

अस विचारि सुनु प्राप्ति प्रभु सन बचक विहाइ ।

प्रीति करहु रघुवीर पद मम अदियात न जाइ ॥ १५ (ख) ॥

हे प्राणपति ! सुनिये, ऐसा विचारकर प्रभुसे केर छोड़कर और रघुवीरके चरणोंमें प्रेम कीजिये, बिनाते मेरा सुख न जाय ॥ १५ (ख) ॥

चौ०—विहँसा गरि बचन सुनि ब्रजा । बहो मोह महिमा बलवाना ॥

गरि सुखाय सख सख कहहीं । अमरुन अठ सदा उर रहहीं ॥ १ ॥

पक्षीके बचन धानोंसे सुनकर राजन खूब हैसा [और बोले—] बहो ! मोह (अज्ञान) की महिमा बड़ी बलवान है । स्त्रीका सम्भाव सब क्रम ही कहते हैं कि उसके हृदयमें आठ अमरुण उदा रहते हैं—॥ १ ॥

साहस अकृत चबलन साय । अम अविनेक जसौध अदाया ॥

रिपु कर रूप सकल तै बाया । अति विरक्त भव मोहि सुनाया ॥ २ ॥

साहस, बूढ़, चबलन, माया (लज), मय (अरण्यमय), अविनेक (मूर्खता), अपवित्रता और निर्दयता । तुने खनुका समग्र (विपद्) का साक्षात् और मुझे उसका बड़ा भारी भय सुनाया ॥ २ ॥

सो सब प्रिया सहज कस सोरें । समुझि परा प्रसाद जब सोरें ॥

जानिहैं प्रिया तोरि चतुरहैं । एहि बिधि कहहु मेरि प्रभुताहैं ॥ ३ ॥

हे प्रिये ! यह सब (यह अपार बिचारी) स्वभावसे ही मेरे वशमें है । तेरी कृपासे मुझे यह अब समझ पड़ा । हे प्रिय ! तेरी चतुराई मैं जान गया । तू इस प्रकार (इसी बहाने) मेरी प्रभुताका बखान कर रही है ॥ ३ ॥

तब बचकड़ी गुरु सुगच्छेच्छति । समुझत सुखद सुखत भवमोचति ॥

मंदोदरि भव नहैं अल उपल । पियहि कल कस मतिप्रम भयल ॥ ४ ॥

हे मृगनयनी ! तेरी बातें बड़ी गूढ़ (रहस्यमयी) हैं, समझनेपर सुख, हैनेवाली और मुनमेसे भय मुझनेवाली हैं । मंदोदरीने मनमें ऐसा निश्चय कर लिया कि पतिकी कालवशा मतिप्रम हो गया है ॥ ४ ॥

दो०—एहि बिधि करत विनोद बहु प्रात प्रयाद वसकैंच ।

सहज अलंक लंकपति समौ गयल मय अंध ॥ १६ (क) ॥

इस प्रकार [अज्ञानका] बहुत-से विनोद करते हुए स्वयंको लपेट हो गया । तब स्वभावसे ही निश्चय और धर्ममें अंधा लंकपति समझमें गया ॥ १६ (क) ॥

तो०—फूलह फल न केत अपि सुख बरपाहि अकल ।

मूखह हृदयैं न चेत लौ गुर मिलहि विरंचि सन ॥ १६ (ख) ॥

यद्यपि बादल अमृत-सा अल नरसते हैं, तो भी केत फूल-फलवा नहीं । इसी प्रकार चाहे प्रकाश के समान भी खानी गुह भिन्न, तो भी मूखके हृदयमें चेत (ज्ञान) नहीं होता ॥ १६ (ख) ॥

चौ०—इहैं प्रसन्न जाये सुखाहैं । पूछा मत सब सखि बोकाहैं ॥

कहहु बेगि कस करिह लकाहैं । जामरंत कद पद रिख नाहैं ॥ १ ॥

यहों (सुनेल परितः) प्रातःकाल और खानाबंदी जागे और उन्होंने सब मन्त्रियों-को बुलाकर पूछा कि स्त्रीय वत्तहने, अब क्या उपाय करना चाहिये ! जामवान्ने और मन्त्रीके चरणोंने विरं नवाकर कहा—॥ १ ॥

सुनु सर्वथ सकल दर बासी । बुधि कल सेज धर्म गुन रासी ॥

मंत्र कहहैं निज मति अनुसार । दूष फलदम कलिजुमार ॥ २ ॥

हे सर्वथ (सब कुल जाननेवाले) ! हे सबके हृदयमें बसनेवाले (धर्मप्राप्ति) ! हे बुद्धि, बल, तेज, धर्म और गुणोंकी राशि ! सुनिने । मैं अपनी बुद्धिसे अनुसार कहा देता हूँ कि बलिजुमार अंगदको बल-नवाकर भेजा जाय ॥ २ ॥

सोच भंत्र सब के नय माना । अंगद सब कह कुशनिधाना ॥
 बालिकनय मुनि बल गुन प्राप्त । लंघन जाहुं तात अस कामा ॥ ३ ॥
 यह अच्छी सबह तरहके मनमें जैय गयो । कुशके निधान भीरामजीने अंगदसे
 कहा—हे बल, बुद्धि और गुणोंके भाग बालिपुत्र ! हे तात ! तुम मेरे कामके लिये
 संका आवो ॥ ३ ॥

बहुत दुःसाह तुम्हहि न्य कह्यै । परम बहुर में मानत अह्यै ॥
 काहू हमार तासु हित होई । रिपु सब करहु बरकही सोई ॥ ४ ॥
 तुमको बहुत सम्मानन क्या कह्यै ? मैं जानता हूँ, तुम परम बहुर हो । शत्रुसे
 बारी शास्त्रांत करना जितसे हमारा काम हो और उसका कल्याण हो ॥ ४ ॥
 सो—प्रभु अग्या घरि सीस धरन यदि अंगद टटेड ।

सोद गुन सागर ईस राम कृपा ज पर करहु ॥ १७(क) ॥
 प्रभुकी आज्ञा फिर बचाकर और उनके चरणोंकी कन्दना करके अंगदसी टटे
 [और बोले—] हे भगवान् भोऊन्नी ! यात्र निरपरा हवा करें, वही गुणोंका सगर
 हो जाता है ॥ १७ (क) ॥

कार्यसिद्ध सब काम न्यय मोहि आवह विषड ।
 अस विचारि ब्रह्मराज तन पुलकित हरपित दिषड ॥ १७(ख) ॥
 स्वामीके सब काम अपने-आप सिद्ध हैं । यह तो प्रभुने मुझको आदर दिया है
 [जो मुझे अपने कार्यकर मेक रहे हैं] । ऐसा विचारकर ब्रह्मराज अंगदका हृदय हरित
 और शरीर पुलकित हो गया ॥ १७ (ख) ॥

चौ—बंदि धरन तर धरि प्रभुसाई । अंगद चलेड सबहि सिध साई ॥

प्रभु प्रथम तर लहल अहंका । सब बौद्धता बालिमुन बंका ॥ १ ॥
 चरणोंकी कन्दना करके और सम्मानकी प्रभुता हृदयमें धरकर अंगद सबको निर
 नवाकर चले । प्रभुके प्रतापकी हृदयमें धरन किने हुए रत्नोंजुरे वीर बालिपुत्र
 स्वामाधिक ही निर्मय हैं ॥ १ ॥

पुर रंडत रावन कर बैरा । कैलत रहा नी होइ मैं भेडा ॥
 बावहि बाव कर बहि जाई । कुलक भवुल बल पुनि तराई ॥ २ ॥
 स्वामी प्रेमा करते ही रावनके पुत्रसे मैत्र हो गयो, तो वहाँ खेड रहा था । बावों-
 ही-बावोंमें दोनोंमें दगाडा नद गया [क्योंकि] दोनों ही अनुष्ठानीय कलबाज्य दे और
 फिर दोनोंकी मुलावकासी थी ॥ २ ॥

तेहि अंगद कह्यै अंत उठ्यै । गहि यह पस्केड भूमि भव्यै ॥
 निसिचर बिकर बैलिमत मारी । जई तहैं चले न खह्यै पुकारी ॥ ३ ॥
 उसने अंगदपर व्यत उठायी । अंगदने [वही] पैर एकटकर उठे हुनाकर
 जमीनपर ठे पटक (मार गिराया) । राक्षसके सनूह मारी बोझा देखकर जहाँ-जहाँ
 [भाग] जले, वे ठरके गये पुकार भी न मचा लगे ॥ ३ ॥

एक एक सन मरसु न कह्यै । ममुनि रामु सब गुप करि रह्यै ॥
 नयन कोलहल नभर मछारी । नयन करि कंका लेहि मारी ॥ ४ ॥
 एक दूसरेको मर्य (मारली बात) नहीं बतलाते, उस (रावनके पुत्र) का वध
 समझकर सब गुप नरवर रह जाते हैं । [रावनपुत्रकी मृत्यु जानकर और राक्षसोंको

भयके मोरे भागते देखकर] नगरभरमे कोलाहल मच गया कि बिचने लंका जलायी थी, यही चानर फिर आ गया है ॥ ४ ॥

अप धीं कहा करिहि करतास । अति समीप सब करहि बिचारा ॥

बिनु पहुँ मयु देहि दिखार्ह । चेहि निकोक सोइ साह सुषार्ह ॥ ५ ॥

सब अत्यन्त भयभीत होकर विचार करने लगे कि विधाता अब न जाने क्या करेगा । वे बिना पूछे ही अंगदको [रावणके दरबारकी] राह बता देते हैं । जिसे ही वे देखते हैं वही उनके मोरे सुख बताता है ॥ ५ ॥

दो०—गण्ड सभा दरबार तब झुमिरि राम पद कंज ।

सिंह उद्यनि दूत उत चितव धीर वीर बल पुंज ॥ १८ ॥

श्रीरामजीके चरणमञ्जरीका स्मरण करके अंगद रावणकी सभाके द्वारपर गये । और वे धीर, वीर और बलवी राशि अंगद सिंहकी-सी पैँड (घान) से दूसर-दूसर देखने लगे ॥ १८ ॥

चौ०—तुरत मिलाचर एक पठाया । समाचार रावबहि मनाया ॥

मुनत बिदेसि थोडा दसलौसा । सागहु थोकि कहीं कर सीसा ॥ १ ॥

तुरंत ही उन्होंने एक राक्षसको भेजा और रावणको अपने मानेका समाचार सूचित किया । मुनते ही रावण ईश्वर बोल-बुला लीखो, [देखें] कहाँका बंदर है ॥ १ ॥

आमसु पाइ दूत यहु पाए । कपिकुंजरहि थोकि से भाए ॥

अंगद विस दसलस वैलें । सहिच प्राय कलजमिरि लैलें ॥ २ ॥

आजा पाकर बहुत-से दूत दौड़े और वानरोंमें हाथीके उखान अंगदको बुला लाये । अंगदने रावणको ऐसे पीठे [देखा जैसे कोई प्राणयुक्त (जीव) धनलका पहाड़ हो] ॥ २ ॥

भुजा विषय सिर नंग समान । रोमावली कला जलु घाना ॥

मुख लासिका जलज नद कान । गिरि कंदरा सोइ लजुमाना ॥ ३ ॥

सुगार्दे वृक्षोंके और सिर पर्वतोंके शिखरोंके समान हैं । रोमावली मानो बहुत-सी लताएँ हैं । मुँह, मारु, नेत्र और कान पर्वतकी कन्दराओं और खोहोंके बराबर हैं ॥ ३ ॥

गण्ड सर्जी मयु बैकु न मुस । कालिदास अतिमय बौकुन ॥

उठे समालस कपि नहुँ देखी । रावण कर कर श्रेय विलेपी ॥ ४ ॥

अत्यन्त वक्रयाम् बंकि वीर वासिपुत्र अंगद सभामें गये, वे मनमें बरा भी नहीं हिंसके । अंगदको देखते ही सब समालस उठ खड़े हुए । वह देखकर रावणके हृदयमें बड़ा क्रोध हुआ ॥ ४ ॥

दो०—अथा मत्त गम जूय महुँ पंचानन खलि आइ ।

राम प्रताप झुमिरि मन बैठ समौ खिर नाइ ॥ १९ ॥

जैसे मत्तको हाथियोंके झुंडमें सिंह [निज्जंक होकर] चला जाता है, वैसे ही श्रीरामजीके प्रतापका दृढरूप स्मरण करके वे [निर्भय] सग्यों सिर नचाकर बैठ गये ॥ १९ ॥

चौ०—कह दसकंठ कवन तैं बंदर । मैं राखीर धूस दसकंधर ॥

मम जनकहि सोहि रही मिलार्ह । तब हित कालव लखवटें सार्ह ॥ १ ॥

रावणने कहा—जो बंदर ! तू कौन है ! [अंगदने कहा—] हे दशमीन ! मैं श्रीरघुवीरका दूत हूँ । मेरे पितासे वीर तुमसे मित्रता थी । दलिये दे मार । मैं तुम्हारी भलाईके लिये ही आया हूँ ॥ १ ॥

उत्तम कुल पुत्रसि कर जाती । सिव विरिधि पूजेहु पदु भीती ॥
 कर पायहु फीरेहु सब जान । अविहु कोकराठ सब राजा ॥ २ ॥
 तुम्हारा उत्तम कुल है, पुत्रस्य श्रुतिसे तुम बीच हो । शिवजीकी और ब्रह्माजीकी
 तुम्हने बहुत-प्रकारसे पूजा की है । उनसे कर पाये हैं और सब काम सिद्ध किये हैं ।
 लोकपालों और सब राजाओंको तुम्हने जीत लिया है ॥ २ ॥

पुत्र अनिमग्न मोह बस निम्न । हरि आभिहु सीता अर्द्धदा ॥
 जब धुन कदा धुनहु तुम्ह भोग । सब अपराध अमिहि प्रभु तोर ॥ ३ ॥
 राक्षसदसे या मोहक्य तुम जगजनी लीलाजीको हर आये हो । अब तुम मेरे
 हृष कचन (मेरी हितमरी सखा) कुनो । [उसके अनुसार चलनेसे] प्रभु श्रीरामजी
 तुम्हारे सब अपराध क्षमा कर देंगे ॥ ३ ॥

इसल मरहु लख कंड, कुलपी । परिजन सहित संग विभ नारी ॥
 सागर जलकुल करि जायें । एहि विधि चक्रु सकल मय स्थायें ॥ ४ ॥
 घोंटोंमें तिनका दबाओ, गलेमें कुस्ताही डालो और कुटुम्बियोंसहित अपनी
 किमियोंको साथ लेकर, आदरपूर्वक जानकीजीको आगे करके, इस प्रकार सब मन
 कोकर पाछे—॥ ४ ॥

तो—प्रनतपाद रघुवंसमणि बाहि बहि अब मोहि ।
 आरत गिरि मुक्त प्रभु अमव करैगो तोहि ॥ २० ॥
 और श्री हरनागतके पावन करनेके रघुवंसशिरोमणि श्रीरामजी । मैं रक्षा
 कीलिये, रक्षा कीलिये । [इस प्रकार आर्त प्रार्थना करो ।] आर्त पुकार सुनते ही
 प्रभु तुमको निर्मल कर देंगे ॥ २० ॥

जो—ये कपिलोत्तम बौद्ध संमारी । भूत न आवैहि सोहि सुरारी ॥
 कबु भित नाम जलक कर भाई । केहि मर्त याचिये मिताई ॥ १ ॥
 [रघुपते कहा—] ओरे संदरे नन्हे ! संभालकर बैठ । भूल ! गुप्त देवताओंके
 शत्रुको होने जाना नहीं ! ओरे भाई ! अपना और अपने वाक्क नाम तो बता । किस
 नातेसे मित्रता मानता है ? ॥ १ ॥

जंगद नाम काकि कर केस । तारों कबहुँ कहै ही केस ॥
 जंगद कचन मुक्त सकुचन । रक्ष काकि बाबर मैं जाना ॥ २ ॥
 [भगवते कहा—] मेरा नाम जंगद है, मैं बालिका पुत्र हूँ । उनसे कभी
 तुम्हारी मेट हुई थी । जंगदका कचन सुनते ही राक्षस कुछ सकुचा गया [और
 बौल—] मैं जान गया (मुझे बाद या गया) बालि नाथच एक नदर था ॥ २ ॥

जंगद तहीं काकि कर जलक । उषेहु बंस जलक कुल पाकक ॥
 गर्म ब गम्बु जलक तुम्ह जलक । सिव मुक्त लक्ष दूत कहानहु ॥ ३ ॥
 ओरे जंगद ! तू ही बालिका जलक है । ओरे कुलनाथक ! तू को अपने कुलकी
 बाँके जिसे अनिरूप ही पैदा हुआ । गर्ममें ही क्यों न गट हो गया ! तू स्वयं ही पैदा
 हुआ जो अपने ही मुँहसे तपस्वियोंका दूत कहलगा ॥ ३ ॥

अब कबु कुलक नाकि कहै कहै । बिहिसि बचन सब जंगद कहै ॥
 दिन दस गर्द नाकि कहै कहै । चलेहु कुलक सखा कर काई ॥ ४ ॥
 अब बालिभी कुलक तो बता, यह [जलक] कहाँ है ? तब जंगदने हँसकर

कहा—दस (कुछ) दिन बीतनेपर [खरं ही] वालिके पक्ष जाकर, अपने मित्रको हृदयसे लगाकर, उसीसे कुछकुछ पूछ लेना ॥ ४ ॥

राम विशेष कुछक बसि होई । सो सब तोहि सुखाहि लोई ॥

सुनु सठ भेद होइ सब ताके । श्रीरघुवीर हृदय नहि जाके ॥ ५ ॥

श्रीरामजीसे विशेष करनेपर जैसी कुछक होती है, वह सब हमको वे सुनावेगे । हे मूर्ख ! तुम, भेद उसीके मनमें पड़ सकता है (भेदनीति उसीपर अपना प्रभाव डाल सकती है) जिसके हृदयमें श्रीरघुवीर न हो ॥ ५ ॥

दो०—हम कुछ फालक सत्य तुम्हें कुछ फालक वससीस ।

अंधड पछिर न जस कहहि नयन कान तव चीस ॥ २१ ॥

सच है, मैं तो कुछक नाम करनेवाला हूँ और हे राक्षस ! तुम कुछके रक्षक हो । अपने-बहरे भी ऐसी बात नहीं कहते, तुम्हारे तो बीच नेत्र और बीस कान हैं ॥ २१ ॥

बी०—सिख धिरंभि सुन मुनि समुपाई । चहत जायु बरन सेवकाई ॥

ताजु दूत होइ हम कुछ कोरा । अहसिहुं मति सर बिहरन तोरा ॥ १ ॥

सिख, प्रसा [आदि] देवता और मुनियोंके समुदाय जिनके शरणोंकी सेवा [करना] चाहते हैं, उनका दूत होकर मैंने कुछको बुधा दिया । अरे ऐसी बुद्धि होनेपर भी तुम्हारा हृदय फट नहीं जाता ॥ १ ॥

मुनि कठोर वाणी कपि केरी । कहत दसावन बचन तोरी ॥

कल तव कठिन बचन सुन सहई । नीति धर्म मैं आवन भाई ॥ २ ॥

वायर (अंगद) की कठोर वाणी सुनकर रावण बौलें तोरेकर (दिखी करके) बोला—अरे बुढ़ ! मैं तोरे का कठोर बचन इच्छिये वह रहा हूँ कि मैं नीति और धर्मको जानता हूँ (उन्हींकी रक्षा कर रहा हूँ) ॥ २ ॥

कह कपि धर्मशीलता तोरी । हमसे सुनी कुछ पर तिव तोरी ॥

देखी बचन दूत लखारी । धृति न मखु धर्म अतबारी ॥ १ ॥

अंगदने कहा—तुम्हारी धर्मशीलता मैंने भी सुनी है । [वह यह कि] हमने पराम्प्री कीकी चोरी की है । और दूतकी रक्षाकी बात तो अपनी बोलोंसे देस की । ऐसे धर्मके मतको धारण (पालन) करनेवाले हम हुनकर मर नहीं पाते ॥ १ ॥

कान नाम थिलु ममिधि बिहारी । जस कीन्हि हम धर्म बिचारी ॥

धर्मशीलता सब जग जाती । पाव्य दरसु हमहुं भवभागी ॥ २ ॥

नाक-कानसे रहित बहिनको देखकर हमने धर्म विचारकर ही तो क्षमा धर दिया था । तुम्हारी धर्मशीलता अगन्ताहिर है । मैं भी क्या भाग्यवान् हूँ, जो मैंने तुम्हारा दर्शन पाया ! ॥ २ ॥

दो०—अनि अदपसि अइ अंतु क्षपि सठ बिलोकु मम पाहु ।

लोकपाल कल विपुल ससि असन हेतु सब राहु ॥ २२ (क) ॥

[रावणने कहा—] अरे जड़ जन्तु खनर ! अपने बक-बक न करा अरे मूर्ख ! मेरी मुजाएँ तो देख । ये सब ज्येष्ठाज्योके विशाल बलरूपी चन्द्रमाको प्रकनेके लिये राहु हैं ॥ २२ (क) ॥

पुनि नम सर मम कर निकर कमलन्हि कर करि वास ।

सोमल भव्य मराल इव संभु सहित कैवस ॥ २२ (ख) ॥

किर [तुने सुना ही होय कि] आजप्रलसी ताजबमें मेरी भुजाभोरणी कमजोर
बसकर शिवजीसहित कोऊस हंसके समान सोमाफे प्राप्त हुवा य ! ॥ २२ (ख) ॥

चौ०—मुम्हरे करक मझ धुनु अंगद । सो सब तिरिहि कबच जोना मद ॥

तब प्रभु नारि विहई कछहीना । अलुच तमु दुख दुखी मलीना ॥ १ ॥

अरे अंगद ! तुन; तेरी सेनामें क्या; ऐसा कौन बोझ है जो मुझसे भिड़ सकेगा ?
तेरा माछिक तो जिकि कियोगों कछहीन हो रहा है । और उलझ छोटा भाई उतरीके
धुःखते दुखी और उदास है ॥ १ ॥

तुम्ह सुग्रीव कूळधूम होक । अलुच हमार जीव अति सौक ॥

तामबंस मंथी अति दुर । सो कि होई छव समारोह ॥ २ ॥

तुम और सुग्रीव, दोनों [नहीं] लड़के बच हो । [रहा] मेरा छोटा भाई
बिभीषण, [सो] वह भी बड़ा डरपोक है । मन्थी आगवाच बहुत बड़ा है । यह भय
लक्ष्मणों क्या वह (उदास हो) लक्ष्मण है ! ॥ २ ॥

तिथिय कर्म जासहि नक नीका । ई कपि एक महा ललसीका ॥

आवा प्रथम कलह होई आरा । सुनत पचन कह बालिहमार ॥ ३ ॥

मल-माल तो शिव-कर्म जानते हैं (वे लड़ना क्या जानें !) । हाँ, एक पानर
बकर मझाव कछवात है, जो पहले आवा का, और सिधने संघा जखरी थी । यह पचन
सुनते ही बालियुव अंगदने कहा—॥ ३ ॥

सब पचन कहु निसिचर नाहा । सोचिहुँ कीस कीन्ह डर दवा ॥

रावन नगर जल्य कवि दरई । सुनि भल पचन सब को कहई ॥ ४ ॥

हे राजकरल ! कभी बात कहे ! क्या उस पानरने सबसुन तुम्हारा नगर जल
दिया ! रावण [जैसे जगद्विजयी बोझ] का नगर एक छोटे-से पानरने जल दिया ।
ऐसे पचन सुनकर उन्हें सब कौन कहेगा ! ॥ ४ ॥

जो अति सुमद सगंधहु रावन । सो सुग्रीव केर कहु पावन ॥

कहइ बहुत सो धीर न होई । पछा जषरि केव इस सोई ॥ ५ ॥

हे रावण ! जिसको तुमने बहुत बड़ा मोझा कहकर सराहा है, वह तो सुग्रीवका
एक छोटा-सा दीड़कर बछनेवाला इरकाप है । वह बहुत चलावा है, धीर नहीं है ।
उसको तो हमने [केवल] रावर केनेके सिधे भेजा था ॥ ५ ॥

दो०—सत्य गमय कपि सखेख विबु प्रभु मायसु पाव ।

पिरि न यवत सुग्रीव पाहिं तेहि मय रहा लुकाव ॥ २३ (क) ॥

क्या सबसुन ही उस सानरने प्रसूची आवा पाने बिना ही तुम्हारा नगर जल
हाल ! मानम होता है, इसी दस्ते वह छोटकर सुग्रीवके पक्ष नहीं गया और कहीं
छिप रहा ! ॥ २३ (क) ॥

सत्य कहहि वृषकंठ सब मोहि न सुनि कहु कोह ।

कोठ न हमरै कटक अस तो सन डरत जो सोह ॥ २३ (ख) ॥

हे रावण ! तुम जब सब ही कहते हो; कुठे सुनकर कुठ भी श्रेष्ठ नहीं है ।
रघुनाथ हमारी सेनामें कोई भी ऐसा नहीं है जो तुमसे लक्ष्मणों सेना पाने ॥ २३ (ख) ॥

प्रीति विरोध समान स्वन करिय नीति अति आदि ।

जौ स्वपति वध मेहुकन्हि मळ कि कहाइ कोउ ताहि ॥ २३ (ग) ॥

प्रीति और वैर सरकारीकसे ही करना चाहिये, नीति ऐसी ही है। सिंह यदि मदकोंको मारे, तो स्वयं उसे कोई भय नहीगा ॥ २२ (ग) ॥

अद्यपि लघुता राम कहूँ तोहि वधे वद दोष ।

तदपि कठिन दसकंठ सुख छत्र आवि कर रोष ॥ २३ (घ) ॥

यद्यपि तुम्हें मारनेमें श्रीरामजीकी लघुता है और बड़ा दोष भी है तथापि हे रावण ! सुनो, शत्रुवैरातिक्रम मेष वदा कठिन दोष है ॥ २३ (घ) ॥

वक्र उक्ति धनु वचन सर हृदय दहेव रिपु कौस ।

प्रतिवृत्तर सदसिन्धु मनुहु कादृत भट दससीस ॥ २४ (ङ) ॥

वक्रांकितरूपी धनुषसे वचनरूपी बाण मारकर शत्रुको हृदय मज्ज दिया । वीर रावण उन बाणोंको मानो प्रयुक्तरूपी सँदसिन्धो निश्चय रहा है ॥ २४ (ङ) ॥

हूँसि बोलेउ दसमौलि तब कपि कर वद गुन एक ।

जो प्रतिपादह ताम्र हित करह उपाय अनेक ॥ २५ (च) ॥

तब रावण हँसकर बोला—बंदरसे यह एक बड़ा गुण है कि जो उसे पालता है, उसका वह अनेकों उपायोंसे भय करनेकी चेष्टा करता है ॥ २५ (च) ॥

बौ०—अथ कौस जो निज प्रभु काव्य । कहूँ तब बाणह पहिरि छात्र ॥

बाणि कृदि करि शोक रिसाई । फति हिर करह धर्म मिथुनाई ॥ १ ॥

बंदरको धन्य है, जो अपने मास्त्रिके लिये राज छोड़कर अहाँ-तहाँ नाचता है । नाच-कुदकर, छोमेछो रिसाकर, मास्त्रिका हित करता है । वह उसके धर्मकी नियुक्ता है ॥ १ ॥

अंगद स्वामिभक्त तब जासी । प्रभु गुन कथ न कहसि बहि भीती ॥

मैं गुन गाहक फल सुजना । तब कद रवि करै नहि काया ॥ २ ॥

हे अंगद ! तेरी जति स्वामिभक्त है; [फिर मलय] तू अपने मास्त्रिके गुण इस प्रकार कैसे न बतानेगा ? मैं गुणगाहक (गुणोंका आचर करनेवाला) और परम बुजान (समझदार) हूँ, इसीसे तेरी जली-कटी बक-नकसर बजल (भ्रान) नहीं देता । २ ।

कह कपि तब गुन गदकसाई । तब पवनसुत मोहि सुनाई ॥

मन विषकि सुत कपि दुर जात । तबपि न तेहि कलुषत भयकारा ॥ ३ ॥

अंगदने कहा—तुम्हारी उन्नी गुणप्रशंसा तो सुने हनुमन्ने सुनायी थी । ठहने अशोकवनकी विषरंध (तट-नदस) करके तुम्हारे पुत्रको मारकर नगरको अज दिया था । तो भी [तुमने अपनी गुणप्रशंसाके कारण पही समझा कि] उसने तुम्हारा कुछ भी अपकार नहीं किया ॥ ३ ॥

सोह बिचरि तब प्रकृति सुहाई । दसकंधर मैं कथिदि विहाई ॥

हेकेरै ग्राह जो कहु कपि माया । तुम्हरेँ जज न रोष न माया ॥ ४ ॥

तुम्हारा वही सुन्दर स्वभाव निचारकर, हे दसकंधर ! मैंने कलुष प्रकृता भी है । हनुमान्ने जो कुछ कहा था, उसे जानकर मैंने प्रत्यक्ष देखा कि तुम्हें न लज्जा है, न क्रोध है और न विद है ॥ ४ ॥

जौ कसि अति पिडु खप कौस । कहि कल वचन होख दससौसा ॥

पितहि साह कातेरै पुनि सोही । नखीं खसुखि परा कहु मोही ॥ ५ ॥

[रावण बोला—] गरी बानर ! जब तेरी ऐसी बुद्धि है तभी तो तू बाणको ला

गया । ऐसा वचन कहकर राजन देखा । अंगदने कहा—सिताम्ने खाकर फिर तुमको भी खा बाछता । परन्तु अभी तुरंत कुछ और ही बात मेरी समझमें आ गयी । ॥ ५ ॥

बालि किन्तु उस मानव जानी । हतै न छोड़ि अथम अभिमानी ॥

कहु राजन रावन जग केते । मैं निज जीवन सुने सुनु मेते ॥ ६ ॥

अरे नीच अभिमानी ! बालिके निर्मल वशक पात्र (कारण) जानकर तुम्हें मैं नहीं मारता । रावन ! वह तो बता कि अन्तर्में कितने राजन हैं ! मैंने कितने राजन अपने कानोंसे सुन रखे हैं । उन्हें सुन— ॥ ६ ॥

बलिहि कितन पृथ गथत पञ्चदश । राखेव बाँधि सिसुन्ह हयसाल ॥

छेकहि याकक धरहि छाई । दस जगि बलि दीन्ह छोड़ाई ॥ ७ ॥

एक राजन तो बलिसे नीतने पतासमे गया था, वह वधोंने उसे बुदबालमें बाँध रखा । दसक सेकड़े थे और जग-जग पर उसे मारते थे । बलिको दया लगी, तब उन्होंने उसे छोड़ा दिया ॥ ७ ॥

एक बहोरि सहस्रधुन देखा । बहू घर किमि बंधु बितेका ॥

कौतुक लखि यवन है जग । सो पुच्छि मुनि जाइ सोकाया ॥ ८ ॥

फिर एक रावणसे सहस्रधातुने देखा, और उठने चौककर उसको एक विशेष प्रकारके (विचित्र) अनुधी तरह [समझकर] पकड़ लिया । रावणके लिये वह उसे घर ले आया । वह पुच्छत मुनिने खबर उसे सुनाया ॥ ८ ॥

श्लोक—एक कहत मोहि सकुच अति रक्ष बाळि कीं बाँध ।

इन्ह महुँ पवन हैं कवन सत्य बद्धि तसि माख ॥ २४ ॥

एक रावणकी बात कहनेमें तो मुझे बड़ा संकोच हो रहा है—वह [बहुत दिनोंतक] बाळिकी बाँधमे रहा था । इनमेंसे तुम कौन-से रावण हो ! सीताका छोड़कर सब-सब बताओ ॥ २४ ॥

श्लोक—हुहु छट छोट खय बछरील । हरधिरि आष कसु मुच लील ॥

जान उमापति कसु सुराई । पूछै जेहि सिर सुमन चढ़ाई ॥ १ ॥

[रावणने कहा—] अरे मूर्ख ! तुम, मैं वही बखान् रावण हूँ जिसकी मुखाब्जों की लीला (कपामात) कैलाश पर्वत जगता है । जिसकी श्रुता उमापति महादेवकी जानते हैं, निम्न अपने किरली पुष्प चक्षु-चटाकर मैंने पूछा था ॥ १ ॥

सिर सरोज निज करनिह लसरी । पूछै जेहि अमित कर त्रिपुररी ॥

हुन किन्तु जानहि दिगपाल । छट जगहँ जिन्ह केँ उर साकां ॥ २ ॥

किरली कमलोंको अपने हाथोंसे उतार-उतारकर मैंने अगणित बार त्रिपुरारि शिषनीकी पूजा की है । अरे मूर्ख ! मेरी मुखज्योत्स्ना पराक्रम दिगम्बर जानते हैं, मिनके हृदयमें वह जाल भी जुम रहा है ॥ २ ॥

जानहि दिगम्बर कर कठिनाई । लख लख मिनहँ लख परिभाई ॥

जिन्ह केँ दसव करल न फूटे । उर जगत मुखक दूष हूटे ॥ ३ ॥

दिगम्बर (दिशाओंके हाथी) मेरी छातीकी कठोरताको जानते हैं । मिनके मयानक दाँत, नन-नन नाकर मैं उनसे कनकदली मिठा, मेरी जगतीमें कभी नहीं फूटे (अपना चिह्न भी नहीं बना सके), बल्कि मेरी जगतीके लपटे ही वे मूलीकी तरह टूट गये ॥ ३ ॥

जामु पलत डोळधि इमि रखी । चढ़त मल गज निजि कसु उरनी ॥

सोहँ रावन जग विदित प्रतापी । सुनेहि न अवन कभीक प्रतापी ॥ ४ ॥

जिनके चालते समय पृथ्वी इस प्रकार दिखती है जैसे मत्तबले इन्दीके चढ़ते समय छोटी नाव ! मैं नदी जगत्प्रसिद्ध प्रतापी राक्षस हूँ । अरे खूनी बन्धवाद करनेवाले ! क्या तुने युद्धको कानोंसे कभी नहीं सुना ? ॥ ४ ॥

दो०—तेहि रावन कहैं लघु कहसि नर कर करसि बखान ।

रे कपि चरकर सर्व कळ भव ज्ञान सब ग्वान ॥ २५ ॥

उस (महान् प्रतापी और जगत्प्रसिद्ध) राक्षसके (पुत्रों) दृष्टेय करता है और मनुष्यकी यज्ञार्ह करता है ? अरे दुष्ट, अछम्य, तुच्छ बंदर ! अब मैंने तेरा ज्ञान जान लिया ॥ २५ ॥

चौ०—सुनि संगद सबेय कह खानी । बोलु सँसहि खस भूमिभानी ॥

सहस्रपादु धुल कहन भगारा । वृद्धन जगल सम जासु ह्वारा ॥ १ ॥

रावणके ये वचन सुनकर अंगद क्रोधवर्धित वचन बोले—अरे नीच भूमिभानी ! सँभालकर (तोच-वमशकर) बोल ! जिनका करवा सहस्रपादुकी भुजाओंकी अपार धनको बसानेके छिपे अग्निके समान था ॥ १ ॥

जासु परसु सागर जर चारा । बड़े रूप भगवित बहु चारा ॥

तासु गर्ब जेहि हेकल भगा । सो नर क्यों इससीस भगागा ॥ २ ॥

जिनके फलारूपी सपुत्रकी तीव्र धारमें अनगिनत राजा अनेकों बार लूट गये, उन फलारूपीका गर्व मिन्नै देलते ही भाग गया, अरे भगाने शस्त्रीश ! ये मनुष्य क्योंकर हैं ? ॥ २ ॥

राम मनुज कस रे सल बंका । कपौ कसु नही पुनि गंगा ॥

पसु सुरपेसु कसकल रुता । नस दान अद सस पीपसा ॥ ३ ॥

क्यों रे पूर्ण उद्बुध ! श्रीरामचन्द्रजी मनुष्य हैं ! कामदेव भी क्या चतुर्धरी है ! और राज्ञानी क्या नहीं हैं ! कामपेसु क्या पशु है ! और कलकल क्या पेहू है ! अल भी क्या दान है ! और अमृत क्या रस है ! ॥ ३ ॥

वैमतेय छल जहि सहस्रानम । विलसति पुनि उपल दस्तान ॥

छल मतिमंद लोक वैकुण्ठ । कस कि खुरति भगति अकुण्ड ॥ ४ ॥

एकजी क्या पक्षी हैं ! शेषजी क्या छत्र हैं ! ओ राक्ष ! चित्रामणि भी क्या पत्थर है ! अरे ओ मूर्ख ! दुल वैकुण्ठ भी क्या लोक है ! और श्रीरामास्वामीकी वाक्पथ भक्ति क्या [और लमो-नेक ही] लम है ! ॥ ४ ॥

दो०—सेम सहित सब माम भधि बन उज्जारि पुर जारि ।

कस रे सल हनुमान कपि कवउ जो तब सुत मारि ॥ २६ ॥

सैनसमेत तेरा यान मयकर, अखोकनको उजाड़कर, नगरको जलाकर और तेरे पुत्रको मारकर जो छैट मने [तू उनका कुछ भी न विचार सक], क्यों रे दुष्ट ! ये हनुमानजी क्या धनर हैं ! ॥ २६ ॥

चौ०—सुनु सबन पसिहिरि पसुतई । मसि व लुपसिपु रतुराई ॥

जौ कळ मसि राम कर जोही । मळ कळ कळ पसि न जोही ॥ १ ॥

अरे राक्ष ! चतुर्पई (कण्ट) जोड़कर सुन । कुपके समुद्र श्रीरामायनीका तू मखन क्यों नहीं करता ! अरे दुष्ट ! यदि तू श्रीरामजीका चैरी हुआ तो तूसे मला और चर भी नहीं बचा सकेंगे ॥ १ ॥

सुद कृपा जनि जारसि नखल । राम बर बल होइहि हाक ॥

कम तिर किर कसिन्द के जानें । पसिहि बरनि राम सर कायें ॥ २ ॥

दे मूढ़ ! ज्यैय बालन मर (शीमं न होंक) । श्रीरामजीसे दैर करनेपर तेरा ऐसा हाल होगा कि तेरे सिर-समूह श्रीरामजीके बाब लगते ही कान्तोंके धाने पृथ्वीपर पड़ेंगे, ॥ २ ॥

ते सब सिर बंधुक सम बाबा । खेचिहहि भाहु बीस चौगाना ॥

जबहि समर कोपहि खुनायक । छुटिहहि अतिकराळ बहु सायक ॥ ३ ॥

और रीक-वानर तैर उन गेदके समान जनेछें शिरोंसे चौगान खोलेंगे । जब श्रीखुनायकी युद्धमें कोप करेंगे और उनके अलन्त तीक्ष्ण बहुत-से बाण छूटेंगे, ॥ ३ ॥

सब सि बलिहि अस गल्ल दुमहासा । अस थिचारि महु राम उदारा ॥

धुमंत धवन रावण परजग । अस महाधल बहु घुत परा ॥ ४ ॥

सब क्या तेरा ऐसा घाल चलेगा ? ऐसा निचारकर उधर (कृपाछ) श्रीरामजीको भज । संग्रहके ये कचन सुनकर रावण बहुत अधिक बल उठा । मनो अलसी हुई प्रवण्ड समिमें बी पड़ गया हो ॥ ४ ॥

दो०—कुम्भकरन अस बंधु मम सुख प्रसिद्ध सकारि ।

मोर पराक्रम खई सुनेहि नितैँ खराखर धारि ॥ १७ ॥

[यह मौख—अरे मूर्ख !] कुम्भकर्ण-ऐसा मेरा भाई है, इन्द्रका धनु सुप्रसिद्ध मेघनाद मेरा पुत्र है । और मेरा पराक्रम तो देने सुना ही नहीं कि मैंने सम्पूर्ण जड़-पेतन मगतको जीत लिया है ॥ २७ ॥

चौ०—सह साफाकन कोरि सहाई । बाँबा सिद्ध इह प्रसुताई ॥

बाबहि पना जनेक कारीसा । सुर न होहि ते सुनु सब कीसा ॥ १ ॥

२ दुष्ट ! बानरोंकी सहायता जोहकर रामने समुद्र बाँध लिया, वर, यही उत्तकी प्रभुता है । समुद्रकी तो मनेकों पकी भी लेंच बाटे हैं । पर इसीसे वे सभी सूरवीर नहीं हो जाते । अरे मूर्ख बंदर ! सुन—॥ १ ॥

मम सुख समान कळ कळ पूरा । खई श्वे बहु सुर कर सुरा ॥

बीस पचीस जगजग अगारा । की अस बीर जो पाइहि पारा ॥ २ ॥

मेरी एक-एक मुनाकमी समुद्र बलसी चले पूर्ण है, जिसमें बहुत-से सूरवीर देवता और मनुष्य डूब चुके हैं । [बता,] कौन ऐसा सूरवीर है जो मेरे इन शब्दों और अपार बीस समुद्रोत्थ पर पा जायगा ! ॥ २ ॥

दिगाकान्ह मैं नीर भराया । मूप धुवस कळ मोहि सुनाया ॥

जौ वै समर सुभल सब नाया । मुनि मुनि सखि जाहु गुन गाया ॥ ३ ॥

अरे दुष्ट ! मैंने दिगाकालेंतकसे कळ भरवना और तू एक राजाका मुझे सुभल सुनाया है ! यदि तेरा माछिन्द्र, सिंघकी गुणगया तू बार-बार कह रहा है, संग्राममें कड़नेवाला बोझा है—॥ ३ ॥

सौ बसीठ बखव कोहि कला । रिदु संग ग्रीति जलत बाँहि कला ॥

हरगिरि मयन निरखु मम जह । पुनि सठकपि मिय प्रसुहि सगह ॥ ४ ॥

तो [फिर] वह पूत किसलिये येकला है ! खुसे ग्रीति (सन्धि) करते उसे जान नहीं जाती ! [पहले] कैलासध्व मयन करनेवाली मेरी मुनाकोंको देख । फिर अरे मूर्ख धानर ! अपने माछिकरी कराहना कला ॥ ४ ॥

दो०—सूर कवन रावन सरिख स्वर काटि जेहि सीस ।

हुने भगळ अति हरप बहु बार सखि गौरीस ॥ २८ ॥

रावणके समान सूरवीर कौन है ? जिसने अपने ही हाथोंसे सिर अट-काटकर

अत्यन्त दुर्गै साय बहुत बार उन्हें अधिम होम दिया ! स्वर्ग मौरीगति शिक्की
इत बातके गान्धी १ ॥ २८ ॥

मौ०—सरत पिलोकेहैं बहहि कवाका । विधि के लिखे अंकनिज भाका ॥

नर के कर जणन यह पाँची । इसेहैं जानि निधि निरा अर्घाची ॥ १ ॥

महाकाके कल्ले समय जब मैंने अपने कल्लेदोर लिखे हुए विधाताके अक्षर देखे,
तब मनुष्यके गुणसे अपनी मृत्यु होना बौनकर, निधत्ताकी पाषी (छेदको) अक्षय
जानकर मैं हँसा ॥ १ ॥

सौद मन समुद्रि जस नहि मोरें । लिख विरवि जस मति मोरें ॥

भान खेर बरु लल मम व्यापें । पुनि पुनि कइसि लजपति लागें ॥ १ ॥

उस बातसे सम्भवकर (स्वरूप करके) भी मेरे मनमें डर नहीं है । [क्योंकि
मैं ममता हूँ कि] चूँकि प्रकृति बुद्धिप्रमत्ते ऐसा लिखा दिया है । अरे मूर्ख ! वृ कजा
और मर्षादा छोड़कर मेरे भाँसे बार-बार बूझे खैरका शक्त करता है । ॥ १ ॥

कह अंगद सज्जन जग माहीं । रायन लोहि समान कोट माहीं ॥

राजपंथ तप सज्जन शुभाऊ । निज भुखनिज गुन कहति नपाऊ ॥ २ ॥

अंगदने कहा—अरे रायन ! तेरे समान छात्रावात् अनात्म कोर नहीं है । लम्बा-
मीमाता तो होगा बहुत स्वभाव दी दे ! वृ अपने मुँहसे अपने गुण कभी नहीं कहता ॥ २ ॥

निर अह लौह कया पित राहो । तपे बार बीस तैं कही ॥

मो भुगवत्त शम्भु उर धाही । जीवहु सस्ययानु बलि जाली ॥ ४ ॥

मिर फाटने और खैरत उठानेकी कया चित्तमें चली हुई थी, इसके दूने उसे
पीने पार फटा । भुजाओंके उस कबजे तो तुने हृदयमें ही दाख (लिख) रक्खा है,
जिसके तूने सहस्रबाहु, शक्ति और नासिकों जैसा पा ॥ ४ ॥

मुहु मतिर्मद देहि अब पृथ । खटें लौह कि होइय सृष्ट ॥

हँसनानि कहु कहिम न कीछ । कइय चिज कर सकक सरीर ॥ ५ ॥

अरे मन्दुकि ! मुन, अब बस कर । तिर खटनेसे भी क्या कोई शरीर हो
जाता है ! इन्द्रजात रत्नपान्तेको भीर नहीं कहा जाता, क्योंकि वह अपने ही हाथों अपना
कारा शरीर फाट डालता है ! ॥ ५ ॥

रो०—जराहि परतम मोह वस धार बहहि बार कुं ।

ते नहि सूर कइयबहि समुद्रि देखु मतिर्मद ॥ २९ ॥

अरे मन्दुकि ! समझकर देख । कबो मोहका आगममें भ्रम मरते हैं, गवर्जोंके
हुँट योद्धा लादकर चलते हैं; पर इस कारण वे शरीर नहीं कहल्ये ॥ २९ ॥

चौ०—अब जानि पणवद्वय काळ कही । मुहु मम जणन मान परहरही ॥

उत्सुख मी न बलीही अचर्य । जस विधारि खुबीर पडापर्य ॥ ३ ॥

अरे बुद्ध ! अब पणवद्वय मम कर; मेरा कर्म तुन और अभिमान त्याग दे !
दे दशगुण ! मैं दूधभी तरह [वन्धि करने] नहीं आया हूँ । औरतुबीने देखा विनारकर
मुझे मेका है—॥ ३ ॥

बार बार कस कइय कृपाका । नहि बजाहि जसु बरें सज्जनका ॥

मम महु समुद्रि कसम प्रभु केरे । खटें कटोर बचन सठ ठेरे ॥ २ ॥

कुपाह्य श्रीरामजी बार-बार ऐसा कहते हैं कि त्यागके मरनेसे सिंहको क्या नहीं

मिलता । अरे मूर्ख ! प्रभुके [उन] कवनोको मनमें उमलकर (याद करके) ही मैंने तेरे कठोर वचन सहे हैं ॥ २ ॥

साहि त करि मुख संवष खेरा । छै जातेवेँ सीखदि घरनोरा ॥

जावेदें तब कळ अथवा सुपरी । सुनें हरि खनिहि रानारी ॥ ३ ॥

नहीं तो तेरे मुँह तोहकर मैं सीताजीको जबरदस्ती ले जाता । अरे अभय ! देवताओंके शत्रु ! तब कळ तो मैंने तभी जान लिया जब तू खनें परावीजीको हर (चुप) गया ॥ ३ ॥

हे नितिचर पति यव बहूता । मैं रघुपति सेवक कर दूता ॥

जौ न राम जपमाबहि हरकै । तोहि देखत मल कोटुक काकै ॥ ४ ॥

तू रामको नाम राम और बड़ा अभिमानी है । परन्तु मैं तो श्रीरघुनाथजीके सेवक (शुभीन) का दूत (सेवक या सेवक) हूँ । यदि मैं औरामनीके अपमानसे न डरूँ तो तेरे देखते-देखते ऐसा तमाशा फूँके कि— ॥ ४ ॥

दो०—तोहि पटक मदि सेन हति चौपट करि तब गाउँ ।

तब जुवतिन्ह समेत सठ जयकमुठहि कै जाउँ ॥ ५ ॥

इसे जमीनपर पटककर, तेरी सेनाका संहार कर और तेरे गोंवको चौपट [नष्ट-भंग] करके, अरे मूर्ख ! तेरी सुवती क्षिपोंवहित आनवीजीको ले जाऊँ ॥ ५ ॥

धौ०—जौ अस करी तद्वि न बड़ाई । मुएहि बर्ये गाँहि कहु मखुसाँ ॥

कौल काम कळ कृपित विमुखा । अति हरिद जवसी अति बड़ा ॥ ६ ॥

यदि ऐसा फूँके, तो भी इसमें कोई रबाई नहीं है । मेरे हुएको मारनेमें कुछ भी पुबल (बहादुरी) नहीं है । काममागी, कामी, कंजड़, अल्पव नूत, अति दरिद्र-बदनाम; बहुत बूढ़ा; ॥ ६ ॥

सदा रोषमल संघत जेयी । विष्णु विमुखा सुवि संव विरोधी ॥

तहु पोषक विवृक जव खासी । जीवत सब सम चौदह प्राणी ॥ ७ ॥

नित्यका रोषी, निरन्तर क्रोधयुक्त रहनेवाला; भगवान् विष्णुसे विमुख; वैश और संतोंका विरोधी; अपना ही शरीर-खेद करनेवाला; परावी निम्ना करनेवाला और पायवी खान (महान् पारी)—ये चौदह प्राणी होते ही मरदेके समान हैं ॥ ७ ॥

अस विचारि कळ जवई न सोही । अथ विचिस्ति अपकावति मोही ॥

जुनि समीप कहु मिसिचर कथा । अथ वसत दसि नीकात हाथा ॥ ८ ॥

अरे दुष्ट ! ऐसा निवारक मैं तुझे नहीं मारता । अब तू मुझमें क्रोध न पैदा कर (मुझे गुस्सा न दिला) । अंतर्दके कत्तन कुनकर राक्षसराज रावण दोंनोंसे होंठ काटकर, मोहित होकर हाथ मल्ला हुआ थोका— ॥ ८ ॥

दे करि अभय अतब जव चहसी । छोटे बदन बात बदि कहसी ॥

कहु जलधि जव कवि चले जानें । कळ प्रसन्न सुधि तेज न लाकें ॥ ९ ॥

अरे नीच बंदर ! जब तू मरना ही चाहता है ! इसीसे छोटे मुँह बड़ी बात कहता है । अरे मूर्ख बंदर ! तू जिसके कत्तर चढ़ाए कत्तन नक रहा है, उसमें कळ प्रताप-बुद्धि अथवा तेज कुछ भी नहीं है ॥ ९ ॥

दो०—अगुन अमान खनि तोहि दीन्ह पित्त वनवास ।

सो दुख अरु सुवती विरह पुनि निस्तिदिन सम प्राप्त ॥ १० (क) ॥

उसे गुणहीन और अमान खनि तोहि दीन्ह पित्त दे दिया । उसे एक

वो वह (उपका) दुःख, उसपर दुकती लीन निह और फिर रात-दिन मेर डर बना रहता है ॥ ३१ (क) ॥

जिन्ह के यल कर गर्व छोड़ि जइसे मनुज अनेक ।

साहि निसाचर दिवस निशि महु समुझु तजि टेक ॥ ३१ (ख) ॥

जिनके यलका हुसे यथ है, ऐसे अनेको मनुष्योंको तो राक्षस रात दिन खाया करते हैं । ओरे मूढ़ । निह छोड़कर समस्त (निचार कर) ॥ ३१ (ख) ॥

चौ०—जय तेहि कीन्हि राम कै बिदा । कोषवत अति भयङ्क कर्षिदा ॥

हरि ह्य निदा सुन्द बो जाना । दोह पाय मोघात समाना ॥ १ ॥

जय उसने श्रीरामबोधी निन्दा की, तब उसे कर्षिभेद अंगद अत्यन्त कोषित हुए । क्योंकि [वाल ऐस पढ़ते हैं कि] जो अपने कानोंसे भगवान् विष्णु और शिवकी निन्दा सुनता है, उसे गोपथके समान पाव होता है ॥ १ ॥

कटकदान कर्षिभेद मारी । बुझु बुझाई तमकि महि मारी ॥

होकर भरनि समासद् कसे । चले भाजि भय मास्त प्रसे ॥ २ ॥

वानरभेद अंगद बहुत जोरसे कटकदावे (खर किना) और उन्होंने तनकर (जोरसे) अपने दोनो भुजदण्डोंको पृथ्वीपर दे मारा । पृथ्वी हिलने लगी, [जिससे डरे हुए] समासद् निर पड़े और भयभीत पवन (भूत) से प्रसन्न होकर भाग चले ॥ २ ॥

शिरस सैमारे उठा हसकंधर । मूढक परे मुकुट जति धुंवर ॥

कहु तेहि लै निज सिरिन्ह सँवारे । कहु अंगद प्रभु पास पवारे ॥ ३ ॥

राज्य गिरसे-गिरसे सैमलकर उठा । उसके अत्यन्त सुन्दर मुकुट पृथ्वीपर गिर पड़े । कुछ दो उलने उठाकर अपने सिरोंपर मुधारकर रख लिया और कुछ अंगदने उठाकर महु श्रीरामचन्द्रकीके पास फेंक ॥ ३ ॥

आवस हृकुड हेजि कपि भागे । दिनहीं लूक वरन बिधि लाये ॥

की राखन करि कोप पलप । कुतिस पारिआवत जति धार ॥ ४ ॥

मुकुटोंको आते देखकर वानर भागे । [सोचने लगे] विधाता । क्या दिनमें ही उष्कापाव होने लगा (लगे दूटकर गिरने लगे) ? अबका क्या राखने कोष करके पार पत्र चलाये हैं, जो यदे पावेके लप (वेनो) आ रहे हैं ? ॥ ४ ॥

कह प्रभु ईसि अनि दुखै देखहु । लूक न असवि केतु बहिं पदु ॥

ए किरिड हसकंधर कैरे । जगत् कालितवय के प्रेरे ॥ ५ ॥

प्रभुने [उनसे] हँसकर कहा—मनमें डरो नहीं । वे न ठकस हैं, न वज्र हैं और न केतु वा राहु ही हैं । ओरे माई ! वे तो राजाके मुकुट हैं, वो कालिपुत्र आदिके केके हुए आ रहे हैं ॥ ५ ॥

बो०—तरकि पवनमुठ कर गये आनि धरे प्रभु पास ।

कौतुक देसाहि माळु कपि दिक्कर सरिस प्रकास ॥ ३२ (क) ॥

पवनपुत्र श्रीहनुमान्जीने उछलकर उनकी हाथके फाड़ लिया और लफर प्रभुके पास रख दिया । रीठ और वानर उमंग देखने लगे । उनका प्रकाश उनके समान था ॥ ३२ (क) ॥

उहाँ सकोषि वसानन खन खन काहत रिस्तार ।

धरहु कपिहि धरि मापहु सुनि अंगद मुमुषार ॥ ३२ (ख) ॥

वहाँ (सभामें) क्रोधयुक्त खण खणसे क्रोधित होकर कहने लगा कि—बंदरको पकड़ ले और पकड़कर मार डाले । अंगद यह सुनकर मुसकराने लगे ॥ ३२ (ख) ॥

चौ०—एहि विधि वेगि सुम्न सह चाबहु । खलु खलु कपि जहँ जहँ पावहु ॥

मकंदहीन कहु महि जाई । जिनज भरहु तापस हो भाई ॥ १ ॥

[रावण फिर बोले—] इसे मारकर सब मोक्ष दुरंत दौड़ो और जहाँ-कहीं रीछ-वानरोंको पाओ; वहीं खा डालो । पुष्पीको बंदरोसे खित कर दो और जाकर दोनों तपती माइयों (राम-मन्मथा) को बीते-बी पकड़ लो ॥ १ ॥

हुनि सखेप बोले कुषराज । गाल बनावत तोहि न छाजा ॥

मर गर काटि निकर कुलवासी । कल किलेकि बिहरति नाहि छाती ॥ २ ॥

[रावणके ये दोफारे वचन सुनकर] तब युवराज अंगद क्रोधित होकर बोले—तुझे गाल बनावते खन नहीं आती ! अरे निर्लज्ज ! अरे कुलनाशक ! गला काटकर (आत्महत्या करके) मर जा ! मेरा वध देखकर भी क्या डेरी छाती नहीं फटती ! ॥ २ ॥

रे त्रिय खेर कुमारग बानी । सल मख राखि मंदमति कामी ॥

सम्पपास जहरसि दुर्षावा । अपसि काकवस कल मनुमावा ॥ ३ ॥

अरे, लोके बोर ! अरे कुमारीपर चढ़नेवाले ! अरे दुष्ट, पापकी राशि, मन्दबुद्धि और कामी ! तू वज्रिपातमें क्या दुर्बचन बक रहा है ! अरे दुष्ट राक्षस ! तू कालके वध हो गया है ॥ ३ ॥

पाको फलु पावहिगो आगे । कसर खलु चपेटन्हि कागे ॥

शत्रु मनुष्य बोलत अंसि बानी । निरहि न कय रसना अभिमानी ॥ ४ ॥

इसका फल तू आगे जान और भाइयोंके चपेटे लगनेपर पावेगा । राम-मनुष्य हैं, ऐसा बचन बोलते ही, अरे अभिमानी ! तेरी जीमें नहीं मिर पड़ती ! ॥ ४ ॥

निरिहहि रसना संसग महीं । निरन्हि समेत ससर नहि माहीं ॥ ५ ॥

हलमें चन्देह नहीं है कि तेरी जीमें [अकेले नहीं करे] त्रिोंके साथ रणभूमि में गिरेगी ॥ ५ ॥

चौ०—लो नर क्यों दसकंध बाकि बध्यो जेहि एक सर ।

बीसहुँ लोचन अंध धिगंतक अन्ध कुजाति जह ॥ ३३(क) ॥

रे दसकन्ध ! बिछने एक ही बाणसे बाकिमे मार बाख, यह मनुष्य कैसे है ! अरे कुजाति, अरे गड ! बीस आँखें होनेपर भी तू अंधा है ! तेरे जन्मको पिछार है ॥ ३३(क) ॥

तब सोचिती धई प्यास छुक्ति राम सायक निकर ।

तजई तोहि तेहि पास कहु जलक निखिचर अक्षर ॥ ३३(ख) ॥

भीरामचन्द्रजीके बाणसमूह तेरे रक्तबी प्याससे प्यासे हैं । [वे प्यासे हीरद जाँवेरे] इस तरह, अरे कड़वी बकवाद करनेवाले जीन राक्षस ! मैं तुझे जोकता हूँ ॥ ३३(ख) ॥

चौ०—मैं सब दशन लेखि करक । जगसु जेहि न दीन्ह धुरायक ॥

असि रिस होहि दसदस मुख लेरी । कंठ नहि समुद्र मई बोरै ॥ १ ॥

मैं तेरे दौत लोड़नेमें समर्थ हूँ । पर क्या कहूँ ! श्रीरघुनाथजीने मुझे बाण नहीं दी । ऐसा क्रोध आया है कि तेरे दसों मुँह तोड़ दूँ और, [शीघ्र] लंकाको पकड़कर समुद्रमें डुबा दूँ ॥ १ ॥

गुहरि फल समान तब लंका । कसहु मज्ज तुम्ह नहु अंसका ॥

मैं जानै फल सात न बाध । जगसु दीन्ह न राम उदाध ॥ २ ॥

तेरी संका गूढके फलके सम्मान है। तुम सब कीड़े उसके भीतर [अज्ञानवास]
निदर होकर बस रहे हो। मैं बंदर हूँ, मुझे इस फलको खाते क्या देर थी ? तब उदार
(कृपाश्रु) श्रीरामचन्द्रजीने वैसी आज्ञा नहीं दी ॥ २ ॥

अनुति ध्रुवत रामन सुसुखई । खुद सिमिहि कई बहुत दुखई ॥

बलि न कयहुँ गाल जस मारा । सिमि हसिन्ह ते भयसि कबारा ॥ ३ ॥

अंगदकी युक्ति सुनकर रामन मुकनराया [और बोले—] अरे मूर्ख ! बहुत
घर खोजता तूने कहाँ सीखा ! बालिने तो कभी ऐसा बाल नहीं धरया । अन पढ़ता है
तू तारसिपोंसे मिछकर खार हो गया है ॥ ३ ॥

साँचेहुँ मैं छपन मुज बीह । और न उपरिहैं तब इस बीह ॥

समुसि राम प्रसाप करि कोष । समा मस्य मय करि पद रोषा ॥ ४ ॥

[अंगदने कहा—] अरे बीह सुभाषणे ! यदि तेरी दलों कीमें मैंने नहीं
उखाड़ लीं तो सचमुच मैं लभार ही हूँ । श्रीरामचन्द्रजीके प्रसापके सम्पन्नकर (चरण
करके) अंगद कोषित हो उठे और उन्होंने रामनकी छत्रमे श्रम करके (इहसासे चप)
पैर रोप दिया ॥ ४ ॥

औं मम कबल सकसि सड डारी । छिहि एतु शीका मैं हारी ॥

हुनहुं सुभर सय कह दसलीसा । पद बहि बरधि पछलु कोषा ॥ ५ ॥

[और कहा—] अरे मूर्ख ! यदि तू मेरा चरण हट्य उनके तो श्रीरामजी छैट
जायेंगे, मैं सीताजीको हार गया । उपजने कहा—हे सब बीरो । तुमने पैर पकड़कर
बंदरको छत्रोपर पछल दो ॥ ५ ॥

हंमलीत आदिह कलयासा । हरि उठे जई लई मड बाका ॥

अपठहिं करि कल रिपुह उपाई । पद य उरु कैठहिं सिह माई ॥ ६ ॥

हनुमंत (मेवमाद) आदि जनोंको कलमान् बोझा जहाँ-तहाँसे हर्षित होकर
उठे । वे पूरे बलसे बहुत-से उपपाय करके हाथते हैं । पर पैर उलझ नहीं, तब फिर नीचा
करके फिर अपने-अपने शानकर जा बैठ जाते हैं ॥ ६ ॥

पुनि उठि अरुहिं सुर आरती । उरु न कीस चरन घुहि भीती ॥

पुनरु कुमीनी सिमि उरुगरी । सोद विप नहिं सकाई कपारी ॥ ७ ॥

[प्राकट्युपनिषद् कहते हैं—] वे देवताओंके धनु (राक्षस) फिर उठकर कपारते
हैं । परन्तु वे चणोके धनु गन्धर्वी ! अंगदका चरण उनसे बेचे ही नहीं दकता जैसे
कुयोगी (विपयी) पुरुष मोहली प्रलको नहीं उखाड़ सकते ॥ ७ ॥

दो०—कोटिन्ह मेकनाद सय सुमट उठे हरपाह ।

अपठहिं टरै न कपि नरन पुनि वैठहिं सिर मार ॥ ८ ॥ (क) ॥

करोड़ों वीर मोहा जो बलमे मेकनादके समान के हर्षित होकर उठे । वे बार-
बार झपटते हैं, पर वानरका चरण नहीं उठता, उन कबाले गते फिर नबकर बैठ
जाते हैं ॥ ८ ॥ (क) ॥

भूमि न झौंझत करि चरण देखत रिपु मद भय ।

कोटि विप ते संत कर मन सिमि नीति म त्याग ॥ ९ ॥ (ख) ॥

जैसे करोड़ों विपनजानेपर भी संतभ मन नीतिके नहीं छोड़ता, वैसे ही वानर (अंगद)का
चरणपृथ्वीको नहीं छोड़ता । वह देखकर धनु (राक्षस) का मद दूर हो गया ॥ ९ ॥ (ख) ॥

चौ—कपि हल देखि सकल द्विष हने । उठा बाणु कपि के परबारे ॥

गहत चरन कह कलिकुमार । मम पद गई न सोर उबार ॥ १ ॥

अंगदका बल देखकर छन हृदयमें हार गये । जन अंगदके ललकारनेपर रावण स्वयं उठा । जब वह अंगदका चरण पकड़ने लगा तब बालिकुमार अंगदने कहा—मेरा चरण पकड़नेसे तेरा क्याप नहीं होया ॥ १ ॥

राहसि न सम चरन छठ चाई । सुखत फिरा मन अति सकुचाई ॥

भयत सेकहत श्री सब गई । मज्ज दिवस बिमि ससि सोइई ॥ २ ॥

ओ मूर्ख ! तू ब्रह्मर भीरामजीके चरण क्यों नहीं पकड़ता ? यह सुनकर वह मनमें बहुत ही सकुचाकर खैट गया । उसकी चारी भी खाली रही ! वह ऐसा तेजहीन हो गया जैसे मध्याह्नमें चन्द्रमा दिखायी देता है ॥ २ ॥

सिंघासन बैठे छिर चाई । मज्जहुँ संपति सकल गँवाई ॥

जगदात्मता प्राप्तपति यमा । समु विमुक्त किमि कह बिधामा ॥ ३ ॥

वह छिर नीचा करके सिंहासनपर जा बैठा । मानो सारी सम्पत्ति गँवाकर बैठा हो । भीरामचन्द्रजी अमरसरके आत्मा और प्राणोंके स्वामी हैं । उनसे विमुक्त रहनेवाला ध्यानि कैसे पा सकता है ॥ ३ ॥

रमा राम की चहुँदि निकसत । होइ मिलि पुनि राखइ नासा ॥

एन से झुलिर झुलित वन करई । समु कल पन बहु किमि हरई ॥ ४ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा ! तिन भीरामचन्द्रजीके भविष्यत (भीरके इशारे) से विश्व उत्पन्न होता है और फिर नाशको प्राप्त होता है। जो सुगन्धो वन और वनकी रचना बना देते हैं (अत्यन्त निर्बलको महान् प्रबल और महान् प्रबलको अत्यन्त निर्बल कर देते हैं), उनके दूतका प्रण, कदो, कैसे का सकता है ॥ ४ ॥

पुनि कपि बाही नीति विधि नाना । मज्ज न ताहि कहि निजसाया ॥

रिपु मद मधि प्रभु सुकल सुचायो । वह कहि चलो पाछि रूप जायो ॥ ५ ॥

फिर अंगदने अनेकों प्रकारसे नीति कही । पर रावणने नहीं माना। क्योंकि उसका काफ निकट आ गया था । समुके गर्वको खुर करके अंगदने उसको प्रभु भीरामचन्द्रजीका दूतका मुतावा और फिर वह रावण बालिका पुन वह करकर बल दिया—॥ ५ ॥

हरी न खेत खेकड़ खेकड़ । तोहि अर्थाई का क्यों बपाई ॥

मयमाई ताहु तनय कपि मास । सो सुनि रावण भयत दुसारा ॥ ६ ॥

रणभूमिमें तुझे खेत-खेकड़ न मारें तत्काल अभी [पहलेसे] क्या बढ़ाई करें । अंगदने पहले ही (समामें जानेसे पूर्व ही) उसके पुत्रको मार डाला था । वह संवाद सुनकर रावण दुखी हो गया ॥ ६ ॥

जगद्वान अंगद वन देखी । मज्ज जगदुल सब अष्ट बिसेयी ॥ ७ ॥

अंगदका प्रण [सफल] देखकर छन रावण भयसे अत्यन्त ही व्याकुल हो गये ॥ ७ ॥

दो—रिपु बल भरपि हरपि कपि बालितनय बलपुंन ।

पुलक सरीर कयल जळ गहे राम पद कँज ॥ ३५ (क) ॥

बालुके नलका भर्दन कर, बलवी राशि बालिपुत्र अंगदजीने हर्षित होकर आकर भीरामचन्द्रजीके चरणकमल पकड़ लिये । उनका शरीर पुलकित है और नेत्रोंमें [आनन्दशुक्लिका] जल मरा है ॥ ३५ (क) ॥

सँझ जामि दसकंधर मवन पयस निलसाह ।

मंदोदरी रावनहि बहुरि कहा समुसाह ॥ ३५ (ख) ॥

सन्ध्या हो गयी जानकर दशमीव निवृत्तता हुआ (उबास होकर) गहलमें गया ।
मन्दोदरीने रावणको समझाकर फिर कहा—॥ ३५ (ख) ॥

ची०—कंत समुक्ति मन सखु कुमविही । सोह न समर दुम्हहि श्रुपतिही ॥

रामानुज स्यु रेस खचरौ । सोह नहि बावेहुअसि मनुसाई ॥ १ ॥

हे कान्त ! मनमें समझकर (विचारकर) कुबुद्धिको जेद हो । आपसे और श्रीरघुनाथजीसे युद्ध क्षोभा नहीं देख । उनके छोटे भाईने एक बगरी रेखा खींच दी थी, उसे भी आप नहीं खींच सके, ऐसा तो आपका पुष्पत्व है ॥ १ ॥

विच तुम्ह ताहि वितय संग्रमा । लखे दूख केर यह कामा ॥

कौतुक सिंधु नाचि तब कंका । अयस कवि कैदरी असंका ॥ २ ॥

हे प्रियतम ! आप उन्हें संग्राममें जीत पावेंगे, बिनके दुःखा ऐसा काम है ! लोकोत्तरी ही समुद्र खोंकर गह कान्ठोंमें सिंह (दनुमान्) आपकी लंछनमें निर्मम पला आया ॥ २ ॥

रसबारे हसि विविध उजारा । ऐसत लैहि भयस तेहिं भारा ॥

जगरि सखल सुर कौन्हेसि छतर । कहाँ रहा नक यव तुम्हारा ॥ ३ ॥

रसवालेको मारकर उसने अखेरकन उबाड़ डाला ! आपके देखते-देखते उसने अक्षयकुमारको मार डाला और सम्पूर्ण नगरको बलकर राज कर दिया । उस समय आपके बलका गर्व कहाँ चल गया था ! ॥ ३ ॥

अप पति मृषा गारु जनि मावहु । और कहा कसु दुखें विचारहु ॥

पति श्रुपतिहि मृपति जनि मावहु । अग अय बाध अनुकवक जालहु ॥ ४ ॥

अब हे स्वामी ! झूठ (मय) बाध न मारिये (खींच न होंविये) । और कहनेपर हृदयमें कुछ विचार कीजिये । हे पति ! आप श्रीरघुपतिको [निरा] रामा मत समझिये, बरिष्क अना-जाना प (करारके स्वामी) और अनुकनीय पञ्चात् जामिये ॥ ४ ॥

धान प्रकाय लख मारीषा । तसु कहा यहि मारीषि नीषा ॥

जगद सर्वा अगमिद भूषाख । एह तुम्हद सब अनुक विस्तार ॥ ५ ॥

श्रीरामजीके बाणका प्रकाश हो नीच मारीच भी जलता था । परन्तु आपने उसका कहना भी नहीं माना ! जनकजी समझें अगमिद रजामय थे । वहाँ विद्याल और अनुकनीय बलवाले आप भी थे ॥ ५ ॥

भक्ति धनुष आनकी निवृद्धी । सब संग्राम जितेहु किंव ताही ॥

सुरपति सुत गवन्द यह शीस । शसत निवृत्त अँसि यहि फोर ॥ ६ ॥

वहाँ शिवजीका धनुष तोड़कर श्रीरामजीने जानकीको ब्याहा, उस आपने उसको संग्राममें क्यों नहीं जीत ! इन्द्रपुत्र जन्म उसको बलको कुछ-कुछ जानता है । श्रीरामजीने पकड़कर केवल उसकी एक गाँस ही फोड़ दी और उसे जीवित ही जोड़ दिया ! ॥ ६ ॥

सुपनखा कै गति तुम्ह देखी । तदसि दृश्ये नहि काज बिसेरी ॥ ७ ॥

सूर्यगङ्गाभी दसा तो आपने देख ही ली । वो भी आपके हृदयमें [उनसे लड़नेकी बात सोचते] विशेष (कुछ भी) लजा नहीं जाती ! ॥ ७ ॥

दो०—बसि विराध सर दूषनहि जौल्य हत्यो कर्बच ।

वालि एक सर मारयो तेहि जन्महु दसकंध ॥ ३६ ॥

निहोने विराध और सर-दूषणको मारकर जीतते ही कर्बचको भी मार

बाल; और जिन्होंने बालिको एक ही बाणसे मर दिया है दशकम्ब ! आप उन्हें (उनके महत्त्वको) समझिये ॥ ३६ ॥

चौ०—जेहि जटवाध बैसायठ हेल ॥ उतरे प्रभु दल सहित सुबेल ॥

कास्नीक दिनकल कुछ केह ॥ दूत पत्रवत्त सब हित हेह ॥ १ ॥

जिन्होंने खेले ही समुद्रको वेंचा छिया और जो प्रभु सेनासहित सुबेल पर्वतपर उतर पड़े; उन सर्वकुलके जन्मात्मरूप (नीतिको बढ़ानेवाले) कल्याणमय भगवान् ने आपहीके हितके लिये दूत भेजा ॥ १ ॥

सत्ता सखत जेहि लव कल मया ॥ करि बल्य महुं लृप्यसि जया ॥

अंगद हनुमत अलुवर खके ॥ रव बोकुने खीर अति वीके ॥ २ ॥

जिसने बीच समाने धाकर आपके बलको उसी प्रकार मथ डाला जैसे हाथियोंके छुंभमें आकर सिंह [उसे छिन्न-भिन्न कर डालता है] । रणमें वीके अत्यन्त विकट खीर अंगद और हनुमान् जिनके सेवक हैं ॥ २ ॥

तेहि कहैं पिप पुचिपुचि कर कहहू ॥ मुधा जान समस्त मद बहहू ॥

अह्व कल कल राम विरोधा ॥ कल विवस मन उपव न प्रोधा ॥ ३ ॥

हे पति ! उन्होंने आप बार-बार अनुपम कहते हैं । आप धर्म ही मन; ममता और मदका बोझ दो रहे हैं । हा मिषतन ! आपने श्रीरामजीसे विरोध कर लिया ! और आलके विशेष बल होनेसे आपके मनमें अब भी खान नहीं उत्पन्न होता ॥ ३ ॥

काळ बंध गहि छाहु न माया ॥ हरह धर्म कल बुद्धि पिचारा ॥

निकट काल जेहि भयत सारह ॥ तेहि अस होह सुन्दरिहि नारह ॥ ४ ॥

काल दण्ड (काठी) केकर किसीको नहीं मारता । वह धर्म, बल, बुद्धि और विचारको हर होता है । हे स्वामी ! निकट काल (मरण-समय) निकट आ जाता है; उसे धानहीकी तरह भ्रम हो जाता है ॥ ४ ॥

दो०—गुर सुत मरे दहेठ पुर धखहुं पूर पिय देहु ।

कृपासिद्ध रघुनाथ भजि मथ विमल जसु छेहु ॥ ३७ ॥

आपके दो पुत्र मरे गये और नगर लूट गया । [सो हुआ सो हुआ] हे प्रियतम ! अब भी [हा भूलझी] पूर्ति (सम्पत्ति) कर दीजिये (श्रीरामजीसे वैर त्याग दीजिये) और हे नाथ ! कृपाके लघुद श्रीरघुनाथजीको भजकर निर्मल बल दीजिये ॥ ३७ ॥

चौ०—कवि बचन मुनि विमल समाग ॥ समौ खबत नदि होत विहामा ॥

बैठ जाह सिवासन पूछी ॥ अति अभिमान ब्रह्म सब मूछी ॥ १ ॥

आपके बाणके समान वचन सुनकर वह सबेरा होते ही उठकर सभामें खड़ा गया और सारा मय मुलकर अत्यन्त अभिमानमें पूछकर सिंहासनपर आ बैठा ॥ १ ॥

इहाँ राम अंगदहि बोलवा ॥ बाद करन बंकाव सिंह नाथा ॥

अति अश्वर समीप बैसारी ॥ जोके लिहैसि कृपल खरारी ॥ २ ॥

यहाँ (सुबेल पर्वतपर) श्रीरामजीने अंगदको बुलाया । उन्होंने आकर चरण-कमलोंमें तिर नवाया । वही बादरसे उन्हें पास बैठकर रखते सन्तु कृपालु श्रीरामजी हैंकर बोले ॥ २ ॥

वक्तितमय जैकुल अति मोही ॥ तात सब कहु पछैं सोही ॥

रावहु रावुनाथ कुछ टीका ॥ सुन कल बतल जासु लल लीका ॥ ३ ॥

हे बालिके पुत्र ! मुझे क्या कौतूहल है । हे तात ! इन्हींसे मैं तुमसे-पूछता हूँ;

सत्य कहना । जो राज्य राक्षसोंके कुक्षि विच्छेद है और मिलके अतुलनीय बाहुबली
जगत्प्रभमे भाव है ॥ ३ ॥

तनु मुकुट तुम्हें चारि चलाए । अस्तु तत कपनी विधि पाए ॥

मुद्र सर्वथ प्रभु मुकुटरी । मुकुट न होहि भूप पुन चारी ॥ ४ ॥

उसके चार मुकुट तुम्हें दौं ! हे राव ! कदाचित् तुम्हें उनको किस प्रकारसे
पाए ! [अंगदने कहा—] हे सर्वश ! हे धर्मराजको मुक्त देनेवाले । तुमिने । वे
मुकुट नहीं हैं । वे तो राजाके चार पुत्र हैं ॥ ४ ॥

सम धाम अत इंद विमोह । त्वं नर अर्हादि नाम कइ वेदा ॥

नीति धर्म के परम सुहाए । अत त्विं ज्ञावि नाम पहिं पाए ॥ ५ ॥

हे नाब ! वेद कहते हैं कि तमः राजः रघुः और मेघः—वे चारों राजाके हृदयमें
बसते हैं । वे नीति-धर्मके चार सुन्दर वस्त्र हैं । [किन्तु राजपरी कर्मका समाप्त है]
ऐसा नीति जानकर वे जगत्के पत आ गये हैं ॥ ५ ॥

दो—धर्महीन प्रभु पर विमुख कान्त विवस दसलील ।

तेहि परिहरि शुभ अथ सुगह कोसलधील ॥ ३८(क) ॥

दशरथीय राज्य धर्महीन । प्रभुके परसे विमुख और कान्ते रहने है । इसलिये
हे कोसलराज ! तुमिने । वे शुभ राज्यको छोड़कर अपने पत आ गये हैं ॥ ३८(क) ॥

परम बहुराज अथन सुवि विईसे राम उकार ।

समाचार सुवि सुव कहे भद्र के पातिहुमार ॥ ३८(ख) ॥

अंगदकी परम बहुराज [पूर्ण उक्ति] कान्तेसे मुनकर उकार श्रीरामचन्द्रजी
हंसने लगे । फिर बाह्यपुत्रने मिलेके (संकाके) सब समाचार कहे ॥ ३८(ख) ॥

बो—विष्णु के समाचार अब पाए । राम सखि सब निवृत्त होकर ॥

संका बौंके चारि हुआ । केहि विधि ज्ञावि अस्तु विचार ॥ १ ॥

अब हाथके कलचार प्राप्त हो गये, अब श्रीरामचन्द्रजीने सब मन्त्रियोंकी बात
सुनी [और कहा—] संकाके चार कहे निवृत्त दत्ताये हैं । उनपर किन्तु एव
आक्रमण किया जाना, इसपर विचार करो ॥ १ ॥

तब कपीस रिच्छेस विनीषन । सुमिरि इदं विचार कइ सुव ॥

अरि विचार सिद्ध मंत्र दक्षमा । चारि अनी कवि कइतु भवता ॥ २ ॥

तब रामराज सुमित्रः प्रहसन्ति नाम्मन्त्र और विनीषने हृदयमें सर्वकुलके
भूषण श्रीरघुनाथजीका सरण किया और विचार करके उन्होंने कर्तव्य निश्चित किया ।
कान्तकी सेनाके चार दल बनाये ॥ २ ॥

सद्योज्य सेनापति अग्नि । सुव सखि वीरि तब कौन्हे ॥

अनु प्रताप कहि सब समुद्रपाए । सुमि कवि विचारपर करि पाए ॥ ३ ॥

और उनके लिये सद्योज्य (जैसे चाहिये वैसे) सेनापति मिलुत किये । फिर
सब यूपविनोभे कुल किया और प्रमुख प्रताप कइकर सबको समस्तान्त्र, लिये मुनकर
धानर सिद्धे हथान गलेना करके बौंके ॥ ३ ॥

हरषित राम चरन सिर बाधहि । बहि गिरि सिखर वीर सनभाधहि ॥

गर्वाहि तर्वाहि अस्तु कवीसा । अब सुधीर कोसलधीसा ॥ ४ ॥

वे हर्षित होकर श्रीरामजीके चरणोंमें सिर मनाते हैं और पर्वतोंके सिखर छेकेकर

सब वीर दौड़ते हैं । खेसगुज और पुवीरखीकी जय हो' पुकारते हुए भाइ और बनारसवाले और लखनवाले हैं ॥ ४ ॥

जानत परस दुर्ग नति लंका । प्रभु प्रताप कपि चले असंका ॥

धटाटोप करि चहुँ दिशि बेरी । मुसहि निशान बनावहि मेरी ॥ ५ ॥

लंकाको अत्यन्त भेद (जयें) किया जानते हुए भी बनार प्रभु भीरामचन्द्रजीके प्रतापसे निबर होकर चले । चारों ओरसे घिरी हुई बादलोंकी धटाकी तरह लंकाको चारों दिशाओंसे घेरकर वे मुँहसे ही ढंके और मेरी बजाने लगे ॥ ५ ॥

दो०—अवति राम जब लछिमन जब कपीस सुग्रीव ।

गर्जहि सिंघनाद् कपि भालु महा बल सौं ॥ १९ ॥

महान् बलकी शिवा वे बानर-भाइ सिंहके समान जैसे खरसे 'भीरामजीकी जय', खेसगुजीकी जय', बनारस सुग्रीवकी जय'—ऐसी गर्जना करने लगे ॥ १९ ॥

चौ०—लंकाँ नवद कोलाहल भारी । सुवा दसाधन नति नहिंकारी ॥

हेकु बलान्द केरि डिठारै । विहंसि निशानर सेव कोलारै ॥ १ ॥

लंकामें बड़ा भारी कोलाहल (कोहरा) मच गया । अत्यन्त अहङ्कारी रावणने लगे झुनकर कहा—'बानरोंकी डिठारै तो देखो । वह करते हुए ईसर उठने राक्षसोंकी सेना बुझयी ॥ १ ॥

जाद कीस काह के प्रेर । सुधावत सब निशिपर मेरे ॥

अस कहि अहसास सठ कोहर । गृह केँ अहार बिधि दीन्हा ॥ २ ॥

बंजर काहकी प्रेरनासे लगे आये हैं । मेरे राक्षस सभी मूले हैं । विधाताने इन्हें घर बैठे भोजन भेज दिया । ऐसा कहकर उस मूर्खने अहसास किया (वह बड़े जोरसे ठाका मारकर हँस) ॥ २ ॥

सुनत सकल नरिहुँ दिशि जाह । बरि धरि भालु कीस सब जाह ॥

बना रावणहि अस अभिमान । बिमि दिक्षिन्त सग सृष्ट ब्रह्मा ॥ ३ ॥

[और बोला—] हे नीरो । सब लोग चारों दिशाओंमें जाओ और रीछ-बानर सबको पकड़-पकड़कर लाओ । [शिन्धी करते हैं—] हे उमा । रावणको ऐसा अभिमान था जैसे टिटिहरी पक्षी पैर ऊपरकी ओर करके खोता है [सन्ने आकाशको घाम लेता] ॥ ३ ॥

बड़े निशानर जाबहु साथी । गहि कर बिचिपसक बर सींगी ॥

दोमर सुदूर परसु प्रवीण । सुख कुशव परिस गिरिखंडा ॥ ४ ॥

आशा मोंगकर और हाथमें उत्तम भिंदियाऊ, सेंगी (नरछी), दोमर, सुदूर, प्रचण्ड फाँसे, दूर, बुधारी लम्बा, परिस और प्लाहकि टुकड़े लेकर राखत चले ॥ ४ ॥

बिमि अकनोपक निज निहारी । चवहि सठ सल मोंस अहारी ॥

चौच मोंस हुज जिन्हि न सुख । बिमि जाण मल्लान्द जगुहा ॥ ५ ॥

जैसे मूर्ख माँसहारी पक्षी जब फलरोंका समूह देखकर उसपर दूट पड़ते हैं, [फलोंपर लगनेसे] चौच दूटनेका हुज उनमें नहीं चलता, वैसे ही वे बेसमझ राक्षस दौड़े ॥ ५ ॥

दो०—नानायुध सर खाप घर जतुबान बलवीर ।

कोट कँगूरन्हि चहि गए कोटि कोटि रनधीर ॥ ४० ॥

अनेको प्रकारके अस्त्र-शस्त्र और धनुष-बाण धारण करने लगे, बलवान् और रणधीर राक्षस भीर परकोटेके कँगूरोंपर चढ़ गये ॥ ४० ॥

चौ०—कोट कँरुण्डि सोहहि कैस । मेर के संवति जहु वच बैसे ॥

बान्हि दोल बिसव अछाक । सुनिबुनिहोइ भट्ठि मन जाक ॥ १ ॥

वे परकोटेके कँरुण्डि कैसो भोमित हो रहे हैं, मानो सुमेरुके शिखरोंपर बादल बैठे हों । जुझाक दोल और डंके आदि वच रहे हैं [भिन्नी] ध्वनि सुनकर योद्धाओंके मनमें [छद्मेका] चाप होता है ॥ १ ॥

बावहि भेरि नक्षेति क्वाक । सुनि कदर कर नाहि दसा ॥

देकिनह जाइ कविह के ठह । अति बिसाक लहु माहु सुमहा ॥ २ ॥

अगणित नक्षीपी और भेरी नच रही है, [जिन्हें] सुनकर काशरोंके हृदयमें दराई पड़ जाती है । उन्होंने बाकर अत्यन्त विद्यालक्षणीरवाके महान् योद्धा बानर और माछुओंके ठह (समूह) देखे ॥ २ ॥

भावहि बान्हि न अक्खट धम । पंचत कोरि करहि गहि बाहा ॥

कटकटाहि कोरिह भट्ठ कर्णहि । लख सौठ कर्णहि अति तर्णहि ॥ ३ ॥

[देखो कि] वे रीछ-बानर रोकते ॥ औषट (ऊँची-नीची, विकट) घाटियोंको कुछ नहीं गिनते । फट्फट कर पहाड़ोंको छोड़कर रास्ता बना लेते हैं । करोड़ों योद्धा कटकटाते और गर्जते हैं । राँतोंसे आँठ कटते और खूब कपटते हैं ॥ ३ ॥

कत रावण इव राम दोहाई । जयति जयति जय परी कराई ॥

निलिज सिफर समूह बहलहि । कृदि बरहि करि कैरि भलाबहि ॥ ४ ॥

उपर रावणकी और इपर श्रीरामजीकी दोहाई पोखी जा रही है । 'जय' 'जय' 'जय' की ध्वनि होते ही छद्माई छिड़ गयी । रावण पहाड़ोंके टेढ़-केड़ीर शिखरोंको फँकते हैं । बानर कूदकर उन्हें पकड़ लेते हैं, और नाच उन्हींकी ओर चलाते हैं ॥ ४ ॥

छ०—धरि कुपर जंड प्रचंड सर्कट भालु मद पर बाराही ।

झपटहि बरन गहि पठकि महि मति सखत बहुरि पचारही ॥

कति तरल तरुन प्रताप तरपहि तमकि गढ़ बहि बहि गप । -

कपि भालु बहि मंदिरह जई जई राम जहु भावत भय ॥

प्रचण्ड बानर और भालू पर्वतोंके टुकड़े ठे-ठेकर किलेपर दाखते हैं । वे झपटते हैं और राक्षसोंके पैर पकड़कर उन्हें धृष्टीपर पटककर भाग बल्लते हैं और फिर छक्काड़ते हैं । बहुत ही चञ्चल और बड़े तेजस्वी बानर-भालू सभी फुर्तिले उछलकर किलेपर चढ़-चढ़कर गये और जहाँ-तहाँ भद्रोंमें कुञ्जर श्रीरामजीका क्या माने लगे ।

दो०—एकु एकु निस्सिफर गहि बुनि कपि चले परार ।

ऊपर मायु डेट भट्ठ पिरहि धरनि पर आइ ॥ ५१ ॥

फिर एक-एक राक्षसको फट्फट कर वे बानर मायु चले । ऊपर आप और नीचे [राक्षस] योद्धा—इस प्रकार वे [किलेपरसे] धरतीपर आ गिरते हैं ॥ ५१ ॥

चौ०—राम प्रताप प्रबल कबिबला । मदीहि निशिचर सुमट परका ॥

चढ़े दुर्ग पुनि जई तई बानर । जय खुबीर प्रताप दिवाकर ॥ १ ॥

श्रीरामजीके प्रतापसे प्रबल बानरोंके डूँड राक्षस योद्धाओंके समूह-के-समूह योद्धाओंको मरक रहे हैं । बानर फिर जहाँ-तहाँ किलेपर चढ़ गये और प्रतापमें सर्वत्र समान श्रीरामजीकी जय बोलने लगे ॥ १ ॥

चले शिखर निज पराई । प्रबल पवन जिमि धन समुदाई ॥

हाहाकर अमरत धुर मारी । रोवहि जलक जाहुर चारी ॥ २ ॥

रासलोकें छुट बैठे ही माय चले जैसे मोरकी हवा चलनेपर बादलोंके समूह
वितर-वितर हो जाते हैं। लंका नगरीमें बड़ा मारी हाहाकार मच गया। शायक, जियाँ
और रोगी [अक्षमर्यताके कारण] रोने लगे ॥ २. ॥

सब मिलि देखि सबन्हि गरी। सब कस्त एहि सृष्टु हँकारी ॥

निज दल बिचल सुनी तेहि कान्ह। फेरि सुमट लंकेस रिसाना ॥ ३ ॥

सब मिलकर रावणको गालियाँ देने लगे कि राज्य करते हुए इसने मृत्युको
बुझा दिया। रावणने सब अपनी सेनाका विचलित होना कानोंसे सुना, तब [भंगते हुए]
बोझानोंको छोटाकर वह श्रेष्ठ होकर बोल—॥ ३ ॥

जो रन विमुक्त सुना मैं करना। सो मैं इसक कलक लुपाणा ॥

सर्वसु खाइ भोग करि पावा। समर भूमि भरु अन्न माना ॥ ४ ॥

मैं जिसे रणसे पीठ देकर भागा हुआ अपने कानों सुनूँगा, उसे स्वर्ग भयानक
दुबारी लक्ष्मणसे मारूँगा। मेरा सब कुछ खावा; भोजि-भोजिके भोग किये और अब
रणभूमिमें प्राण प्यारे हो गये ॥ ४ ॥

उम्र बचन सुनि सकल केरले। चले ओष करि सुमट लमाने ॥

सम्पुल मरन वीर कै सोभा। सब तिन्ह सल प्रान कर जोषा ॥ ५ ॥

रावणके उम्र (कठोर) बचन सुनकर सब वीर डर गये और लजित होकर क्रोध
करके युद्धके लिये जैठ चले। रक्षकों [शत्रुके] सम्पुल (युद्ध करते हुए) मरनेमें ही
वीरकी शोभा है। [वह बोचकर] तब उन्होंने शत्रुओंका श्रेम छोड़ दिया ॥ ५ ॥

दो—बहु आयुध कर सुमट सब भिरहि पचारि पचारि।

व्याकुल किए भालु कपि परित्र भिस्लुगिह मारि ॥ ४९ ॥

बहुतसे भाल-शस्त्र धारण किये सब वीर सलवार-सलवारकर निबने लगे। उन्होंने
परिवों और त्रिशूलोंसे मार-मारकर सब पीछ-बानोंको व्याकुल कर दिया ॥ ४९ ॥

चौ—भय लाहुर कपि भगन लगे। जसपि समा नीतिहहि आये ॥

कोइ कह कहै अंगद हनुमत्ता। कहै बल वीर दुषिद बलवन्ता ॥ १ ॥

[शिवजी कहते हैं—] जानर भयलुर होकर (इरके मारे बचकाकर) भागने
लगे, यद्यपि हे उम्र। आगे बलकर [वे ही] लौँगे। कोई कहता है—अंगद, हनुमान्
कहाँ हैं। बलवान् नल, नील और द्विविध कहाँ हैं ॥ १ ॥

मिस दल बिकल हुआ हनुमन्ता। बचिषस द्वार रहा बलवान्ता ॥

मेघनाद कहै कहै कनई। दूट न द्वार परस कठिनार्थ ॥ २ ॥

हनुमान्जीने सब अपने दलको बिकल (भयभीत) हुआ सुना, उठ समय वे
बलवान् पश्चिम द्वारपर थे। वहाँ उन्हो मेघनाद बुद कर रहा था। वह द्वार दृढ़ता न
था; बड़ी भारी कठिनार्थ हो रही थी ॥ २ ॥

पवनतनय मम मा जति कोषा। कर्षेत प्रसक्त काल सम जोषा ॥

कूदि उँक भद उमर ज्जवा। गहि गिरि मेघनाद कहूँ बाधा ॥ ३ ॥

तब पवनपुत्र हनुमान्जीके मनमें बड़ा भारी क्रोध हुआ। वे कालके समान बोझा
बढ़े जोरसे गरखे और कूदकर कंकके छिलेकर जा गये और पहाड़ सेकर मेघनादकी
ओर दौड़े ॥ ३ ॥

अंग्रेठ स्व सारथी निपात। गहि द्रव्य महुँ अनेसि कात ॥

दुसरें सूत्र बिकल तेहि ज्जवा। स्कंदन पाकि दुरत बूढ़ आना ॥ ४ ॥

रथ तोड़ डाला, सारथिकों मार गिराया और मेघनादकी छातीमें जात मारी । दूसरा सारथि मेघनादको ग्वाकुल न्यूनकर, उधे रथमें डालकर, तुरंत मर के भाया ॥४॥

दो०—भंगद सुना पवनसुत गङ्ग पर गायत अकेल ।

रत्न बाँहुरा चरित्सुत तरकि चढ़ेठ करि खेल ॥ ४३ ॥

इधर भंगदने सुना कि पवनपुत्र हनुमान् किलेपर अकेले ही गये हैं, तो रणमें वोकि वालिपुत्र वानरके खेलेकी तरह उल्लङ्घन किलेपर चढ़ गये ॥ ४३ ॥

चौ०—हुद विरुद हुद ह्रीं बंदर । राम प्रताप सुमिरि तर बंतर ॥

रावन भवन चढ़े ह्रीं चढ़े । कर्हि कोसलपति दीहाई ॥ १ ॥

हुदमें भयुओंके विरुद दोनों वानर हुद हो गये । हुदमें श्रीरामजीके प्रतापका स्मरण करके दोनों दीहकर रावनके महलपर जा चढ़े और कोसलपति श्रीरामजीकी दुहाई बोलने लगे ॥ १ ॥

कलस संहित गहि भवहु दहान् । देखि विराटवरति भव पाव ॥

नारि हृद कर पीरहि छती । कम हुद करि आप उतपाती ॥ २ ॥

उन्होंने कलससहित महलको पकड़कर दहा दिया । वह देखकर रामछत्राज रावन डर गया । हर तियों हाथोंसे छती पीढ़ने लगी [और चढ़ने लगी—] अपनी बार दो ठपती वानर [एक आप] आ गये ॥ २ ॥

कपिलोका करि सिन्हाहि बेरावहि । रामचंद कर मुखसु सुतावहि ॥

सुनि कर गहि कंचन के लंभा । कहेन्ह करि उतपात भरभा ॥ ३ ॥

वानरलीला करके (बुझकी देकर) दोनों उनको डराते हैं और श्रीरामचन्द्रजीका हुन्दर बच हुनते हैं । फिर लोनेके लंभोंको हाथोंसे पकड़कर उन्होंने [परस्पर] कहा कि अब उत्पात आरम्भ किया जाय ॥ ३ ॥

गति परे रिपु कटक मल्लरी । कयो भीं जुन कम भारी ॥

काहुहि कल वयेरहि केहू । भवहु व रामहि सो फल केहू ॥ ४ ॥

वे गतिपर शत्रुकी रैनाके बीचमें कूद पड़े और अपने भारी धनुषके उत्का मर्दन करने लगे । किसीकी बातसे और किसीकी वषट्ठसे खबर केते हैं [और कहते हैं कि] हम श्रीरामजीको नहीं मरते, उत्का यह फल को ॥ ४ ॥

दो०—एक एक सौं मर्दिं तेरि चलावहि मुंड ।

रावन आगें परहि वे अनु फूटहि दधि कुंड ॥ ४४ ॥

एकको दूसरे [समझकर] मल्ल डालते हैं और सिरोंको तोड़कर फेंकते हैं । वे तिर जाकर रावनके सामने शिरते हैं और ऐसे फूटते हैं याने दहीके कुँदे फूट रहे हो ॥४४॥

चौ०—महा महा सुखिअ ने पावहि । वे पद कहि प्रभु पास चलावहि ॥

कहइ विनीपसु जिन्ह के जमा । देखि कम सिन्हाइ निज घामा ॥ १ ॥

किन बड़े-बड़े सुखियों (प्रधान सेनापतियों) को पकड़ पाते हैं उनके पैर पकड़कर उन्हें प्रभुके पास केंद्र देते हैं । निभीषणजी उनके नाम पत्थरके हैं और श्रीरामजी उन्हें भी अपना घाम (परम फल) दे देते हैं ॥ १ ॥

छक सञ्जवाद द्विजामिष सोयी । पावहि गति जो अन्त सोयी ॥

जमा राम सुखित कल्याकर । कल साव सुमिरि सोहि निरिअ ॥ २ ॥

ब्राह्मणोंका मांस खानेवाले वे नरगोत्री बुद्ध राक्षस भी वह परम गति पाते हैं शिवजी करते शिवकी योगी भी वाचना किया करते हैं [मन्द, रहस्यमें नहीं करते] । [शिवजी करते

हैं—] हे उग्रा ! श्रीरामजी बड़े ही क्रोमच्छदर और कम्पावी खान हैं । [वे सोचते हैं कि] राक्षस मुझे बैरमाके ही रही, सरण तो करते ही है ॥ २ ॥

देहि परम भक्ति सो बिलि जानी । अस कृपाळ को कहहु भवानी ॥

अस प्रभु सुनि व सबहि अम लखी । पर भविसंद ते परम भवानी ॥ ३ ॥

ऐसा हृदयमें जानकर वे उन्हें परमपति (मोक्ष) देते हैं । हे भवानी ! कही तो ऐसे कृपाळ [और] भोग हैं ! प्रभुका ऐसा स्वभाव सुनकर भी जो मनुष्य भ्रम त्यागकर उनका भजन नहीं करते, वे अत्यन्त मन्दबुद्धि और परम भाग्यहीन हैं ॥ ३ ॥

अंगद अह इन्द्रमंड प्रवेश । कीन्ह दुर्घ अह कह भवघेरा ॥

लंकां हो करि सोहहि कैत । सबहि छिडि दूर संदर जैसे ॥ ४ ॥

श्रीरामजीने कहा कि अंगद और हनुमान् भिन्नमें कुछ गये हैं । दोनों वानर संकामें [विभक्त करते] कैते शोभा देते हैं, जैसे जो मन्दराचल समुद्रको मथ रहे हों ॥ ४ ॥

श्री०—भुज बल रिपु दल वलमलि देखि विचल कर भंत ।

शुद्ध कुचल विगत भ्रम अथ अहं भगवंत ॥ ४५ ॥

हृत्ताभीके घलते शत्रुकी सेनाको कुचलकर और मल्लकर, फिर दिग्गज अन्त होता देखकर हनुमान् और अंगद दोनों दूर पड़े और भ्रम (वलमल) रहित होकर वहाँ आ गये जहाँ भगवान् श्रीरामजी थे ॥ ४५ ॥

श्री०—प्रभु पद कमल सीस सिन्ध बाण । देखि भुजदं वलपति मन भाण ॥

राम कृपा करि लुगल निहारे । भण विगतभ्रम परम सुफारे ॥ १ ॥

उन्होंने प्रभुके चरणकमलोंमें फिर नवाये । उत्तम योद्धाओंको देखकर श्रीरामदासजी मनमें बहुत प्रसन्न हुए । श्रीरामजीने कृपा करके दोनोंको देखा, जिससे वे अभ्यहित और परम सुखी हो गये ॥ १ ॥

राण सावि अंगद इन्द्रमण्ड । फिरे भाहु सकैं भट माना ॥

जाहुवाय प्रदीप कळ पाई । वाय करि दससीस दोहाई ॥ २ ॥

अंगद और हनुमान्को गये जानकर सभी भय और वानर और लौट पड़े । राजसीसे प्रदीप (राई) कलमल कर पाकर राक्षसी दुहाई देते हुए वानरोंपर घावा किया । निशिचर अनी देखि कवि फिरे । जई तई कळटाह भट निरे ॥

ही दल प्रकळ पचरि पचरी । कल भुजद नहि मायहि हाटी ॥ ३ ॥

राक्षसीकी सेना जाती देखकर वानर लौट पड़े और वे बोला जहाँ-वहाँ कलकटाकर मिर गये । दोनों ही दल बड़े बलवान् हैं । बोला कलकार-कलकारकर लड़ते हैं, कोई हार नहीं मानते ॥ ३ ॥

महावीर निशिचर सब करे । जान करत बलीमुख मारे ॥

सबळ लुगळ दल समळ जोवा । कौतुक करत करत करि कोषा ॥ ४ ॥

सभी राक्षस मदान् वीर और अत्यन्त बलके हैं और वानर विद्यालङ्कार तथा अनेकों रीतोंके हैं । दोनों ही दल बलवान् हैं और समान बलवाले योद्धा हैं । वे कोष करके लड़ते हैं और लोकां करते (पीछा दिखाते) हैं ॥ ४ ॥

प्राचिद सनद पचोद घरेरे । करत मनहुं माका के जेरे ॥

अपि . अर्जुन अह अकिन्नाय । निष्कल सेनकीन्ह इन्ह मखा ॥ ५ ॥

[राक्षस और वानर कुछ करते हुए ऐसे जग पड़ते हैं] यानो क्रमका वर्षा और

बारद्वारके बहुत-से बाइल एकसे प्रेरित होकर बंध रहे हैं। नकाम और अतिकाम इन सेनापतियोंने अपनी सेनाको विचलित होते देखकर माया की ॥ ५ ॥

मन विमिश्र नहीं बलि अविश्रय। वृद्धि होइ क्षीरोपथ अथ ॥ ६ ॥
एकभरमें अत्यन्त अन्धकार हो गया। सूर्य, चन्द्र और राक्षसी वृद्ध होने लगी ॥ ६ ॥

दो०—देखि निविड तम दसहुँ दिशि क्षिप्र मयल समार ।

एकहि एक न देखे नहि नहि करहि पुकार ॥ ७ ॥

इसों दिशाओंमें अत्यन्त घन अन्धकार देखकर बानरोंकी सेनामें खलबली पड़ गयी। एकको एक (दूधरा) नहीं देख सकता नहि। सब नहि-नहि पुकार कर रहे हैं ॥ ७ ॥

चौ०—सकल मनु सुखजक जाय। निद्र बेकि अंध हुमाना ॥

समाचार सब कहि समुदाय। सुनत कोवि करिहुँत आप ॥ १ ॥

श्रीरामायणी सब रहस्य जान गये। उन्होंने अंगद और हनुमान्को बुला किया और सब समाचार कहकर समझाया। सुनते ही वे दोनों क्षीप्रेश क्रोध करके दौड़े ॥ १ ॥

पुनि कुमर हैति आप जगता। पावक सबक धरि चलाया ॥

भयत प्रकाश करहुँ तम जहाँ। न्याय उदर्ये धिनि संवध जाहीं ॥ २ ॥

फिर कुमाय श्रीरामजीने हँसकर खुश कहाया और तुरंत ही अग्निबाण कहाया, जिससे प्रकाश हो गया, वहाँ अँधेरा नहीं रह गया। जैसे उनके उदर होनेपर [सब प्रकारके] उन्धे दूर हो जाते हैं ॥ २ ॥

भाहु कलमुक पाइ प्रकाश। पाप हरि विमल भव जग ॥

हनुमान जगत् रम जाये। हाँक सुनत रबबीच मते ॥ ३ ॥

भाहु और चानर प्रकाश पाकर भय और भयसे रहित तथा प्रभव होकर दौड़े। हनुमान और अंगद रमते रमते उठे। उनकी हाँक सुनते ही राक्षस भाग बूटे ॥ ३ ॥

भापल मय पयजहि बरि वरि। कहि माहु कवि अद्भुत करी ॥

गहि पद जारहि सार जाहीं। मम बरप क्षय बरि बरि पाहीं ॥ ४ ॥

मांगते हुए राजत शोभाओंको चानर और माधव एकद्वार वृष्णीय दे मारते हैं और अद्भुत (भाभर्जनक) करनी करते हैं (पुत्रकीकृत दिखलते हैं)। पैर एकद्वार उन्हें समुद्रमें डाल देते हैं। वहाँ मार, लँप और मन्त्र उन्हें एकद्वार-एकद्वार खा डालते हैं ॥ ४ ॥

दो०—कहु मारे कहु मारक कहु गद जड़े पण्ड ।

गर्जहि माहु कलमुक रिपु दल बल विचलार ॥ ५ ॥

कुल मारे गये, कुल धावक हुए, कुल मागत गहवर चढ़ गये। अपने शत्रु शत्रुओंको विचलित करके रीढ़ और चानर [नीर] मार रहे हैं ॥ ५ ॥

चौ०—निहा धानि कवि पारिज जयी। जग जहाँ कोकम धनी ॥

राम कुप करि पितृ संवही। जग विमलमय चानर वरही ॥ १ ॥

रात हुई जानकर बानरोंकी चारों सेनाएँ (दुश्मनों) वहाँ जाहीं वहाँ कोकम-पति श्रीरामजी थे। श्रीरामजीने ज्यों ही उसको कुप करके देखा व्यों ही वे चानर भय-रहित हो गये ॥ १ ॥

उहाँ दुस्सन सब ईश्वरे। सब सुच जेहि सुन्दर ने मारे ॥

आध कदकु कविन्द संवध। कहु जेहि न करिब बिचार ॥ २ ॥

वहाँ [अँधेरी] रातने मन्त्रियोंको बुलाया और वो बोला मारे मरे वे उन

सबको समते बताया । [उसने कहा—] बानरोंने आधी सेनाका संहार कर दिया । अब शीघ्र बताओ, क्या विचार (उपाय) करना चाहिये ? ॥ २ ॥

मात्स्यवंत ऋषि बल विस्तार । राजन मनु पिता मंत्री घर ॥

दोहा बचन नीति धति ज्ञान । सुबहु तात कहु मोर सिपावन ॥ ३ ॥

मात्स्यवंत [नामका एक] अत्यन्त बूढ़ा राजपुत्र था । वह राजपुत्री माताका पिता (अर्थात् उसका जन्मा) और श्रेष्ठ सन्तरी था । वह अत्यन्त धार्मिक नीतिके बचन बोला—हे तात । कुछ मेरी सोच भी सुनो— ॥ ३ ॥

बच से तुम्ह सोचा हरि आमी । असुख होहि न बाहि बलानी ॥

वेष्ट पुरान कामु जसु गयो । राम विमुख कह्यु न मुख पायो ॥ ४ ॥

जबसे तुम सीताको हर लिये हो, तबसे इसने अपनाकुन हो रहे हैं कि जो बर्णन नहीं किये जा सकते । वेष्ट-पुराणोंने बिनकाय बंध बाधा है, उन श्रीरामसे विमुख होकर किसीने मुझ नहीं पाया ॥ ४ ॥

बो—हिरण्यकच्छ आता सहित मनु कैटभ बलवान ।

जोहि मारे सोह भवतरेव कृपासिधु भगवान ॥ ४८(क) ॥

भाई हिरण्यकच्छिपुसहित हिरण्यकच्छे और बलवान मनु-कैटभको जिन्होंने मारा था, वे ही कृपाके लक्षण भगवान् [रामरामसे] अवतरित हुए हैं ॥ ४८(क) ॥

मासपारायण, पचीसवाँ विभ्राम

कालरूप सब वन बहिन गुनागार जनबोध ।

सिध विरंषि ओहि सेबाहि लाखों कबल दिरोष ॥ ४८(ख) ॥

जो कालरूप हैं, दुष्टोंके समूहस्त्री वनके भ्रम करनेवाले [अग्नि] हैं, गुणोंके धाम और शानवन हैं, एवं किबकी और जलानी भी बिनकी सेवा करते हैं, उनसे वैर कैसा ? ॥ ४८(ख) ॥

बो—परिवरि कबल रेहु बैदेही । मनु कृपासिधु परम सचेही ॥

ताके बचन काम सब छमे । करिअ सुह करि बाहि भगवै ॥ १ ॥

[अन्तः] वैर छोड़कर उन्हें जानकीजीके दे दो और कृपानिधान परम स्नेही श्रीरामजीका भजन करो । राजपुत्री उनके बचन बाणके समान छमे । [वह बोला—] ओरे भगवै ! मुँह काज करके [कहो] निकल जा ॥ १ ॥

बहु मरुसि न त भरतैठ तोही । अब जनि जवव देखावति मोही ॥

सैहि अपने मन अल अनुमान । कय्ये कहत यहि कृपानिधान ॥ २ ॥

ए बूढ़ा हो गया, नहीं तो तुझे मार ही दखता ! अब मेरी आँखोंको अपना मुँह न दिसला । राजपुत्री ये बचन सुनकर उसने (मात्स्यवान्से) अपने मनमें ऐसा अनुमान किया कि इसे कृपानिधान श्रीरामजी अब मारना ही चाहते हैं ॥ २ ॥

सो कठि कष्ट कहुत दुर्जना । सब सखेय खेडेव बचनदा ॥

कौतुक प्रात देखिअहु मोरा । करिअहु कहुत कहीं का बोरा ॥ ३ ॥

वह राजपुत्री दुर्बचन कहता हुआ उठकर चला यश । तब भगवान् क्रोधपूर्वक बोला—उत्तरे मेरी कृपाभाव देखना । मैं बहुत कुछ करूँगा; योद्धा नष्ट करूँ ! (जो कुछ बर्णन करूँगा; योद्धा ही होगा) ॥ ३ ॥

मुनि सुत कवच भरोषा जग । प्रीति समेत अंक बैजवा ॥

करत विचार मयठ निजुखरा । जने कवि मुनि चहुँ दुखरा ॥ ४ ॥

पुनः वचन मुनकर राजपक्षे भरोसा था गया । उसने प्रेम्के साथ उसे मोदमें बैठा लिया । निचार करते-करते ही खेप हो गया । खनर फिर चारों दस्ताचोंपर बा छोड़े ॥४॥

कोपि कपिन्ह हृष्टं गच्छेत् । भग्न कोकालस्तु मयत्त धनेन ॥

विचित्रायुध धर निस्सिद्धं धाम् । गच्छ ते पर्वत सिन्धर ब्रह्मण् ॥ ५ ॥

वानरोंने कोप करके दुर्गम किलेमें घेर लिया । नगरमें बहुत ही कोलाहल (शोर) मच गया । राक्षस बहुत उसके जल-शयन चारण करके दौड़े और उन्होंने किलेपरसे पहाड़ोंके शिखर दहाये ॥ ५ ॥

४०—डाढ़े महीधर सिन्धर कोटिन्ह विचित्र विचित्र गोल्लेख चले ।

ब्रह्मणस्तु जिमि पथिपात गज्वंत बन्धु प्रलय के बादले ॥

मकंद विकट मट छुटत कटत न लटत तन अजर भए ।

गहि सैल वेहि गढ़ पर चत्तर्वाहं जहँ सो तहँ निस्सिचर हुए ॥

उन्होंने पर्वतोंके करोड़ों शिखर दहाये, अनेक प्रपातसे बोधे चलने लगे । वे बोधे ऐसा बहता है जैसे बरपात हुआ हो (बिजली गिरी हो) और बोधा ऐसे गरजते हैं मानो प्रलयकाण्डके बाधक हों । विकट मानर बोधा भिजते हैं, कट जाते हैं (बाधक हो जाते हैं), उनके कट्टर बजर (काली) हो जाते हैं, तब भी वे लटते नहीं (हिम्मत नहीं हारते) । वे पहाड़ उठाकर उसे किलेपर फेंकते हैं । राक्षस जहाँ-कहाँ-वहाँ (जो जहाँ होते हैं वही) मारे जाते हैं ।

४०—मेघनाथ मुनि भ्रम्य जल गढ़ पुनि लँका गच्छ ।

उत्तरायो वीर दुर्ग तँ सम्मुख बहयो बजाह ॥ ४९ ॥

मेघनाथने जानासे ऐसा मुना कि वानरोंने आकर फिर किलेको घेर लिया है ।

तब वह वीर किलेसे उत्तरा और लँका बलकर उसके सामने जाय ॥ ४९ ॥

४०—जहाँ कोसलाधीन हो भ्रम्य । भन्वी सकल लोक विख्यात ॥

जहाँ बल नील दुषिद सुग्रीव । अंगद इत्यंत बल सीमा ॥ १ ॥

[मेघनाथने पुकारकर कहा—] समस्त लोकोंमें प्रसिद्ध बन्धुके कोसलाधीन दोनों मारे जाँ हैं । नाल, नील, द्विषिद, सुग्रीव और काली सीमा अंगद और हनुमान् कहे हैं ॥ १ ॥

कहाँ विभीषणु भ्राताशोही । अजु सगहि हडि मारवँ ओही ॥

अस कहि कटिभ जल संभावे । अतिसय शेष भवय कसि करे ॥ २ ॥

भ्रातृसे द्रोह करनेवाला विभीषण कहे हैं । आज मैं सबको और उस दुष्टको तो हठपूर्वक (अवश्य ही) मारूँगा । ऐसा कहकर उसने खुपकर अतिव शायोंका सम्पादन किया और अत्यन्त जोर करके उसे कामतक सीमा ॥ २ ॥

सर समूह सो जगै कला । ननु सगच्छ पावहि ननु नाग ॥

जहाँ तहाँ परत ऐसिजहि वानर । सम्मुख होइ न सके तेहि लक्षर ॥ ३ ॥

वह बाणोंके समूह छोड़ने लगा । मानो बहुतसे पंखवाले और दौड़े जा रहे हों । जहाँ-तहाँ वानर गिरते दिखायो पड़ने लगे । उस समय जहाँ-तहाँ उसके सामने हो लगे ॥ ३ ॥

नहँ तहाँ भागि जले कचि रीज । निस्सरी समधि जुद्ध कै ईज ॥

सो कपि भाहु न रच सई देखा । कीन्हेसि जेहि न प्राय कबसेपा ॥ ४ ॥

रीछ-वानर जहाँ-तहाँ भाग चले । सबको युद्धकी इच्छा मूल गयी । रणभूमिमें ऐसा एक भी वानर था मालूम नहीं दिखायो पड़ा निस्सरी उल्लेख, क्षणमात्र अवशेष न

कर दिया हो। (अर्थात् बिल्के केवल प्राणमात्र ही न बने हों) बल, पुष्कार्य सार बला
न रहा हो) ॥ ४ ॥

दो०—दस दस सर सब आरेसि परे भूमि कपि वीर ।

सिंहनाद करि गवाँ मेघनाद बल घोर ॥ ५० ॥

फिर उठने लखो दस-दस प्राण भरो, वानर वीर पृथ्वीपर गिर पड़े । बलवान्
और घोर मेघनाद सिंहके, उम्मान नाद फरके सरजने लगा ॥ ५० ॥

चौ०—देखि पवनपुत्र कटक विहाला । अनेवरत खनु धाबत कला ॥

गहासैल फुल गुलत उफारा । अति रिसि मेघनाद पर डारा ॥ १ ॥

सारी सेनाको बेशक (न्याकुल) देखकर पवनपुत्र हनुमान् क्रोध करके ऐसे दौड़े
मानो स्वयं काठ दोड़ा जाता हो । उन्होंने दूरत एक बड़ा भारी पहाड़ उलटा दिया
और वैसे ही क्रोधके साथ उठे मेघनादपर छोड़ा ॥ १ ॥

आगत देखि गण्ड नभ सोई । रस सारथी गुलन सब सोई ॥

बार बार नचार हनुमान् । निकट न गवाँ मारु से जाया ॥ २ ॥

पहाड़को आते देखकर वह आकाशमें उड़ गया । [उसके] रस, सारथि और
घोड़े सब मर हो गये (चूर-चूर हो गये) । हनुमान्जी उठे बार-बार लक्ष्मणसे हैं ।
पर वह निकट नहीं आता, क्योंकि वह उनके बलवान् भर्तृमानस था ॥ २ ॥

छुपति निकट गवाँ बलवान् । गवाँ भौंति कनेसि हुर्बादा ॥

गवाँ बलवान् अत्युक्त सब धरे । कौटुकहीं मरु कालि निवारि ॥ ३ ॥

[तब] मेघनाद और हनुमान्जीके पास गया और उठने [उसके प्रति] अनेकों
प्रकारके चुर्बलानोंका प्रयोग किया । [फिर] उठने उनपर अन्न-बाण तथा और सब
हथियार बरस्ये । प्रभुने सेनामें ही उसको अटककर बलवान् कर दिया ॥ ३ ॥

देखि प्रयाप भुल निष्प्रिया । करे करय माय विधि लाया ॥

निमि कोट करे गवाँ है सेक । बरपावे यहि सखन सपेका ॥ ४ ॥

भीरामजीका प्राण (समर्प्य) देखकर वह पूर्ण कथित हो गया और अनेकों
प्रकारकी माया करने लगा । जैसे कोई व्यक्ति छोटा-सा चूर्णका बड़ा हाथसे फेंक
गवाँको बराने और उससे सेक करे ॥ ४ ॥

दो०—जासु प्रयाप मया बस सिध विरिधि बहु छोट ।

ताहि विधावह निशिधर निज मया मति सोट ॥ ५१ ॥

चिन्ती और ब्रह्मजीवक बड़े-छोटे [कमी] किन्ती अत्यन्त बलवान् मायाके बलसे
हैं, नीचबुद्धि निशाधर उनको अपनी माया दिखता है ॥ ५१ ॥

चौ०—नभ नवि धर्य भिष्टुल लंघरा । अहि ते प्रफट होई कलपारा ॥

गवाँ भौंति विस्मय विधावी । गवाँ कहु डुवि सोछाई नाची ॥ १ ॥

आकाशमें [जैसे] चढ़कर वह बहुतसे स्थानों पर जाने लगा । पृथ्वीसे जलकी
धाराएँ प्रकट होने लगीं । अनेक प्रकारके विस्मय तथा भ्रान्तिविमर्श नाच-नाचकर
आगे, पीछे की भाँति करने लगीं ॥ १ ॥

विष्टा पूर रुधिर कच हाथा । बलाह कहुँ उपक बहु छाया ॥

बारि धरि भीन्नेसि कपिलास । सूख व सखन हव्य पसार ॥ २ ॥

वह कमी ले निष्ठ, पैर, बल, बल और रुधिरों बरसाता था और कमी बहुत-से

पत्थर फेक देता था । फिर उसने धूल बरसाकर ऐसा कैंपरा कर दिया कि अपना ही पत्थरा हुआ हाथ नहीं सूझता था ॥ २ ॥

कवि श्लुल्लाने माया देखें । सब कर मरन बना धृष्टि लेखें ॥

कौतुक देखि राम सुसुकाने । अप समीत सकल कवि जाने ॥ ३ ॥

माया देखकर वानर श्लुल्ला उठे । वे सोचने लगे कि इस हिसाबसे (इसी तरह रहा) तो सबका मरण आ गया । यह कौतुक देखकर श्रीरामजी मुसकण्डे । उन्होंने जान लिया कि सब वानर भयभीत हो गये हैं ॥ ३ ॥

एक घाम फटी सब माया । निमि दिबकर हर विमिर भिकाया ॥

कुमारदि कवि भाङ्गु बिलोके । अप प्रकल रव रहहि न रोके ॥ ४ ॥

तब श्रीरामजीने एक ही वाणसे सारी माया फाट डाली, जैसे सूर्य मन्धकारके समूहको हर लेता है । तदनन्तर उन्होंने कृष्णमयी दृष्टिसे वानर-भाङ्गुओंकी ओर देखा, [सिलसे] वे ऐसे प्रकल हो गये कि रणमें रोकनेपर भी नहीं रुकते थे ॥ ४ ॥

दो०—आपसु भागि राम एहि अंगदादि कवि साथ ।

कछिमन सके कुद होर याम सरासन हाथ ॥ ५२ ॥

श्रीरामजीसे आज्ञा भोगकर, अंगद आदि वानरोंके साथ हाथोंमें वनुर-धाग लिये हुए श्रीकृष्णजी कुद होकर चले ॥ ५२ ॥

चौ०—छतन मयन कर कानु किराका । हिमगिरिबिन ललु कनु एककाका ॥

इहाँ दसावध सुभट पदप्र । नागा अल सल यदि बापु ॥ १४ ॥

उनके लाल नेत्र हैं, चौड़ी छाती और विशाल मुँहवाँ हैं । हिमालय पर्वतके समान लक्ष्मण (गौरवर्ण) शरीर कुछ लज्जित लिये हुए है । इधर यवकने भी बड़े-बड़े बोझ भेजे, जो अपनेको अल-लाल लेकर दौड़े ॥ १ ॥

इधर लल किरासुव धारी । आपु कवि जब राम पुकारी ॥

मिरे सकल जीरिहि सब जोरी । इत उद वप इच्छा एहि धोरी ॥ २ ॥

एवंत, लल और कृष्णजी हथियार धारण किये हुए वानर श्रीरामचन्द्रजीकी जग पुकारकर दौड़े । वानर और लक्ष्मण सब जेबोंसे जोड़ी भिड़ गये । इधर और उधर दोनों ओर जपकी इच्छा कम न थी (अर्थात् प्रबल थी) ॥ २ ॥

मुडिकन्ह सतन्ह हातन्ह काकीहि । कवि लपलीक मारि पुनि दादीहि ॥

माद माद थद लल लल माक । लील जोरि गहि मुन लपारु ॥ ३ ॥

वानर उनको घूँसे और लातोंसे मारते हैं, दाँतोंसे चरते हैं । विजयधील वानर उन्हें मारकर फिर हँदते भी हैं । पत्थरो, मारो, पकड़ो, पकड़ो, पकड़कर मार दो, फिर दोह दो और मुझाएँ पकड़कर उखाड़ लो ॥ ३ ॥

मसि रव धृष्टि रही लल खँद । धमहि अई थई रंद प्रबंश ॥

देखहि कौतुक मन भुर रँदा । कन्हूँक निरसन कन्हूँ अरंदा ॥ ४ ॥

नवें जन्मोंमें ऐसी जानाब भर रही है । प्रचण्ड रुद्ध (पक्ष) जहाँ-वहाँ दोह रहे हैं । माकाधर्म देखलान वह कौतुक देख रहे हैं । उन्हें कभी छेद होता है और कभी आनन्द ॥ ४ ॥

दो०—उधिर गाढ़ अरि मरि जम्बो । जपर धूरि उदाइ ।

अनु अंगार रासिन्ह पर सुकल वूम रह्यो लह ॥ ५३ ॥

लून गर्भोंमें भर-भरकर बम बना है और उत्तम धूल उड़कर पड़ रही है [वह दृश्य ऐसा है] मानो अंगारोंके डेरोंपर राख छा रही हो ॥ ५३ ॥

चौ०—वायक वीर विरजहि कैसे । कुतुमित किमुक के उर जैसे ॥

लक्ष्मण मेघनाद द्वौ जोधा । मिरहि परस्पर करि अति कोधा ॥ १ ॥

वायक वीर कैसे शोभित हैं, जैसे फूले हुए पद्मके पेट । लक्ष्मण और मेघनाद दोनों बोझा अत्यन्त श्लेष करके एक दूसरेसे मिटते हैं ॥ १ ॥

एकहि एक सम्ह बहि जीती । चितिकर छल बल कइ जनीती ॥

शोधवन्त सब भयत अर्चता । मनेत रथ सारथी तुरन्ता ॥ २ ॥

एक दूसरेको (कोई किसीको) जीत नहीं सकता । राख छल-बल (माया) और अनीति (अधर्म) करता है, तब भगवान् अनन्तजी (लक्ष्मणजी) श्रेष्ठित हुए और उन्होंने तुरन्त उसके रथको तोड़ डाला और सारथिकों टुकड़े-टुकड़े कर दिये । ॥ २ ॥

माता विधि प्रहार कर सेष । राखस नयक प्राप्त भवसैषा ॥

राखन जुत निज मन भक्तान्ध । संकट भयत हरिहि मम प्राणा ॥ ३ ॥

शेषजी (लक्ष्मणजी) उत्तर अनेक प्रकारसे प्रहार करने लगे । राखसके प्राणमात्र शेष रह गये । राखपुत्र मेघनादने मनमें अनुमान किया कि अब तो प्राणचकट आ गया, ये मेरे प्राण हर लेंगे ॥ ३ ॥

वीरपातिनी छाविसि सँगी । तेजपुंज लक्ष्मण डर छागी ॥

सुखी भई शक्ति के झरों । तब चलि गइत निकट भव स्थारों ॥ ४ ॥

तब उसने वीरपातिनी शक्ति चलायी । वह तेजपूर्ण शक्ति लक्ष्मणजीकी छातीमें लगी । शक्तिके लगनेसे उन्हें मूर्छा आ गयी । तब मेघनाद भय छोड़कर उनके पास चला गया ॥ ४ ॥

दो०—मेघनाद सप्त कोटि सप्त जोधा रहे जडाइ ।

जगदाधार सेष किमि उठै चले बिसिभाइ ॥ ५४ ॥

मेघनादके समस्त सौ करोड़ (अगणित) बोझा उन्हें उठा रहे हैं । परन्तु जगद्-के आधार श्रीशेषजी (लक्ष्मणजी) उनसे कैसे उठते ? तब वे स्वप्नकर चले गये ॥ ५४ ॥

चौ०—सुनु गिरिजा कोषावक बास । बास सुबब चारिबस बास ॥

सक संग्राम जीति को छाही । सेबहि धुर पर भय जग छाही ॥ १ ॥

[गिरिजी कहते हैं—] हे गिरिजे ! सुनो, [प्रलयकालमें] जिन (शेषनाग) के कोषकी आग्नि चौरहों भुवनोंकी सुरत ही जला डालती है और देवता, मनुष्य तथा समस्त चराचर [जीव] जिनकी सेवा करते हैं, उनको संग्राममें कौन जीत सकता है ? ॥ १ ॥

यह जैवहल आसु खेहै । जा पर कृप राम कै होहै ॥

संपा नइ फिरि द्वौ बाहरी । लगे सँभारन निज निज कनी ॥ २ ॥

इस लीलाको नहीं जान सकता है जिसपर वीरमन्योत्री कृपा हो । सन्ध्या होनेपर दोनों ओरकी सेनाएँ जौट पड़ीं ; सेनाश्रित अपनी-अपनी सेनाएँ सँभालने लगे ॥ २ ॥

न्यापक नह अवित सुबनेसर । लक्ष्मण कहीं ब्रह्म कलशकर ॥

तब कलि है अचरत हनुमान । अलुल देखि प्रभु अति दुख माना ॥ ३ ॥

व्यापक, नह, अत्येक सम्पूर्ण जगत्को ईश्वर और कृपाकी खान श्रीरामचन्द्रजीने पूजा—लक्ष्मण कहाँ हैं ? तबतक हनुमान् उन्हें ढूँढे जाये । छोटे भाईको [इस दशामें] देखकर प्रभुने बहुत ही दुःख माना ॥ ३ ॥

नामवंत कह वैह सुपेन। छर्को रह्य को फई लेना ॥
 धरि लहु इस बसत हनुमन्त। जानै भवन खेत तुरंत ॥ ४ ॥
 नामवान्ने कहा-छंका में सुपेन पैदा रहता है, उसे से जानेके लिये किसको भेजा जाय ? हनुमान्जी छोटा रूप धरकर गये और सुपेनको उसके परसमेत तुरंत ही उठा लये ॥ ४ ॥

दो०-राम फलकिंद सिर बायत गाह सुपेन।
 कहा नाम गिरि गौपवी जहु पवनसुत लेन ॥ ५५ ॥
 सुपेनने आकर श्रीरामजीके चरणारविन्दोंमें सिर नवाया। उसने पर्वत और औषध-का नाम बताया। [और कहा कि] हे पवनपुत्र ! गोपवि छेने जाओ ॥ ५५ ॥

चौ०-राम चरण सरसिब बर सखी। पवन प्रसन्नसुत कह भाषी ॥
 उहाँ दूत एक मस्तु कथा। रामसु खेछनेमि गृह जाया ॥ १ ॥
 श्रीरामजीके चरणारविन्दोंको छुदयमें रखकर पवनपुत्र हनुमान्जी अपना बल बलानकर (अर्थात् मैं अभी लिये जाता हूँ, ऐसा कहकर) चले । उधर एक गुप्तचरने रावणको [रहस्यही साबर दी] उन रावण अरुन्धेमिके बर दिया ॥ १ ॥

दसमुख कहा मस्तु लेहि मुखा। मुनि मुनि कछनेमि लिख पुत्रा ॥
 वैकुण्ठ तुम्हहि कह लेहि जाता। लखु रंग को रौकन पाया ॥ २ ॥
 रावणने उसको सारा मर्म (रहस्य) बतलाया। अरुन्धेमिने पुत्रा और बार-बार सिर पीटा। (लेद प्रकट किया)। [उसने कहा-] तुम्हारे देखते-देखते जिसने नारा जला हाथ, उसका मर्म कौन रोक सकता है ! ॥ २ ॥

भक्ति रघुपति कह दिव लख्य। लंका नग सुवा कथा ॥
 गोक कंठ लहु तुम्ह लाम। उरई राघु लोचनानिरामो ॥ ३ ॥
 श्रीरामायणीका भजन करके दुग अपना कथान करो। हे नाथ ! इन्हीं वक्ताव छोड़ दो। नेत्रोंको आनन्द देनेवाले नीलकण्ठके-समान सुन्दर स्वाम शरीरको अपने हृदयमें रखती ॥ ३ ॥

मैं हैं और सुदुख लगू। महा मोह जिसि दुख जागू ॥
 कछ भ्याक कर अच्छक मोहू। लखेहुँ समर कि लोचन सोहू ॥ ४ ॥
 मैं-तू (भेद-भ्रम)-और गलतसमझें। मूर्खको लगता हो। महामोह (भ्रम) कभी रागिने को रहे हो, हो जाना उठो ! जो अलसकी लंका भी अच्छक है, कहीं स्वयं भी वह रणमें जीता जा सकता है ! ॥ ४ ॥

दो०-मुनि दसकंठ रिखान यति लेहि जन कौन् विचार।
 राम दूत कर मरौ नर यह खल रत मल मार ॥ ५६ ॥
 उसकी ये बातें सुनकर रावण बहुत ही क्रोधित हुआ। उन अरुन्धेमिने मर्ममें विचार किया कि [इसके हाथसे मरनेकी अपेक्षा] श्रीरामजीके दूतके हाथसे ही मर्ने तो अच्छा है ! यह कुछ तो फलसुम्हमें रख दे ॥ ५६ ॥

चौ०-जस कहि पवन राखिसि मग भव। लख मंदिर कर नाम जनोपा ॥
 मस्तुसुत देखा मुनि लखम। मुनिहि बूझि जक भिँसो गाह मग ॥ १ ॥
 वह मन-ही-मन ऐसा कहकर चला और उसने रागमें माया रची। तात्पर्य मन्दिर और सुन्दर नाम बनावे। हनुमान्जीने सुन्दर जानकर देखकर सोचा कि मुनिसे पूछकर बात ही छँ, जिससे मन्त्रवद दूर हो जाय ॥ १ ॥

राष्ट्रस कपट वेप तहँ सोहा । मत्वापति दूतहि चह मोहा ॥

साह पवनसुत चायद साथा । उअ सो कहै राम गुन थाथा ॥ २ ॥

राष्ट्रस वहाँ कपट [से मुनि] का-केव बनाये विराजमान था । वह मूर्ख अपनी नापाये मायापतिके दूतको मोहित करना चाहता था । माचतिने उसके पास जाकर मन्त्रक नवाया । वह श्रीरामजीके पुण्योक्ती कथा कहने लगा ॥ २ ॥

होत महा रज रावन रामहि । जितिहहि रास न संसय था महि ॥

इहाँ भयै जै - देगहँ माहँ । म्हाकष्टि बल मोहि अधिकारहँ ॥ ३ ॥

[यह बोला—] रावण और राममें महान् युद्ध हो रहा है । रामजी जीतेंगे इसमें शक्य नहीं है । हे माहँ ! मैं यहाँ खड़ा हुआ हूँ तब देख रहा हूँ । मुझे क्षान्दिका बहुत बड़ा बल है ॥ ३ ॥

साया मल वैहि दीन्ह कर्मकल । कह कवि कहि मचायै योरें जल ॥

सर मज्ज करि आसुर आवहु । दिच्छ वेदें ग्मान वैहि पावहु ॥ ४ ॥

हनुमान्जीने उसके जल भँगा, तो उसने कमण्डलु दे दिया । हनुमान्जीने कहा—योके जलसे मैं तृप्त नहीं होनेका । तब वह, बोला—तुल्यकर्म कान करके तुरंत सौट आओ तो मैं तुम्हें दीक्षा दूँ, जिससे तुम गान प्राप्त करो ॥ ४ ॥

हो—सर पैछत कपि यह गहा मकरैं तव महुलान ।

मारी सो घरि दिव्य तनु अकी गगन चढ़ि जात ॥ ५ ॥

साल्वमें प्रवेश करते ही एक मारीने अकुलकर उसी समय हनुमान्जीका पैर पकड़ लिया । हनुमान्जीने उसे मार मारा । तब वह दिव्य देह धारण करके विमानपर चढ़कर आकाशको चली ॥ ५ ॥

बौ—कपि तब परस महँ जप्पाया । मित्र सात सुखिबर कर साया ॥

मुनि न होइ यह निसिबर दौरा । मानहु सत्य बचन कपि दौरा ॥ ६ ॥

[उसने कहा—] हे जानर ! मैं तुम्हारे दर्शनसे परमहित हो गयी । हे साव ! भेष मुनिका शाप मित्र गया । हे कपि ! यह मुनि नहीं है, घोर निषाधर है । मेरा बचन सत्य मानो ॥ ६ ॥

मल करि गई अपहरा जवहाँ । निसिबर निकट गवत कपि तवहाँ ॥

साह कपि मुनि गुरुद्विना केहू । पाछें हमहि मंत्र सुम्ह देहू सं ७ ॥

ऐसा कहकर वहाँ ही वह अम्बर गयी, तब ही हनुमान्जी निषाधरके पास गये । हनुमान्जीने कहा—हे मुनि ! पहले गुरुद्विना के जीविये । पीछे आप मुझे मन्त्र दीजियेगा ॥ ७ ॥

तिर खँहू अवेदि पत्तास । मित्र तनु प्रगटेसि मारी बारा ॥

राम राम कहि उदैसि प्राणा । मुनि मन हरि कलेह हनुमाना ॥ ८ ॥

हनुमान्जीने उसके सिरको पँछमे खपेटकर उसे पकड़ दिया । मरते समय उसने नरना (राक्षसी) करीर प्रकट किया । उसने राम-राम कहकर प्राण छोड़े । यह (उसके हँसते राम-नामका उच्चारण) सुनकर हनुमान्जी सममें हर्षित होकर चले ॥ ८ ॥

बेला सैह न औपव चीन्हा । उदरक कपि उपरि पिरि छीन्हा ॥

गहि गिरि निसि सभ घामत खपल । जवचपुरी ऊपर कपि गपल ॥ ९ ॥

उन्होंने पर्वतको देखा, पर औपव न पहचान सके । तब हनुमान्जीने एकदमसे

पर्वतको ही उखाड़ लिया । पर्वत केन्द्र हनुमान्जी रातहीमें जाकाशमरति दीह चले और अयोध्यापुरीके समर पहुँच गये ॥४॥

दो०—देखा भरत बिसाल अति निसिचर मच अनुमानि ।

बिनु पर सायक मारेव चाप धवन जगि तानि ॥५८॥

भरतजीने आकाशमें अत्यन्त बिसाल स्वरूप देखा, तब मनमें अनुमान किया कि यह कोई राक्षस है । उन्होंने कानतक धनुषको खींचकर बिना पल्लव एक बाण मारा ॥५८॥

चौ०—परेव मुखि मोहि छमल सायक । सुमिलत राम राम रघुनायक ॥

सुनि प्रिय कचन भरत तब बाप । कपि सखीर अति जस्तुर आप ॥ १ ॥

बाण लगते ही हनुमान्जी 'राम, राम, रघुपति' का उच्चारण करते हुए मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े । प्रिय कचन (रामनाम) सुनकर भरतजी उठकर दौड़े और बड़ी उतावलीसे हनुमान्जीके पास आये ॥ १ ॥

बिकल बिलोकि कोस उर छाया । जमल नहि बहु मोहि जगता ॥

मुक मलीन मच जय हुआते । कहत कचन भरि खेचन घारी ॥ २ ॥

हनुमान्जीको म्याकुल देखकर उन्होंने हृदयसे क्या किया । बहुत तरहसे अगवा, पर वे जगते न थे । तब भरतजीका मुख उदात्त हो गया । वे मनमें बड़े दुःखी हुए और नेत्रोंमें [विषादके आँसुओंका] जल भरकर वे कचन बोले— ॥ २ ॥

मेहि बिधि राम विमुक्त मोहि कीन्हा । मेहि पुनि यह वचन बुझ कीन्हा ॥

औ मोरैं मच कच भल काज । प्रीति राम पद कमल जगता ॥ ३ ॥

जित विधाताने मुझे भीरामसे विमुक्त किया, उसीने फिर यह भयानक दुःख भी दिया । यदि मन, कचन और सखीसे भीरामजीके चरणकमलोंमें मेरा निष्कपट प्रेम हो, ॥ ३ ॥

औ कपि होव बिगत भय सूर । औ मो पर रघुपति भयमुका ॥

मुक्त कचन उठि बैठ करिस्त । कहि जय जयनि कोसकाशीसा ॥ ४ ॥

और यदि धीरघुनाथजी मुझपर प्रत्यक्ष हों तो वह वानर, यकाभट और पीडाते रहित हो जाय । यह कचन सुनते ही कपिताब हनुमान्जी 'कोसकाशी और रामचन्द्रजीकी जय हो, जय हो' करते हुए उठ बैठे ॥ ४ ॥

चौ०—कीन्ह कपिहि उर लख पुलकित तनु खेचन सजल ।

प्रीति न हृदयें समाह सुमिरि राम रघुकुलतिळक ॥ ५९ ॥

भरतजीने वानर (हनुमान्जी) को हृदयसे क्या किया, उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रोंमें [आनन्द तथा प्रेम्मेके आँसुओंका] जल भर आया । रघुकुलतिळक भीरामचन्द्रजीका स्मरण करके भरतजीके हृदयमें प्रीति, सम्मति न थी ॥ ५९ ॥

चौ०—ताव कुसल कहु सुखनिधान की । सहित बलुन अरु ममउ मानकी ॥

कपि सख चरित समास कचने । जय हुआते मन अहुँ पछिताने ॥ १ ॥

[भरतजी बोले—] हे तनु ! छोटे मार्ग जलम तथा साव्य जानकीपदिल सुख-निधान भीरामजीकी कुछछ कदो । वानर (हनुमान्जी) ने संक्षेपसे सब कथा कही । सुनकर भरतजी दुःखी हुए और मनमें पछताने लगे ॥ १ ॥

बहुत देव सैं भल जय जयमें । प्रभु के एकहु कज न बावर् ॥

जनि कुमवसरु मन घरि चीथ । पुनि कपि सब छोके कछवीर ॥ २ ॥

॥ देव ! मैं जगत्में क्यों जन्मा ! प्रभुके एक ही कज न बाधा । फिर कुम्भवर (विपरीत समर) जानकर मनमें पीरत घरकर बलवीर भरतजी हनुमान्जीसे बोले— ॥ २ ॥

तात गह्वर होइहि तोहि जाय । कष्ट नसइहि होत प्रभाता ॥

चहु मम स्वयंक सैल समेत । पठौं तोहि जहँ कृपाविकेता ॥ ३ ॥

हे तात ! तुमको जानेमें देर होगी और खेरा होते ही काम बिगड़ जायगा ।
[अतः] तुम पर्वतस्थित मेरे बागपर चढ़ आओ, मैं तुमको वहाँ मेरा दूँ जहाँ कृपाके
घाम श्रीरामजी हैं ॥ ३ ॥

सुनि कपि मन बध्ना खंभिसङ्गता । मोरें मार चखिहि विरिग बना ॥

राम प्रभाव विचारि छोरी । बंदि चरन कह कपि कर जोरी ॥ ४ ॥

भरतजीकी यह बात सुनकर [एक बार छे] हनुमान्जीके मनमें अभिमान
उत्पन्न हुआ कि मेरे मोक्षके बाग कैसे चलेगा ! [किन्तु] फिर श्रीरामचन्द्रजीके प्रभाव-
का विचार करके वे भरतजीके चरणोंकी कदना करके हाथ जोड़कर बोले— ॥ ४ ॥

दो०—तब प्रताप सर राखि प्रभु जेइहँ नय्य तुरंत ।

कस कहि आपहु पाइ पद बंदि खलेह हनुमंत ॥ ६० (क) ॥

हे नाथ ! हे प्रभो ! मैं आपका प्रताप हृदयमें रखकर तुरंत चला गाऊँगा । ऐसा कहकर
भासा पाकर और भरतजीके चरणोंकी कदना करके हनुमान्जी चले ॥ ६० (क) ॥

भरत बाहु बल सील शुभ प्रभु पद प्रीति अपार ।

मम मई अत सराहत पुनि पुनि पद्मकुमार ॥ ६० (ख) ॥

भरतजीके बाहुबल, सील (सुन्दर स्वभाव), शुभ और प्रभुके चरणोंमें अपार प्रेमकी
मन-ही-मन बार-बार सराहना करते हुए भावति श्रीहनुमान्जी चले आ रहे हैं ॥ ६० (ख) ॥

चौ०—उहाँ राम छल्लिमवाहि निहारी । कोरे कचर मनुज अनुसारी ॥

अई राखि गह कपि बहि अपर । राम ठठाह भुज डर कायर ॥ १ ॥

मैं आपकी लक्ष्मणजीकी देखकर श्रीरामजी का कारण मनुष्योंके अनुसार (समान) बचन
बोले—आधी रात बीत चुकी, हनुमान् नहीं आये । यह कहकर श्रीरामजीने छोटे भाई
लक्ष्मणजीको ठठाकर हृदयसे लगा लिया ॥ १ ॥

सबहु न दुषित देखि मोहि कक । बंधु सर तब बहुरु सुनाक ॥

मम हित कामि तजेहु पितु माता । खेहु विपिन हिय भावप-वाता ॥ २ ॥

[और बोले—] हे भाई ! तुम मुझे कभी दुखी नहीं देख सकते थे । तुम्हारा
स्वभाव सदासे ही कोमल था । मेरे हितके लिये तुमने माता-पिताको भी छोड़ दिया और
वनमें आया ; गरमी और हवा सब सहन किया ॥ २ ॥

सो अनुमान कहीं नय भाई । उठहु न सुनि मम वच विवकाई ॥

जी मनतेत वन बंधु भिखेहु । पिता वचन भयतेहँ नहि छोहु ॥ ३ ॥

हे भाई ! वह प्रेम अब कहीं है ? मेरे व्याकुलतापूर्ण वचन सुनकर ठठते क्यों
नहीं ? यदि मैं जानता कि वनमें मार्गका विरोध होगा तो मैं पिताका वचन [लिखका
मानना मेरे लिये परम कर्त्तव्य था] उसे भी न मानता ॥ ३ ॥

सुत विव नारी मवन परिपाल । होहि यदि नय बारीह बारा ॥

अस विचारि किं जखहु राता । मिछहु न जगत सहीदर आतां ॥ ४ ॥

पुत्र, वन, बारी, घर और परिवार—वे कष्टमें बार-बार होते और जाते हैं, परन्तु
जगत्में सहीदर भाई बार-बार नहीं मिलता । हृदयमें ऐसा विचारकर हे तात ! जाओ !
जया पक्ष बिजु खग कति वीर्य । ममि भितु कनि करिदर कर हीर्य ॥
अस मम जिनन बंधु बिनु तोही । जी नय देव बिजयवै मोही ॥ ५ ॥

जैसे फल बिना पत्ती, गमि मित्रा कर्ष और सँतु बिना मोह श्यामी अत्यन्त दीन हो जाते हैं, हे माई ! यदि यहाँ बड़ देव मुझे जीवित रखे, तो तुम्हारे बिना मेरा जीवन भी ऐसा ही होगा ॥ ५ ॥

जैहउँ अवध कौन सुह जाई । करि तैतु त्रिष आइ गँवाई ॥

बह अपनसु सहैवै अग जाहीं । नरि हनि मितेप छति नाहीं ॥ ६ ॥

स्त्रीके लिये प्यारे माईको सोकर, मैं कौन-सा बूढ़ लेकर अवध लाऊँगा ? मैं जगत्में बदनामी मने ही सह लेता (कि समझें कुछ भी वीरता नहीं है जो स्त्रीको लो बैठे) । स्त्रीकी हानिसे [इस हानिसे देखते] कोई विशेष छति नहीं थी ॥ ६ ॥

अप अपकोऊ सोऊ सुव कोर । सहिहि निहुर कखेर दर मोर ॥

मित्र सखी के एक कुम्हार । रात छामु हामु प्रान अघारा ॥ ७ ॥

अब तो हे पुत्र ! मेरा निन्दुर और कठोर हृदय यह अपमान और तुम्हारा शोक दोनों ही सहन करेगा । हे रात ! तुम अपनी माताके एक ही पुत्र और उसके प्राणाधार हो ।

लौपेसि मोहि सुहहि गहि पानी । लख बिधि सुखए रसम हित मानी ॥

इतर फार हैहई तेहि जाई । उठि किन मोहि सिखावहु माई ॥ ८ ॥

एक प्रकारसे मुक्त देनेवाला और परम हितकारी जानकर उन्होंने तुम्हें हाथ पकड़कर मुझे सौंपा था । मैं अब जानकर उन्हें क्या उत्तर दूँगा ? हे माई ! इस उठकर मुझे सिखाते (समझाते) क्यों नहीं ? ॥ ८ ॥

बहु बिधि लोचन लोच बिमोचन । लखत लखि लखि दलकोचन ॥

उमा एक लखंड रहुराई । नर गति भयत कृपाक देखुराई ॥ ९ ॥

शोचते सुहानेवाले श्रीरामजी बहुत प्रकारसे लोच कर रहे हैं । उनके कमलकी पल्लवीके समान मैत्रीसे [विवादके नास्तुभोच] नल बर रहा है । [शिपवी कहते हैं—] हे उमा ! श्रीरामनाथजी एक (अहितीय) और अलक्ष (विमोचरहित) हैं । भर्त्सोपर कृपा करनेवाले भयवान्ने [लोचन करके] मनुष्यकी दशा दिखलायी है ॥ ९ ॥

लौ०—प्रभु प्रकाश सुमि कान बिकल भए बाहर निकर ।

माइ गयस हनुमान जिमि कयना माई कीर रस ॥ ११ ॥

प्रभुके [स्त्रीके लिये किये गये] प्रत्यक्षों कानोंसे सुनकर शान्तोंके समूह व्याकुल हो गये । [इतनेमें ही] हनुमान्जी आ गये, जैसे कस्करत [के प्रतंग] में वीररत [का प्रतंग] आ गया ही ॥ ११ ॥

धौ०—हरषि राम भेटि हनुमान । अति कृतज प्रभु परम सुखावा ॥

दुरत बैद लख कीन्ह लपारई । उठि छे अस्मिन् हरपाई ॥ १२ ॥

श्रीरामजी हर्षित होकर हनुमान्जीके गले छायकर मिले । प्रभु परम सुखान (चतुर) और अत्यन्त ही कृतज हैं । तब वैद (सुषेण) ने दुरत उत्तर दिया, [जिससे] लक्ष्मणजी हर्षित होकर उठ बैठे ॥ १२ ॥

कुर्ये काइ प्रभु संदेत प्रसन्न । हरये सखक भग्न कवि माता ॥

कवि पुनि बैद ऊहौ पहुँचावा । लेहि बिचि कबहि तारिब्य आवा ॥ १३ ॥

प्रभु माईसे हृदयसे व्याकर मिले । माइ और शान्तोंके समूह सब हर्षित हो गये । फिर हनुमान्जीने वैदको उठी प्रकर कहां पहुँचा दिया जिस प्रकार वे उठ कर (पहले) उसे ले आये थे ॥ १३ ॥

यह दृष्टांत दस्तान सुनेक । वसिष्ठियह पुनि पुनिसि धुनेक ॥

व्याकुल कुम्भकरन पहि जाव । विविध वचन करि ताहि जगाव ॥ १ ॥

यह समाचार जब रावणने सुना, तब उसने अत्यन्त विषमसे बार-बार सिर पीटा । यह व्याकुल होकर कुम्भकर्णके पास गया और बहुतसे उपाय करके उसने उसको जगाया ॥ २ ॥

जागा वसिष्ठर देखिब कैस । मागहु कछ देह धरि बैसा ॥

कुम्भकरन दृष्टा सब सार्ह । काहे सब मुख रहे मुखार्ह ॥ ३ ॥

कुम्भकर्ण जगा (उठ बैठा) । यह कैसा दिखायी देखा है मानो स्वयं काल ही शरीर धारण करके बैठ हो । कुम्भकर्णने पूछा—हे माई ! कहे तो, दुम्हारे मुख सख क्यों रहे हैं ! ॥ ४ ॥

कथा कही सब तेहि अभिमानी । केहि प्रकार सीता हरि आनी ॥

तास कपिन्ह सब निसिष्ठर मारे । महा महा जोधा संघारे ॥ ५ ॥

इस अभिमानी (रावण) ने उससे विष प्रकारसे वह सीताको हर लया था [सबसे अदतकभी] सारी कथा कही । [फिर कहा—] हे जाव ! जानरोंने सब राजस मार डाले । बड़े-बड़े योद्धाओंका भी संहर कर डाल ॥ ५ ॥

धुम्बुछ सुचरिषु मनुज भदारी । बट अतिक्रय जलपव जारी ॥

अपर महीदर आदिक बीस । परे समर भदि सब रनबीर ॥ ६ ॥

धुम्बुछ, देवराज (देवान्तक), मनुज्यमधक (नरान्तक), भारी योद्धा अतिकाय और अकम्पन तथा महीदर आदि दूखे सभी रणवीर वीर रणभूमिमें मारे गये ॥ ६ ॥

वो—सुनि दसकंधर वचन सब कुम्भकरन विलखान ।

जगार्हवा हरि आनि अब सठ चाहत कल्याण ॥ ६२ ॥

तब रावणके वचन सुनकर कुम्भकर्ण विलखकर (दुखी होकर) बोला—अरे मूर्ख ! शाकाननी जानकीको हर जाकर अब तू कल्याण चाहता है ! ॥ ६२ ॥

बो—महा न कीन्हैं तैं निसिष्ठर नाहा । अब मोहि आह जगपट्टि काहा ॥

अकहैं तात आनि अभिमाना । अबहु राम होइहि कल्याण ॥ १ ॥

हे राक्षसगण ! तुने अच्छा नहीं किया । अब आकर मुझे क्या जगाया ? हे तात !

अब भी अभिमान छोड़कर श्रीरामजीको भजो तो कल्याण होगा ॥ १ ॥

हैं दससीस मनुज रह्यनक । जके हनुमान से पायक ॥

बहक पंडु तैं कीन्हि छोटाई । अबमाई मोहि न सुभाएहि भाई ॥ २ ॥

हे राजग ! जिनके हनुमान्-सरीखे सेवक हैं, वे और पुत्रनाथनी क्या मनुज्य हैं ? हाम माई ! तुने डुप किया, जो पहले ही जाकर सुखे यह हाक नहीं मुनाया ॥ २ ॥

कीन्हिहु प्रभु विशेष सोह देवक । सिव विसंघि भुर जाके सेवक ॥

नारद मुनि मोहि अबन खे कहा । कहतेई मोहि समय निरवाह ॥ ३ ॥

हे स्वामी ! तुमने उस परम देवताका विशेष किया, जिसके शिव, ब्रह्मा आदि देवता सेवक हैं । नारद मुनिने मुझे जो ज्ञान कहा था, वह मैं तुमसे कहता; पर अब तो समय जाता रहा ॥ ३ ॥

अब भरि अंक रेंदु मोहि माई । जोवन सुफल कही तैं जाई ॥

स्वाम गान्त सखीरह जेवन । देखौ जाइ ताव अब मोचन ॥ ४ ॥

हे माई ! अब तो [अन्तिम बार] मैं-तुम्हारे भरण मुझसे मिल ले । मैं जाकर

अपने नेत्र सफल करें । तीनों तारोंको बुझानेवाले स्वप्नमयरीण कर्मजनेन श्रीरामजीके जाकर दर्शन करें ॥ ४ ॥

श्री०—राम रूप सुन सुमिरत मंगल प्रकट छन एक ।

रावन मनेउ कोटि घट मद वर मदिरा अनेक ॥ ५३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके रूप और गुणोंकी सरण करके वह एक क्षणके लिये प्रेममें मग्न हो गया । फिर रावणसे करोड़ों घड़े मदिरा और अनेकों जैसे मँदवाये ॥ ५३ ॥

श्री०—मदिरा खाइ करि मदिरा बाज । कर्मा ' भगवत्' समान ॥

कुम्भकरन हुमंद रन रंग । पन्न सुगं तनि सेग न रंग ॥ ५४ ॥

मैंने खाकर और मदिरा पीकर वह वज्रपात (विजली मिरने) के समान गरजा । मद्यसे मूर रणके उत्साहसे पूर्ण कुम्भकर्ण किन्नर छोड़कर चला । तेरा भी साथ नहीं ली ॥ ५४ ॥

देखि विभीषणु जगो अकट । बरेउ करन निज नाम सुभामद ॥

जनुन उदाइ हुर्यो तेहि कथो । रघुपति भल जानि मन भावो ॥ ५५ ॥

उसे देखकर विभीषण अगो आये और उसके चरणोंपर गिरकर अपना नाम सुनाया । छोटे भाईको उठाकर उठने दृष्टवसे लगा किना और श्रीरघुनाथजीका भक्त जानकर वे उसके मनको प्रिय लगे ॥ ५५ ॥

तात छात रावन मोहि आत । कट वल हित अंग विचार ॥

तेहि भगनि रघुपति पहि भावई । देखि शीव प्रभु के सब भावई ॥ ५६ ॥

[विभीषणने कहा—] हे तात । परम हितकर सखी एवं विचार करनेकर रावणने मुझे अत मारी । उठी मनिके बारे मैं श्रीरघुनाथजीके पाद चला आया । दीन देखकर प्रभुके मनको मैं [बहुत] प्रिय लगा ॥ ५६ ॥

सुनु सुत भक्त काकवत रावन । सो कि मान अब परम सिखावन ॥

बन्ध बन्ध हैं बन्ध विभीषन । भयहु तत निरिचार कुल बूधन ॥ ५७ ॥

[कुम्भकर्णने कहा—] हे पुन । सुन, रावण तो काकके बंध हो गया है (उसके सिरपर मालु नाथ रखी है) । वह क्या अब उषम सिखा मन सकता है ! हे विभीषण ! तू बन्ध है, बन्ध है, बन्ध है । हे तात ! तू राक्षसकुलका बूधन हो गया ॥ ५७ ॥

बन्ध बन्ध हैं कीमद इच्छन । भयेहु राम सोना मुख सगर ॥ ५८ ॥

हे भाई ! दूने अपने कुलको देखोपमान कर दिया, जो सोना और मुखके समुद्र श्रीरामजीकी भजा ॥ ५८ ॥

श्री०—वचन कर्म मन कष्ट तनि मजेहु राम रनधीर ।

आहु न निज पर सुख मोहि भयई फलवत्स वीर ॥ ५९ ॥

मद, वचन और कर्मसे कष्ट छोड़कर रणधीर श्रीरामजीका भजन करना । हे भाई ! मैं काल (मृत्यु) के वश हो गया हूँ, मुझे जन्म-परत्था नहीं पसन्दा । इसलिये अब प्रेम नामो ॥ ५९ ॥

श्री०—बन्धु मयन सुनि चक विभीषन । जगद बई जेजेक विदूषन ॥

माम सुपरकरन सरीर । कुम्भकरन कावत रनधीर ॥ ६० ॥

भाईके कचन सुनकर विभीषण खीट-बये और वहाँ आये जहाँ विजोषीके रूपण श्रीरामजी थे । [विभीषणने कहा—] हे दास ! पर्वतके समान [भिन्न] देहाला रणधीर कुम्भकर्ण आ रहा है ॥ ६० ॥

एतता करिन्ह मुचा कब फना । किउमिलाह घाए बलबाभा ॥
 लिह बडाह बिछप जल सुपर । कलकटाह दारहि त्र ऊपर ॥ २ ॥
 मान्गोने अब कानोसे इना मुना, अब वे बलवान् किलकिलकर (हर्षवनि
 करके) दौड़े । बूझ और पकै [उत्साहकर] उठा लिये और [शोधसे] दौठ
 कटकटाकर उन्हें उसके ऊपर टाकने लये ॥ २ ॥

कोटि कोटि गिरि मिखर प्रहारा । करहि समुद्र करि एक एक नारा ॥
 मुरयो न मनु तनु दस्यो न दारयो । विमिगन अर्क फलनि को मारयो ॥ ३ ॥
 रीछ-वानर एक-एक नारमें ही करोड़ों फाड़ोंके शिखरोंसे उसपर प्रहार करते हैं;
 परन्तु इससे न तो उसका मन ही मुझ (विचलित हुआ) और न शरीर ही टाके डला,
 जैसे मदारके फल्लेकी मारसे हाथीपर कुछ भी असर नहीं होता । ॥ ३ ॥

तब सास्तसुत मुठिख हन्यो । परयो बरनि ब्यकुल गिरि पुन्यो ॥
 पुनि बडि रोहि मारैत हनुमन्ता । पुमिन्त सुखत परैत दुरन्ता ॥ ४ ॥
 तब हनुमान्जीने उसे एक बूँछ मारा, जिससे वह व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर
 पड़ा और फिर पीटने लगा । फिर उसने टठकर हनुमान्जीको मारा । वे चकर खाकर
 दुरन्त ही पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ४ ॥

पुनि गळ पीछहि अवधि पछोरसि । नहै तहँ पठकि पठकि भट कारेसि ॥
 कभी कभीमुक्त सेन बसाई । अति भय अखिड न कोउ समुहाई ॥ ५ ॥
 फिर उसने गळ-पीछको पृथ्वीपर पछाड़ दिया और दूसरे योद्धाओंको भी अहाँ-वहाँ
 पटक-पटककर गाल दिया । वानरसेना भाग बली । सब असन्त भयभीत हो गये; कोई
 सामने नहीं जाता ॥ ५ ॥

रो—अंगदादि करि मुचछित करि समेत सुग्रीव ।

कौल दावि करिपक कहँ बला भमित बल सीव ॥ ६ ॥
 सुग्रीवसेव अंगदादि वानरोंको मुच्छित करके फिर वह अपरिमित बलकी सीमा
 कुम्भकर्ण वानरराज सुग्रीवको कौलमें दावकर चले ॥ ६ ॥

चौ—उमा कल राहुपति नखीला । सेऊत सक विमिअहिगन नीला ॥
 बडि रोम ओ काकहि साई । ताहि कि सोहइ ऐसि करई ॥ १ ॥
 [शिवजी कहते हैं—] हे उमा ! भीरपुत्रायजी जैसे ही नखीला कर रहे हैं जैसे
 गन्ध सपोंके समूहमें मिश्रकर लेकता हो । जो गौँहके इशारेमात्रसे (बिना परिश्रमके)
 काकको भी पत जाता है, उसे कहीं ऐसी लड़ाई योमा देती है ? ॥ १ ॥

मा पावनि कीरति बिलनिहहि । गाह गाह अचविधि नर तरिहहि ॥
 मुक्का गह मस्तसुत जाया । सुग्रीवहि तन स्नेसन लाया ॥ २ ॥
 भगवान् [इसके द्वारा] अश्वको पथित करनेवाली वह कीर्ति देखायेगे जिसे
 मा-गाकर मनुष्य भयसम्राट्से तर आवेंगे । मूर्च्छा जाती रही, तब साफल हनुमान्जी जाने
 और फिर वे सुग्रीवको खोजने लये ॥ २ ॥

सुग्रीवहु कै, मुक्का बीछी । बिछकि गयत रोहि सुक्क प्रतीती ॥
 काटेसि वसव नासिक कल । मयि अकास चलेट रोहि जाना ॥ ३ ॥
 सुग्रीवजी भी मूर्च्छा बूर हुई, तब वे [मुँह-से होकर] लिखक गये (कालसे नीचे
 गिर पड़े) । कुम्भकर्णने उनसे सूँच जाना । उन्होंने कुम्भकर्णके नाक-कान दाँतोंसे
 काट लिये और फिर गन्धकर गन्धायकी ओर चले, तब कुम्भकर्णने जाना ॥ ३ ॥

गोद गदग गदि गुमि पञ्चरा । जति जयने ठठिगुनि तेहि मारा ॥

गुनि कायन प्रभु पदि कलवाज । जयति जयति जय कुपानिमाना ॥ ४ ॥

उठने सुग्रीवका पैर पङ्कज उठने प्रसीपर पङ्कज दिया । फिर सुग्रीवने बड़ी कुर्वसि लठकर उसको तारा । और उस कलवाज सुग्रीव प्रभुके पाव जाने और बोले—
कुपानिमान प्रभुकी वय हो, वय हो, जा हो ॥ ४ ॥

नाक काय कटे निर्वे जासी । चित्त मोच करि यह मन मानी ॥

सहज भीम पुनि निरुमुति नसा । देखत करि दस उफनी मारा ॥ ५ ॥

नाक-कान कटे गये, ऐसा मर्मां खानकर बड़ी मरानि हुई; और वह मोच करके लौटा । एक तो वह स्वभाव (आकृति) से ही मरगुहर का और फिर बिना नाक-कानका होने से और भी मरानाफ हो गया । उसे देखते ही जानौंकी सेनामें मय उठान हो गया ॥ ५ ॥

शे०—जय जय जय एधुबंस मनि धार करि है हृद ।

एकदि बार तासु पर छरेन्दि गिरि उठ जूह ॥ ६ ॥

एधुबंसगिरिकी वय हो, वय हो जय हो ऐसा पुकारकर वनर हूह करते रीते और वनने एक ही काय उठकर वहाज और हथौके वगैर लपेटे ॥ ६ ॥

शे०—कुंभकरण रण रंघ विह्वल । सन्मुख पला पलक बहु मुह ॥

कोटि कोटि करि बरि बरि काई । बहु टीकी गिरि गुह्री समार ॥ १ ॥

रणके उत्साहमें कुम्भकर्ण विह्वल होकर [उनके] सामने ऐसा चला नातो कोपित होकर काट ही आ रहा हो । वह करोड़-करोड़ जानौंको एक साथ पकड़-पकड़कर जाने लगा ॥ [हे उनके हृदमें रह तरह वृक्षने लगे] मानो पर्यतकी शुक्रमें टिकिऊँ समा रही हों ॥

कोटिन्ह पदि लीर लव महां । कोटिन्ह भीमि निरुप मरि गहां ॥

मुख, पला, मागकनि की कटा । निरुप पतहि माहु करि लछ ॥ २ ॥

करोड़ों (जानों) को पकड़कर उठने छरीते मरुत बाध । करोड़ोंको हाथोंसे मारकर पूर्योकी पूर्यो मिल दिया । [पेटमें मये हुए] मान और जानोंके ठह-ठह लचके मुह, नाक और जानोंकी रहते निरुप-निरुपकर भाग रहे हैं ॥ २ ॥

रण भई मरु निरुपकर लुप । निरुपमिहि बहु पदि विधि बनी ॥

हुरे सुभय लख चिरहि व डेरे । लख व वचन सुबहि लहि डेरे ॥ ३ ॥

रणके मध्यमें मरु राखत कुम्भकर्ण हथ प्रकर गरिय हुआ; मानो विघाताने उसको धार विध अपंग कर दिना हो और उसे यह भाव कर बाक्य । लव बोझ मला लगे हुए वे लोहाये भी नहीं छीटये । जैलौंके उन्हें लख जहाँ वृक्ष और पुकारनेसे सुनते नहीं ॥

कुम्भकरण करि भीम निरुप । मुनि जाई स्वयंवर धारी ॥

देसी राम निरुप फउमई । विरु कहीक जय विधि आई ॥ ४ ॥

कुम्भकर्णने जान-सेनाको कितर-कितर कर दिना । यह सुनकर राख-सेना भी चौकी । श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि अपनी सेना व्याकुल है और बहुतने नामा प्रकरकी सेना भा गयी है ॥ ४ ॥

शे०—सुनु सुग्रीव निगीषन अनुज संपन्नरेहु सैन ।

हैं वेकई लख वल हकहि बोले राखिकैय ॥ ५ ॥

लव कम्पमन श्रीरामजी बोले-हे सुग्रीव । हे निगीषन । और हे वलन ! सुनो, हम सेनाको संग्रहण । मैं हथ तुम्हें लव और सेनाको देखा हूँ ॥ ५ ॥

चौ०—कर सारंग सारि कटि अम्बा । और दल दलन चले रघुनाथ ॥

प्रथम कौन्दि प्रभु चतुष टैंकोर । विष दक चरिअ अमठ सुनि सोर ॥ १ ॥

शायन भाईचतुष और करमें तरुन चक्रर श्रीरघुनाथवी धनुषेनाको दलन करने चले । प्रभुने पहले वो चतुषका टैंकर किना दिग्री भवानक आनाच सुनते हो शत्रुदल बहरा हो गया ॥ १ ॥

सत्यसंथ जौने सर लम्बा । कर्मसर्ग चहु चले सपच्छ ॥

जई तहै चले निपुल जराच । लवे कृत्य आ विरट पिताच ॥ २ ॥

किर सत्यप्रतिभ श्रीरामजीने एक लाल बाग छोड़े । वे ऐसे चले मानो रंजनले काल-हर चले हों । जहाँ-जहाँ बहुत-से बाग चले, जिससे भ्रंकर राक्षस बोझा करने लगे ॥ २ ॥

जहाँ चरन हर विर भुजङ्ग । बलुल नीर होहि सर धंदा ॥

हुनि धुनि बाणक महि पछी । उनि संपारि भुभट भुनि करी ॥ ३ ॥

वनके चरण, छाती, विर और भुजङ्ग सब रहे हैं । बहुत-से पीछे पीछे बहने हो जाते हैं । बाणक पक्षर आ-आकर धुनीपर पड़ रहे हैं । उधम बोझा फिर सँभलकर उठते और लपकते हैं ॥ ३ ॥

कागद बाग मलय तिमि गजहि । बहुलक देखि कजिन सर माझी ॥

रंक प्रचंड गुंड विनु पावहि । बल बल माय कल धुनि माझी ॥ ४ ॥

लग्न कराते ही वे मेघकी तरह गरजते हैं । बहुत-से वो कजिन बाणको देखकर ही भाग जाते हैं । बिना मुन्ड (सिर) के प्रचण्ड लड़ (पड़) रौढ़ रहे हैं और पक्षी, पक्षी, मारो, मारो का धाव करते हुए ग (चित्त) रहे हैं ॥ ४ ॥

दो०—छन महुँ प्रभु के सावकहि काटे विकट पिताच ।

भुनि रघुवीर निर्णय महुँ प्रविसे सब बाणक ॥ ५ ॥

प्रभुके बाणोंने अणुमात्रमें भवानक एकदोसरे झटकर रक्त दिया । फिर वे सब बाण लौटकर श्रीरघुनाथजीके तरुनमें झुल गये ॥ ५ ॥

चौ०—हुँभकरन मन छोख विचारी । हृदि कर्म महा विताकर जारी ॥

आ भति भुज महाबल कीरा । किनो सुगन्धक नाद रौबीरा ॥ १ ॥

कुम्भकर्णने मनमें विचारकर देखा कि श्रीरामजीने सधाराचमें राक्षसी सेनाका संहार कर डाला । अब वह महाबली और अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने यन्त्रीर सिंहाद किया ॥ १ ॥

कोपि महीवर केह उपारी । हावु भौं मरै अर भारी ॥

बाजत देखि छैल प्रभु भारे । सरणि कटि रज सस करी सारे ॥ २ ॥

बड़ क्रोध करते परंतु ठोकाइ केवल है और जहाँ मारी-मारी चानर सोदा होते हैं, वहाँ डाल देता है । बड़े-बड़े पर्यंतोको जाते देखकर प्रभुने उनको बाणोंसे झटकन धूँके समान (चूर-चूर) कर डाला ॥ २ ॥

भुनि धनु तानि कोपि रघुनाथक । जौने अस्ति कलक बहु धावक ॥

बहु महुँ प्रविसे निशरी सरवाही । विमि दमिनि धन साध समाही ॥ ३ ॥

किर श्रीरघुनाथजीने क्रोध करके धनुषको तानकर बहुत-से अत्यन्त भयानक बाण छोड़े । वे बाण कुम्भकर्णके धरौरो तुलकर [पीछेसे इस प्रकार] निकल जाते हैं [कि उनका भला नहीं चला] जैसे निचलीको बादलोंमें डाल जाती हैं ॥ ३ ॥

सोचित लवत सोह तब करे । अमु कण्ठ गिरि नेह बनारे ॥

निकल निकलि भातु कसि पाए । निहिसा लपहि निरुट कसि बाए ॥ ४ ॥

उसके कले जरीसे शरिर बहल हुआ ऐसी-शोभा देख है, मनो काबलके पर्वतसे
गेरुके पनाले वह रहे हों । उसे आकुल देखकर रीत-वानर दौड़े । वे ज्यों ही निकट
आये, त्यों ही वह हँसा, ॥ ४ ॥

दो०—महामाव । करि गज्जा कोटि कोटि नहि पौंस ।

महि पटकइ कजपाज इव सपथ करइ दससीस ॥ ६९ ॥

और बड़ा शोर मचाने लगे । तथा करोड़-करोड़ वानरोंको एकदूसर वह
गलरावकी तरह उन्हें पृथ्वीपर धटके लगा और सन्तुष्टी दुहाई देने लग ॥ ६९ ॥

चौ०—शोणे भातु कसिमुख । दूषा । नृहु पिसेहि विमि मेम बरुणा ॥

चले प्राणि कसि । भानु मयामी । निरुड पुनस्तव अस्त भाषी ॥ १ ॥

एह देखकर रीत-वानरोंके झुंड़ ऐसे भागे जैसे मेड़िपेको देखकर मेड़ोंके झुंड़ ।
[शिवजी कहते हैं—] हे भवानी ! शनर-माव आकुल होकर वार्तावाचीसे पुकारते
हुए भाग चले ॥ १ ॥

एह निश्चिन्त हुकल सम गहई । अनिकुल देस परद सब चहई ॥

कुवा बारिबर सम कसरसी । पाहि पाहि मयसारि हारी ॥ २ ॥

[वे कहते छे—] एह राक्षस दुर्मिच्छके लयान है, जो भव वानरकुलकी देखमें
पड़ना चाहता है । हे सुपाकरी जलके धारण करनेवाले मेघरत्न श्रीराम ! हे जलके शत्रु !
हे शरणागतके पुत्र हरनेवाले ! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥ २ ॥

सकलन वचन सुकल मगधान । चले सुबारी शरवण बाण ॥

सम सौम निरुड पाछे पासी । चले समेन महर वसुधाकी ॥ ३ ॥

कथनानुरे वचन सुनते ही भगवान् वनुर-बाण सुचरकर चले । महाबलवाली
श्रीरामजीने सेनाकी ओरों की ओर दौड़ा और वे [वनेके] क्षेत्रपूर्वक चले
(धागे बड़े) ॥ ३ ॥

कौचि धनुष सर सत लंभाने । कूटे तीर सरीर समाने ॥

छापत सर वज्रा रित भस । कुबर डगमगत डोकलि भस ॥ ४ ॥

उन्होंने धनुषको खींचकर सौ बाण सम्भल किये । बाण कूटे और उसके शरीरमें
समा गये । बाणोंके लगते ही वह क्षेत्रमें भरकर दौड़ा । उसके दोड़नेसे पर्वत डगमगाने
लगे और पृथ्वी हिलने लगी ॥ ४ ॥

कौन्द् एक तेहि सैल उपगती । खलुखलिकुल भुज लोह कटी ॥

धामा धाम कहु गिरि घसी । अमु सोह भुज करि मदि पारी ॥ ५ ॥

उसने एक पर्वत उलाड़ लिया । खलुखलिकुल श्रीरामजीने उसकी वह भुजा ही
काट दी । तब वह धागे हाथों पर्वतको लेकर दौड़ा । अमुने उसकी वह भुजा भी काट-
कर पृथ्वीपर गिरा दी ॥ ५ ॥

कटै भुजा सोह लह कैसा । पच्छदीप मंदर गिरि जैसा ॥

उम्र बिलोकवि अमुदि मिलोक । असव चाहत मानहुँ प्रलोका ॥ ६ ॥

मुनाओंके कट बनेपर वह दुष्ट पैली शोभा बने लगा, जैसे निना परछा भन्दराचले
पड़ा हो । उसने उम्र दलिते अमुको देखत । मनो तीनों क्षेत्रोंके निराल प्राया
चाहता हो ॥ ६ ॥

ये०—हरि विचार खेर अति धावा चहुं पसारि ।

रामस सिद्ध सुर आसित छ ह्य हेति पुकारि ॥ ७० ॥

वह बड़े जोरसे विपदा के लिये पैदाकर रोया । आकाशमें सिंह और देवता
हलकर हु । हा । हा । इत प्रकर पुकारने लगे ॥ ७० ॥

सौ०—समय देव कल्पानिधि जान्यो । जवन प्रजित सबहुनु लख्यो ॥

विसिद्ध निरंतर विधिवानुसन्धेय । तबहि महानन्द भूमि न परेऊ ॥ १ ॥

कल्पानिधान भवान्मने देवताओंको समर्पित जाना । उन उन्होंने धनुषको कातरक
हानकर राखके कुलको बाणोंसे संहारते मर दिया । तो भी वह महाप्रज्वाली पुष्पकोर न गया । १

सुरगिह बस सुख सन्मुख धावा । सकल जौन सखीय अनु भवा ॥

सब प्रभु कोहि लौम सर खेच्यो । सब ते भिन्न समु सिर कीन्हा ॥ २ ॥

सुखमें बाण मरे हुए सब [प्रभुके] सामने दौड़ा । सबको कातरकी लसीम तरफ
ही भा रहा हो । सब प्रभुने शेष करते खींचा बाण किया और उसके बिरफो धड़ते मरना
कर दिया ॥ २ ॥

सौ सिर बरेव वसतल लख्यो । विपदा मन्दविमिषमिभिमिषा ॥

भारि बस्य हर वात प्रबन्ध । तब प्रभु काहि कोह्य दुख खंडा ॥ ३ ॥

वह सिर राखके आये सब गया । उसे देखकर राणा ऐसा व्याकुल हुआ जैसे
मणिके हुए रानेपर लगे । कुम्भकर्णका प्रचण्ड बग दौड़ा, जिसके पृथ्वी बँधी गयी थी ।
सब प्रभुने कातर उसके दो टुकड़े कर दिये ॥ ३ ॥

दरे भूमि विमिष मर तैं मृष । हेतु दानि कवि मनु निरार ॥

हाथ तेज मनु मदन समाधा । सुर भुवि सर्वाहि भयंभय नाका ॥ ४ ॥

घानर-माह और निरावरोंको अपने नीचे दबाते हुए वे दोनों टुकड़े पृथ्वीपर ऐसे
पड़े जैसे आकाशसे दो पत्थर गिरें हैं । उनका तेज प्रभु भीरुमन्दबलीके मुखमें उभा
गया । [यह देखकर] देवता और भूमि सभीने आश्चर्य मना ॥ ४ ॥

सुर दुर्गुभी कलषाहि इत्यहि । अस्तुति करहि सुखन बहु बरवाहि ॥

हरि विनयी सुर सख्य सिद्धाए । तेही समय देवविधि बन्द ॥ ५ ॥

देवता नगदे बसते छलित होंते और खुशी करते हुए बहूतसे पूज बरवा रहे
हैं । विनयी करते सब देवता लगे गये । उसी समय देवोंमें बारा आये ॥ ५ ॥

राजोपरि हरे गुण गन बन्द । हरि लोचन प्रभु मय भन्द ॥

केहि हलहु कब कीहि भुवि बन्द । राम रामर मदि खोबल भन्द ॥ ६ ॥

आकाशके ऊपरसे उन्होंने भीड़से सुन्दर वीररघुपुत्र गुणप्रदूषक गान किया।
सौ प्रभुने मनको बहुत ही मना । भूमि वह खड़ा चले गये कि यथ हुए रावणको धीम मरिसे ।

[उस समय] भीरुमन्दबली रणभूमिमें आकर [अजन्त] सुशोभित हुए ॥ ६ ॥

७०—संश्राम भूमि विराट रघुपति मनुज लख कोसल धनी ।

अम बिंदु मुख राजीव खेचन अलन लख सोनित कनी ॥

मुज जुगल फेरत सर सरसब मनुज कपि चहुं शिखि बने ।

काह दास तुलसी कहि न सक छवि लेख कोहि भानव धने ॥

मनुजोंन वल्लभके शोभाके भीरुनाथी रणभूमिमें सुशोभित हैं । मुखपर
परीनेत्री बूंदें हैं; कमलके लज्जन नेत्र कुल लख हो रहे हैं । बारीबर रखके बाण हैं; दोनों
हाथोंसे धनुष-बाण मिला रहे हैं । बाएँ और दाहिने-कर सुशोभित हैं । तुलसीदासजी

कहते हैं कि प्रभुकी इस उमिका वर्णन खेसवी भी नहीं कर सकते बिनके बहुत-से (हजार) हैं ।

दो०—निसिचर जवम मज्जर तहि दीन्ह विज धाम ।

गिरिजा ते नर संवसति जे न भवहि धीराम ॥ ७१ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे शिविन् ! कुम्भकर्ण जो नीच राक्षस और पापकी खान था, उसे भी श्रीरामजीने अपना परमात्म दे दिया ! अतः वे मनुष्य [निश्चय ही] मन्दबुद्धि हैं जो उन श्रीरामजीको नहीं भजते ॥ ७१ ॥

चौ०—दिन के अंत फिरी हो खनी । समर गढ़े सुभट्ट भ्रम धनी ॥

राम कृपा कवि दूख बह बाढ़ा । जिमि दूख पाइ सग बलि बाढ़ा ॥ १ ॥

दिनका अन्त होनेपर दोनों सेनाएँ जैट फीं । [आम्के युद्धमें] पौडागोंको बड़ी बकावट हुई । परन्तु श्रीरामजीकी कृपासे बानरसेनाका बह जखी प्रसार बढ़ गया जैसे घास पकर अग्नि बहुत बढ़ जाती है ॥ २ ॥

कौन्हि विस्तिचर विनु बह राखी । मित्र मुक्त कहे सुख भेहि मीठी ॥

बहु विचार दसकंवर कहे । बंधु सीध पुनि कुनि उर घरई ॥ १ ॥

उपर राक्षस दिन-रात इस प्रकार घटते न रहे हैं जिस प्रकार अपने ही मुकाबे कानेपर पुण्य बढ़ जाते हैं । राक्षस बहुत विषय कर रहा है । बार-बार भाई (कुम्भकर्ण) का विर कजेओसे लगाता है ॥ २ ॥

शेर्वादि नारि हृदय हसि पाबी । लामु तेज बह विपुल बलागी ॥

मेघनाद तेहि भवसर आवत । कहि बहु कथा पिता सगुहापत ॥ ३ ॥

जिपाँ उसके हथे भारी तेज और बलको बखान करके शायेंसे छाती पीट-पीटकर रो रही हैं । उसी समय मेघनाद भाया और उसने बहुत-सी कथाएँ कहकर पिताको समझाया ॥ ३ ॥

बैषेहु काठि मोरि मनुसाई । अर्वादि बहुत का करी बसाई ॥

इहोव हैं कठ रज कपई । सो कठ लाम व लेहि देसापई ॥ ४ ॥

[और कहा—] कठ मेरा पुत्रार्थ देखियेगा । अभी बहुत बड़ाई क्या करूं । हे तात ! मैंने अपने इहोवके को कठ और रज पाया था वह कठ [और रज] अवलक आपको नहीं दिखाया था ॥ ४ ॥

पुहि बिधि जवत भवत विहारा । बहू दुखर सारे कवि बारा ॥

हल कवि भाहु काठ सग नीत । उर सखीपर अति रनबीरा ॥ ५ ॥

इत प्रकार रींग मारते हुए खेरा हो गया । लंकके चारों दरवानोंपर बहुतसे बानर आ बटे । इधर कालके समान वीर बानर-भाहू हैं और उधर आत्मना रणवीर राक्षस ॥ ५ ॥

कहि सुभट मित्र मित्र सग देख । सति न बाहू समर लयकेद ॥ ६ ॥

दोनों ओरके पौडा अपनी-अपनी जगके छिन्ने कर रहे हैं । हे गरुड़ ! उनके मुद्रका वर्णन नहीं किया था लकता ॥ ६ ॥

दो०—मेघनाद मायामय रज पाहि शकत अकस ।

मजेंत अनृष्टास करि गइ कवि कटवहि प्रास ॥ ७२ ॥

मेघनाद उठी (पूर्वोक्त) मायामय रजपर जबर बाकिशमें कल मत्त और अनृष्टास करके गरुड़, लिखे बानरोंकी सेनामें सब छा गया ॥ ७२ ॥

चौ०—सक्ति सूक्ष्म तरंगारि कुरागा । अक्ष सक्ष कुलिसायुध नावा ॥

हारदू परबु परिष पाषाण । लखेठ छुटि करै बहु बाना ॥ १ ॥

वह शक्ति, सूक्ष्म, तरंगार, कुम्भज आदि अस्त्र, अक्ष एवं वक्ष आदि बहुत-से आयुध चालने तथा फरसे, परिष, फथर आदि डालने और बहुत-से बाणोंकी छुटि करने लगा ॥ १ ॥

दस दिसि रहे जान नम जई । सखहुँ भवा मेघ छरि आई ॥

घर धर माह सुखि छुबि जवा । जो माछ तेहि खेठ न जाना ॥ २ ॥

आकाशमें दसों दिशाओंमें वाण छा गये, मानो मघा नक्षत्रके बादलोंमें झड़ी लगा दी हो । पकटों, पकड़ों, झरोखों में शब्द जननेसे सुनायी पड़ते हैं । पर जो मार रहा है उसे कोई नहीं जान पाता ॥ २ ॥

गहि गिरि तल अकास कपि बाबाहि । देखहि तेहि बहुसित छरि आबाहि ॥

अवघट घाट कट गिरि बंदर । माघ बल कीन्हैस सर पंजर ॥ ३ ॥

पर्वत और वृक्षोंको छेकर घानर आकाशमें दौड़कर जाते हैं । पर उसे देख नहीं पाते, इससे चुपड़ी होकर खैट आते हैं—येचनादने मयाके बलसे अटपड़ी भाटियों, राखों और पर्वतकन्दराओंको बाणोंके पिंजरे बना दिये (बाणोंसे छा दिया) ॥ ३ ॥

जाहि कइो व्याकुल भए बंदर । सुरपति बंदि बरे अनु मंदर ॥

माकसमुत जंगल बल नीकर । कीन्हैस बिदल सकल बलसीका ॥ ४ ॥

अब क्यों भायें, वह खोचकर (रास्ता न पाकर) अन्तर व्याकुल हो गये । मानो पर्वत इन्द्रकी कैदमें पड़े हों । येचनादने शक्ति इन्द्रगान्, अंगद, लख और नील आदि सभी बलवानोंको व्याकुल कर दिया ॥ ४ ॥

मुनि कछिमर सुग्रीव विनीत । सरहि मरि कीन्हैस जलार तन ॥

मुनि रघुपति सँ पकै कागा । सर जँबइ होइ कागाहि जाना ॥ ५ ॥

पिर उठने लक्ष्मणजी, सुग्रीव और विभीषणको बाणोंसे मारकर उनके शरीरोंको चकनी कर दिया । पिर वह भीरुपुनायकीसे लड़ने लगा । वह जो बाण छोड़ता है, वे सँप होकर ज्वाते हैं ॥ ५ ॥

अक्ष पास बल भए कारी । स्वस अर्धत एक कबिहारी ॥

मठ हूँ कष्ट चरित कर मान । सदा स्वतंत्र एक भगवाना ॥ ६ ॥

जो स्वतंत्र, अनन्य, एक (अक्षण्ड) और निर्विकार है, वे शरके शत्रु श्रीरामजी [सीकते] नागपाशके कर्ममें हो गये (उसके बंध गये) । श्रीरामचन्द्रजी सदा स्वतंत्र, एक (अवितीय) भगवान् हैं । वे नटकी तरह अपनेको प्रकरके दिखावटी चरित्र करते हैं ॥ ६ ॥

एन सोना कनि प्रसुहि वैवाग्ने । जयपास देवन्ह भव पायो ॥ ७ ॥

रणकी शोम्मेके छिये प्रसुने अपनेको नागपाशमें बँधा लिया; किन्तु उठते देवताओंको बड़ा भय हुआ ॥ ७ ॥

दो०—गिरिज लखु नाम कपि मुनि काटहि भव पास ।

सो कि बंध तर शबह व्यापक विरल निवास ॥ ७३ ॥

[चिन्ती पड़ते हैं—] हे गिरिजे ! विष्णु नाम जपकर मुनि भव (कम्प-मृत्यु) की पाँधीको काट टाँटते हैं, वे सर्वव्यापक और विश्वनिवास (विश्वके आधार) प्रभु कहीं बन्धनमें आ सकते हैं ! ॥ ७३ ॥

चौ०—चरित राम के सयुध स्यानी । तर्क न बाहि बुद्धि बल बानी ॥

अस विचारि जे तब विरागी । राखहि अबाहि तर्क सब व्यापी ॥ १ ॥

हे भवानी ! श्रीरामजीकी हय खुश जेजयोंके निमग्नमें सुदि और बाणीके बलसे तर्क (निर्णय) नहीं किया जा सकता । ऐसा विचारकर जो लज्जानी और विरक्त पुरुष हैं वे सब तर्क (शंका) छोड़कर श्रीरामजीका मन्त्र ही करते हैं ॥ १ ॥

बनाकुल कष्टकु शीघ्र घनचर । पुनि या प्रसद कहइ दुखदा ॥

लामपंत कह सकु रहु ठाढ़ा । पुनि करि कहि मोघ अति याढ़ा ॥ २ ॥

मेघनादने सेनाको व्याकुल कर दिया । फिर वह फफट हो गया और दुर्बल कहने लगा । इसपर रामबानने कहा—अरे दुष्ट ! खड़ा रह । वह मुनकर उसे दहा मोघ बदा १

रुह जानि सठ छौटेई तोही । खोवेसि अथस पचरै मोही ॥

अस कहि तरल शिसुल चलाये । जामवंत कर गहि सोइ धायो ॥ ३ ॥

अरे मूर्ख ! मैंने पूरा जानकर तुझको छोड़ दिया था । अरे अथम ! अब तू मुझको सलकारने लगा है ! ऐसा कहकर उसने कमकता हुआ निश्चल चलया । रामबान् उसी निश्चलको हाथसे पकड़कर दौड़ा ॥ ३ ॥

मारिसि मेघनाद कै छाती । पर भूमि धूमित सुरचाटी ॥

पुनि विज्ञाप गहि जन किताये । गहि बहारि निज सठ देसरायो ॥ ४ ॥

और उसे मेघनादकी छातीपर दे मारा । वह देखत्योंका शत्रु पकर साकर पृथ्वी-पर गिर पड़ा । रामबानने फिर मोघमें भरकर पैर पकड़कर उसको धुगाया और पृथ्वी-पर पटककर उसे अपना कष्ट रिलालया ॥ ४ ॥

वर प्रसाद सो मनह न मस्त । तब गहि पर खंका पर बास ॥

इहाँ देवर्षि गङ्ग पड़ाये । राम समीप सपदि सो भायो ॥ ५ ॥

[निगूढ] वरदानके प्रसाप्ते वह अरे नहीं भया । तब रामबानने उसका पैर पकड़कर उसे संकापर पटक दिया । इसपर देवर्षि नारदजीने सबको मेला । वे दुरंत श्रीरामजीके प्राद या पहुँचे ॥ ५ ॥

॥ टी०—अगपति सम . धारि खाय माया खरा बहय ।

माया विषय भय खय हरये धानर लूथ ॥ ७४ (क) ॥

परित्रास गदगदी सब माया-छाँके उगूहोंको पकड़कर ला गये । तब वानरों-के हुंठ मायासे रहित होकर हर्षित हुए ॥ ७४ (क) ॥

गहि गिरि पदप, उपल मख धाम कीस रिताह ।

कले समीचर विकलतर गङ्ग पर खड़े पराह ॥ ७४ (ख) ॥

पर्वत, गुहा, परबर और मख धारण किने वानर कोषित होकर दौड़े । निताकर विशेष व्याकुल होकर भाग चले और भागकर सिमेर चढ़ गये ॥ ७४ (ख) ॥

बौ०—मेघनाद कै सुरक्ष छापी । गिरि किसेकि छाव बसि-कापी ॥

सुरक्ष गण्ड गिरिकर कंदर । कहीं जखत मख लान भव घरा ॥ १ ॥

मेघनादकी मूर्च्छा दूरी, [तब] गिताको देखकर उठे, नहीं धर्म छापी । मैं मलय (मलेय होनेको) बड़ा करूँ, ऐसा मनमें निश्चय करते वह दुरंत ओ० पर्वतकी गुफामें चला गया ॥ १ ॥

इहाँ विनीमन संघ विपन्न । सुखु मख सठ खलु उदास ॥

मेघनाद मख कष्ट जपामन । कठ अकली ऐव सतावन ॥ २ ॥

महाँ विनीमने वह कष्ट सिचारी [और श्रीरामकाजीसे कहा—] हे

अतुलनीय कलान् जह्यर प्रभो ! देवताओंको सजानेवाला दुष्ट, मायावी मेघनाद
अपवित्र यह कर रहा है ॥ २ ॥

औ प्रभु सिद्ध होइ सो पड़ाहि । नाथ बेनि पुनि जीति न जाइहि ॥

भुति खुपति भक्तिसय सुख गन्वा । बोले ब्रह्मादि कवि माना ॥ ३ ॥

हे प्रभो ! यदि वह यह सिद्ध हो पावेगा, तो हे नाथ ! फिर मेघनाद जल्दी नीता
जा सकेगा । यह सुनकर श्रीरघुनाथजीने बहुत दुःख महान और व्यभिचादि बहुत-से
बानरोंको बुलाना [और कहा—] ॥ ३ ॥

छछिमन संग जगु सख भाई । कहु विवस जग कर भाई ॥

गुह्य छछिमन सारेहु रम ओहो । देखि सभस ह्व ह्व जनि मोही ॥ ४ ॥

हे भाइयो ! सब लोग कलमके साथ जाओ और जाकर यहाँको विवस करो । हे
छछिमन ! संग्राममें तुम उठे जाना । देवताओंको भयभीत देखकर मुझे बड़ा दुःख है । ॥ ४ ॥

मारु छेहि कछ बुझि कछाई । बेहि छेहै मिथिचर सुपु भाई ॥

जानबँठ सुग्रीव विभीषण । सेव समेत रहैहु सीमित जन ॥ ५ ॥

हे भाई ! तुमने, उसके देखे कछ और बुझिके उपायसे माया, जिससे निष्ठाचरका
नाथ हो । हे काम्यवान्, सुग्रीव और विभीषण ! तुम तीनों बने सेनासमेत [इनके]
साथ रहना ॥ ५ ॥

सब सुधीर हीनि अनुसन्धन । कटि निर्धन कसि छाति सरसन ॥

प्रभु प्रताप हर करि रचबीस । बोले वन ह्व ह्व मिला गँगीरा ॥ ६ ॥

[इस प्रकार] सब श्रीरघुवीरने आज्ञा दी, सब काममें उत्कृष्ट बतकर और
घटुप बनाकर (बहाकर) रघुवीर भीष्मकनयकी प्रभुके प्रतापको हृदयमें धारण करके
मेघसे समस्त गम्भीर भागी बोले— ॥ ६ ॥

जो छेहि आज वनें पैहु आवी । ली खुपति सेवक न कहावी ॥

जो लख संकर कछि सझाई । कछि हर्षे खुबीर दोहाई ॥ ७ ॥

यदि मैं आज उठे बिना मारे जानें, तो श्रीरघुनाथजीका सेवक न कहलाऊँ ।
यदि ऐसी ही छद्म भी उससे सहमत करें तो भी श्रीरघुवीरकी दुहाई है । आज मैं उठे
मार ही बाँटूँगा ॥ ७ ॥

दो—रघुपति करन बह सिद्ध बनेह तुरंत वर्णन ।

भंगद नील मयंद गळ संग सुभट हनुमंत ॥ ७५ ॥

श्रीरघुनाथजीके वरकोंमें फिर नन्हाकर जेपान्तात श्रीलक्ष्मणजी तुरंत बहे । उनके
साथ भगद, नील, मयंद, गळ और हनुमान् आदि उत्तम बोल्लाये ॥ ७५ ॥

चौ—साह कछिन्ह सो देस देस । जाहुति देव छरि कछ मैसा ॥

कीन्ह कछिन्ह सय जग निर्धन । जग न उठइ सब करहि मर्ससा ॥ १ ॥

बानरोंने जाकर देखा कि वह वैठा हुआ खून और मैसिकी आहुति दे रहा है ।
बानरोंने सब यह निर्धन कर दिया । फिर भी जब वह नहीं उठा, सब ने ठट्ठी
प्रशंसा करने लगे ॥ १ ॥

तदपि न उठइ धौनिह कच जाई । लखनिह हवि हति कछे पचाई ॥

है किछु धाना कसि माये । कछ जई समानुब जागे ॥ २ ॥

इन्होंने भी वह न उठा, [तब] उन्होंने जानकर उसके बह पकड़े और लातों

मार-मारकर ने भाग चले । वह निश्चल खेजर दौड़ा, तब बानर भागे और वहाँ आ गये वहाँ आये लक्ष्मणजी खड़े थे ॥ २ ॥

भावा परम क्रोध कर मारा । गद्गै घोर रज फरहि धारा ॥

कोपि मस्तसुत अंगद धार । हति निश्चल सर भरिने गिरार ॥ ३ ॥

वह आत्यन्त क्रोधका मारा हुआ आवा और बार-बार मगड़ मगड़ करके गरजने लगा । मरति (हनुमान्) और अंगद क्रोध करके दौड़े । उन्होने छातीमें निश्चल मारकर दोनोंको भरतीभर गिरा दिया ॥ ३ ॥

प्रभु कहै छेदेसि सुक प्रचंड । सर हति धृत अर्धत मुग खंडा ॥

रति बहोरि मारति लुकराजा । हतिहि कोपि तेहि पाठ न धाजा ॥ ४ ॥

फिर उसने प्रभु श्रीलक्ष्मणजीपर प्रचण्ड निश्चल छोड़ा । अर्धत (लीलावतजी) ने बाण मारकर उसके दो डुकड़े कर दिये । हनुमान्जी और मुकराज अंगद फिर उठकर क्रोध करके उसे मारने लगे, पर उसे फोट न लगी ॥ ४ ॥

जिरे धीर रिपु नरह न मारा । तब जाना करि घोर चितारा ॥

आगत देखि मुद अमु काजर । लक्ष्मण छवे विविध कारका ॥ ५ ॥

रघु (मेघनाद) मरे नहीं मरता, वह देखकर अब घोर छोटे, तब वह घोर चिन्माइ करके दौड़ा । उसे मुद काजरी तरह आता देखकर लक्ष्मणजीने भयानक बाण छोड़े । देखेसि आगत, पवि सन जाना । तुरत अकट साक अंतरधाना ॥

विविध शेष करि करह करह । कर्णहुक प्रिय कर्णहु हुरि बाह ॥ ६ ॥

वज्रके समान बाणोंको आगे देखकर वह कुछ तुरंत भस्तरधान हो गया और फिर भोंदि-भोंदिके हम धारण करके मुद करने लगा । वह कभी प्रचंड होता या और कभी छिप जाय या ॥ ६ ॥

देखि अकथ रिपु हरये कीस । परम मुद तब अपद गहीसा ॥

लक्ष्मण मन कस मंत्र छपाया । हति पापिहि मैं बहुत केकावा ॥ ७ ॥

रघुको परागित न होता देखकर बानर बरे । तब लक्ष्मण (शेषजी) (लक्ष्मणजी) बहुत ही क्रोधित हुए । लक्ष्मणजीने मनमें यह विचार हुआ कि इस पापीको मैं बहुत पैला बुका [अब और अधिक खेजना अच्छा नहीं, अब यो श्रेष्ठता ही परदेना चाहिये]

हुमिरि कीसखधीस प्रतापा । सर संघाय कीस करि दाया ॥

छावा बल भास कर काया । मरती कर कपहु सब स्थाया ॥ ८ ॥

कीसकृति श्रीरामजीके प्रतापका कारण करके, लक्ष्मणजीने वीरोचित दर्प करके बाणका संधान किया । बाण छोड़ते ही उसकी छातीके बीचमें लगा । मरते समय उसने सब कष्ट त्याग दिया ॥ ८ ॥

दो०—रामानुज कहै रामु कहै बंस कहि छेदेसि प्राय ।

धन्य धन्य तब जननी कह संसद हनुमान ॥ ७६ ॥

रामके छोटे भाई लक्ष्मण कहें हैं । राम कहें हैं । ऐसा कहकर उसने बाण छोड़ दिये । अंगद और हनुमान् कहने लगे—वैरी मरत धन्य है, धन्य है [जो व लक्ष्मणजीके दायाँ मरा और मरते समय श्रीराम-लक्ष्मणके कारण करके तुने उनके नामोंका उच्चारण किया ।] ॥ ७६ ॥

चौ०—चिनु प्रकास हनुमान सखाये । फंम हार लखि मुनि जायो ॥

जहु मरन मुनि सुर गंधर्वा । यदि निराय बाप मन लखी ॥ १ ॥

हनुमान्जीने उसको बिना ही परीक्षणके उठा लिया और लम्बेके दरवानेपर रखकर
वे लौट आये । उसका मरना सुनकर देवता और गन्धर्व आदि सब विमानोंपर चढ़कर
आकाशमें आये ॥ १ ॥

राशि सुभन हुंभुगीं बज्जवहिं । अस्तित्वव्य विमल अमुगवहिं ॥

जय अमृत जय अमदाधार । हुम्ह प्रमुसम देवनिह निहारा ॥ २ ॥

हे पूज्य ब्रह्मावर जगद्देव बज्जते हैं और औरसुनायजीका निर्मल यक्ष गाते हैं ।
हे अनन्त । आपकी सय हो, हे अमदाधार । आपकी जय हो । हे प्रभो । आपने सब
देवताओंका [महात् विविधे] उद्धार किया ॥ २ ॥

अस्तुति करि सुर सिद्ध सिद्धाद् । अस्तिमन् कुर्यासिद्द पद्दि भाव ॥

सुठ च्छ सुवा दसानन अपही । मुकसित नवट परेठ महितवही ॥ ३ ॥

हेपता और सिद्ध स्तुति करके कहे गये, तब स्वामजी सुनके समुद्र भीरामजीके
पास जाये । रावणने क्यों ही पुनवचका सम्प्रसार सुन, त्यों ही वह मुर्छित होकर
पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३ ॥

मंदोदरी कहन कर । अही । तत्ता तावम बहु भीति पुकारी ॥

नगर सोम सब अग्रजुल सोचा । सकल कहहिं दलकंकर पोचा ॥ ४ ॥

मन्दोदरी छाती फेटी पीटकर और बहुत प्रकारसे पुकार-पुकारकर कहा भारी, विवेक
करने लगी । नगरके सब लोग जोकरे व्यस्त हो गये । सभी रावणको नीच कहने लगे ॥ ४ ॥

दो—तब दलकंठ विविधि विविध समुमार्ग सब नरि ।

तकर कर जयस सब देखहु इदं विचारि ॥ ७७ ॥

सब रावणने सब विप्लोके अनेकों प्रकारसे सम्झाया कि समस्त जगत्का यह
(इश्वर) रूप नाशवान्त है, इतरमें विचारकर देखो ॥ ७७ ॥

बौ—सिंहहि अवन उपदेस रावन । अपुन मंद कथा सुन पावन ॥

पर उपदेस कलक बहुतेरे । वे आपसहिं से भर न बनौरे ॥ १ ॥

रावणने उनको क्षमका उपदेश किया । वह सब से नीचा है, पर उसकी कथा
(बातें) द्रुम और पवित्र है । दूरमेंको उपदेश देनेमें तो बहुत लोग निपुण होते हैं ।
पर ऐसे लोग अधिक नहीं हैं जो उसके अनुसार आचरण भी करते हैं ॥ १ ॥

मिमा सिराणि भवद निजुसरा । कये नम्य कवि कारिहुं द्राष्ट ॥

सुमट बोलाहु दलकंठ बोला । रम समुल ज्ञा का मन बोका ॥ २ ॥

राव जीत मनी, उनेरा दुआ । रीत-वनर [फिर] चारों दरवानोंपर जा बटे ।
बोलाओंको बुलाकर दलमुल रावणने कहा—सुनो, मैंने अपने समुल जिसका मन
बोयाबोला है ॥ २ ॥

सो नवही कल जाट पछई । संतुष सिमुल जई न नमनई ॥

निज मुन बल में नमक ज्ञाना । देहमें बलव सो रिपु यदि जाया ॥ ३ ॥

अच्छा है वह अभी मान जाय । मुझमें लालच निमुल होने (भावने) में मछाई
नहीं है । मैंने अपनी क्षमकोंके कम्पर कैर बताया है । जो समु चढ़ जाया है, उसको
मैं [अपने ही] उत्तर दे दूँ ॥ ३ ॥

अस कहि अस्त वेन रम सज्जा । कये सकल ललक, बाजा ॥

जके नीर सय अमुकित, केसी । बनु कलक, से भीपी पासी ॥ ४ ॥

ऐसा कहकर उसने पानके लयान ऐन चम्पेसज्जा रम सज्जा । चरे शुहाक

(लड़ाईके) राजे करने लगे । तब अशुक्लीय बन्धान और ऐसे चले गये जो लड़की
आधी चली हो ॥ ४ ॥

अशुक्ल भूमि होहि छेदि फल । गन्धन कुच कल सर्व विसाल ॥ ५ ॥

उत सम अशुक्ल अशुक्ल होने लगे । पर जमी गुनागोंके बलक बढ़ गये
होनेसे रावण उन्हें गिनता नहीं है ॥ ५ ॥

छं०—अति गर्व गन्ध त सगुन अशुक्ल सचिदि अशुक्ल दाय ते ।

भट विरत रथ ते वाजि गल विह्वल गजार्जि साथ ते ।

गोमाय गीघ कराल सर रव खन बोल्हि अति शने ।

जनु कालदूत उलूक बोल्हि वचन परम भयावने ॥

अत्यन्त गर्वके कारण यह शकुन-अशुक्ल विचार नहीं करता । हथियार हाथसे
गिर रहे हैं । घोड़ा अपने गिर पड़ते हैं । घोड़े, हाथी धाव छोड़कर विचलते हुए भाग
जाते हैं । कराल, गीघ, शेर और बंदरे शब्द कर रहे हैं । बहुत अधिक कुत्ते दौल रहे
हैं । उलूक ऐसे भयानक शब्द कर रहे हैं, मानो कालके दूत हों (मृत्युका
संदेश सुना रहे हों)-।

दो०—साहि कि संपति सगुन सुम सपनेहुँ मन विभ्रम ।

भूत श्रेष्ठ रत मोहवस राम विमुक्त रति काम ॥ ७८ ॥

जो जीवोंके श्रेष्ठमें रत है, मोहके बंध हो रहा है, रामविमुक्त है और कामलक्ष्मी है,
उसको क्या कभी स्वप्नमें भी सम्पत्ति, सुम शकुन और चित्तकी धाम्नि हो सकती है ॥ ७८ ॥

बौ०—बसेउ विहारवर कलु अमरा । चतुरंगिणी मयी खु भाषा ॥

विनिधि भौंति बाह्य रथ नाग । विपुल कर पताक भव नाग ॥ १ ॥

राजपौत्री अगर ऐसा लकी । चतुरंगिणी सेनाकी बहुत-सी टुकड़ियाँ हैं । अनेकों प्रकार-
के बाहन, रथ और सवारियाँ हैं तथा बहुत-से रंगोंकी अनेकों पताकारों और झण्डों हैं ॥ १ ॥

जैसे मत्त गज लू लू भरे । प्रविष्ट कलु भक्त खु भरे ॥

बल बल विरदैव विनाय । कल सर बाबहि खु भाषा ॥ २ ॥

मत्तवासे हाथियोंके बहुत-से झुंड लगे । मानो बलसे प्रेरित हुए बलशुक्तके बाह्य
हों । रंग-विरंगे बाना बलम करनेवाले जीवोंके समूह हैं, जो युद्धमें बने धारदार हैं और
बहुत प्रकारकी भाषा बोलते हैं ॥ २ ॥

अति विविध बाहिनी विलची । और कल सेव खु सारी ॥

कल कल विनिधिभर सगरी । सुविध पचीधि कुन जगमगरी ॥ ३ ॥

अत्यन्त विविध बाह्य वीमल है । मानो और कलसे सेना सजारी हो । सेनाके
चलनेसे दिशाओंके हाथी लिगने लगे, समुद्र सुमित हो बने और परत लगमगने लगे ॥ ३ ॥

अरी रेख रवि कल छपई । कल वक्ति सगुना अकुलई ॥

पल्ल मिलाव धोर रव बाहहि । अल समन के पल खु गाबहि ॥ ४ ॥

हत्ती धूक उठी कि खूँ छि गये । [फिर लूँछ] पल एक राधा और पूखी
सकुल उठी । डोढ़ और नगादे मीथण ध्वनिते बज रहे हैं; जैसे अलकलके बादल
गरज रहे हैं ॥ ४ ॥

जेरि पचीरि कल सदनई । कल रव सुभट, सुलदाई ॥

जेरि कल धोर रव कलई । विल विल कल धोर लखई ॥ ५ ॥

भेरी, नगीरी (तुफ़ी) और जलनाईमें सोझावोंको सुन देनेवाला माक राग बन रहा है । सब वीर विद्वन्मद करते हैं और अपने-अपने बल-पौरुषप्रताप बखान कर रहे हैं ॥५॥

कहइ बसावन सुन्दर सुन्दर । मधुंहु भालु कपिन्ह के उठ ॥

हौ मरिहवै मूल हौ भाई ! बस कहि सन्मुख छैन रंगाई ॥ ६ ॥

रावणने कहा—दे उल्लास बोझाण्ये ! सुनो । तुम रीत-बानरोंके उठको मतलब बाल्ये । और मैं दोनो रावकुमार भाइयोंको भाईया । ऐसा कहकर उधने अपनी सेना सामने पचायी ॥ ६ ॥

बह सुनि सकल कपिन्ह जल बाई । बाप जरी राववीर बोहाई ॥ ७ ॥

जब सब बानरोंने वह शरार पायी, तब वे भीखुवीरकी दुहाई देते हुए बोले ॥७॥

छं—बाप बिसाल कराल मकंद माधु कराल समान से ।

मांघहुँ सपरफल उड़ाहि भूकर बृद्ध बानर बान ते ॥

बस बसल खेल मझाहुमाधुष सबल संक न मानहीं ।

जय राम रावम मज पज सुगराज सुअसु बखानहीं ॥

वे बिसाल और कालके समान कराल बानर-माधु बोले । मानो पंखवाले वर्षातक सदा उड़ रहे हों । वे अनेक स्थानों हैं । मज, रॉत, पर्वत और बड़े-बड़े वृक्ष ही उनके शयिभार हैं । वे बड़े बलवान् हैं और किसीका भी डर नहीं मानते । रावणकभी मतवाले हाथीके सिधे सिंहका भीरामकीका तन-नवकर करके वे उनके सुन्दर बहाका बखान करते हैं ।

बो—तुझ विनि जय अवकाश करि बिज बिज ओरी आनि ।

मिरे वीर हत रामहि उत रावमहि बखानि ॥ ७५ ॥

‘दोनों ओरके योद्धा तन-नवकर करके अपनी-अपनी ओरी बान (जुन) कर हथ भीखुनाथकीका और उधर रावणका बखान करके परस्पर मिट्ट मये ॥ ७५ ॥

‘बो—रावतु रबी बिज सुवीर । देखि विनीषण भयद कपीरा’

कपिक प्रीति मन ज संवेष्ट । बंदि जय कह सहित लनेहा ॥ १ ॥

रावणको रफर और भीरुवीरको बिज रफके देखकर विनीषण अधीर हो गये । प्रेम अधिक होनेसे उनके मनमें सन्देह हो गया [कि वे बिना रफके रावणको कैसे जीत सकेंगे] । श्रीरामकीका चरणोंकी कन्दल करके वे स्वेच्छपूर्वक कहने लगे ॥ १ ॥

राय न रय बहि लल पद जगज । केहि बिधि बिलव वीर बलवाका ॥

सुनेहु सखा कह सुमानिषाका । केहि जय होइ सो स्वंदय जाना ॥ २ ॥

दे नाम । अगले न रय है, न उन्मई रखा करनेवाला कबल है और न बूढ़े ही हैं । वह बलवान् वीर रावण किस प्रकार जीता व्यवसा ! सुमानिषाण भीरामकीने कहा—हे सखे ! सुनो, बिलवे क्या छोटी है, वह रय दूसरा ही है ॥ २ ॥

सौम्य धीरज केहि रय जगज । सख सौल पद जगज पताका ॥

बल निके हम पसहित धीरे । उम्र कुवा समल खु जोरे ॥ ३ ॥

धीर्य और मैत्र उस रफके पहिने हैं । सख और सौल (सदाचार) उसकी मजबूत धृति और फलप्रदा हैं । बल, शिष्ट, दम (इन्द्रियोंका बरमों होना) और परीषकार—ये चार उसके घोड़े हैं, जो कया, दया और सहायक्ये ओरीसे रफमें जोड़े हुए हैं । ३ ।

ईस सखतु सारणी सुजात । बिनिज कई संतोष कुषाका ॥

दान परसु भुवि सकि प्रपंच । पर निम्यान कसिन सोइका ॥ ४ ॥

ईश्वरका भजन ही [उस रथको चलावेवाला] चतुर सारथि है। वैराग्य ढाल है और सन्तोष तलवार है। इन फलका है, बुद्धि प्रचण्ड शक्ति है, ज्येष्ठ विद्वान कठिन धनुष है ।

अमल अचल ज्ञान श्रीव सम्मान । सम काम विरम सिद्धीमुख नामा ॥

कवच अमेव विद्य गुर गूला । एहि सम विजय उपाय व दूला ॥ ५ ॥

निर्मल (पाण्डित्य) और अचल (स्थिर) मन तरकछके समान है। शम (मनका वशमें होना) ; [अहिंसादि] वम और [शौचादि] नियम, वे बहुत-से बाण हैं। ब्राह्मणों और गुरुका पूजन अमेव कवच है। इसके समान विजयका दूसरा उपाय नहीं है ॥ ५ ॥

सखा धर्ममय अस्त्र रथ लाकें । जीतम कहैं व कतहुँ रिपुताकें ॥ ६ ॥

हे सखे ! ऐसा धर्ममय रथ जिसके हो उसके जिसे जीतनेको कहीं शत्रु ही नहीं है ॥ ६ ॥

दो०—महा अजय संसार रिपु ओति सकल सो वीर ।

जाकें मस रथ होइ इह सुमहु सख मतिधीर ॥ ८० (क) ॥

हे धीर बुद्धिवाले सखा ! सुनो, जिसके पास ऐसा इह रथ हो, वह वीर संसार (जन्म-मृत्यु) रूपी महान् दुर्बल शत्रुको भी जीत सकता है [राज्यकी तो बात ही क्या है] ॥ ८० (क) ॥

सुनि प्रभु वचन विमीलन हरषि गहे पद कंज ।

एहि मिस मोहि उपसेसेहु राम कृपा सुख पुंज ॥ ८० (ख) ॥

प्रभुके वचन सुनकर विमीलनीने हर्षित होकर उसके करणकमल पंकज [मो] [भीर कहा—] हे कृपा और सुखके ऊपर श्रीरामजी ! आपने इन्हीं बहाने मुझे [महा] उपदेश दिया ॥ ८० (ख) ॥

उत पचार दक्षकंधर इत अंगद हनुमान ।

करत निस्तार भाहु कपि करि निज विज प्रभु धाम ॥ ८० (ग) ॥

उपरसे रामन छुटकार रहा है और इधरसे अंगद और हनुमान्। राक्षस और रीछ-बानर अपने-अपने स्वामीकी बुझाई देकर ऊढ़ रहे हैं ॥ ८० (ग) ॥

चौ०—गुर प्रह्लादि सिद्ध मुनि नाम । देखत रथ वम चढ़े विमाना ॥

हमहु उमग रहे लेहि संका । देखत राम कसित रथ रंघा ॥ १ ॥

प्रह्ला आदि देखता और अनेकों सिद्ध तथा मुनि विमानोंपर चढ़े हुए आकाशसे गुल देस रहे हैं। [शिवजी कहते हैं—] हे उमा ! मैं भी उस समकर्म या और श्रीरामजीके रण-रंग (रणोत्साह) की छीला देख रहा था ॥ १ ॥

सुभट समर रस हुहु दिमि माने । कपि जयसील राम बल जावे ॥

एक एक सन मिरहि पक्षरहि । एकदह एक मर्दि अग्नि पारहि ॥ २ ॥

दोनों बोरके मोढ़ा रण-रसमें मगवाले हो रहे हैं। वानरोंको श्रीरामजीका बल है, इन्हें वे जयसील हैं (जीत रहे हैं)। एक दूसरेसे भिड़ते और लज्जकारते हैं और एक दूसरेको मरल-मरलकर घृष्णीकर ढाल देते हैं ॥ २ ॥

मारहि कारहि घरहि पलरहि । सीस छोरि सीमन्द सन मारहि ॥

उधर बिदारहि मुखा जपारहि । जहि पद अगनि पटक मर कारहि ॥ ३ ॥

वे मारते, काटते, पकड़ते और पलक देते हैं और सीर छेदकर उन्हीं सिरोंसे दूसरों को मारते हैं। पेट फाड़ते हैं, मुँहवाँ उखाड़ते हैं और बोलियोंको पैर पकड़कर घृष्णीकर पटक देते हैं ॥ ३ ॥

बिसिचर मठ महि गावहिं भाव । ऊपर छरि देहि बहु बाव ॥
 वीर बलीमुख लंब बिहदे । देखिबत बिमुख काल जनु कुदे ॥ १ ॥
 राक्षस बोझाओंको भाव पृथ्वीमें गाड़ देते हैं और ऊपरसे बहुत-सी बाढ़ डाल
 देते हैं । युद्धमें शत्रुओंसे विरुद्ध हुए वीर वानर ऐसे दिखायी पड़ते हैं मानो बहुत-से
 क्रोधित काल हों ॥ ४ ॥

सं०—कुन्हे कृतांत समान अपि तन स्रक्त सोनित राजहीं ।
 मर्दहिं निसावर कटक मठ चलवंत धन निमि गावहीं ॥
 मारहिं चपेटन्हि छटि दातन्हि काटि लातन्हि भीजहीं ।
 चिकरहिं मर्कट मालु छल बल कपहिं जेहि बल छीजहीं ॥ १ ॥

क्रोधित हुए कालके समान वे वानर खून बहते हुए शरीरोंसे शोणित हो रहे हैं ।
 वे बलवान् वीर राक्षसोंकी सेनाके बोझाओंको मछल्ये और मैबची तरह गरजते हैं ।
 झटकर चपेटोंसे मारते, दौंतीसे काटकर कटोंसे पीछे धाकते हैं । वानर-मालु चिंगाड़ते
 और ऐसा छल-बल करते हैं जिससे हुए राक्षस नष्ट हो जायें ॥ १ ॥

छरि गाल फाटहिं उर विशरहिं गल अँतावरि मेलहीं ।
 म्हादपति जलु विविध तनु धरि समर भंगन छेळहीं ॥
 धर माव काहु पछाव घोर गिरा गगन महि भरि रही ।
 जप राम जो तुल ते कुलिस कर कुलिस ते कर तुल सही ॥ २ ॥
 वे राक्षसोंके गाल फटकर फाड़ बाळते हैं, छाती चीर बाळते हैं और उनकी
 अँतवियों निकाळकर गलेमें जाल लेते हैं । वे वानर ऐसे देख पड़ते हैं मानो म्हादके
 स्वामी श्रीदक्षिण भगवान् अनेकों शरीर धारण करके युद्धके मैदानमें जीवा कर रहे हों ।
 पकड़ो, मारो, काटो, पछाड़ो आदि वीर शब्द भाषाएँ और पृथ्वीमें भर (छा)
 गये हैं । श्रीरामचन्द्रजीकी वय हो, जो सचमुच तुलसे वज्र और वज्रसे तुल कर देते हैं
 (निर्वैद्यको सबल और अलक्ष्मो निर्वल कर देते हैं) ॥ २ ॥

सं०—निज दल विचलत देखेसि वीस भुजई दस चाप ।

रथ बहिं बलेठ दसानन फिरहु फिरहु करि दाय ॥ ८१ ॥

अपनी सेनाकी विचलित होयी हुए देखा, तब वीस भुजाओंमें दस शत्रुप लेकर
 रावण रथपर बढ़कर गर्व करके लौटो, लौटो कहता हुआ चला ॥ ८१ ॥

सौ०—आपन परस कुद दसखर । समुख बले हूह वै बंदर ॥

गहि कर पाहुष दपल पहरा । दारेन्हि ता पर एवहिं सरा ॥ १ ॥

रावण अत्यन्त क्रोधित होकर रौड़ा । वानर कुँकर करते हुए [छटनेके लिये]
 उसके सामने चले । उन्होंने हाथोंमें वृक्ष, फर और पहाड़ लेकर रावणपर एक ही
 धम डाले ॥ १ ॥

छागहिं सैठ वज्र तब तासु । बंद बंद होइ फूटहिं भासु ॥

चला न जचल रहा रथ रौपो । रथ हुसैव रावण अति कोपी ॥ २ ॥

सबत उसके पल्लव शरीरमें छाते ही वरुण डुकड़े-डुकड़े होकर फूट जाते हैं ।
 अत्यन्त क्रोधी रावण रावण रथ रोक्कर जचल लया रहा : [अपने स्थानसे]
 जरा भी नहीं हिल ॥ २ ॥

इत बड अघटि दृष्टि अपि जोषा । जई लग भचड अति कोषा ॥

बले पराह जालु अपि वान । अहि अहि अंगद हनुमान ॥ ३ ॥

उत्ते बहुत ही श्लेष हुआ । यह हथर-उपर झलकर और ढपटकर वानर
योद्धाओंको मलने लगा । अनेकों वानर-मात्स्य थे मगद । हे हनुमान् ! रक्षा करो, रक्षा
करो [पुकारते हुए] भाग चले ॥ ३ ॥

पाहि पाहि खुशीर खोसाई । यह सब साह कल की गई ॥
तेहि देखे कपि सकल पराने । इसहुं चप हाथक संधाने ॥ ४ ॥
हे खुशीर ! हे गोसाईं ! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये । यह दुष्ट काजकी भूति
हने ला रहा है । उसने देखा कि सब वानर भाग बूटे । तब [राकषने] दसों
धनुर्वीर बाण सन्धान किये ॥ ४ ॥

ॐ—संघानि धनु सर निकर छदेसि उरग जिमि उदि लगहीं ।
रहे पुरि सर धरनी गमन दिसि विदिसि कहैं कपि भागहीं ॥
भयो अति कोलाहल निकल कपि दल मालु बोलहिं आतुरे ।
खुशीर कलना सिंधु आरत बंधु खन रच्छक हरे ॥
उसने धनुपर सन्धान करके बाणोंके समूह छोड़े । वे बाण सर्वकी तरफ उड़कर
जा लगते थे । पृथ्वी-आकाश और दिशा-विदिशा सर्वत्र बाण भर रहे हैं । वानर भागें
तो क्यों ! अत्यन्त फोलाहल मच गया ! वानर-मात्स्योंकी उमा ब्याकुल होकर आर्त
पुकार करने लगी—हे खुशीर ! हे कलनात्मज ! हे पीड़ितोंके बन्धु ! हे देवकीकी रक्षा
करके उनके दुःख हरनेवाले हरि !

श्री०—निज दल विकल देखि कटि कसि निर्वन चतु हाथ ।
लछिमन चले कुद होइ नार राम पद नाथ ॥ ८२ ॥
अपनी सेनाको ब्याकुल देखकर कमरमें तरकत कटकर और हाथमें चतुप लेकर
श्रीरघुनाथजीके चरणोंपर मस्तक नवाकर लक्ष्मणजी केचित होकर चले ॥ ८२ ॥
श्री०—दे प्रल क मागसि कपि भल । मोहि बिछोड़ु सोर मैं कल ॥
कोजत रहेई तोहि सुतधात्री । कातु विरासि दुबावई छाती ॥ १ ॥
[लक्ष्मणजीने पाठ आकर कहा—] अरे दुष्ट ! वानर-मात्स्योंको क्या मार रहा
है ? तुझे देख, मैं तेरा कल हूँ ! [राकषने कहा—] अरे मेरे पुत्रके पालक ! मैं तुझीकी
हैंद रहा था । आज तुझे मारकर [अपनी] छाती ठंडी करूँगा ॥ १ ॥
अस कहि छादेसि बाण प्रचंड । लछिमन किह सकल सत खंड ॥
कोटिन्ह भयुच रामन हरे । तिल प्रचण करि कति विधारे ॥ २ ॥
देखा कहकर उसने प्रचण्ड बाण छोड़े । लक्ष्मणजीने उसके सैकड़ों दुफड़े कर
बांटे । राकषने करौड़ों अश्व-सङ्घ चलाये । लक्ष्मणजीने उनको तिकके बराबर करके
काटकर हटा दिया ॥ २ ॥

पुनि निज बाणन्ह कीन्ह प्रहाण । स्पंदतु अति सारथी मारा ॥
सत सत सर मारे वस बाण । गिरिबुधन्ह बलु प्रकितहि प्रहाण ॥ ३ ॥
निर भगने बाणसे [उसपर] प्रहार किन्वा और [उसके] रथको तोड़कर
सारथिको मार डाला । [राकषने] दसों मस्तकोंमें चौ-चौ बाण मारे । वे छिद्रोंमें ऐसे
पैठ गये मानो पद्मके किसरीमें चर्च प्रवेश कर रहे हों ॥ ३ ॥
पुनि सत सर मारा उर माहीं । परेठ परनि एक सुधि कबु माहीं ॥
दल प्रणत पुनि सुखन लागी । छाविसि बल दीन्हि जो सौरी ॥ ४ ॥
फिर औ बाण उछड़ी छातीमे मारे । यह धनुर्वीर निर पडा उते कुल मो होय

न रहा । फिर मूर्छां बूझैर वह प्रकट राख्य उठा और उठने वह शक्ति बल्यपी
को ब्रह्माजीने उठे ही थी ॥ ४ ॥

ॐ—सो जहा दत्त प्रचंड सक्ति अमंत उर छापी सही ।

परयो वीर दिक्कल उठाव दसमुख अमुल बल महिमा रही ॥

ब्रह्मांड भवन विराज जहाँ एक सिर त्रिमि रख कनी ।

तेहि चह उठावन सुदु रावन जाब नहि त्रिभुजन धनी ॥

एह ब्रह्माजी दी हुई प्रबल शक्ति लक्ष्मणीके ठीक जगहमें छापी । वीर लक्ष्मणी
व्याकुल होकर फिर पड़े । तब रावण उन्हें उठाने लगा पर उनके बहुलि बलकी
महिमा नों ही रह गयी (अर्थात् हो गयी, वह उन्हें उठाने न सका) । जिनके एक ही
सिरपर ब्रह्माण्डकी भवन धूलके एक कमरे समान निरावता है, उन्हें मूर्छा रावण
उठाना आइया है । एह तीनों सुकनोके स्वामी लक्ष्मणीको नहीं जानता ।

दो—ऐसि एवमस्तुत धावड बोलत बचन कठोर ।

आकत कपिहि हम्यो तेहि सुधि प्रहार प्रघोर ॥ ८१ ॥

यह देखकर एवमस्तुत हनुमान्जी कठोर बचन बोलते हुए बौड़े । हनुमान्जीके
जाने ही रावणने उनपर अत्यन्त भयङ्कर टूटका प्रहार किया ॥ ८१ ॥

चौ—आतु देखि कपि भूमि न गिरा । उर सँभारि बहुव रिस भर ॥

हुठिका एक लाहि कपि सारा । पोट सैक अनु मर प्रहार ॥ १ ॥

हनुमान्जी बुझने देखकर रह गये, पृथ्वीपर गिरे नहीं । और फिर कोबसे भरे हुए
सँभारकर उठे । हनुमान्जीने रावणको एक घूँस मारा । वह ऐसा गिर पड़ा जैसे वज्रकी
मारते पर्वत गिरा ही ॥ १ ॥

तुलक मैं नहीरे से जाग्य । कपि उड बिपुल सराहन छाया ॥

बिग भिगमम पौखणिग मोही । ओ तैं बिकल खेसि सुरग्रीही ॥ २ ॥

मूर्छां भंग होनेपर फिर वह जगा और हनुमान्जीके बड़े भारी बलको सराहने
लग्य । [हनुमान्जीने कहा—] मैं पौखणको बिकार है, बिखार है और मुझे भी
बिकार है, जो है देवग्रीही ! तू अब भी जीता रह गया ॥ २ ॥

जस बहि कठिमम फट्टु कपि खान्यो । ऐसि दसवच बिसमय पाव्यो ॥

कह खुबीर समुह निजँ आठ । तुम्ह कृतोत अचक्य सुर भरा ॥ ३ ॥

ऐसा कहकर और लक्ष्मणीको उठाकर हनुमान्जी भीरधुनाथजीके पास ले आये ।
एह देखकर रावणको आश्चर्य हुआ । भीरधुनीने [लक्ष्मणीसे] कहा—दे भाई !
इदमे समसो, तुम जानके भी भयक और देवताओंके शयक हो ॥ ३ ॥

मुनत बचन उडि कैड कृष्ण । यहँ रावन सो सकति कराव ॥

हुनि कोदंड बाव गहि, जग्य । रिपु समुह नति भवतु भाए ॥ ४ ॥

ये वचन सुनते ही कृष्ण लक्ष्मणी उठ बैठे । यह कराल शक्ति आकाशकी पसी
गयी । लक्ष्मणी फिर धनुष-बाण लेकर बौड़े और नदी घाटवाले धनुके तामने आ पहुँचे ॥ ४ ॥

ॐ—आतुर बहोरि बिनीलि स्वंदम सुत हति जसकुल कियो ।

भिरयो धरनि दसकंधर विकलतर बान सत बेध्यो हियो ॥

सारणी दूसर घाति रथ तेहि तुरत लंका छै गयो ।

रघुबीर बंधु प्रताप पुंथ बहोरि प्रभु चरनन्हि नयो ॥

फिर उन्होंने नदी ही घाटवाले रावणके रक्ते चूर-भूँकर और शराविको मारकर

उठे (राक्षसों) व्यस्त कर दिया । सौ बाणों से उलझा हृदय वेध दिया, जिससे राजा अत्यन्त व्याकुल होकर पुष्पवीर मिर पड़ा । तब दूखी सारीय उठे रथमें जाकर तुरंत ही लंकाको लं गया । प्रतापके समूह श्रीकृष्णके भाई लक्ष्मणजीने फिर आकर प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया ।

सौ—उहाँ दसमन्त्र आगि करि करै खान कछु अन्य ।

राम विरोध विजय चाह सख हठ कस अति कय ॥ ८३ ॥

सौ (संक्षेप) राम वृत्ति अत्यन्त कुल यश करने लगा । वह पूर्ण और अत्यन्त अज्ञानी हठवश श्रीकृष्णजीके विरोध करने निबन्ध चाहता है ॥ ८४ ॥

सौ—एही विभीषण तब सुधि पाई । सखि बहू सुपतिहि पुनर्दई ॥

नाथ कहइ राजा एक लख । सिद्ध सौं बहि मरिहि अभाया ॥ १ ॥

सौ विभीषणजीने तब खबर पायी और तुरन्त आकर श्रीकृष्णजीको कह सुनायी कि हे नाथ ! राक्षस एक लख कर रहा है । उसके सिद्ध होनेपर वह अभाया खान ही नहीं मरेगा ॥ १ ॥

पुरुषहु नाथ धैरि बर बंदर । बहि विषस जान दसलीर ॥

मातृ दोल प्रभु सुख पछाड । हनुमदादि भंगद सब धाड ॥ २ ॥

हे नाथ ! हतंश पानर योद्धाओंको भेजिये; जो यज्ञका विध्वंस करें, जिससे राजा दुःखमें आवे । मातापुत्र होते ही प्रभुने वीर योद्धाओंको भेजा । हनुमान और भंगद आदि सब [प्रपात वीर] दौड़े ॥ २ ॥

सौतक बूढ़ि जई कपि खंभ । बड़े उद्यम सब्य कलंख ॥

जय कल अघाटीं सो देखा । सकल कपिन्ह आ कोष घिरेला ॥ ३ ॥

पानर सेकते ही दुष्टकर लंकापर आ पड़े और निर्भय राक्षसके महम्मों का झुंटे । यों ही उसको धम करते देखा, त्यों ही सब जानरोको बहुत खोष हुआ ॥ ३ ॥

रत ते निरज भाति सुह अभा । इहाँ आइ एक अखर लयाला ॥

नाथ कहि भंगद आत अत । जितय न सब स्मरथ मथ सता ॥ ४ ॥

[उन्हींके कदा—] अरे ओ निर्लभ ! लगभगि पर भय जाका और यहाँ जाकर बाहुका-हा ध्यान लगाकर देता है ! ऐसा बहूकर भंगदने व्यस्य लगी । पर उसने इनकी ओर देखा भी नहीं; उस दुष्टका मन लाम्बि अतुरक य ॥ ४ ॥

सौ—बहि कितव जय करि कोष कपि बहि दसम सखसह मातृही ।

भरि केस वारि निरजि बाहेर तेप्रिदीन पुकार्यी ॥

तब उठै कुद कुदत खम बहि चरन नाथर डार्य ।

बहि वीच कपिन्ह विरंस कल मस देखि मच महुँ आर्य ॥

सब उठने नहीं देखा; तब ककर कोष करते उठे खँतोसे एकद्वार [बाटने और] छातोसे मारने लगे । जिनको बाल पकड़कर धरते बाहर फेंक लगे, वे अत्यन्त ही दीन होकर पुकारने लगे । तब राजा बलके समान क्षोभित होकर उठा और जानरोंको पैर पकड़कर पठवने लगा । इसी बीचमें जानरोंमें कल मिश्रण कर डाले, यह देखकर वह मनमें हारने लगा (निरास होने लगा) ।

सौ—अन्य विधंसि कुसल कपि आए रघुपति फस ।

चलेन निरजवर कुद होइ त्यागि जितव कै जस ॥ ८५ ॥

रुद्र विषमं करके धर चतुर वक्रर रघुनाथजीके पास आ गये । तब राजन जीनेही भ्रष्टा छोड़कर क्रोधित होकर कहा ॥ ८५ ॥

चौ०—बलदा होहिं अति अमुन मरकर । बैदहिं गीष उदाह सिद्ध पर ॥

मरद कालवस काहु न भाव । फटेसि वज्रपाहु मुद्र मिसाना ॥ १ ॥

बलदे समय अकन्त भयङ्कर अमङ्गल (अपशकुन) होने लगे । गीष उद-उदकर उसके विरोंपर बैठने लगे । किन्तु वह कालके चर था, इससे किसी भी अपशकुनको नहीं मानता था । उसने कहा—मुद्रका संघ्र बबाओ ॥ १ ॥

बडी तमोचर मनी अपरा । बाहु गज रथ पदाति असपारा ॥

प्रभु सम्मुख थाप खड्ग हैं । सकल समूह अगल कहैं जैसे ॥ २ ॥

मिठाचरोंकी अपरा सेवा चली । ठलमें बहुल-से हाथी, रथ, मुद्राकार और पैदल हैं । २ कुछ प्रभुके सामने जैसे दोड़े, जैसे पतंगोंके समूह अगिनी मोर [चलनेके लिये] दौड़ते हैं ॥ २ ॥

इहाँ देवसिद्ध अस्तुति कीन्ही । दास्य त्रिपति इमहि वृद्धि गीन्ही ॥

अथ कति गगन कोलपाहु पढ़ी । भविस्य दुस्ति होसि वैवेही ॥ ३ ॥

इधर देवताओंने स्तुति की कि हे भीरुमजी ! इन्हे इनको दास्य दुष्प्रति दिये हैं । अथ आप इसे [अधिक] न लेनाइये । जानकीजी बहुत ही दुखी हो रही हैं ॥ ३ ॥

देव वचन सुनि प्रभु मुमुक्षुका । ठठि रघुवीर सुघारे कावा ॥

बडा बूढ़ छ मीनं माये । सोहहिं सुमन बीच विच गाये ॥ ४ ॥

देवताओंके वचन सुनकर प्रभु मुलकराये । फिर भीरुवीरने उठकर बाग सुघारे । महाकर जगद्योधि कोको कलकर बागे हुए हैं, उसके बीच-बीचमें पुष्प रूथे हुए घोमित हो रहे हैं ॥ ४ ॥

अथ नमन जातिह तहु धामा । अखिल लोक कोचकाभिरामा ॥

कठिना परिहर कसी निर्गम । कर कोदं कठिब सारंग ॥ ५ ॥

शाल मेघ और मेघके समान स्वास शरीरसके और सम्पूर्ण लोकोंके नेत्रोंको मानन्द देनेवाले हैं । प्रभुने कमलमें फेंदा तथा तरकस का लिया और हाथमें कठोर शार्ङ्गकनुष से किया ॥ ५ ॥

छ०—सारंग कर सुंदर निर्गम सिद्धीमुखाकर कटि कस्यो ।

मुजदं पीन मनोहरापत उर करासुर पद लस्यो ॥

कह वास सुकसी जवहिं प्रभु सर थाप कर फेरल लगे ।

ब्रह्मांड विगास कमठ अहि महि सिंधु मूषर हगमये ॥

प्रभुने हाथमें शार्ङ्गकनुष लेकर कमलमें बांधीके जान (अक्षय) सुंदर तरकस का लिया । उनके मुजदं पुष्ट हैं और मन्नेश्वर चौबी कमठीपर ब्राह्मण (बसुजी) के चरणका चिह्न घोमित है । सुकसीवासी कहते हैं, ज्यों ही प्रभु चतुर्पक्ष हाथमें लेकर फिरने लगे, त्यों ही ब्रह्मांड, दिशाओंके हाथी, कन्डक, सेवक, पुष्पी, समुद्र और पर्वत सभी डगमगा उठे ।

छ०—सोमा देखि हरषि सुर वरपहिं सुमन अपार ।

जय जय जय कल्यानिधि छवि वल गुन भागात् ॥ ८६ ॥

[मन्वान्त्री] सोमा देखकर देवता हरित होकर पुल्लेखी अक्षर वर्ण करते

ज्यो । और सोभा, शक्ति और बुद्धि के पास कल्याणनिधान प्रभुकी सब हो, जय हो, जय हो [ऐसा पुकारने लगे] ॥ ८६ ॥

चौ०—पहों धीप विस्तार धनी । कसमसात आई अति धनी ॥

देखि जले सज्जुस करि भट्टा प्रलम्बल के जलु धन धन ॥ १ ॥

रही बीचमें निशाचरोंकी अत्यन्त धनी सेना अग्रासनी हुई (आपसमें टकराती हुई) धनी । उसे देखकर जानर मोहा इत प्रकर [उलझे] खमने चले जैसे प्रलयकालके बादलोंके समूह हों ॥ १ ॥

यहु कृपान उत्तारि चर्मकहि । अनु दुई दिशि दामिनीं दर्मकहि ॥

गत रथ तुम जिह्वर कटोर । नलीहि भवहुं नखदक कोरा ॥ २ ॥

बहुतसे कृपा और तलवारों चमक रही हैं । मानो दसों दिशाओंमें विजयियों चमक रही हों । दायें, रथ और घोड़ोंका कटोर चिगाड़ ऐस लगा दे मानो बादल भयङ्कर गर्जन कर रहे हों ॥ २ ॥

करि हाँसु धिपुल नम छप । मगधे इंद्रजनु बप सुहाय ॥

ठठर धूरि भाबहुं जलधाय । पाव सुंद मै दृष्टि भयार ॥ ३ ॥

बानरोंकी बहुतसी पूँछें आकाशमें लगी हुई हैं । [वे ऐसी गोभा दे रही हैं] मानो मुन्दर दन्धनपु उड़र हुए हों । बूछ ऐसी उठ रही है मानो जलकी धारा हो । दालकी हँदाकी भयार दृष्टि हुई ॥ ३ ॥

हुते दिशि पर्यंत कहि प्रहारा । फलपाव अनु चारहि करा ॥

रघुपति कोषि पाव हरि जगई । पायल मै निशिचर समुदाई ॥ ४ ॥

दोनों ओरसे मोठा पर्यंतका प्रहार करते हैं । सबको बारबार बलपात हो रहा हो । श्रीरघुनाथजीने मोक्ष करके बानोंकी शरी लगा दी, [जिससे] राक्षसोंकी सेना पायल हो गयी ॥ ४ ॥

कामल चान धीर धिक्करहीं । दुर्मि दुर्मि चई तई अति परहीं ॥

सपदि सैक जनु निर्हार भारी । सोमति सरि कावर भयकारी ॥ ५ ॥

धान लगाते ही नीर नीलसर कर उठते हैं और चकर खा खाकर जहाँ-जहाँ पृथ्वीपर गिर पड़ते हैं । उनके शरीरोंमें ऐसे लून लू रहा है मानो पर्यंतके भारी सरनौठे जल लू रहा हो । इस प्रकार इलोमेंमें भय उत्पन्न करनेवाली बधिरकी सदी लू चली ॥ ५ ॥

क०—कावर भयंकर बधिर सरिता चली परम भयावली ।

बोड कुल दल रथ रेत चक्र भवर्त बहति भयावली ॥

जलजंतु गज पक्षर तुम सर विविध बाहुन को गले ।

सर सक्ति सोमर सप चाप तरंग चर्म कमल घने ॥

उपोंकोंको मय उपजानेवाली अत्यन्त अपवित्र रक्तकी नदी वह चली । दोनों इत उनके दोनों किनारे हैं । रथ सेव है और पक्षिने गँवर हैं । वह नदी बहुत भयावली वह रही है । हाथी, पैदाब, घोड़े, गधे तथा अन्यो स्वारियों ही, सिनकी गिनती कौन करे, नदीके जल-जनु हैं । नाथ, शक्ति और सोमर सों हैं अनुप तरंग हैं और दाल बहुतसे कपुते हैं ।

दो०—नीर पर्यहि अनु तीर तर भजा वहु बह फेल ।

कावर देखि डरहि तई सुमदन्ध के मत चेच ॥ ८७ ॥

नीर पृथ्वीपर इत तरह गिर गये हैं, मनो नदी-किनारेके लू बह रहे हों ।

बहुत-ही मजा वह रही है, वही पेन है। डरलेक नहीं इसे देखकर डरते हैं, वहाँ उत्तम बोझाओंके मनमें सुख होता है ॥ ८७ ॥

चौ०—मजहि भूत पिशाच बेतल्लख। प्रमथ मझ झोटिग कराका ॥

काक कंक लै मुन उदाई। एक ते छीनि एक लै खाई ॥ १ ॥

भूत, पिशाच और बेतल्लख बड़े-बड़े झोटोंवाले महान् भयङ्कर झोटिंग और प्रमथ (शिक्काण) उच नदीमें खान करते हैं। कोए और पील भुजाएँ लेकर उड़ते हैं और एक दूसरेसे छीनकर खा जाते हैं ॥ १ ॥

एक कइहि बेसिद सीधई। सगु सुम्हार परिज न जाई ॥

कहाँत मठ बाणल लद गिरे। नई तई मनुहु अर्धजल परे ॥ २ ॥

एक (कोई) कहते हैं, भरे नूतों। ऐसी कही (बहुमानत) है; फिर भी दुम्हारी दरिद्रता नहीं जाती। बाणल बोझा लट्ठपर बड़े कराह रहे हैं, मानो वहाँ-तहाँ अर्धजल (वे व्यक्ति जो मरतेके समय बाधे अन्धमे चलते जाते हैं) पड़े हों ॥ २ ॥

लैबहि गीष मीत लद भए। बनु ईसी खेलत चित दए ॥

बहु मठ कइहि चंदे खग जाई। बनु बाबरी खेलहि सरि माई ॥ ३ ॥

गीष मीतें खींच रहे हैं, मानो मछलीमार नदी-तटपरसे चिच लगाये हुए (भ्यान्स होकर) बंसी खेल रहे हों (बंसीसे मछली पकड़ रहे हों)। बहुत-से बोझा बड़े जा रहे हैं और पक्षी तटपर बड़े बड़े जा रहे हैं। मानो वे नदीमें नाभरि (नौकाप्रीया) खेल रहे हों ॥ ३ ॥

योगिनि भरि भरि कम्पन संचहि। भूत पिशाच बधू नम गंचहि ॥

मठ कपाल कस्ताक बजावहि। चार्हुंझा बाना बिधि गावहि ॥ ४ ॥

योगिनिषों कम्पनमें भर-भरकर लून जमा कर रही हैं। भूत-पिशाचोंकी क्रिया आकाशमें नाच रही हैं। चार्हुंझाएँ बोझाओंकी खोपड़ियोंका करताल बजा रही हैं और नाना प्रकारसे गा रही हैं ॥ ४ ॥

गंडुक भिन्न कटक कइहि। छाहि हुकाहि अकाहि दपइहि ॥

कोटिन्ह रंड मुंड बिलु सोझहि। सीस परे महि जय जय बोझहि ॥ ५ ॥

गीदड़ोंके समूह कटक-कटक शब्द करते हुए धुरधुरीको फटके, लाते, हुकाँ-हुकाँ करते और पैठ भर जानेपर एक दूसरेको झटते हैं। करोड़ों बड़ बिना सिरके धूम रहे हैं। और सिर धृष्टीपर फड़े जय-जय बोल रहे हैं ॥ ५ ॥

छं०—बोझहि जो जय जय मुंड रंड प्रथंढ सिर बिलु आवहीं।

छप्परिन्ह सम्म मलुज्जि जुज्जहि सुम्भट भटन्ह दहावहीं ॥

धानर निस्तत्तर निकर मईहि राम वल दणित भए।

संग्राम अंगन सुम्भट सोवहि राम सर निकरिन्ह हए ॥

मुण्ड (कटे सिर) जय-जय बोल्ते हैं और प्रचण्ड दम्भ (वह) बिना सिरके दौड़ते हैं। पक्षी खोपड़ियोंमें उल्लास-उल्लासकर परस्पर लड़े मरते हैं; उत्तम बोझा दूसरे बोझाओंको दबा रहे है। श्रीरामकन्यकी बल्यो धर्मित हुए धानर राक्षसोंके झुंडोंको मथले ढालते हैं। श्रीरामजीके वाणसमूहोंसे भरे हुए बोझा लबाहोंके मैदानमें छो रहे हैं।

दो०—रावन हवर्च विचार मा निस्सिधर संसार।

मैं अकेल कपि मालु बहु माथ कर्षे अपार ॥ ८८ ॥

रावणने हृदयमे विचारत कि राक्षसीस नान्न हो गया है। मैं अकेला हूँ और वानर-भाइ बहुत हैं, इसलिये मैं जब अन्न मंगा लूँ ॥ ८८ ॥

सौ०—देवन्द प्रसुद्धि पकड़ें देखा। अन्न घर कति खोस निसेष ॥

सुरपति विन रय सुलत पश्य ॥ इष सहित सातलि है क्षमा ॥ १ ॥

देवताओंने प्रसुद्धि पैदल (निज सवारिके बुद्ध करते) देखा, तो उनके हृदयमें यदा भारी क्षोभ (दुःख) उत्पन्न हुआ। [फिर नन्ध था] इन्द्रने दूरत अपना रथ भेज दिया। [उसका समधि] यत्तनि हर्षके लय उसे ले आया ॥ १ ॥

तेज पुंज रथ दिव्य अनूत। हरषि चढ़े कोसलपुर मूषा ॥

चंचल सुष मनोहर खारी। अन्न कमर मग सम गतिकारी ॥ २ ॥

उस दिव्य अनुपम और तेजके पुंज (तेजोमय) रथपर कोसलपुरीके राजा भीरुमचन्द्रजी हर्षित होकर चढ़े। उसमें चार चञ्चल, मनोहर, मगर, अन्न और मनकी गतिके समान शीघ्र चलनेवाले (देखोकरके) बोढ़े जुते थे ॥ २ ॥

रथाकृष्ट रघुनाथहि देखी। वाए कपि बहुत पाह बिदेसी ॥

हरी न जाइ कपिन्द है मारी। तब रावन माथा बिसारी ॥ ३ ॥

भीरुनाथजीको रथपर चढ़े देखकर वानर विशेष नष्ट पाकर रोढ़े। वानरोंकी मार सही नहीं जाती। तब रावणने मास फैलायी ॥ ३ ॥

सो माथा रघुनाथहि बाँची। लछिमन कपिन्द सो मारी लौंसी ॥

देखी कपिन्द बिसावर अनी। अनुस सहित बहु कोसलपुरी ॥ ४ ॥

एक भीरुवीरके ही पर माथा नहीं लगी। सब वानरोंने और लक्ष्मणजीने भी उस माथाको सब मग लिया। वानरोंने राक्षसी सेनामें माई लक्ष्मणजीवहित बहुत-से रामोंको देखा ॥ ४ ॥

स०—बहु राम लछिमन देखि मफैट भाबु मग कति जपबारे।

जनु, बिध लिखित समेत लछिमन जहँ सो तहँ चितबाहि करे ॥

निज सेन शक्ति विजयेकि हँसि सर वाए सजि कोसल भरी ॥

माथा हरी हरि-निमिय भई हरपी सकल मफैट कनी ॥

बहुत-से राम-लक्ष्मण देखकर वानर-भाइ मनमें गिच्छा करते बहुत ही डर गये। लक्ष्मणजीवहित से मनने चिन्तिले-से जहाँ-के-तहाँ चढ़े देखने लगे। अपनी सेनाको भाव्यवचनित देखकर कोसलपति मगवान् हरि (दुःखोंके हरनेवाले भीरुमजी) ने हँसकर अनुपम भाग चढाकर, लक्ष्मणों सारी माथा हर ली। वानरोंकी सारी सेना हर्षित हो गयी।

स०—बहुदि राम सब तब चितह बोले वचन मैरीर।

इषसुद्ध देखहु सकल अमित रय कति वीर ॥ ८९ ॥

फिर भीरुमजी सखी और देखकर रामजी वचन बोले-दे जीते। तुम सब बहुत ही मग गये हो, इसलिये अब [मेरा और रक्षणा] इन्द्र-बुद्ध देखो ॥ ८९ ॥

सौ०—अस कहि रय रघुनाथ जलवा। बिध चरन पैकब सिद्ध चषा ॥

तब लैस प्रोच सर जलवा। कर्षत कर्षत अनुसुत चषा ॥ १ ॥

देता कहकर भीरुनाथजीने ब्राह्मणोंके चरणकमलोंमें फिर नवाधा और फिर रय चलाया। तब रावणके हृदयमें प्रोच छा गया और वह गरजत तब लक्ष्मणराज हुआ सामने रोढ़ा ॥ १ ॥

जीतेहु जे भट संलग्न माहीं । सुनु अपस मैं तिन्ह सम नाहीं ॥

रावन नाम जयत बस जाना । लोकस जहँ बंदीखाना ॥ २ ॥

[उसने कहा—] अरे तपस्वी ! सुनो, तुमने युद्धमें दिन योद्धाओंको जीता है, मैं उनके समान नहीं हूँ । मेरा नाम रावन है, मेरा बस सारा जगत् जानता है, लोक-पालक किरके कैदखानेमें पड़े हैं ॥ २ ॥

कर दूषन विराध कुम्ह मगर । जेहेनु न्याय हव बाकि बिचार ॥

विसिचर निरन सुभट संधारेहु । कुम्हमन धनवादिह मारेहु ॥ ३ ॥

तुमने सारा दूषण और विराधको मारा ! जेचारे कलिय व्याधकी तरह बध किया । बड़े-बड़े राक्षस योद्धाओंके समूहका संहार बिना और कुम्हकर्म तथा मेघनाद-को भी मारा ॥ ३ ॥

भाहू बघद सहु जेई निवाही । जौ रव बूध भाकि गई जाही ॥

भाहू करई सहु बक हवाके । पौहु कठिन रावन के पाई ॥ ४ ॥

अरे रावा ! यदि तुम रणसे भाग न गये तो आज मैं [वह] सारा बैर निकाल लूँगा । आज मैं तुम्हें निम्न ही कालके हवाके कर दूँगा । कठिन रावणके पासे पड़े हो ॥ ४ ॥

सुनि दुर्बचन काकजस जाना । बिहँसि बचन कह कृपानिधान ॥

सत्य सत्य सब तब प्रमुखाई । जस्यसि जनि देखाव मनुसाई ॥ ५ ॥

रावणके दुर्बचन सुनकर और उसे काकजस जान कृपानिधान भीरामजीने हँस-कर यह वचन कहा—तुम्हारी सारी प्रमुखा, वैसा तुम कहते हो, विस्तृत सच है । पर अब ज्ययं ब्रह्मद न करो, अपना पुत्रवार्थ दिखलाओ ॥ ५ ॥

ॐ—जनि लक्ष्मण करि सुजसु भासहि मीति सुगदि करहि उमा ।

संतार भई पूरव भिबिध पाटल रत्नाल पनस लमा ॥

एक सुममय एक सुमन-फल एक लख केवल छागही ।

एक कहहि कहहि करहि अपर एक करहि कहत न बागही ॥

जयं वक्रवाद करके अपने सुन्दर वक्ता नाश न करो । समा करना, तुम्हें नीति सुनावा हूँ, सुनो ! संसारमें तीन प्रकारके पुरुष होते हैं—बाल (दुर्जन), आम और कठहल्की समान । एक (पाटल) फल देते हैं, एक (आम) फल और फल दोनों देते हैं और एक (कठहल्की) में केवल कल ही लगते हैं । इसी प्रकार [पुरुषोंमें] एक कहते हैं [करते नहीं], दूसरे कहते और करते भी हैं और एक (तीखे) केवल करते हैं, पर वाणीसे कहते नहीं ।

यो—राम वचन सुनि बिहँस मोहि सिखावत भ्यान ।

वयस करत नहि तब जे अब लगये प्रिय प्रान ॥ १० ॥

भीरामजीके वचन सुनकर वह लज हँस [और बोले—] मुझे जान सिखाते हो ! उस समय बैर करते तो नहीं होते, अब प्रण प्यारे लग रहे हैं ॥ १० ॥

चौ—कहि दुर्बचन कुद वल्लभ । कुनिस समान जग छावै सर ॥

मानाकर सिद्धिमुख पाए । विसि कहबिदिसि जग महि छाप ॥ ११ ॥

दुर्बचन कहकर रावण मुद होकर वल्लभ समान राज छोड़ने लगा । अनेकों आकार-के बाण दौड़े और विष, विदिसा तथा आप्लाव और पृथ्वीमें उन कण्ड छा गये ॥ ११ ॥

पाक सर छेदित खुकीछ । छत्र गहुँ करे सिखाकर तीरा ॥
छविनि सीम सीक सिद्धिमाई । खन छंग प्रभु फेरि बलाई ॥ १ ॥
भीरपुवीरने यथिनाथ छोड़ा, [निघरे] राखके । ख बाण क्षमगरमें भूम हो
गये । तब उसने सिद्धिमाईकर तीक्ष्ण शक्ति छोड़ी । [किन्तु] श्रीरामचन्द्रजीने उसको
बाणके साथ वापस भेज दिया ॥ २ ॥

खेटिन्ह बाण निखल बहारै । किन्तु प्रभु प्रभु काटि निवारै ॥
निफट होहि रवन सर कैसैं । खन के लख मनोरथ कैसैं ॥ ३ ॥
बह करोड़ों फट और निखल चलाव है । परन्तु प्रभु उन्हें बिना ही परिभ्रम
काटकर हटा देते हैं । रावणके बाण निज प्रकार निफट होते हैं ॥ ३ ॥ कुछ मनुष्यके
रथ मनोरथ ॥ ३ ॥

तब सत खन सारथी मारेसि । परेन सुनि बह छत्र चुकोसि ॥
रथ छुप करि मृत रहवा । तब प्रभु परम श्रेष्ठ कहुँ पावा ॥ ४ ॥
तब उसने भीरपुवीरके सारथिके सौ नाथ मारे । वह श्रीरामजीकी गव पुकार-
कर पृथ्वीपर पिर पड़ा । श्रीरामजीने क्रुश करके सारथिको उठाया । तब प्रभु अत्यन्त
क्रोधको भास हुए ॥ ४ ॥

छं—भय, डर, डर विस्तार खुपति शोच सायक कसमसे ।
कोरस धुनि अति बह धुनि मनुष्य सब मासत भसे ॥
मनोवरी सर कंठ कंठति कसत भू भूबर भसे ।
शिखरहि विगमन वसत गहि महि रेकि कोटुक सुर हँसे ॥
पुत्रमें धनुके विस्तार श्रीरामपुत्री ओषित हुए, तब तरजमें बाण कतनगने
लगे (बाहर निकलनेकी जाहूर होने लगे) । उनके धनुषका अत्यन्त प्रचण्ड शब्द
(दङ्कार) सुनकर मनुष्यमात्री सब राखस बासवदा हो गये (अस्मत् प्रवर्गीत हो गये) ।
मन्त्रीवरीका हृदय कँप उठा; सज्जन, कच्छप, पृथ्वी और कसै बर गये । शिखरोंके
शिखी पृथ्वीकी दौंतीसे पकड़कर निगलने लगे । वह कोटुक देखकर देखा होते ।

छं—ताम्रेड बाण भजन उभि छँदै सिद्धि करार ।
राम मारमन गन, लखे सखलदास अनु ग्यास ॥ ११ ॥
धनुषको कान्तक तावकर श्रीरामचन्द्रजीने भवानक बाण छोड़े । श्रीरामजीके
बाणसमूह ऐसे बड़े भानो र्व, अल्लहाते (बहाराते) हुए जा रहे ॥ ११ ॥

छं—बले धान, सबच्छ लख उरवा । प्रभमहि ह्वेन सखी दुला ॥
रथ धिर्भानि हसि कैतु पताका । यत्न, अति अंतर बह पाका ॥ १२ ॥
बाण ऐसे चले भानो फलपाके र्व उड़ रहे हैं । उन्होंने पहले सारथी और
बोहोंको मार डाला । फिर राखी धूर-धूर करके ध्वजा और पञ्चाङ्गोंको गिरा दिया ।
श्व रावण नहे मोरते गरज, पर भीतरसे उसका बह थक गया था ॥ १२ ॥

लख भान रथ गहि निरिखलवा । जस सख छँदैसि निधि पाका ॥
विजल होहि सय सद्यम लखे । निधि परहोष निरुत मनसा के ॥ १३ ॥
दूरत दूधरे रथपर चढ़कर सिद्धिमाईर उरने नामा प्रकारके मज-राज छोड़े । उसके
क उद्योग ॥ ही निष्कल हो रहे हैं जैसे परहोष लगे हुए चित्तवाने मनुष्यके होते हैं ॥ १३ ॥
तब रावण दस लख चलावा । बाणि गहि महि मरि गिरवा ॥
धुरग वडाह कोपि खुलकक । कोपि सतसय छँति सखक ॥ १४ ॥

तब रावणने दस प्रियुछ चलाये और श्रीरामजीके चारों घोड़ोंको मारकर पृथ्वीपर गिरा दिया । घोड़ोंको उठाकर औरसुनावजीने ओष करके वनूष लीककर बाण छोड़े ॥ ३ ॥

रावण सिर ससेज बबचारी । चलि खुबीर सिलीमुख घारी ॥

दस दस बाज मल्ल दस मारे । निसरि गए चले रुधिर पनारे ॥ ४ ॥

रावणके सिरस्त्री कमलपत्रमें विकरण करनेवाले श्रीरघुवीरके बाणरूपी भ्रमरोकी पंक्ति चली । श्रीरामचन्द्रजीने उसके दलों सिरोंमें दस-दस बाण मारे, जो बार-बार हो गये और सिरोंसे रक्तके पनाले बह चले ॥ ४ ॥

रावण रुधिर धावत बलवान् । प्रभु पुनि कृत वनु सर संधान ॥

तीस तीर रघुवीर बधारे । मुचन्दि समेत तीस महि पारे ॥ ५ ॥

रुधिर बहते हुए ही चलावन् रावण दौड़ा । प्रभुने फिर वनूपर बाण सन्धान किया । श्रीरघुवीरने तीस बाण मारे और तीसों भुजाओंसमेत दलों सिर काटकर पृथ्वी-पर गिरा दिये ॥ ५ ॥

काटतहीं पुनि गए बलीये । राम बहोरि मुखा सिर छीने ॥

प्रभु बहु पार बाहु सिर हए । कटत छटिति पुनि नूतन मए ॥ ६ ॥

[सिर और हाथ] काटते ही फिर नये हो गये । श्रीरामजीने फिर भुजाओं और सिरोंको काट गिराया । इस तरह प्रभुने बहुत बार भुजाएँ और सिर काटे । पण्डु काटते ही वे नूतन सिर नये हो गये ॥ ६ ॥

पुनि पुनि प्रभु काटत भुज सीस । अति कौतुकी कोसलजीस ॥

रहे काह नम सिर नर पाहु । मानहुँ अमित केतु नर राहु ॥ ७ ॥

प्रभु बार-बार उचकी भुजा और सिरोंको काट रहे हैं; क्योंकि कोसलपति श्रीरामजी रहे कौतुकी हैं । आकाशमें सिर और बाहु ऐसे छा गये हैं, मानो असंख्य केतु और राहु ही ॥ ७ ॥

छं—जहु राहु केतु अनेक बरं पय सखत सोनित भावहीं ।

रघुवीर तीर प्रचंड लागहि भूमि गिरत न पावहीं ॥

एक एक सर सिर निकर छेदे नम उद्धत भूमि सोहहीं ।

जहु कोपि दिगकर कर निकर जहैं तहैं विधुनुद पोहहीं ॥

माने अनेकों राहु और केतु रुधिर बहाते हुए आकाशमेंसे दौड़ रहे हैं । श्रीरघुवीरके प्रचंड बाणोंके [बार-बार] लगनेसे वे पृथ्वीपर गिरने नहीं पाते । एक-एक बाणसे समूह-के-समूह सिर छिदे हुए आकाशमें उड़ते ऐसे घोमा दे रहे हैं मानो धूर्तकी किरणें ओष करते जहाँ-जहाँ राहुओंको भिरो रही हों ।

दो—जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर तिमि तिमि होहि अपार ।

सेवत विषय विषय जिमि नित नित नूतन मार ॥ ९२ ॥

जैसे-जैसे प्रभु उसके सिरोंको काटते हैं, वैसे-वैसे-वैसे वे अपार होते जाते हैं । जैसे विषयोंका सेवन करनेसे भ्रम (उन्हें मोहनेकी इच्छा) दिने प्रति-दिन नया-नया बढ़ता जाता है ॥ ९२ ॥

सौ—दसमुख देखि सिन्द के बादी । निरत मरन जहैं रित मादी ॥

गर्जेत मूढ महा अभिमानी । पापत दसहु सखलन दानी ॥ ९३ ॥

सिरोंकी बाढ़ देखकर रावणको अपना मरण मूढ तथा और बड़ा राक्षस कोष हुआ । वह महान् अभिमानी मूर्ख गरज और दसों वनूषोंको छानकर बोका ॥ ९३ ॥

समर भूमि दसकंधर कोण्यो । सरणि यम रघुपति तब लोण्यो ॥
 दंड कृक तब देखि न परेक । जनु निहार गहुँ दिनकर सुरेक ॥ २ ॥
 रणभूमिमें रावणने क्रोध किया और प्राण परखाकर भीरुपुतापत्नीके रथको ठक
 दिया । एक दण्ड (घड़ी) तक रथ दिसल्ययी न पड़ा, मनो कुहनेमें एवं छिप गया हो । १ ।
 हाहाकार सुनह जव कोन्हा । तब प्रभु कोपि क्रूरमुक लौन्हा ॥
 सर निवारि रिपु के सिर काटे । ते दिसि विदिसि गम्यव मदि पाटे ॥ ३ ॥
 जब देवताओंने हाहाकार किया, तब प्रभुने क्रोध करके मनुष उठाया । और
 शत्रुके बाणोंको हटाकर उन्होंने शत्रुके सिर काटे और उनसे दिश-विदिश, आकाश
 और पृथ्वी सबको घाट दिया ॥ ३ ॥

काटे सिर यम सारथ घावहिं । जव जव धुनि करि मय उपजावहिं ॥
 कहैं लछिमन सुग्रीव कभीस । कहैं रघुवीर कोसलाधीसा ॥ ४ ॥
 काटे हुए सिर आकाशमार्गसे होकर हैं और जव-जवकी ध्वनि करके मय उत्पन्न
 करते हैं । लक्ष्मण और वानरराज सुग्रीव कहों हैं ? कोसलासि रघुवीर कहों हैं ? ॥ ४ ॥
 छ०—कहैं रामु कहि सिर निकर धाय देखि मरकट मजि चले ।
 संशामि धनु रघुवंसमनि हैंसि सरन्हि सिर बेधे मले ॥
 सिर मालिका कर काष्ठिका गदि बूद बूदन्हि बहु मिलीं ।
 कारि यहिर सरि मजनु मनहुँ संग्राम बट पूजन कलीं ॥
 राम कहों हैं ? यह कहकर सिरोंके सबूह दौड़े, उन्हें बैलकार बनार भाग
 चले । तब धनुष सन्धान करके रघुकुलमणि भीरुमन्त्रीने हैंकर बाणोंसे उन सिरोंको
 मजीमोति बेष डाला । हाथोंमें गुण्डोंकी मल्लएँ लेकर बहुत-सी कालिकाएँ छुट-झी-छुट
 मिलकर एकही हुई और वे यहिरझी जमीमें ज्ञान करके कलीं । मनो संग्रामरत्नी
 बटहुसकी पूजा करने जा रही हैं ।

दो०—धुनि दसकंड कुन्द होइ लौंड़ी सकि प्रचंड ।
 चली विभीषण सम्मुख ,मनहुँ काष्ठ कर दंड ॥ १३ ॥
 फिर रावणने क्रोधित होकर प्रचंड, शक्ति छोड़ी । वह विभीषणके सामने ऐसी
 चली ॥ काष्ठ (सम्राज) का दण्ड हो ॥ १३ ॥
 चौ०—आगत बैधि सकि अति घोर । प्रवृत्तरति अजय पन भौरा ॥
 गुप्त विभीषण पाछें मेला । सम्मुख राम खड़े खड़े सेला ॥ १ ॥
 अत्यन्त भयानक शक्तिको आती देखा और वह निश्चयकर कि मेरा प्रण क्षरणगत-
 के दुःखका नाश करना है, भीरुमन्त्रीने तुरंत ही विभीषणको पीछे कर लिया और
 सामने होकर वह शक्ति सर्व सदा थी ॥ १ ॥

लागि सकि मुखज मनु गहैं । प्रभु कृप लेक सुलभ निकसई ॥
 देखि विभीषण प्रभु अम पायो । खटि कर गरा कुद होइ प्रायो ॥ २ ॥
 शक्ति लगनेसे उन्हें कुछ धूर्छा हो गयी । प्रभुने उसे यह लीखा की, सर देवताओं-
 को व्याकुलता हुई । प्रभुको अम (शरीरिक बल) प्राप्त हुआ देवता-निग्रोह कोषित
 हो हाथमें गादा लेकर दौड़े ॥ २ ॥

३. कुमार सख गंद कुल्लहे । तें सुर कर धुनि जव निरहे ॥
 सखर सिव कहैं खेख जगद । एक एक के सेखिद पाए ॥ ३ ॥
 [और बोले-] अरे जगगो ! सुख-नील, दुर्लभ ! तूने देखा, मनुष्य, धुनि,

नाम समीपे विरोध किया ! तूने आदरसहित शिक्वीकी फिर चढ़ावे । इसीसे एक-एकके बदलेमें करोड़ों पावे ॥ ३ ॥

तेहि कासन सब जन जगि चोच्यो । जब तब कसु सीस पर भाच्यो ॥

राम विमुख सठ चहसि संपदा । जस कहि हुनैसि माझ बर गदा ॥ ४ ॥

उसी कारणसे अरे दुष्ट ! तू जलक बना है । [किन्तु] जब काल तूने सिरपर नाच रहा है । अरे मूर्ख ! तू रामविमुख होकर सम्पत्ति (सुख) चाहता है ! ऐसा कहकर विभीषणने रावणकी छातीके बीचो-बीच गदा मारी ॥ ४ ॥

४०—अर माझ गदा प्रहार घोर कठोर छागत महि परयो ।

इस वदन सोमित स्रक्त पुनि संभारि घायो रिस भरयो ॥

हो भिरे अतिबल मल्लजुब विरुद्ध एकु एकदि हुनै ।

रघुवीर बल इति विभीषनु घालि नहि स कह्युं गनै ॥

बीच छातीमें कठोर गदाघी घोर घोर कठिन चोट लगते ही वह पृथ्वीपर गिर पड़ा । उसके दोनों मुँहसे रक्ति बहने लगा; वह अपनेको फिर संभारकर क्रोधमें भरा हुआ बौढ़ा । दोनों आदन्त जलज्जुबों का मिश्रण भये और मल्लजुबमें एक दूसरेके निरुद्ध होकर मारने लगे । श्रीरघुवीरके कबले गर्वित विभीषण उसको (रावण-जैसे अगद्विजयी घोड़ाके) घाघणके बराबर भी नहीं समझते ।

५०—जमा विभीषनु रावनहि क्षमुक क्षितय कि काठ ।

सो जब मित काल यों श्रीरघुवीर प्रभाव ॥ ९४ ॥

[शिक्वी कहते हैं—] हे राम ! विभीषण बना कहीं रावणके सामने भौंक उठाकर भी ऐसा सफता था ? परन्तु अब वही काकले समान लखे मिड़ रहा है । यह श्रीरघुवीरका ही प्रभाव है ॥ ९४ ॥

६०—देखा समित विभीषनु भारी । बापद इत्थान गिरि घारी ॥

एव दुरंग सारथी विप्राय । इत्य माझ तेहि मारेसि जाता ॥ १ ॥

विभीषणको बहुत ही गम्भीर हुआ देखकर इन्द्रमन्त्री पर्वत चारण किये हुए दौड़े । उन्होंने उस पर्वतसे रावणके रथ, खेदे और सारथिक संहर कर आवा और उसके बीनेपर जात मारी ॥ १ ॥

हाइ रहा अति क्षमित जाता । गवड विभीषनु कह्युं जवप्राता ॥

हुनि रावन कवि हठेठ पचारी । जौन गराव कवि पूँछ पचारी ॥ २ ॥

रावण खड़ा रहा, पर उसका शरीर अत्यन्त चोंपने लगा । विभीषण कह्यो गये वहाँ सेवकोंके लक्ष्य हीरामन्त्री ये । फिर रावणने लक्ष्यकारक इन्द्रमन्त्रीको मारा । वे पूँछ फैलाकर बाकायामें चले गये ॥ २ ॥

गहिसि पूँछ कपि सहित उवावा । पुनि फिरि मिरै प्रकट इन्द्रमाना ॥

अरत अकास उल्लस सम जोषा । एकदि पडु इत्थ करि क्रोधा ॥ ३ ॥

रावणने पूँछ पकड़ ली, इन्द्रमन्त्री उसको रावण किये हुए ऊपर उड़े । फिर लौटकर महाबलवान् इन्द्रमन्त्री उसके मिड़ भये । दोनों समान बौद्ध आकाशमें लड़ते हुए एक दूसरेको क्रोध करने लगने लगे ॥ ३ ॥

सोहि नम उक्त कब कह्युं कहीं । कलकलगिरि सुमेरु जनु ऊहीं ॥

हुनि बल विभित्त पद न पारयो । तब भस्मसुत प्रभु संचारयो ॥ ४ ॥

दोनों बहुत-से छल-कल करते हुए आकाशमें ऐसे खोमित हो रहे हैं माने

कञ्जविरि और सुयेव पर्वत छद् ये हों । अब बुद्धि और कल्ये राक्षस गिराने न गिरा
तब मावति श्रीहनुमान्जीने प्रमुखी करण किया ॥ ४ ॥

छं०—संभारि श्रीरघुवीर धीर पचारि कपि राखतु हन्यो ।

महि परत पुनि उठि सरत देखह छुपल कहुँ सय जय मन्यो ॥

हनुमंत संकट देखि मर्याद मालु श्रीबालुर बले ।

रथ मत्त राखन सफल सुमत्त प्रचंड मुख बल दलमले ॥

श्रीरघुवीरका संरक्षण करके धीर हनुमान्जीने छलप्रकारकर राक्षसको मारा । वे दोनों
पूरबोपर गिरते और फिर उठकर लड़ते हैं देवताजीने दोनोंकी 'अय-अय' पुकारती ।
हनुमान्जीका दृष्ट दैतकर जान-बाहू श्रीबालुर होकर बौढ़े । किन्तु रण-मद-भाते
राखने सब बौद्धाजीको अपने प्रबल सुनायके के लिये कुछ और मस्त बना ।

शे०—तब रघुवीर पचारे धार कीस प्रचंड ।

कपि बल प्रबल देखि तेहि कीन्ह प्रगट प्रचंड ॥ ५ ॥

तब श्रीरघुवीरके लक्ष्मणदेवर प्रबल धीर जान बौढ़े । जानकीके प्रबल दलको
देखकर राखने माया प्रकट की ॥ ५ ॥

शे०—मंदारबाध मन्द छन एक । पुनि प्रगटे सब रूप अनेक ॥

रघुपति कटक मालु कपि लै । कहैं लई प्रकट द्वाजयन तेरे ॥ ६ ॥

छापमरके लिये वह लहर हो गया । फिर उठ डुलने मनेजों का प्रकट किये ।

श्रीरघुनाथजीकी सेनामें मिलने रीछ-जानर वे लड़ने ही राखन नहीं-सहों (धारों ओर)
प्रकट हो गये ॥ ६ ॥

देखे कपिन्ह जमिल दलजीला । कहैं लई मने मालु बल लौला ॥

भाग धामर प्रगई न धीरा । काहि नहि छलितन रघुवीर ॥ ७ ॥

जानकीने अवरोधित राखन देखे । माय और जानर सब कहों-सहों (शर-उभर)
भाग लगे । जानर धीरन नहीं करते । हे लक्ष्मणजी । हे रघुवीर । बचाइये, बचाइये,
यों पुकारते हुए वे मागे भा रहे हैं ॥ ७ ॥

कहैं किमि बाधई कोटिन्ह लखन । गहई धीर कठोर मज्जन ॥

बरे लख छुर लगे पणई । अब नै भल लखु अब भाई ॥ ८ ॥

दलों दिशाज्योंमें कठोरों राखन रौढ़ते हैं और धीर कठोर भक्षणक गर्म कर
रहे हैं । तब देवता उर मने और देख करते हुए मात्र लगे कि हे भाई । अब जबकी
भाया लोड़ दो ! ॥ ८ ॥

लख छुर जिते दललखर । अब बहु मर लखु फिर कंदर ॥

कहैं विरंधि बंधु हृदि भाषी । किन्हकिन्हप्रसुमदिया कलु मानी ॥ ९ ॥

एक ही राखने सब देवताजीको जीत लिया था । अब तो बहुत-से राखन हो गये
हैं । इतने अब पहाड़ी गुफाओंका आक्रमण लगे (जहाँ-उन्में छिप गये) । फल
प्रसा, वस्तु और मानी मुनि ही बडे रहे, जिन्होंने प्रमुखी कुछ गहिया लकी थी ॥ ९ ॥

छं०—जाना प्रताप ते रहे विर्मव कपिन्ह रिपु माने फुरे ।

बले विचलि मर्याद मालु सफल छुपल प्रादि मयाहुरे ॥

हनुमंत जगद नील बल अतिबल छलत रज कंधुरे ।

मर्याद द्वाजयन कोटि कोटिन्ह कपट मू मट अंधुरे ॥

जो प्रह्लाद प्रलय जानते थे, वे विर्मव बडे रहे । जानकीने शत्रुओं (लख-से

रावणों) को सब ही मर्न दिया । [इसके] सन वानर भाव निचलित होकर रहे कृतज्ञ !
रक्षा कीदिए । [वो पुकारते हुए] भयले व्याकुल होकर भाग नले । अत्यन्त बलवान्
रणबोंदुरे हनुमान्की, अंगद, नील और मरु लड़ते हैं और अमररूपी भूमिसे अदुरकी
गौति उपले हुए कोटि-कोटि बौद्ध रावणोंको मरुते हैं ।

दो०—सुर बाहर देखे विफल हैंसो कोसलाचीस ।

सखि सारंग एक सर हवे सकल दससीस ॥ २६ ॥

देवताओं और वानरोंको विफल देखकर कोसलपति श्रीरामकी हँसे और शार्ङ्ग-
धनुषपर एक बाण चढ़ाकर [भाषाके बने हुए] सब रावणोंको मार बाण ॥ २६ ॥

चौ०—प्रभु छत्र महुँ बाधा सब काटी । किमि रुषि ठहरे नाहिँ सम काटी ॥

रावण एक देखि सुर हरये । बिरे सुमन बहु मनु पर धरये ॥ १ ॥

प्रभुने क्षणभरमें सब बाधा काट काटी । जैसे सुखे उदय होते ही अम्बुकारकी
राशि फट जाती है (नष्ट हो जाती है) । अब एक ही रावणको देखकर देवता हर्षित
हुए और उन्होंने छैटकर प्रभुपर बहुत-से पुष्प बरसाये ॥ १ ॥

शुन कछाह रघुपति करि चैरे । छिरे एक एकन्ह सब टैरे ॥

प्रभु बहुत पक्ष भण्डु करि धार । सकल समकि संभुग गहि धार ॥ २ ॥

श्रीरघुनाथजीने भुजा उठाकर सब वानरोंको ओढ़ाया । तब ने एक दूसरेको पुकार-
पुकारकर लौट माने । प्रभुका बल पाकर रीझ-वानर चौध पड़े । अस्त्रोंसे कूदकर ने
रणभूमिमें धा गये ॥ २ ॥

अस्तुति करत ऐकमहि देखें । मर्यें एक मैं इन्ह के छेजें ॥

सबहु साथ तुम्ह और मानव । भस कहि छोरि शयन पर धावक ॥ ३ ॥

देवताओंको श्रीरामजीकी स्तुति करते देखकर रावणने सोचा, मैं इनकी समझमें
एक हो गया । [परन्तु इन्हें यह पता नहीं कि इनके लिये मैं एक ही बहुत हूँ] और
कहा—अरे मुझों ! तुम तो सदाके ही मेरे मरैक (मेरी मार खानेवाले) हो । देवा
कहकर वह शोध करके आकाशपर [देवताओंकी ओर] दौड़ा ॥ ३ ॥

हाहाकार करत सुर मागै । कछहु जाहु कई मोरें मागे ॥

देखि विफल सुर भण्य धावो । कृषि करन गहि भूमि गिरायो ॥ ४ ॥

देवता हाहाकार करते हुए भागे । [रावणने कहा—] इहो ! मेरे आगेसे क्यों
जा रहेगो ! देवताओंको व्याकुल देखकर अंगद धौले और उल्लसकर रावणका पैर पकड़-
कर [उन्होंने] उसको पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ४ ॥

छ०—गहि भूमि पारयो अत मारयो बालिमुत प्रभु पहिँ गयो ।

संभारि छठि दसकाँ छोर कछेर रच गर्जत भयो ॥

करि दाप चप कछाह दस संघनि सर बहु बरपई ।

किए सकल मट भावक भयाकुल देखि निद्र बल बरपई ॥

उधे पकड़कर पृथ्वीपर गिराकर सब मारकर बालिपुत्र अंगद प्रभुके पास चले
गये । रावण संभलकर उठे और बड़े मक्खन कठोर शब्दसे गरजने लगा । वह दर्प
करके दसों बहुत चढ़ाकर उनपर बहुत-से बाण उन्धान करके बरसाने लगा । उन्होंने सब
बौद्धाओंको धाकल और भयले व्याकुल कर दिया और अपना बल देखकर वह हर्षित
होने लगा ।

दो०—तब राष्ट्रपति रावण के ससि मुख सर जोंप ।

काटे बहुत बड़े पुनि जिमि तीरथ कर पाप ॥ १७ ॥

तब भरमुनायकीने रावणके सिर, मुखमें बाप और बनुष कट टांके । पर ने फिर बहुत बड़ गये, जैसे तीर्थमें जिने हुए पाप बड़ जाते हैं (कई गुना अधिक मयानक फल उत्पन्न करते हैं) ॥ १७ ॥

चौ०—सिर मुख बाढ़ि देखि दिवु केरी । गच्छु कनिष्ठ सिर मई पनेरी ॥

मरत न सख फटेहुँ सुख सीसा । पाप कोपि मल्लु येठ शीसा ॥ १ ॥

शत्रुके सिर और मुखाओंकी बढ़ती देखकर रौद्र-मानसोंको बहुत ही क्रोध हुआ । वह मूर्ख मुखाओंके और सिरोंके फटनेपर भी नहीं मरता, [ऐसा कहते हुए] भाँख और बानर योद्धा क्रोध करते दौड़े ॥ १ ॥

राखितनय भरति कक नील । पावसराने दुविद ककभीला ॥

विजय महीपार करहि प्रहार । सोई निरि सर गहि कनिष्ठ सो धारा ॥ २ ॥

बाहियुव अंगद, माकसि हनुमान्की, नल, नील, बानरछत्र सुधीव और त्रिविध भादि बलवान् उत्तर लाल और पर्वतोंपर प्रहार करते हैं । वह उन्हीं बर्तों और चुनौतों फटकर बानरोंको मारता है ॥ २ ॥

एक बलान्ति दिवु धनुष विदारी । नाबि चढहि एक जलनद मारी ॥

तब नल नील सिरमेध बढि गवळ । नलान्ति फिकार विदुराष्ट मयळ ॥ ३ ॥

कोई एक बलान्तर नवींसे शत्रुके शरीरको फटकर भाग जाते हैं, तो कोई उसे ललौंसे मारकर । तब नल और नील रावणके सिरोंपर पड़ गये और नवींसे उसके ललाटको फाड़ने लगे ॥ ३ ॥

कक्षिर वैलि निवाह कर भारी । सिन्हादि बल सहुँ मुखा पक्षारी ॥

गहे न जाहि करमिध पर फिरी । जनुहुन मयुर कमळ बन बारी ॥ ४ ॥

कून देखकर उठे हुरगों बड़ा दुःख हुआ । उसने उनको फटनेके लिये हाथ फैलये, पर वे फटनेमें नहीं आये, हाथोंके ऊपर-ऊपर ही फिरते हैं अनो दो नींदे कमलोंके बनमें विचरन कर रहे हैं ॥ ४ ॥

कोपि कृषि ही भरेमि कपोरी । मदि फलत भवे मुख मरोरी ॥

पुनि कपोप दस बलु कर जोगे । सगमि मरि पावळ करि कीगे ॥ ५ ॥

तब उसने क्रोध करके उठकर दोनोंको फट्टा किया । पृथ्वीपर पटकते समय वे उसकी मुखाओंको मरोड़कर भाग धूटे । फिर उसने क्रोध करके हाथोंमें हलौं बनुष लिये और बानरोंको बाणोंसे मारकर पावळ कर दिया ॥ ५ ॥

हनुमदादि मुखचिह्न करि कंद । पाह प्रक्षोष हरष वसकंधर ॥

मुषक्षि देखि सक्क करि नील । व्यम्वंत प्राकृत स्वधीरा ॥ ६ ॥

हनुमान्नी आदि सब बानरोंको मूर्च्छित करके और सम्पत्तक समय पाकर उनपर हर्षित हुआ । समस्त बानर-धीरोंको मूर्च्छित देखकर रंजनीर आप्तबन्ध दौड़े ॥ ६ ॥

संग मल्लु सूपन लह घारी । मस्त उगे पचरि पचारी ॥

मयळ मल्लु सयन कळमान । गहि बड़ मदि फलत मेट बाबा ॥ ७ ॥

बानरान्ते बाग जो माष्ट ये, वे फल और लाल पावण जिने रावणको उल्लास-कल्लाकर मारने लगे । कल्लान् रावण कोषित हुआ और पैर फट-फटकर बढ़ जानेको योद्धाओंको पृथ्वीपर पटकने लगा ॥ ७ ॥

देखि भाङ्गुपति बिच दूख जात । कोपि माता हर गरीसि काल ॥ ८ ॥

जाम्बवान्ने अपने दलका विध्वंस देखकर क्रोध करने रावणकी छातीमें जात मारी ॥ ८ ॥

छं०—हर सस घात प्रचंड जाकत विकल रज ते मदि पय ।

गहि भाङ्गु वीरहुँ कर मनहुँ कमलहि वसे बिसि मधुकरा ॥

मुकुलित बिलोकि बहोरि पद हति भाङ्गुपति प्रभु पहि गयो ।

बिसि जानि स्पंदन अलि तेहि तप सूत अतनु करत भयो ॥

छातीमें लतका प्रचंड आघात लगे ही रावण व्याकुल होकर रुपये धूम्रपान पिया पड़ा । उसने वीरों द्वारा में भाङ्गुओंसे पकड़ रक्खा था । [देख जान पड़ा था] जानो राविके समय मेरे कमलोंमें कैसे हुए हों । उसे मुक्ति देखकर फिर जात मारकर भ्रूकणक बाम्बवान् प्रभुके पद चले गये । राविके जानकर खरबि रावणसे राममें बाधकर उसे होशमें आनेका उपाय करने लगा ।

दो०—मुदछा बिपत भाङ्गु अपि सब जाय प्रभु पास ।

बिसिचर सकल राकनहि बेरि रहे जति प्रास ॥ ९८ ॥

मूर्छा वर होनेपर सब रीक-बालर प्रभुके पास जाये । उपर सब राक्षसोंने बहुत ही मरपीत होकर राकनसे बेर लिया ॥ ९८ ॥

सत्सपारायण, छम्बीसवीं विधाम

चौ०—देही बिधि सीता पहि जाई । बिजय छवि सब रत्न दुजारी ॥

सिर धुज बाधि मुक्त रिपु केरी । सीता हर भा जाय भेरी ॥ १ ॥

सर्प राव विजयने सीताजीके पद जाकर उन्हें सब कथा कह दुजारी । शत्रुके शिर और धुजाओंकी रक्षिका संवाद सुनकर सीताजीके हृदयमें बहुत भय हुआ ॥ १ ॥

हुज मछीन कपली मन पिता । बिजय सब बोली तब सीता ॥

होयहि कहा कहसि किम माता । केहि बिधि मरिहि बिल दुखदाता ॥ २ ॥

[उनका] मुक्त उद्धार हो गया, मनमें विमता उत्पन्न हो गयी । तब सीताजी विजयसे बोली—दे माता ! बलाही क्यों नहीं ! क्या होगा ! सम्पूर्ण विश्वको दुःख देनेवाला यह किस प्रकार होगा ! ॥ २ ॥

रघुपति हर सिन कोहुँ न मरई । बिधि बिपरीत बसि सब करई ॥

मोर समाय भिजवत चौही । बौहि हों हरि पद कमल बिलोही ॥ ३ ॥

भीरघुनायजीके नाचोंसे सिर कटनेपर भी नहीं मरता । विधाता सोचे, वरिष विपरीत (उल्टे) ही कर रहा है । [सब बात तो यह है कि] केव दुर्भाग्य ही उसे दिया रहा है ; जिसने मुझे रामचन्द्रके चरण-आलोकसे जलन कर दिया है ॥ ३ ॥

तेहि छठ कपट कमल मूल छुज । लखहुँ तो दैव मोहि पर कछा ॥

तेहि बिधि मोहि हुल हुलद सहज । लखिमान कहैं कछु बचन कहाय ॥ ४ ॥

जिसने कपटका छठ लक्ष्मण काया का वही दैव जब मो मुझपर रखा हुआ है, जिस विधाताने मुझे दुःख दुःख सहन कराये और लखनको कहने बचन कहाये ॥ ४ ॥

रघुपति विदु सखि सर मारी । जकि तकि मार कर बड़ु भारी ॥

ऐसेहुँ हज जो राख राम प्राय । सोहुँ बिधि बहि किमव बनाना ॥ ५ ॥

जो भीरघुनायजीके विद्वत्त्व के विपरीत नाचोंसे कट-कटकर मुझे बहुत बार मारकर जब भी मार रहा है और ऐसे दुःखोंमें भी जो मेरे प्रयत्नोंसे रक्त रहा है, वही विधाता उस (रामचन्द्र) को बिले रहा है दुःख कोई नहीं ॥ ५ ॥

बहु विधि कर विद्याप जानकी । करि करि सुरति लभानिधान की ॥

कह विजटा सुनु राखकुमारी । उर सर कामत भरह सुखारी ॥ ९ ॥

कृपानिधान श्रीरामजीकी बाद कर-करके जानकीजी बहुत प्रकारसे विद्याप कर रही हैं । विजटाने कहा-हे राजकुमारी ! सुनो, देवताओंका राख हृदयमें बाण लगाते ही मर जायगा ॥ ९ ॥

प्रभु ताते उर हृदय न चेही । यहि के हृदयें कसि नैदेही ॥ १० ॥

परन्तु प्रभु उसके हृदयमें बाण इकलिये नहीं मारते कि इसके हृदयमें जानकीजी (आप) बसती हैं ॥ १० ॥

४०—यहि के हृदयें बस जानकी जानकी उर मम वास है ।

मम उदर मुअन अनेक लभत वान सष कर नस है ॥

सुनि वखन हरष विषाद मन अति देखि पुनि विजटा कहा ।

अप मरिहि रिपु यहि विधि सुनिहि सुंदरि तजहि संसय भहा ॥

[ये यही सोचकर रह जाते हैं कि] इसके हृदयमें जानकीका निवास है, जानकीके हृदयमें मेरा निवास है और मेरे उदरमें अनेकों भुक्त हैं । अतः राजाके हृदयमें बाण लगाते ही तब भुक्तोंका नश हो जायगा । वह कवन दुनकर, सीताजीके मनमें अत्यन्त हर्ष और विषाद हुआ देखकर विजटाने फिर कहा-हे सुन्दरी ! महान् सम्बेदका त्याग कर दो; अब सुनो, शत्रु इस प्रकार भोगे—

४०—कादत सिर छोडहि बिकर छुटि अहहि तब ध्वज ।

तब राजनहि हृदय भई मरिहि रसु सुमान ॥ ९९ ॥

सिरोंके बाद-बार काटे जानेसे जब वह व्याकुल हो जयगा और उसके हृदयमें तुम्हारा ध्यान बूढ़ जायगा, तब सुमान (अन्तर्यामी) श्रीरामजी राजाके हृदयमें बाण मारेंगे ॥ ९९ ॥

चौ—अस कहि बहुत भति स्तुअई । पुनि विजटा विष भवन सिबाई ॥

राम सुबाड सुमिरि नैदेही । उदरि विरह विषा अति चेही ॥ १०० ॥

ऐसा कहकर और सीताजीको बहुत प्रकारसे समझाकर फिर विजटा अपने घर चली गयी । श्रीरामकर्मजीके लभावका स्वरूप करके जानकीजीको अत्यन्त विराम्भया उत्पन्न हुई ॥ १०० ॥

मिसिहि ससिहि विदहि बहु जीती । कुग सम भई सिमरि ब सती ॥

करति विद्याप नगई मन आरी । राम विरौ जावकी हुकारी ॥ १०१ ॥

ये रात्रिकी और चन्द्रमाकी बहुत प्रकारसे विन्दा कर रही हैं [और कह रही हैं—] रात युगके समस्त बनी हो गयी, वह नीतवी ही नहीं । जानकीजी श्रीरामजीके किरणमें डुबी होकर मन-ही-मन भारी विन्याप कर रही हैं ॥ १०१ ॥

अब अति मयक विरह उर दाहु । फलेन कम कपक बह बाहु ॥

खुनु विचारि छरी मन घीरा । अब मिसिहिहि कृपाल छुबीरा ॥ १०२ ॥

जब किरणके मारे हृदयमें दमण दाह हो गया, तब उनका चारों नेत्र और बाहु फट्क उठे । बहुत समझकर उन्होंने मनमें धरम किया कि अब कृपाल श्रीधुवीर भवमय मिलेंगे ॥ १०२ ॥

इहौ अर्धनिशि शबनु जागा । निष समरि सब खीहन कया ॥

सठ रतभूमि क्हाइसि मोही । विष विग जयम मंदमति सोही ॥ १०३ ॥

यहाँ आधी रात्रको रात [मूर्च्छति] अग्रा और अपने सारपिर चढ़ होकर

कहने लया—अरे मूर्ख ! तुने मुझे रणयूमिसे उल्टा कर दिया । अरे अधम ! अरे मन्दबुद्धि ! इसे धिक्कार है, धिक्कार है । ॥ ४ ॥

तेहि वद गहि बहु बिधि छुटतया । मोह मयँ रथ चढ़ि पुनि धावा ॥
मुनि आगदहु दसमन केत । कपि बल खरभर भयठ धनेष ॥ ५ ॥
छारिने चरण पकड़कर रावणको बहुत प्रहारसे समझाया । सबेरा [तेहि] ही वह रथपर चढ़कर फिर दौड़ा । रावणका आज्ञा सुनकर वानरोंकी सेनामें बड़ी खलबली मच गयी ॥ ५ ॥
तहँ तहँ मूँघर चिप ठफरी । घाए कटकदाह भट भारी ॥ ६ ॥
वे मारी रोझा बद्ध-तहासे पर्वत और गुप्त उखाड़कर [क्षेत्रसे] दाँत कटकटा-कर रोड़े ॥ ६ ॥

४०—घाए जो मर्कट चिफट मालु कराल कर मूँघर धरा ।

अति कोप करहि प्रहार भारत भनि चले राजनीचरा ॥

विचलाइ बल बलबंत कीसन्ह धेरि पुनि रावनु लियो ।

बहुँ दिसि चपेटन्हि मारि नखन्हि बिद्वारि तनु ब्याकुल कियो ॥

चिफट और चिफटाल वानर-मादृ हाथोंमें पर्वत लिये दौड़े । वे अत्यन्त क्रोध करके प्रहार करते हैं । उनके मारनेसे राजस माग चले । कल्यान् वानरोंने धनुकी सेनाको विचलित करके फिर रावणको केर लिवा । चारों ओरसे चपेटे मारकर और नखोंसे गरीर बिदीर्णकर वानरोंने उसको ब्याकुल कर दिया ।

दो—बेचि महा मर्कट प्रमल रावण कीन्ह विचार ।

अंतर्पहित होइ विमिश्र भहुँ कृत भय्या विस्तार ॥ १०० ॥

वानरोंको बड़ा ही प्रमल देखकर रावणने विचार किया और अन्तर्धान होकर क्षणभरमें उसने माना कैदगी ॥ १०० ॥

छं—अथ कीन्ह तेहि पार्वड । भए प्रमल अंतु प्रचंड ॥

पेटाल भूत पिशाच । कर धरें धनु बापाच ॥ १ ॥

जब उसने पाण्डव (रावा) रचा, तब मयङ्कर जीव प्रकट हो गये । पेटाल, भूत और पिशाच हाथोंमें धनुष-बाण लिये प्रकट हुए ॥ १ ॥

जोगिनि बाहुँ करवाछ । एक हाथ मनुज कपाल ॥

करि सख खेनित पान । बाधहि करहि बहु गान ॥ २ ॥

योगिनियों एक हाथमें तलवार और दूसरे हाथमें मनुष्यकी खोपड़ी लिये ताजा खून पीकर नाचने और बहुत तरहके गीत गाने लगीं ॥ २ ॥

घरु मारु बोलहि घोर । रहि पुरि धुनि बहूँ ओर ॥

मुख दाह घावहि खान । तब लगे कीस परान ॥ ३ ॥

वे 'पकड़ो, मरो' ज़ादि घोर शब्द बोल रही हैं । चारों ओर (सब दिशाओंमें) यह ज्वनि मर गयी । वे मुख फैलकर खाने दौड़ती हैं । तब वानर भागने लगे ॥ ३ ॥

जहँ जाहि मर्कट गमि । तहँ करत देखहि भागि ॥

मए चिफल वानर मालु । पुनि लग बरवै बाहु ॥ ४ ॥

वानर भागकर जहाँ भी जाते हैं, वहीं बाण बरखी देखते हैं । वानर-मादृ ब्याकुल हो गये । फिर रावण बाद बरसाने लगा ॥ ४ ॥

जहँ तहँ थकित करि कीस । गजेंद बहुरि दससीस ॥

लछिमन कपीस समेत । भए सकल वीर अचेत ॥ ५ ॥

वानरोंको कहाँ-तहाँ बंशिक (शिथिल) कर रावण फिर भरवा । लक्ष्मणजी और सुग्रीवसहित सभी वीर जंचे हो गये ॥ ५ ॥

हा राम हा रघुनाथ । कहि सुभट मौजहि हाथ ॥

पहि बिधि सबल बल तोरि । तेहि कीन्ह कष्ट कछोरि ॥ ६ ॥

हा राम ! हा रघुनाथ । पुकारते हुए मेह बोझ अपने हाथ मछते (पछताते) हैं । इस प्रकार सबका बल तोड़कर रावणने फिर बुरी भावा रची ॥ ६ ॥

प्रगटेसि विपुल अनुमान । कष्ट गये पाषाण ॥

तिम्ह रामु को जाइ । चहुँ दिसि बरुष बनाइ ॥ ७ ॥

उतने बहुत-से हनुमन् प्रकट छिने, वो फरक भिगे दौड़े । उन्होंने चारों ओर दस बनाकर श्रीरामचन्द्रजीको जा केरा ॥ ७ ॥

मारहु धरहु जनि जाइ । कटकटहि पूँछ उगार ॥

एहँ दिसि छँगूर विराज । तेहि मध्य कोसलराज ॥ ८ ॥

वै पूँछ उठाकर कटकटाते हुए पुकारने लगे, पकरो, पकरो, जने न पावे । उनके लंगूर (पूँछ) वसों दिशाओंमें घोभा दे रहे हैं और उनके बीचमें कोसलराज श्रीरामजी हैं ॥ ८ ॥

ॐ—तेहि मध्य कोसलराज सुन्दर स्वाम तन सोमा लही ।

जनु ईश्वरनुप अनेक की बर बारि तुंग तमालही ॥

प्रभु देखि हरष बिषाद उर सूर बदत जब जय जब करी ।

रघुवीर पकहि तौर कोपि निमेष महुँ मग्या हरी ॥ १ ॥

उनके बीचमें कोसलराजका सुन्दर स्वाम शरीर ऐसा घोभा पा रहा है, मानो जैसे तमाल वृक्षके लिये अनेक इन्द्रधनुषोंकी मेढ बाक (बेरा) बनायी गयी हो । प्रभु-को देखकर देवता हर्ष और विषादयुक्त हृदयसे 'जय, जय, जय' ऐसा शोकने लगे । तब श्रीरघुवीरने शोक करके एक ही वानसे निमेषमात्रमें रावणकी शरी माथा हरा जी ॥ १ ॥

माथा विमल कपि भाहु हरषे बिटप गिरि यहि सब फिरे ।

सर निकर छड़े राम रावण बाहु सिर मुनि महि गिरे ॥

श्रीराम रावण समर खरित अनेक कष्टर जो पावहीं ।

सत सेव सारथ निगम कथि तेउ सक्षि पार न पावहीं ॥ २ ॥

माथा दूर हो जानैपर वानर-भाट इतित हुए और कुछ तथा पर्वत छे-छेकर सब लौट पड़े । श्रीरामजीने बाणोंके समूह छोड़े, किन्तु रावणके हाथ और फिर फिर कटकटकर पृथ्वीपर गिर पड़े । श्रीरामजी और रावणके युद्धभर चरित्र यदि कैत्यों शेष, सरस्वती, वेद और कवि अनेक कल्पोंतक याते रहें, तो भी वे उसका पार नहीं पा सकते ॥ २ ॥

ॐ—ताके गुण बन कहु कहे सङ्गति तुलसीदास ।

जिमि भित बल अनुकूप ते माली उकुद अकास ॥ १०१ (क) ॥

उसी चरित्रके कुछ गुणमग्न मन्दबुद्धि तुलसीदासने कहे हैं, जैसे मकली भी अपने पुरुषार्थके अनुसार आकाशमें उड़ती है ॥ १०१ (क) ॥

काटे सिर मुख पार बहु भरत न भट कंकेस ।

प्रभु क्रीकृत सूर सिद्ध मुनि लक्ष्मण देखि कलेस ॥ १०१ (ख) ॥

सिर और मुखोंपें बहुत भर खटी रगों, फिर भी और रावण मरता नहीं । प्रभु तो लेल कर रहे हैं; परन्तु मुनि, सिद्ध और देवता उस केशको देखकर (प्रभुको कौश पाते समझकर) व्याकुल हैं ॥ १०१ (ख) ॥

सो—काहत बरहिं जीत समुदाई । विधि प्रति खम खेम पविदाई ॥

मरि न रिपु प्रसन्न भवत पिसेवा । राम विभीषण तन तब देखा ॥ १ ॥

कायते ही तिरौका छत्रु वद चाख है जैसे प्रत्येक लम्पट खोभ बढ़ता है । शत्रु मरता नहीं और परित्यक्त जुड़ जाता । तब श्रीरामचन्द्रजीने विभीषणकी ओर देखा ॥ १ ॥

उन्ना काळ भर तावैं ईछ । सो प्रभु तब कर प्रीति परीछा ॥

धुनु सरपन्न चरनर भावक । प्रवतपाळ सुर मुनि मुखदायक ॥ २ ॥

[विभीषण कहते हैं—] हे उन्ना ! जिसकी इच्छासंगत तो भ्राता भी मर जाता है, वही प्रभु सेनपती प्रीतिपूर्व परीक्षा ले रहे हैं । [विभीषणजीने कहा—] हे सर्वत्र ! हे सरपन्नके स्वामी ! हे सरपन्नके राखन करनेवाले ! हे देवता और मुनियोंको दुष्ट देनेवाले ! सुनिये— ॥ २ ॥

नाभिकुंड विपूष बस पावैं । नाथ विमत रत्नसु बल तावैं ॥

धुनत विभीषण वचन कृपाका । हरहि गहै कर खन कराका ॥ ३ ॥

इसके नाभिकुण्डमें अमृतका निष्पात है । हे नाथ ! रत्नसु उसीके हस्तपर खीता है । विभीषणके वचन सुनते ही कृपाळु श्रीरामचन्द्रजीने हर्षित होकर हाथमें विकराल बाण लिये ॥ ३ ॥

अमुन होन काने तब सोका । रोवहिं खर चक्राल बहु खाना ॥

बोझहिं कम कम भारति हेत । प्रगट भए मन जई सई केदू ॥ ४ ॥

उस समय मन्ना प्रकटके अधकुन होने लगे । बहुत-से गरहे खार और कुचे रोने लगे । बाणके दृष्ट (अक्षम) को संचित करनेके लिये पत्नी बोलने लगी । आकाशमें बाहें-कटों केत (पुच्छल तारे) प्रकट हो गये ॥ ४ ॥

इस विधि चाह होन अति काया । भयद परव विनु रवि उपरया ॥

मंदोदरी कर कंति मारी । प्रतिमा खरहिं भवन मग बारी ॥ ५ ॥

इसी दिशाओंमें अत्यन्त दृढ़ होने लगा (आग लगने लगी) । विमा ही पर्व (पर्वत) के सूर्यग्रहण होने लगा । मन्दोदरीका हृदय बहुत कौपसे लगा । मूर्तिमें नेत्र-नागने बल बढ़ाने लगी ॥ ५ ॥

इ—प्रतिमा खरहिं पविपात नम अति बास भइ बोलति मही ।

बरपहिं बलाहक दधिर कल रज अमुन अति सक को कही ॥

उतपात अमित विलोकि नम सुर विकल बोलहिं जय अप ।

सुर समय अग्नि कृपाल रघुपति चाप सर जोरत भय ॥

मूर्तियों रोने लगीं, आकाशमें गडगडा होने लगे, अत्यन्त प्रचण्ड वायु बहने लगीं, पृथ्वी दिकने लगीं, दाहक रक्त, बाल और धूलझी वर्षा करने लगे । इस प्रकार इतने अधिक जनझूक होने लगे कि उनकी श्रैन कह सकता है । अतिरिक्त उल्लास देखकर आकाशमें देवता व्यकुल होकर जन-जन पुकार लगे । देवताओंको भयभीत जानकर कृपाळु श्रीरामचन्द्रजी बहुत-से बाण उन्धान करने लगे ।

सो—कैचि सरपसन अचन छनि छावै सर पकरीस ।

रघुनायक सायक चले मानहुं काळ फनीस ॥ १०२ ॥

कानोंक मनुष्यों कीर्तनकर श्रीरामचन्द्रजीने हकरीस बाण छोड़े । वे श्रीरामचन्द्रजीके बाण देखे चले मानो कालफणी हैं ॥ १०२ ॥

चौ०—सायक एक कामि सर सोषा । सरर को मुख सिर करि रोषा ॥

सै सिर पाहु चले बासाच । सिर मुख हीन कंठ भदि भावा ॥ १ ॥

एक बाणने नामिके अमृतकुण्डको सोख लिया । दूखे तीव्र बाण कोष करके उसके सिरों और मुजाओंमें लगे । बाण सिरों और मुजाओंमें डेकर चले । सिरों और मुजाओंमें रहित रुख (घन) पृथ्वीपर नाचने लगा ॥ १ ॥

घरनि भसह घर धान अचंडा । धन सर हति प्रभु कुल दुद सोडा ॥

यलेंद मरत घोर ख मारी । कहाँ राखु ख हतौ पचारी ॥ २ ॥

यह प्रचण्ड वेगसे दौड़ता है, जिससे घटती पैरों लगी । ख प्रभुने बाण मारकर उसके दो टुकड़े कर दिने । मरते समय राखण बड़े घोर झगड़े गरजकर बोला—राम कहाँ हैं ? मैं लतकारकर उनको मुझमें आऊँ ॥ २ ॥

डोही नूमि मिश्र दसकंधर । सुमिठ सिंधु सरि दिगमन मूचर ॥

घरनि पोरव ही कंड मारु । कामि आहु मरै ससुवारी ॥ ३ ॥

राखणके गिरते ही पृथ्वी स्थिर नहीं । समुद्र, गरियों, दिग्बलोंके हाथी और पर्वत भुग्न हो उठे । राखण भदके रोनों टुकड़ोंको पैरोंपर मार और धनरोंके अनुयायियों दबाता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३ ॥

मंदोदरि भागें मुख खीछ । चरि सर चले कहाँ जगदीश ॥

प्रविसे सब निर्वन महुँ जाई । देखि सुख दुखीं मलाई ॥ ४ ॥

राखणकी मुजाओं और सिरोंको मन्दोदरीके लम्बे रत्नकर राम-बाण नहीं चले, नहीं आदीश्वर श्रीरामकी वे । ल बाण आकर करणमें प्रवेश कर गये । यह देखकर देवताओंने लगाई बरषा ॥ ४ ॥

राखु तेज समान प्रभु जलन । हरी देखि संखु चक्रराज ॥

जय जय धुनि कूँ मरुंदा । जय शङ्खीर प्रकट सुतर्दा ॥ ५ ॥

राखणका तेज प्रभुके मुखमें समा गया । यह देखकर शिवजी और ब्रह्मजी हर्षित हुए । ब्रह्माक्षरमें जय-जयकी ध्वनि भर गयी । प्रकट भुजदण्डोंवाले और शङ्खीरकी जय हो ॥ ५ ॥

बरषाँ धुमन बैल धुनि हुई । जय कृष्ण जय लक्ष्मी सुकृष्ण ॥ ६ ॥

देवता और मुनियोंके समूह पूछ बरखते हैं और कहते हैं—कृपाक्षकी जय हो, सुकृष्णकी जय हो, जय हो ॥ ६ ॥

छं०—जय कृपा कंध मुकुंद ईद हरज सरज सुखप्रद प्रभो ।

बल दल निदारज परम करज कालीक छावा बिभो ॥

सुर सुमन परषाँद हरष संकुल बाज दुंदुभि गहगद्दी ।

संप्राम अंगन राम अंग अंगन गहु सोभन लही ॥ १ ॥

हे कृपाके कन्द । हे मोक्षदायक मुकुन्द । हे [राघव-देव, हर्ष-शोक, जन्म-मृत्यु आदि] इन्द्रोंके इन्द्रोपले । हे धरणात्मको सुख देनेवाले प्रभो । हे दुष्ट-दलको विदीर्ण करनेवाले । हे कारणोंके भी परम कारण । हे तव कृष्ण करनेवाले । हे सर्वव्यापक विभो । आपकी जय हो । देवता हर्षमें भरे हुए पुण्य बरखते हैं, धनापन लगाई दान रहे हैं । रामभूमिमें श्रीरामकर्मजनोंके संघोंने बहुत-से कामदेवोंकी योग्य प्राप्त की ॥ १ ॥

सिर छटा मुकुट प्रभून विच विच अति मजोहर राजही ।

अनु नीलगिरि पर तटित पटल समेत उदुपव सावही ॥

मुजवंड सर कोदंड फेरत छविर कन तन अति बने ।

जलु रायमुनी तमाल पर बैठी विपुल सुख आपने ॥ २ ॥

सिरपर जटाओंका मुकुट है, जिसके बीच-बीचमें अत्यन्त मनोहर पुष्प शोभा दे रहे हैं। मानो नीले पर्वतपर विष्णुके समूहसहित नक्षत्र सुशोभित हो रहे हैं। श्रीरामजी अपने मुखदर्शने बाण और धनुष पित्त रहे हैं। कपड़ेपर छविरके कण अत्यन्त सुन्दर लगते हैं। मानो तमालके बुलार बहुत-सी ललमुनियाँ चिड़ियाँ अपने म्हात्तु सुलमें मग्न हुई निश्चल बैठी हों ॥ २ ॥

हो—रुपादष्टि करि वृष्टि प्रभु अमय फिर सुर वृंद ।

आलु कीस सब हरये जय सुख धाम मुकुंद ॥ १०३ ॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने रुपादष्टि की कर्मा करके देवसमूहको निर्मय कर दिया। बाहर भाइ सब हर्षित हुए और सुखधाम मुकुन्दकी बच हो, ऐसा पुकारने लगे ॥ १०३ ॥

बौ—पति सिर देखत मनोदरी । मुकुंठित निकल भरनि ससि परी ॥

छवति वृंद रोचत उठि आई । तेहि उलह राखत पछि आई ॥ १ ॥

पतिके सिर देखते ही मनोदरी व्याकुल और मुर्च्छित होकर बरहीपर गिर पड़ी। जिन्यों रोती हुई उठ दौड़ी और उस (मनोदरी) को उठाकर रावणके पास आयी ॥ १ ॥

पति गति देखि ते कर्हि पुकारा । छूटे कच बहिं मधुव सँभारा ॥

हर ताकना कर्हि निधि नाया । रोचत कर्हि प्रत्यक्ष बहना ॥ २ ॥

पतिकी दशा देखकर वे पुकार-पुकारकर रोने लगीं । उनके बाल छुल गये, देहकी सँभाल नहीं रही। वे अनेकों प्रकारसे छाती पीटती हैं और रोती हुई रावणके प्रतापका बखान करती हैं ॥ २ ॥

उस बह काव डोक निठ धरनी । तेन हीन पावक ससि तरनी ॥

सेव कमल सहि लखहि न भाग । सो तनु भूमि परेव भरि छारा ॥ ३ ॥

[वे कहती हैं—] हे नाथ ! तुम्हारे बलसे पृथ्वी सदा कौपसी रहती थी। अग्नि, चन्द्रमा और सूर्य तुम्हारे सामने तेजहीन थे। शेष और कच्छप भी जिसका मार नहीं सह सकते थे, वही तुम्हारा शरीर आज धूलमें भरा हुआ पृथ्वीपर पड़ा है ॥ ३ ॥

बहन कुबेर सुतेस समीरा । रन समुच्च धरि काहु न धीरा ॥

मुंगवळ निवेहु काल कम साई । मालु परेहु अनाथ की नाई ॥ ४ ॥

बध्म, कुबेर, इन्द्र और वायु, इनमेंसे किसीने भी रणमें तुम्हारे सामने धैर्य धारण नहीं किया। हे स्वामी ! तुम्हो अपने मुजकले काल और बमरानकी भी जीत लिया था। वही तुम आज अनाथकी तरह पड़े हो ॥ ४ ॥

जगत विविध तुम्हारी प्रभुआई । सुत पस्तिन बल करनि न जाई ॥

राम विमुक्त जल हल तुम्हारा । रहा न कोइ कुल सेवनिहारा ॥ ५ ॥

तुम्हारी प्रभुता जगत्सममें अतिरह है। तुम्हारे पुत्रों और कुलुम्बियोंके बलका हान। वर्णन ही नहीं हो सकता। श्रीरामचन्द्रजीके विमुक्त होनेसे ही तुम्हारी ऐसी दुर्दशा हुई कि आज कुलमें कोई रोनेवाला भी न रह गया ॥ ५ ॥

तब बस बिचि प्रार्थन सय पाया । समस्तदिसिपि चित्त भावहि साया ॥

अब तब सिर मुच जंझुन साही । राम विमुक्त यह जनुचित नाही ॥ ६ ॥

हे नाथ ! विपत्ताधी शरीर छुटि तुम्हारे कानों थी। जोकाल सदा मग्नीति होकर

तुमको मस्तक नचाते थे। किन्तु हाथ ! अब तुम्हारे सिर और भुजाओंको गीदद खा रहे हैं ! रामविमुखके लिये ऐसा होना अनुचित भी नहीं है (अर्थात् उचित ही है) ॥ ६ ॥

काक विषस पति. कष्ट न माना । मग जग वाहु मनुज करि जाया ॥ ७ ॥

हे पति ! कालके पूर्ण कष्टों होनेसे तुम्हने [विभीषण] कहना नहीं माना और चराचरके, नाथ परमात्माको मनुष्य करके जाना ॥ ७ ॥

ॐ—जान्यो मनुष्य करि वनुज काकन दहन. पावक छरि सख्य ।

जेहि नमत सिब ब्रह्मादि सुर. पिय भजेहु नहि करुनामय ॥

आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमथ तब ॥ ८ ॥

तुम्हहु बियो निजघाव राम नमामि ब्रह्म निरामय ॥

दैत्यकपी वनको जलनेके लिये अग्निसकल ब्रह्मादि श्रीहरिके तुम्हने मनुष्य करके जाना ! शिव और ब्रह्मा आदि देवता जिनको नमस्कार करते हैं, उन कृपात्म्य मगवान्को हे प्रियतम ! तुम्हने नहीं भज । तुम्हारा वह खरीर जमसे ही दूधसे ब्रह्म करनेमें तत्पर तथा पापसमूहमय रहा ! इतनेपर भी जिन निर्बिकार ब्रह्म श्रीरामजीने तुमको अपना काम दिया, उनको मैं नमस्कार करती हूँ ।

दो—अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिन्धु नहि आन ।

जोगि पूर कुलम गति जेहि दीन्हि भगवान ॥ ९०४ ॥

अहह ! नाथ ! श्रीरघुनाथजीके समान कृपाका समुद्र वृषभ कोई नहीं है, जिन भगवान्ने तुमको यह गति दी जो योगिसमस्तको भी दुर्लभ है ॥ ९०४ ॥

बौ—मन्दोदरी बचन सुनि कथा । सुरमुनि सिद्ध सबनिहुल माना ॥

सब भोक्त नासब सम्बन्धी । जे सुनिवर परमारथ पायी ॥ १ ॥

मन्दोदरीके बचन कानोंमें सुनकर देखा, मुनि और सिद्ध सभीने मुल माना । ब्रह्मा, महादेव, नाथ और स्वप्नादि तथा और भी जो परमार्थपात्री (परमात्माके, सर्व-को जानने और कहनेवाले) भेड़ मुनि थे ॥ १ ॥

नरि औचव सपुतिहि मिहारी । प्रेम भगव सब भए सुकारी ॥

बहम करत देखीं सब नारी । गमन विभीषण मन हुआ भारी ॥ २ ॥

वे सभी श्रीरघुनाथजीको नेत्र भरकर निरसकर प्रेममय हो गये और अत्यन्त दुःखी हुए । अपने घरकी सब स्त्रियोंको रोती हुई देखकर विभीषणजीके मनमें बड़ा भारी दुःख हुआ और वे उनके पास गये ॥ २ ॥

येहु दशा बिकोकि हुआ कोन्हा । तब प्रभु भक्त्यादि आत्मसु दीन्हा ॥

कछिमत छेदि बहु निधि समुद्रज्यो । चतुरि विभीषण प्रभु पादि साथो ॥ ३ ॥

उन्हींने भाईकी दशा देखकर दुःख किया । तब प्रभु श्रीरामजीने छोटे भाईको आज्ञा दी [कि जाकर विभीषणको वैय्य बंधाओ] । स्वप्नजीने उन्हें बहुत प्रकरसे समझाया । तब विभीषण प्रभुके पास छोट आये ॥ ३ ॥

कृपादहि प्रभु ताहि विनोच । कहु क्रिया पतिद्वरि सब सोच ॥

कीन्हि क्रिया प्रभु जान्यु गानी । विचित्र देस काक विर्य जायी ॥ ४ ॥

प्रभुने उनको कृपार्थ दृष्टिसे देखा [और कहा—] सब शोक त्यागकर राजपकी मन्त्रेष्टि किया करो । प्रभुकी आज्ञा मानकर और दृढ़को देव और काकका विचार करके विभीषणजीने विविधपूर्वक सब क्रिया की ॥ ४ ॥

दो—मंदोदरी आदि सब देव त्रिलोकजि तहि ।

भवन गई रघुपति गुन सब बरजत मन माहि ॥ १०५ ॥

मन्दोदरी आदि सब देवों उठे (रामचक्र) त्रिलोकजि देकर मनमें श्रीरघुनाथ-
कीके गुणसमूहोंका कथन करती हुई मन्त्रोंमें गयीं ॥ १०५ ॥

चौ०—आइ विभीषण पुनि सिर पायो । कृपासिन्धु तब अनुज बोलायो ॥

सुन्द करीस गंगद नल नीकर । समर्पत समरति नवसीता ॥ १ ॥

सब मिलि आहु विभीषण सभा । साहेदु तिरक कहेत रघुनाथा ॥

पिता बचन मैं नम्र न जावउँ । आहु समिसकहि अनुज पदावधैं ॥ २ ॥

सब क्रिया-कर्म करनेके बाद विभीषणने जाकर पुनः सिर मगवाया । तब हृषीकेश
समूह श्रीरामजीने छोटे भाई लक्ष्मणजीको बुलाया । श्रीरघुनाथजीने कहा कि तुम, बानर-
राज सुग्रीव, सोढा, नल, नील, जम्बवान् और मरुति सब नीतिनिपुण लोग मिलकर
विभीषणके साथ सभाओं और उन्हें राजसिद्ध कर दो । पिताजीके वचनोंके कारण मैं
जगत्में नहीं आ सका । पर अपने ही समान बानर और छोटे भाईको भेषता हूँ ॥ १-२ ॥

सुख चले कपि सुनि प्रभु बचन । कीन्दी आहु तिरक की रचना ॥

सावर सिंहासन बैसारी । तिरक सारी बखुलि अनुसारी ॥ ३ ॥

प्रभुके वचन सुनकर बानर दुरंत चले और उन्होंने आकर राजसिंहासनों की
भजना की । आकरके साथ विभीषणको सिंहासनपर बैठाकर राजसिद्ध किया और
सुख की ॥ ३ ॥

होरि कपि सबहीं सिर नय । सहित विभीषण प्रभु पतिं जाय ॥

सब रघुनाथ कोलि कपि छोड़े । कहि प्रिय बचन सुली सब कोन्हे ॥ ४ ॥

कनीने हाथ छोड़कर उनको सिर नवाये । परन्तु विभीषणजीसहित सब प्रभुके
पाग आये । तब श्रीरघुनाथने बानरोंको बुला लिया और प्रिय वचन कहकर सबको
सुखी किया ॥ ४ ॥

दो—किर सुखी कहि बानी सुध सज बल मुग्धहारे रिपु हयो ।

पायो विभीषण राज सिद्धि पुर आहु मुग्धहारे नित नयो ॥

मोदि सहित सुभ कीरति दुम्हारी परम प्रीति जो मारहि ।

संचार सिंधु अपार पार प्रयास बिनु नर पारहि ॥

मगधामने अमृतके समान वह बानी कहकर सबको सुखी किया कि तुम्हारे ही
बलसे यह प्रलय शत्रु नाश गम्य और विभीषणने राज्य पाया । इसके कारण तुम्हारा यह
सीमां लेकीने नित्य नया बना रहेगा । जो लोग मेरेसहित तुम्हारी सुभ कीर्तिको परम
प्रेमके साथ गावेंगे वे बिना ही परिश्रम एवं अपार संघासागरका पार पा सकेंगे ।

दो—प्रभु के वचन श्रवण सुनि गई अभादि कपि पुंख ।

बार बार सिर नवाहि गइहि सकल बर कंज ॥ १०६ ॥

प्रभुके वचन कानोंसे सुनकर बानर-समूह तृप्त नहीं होते । वे सब बार-बार सिर
नवाते हैं और फलकमलोंको फाड़ते हैं ॥ १०६ ॥

चौ०—पुनि प्रभु कोलि लियत अनुमन । कंका बाहु कहेत समधाना ॥

समाचार जानकिहि सुखपट्ट । तामु कुलकनै तुम्ह बलि जावहु ॥ १ ॥

सिर प्रभुने हनुमन्जीको बुला लिया । रामजीने कहा—तुम्ह लक्षा जाओ ।
जानकीको सब समाचार सुनाओ और उसका कुल-सम्पन्न केन्द्र तुम लो आओ ॥ २ ॥

धन हनुमंत बाहर पहुँचाए। सुनि विनिकरी सिखाकर धार ॥
 बहु प्रकार तिन्ह पूजा कीन्ही। जनकमुखा देखाहु पुनि चीन्ही ॥ २ ॥
 तब हनुमानजी नगरमें जाये। यह सुनकर राक्षस-राक्षसी [उनके सत्कारके लिये]
 दाढ़े। उन्होंने बहुत प्रकारसे हनुमानजीकी पूजा की और फिर श्रीबानकीजीको दिखल
 दिया ॥ २ ॥

दुरिहि ये प्रणम कपि कीन्हा। खड्गपति दूत जानकी चीन्हा ॥
 कहहु राक्ष प्रभु कुमाकिन्हा। कुसल अलुख कपि सेन समेटा ॥ ३ ॥
 हनुमानजीने [सीताजीको] दूरसे ही प्रणाम किया। बानकीजीने पहचान लिया कि
 ॥ वही श्रीरामराजकीका दूत है [और वृक्ष—] है तब। कबो, कुम्हके घाम में प्रभु
 छोटे भाई और बानकीजी सेनाबहित कुसलसे तो है ॥ ३ ॥

तब विधि कुसल कोसलाप्रीति। बाहु समर बीली दससीला ॥
 भविष्य राहु विभीषण पावो। सुनि कपि मचन हरप छर छावो ॥ ४ ॥
 [हनुमानजीने कहा—] है माता। कोसलपति श्रीरामजी उब प्रकारसे खुश
 हैं। उन्होंने संग्राममें बस सिखाके राक्षसको जीत लिया है और विभीषणने अकल राज्य
 प्राप्त किया है। हनुमानजीके बचन सुनकर सीताजीके हृदयमें हर्ष छा गया ॥ ४ ॥

छं०—अति हरप मन तब पुच्छक लेखन सकल कह पुनि पुनि रमा।
 का देखैं तोहि प्रैलोक महुँ कपि किमपि कहि बाणी समा ॥
 सुनु मातु मैं पावो अखिल जग राहु आहु व संसर्ष।
 एन जीति रिपुदल वंधु हुत पस्यामि राममनामयं ॥
 श्रीबानकीजीके हृदयमें अत्यन्त हर्ष हुआ। उनका शरीर पुलकित हो गया और
 नेत्रोंमें [आनन्दामुखाँका] जल छा गया। वे बार-बार कहती हैं—हे हनुमान्। मैं तुझे क्या
 हूँ। इस बाणी (समाचार) के समान तूनें ओझोंमें और कुछ भी नहीं है।
 [हनुमानजीने कहा—] है माता। मुनिने, मैंने आज निःशब्द हो कर कालका राज्य पा
 लिया, जो मैं एषमें शत्रुहन्ताको जीतकर भाईबहित विविधर श्रीरामजीको देना रहा हूँ।

दो०—सुनु सुत सद्गुन सकल तब हृदयें बसहुँ हनुमंत।
 सातुक्ल कोसलपति रहहुँ समेत जनन ॥ १०३ ॥
 [बानकीजीने कहा—] है पुत्र। तुन, समस्त सद्गुण तेरे हृदयमें बसें और
 हनुमान्। शेष (कामराजी) सहित कोसलपति प्रभु तथा तुझपर प्रणम रहे ॥ १०४ ॥

चो०—अप सीह जवन कहहु तुम्ह ताता। देखैं जवन स्वाम सुनु गाता ॥
 तब हनुमान राम यदि जाई। जनकमुखा के कुसल सुनाई ॥ १ ॥
 है बात। अब तुम वही उपाय करो जिससे मैं इन नेत्रोंसे प्रभुके कोसल स्वाम शरीरके
 दर्शन करूँ। अब श्रीरामचन्द्रजीके पास जाकर हनुमानजीने बानकीजीका कुशल-
 समाचार सुनाया ॥ १ ॥

सुनि छेदहु मनुकुलधवन। जोकि सिधु सुवसन विभीषण ॥
 मातमुखा के संभ सिखावहु। साधर जनकमुखाई के जगदु ॥ २ ॥
 सूर्यकुलधवन श्रीरामजीने सन्देश सुनकर मुकराव अंध और विभीषणको बुला
 किया [और कहा—] फलपुत्र हनुमानके साथ जावो और बानकीजीको आरकके
 साथ ले जावो ॥ २ ॥

सुखहि सकल गढ़ कई सीता । खेवहि सब भित्तिचरि बिनीत ॥
 बेनी विनीतव तिनहि सिखायो । तिनहु बहु भिषि मन्त्रन कवायो ॥ ३ ॥
 ये सब तुरंत ही जहाँ गये जहाँ सीताजी थीं । सब-की-सब राक्षसियाँ नम्रता-
 पूर्वक उनकी सेवा कर रही थीं । विनीतवजीने श्रीम ही उन लोगोंको समझा दिया ।
 उन्होंने बहुत प्रकारसे सीताजीको स्नान करवाया ॥ ३ ॥

बहु प्रकार भूषण पहिराए । सिक्किा रुचिर साजि पुनि व्याए ॥
 ता पर हरवि चली बैदेही । सुमिरि राम सुखधाम सनेही ॥ ४ ॥
 बहुत प्रकारके गहने पहनावे और फिर वे एक सुन्दर पालकी सजाकर ले आये ।
 सीताजी प्रथम होकर मुखके घाम पिक्तम श्रीरामजीका स्पर्शन करके उसपर हर्षके साथ बहों ॥
 वैषादि एकछ चहु पासा । चले सकल मन परम दुःखसा ॥

वैष्णव भाहु कीस सब जाए । एकछ कोवि निवारन भाए ॥ ५ ॥
 चारों ओर शायमें छड़ी बिने रक्तक चले । उनके मनमें परम उल्लास (उमंग) है ।
 रीठ-बानर सब दर्शन करनेके लिये आये; सब एकछ कोप करके उनकी रोकने लीके ॥ ५ ॥

बह रघुबीर कहा मन मानहु । सीतहि सका प्यार्हे मानहु ॥
 देखहु कवि सखी की साई । विश्वि कहा रघुनाथ गोसाई ॥ ६ ॥
 श्रीरघुबीरने कहा—हे मित्र ! मेरा कहना मानो और सीताको पैदल ले आओ; निजसे
 बानर उसको माताकी तरह देखें । गोसाईं श्रीरामजीने हँसकर ऐसा कहा ॥ ६ ॥

हुनि प्रभु बचन भाहु कवि हरये । मन ते सुखद सुमन बहु बरये ॥
 सीता प्रथम बनल नहुँ शरी । प्रगट कीन्हि यह बंजर साक्षी ॥ ७ ॥
 प्रभुके वचन सुनकर रीठ-बानर हर्षित हो गये । भाग्यवशसे देवताजीने बहुत-से
 दूक बरसाने । सीताजी [के मन्त्री स्वरूप] को पहले जमिमें रक्खा था । अब
 नीतरके छाही, भगवान् उनकी प्रकट करना चाहते हैं ॥ ७ ॥

दो—तेहि कारण करनविधि कहे कष्टक जुबाँद ।
 सुगत जातुषाली सब खर्या करे विषाद ॥ १०८ ॥
 इसी कारण कष्टाके मण्डल श्रीरामजीने सीतासे कुछ कहे वचन कहे; जिनमें
 इनकार सब राक्षसियों विचार करने लगीं ॥ १०८ ॥

पौ—प्रभु के वचन सीस धरि सीता । वीली यन क्य बचन पुसीत ॥
 कछिमन होहु परम के नेगी । पावक प्रगट कहुँ दुष्ट बैगी ॥ १ ॥
 प्रभुके वचनोंको फिर बदनकर मन; वचन और कर्मसे परित्र श्रीसीताजी-बोली—हे
 कर्मण ! तूम मेरे धर्मके नेगी (धर्म-कर्ममें सहयोग) बने और तुरंत माग तैयार करो । ॥
 सुनि छछिमन सीता की वाची । निह निवेक परम निशि सानी ॥
 कीचन सकल जोरि कर दोऊ । प्रभु सन नहुँ कहि सकत न शोक ॥ २ ॥
 श्रीसीताजीकी निह, निवेक, धर्म और नीतिसे कभी दुर्ह वाची सुनकर कर्मणजीके
 नेत्रोंमें [विषादके आँसुओंका] स्रव मर आया । वे दोनों एक-जोड़े खड़े खड़े । वे
 भी प्रभुसे कुछ कह नहीं सकते ॥ २ ॥

देखि राम सब छछिमन घाए । शक्क प्रगटि काट नहुँ सदा ॥
 पावक प्रगट देखि बैदेही । दुर्धर्ष हरष नहिँ सब कहुँ तेही ॥ ३ ॥
 फिर श्रीरामजीका दण देलकर कर्मणजी दोड़े और माग तैयार करके बहुत-

सी लकड़ी ले आये । अग्निको खूब बढ़ी हुई देसकर जनकीजीके हृदयमें हर्ष हुआ ।
उन्हें भय कुछ भी नहीं हुआ ॥ २ ॥

औं मन पच मम मम उर साहीं । तबि खुबीर आन गति साहीं ॥

सी कसानु सय कै गति जाना । सो न्है होत अखंड समान ॥ ४ ॥

[सीतानीने सीलसे कहा—] यदि मन, क्लेश और कष्टों में हृदयमें भीरघुबीर-
को जोड़कर दूसरी गति (अन्य किसीका आश्रय) नहीं है, तो अग्निदेव जो सबके
मनकी गति जानते हैं, [मेरे भी मनकी गति जानकर] मेरे लिये चन्दनके समान
शीतल हो जायें ॥ ४ ॥

६०—श्रीलंड सम पावक प्रवेश किये सुमिरि प्रभु मैथिली ।

अप कोसलेस महेस बंदित चरन रति अति निर्मली ॥

प्रतिविप भव लौकिक कलंक प्रचंड पावक भहुं अरे ।

प्रभु चरित काहुं न लखे नम सूर सिद्ध मुनि देखहि खरे ॥ १ ॥

प्रभु भीरघुबीरका सत्पथ करके, और उनके चरण महादेवजीके द्वारा बन्धित हैं
नया जिनमें सीताजीकी अत्यन्त विग्रह प्रीति है, उन सेकम्पतिकी अप बोझकर जानकीजी-
में खन्दनके समान शीतल हुई अग्निमें प्रवेश किया । प्रतिविप (सीताजीकी कबामूर्ति)
और उनका लौकिक कलंक प्रचण्ड अग्निमें जल गये । प्रभुके इन खरिबोंकी कितनी
नहीं जाना । देवता, सिद्ध और मुनि सब आकाशमें सड़े देखते हैं ॥ १ ॥

अरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य धृति अग विवित को ।

जिमि खीरसागर इंदिरा रामहि समर्पि अग्नि सो ॥

सो राम बाम विभाग रज्जति हविर अति सोसा भली ।

नय नील नीरज निकट मानहुं कमल पंकज की कली ॥ २ ॥

सब अग्निमें शरीर धारण करके वेदोंमें और नवतर्में प्रविष्ट वास्तविक श्री
(सीताजी) का हाथ पकड़ उन्हें भीरघुबीरको देते ही समर्पित किया जैसे खीरसागरने
विष्णुभगवान्को कल्मी समर्पित की थी । वे सीताजी भीरघुनाथजीके बाम भग्नमें
विराजित हुई । उनकी उत्तम शोभा अत्यन्त ही सुन्दर है । मानो वषे बिजे हुए नीले
कमलके पास सोनेके कमलकी कली लुप्तोमित हो ॥ २ ॥

श्री—अरपहि सुमन हरषि सूर बाताहि गपन निसान ।

गावहि किरन सुरपधू गावहि खड़ी विमान ॥ १०९ (क) ॥

देवता हर्षित होकर झूल चलने लगे । आकाशमें गँगे चलने लगे । किरन गाने
लगे । विमानोंपर चढ़ी अन्तर्यामि नाचने लगी ॥ १०९ (क) ॥

जनकसुता समेत प्रभु सोमा अमित अपार ।

देखि माछु कपि हरषे अप रघुपति सुख सार ॥ १०९ (ख) ॥

भीरघुनाथजीवन्दित प्रभु भीरघुनाथजीकी अक्षरमित और अपार शोभा देखकर
रौत-नानर हर्षित हो गये और सुखके सार भीरघुनाथजीकी अप बोझने लगे ॥ १०९ (ख) ॥

चौ—तब रघुपति अनुसन्धान चाहै । मातकि पकेल चरन सिख चाहै ॥

आप देव सदा स्मरणी । कवन कहहि जनु परमारी ॥ ११ ॥

तब भीरघुनाथजीकी आज्ञा पाकर इन्द्रका वांछि अशक्ति चरणोंमें किं नवानर
[रथ लेकर] चला गया । तदनन्तर वहाँके स्नानी देवता आये । वे ऐसे बचन कह रहे
हैं मानो वषे परमारी हो ॥ १ ॥

दीन घेनु दुखल सुखया । देष कीन्हि देखन्ह-पर दाया ॥
 चित्त द्रोह रत यह सब कस्यो । निज अब कस्य कुमारगामी ॥ २ ॥
 हे दीनबन्धु ! हे दबाहु खुराब ! हे परमदेव ! आपने देवताओंपर बड़ी दया की । विश्वके द्रोहमें तबपर यह दुष्ट कस्यो और कुमारोंपर चञ्जेवाला रावण अपने ही पासे नष्ट हो गया ॥ २ ॥

दुम्ह समरुप ब्रह्म अधिनासी । सदा पृथ्वी सइल उवसी ॥
 अकल अरुण अक्ष अनघ अवासय । अक्षित अमोघसक्ति कलामय ॥ ३ ॥
 आप समरुप, ब्रह्म, अकिन्नाधी, नित्य, एकरस, स्वभावसे ही उदासीन (शत्रु-मित्र-भावरहित), अकण्ठ, निर्गुण (शक्ति गुणोंसे रहित), अनन्त, निष्पाप, निर्द्विकार, अजेय, अमोघशक्ति (जिनकी शक्ति कभी व्यर्थ नहीं होती) और दयामय हैं ॥ ३ ॥
 भीम कलस पुराव नरहरी । कामन परसुराम बहु बरी ॥
 अब जब नाथ सुरन्ह दुष्ट पावो । बाण रघु धरि दुम्हई नसावो ॥ ४ ॥
 आपने ही मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन और परशुरामके शरीर धारण किये । हे नाथ ! जब-जब देवताओंने दुष्ट पाया, तब-तब अनेकों शरीर धारण करके आपने ही उनका दुष्ट नाश किया ॥ ४ ॥

यह सब मलिन सदा सुरदोही । कम छोभ मर रत अति कोही ॥
 अधम सिरोमणि तब एव पावा । यह हमरें मन बिलसय भावा ॥ ५ ॥
 यह दुष्ट, मलिनहृदय, देवताओंका नित्य शत्रु, कम, छेभ और मरके परायण तथा अत्यन्त कोपी था । ऐसे अधमोंके सिरोमणिदे भी आपका परमपद पा लिया । इस बातका हमारे मनमें आश्चर्य हुआ ॥ ५ ॥

हम देवता पवन अधिधारी । स्वतय रत प्रभु सारति बिसारी ॥
 भव प्रवाई संतत हम परे । अब प्रभु पाहि सरब अनुचरे ॥ ६ ॥
 हम देवता भेद अधिधारी होकर भी स्वार्थपरायण हो आपकी भक्तिको मुझकर गिराकर भवसागरके प्रवाह (कम-मृत्युके बह) में पड़े हैं । अब हे प्रभो ! हम आपकी शरणमें आ गये हैं, हमारी रक्षा कीजिये ॥ ६ ॥

दो०—करि विनती सुर सिद्ध सब रहे जहाँ तहाँ कर जोरि ।
 अति सप्रेम तन पुलकि विधि अस्तुति करत बहोरि ॥ ११० ॥
 विनती करके देवता धीर सिद्ध सब जहाँ-कहाँ हाथ जोड़े खड़े रहे । तब अत्यन्त प्रेमसे पुलकितशरीर होकर ब्रह्मजी लुबि करने लगे—॥ ११० ॥

१०—जय राम सदा सुखधाम धरे । रघुनाथके साथक आप धरे ॥
 भव धारन दारन सिंह प्रभो । गुन सागर कागर नाथ विभो ॥ १ ॥
 हे नित्य सुखधाम और [दुःखोंको हरनेवाले] हरि ! हे रघुनाथ धारण किये हुए रघुनाथजी ! आपकी वय हो । हे प्रभो ! आप जब (जन्म-मरण) स्वी हाथी-को विदीर्ण करनेके लिये सिद्धके उग्राल हैं । हे नाथ ! हे सर्वज्ञात्मक ! आप गुणोंके समुद्र और परम चतुर हैं ॥ १ ॥

उन काम अनेक अनूप छवी । गुन याचत सिद्ध मुनीन्द्र कवी ॥
 असु पावन रावन नाम मदा । समन्तज जघा करि कोप महा ॥ २ ॥
 आपके शरीरकी अनेकों कम्यदेवोंके सगान, परन्तु अनुपम छवि है । सिद्ध, मुनीश्वर

और कवि आपके गुण गाते रहते हैं ! आपका यह प्रिय है । आपने राजकन्या महा-
त्मको मन्दकी तरह श्रेष्ठ करते पकड़ लिया ॥ २ ॥

जब रत्न मंजव सोक अर्थ । कलशेय सदा प्रभु बोधमर्थ ॥

अवतार उदार अक्षर शुभ । यदि भार विमंजन ग्यानार्ज ॥ ३ ॥

हे प्रभो ! आप लक्ष्मणकी श्रद्धा देनेवाले, श्रेष्ठ और भक्त बाप भरनेवाले,
तथा शीघ्रदत्त और सत्य जनसत्ता हैं । आपका अवतार श्रेष्ठ, अक्षर दिव्य गुणों-
वाला, धृष्टीका भार उठा देनेवाला और जनसत्ता कष्ट है ॥ ३ ॥

अब व्यापकयेकमवादि सदा । कदम्बकर राम नमामि मुदा ॥

रघुवंश विभूतन दूषण हा । कल भूप विभीषण दीन रहा ॥ ४ ॥

[किन्तु अक्षर केनेर भी] आप सत्य, भक्त, व्यापक, एक (अतीत)
और अनारि हैं । हे कदम्बकी शान भीरुमयी ! मैं आपसे बड़े ही दृष्टि बाप लगाकर
करता हूँ । हे रघुकुलके आश्रय ! हे दूषण राक्षसों भरनेवाले तथा सदा रोनोंको
हरनेवाले ! विभीषण दीन था उसे आपने [लंकाका] यथा वश किया ॥ ४ ॥

गुणव्याप सिद्धांत नमामि अत्र । नित राम नमामि विभुर्विरज ॥

भुजर्व प्रथम प्रताप बल । कल हृद विरजं महा कुसल ॥ ५ ॥

हे गुण और शानके मण्डार ! हे अनारि ! हे भक्त, व्यापक और मायिक
विराटोंके रहित भीरु ! मैं आपसे विलय नमस्कार करता हूँ । आपके भुजधर्मोंका
प्रथम और वल प्रथम है । भुजधर्मोंके बल करनेमें आप परम विपुल हैं ॥ ५ ॥

विभु कारण दीन दक्षल शिव । सविधाम नमामि राम सविध ॥

मय ताप कारण कल पर । मय संमय दीन दीन हरे ॥ ६ ॥

हे विना ही कारण दीनोंकर दया तथा उनका शिव करनेवाले और शोभाके शान !
मैं श्रीमान्कीविरहित भावको नमस्कार करता हूँ । आप महाशक्तके होनेवाले हैं, कारण-
रूप प्रकृति और कार्यका कल दीनोंके पर हैं और अपने उत्तम होनेवाले कति दीनों-
को हरनेवाले हैं ॥ ६ ॥

सर व्याप मण्डल दीन धर । कलजाल सौख्य भूपर ॥

सुख भंदिर सुंदर भीरुमर्ज । मय वार मुखा ममतासम ॥ ७ ॥

आप नन्दोदर बाण, वपुष और तरुण कारण करनेवाले हैं । [कल] कलके
समान रहने, आपके नेत्र हैं । आप राजाओंमें श्रेष्ठ, सुखके मन्दिर, सुन्दर भी (कल-
मी) के बलम तथा मय (अक्षर) कल और बड़े ममताके साथ करनेवाले हैं ॥ ७ ॥

अनयद अक्षर न भोचर गो । सधरुप सदा सधरुप न यो ॥

इति वेद ददति न दंतकल । रवि अक्षर पित्रमभिज जया ॥ ८ ॥

आप अनन्य का दोषरहित हैं, अक्षर हैं, प्रविष्टोंके विरह नहीं हैं । उदा सर्व-
क-होये हुए भी आप वह सब कभी हुए ही नहीं, ऐक वेद करते हैं । पर- [कोई]
दक्षक (गोरी कल्पना) नहीं है । जैसे सूर्य और सूर्यक अक्षर अक्षर-ममता है और
जला नहीं भी है, जैसे ही आप भी संसारके सित तथा अक्षर दोनों ही हैं ॥ ८ ॥

कलकल विभो सब बाहर । निरक्षर तत्त्व सार ॥

विम सीधम दीन सरीर हरे । तम सक्ति निमम भूति परे ॥ ९ ॥

हे अक्षर प्रभो ! हे सब बाहर कलकल हैं जो अक्षरकल के बाहर सुख देव

रह हैं । [और] हे हरे ! हमारे [अमर] जीवन और देव (दिव्य) शरीरको धिक्कार है, जो हम आपकी भक्तिसे रहित हुए सगर्व (सांसारिक विषयोंमें) मूले पड़े हैं ॥ ९ ॥

अब दीनदयाल दया करिये । भक्ति मोरि विमोदकरी हरिये ॥

जेहि ते विपरीत किया करिये । कुछ सो सुख मानि सुखी करिये ॥ १० ॥

हे दीनदयाल ! अब दया कीजिये और मेरी उस विमोद उत्पन्न करनेवाली बुद्धिसे हर कीजिये, जिससे मैं विपरीत कर्म करता हूँ और जो दुःख है उसे सुख मानकर आनन्दसे विचरता हूँ ॥ १० ॥

कल जंजन मंजन रम्य छमा । पद पंकज सेवित संसु उमा ॥

रूप नायक दे वरदानमिदं । वरजानुज प्रेमु सदा सुभदं ॥ ११ ॥

आप दुष्पोंका लण्डन करनेवाले और-पुष्पोंकी रमणीय आभूषण हैं । आपके वरज-कला श्रीधन-पार्यवोंद्वारा सेवित हैं । हे राजाओंकी महाराम ! मुझे यह वरदान दीजिये कि आपके वरजकर्मोंमें सदा मेरा कल्याणदायक [अनन्य] प्रेम हो ॥ ११ ॥

दो०—विमल कीर्ति चतुराज प्रेम पुष्पक अति गात ।

सोमसिंधु बिलोकित लोचन नहीं अक्षत ॥ १११ ॥

इस प्रकार महाशयिने अत्यन्त प्रेम-पुष्पक शरीरसे विनयी की । सोमके समुद्र श्रीरामजीके दर्शन करते-करते उनके नेत्र तुल ही नहीं होते थे ॥ १११ ॥

चौ०—तेहि अवसर हसत्य तहाँ अह । तनय बिलोकि नयन अल छाए ॥

अनुज सहित प्रभु बंदन कोन्हा । आसिरवाद रिखें सब दीन्हा ॥ ११२ ॥

उसी समय दशरथजी वहाँ आये । पुत्र (श्रीरामजी) को देखकर उनके नेत्रोंमें [प्रेमाभूषण] बल छा गया । छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित प्रभुने उनकी वन्दना की और सब पिताजी उनकी आशीर्वाद दिया ॥ ११२ ॥

सात सकल सब पुत्र प्रभात । श्रीश्री अवध विस्तार रात ॥

सुनि सुत वचन प्रीति अति बाढ़ी । नयन ललित सेमावलि दाढ़ी ॥ ११३ ॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे तनय ! यह सब आपके पुष्पोंका प्रमाण है, जो मैंने अनेक राक्षसोंको जीत लिया । पुत्रके वचन सुनकर उनकी प्रीति अत्यन्त बढ़ गयी । नेत्रोंमें आँसू छा गया और रोमाश्ली लड़ी हो गयी ॥ ११३ ॥

सुरभि प्रथम प्रेम अनुमाता । पितृ पितृहि श्रेष्ठेष्ट हृद च्छाता ॥

तैसे उमा मोच्छ नहीं पायी । दशरथ जेद अगति मन छाये ॥ ११४ ॥

वीर्यवान्पत्नीने पहलेके (जीवितकालके) प्रेमको विचारकर पिताजी और देखकर ही उन्हें अपने स्वरूपको हृद छान कर दिया । हे उमा ! दशरथजीने भेदभक्तिमें अपना मन लगाया था; इसीसे उन्होंने [केवल] मोक्ष नहीं पाया ॥ ११४ ॥

सगुनोपासक मोच्छ न केही । तिनह कहैं राम भक्ति बिज देही ॥

बार बार करि प्रभुहि प्रकसा । दशरथ दक्षिण अह सुरवासा ॥ ११५ ॥

[मानासहित चक्षिदानन्दमय स्वरूपमूर्त दिव्यगुणयुक्त] सगुणस्वरूपकी उपासना करनेवाले भक्त इस प्रकारका मोक्ष लेते भी नहीं । उनको श्रीरामजी अपनी भक्ति देते हैं । प्रभुको [इष्टवर्ति] बार-बार प्रणाम करते दशरथजी हर्षित होकर देवलेखको चले गये ॥ ११५ ॥

दो०—अनुज आनखी सहित प्रभु कुसल कोसकांक्षीस ।

सोमा देखि हरषि मन अस्तुति कर सुर ईस ॥ ११६ ॥

छोटे भारं लक्षणजी और जानकीजीवहित परम कुशल प्रभु श्रीनैख्यबोहनी सोमा
देखकर देवराज रन्द्र मन्मं हर्षित होकर खुसि करने लगे—॥ ११२ ॥

छं०—जय राम सोमा धम्म । दायक प्रभु विधायाम ॥

भूत ब्रोन वर सर चाप । भुजदंड प्रचल प्रताप ॥ १ ॥

सोभाके धाम, घरआगतको विधाय देनेवाले, श्रेष्ठ तरकल, वन्य और बाघ धारण
हिये हुए, प्रचल प्रतापी भुजदण्डोंवाले श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो ॥ १ ॥

जय दूधनारि सरारि । मर्दन निस्तान्तर धारि ॥

याह दुर मारेड नाथ । भय देव सकल समाथ ॥ २ ॥

हे लख और दूधनके छत्र और राखसोंकी सेनाके मर्दन करनेवाले ! आपकी
तब हो ! हे नाथ ! आपने इस दुष्टकी सारा, मिलते सब देखा समाथ (हारकित)
हो गये ॥ २ ॥

जय हरक घरनी भार । महिमा लदर भवार ॥

जय रामनारि सुफल । किए जानुवान विहाल ॥ ३ ॥

हे भूमिका भार हरनेवाले ! हे भवार श्रेष्ठ मर्दिनावाले ! आपकी जय हो । हे रामनके
गनु ! हे सुफल ! आपकी जय हो । आपने राक्षसोंको देखल (लख-नख) कर दिया ॥ ३ ॥

लंकेस अति बल गर्व । किए बख सुख गंधर्व ॥

मुनि खिद सर गग नाथ । हठि पंथ सब कों लथ ॥ ४ ॥

लंकापति रावणको अपने कलत्र बहुत गर्व था । उसने देवता और गन्धर्व
मन्त्रीको अपने वामने कर लिख था । ओर यह मुनि, खिद, गनुष, एषी और नाथ आदि
मन्त्रीके दंडपूर्वक (हाथ धोकर) पीछे पड़ गया था ॥ ४ ॥

परब्रह्म रत अति दुर । पायो से फलु कपिद ॥

अथ सुनहु दीन दयाल । रक्षाव जयन विहाल ॥ ५ ॥

यह दूरदोले डोह करनेमें लज्ज और अत्यन्त दुष्ट था । उस पापीने बैसा ही कल
पाया । अब हे दीनोपर दया करनेवाले ! हे कमलके समान विशाल नेत्रोंवाले ! सुनिवे ॥ ५ ॥

मोहि रक्षा प्रति अभिमान । नहि कोय मोहि समाच ॥

अव देवि प्रभु पद कंज । यत मान प्रद हुआ पुंज ॥ ६ ॥

मुझे अत्यन्त अभिमान था कि मेरे समान कोई नहीं है, अब प्रभु (आप) के
चरणकमलके दर्शन करनेसे दुःखसमूहका देनेवाला मेरा यह अभिमान जाता रहा ॥ ६ ॥

कोठ ब्रह्म निर्गुन ध्याय । अन्धक जेहि श्रुति पाय ॥

मोहि भाव कोसल भूप । धीराम समुन सकय ॥ ७ ॥

कोई उन निर्गुन ब्रह्मका ध्यान करते हैं जिन्हें वेद अन्धक (निराकार) कहते ॥
परन्तु हे रामजी ! मुझे तो आपका यह शत्रुव कोसलपुत्र-सत्त्व ही प्रिय लगा है ॥ ७ ॥

वैदेहि अनुल समेत । मम हृदय करहु निकेत ॥

मोहि जानिये निज दास । हे भक्ति रमातिवास ॥ ८ ॥

श्रीमानसीजी और छोटे माई लक्ष्मणीजीवहित मेरे हृदयमें आपका घर बनाइये ।
हे रमानिवास ! मुझे अपना दास समझिये और अपनी भक्ति दीजिये ॥ ८ ॥

छं०—हे भक्ति रमानिवास जास हरन सरन सुखदापक ।

सुख धाम राम नामनि काम अनेक छवि रसुचयके ॥

सुर ब्रह्म रंजन हृद भंजन मनुजतनु अतुलितबलं ।
 ब्रह्मादि संपद सेव्य राम नाममि करुवा कोमलं ॥
 हे रमानिवास ! हे शरणागतके भक्तो हरनेवाले और तबे सब प्रकारका सुख देनेवाले ! मुझे अपनी भक्ति दीजिये । हे सुखके धाम ! हे अनेकों कामदेवोंको छवि-
 वाले रघुकुलके स्वामी श्रीरामचन्द्रजी ! मैं आपके नमस्कार करता हूँ । हे देवगृहको आनन्द देनेवाले, [वन-मृत्यु, हर्ष-विषाद, सुख-दुःख आदि] इन्द्रोंके नाश करने-
 वाले, मनुष्यगरीरधारी, अतुलनीय बलवाले, ब्रह्मा और शिव आदिसे सेवनीय, करुणासे कोमल श्रीरामजी ! मैं आपके नमस्कार करता हूँ ।

दो०—अथ हरि कृपा विलेखि मोहि व्यथसु देहु कृपाल ।

काह करौं सुनि प्रिय वचन बोले दीनदयाल ॥ ११३ ॥

हे कृपाढ । अब मेरी ओर कृपा करके (कृपावलिसे) देखकर आज्ञा दीजिये कि मैं क्या [सेवा] करूँ ? इन्द्रके ये प्रिय वचन सुनकर दीनदयाल श्रीरामजी बोले—॥ ११३ ॥

बौ०—सुष्ठु सुरपति कपि भाहु हमारे । परे भूमि निशिचरन्हि के मारे ॥

मम हित कानि तबे हृष्ट प्राप्ता । सकल निमाज सुरेश मुजापा ॥ १ ॥

हे देवराज ! तुमने हमारे वानर-भाह्य, जिन्हें निशाचरोंने मार बाधा है, पृथ्वीपर पड़े हैं । इन्होंने मेरे हिलके लिये अपना प्राण त्याग दिया । हे सुजान देवराज ! इन सबको जिला दो ॥ १ ॥

सुष्ठु वनेस प्रभु कै यह बानी । अति अवाध लखहि सुनि स्वामी ॥

प्रभु सक प्रभुभव नारि सिगाई । केवल सम्रदि दीन्हि बड़ाई ॥ २ ॥

[कान्तमुद्रादिभी करते हैं—] हे गरुड ! सुनिये, प्रभुके ये वचन अत्यन्त गहन (गहू) हैं । जानी सुनि ही इन्हें जान सकते हैं । प्रभु श्रीरामजी जिलेकीको मारकर जिला सकते हैं । यहाँ जो उन्होंने केवल इन्द्रको बड़ाई दी है ॥ २ ॥

सुधा वरपि कपि भाहु जिगाए । हरि तबे सब प्रभु पाई अपाए ॥

मुजावृष्टि कै दल कर । बिष्ट भाहु कपि सहि रजनीचर ॥ ३ ॥

इन्द्रने अमृत गरवाकर वानर-भाह्यओंको जिला दिया । सब हर्षित होकर उठे और प्रभुके पाव आये । अमृतकी वर्षा दोनों ही दलोंपर हुई । पर रीक-वानर ही जीवित हुए, राक्षस नहीं ॥ ३ ॥

रामाकर भए तिन्ह के मन । सुख भए सूर्य भव बंधन ॥

सुर असिक सब कपि भए सैख । बिष्ट सकल रघुपति कीं ईछा ॥ ४ ॥

क्योंकि राक्षसोंके मन तो मरते समस्त रामाकर हो गये थे । अतः वे सुख हो गये, उनके मन-बन्धन छूट गये । किन्तु वानर और भाह्य तो सब देवांच (महावाक्की जीजा-के परिकर) थे । इसलिये वे सब श्रीरघुनाथजीकी इच्छासे जीवित हो गये ॥ ४ ॥

राम सहित को दीन हितकारी । कीन्हे सुकृत निराचर झारी ॥

सकल सब धाम कबल रत खन । अति पाई जो सुनिबर पाव न ॥ ५ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके समान दीनोंका हित करनेवाला कौन है ? जिन्होंने सारे राक्षसोंको मुक्त कर दिया ! कुछ पापोंके पर और कभी खनकने सी वह यति पायी जिसे अनेक मुनि भी नहीं पाते ॥ ५ ॥

दो०—सुमन वरपि सब सुर चले चढ़ि चढ़ि बचिर विमान ।

देखि सुखवसर प्रभु पाई अत्यन्त संसु सुखान ॥ ११४ (क) ॥

फूँकी क्या करके ॥ देखा सुन्दर विमर्शपर चढ़-चढ़कर चले । तब तुमवर
जानकर सुजान शिवजी प्रभु श्रीराधचन्द्रजीके पास जाये—॥११४ (क) ॥

परम प्रीति कर जोरि जुग नखिन नखन भरि वारि ।

पुलकित सन गद्गद गिराँ विनय करत त्रिपुरारि ॥११४ (ख) ॥

और परम प्रेमेसे दोनों हाथ जोड़कर कमलके समान नेत्रोंमें मल भरकर, पुलकित
धरीर और गद्गद वाणीसे त्रिपुरारि शिवजी किन्ती करने लगे—॥११४ (ख) ॥

छं०—सामभिरक्षय रघुकुल चयक । घृत वरचापकचिरकरसायक ॥

मोह महा घन फटल प्रमंजन । संखय विपिन वनल सुर रंजन ॥ १ ॥

हे रघुकुलके स्वामी ! सुन्दर हाथोंमें श्रेष्ठ धनुष और सुन्दर बाण धारण किये
हुए भाप मेरी रक्षा कीजिये । आप महामोहरूपी मेघधनुर्दे [उड़ानेके] लिये प्रचण्ड
परन हैं, संखयरूपी वनके [भस्म करनेके] लिये शक्ति हैं और देवताओंको आनन्द
देनेवाले हैं ॥ १ ॥

भगुन सगुन गुनमंदिर सुंदर । अम तम प्रवल प्रतप विधाकर ॥

काम कोष मद गण पंचायन । बसहु निरंतर जन मन कामन ॥ २ ॥

आम निर्गुन, सगुन, दिव्य गुणोंके घाम और परम सुन्दर हैं । भ्रमरकी कण-
कारके [नाचके] लिये प्रवल प्रतापी सूर्य हैं । काम कोष और मंदरूपी हाथियोंके [वध-
के] लिये सिद्धके सनान शाय इत सेवके मनरूपी कममें निरंतर निवास कीजिये ॥ २ ॥

विषय मसोरय पुंज कंज यन । प्रथम तुषार उषार पार मन ॥

भव वारिधि मंदर परमं दर । वारय तारय संवृत्ति दुस्तर ॥ ३ ॥

विषयकामनाओंके समूहरूपी कमलवनके [नाचके] लिये आप प्रवल पारन हैं,
आप उषार और मन्दर गे हैं । भक्तकार [जो मयने] के लिये आप मन्दरप्रच
परत हैं । आप हमारे परम मयको दूर कीजिये और हमें दुस्तर संसारकावसे पार कीजिये !

स्वाम गत राजीव विमोचन । दीन रंधु प्रवतापति मोचन ॥

अनुज जानकी सहित निरंतर । बसहु राम नृप सम डर भंतर ॥ ४ ॥

मुनि रंजन महि मंजक मंजन । मुलसिद्धास प्रभु भास विखंडन ॥ ५ ॥

हे स्वामदुन्दर-धरीर ! हे कमलवन । हे दीनरन्ध्र ! हे शरणागतको दूषणके
तुद्धानेवाले । हे राजा रामचन्द्रजी ! आप जेठे माई लक्ष्मण और बानभोजीसहित निरंतर
मेरे हृदयके अंदर निवास कीजिये ! आप मुनिर्वासो आनन्द देनेवाले, दृष्टीमग्नवको
भूषण, दुष्क्रीडाको प्रभु और मयप्र नाश करनेवाले हैं ॥ ४-५ ॥

श्री०—नाथ जबहि कोसलपुरी छोडहि तिलक तुम्हार ।

कृपासिंधु मैं आतय देखन खरित उदार ॥ ११५ ॥

हे नाथ ! जब अयोध्यापुरीमें आपका रामलिलक होगा, तब हे कृपातरंग ! मैं
आपकी उधार लील देखने आऊँगा ॥ ११५ ॥

श्री०—करि विनती कब संसु सिपाय । तब प्रभु निरत विनीतनु जाए ॥

नाद परन सिद्ध कब सहु कबी । विनय धुनहु प्रभु सारंगरागी ॥ १ ॥

जब शिवजी विनती करके चले गये, तब विनीतवली प्रभुके पास जाये और
परपोंमें लिर नवाकर कोमल वाणीसे बोले—हे शत्रुघनरूपके धारण करनेवाले प्रभो !
मेरी विनती सुनिये—॥ १ ॥

सकुल सवळ प्रभु रावण मरयो । धवन जस त्रिभुवन बिसारयो ॥
 हीन मखेन हीन भवि जाती । खे पर कृपा कीन्हि बहु भाँती ॥ २ ॥
 आपने कुल और सेनासहित रावणका वध किया । त्रिभुवनमें अपना पवित्र यश
 फैलाया और भुक्त दीन, पपी, बुद्धिहीन और जातिहीनपर बहुत प्रकारसे कृपा की ॥ २ ॥
 अम जन गृह पुनीत प्रभु कीने । मय्यनु करिअ समर अम छीने ॥
 देखि जेस संहिर संपदा । देहु कृपाळ कपिन्ह कहँ सुदा ॥ ३ ॥
 अब हे प्रभु ! इस दासके घरको पवित्र कीजिये और वहाँ चलकर खान कीजिये,
 जिससे पुद्गली यकावट दूर हो जाय ! हे कुलकुल ! खानाना, मङ्गल और सम्पत्तिका निरीक्षण
 कर प्रसन्नतापूर्वक मानरोंको दीजिये ॥ ३ ॥

सच विधि नाथ मोहि बननाह्य । पुनि मोहि सहित जवचनुर जाह्य ॥
 सुगत वचन सुहु दीनरपाज । सकळ भए हो नयन सिहाका ॥ ४ ॥
 हे नाथ ! मुझे सब प्रकारसे अपना छीन्जिये और फिर हे प्रभो ! मुझे साथ लेकर
 जयोपपासीको पधारिये । विभीषणजीके कोमल वचन सुनते ही दीनदयालु प्रभुके दोनों
 पितामह नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुओंका] जल भर आया ॥ ४ ॥

चौ०—तोर कोस गृह मोर सब सत्य वचन सुनु अमर ।
 भरत दशा सुभिरत मोहि निमिष कल्प सम जात ॥ ११६(क) ॥
 [श्रीरामजीने कहा—] हे भाई ! सुनो, दुग्धारा खजाना और पर सब मेरा ही
 है, यह बात सच है । पर भरतजी दशा वाद करके मुझे एक-एक पल कल्पके समान
 बीत रहा है ॥ ११६ (क) ॥

तापस्त केव गत कुल जप्त निरंतर मोहि ।
 देखीं वेमि खो गतनु करु सखा निहोरखँ तोहि ॥ ११६(ख) ॥
 तपस्वीके वेपमें कुल (दुःखके) शरीरसे निरन्तर मेरा नाम-जप कर रहे हैं । हे
 सखा ! वही उपाय करो जिससे मैं जल्दी-से-जल्दी उन्हें देख सकूँ । मैं तुमसे निहोरा
 (अनुरोध) करता हूँ ॥ ११६ (ख) ॥

पीतें मय्यधि जाउँ जी विमत न पावउँ चीर ।
 सुभिरत जनुअ प्रीति प्रभु पुनि पुनि पुलक सरीर ॥ ११६(ग) ॥
 यदि जबवि चीर नानेअ जाता हूँ तो माईको जीअ न पाउँगा । छोटे भाई
 भरतजीकी प्रीतिका सरण करके प्रभुकर शरीर बार-बार पुलकित हो रहा है ॥ ११६ (ग) ॥

कोहु कल्प मरि राहु तुम्ह मोहि सुमिरेहु मच माहि ।
 पुनि मम घाम पाखहु जहाँ संत सब जाहि ॥ ११६(घ) ॥
 [श्रीरामजीने फिर कहा—] हे विभीषण ! तुम कल्पमर राज्य करना, मनमें
 मेरा निरन्तर सरण करते रहना । फिर तुम मेरे सब प्राप्तको प्र जाओगे जहाँ सब
 संत जाते हैं ॥ ११६ (घ) ॥

चौ०—सुगत विभीषत वचन राम के । हरषि खो बढ कुवाधाम के ॥
 मानर आहु सकळ हतयाने । यहि प्रभुपद सुन बिमल बखाने ॥ १ ॥
 श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनते ही विभीषणजीने हर्षित होकर कृपाके पाम श्रीरामजी-
 के चरण पकड़ लिये । सभी मानर-माद हर्षित हो गये और प्रभुके चरण पकड़कर उनके
 निर्मल गुणोंका बखान करने लगे ॥ १ ॥

कुरि विभीषण मग्न सिंहासो । यनि सन वसन किमन भ्रातृ ॥

हे पुण्ड्र प्रभु क्यों लख । हंस करि कुमसिंधु लख भाग्य ॥ २ ॥

फिर विभीषणबी ब्रह्मको बने और उन्होंने मयिनोके लखों (२०) से और वनोंमें विमानको भर दिया । फिर उस बुध्नविमानको धाकर प्रभुके कामने लखा । तब कृष्णलगर श्रीरामजीने हँसकर कहा—॥ २ ॥

चदि विमान सुख सखा विभीषण । यमन लख लख पट भूषण ॥

नर पर बाद विभीषण लखही । यधि दिए मयि अंतर लखही ॥ ३ ॥

हे लख विभीषण ! तुमने विमानपर चढ़कर आकाशमें जाकर क्यों और सहनको करता हो । तब (आकाश दुन्दुबे) ही विभीषणजीने आपसकमें जाकर सब मयिनों और वनोंको भरवा दिया ॥ ३ ॥

ओह ओह मन भाग्य लौह केहीं । यधि सुख मेदि यरि करि देहीं ॥

राहु भी लख समेत । परम लौहकी कृपा निकेत ॥ ४ ॥

शिल्पके मनको वो लखन छाता है, वह वही से लेख है । मयिनोके मुँहमें लेख बनार फिर उगई जातेकी बीच न लखकर लख देते हैं । यह लखकर देखकर परम विनोदी और कृपाके धाम श्रीरामजी खेताकी और लखनखेच्छित हैंउने कहे ॥ ४ ॥

हे—मुनि लेहि ध्यान न पावहि मेति मेदि कह वेद ।

कृपासिंधु सोह करिन्ह सन करत अनेक विमोह ॥ ११७ (क) ॥

गिनको मुनि भानमें भी नहीं करते, किन्हीं वेद मेदि-मेदि करते हैं, हे ही कृपाके सनुत्र श्रीरामकी कान्तोंके लख अनेकों प्रकारके विनोद कर रहे हैं ॥ ११७ (क) ॥

राम लोग जब दान लय सखा मक दल लेख ।

राम कृपा नहि करहि तसि जसि निष्केवल प्रेम ॥ ११७ (ख) ॥

[शिष्यी करते हैं—] हे राम ! अनेकों प्रकारके योग, लय, दान, लय, पर, पर, मत और नियम करनेपर भी श्रीरामजनकी ॥॥ कृपा नहीं करते वैसी कलन्ध-प्रेम होनेपर करते हैं ॥ ११७ (ख) ॥

चौ०—भाह्य करिन्ह बट भूषण पाए । पहिरि पहिरि लखसिंधु धर्म भाए ॥

सखा सिबल देसि सन कीस । पुनि पुनि हंसत कोषलाभीसा ॥ १ ॥

भाह्यकों और वान्तोंने अपने-गहनेपाये और उन्हें धन-धनकर वे सीरुनायकीके पास जाये । अनेकों जातिपोंके कान्तोंकी देखकर कोषलाभी श्रीरामजी बार-बार हंस रहे हैं ॥ १ ॥

विश्व सखनि हर भीन्ही दास । खेले सुख नयन सुखापा ॥

दुन्दुबे कह मैं कलत्र मरयो । शिखरविभीषण कहें पुनि सारयो ॥ २ ॥

श्रीरामनाथजीने कुम्हारप्रिये देखकर खपर दया की । फिर ये कोमल पवन बोले—हे माहरी ! दुन्दुबे ही बन्दे मैं लखके भरा और फिर विभीषणका राजविलक विना ॥ २ ॥

निन मित्र गृह सब दुन्दुब सन भाह्य । दुमिन्दु ओहि करिन्ह करि काह्य ॥

कुन्त नयन प्रेमकुल कन्त । मोरि पानि लेके लय सखर ॥ ३ ॥

अन दुम लय अपने-अपने घर आये । मेरा सखन करते खदा और किसीके बरदा नहीं । ये-वचन सुनते ही गन नाम प्रेममें निहित होकर हाम ओड़कर अदर-पूर्वक बोले—॥ ३ ॥

प्रभु मोह कहहु तुम्हहि सब सोहा । हमरें होत कचन भुनि मोहा ॥

हीन जाति कपि किं सभाया । तुम्ह त्रैलोक्य ईस खुनाया ॥ ४ ॥

प्रभो ! आप वो कुछ भी कहें, आपको सब सोहता है । पर आपके कचन सुनकर हमको मोह होता है । हे खुनायजी ! आप तीनों लोकोंके ईश्वर हैं । हम जानकोंकी हीन जातिकर ही आपने सनाथ (कृपार्थ) किया है ॥ ४ ॥

भुनि प्रभु कचन छाव ॥ सरहीं । सकल कहूँ लक्षपति हित करहीं ॥

देखि राज कल जाकर छिन्न । प्रेम मान नहिं सुद कैं ईडा ॥ ५ ॥

प्रभुके [देखे] कचन सुनकर हम लक्ष्मणसे मिले भरे जा रहे हैं । कहाँ मच्छर भी नष्टका रित कर सकते हैं ! श्रीरामजीकी कल देखकर रीक-भानर प्रेममें मग्न हो गये । उनकी चर गानेकी इच्छा नहीं है ॥ ५ ॥

तो—प्रभु प्रेरित कपि भाहु सब राम रूप उर रजि ।

हरष विषाद सहित सबे विनय विविध विधि भावि ॥ ११८ (क) ॥

परन्तु प्रभुकी प्रेरणा (आज्ञा) से सब वानर-मादृ श्रीरामजीके रूपको हृदयमें रसकर और अनेकों प्रकारसे विनयी करके हर्ष और विषादसहित सबके चले ॥ ११८ (क) ॥

कपिपति नील रीछपति जगद् गढ हनुमान ।

सहित विभीषण अपर जे जूयप कपि बहवान ॥ ११८ (ख) ॥

मानरराज सुग्रीव, नील, शूछपान जम्बवान्, अंगद, नल और हनुमान तथा विभीषणसहित और जो जूयप वानर सेनापति हैं ॥ ११८ (ख) ॥

कहि न सकाई कहु प्रेम बस मरि मरि खोजन बारि ।

सम्मुख चित्तबहिं राम रम नयन निमेष निघारि ॥ ११८ (ग) ॥

वे कुछ कह नहीं सकते; प्रेमबस नेत्रोंमें सब भर-भरकर, नेत्रोंका पलक मात्रा छोड़कर (टफटफी छाने) सम्मुख होकर श्रीरामजीकी ओर देख रहे हैं ॥ ११८ (ग) ॥

चौ—अतिरूप प्रीति देखि लुगुआई । कीन्हे सकल विमान बढ़ाई ॥

मन महुँ किन जग सिन्ध कन्धे । बरर विसिद्धि विमान पकाये ॥ १ ॥

श्रीरामायजीने उनका अतिरूप प्रेम देखकर सबको विमानपर चढ़ा दिया । रामानन्द मन-ही-मन निरवगुणोंमें स्थिर नष्टकर उत्तर दिशामुँही और विमान चलाया ॥ १ ॥

बलव विमान कोन्हाइ छ होई । सब खुशीर न्हाइ सब कोई ॥

सिंहासन गति सब अनीहर । श्री समेत प्रभु बँडे छ पर ॥ २ ॥

विमानके चढ़ते समय कहा ओर हो रहा है । कोई श्रीरामजीकी नय छह रहे हैं । विमानमें एक जम्बव लँचा गन्धर्व सिंहासन है । उसपर वीरान्वीतसिंह प्रभु श्रीरामचन्द्रजी निरजमान हो गये ॥ २ ॥

राजव राहु सहित जमिनी । गेह रांग प्रभु सब दामिनी ॥

कथि विमानु फलेन गति जगदुर । कीन्ही सुमन छुटि हरि सु ॥ ३ ॥

पक्षीसहित श्रीरामजी ऐसे सुयोग्य हो रहे हैं मानो सुमेरुके शिखरपर विजयी-वाहिन श्याम मेघ हो । सुन्दर विमान कहीं भीमकाते चला । देखता दुर्लभ हुए और उन्होंने फूलोंकी वर्षा की ॥ ३ ॥

राम सुखद चलि निविध नवारी । जाकर सर छनि निर्मल बारी ॥

सगुन होहि सुंदर कहूँ पाम्ब । सब प्रसन्न विरल सब जग ॥ ४ ॥

अत्यन्त सुख देनेवाली तीन प्रकारकी (शीतल, मन्द, सुगन्धित) वायु चलने लगी । समुद्र, तालाब और नदियोंका जल निर्मल हो गया । चारों ओर सुन्दर सज्जन होने लगे । उनके मन प्रसन्न हैं, आकाश और दिशाएँ निर्मल हैं ॥ ४ ॥

कह रामजीर देखु रस सीता । जसिमाय ह्यौ हलके हँससीत ॥

इन्दुमान् जगद के भरे । रस गहि परे मिलाकर भरे ॥ ५ ॥

श्रीरघुवीरने कहा—हे सीते ! रसभूमि देखो । जसमाने वहाँ इन्द्रको जीतनेवाले मेघनादको मारा था । इन्दुमान् और जगदके भरे हुए वे भारी-भारी निशाचर रसभूमिमें फँसे हैं ॥ ५ ॥

हुंमकरम तबब हो गई । जहाँ हले सुर मुनि दुखहाई ॥ ६ ॥

देवताओं और मुनियोंको दुःख देनेवाले कुम्भकर्ण और रावण दोनों माई यहाँ नारे मारे ।

दो०—इहाँ सेतु बाँध्यों अरु धायेउँ सिव सुख धाम ।

सीता सहित कृपानिधि रसभुदि करिन्ह प्रनाम ॥ ११९ (क) ॥

मैंने यहाँ पुन बाँधा (बँधवाया) और सुखधाम श्रीशिवजीकी स्थापना की । तदनन्तर कृपानिधायन श्रीरामजीने सीताजीसहित श्रीरामेश्वर महादेवको प्रणाम किया ॥ ११९ (क) ॥

जहाँ जहाँ कृपासिधु बन कोन्ह बस विभाम ।

सकल देखाय जानकिहि कहे सबहि के राम ॥ ११९ (ख) ॥

बनमें जहाँ-जहाँ कृपासागर श्रीरामचन्द्रजीने निवास और विभाम किया था, वे सब स्थान प्रभुने जानकीजीसे दिखलाने और उनके नाम बताये ॥ ११९ (ख) ॥

चौ०—सुरत विमल तहाँ पति भवा । दंडक बन जई परम सुहावा ॥

हुंमनादि मुनिमण्डक पावा । यद् रामु सब कैं भवना ॥ १ ॥

विमान धीम ही यहाँ बसा आन्य जहाँ परम सुन्दर दण्डकवन था, और भगवत्पद जाति श्रुत-से धुनिरान रहते थे । श्रीरामजी इन सबके स्थानोंमें गये ॥ १ ॥

सकल विधिद सन पाइ मछीसा । चित्रकूट भए भगरीसा ॥

हाँ हरि मुनिद कैर संछीसा । पल विमलु वहाँ ते थोसा ॥ ५ ॥

सम्पूर्ण श्रुतिपौठे आशीर्वाद पाकर चण्डीसर श्रीरामजी चित्रकूट भाये । यहाँ मुनियोंको सम्पूट किया । [फिर] मित्रन वहाँसे भाये देवीके साथ गया ॥ ५ ॥

बहुनि राम जानकिहि देखाई । जमुक कलि मक हरि सिंहाई ॥

मुनि देवी सुस्सरी सुगीत । राम कहा प्रवास कर सीता ॥ ३ ॥

फिर श्रीरामजीने ज्ञानप्रीतीको कमिमुक्तके पार्ष्वेय हरण करनेवाली दुहायनी यमुनाजीके दर्शन कराये । फिर पवित्र गङ्गाजीके दर्शन किये । श्रीरामजीने कहा—हे सीते ! इन्हें प्रणाम करो ॥ ३ ॥

सीतापति मुनि देख प्रवास । मिस्रव जम्न कोटि का साया ॥

देख परम पावनि मुनि केही । हरि छेक हरि कोट निसेनी ॥ ४ ॥

मुनि देख कवचपुरी अति पावनि । तिमिब ताप सब रोय वसावनि ॥ ५ ॥

फिर सीतारज प्रयागको देखो, जिसके दर्शनसे ही करोड़ों जन्मोंके पाप मारा जाते हैं । फिर परम पवित्र त्रिवेणीजीके दर्शन करो, जो शोखोंको हरनेवाली और भीतरिके परम धाम [पहुँचने] के लिये सीढ़ीके समान है । फिर अत्यन्त पवित्र अयोध्यापुरीके दर्शन करो, जो दोनों प्रकारके पापों और सब (आवागमनस्थी) रोमका नाश करनेवाली है ॥ ४-५ ॥

दो०—सीता सहित जवध कहुँ कोन्ह कृपाल प्रनाम ।

सुखल नयन सन पुलकित पुनि पुनि हरपित राम ॥ १२० (क) ॥

यो कहकर कृपाल श्रीरामजीने सीताजीसहित जवधपुरीको प्रणाम किया ! तबतनेत्र और पुलकितचरीर होकर श्रीरामजी बार-बार हँसित हो रहे हैं ॥ १२० (क) ॥

पुनि प्रभु आइ त्रिवेनी हरपित मल्लसु कोन्ह ।

करिन्ह सहित विप्रन्ह कहुँ दान विविध विधि दीन्ह ॥ १२० (ख) ॥

फिर त्रिवेणीमें आकर प्रभुने हँसित होकर जलन किया और वानरोंसहित ब्राह्मणोंको अनेकों प्रकारके दान दिये ॥ १२० (ख) ॥

चौ०—प्रभु हनुमँसहि कहा सुमार्द । धरि बहु कप जवधपुर जाई ॥

भरतहि कुलल हमारी सुखमहु । समान्य छे सुभ्र चलि आपहु ॥ १ ॥

तबनन्तर प्रभुने हनुमान्जीको समझाकर कहा—तुम ब्राह्मणोंका कप धरकर भवधपुरीको जाओ । भरतको हमारी कुलल सुनाना और उनका समान्य लेकर चले जाना ।

सुख पवनसुख गवनत भवज । तब प्रभु मरुगज पाई गपक ॥

गामा विधि मुनि पूषा कीन्ही । अस्तुदि करि पुनि आसिपहीन्ही ॥ २ ॥

पवनपुत्र हनुमान्जी तुरंत ही चल दिये । तब प्रभु मरुगजकी पाल गये । मुनिने [शङ्खशिखे] उनकी अनेकों प्रकारसे पूषा की और स्तुति की, और फिर [कीर्तनी दक्षिणे] आशीर्वाद दिया ॥ २ ॥

मुनि पव वंदि कुण्ड भर भोरी । बधि विमान प्रभु चले बहोरी ॥

इहाँ निवार्य सुना प्रभु आप । गाय गान कहुँ कोन मोक्षाय ॥ ३ ॥

तहाँ राप जोड़कर तथा मुनिके चरणोंकी चन्दन करके प्रभु विमानपर बद्धकर फिर (आगे) चले । यहाँ जब निषादरजने सुना कि प्रभु वा गये, तब उन्होंने 'नाम क्यों है ? नाम क्यों है ?' पुकारते हुए लोगोंको बुलाया ॥ ३ ॥

सुरसरि गवि आन छव जगो । ज्योत छव प्रभु आवसु पावो ॥

तब जौनीं पूंवीं सुरसरी । बहु प्रकार पुनि चरगम्हि परी ॥ ४ ॥

इतनेमें ही विमान गङ्गाजीको ओंघकर [इस पार] आ गया और प्रभुकी आशा पाकर वह किनारेपर उतरा । तब सीताजी बहुत प्रकारसे गङ्गाजीकी पूजा करके फिर उनके चरणोंपर गिरी ॥ ४ ॥

दीप्ति जलसि हरषि मज बंसा । सुंदरि तब अधिपात भर्मसा ॥

सुगत गुहा घावठ प्रेमसुख । अमन विमल परम सुख संकुल ॥ ५ ॥

गङ्गाजीने मममें हँसित होकर आशीर्वाद दिया—हे सुन्दरी ! दुन्दारां सुशाय अफण्ड हो । गङ्गानके कृपार उतरनेकी बात सुनते ही निषादरज गुह प्रेममें विडल होकर दौड़ा । परम सुखसे परिपूर्ण होकर वह प्रभुके समीप आया ॥ ५ ॥

प्रभुहि सहित विमोहि कैदी । परेड अगनि सन मुधि नहि ठेही ॥

प्रीति परम विमोहि खसई । हरषि उमझ लिको डर छाई ॥ ६ ॥

जौर श्रीमानजीसहित प्रभुको देखकर वह [अमन्य-समाधिमें भग्न होकर] पृथ्वीपर गिर पड़ा, उसे अगिनी मुचि न रही । श्रीरामजीने उसका परम प्रेम देखकर उसे उठाकर हँसि वाप हृदयसे बसा लिया ॥ ६ ॥

छं०—लियो हृदयें लाइ कृपा निष्पन्न सुजान रायें रमापटी ।

बैठारि परम समीप वृत्ती कुसल सो कर बीनती ॥

भव कुशल पद पंकज विलोकि विरंचि सेकर सेन्य जे ।

सुख धाम पूरवत्तम राम नमामि राम नमामि ते ॥ १ ॥

सुजानोंके राजा (शिरोमणि), लक्ष्मीकान्त, कृपाविष्कन भगवान्ने उसको हृदयसे लगा लिया और अत्यन्त निकट बैठकर कुशल पूछी । वह विनती करने लगा—आपके जो चरणकमल ब्रह्माजी और सृष्टिजीसे सेवित हैं, उनके दर्शन करके मैं बर सफल हूँ । हे सुखधाम ! हे पूर्णकाम श्रीरामजी ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ, नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

सय भौंति अघम निपाद सो हरि भरत ज्यों डर छाह्यो ।

मतिमंद मुलसीदास सो प्रभु मोह बस विसराह्यो ॥

यह रावन्हारि चरित पावन राम पद रतिप्रद लया ।

कामादिहर विन्यानकर सुर सिद्ध मुनि गार्वाहि मुदा ॥ २ ॥

सब प्रकारसे नीच उस निपादको भगवान्ने भरतजीकी भाँति हृदयसे लगा लिया । मुलसीदासजी कहते हैं—इत मन्दबुद्धिने (मैंने) मोहबस उस प्रभुको भुला दिया । रावणके शत्रुका वह पवित्र करनेवाला चरित सदा ही श्रीरामजीके चरणोंमें प्रीति उत्पन्न करनेवाला है । यह कामादि विघ्नरोका हलनेवाला और [भगवान्के स्वरूपका] विशेष ज्ञान उत्पन्न करनेवाला है । देवता, सिद्ध और मुनि ध्यानदिन होकर इसे गाते हैं ॥ २ ॥

दो०—समर विजय रघुवीर के करित जे सुगर्हि सुखल ।

विजय विषेक विभूति नित तिन्हहि देखि भगवान ॥ १२१ (क) ॥

जो सुखान लोग श्रीरघुवीरकी समरविजयसम्बन्धी कीलको सुनते हैं, उनको भगवान् नित्य विजय, विषेक और विभूति (ऐश्वर्य) देते हैं ॥ १२१ (क) ॥

यह कलिमल मलायतन भन करि देखु विचार ।

धीरघुनाथ नाम तजि नहिनि आव भधर ॥ १२१ (ख) ॥

भरे मन ! विचार करके देख । यह कलिमल पायोंका घर है । इन्हीं धीरघुनाथजीके नामको छोड़कर [पायोंसे चबनेके लिये] दूसरा कोई आहार नहीं है ॥ १२१ (ख) ॥

रासपारायण, सत्तार्हसर्वा विग्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने वल्ल सोपानः समाप्तः ।

कलियुगके समस्त पापोंका नाश करनेवाले श्रीरामचरितमानसका

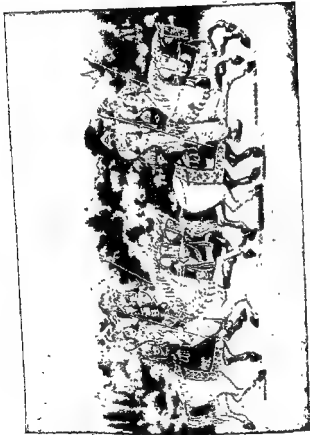
यह लंका सोपान समाप्त हुआ ।

(लंकाकाण्ड समाप्त)

गुरुवन्दन



आ मे गुरु आराधयेत् ।
अमुञ्च संहितं मतिं पुच्छन् तत्त्वम् ॥



सेवादि सामान्यतः खलु भावै । यमः कथलः एति अति अविष्कारै ।

[१५५]



श्रीमन्नारायण
श्रीमन्नारायणो विनयो

श्रीरामचरितमानस

सप्तम सोपान

उत्तरकाण्ड

श्लोक

केकीकण्ठमलीकं सुरवरविषलसहितप्रदायप्रसिद्धं
श्लेष्माक्षं पीतवर्णं सरसिजनन्यं सर्वदा सुप्रसन्नम् ।
पापौ मर्यादधायं कपिनिकरयुतं कन्धुना सेव्यमार्जं
भीमोक्षं जायसीशं रघुवरमनिशं पुष्पकाक्षद्वाराम् ॥ १ ॥

मोरके कण्ठकी आमाके समान (इतिहास) नीलवर्ण, देवतानोंमें सेव्य, ब्राह्मण (भृगुजी) के वरणकमळे विहारे सुखेभित, शोभासे पूर्ण, पीताम्बरधारी, कदम्बनेत्र, तथा परम प्रसन्न, शरीरमें बाण और भगुन चारुन बिने हुए, बानरसमूहसे युक्त, मार्ज वस्त्रमणीसे सेवित, सुदि बिने जाने योग्य, श्रीजानकीजीके पति, रघुकुलसेव्य, पुष्पकाक्षविमानपर सवार श्रीरामचन्द्रजीके मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

कोसलेन्द्रपदकक्षमन्त्रुषौ कोमलाचममहेहापन्दिता ।

जानकीकरसरोजललितौ चित्तकस्य मन्त्रुषुलङ्घितौ ॥ २ ॥

कोसलपुरीके लामे श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर और कोमल दोनों चरणकमल जहाजी और चिन्तनीके द्वारा शब्दित हैं, श्रीजानकीजीके करकमलोंसे दुष्टरासे हुए हैं और चिन्तन करनेवालेके मनकपी भीके मिल सगी हैं अर्थात् चिन्तन करनेवालोंके मनकपी भ्रमर तथा उन चरणकमलोंमें क्या रहता है ॥ २ ॥

कुन्ददन्तुदरगौरसुन्दरं अम्बिकापतिममीप्रसिद्धिदम् ।

कायणीककलकललोचनं भीमि शङ्करममङ्गमोचनम् ॥ ३ ॥

कुन्दके फूल, चन्द्रमा और बंलके समान सुन्दर गौरवर्ण, अम्बिकापति श्रीपार्वतीजीके पति, वाञ्छित फलके देनेवाले, [बुद्धिपूर्ण तथा] दया करनेवाले, सुन्दर कमलोंके समान नेत्रवाले, कदम्बनेत्रे सुन्दरनेत्रे, [कल्याणकारी] श्रीसुकुलजीके मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

रो०—रहा एक दिन अञ्जलि कर अति भावत पुर लेख ।

अर्धे तर्धे सोवदि गारि नर कृष तन राम वियोग ॥

[श्रीरामजीके श्रोत्रनेत्री] अवभिन्न एक ही दिन रात्री वह गया, मत्पण नगरके लोग बहुत आदर (अर्ध) हो रहे हैं। उनके विधेयमें तुम्हें हुए श्री-गुरुन वहाँ-हाँ रोच (विचार) कर रहे हैं [कि क्या बात है, श्रीरामजी क्यों नहीं आते] ।

सगुन होई सुन्दर सकल मन प्रसन्न सब केर ।
 प्रभु आगमन जगत्त जनु सबर रस्य खहुँ केर ॥
 इतनेमैं ही सब सुन्दर गङ्गुन होने ज्यो और सबके मन प्रसन्न हो गये । नगर भी
 नरौ ओरते रमणीय हो गया । मनो वे सबके-एक विह्व प्रभुके [भ्रम] आगमनको
 बना रहे हैं ।

कौसल्यपति महि सब मन अबंद अस होइ ।
 भायव प्रभु श्री अनुज जुत कहन चहुँत अब कोइ ॥
 कौसल्या आदि सब माताओंके मनमें ऐसा आनन्द हो रहा है जैसे भगी कोई
 कहना ही चाहता है कि सीताजी और लक्ष्मणजीहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी आ गये ।

भरत बचन सुन हसिछन परकत धारहि बार ।
 आनि सगुन मन हरष बति लाये करन विचार ॥
 भरतजीकी दाहिनी नाँस और दाहिनी मुखा बार-बार चट्क रही हैं । इसे दृष्ट
 गङ्गुन जातकर उनके मनमें अत्यन्त हर्ष हुआ और वे विचार करने लगे—

बी०—वेद एक दिन अग्नि कबारा । समुझत मन हुआ मयत ज्वारा ॥
 कारण कबन काय बहिँ कबरा । सखि कुटिल किचौँ मोहि मिलराय ॥ १ ॥
 प्राणीकी आचारक्रम अवधिअ एक ही दिन रोष रह गया । यह सोचते ही
 भरतजीके मनमें अपार दुःख हुआ । क्या कारण हुआ कि नाथ नहीं आये । प्रभुने
 कुटिल जानकर इसे कहीं सुख तो नहीं दिया ! ॥ १ ॥

बहूँ जन्म छडिगम कदाभी । राम-पदार्थहु अनुगामी ॥
 कपटी कुछिअ मोहि प्रभु भीन्दा । लखे नाथ संव बहिँ कीन्दा ॥ २ ॥
 कहा ॥ । लक्ष्मण बड़े भय एवं इदमाणी हैं, जो श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दको
 प्रेमी हैं (भर्षात् उनके अलग नहीं हुए) । मुझे तो प्रभुने कपटी और कुटिल पदचान
 किया, इसीसे नाथने मुझे साथ नहीं लिया ! ॥ २ ॥

जौँ करबौ समुझी महुँ बीरी । बहिँ निस्तर कलष सत बीरी ॥
 जन अचसुन प्रभु भव न काय । दीव-बहुँ अति बहुल सुभाय ॥ ३ ॥
 [बात भी ठीक ही है, क्योंकि] यदि प्रभु मेरी करनीपर ध्यान दें, तो सौ
 करोड़ (अर्बुन) अर्बुतक भी मेरा निस्तर (छुटकारा) नहीं हो सकता । [परन्तु
 आशा धरती ही है कि] प्रभु सेवकअ अचसुन कभी नहीं मानते । वे होनवान् हैं और
 अत्यन्त ही क्रोधक स्वभावके हैं ॥ ३ ॥

मोरे किछु अरोस छह सोई । मिहिदिहि राम सगुन जुत होई ॥
 बीतौ अगधि रहहि जौँ प्राय । जखन कबन अब मोहि सज्जाया ॥ ४ ॥
 भरतजी मेरे हृदयमें ऐसा पक्ष भरोसा है कि श्रीरामजी अवश्य मिलेंगे, [क्योंकि]
 मुझे गङ्गुन बड़े ह्रम हो रहे हैं । किन्तु अगधि बीत जानेपर यदि मेरे प्राण रह गये तो
 कातमें मेरे समझ नीच जैन होगा ! ॥ ४ ॥

छो—राम विरह सागर यहै भरत भगव-मन होत ।
 विप्र रूप धरि पवनसुत जात संयत जनु पोत ॥ १ (क) ॥
 श्रीरामजीके विरह-समुद्रमें भरतजीका मन डूब रहा था, उसी समय पवनपुत्र
 हनुमान्जी नाक्षत्रका रूप धरकर इस प्रकार आ गये, जिनो [उन्हें हृदयेसे बचालेके
 लिये] नाथ आ गयी हो ॥ १ (क) ॥

बैठे देखि कुसुमसन नय मुकुट कुस वात ।

राम राम रघुपति अपत सप्त नमन कलजात ॥ १ (ख) ॥

हनुमानजीने दुर्केश्वरी मरतीजीसे बंधाओंका मुकुट बनाये, राम ! राम ! रघुपति ! अपते और पत्राके समान नेत्रोंसे [प्रेमाभुषांका] कल नहारे कुशके मातन-पर बैठे देखा ॥ १ (ख) ॥

चौ०—देखत हनुमान धति हरकेत । पुष्कल कल लोचन नय नरेत ॥

मन महे ध्रुव भौति मुक्त माती । दोखेन जव नुवा लय भाती ॥ १ ॥

उनहें देखते ही हनुमानजी अकन्त हर्षित हुए ! उनका शरीर पुष्कल हो गया, नेत्रोंसे [प्रेमाभुषांका] लय नरकने लगा । मनमें बहुत प्रफुरते मुक्त मानकर ये कानोंके लिये अमृतके समान कानी बोले—॥ १ ॥

नासु विरह सोचहु दिव रात्री । पदु निर्लस हन नय पौती ॥

रघुपुत्र तिलक सुनय सुलसल । नयन नमन देव मुनि प्राता ॥ २ ॥

जिनके विरहमें आप दिन-रात योच करते (सुनते) रहते हैं और जिनके गुण-समूहोंकी शक्तिओंको आप निरन्तर रटते रहते हैं, ये ही रघुपुत्रके तिलक, सननोंको सुन देनेवाले और देवताओं तथा मुनियोंके लक्ष श्रीरामजी वसुधल आ गये ॥ २ ॥

रिपु तव जीति सुजस धुर नयन । सीता सहित मनु मनु भावत ॥

मुक्त नयन नितरे सब दृष्ट । एवावत त्रिभि पाह विदेहा ॥ ३ ॥

शत्रुको रणमें जीतकर सीताजी और लक्ष्मणजीवहित मनु जा रहे हैं, देवता उनका सुन्दर दृश आ रहे हैं । ये नयन मुनते ही [मरतीजीकी] वारे सुख भूल गये । जैसे प्यास भादनी अमृत पकर प्यासके दुःखको भूल जाय ॥ ३ ॥

को दुःख लल जहाँ ते आए । मोदि परम मिय नयन सुनय ॥

माकल मुत मैं करि हनुमान । नासु गोर सुनु कृपाविधाता ॥ ४ ॥

[भरतीजीने पूछा—] हे राम ! तुम क्यों हो ? और क्यों आये हो ? [जो] हमने सुना [ये] परम मिय (अत्यन्त भावन्त देनेवाले) नयन मुनये । [हनुमानजीने कहा—] हे कृपाविधाता ! मुनिये, मैं कलकल पुत्र और कालिका धारण हूँ। मेरा नाम हनुमान् है ॥ ४ ॥

दीनबन्धु रघुपति कर किन । मुक्त नयन भौतेन बदि साहर ॥

मिलत प्रेम नदि हृदय समोद । नयन लल नय पुष्कल वाता ॥ ५ ॥

मैं दीनोंके बन्धु श्रीरघुनाथजीका दास हूँ । नह मुनते ही मरतीजी लठकर बादर-पूर्वक हनुमानजीसे गले लगान मिले । मिलते समय प्रेम हृदयमें नहीं समाति । नेत्रोंसे [आनन्द और प्रेमके आँसुओंका] लय नहने लगा और शरीर पुष्कल हो गया ॥ ५ ॥

कपि तव दल सकल दुख नीले । मिले अल मोदि राम पिरिठे ॥

कर कर नुकी कुसलसल । लो कहे देव कद सुनु भाता ॥ ६ ॥

[मरतीजीने कहा—] हे हनुमान् ! तुम्हारे दर्शनसे मैं समस्त दुःख समाप्त हो गये (दुःखोंका अन्त हो गया) । [तुम्हारे रूपमें] काम-पुत्रे प्यारे रायजी ही मिल गये । भरतीजीने बार-बार कुसल-पूछी [और कहा—] हे भाई ! मुनो, [इस शुभ संवादके बदलेमें] तुम्हें क्या हूँ ? ॥ ६ ॥

एदि सदि सलित नय नारी । करि निचर देखेन मनु पाह ॥

नखिन लल संरिच मैं छोदी । नय मनु नित सुनयहु मोदी ॥ ७ ॥

इस संदेशके समान (इसके बख्सेमें देने लायक पदार्थ) जगत्में कुछ भी नहीं है, मैंने यह विचार कर देखा जिन्ना है। [इत्यन्त्रि] हे तूत ! मैं तुमसे किसी प्रकार भी उद्धार नहीं हो सका। अब मुझे प्रभुका चरित्र (हाल) सुनाना ॥ ३ ॥

तब हनुमंत बाढ़ बड़ माया। कहे सकल स्तुति ॥ माया ॥

कबु करि कबहुँ कृपाळ कोसाई। सुमिरहि मोहि बस की नाई ॥ ८ ॥

तब हनुमान्जीने भरतजीके चरणोंमें मस्तक नवाकर श्रीरामायजीकी सारी गुण-गाथा कही। [भरतजीने पूछा—] हे हनुमान् ! कहे कृपाळ स्वामी श्रीरामचन्द्रजी कभी मुझे अपने दासकी तरह याद भी करते हैं ? ॥ ८ ॥

छ०—निज दास ज्यों रघुवंसभूषण कबहुँ मम सुमिरन करयो।

सुनि भरत वचन विनित धति कपि पुलकिता चरमनिह परयो ॥

रघुवीर निज मुखा वासु गुन धन कइत भय लग नाथ जो।

काहे न होइ विनित परम पुनीत सवगुन सिंधु सो ॥

रघुवंशके भूषण श्रीरामजी क्या कभी अपने दासकी भाँति मेरा स्मरण करते रहे हैं ? भरतजीके उत्कण्ठ भय वचन सुनकर हनुमान्जी पुलकित शरीर होकर उनके चरणोंपर गिर पड़े [और मनमें विचारने लगे कि] जो चरणचरके स्वामी हैं वे श्रीरघुवीर अपने भीषणते मिलके भुवस्मूर्द्धोन्नत वर्णन करते हैं, वे भरतजी ऐसे विनय, परम पवित्र और स्तुति के समुद्र क्यों न हों ?

दो०—राम प्राण प्रिय नाथ तुम्ह सत्य बखव मम दास।

पुनि पुनि मिलत भरत सुनि हरप न हृदयँ समात ॥ २ (क) ॥

[हनुमान्जीने कहा—] हे नाथ ! आप श्रीरामजीके भावोंके समान प्रिय हैं, हे दास ! मेरा वचन कम है। वह सुनकर भरतजी बार-बार मिलते हैं, हृदयमें हर्ष समाता नहीं है ॥ २ (क) ॥

दो०—भरत वरन सिद्ध नाइ दुरित गयज करि राम पति।

काही कुसल सब उरह हरपि जलेत प्रभु जगम कादि ॥ २ (ख) ॥

फिर भरतजीके चरणोंमें फिर नवाकर हनुमान्जी दुरंत ही श्रीरामजीके पाद [छोट] गये और ज्वर उन्होंने उस कुसल कही। तब प्रभु हर्षित होकर विमानपर जाकर चले ॥ २ (ख) ॥

दो०—हरपि भरत कोसलपुर बाप। समाचार सब गुरहि सुनाए ॥

पुनि मरिह मई सब अनाई। जगत काज कुसल समुदाई ॥ १ ॥

इस भरतजी की हर्षित होकर जनौजापुरीमें आये और उन्होंने गुरुजीको सब समाचार सुनाया। फिर राजमहलमें सबर सजानी कि श्रीरघुनाथजी कुशलपूर्वक नगरको आ रहे हैं ॥ १ ॥

सुनत सकल जननी उमि पाई। कहि प्रभु कुसल भरत समुदाई ॥

समाचार सुनकिन्ह बाप। घर सब करि हरपि सब बाप ॥ २ ॥

सब सुनते ही सब माताएँ ठठ दीहीं। मरतजीने प्रभुकी कुशल कहकर सबको समझाया। नगरनिवासियोंने सब समाचार पढ़ा, तो सबी-मुत्सव सभी हर्षित होकर बोले ॥ २ ॥

इति दुर्वा रोचन कल पूजा। नव सुखी दल संगत नृपा ॥

मरि मरि हेय धार साभिन्नी। जगत चलि सिद्धराजमिनी ॥ ३ ॥

[श्रीरामजीके स्वयंसे जिये] रही, दूक, गोरोचन, फल, फूल और मङ्गलके

मूल नवीन तुलसीदल आदि वस्तुएँ सोनेके बालोंमें भर-भरकर हथिनीकी-सी चालवाली
सौभाग्यपत्नी स्त्रियाँ [उन्हें केकर] बाती हुई चली ॥ १ ॥

जे जैसेहिं तेैसेहिं उठि भावहिं । बाल बृद्ध कई संभव अवहिं ॥

एक एकदह कई बुझहिं गइ । तुम्ह देखे दयाल रह्योई ॥ १ ॥

जो जैसे हैं (जहाँ जिस दख्यो हैं) वे वैसे ही (वहीँ, उसी दशामें) उठ
दौड़ते हैं । [देर हो जानेके डरते] बालों और बुढ़ोंको कोई धाप नहीं छाते । एक
दूसरेसे पूछते हैं—भाई ! तुमने दयालु श्रीरघुनाथजीके देखा है ? ॥ ४ ॥

अवधपुरी प्रभु आनन जानी । भाई सकल सोना कै खानी ॥

बहू सुहावन विविध समीप । भव सत्त्व बसि निर्मल नीर ॥ ५ ॥

प्रभुको आते जानकर अवधपुरी सम्पूर्ण खोगायोंकी खान हो गयी । तीनों
प्रकारकी सुन्दर वायु बहने लगी । सरसूजी अति निर्मल कलशाली हो गयी (अर्थात्
सरसूजीका जल अत्यन्त निर्मल हो गया) ॥ ५ ॥

श्री०—हरपित गुर परिजन अनुज मूसुर बृंद समेत ।

बाले भरत-भक्त प्रेम अति ससुख छापानिकेत ॥ १ (क) ॥

गुरु बधिष्ठनी, कुटुम्बी छोटे भाई शत्रुघ्न तथा बालकोंके समूहके साथ, हर्षित
होकर भरतजी अत्यन्त प्रेमपूर्ण मनसे कृपापात्र श्रीरामजीके खामने (अर्थात् उनकी
अगवानीके छिने) चले ॥ १ (क) ॥

बहुतक चर्ची अटारिन्ह मिरचहिं मगन विमान ।

देखि मसुर गुर हरपित करहिं सुसंगल गगन ॥ २ (ख) ॥

बहुत-सी स्त्रियाँ अटारियोंपर चढ़ी आकाशमें विमान देख रही हैं और उसे
देखकर हर्षित होकर भीठे खरसे सुन्दर मन्त्रजाल गा रही हैं ॥ २ (ख) ॥

राका सखि रघुपति पुर सिंधु देखि हरचान ।

बहुचो कोछहळ करत बलु गरि तरंग समान ॥ ३ (ग) ॥

श्रीरघुनाथजी पूर्णिमाके चन्द्रमा हैं, तथा अवधपुर सङ्ग्रह है, जो उस पूर्णिमा-
को देखकर हर्षित हो रहा है और धोर करता हुआ बह रहा है । [दक्ष-उत्तर दोहरी
हुई] स्त्रियाँ उसकी तरङ्गोंके समान लगी हैं ॥ ३ (ग) ॥

श्री०—इहाँ भातुकुल कलक विभाकर । करिन्ह देवात्म नगर मनोहर ॥

सुन्द कपील संगद छकेछा । बालच पुरी बचिर यह देसा ॥ १ ॥

यहाँ (विमानपरसे) सूर्यकुलरूपी कलकके प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य श्रीरामजी
बानरोंको मनोहर नगर दिखाए रहे हैं । [वे कहते हैं—] हे सुप्रिय ! हे अंगद ! हे
संकान्ति विभीषण ! सुनो ! यह पुरी पवित्र है और यह देश सुन्दर है ॥ १ ॥

अद्यपि सब बैकुण्ठ कलाथा । केद पुमान विदित ज्यु जाना ॥

अवधपुरी सम भिन्न नहीं सोढ । यह प्रसंग जान्ह केद कोक ॥ २ ॥

यद्यपि सबने बैकुण्ठकी बहाई की है—यह वेद-पुराणोंमें प्रसिद्ध है और जगत्
जानता है, परन्तु अवधपुरीके समान सुखे वह भी भिन्न नहीं है । यह पाव (केद) कोई-
कोई (गिरते ही) जानते हैं ॥ २ ॥

जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि । बंजर दिशि यह सत्त्व पावनि ॥

आ मज्जन कै विनहिं प्रणसा । मम समीप नर पावहिं पाता ॥ ३ ॥

यह सुहावनी पुरी मेरी जन्म-भूमि है । इसके उत्तर दिशमें [जीवोंको] पवित्र

करनेवाली सरयू नदी बहती है, जिसमें स्नान करनेसे मनुष्य विना ही परिश्रम से समीप निवास (समीप्य मुक्ति) पा जाते हैं ॥ ३ ॥

भक्ति प्रिय मोहि इहाँ के बासी । मम चम्पड़ा पुरी सुख राखी ॥

हरषे सब कषि-धुवि प्रभु वाली । मन्व भवष खे राम बखानी ॥ ४ ॥

यहाँके निवासी मुझे बहुत ही प्रिय हैं । यह पुरी सुखप्री राशि और मेरे परमधाम को देनेवाली है । प्रभु को वाणी सुनकर सब वानर हर्षित हुए [और कहने लगे कि] जिस अवघटकी खबर श्रीरामजीने बहाई थी, वह [अवघट ही] कन्व है ॥ ४ ॥

दो०—आवत देखि खेय सब कृपासिधु भगवान ।

नगर निवृत्त प्रभु प्रेरैछ 'सखेस' भूमि विमान ॥ ४ (क) ॥

कृपावागर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने सब खेयोंको भाते देखा; तो प्रभुने विमानको नगरके समीप उतरनेकी प्रेरणा की । तब वह भूमीपर उतरा ॥ ४ (क) ॥

उतरि कहेव प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुवेर पहि जाहु ।

प्रेरितं राम खेस सो ह्यपु विरहु अति ताहु ॥ ४ (ख) ॥

विमानसे उतरकर प्रभुने पुष्पकविमानसे कहा कि तुम अब कुवेरके पास जाओ । श्रीरामजीकी प्रेरणासे वह कन्व उठे [अपने स्वामीके पास जानेका] हर्ष है और प्रभु श्रीरामचन्द्रजीसे बल्ला होनेका अत्यन्त दुःख भी ॥ ४ (ख) ॥

चौ०—आप सरस संग सब खेया । कृष तन श्रीरघुवीर विधेया ॥

बामदेव बलिष्ठ सुनिवायक । देवो प्रभु महि धरि धनु सायक ॥ १ ॥

भरतजीके साथ सब खेय आये । श्रीरघुवीरके विधेयसे सबके शरीर दुबले हो रहे हैं । प्रभुने बामदेव, बलिष्ठ आदि सुनिवेद्योंको देखा तो उन्होंने धनुष-बाण धृष्टीपर रखकर— ॥ १ ॥

पाहू खे सुख खेय सखेसह । अनुज सहित अति पुष्पक तमोसह ॥

भेदि कुलक कृषी सुविणय । हमरें कुलक तुम्हारिहि बापा ॥ २ ॥

छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित दीडकर गुबकीके चरणकमल पंक्त खिये। उनके रोम-रोम अत्यन्त पुष्पक हो रहे हैं । सुनिधान शक्तिशालीने [उठाकर] उन्हें खड़े लगाकर कुलक पूछी । [प्रभुने कहा—] आपकी रवामें हमारी कुलक है ॥ २ ॥

सकल द्विकन्द मिलि लयस बाधा । धर्म धुरंधर, खुकुलबाधा ॥

गहै-भरत पुनि ॥ ३ ॥ पर पंक्त । कसत विन्दहि सुरमुनि संकरभज ॥ ३ ॥

धर्मकी पुरी धारण करनेवाले रघुकुलके स्वामी श्रीरामजीने सब ब्राह्मणोंसे मिलकर उन्हें सत्कार नवाया । फिर भरतजीने प्रभुके वे चरणकमल पंक्तें जिन्हें देवता, मुनि, शंकरजी और ब्रह्माजी [जी] सम्भार करते हैं ॥ ३ ॥

परे भूमि महि उठल उग्रप । बर करि कृपासिधु ठर काय ॥

स्वामास आस रोम अरु अरु । सब राजीन, सकल जल बादे ॥ ४ ॥

भरतजी धृष्टीपर खड़े हैं, उठते उठते नहीं । सब कृपासिधु श्रीरामजीने उन्हें जबरदस्ती उठाकर हृदयसे लगा लिया । [उनके] खँवले शरीरपर रोएँ खदे हो गये । नवीन कमलके समान नेत्रोंमें [प्रेमाश्रुतियों] लकी-बाद आ गयी ॥ ४ ॥

छं०—राजीव खेचन सकल जल तन खलित पुष्पकावलि बनी ।

अति प्रेम-हृदयें लगाह अनुचरि मिले प्रभु विमुक्त बनी ॥

प्रभु मिलत बनुजहि सोह मो पहि जाति नहि उपमा कही ।

जलु प्रेम बर सिंगार तनु धरि मिले कर सुधमा लही ॥ १ ॥

कमलके समान नेत्रोंसे बल बह रहा है । सुन्दर शरीरमें पुलकावली [अत्यन्त] शोभा दे रही है । शिरोक्षीके स्वामी प्रभु श्रीरामजी ओंटे भाई भरतजीको अत्यन्त प्रेम्से हृदयसे छाकर मिले । माईसे मिलते समान प्रभु जैसे शोभित हो रहे हैं, उसकी उपमा मुझसे कही नहीं जाती । मानते प्रेम और गृह्यार शरीर धारण करके मिले और ओष्ठ शोभाको प्राप्त हुए ॥ १ ॥

बृद्धत कृपानिधि कुसल भरतहि बचन बेनि ब थावई ।

सुनु सिधा सो सुख बचन मन ते भिन्न ज्ञान जो पावई ॥

अब कुसल कौसलनाथ आगत जानि ज्ञान वरसन दियो ।

बृद्धत विरह वारीस कृपानिधाय मोहि कर गहि दियो ॥ २ ॥

कृपानिधान श्रीरामजी भरतजीसे कुसल पूछते हैं; परन्तु आनन्ददाय भरतजीके मुझसे बचन शीघ्र नहीं निकलते । [शिवजीने कहा—] हे पार्वती ! तुमने, वह ब्रह्म (जो ठस समय भरतजीको मिल रहा था) बचन और मनसे पारे है; उन्हें बही जानता है जो उसे पाता है । [भरतजीने कहा—] हे कौसलनाथ ! आपने आपसे (दुखी) जानकर दासको दर्शन दिये, इससे अब कुशल है । विरहकुश्रुद्धि मुझसे हुए मुझको कृपानिधानने हाथ पकड़कर क्या किया ! ॥ २ ॥

हो—पुनि प्रभु हरषि सनुदण भेंटि हृदयें छंभाइ ।

कस्मिन्न भरत मिले तब परम प्रेम होत मोह ॥ ५ ॥

फिर प्रभु हर्षित होकर अनुजनीको हृदयसे छाकर उनसे मिले । तब छलनगी और भरतजी दोनों भाई परम प्रेम्से मिले ॥ ५ ॥

चौ—भरतलुब्ध कस्मिन्न पुनि भेंटि दुसह विरह संभव हुन भेंटि ।

सीता चरम भरत सिद्ध नाथ । अनुन समेत परम सुख पाथ ॥ १ ॥

फिर छलनगी अनुजनीसे गले लगकर मिले और इस प्रकार विरहसे उत्पन्न दुःख दुःखका नाश किया । फिर भाई अनुजनीसहित भरतजीने वीताजीके घरमें फिर नयावा और परम सुख प्राप्त किया ॥ १ ॥

प्रभु विद्योकि हरषे पुरबासी । कवित विद्योन्न विरति सब कासी ॥

प्रेमातुर सब ज्ञान निहारी । कौतुक कीन्द कृपाक, सारी ॥ २ ॥

प्रभुको देखकर अयोध्यावासी सब हर्षित हुए । विशेषसे उत्पन्न सब दुःख नाश हो गये । सब लोगोंको प्रेमविह्वल [और मिलनेके लिये अत्यन्त आहुर] देखकर सरफे अनु कृपाञ्जु श्रीरामजीने एक जमत्कार किया ॥ २ ॥

कमिन्न हन प्रपटे तेहि काज । जवाज्योम मिले सबहि कृपलन ॥

कृपारहि सुखीन विद्योकी । किन्नु सकल पर नारि निसोकी ॥ ३ ॥

उसी समय कृपाञ्जु श्रीरामजी जसकन स्त्रियोंमें श्रकट हो गये और सबसे [एक ही साथ] यथानुसंग मिले । श्रीकृष्णजीने कृपाकी दृष्टिसे, देखकर सब नर-नारियोंको शोकसे रहित कर दिया ॥ ३ ॥

ज्ञान महि सबहि मिले बसनाथ । तम वरन वह कहैं न जान ॥

एहि विधि सबहि सुखी करि सम । जयें जते कील पुन पाव ॥ ४ ॥

अगवाद् क्षणमात्रसें खस्ते-मिलि लिये । हे उग्रा ! यह रहस्य किसीने नहीं जाना ।
इस प्रकार शील और गुणोंके घाम औरमन्त्री सबको सुसीं फरके आगे बड़े ॥ ४ ॥

कौसल्यादि मातु सब घाई । निरखि कच्छ अनु धेनु कवाई ॥ ५ ॥

कौसल्या आदि माताएँ ऐसे धौड़ीं मानो नयी व्याधी हुईं गीएँ अपने बल्लभोंको
देखकर दौड़ी हों ॥ ५ ॥

४०—जनु धेनु बालक वज्र तजि गृहं चरन बन परबस गई ।

दिन नंत पुर कच्छ संधत थन हुंकार करि धावत मई ॥

अति प्रेम प्रसु खच मातु मेटीं बचन मृदु बहुविधि कहे ।

गह बिषम विपति विद्योभाष्य तिन्ह हरष-सुख अगनित लहे ॥

मानो नयी व्याधी हुईं गीएँ अपने छोटे बल्लभोंको घरपर छोड़ परबस होकर वनमें
चरने लगी हों और दिनका अन्त होनेपर [बल्लभोंसे मिलनेके लिये] हुंकार करके वनसे
बूध गिराती हुईं नपरकी ओर दौड़ी हों । प्रसुनें अत्यन्त प्रेमसे कम माताओंसे मिलकर
उनसे बहुत प्रकारके कोमल वचन कहे । बिषयसे उत्पन्न भयानक विपत्ति दूर हो गयी और
सबने [भगवान्से मिलकर और उनके वचन सुनकर] अवगति सुख और हर्ष प्राप्त किये ।

४०—भेटेउ तनय सुमित्राँ राम चरन रति जानि ।

रामहि मिलत कैफई हृदयें बहुत सकुचावि ॥ ६ (क) ॥

सुमित्राजी अपने पुत्र लक्ष्मणजीकी औररामजीके चरणोंमें प्रीति जानकर-बनते
मिलीं । औररामजीसे मिलते समय कैफयीकी हृदयमें बहुत सकुचायी ॥ ६ (क) ॥

कछिमन सब मातल्ह मिलि हरये आसिय पाइ ।

कैफई कहैं पुनि पुनि मिले मन कर छोडु न जाइ ॥ ६ (ख) ॥

लक्ष्मणजी भी कम माताओंसे मिलकर और आशीर्वाद पाकर हर्षित हुए । वे
कैफयीजीसे बार-बार मिले, परन्तु उनके मनका धोम (रोष) नहीं जाता ॥ ६ (ख) ॥

४०—सामुन्हा सबधि मिली बैदेही । चरनिह जगि हरषु भति वैही ॥

वैहिं भसींख बसि कुसलसां । होइ अचल दुम्हार अहिबासा ॥ १ ॥

जानकीजी सब वस्तुओंसे मिलीं और उनके चरणों कायर उन्हें अत्यन्त हर्ष हुआ ।
साधारण कुशल पूछकर आश्रय दे रही हैं कि दुम्हारा दुहाय अचल हो ॥ १ ॥

सब रघुपति सुख कम्पल बिलोकहि । अम्पल जावि बर्यव जल रोकाहि ॥

कमल धार जरेती जतरहि । बार बार प्रभु गाल बिहारहि ॥ २ ॥

सब माताएँ औरसुनायकीका कम्पल-ख सुखदा देख रही हैं । [नेत्रोंसे प्रेमके आँसू
उमड़े आते हैं, परन्तु] मन्त्रज्वा समय जानकर वे आँसूओंके जलको नेत्रोंमें ही रोष रसती
हैं । चीनेके थाले आरती उतारती हैं और बार-बार प्रसुके श्रीसुहृदोंकी ओर देखती हैं । २ ।

माता अति निजबसि करीं । परमानन्द हरष उर भरही ॥

कौसल्या पुनि पुनि रघुवीरहि । चित्तवति कुपसंशु रनवीरहि ॥ ३ ॥

अनेकों प्रकारसे मिलकरें करती हैं और हृदयमें परमानन्द तथा हर्ष भर रही हैं ।
कौसल्याजी बार-बार स्वर्णके समुद्र और रघुवीर औररघुवीरको देख रही हैं ॥ ३ ॥

हृदयें निवारति बरहि बोल । कनन अति संकापति मारा ॥

जाते सुकुमार सुख मेरे बारे । बिसिन्ध सुख भद्राकल मारे ॥ ४ ॥

वे बार-बार हृदयमें विचारती हैं कि-हमोंने संतापित रावणको कैसे मारा ? मेरे
ये दोनों बच्चे बड़े ही सुकुमार हैं और राक्षस तो बड़े मारी खोदा और महान् बली मे । ४ ॥

दो—अछिम्ब नर सीता सहित प्रसुति विनोदति मातु ।

परानन्त मयन मन पुनि पुनि पुनश्चित्त मातु ॥ ७ ॥

कमलनी गौर सीताबोधित प्रसु श्रीरामचन्द्रजीकी मातृ देख रही हैं। उनका मन परमानन्दमें मग्न है और खरीर बार-बार पुनश्चित्त हो रहा है ॥ ७ ॥

चौ—संकापति कपोत कल नील । अमर्त अंगद सुखसील ॥

इहमदादि सब बनन लीय । धरे मनोहर प्रभुन शरीर ॥ १ ॥

कंपाति विभीषण, धनराज सुग्रीव, लक्ष्म, नील, अमर्तान् और अंगद तथा इहमान्जी आदि सभी उद्यम संग्रामवाले वीर क्षत्रियों मनोहर खरीर धारण कर लिये ॥ १ ॥

भरत समेट सील प्रभ मेर । सांवर सब करहि अति प्रेम ॥

देवि मयकातिन्द है रीती । सकल संग्रहि प्रभु पद शरीर ॥ २ ॥

वे सब मरजीके प्रेम, सुन्दर स्वभाव, [त्यागके] प्रभ और नियमोंकी अवस्था प्रेमसे मातरपूर्वक बढ़ाई कर रहे हैं। और नागनिवासीको [येम, लोच और विनयसे पूर्ण] रीति देखकर वे सब प्रभुके चरणोंमें उनके प्रेमकी सराहना कर रहे हैं ॥ २ ॥

पुनि राघुपति सब सखा केसव । पुनि पद अंगद सकल सिखाव ॥

गुर कसिद सुखल्य हारे । हृद की छर्वां हनुम रव मारे ॥ ३ ॥

फिर श्रीरामाचारीने सब सखानोंको मुखवा और सबको सिखाया कि तुमिसे चरणोंमें छरी । वे हृद यथाशक्ती हमारे कुलभरके दूष्य हैं। इन्हींकी छत्रसे रघुवीं राख मारे गये हैं ॥ ३ ॥

ए सब सखा सुखदु पुनि गैर । नद समर समर नदी गैर ॥

मम हित खाति कल हृद हारे । मरहू वे मोहि अधिक विगारे ॥ ४ ॥

[फिर सुग्रीवसे कहा—] हे पुनि ! तुमिसे । वे सब मेरे सखा हैं । वे संग्रामकी समुद्रमें मेरे जिसे देहे (नष्टान) के समान हुए । मेरे हितके लिये इन्होंने अपने अन्तर्गत हार दिये (मरने प्राणोत्सर्गसे होम दिया) । वे मुझे भरतसे भी अधिक प्रिय हैं ॥ ४ ॥

पुनि प्रभु बचन मयन सब नद । विविध विविध अवतार सुंन नद ॥ ५ ॥

प्रभुके वचन सुनकर सब प्रेम और आनन्दमें मग्न हो गये । सब प्रकार पल-पलमें उन्हें नये-नये सुख उल्लास हो रहे हैं ॥ ५ ॥

दो—कौसल्या के चरणनिध पुनि सिद्ध आपन मारव ।

आसिध दीन्हे हरणि तुम्ह मिय मम जिमि राहुनाथ ॥ ८ (क) ॥

फिर उन लोगोंने श्रीकृष्णजीके चरणोंमें मल्लक नपाये । कौसल्याजीने इष्टित होकर आशिर्वे दी [और कहा—] तुमं मुझे खुदायके अंगन प्यारे हो ॥ ८ (क) ॥

सुमन वृष्टि नया संकुल मयन चले सुखकर ।

चट्टी अटारिन्ह देवादि नमरे जारि नर बुंद ॥ ८ (ख) ॥

आनन्दकन्द श्रीरामजी अपने गंठको चले, आनन्द पूर्णकी इच्छासे अमया । नगरके छी-पुष्पोंके समूह अटारिन्होपर चढ़कर उनके दर्शन कर रहे हैं ॥ ८ (ख) ॥

चौ—अंशुन कल विविध सखा । सबहि धरे सखि निम निम हारे ॥

बंदनार्थ पयन केद । सबहि बचन मयन देह ॥ १ ॥

कोनेके कल्योंको विविध रीतिसे [मणि-रत्नादिसे] बंझकर कर और पयन

सब लोगोंने अपने-अपने दरजानोंपर रख लिया । सब लोगोंने मङ्गलके लिये बंदनधार,
ध्वजा और पताकाएँ लगायीं ॥ १ ॥

भीषीं सकल सुगंध सिंघाई । गन्धमनि रचि बहु चौक पुराई ॥

नाना मोति सुसंगठ लाने । हरषि नकर निरान नहु बाने ॥ २ ॥

सारी गलियाँ सुगन्धित द्रव्योंसे सिंचायी गयीं । गन्धमुकाब्योंसे रचकर बहुत-सी
चौकों पुरायी गयीं । अनेकों प्रकारके सुन्दर मङ्गल-सज्जन सजाये गये और इर्षपूर्वक नगरमें
बहुत-से ढंके बजने लगे ॥ २ ॥

गईं तहें भारि विजयधरि कहीं । वेहिं नसीब हरह उर भरहीं ॥

हंजन बार बारहीं नका । सुबहीं खनै कहिं सुभ गाना ॥ ३ ॥

कियाँ जहाँ-तहाँ निजाकर कर रही हैं, और हृदयमें हर्षित होकर आशीर्वाद देती
हैं । बहुत-सी प्रभती [सोभाग्यवती] कियों सोनेके थायोंमें अनेकों प्रकारकी आरती
सजकर मङ्गलगान कर रही हैं ॥ ३ ॥

कहिं भारती भारतिहर कैं । रघुपुत्र कलक विरिज दिगकर कैं ॥

पुर सोभा संपति कल्याण । विभक्त सेव सारदा बलाभा ॥ ४ ॥

वे आरतिहर (दुःखोंको हरनेवाले) और सर्वकुलरूपी कमलजनके प्रशुद्धित करने-
वाले सूर्य श्रीरामजीकी आरती कर रही हैं । नगरकी सोभा, सम्पत्ति और कल्याणका
वेद, मेदजी और सरस्वतीजी वर्णन करते हैं—॥ ४ ॥

उठ यह चरित हैलि डगि रहरी । उमा तामु गुन कर किमि कहरी ॥ ५ ॥

परन्तु वे भी यह चरित देखकर ठगे-से रह जाते हैं (स्तब्ध हो जाते हैं) ।

[शिवजी कहते हैं—] हे उमा ! तब मन्त्र मनुष्य उनके गुणोंको कैसे कह सकते हैं ! ॥ ५ ॥

दो०—गारि कुमुदिनी अवध सर रघुपति विरह दिनेस ।

अस्त भई विरासत भई विरगि दाम राकेस ॥ ५ (क) ॥

कियों कुमुदिनी है, अनेकधा शरीर है और श्रीरघुनाथजीका विरह सूर्य है [इस
विरह-सूर्यके तापसे वे दुराशा गयी थीं] । अब उठ विरह-रूपी शक्ति, अस्त होनेपर
श्रीरामजी पूर्णचन्द्रको निरखकर वे सिक उठीं ॥ ५ (क) ॥

होहिं सद्यः सुभ विविधि विधि याजहिं समस्त-निस्तान ।

पुर तर नारि सनाथ करि भक्षण चले भगवान् ॥ ५ (ख) ॥

अनेक प्रकारके छत्र खट्वा ही रहे हैं, भक्षण-कर्म-वेगादे वज्र रहे हैं । नगरके
पुरवों और कियोंको सनाथ (दर्शनद्वारा कृतार्थ) करके भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महल-
को चले ॥ ५ (ख) ॥

बौ०—प्रसु नानी कैकई लजनी । प्रथम तामु गृह गए भवानी ॥

साहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा । पुनि निज भवन गहन हरि कीन्हा ॥ ६ ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे भवानी ! प्रभुने जान लिया ■ साता कैकयी जन्म
हो गयी है । [इसलिये] वे पहले उन्हींके महलमें गये और उन्हें सम्झा-बुझाकर बहुत
हुज दिया । फिर भीहरिने अपने महलमें गामन किया ॥ ६ ॥

कृपासिंधु सब भेदित गद् । पुर भर नारि सुखी सब भय ॥

गुर वसिष्ठ द्विज विष्णु दुखई । नख सुधरी सुदिन समुदाई ॥ ७ ॥

कृपाके समुद्र श्रीरामजी सब अपने महलमें गये, उन नगरके स्त्री-पुरुष सब सुखी

पुनः । शुभ वशिष्ठजीने ब्राह्मणोंको बुला किया [और कहा—] आज शुभ वही, सुन्दर दिन आदि सभी शुभ योग हैं ॥ २ ॥

सब द्विज देहु हरषि मनुससप । शनचन्द्र बैरहि सिवासन ॥

मुनि वसिष्ठ के वचन सुनए । सुखत सखल विग्रह अति भाए ॥ ३ ॥

आप सब ब्राह्मण हर्षित होकर बाह्य दीक्षित, जिसमें श्रीरामचन्द्रजी विद्वानपर विराजमान हैं । वशिष्ठ मुनिके सुनते वचन सुनते ही सब ब्राह्मणोंको बहुत ही अच्छे लगे ॥ ३ ॥

कदाहिं बचन सुनु विप्र जनेकर । अब अभिराम सम जनिपेका ॥

अब मुनिएर बिलंब नहिं ज्यै । महाराज कई शिखर करीनै ॥ ४ ॥

वे सब अपनेको ब्राह्मण योग्य कथन करने लगे कि श्रीरामजीका सम्बन्धित सम्पूर्ण जगतको आनन्द देनेवाला है । हे मुनिश्रेष्ठ ! अब शिखर न कीजिये और महाराजको शिखर शीघ्र कीजिये ॥ ४ ॥

यो—उप मुनि कहैउ सुमंष सब सुखत चलेउ हरषाह ।

रथ जनेक बहु याकि गज सुरत सँभारे जाह ॥ १० (क) ॥

उप मुनिने सुमन्मण्डले कहा, ये मुनते ही हर्षित होकर चले । उन्होंने दुरंत ही जाकर अपनेको रथ, घोड़े और हाथी सजाये ॥ १० (क) ॥

जहाँ तहाँ ध्वजम पठइ पुनि मंगल प्रथम मगगह ।

हरष समेत वसिष्ठ पद पुनि सित नयन माह ॥ १० (ख) ॥

और जहाँ-तहाँ [दूधन देनेवाले] दूतोंको भेषकर साङ्गलिक बस्तुएँ मंगाकर फिर हर्षित साथ जाकर वशिष्ठजीके चरणोंमें गिर मचाया ॥ १० (ख) ॥

नवावतारायण, आठवें विश्राम

चौ—अवधपुरी अति रुचिर बगई । देवन्द सुमल वृद्धि धरि काई ॥

राम, महा सेवकन्द जुलई । प्रथम सखन्द अम्बरबाहु जाई ॥ १ ॥

अवधपुरी बहुत ही सुन्दर छायायी बनी । देवद्वन्द्वने दुर्गोंकी वर्षाकी पत्थरी लगा दी । श्रीरामचन्द्रजीने ऐक्योंकी बुलकर कहा कि तुमजैसे जाकर पहले मेरे छायाशौंको जान करओ ॥ १ ॥

सुखत वचन जई तहाँ जन भाए । सुग्रीवादि दुरत सखवाए ॥

पुनि कदवानिधि भस्तु ईजरे । निच कर सब जय गिरजाए ॥ २ ॥

भगवान्के वचन सुनते ही सेवक जहाँ-तहाँ दोड़े और दुरंत ही उन्होंने सुग्रीवादिको खान कराया । फिर कदवानिधान श्रीरामजीने भरतजीको बुलाया और उनको जटाओंको अपने हाथोंसे सुलझाया ॥ २ ॥

अम्बरबाए प्रभु तीक्ष्ण भाई । जगज वल्लभ जगज सुहाई ॥

भरत भाव्य प्रभु खेमजगई । खेम कोसि सत सखई न पाई ॥ ३ ॥

सदनन्तर भक्तवत्सल कृपावान् प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने तीनों माद्योंको खान कराया । भरतजीका भाग्य और प्रभुकी कोमलताका वर्णन करवाँ सेवकी भी नहीं कर सकते ॥ ३ ॥

पुनि निज अष्ट राम निजराए । सुर मनुससन भागि गहाए ॥

करि मज्जन प्रभु नृपन साने । जय खरप देखि सब लाने ॥ ४ ॥

फिर श्रीरामजीने अपनी ज्ञार्यें सोनी और सुखीकी लाजा योगकर खान किया । खान करके प्रभुने आभूषण धारण किये । उनके [सुशोभित] जटोंको देखकर सेवकों (अंतर्धन) कामदेव लजा गये ॥ ४ ॥

दो—साधुन्ह सादर जानकिहि मखन तुरत कराइ ।

दिख्य बसन कर भूषन बैठा बैस समे बनाइ ॥ ११ (क) ॥

[हजर] साधुओंने जानकीजीके जादरके साथ तुरत ही खन कराके उनके अङ्ग-
अङ्गमें दिव्य वस्त्र और श्रेष्ठ आभूषण मलीमोति बना दिये (पहना दिये) ॥ ११ (क) ॥

राम नाम विसि सोमति रमा रूप गुन खानि ।

देखि भातु सब हरषी जन्म सुफल निज जानि ॥ ११ (ख) ॥

श्रीरामके नामी और रूप और गुणोंकी खान रामा (भीजनकीजी) घोषित हो रही
है । उन्होंने देखकर सब पाताएँ अपना जन्म (जीवन) सफल समझकर हर्षित हुई ॥ ११ (ख) ॥

सुनु खगेस तेहि भक्तसर प्रह्ला सिख मुनि पंद ।

बहि विमान आप सब सुर देखन सुखकंद ॥ ११ (ग) ॥

[काकुमुडिजी कहते हैं—] हे पक्षिपुत्र गणेशजी ! मुनिदे, उस समय ब्रह्माजी,
शिवाजी और मुनियोंके समूह तथा विष्णुजीपर चढ़कर सब देवता आनन्दकण्ठ भगवान्‌के
दर्शन करनेके लिये आये ॥ ११ (ग) ॥

चौ—अमु बिलोकि मुनि सब अलुलापा । सुत दिव्य विभाजन सत्ता ॥

रवि सम तेज हो बरनि न जाई । कै राम दिवन्ह सिख जाई ॥ १ ॥

प्रभुको देखकर मुनि बलिष्ठजीके मनमें प्रेम भर आया । उन्होंने तुरत ही दिव्य
विभाजन गंगावाया, लिखता तेज सर्वके समान था । उसका सौन्दर्य वर्णन नहीं किया
जा सकता । ब्राह्मणोंको फिर गणेश श्रीरामचन्द्रजी ठहर विपुल यथे ॥ १ ॥

जगज्जुल जमेत खुलई । देखि प्रहरे मुनि समुदाई ॥

बेद मंत्र सब जिलन्ह उचारे । बभ सुर मुनिजब सजति पुकारे ॥ २ ॥

भीजानकीजीके ललित भीखुनायकीको देखकर मुनियोंका समूहाप आस्ता ही
हर्षित हुआ । [ब्राह्मणोंने वेदमन्त्रोंका उच्चारण किया । आकाशमें देवता और मुनि
स्वयं ही, फल हो] ऐसी पुकार करने लगे ॥ २ ॥

प्रथम तिलक बसिह मुनि कौन्हा । मुनि सब विग्रह आपसु दीन्हा ॥

सुत बिलोकि हरषी महतारी । बार बार आरती उतारी ॥ ३ ॥

[लखे] पहले मुनि बलिष्ठजीने तिलक किया । फिर उन्होंने सब ब्राह्मणोंको
[तिलक करनेकी] आज्ञा दी । पुनश्च राजबलिष्ठजीने देखकर भीतर हर्षित हुई और
उन्होंने बार-बार आरती उतारी ॥ ३ ॥

विग्रह वाम बिबिधि बिधि दीन्हे । लखे सकल भवाचक दीन्हे ॥

सिंहासन पर त्रिभुवन साई । देखि सुसुह दुंदुभी बजाई ॥ ४ ॥

उन्होंने ब्राह्मणोंको अपनेको प्रभुके दान दिये और सम्पूर्ण याचकोंको अयाचक
बना दिया (माग्यमल कर दिया) । त्रिभुवनके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीको [अयोध्याके]
सिंहासनपर [विपुल] देखकर देवताओंने नवाद्ये बजाये ॥ ४ ॥

छं—नम दुंदुभी बाजैहि विपुल गंधर्व किंकर बाजहीं ।

नाचहि अपहरा वृक्ष परमानंद सुर मुनि पावहीं ॥

भरतादि जलुज बिगीर्षनांगद हनुमदादि समेत ते ।

गहैं छत्र चामर व्यञ्जन छतु असि चर्म खडि धिराजते ॥ १ ॥

आकाशमें शृङ्खले नखड़े बज रहे हैं । गन्धर्व और किन्नर गा रहे हैं ।
अम्बरोंके छत्र-वे-मुह नाच रहे हैं । देवता और मुनि परमानन्द प्राप्त कर रहे हैं ।

भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नी, विभीषण, अंगद, हनुमान् और सुग्रीव आदिसहित क्रमशः छत्र, चेंबर, पंखा, धनुष, तज्जवार, दाल और लकड़ लिये हुए सुशोभित हैं ॥ १ ॥

श्री सहित दिनकर बंस भूपर काम वह छवि सोहई ।

नय अंतुधर वर गात जंघर पीत सुर मन मोहई ॥

मुकुटांगदादि विचित्र भूषण गंग अंगहि प्रति सजे ।

अंमोज नयन बिस्मल उर मुज घन्य नर निरखंति जे ॥ २ ॥

श्रीसीतानीलहित सर्वबंधके निरूपण श्रीरामजीके शरीरमें धनेकों कामदेवोंकी छवि शोभा दे रही है । नवीन जन्मुक्त येशोंके समान सुन्दर स्नात शरीरपर पीताम्बर देवताओं के मनको भी मोहित कर रहा है । मुकुट, चानूद आदि विचित्र आभूषण बल्ल-अल्लमें सजे हुए हैं । कमलके समान नेत्र हैं, चौड़ी छाती है और कंठी सुन्दर हैं । जो उनके दर्शन करते हैं वे मनुष्य बन्य हैं ॥ २ ॥

श्री०—वह सोमा समाज सुख कहत न बनद समेत ।

वरताई सारद सेव भुति से रस जान महेस ॥ ११ (क) ॥

हे पथिराल गच्छन्ती । वह सोमा, वह सम्राज और वह सुख मुसके करते नहीं बनता । सारदसीरी, शेषमी और केव निरुत्तर उसका रक्षण करते हैं, और उसका रस (आनन्द) मनुदेवकी ही वानसे हैं ॥ १२ (क) ॥

मिथ मिथ मस्तुति करि गर मुर निज निज धाम ।

बंदी बेस वेद तव आए जई श्रीराम ॥ १२ (ख) ॥

एक देवता भक्त्य-भक्त्य स्तुति करके अपने-अपने क्षेत्रोंको चले गये । तब भादोंका रस धारण करके चारों वेद यहाँ आये यहाँ श्रीरामजी से ॥ १२ (ख) ॥

प्रभु सख्य कर्मि भति आदर कृपानिधान ।

छोख न काहूँ मरम कहु छो करन गुन पाव ॥ १२ (ग) ॥

कृपानिधान सर्वत्र प्रभुने [उन्हें प्रचानकर] उसका बहुत ही आदर किया । शक्य भेद किसीने कुछ भी नहीं जाना । वेद गुणगान करने लगे ॥ १२ (ग) ॥

श्री०—जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूष सिरोमने ।

दसकंधरादि प्रबल निखिल प्रबल सब भुज बल हने ॥

अवतार नर संसार मर विमोहि दास्य दुख दहे ।

जय प्रनतपल्ल दयाल प्रभु संस्तुत सक्ति ममामहे ॥ १ ॥

हे द्युगुण और निर्गुणराम । हे अत्रुपम स्त-व्यवस्थाके हे राजाओंके शिरोमणि ! आपकी जय हो । आपने रामने, आदि प्रचण्ड, प्रबल और निधाचरोंको अपनी मुनाओंके बलसे मार डाला । आपने मनुष्य-अवतार, केवल संसारके भारको नष्ट करके अत्यन्त कठोर दुःखोंको मल कर दिया । हे दयालु । हे अस्वायत्तकी रक्षा करनेवाले प्रभो ! आपकी जय हो । मैं शक्ति (जीतनी) सहित शक्तिमान् आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

तव विषम माया बस सुरासुर लय नर लय जग हरे ।

मय पंथ भ्रमत अमित दिवस निशि काल कर्म भुवति भरे ॥

जे नाथ करि करुन बिलोके विविधि दुख ते निबिडे ।

भव सेद छेदन दच्छ हन फहुँ रज्ज राम ममामहे ॥ २ ॥

हे हरे । आपकी हुस्वर मायाके कभीभूत होनेके कारण देवता, राक्षस, नाथ, मनुष्य और पर, अन्तर सभी काल, कर्म और भुवति भरे हुए (उनके कभीभूत हुए) दिन-

रात अनन्त भय (जाबवागन) के भाँसि सटक रहे हैं। हे नाथ ! तूँसे जिनको अपने
 कृपा करके (कृपादृष्टिसे) देख दिया, वे [सन्धानमि] तीनों प्रकारके दुःखोंसे छूट
 गये। हे कम-मरणके धमके काटनेमें कुशल भीरामजी ! हमारी रक्षा कीजिये। हम
 आपको नमस्कार करते हैं ॥ २ ॥

जे स्थान मान विमल तब भव हरिने मकि न जादरी।

ते पाइ सुर दुर्लभ पद्मादपि परत हम देखत हरी ॥

बिश्वास करि सब अक्ष परिहरि दास तब जे होइ रहे।

अपि नाथ तब बिसु अम तर्हि भव भाव सो समरामहे ॥ ३ ॥

विश्वोंने मित्रा सबके अभिमानमें विशेषकरसे मतवाले होकर जन्म-मृत्यु [के भय]
 को हरेबाही आपकी भक्ति का जादू नहीं किया, वे हरि ! उन्हें देव-दुर्लभ (देवताओं-
 को भी वही कठिनतसे प्राप्त होनेवाले, ज्ञान आदिकें) परकी पाकर भी [ठह] पदसे
 नीचे गिरते देखते हैं। [परन्तु] जो सब आत्माओंको छोड़कर आपपर विश्वास करके
 आपके दास हो रहते हैं, वे केवल आपका नाम ही लपकर फिर ही परिसम भवभारसे
 तर आते हैं। हे नाथ ! ऐसे आपका हम सारण करते हैं ॥ ३ ॥

जे अरज सिध अक्ष पूष रज सुभ परसि मुनिपतिनी तरी।

सब निरागत मुनि बंदिता ब्रह्मलोक पावसि सुरसरी ॥

अक्ष कुलिश अक्षुस कंज जूना वन फिरत कंटक किन लहे।

पद कंज अक्ष मुकुन्द राम रमेस मित्य सजामहे ॥ ४ ॥

जो अरज सिधसे और अक्षणीके द्वारा पूष हैं, तथा जिन चरणोंकी कल्याणमयी
 रज का सर्वा राकर [शिखर बनी हुई] वीरमद्वयिकी पत्नी-अहस्ता तर गयी; जिन
 चरणोंके लक्ष्मी मुनिपतिद्वारा बन्दिता, ब्रह्मलोकसे पवित्र कर्मेश्वरी देववती नज्जाबी
 निकली और अक्ष, अक्ष, अक्षुस और कंज, इन चिह्नोंसे युक्त जिन चरणोंमें वनमें
 फिरोते समस्त कंटक वन जाते गये पड़े पड़े गये हैं; हे मुकुन्द ! हे राम ! हे रमेस ! हम
 ने उन्हीं तीनों चरणोंको नित्य गवसे रहते हैं ॥ ४ ॥

अक्षमूलमनादि तह लक्ष धारि कियमागम भवे।

अक्ष कंध साक्षा पंच वीस अनेक एव सुमय धने ॥

अक्ष शुभल विधि कहु मधुर वेदि अनेक जेहि आभित रहे।

एतका फूलत नवल मित संसार विदर समामहे ॥ ५ ॥

देव-वाक्योंमें कहा है कि अक्षका मूल अक्षक (प्रकृति) है; जो [प्रवाहकभूते]
 अनादि है; उसके चार लक्षार्थ, छह अने, पचीस लक्षार्थ और अनेकों पक्ष और बहुल-
 से पूर है। अक्षमें कड़वे और मीठे दो प्रकारके फल लगे हैं; बिस्वर एक ही देव है, जो
 उसीके आभित रहती है; अक्षमें जिन सब पक्ष और पूर निकलते रहते हैं; ऐसे
 संसारवृक्षरूप (विषयमय प्रकट) आपकी [नमस्कार करते हैं ॥ ५ ॥

जे अक्ष अक्षमहैतमनुभवगम्य मनपर ध्यावही।

ते कहहु जागहु नाथ हम तब सजुन अक्ष मित गावही ॥

कदवायतन प्रभु सदसुनाकर देव यह वर मागही।

मन वचन कर्म विचार सबि लक्ष चरन हम अनुग्राही ॥ ६ ॥

जस अक्षमा है, गहरे है, केवल अनुभवसे ही अक्ष अक्ष है और मनसे परे है—
 जो [इस प्रकार कहकर उठ] अक्ष अक्ष करते हैं, वे देख बड़ा करें और जाना

क्यों, किन्तु दे नाव । इस तो नित्य वापस आया वह ही गये हैं ! हे तूझाके नाम प्रभो !
हे उद्युधामोत्री खाव ! हे देव ! इस वह कर गौते हैं कि मर वचन और करने निकारों-
को त्यागकर आगे के चरणों ही प्रेय करें ॥ ५ ॥

दो—सय- के देखत वेदन्त विमती कौन्दि कन्दार ।

कौन्दि कन्दार सय पुनि सय सय सय ॥ १३(क) ॥

वेदोंने तने देखे वह वेद विमती की । फिर वे मन्त्रार्चन ही गये और
प्रसन्नोक्तो चले गये ॥ १३(क) ॥

वेनतेय छुनु छुनु तव नाव जौ रहुगीर ।

विनय करत गुरु गिर गिर गिर कुलक सरीर ॥ १३(ख) ॥

[काकुत्स्थविन्दो यद्वेदो—] हे कन्दारी । तुमने, का छिपौ वहाँ माने वहाँ
औरगुपीर ये और गुरु गौते सुनि करने कहे । उनका शरीर पुनःकलमें दूर हो
गया— ॥ १३(ख) ॥

छ—जय राम रामरामनं समर्प । सब जय भवाकुल पाहि जय ॥

मयधरेल सुरेल खेस विमो । सन्तगत मानत पाहि प्रभो ॥ १४ ॥

हे राम ! हे रामराम (तूझाके नाम) ! हे राम-रामके संतानों नाम करनेवाले !

आपसी सय हो । आपावमने मयके भाकुल दूरे केवकी खा पीमिने । हे मयप्रभो !

हे देवताओंके स्वामी ! हे रामराम ! हे विमो ! मैं करतावत आने वही मोंगवा हूँ कि

हे प्रभो ! मेरी खा पीमिने ॥ १४ ॥

दससीत किमसग पीत भुज । कुव दूरि यहा मवि धूरि दहा ॥

रजनीधर वृद्ध पतंग रहे । सर पक्षक लेख प्रचेद रहे ॥ १५ ॥

हे दस तिर और सीत कुमलोंके उपका विनय करते कौन्दि का महा-
रोगी (कौन्दि) को दूर करनेवाले औरगमनी ! तुमसमुत्तरी को पति के, वे का
आगे के बाणकी शक्ति प्रवक्त केने मका हो गये ॥ १५ ॥

महि मंडल मंडल वास्तव । वृत्त वाक्क वाप विवेक बर ॥

मद मोह महा ममता रजनी । तम पुंज दिसकर तेज मकी ॥ १६ ॥

आप दृष्टी-मन्त्रके अन्त कुन्दर नाम्ना है वह मोह वाप, वपु और
वरकत वाप विवे दृष्ट है । मन्त्र का, मोह और मन्त्रात्मके शक्ति अन्यकारतुके
नाम करनेके लिये नाम दृष्टि केयोग विनयवृत्त ॥ १६ ॥

मनजात किरात निपत फिर । सुग खेग कुमोव सुरेव दिर ॥

हति नाथ भनायनि पाहि दरे । विनय भव खर्वैर मृति परे ॥ १७ ॥

कामदेवकी मीमने मृत्पत्नी शिरोके दूरकों कुमोवकी वाप मारकर तने
गिर दिया है । हे नाथ ! हे [वाप-काम दृष्ट करनेवाले] हो ! तो वापकर विन-
की वनमें भूले पड़े हुए इन नाम अन्य कीमती खा पीमिने ॥ १७ ॥

बहु रोग वियोगनि लेव हय । मन्त्रवि विनायक के फल ॥

मव सिधु मग्राय परे कर ते । पद पंक्त मेम न जे फले ॥ १८ ॥

खेग वृद्धके रोगों और वियोग (दुःखों) के मरे हुए हैं । वे का अपने
परमोंके निरादरके फल हैं । जो मृत्पत्नी आगे के चरणोंमें प्रेय नहीं करते, वे मन्त्र
भवाग्रमों पड़े हैं ॥ १८ ॥

अति दीन मलीन हुन्ती नितहीं । जिन्ह कँफड़ पंकज प्रीति नहीं ॥
 अबल्य भवत कथा जिन्ह कँ । प्रिय संत वनंत सदा तिन्ह कँ ॥ ६ ॥
 जिन्हें अपने चरणरम्यमें प्रीति नहीं है वे नित्य हो अत्यन्त शून्य, मलीन (उदास)
 और दुखी रहते हैं । और जिन्हें आपकी मूल्य-कथा का आधार है, उनको संत और
 मगधात् सदा प्रिय लगने लगते हैं ॥ ६ ॥

नहि राग न लोभ न मय्य मदा । तिन्ह कँ सन वैभव वा विपदा ॥
 एहि ते तब सेवक होत मुदा । मुनि त्यागत लोग भरोल सदा ॥ ७ ॥
 उनमें न राग (भाविक) है, न लोभः न मान है, न मदा । उनको सन्तति
 (शुल) और निगति (दुःख) प्रदान है । ह्रीति दुर्लभ योग (साधन) का भरोसा
 कदाके लिये स्थान वेते हैं और प्रवक्तृके साथ आनन्द सेवक बन जाते हैं ॥ ७ ॥
 करि प्रेम निरंतर वेम लिरैं । पड़ पंकज सेवन सुद हिउँ ॥
 खम मानि निरादर आदरही । सब संत मुत्ती विचरति मही ॥ ८ ॥
 वे प्रेमपूर्ण निरन्तर लेकर निरन्तर सुदृढ़ हृदयों आनन्द चरणकमलों की सेवा करते
 रहते हैं । और निरादर और आदरको उन्नत मानकर वे सब संत मुत्ती होकर
 पृथ्वी पर विचरते हैं ॥ ८ ॥

मुनि मानल पंकज भृंग भजे । रघुवीर महा रघुवीर भजे ॥
 तब नाम अपामि ममामि हरी । मय रोग महागड् मय मरी ॥ ९ ॥
 हे मुनियों के मनवही कनक के भ्रम ! हे महान् रघुवीर एवं भजे रघुवीर !
 मैं आपको भजता हूँ (आपकी शरण ग्रहण करता हूँ) ! हे हरी ! आपका नाम जता
 हूँ और आपको नमस्कार करता हूँ । आप अन्य-मनवली रोगही म्हात् और म और
 ममिमानके शत्रु हैं ॥ ९ ॥

शुभ सील छपा परमायतन । प्रनमामि निरंतर श्रीराम ॥
 रघुनन्द निकंठ्य ब्रह्मधर्म । महिपाल बिलोक्य हीन जन्म ॥ १० ॥
 आप शुभ, सील और कृष्ण के परम स्थान हैं ! आप लकीरते हैं, मैं आपको निरन्तर
 प्रणाम करता हूँ ! हे रघुनन्द ! [आप अन्य-मनव, मुक्त-मुक्त, राग-दोषादि] ब्रह्म-
 क्षुण्णका नाद कीजिये । हे पृथ्वी की पद्मा करनेवाले राजा ! इस दीन जनकी ओर
 भी दृष्टि बाँटिये ॥ १० ॥

दो—बार बार कर मागवैं हरपि देहु अरिग ।
 एव सरोज अवपायनी भवति सदा सतसंग ॥ १४ (क) ॥
 मैं आपसे बार-बार कही-करतन नैनता हूँ कि उसे आनन्द चरणरम्यों की अवलम्बिका
 और आनन्द मज्जा का सत्त्व चरा प्राप्त हो । हे कर्मजने ! हरित लेकर जुते बही दीजिये ।
 वरनि उमापति राम मुन हरपि राय कैलास ।
 तब प्रभु करिन्ह दिवाए खवं विधि मुखमद वास ॥ १४ (ख) ॥
 श्रीरामचन्द्रादि पुण्यका वर्णन करके उन्नति महादेव की हरित होकर कैलासको
 चले गये । तब प्रभुने चान्तोंको सब प्रकृतसे मुक्त देनेवाले ऊँचे दिव्यते ॥ १४ (ख) ॥
 चौ—हुत सगपति यह कथा पावनी । विविध राय मय मय दावनी ॥
 महाराज कर मुन्य जगिषिका । सुवतलहर्हि कर विरति विषेका ॥ १५ ॥
 हे गरुडकी ! सुनिये, यह कथा [कथो] पवित्र करनेवाली है, [दैविक, दैविक,
 भौतिक] तीनों प्रकारके लक्षणों और चमत्कारों के मन्त्रा नाद करनेवाली है । महाराज

हिं हितके लिये दुस्स्वभावीने पपेज्जे तथा सब प्रकारके सुखोंको त्याग दिया । इससे तुम मुझे अत्यन्त ही प्रिय लग रहे हो । छोटे भाई, राजन्, सम्पत्ति, जानकी, अपना शरीर, मर, कुटुम्ब और मित्र—॥ ३ ॥

सबसम प्रिय नहीं दुस्महि सम्मान । सृष्टा न कह्यै सोर यह यात्रा ॥

सब के प्रिय सेवक यह बीती । मोरें अधिक दास पर प्रीती ॥ ४ ॥

ये सभी मुझे प्रिय हैं, परन्तु तुम्हारे सम्मान नहीं ! मैं छूट नहीं कहता, यह मेरा स्वभाव है । सेवक सभीको प्यारे लगते हैं, वह नीति (निष्कम) है । [पर] मेरा तो दासपर [स्वाभाविक ही] विशेष प्रेम है ॥ ४ ॥

दो०—अब चूह जाहु सखा सब भजेहु भोहि दड़ नेम ।

सखा सर्वगत सर्वहित जानि करेहु अति प्रेम ॥ १६ ॥

हे सखागण ! अब सब लोग कर जाओ; वहाँ दड़ नियमसे मुझे भजते रहना । मुझे सदा सर्वव्यापक और सबका हित करनेवाला जानकर अत्यन्त प्रेम करना ॥ १६ ॥

चौ०—मुनि प्रभु वचन मगन सब भए । को इस कहाँ बिसरि लग गए ॥

एकटक रहे जोरि कर जाने । सर्वहि मकलुकहि भति भटुरागे ॥ १ ॥

प्रभुके वचन सुनकर सबके-सब प्रेममग्न हो गये । इन कौन हैं और कहाँ हैं ? यह देखती सुष भी भूल गयी । वे प्रभुके सामने हाथ जोड़कर टकटकी लगाये देखते ही रह गये । अत्यन्त प्रेमके कारण कुछ कह नहीं सकते ॥ १ ॥

परम प्रेम सिद्ध कर प्रभु देखा । कहा विधिनि विधि ग्यान विसेष ॥

प्रभु सम्युक्त कहु कहन न पारहि । पुनि पुनि चरन सरोज निहारहि ॥ २ ॥

प्रभुने उनका अत्यन्त प्रेम देखा, [तब] उन्हें अनेकों प्रकारसे दिव्य ज्ञानका उपदेश दिया । प्रभुके सम्युक्त वे कुछ कह नहीं सकते । बार-बार प्रभुके चरणकमलोंको देखते हैं ॥ २ ॥

तब प्रभु भूषण वस्त्र मगाए । बाका रंग अनूप सुहाए ॥

सुग्रीवहि अभर्माहि पहिराए । वस्त्र चरत विस हाथ बनाए ॥ ३ ॥

तब प्रभुने अनेक रंगोंके अनुपम और सुन्दर गहने-कपड़े भेंटवाये । सबसे पहले मरतजीने अपने हाथसे सेवारकर सुग्रीवको भस्माभूषण पहनाये ॥ ३ ॥

प्रभु प्रेरित कलिसन पहिराए । लंकपति रावृपति सब भाए ॥ ४ ॥

भंगाई बैठ रहाँ नाहि बीला । प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोझ ॥ ५ ॥

फिर प्रभुकी प्रेरणासे लक्ष्मणजीने विभीषणजीको यहने-कपड़े पहनाये, जो भीरबुनाय-जीके मनको बहुत ही अलड़े लगे । अंकद बैठे ही रहे, वे अपनी जगहसे हिलेतक नहीं । उनका उत्कट प्रेम देखकर प्रभुने उनको नहीं जुलसा ॥ ४ ॥

दो०—जामवंत नीलदि सब पहिराए रघुनाथ ।

दियै धरि राम रूप सब खले नाह पद माथ ॥ १७ (क) ॥

जामवान् और नील आदि सबको भीरबुनायजीने स्वयं सूरण-वस्त्र पहनाये । वे सब अपने हृदयोंमें श्रीरामचन्द्रजीके स्मृति धारण करते उनके चरणोंमें मलक मगाकर चले ॥ १७ (क) ॥

तब अंगद उठि जाइ सिर सखल नयन कर जोरि ।

अति विनीत बोलेख वचन मनहुँ प्रेम रख योरि ॥ १७ (ख) ॥

तब अंगद उठकर फिर नवाकर, नेत्रोंमें कंठ मलेकर और हाथ जोड़कर अत्यन्त विनम्र तथा मनो प्रेमके रसमें डूबी हुई (अनुर) वचन बोले ॥ १७ (ख) ॥

चौ—सुख सर्वत्र हृष्य सुख सिधौ। दीन दयाकर धरत रंघौ ॥
 मरती के नाच मोहि वाली। वसत कुम्हारोहि कोंठे वाली ॥ १ ॥
 हे सर्वत्र ! हे हृष्य और सुखके समुद्र ! हे दीनोकर दया करनेवाले ! हे आलौकिक बन्धु !
 मुनिये ! हे नाथ ! मरते सम्य येरा पित्त बालि मुझे आगामी हो गोदमें डाल गया था ! १ !
 अस्मरण सरव विरह संभारी। मोहि बनि उज्जु भग्न हितकारी ॥
 मोरे सुन्द प्रभु सुख सिद्ध सज्ज। जाउं कहीं लखि यह बलवता ॥ २ ॥
 अतः हे भक्तोंके हितकारी ! अपना अस्मरण-स्मरण निरद (वाना) बाद करके
 मुझे त्यागिये नहीं। मेरे तो स्वाधी, सुख, सिद्ध और मत्ता, सब कुछ भाग ही हैं। आपके
 चरणकमलोमें छोड़कर मैं कहीं जाऊँ ॥ २ ॥

सुन्दरि विचारि कछु बगवत। प्रभु लखि भजन काल मन काल ॥
 बालक व्यास सुदि यह हीन। यल्लभु सरव बल बल दीन ॥ ३ ॥
 हे भद्रराज ! आप ही विचारकर करिये, प्रभु (आप) को छोड़कर परम में मेरा
 क्या काम है ! हे नाथ ! दूख खान, बुद्धि और बलके हीन बालक क्या हीन सेवकको
 धारणमें रखिये ॥ ३ ॥

नीचि दृष्ट सुख है सब छोड़हैं। पर पंथ विप्रोकि मन ठहिरैं ॥
 अल करि करन रंज प्रभु पही। अल जनि बाध कछु पृथ जाही ॥ ४ ॥
 मैं बरती लम नीचै-ते-नीची सेवा करूँ। और आपके करण-कर्मोंको देख-देखकर
 भवसागरसे तर जाऊँगा। ऐसा कहकर वे श्रीरामजीके चरणोंमें गिर पड़े [और बोले—]
 हे प्रभो ! मेरी श्ला कीजिये। हे नाथ ! अब यह च करिये कि तू पर का ॥ ४ ॥

दो—अंगद बचन विनीत सुनि रघुपति कसब लीच।
 प्रभु उठाय उर लपट सज्ज। नयन राजीव ॥ १८ (क) ॥
 अंगदके विनम्र बचन सुनकर कम्पायी लीच प्रभु श्रीरामजीके उनको उठाकर
 हृदयमें लगा लिया। प्रभुके नेत्रकमलोंमें [प्रेमाशुओंका] लज मर गया ॥ १८ (क) ॥
 निज उर माँल बसत प्रवि बलिजनन परिपार।

विद्रा कीर्ति मगवान सब बहू प्रकार समुद्रादि ॥ १८ (ख) ॥
 कद भगवान्ने अपने हृदयकी माता, कल और मयि (रखीके आश्रय) बाकि-
 पुत्र अंगदको पढ़ाकर और बहुत प्रकारसे समझाकर उनकी विद्राई की ॥ १८ (ख) ॥

चौ—अवत अतुल सौमित्र सौख्य। पञ्चन बके मलय हस्त चेत ॥
 अंगद सुख प्रेम नीच जोर। फिर फिर चित्त यम की जोर ॥ १ ॥
 भक्तों करनीको बाद शत्रुके मरुतों छोटे मोई धनुषनी और लक्षणवीर्यसे
 उनकी पहुँचाने चले। अंगदके हृदयमें मोक्ष प्रेम नहीं है (अर्थात् बहुत अधिक प्रेम
 है)। वे फिर-फिरकर श्रीरामजीकी ओर देखते हैं, ॥ १ ॥

बार बार कर दंड प्रहारा। अल अल रह्य कहि मोहि रवा ॥
 राम भिखीकनि कीर्तनि पवनी। सुखि सुखि सोच हंसि मित्राणी ॥ २ ॥
 और बार-बार दंडकाट-प्रहार करते हैं। समझें ऐसा अंश है कि श्रीरामजी
 मुझे खदेड़नेको कह दें। वे श्रीरामजीके देखनेकी, लेखनेकी, चलेनेकी तथा हँसकर
 मिलनेकी रीतिको बाद कर के सोचते हैं (हुँसी होते हैं) ॥ २ ॥

प्रभु सब देखि विषय नष्ट गयी। चलेन कर्ण पद पंथ राखी ॥
 अति अंगद सब बनि पहुँचत। अंगद सहित गलत मुनि जात ॥ ३ ॥

किन्तु प्रभुका सख देखकर बहुत-से विनम्र-वचन कहकर तथा हृदयमें चरण-कमलोंको रखकर थे चले । अत्यन्त आदरके साथ सब वानरोंको पहुँचाकर भाइयोंसहित भरतनी लौट आये ॥ ३ ॥

तब सुग्रीव चरण गहि लावा । भीति निवर्ण कीन्हे हनुमान ॥

दिन दस करि रक्षुपति पद सेवा । पुनि सब चरण देखिहर्षे देवा ॥ ४ ॥

तब हनुमानजीने सुग्रीवके चरण पकड़कर अनेक प्रकम्पसे विनती की और कहा— हे देव ! दस (दुःख) दिन भीरुघनायकीकी चरणसेवा करने फिर मैं आकर आपके चरणोंके दर्शन करूँगा ॥ ४ ॥

पुन्य पुन पुन पवनकुमार । लेखहु जाइ कुल आभारा ॥

मन कहि कपि सब बडे तुरता । अंगद कहइ सुबहु हनुमता ॥ ५ ॥

[सुग्रीवने कहा—] हे पवनकुमार ! तुम पुन्यकी राशि हो [जो भगवान्ने तुमको अपनी सेवामें रख लिया] । जाकर कुलाश्रम श्रीरामजीकी सेवा करो । सब वानर ऐसा कहकर दूर-तक चले । अंगदने कहा— हे हनुमान् ! सुनो— ॥ ५ ॥

यो—कहेहु बंछत प्रभु सैं तुम्हहि कहैँ कर जोरि ।

बार बार रघुनाथकहि सुरति करपहु मोरि ॥ १९(क) ॥

मैं तुमसे श्राप जोड़कर कहता हूँ, प्रभुसे मेरी दखबत कहना और श्रीरघुनाथजी-को बार-बार मेरी याद कराते रहना ॥ १९ (क) ॥

अस कहि अछेद बालिसुत फिरि आपस हनुमंत ।

तासु प्रीति प्रभु सन कही मगव भय भगवंत ॥ १९(ख) ॥

ऐसा कहकर बालिसुत अंगद चले, तब हनुमान्जी लौट आये और आकर प्रभुसे उनका प्रेम वर्णन किया । उसे सुनकर भगवान्ने प्रेममग्न हो गये ॥ १९ (ख) ॥

कुलिसहु बाहि कठोर भलि कोमल कुसुमहु बाहि ।

चित्त खोस राम कर समुपि पर कहु काहि ॥ १९(ग) ॥

[कान्हादुर्गाजी कहते हैं—] हे गरुडजी ! श्रीरामजीका चित्त वल्लभ ही अत्यन्त कठोर और फूलों भी अत्यन्त कोमल है । तब कहिये, वह किसकी समझमें आ सकता है ? ॥ १९ (ग) ॥

चौ—पुनि कुलक किन्ही बोकि निषादा । दीन्हे भूषण कसन मसादा ॥

बाहु मगव भय सुमिरन करेहु । मन कम बचन धर्म अनुसरेहु ॥ १ ॥

फिर कुलाल भीरामजीने निषादराजको बुल किया और उसे भूषण, वस्त्र प्रशासन दिदे । [फिर कहा—] जब तुम भी कर बायो, यहाँ मेरा स्तरण करते रहना और मन बचन तथा कर्मसे धर्मके अनुसर चलो ॥ १ ॥

हुन्य सम सखा मरत सम साखा । सन्द, शैल पुर आचल आखा ॥

धन सुनत उपजा सुख गाली । पसे-जस भरि जोचन बारी ॥ २ ॥

तुम मेरे मित्र हो और मरते के समान सार्व हो-न अवस्थाओं तथा आते-जाते रहना । यह वचन सुनते ही उसको पारी कुल-उत्पल-हुवा । नेत्रोंमें [आनन्द और प्रेमके आँसुओंका] लव भरकर वह कर्णोंमें गिर पड़ा ॥ २ ॥

चरण नकिा कर भरि गृह जावा । प्रभु सुभाऊ चरितनहि मुखावा ॥

रक्षुपति अति देखि पुनरासी । पुनि पुनि कहहि वन्य मुलरासी ॥ ३ ॥

फिर भगवान्ने चरणकमलोंसे हृदयमें रखकर वह गृह आया और आकर अपने

कुटुम्बियोंको उसने प्रसन्न स्वभाव सुनाया। श्रीकृष्णजीका यह परिच देकर अन्ध-
पुरवासी बार-बार कहते हैं कि तुलसी रात्रि श्रीरामकन्दली धन्य हैं ॥ ३ ॥

राम राम हैं जैसेका। इच्छित मरु मरु राम सोच ॥

कथन न कर कहूँ सब छोड़ें। राम प्रलय विनमरा खोहूँ ॥ ४ ॥

श्रीरामकन्दलीके राजपर प्रसिद्धि होनेपर लोगों नेके इच्छित हो गये, उनके सारे
शोक जाते रहे। कोई किसीसे दूर नहीं आता। श्रीरामकन्दलीके प्रसंगसे सबको विषमता
(आन्तरिक भेदभाव) मिट गयी ॥ ४ ॥

श्री०—हरनाश्रम निज निज घरज निरत वेद पथ छोय ।

चरहि सदा पारहि सुखहि बहि भय खोच न रोग ॥ २० ॥

सब लोग अपने-अपने स्व और आश्रमके अनुकूल धर्मों उत्तर हुए उदा वेद-
मार्गपर चलते हैं और सुख पाते हैं। उन्हें न किसी खराब मर है, न शोक है और
न कोई रोग ही उठता है ॥ २० ॥

श्री०—दैहिक दैहिक भौतिक लय। राम राम कहि कहहि म्मात्र ॥

लख नर कहि परसर प्रसी। कन्हि लखम निरत सुधि भीती ॥ १ ॥

'राम-राम' ये दैहिक, दैहिक और भौतिक लय किसीको नहीं मारते। लख ननुम
परसर प्रेम करते हैं और वेदोंमें कान्सी हुई नीति (मार्ग) में उत्तर रहकर अपने-
अपने धर्मका पालन करते हैं ॥ १ ॥

चारिज जगन धर्म जग मारि। दूर रहा सपनेहुँ जब मारि ॥

राम भेषति त म मरु नारी। लख परम बलि के अधिकारी ॥ २ ॥

धर्म अपने चारों करणों (कण, श्रोत्र, ज्ञान और दान) से सत्कारे परिपूर्ण हो
रहा है; सत्कार में भी कहीं कम नहीं है। पुरुष और स्त्री सभी राधायागिकोंके परमपद हैं
और सभी परमात्मा (गोप) के अधिकारी हैं ॥ २ ॥

कथनमनु वरि कथनित पति। सब सुनर सब विरल प्रसि ॥

कहि हरिज कोट दुखी न दीन। नहि खेद मनुष्य न कण्डनहीन ॥ ३ ॥

छोटी नपसामे भालु नहीं होती, न किसीको कोई पीड़ा होती है। सभीके उत्तर
सुन्दर और निरोग हैं। न कोई दरिद्र है, न दुखी है और न दीन ही है। न कोई
मूर्ख है और न कम लक्षणोंमें हीन ही है ॥ ३ ॥

लख निर्दम धर्मल पुरी। नर जब नारि नार सब दुखी ॥

लख तुल्य पतिर सब भावी। सब कृत्य कहि कथन लखानी ॥ ४ ॥

सभी दम्भरहित हैं, धर्मपरायण हैं और पुण्यात्मा हैं। पुरुष और स्त्री सभी
नार और गुणवान हैं। सभी गुणोंका जागर करनेवाले और पवित्र हैं तथा सभी शान्ति
हैं। सभी कृत्य (कुलेके सिद्ध हुए उपकारको-दानेको) हैं, कथन-व्याख्या
(वृत्तता) किसीमें नहीं है ॥ ४ ॥

श्री०—यम राज नामेस सुख सखराचर जग मारि ।

काठ धर्म सुखज सुन कत दुख कहहि बहि ॥ २१ ॥

[काफ्युद्धिजी कहते हैं—] हे परितोष भक्तजी! सुनिये। श्रीरामके राज्यमें
जद, वेदन सारे जगत्में फल, धर्म, स्वामन और सुखोंसे सबल हुए दुख किसीको भी
नहीं होते (मार्गात् इनके सम्बन्धमें कोई नहीं है) ॥ २१ ॥

चौ०—भूमि सख सखर मेखल। एक मूय मयुपति कोसल ॥

मुलन खेक रोम प्रति जाहू। यह प्रमुता कहु बहुत न ताम् ॥ १ ॥

अयोध्यामें भीरधुनायबी सात समुद्रोंकी मेखल (करधनी) वाली पृथ्वीके एक मात्र राजा हैं। जिनके एक-एक रोममें अनेकों ब्रह्मण्ड हैं, उनके लिये सात द्वीपोंकी यह प्रमुता कुछ अधिक नहीं है ॥ १ ॥

सो महिमा समुद्रा प्रभु केरी। वह बरचत हीचता चनेरी ॥

सोढ महिमा जगैस विन्दु जनी। फिर एहि चरित लिखहुँ रति मानी ॥ २ ॥

बल्कि प्रभुकी उस महिमाको समझ लेपर जो वह कहनेमें [कि वे सात समुद्रोंसे फिरि हुई सप्तद्वीपमयी पृथ्वीके एकच्छत्र सम्राट् हैं] उनकी बड़ी हीमता होती है। परन्तु है सरबुनी। तिनहूँने यह महिमा जान भी की है, वे भी फिर इस लीलामें बड़ा प्रेम मानते हैं ॥ २ ॥

सोढ जाने कर फल यह लीला। कहहि महा मुनिवर दमसीला ॥

राज राज कर मुख संपदा। बरनि व सकह फणीस सारा ॥ ३ ॥

क्योंकि उस महिमाको भी जाननेका फल यह लीला (इस लीलाका अनुभव) ही है, इन्द्रियोंका दमन करनेवाले जो महामुनि ऐसा कहते हैं। रामराज्यकी सुखसम्पत्तिका वर्णन शेषकी और सरसहीनी भी नहीं कर सकते ॥ ३ ॥

सब बदार सब पर उपकारी। विप्र चरन सेवक कर गारी ॥

एकनारि अत रत सब ज्ञारी। ते सब वच क्रम पति विसकारी ॥ ४ ॥

सभी नर-नारी उदार हैं, सभी प्रोपकारी हैं और सभी ब्राह्मणोंके चरणोंके सेवक हैं। सभी पुण्यमान परमसीमती हैं। एही प्रकार जियाँ भी मन, वचन और कर्मसे पति-का विस करेवासी हैं ॥ ४ ॥

रो०—दंड जलिन कर मेह जेहँ नरक नृत्य समाज ।

जीतहु मरहि सुविष अस रामचंद्र को राज ॥ २१ ॥

भीरामचन्द्रजीके राज्यमें दण्ड केवल लम्बासियोंके हाथोंमें है और मेह नाचने-वालोंके नृत्यसमाजमें है और भीतो! दण्ड केवल मनके जीतनेके लिये ही बुनावी पकता है (अर्थात् राजनीतिमें अनुशोभे जीतने तथा चोर-ठाकुरों आदिको दमन करनेके लिये काम, दान, दण्ड और मेह—वे चार उपाय किये जाते हैं। रामराज्यमें कोई दण्ड है ही नहीं, इसलिये भीतो! दण्ड केवल मनके जीतनेके लिये ही कहा जाया है। कोई अपराध करता ही नहीं, इसलिये दण्ड किसीको नहीं होता; दण्ड दण्ड केवल लम्बासियोंके हाथमें रहनेवाले दण्डके लिये ही रह गया है। तथा सभी अनुकूल होनेके कारण मेहनतीकी आवश्यकता ही नहीं रह गयी। मेह! दण्ड केवल चोर-ठाकुरों के लिये ही काममें जाता है।) ॥ २२ ॥

चौ०—कहहि करहि सदा यह जनन। कहहि एक सँग राज बंचामन ॥

राज मूय सहज सब विसराई। सबहि बत्सर प्रीति बरहाई ॥ १ ॥

इनोंमें दण्ड सदा फूटते और फटते हैं। सभी और सिंह [नैर मुकुट] एक साथ रहते हैं। पत्नी और पति सभीने सामाजिक चैर श्रवण व्यापसमें प्रेम बढ़ा लिया है ॥ १ ॥

कहहि सब मूय राजा कुंदा। जसब कहहि नन करहि अनंदा ॥

सीतल सुरभि पवन यह मंदा। शुंक्त बलि सै चलि मकरंदा ॥ २ ॥

पत्नी कुंवरे (सीटी चोली चोन्ते) हैं, मौखि-मौखिके पञ्चज्योके बगूह वनमें निर्गम

विचरते और आनन्द करते हैं। शीतल, मन्द, सुगन्धित पवन चलता रहता है। गौर पुष्पोंका रस लेकर चकते हुए बुन्दार करते जाते हैं ॥ २ ॥

कटा चित्र मानें यशु समझें। मनमन्त्रों सेतु पन समझें ॥
ससि संघ सदा रह धरती। जेठों सह कुङ्कुम कै करी ॥ ३ ॥
बेधें और वृष मँगनेसे ही यशु (मकरन्द) उम्र देते हैं। गौरों मनचाहा दूध देती हैं। भरती सदा सेतेसे भरी रहती है। जेठोंमें कलकुम्भी करनी (शिति) हो गयी ॥ ३ ॥
प्रयतों गिरिन्द हिविधि मनि खायी। जगत्तमा मूष जग जगती ॥
सरिता सकल बहहि सर बारी। शीतल जमल आव सुखवायी ॥ ४ ॥
समस्त जगत्के आत्मा प्रभावजों ब्रह्मका राजा ज्ञानपर पर्वतों अनेक प्रकारकी मणियोंकी सन्ने प्रकट कर दीं। सब नदियाँ श्रेष्ठ, शीतल, निर्मल और सुलभ स्वादिष्ट जल बहने लगीं ॥ ४ ॥

सागर भिन्न भरवाही रह्यो। सरहि रज उत्तम नर बह्यो ॥
सरसि सङ्कुल सकल लज्जा। नृपि प्रसन्न दस दिशा विभागा ॥ ५ ॥
समुद्र अपनी सर्वाश्रयें रहते हैं। वे लहरोंके द्वारा किनारोंपर रज डाल देते हैं, किन्हीं मनुष्य जा जते हैं। सब जलजल कमलसे परिपूर्ण हैं। दलों दिशाओंके विभाग (अर्थात् सभी प्रदेश) अत्यन्त प्रसन्न हैं ॥ ५ ॥

श्री०—विशु सहि पूर मयूकम्भि रवि तप जेतसेहि काव।
सामें पारिव देहि जल रामचन्द्र के राज ॥ २३ ॥
श्रीरामचन्द्रजीके राज्यमें चन्द्रमा अपनी [अमृतमयी] किण्वोंसे पूर्णको पूर्ण कर लेते हैं। सूर्य उठता ही तपते हैं जिन्होंने आकृषकता होती है और सब मँगनेसे [सब जहाँ जितना चाहिये उतना ही] जल देते हैं ॥ २३ ॥

श्री०—कोटिन्द वात्रिमेव प्रभु कीन्दे। दान अनेक दिग्गज कैं दान्दे ॥
कुति पक्ष वासक धर्म पुरंदर। सुबासीव भद्र जेव पुरंदर ॥ १ ॥
प्रभु श्रीरामजीने करोड़ों अश्वमेध यज्ञ किये और राजाओंको अनेकों दान दिये। श्रीरामचन्द्रजी वेदमार्गके पाठनेवाले, धर्मकी पुरीको धारण करनेवाले, [प्रह्लादसम्पन्न, राज और राम] तीनों गुणोंसे असीत और भोगों (वेद्यों) में इनके समान हैं ॥ १ ॥

पति भङ्गुल सदा रह सीत। सीतल आवि सुसीक विनीता ॥
जानति कृपासिद्ध प्रसुखई। सेवति सरन कमल प्रस हाई ॥ २ ॥
शोभाकी धान, सुशील और निम्न सीताजी सदा पतिके अनुकूल रहती हैं। वे कृपासागर श्रीरामजीकी प्रसन्न (सहिष्णु) को जानती हैं और सब स्थावर जनके धरमकर्मोंकी सेवा करती हैं ॥ २ ॥

जबपि गृह सेवक सेवकियो। विपुल सदा सेवा विधि कुली ॥
विश कर गृह परिचरता करई। समर्थ अक्षय अनुकरई ॥ ३ ॥
यद्यपि धर्म बहुतसे (जगत्) दास और दासियाँ हैं और वे सभी सेवकी विधियों कुशल हैं, तथापि [स्वामीकी सेवाका महत्त्व जाननेवाली] सीताजी परकी सब सेवा अपने ही हाथोंसे करती हैं और श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाका अनुसरण करती हैं ॥ ३ ॥
जेदि किंचि कृपासिद्ध सुख भवई। सोह कर जो सेवा विधि जानई ॥
कौसल्यादि ससु गृह गार्ही। सेवद समन्वि मान मद गार्ही ॥ ४ ॥
कृपासागर श्रीरामचन्द्रजी अति प्रसन्ने सुख मानते हैं, जीवी नहीं करती हैं,

क्योंकि वे सेवाकी विधिको जाननेवाली हैं। परमें कौस्तुभ्या वादि सभी समुओंकी सीता-
जी सेवा करती हैं; उन्हें किसी पापका अगिमान और मद नहीं है ॥ ४ ॥

उमा रमा ब्रह्मादि वैदित्तः समर्धना संसृतमनिन्दित ॥ ५ ॥
[छिन्नी कहते हैं—] हे उमा ! ब्रह्मदेवी रमा (सीताजी) ब्रह्म आदि
देवताओंसे वन्दित और सब अनिन्दित (सर्वगुणसम्पन्न) हैं ॥ ५ ॥

दो०—आप्तु कृप कष्टच्युत्त सुर चाहत चितव न सोइ ।

राम पदार्थविद रति करति सुभावहि सोइ ॥ २४ ॥

देवता जिनका कृपाकष्टास चाहते हैं, परन्तु वे उनकी ओर देखती भी नहीं;
वे ही छद्मजीवी (जानजीवी) अपने [महामहिम] समाकषों छोड़कर श्रीरामचन्द्रजीके
चरणारविन्दमें प्रीति करती हैं ॥ २४ ॥

चौ०—सेवाहि सावकुक सब भाई । राम चरव रति रति अधिकारि ॥

प्रभु पुत्र समक विधेयत रहई । कष्टहु कृपाक हमहि लुप्त कहई ॥ १ ॥

सब भाई अनुकूल रहकर उनकी सेवा करते हैं। श्रीरामजीके चरणोंमें उनकी
अत्यन्त अधिक प्रीति है। वे सदा प्रभुका मुखास्मिन् ही देखते रहते हैं कि कृपाछ
श्रीरामजी कभी हमें कुछ सेवा करनेको कहें ॥ १ ॥

राम करहि भ्रातण्ड पर प्रीति : नारा मीति सिखावहि नीति ॥

हरहित रहई नगर के छोड़ । करहि सकल सुर सुखभ भोगा ॥ २ ॥

श्रीरामचन्द्रजी भी भाइयोंपर प्रेम करते हैं और उन्हें नाना प्रकारकी नीतियों
सिखावते हैं। नारदके लोग इतित रहते हैं और सब प्रकारके देवदुर्गम (देवताओंको
नो कठिनाये प्राप्त होने योग्य) भोग भोगते हैं ॥ २ ॥

अहमिति विधिहि सज्जन रहई । श्रीरघुवरि चरव रति चहई ॥

इह सुत सुंदर सीतौ लग्य । छत्र कुल बेद पुराणद गाए ॥ ३ ॥

वे दिन-रात ब्रह्मजीको मन्त्रते रहते हैं और [उनसे] श्रीरघुवीरके चरणोंमें प्रीति
चाहते हैं। सीताजीके लाल और कुल—वे दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनका वेद-पुराणोंसे
वर्णन किया है ॥ ३ ॥

सोढ निगई निगई पुत्र यदिर । प्रतिविम भनहुँ बति सुंदर ॥

इह सुद सुत सब आनंद करे । सब रूप गुण सौक बनै ॥ ४ ॥

वे दोनों ही निजजी (विस्वात बोद्ध) नष्ट और गुणोंके धाम हैं और अत्यन्त
सुन्दर हैं; मानो श्रीहरिके प्रतिविम्ब ही हों। दोनों पुत्र सभी भाइयोंके हुए, जो सब
ही सुन्दर, गुणवान् और सुखी थे ॥ ४ ॥

दो०—न्याय गिरा भोलीत अज माया सब गुन पार ।

सोइ सचिदानन्द धन कर नर चरित उदार ॥ २५ ॥

जो [वैदिक] सन, चापी और इन्द्रियोंके परे और अजन्ता हैं तथा माया, मन
और गुणोंके परे हैं, वही सचिदानन्दधन सगवान् श्रेष्ठ नर-स्वीकृत करते हैं ॥ २५ ॥

चौ०—आतकाल सरल करि लब्ध । बैसई सबौ संग द्विज सज्जन ॥

वेद पुराण बसिष्ठ ब्रह्मजीहि । सुनई राम चरपि सब जानई ॥ १ ॥

प्रातःकाल धर्मयुक्तोंमें स्नान करके आत्मार्थों और सबजनोंके लिये समारंभ बैठते हैं।
वरिष्ठजी वेद और पुराणोंकी कथाएँ कर्त्तव्य करते हैं और श्रीरामजी सुनते हैं; मध्याह्न
वे सब जानते हैं ॥ १ ॥

अनुबन्ध संस्तु भोजन कर्तव्य । देखि सकल जवनीं सुख भारही ॥
 भरत सनुहव दोनद, माई । सहित स्वयंभुव वंशवन आई ॥ २ ॥
 वे माद्योंको साथ लेकर भोजन करते हैं । उन्हें देखकर सभी माताएँ आनन्दसे भर
 जाती हैं । भरतजी और अनुमती दोनों माई हनुमानजीवहित उपमनोंमें जाकर ॥ २ ॥
 वृद्धि वैदि रमा पुत्र गच्छ । वह हनुमान सुमति अन्नाह ॥
 सुमत विमल गुणवति सुख पद्महि । बहुरि बहुरि करि विनय कथावी ॥ ३ ॥
 यहाँ बैठकर श्रीरामजीके गुणोंकी कथाएँ पूछते हैं और हनुमानजी अपनी सुन्दर
 कृष्टिसे उन गुणोंमें मोता लगाकर उनका वर्णन करते हैं । श्रीरामनन्दजीके विमल गुणोंको
 सुनकर दोनों माई अत्यन्त सुख पाते हैं और विनय करके बार-बार कहलाते हैं ॥ ३ ॥
 सब के गृह गृह होई पुरमा । राम करित, शायम विधि नाना ॥
 घर भए गरि राम गुण जानीहि । कृहि दिक्खि सिद्धि मल्ल व जानहि ॥ ४ ॥

संकेत यहाँ घर-घरमें पुराणों और अनेक प्रकारके विभिन्न रामचरितोंकी कथा होती
 है । पुरुष और स्त्री सभी श्रीरामचन्द्रजीका गुणगान करते हैं और आनन्दमें दिन-
 रातका योगदान भी नहीं जान पाते ॥ ४ ॥

दो०—मधधपुरी वासिन्ध कर सुख सँझा समाज ।

सहस सेष मर्हि कहि सकाहि जई सुष राम विराज ॥ २६ ॥

महाँ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी स्वयं राजा होकर विराजमान हैं, उस अवधपुरीके
 निवासियोंके सुख-समाजिके समुदायका वर्णन इनहीं दोषों की मी गरी कर सकते ॥ २६ ॥

चौ०—नारदादि समग्रहि सुबोला । परसव सबि कोसकासीसा ॥

विष प्रति सकल भजेष्वा आरवि । देखि सब विस्तु विस्तारवि ॥ २७ ॥

नारद आदि और अन्य आदि मुनीश्वर सब कोसकासी और रामजीके दर्शनके लिये
 प्रतिदिन अनोन्मा आते हैं और उस [दिव्य] नगरमें देखकर वैराग्य सुख देते हैं ॥ २७ ॥

कातक मणि रचित आरवि । मय रंघ कषिर पव धरि ॥

पुर चहुँ पास कीट भलि सुंदर । रंग कंगू रंघ रंघ कर ॥ २८ ॥

[दिव्य] 'सर्प' और रत्नों की नदी हुई अरारिषों हैं । उनमें [मणि-रत्नोंकी]

अनेक रंगोंकी सुन्दर दली हुई फली हैं । नगरके चारों ओर अत्यन्त सुन्दर वनस्पति बना
 है, जिसपर सुन्दर रंग-दिशि कंगूरे बने हैं ॥ २८ ॥

बव अद्भुत निकर अवीक बजाई । जहु वेरी अमरावति आई ॥

महि बहु रंघ रचित-मय क्रीडा । जो बिलेकि सुषिर मय वाचा ॥ २९ ॥

मानो नगरहीने नदी गरी केन वनाकर वनस्पतियोंमें जाकर [विषा हो ।
 पृथ्वी (सड़की) पर अनेकों रत्नों (दिव्य) 'रत्नों' की गव कला (दाजी)
 गयी है, जिसे देखकर ओह मुनियोंके भी मन नाच उठते हैं ॥ २९ ॥

धनक धाम ऊपर कम सुंसा । कलस मचहुँ रवि सति सुविमिद ॥

बहु मणि रंघि कलेवा ब्रजनि । गृह गृह प्रतिमनि दोष विराज ॥ ३० ॥

उज्ज्वल महल ऊपर वायव्यको चूम (छू) रहे हैं । महलोंके कल [अपने
 दिव्य प्रकाशसे] मानो स्वयं, ऊपरवाले प्रकाशकी भी निम्ना (विरसकर) करते हैं ।
 [महलोंमें] बहुत-सी मणियोंसे रचे हुए सरोखे सुशोभित हैं और घर-घरमें मणियोंके
 दीपक बोमा पा रहे हैं ॥ ३० ॥

ॐ—मनि दीप राजहि मक्ख भ्राजहि देहर्ष विट्ठम रची ।

मनि खंड भीति बिरचि बिरची कनक मनि मरकत खची ॥

सुन्दर मनोहर मंदिराखत गजिर रुचिर फटिक रचे ।

प्रति द्वार द्वार कषाट पुरउ वनाइ बहु कज्जहि अचे ॥

सरोमें मणियोंके दीपक शोभा दे रहे हैं । मूंगोंकी बनी हुई देहलियों चमक रही हैं । मणियों (रत्नों) के खम्भे हैं । मरकतमणियों (पत्थों) से बड़ी हुई सोनेकी दीवारें देखी सुन्दर हैं मानो ब्रह्मने ज्ञात तोरते बनायी हों । मरुत सुन्दर, मनोहर और विशाल हैं । उनमें सुन्दर स्फटिकके जौमल बने हैं । प्रत्येक द्वारपर बहुतसे खरादे हुए शीशोंसे लगे हुए सोनेके किंवाह हैं ।

दो०—चार चित्रसाला गृह गृह प्रति लिखे बनाए ।

राम चरित से मिरख मुनि ते मय छेहि चोराए ॥ १७ ॥

घर-घरमें सुन्दर चित्रालाखे हैं, जिनमें भीरामजीके चरित्र बड़ी सुन्दरताके साथ सँवारकर अंकित किये हुए हैं । किन्हें मुनि देखते हैं, तो वे उनके मीचिपको चुरा लेते हैं ॥ १७ ॥

चौ०—सुनल वाटिक सबहि लगाई । विविध भोंवि करि बजय बनाई ॥

कता कलित बहु जाति सुहाई । फूलहि सदा बसंत कि नाई ॥ १८ ॥

सभी छोटोंमें मिल-मिल प्रकारकी पुष्पोंकी वाटिकाएँ बन करके लगा रखी हैं, जिनमें बहुत जातियोंकी सुन्दर और कलित लताएँ तथा कलमकी तरह फूलती रहती हैं ॥ १८ ॥

गुंजत मधुक मधुर मनोहर । मास्त विविध सदा यह सुंदर ॥

माना खग कज्जहि जिगार । बोलत सधुर वदत सुहाए ॥ १९ ॥

भौर मनोहर स्वरमें गुंजार करते हैं । तथा छीनों प्रकारकी सुन्दर गाय बहती रहती है । बाजकीने बहुतसे पक्षी गान करते हैं, जो सुन्दर गीतों बोलते हैं और उड़नेमें सुन्दर लगते हैं ॥ १९ ॥

मौर ईश सखत पारमर । भवकवि पर सोभा भक्ति पावत ॥

बाईं छेहि देखाई मित्र परिछाहीं । बहु विधि कूजहि सूर्य कछहीं ॥ २० ॥

मोर ईश, सखत और कङ्कतर चोंके सपर बड़ी ही शोभा पाते हैं । वे पक्षी [मणियोंकी दीवारोंमें और छतमें] चहों-छहों अपनी परछाईं देखकर [बाईं छूटते पक्षी समझकर] बहुत प्रकारसे मधुर गीतों बोलते और सूर्य करते हैं ॥ २० ॥

बुक सखित बकवाहि वाळक । कहु सस खुपसि लेन पोकक ॥

राम हुनार सज्ज विधि पार । सीधी छोट रुचिर संगेह ॥ २१ ॥

वाळक तोता-मैनाको बटाते हैं कि कहो—राम! खुपसि लेन पोकक । राजाद्वारा सब प्रकारसे सुन्दर है । गतिमें, चोराहे और बज्जार सभी सुन्दर हैं ॥ २१ ॥

ॐ—बाजार रुचिर न बन्हा वरनत कस्तु विनु मय पाहए ।

ऊहें भूष रमानिवास छहें की संपदा किमि भाहए ॥

बैठे बज्जाल सराफ बनिक अनेक मयहुं कुवेर ते ।

सब सुजी सय सचरित सुंदर नारि नर सिंगु जट जे ॥

सुन्दर बाजार है, जो कर्मन करते नहीं बन्हा; वहाँ वसुधै विना ही मूल्य मिलती है । बाईं सब चहों-छहों राज छे, वहाँ सब-दिवस कर्मन कैसे किया जाय ?—बज्जाल (कपड़ेका व्यापार करनेवाले), सराफ (सने-सँसका छेन-छेन करनेवाले) आदि

चौ०—जहाँ तहाँ नव खुशति-गुन पावहि । वैसि पसकर झरह, सिखावहि ॥ १ ॥
मञ्जु प्रनत प्रतियासक समहि । सोम लीक सन सुन धामहि ॥ १ ॥
लोग जहाँ-तहाँ औरगुनायकी गुन गाते हैं और नेउकर एक-दूसरेको यही
सीध देते हैं ॥ शरणागतक फलन करनेवाले औरगुनायको मन्त्रो; सोभा; शोक; रूप
और गुणोंके नाम औरगुनायकोको मन्त्रो ॥ २ ॥

जवन विलोचन समक गावहि । पलक बयन ह्व सेवक जानहि ॥
छत सर खरि पाव सुखीरहि । संव कंव बन रवि रनधीरहि ॥ २ ॥
कमलनयन और सँवके चरीखलेको मन्त्रो । पलक भिन्न प्रकार नेत्रोंकी रक्षा
करते हैं उठी प्रहार खम्भे सेवकोंकी रक्षा करनेवालेको मन्त्रो । सुन्दर वाण, घमुन
और सरस पदम करनेवालेको मन्त्रो । सँवली, कमलनयनके [स्निग्धनेके] छिमे
सूरस रणधीर औरगुनायको मन्त्रो ॥ २ ॥

काक काल जलक खमरावहि । कमत राम मन्त्रम ममता-जहि ॥
छोम मोह सुगव्य विस्तहि । मनसिबकरिहरिबन सुखावहि ॥ ३ ॥
काककी भयानक सनके मन्त्रन करनेवाले औरगुनायक बहदुरीको मन्त्रो । निष्काम-
भावसे प्रपाम करते ही कनकाका जल कर देनेवाले औरगुनायको मन्त्रो । छोम-मोहकी
हरिणोंके बगुनके नाथ करनेवाले औरगुनायक विपत्तको मन्त्रो । कामदेवकी शायीके छिमे
सिंहस तथा सेवकोंको सुख देनेवाले औरगुनायको मन्त्रो ॥ ३ ॥

संसम सोव विविध रूप भावहि । दनुज बहव बन बहव सुखावहि ॥
सरसमुदा समेत, खुशीरहि । कल न मञ्जु मन्त्रम मम सीरहि ॥ ४ ॥
संघय और शोककी बने जन्मकारके नाथ करनेवाले औरगुनायक सुखीको मन्त्रो ।
राकसली बने कनको कवनके औरगुनायक अग्निको मन्त्रो । कन-मुसुके भग्नको नाथ
करनेवाले औरगुनायकीसीतमैठ औरगुनायको सबों नहीं मन्त्रो ? ॥ ४ ॥

एहु कलम मसक हिम रसहि । खदा एक-रस भव खविवापहि ॥
सुनि रंजर मन्त्रम गहि भारहि । गुहमिमास के प्रसुहि उदारहि ॥ ५ ॥
बहुत-ही वाचनायोंकी मन्त्रोंको नाथ करनेवाले औरगुनायक हिमराशि (बर्फके
पेर) की मन्त्रो । निज एकल, भगवत और, अविनाश औरगुनायकीको मन्त्रो ।
सुनिनीको आकर देनेवाले, पूर्णका घर उठानेवाले और गुहमीदासके उदार (दवाह)
सागी औरगुनायको मन्त्रो ॥ ५ ॥

चौ०—यहि विधि कार नारि-नर-करहि राम गुन जगन ।
सावकाल सब पर रावहि । संतत कृपानिधान ॥ ३० ॥
इह पकर नारके छी-गुन औरगुनायका गुन-बान करते हैं और कृपानिधान
औरगुनायका सदा सकार मन्त्रक प्रसन्न रहते हैं ॥ ३० ॥

चौ०—जय ते राम मन्त्रम कलैसा । उचित मन्त्र कति प्रबल दिनेसा ॥
पूर्व प्रकृत खेद किहुँ कोका । बहुतेन्द्र सुख बहुतर मम सोका ॥ ४ ॥
[संतमुशुम्भिकी कहते हैं—] हे परमेश्वर बहदुरी ! जयते राममन्त्रकी
अत्यन्त प्रबल सर्व उचित दुःखा; तमके छेनो छेनो पूर्व प्रकृत भोग गवा है ।
इसके बहुतोंको गुन और बहुतोंके मनमें धोक हुआ ॥ २ ॥

विन्दहि लोक ते कद्वै कताकी । जयम खविवा विना पसकी ॥
कय सलक नई यहाँ कुचने । कस मोह पैल सखुवाये ॥ २ ॥

जिन-जिनको शोक हुआ, उन्हें मैं बलानकर कहता हूँ [एवं प्रकाश हा जानेने] पहले जो कविचारणी रात्रि नष्ट हो गयी । प्रकाशी उलट बहो-वहो त्रिपत्य और काम-मोघरणी कुमुद मुँह गये ॥ २ ॥

विचित्र कर्म शुभ कल सुभाष । पृथ्वी सुख लक्ष्मी न कल ॥
मत्सर मान मोह मद मोह । हृदय कर हृदय न कलविहो मोह ॥ ३ ॥
मौलि-मौलिके [कम्पनप्रसक्त] कर्म, शुभ, कल और स्वभाव—ये चक्र है, जो [रामप्रतापकामी स्वर्णि प्रद्योत] कभी कुल नहीं पते । मत्सर (गह), मान, मोह और मदरणी जो चोर हैं, उनका-कुल (कल) भी कभी और नहीं चल पाता ॥ १ ॥

धर्म उदय भव विन्यास । पृथ्वी विन्यास विधि साध ॥
सुख संतोष विना विन्यास । विन्यास सोक पृथ्वी विन्यास ॥ ४ ॥
धर्मरूपी तत्त्वमेव ज्ञान, विज्ञान—ये अनेकों प्रकारके फल मिल उठे । सुख, संतोष, वैराग्य और विन्यास—ये अनेकों फलने होकर रहित हो गये ॥ ५ ॥

दो—यह प्रकाश रवि जहाँ कर सब करह प्रकाश ।

परिले जाहूँ प्रथम जो कहे ते परलक्षि बन्ध ॥ ३१ ॥
यह भीरामप्रतापकामी स्वर्णि विन्यास हृदयमें सब प्रकाश करता है, सब विन्यास हृदयमें पीछे किया गया है, ये (धर्म, ज्ञान, विज्ञान, सुख, संतोष, वैराग्य और विन्यास) सब जाते हैं और विन्यास कर्मों परले किया गया है, ये (ज्ञान, धर्म, संतोष, मोह, कर्म, कल, शुभ, स्वभाव आदि) मन्त्रों परले रहते (नष्ट हो जाते) हैं ॥ ३१ ॥

दो—आत्मह सहित सब एक बान । संभ बान विन कलकुमार ॥
सुख उपवन देखन गह । सब एक कुमुदित पर्वत नय ॥ ३२ ॥
एक बार भाइलोचन भीरामप्रतापकामी परम विन हृदयमें जो सब केकर सुन्दर उपवन देखने गये । वहलिके सब सुख भूते हुए और नये पर्वतों सुख मे ॥ ३२ ॥

कामि सम्यक् सम्यक् विन । तेन सुख सुख लीन सुभाष ॥
प्रद्योतन सदा सम्यक् । देखन सम्यक् सुखलक्ष्मी ॥ ३३ ॥
सुमन्तर बानकर सम्यक् विन भावे, जो देखने सुख, सुन्दर सुख और पीछे सुख तथा सदा सम्यक्में सम्यक् रहते हैं । देखनेमें जो वे सम्यक्-सम्यक् हैं, परलक्षि बहुत सम्यक् ॥ ३३ ॥

कर्म परं सब कर्मिक विन । सम्यक् सुखि विन्यास विन्यास ॥
कामि बहिन सम्यक् सह विन्यास । सुखि विन्यास होह लई सुनहीं ॥ ३४ ॥
मानो चारों वेद ही वाक्कलम भाषन विने हों । ये सुनि सम्यक् और मेदरहित हैं । दिशाये ही उनके फल हैं । उनके एक ही सम्यक् है कि यहाँ भीरामप्रतापकामी परलक्षि कथा होती है यहाँ ज्ञान वे उसे ज्ञान सुनते हैं ॥ ३४ ॥

लक्ष्मी के सम्यक् विन्यास । यहाँ परलक्ष्मी सुखि विन्यास ॥
राम कल सुखि विन्यास । कल जो विन्यास विन्यास करती ॥ ३५ ॥
[विन्यास कहते हैं—] ये मन्त्रा । सम्यक् विन्यास कर्मों गये ये (यहाँ जले आ रहे ये) यहाँ जमी सुनिमेव भीरामप्रतापकामी रहते ये । मेद सुनिने भीरामप्रतापकामी बहुत-सी कथाएँ वर्णन की गीं, जो ज्ञान उत्पन्न करनेमें उन्हीं प्रकार सम्यक् हैं, जैसे अरवि लक्ष्मीने ज्ञान उत्पन्न होती है ॥ ३५ ॥

दो०—देखि राम मुनि आवत हरषि दंढवत कीन्ह ।

स्वागत पूछि पीत पट प्रभु बैठन कहँ दीन्ह ॥ ३२ ॥

सनमोद मुनियोंको आते देखकर श्रीरामचन्द्रजीने हर्षित होकर दण्डवत् की और स्वागत (कुचल) पूछकर प्रभुने [उनके] बैठनेके लिये अपना पीताम्बर बिछा दिया ॥ ३२ ॥

चौ०—फौन्द ईश्वर, तीन्हि सई । लखित पवनसुत सुत अधिकारि ॥

मुनि रघुपति छवि अतुल चितोक्ती । मधु भगन मन सके न रोकी ॥ १ ॥

॥ १ ॥ एतुमादजीरहित तीनों भाइयोंने दण्डवत् की; सबको बड़ा कुल हुआ । मुनि श्रीरघुनाथजीकी अतुलनीय छवि देखकर उल्लसित हो गये । वे मनको रोक न सके ॥ १ ॥

रामसुत रास समेश्वर कोचन । सुन्दरत भँदिर मधु मोचन ॥

एकदण्ड सहे विशेष न लबहि । प्रभु कर ओरें सीस नवाबहि ॥ २ ॥

वे जन्म-मृत्यु [के चक्र] से मुझनेवाले, स्वामीश्वर, कमलनयन, सुन्दरताके धाम श्रीरामजीको दण्डवत् लगाते देखते ही राह गये, पलक नहीं मारते । और प्रभु हाथ जोड़े सिर नवा रहे हैं ॥ २ ॥

तिन्हु कै दसा देखि रघुबीरा । कलक कलक मल मुलक सरीरा ॥

कर यहि प्रभु मुनिवर बैठारे । परम मनोहर वचन उठारे ॥ ३ ॥

उनकी [प्रेमविह्वल] दसा देखकर [उन्हींकी माँति] श्रीरघुनाथजीके नेत्रोंसे भी [प्रेमाश्रुओंका] जल बहने लगा और शरीर पुलकित हो गया । तदनन्तर प्रभुने हाथ पकड़कर गेह मुनियोंको बैठाना और परम मनोहर वचन कहे— ॥ ३ ॥

आहु पण्य मैं सुबहु सुमीस । तुम्हरेँ दसल कहि अब जीसा ॥

कहे जाग पावस सससंवा । बिगहि प्रयास होहि सब अंगा ॥ ४ ॥

हे मुनीश्वर ! मुनिये, आज मैं पण्य हूँ । आपके दर्शन-हीसे [हारे] पाप नष्ट हो जाते हैं । बड़े ही भाग्यसे ससंवाकी प्राप्ति होती है, जिससे बिना ही परिश्रम जन्म-मृत्यु-का चक्र नाह हो जाता है ॥ ४ ॥

दो०—संत सँव अपवर्ग कर कामी भय कर पंथ ।

कहहि संत कवि कोविद मुनि पुरान खडप्रंथ ॥ ३३ ॥

संतका ताँ मोक्ष (मग्न-कनसे छूटने) का और कामीका संग जन्म-मृत्युके बन्धनमें पहनेका भारी है । संत, कवि और पण्डित तथा वैद, पुराण [आदि] सभी ब्रह्मपन्थ ऐसा कहते हैं ॥ ३३ ॥

चौ०—मुनि प्रभु वचन हरषि मुनि चारी । पुकवित तन अस्तुति अनुसारी ॥

जय भगवत अर्पित अनामय । जनेव जनेव एक कल्याणमय ॥ १ ॥

प्रभुके वचन सुनकर चारों मुनि हर्षित होकर, पुकवित शरीरसे स्तुति करने लगे— हे भगवन् ! आपकी कय हो । आप अन्तरहित, निष्कारहित, पापरहित, अनेक (सब रूपोंमें प्रकट), एक (अद्वितीय) और कल्याणमय हैं ॥ १ ॥

जय निर्गुन जय जय तुम समस्त । मुक भँदिर सुंदर जति नागर ॥

जय ईदिर खन जय सुखर । अतुलम अल अनादि सोमाकर ॥ २ ॥

हे निर्गुण ! आपकी भय हो । हे गुणके खड्ग ! आपकी कय हो, जय हो । आप मुक्तके धाम, [अत्यन्त] सुन्दर और जति खड्ग हैं । हे व्यसपीण्ड ! आपकी कय ॥ हे पृथ्वीके धारण करनेवाले ! आपकी कय हो । आप उपाहारहित, अजन्म, अनन्तर और शोभाकी खान हैं ॥ २ ॥

सख विद्याम ज्ञान मानस । सख सुख पुनः केद वर ॥

उभय सुखम् उभयम् संभव । उभय लोके अन्तर विरतम् ॥ ३ ॥

आप भान्ने मध्याह्न [सब] खनदित और [दूधोंके] मान देनेवाले हैं । वेद और पुराण आपका ध्यान सुन्दर बन बाते हैं । आप उनके जाननेवाले, की हुई सेवाको माननेवाले और अकलम नाश करनेवाले हैं । हे मित्र (मायाहित) ! आपने अपने (यन्त्र) नाम हैं और कोई नाम नहीं है (जहाँ वह आप सब नामोंके से हैं) ॥ १२ ॥

सर्व सर्वम् सर्व उरुम् । कसि कदा हम कहे परितम् ॥

हृद विपति मन चन्द विमन्त्र । कृदि कसि उभय काम मद रतम् ॥ ४ ॥

आप सर्वकर्म हैं, सर्व ज्ञाता हैं और उनके हृदयकी कर्में उदा निराश करते हैं । [ध्या] आप हमारा परिचाय जीविते । [रामदेव] अनुकूलता-प्रतिबुद्धता ; कर्म-मृत्यु आदि । हृदय, विपति और अन्य मृत्युके लक्षणों का दर्शिते । हे रामजी ! आप हमारे हृदयमें वृत्तों काय और मदका नाश कर दीजिये ॥ ४ ॥

दो०—एवमानन्दं हृदयवतम् मन परिपूरय काम ।

प्रेम मगति जलपावनी देह हृदि अग्राम ॥ ५ ॥

आप परमानन्दरूप, हृदयके काम और मनकी कामनाओंको परिपूर्ण करनेवाले हैं । हे आरामजी ! हमको अपनी अधिक प्रेम-युक्ति दीजिये ॥ ५ ॥

चौ०—देह भवति शुभति नमि पश्ये । विविधि तमभ्य वप कलापि ॥

प्रसन्न काम सुरवेह कलपत । होह प्रसन्न होह प्रभु वर तव ॥ ६ ॥

हे हृदयपानी ! आप हमें अपनी अकलम धिय करनेवाली और शीनों प्रकाशें लाने और काम-मरणके केवलीका नाश करनेवाली शक्ति दीजिये ! हे परमात्मजी ! आपका पूर्ण करनेके लिये कामधेनु और कल्पवृक्ष का प्रभो ! प्रसन्न होकर हमें वही वर दीजिये ॥ ६ ॥

अथ शक्ति कुंजम् शुभम् । सेव्य सुखम् सकल सुखम् ॥

अथ सर्वम् एवम् हृदय हारम् । होह देह सकल विचारम् ॥ ७ ॥

हे हृदयपानी ! आप कर्म-मृत्युका लक्षणों को खोजने लिये अकलम धियके प्रदान हैं । आप सेवा करनेमें सुख हैं तथा सब सुखोंके देनेवाले हैं । हे दीनरुपी ! मन्त्रों का नाश करण दुःखोंका नाश दीजिये और [हमें] समस्त विचार दीजिये ॥ ७ ॥

आप्त प्राप्त इतिवि विचारम् । विपत्ति विपत्ति विचारम् ॥

पूर लीलि नमि मन्त्र कलापि । देहि मन्त्रि सेवति करि तरनी ॥ ८ ॥

आप [विपत्तियों] आशा, मन और ईर्ष्या आदिके विचार करनेवाले हैं तथा विपत्ति, विपत्ति और वैराग्यके विचार करनेवाले हैं । हे राजाजी ! शिरोमणि एवं हृदयके मृग आरामजी ! संवृत्ति (कर्म-मृत्युके प्रसन्न) की नदी लिये लोचन अपनी भक्ति प्रदान दीजिये ॥ ८ ॥

कुम्भि नम मानम् ईद विरत । पश्य कलम विरत काम लम् ॥

रुद्रक केदु केदु कुम्भि रुद्रक । कलम कलम सुखम् सुखम् ॥ ९ ॥

हे कुम्भियोंके मनकी । कलमके लिये निरन्तर निरन्तर करनेवाले हैं । आपके परमात्मका जडाजी और विपत्तियोंके शरण कीजिये हैं । आप रुद्रकके केदु, वेदमार्गके रुद्रक और कलम, कर्म, लक्षण उदा सुख [सब कर्मों] के मन्त्र (मन्त्र) हैं ॥ ९ ॥

आपन कलम हृदय तव रूपम् । कुम्भिकलम् प्रभु विपत्ति सुखम् ॥ १० ॥

आप तरन-दास (सब ते हुए और दूसरोंको चारनेवाले) तथा सब दोनोंको हरनेवाले हैं । दोनों लोकोंके सिम्पण आप ही कुलवीदासके सामी हैं ॥ ५ ॥

दो०—चार बार अस्तुति करि प्रेम सहित सिख नाह ।

प्रह्ला भवन सन्कादि ने अति अमीष्ट घर पाइ ॥ ३५ ॥

प्रेमसहित बार-बार स्तुति करके और सिर नवाकर तथा अपना अत्यन्त मनचाहा घर-घर सनकादि मुनि ब्रह्मलोकको गये ॥ ३५ ॥

चौ०—सनकादिक विधि छोड सिधाए । अमलह कम चल सिख नाए ॥

पूछत प्रभुहि सकल सकुचाहीं । चित्तहि सब मास्तमुत पाहीं ॥ १ ॥

सनकादि मुनि ब्रह्मलोकको चले गये । तब भाइयोंने श्रीरामजीके घरणोंमें सिर नवाया । सब पाई प्रभुसे पूछते सकुचाते हैं [इसलिये] सब हनुमान्जीकी ओर देख रहे हैं ॥ १ ॥

सुनीं चेहि प्रभु मुख कै बासी । जो सुनि होइ सकल मन हरनी ॥

भँतरबासी प्रभु सब जाना । कूछत कहहु कहहु हनुमाना ॥ २ ॥

ये प्रभुके श्रीमुखकी-बासी सुनना चाहते हैं, किसे सुनकर सारे भ्रमोंका नाश हो जाता है । भानुपानी प्रभु सब जान गये और पूछने-सो—कहो हनुमान् । क्या बात है ? ॥ २ ॥

जोरे पावि कह तब हनुमंत । सुनहु दीनदयाल भगवंता ॥

बाप भक्त कहहु पूँछन चहहीं । प्रज करत मन सकुचत अहहीं ॥ ३ ॥

तब हनुमान्जी हाथ जोड़कर बोले—हे दीनदयालु भगवान् । सुनिये । हे माय भरतजी कुछ पूछना चाहते हैं, पर प्रश्न करते मनमें सकुचा रहे हैं ॥ ३ ॥

हुनहु जानहु कहि जोर सुभाऊ । भरतहि मोहि कहहु अंतर काऊ ॥

सुनि प्रभु वचन भक्त गहे चला । सुनहु नाथ प्रबतारति हरना ॥ ४ ॥

[भगवान् ने कहा—] हनुमान् । तुम तो मेरा स्वभाव जानते ही हो । भरतके और मेरे बीचमें कभी भी कोई अन्तर (भेद) है ? प्रभुके वचन सुनकर भरतजीनें अपने घरण पकड़ लिये [और कहा—] हे नाथ । हे घरणगतके दुखोंको हरनेवाले ! सुनिये ॥ ४ ॥

दो०—नाथ न मोहि लदिह कह सपनेहुँ सोक न मोह ।

केवल कृपा तुम्हारिहि कृपाकर संदेह ॥ ३३ ॥

हे नाथ । न तो मुझे कुछ संदेह है और न स्वप्नमें भी शोक और मोह है । केवल और आनन्दके समूह । यह केवल आपकी ही कृपाका फल है ॥ ३३ ॥

चौ०—हरद्वै कृपानिधि एक दिखई । मैं लेक तुम्ह जब सुखदाई ॥

संसद कै मदिम रह्योई । नहु बिचि वेद पुरातन्य गार् ॥ १ ॥

तथापि हे कृपातिथान ! मैं आपसे एक पूछना करता हूँ । मैं लेक हूँ और आप देवको मुख देनेवाले हैं [इससे मेरी धृष्टताको क्षमा कीजिये और मेरे प्रभुका उत्तर देकर मुझ दीजिये] । हे रघुनाथजी ! वेद-पुराणोंमें संतोंकी मदिमा बहुत प्रकारसे गावी है ॥ १ ॥

श्रीमुख तुम्ह सुनि कीन्हि कहाई । तिन्ह न प्रभुहि प्रीति अधिकाई ॥

सुना चहवै प्रभु तिन्ह कर कच्छव । कृपासिन्धु सुन स्मान विचरछव ॥ २ ॥

आपने भी आपने श्रीमुखसे उनकी कदाई की है और उनपर प्रभु (आप) का प्रेम भी बहुत है । हे प्रभो ! मैं उनके लक्षण सुनना चाहता हूँ । आप कृपाके समुद्र हैं और गुण तथा शून्यमें अत्यन्त निपुण हैं ॥ २ ॥

संत असंत भेद विरुद्ध । प्रकृत्यल ओहि कहहु सुगार् ॥

संसद के कृपानु सुन आता । अग्रिम स्तुति पुरत विख्याता ॥ ३ ॥

हे शरणगितका पालन करनेवाले ! संत और अर्जुनके गेद जन्म-जन्म करके तुमको समझाकर कहिये । [श्रीरामजीने कहा—] हे माई ! तबलेके छलम (ध्रुम) अर्थात्तम है, जो वेद और पुराणोंमें प्रसिद्ध हैं ॥ १ ॥

संत अर्थात्तमहि कै जसि करने । बिनि कुम्हार बंधन छाचरनी ॥

काव्य परसु मलय सुतु नई । बिनि सुव पेड़ सुबंध. बताई ॥ २ ॥

संत और अर्थोंकी कानी ऐसी है जैसे कुम्हारी और चन्दनका व्यवहार होता है । हे माई ! सुनो, कुम्हारी चन्दनको उलथी है [क्योंकि उसका स्वभाव या काम ही इन्हींको बाढना है] किन्तु चन्दन [अपने स्वभावका] अपना मुग़ देकर उसे (काढनेवाली कुम्हारीको) कुम्हारीसे सुवांछित कर देता है ॥ ४ ॥

दो—साते मुर सौस्मह चकृत जग बह्म जौबंद ।

समल दाहि पीठत भवहि परसु यम यद दंड ॥ २७ ॥

इसी गुणके कारण चन्दन देवताओंके सिंहास चढ़ता है और जागृका प्रिय हो रहा है और कुम्हारीके मुसको खूब सम्मिलित है, कि उसको मायाओं काकर फिर मनसे पीढते हैं ॥ ३७ ॥

चौ—विषय भलेपद सीत गुणकर । पर गुल गुल गुल गुल देखे पर ॥

सम समुदासि विरह विरही । श्रेयसकर. हरर मय पत्नी ॥ १ ॥

संत विषयोंमें लगे (सिद्ध) नहीं होते, सीत और लुपोंकी जान होते हैं ! उनके परमा गुण देखकर गुण और गुल देखकर गुल होता है । वे [अपने, सर्व, सब समय] समता रखते हैं, उनके मन में [उनका, अनु नहीं है, वे मरते रहित और] शैशवपूर्ण होते हैं तथा खेन, खेन, ईर्ष और मक्का तथा जिने हुए रहते हैं ॥ ११ ॥

कोसकचित् ब्रह्म पर दास । मयका कम मय मयि कथा ॥

सकहि सचकहं अहु कलनी । भरत जग सम सम से मयी ॥ १३ ॥

अनका विषय कहा कोमल होता है । वे हीनकर रहा करते हैं तथा पय, पत्रक और कर्मसे मेरी निष्पन्न (विमुक्त) मक्ति करते हैं । उनके सम्मान देखे हैं, पर सब मानसहित होते हैं । हे भरत ! वे प्रानी (संयमन) मेरे प्रान्तोंके समान हैं ॥ २ ॥

विगत काम मय काम बह्मन । सकहि विरहि विरही सुदितमय ॥

सीतकथा ससकल मयली । द्विज वृ प्रीति कर्म सचकरी ॥ १५ ॥

उनको कोई कामना नहीं होती । वे मेरे समके परम. होते हैं । शान्ति, वैराग्य, विषय और प्रवृत्तताके पर होते हैं । उनमें सीतकथा, ससकल, सबके प्रति मित्रभाव और माहात्म्यके चरणोंमें प्रीति होती है, जो धर्मोंके तत्त्व करनेवाली है ॥ २ ॥

दू सब सचकल बसहि लम्पु. हर. जकेट सीत संत संकल फुर ॥

सम ॥ नियम मोति यहि ओखहि । सच सचन कर्हि यहि ओखहि ॥ १७ ॥

हे सात ! वे सब सचकल बिल्के हृदयमें नहीं हो; उनको सदा सदा संत मानना । जो राम (मनके निम्न), दम (हृदयोंके निम्न), नियम और मोतिसे कभी विरहिल नहीं होते और मुसले कभी छोड़कर सचन नहीं छोड़ते ॥ ४ ॥

दो—मिदा अस्तुति समय सम समता मम पर कल ।

ले. सज्जन मम प्रान्तिमि शुभ मधिपर सुख पुंज ॥ २८ ॥

जिन्हें मिदा और शक्ति (बढ़ाई) दोनों समान हैं और मेरे चरणकर्मोंमें निरन्तर भक्ता है, वे गुणोंके सम और गुलकी रहित सज्जन तुझे प्राणोंके समान मिलें हैं ॥ २८ ॥

चौ०—मुनुहु अरुण्ड केर सुबाहु । मूलेहुँ संपति करिय न काहु ॥

तिन्ह कर संग सदा बुलवाई । बिधि कसिहि वाहू हरवाई ॥ १॥

अब अंतों (दुष्टों) का समाव मुनो; कभी भूतकर भी उनकी संपत्ति नहीं करनी चाहिये। उनका संग सदा बुलव देनेवाला होता है। जैसे हरवाई (दुरी जातिकी) गाय कसिअ (सीधों और दुधार) गावको अपने संघसे नष्ट कर डालती है ॥ १ ॥

अरुण्ड हृदय अति ताप भिसेवी । अरुहि सदा पर संपति देखी ॥

अहं कहुँ निदा मुनहि पराई । हरषहि मनहुँ पक्षि निधि पाई ॥ २ ॥

दुष्टोंके हृदयमें बहुत अधिक सन्ताप रहता है। वे पराधी संपत्ति (सुख) देखकर सदा ललते रहते हैं। वे अहो कहुँ वृक्षकी निन्दा सुन पाते हैं, वहाँ ऐसे हर्षित होते हैं मानो रास्तेमें पक्षि निधि (खजाना) पा ली हो ॥ २ ॥

काम मोघ मय सोय पक्षम । निर्दय कपटी कुटिल मझपन ॥

वक्क सकारण सब काहुँ सों । जो कर हित अनहित छाहुँ सों ॥ ३ ॥

वे काम, मोघ, मय और खोमेके पराक्रम तथा निर्दयी, कपटी, कुटिल और पातोंके पर होते हैं। वे बिना ही कारण सब किसीसे चैर किया करते हैं। जो अर्थात् करता है उसके साथ भी बुराई करते हैं ॥ ३ ॥

सुद्ध केम सुद्ध . देवा ॥ सुद्ध मोचन सुद्ध चरैय ॥

बोलाई मजुर वचन किमि मोल । लाई मझ अरि हृदय कठोर ॥ ४ ॥

उनका झूठा ही लेना और झूठा ही देना होता है। झूठा ही मोचन होता है और झूठा ही चरैया होता है (अर्थात् वे लेने-देनेके व्यवहारमें झूठका आश्रय लेकर दूसरोंका हक मार लेते हैं) अपना झूठा ब्रह्म शोक करते हैं कि हमने उसको खरबों के भिये, करोड़ोंका नान कर दिया। हमी प्रकट लाते हैं कनेकी रोटी और कहते हैं कि आज एक माल खाकर आवे। प्रकट लवेना खाकर रह जाते हैं और कहते हैं हमें बढ़िया मोचनके वैराग्य है। हलादि। अतः यह कि वे सभी बातोंमें झूठ ही मोल करते हैं।)। जैसे मोर [बहुत मीठा बोलता है; परन्तु उस] का हृदय ऐक कठोर होता है कि वह महान् सिधके साँपोंको भी खा अन्न है। जैसे ही वे, भी ऊपरसे नीचे पचन बोलते हैं [परन्तु हृदयके बड़े ही निर्दयी होते हैं] ॥ ४ ॥

चौ०—पर प्रोही पर दार रत पर धन पर अपवाद ।

वे भर पाँकर पापमय देख धरें मनुजाव ॥ ५ ॥

वे दूसरोंसे प्रोह करते हैं और पराधी ली; करावे धन तथा पराधी निन्दामें आवक रहते हैं। वे पामर और पापमय मनुष्य नर-नारीर चारण किन्ने हुए राख्य ही हैं ॥ ५ ॥

चौ०—डोमह अथवा खेमह उग्रम । सिद्धोदर पर जम्पुर प्राप्त ॥

काहु की जो मुनहि कड़ाई । स्वास केहि जनु खड़ी काई ॥ ६ ॥

डोम ही उनका मोहना और डोम ही भिलौना होता है (अर्थात् खेमहके वे सदा किने हुए रहते हैं)। वे खजनोंके समान आहार और मनुष्यके ही परायण होते हैं। उन्हें दमपुराण भय नहीं लगता। यदि किसीकी कड़ाई सुन पाते हैं, तो वे देखी [दुःखमयी] गल्ल लेते हैं मानो उन्हें खड़ी आ गयी हो ॥ ६ ॥

जब कहुँ के देसाहि विपत्ति । मुसी मय मझहुँ जग दुपरी ॥

स्वारप रत परिणाम भितोवी । कष्ट काम जेय अति मोपी ॥ ७ ॥

जोर जन किसीकी विपत्ति देखते हैं, तब ऐसे मुसी होते हैं मानो अन्तर्भूके

राजा हो गये हों। वे स्वार्थसंग्रह, परिवारवासीके विरोधी, भ्रम और धोमके कारण लपट और अलसता प्रोपी होते हैं ॥ २ ॥

मनुष्य पिता गुरु मित्र व भ्रातृहि । जपु तप न कथयति जानति ॥

कहि मोह बस मोह पराया । संत संन इति कथा न भावा ॥ ३ ॥

वे माता, पिता, गुरु और ब्राह्मण मित्रोंको नहीं मानते। आप जो नष्ट हुए ही रहते हैं, [साम ही आपने समझे] दूसरोंको भी नष्ट करते हैं। मोक्षदश दूसरोंसे द्रोह करते हैं। उन्हें न संतोंका चक्रा मन्त्र स्मरण है, न मन्त्रवासी कथा ही सुझती है ॥ ३ ॥

जवगुन सिधु मंदमति कामी । वेद विदूषक परचन स्वामी ॥

विप्र मोह पर मोह विरोध । ईश जपत जिमें बरें सुखे ॥ ४ ॥

वे जवगुणोंके समुद्र, मन्दबुद्धि, कामी (रागबुद्ध), वेदोंके निन्दक और जबरदस्ती पराये धनके स्वामी (खजनेवाले) होते हैं। वे दूसरोंसे द्रोह तो करते ही है परन्तु ज्ञान-द्रोह विरोधतासे करते हैं। उनके हृदयमें ईश्वर और जपत भग्न रहता है, परन्तु वे [जपते] मुन्दर वेप धारण किये रहते हैं ॥ ४ ॥

दो०—ऐसे जवजम मनुष्य जक कुतसुप जेवें नहि ।

ब्राम्हण कलुष एव बहु होहहि कलिजुग माहि ॥ ५ ॥

ऐसे नीच और बुरे मनुष्य जवसुग और चेष्टामें नहीं होते। ब्राम्हणों पोषे-ते हीरे और कश्चिदुगमें तो इनके छत्र-के-छत्र हीमें ॥ ५ ॥

चौ०—पर द्विष्ट सखि धर्म बहि भाई । पर पीदा धम बहि जवनाई ॥

निर्गम सकल पुराण वेद जग । कहेरें तल जानहि कोविंद जग ॥ ६ ॥

हे भाई। दूसरोंकी सखाईके समान कोई धर्म नहीं है और दूसरोंकी दुःख पहुँचाने-के समान कोई नीचता (पाप) नहीं है। हे धर्म। समस्त पुराणों और वेदोंका पर निर्गम (निर्मित सिद्धान्त) मैंने समझे जग है, इस बातको अधिकतमसे जानते हैं ॥ ६ ॥

जग सरीर धरि वे पर पीदा । कहि वे कहि मय जग भीरा ॥

कहि मोह जेस जग जग । सारा जग परलोक बसाता ॥ ७ ॥

मनुष्यका शरीर धारण करके जो जेस दूसरोंकी दुःख पहुँचाते हैं, उनको जग-मनुष्यके महान् संकट कहने पड़ते हैं। मनुष्य मोक्षका स्वार्थसंग्रह होकर अनेकों पाप करते हैं, इसीसे उनका परलोक नष्ट हुआ रहता है ॥ ७ ॥

काकजप सिद्ध कई मैं आता । सुख जग मनुष्य कर्म जग दाता ॥

जग विचारि जे करम समझे । जहि मोहि संघट दुख जाने ॥ ८ ॥

हे भाई। मैं उनके जिये काकजप (कर्मफल) हूँ और उनके अपने और भूते कर्मोंका [यथायोग्य] फल देनेवाला हूँ। ऐसा विचारकर जो लोग परम चतुर हैं, वे संसार [के प्रवाह] को दुःखस्वरूप मानकर मुक्त ही मन्ते हैं ॥ ८ ॥

जगहि कर्म सुखसुख दाता । जानहि मोहि गुरु पर मुनि नाथ ॥

संत जगज्जग के गुण जाने । जेन चहि जग किन्द हरि राते ॥ ९ ॥

इसीसे वे भ्रम और मझम फल देनेवाले कर्मोंको त्यागकर देवता, मनुष्य और मुनियोंके नाथक मुक्तफो मन्ते हैं। [इस प्रकार] मैंने संतों और जगज्जग के गुण कहे। किन्तु लोगोंने इन गुणोंको समझा रक्खा है, वे जग-अपके जगज्जग नहीं पढ़ते ॥ ९ ॥

दो०—सुनहु जग माया जग गुण अरु दोष जनेक ।

गुन यह जगजग न देखिबहि देखिज सो जहिबेक ॥ १० ॥

रा० ल० ४६—

हे तात ! सुनो, मायासे रचे हुए ही अनेक (सब) गुण और दोष हैं (इनकी कोई वास्तविक सत्ता नहीं है) । गुण (विवेक) इसीमें है कि दोनों ही न देखे जायें; इन्हें देखना ही अविवेक है ॥ ४१ ॥

चौ०—श्रीमुख वचन सुनत सब भाई । हरये प्रेम न हृदयें समाई ॥

करहि चिन्त अति बारहि जग । हनुमान द्विये हरष अपारा ॥ १ ॥

भावान्के श्रीमुखसे ये वचन सुनकर सब भाई हर्षित हो गये । प्रेम उनके हृदयों-में समाता नहीं । ये बार-बार बड़ी चिन्ता करते हैं । विशेषकर हनुमानजीके हृदयमें अपार हर्ष है ॥ १ ॥

पुनि रघुपति बिक मंदिर गए । एहि बिधि अस्ति करत नित नय ॥

बार बार चारद पुनि आवाहि । चरित गुणीत राम के पावाहि ॥ २ ॥

उपनन्तर श्रीरामचन्द्रजी अपने मछलको गये । इस प्रकार वे नित्य नयी छीज करते हैं । बारद पुनि अर्थात् बार-बार आते हैं और आकर श्रीरामजीके पवित्र चरित्र गाते हैं ॥ २ ॥

नित नय चरित देखि पुनि छाहीं । ब्रह्मलोक सब कथा कहूँ ॥

पुनि बिरंचि भविस्य मुख भावाहि । पुनि पुनि सात कबहु गुन गावहि ॥ ३ ॥

पुनि यहाँसे नित्य नये-नये चरित्र देखकर जाते हैं और ब्रह्मलोकमें जाकर सब कथा कहते हैं । ब्रह्माजी सुनकर अत्यन्त सुख मानते हैं [और छाते हैं—] हे तात ! बार-बार श्रीरामजीके गुणोंका गान करो ॥ ३ ॥

सगकादि नारदहि सराहि । सपरि ब्रह्म निस्त पुनि जगहि ॥

पुनि गुन गान समाधि विस्तारी । सारद सुनहि परम अधिकारी ॥ ४ ॥

सगकादि पुनि नारदजीकी सराहना करते हैं । यद्यपि वे (सगकादि) पुनि ब्रह्मनिष्ठ हैं, परन्तु श्रीरामजीका गुणगान सुनकर वे भी अपनी ब्रह्मसमाधिको भूल जाते हैं और आदरपूर्वक उठे सुनते हैं । वे [रामकथा सुननेके-] श्रेष्ठ अधिकारी हैं ॥ ४ ॥

दो०—जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनहि तति ध्यान ।

जे हरि कहीं न करहि रति तिन्ह के हिय पाषाण ॥ ४२ ॥

सगकादि पुनि-जैसे जीवनमुक्त और ब्रह्मनिष्ठ पुरुष भी ध्यान (ब्रह्म-समाधि) छोड़कर श्रीरामजीके चरित्र सुनते हैं । यह जानकर भी जो श्रीहरिजी कपासे प्रेम नहीं करते, उनके हृदय [संचमुच ही] पत्थर [के समान] हैं ॥ ४२ ॥

चौ०—एक बार रघुनाथ जोलाए । सुर द्विज पुंस्वामी सब आए ॥

बैठे सुर पुनि भद्र द्विज सज्जन । बोले वचन मयात भव संशन ॥ १ ॥

एक बार श्रीरघुनाथजीके बुलाये हुए सुर ऋषिछात्री, ब्राह्मण और अन्य सब नगर-निवासी समामें आये । जब सुर, पुनि, ब्राह्मण तथा अन्य सब सम्मन वयायोग्य बैठ गये, तब भद्रोंके जन्म-भरणको मिटानेवाले श्रीरामजी वचन बोले—॥ १ ॥

सुनहु सकल पुरज्जन मम भानी । कहैं न कहु समता उर भानी ॥

नहि अर्कति नहि कहु प्रमुखाई । सुबहु कहु तो दुग्दहि सोझाई ॥ २ ॥

हे समस्त नगरनिवासीयो ! मेरी बात सुनिये । यह बात मैं हृदयमें कुछ समता लाकर नहीं कहता हूँ; न अर्कता की बात कहता हूँ और न इसमें कुछ प्रमुता ही है । इसलिये [संकोच और भय छोड़कर, ध्यान देकर] मेरी बातोंको सुन लो और [फिर] यदि दुग्दें कष्टी लगे, तो उसके अनुसर करो ॥ २ ॥

सोद लेख प्रियतम मम सोई । मम मनुष्यजन सबै लोई ॥
 जो जनीसि कहु मयाँ भई । तौ सोहि बस्यहु मम विचार ॥ १ ॥
 यही मेरा सेवा है, और वही प्रियतम है, जो मेरी आज्ञा माने । हे माई ! यदि मैं
 कुछ अन्यायिकी बात कहूँ तो मम भुवकर (वैद्यके) मुझे रोक देना ॥ २ ॥

‘यहें माग मानुष तनु पाय । सुर दुर्लभ सब अभिनि पाय ॥
 साधन धाम मोच्य कर हाथ । पाइ य चेहि पस्तेक सेवा ॥ ३ ॥
 बड़े मान्यते यह मनुष्यजरीर मिल है । सब अर्थोंने यही कहा है कि यह शरीर
 देवताओंको भी दुर्लभ है (कठिनतासे मिलता है) । यह साधनका धाम और मोक्षका
 दरवाजा है । इसे प्राप्त भी मिलने पस्तेक न बना लिया, ॥ ४ ॥

दो०—सो परच दुख पायह सिर धुवि धुवि फलित ॥
 कालहि कर्महि ईस्वहि भिद्यह दोष टगार ॥ ४३ ॥
 वह परकेरुमे दुःख प्राप्त है, सिर पीठ-पीठकर कलता है तथा [अपना दोष म
 समझकर] कालपर, कर्मपर और ईश्वरपर भिद्यह दोष कटा है ॥ ४३ ॥

चौ०—एहि कर कर फल विपय न भइ । स्वार्थ सब भँत हुनवाई ॥
 नर तनु पाइ विषय मय देहो । पकरी सुख डे सब विद लेहो ॥ ४४ ॥
 हे भाई ! इस शरीरके प्राप्त होनेका फल विषययोग नहीं है । [इस कारणके जोसोही
 को बात ही क्या] स्वार्थका योग भी बहुत योद्धा है और अन्तमें दुःख देनेवाला है ।
 अतः जो सोपा मनुष्यजरीर पाकर विषयोंम मन लगा देवे हैं, वे मूर्ख अमृतकी बरसकर
 विष छे छेते हैं ॥ १ ॥

तहि कष्टहु अरु कष्टह य कीई । गुण भवद सब मलि कीई ॥
 काकर जमि लच्छ सौरसी । नीचि प्रमद यह सिव लखिनासी ॥ २ ॥
 जो शरदमणिको सोकर बदलेमें पुँपची के देवा है, उसको कमी कोई भज
 (इष्टिमान्) नहीं कहता । वह अविनाशी नीच [अशुच, स्वेदन, तलापुन और
 उम्रित] बार खाने और पीनेकी सब सोचियोंमें पकड़ लगाता रहता है ॥ २ ॥
 फिरत सब मय्य कर देव । कष्ट कर्म सुखम दुख पेश ॥
 मनुष्यक कर्म करना नर देही । देव ईस बिनु होइ सगेही ॥ ३ ॥
 मायाकी प्रेरणासे अशुच, कर्म, समग्र और सुखसे भिरा हुआ (इनके यद्यपि
 हुआ) वह सदा भटकता रहता है । बिना ही कारण स्नेह करनेवाके ईश्वर कमी बिरडे
 ही क्या करके इसे मनुष्यका शरीर देवे हैं ॥ २ ॥

नर तनु मम गतिवि जहुँ केहे । सम्मुख भवत मनुष्य मेरो ॥
 करनधार सरगु वर कव । दुर्लभ साध सुखम करि पाया ॥ ४ ॥
 यह मनुष्यका शरीर कनधार [से ताने] के लिये वेष्ट (कदान) है । मेरी
 कृपा ही अनुकूल वायु है । तदनुकूल इस मनुष्यक कनधार (सेनेवाले) हैं । इस
 प्रकार दुर्लभ (कठिनतासे मिलनेवाले) साधन सुखम होकर (मानवत्ववाले कदन ही)
 उसे प्राप्त हो गये हैं ॥ ४ ॥

दो०—जो न तरे भव सागर नर समाज मर पाइ ॥
 सो कृत निदक संदमति कालमाह्व मति जाइ ॥ ४५ ॥
 जो मनुष्य ऐसे लक्षण पाकर भी भक्त्यकरते न तो, वह कुलप और मन्दबुद्धि
 है और मालाहत्या करनेवालेकी गतिसे प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥

चौ०—जौं परलोक इहाँ सुख चाहइ । सुनि मम कचन हर्षोदय चाहइ ॥
 सुखम सुखद सारय कह गइ । सकति मोरि पुराय सुनि गइ ॥ १ ॥
 यदि परलोकमें और यहाँ [दोनों संग] सुख चाहते हो, तो मैं वचन सुनकर
 उन्हें इतरमें दृढ़तासे फँस रहलो । हे माई ! यह मेरी भक्ति का नाम सुखम और
 सुखदायक है, पुराणों और वेदोंने इसे गाया है ॥ १ ॥

ग्यान अगम प्रबूझ अनेक । साधन कठिन ॥ मम कहैं ठेक ॥
 कस कस यह पावइ कोक । सकि होन मोहि प्रिय बहि सोक ॥ २ ॥
 गान अगम (दुर्गम) है, [और] उसकी प्राप्तिमें अनेकों विघ्न हैं । उसका
 साधन कठिन है और जहाँ मने के बिने कोई आधार नहीं है । बहुत कष्ट करनेपर कोई
 उसे पा भी लेता है, तो वह भी भक्तिरहित होनेसे मुझको प्रिय नहीं होता ॥ २ ॥
 सकि सुख सख सुख खावी । बिनु सतसंग न पावहि प्रावी ॥
 पुण्य पुन बिनु मिछहि न संग । सतसंगति संघति कर अंग ॥ ३ ॥
 भक्ति स्वतन्त्र है और सब सुखोंकी खान है । परन्तु सतसंग (संतोंके संग) के
 बिना प्राणी इसे नहीं पा सकते । और पुण्यसमूहके बिना संत नहीं मिलते । सतसंगति ही
 संघति (सन्म-मरणके चक्र) का अन्त करती है ॥ ३ ॥

पुण्य एक जग माँहूँ बहि दूख । मम जम कचन विम पथ पूछ ॥
 साधुदूख केहि पर सुनि देवा । ओ सकि कष्ट करइ दिन सेवा ॥ ४ ॥
 जगत्में पुण्य एक ही है, [उसके समान] दूख नहीं । वह है—मन, कर्म और
 बन्धनके ब्राह्मणोंके चरणोंकी पूजा करना । ओ कष्टदा त्वाव करके ब्राह्मणोंकी सेवा करता
 है उधर सुनि और देवता प्रसन्न रहते हैं ॥ ४ ॥

चौ०—भौरठ एकं श्रुत मत्त सबहि कहैं कर जोरि ।
 संकर मज्जन विना नर भगति न पावइ मोरि ॥ ४५ ॥
 और भी एक श्रुत मत है, मैं उसे सबसे श्रवण जोड़कर कहता हूँ कि सङ्करोंके
 मज्जन बिना मनुष्य मेरी भक्ति नहीं फल ॥ ४५ ॥

चौ०—कहइ भगति पय कवन प्रसास । लीन न मज्ज अप तप उपवास ॥
 सक सुभाव न मम कुटिअई । जग खम संतोष सदाई ॥ १ ॥
 कहो तो भक्तिमार्गमें लीन-ता परिभ्रम है ? इसमें न योगकी आवश्यकता है, न यज्ञ,
 तप, तप और उपवासकी । [यहाँ इतना ही आवश्यक है कि] संतों स्वभाव हो,
 मनमें कुटिअन न हो और वो कुछ मिले तभीमे सदा सन्तोष रखे ॥ १ ॥

भौर दस कहइ नर जगसा । कज्जौ कहइ कहा विज्ञासा ॥
 बहुत कहैं का कथा कहाई । पृथि जाचय कस मैं माई ॥ २ ॥
 भौर दस कहलकर यदि कोई मनुष्यकी आज्ञा करता है, तो दुम्हीं कहो, उसका
 क्या विज्ञास है ? (अर्थात् उसकी मुझपर आज्ञा बहुत ही निर्बल है ।) बहुत बात
 बदाकर बना कहूँ ! हे मादवो ! मैं तो इसी व्याकरणके कर्ममें हूँ ॥ २ ॥

वैर न विग्रह वास न जगसा । सुखमय ताहि सदा सख आसा ॥
 अमर्ष अविशेष जगती । जस अरोप दुष्ट बिरादी ॥ ३ ॥
 न किसीसे वैर को, न लड़ाई-संग्रहा करे, न आज्ञा रखे, न भय ही करे । उसके
 दिने सभी विग्रह सदा सुखमयी हैं । जो कोई भी आरम्भ (पलकी हज्जाते कर्म)
 नहीं करता, जिसका कोई अन्त पर नहीं है (जिसकी कर्ममें समाप्त नहीं है), जो मानहीन

पगहीन और खोपहीन है, जो [यदि करनेमें] नियुक्त और निजन्तार है ॥ १ ॥

श्रीति सदा सज्जन संतर्भा । एवं सदा विषय स्वयं अग्रणी ॥

ममस्ति पक्क हठ नहीं सख्तबद्ध । कुछ उन्हें सब दूरे बहाई ॥ ४ ॥

संतर्भाके संघर्ष (तलह) से निवे सदा प्रेम है, जिसके समर्थ वह विषय यद्योक्त कि स्वर्ग और सुविस्तार [यदिने खामने] इसके समान हैं, जो यदिने स्वर्ग हठ करता है, पर [दूसरेके सख्त सख्त करनेकी] पूर्णता नहीं करता तथा जिसने वह कुतर्कोंसे दूर रहा दिखा है ॥ ४ ॥

दो०—अम शुभ प्राप्त जाग रत पत समस्त मन् मोह ।

ता कर कुछ सोद ज्ञान परमंद संयोद ॥ ७६ ॥

जो मेरे गुणगुणोंके और मेरे ज्ञानके कारण है, एवं मया, पर और मोहो रहित है, उसका कुछ भी जानता है, जो [परमात्मनः] परमन्तराधिको प्राप्त है ॥ ७६ ॥

चौ०—सुख सुधात्मक पवन राम के । गये समि पर कृतधाम के ।

जगति जगत् पुर गंगु हवारे । कृपा विमान प्रप ठे प्यारे ॥ १ ॥

सौरात्मकत्वके अनुसारके समान पवन सुखकर सने कृपाधामके पवन पक्ष जिने [और कहा—] हे सुप्रसन्न ! आप हमारे माता, पिता, पुत्र, भाई सब कुछ हैं और प्राणीके भी अधिक मित्र हैं ॥ १ ॥

तनु धनु बान सम दितकारी । सब विधि तुम्ह प्रकटकी हुई ॥

अस्ति त्वत्तुम्ह विनु देह नकोट । तनु पिता समस्त ता ओट ॥ २ ॥

और हे शरणागतके दुःख हरनेवाले रामजी ! आप ही हमारे करीब, पना, पर-हार और सभी प्रकारसे हित करनेवाले हैं । ऐसी पिता आपके अतिरिक्त कोई नहीं दे सकता । माता-पिता [विशेष हैं और पिता भी देते हैं] परन्तु वे भी स्वार्थपर हैं [इच्छिते ऐसी परम हितकारी पिता नहीं देते] ॥ २ ॥

देह स्थित राम तुम्ह उपकारी । तुम्ह सुखपर केवल अनुकारी ॥

कारण मीत समस्त राम साजी । सबमें तुम्ह परमेश्वर काही ॥ ३ ॥

हे भगुरीके शत्रु ! जगत्में बिना देहके (निःसर्ग) उपकार करनेवाले तो दो ही हैं—एक आप, दूसरे आपके केवल । जगत्में [केवल] कभी स्वार्थिक मित्र हैं । हे प्रभो ! उनमें स्वार्थों की परमावस्था मान नहीं है ॥ ३ ॥

सब के कलम प्रेम सब छाये । तुम्हि सुखदा हरि हरकने ॥

मित्र मित्र तुम्ह सब अन्तर्गु काई । समस्त तनु समस्त सुखदाई ॥ ४ ॥

सबके प्रेमरसमें सब हुए कलम तुम्ह परीचुपावनी हरसमें स्तिता हुए । मित्र भाषा पवन सब शत्रुकी तुम्ह पराधीनता काँन करते हुए जगत्में-जगत्में पर बने ॥ ४ ॥

दो०—उम्मा अवधवासी कर चारि कृतारण कर ।

प्रह्म सधिवान्ध धन रसुखपक जाई सुख ॥ ७७ ॥

[थिली करते हैं—] हे उम्मा ! कलेश्यामें रहनेवाले पुत्र और भी कलेश्यात्मक हैं, नहीं स्वयं कलेश्यात्मक तब भी कलेश्यात्मकी राधा हैं ॥ ७७ ॥

चौ०—एक बार कसि तुम्हि काए । जाई सब सुखदाय सुखदा ॥

अति कादर सुखदाक कीमत् । पर पछरी पछरीक कीमत् ॥ १ ॥

एक बार तुम्हि कीमती कहीं जाने जाई तुम्ह सुखके पना कीमती ये ।

भीरुनाथजीने उनका बहुत ही आदर-सत्कार-प्रिया और उनके चरण धोकर चरणा-
मृत लिया ॥ १ ॥

राम सुनहु सुनि कह कर बोरी । हृषिकेशु विनती कहु मोरी ॥

देखि देखि आचरव हृषिकेश । होत मोह सम हृदय भवारा ॥ १ ॥

मुनिने हाथ जोड़कर कहा—हे कृपावानर श्रीरामजी ! मेरी कुछ विनती मुनिने !
आपके आचरणों (अनुपमोचित चरित्रों) को देख-देखकर मेरे हृदयमें व्यापार मोह
(भ्रम) होता है ॥ २ ॥

सहिमा अस्मिति वेद नहीं जाना । मैं केहि भीति कह्यँ नगलना ॥

उपरोक्ष कर्म अति मंदा । वेद पुरान सुसूति कर गिरा ॥ १ ॥

हे धामन् ! आपकी महिमाकी सीमा नहीं है, उधे वेद भी नहीं जानते । फिर मैं
किस प्रकार कह सकता हूँ ? उपरोक्षीका कर्म (पेशा) बहुत ही नीचा है । वेद, पुरान
और स्मृति सभी इसकी निन्दा करते हैं ॥ २ ॥

कह न केहँ मैं तब निधि मोही । कहा काम' मागँ सुत मोही ॥

परमात्मा मझ पर क्या । छोड़ि रहकुल भूषण भूषा ॥ ३ ॥

कह मैं उधे (सर्वव्यापी पुरोक्षीका कर्म) नहीं सेवा या, वह भस्माग्नि में कुछ
लाया था—हे पुत्र ! उधे तुमको आगे चलकर बहुत काम होगा । सर्व ब्रह्म परमात्मा
मनुष्यकर्म धारण कर रहकुलके भूषण राजा होने ॥ ४ ॥

हो—तब मैं हृदय विचारा ओग जम्ब अत दान ।

का कह्यँ करिय सो वैह्यँ धर्म न एहि सम जान ॥ ४८ ॥

तब मैंने हृदयमें विचार किया कि जिसके लिये योग, यज्ञ, अत और दान किये जाते
हैं, उधे मैं इसी कर्मों या कार्यों ; तब तो इसके समान दूसरा कोई धर्म ही नहीं है ॥ ४८ ॥

हो—अब तब निष्पन्न ओग मित्र धर्म । भुति संभव सावा सुभ कर्म ॥

मज्ज हवा हम तीरव मज्जन । कह्यँ कर्म कह्यँ भुति सज्जन ॥ १ ॥

कर्म, लक्ष, नियम, योग, अपने-अपने [वर्णाश्रमके] धर्म, भुतिवर्षे उत्पन्न
(पैदाविहित) बहुत-से धर्म कर्म, शान्ति, दान, दम (हर्षव्यभिचार), दीर्घकाल आदि
प्रायः वेद और वेदव्यतिरेक धर्म कहे हैं [उनके करनेका]—॥ १ ॥

काम निगल पुरान अनेक । पड़े धुने कर पल प्रभु पूजा ॥

तब तब फल प्रीति विरंतर । सब साधन कर यह फल सुंदर ॥ २ ॥

[तथा] हे प्रभो ! अनेक तन्त्र, वेद और पुराणोंके पढ़ने और सुननेका सर्वोत्तम
फल एक ही है और सब साधनोंका भी वही एक सुन्दर फल है कि आपके चरणकमलोंमें
सदा-सर्वदा प्रेम हो ॥ २ ॥

हृदय मझ कि मज्जहि के पोह्यँ । कह कि पक्ष कोह करि विहोह्यँ ॥

प्रेम मयति मझ भिनु रहुरह्यँ । अविद्यंतर मझ कहुँ य लाह्यँ ॥ ३ ॥

मैलसे चोनेते नवा मझ धूतला है ? अन्ते मज्जनेसे नवा कोह्यँ पी या सदाता है ?
[उसी प्रकार] हे रघुनाथजी ! प्रेम-मज्जिकारी [निर्मल] आपके विना मन्दाकरणका
मल कभी नहीं जाता ॥ ३ ॥

सोह सर्वम्य जम्ब सोह पंथि । सोह गुन शृह विमलव अवेदित ॥

दंष्ट्र सज्जन लक्ष्मण सदा कोह्यँ । वल्यँ पद सरोज खले छोह्यँ ॥ ४ ॥

वही दर्शन है, वही लक्षण और लक्षण है, वही गुणों पर और वास्तव विज्ञान-
बन्ध है वही चरित्र और सब लक्षणों से युक्त है, निश्चय सगले चरित्रकर्तों में देव है (४१)

दो—जब एक नर मासकें राम कृपा करि देह ।

जन्म जन्म प्रभु यह कमाव करहु छै मनि मेहु ॥ ४२ ॥

हे राम ! हे भोगमयी ! मैं लखे एक नर मोक्षार्थ हैं, फल करते दीजिये । प्रभु
(राम) के चरित्रकर्तों में मेरा प्रेम कर्म-फलकर्तों में भी कभी न पड़े ॥ ४२ ॥

चौ०—अब यदि सुनि धरिह सुख भव । कुत्रिधु के नम कति भार ॥

हृदयन भवदिक साव । संभ सिद्ध लेख सुखदाता ॥ ४३ ॥

ऐसा चरित्र सुनि धरिहजी पर गये । वे सुखदाता भोगमयी के लगे रहते ही
पाने लगे । लक्ष्मण सेमकेही सुख देनेवाले भोगमयीने हृदयमयी तथा परमेशी
भावि भावोंको साथ लिया ॥ ४३ ॥

सुनि सुख पुर बाहेर नद । एक राव सुख मकल नद ॥

देखि कृपा करि लख लखे । दिह उचित सिद्ध सिद्ध देह ॥ ४४ ॥

और फिर सुख सुख मीरमयी लगे बाहर नद और वहाँ उभरने लगे, राव और
पौंदे मीरमयी । उन्हें देखकर कृपा करने प्रभुने सभी कृपाएं की और उनको नि-
श्चितने बाह्य, उक्त-उक्त उचित बनकर दिया ॥ ४४ ॥

हरन कष्ट नम प्रभु नम नद । वहाँ लीला कर्तव्य ॥

भक्त होन विन भक्त नद । वहाँ प्रभु लेखि लख नद ॥ ४५ ॥

संछाये सभी भक्तोंके हृदयोंके प्रभुने [हाथी, पौंदे भक्ति ब्रह्मदेव] भक्त
भक्तमय किया और [नम भिद्यनेके] वहाँ गये वहाँ धीरु नमदा (भक्तोंका
बागीचा) भी । वहाँ भक्तमयीने भक्त का निवास दिया । प्रभु उनका वैन पौं और
नम भाई उनही सेवा करने लगे ॥ ४५ ॥

साकसुख लख नम नद । प्रभु नद लख नम नद ॥

हरन नम नद नद नद । वहाँ नद नद नद नद नद ॥ ४६ ॥

मिथिला नद नद नद नद । वहाँ नद नद नद नद नद ॥ ४७ ॥

इत वन्य नद नद नद नद (नद) करने लगे । उनका चरित्र पुष्पित
हो गया और नद नद [प्रेमभक्तोंके] का घर बना । [भिद्यने करने लगे—] हे
मिथिली ! हृदयमयीने लखन न ले कोई भक्तमयी है और न कोई भोगमयी चरित्रका
मेरी ही है, निश्चय प्रेम और लेखनी [लख] प्रभुने सभी नद नद नद नद नद नद
भी है ॥ ४६ ॥

दो—देखि नमकर सुनि नद नद नद नद ।

वाचन लगे राम कल कीरति सदा नदीय ॥ ४८ ॥

उसी वाचनपर नद नद नद नद नदीय लगे हुए लगे । वे भोगमयीके कुन्दा
और नदीय नदीय नदीय नदीय लगे लगे ॥ ४८ ॥

चौ०—मासकौन नद नद नद । नद नदीय नदीय नदीय ॥

दीप तानन नम नम नद । नदीय नदीय नदीय नदीय ॥ ४९ ॥

कृपापूर्वक देव सेवकोंके लोभके लुप्तकेके देव कर्मजन । मेरी वीर देखिये
कुत्तर भी कृपाकरि कीजिये) । हे हरी ! वन गीत कलाके लखन भक्तमयी और

अमदेवके पुत्र मण्डोदरीके दुरवकाशके मकरन्द (मेघ-रस) के पान करनेवाले
धनर हैं ॥ १ ॥

साधुपान अमृत सब अंचन । मुनि सखन रंजन सब वंजन ॥

भूधर सखि सब मूर बलवहक । अंतरन अमन दीब अम ग्राहक ॥ २ ॥

इस राक्षसीकी केसके सलबो तोड़नेवाले हैं । मुनियों और संतजनोंको आनन्द
देनेवाले और पापोंके नाश करनेवाले हैं । त्रासपसवी सोखके म्रिये आप मये मेघरसमूह
हैं और शरणाहीनोंकी शरण देनेवाले तथा दीब जनोंको अपने आश्रयमें ग्रहण करने-
वाले हैं ॥ २ ॥

भुज कट निजुड आर यदि खसिह । कर दूषण निरुध सब पंडित ॥

रत्नगरी सुचलन रूपकर । अब दशरथ इक हनुमद बुधाकर ॥ ३ ॥

अपने बाहुलको धृष्टके कड़े मारी कोसकसे नष्ट करनेवाले, कर-दूषण और विराव-
के आ करमें दुष्टक, राजके पुत्र, आनन्दरसम, राजाओंमें सेह और दशरथके
हुलसी हनुमदीके चरमा भीरामजी । भावकी गज हो ॥ ३ ॥

सुपस पुपन विविध निगमात्म । दामन मुर मुनि संत समागम ॥

अकलिक अकालिक नर संकष । सब विधि कुलक कोसला संदम ॥ ४ ॥

भापका कुम्हार सब पुपों, वेदोंमें और कलादि शास्त्रोंमें आत्त है । देवता, मुनि
और संतोंके समुदाय उधे वाते हैं । आप कथा करनेवाले और हठे मरुत नाथ करने-
वाले, सब प्रकारके कुलक (निपुण) और जीमकोष्पादीके शुष्क ही हैं ॥ ४ ॥

कठि नर अमन नम ममसादन । शुक्तिवाम प्रभु पति प्रसन्न मन ॥ ५ ॥

आपका नाम कमिपुत्रके जनोंको सब आनन्दवाच्य और मन्त्रको मरनेवाला
। हे हस्तीदासके प्रभु । अजानतकी राजा खीमिने ॥ ५ ॥

सो—मेम ललित मुनि नरद वरवि राम सुख प्राप्त ।

लोमासिष्ठ इवर्ष धरि राघव जहाँ विधि धाम ॥ ५१ ॥

भीरामचन्द्रजीके शुभकर्मोंका प्रेम्पूर्ण वर्णन करते मुनि नरदजी लोमाके समुद्र
प्रभुको इवर्ष परकर जहाँ गलकोक है जहाँ कहे गये ॥ ५१ ॥

सो—निरिक्त सुनहु निन्द खर कथा । मैं कथ करी मोरि सति कथा ॥

राम करि लल कोरि कथा । मुनि सनदा न करनै पारा ॥ ५२ ॥

[दिनजी कहते हैं—] हे निरिक्त ! मुनो, मैंने वह उक्तक कथा, लौरी मेरी
हुनि गी, मेरी पूरी वह उक्त । भीरामजीके चरित्र को करोक [कथा] कथार हैं ।
मुनि और शारदा गी उक्तक वर्णन नहीं कर सकती ॥ ५२ ॥

राम कर्षत कर्षत सुखनी । अन्य कर्ष कर्षत कलावी ॥

अल लीमर यदि सब कवि खाई । सुखति कलि न करि सिताही ॥ ५३ ॥

मगनात् भीराम अमन हैं उनके सुख अमन हैं अन्य, कर्म और नाम की
अमन हैं । लक्ष्मी हूँ और धृष्टके रत्न-रत्न वाहे म्रिये न्न उक्तो हूँ पर भीरुनाथजी-
के चरित्र वर्णन करनेसे नहीं चुकते ॥ ५३ ॥

निमल कथा हरि नम हस्ती । सखि होह मुनि कथावनी ॥

उमर कहितें लल कथा सुहाई । जो सुमुखि कलाविधि सुनई ॥ ५४ ॥

वह अविन कथा यमनात्के प्रशस्तको देनेवाली है । इसके सुननेसे कविचर

भक्ति प्राप्त होती है। हे उग्र ! मैंने वह सब सुन्दर कथा कही जो ब्रह्मसुखिणीने गङ्गुलीको सुनायी थी ॥ ३ ॥

कमुद राम गुण कहेँ बरानी । सब का कही सो कहु मरानी ॥

सुनि सुभ कथा उमा ह्वानी । बोली बलि विनीत हनु बानी ॥ ४ ॥

मैंने श्रीरामजीके कुछ बोले-ले गुण वस्तुनकर कहे हैं। हे भवानी ! तो कहो, अब और क्या कहूँ। श्रीरामजीकी मङ्गलमयी कथा सुनकर कर्नवीने हर्षित हुई और भक्त्यन्त चित्त तथा स्नेहक वाणी बोली—॥ ५ ॥

धन्य धन्य मैं कब पुकरी । सुकेँ राम गुण सब जग हरी ॥ ५ ॥

हे त्रिपुरारि ! मैं धन्य हूँ, धन्य-धन्य हूँ जो मैंने जन-मुक्तके मयके हरण करने वाले श्रीरामजीके गुण (चरित्र) सुने ॥ ५ ॥

सो—सुम्हरी कृपेँ सुप्रवक्तव्य कब सुतहस्य न मोह ।

जानेँ राम प्रताप प्रभु चिदात्म्य संबोह ॥ ५२ (क) ॥

हे कृपाशाय ! जब जबकी कृपाते मैं हृत्कृत्य हो गयी। अब मुझे मोह नहीं रह गया। हे प्रभु ! मैं सबिदामन्दपत्र प्रभु श्रीरामजीके प्रतापको जान गयी ॥ ५२ (क) ॥

साध्य लक्षणन सति अफत कब सुधा रघुवीर ।

अचल पुटन्दि मन पाव करि नहि मखत मतिवीर ॥ ५२ (ख) ॥

हे नाथ ! भावक मुक्तकी चन्द्रमा श्रीरघुवीरकी कृपाकी वस्तुतः करता है। हे मतिवीर ! मेरा मन कर्णपुटोंके उठे लेकर दृढ़ नहीं होता ॥ ५२ (ख) ॥

पौ—राम बलि के मुक्त भवानी । रा बिलेव जाक किन्द भाई ॥

जीवन्मुक्त महासुनि केड । हरि गुण सुबहि निरंतर ऐक ॥ ५ ॥

श्रीरामजीके चरित्र सुने-सुने जो दृढ़ हो जाते हैं (यह कर देते हैं), उनकी तो लक्ष्मण विशेष रक्त जाना ही नहीं। जो जीवन्मुक्त महासुनि हैं, वे भी समझनेके गुण निरन्तर सुनते रहते हैं ॥ ५ ॥

भय लागत यह पार जो जग । सब कथा ल कहै यह भावा ॥

विषद्वै कहेँ सुनि हरी गुण जग । सब सुकृद कब सब लक्षित ॥ ५ ॥

जो संसारकी लक्ष्मण पर पना चारु है उसके सिने तो श्रीरामजीकी कथा हम मौखिके ज्ञान है। श्रीरामके गुणसमूह तो निपली लोगोंके सिने भी कानोंको गुण देनेवाले और मनको आनन्द देनेवाले हैं ॥ ५ ॥

अनन्यत आन को सब भाई । जहि न रघुपति पति सोहरी ॥

हे चक्र जीव विनात्मक घाती । किन्दि न रघुपति कथा सोहरी ॥ ५ ॥

क्यात्मै कानाकाल ऐसा जैन है जिने श्रीरघुपतिजीके चरित्र न सुनते ही। किन्दि श्रीरघुनाथजीकी कथा नहीं सुनती वे सर्व जीव तो अपनी अज्ञानी हवा करनेवाले हैं ॥ ५ ॥

हरिचरित्र मयक सुन्द कथा । सुनिमै सब जगिनि सुन बला ॥

उन्द लो कही यह कथा सुझाई । सब सुनि किन्दि सब प्रति गाई ॥ ५ ॥

हे नाथ ! आने श्रीरामचरितमानसका नाम किन्दि, उसे सुनकर मैंने अत्यन्त प्राप्त। आपने जो यह कहा कि यह सुन्दर कथा ब्रह्मसुखिणीने गङ्गुलीको कही थी—॥ ५ ॥

सो—विपति भान विन्यास हनु राम चरन अति केड ।

सावध लव रघुपति कथति मोदि एवम सदिह ॥ ५२ ॥

तो कौएका शरीर फकर भी ककमुष्टिगिर वैराग्य, ज्ञान और विज्ञानमें दृढ़ है; उनका श्रीरामजीके चरणोंमें अत्यन्त प्रेम है और उन्हें श्रीरामायणीकी भक्ति भी प्राप्त है; इह बातका सुख परम सुख ही रहा है ॥ ५३ ॥

१- चौ०—नर सहस्र मई सुन्दर पुंशरी। खेद एक होइ धर्म प्रसारी ॥

धर्महीन कोटिक मई खेद है। विषय विमुक्त विरक्त रत होई ॥ १ ॥

हे विपुसारि ! सुनिसे, हजारों मनुष्योंमें कोई एक धर्मके प्रकाश धारण करनेवाला होता है और करोड़ों धर्मोन्मादोंमें कोई एक विषयसे विमुक्त (विषयोक्ता त्वाणी) और वैराग्यपरायण होता है ॥ १ ॥

कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्पन्न ध्यान सकल कोट कहई ॥

व्यावर्तन कोटिक मई कोट। जीवनमुक्त सकल तम सोक ॥ २ ॥

श्रुति कहती है कि करोड़ों विरक्तोंमें कोई एक सम्पन्न (यथार्थ) ज्ञानको प्राप्त करता है। और करोड़ों जानिवाँमें कोई एक ही जीवनमुक्त होता है। बगलमें कोई विरक्त ही ऐसा (जीवनमुक्त) होगा ॥ २ ॥

सिंह सहस्र मई सब सुख जानी। दुर्लभ ब्रह्म जीव विद्यानी ॥

धर्महीन कोटिक मई व्यापी। जीवनमुक्त ब्रह्मपर प्राणी ॥ ३ ॥

हजारों जीवनमुक्तोंमें भी सब सुखोंकी खान, ब्रह्ममें हीन विज्ञानवान् पुरुष और भी दुर्लभ है। धर्मोन्माद, वैराग्यवान्, ज्ञानी, जीवनमुक्त और ब्रह्मज्ञान—॥ ३ ॥

सब से तो दुर्लभ सुरसा। राम भाति रत राव नर साध ॥

ही हरिमगति काय किमि पाई। विलबाप मोहि कहहु सुहाई ॥ ४ ॥

इन सबमें भी हे देवाधिदेव महादेवी ! यह प्राणी अत्यन्त दुर्लभ है जो मर और भावते रहित हीन श्रीरामजीकी भक्तिके परायण हो। हे विषयबाप ! ऐसी दुर्लभ हरिमगति की भाँति कैसे पा गया, मुझे समझाकर कहिये ॥ ४ ॥

दो०—राम कटावन व्यास रत शुवात्तार मति धीर।

न्याय कहहु कोहि सरस पावत काक सरीर ॥ ५४ ॥

हे नाथ ! कहिये, [ऐते] श्रीरामपरमेश्वर, सननिरत, युवचाम और वीरबुद्धि मुष्टिगिरोंने कौएका शरीर किस कारण पाया ॥ ५४ ॥

चौ०—यह प्रभु चरित पवित्र सुहावा। कहहु कृपक काय कहँ पाकर ॥

मह कोहि भीति सुधा मद्यारी। कहहु मोहि बति बौदुक भारी ॥ १ ॥

हे कृपाक ! क्याहये, उस कौएने प्रभुका यह पवित्र और सुन्दर चरित्र क्यों पाया ! और हे कामदेवके बन्धु ! यह भी क्याहये, आपने इसे किस प्रकार सुना ? मुझे क्या भाँति कौतूहल हो रहा है ॥ १ ॥

गक मद्यमन्त्री सुन रासी। हरि सेवक बति विकट निवासी ॥

तेहि कोहि देहु कल सन जाई। सुनी कवा सुनि निर कर बिहाई ॥ २ ॥

गवहजी तो गहन मन्त्री, कटुशुभोंकी राक्षि, श्रीहरिके सेवक और उनके अत्यन्त निकट रहनेवाले (उनके वाहन ही) हैं। उन्होंने सुनिवाँके समूहको छोड़कर, कौएसे काकर हरिकण किस कारण सुनी ? ॥ २ ॥

कहहु कल विधि आ संकवा। दोह हरिमवल काय उरपादा ॥

गंभीर निरा सुनि सकल सुहाई। बोले सिन सावर सुख पाई ॥ ३ ॥

कहिने, कलमुकुटि और मरु इन दोनों हरिमकोषी गानकीत कि प्रसार हुई ।
पार्यतीकोषी सरल, सुन्दर सभी सुन्दर शिवजी सुल फल आदरसे वाद दोहे—॥ १ ॥

अन्य सती शिवन मति तोरी । खुबि करन श्रुति नहीं मोरी—॥ ॥

सुनहु परम पुनीत इतिहास । जो मुनिसकल कोक भय, वासा ॥ ४ ॥

दे सती । तुम बन हो, तुम्हारी कृति अनन्त भविष्य है । जोरुमायमीके चरणोंमें
तुम्हारा, कम प्रेम नहीं है (अत्यधिक प्रेम है) । वासा कह परम पवित्र शिवसिद्ध हुनो,
जिसे सुननेसे सारे लोकमें प्रसन्न हो जाता है ॥ ४ ॥

वपनहु राम करन विलास । अब विधि हर वर विनीत प्रसादा ॥ ५ ॥

तथा श्रीरामजीके चरणोंमें विलास उपलब्ध होता है और प्रसन्न भिन्न ही, परिधम
संसाररूपी समुद्रसे तर जाता है ॥ ५ ॥

दो०—येसिख प्रसन्न विहंगमपति कनिहि फग सच जाह ।

सो सच साक्षर कहिहैं सुनहु उमा मन लाह ॥ ५५ ॥

पक्षिराज गरुडजीने भी आकर कलमुकुटिजीसे प्रायः ऐसे ही प्रसन्न किये थे । हे
उमा । मैं वह सच साक्षर कहिहैं, तुम मन व्यापक हुनो ॥ ५५ ॥

चौ०—मै सिमि कथा सुनी सब ओषणि । सो प्रसन्न सुनु सुसुखि सुखेचणि ॥

प्रथम दृष्ट दृष्ट सब अवतारा । सती नय सब यहा तुम्हारा ॥ १ ॥

मैंने किस प्रकार वह सब (अनन्त-मृत्यु) से सुसनेपानी कथा सुनी, हे सुसुखी ।
हे सुलोचनी ! वह प्रसन्न हुनो । कहे तुम्हारा सबकार देखके सब दुःखा या । वर तुम्हारा
दान सती या ॥ १ ॥

दृष्ट सब सब ना अवतार । सुनहु मति शेष सबे सब प्रसादा ॥

सब वस्तुचरुह कनिह मल भंग । जानहु तुम्ह सो सकल प्रसन्ना ॥ २ ॥

देखके प्रथम तुम्हारा अवतार हुआ । तब तुम्हारे अत्यन्त शेष करने प्राय त्याग दिये
थे; और फिर मेरे देवकीने वह निर्धन कर दिया था । सब सारा प्रसन्न तुम गानकी ही हो ॥ २ ॥

सब मति सैब भवत मन मोरें । हुखी भवतें विषय प्रिय तोरें ॥

सुंदर नव गिरी कविता ललास । कौतुक देखत फिरें चेतना ॥ ३ ॥

तब मेरे मनमें बड़ा लोच हुआ और हे प्रिये । मैं तुम्हारे विषयसे हुखी हो गया । मैं
विरक्तभावसे सुन्दर बन, पर्वत, नदी और लज्जकोषी सौख्य (इस) देखता फिरता था ॥ ३ ॥

गिरी सुमेर उच्चर विधि दूरी । नील सैब एक सुंदर भूरी ॥

तापु कनकलभ छिन्न सुहाद । पारि जल मोरे गग थाद ॥ ४ ॥

सुमेर पर्वतकी उच्चर दिशमें और भी दूर, एक बहुत ही सुन्दर नील पर्वत है ।
उपके सुन्दर स्वर्णलभ छिन्न है, [उनमें] पार सुन्दर छिन्न मेरे मनको बहुत ही
अच्छे लगे ॥ ४ ॥

किन्तु पर एक एक विध विरास । यह पीर वाकरी सल्ला ॥

सौतोपरि सब सुंदर सोहर । गति सोपान देखि सब मोहर ॥ ५ ॥

उम शिलरोंमें एक-एक कर ललास, पार और आसन्न एक दर गिरा
वृक्ष है । पर्वतके ऊपर एक सुन्दर ललास श्रेष्ठ है; जिसमें गतिचौरी श्रेष्ठ गिरा
मन मोहित हो जाता है ॥ ५ ॥

दो०—सीतल अमल गगुर डल ललल विपुल चतुरंग ।

कूजत कल रव हंस गग सुंजत मंडुल मृग ॥ ५६ ॥

उसका लाल शीतल, निर्मल और गौड है; उसमें रंग-निरिखे बहुत-से कमल खिले हुए हैं, हंसगण गहुर स्वरसे बोल रहे हैं और और सुन्दर गुबार कर रहे हैं ॥ ५६ ॥

चौ०—तेहि गिरि खरि बसह खग सोई । तसु नख फलसंत न होई ॥

माया कृत गुप्त दोष अनेक । मोह मन्त्रेय आदि अविवेक ॥ १ ॥

उस सुन्दर पर्वतपर कहीं कहीं (काकुमुष्ण्डि) बसता है । उसका नाश कल्पके अन्तमें भी नहीं होता । मानवचित्त अनेकों गुण-दोष, मोह, काम आदि अविवेक ॥ १ ॥

रहे ह्यारि समस्त अब माहीं । तेहि गिरि निकट कबहुं नहि जाहीं ॥

तहाँ बसि हरिहि भव्य विमिकामा । सो सुनु उमा सहित भद्ररागा ॥ २ ॥

जो सारे जगत्में छा रहे हैं, उस पर्वतके पास भी कभी नहीं फटकते । वहाँ बलकर जिस प्रकार वह काक हरिको भभता है, हे उमा ! उसे प्रेमसहित सुनो ॥ २ ॥

पीपर कस तर भाव सो बरह । अप कथ पकरि तर करह ॥

जौष छौह कर मानस पूजा । सजि हरि भवनु काहु नहि वृजा ॥ ३ ॥

वह पीपलके वृक्षके नीचे भ्रान भरता है । पाकरके नीचे जपपठ करता है । आत्मकी छायामें मानसिक पूजा करता है । श्रीहरिके भजनको छोड़कर उसे दूसरा कोई काम नहीं है ॥ ३ ॥

बर तर कह हरि कबर प्रसंगा । जगहि सुनहि अनेक बिहंगा ॥

राम चरित विचित्र विधि नाच । प्रेम सहित कर सार्व गाना ॥ ४ ॥

जगत्के नीचे वह श्रीहरिकी कथाओंके प्रसङ्ग फटता है । वहाँ अनेकों पक्षी आते और कथा सुनते हैं । वह विचित्र रामचरितको अनेकों प्रकारसे प्रेमसहित आदरपूर्वक गान करता है ॥ ४ ॥

सुनहि सकल मति विमल मराका । बसहि विरंतर तेहि ताला ॥

अब मैं जाहूँ सो कौमुद देखा । तर उपका आनंद बिलेखा ॥ ५ ॥

सब निर्मल बुद्धिवाले (हं, जो सदा उब सात्वतपर बसते हैं, उसे सुनते हैं । जब मैंने वहाँ जाकर वह कौमुद (हंस) देखा, तब मेरे हृदयमें विशेष आनन्द उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥

दो०—तब कहु काळ मण्डल तनु धरि तहैं कीन्ह निवास ।

सावर सुनि रघुपति गुन पुनि आपर्व कौलस ॥ ५७ ॥

तब मैंने हंसका शरीर धारण कर कुछ समय वहाँ निवास किया और श्रीरघुनाथजीके गुणोंकी आदरसहित सुनकर फिर जेलरको लौट आया ॥ ५७ ॥

चौ०—गिरिजा कहेचैं सो सब इतिहासा । तेहि समब भयई खग पासा ॥

अब सो कथा सुनहु तेहि हेतु । गवत कर यहि खग कुल केतु ॥ १ ॥

हे गिरिजे ! मैंने वह सब इतिहास कहा कि जिस समय मैं काकुमुष्ण्डिके पास गया था ।

अब वह कथा सुनो जिस कारणसे पशुकुलके छव्व बरहूनी उस काकके पास गये थे ॥ १ ॥

जब रघुनाथ कीन्ह स्व शरीर । समुद्रत अस्ति होति मोहि शीरा ॥

इंद्रनील कर अबु बैलगा । सब चरह सुनि गरुड पदाब्ज ॥ २ ॥

जब श्रीरघुनाथजीने ऐसी रक्तबीज की जिस लीलावत सरण करनेसे मुझे छमा होती है—नेपनादके हाथों अपनेको वैधा किया—तब नारद मुनिने गरुडको मेला ॥ २ ॥

रंघन कटि गळे उरगाहा । उरज हृदय प्रवेक विधादा ॥

प्रभु भंघन समुद्रत कहु भीती । कस्त विचार उरज आसती ॥ ३ ॥

रंघने भस्मक गरुडनी कथन फलकर गने, उन उनके हृदयमें क्या भापी विधाद

उत्पन्न हुआ । प्रभुके वन्दनको सारण करते सभी धनु यक्षकी बहुत प्रशंसा विचार करने लगे—॥ ३ ॥

ध्यायक जग्न विरज धर्मसा । माध सोह पार परमेश ॥

सो अक्षर सुनें जब चाहें । देखें सो प्रमत्त नहीं ॥ ३ ॥

जो व्यापक, निःप्रसरहित, कभीके भी और भावा-गोष्ठे पर नरक पतेश्वर है, मैंने सुना था कि जहाँ उन्हीं अक्षर है । पर मैंने उस (अक्षर) का प्रमत्त कुछ भी नहीं देखा ॥ ४ ॥

श्री०—अथ वंछन ते छुटहि कर अपि जा कर नाम ।

अर्थ मिसाकर वंछित नामप्राप्त सोह राम ॥ ५८ ॥

शिवका नाम लेकर मनुष्य वंछनके बन्धनसे छूट जाते हैं उन्हीं रामकी एक वृत्त राक्षसने तारापासने बंध लिया ॥ ५८ ॥

श्री०—नाम भीति मनहि समुत्तम । प्रष्ट व भावद्वयें अम ज्ञान ।

बोद विज्ज जब लई कहैं । अक्षर मोक्षक दुन्दरिहि नाई ॥ ५९ ॥

गणपतिने अपनेको प्रशंसते अपने मनको सम्झाया । पर उन्हें ज्ञान नहीं हुआ, बुद्धयमें भ्रम और भी अधिक का गया । [अन्धत्वमित] दुन्दरसे बुझी होकर, अपने मुक्तकें बढ़ाकर वे दुन्दरही ही मोति मोक्षक हो गये ॥ १ ॥

ज्याकुल अक्षर देखिनि नहीं । कहैनि को संस्र विषय नही ॥

सुनि बारवहि लजि जति छावा । सुनु सब अक्षर राम नै माया ॥ २ ॥

ज्याकुल होकर वे देवर्षि नारदजीके पास गये और मनमें जो अन्धे था, वह उन्हे कहा । उसे सुनकर नारदको भस्मत्व दया आयी । [उन्होंने कहा—] हे गुरु ! सुनिने ! श्रीरामजीकी आज्ञा बढ़ी ही लगती है ॥ २ ॥

जो ज्योतिरिह कर किता कह्यो । हरिनाई किमोह सब कर्म ॥

बोहि ननु बार बलाक मोही । सोह अक्षरी-विषयसि लेही ॥ ३ ॥

जो ज्योतिरिहके चित्तको भी अन्धत्वमें डूब कर लेती है और उनके मनमें अक्षरकी बंधा मारी मोह उत्पन्न कर देती है, तथा किन्हीं वृत्तियों की बहुत बार नष्टता है, वे पक्षिपत्र । यही माना जानको ही भ्रम करी है ॥ ३ ॥

महामोह सबज बर तीरें । विरिदि न देखि कैं का सोरें ॥

अक्षरामन पहि जहु लगेछ । सोह कोतु लेहि होइ विदेसा ॥ ४ ॥

हे गुरु ! अपने हृदयों का मारी मोह उत्पन्न हो गया है । वह मेरे समक्षाने उड़त नहीं मिलेगा । भक्त है पक्षिपत्र । जहाँ जलजीके पत्र जाये वीरें वही विषय कालके सिने आदेश मिले, वही वीरियेगा ॥ ४ ॥

श्री०—अस कहि जले देखिनि करत राम गुन गाव ।

हरि माया बल करत पुनि पुनि परम सुखदा ॥ ५९ ॥

ऐसा कहकर परम सुखन देवर्षि नारदजी श्रीरामजीका गुणगान करते हुए और बारबार श्रीरामकी नामांश कर वर्णन करते हुए लगे ॥ ५९ ॥

श्री०—तब लगपति विरिदि पहि जहु । जिन सदेह सुखदा नक ॥

सुनि विरिदि रामहि सिद्धि बल । समुक्ति प्रभव जेम जति ज्ञान ॥ १ ॥

तब पक्षिपत्र गुरु नारदजीके पास गये और अन्ध अन्धे उन्हें वह सुनाया ।

उसे सुनकर ब्रह्माजीने श्रीरामचन्द्रजीको फिर नवाया और उनके प्रत्यक्षको समक्षकर उनके अत्यन्त प्रेम ॥ गथा ॥ १ ॥

मन नहुँ करइ विचार विधाता । मान्य कस कसि कोविद ग्याता ॥

हरि मान्य कन जसिनि प्रमान्य । चिहुन बार बेहि मोहि नचवा ॥ २ ॥

ब्रह्माजी मनमें विचार करने लगे कि कसि कोविद और कानी सभी मामाके क्या हैं । भगवान्‌की मायाका प्रभाव सर्वत्र है, जिसने कुशलतकके अनेकों बार नचाया है । २।

कन जयमय कन मम उषमय । बहि आचरन मोह खमराजा ॥

तब जोसे निधि मित सुहाई । जान मोहस राम प्रमुताई ॥ ३ ॥

यह सारा चराचर भगवत् तो मेरा रचा हुआ है । जब मैं ही मायायका माचने लगाता हूँ, तब पक्षिराज गच्छको मोह होना कोई आश्चर्य [की बात] नहीं है । तदनन्तर ब्रह्माजी सुन्दर वाणी बोले—श्रीरामजीकी महिमाको महादेवजी जानते हैं ॥ ३ ॥

बैरतेय हंकर पाई ब्यहू । घत भगव पछु अनि काहू ॥

तहाँ होइहि तब संसक हाथी । चलेह विहंग मुनस विधि बानी ॥ ४ ॥

हे गच्छ । तुम संकरजीके पात काओ । हे हाथ । और कहीं किसीके न पूछना । तुम्हारे उन्देइका नाथ कहीं होगा । ब्रह्माजीका वचन सुनते ही सबद चल दिये ॥ ४ ॥

दो०—परमात्तुर विहंगपति आपस तब मो पास ।

आत रवेई कुवेर सह रहिहु समर कौलास ॥ ५० ॥

तब वही आशुरता (उतावली) से पक्षिराज गच्छ से पास आये । हे उता । तब समय मैं कुवेरके घर आ रहा था और तुम कैवल्यपर थीं ॥ ५० ॥

बौ०—तेहि सम पद सखर सिर कन्या । पुनि आपस सदिह सुनाव ॥

सुनि वा करि निगती सहु कानी । प्रेम सहित मैं कहेई भवानी ॥ १ ॥

गच्छने आधारपूर्वकमेरे घरवाँमें सिरनवाया और फिर बुलको अपना सन्देश सुनाया है भवानी । उनकी विनती और कोमल वाणी सुनकर मैंने प्रेमसहित उनसे कहा— ॥ १ ॥

निछेहु गच्छ मरुत मई मोही । कब भौंसि सलुभायौ तोही ॥

तबहि होइ सब संसम संग । कब सहु कस करि सससंग ॥ २ ॥

हे गच्छ । तुम मुझे राखेमें भिजे हो । यह पक्षके मैं मुझें किस प्रकार वधसाकें सब सन्देशोंका तो तमी नाथ हो कब दीर्घ कालतक सत्सङ्ग किन जाय ॥ २ ॥

सुनिव तहाँ इति कथा सुहाई । जाना सीति मुनिन्द जो राई ॥

बेहि महुँ आदि मध्व कवसक । प्रभु प्रतिपाद राम मरवाक ॥ १ ॥

और वहाँ (सत्सङ्गमें) सुन्दर हरिकथा सुनी जब, जिसे मुनियोंने अनेकों प्रकाश से गाया है और जिसके आदि, मध्य और अन्तमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की प्रतिपाद प्रभु हैं ॥ २ ॥

नि हरि कथा होत जई माई । पठतैं तहाँ मुनहु तुम्ह राई ॥

आइहि मुनस सकल सदिह । राम चरन होइहि जति मेहा ॥ २ ॥

हे माई । जहाँ प्रतिदिन हरिकथा होती है, तुमको मैं कहां भेजता हूँ, तुम आकर उसे सुनो । उसे सुनते ही तुमझरा सब सन्देश दूर हो जायगा और तुम्हें श्रीरामजीके चरणोंमें अत्यन्त प्रेम होगा ॥ ४ ॥

दो०—चिनु सतसंग न हरि कथा तेहि चिनु मोह व भाग ।

मोह तहाँ चिनु राम पद छेद न रहु अतुराग ॥ ६१ ॥

सत्सङ्गके बिना हरिजी क्या मुझेसे नहीं मिली। उनके बिना मोह नहीं मालता
और मोहके गये बिना श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें रह (अथक) प्रेम नहीं होत ॥१२॥

चौ०—मिछीहि न लुपति चित्तु अतुल्य । निहूँ लोग तब मग्न विरग्य ॥

उत्तर दिसि सुंदर गिरि नील । जहाँ तब कम्पमुद्रति सुखी ॥ १३ ॥

बिना प्रेम्के केवल बोध तब, जब और वैराग्यदिके करनेसे श्रीरामचन्द्रजी नहीं
मिलते । [अतएव तुम कतकुछे दिने कहाँ जाओ कहाँ] उत्तर दिशामें एक सुन्दर नील
पर्वत है । वहाँ परम सुगीत काकबुद्धिधारी रहते हैं ॥ १॥

एतम मगति परम परम प्रवीण । जहाँ गुन गूढ बहु कभीक ॥

राम क्या सो कहूँ विरंतर । सुन्दर सुगर्भ विविध विहंगम ॥ २ ॥

ये रामचन्द्रके मर्मोंमें परम प्रवीण हैं, ज्ञानी हैं, सुबोधक काय हैं और बहुत कालके
हैं । वे निरन्तर श्रीरामचन्द्रजीकी क्या कहते रहते हैं, जिसे मूर्ख-मूर्खके भेद पक्षी
जागरुकीन सुनते हैं ॥ २ ॥

कहूँ सुबहु जहाँ हरि गुण धरी । होइहि मोह नमिह दुख दूरी ॥

मैं जब तेहि लख क्या जूझाई । कहेइ हरि मग कद छिद भाई ॥ ३ ॥

कहाँ आकर श्रीहरिके गुणचमूमेंसे सुनो । उनके सुननेसे मोहसे उत्तम दुःखरा
दुःख दूर हो जायगा । मैंने उसे जब सब समझाकर कहा, तब वह भी चरणोंमें गिर
नपाकर हर्षित होकर जाय गया ॥ ३ ॥

उत्ते कम न हैं सुखदय । सुगति जहाँ मरु है पाव ॥

होइहि कीन्ह कहुँ अभिमान । सो चोई पद कृपनिधान ॥ ४ ॥

हे कम ! मैंने उसको इतीति नहीं समझाया कि मैं श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे उत्तम
मर्म (भेद) का गया था । उनके ज्ञानी अभिमान बिना दोष । जिससे कृपनिधान
श्रीरामजी माँझ करता चाहते हैं ॥ ४ ॥

कहुँ तेहि ते गुनि मैं बहि राका । सुखदय कम कभी है राका ॥

प्रभु मग्न मग्न मग्न मग्न । जहि न मोह कम कत राका ॥ ५ ॥

चिर कुछ इस कारण भी मैंने उसको अपने पास नहीं रक्ता कि पत्नी पत्नीकी ही
बोली समझते हैं । हे मग्न ! प्रभुने कहा [नहीं ही] बलवती है, देश जैन राजी
है, जिसे वह न मोह ले ॥ ५ ॥

चौ०—व्याप्री अगत सिरोमणि विमुक्कपति कर धार ।

राहि मोह माया भर, पावैर करहि गुमान ॥ ६२(क) ॥

सो जानिबोने और मूर्खोंमें सिरोमणि हैं परं विमुक्कपति यथार्थके चाहन है,
उन वस्तुको भी भजने मोह निव । फिर भी नीच शुकुच मूर्खोंका पद
किया करते हैं ॥ ६२ (क) ॥

वासपाराधन, अहंदिगो विप्रम

चिर चिरि कहुँ मोह को है लुप्य जाव ।

अस बिमं जनि मज्झि मुनि माया पति भगवान ॥ ६२(ख) ॥

वह तथा जब शिकी और ज्ञानीको भी मोह लेती है, तब दूरा वेया
क्या चीज है ? सोने दोष जानकर ही कुल्लोष उस मानके समीप पकड़कर पकड़
करते हैं ॥ ६२ (ख) ॥

चौ०—गयस यख जई बखस सुसुखे । नहि अकुं हरि जगति लखे ॥
 देखि सैठ प्रसन्न भव यख । माया मोह सोच सग यख ॥ १ ॥
 गदगदी यहाँ गये जहाँ निर्वाण बुद्धि और पूर्ण भक्तिवाले काकशुषिद रहते
 थे । उस परांतकी देखकर उनका मन प्रसन्न हो गया और [उनके दर्शनसे ही] उन
 माया, मोह तथा सोच जाता रहा ॥ १ ॥

करि सदाय प्रसन्न जन्मनाथ । जट तर गयस हृदय हरपाय ॥
 बुद्ध बुद्ध किंय तई आप । सुखै राम के चरित सुहाय ॥ २ ॥
 हासनाये स्नान और चम्पान फेरके ये प्रसन्नचित्तसे कटवृक्षके नीचे गये । वहाँ
 श्रीरामजीके सुन्दर चरित्र सुननेके लिये बूढ़े-बूढ़े पंथी आने हुए थे ॥ २ ॥
 क्या करेन करै सोइ चाह । तेही समय गयस खगनाथ ॥
 आगत देखि सख्य लगतथा । हरबैठ बांसल सहित समाजा ॥ ३ ॥
 सुशुषिनी क्या आरम्भ करना ही चाहते थे कि उठी समय पतिराज गवड़नी
 यहाँ आ पहुँचे । पक्षियोंके राव गवड़नीको आते देखकर काकशुषिदभीरहित सारा
 पक्षिमाला हँसित हुआ ॥ ३ ॥

भति काकर अयसि कर कौन्दा । खगाव पृथि सुखसन दीन्दा ॥
 करि पूछ समेत अनुत्था । भयन बचन सब बोलेन काय ॥ ४ ॥
 उन्होंने पतिराज गवड़नीका बहुत ही आदर-सत्कार किया और स्वागत (कुशल)
 पूछकर बैठनेके लिये सुन्दर आसन दिया । फिर प्रेमसहित पूजा करके काकशुषिदी
 सधुर बचन बोले—॥ ४ ॥

दो०—नाथ कुतारथ भयई मैं सब द्रष्टव्य खगनाथ ।
 भावसु वेहुं सो करौं अथ प्रभु आयहु कोहि काज ॥ ६३(क) ॥
 हे नाथ ! हे पतिराज ! आपके दर्शनसे मैं कृतार्थ हो गया । अब जो, भाव है
 मैं अब की करौं । हे प्रभो ! आप भिन्न कार्यके लिये आये हैं ? ॥ ६३ (क) ॥
 सदा कुतारथ कप तुम्ह, फल सुख बचन खोस ।
 बेदि कै अस्तुति सादर निज मुख कीन्दि महेस ॥ ६३(ख) ॥
 पतिराज गवड़नीने कैमल बचन कहे—आप तो सदा ही कृतार्थरूप हैं, जिनको
 कबार्हें सदा महादेवजीने आदरपूर्वक अपने भीखसे की है ॥ ६३ (ख) ॥

चौ०—सुनहु तात बेदि करिग अयई । सो सब भवत दस्य सब पायई ॥
 देखि परम पवन सब जायस । अयस बेदि संसय पाया जम ॥ १ ॥
 हे तात ! सुनिये, मैं जिस कारणसे आया था, वह सब कार्य तो यहाँ आते ही
 पूरा हो गया । फिर आपके दर्शन भी प्राप्त हो गये । आपका परम पवित्र आसन देखकर
 ही मेरा मोह, अन्धेरा और अनेक प्रकारके भ्रम सब जाते रहे ॥ १ ॥

जब अश्वत्थ कथा अति नाचति । सदा सुखद बुल पुंज नस्तानि ॥
 सादर सात सुखहु ओहो । कर बार बिकरई प्रभु दोही ॥ २ ॥
 अब हे तात ! आप सुने श्रीरामजीकी अत्यन्त पवित्र करनेवाली, सदा सुख
 देनेवाली और दुःखसंग्रहक गथा करनेवाली कथा आदरसहित सुना देने । हे प्रभो !
 मैं बार-बार आपसे यही निन्ती करता हूँ ॥ २ ॥

सुनत कण्ठ कै मिरा निनीता । सख सुख सुखद सुपुनीता ॥
 भयस लख भव परम उज्जहा । अयस बेदि खगति सुव गाहा ॥ ३ ॥

गरुडबीजी विनाश, सरल, सुन्दर प्रेम्बुद्ध, सुखाद और अत्यन्त पवित्र कणी
सुनते ही मुमुक्षुबीजीके मनमें परम उत्साह हुआ और वे श्रीरघुनाथजीके गुणोंकी कथा
कहने लगे ॥ ३ ॥

प्रथमहिं कति अनुसूय सन्तानी । समन्वित सर कहेसि ब्रह्मानी ॥

पुनि बारद कर मोह बपास । कहेसि कुरि रघन भवतार ॥ ४ ॥

हे भवन्ती । पहले तो उन्होंने कहे ही प्रेम्बुदे रामचरितमन्त्रस सरोवरका रूप
समझाकर कहा । फिर नाथजीका भयान मोह और फिर रघुनाथ भवतार कहा ॥ ४ ॥

प्रभु अवतार कथा पुनि कहै । तब सिन्धु शरित कहेसि मन छाई ॥ ५ ॥

फिर प्रभुके अवतारकी कथा वर्णन की । तदनन्तर मन लगाकर श्रीरामजीकी
बाल्यजीकाई कही ॥ ५ ॥

दो०—शालचरित कहि विविध विधि मन भई परम उल्लाह ।

रिषि व्यासजन कहेसि पुनि श्रीरघुवीर विवाह ॥ ६ ॥

मनमें परम उत्साह भरकर व्येकमें प्रकारकी बाल्यजीकाई कहकर, फिर ऋषि
विश्वामित्रजीका अयोध्या आना और श्रीरघुवीरजीका विवाह वर्णन किया ॥ ६ ॥

चौ०—बहुरि राम अभिषेक प्रसंग । पुनि मूष बचन राज रस भंगा ॥

पुरवासिन्ह कर चित्त विह्वल । कहेसि राम छत्रिजन संभावा ॥ ७ ॥

फिर श्रीरामजीके राज्याभिषेकका प्रसंग, फिर राजा दशरथजीके वचनसे रामरत्न
(राज्याभिषेकके आग्रह) में प्रसन्न पड़ना, फिर नगरनिवासियोंका विजय विवाह और
श्रीराम-छत्रगणका संभावा (बातचीत) कहा ॥ ७ ॥

विविध राजस केवट अनुसूय । सुसरि कबि निपास प्रकथा ॥

बाकमीक प्रभु मित्रन बसावा । चिन्तित विधि बसे भरावा ॥ ८ ॥

श्रीरामका बनारस, केवटका प्रेम, गङ्गाजीसे पार उतरकर प्रवासमें निवास, बाकमीकी
और प्रभु श्रीरामजीका मिलन और जैसे मगधकर चित्रकूटमें बसे, वह सब कहा ॥ ८ ॥

सचिदाश्वर्य नगर रूप मरवा । भक्तगणन प्रेम बहु बरवा ॥

करि रूप क्रिया संभ सुखासी । भरत गए कहै प्रभु सुख ससी ॥ ९ ॥

फिर मन्त्री सुमन्त्रजीका नगरमें छौटना, राजा दशरथजीका मरण, भरतजीका
[ननिहालसे] अयोध्यामें आना और उनके प्रेमका बहुत वर्णन किया । राजाजी अन्येष्ट
क्रिया करके नगरनिवासियोंको साथ लेकर मरती वहाँ गये और सुखकी राशि प्रभु
श्रीरामचन्द्रजी से ॥ ९ ॥

पुनि रघुपति बहु विधि समुद्राह । कै बाहुका अवधपुर आए ॥

भरत रहनि सुरपति सुत कन्ये । प्रभु बस अति सेंट पुनि वरने ॥ १० ॥

फिर श्रीरघुनाथजीने उनसे बहुत प्रकारसे छायावा, किसी से खदाई केकर
अयोध्यापुरी छौट आये, वह सब कहा कही । भरतजीकी ननिहालसे रहनेकी रीति,
इन्द्रपुत्र अचन्तकी नीच कर्जी और फिर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी और अश्विजीका मित्रप
वर्णन किया ॥ १० ॥

दो०—कहि विवाह वध जेहि विधि देह तजी सरभंग ।

बरनि सुतीछन प्रीति पुनि प्रभु बगति सतसंग ॥ ११ ॥

जिह प्रकार विवाहका वध हुआ और सरभंगीने करीबनाम किया, वह प्रसन्न कहकर,
फिर सुतीछनकी प्रेम वर्णन करके प्रभु और अश्विजीका सतसंग वृत्तान्त कहा ॥ ११ ॥

चौ०—कहि दंडक मन पामनसई । यीध मइत्री पुनि तेहि गाई ॥

पुनि प्रभु पंचवर्षी कृत चाछ । मंजी सकल मुनिन्द की त्रासा ॥ १ ॥

दण्डकवनका पवित्र करना कहकर फिर मुमुक्षुजीने शत्रुपक्षके साथ मित्रताका वर्णन किया । फिर जिस प्रकार प्रभुने पञ्चवटीमें निवास किया और सब भूमियोंके भयका नाश किया, ॥ १ ॥

पुनि लछिमन उपदेस अनूपा । सूपनस्य जिमि कीन्दि कुलपा ॥

छर दूषन बध बहुरि बलाका । जिमि सब मरमु दुखानन जाना ॥ २ ॥

और फिर जैसे लक्ष्मणजीको अनुपम उपदेश दिया और दुर्गन्धका कुत्स किया, वह सब वर्णन किया । फिर सरदुख-बध और जिस प्रकार रावणसे सब समाचार जाना, वह बखानकर कहा, ॥ २ ॥

दसकंधर मारीच कतकही । नेहि विधि नई सो सच तेहि कही ॥

पुनि माया सीता पर हरवा । श्रीसुखीर विरह कहु परमा ॥ ३ ॥

तथा जिस प्रकार राक्षस और मारीचकी बातचीत हुई, वह सब उन्होंने कही । फिर मायासीताका हरण और श्रीसुखीरके विरहका कुछ वर्णन किया ॥ ३ ॥

पुनि प्रभु गीष किया जिमि कीन्दी । यधि कबंध सबरिहि नति दीन्दी ॥

बहुरि विरह बरनत रघुबीरा । नेहि विधि गए सखेकर सीरा ॥ ४ ॥

फिर प्रभुने गीह जटापुत्री जिस प्रकार किया की, कबंधका बध करके शक्तीको परमपति दी और फिर जिस प्रकार विरह-वर्णन करते हुए श्रीसुखीरजी पंचासरके वीरपर गये, वह सब कहा ॥ ४ ॥

दो०—प्रभु नरपद संवाध कहि मारुति मिश्रन प्रसंग ।

पुनि सुग्रीव मिताई बालि प्राण कर मंग ॥ ६६ (क) ॥

प्रभु और नारदजीका संवाद और याचकके मिश्रनेत्र प्रसङ्ग कहकर फिर सुग्रीवसे मित्रता और बालिके प्राणनाशका वर्णन किया ॥ ६६ (क) ॥

कपिहि तिलक करि प्रभु कृत सैल प्रवरपन वास ।

बरनन वर्षा सरद अरु राम रोप कपि प्राप्त ॥ ६६ (ख) ॥

सुग्रीवका दण्डिलक करके प्रभुने प्रवर्णन परतपर निवास किया, वह तथा वर्षा और शरदुका वर्णन, श्रीरामजीका सुग्रीवपर रोप और सुग्रीवका भय आदि प्रसङ्ग कहे ॥ ६६ (ख) ॥

चौ०—नेहि विधि कपिपति कौस पखाए । सीता सोन सकल दिसि घाए ॥

शिवर प्रवेश कीन्ह नेहि गौती । कपिन्ह बहोरि मित्र संपाती ॥ १ ॥

जिस प्रकार वानरराज सुग्रीवको वानरोंको सेवा और वे सीताजीको खोजमें जिस प्रकार सब दिशामें गये, जिस प्रकार उन्होंने विलमें प्रवेश किया और फिर जैसे वानरोंको सम्पाती मिला, वह सब कही ॥ १ ॥

पुनि सब कथा समीकुमार । वासत भवत पयोधि नपाए ॥

छंकी कपि प्रवेश जिमि कीन्दा । पुर्वि सीताहि चरखु जिमि दीन्दा ॥ २ ॥

संपातीसे सब कथा सुनकर फनपुत्र हनुमान्जी जिस तरह अपार समुद्रको लौंच गये, फिर हनुमान्जीने जैसे छंकामें प्रवेश किया और फिर जैसे सीताजीको वीर्य दिया, सो सब कहा ॥ २ ॥

वन डकारि उवनाहि प्रयोधी । गुर रहि बाधेन बहुरि पयोधी ॥

आए कपि सब जई रघुपई । नेदेही की कुम्ह सुनई ॥ ३ ॥

अशोकवनको उजाड़कर, रावणको समझाकर, अंगपुरीको जलाकर फिर जैसे उन्होंने समुद्रको खोपा और जिस प्रकार सब धान वहाँ आये वहाँ श्रीरघुनाथजी ये और आकर भीमानक्रीडकी कुशल सुनायी, ॥ १ ॥

सेन समेति जथा रघुवीर । उतरे बह्म बरिनिधि तीर ॥

मिसा विभीषण जेहि विधि जाई । सत्तर निहाइ कथा सुनाई ॥ ४ ॥

फिर जिस प्रकार सेनासहित श्रीरघुवीर जाकर समुद्रके उत्तर उतरे और जिस प्रकार विभीषणजी आकर उनसे मिले, वह सब और समुद्रके बंधनेकी कथा उसने सुनायी ॥ ४ ॥

दो—सेतु बाँधि छपि सेन जिमि उतरी क्षायर पार ।

गयउ वसोटी घोरवर जेहि विधि बलिकुमार ॥ ६७ (क) ॥

पुरु बाँधकर जिस प्रकार बानरोंकी सेना समुद्रके पार उठरी और जिस प्रकार वीरभे ॥ बालिपुत्र अंगद दूत बनकर बने; वह सब कहा ॥ ६७ (क) ॥

मिसिचर कीस सराई बरनिधि विविधि प्रकार ।

कुंभकरन घवनाइ कर दल पौवन संवार ॥ ६७ (ख) ॥

फिर राज्यों और बानरोंके बुद्धल अनेकों प्रकारसे वर्णन किया । फिर कुम्भकर्ण और मेघनादके दल, पुरुषार्थ और संहारकी कथा कही ॥ ६७ (ख) ॥

चौ०—मिसिचर किंद मरन विधि पाव । रघुपति राजन सत्तर बलाका ॥

राजन गय संदोषि स्नेह । राज विभीषण देख असोका ॥ १ ॥

नाना प्रकारके राजसमूहोंके मरण और श्रीरघुनाथजी और रावणके अनेक प्रकारके बुद्धका वर्णन किया । रावणपक्ष, मंदोदरीका शोक, विभीषणका राज्याभिषेक और मेघनाथका शोकसहित होना कहा ॥ १ ॥

सीता रघुपति मिलन बहोरी । सुरग कीर्ति जसुधि कर बोरी ॥

पुनि पुष्पक बहि कमिन्द समेत । सब कह्ये प्रभु कृपा निकेत ॥ २ ॥

फिर सीताजी और श्रीरघुनाथजीका मिलन कहा । जिस प्रकार देवताओंमें हृष्य नोदकर स्तुति की और फिर जैसे शान्तसेन पुष्पक विमानपर चढ़कर कृपाधाम मनु भवपुरीको बड़े, वह कहा ॥ २ ॥

जेहि विधि राम कान किन भव । ककल विसद पति सब वाप ॥

कहेसि बहोरी राम जसिपेक । दुर बरवत सुपरीति अनेका ॥ ६ ॥

जिस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी अपने नगर (अयोध्या) में आये; वे सब दुःखाल चरित्र काकमुग्धजीने निरासपूर्वक वर्णन किये । फिर उन्होंने श्रीरामजीका राज्याभिषेक कहा । [शिवजी कहते हैं—] अयोध्यापुरीका और अनेक प्रकारकी राजनीतिका वर्णन करते हुए—॥ ३ ॥

कथा समस्त सुसुंद बलाबी । जो हैं सुन्द सब रही बजानी ॥

सुनि सब राम कथा समजहा । कहत बचन सब बरस उजहा ॥ ४ ॥

सुश्रुतिजीने वह सब कथा समझ ली जो हे भवानी । मैंने तुमसे कही । सारी रामकथा सुनकर पक्षिपुत्र गणेशजी नमो बहुत उत्साहित (आनन्दित) होकर वचन कहने लगे—॥ ४ ॥

तो०—गयउ मोर खेद सुनेई सकल रघुपति चरित ।

भयउ राम पद नेह सब प्रसाद वापस तिछक ॥ ६८ (क) ॥

श्रीरघुनाथजीके सब चरित्र मैंने सुने, जिससे मेरा कन्धेह जाता रहा । हे काक-क्षिपेमणि ! आपके अनुग्रहसे श्रीरामजीके चरित्रोंमें मेरा प्रेम हो गया ॥ ६८ (क) ॥

मोहि प्रयत्न अति मोह प्रभु बंधन ज्ञान महुँ निरखि ।

चिदानंद संदोह राम विकल करन कवन ॥ ६८ (ख) ॥

पुनर्म प्रभुका नामगाथसे मनन देखकर मुझे अत्यन्त मोह हो गया था कि श्रीरामजी तो सचिरानन्दधन हैं, वे किस कारण व्याकुल हैं ॥ ६८ (ख) ॥

चौ०—दोष चरित अति कर अनुसारी । मग्न हृदय मम संसय भारी ॥

सोइ मम बंधन हित करि मैं माया । कोन्ह अमुझ हृदयनिधाना ॥ १ ॥

बिल्कुल ही लौकिक मनुष्योंका-सा चरित्र देखकर मेरे हृदयमें भारी सन्देह हो गया । मैं भय उठ भ्रम (सन्देह) को अपने लिये दित करके समझता हूँ । कृपानिधानने मुझ-पर यह दण्ड अनुग्रह किया ॥ १ ॥

जो अति बाल्य व्याकुल होई । तब कथा सुन जावह सोई ॥

जौ नहि होत मोह अति मोही । मिलैतैं तब कवन बिधि होही ॥ २ ॥

जो धूपसे अत्यन्त व्याकुल होता है, वही पृथ्वी अथाका मुक्त जानता है । हे तात ! यदि मुझे अत्यन्त मोह न होता तो मैं आपसे किस प्रकार मिलता ॥ २ ॥

मुनतेई किमि इति कथा सुहर्ष । अतिविधि बहुविधि दुग्ध पाई ॥

मिलतागम पुताम मल पडा । कहहि सिद्ध मुनि नहि संदेहा ॥ ३ ॥

और कैसे अत्यन्त विधि-बहुत दुग्ध हरिकथ सुनता; जो आपने बहुत प्रकारसे गयी है । वेद, शास्त्र और पुराणोंका यही मत है; सिद्ध और मुनि भी यही कहते हैं, इसमें सन्देह नहीं कि—॥ ३ ॥

संत विमुक्त मिलहि परि तेही । चितथहि तम कृपा करि नेही ॥

राम कृपी तब बलवान अथक । तब प्रसन्न सब संसय राख ॥ ४ ॥

शुद्ध (सन्धे) संत ठीकी मिलते हैं जिसे श्रीरामजी कृपा करके देखते हैं । श्रीरामजीकी कृपासे मुझे आपके दर्शन हुए और आपकी कृपासे मेरा सन्देह गल गया ॥ ४ ॥

दो०—सुनि बिहंगपति बानी सहित बिसय, अनुसारा ।

पुसक गीत कोचन सखल मन हरयेत अति काय ॥ ६९ (क) ॥

परिवारा गवक्षीकी निनम और प्रेमयुक्त बाणी सुनकर अकमनुष्यजीका धीर पुनर्कित हो गया; उनके नेत्रोंमें जल भर अथा और वे मनमें अत्यन्त हर्षित हुए ॥ ६९ (क) ॥

भोता सुमति सुसील सुखि कथ रहिक हरि दास ।

पाइ उमा अति गोप्यमपि सखल करहि प्रकास ॥ ६९ (ख) ॥

हे उमा ! सुन्दर बुद्धिवाले, सुशील, पवित्र कथाके प्रेमी और हरिके सेवक भोताको पाकर सबन अत्यन्त गोपनीय (उनके सामने प्रकट न करने योग्य) रहस्यको भी प्रकट कर देते हैं ॥ ६९ (ख) ॥

चौ०—बोलेउ काकमधुंन जोरी । नमन नाम कर मोति न बोरी ॥

सब बिधि कथ पूज्य दुग्ध मेरे । कृपापात्र खुनाथक केरे ॥ १ ॥

काकमधुपिङ्गलीने फिर कहा—परिवारजन उनका प्रेम कम न था (अर्थात् बहुत था)—हे नाथ ! आप सब प्रकारसे मेरे पूज्य हैं और श्रीसुनाथजीके कृपापात्र हैं ॥ १ ॥

दुग्धहि न संसय मोह न माया । सो भर नाथ कीन्हि दुग्ध दाया ॥

पकड़ मोह मिस सम्पति बोही । खुबति दीन्हि बगई मोही ॥ २ ॥

आपको न रुन्देह है और न मोह अन्धा था ही है । हे नाथ ! आपने तो मुझपर दया की है । हे परमेश्वर ! मोहके बहाने ग्रीष्मनाथजीने आपको वहाँ भेजकर मुझे बसाई दी है ॥ २ ॥

मुग्ध विजय मोह झड़ी सब छाई । सो यदि कबु आपत्त होसाई ॥

नारद भव विरोधि सबकाही । ने मुनिवाक्य आत्मसाही ॥ १ ॥

हे पक्षियोंके स्वामी ! आपने अपना मोह झड़ सो हे मोसाई । यह कुछ आश्चर्य नहीं है । नारदजी, शिवजी, ब्रह्माजी और सनकादि जो आत्मतत्त्वके मार्ग और उसका उपदेश करनेवाले श्रेष्ठ मुनि हैं ॥ २ ॥

मोह न शेष जेन्दा केहि केही । जो जग काम लपट न जेही ॥

तुझों केहि न कौन्द, कौन्दा । कौन कर इन्द्रजिह्व यदि दाहा ॥ ३ ॥

उनमेंसे भी किसी-किसीने मोहने अथा (विवेकहृत्) नहीं किया ! जगत्में ऐसा कौन है जिसे कामने न नचाया हो ? तुम्हारे किसी मतकाम नहीं बनाना ! जो अपने किसीका इन्द्र नहीं कलहा ? ॥ ४ ॥

दो—श्यामी लपट सूर कवि केहिदु गुन आभार ।

केहि कै सोम विहंगमा कीन्दि न यदि संसार ॥ ७० (क) ॥

इस सवारमें ऐसा कौन जनी, तत्त्वके धारण, कवि, विद्याधर और गुणोंका भण्ड है, जिसकी जंमने विहंगमा (गिरी लीर) न की हो ॥ ७० (क) ॥

श्री भद्र वरु व कीन्द केहि प्रभुता वधिर न पतिह ।

सुगणोच्चरि के जैन सर को अस्त लपट न लादि ॥ ७० (ख) ॥

लक्ष्मीके नरने किसीने टेढ़ा और प्रभुताने किसीने बरा नहीं कर दिया । ऐसा कौन है, जिसे सुगुणपत्नी (युक्ती स्त्री) के नेत्र-नाथ न लगे हैं ॥ ७० (ख) ॥

चौ—गुन हस्त सन्कषत कहि केही । कोठ न मार मर लगेन निवेही ॥

जोकर ज्वर केहि कहि-सकलता । समता केहि कर वस न मलाच ॥ १ ॥

[रत, तम लादि] गुणोंका जिना हुआ अधिपात किते नहीं हुआ । ऐसा कोई नहीं है जिसे मान और मरने अमृता छोड़ा हो । जोकरने ज्वरने किते आपसे बाहर नहीं किया । समताने किते मरुका नाम नहीं किया ॥ २ ॥

सम्भर कहि कलंक न लम्बा । कादि न लोक समीर होकला ॥

विता लोभनि को कहि लपट । को उप जादि न लपटी माया ॥ २ ॥

मत्सर (राह) ने किसीने कलंक नहीं लगाया । लोकस्त्री पलने किते नहीं रीझ दिया ? विन्दाकरी जंमने किते नहीं खा किया ! जगत्में ऐसा कौन है, जिसे माया न लपटी हो ? ॥ २ ॥

कीट मनोरथ हस्त खरीता । केहि न कलम गुन को अस्त खीर ॥

सुख जित लोक प्रेम्मा खीनी । केहि कैमलि हन्त हत न महीनी ॥ २ ॥

मनोरथ कीड़ा है, शरीर लच्छरी है । ऐसा प्रेम्मान् कौन है, जितके शरीरमें बर कीड़ा न लगा हो । प्रपत्नी, पत्नी और लोकप्रसिद्धी—इन तीन प्रबन्ध दुष्टामोंने किसीकी बुद्धिको मलिन नहीं कर दिया (निमग्न नहीं दिया) ॥ ३ ॥

यह सब माया कर लसित । प्रपत्त लसिति को चरने पसत ॥

सिद्ध पतुगनव कहि केही । अपर कीच केहि केही माहीं ॥ ४ ॥

यह सब मायाका बड़ा कलकान् परिवार है। यह कलक है, दुष्टता वर्णन कौन कर सकता है। दिक्पती और ब्रह्मानी भी मिलते बरते हैं, सब दूखे नीमको निम मिनीमें हैं ॥ ४ ॥

दो०—ज्यापि रहैद संसार भहुँ माया कटक प्रचंड।

सेनापति कामादि मट हंस कपट पापंड ॥ ७१ (क) ॥

मायाकी प्रचण्ड सेना संसारमें कभी हुई है। कामादि (काम, श्रेय और लोभ) उसके सेनापति हैं और दम्भ, कपट और पातञ्ज योग्य हैं ॥ ७१ (क) ॥

सो दासी रघुवीर के समुझें मिथ्या सोपि।

छूट न राम कृष्ण विनु नाथ कहवैं पद रोपि ॥ ७१ (ख) ॥

यह माया श्रीरघुवीरकी दासी है। नचपि कलक सेनेर यह मिथ्या ही है, किन्तु वह श्रीरामजीकी कृपाके बिना छूटी नहीं। दे नाथ। वह मैं प्रतिष्ठा करके करता हूँ ॥ ७१ (ख) ॥

चौ०—ओ माया सब सगहि बचना। समु जलित कलि कहूँ न पावा ॥

सोह प्रभु नू रिखल कामादा। राव नदी हू सहित समादा ॥ १ ॥

ओ माया सारे कामको नचाती है और निष्का चरित्र (कली) किसीने नहीं लह पाया, हे उग्रराज गन्धर्वों। यही माया प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी भुक्तकी इशारेपर अपने समस्त (परिवार) सहित नदीकी तरह नाचती है ॥ १ ॥

सोह सखिदाचंद बर राम। किन्दाव हन कल बासा ॥

अपण्ड अपण्ड भण्ड भण्ड। अकिण्ड अमोघसक्ति अमर्षता ॥ २ ॥

श्रीरामजी वही सखिदानन्दजन हैं जो अनन्ध, निष्कलस्वरूप, कम और बलके साथ सर्वव्यापक एवं व्याप्य (सर्वस्व), अलण्ड, अनन्त, सम्पूर्ण, अमोघसक्ति (निर्विकार) कभी व्यर्थ नहीं होती) और सः ऐश्वर्यके मुक्त भगवान् हैं ॥ २ ॥

अमुग अमुग मित्र गौरीदा। सखदरसी अमर्षता बारीदा ॥

किरीस निरकार निरमोह। निरय विरचन मुक्त संरोदा ॥ ३ ॥

वै निरुण (मानके गुणोंसे रहित), सदान्, चापी और इन्द्रियोंसे परे, सब कुछ ऐश्वर्यवादी, निर्दोष, अजेय, समस्तहित, निरकार (मायिक आकारसे रहित), मोहरहित, निरभ, मोघारहित, मुक्तकी शक्ति, ॥ ३ ॥

अहुरि पर प्रभु सब कर बारी। नहा विहीर निरद अविनासी ॥

इहाँ मोह कर कलस बाहीं। रवि समुद्र सम कबहुँकि बाहीं ॥ ४ ॥

प्रकृतिसे परे, प्रभु (सर्वकर्ता), सदा सबके हृदयमें बसनेवाले, इच्छारहित, विकाररहित, अविनाशी बल हैं। यहाँ (श्रीराममें) मोहका कारण ही नहीं है। क्या अमरकारका समूह कभी सूर्यके सामने आ सकता है ॥ ४ ॥

दो०—ममत्त डेतु भगवान प्रभु राम छेद तुम भूप।

दिय चरित पावन परम श्रुत कर अनुरूप ॥ ७२ (क) ॥

भगवान् प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने मर्कटके द्विजे राजाका शरीर धारण किया और लक्षण मनुष्योंके-से उनके परम पावन चरित्र किये ॥ ७२ (क) ॥

सग्य अनेक जेध चरि नृत्य कर नट कोह।

सोह सोह भाव देखावद अमुग होह न सोह ॥ ७२ (ख) ॥

सौते कोह नट (लेख करनेवाला) कोह वेध धारण करके नृत्य करता है, और

चरि-चरि (जैसा वेप होता है, उसीके अनुसार) यम विचारा है, वह सब वह
उनमेंसे कोई तो नहीं जाता, ॥ ७२ (ख) ॥

चौ०—असि रघुपति सीता बसकी। सुख विमोहनि जन मुक्तकारी ॥

ये यदि मर्त्य विपत्तय कभी। प्रभु पर मोह कहीं भूमि जाती ॥ १ ॥

हे शम्भुजी ! ऐसी ही श्रीकृष्णजीकी वह सीमा है, जो जहाँसे विपत्ति मोक्षित
करनेवाली और मर्त्यो को मुक्त देनेवाली है। हे सावरी ! जो मनुष्य मोहबुद्धि, विपत्तियों
बन्ध और बाधों के वे ही प्रभुपर हृत् प्रभर मोहक भावों कटो है ॥ १ ॥

नवन दोर जा कई कर होई। सीत बस सति कहुँ कर लई ॥

सब बेहि दिशि भ्रम होइ लीला। सो सब बलिम उपर दिनेछ ॥ २ ॥

जब निजो [कहेत अदि] नेपथेय होय है, तब वह चन्द्रमसे सीते रंजना
करता है। हे चन्द्रमस ! जब निजो विराजय होय है तब वह अन्ध है कि नहीं
परिमये उदय हुआ है ॥ २ ॥

सीतारूप भक्त सब देवा। सब होइ सब आदि केवा ॥

बाहक जगदि न कहीं गुरारी। कहीं पसर विष्णुकारी ॥ ३ ॥

नौछपर 'का' हुआ मनुष्य जगत्को चला हुआ देवता है और मोक्ष
कारको सबका समस्त है। बाहक रूपों (पराकार लीला) हैं, पर यदि नहीं
मुक्तों। पर वे जगत्को एक रूपोंके द्वारा करते हैं ॥ ३ ॥

हरि विपद्क जब मोह निर्वास। उपेक्षे बहि मन्थन प्रसन्न ॥

सावकस सतिजो मन्थरी। इदं मन्थन मुनिवि हावे ॥ ४ ॥

हे परब्रह्म ! जीविके विपत्तियों मोक्षी बनना जो ऐसी ही है, जगत्को जो
समस्त भी अवलम्ब प्रसन्न (मन्थर) नहीं है। किन्तु जो सत्ताके वह मन्थन
और भावपूर्ण है और निजके इदमर करनेमें सफल करे को है ॥ ४ ॥

वे सब हट सब संन्यस्त करी। निज मन्थन रूप पर वारी ॥ ५ ॥

वे मूर्त हटके सब छोड़ करे करते हैं और भ्रमं बन्धन मोहमयी
कारोति करते हैं ॥ ५ ॥

दो०—काम क्रोध मद लोभ का गुह्यसक दुश्कर।

ते विपत्ति जगदि रघुपतिदि सुहृद परे सब रूप ॥ ७१ (क) ॥

जो काम, क्रोध, मद और लोभों सब हैं और दुश्कर सबों जगत् है, वे
श्रीकृष्णजीको कैसे जान सकते हैं ! वे मूर्तों के अवलम्बनीय नहीं हैं ॥ ७१ (क) ॥

निर्मुक्त रूप मुक्त्य अति परब्रह्म जगत् बहि छोड़।

सुखम काम मान्य वरित मुनि मुनि सब भ्रम होइ ॥ ७२ (ख) ॥

निर्गुण रूप जगत् गुण्य (जब ही जगत्में या जगत्को) है, परब्रह्म
[शुभातीत दिव्य] गुण सबको छोड़ नहीं बनता। इसीसे जो रघुपति मातादेको
कनेक प्रकारके सुख और काम लीलाको सुनकर मुनिमें भी मन्थने प्रसन्न हो
जाता है ॥ ७२ (ख) ॥

चौ०—सुख जगत् रघुपति प्रसन्न। कहीं जगत्को सब सुख ॥

येहि विपत्ति मोह बन्ध प्रभु मोही। सो सब सब सुखमें लीदी ॥ १ ॥

हे श्रीकृष्णजी ! श्रीकृष्णजीकी प्रसन्न मुनि। मैं अभी मुनिके अनुसार

बहु सुहावनी क्या कहता हूँ ! हे प्रभो ! तुझे जिस प्रकार मोह हुआ वह तब क्या भी
बापको सुनाता हूँ ॥ २ ॥

राम कृप्य ज्ञान्य तुम्ह छाता । हरि गुन प्रीति मोहि सुलभाता ॥

तबसे यदि कुछ तुम्हें दुःख है । पश्य रहस्य मनोहर आवै ॥ २ ॥

हे तार ! आप श्रीरामजीके कृपापात्र हैं । श्रीहरिके गुणोंमें आपकी प्रीति है,
इसीलिये आप मुझे दुःख देनेवाले हैं । क्योंकि मैं आपसे कुछ भी नहीं छिपाता और
अतन्त्र रहस्यकी बातें आपको गारु सुखाता हूँ ॥ २ ॥

सुबहु राम कर सख्य सुमहद । सब अभिमान न राखी काह ॥

संशय हूँ सुखद पाव । सकल लोक दास्य अभिमाना ॥ ३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका लक्ष स्वभाव तुमिसे । ये भक्तों अभिमान कभी नहीं रहने
देते । क्योंकि अभिमान कर्म-परमार्थ, संसारका मूल है और अनेक प्रकारके द्वेषों
संघा संन्यास दोषोंका देनेवाला है ॥ ३ ॥

तबसे कहीं कृपाविधि पूरी । केवल पर भगता यदि भूरी ॥

जिमि सिद्ध सब मन होइ गोसाईं । मनु चिराय करिष्ये की जाई ॥ ४ ॥

इसीलिये कृपाविधि उसे दूर कर देते हैं ; क्योंकि केवलपर उनकी बहुत ही अधिक
भक्तता है । हे गोसाईं ! जैसे बन्नेके धीरेसे कोड़ा हो जाता है ; वो साथ उसे फोड़
इंसकी भीति बिना दायी है ॥ ४ ॥

हो—अबपि प्रथम कुछ पाव रोख बाल मचीर ।

ध्यायि कस हित अपनी गनति न सो सिद्ध पीर ॥ ७४ (क) ॥

यद्यपि बन्ने (कोठा चिरते समय) दुःख पाया है और मचीर होकर
गिरा है ; तो भी रोकके बाँधके लिये मत्त बन्नेकी उस पीड़ाको कुछ भी नहीं गिनती
(उसकी परवा नहीं करता और फोड़ेको चिरता ही दायी है) ॥ ७४ (क) ॥

जिमि रघुपति निज दास कर हरदि मन हित लागि ।

तुलसिदास ऐसे प्रभुदि कस न मनाइ भ्रम त्यागि ॥ ७४ (ख) ॥

उसी प्रकार श्रीरघुनाथजी अपने दासका अभिमान उसके हितके लिये हर क्षेत्र हैं ।
तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसे प्रभुको भ्रम त्याग कर क्यों नहीं मंजते ॥ ७४ (ख) ॥

हो—राम कृप्य ज्ञान्य वरदाई । कहैं जगैस भुवहु मन कोई ॥

सब सब राम भक्तु लहु चरहीं । सब हेतु कीज बहु जरहीं ॥ १ ॥

हैं पक्षिपान गच्छन्ती । श्रीरामजीकी कृपा और अपनी जड़ता (मूर्खता) को बात
कहता हूँ ; मन लगाकर तुमिसे । जन्म-मरण मोक्षमार्गकी अनुसंधानकर कारण करते हैं
और मर्त्योके लिये बहुत-सी कीमतेँ करते हैं ॥ १ ॥

राम सब जगैसुती मैं जानैं । सबधरित निकोकि हत्याजैं ॥

जन्म मर्त्यस्य देखैं जाई । सब पाँच कई रहैं कोसाई ॥ २ ॥

वध-वध मैं जगैसुपातुरी जानैं हूँ और उसकी वाञ्छनीय देखकर दलित होता हूँ ।
मैं जो जन्म मैं जन्ममर्त्यस्य देखता हूँ और [मगानांश्री विष्णुजीजयें] छुपाकर पाँच
वर्ष तक नहीं रहता हूँ ॥ २ ॥

इहदेव भग्न खलक जगत् । सोमा बपुष कोटि सत कामा ॥

जित प्रभु बदन निहानि निहारी । जोकन सुख करैं उत्तरी ॥ ३ ॥

नल-नल हथेलियाँ, नल और कँठुनियाँ गनकी इनेवाले हैं और विशाल मुनासोंर सुन्दर धारूपण हैं। नाखिका (खिन्हे बच्चे) केसे ऊँचे और रंगके समान (तोन देखाओले चुक) बल है। सुन्दर उठ्ठी है और मुख तो छविनी बीमा ही है ॥१॥

कलकल बचन खर बल्लभारे। दुइ दुइ वसन विषद बर बार ॥

कछिठ कपोल मनोहर नवरा। सलल मुसद सल्ले कर सम हम्प ॥ २ ॥

कलकल (लोले) बचन है, लल-लल आँठ हैं। उल्लसल सुन्दर और छोटी-छोटी [कर और नीचे] दो-दो हँसुलियाँ हैं। सुन्दर बाल मनोहर नाखिका और एक मुसदोंको देनेवाली चन्द्रमासी [अथवा मुख देनेवाली समस्त कलाओंले पूर्ण चन्द्रमासी] किरणोंले सपान घुवर मुसकल है ॥ २ ॥

बीठ बल खोजन धन खोजन। आनन बाढ तिलक मोरोपन ॥

बिहल भुङ्करी सन भवन सुहाए। कुँबिल कच लेकल कल कप ॥ ३ ॥

बीठे कलकले सपान नेन उल्ल-मल्ल [के सपान] से हुवालेवाले हैं। कलकल मोरोपनक तिलक सुहायेगित है। भौंले देवी हैं, सन सन और सुन्दर हैं, कले और हुँवरले केपोंकी छवि छा रही है ॥ ३ ॥

बीठ मोहि प्रभुकी सन सोही। किलकनि किलकनि नाचति मोही ॥

रुप रसि रूप भवित बिहारी। नाचहि बिष प्रलेखि बिहारी ॥ ४ ॥

पीली और महीन हँसुली छरीपर खोज दे रही है। उनकी किलकारी और विचपन मुझे बहुत ही पिन खसती है। राज दरपरजीके सौगममें बिहार करनेवाले समी राधि बीरामचन्द्रजी अपनी पराङ्गा देसकर नाचते हैं, ॥ ४ ॥

मोहि सन कहि बिबिधि निधि प्रीति। वरक मोहि होति बलि प्रीति ॥

किलकल मोहि वन कच बावहि। कछुँ भवित वन पूर देखावहि ॥ ५ ॥

और मुझे बहुत प्रकारके लेठ करते हैं, जिन चरिषोंक कथन करते मुझे रुचा जाती है। किलकारी मारते हुए जब ये मुझे फकने दोड़ते और मैं भग्न जल्ला, सब वस्त्रे पूजा दिसावते थे ॥ ५ ॥

रौ०—बावठ निकट हैंसहि प्रभु माजत कल कपहि।

कछुँ समीप गइन पद किरि किरि बितत पराहि ॥ ७७ (क) ॥

मेरे निकट आनेपर प्रभु हँसते हैं और माग जानेपर रोते हैं। और जब मैं उनका चरण स्पर्श करनेके लिये पाठ लगा हूँ तब वे कौंसे फिर-फिरकर मेरी ओर देखते हुए भाग जाते हैं ॥ ७७ (क) ॥

प्रभुत सिधु श्व लीख देखि भयत मोहि मोह।

कवन करिव करत प्रभु चिदाखंद संदेह ॥ ७७ (ख) ॥

साधारण कजो-जैदी लीख देखकर मुझे मोह (खुझ) हुआ कि लखिदानन्दपत प्रभु यह लौन [मल्लवध] करिव (कील) कर रहे हैं ॥ ७७ (ख) ॥

चौ०—दलल मन ललल लललल। ललुपति लेलि ललली मान ॥

सो मान न हुलद मोहि कहीं। कल बीव हल संवत भाही ॥ १ ॥

दे पक्षिपत ! अपने लुनी [यक्ष] जसे ही श्रीगुणाधरके द्वारा प्रेरित भाव मुझपर छा गयी। जल्द यह मान न जे मुझे हुलद देनेवाले हुँ और न दूसरे बीवों की मोवि संसारमें दाखनेवाली हुँ ॥ १ ॥

हे लोके शत्रु राक्षसी ! तब मैं याम चल । श्रीरामजीने कुते पकड़नेके लिये मुझा पैदायी । मैं जैसे-जैसे आकाशमें दूर उड़ता बैठे-बैठे ही वहाँ भीरुश्री मुझको अपने पास देखता था ॥ ४ ॥

दो०—ब्रह्मलोक छगि भयर्थ मैं चित्तपर्यं पाछ उड़त ।

जुग संगुल कर बीच सब राम भुजहि मोहि तात ॥ ७९ (क) ॥

मैं ब्रह्मलोकतक गया और अब उछले हुए मैंने पीछेकी ओर देख, तो हे तात ! श्रीरामजीकी भुजामें और भ्रूममें केवल दो ही अंगुलका बीच था ॥ ७९ (क) ॥

सप्तावरण सेव करि अहाँ छायं गति मोरि ।

गणर्थ तहाँ प्रभु भुज निरखि ज्यकुल भयर्थ बहोरि ॥ ७९ (ख) ॥

पाणों आकरगोखे मेदकर जहाँतक मेरी गति थी वहाँतक मैं गया । पर वहाँ भी प्रभुकी मुलाका [करने पीछे] देखकर मैं व्याकुल हो गया ॥ ७९ (ख) ॥

पौ०—मूर्ख मैं कब प्रसित सब भयर्थ । पुत्रि क्लिप्त कोसलपुर भयर्थ ॥

मोहि किछोकि राम मुकुन्दमूर्ख । भिँसत तुस्त गणर्थ तुल मूर्ख ॥ १ ॥

जब मैं मयभीत हो गया, तब मैंने आँखें मूँद लीं । फिर आँखें खोलकर देखते ही भयभरपरी मैं पहुँच गया । कुते देखकर श्रीरामजी मुसकराने लगे ! उनके हँसते ही मैं दूरत उनके मुझमें चला गया ॥ १ ॥

उपर मछ सुनु संभ्रम पाया । देखेई बहु अहाँद विचारा ॥

अलि विचित्र तहाँ लोक भवेक । रक्षा अधिक एक ते पृथा ॥ २ ॥

हे पक्षिराज ! दुनियाँ, मैंने उनके देखे बहुत-से ब्रह्मण्डोंके समूह देखे । वहाँ (उन ब्रह्मण्डोंमें) अनेकों विचित्र लोक थे, जिनकी रचना एक-से-एककी कदकर थी ॥ २ ॥

कोटिगुह्य चतुराग्न मीलता । अग्नित उदगम रवि रजनीला ॥

आनित लोकप्रक जग कला । अग्नित मूरर भूमि विराटा ॥ ३ ॥

करीबों ब्रह्मजी और शिवजी, अनगिनत तारुण्य, सूर्य और चन्द्रमा, अनगिनत लोकप्रक, वन और काल, अनगिनत विद्यालय पर्वत और भूमि, ॥ ३ ॥

सगर छरि सर विविध भवता । नाम भवि छरि विराटा ॥

सुर भुवि सिद्ध सब कर किन्त । चरि प्रकर जीव सत्पराचर ॥ ४ ॥

अतस्त सभ्र, नदी, तालव और वन तथा और भी नाना प्रकारकी सृष्टि विचार देखा; देवता, मुनि, विद्व, सन्ध, मनुष्य, पित्र तथा चारों प्रकारके जन्म और चेतन जीव देखे ॥ ४ ॥

दो०—जो नहीं देखा अहि सुखा जो भवहुँ न समाइ ।

सो सब अद्भुत देखेई घरनि कबनि विधि जाइ ॥ ८० (क) ॥

जो कभी न देखा था न सुना था और जो मनमें भी नहीं समा सकता था (अर्थात् जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी), वही सब अद्भुत छवि मैंने देखी । तब उसका किन्त प्रकर कबन किता जाय ॥ ८० (क) ॥

एक एक ब्रह्माण्ड सहुँ एहुँ घरत सत एक ।

एहि विधि देखत फिरई मैं नंद कटाह कनेक ॥ ८० (ख) ॥

मैं एक-एक ब्रह्माण्डमें एक-एक से पर्यटक रहता । इस प्रकार मैं अनेकों ब्रह्माण्ड देखता फिरा ॥ ८० (ख) ॥

चौ०—लोक लोक प्रति पितृ विधाता । मित्र मित्र मित्र बहु विविधाता ॥

नर पंचवर्ष भूयः केचन । मित्र विविधारं बहु रूपं मया ॥ १ ॥

प्रत्येक लोकमें मित्र-मित्र तथा मित्र-मित्र मित्र, मित्र सन्, दिनसक, मनुष्य, मन्त्र, भूत, वैताल, निम्न, राक्षस, पशु, पक्षि, वृक्ष ॥ १ ॥

देव दनुष का शत्रु करी । सदा भीषण हूँ अथवा मीठी ॥

अदि सरि सदा सूर सिद्धि पाया । सदा भवै हूँ अथवा मया ॥ २ ॥

तथा मया व्यक्तिते देवता हूँ देवता मे । सदा भीषण हूँ अथवा मीठी ॥

अथवा मीठी, नदी, वृक्ष, लक्षण, पर्वत तथा सदा सदा भूत-पशु-पक्षि-वृक्ष-पर्वत-पर्वत-पर्वत ॥ ३ ॥

लोकलोक प्रति प्रति विधाता । देवता लोक लोका ॥

अथवा मीठी प्रति प्रति विधाता । सदा भीषण हूँ अथवा मीठी ॥ ४ ॥

प्रत्येक मनुष्य-मनुष्यमें भी मनुष्य का देवता तथा अनेकों मनुष्य-मनुष्य देवता ॥

प्रत्येक मनुष्यमें मनुष्य ही मनुष्य, मित्र ही मनुष्य और मित्र मनुष्य ही मनुष्य ॥ ५ ॥

दक्षिण कोलकाता मनुष्य लोका । मित्र का मनुष्य लोका ॥

प्रति मनुष्य का मनुष्य लोका । देवता मनुष्य लोका ॥ ६ ॥

हे शत्रु । तुमने दक्षिण, कोलकाता और मनुष्य लोका में मित्र-मित्र करके मे । मैं प्रत्येक मनुष्यमें मनुष्य और उनही मनुष्य मनुष्यमें देवता मित्र ॥ ७ ॥

चौ०—मित्र मित्र मैं ही सदा प्रति विविध विविध ॥

अथवा मनुष्य मित्र मैं मनुष्य का देवता मया ॥ ८ (क) ॥

हे शत्रु । मैं ही सदा मित्र-मित्र और अनेकों मित्र देवता । मैं मनुष्य

मनुष्यों में मित्र, पर मनुष्य मनुष्यों में मैं ही सदा मनुष्य मीठी ॥ ८ (क) ॥

छोटे मनुष्य छोटे छोटे छोटे मनुष्य मनुष्य ॥

मनुष्य मनुष्य देवता मित्र मैं मनुष्य छोटे छोटे मनुष्य ॥ ८ (क) ॥

मनुष्य मीठी मित्र, मीठी मनुष्य और मीठी मनुष्य मनुष्य ॥ सदा मनुष्य

मनुष्य मनुष्य मैं मनुष्य-मनुष्य देवता-मित्र मया ॥ ८ (क) ॥

चौ०—मनुष्य मीठी मनुष्य अनेकों । मीठी मनुष्य मनुष्य मनुष्य ॥

मित्र मित्र मित्र मनुष्य मनुष्य । मीठी मनुष्य मनुष्य मनुष्य ॥ ९ ॥

अथवा मनुष्य मनुष्य मनुष्य मनुष्य मनुष्य मनुष्य मनुष्य मनुष्य ॥ १० ॥

मित्र मनुष्य मनुष्य मनुष्य मनुष्य । मित्र मनुष्य मनुष्य मनुष्य ॥ ११ ॥

देवता मनुष्य मनुष्य मनुष्य । मीठी मनुष्य मनुष्य मनुष्य ॥ १२ ॥

मित्र का मनुष्य मनुष्य मनुष्य मनुष्य (मनुष्य) मनुष्य मनुष्य मनुष्य

मनुष्य मनुष्य मैं मनुष्य मनुष्य मनुष्य । मनुष्य मनुष्य मनुष्य मनुष्य मनुष्य

मनुष्य मनुष्य मनुष्य मनुष्य ॥ १३ ॥

मनुष्य मनुष्य देवता मनुष्य । देवता मनुष्य मनुष्य मनुष्य ॥

मनुष्य मनुष्य देवता मनुष्य । मनुष्य मनुष्य मनुष्य मनुष्य ॥ १४ ॥

मनुष्य मनुष्य मनुष्य मनुष्य मनुष्य मनुष्य मनुष्य मनुष्य

मनुष्य मनुष्य मनुष्य मनुष्य मनुष्य मनुष्य मनुष्य मनुष्य

मनुष्य मनुष्य ॥ १५ ॥

करतें विचार बहोरि बहोरि । मोह कलिल ध्यापित मति मोरी ॥
उभय बही भई मैं सब देखा । भयतें प्रमित मन मोह विशेष ॥ ४ ॥
मैं बार-बार विचार करता था । यदि मोहरूपी वीचकटे व्याप्त थी । वह
सब मैंने दो ही धर्मीयें देखा । मनमें विशेष मोह होनेसे मैं थक गया ॥ ५ ॥

रो-देखि कुपल विकल मोहि विहँसे तब रघुवीर ।
विहँसतही मुख बाहेर व्यापतें सुनु मतिघोर ॥ ८२ (क) ॥
मुझे व्याकुल देखकर तब कृपालु श्रीरघुवीर हँस दिये । हे वीरुद्धि गढ़नी !
मुनिपे, उनके हँसते ही मैं मुँहसे बाहर आ गया ॥ ८२ (क) ॥

सोह करिफाई मो सम करन छये पुनि राम ।
कोटि भौंति समुद्रावर्षे मनु न लहइ विद्याम ॥ ८२ (ख) ॥
श्रीरामचन्द्रजी मैंने साथ फिर वही लक्ष्मण जाने छड़े । मैं करेयों (भर्त्स्य)
प्रकारसे मनको समझाया था पर वह ध्यानि नहीं प्राप्त था ॥ ८२ (ख) ॥

सौ-देखि चरित बह छे प्रभुलाई । स्तुतसत देह दस विचारई ॥
अणि दोहैं मुख थात न बाता । आदि आदि आसत जन प्राता ॥ १ ॥
मैं [बात] चरित्र देखकर और [पेटके लंदर देखी हुई] दस प्रभुताका
स्मरण कर मैं मरीचकी मुख भूल गया और वे आर्त्तकर्मके राजा । रक्षा कीजिये
'रक्षा कीजिये' पुकारता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा । मुझसे बात नहीं निकलती थी ! ॥ १ ॥

प्रेमकुल प्रभु मोहि विछोकी । निज साया प्रभुता तब रोषी ॥
कर करौन प्रभु सम मिर चरेक । दीनदयाल सकल पुन हरेक ॥ २ ॥
तदनन्तर प्रभुने मुझे प्रेमविह्वल देखकर अपनी स्वराजी प्रभुता (प्रभाव) को
रोक दिया । प्रभुने अपना कर-कर्म मेरे विपर रक्खा । दीनदयालुने मेरा सम्पूर्ण
हुआ हर किया ॥ २ ॥

कीन्हे राम मोहि विगत भिमोहा । सैन्य सुखद, कृपा संकोहा ॥
प्रभुता प्रथम विचारि विचारी । सब भई होइ हरष कति भारी ॥ ३ ॥
सैन्यको सुख देनेवाले, कृपाके समूह (कृपापय) श्रीरामजीने मुझे मोहते सर्वथा
रहित कर दिया । उनकी पदमेवाजी प्रभुताको विचार-विचारकर (साद कर-करके)
मैंने मनमें बड़ा भारी हर्ष हुआ ॥ ३ ॥

समत कलकला प्रभु कै देखी । उपकी सम कर प्रीति विसेयी ॥
समस्त नयन पुलकित कर छोरी । कोटिदहै बहु विधि विनय बहोरि ॥ ४ ॥
प्रभुकी मकरसंख्या देखकर मेरे हृदयमें बहुत ही प्रेम उत्पन्न हुआ । फिर मैंने [जानन्द-
के] नेत्रोंमें जल भरकर, पुलकित होकर और हाथ जोड़कर बहुत प्रकारसे विनयी की ॥ ४ ॥
रो-सुनि सप्रेम मन धानी देखि दीव किन दास ।

वचन सुखद समीर सुनु जोडे रमानिवास ॥ ८३ (क) ॥
मेरी प्रेम्भुता काही सुनकर और कभी दासको रौन देखकर रमानिवास श्रीरामजी
सुखदायक, गम्भीर और जोरदार वचन बोले- ॥ ८३ (क) ॥

काकमर्दुहि मासु कर बलि प्रसन्न मोहि जानि ।
जनिमायिक सिद्धि नपर रिधि मोच्छ सकल सुख जानि ॥ ८३ (ख) ॥
हे काकभृशुद्धि ! तू मुझे जन्तु प्रसन्न जानकर कर गोंग । जगिना आदि आद
विद्विसे, दूसरी श्रद्धियों तथा सम्पूर्ण सुखोंकी जान मोह, ॥ ८३ (ख) ॥

श्री०—रखन विवेक विवर्त निष्कल । मुनि दुर्लभ पुन ये अरु पात्र ॥

बहु देवें सब संतव नहीं । मनु जो खेदि पात्र प्रथमार्थ ॥ १ ॥

अन विवेक वैराग्य निष्कल (समग्र) और वे अनेकों गुण जो कर्तव्य मुनियोंके शिरो भी दुर्लभ हैं, ये सब ये आज इसे दूंगा, इतने कहें नहीं । जो ऐसी मन भावे, जो मंत्र ले ॥ १ ॥

मुनि प्रभु बचन अधिक अनुग्रहे हैं । सब अनुग्रह सब सब समेटें ॥

अनु कह देन सकल मुनि छे । मरि जगदी देव न कहें ॥ २ ॥

प्रभुके वचन सुनकर मैं बहुत ही प्रेमान् भूत भव । उन भवों अनुमान करने लगा कि प्रभुने सब सुखोंके देनेकी बात कही, यह तो कल है; पर जगदी मरि देनेकी बात नहीं कही ॥ २ ॥

मरि हीन गुण सब सुख देवे । सब विना बहु विषय कैसे ॥

भजन हीन मुनि कबले कबल । सब विचारि लोके हैं अपार ॥ ३ ॥

मरिसे रहित सब गुण और सब सुख देवे ही (यदि) हैं जैसे मरिसे बिना बहुत प्रकारके भोजनके भरण । प्रकृति रहित मुनि किस प्रकार हैं ? हे विचारक ! ऐसा विचारक मैं बोझ—॥ ३ ॥

जो प्रभु होइ प्रसन्न नर है । जो पर कबहु कृपा नर है ॥

सब पावत नर सबको खोजी । दुष्ट उदार, नर मोक्षदा ॥ ४ ॥

हे मने ! यदि आज प्रसन्न होकर मुझे नर देते हैं और मुझपर कृपा और मोक्ष करते हैं, तो हे खोजी ! मैं, अपना मन-संसार नर खोजता हूँ । पाप उदार हैं और हरिपके भीतरही जन्मेवाले हैं ॥ ४ ॥

श्री०—अविच्छिन्न भवति चिन्तु तव मुनि पुरुष जो राव ।

खेदि खोजत जंजीर मुनि प्रभु प्रसन्न कोर पात्र ॥ ८४ (ग) ॥

आपकी जिस अनिरुद्ध (प्रसन्न) एवं स्थिर (अनन्त निष्कल) भक्तिही मुनि और पुरान गाते हैं, जिसे खोजकर मुनि खोजते हैं और प्रभुकी कृपासे कोई विरक्त ही जिसे पात्र है ॥ ८४ (ग) ॥

अमर कलकल प्रसन्न हित कृपा चिन्तु मुनि धाम ।

खेदि निज भवति मोहि प्रभु वेदु दया करि राम ॥ ८४ (ग) ॥

हे मनोंके ! अन-रुच्छिन्न पत्र देनेवाले ! प्रसन्न ! हे प्रसन्नपत्रके हितकारी ! हे कृपादायक ! हे कृपादायक भीरुपत्नी ! दया करके इसे जानने वाली यदि बीजिने ॥ ८४ (ग) ॥

श्री०—द्वयसु कहि सुखदायक । लोके नरक पत्र सुखदायक ॥

सुख वाक्य हैं सहज समाप्त । कहे न जानति सब पदार्थ ॥ १ ॥

‘एकमसु’ (देख ही हो) अथवा एवंगले लानी राम सुख देनेवाले दया लोके—हे प्रक ! तुम, वृक्षमाला ही सुखदायक है । ऐसा करार से न मोक्ष ॥ १ ॥

सब सुख कायि भवति हैं सम्यक् । यदि सबको खेदि सब सम्यक् ॥

जो मुनि बोदि बात नहि कहैं । वे नर जोय कल उर दहैं ॥ २ ॥

एते सब सुखोंकी बात यदि बोल दी, जगदी से लगान नदखली कोई नहीं है । वे मुनि जो नर और मोक्षकी जगदी से उतर आते हैं, करोड़ों नर करते भी भिक्षुके (जिस भिक्षुके) नहीं पाते ॥ २ ॥

रीझे देखि तोरि चतुर्धाई । मानेहु भगति मोहि अति भाई ॥
 सुनु बिहंग प्रसाद सब मोरें । सब सुम सुन बसिहहि उर तोरें ॥ ३ ॥
 वही भक्ति तुने मॉखी । तेरी चतुरख देखकर मैं रोख गया । वह चतुरखा मुझे
 बहुत ही अच्छी लगी । हे पक्षी ! सुन, मेरी कृपासे अब समस्त सुम सुन तेरे हृदयमें
 बसेंगे ॥ ३ ॥

भगति म्यान विमलन मिराया । जोग चरित रहस्य विभागा ॥
 जानय है सबही कर वेदा । मम प्रसाद नहि साधन खेदा ॥ ४ ॥
 भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, योग, मेरी लीखएँ और उनके रहस्य तथा
 विभाग—इन सबके भेदको तू मेरी कृपासे ही जान जायगा । तुझे साधनका कष्ट नहीं होगा ।
 हो—माया संस्रम ध्रम सब जय न व्यापिहहि तोहि ।

जानेहु ब्रह्म बनादि भक्त अगुन गुनकर मोहि ॥ ८५ (क) ॥
 भावसे उत्पन्न सब भ्रम अब तुझको नहीं व्यापेंगे । मुझे मनादि, अजन्मा, अगुण
 (प्रकृतिके गुणोंसे रहित) और [गुणातीत दिव्य] गुणोंकी खान ब्रह्म जानना ॥ ८५ (क) ॥
 मोहि, भगति प्रिय संतत अस विचारि सुनु काय ।
 काथैं बचन मन मन पद करेहु भक्त अगुण ॥ ८५ (ख) ॥
 हे काक ! सुन, मुझे भक्त निरन्तर प्रिय हैं, ऐसा विचारकर, क्षीर, वचन और
 मनसे मेरे चरणोंमें कतक प्रेम करना ॥ ८५ (ख) ॥

चौ०—सब सुनु परम विमल मन कानी । सत्य सुगम विमलदि बानी ॥
 भिन्न सिद्धांत सुनबहुँ छोदी । सुनु मन भव सब तजि भक्त मोदी ॥ १ ॥
 अब मेरी सत्य, सुगम, वेदवदिके द्वारा वर्णित परम निर्मल वाणी सुन । मैं तुझको
 यह भिन्न सिद्धांत सुनाता हूँ । सुनकर मनमें धारण कर और सब तजकर
 मेरा भजन कर ॥ १ ॥

मम, मया संस्रम संसार । जीव चराचर विविधि प्रकार ॥
 सब मन प्रिय सब मन उपजाए । सब से अधिक मनुष्य मोहि नाप ॥ २ ॥
 यह सारा संसार मेरी मायासे उत्पन्न है [इत्यर्थे] अनेकों प्रकारके चराचर
 जीव हैं । वे सभी मुझे प्रिय हैं; क्योंकि सभी मेरे उत्पन्न किये हुए हैं । [किन्तु] मनुष्य
 मुझको सबसे अधिक अच्छे लगते हैं ॥ २ ॥

तिन्ह महुँ द्विज द्विज महुँ भुतिबानी । तिन्ह महुँ विषय भरम अनुसारी ॥
 तिन्ह महुँ प्रिय विरक्त पुनि बानी । व्यापिहु ते अति प्रिय विबानी ॥ ३ ॥
 उन मनुष्योंमें भी द्विज, द्विजोंमें भी वेदोंको [कष्टमें] धारण करनेवाले, उनमें
 भी वेदोंक धर्मपर चलनेवाले, उनमें भी विरक्त (वैराग्यवान्) मुझे प्रिय हैं ।
 वैराग्यवानोंमें फिर बानी और अनिष्टोंसे भी अत्यन्त प्रिय विबानी हैं ॥ ३ ॥

तिन्ह ते पुनि मोहि भियनिब दाखा । बेहि अति मोरि न दूसरि जाखा ॥
 पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाही । मोहि सेवक सम प्रिय कोउ वाही ॥ ४ ॥
 निशानियोंसे भी प्रिय मुझे जपना दाख है, जिसे मेरी ही गति (यामय) है, कोई
 दूसरी जाणा नहीं है । मैं तुझसे बार-बार कथ (निज सिद्धान्त) कहता हूँ कि मुझे
 अपने सेवकके समान प्रिय कोई भी नहीं है ॥ ४ ॥

भगति हीन निरर्थि किन ॥ ५ ॥ सब जीवहु सब प्रिय मोहि सोई ॥
 भगतिवन्त अति भीषट जानी । मोहि आनखि बसि अब कानी ॥ ५ ॥

महिमीन प्रजा ही क्यों न हो। वह मुझे सब नीति के समान ही प्रिय है। परन्तु भक्तिमान् अत्यन्त नीच भी प्राणी मुझे प्राणी के समान प्रिय है, वह मेरी ओषध है ॥५॥

दो०—सुचि सुसील सेवक सुप्रति प्रिय कहु कहि व लख ।

भुति पुरख कह नीति बसि सावधान सुदु काग ॥ ८६ ॥

पवित्र, सुशील और सुन्दर बुद्धिमान सेवक कह, जिसको प्यारा नहीं लगत !
वेद और पुराण ऐसी ही नीति कहते हैं । हे भक्त ! सनकान होकर पुन ॥ ८६ ॥

चौ०—एक बिल के धिक्क कुम्हार, छोड़ि धुक्क पुन लोक जगज ।

कोट रचित कोट खसत मगत । कोट, धर्मरत्न, सूर कोट दात ॥ १ ॥

एक पित्तके बहुत-से पुत्र पृथक्-पृथक् पुत्र, स्वभाव और वाचस्पतिके होते हैं। कोटें पण्डित होता है, छोड़ि कुम्हार, कोटें जानै, कोटें धनी, कोटें गुरुवर, कोटें दानी, ॥ १ ॥

कोट सर्वज्ञ धर्मरत्न कोट । सा पर निश्चिन्ता प्रीति सप्त होई ॥

कोट विदु सबस सब सम । लगेहुँ साध न दुख धर्म ॥ २ ॥

कोटें धर्म और कोटें धर्मपरायण होता है । निश्चय प्रेम इन उपाय समान होता है । परन्तु इनमें से यदि कोई मन, कर्म और धर्म के विज्ञान ही भक्त होता है, सन्तों की पूछा धर्म नहीं जानता ॥ २ ॥

सो सुत प्रिय विदु ज्ञान समता । बचि सो दाय बौद्धि जगज ।

एहि बिधि नीच जगज के । जिनन देव न समुन समै ॥ ३ ॥

वह पुत्र जिसको प्राणी के समान प्रिय होता है, सन्त (कोटें) वह सब प्रकार के समान (धर्म) ही हो । इसी प्रकार विष्णु (धर्म-पूज्य) देव, मनुष्य और शङ्ख-समेत जितने भी जिन और सब जीव हैं ॥ ३ ॥

बसिक किस यह और जगज । सब पर सोहि रहसि काज ।

निष्कर्म सो परिहरी मर मगज । मरि सोहि सब सब काज ॥ ४ ॥

[उनसे भरा हुआ] वह सम्पूर्ण बिम्ब जग ही परे किया हुआ है । अतः सब पर सेरी बराबर दया है । परन्तु इनमें से जो मर और जाना छोड़कर सब कर्म और शरीर से मुक्त हो भक्तता है ॥ ४ ॥

दो०—पुण्य नृपुंसक तारि का जीव जगज कोट ।

सर्व भाव भज कष्ट तति मोहि परम, प्रिय सोह ॥ ८७(क) ॥

वह पुण्य हो, नृपुंसक हो, सब से समस्त नर-नरक कोटें भी जीव हो, कष्ट छोड़कर जो भी सर्वभाव से मुक्त करता है की मुक्त परम प्रिय है ॥ ८७ (क) ॥

चौ०—सत्य कहत सन सोहि सुचि सेवक मम मानप्रिय ।

अस विचारि मनु मोहि परिहरी भास भरोस सब ॥ ८७(ख) ॥

हे प्रीति ! मैं कहते सन कहते हैं, पवित्र (अन्व एवं निष्ठा) सेवक मुझे प्राणी के समान प्यारा है । ऐसा विचारकर सब आकाश-भरोसा जोड़कर मुझे ही मान ॥ ८७(ख) ॥

चौ०—कबई कल न जगजि कोही । सुखिरेसु जगेशु निरंज मोही ॥

मनु बचकपुत्र सुनि न जगजि । एतु पुनक्ति सन जति हरपद ॥ १ ॥

मुझे कल कभी नहीं छोड़ेगा । निरन्तर मेरा सख्य और सख्य करते रहता !
मनु के बचकपुत्र सुनि मैं सुख नहीं होता था । मेरा शरीर पुनक्ति था और कर्म मैं अन्व ही हर्षित हो रहा था ॥ १ ॥

सो मुख जानइ मन लहखना । नहि रहना रहि जाइ ब्रजना ॥
 प्रह सोभासुख जालहि नयना । कहि किमिसकहि सिन्धुहि नहि दपना ॥ २ ॥
 वर दुख मन और मन हं जानते हैं । लोन्ते ठठका ब्रजन नहीं किया था
 दपना । प्रहर्ष बोझना वर दुख नेत्र ही जानते हैं । नर वे कह कैसे सकते हैं ! उनके
 बानी छे है नहीं ॥ २ ॥

बहु किहि नहि प्रबोधि सुख देई । लये जल सिन्धु कांतुख तेई ॥
 भवत नयन बहु मुख करि रखा । किह मरु छागी भति मूछा ॥ ३ ॥
 मुझे बहुत प्रकृति नर-मोहि सम्झकर और मुख देख कर प्रहृष्ट नही बाढकैं
 केह करते को । तेमैं लल भरकर और मुखको कुछ रखा । [-ना] बनाकर उन्होंने
 नदीकी ओर रेखा- [और मुखाकृति तथा चितवनके गङ्गाको समझा दिया कि] बहुत
 मूछ छागी है ॥ ३ ॥

कैकि मातु भानुर उडि चाहै । कहि नहु कचन छिए दर-छाई ॥
 गीव राखि काय पय पाका । रहुरति करि छलित कर गाथा ॥ ४ ॥
 नर देखकर नारा दुरंत उठ चौकी और केनक ज्वन नहुकर उन्होंने भीषमजीको
 छाडीके काग किया । वे गोबर लेकर उन्हें दूध पिबने क्यौ और भोजनपायसी (उन्हीं)
 की कछि छीछाईं माने क्यौ ॥ ४ ॥

सो—लेहि सुख जागि पुरारि मनुष्य वेष्टकृत सिव सुखइ ।
 भवघपुरी नर नारि तेहि सुख महुँ संतत मगन ॥ ८८(क) ॥
 लेहि सुखके लिये [स्वको] सुख देनेके कल्याणकर विपुलरि मिलने अश्रुमं
 वेष्ट पाय किया, उठ मुझमें भवघपुरीके नान्दपी निरन्तर निरन्तर राते हैं ॥ ८८ (क) ॥

सोई सुख छबलेस सिद्ध वारक सपनेहुँ लहेर ।
 ते कहि गगहि खरोच ब्रह्मसुखहि सखत सुमति ॥ ८८(ख) ॥
 उठ मुझमें कल्याणकर विपुलरि [वारक सखतें सो प्राप्त कर लिया, वे पक्षिपल ।
 वे सुन्दर सुखिगते सखत मुन । उसके कलने ब्रह्मसुखको सो कुछ नहीं मिलते ॥ ८८ (ख) ॥
 चौ-नी पुनि मगव चहुँ बहु काछा । देखै बालभिरौद रसाळा ॥
 गन प्रसाद भगति कर मायई । मनुष्य वेष्टि विवाहन जायई ॥ १ ॥
 मैं और कुछ सम्पत्ति ब्रह्मपुरीमें रहा और केने भोजनजीको खोजी बाळीकाई
 देखी । और-मोहि, दुर्गते मेने भक्तिन ब्रह्मन जया । संवत्सर मुझे घरजीकी
 चरमा करके मैं कलने काभनार छोट जया ॥ २ ॥

एव ते मोहि ॥ ज्योती जेका । यथा ते खुनारक भवकाया ॥
 एव तद सुख भक्ति में जेका । हरि मायै जिमि मोहि सखाया ॥ २ ॥
 इत प्रकार अपने भगवत्पदमें मुझको सम्पत्ति दहसे मुझे नाम कभी नहीं
 कलने । भगवत्पद मायने मुझे जैसे नयना वर सख सुख भक्ति मेने कहा ॥ २ ॥
 निज अनुभव अब कहैं जेका । विनु हमि नयन न कहैं कहेसा ॥
 राम हवा विनु मुन कलहाई । जदि न जाइ राम प्रसुताई ॥ ३ ॥
 वे नैराश्रय मनु ! अब मैं अपने कल्याण मिली अनुभव कहता हूँ । [वर यह है
 कि] भगवत्पद-मया विना जेरा हूँ नहीं हूँ । वे प्रियतम ! मुझे और-मोहि
 हवा निज भगवत्पद-प्रदत्त नहीं जनी जनी ॥ ३ ॥

आगे विनु न होइ पत्नीही । विनु पत्नीहि होइ नहि मीठी ॥
 ओति विना रहि भयति दिग्धर्ष । विनि सज्जति बज्रदै विक्रमार्थ ॥ ४ ॥
 प्रभुता जाने विना ठगार मिश्रण नहीं बसत । मिश्रणके विना प्रीति नहीं होती
 और प्रीति विना यदि वेले ही दृढ़ नहीं होती जैसे दे-बधिरपन । बज्रदै विक्रमार्थ
 कहती नहीं ॥ ४ ॥

छे—विनु गुर होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ विराय विनु ।
 गावहि वेप गुराम भुख कि अहित हरि भयति विनु ॥ ८९(क) ॥
 भुखके विना कहीं मन हो सकत है । भयति वेपगुरके विना कहीं जान हो सकत
 है । एही तरह वेद और पुराण पढ़ते हैं कि जीहृतिही भयति विना सब कुछ मिल
 सकत है ॥ ८९ (क) ॥

कोउ विश्राम कि पक्ष तत सहज संतोष विनु ।
 कहै कि सख विनु तब कोटि अतल पक्षि पक्षि प्ररिम ॥ ८९(ख) ॥
 है तत । स्वामिनि संतोषके विना तब कोटि शान्ति या सकत है । [बड़े]
 करोड़ों उपाय करते एक-एक पक्षिचे [फिर भी] तब कहीं उनके विना तब पक्ष
 सकत है ॥ ८९ (ख) ॥

चौ—विनु संतोष न काम कह्यो । काम सख भुख समर्थ नहीं ॥
 काम भवान विनु सिद्धि कि बसत । बस विहीन लक्ष्मण्डे कि जामा ॥ ९० ॥
 संतोषके विना कामनाका लाभ नहीं होता और लक्ष्मणोंके लगे लक्ष्मण भी सुख
 नहीं हो सकत । और भीरावके भवान विना कामगर्ह, कहीं भिन्न कहती हैं । विना
 परीके भी कहीं वेद उभ सकत है ॥ ९० ॥

विनु विद्याम कि समस्त सबद । खैर भवसो कि बस विनु बसत ॥
 कहा विना भव नहि होई । विनु यदि यथ कि लख कोई ॥ ९१ ॥
 विद्याम (लखदान) के विना तब समस्त सब सकत है । आकाशके विना दवा
 कोई समस्त (पौष्ट) या सकत है । सबके विना सब [या आकाश] नहीं होता ।
 तब भूमीवर्णके विना कोई लख या सकत है ॥ ९१ ॥

विनु छद तेव कि बर विद्याम । बर विनु रस कि-हीर संखल ॥
 छीर कि मित्र विनु छद सेवकई । मित्रि विनु तेव न बर गेहोई ॥ ९२ ॥
 लखे विना बर तेव पौष्ट सकत है । जल-वर्णके विना सेवकई सब रस हो सकत
 है । पण्डितवर्णोंके विना विना बर छीर (लखान) पण्ड हो सकत है । हे गेहोई !
 गेह विना तेव (भविष्य-काल) के सब नहीं मिलत ॥ ९२ ॥

मित्र छुल विनु तब होइ कि बर । पण्ड कि बरि विहीन खाली ॥
 कथिदि सिद्धि कि विनु विद्याम । विनु छिन्न विद्याम न सब भव नसत ॥ ९३ ॥
 मित्र-मुखा (आत्मनन्द) के विना तब सब विर हो सकत है । वायु-तत्वके
 विना तब सपर्य हो सकत है । तब विद्यामके मित्र कोई भी सिद्धि हो सकत है । एही
 प्रकार भीहृतिके भवान विना जल-मूसके भवान सब नहीं होता ॥ ९३ ॥

दो—विनु विद्याम भयति यदि छेदि विनु द्रवधि न समु ।
 राम छया विनु सपनेछे जीव न सब विद्याम ॥ ९४(क) ॥
 विना विद्यामके यदि नहीं होती, यदिके विना जीवजीव विद्याम (द्रव्य) नहीं
 और जीवजीवजीव के विना जीव स्वामी भी रहति नहीं पता ॥ ९४ (क) ॥

सो०—अस विचारि मतिवीर तजि कुलक संतप सकल ।

भजहु राम रघुवीर कखाकर सुंदर सुखद ॥ ९०(ख) ॥

हे जीहृदि ! ऐसा विचारन सम्पूर्ण कुलके और कुन्दोंको छोड़कर कखाकी खान सुन्दर गौर मुख देनेवाले श्रीरघुवीरका मनन कीजिये ॥ ९० (ख) ॥

सो०—दिन अति सरिस नाम मैं नाई । प्रसु प्रताप महिमा खगलई ॥

छेदैं न कष्ट करि ह्युति विसेवी । यहसब मैं दिव तपगहि देखी ॥ ११ ॥

हे परिवार ! हे नाथ ! मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार प्रभुके प्रथम और महिमा का गान किया । मैंने इसमें कोई बात मुझको बढ़ाकर नहीं की है । यह सब अपनी आँखों देवी कही है ॥ १ ॥

महिमा नाम रूप गुण यावा । सकल अमित सर्वस रघुनाथा ॥

दिन दिन अति सुखिहरि गुण जगहि । विषम सेव सिव पर न पजहि ॥ २ ॥

श्रीरघुनाथजीकी महिमा, नाम, रूप और गुणोंकी कथा सभी अपर एवं अनन्त हैं । तथा श्रीरघुनाथजी स्वयं भी अनन्त हैं । मुनिगण अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार भी-इसके गुण गाते हैं । वेद, शेष और विषयी भी उनका पर नहीं पते ॥ २ ॥

दुन्दहि जहि का सकल प्रजता । बन उपाहि कीं बाकीं मंता ॥

विनि रघुपति महिमा भक्तपदर । राव कहुँ कोन पाव कि माहा ॥ ३ ॥

आगे ठेकर प्रकटपूर्ण सभी छोटे-बड़े कीच आकाशमें उड़ते हैं, किन्तु आकाश का अन्त कोई नहीं पते । इसी प्रकार हे तन ! श्रीरघुनाथजीकी महिमा भी अथाह है । क्या कभी कोई उसकी माह या मन्ता है ? ॥ ३ ॥

रघु नाम सब कोटि दुका राव । दुर्गा कोटि अमित करि मर्वा ॥

सब कोटि सत सति विमला । मय सब कोटि अमित भवकाहा ॥ ४ ॥

श्रीरामजीका अर्थात् कमरेवाँके समान सुन्दर शरीर है । वे अमृत कोटि दुर्गाजी-के समान शत्रुनाशक हैं । अर्थात् इन्द्राँके समान उनका विनाश (ऐश्वर्य) है । अर्थात् भक्तोंके समान उनमें अमृत अथाहा (लाभ) है ॥ ४ ॥

सो०—नरत कोटि सत विपुल बल रवि सत कोटि प्रकाश ।

सखि सत कोटि सुशील सब सम सकल भव प्राप्त ॥ ११(क) ॥

अर्थात् पवनके समान उनमें महान् बल है और अर्थात् सूर्यके समान प्रकाश है । अर्थात् कर्मजनोंके समान वे शील और संतारके समस्त सबोंका नाश करनेवाले हैं ॥ ११ (क) ॥

कल कोटि सत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुर्ग ।

धूमकेतु सत कोटि सम दुपधर भगवंत ॥ ११(ख) ॥

अर्थात् शत्रुओंके समान वे अत्यन्त दुस्तर, दुर्गम और दुर्ग हैं । वे भगवान् अर्थात् धूमकेतुओं (पुच्छत जतों) के समान अत्यन्त शक्त हैं ॥ ११ (ख) ॥

सो०—प्रसु अथाव सत कोटि पतत्र । समर कोटि सत सरिस कथा ॥

तीर्य अमित कोटि सम पवन । राम वसिष्ठ अथ पूरा सखिजन ॥ ११ ॥

अर्थात् पक्षीजनोंके समान प्रसु अथाह हैं । अर्थात् समरजनोंके समान भवान् हैं । अनन्तकोटि तीर्थोंके समान वे पवित्र करनेवाले हैं । अनन्त नाम सम्पूर्ण पदकर्मका नाश करनेवाला है ॥ १ ॥

हिमगिरि कोटि लच्छ खुबीरा । छिपु कोटि सत सम नभीरा ॥

कामधेनु सत कोटि समाया । सखल काम रासक भगवावा ॥ २ ॥

श्रीरघुवीर करोड़ों हिमालयोंके समान लच्छ (सिर) हैं और अरबों समुद्रोंके समान गहरे हैं । भगवान् अरबों कामधेनुओंके समान लच्छ कामनाओं (सुखित पदार्थों) के देनेवाले हैं ॥ २ ॥

सारथ कोटि अमित खुबई । विधि सत कोटि छति निपुवाई ॥

विष्णु कोटि सत पालन कर्ता । रघु कोटि सत सम संदत्ता ॥ ३ ॥

उनमें अनन्तकोटि उत्सवोंके समान पतुपत्त है । अरबों महाजनोंके समान सृष्टिरचनाकी निपुणता है । वे अरबों विष्णुओंके समान कलन करनेवाले और अरबों चद्रोंके समान संहर करनेवाले हैं ॥ ३ ॥

चन्द्र कोटि सत सम चमकावा । खरा कोटि प्रसव विद्यावा ॥

आर धरत सत कोटि अहीसा । निरवधि विष्णुप्रभु अणुपीता ॥ ४ ॥

वे अरबों कुम्होंके समान चमकावा और करोड़ों गणेशोंके समान सृष्टिके सहाजे हैं । शोक उठावेमें वे अरबों शेरोंके समान हैं । [अधिक क्या] काशीकर प्रभु श्रीरामजी [सभी बातोंमें] सीमारहित और उपमारहित हैं ॥ ४ ॥

ॐ—निरुपम न उपमा जाव राम समान रामु नियम कही ।

जिमि कोटि सत सघोट सम रवि कइत भति लघुता कही ॥

बहि भौंति निज निज मति किलास मुनीस हरिदि बखानहीं ।

प्रभु भाय गाइक भति कृपाल सप्रेम सुनि सुख मानहीं ॥

श्रीरामजी उपमारहित हैं, उनकी कोई दूसरी उपमा है ही नहीं । श्रीरामके समान श्रीराम ही हैं, ऐसा वेद कहते हैं । जैसे अरबों कुम्हनोंके समान करनेसे दुर्ग [प्रसक्त-को नहीं करे] अत्यन्त लघुतासे ही प्राप्त होखे (दुर्गकी निन्दा ही होती है) । इसी प्रकार अपनी-अपनी बुद्धिके विषयके अनुसार मुनीस्वर भीरिका बर्णन करते हैं । किन्तु प्रभु भक्तोंके मावमात्रको ग्रहण करनेवाले और अत्यन्त कृपाल हैं । वे उस बर्णनको प्रेम-पणित सुनकर सुख मानते हैं ।

सौ—रामु अमित शुभ खाकर चाह कि फल कोर ।

संतुष्ट सन जस किन्तु सुनेई तुम्हदि सुनायई सोर ॥ १२(क) ॥

श्रीरामजी अरब गुणोंके समुद्र हैं, वन उमड़ी कोई चाह पा जल्ल है । संतोषी मैंने जैसा कुछ सुना था, वही आपने सुनाया ॥ १२(क) ॥

सौ—भाय वस्य भगवान् सुख निराम कइता मयव ।

तजि भक्तस भद गान मजिन सख सीता रवन ॥ १२(ख) ॥

सुखके मण्डार, कल्याणम भक्तान् भाय (प्रेम) के वस हैं । [कथन] समता, माँ और मानको छोड़कर सदा जीवनरहितकलीस ही गमन कला चाहिये ॥ १२(ख) ॥

सौ—सुनि सुखदि के वन सुमर । हरित लज्जति पंथ पुनर ॥

मयव नीर मन भति हरदावा । श्रीरघुपति प्रत्यक्ष जर भना ॥ १३ ॥

सुखाण्डिबीके सुन्दर वन सुनकर पक्षिपान्ते हरित होकर अपने पंथ फुल लिये । उनके नेत्रोंमें [प्रेमानन्दके आँसुओंमें] कल आ गया और मन अत्यन्त हरित हो गया । उन्होंने श्रीरघुनाथजीका प्रत्यक्ष रूपदर्शन पाकर किन्ना ॥ १३ ॥

पक्षिभ सोइ सुखि बलिभक्त । अल भगवदि मनुष्य करि गाय ॥

सुनि पुनि कथ्य पवन रिम जस । जयि राम सन प्रेम जगज ॥ १४ ॥

वे अपने पिछले मोहने समझकर (बार फरके) कहताने लगे कि मैंने अनादि ब्रह्मको अनुभव करके गन्ना । कन्हवीने बार-बार अन्तर्मुखिकर्तोंके चरकोपर सिर नवाया और उन्हें श्रीरामजीके ही स्तान ज्वनकर प्रेम नवाया ॥ २ ॥

गुर विबु भव निधि तरङ्ग न कोई । जो विरंचि संकर सम होई ॥

संसय सपै अछेट मोहि ताता । दुखद लहरि कुतर्क बहु प्राता ॥ ३ ॥

गुरुके विना कोई भयभङ्ग नहीं हम सकल । चाहे वह ब्रह्मजी और शंकरजीके स्तान ही क्यों न हो । [कन्हवीने कहा—] हे तात ! मुझे अन्तर्हृत्पी सपने डस दिया था और [सोफेके हमनेपर बैठे निप कन्हनेसे लहरें आती हैं वेसे ही] बहुत-सी कुतर्क-लपी दुःख देनेवाली लहरें अब रही थीं ॥ ३ ॥

तब सकल गहवि रघुनाथक । मोहि निमग्नज अम सुखदायक ॥

तब प्रसाद सम मोह नवाव । सम रहल अनुपम जाव ॥ ४ ॥

आपके स्वरूपकी गहरी (सोपका दिप उत्ताग्नेयके) के द्वारा भक्तोंको सुख देनेवाले श्रीरघुनाथजीने मुझे जित्त दिया । आपकी कृपामें मेरा मोह नाश हो गया और मैंने श्रीरामजीका अनुपम रहल बना ॥ ४ ॥

हो—तबहि प्रसंसि विविधि पिधि सीस नाह कर जोरि ।

वचन विनीत सप्रेम मृदु बोलेउ गहवु बहोरि ॥ ५३ (क) ॥

उनकी (भुशुण्डीकी) बहुत प्रकारसे प्रशंसा करके, सिर नवाकर और हाथ मोड़कर फिर गहवली प्रेमपूर्वक निमग्न और कोमल वचन बोले— ॥ ५३ (क) ॥

प्रभु अपने अविवेक ते बूझउँ खासरी तोहि ।

रुपांसिधु सादर कहहु जानि दास निज मोहि ॥ ५५ (क) ॥

हे प्रभो ! हे स्वामी ! मैं अपने अविवेकके कारण आपसे पूछता हूँ । हे कनके छत्र ! मुझे अपना भक्ति दास बनकर आदरपूर्वक (विचारपूर्वक) मेरे प्रश्नका उत्तर दीजिये ॥ ५५ (क) ॥

चो—गुरु सर्वथ तज्य तब वास । सुमति सुखील सकल अवधारा ॥

ग्याव विरति विम्वान विप्रासा । रघुनाथक के गुरुहि जिय दास ॥ १ ॥

आम सब कुछ जानेवाले हैं, उनके आता हैं, अन्धकार (माया) से जे, उत्तम बुद्धिसे युक्त, सुधी, तब आचरणवाले, ज्ञान, वैराग्य और विज्ञानके भाम और श्रीरघुनाथजीके प्रिय दास हैं ॥ १ ॥

अरम कबम हैह यह पाई । तात सकल मोहि कहहु बुझाई ॥

राम चरित सर सुंदर समी । पामहु कहीं कहहु ममगामी ॥ २ ॥

आपने यह काफ़ीतर निज कारणसे पम ! हे तात ! सब समझाकर मुझसे कहिये । हे स्वामी ! हे नाकदागामी ! यह सुन्दर रामचरितमामस आपको कहाँ पम, वो कहिये ॥ २ ॥

नाथ सुना मैं लस सिव पाई । मल प्रभुहुँ नाम तब पाई ॥

सुधा जवन गई ईसर कदई । सोढ और भव संसय भई ॥ ३ ॥

हे नाथ ! मैंने शिवजीसे ऐसा सुना है कि महाप्रलयमें भी आपका नाम नहीं होता और ईश्वर (शिवजी) कभी शिव वचन कहे नहीं । वह भी मेरे मनमें अन्तर्हृत् है ॥ ३ ॥

लस सग जीव लस कर देव । नाथ सकल जगु अल कहेवा ॥

अंत फटाह अमित कम करी । कलु सदा दुरतिक्रम भरी ॥ ४ ॥

[कन्हवी] हे नाथ ! नाथ, मनुष्य, देवता आदि चर-अचर जीव तथा यह

बारा चण्ड ब्रह्मा कहेवा है। अर्धस्य गत्यार्धस्य नष्ट करनेकल सब कदा बता है
अविचार है ॥ ४ ॥

सो—सुम्हहि न व्यक्त काल जति करल करन कवन।

मोहि सो कहहु कृपाक म्यान प्रभाव कि खेग वर ॥ ९३(क) ॥

[ऐसा कह] जल्पा मन्दिर सब आपने नहीं ज्ञाता (बाहर प्रभाव नहीं
दिखावटा) इतना नया कारण है । हे कृपा । मुझे कहिये यह अन्त प्रभाव है का
योगका कल है ? ॥ ९४ (क) ॥

सो—प्रसु तव अक्षय्य आपँ मोर मोह कम मय।

कारन कपल सो नाव सब कहहु सहित भुरग ॥ ९५(क) ॥

हे प्रसो ! आपके आश्रयमें आये ही मेरा मोह और भ्रम भान गया । इसका क्या
कारण है ? हे नाव । यह सब प्रेमस्थित कहिये ॥ ९४ (ख) ॥

सो—नवद मिल सुनि हरपत कल। कोनेन सब परम अनुत्तम।

ब्रह्म कम तव जति वरावरी। प्रसुसुम्हसिमोहि जति प्यारी ॥ १ ॥

हे प्रसो ! यक्षजीवी वाली सुनकर कंकडुगुमित्री हर्षित हुए और परम प्रेमसे
मोहित हो सके लगे । आपकी बुद्धि कम है । भन्त है । आपके प्रेम मुझे बहुत ही
प्यारे लगे ॥ १ ॥

सुनि तव मल समैस सुगर्ह। कतु नयन सौ सुनि मोहि नई।

सम मिल कया कहैं मैं नई। तत सुबहु सावर कम नई ॥ २ ॥

आपने प्रेम्णुक सुन्दर प्रेम सुनकर मुझे अपने बहुत कमजोरी सर आ गयी । मैं
आपनी सब कया भिन्नारो पड़ता हूँ । हे तत ! आदरवर्धित मन कयाकर सुनि ॥ २ ॥

कत तव मल सम दम मल हल। विरति विवेक सोय विवधान।

सब कर कल शुभति पर प्रेम। तेहि किउ खेव व पावहु कैमा ॥ ३ ॥

अनेक कम; तन, कल, प्रेम (मनकी रोकाव), दम (इन्द्रियोंकी रोकाव),
मल, दान, वैराग्य, विवेक, योग, ध्यान आदि अनेक कम औपुन्यजीवी परमार्थमें
प्रेम होमा है । इसके फल कोई कमजोर नहीं व करता ॥ ३ ॥

एहि तव तव मलति मैं नई। कले मोहि समल अधिभई।

मेहि वैं कहु निज कारण हीई। तेहि पर मगध कम कम कोई ॥ ४ ॥

मैं ही वरीरसे भीषणजीवी यदि प्रेम करी है । एसीसे हठपर मेरी समल अधिभ
है । जिससे अपना कुछ सार्व होता है, उसपर कोई कोई प्रेम करते हैं ॥ ४ ॥

सो—यसगारि अस्ति नीति कुति संमत सज्जन कहहि।

अति नीचहु सम प्रीति धरिण जावि विष परम हित ॥ ९५(क) ॥

हे गुरुजी ! वेदोंमें मानी हुई ऐसी नीति है और सज्जन भी करते हैं कि अनर
परम हित जानकर अत्यन्त नीचों की प्रेम करना चाहिये ॥ ९५ (क) ॥

पाठ कीट वैं होइ तेहि वैं पाठकर सचिर।

कमि पाठइ सखु कोइ परम कष्टकल प्रान सब ॥ ९५(ख) ॥

प्रेममें कीड़ेने होत है, उसीसे सुन्दर ऐसी नष्ट करते हैं । एसीसे उर परम अत्यन्त
कष्टिकी भी सब कोई प्रेमसे क्यान करने हैं ॥ ९५ (ख) ॥

सो—आरथ सीव जीव नई। मय कम मय कम पर मोह।

सोइ बानव सोइ सुखन जति। जो सखु पर यतिन सुखी ॥ १ ॥

जीके लिये सज्ज खाएँ नहीं है कि मनुष्य वचन और कर्मोंसे श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम हो। वही पारिवर्तन और सुन्दर है जिस शरीरको पाकर श्रीरघुवीरका भजन किना जाय ॥ १ ॥

राम विमुख कहि बिधि सम देखी। कवि कोविद न प्रसंसहि तेही ॥

राम भगति पूर्ति तब तर जायी। छते मोहि वरुन प्रिय स्वामी ॥ २ ॥

जो श्रीरामजीके विमुख है वह यदि ब्रह्माजीके समान शरीर या आय तो भी कवि और पवित्र तपस्वी प्रशंस नहीं करते। इसी शरीरसे मेरे हृदयमें रामभक्ति उत्पन्न हुई। इसीसे हे स्वामी! यह मुझे परम प्रिय है ॥ २ ॥

तबसे म जानि निज इच्छा मरवा। राम विमुख सुख कबहुँ न सोचा ॥ ३ ॥

प्रथम मोहि मोहि द्युत पियेवा। राम विमुख सुख कबहुँ न सोचा ॥ ३ ॥

मेरा मरण अपनी इच्छापर है, परन्तु जिस भी मैं वह शरीर नहीं छोड़ता; क्योंकि वेदोंमें वर्णन किया है कि शरीरके बिना भजन नहीं होता। पहले मोहने मेरी बड़ी दुर्दशा थी। श्रीरामजीके विमुख होकर मैं कभी सुखसे नहीं सोचा ॥ ३ ॥

वाग्य लज्ज कर्म जुधि ताका। किन्तु भोग सब तप मज्ज दान ॥

कर्म जोनि कर्मसेई जाई पाही। मैं कर्मसे जनि जनि सब भाही ॥ ४ ॥

जनेकों कर्मोंमें मैंने जनेकों प्रकारके योग, तप, दान, व्रत और दान आदि कर्म किये। हे गुरुजी! अन्तर्में ऐसी जैन योगि है, जिसमें मैंने [बार-बार] धूम-धूमकर कर्म न किया हो ॥ ४ ॥

देखै करि सब कर्म गोसाईं। सुखी न भवै भवहि की जाई ॥

जुधि मोहि वाग्य लज्ज कर्म केरी। सिंग प्रसाद भति मोहि न बेरी ॥ ५ ॥

हे गुरुजी! मैंने सब कर्म करके देख किये, पर अब (इच्छा) की तरह मैं कभी सुखी नहीं हुआ। हे नाम! मुझे बहुत-से कर्मोंकी याद है। [क्योंकि] श्रीरामजीकी कृपासे मेरी बुद्धिसे मोहने नहीं वेरा ॥ ५ ॥

चौ—प्रथम जन्म के चरित अब कहैं सुगह विहरोल।

जुधि प्रभु पद रति उपजह जातं भितहि कलेस ॥ १६ (क) ॥

हे पतिराज! तुमने, जब मैं अपने प्रथम जन्मके चरित कहे हैं, किन्हें धुलकर गुरुके चरणोंमें मीरि उत्पन्न होती है, जिससे सब ज्ञेय मिट जाते हैं ॥ १६ (क) ॥

पुरुष कश्यप पद प्रभु जुग कच्छिपुष मल सूक्ष्म।

नर नर नरि मन्मथ रत सकल निमग प्रतिपूज ॥ १६ (ख) ॥

हे प्रभो! पूर्वे एक कल्पमें पापोंका मूल जुग कच्छिपुष का जिसमें पुरुष और श्री रामी अवर्णपरम और वेदके विरोधी थे ॥ १६ (ख) ॥

चौ—वैदिक कच्छिपुष कोसलपुर जाई। कर्मज भवते सुख भव पाई ॥

सिग सेवक मग मग जाह जायो। ज्ञान देव विद्वक अभिमानी ॥ १७ ॥

उक्त कच्छिपुषों में ज्योत्स्नापुरीमें जाकर ब्रह्मा शरीर पाकर जन्मा। मैं मन, वचन और कर्मसे शिवजीका सेवक और इसके देवताओंकी निन्दा करनेवाला अभिमानी था ॥ १७ ॥

भग मग मग पदम जवाह। उग्रभुवि तर दम चित्ताका ॥

नदधि खेले रघुपति रत्नवासी। कदमि न कबहुँ भविम सब भासी ॥ १८ ॥

मैं कनके मधुमे मन्मथ, बहुत ही मन्मथों और उग्रभुविवाज था; मेरे हृदयमें

बैराग्यवान् है। जिसके बड़े-बड़े नख और लंकी-लंकी जटाएँ हैं, वही कलियुगमें प्रसिद्ध तपस्वी है ॥ ४ ॥

दो०—असुम घेष भूपन धरै मञ्जमञ्जु जे सार्हि ।

तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलियुग भार्हि ॥ ९८ (क) ॥

जो अमञ्जल घेष और अमञ्जल भूषण धारण करते हैं और भय-अभय (खाने योग्य और न खाने योग्य) सब कुछ खा जेते हैं, वे ही योगी हैं, वे ही सिद्ध हैं और वे ही मनुष्य कलियुगमें पूज्य हैं ॥ ९८ (क) ॥

सो०—जे अपकारी धार सिद्ध कर गौरव मान्य तेइ ।

जम जम वचन छवार तेइ वक्तव्य कलिपाल महुँ ॥ ९८ (ख) ॥

जिनके आचरण दूसरोंका अपकार (अहित) करनेवाले हैं, उनकी वक्ता गौरव होता है और वे ही सम्मानके योग्य होते हैं। जो मन, वचन और कर्मसे छवार (झूठ वक्तव्यवाले) हैं, वे ही कलियुगमें वक्ता माने जाते हैं ॥ ९८ (ख) ॥

चौ०—नारि विषस नर सबल गोसाईं । नाचहि बट मर्कट की भाई ॥

सुद्व द्विजबन्ध उपवेशहि श्याम । मेलि जनेक केहि कुदामा ॥ १ ॥

हे गोसाईं ! संमी मनुष्य जिनके विशेष वस्त्र हैं और बाजीगरके बंदरकी तरह [उनके नचाये] नाचते हैं। ब्राह्मणोंको सुद्व बानोपदेश करते हैं और गलेमें जनेक बाण्डर कुलित दान लेते हैं ॥ १ ॥

सब नर काम छोम रत प्रीची । वैष विप्र श्रुति संत विरोची ॥

गुण मंदिर सुंदर पति लखी । भजहि नारि पर पुरुष अमारी ॥ २ ॥

सभी पुरुष काम और काममें तत्पर और प्रीची होते हैं। वैषता, ब्राह्मण, वैद और संतोंके विरोधी होते हैं। अमागिनी जिनमें गुणोंके धाम सुन्दर पतिको छोड़कर परपुरुषका सेवन करती हैं ॥ २ ॥

सौतगिनी विभूषन हीन । विप्रबन्ध के सिंगार नवीन ॥

गुर सिप बधिर जीव क्य लेखा । एक न सुषइ एक नहि देखा ॥ ३ ॥

सुतागिनी जिनमें तो आभूषणोंसे रहित होती हैं, पर विप्रवाओंके मिल्य नये गृहकार होते हैं। शिष्य और गुरुमें बड़े और अन्धका-स्य दिखाव होता है। एक (शिष्य) गुरुके उपदेशको सुनता नहीं, एक (गुरु) देखता नहीं (उसे जानबूझि मात्र नहीं है) ॥

हरद शिष्य धर सोक न हर्द । सो गुर धोर वक्त महुँ परद ॥

मातु पिता बाकबन्ध बोळबन्ध । उदर नरै सोइ चर्म सिचावहि ॥ ४ ॥

जो गुरु शिष्य का वन हरण करता है, पर सोक नहीं हरण करता, वह धोर नरकमें पड़ता है। माता-पिता बाकबन्धोंके जुलूमकर वही चर्म सिखाते हैं, मिथवे पेट भरे ॥ ४ ॥

दो०—ब्रह्म स्थान विनु नारि नर कहाहि न दूसरि बात ।

कौटु लज्जि छोम बस करहि विप्र गुर घात ॥ ९९ (क) ॥

स्त्री-पुरुष ब्रह्मज्ञानके विषय दूसरी बात नहीं करते, पर वे कामवद् कौटुको (बहुत मोहे काम) के लिये ब्राह्मण और गुरुको हत्या कर डालते हैं ॥ ९९ (क) ॥

वारहि सुद्व द्विजबन्ध सन हम तुम्ह ते कछु यादि ।

जानइ ब्रह्म सो विप्रवर मौखि देखावहि दादि ॥ ९९ (ख) ॥

सुद्व ब्राह्मणोंसे विचार करते हैं [और कहते हैं] कि हम नया तुम्हें कुछ कम

हैं ! जो ब्राह्मणों को जानता है वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है [ऐसा ब्रह्मण] वे उन्हें बॉयपर आँखें दिखलाने हैं ॥ १९ (ख) ॥

चौ०—पर त्रिषु संगत कष्ट सन्ताने । मोह 'द्रोह' मृत्यु 'कल्पयन्ते' ॥

तेषु अमेदवादी स्वाधीन । ऐसा मैं चरित् कर्मिणुना कर ॥ १ ॥

जो पराधीन स्त्रीमें आसक्त, कष्ट करनेमें चतुर और मोह, द्रोह और मृत्युमें लिपटे हुए हैं, वे ही मनुष्य अमेदवादी (नश और जीवनमें एक बतानेवाले) 'लानी' हैं । मैंने उस कलिपुत्रका यह चरित्र देखा ॥ १ ॥

भ्रातृ राष्ट्र आदि तिष्ठन्तु वाच्यं । वे कर्तुं स्वतन्त्र प्रतिपाद्यं ॥

कल्प कल्प भवि एक एक नरक । रहिं जे दुषिं श्रुति करि तरक ॥ २ ॥

वे स्वयं तो नष्ट हुए ही रहते हैं जो कहीं कल्पार्थका प्रतिपादन करते हैं, उनको भी वे नष्ट कर देते हैं । जो तर्क करके बेदखी सिद्धा करते हैं, वे लोक-व्यवस्थापर एक-एक नरकमें पहुँच रहे हैं ॥ २ ॥

जे ब्रह्मदत्त लेलि कुम्हार । कल्प कल्प कोल कल्पारा ॥

नारि सुईं गृह संवति पाले । सुख सुख होहि संपासी ॥ ३ ॥

तेली, कुम्हार, चाण्डाल, यौक, श्लोक और कल्पकर आदि जो कर्ममें नीचे हैं, लौकिक मरनेपर अपना घरकी सम्पत्ति नष्ट हो जानेपर फिर कुम्हार बन्यासी हो जाते हैं ॥ ३ ॥

जे विप्रन्तु सन गण्ड पुत्रान्ति । उभय कोल विप्र सन नान्ति ॥

विप्र विप्रन्तु कोलुन कमी । विप्रन्तु सन सुखी स्वासी ॥ ४ ॥

वे अपनेको ब्राह्मणोंसे पुत्रपते हैं और अपने ही हाथों दोनों कोल नष्ट करते हैं । ब्राह्मण अपक, श्लेष्मी, क्षत्री, ब्राह्मण, मूर्ख और नीची जातिमें अभिचारिणी जिनको स्वामी होते हैं ॥ ४ ॥

सुख नरिं जप तप प्रत नरक । वैदि ब्रह्मन्तु कर्हि पुरान् ॥

सक नर कर्मन्तु कर्हि भवारा । अहं न बरि कर्मन्ति भवारा ॥ ५ ॥

शुद्ध नाम प्रकटके रूप, तप और प्रत करते हैं तथा जैने आसन (भवारा) पर बैठकर पुरान कहते हैं । तप मनुष्य मनुष्यों का चरण करते हैं । अन्तर कर्मन्ति का भर्त्ता नहीं किया न सकता ॥ ५ ॥

चौ०—अथ ब्रह्म संकर कति विप्रसेतु सब लोग ।

करहि पाप पावर्हि दुख भव द्रव सोल विप्रोग ॥ १०० (क) ॥

कलिपुत्रोंमें सब कोल कर्मन्तु और मर्मादमे मृत हो गये । वे पाप करते हैं और [उनके फलस्वरूप] दुःख, मय, रोष, शोक और [विष बलका] विप्रोग पाते हैं ॥ १०० (क) ॥

श्रुति संमत हरि शक्ति पथ संस्तुत विरति विपेक ।

तेहि न जलवि नर मोह बल कल्पहि पंथ अनेक ॥ १०० (ख) ॥

वेदसम्मत तथा श्रेष्ठ और ज्ञानसे युक्त नो-हरिभक्ति का पथ है, नो-वच मनुष्य उसपर नहीं चलते और जनेको नवे-नवे पंथोंमें कल्पन करते हैं ॥ १०० (ख) ॥

चौ०—यह दाम सँकरहि नाम ज्ञानी । विप्रका हरि लीनि न रहि विरती ॥
सपत्नी प्रनयन ब्रिज गृही । कलि कोलुन तप न जात कही ॥ १ ॥
कन्याकी बहुत पन लपक पर सनाते हैं । उनमें वैराग्य नहीं रहा, उसे विपयों

हर लिया । लक्ष्मी घनवान् हो गये और श्वेत दग्ध । हे राव ! अस्त्रियुद्ध की लीला
हुआ नहीं जाती ॥ १ ॥

कुलवर्ति निशारहि नरि सती । गृह आनहि जेरि निवेरि गती ॥

सुत भावहि मातु पित्त तव ली । अवलमन दीप्त नहीं अब ली ॥ २ ॥

कुलवी और सती स्त्रीने पुत्र फले निकल देते हैं और अच्छी पालने छोड़कर
परमे दायीने व्यस्त होते हैं । पुत्र अपने अन्त-विशेषों समीप मानते हैं जबतक लीला
नहीं दिखाने पड़ा ॥ २ ॥

समुपारि पिशारि लयी अब हैं । रिपुहृत्प कुट्टव मय तव हैं ॥

सुप पाप परावन धर्म नहि । नरि दंड विहंग प्रका नितही ॥ ३ ॥

अपने समुदाय प्यारी लगने लगी, उसके कुट्टनी धुसका हो गये । एका लौग
पापसायण हो गये, उनमें धर्म नहीं रहा । वे प्रकाशों नित्य ही [बिना अफराह] दण्ड
देकर उसकी विश्रम्भा (दुर्बला) किता करते हैं ॥ ३ ॥

धनवंत कुलीन मखीव अपी । शिख विन्द अवेक उधार लयी ॥

नहि मान पुण्य न वेदहि जो । हरि सेवक संत छाडी कलि सो ॥ ४ ॥

धनी लोग मखी (नीच खासिके) होकर भी कुलीन माने करते हैं । शिख
बिहु कनेहमात्र रह गया और नीचे पदन जना गन्तीव । जो कैदी और पुण्योंको नहीं
मानते, कलियुगमें वे ही हरिकृष्ण और सन्ने संत कहलते हैं ॥ ४ ॥

कवि दंड उधार हुनो न सुधी । गुन उपक जात न कोपि सुधी ॥

कलि वारहि वर दुकाळ परी । विनु शान दुखी सब लोग मरी ॥ ५ ॥

कवियोंको तो दंड हो गये, पर बुद्धिमान उधार (कवियोंका अभय-वृत्ता) जुगली
नहीं पड़ा । गुणमें दोष लगानेवाले बहुत हैं, पर गुणी कोई भी नहीं है । कलियुगमें
बार-बार अकाल पड़ते हैं । अकाले बिना सब लोग दुखी होकर मरते हैं ॥ ५ ॥

रो—सुख योगेस कलि कवटं इठ दंभ डेप पापंठ ।

बाल मोह मारहि भद्र धरि रहे जहोड ॥ १०१ (क) ॥

वे भक्तिपात्र लक्ष्मी । बुद्धि, अस्त्रियुगमें कष्ट, इठ (दुःख), दंभ, ईद,
पाप, मात, मोह और काम आदि (अर्थात् पाप, मोह और काम) और भद्र
ब्रह्मण्यमर्मे व्याप्त हो गये (ज्ञ गये) ॥ १०१ (क) ॥

धनस धर्म नरहि कर अप तप जत मक हाव ।

देव न धरहि धरनी वष न जमहि धाम ॥ १०२ (ख) ॥

सुख तप, तप, नर, आ और धन आदि धर्म धामनी भावने करने लगे । देवता
(ईश्वर) ईश्वरि कल नहीं गलते और कोका दुःख अंत लगता नहीं ॥ १०२ (ख) ॥

ई—अवला कन भूपन मूरि सुभ । धनवीन दुखी भयता बहुधा ॥

सुख चाहहि मुड न धर्म रवा । मति थोरि फोरेरि न कोमलता ॥ १ ॥

मित्रोंके दाह ही भूषण हैं (उनके चरीखर कोई आभूषण नहीं रह गया) और
उनकी भूल बहुत लगती है (अर्थात् वे बड़ा अतृप्त ही जती हैं) । वे नवीन और
बहुत प्रकारकी ममता होनेके कारण दुखी रहती हैं । वे मूर्ख ज्ञान चाहती हैं, पर धर्ममें
उनका प्रेम नहीं है । बुद्धि थोड़ी है और फोरे है : उनमें कोमलता नहीं है ॥ १ ॥

नर पीडित रोय न भोग धर्या । अमिनाय विरोध अकारन्या ॥

लघु जीवन संवतु पंच दृश्य । कल्पान्त न नास गुमानु भय ॥ २ ॥

मनुष्य रोमंति धीमति है, योग (बुद्ध) नहीं नहीं है । निरा ही कारण अधिभान और विशेष करते हैं । दस पाँच वर्षका बालाका भीन है, परन्तु धर्म देखा है नाते कल्याण (श्रम) होनेपर भी उनका नाव नहीं होता ॥ २ ॥

कलिकाळ विहाळ किम् मनुज ॥ नहिं मानव की अलुख तलुजा ॥

बहिं तोय विचार न समिळत ॥ सब ज्ञाति कुञ्जवृत्ति भर भगता ॥३॥

कलिकाळने मनुष्यको वेदांत (ज्ञान-व्यवस्था) कर गला । जोई बहिन-वेदीका भी विचार नहीं करता । [ज्ञेयोंमें] न उत्तोर है, न विवेक है और न शीतलता है । ज्ञाति, कुञ्जवृत्ति सभी जेसा गीत गोंमेनवले हो सके ॥ ३ ॥

हरिया परगच्छुर कोसुपता ॥ सरि हरि ज्ञाी समज विगता ॥

सब लोग वियोग विखोळ हए ॥ बरबाधम धर्म अन्धार गए ॥४॥

ईसा (शास्त्र) कदरे पवन और छात्र मरुत हो रहे हैं, कला जलो गयी । सब लोग वियोग और विषय खोजने को बड़े हैं । धर्म-धर्म-धर्म काचल नष्ट हो गये ॥ ४ ॥

सम दान दया बहिं जलपती ॥ जकुल परार्थकज्जति धनी ॥

समु पोषक नरि नय खगरे ॥ परनिदक जे सम मो जाने ॥५॥

इन्द्रियोंका सम दान, दया और समझारी जितनी नहीं थी । मुर्खता और दूसरोंको ठगना, यह बहुत अधिक बढ़ गया । श्री-मुन्य लकी लरीके ही पक्ष-पोषणमें लगे रहते हैं । जो परापी निन्दा करनेवाले हैं कागसे वे ही पैरे हैं ॥ ५ ॥

पो—समु व्यावहारि काळ कलि मळ मयसुळ जगार ॥

गुनज महुत कलिजुग कर सिधु प्रकल निवृत्त ॥ १०२ (६) ॥

हे लोके समु गलजनी । सुनिसे, कलिकाल का और भगवत्प्राण कर है । निवृत्त कलियुगमें एक गुण भी कहा है कि जहाँ निवृत्त ही बरिबन प्रकलनको बुद्धकाय निक जाता है ॥ १०२ (६) ॥

कुलसुग जेतां शापर पूजा मळ मळ जोग ॥

जो गति होद सो कलि हरि सम ठे फावहि कोम ॥ १०२ (७) ॥

कलियुग, जेता और शापरमें जो भी पूजा, पूज और सोको मळ रोखी है, जो गति कलियुगमें जोग केवल मयमलके नामसे पा जाते हैं ॥ १०२ (७) ॥

पौ—कुलसुग सब लोगी किण्वरी ॥ हरि हरि ज्ञान वरहिं सब प्राणी ॥

जेतां दिविष ज्ञान मळ मळ करी ॥ तलुहि समरिं कर्म कर हरहिं १११ ॥
सत्यकामें सब सोनी और मित्रानी होते हैं । हरिब ज्ञान फलके सब प्राणी मयमलमलके तर जाते हैं । जेतामें मनुष्य जेके मळमलके मळ करते हैं और सब कर्मको प्रभुके समर्पण करके मयमलमलके तर हो जाते हैं ॥ १ ॥

हापर करि लुपति पद फल ॥ कर सब जहाँ उपाय न दुबा ॥

कलियुग केवल हरि सुख बाहा ॥ ज्ञान नर फावहिं नय बाहा ॥ ११२ ॥

हापरों और कुलप्राणीके जलमें भी पूजा करके मनुष्य संकलते तर जाते हैं, दूसरा कोई उपाय नहीं है । और कलियुगमें जो केवल श्रीहरिकी लुपता-लुपता ध्यान करनेवाले ही मनुष्य मयमलमलकी बाह पा जाते हैं ॥ २ ॥

कलियुग जोग न काम मयमल ॥ एक जकार सब सुख बाध ॥

सब मरोष कलि को सब राखि ॥ जेस समेत सब सुख प्राप्तहि ११३ ॥
कलियुगमें न तो योग और न ही काम है और न ज्ञान ही है । श्रीपद्मजी प्रभुकाय

ही एकमात्र आधार है। अतएव सारे मरोखे त्याग कर जो श्रीरामजीको भजता है और प्रेमसहित उनके गुणसमूहोंको गाता है ॥ ३ ॥

सोई भव तर कहु संसर्ग साहीं । नाम प्रताप प्रभु कलि सहहीं ॥

कहि कर एक पुनीत प्रताप । भक्तस पुण्य होहि नहि बाधा ॥ ४ ॥

वही भवसागरसे तर वाहक है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। नामका प्रताप कलियुगमें प्रत्यक्ष है। कलियुगका एक पवित्र प्रताप (महिया...) है कि मानसिक पुण्य तो होते हैं, पर [मानसिक] पाप नहीं होते ॥ ४ ॥

दो०—कलियुग सम जुय आन नहि, औ नर कर विखास ।

गाइ राम गुन मन विमल सब तर विनहि प्रयास ॥ १०३(क) ॥

यदि मनुष्य विश्वास करे, तो कलियुगके समान दूसरा युग नहीं है। [क्योंकि] इस युगमें श्रीरामजीके निर्मल गुणसमूहोंको या-नाकर मनुष्य बिना ही परिमम संसार [कभी] कतुप्र [से] तर जाता है ॥ १०३(क) ॥

प्रगट् छारि एव धर्म जो कलि महुँ एक प्रधान ।

जेन केन विधि दीन्हें दान कष्ट कष्टान ॥ १०३(ख) ॥

धर्मके चार चरण (कृत्य, दया, क्षम और दान) प्रसिद्ध हैं, जिनमेंसे कलियुगमें एक [दानकर्म] कारण ही प्रधान है। जिस किसी प्रकारसे भी दिये जानेपर दान कल्याण ही करता है ॥ १०३(ख) ॥

धो०—जित छुग धर्म होहि सब को, इदरै एन साज के प्रेरे ॥

सुख सब समझा विमाना, जुन प्रसाद प्रसन्न सब जाया ॥ १ ॥

श्रीरामजीकी मानाये प्रेरित होकर सबके हृदयोंमें हमी सुबोके धर्म मिले होते रहते हैं। सुख सत्संग, समता, विद्वान और मनका प्रसन्न होना, इसे सत्ययुगका प्रभाव-जन्म ॥ १ ॥

सब बहुत एक रति कर्म । सब विधि सुख, प्रेता कर धर्म ॥

बहु रज सत्य सब कहु तामस । इतर धर्म हरष सब सावस ॥ २ ॥

सत्ययुग धर्मिक हो, कुछ रजोयुग हो, कर्ममें प्रीति हो, सब प्रकारसे सुख हो यह वेदाका धर्म है। रजोयुग बहुत हो, सत्ययुग बहुत हो, बोधा हो, कुछ तमोयुग हो, मनमें ईर्ष और मम हो, यह दम्भका धर्म है ॥ २ ॥

तामस बहुत रजोयुग बोधा । कलि प्रभाव विशेष कहै औरा ॥

दुख दुःख धर्म कलि मन माहीं । तखि अधर्म रति धर्म कराहीं ॥ ३ ॥

तमोयुग बहुत हो, रजोयुग बोधा हो, चारों ओर वैर-विरोध हो, यह कलियुगका प्रभाव है। पण्डित लोग सुबोके धर्मको मनमें ध्यान (पहिचान) कर, अधर्म छोड़कर धर्ममें प्रीति करते हैं ॥ ३ ॥

कल धर्म नहि व्यापहि लाही । रजुपति सर्व प्रीति अति जाही ॥

महं कुछ निकट कोट संसर्ग । महं लेखहि न व्यापहि माया ॥ ४ ॥

जिसका श्रीरामजीकी चरणोंमें अत्यन्त प्रेम है उसको कलधर्म (युगधर्म) नहीं व्यापते। हे पशिरान ! नट (बाजीगर) का किन्ना हुआ कपट-वस्त्र (इन्द्रवाज) देखनेवालोंके जिसे वड़ा निकट (दुर्गम) होता है, पर नयेके सेवक (अधर्म) को उसकी माना नहीं व्यापती ॥ ४ ॥

दो०—हरि माया कृत दोष गुन विनु हरि भजव जाहि ।

अखि राम तखि काम सब अस विचारि मन माहि ॥ १०४(क) ॥

श्रीहरिकी मयाके द्वारा रहे हुए दोष और गुण श्रीहरिके मजन दिन नहीं जाते । मनमें ऐसा विचार कर, सब कामनाओंको छोड़कर (निष्कामभावसे) श्रीरामजीका भजन करना चाहिये ॥ १०४ (क) ॥

तेहि कलिकाल करष बहु वसेलैं मगध विहगेल ।

परेउ दुकाल विपति पस तब मैं मगधैं किदेस ॥ १०४ (ख) ॥

हे पशिराम ! उस कलिकालमें मैं बहुत कष्टोंके अयोध्यामें रहा । एक बार वहाँ अकाल पड़ा, तब मैं विपत्तिग्रस्त मगर निदेश चला गया ॥ १०४ (ख) ॥

चौ०—गमधैं बनेनी सुनु उरगरी । दीन मगध दखि दुखारी ॥

गढ़ काल कहु संपति पाई । वहाँ पुनि कसैं संभु सेवकाई ॥ १ ॥

हे सपोंके शत्रु गरुड़जी ! मुझमें, मैं दीन, मलिन (उदास), दरिद्र और दुखी होकर उरगरीन गया । कुछ काल सीतानेपर कुछ सम्पत्ति पाकर फिर मैं वहीं भगवान् शङ्करजी भाराधना करने लगा ॥ १ ॥

पिय एक पैसिक सिव पूजा । कइ सदा सेहि कहु ब वृत्त ॥

परम साहु परमारव किहक । संभु उपासक नहि हरि निवृत्त ॥ २ ॥

एक ब्राह्मण वैदिकधर्मसे सदा शिवजीकी पूजा करते, उन्हें बहुत कोई काम न था । वे परम साहु और परमार्थके छात्र थे, वे शम्भुके उपासक थे, पर श्रीहरिकी निन्दा करनेवाले न थे ॥ २ ॥

तेहि सेवकैं मैं कपट समैछ । द्विज एकल बसि बीति भिसेल ॥

बाहिन मज देखि मोहि छाई । बिज पश्य पुत्र की गई ॥ ३ ॥

मैं कपटपूर्णक उनकी सेवा करता । ब्राह्मण बड़े ही दयालु और नीतिके घर थे । वे स्वामी ! बाहरसे नम्र देखकर ब्राह्मण मुझे पुत्रकी भाँति मानकर पढ़ाते थे ॥ ३ ॥

संभु मंत्र मोहि द्विजवर एगुहा । गुन उपदेश विविध विधि कोम्हा ॥

जपकैं मंत्र सिव मंदिर छाई । ईशकैं दूत अहमिति बभिकछाई ॥ ४ ॥

उन ब्राह्मणभेदने मुझको शिवजीका मंत्र दिया और अनेकों प्रकारके छत्र उपदेश किये । मैं शिवजीके मन्दिरमें जाकर स्नान करता । मेरे इशकमें दम्भ और आँकार बढ़ गया ॥ ४ ॥

शौ०—मैं बल मल संकुल अति नीच जाति बस मोह ।

हरि जन द्विज देखैं करतैं करतैं विष्णु पर द्रोह ॥ १०५ (क) ॥

मैं दुष्ट, नीच जाति और पापमयी मलिन बुद्धिवाला मोहवश श्रीहरिके मकों और द्विजोंको देखते ही बल उठता और विष्णुभगवान्से द्रोह करता था ॥ १०५ (क) ॥

शौ०—गुर नित मोहि प्रबोध सुखित देखि अचरन मम ।

मोहि उपजइ अति क्रोध ईमिहि बीति कि साधई ॥ १०५ (ख) ॥

शुक्ली मेरे आचरण देखकर दुःखित थे । वे मुझे नित ही कर्त्तमोंसे समझाते, पर [मैं कुछ भी नहीं समझता,] उल्टे मुझे अत्यन्त क्रोध उत्पन्न होता । शक्तीको कमी नीति अच्छी लगती है ! ॥ १०५ (ख) ॥

चौ०—एक बार गुर लीन छोड़ाई । मोहि नीति ब्यु अति सिखाई ॥

सिव सेवा कर फल सुत छोई । अविश्व भगति सम बू होई ॥ १ ॥

एक बार शुक्लीने मुझे कुछ दिव्य और बहुत प्रकारसे [परमार्थ] नीतिकी

विद्या ही कि हे पुत्र ! शिवजीकी उपासना चल रही है कि श्रीरामजीके चरणोंमें
प्रणाम भक्ति हो ॥ १ ॥

रामहि भवहि छत सिव बाग्य । नर धरैरु कै केतिक बात ॥

सामु चरन अन्न सिव अनुगामी । रामु प्रोहैं मुख चहसि अमागी ॥ २ ॥

हे तात ! शिवजी और ब्रह्माजी भी श्रीरामजीको भजते हैं [फिर] नीच मनुष्यकी
तो बात ही कितनी है ! ब्रह्माजी और शिवजी बिनके चरणोंके प्रेमी हैं, अरु अमागे !
उनसे प्रोह करके तू मुख चाहता है ! ॥ २ ॥

हर कष्टु हरि सेवक गुरु कहेक । सुनि सत्यवाच सुद्व मन रहैक ॥

अधम अति में विद्या पावै । भवतें क्या यदि दूष पिनाई ॥ ३ ॥

गुरुजीने शिवजीको हरिक सेवक कहा । वह सुनकर है परिप्राण ! मेरा हृदय अन्न
उन्न । नीच वादिष्ठ में विद्या पाकर ऐसा हो क्या जैसे दूष मिलानेसे सोंप ॥ ३ ॥

मागी कुठिल कुमार्थ कुमावी । गुरु कर प्रोह करवें दिनु राती ॥

अति दण्ड गुरु स्वयं न छोडा । दुष्टि दुष्टि मोहि सिखाव सुबोवा ॥ ४ ॥

अभिमानी, कुठिल, दुर्भाव और कुमावि में दिन-रात गुरुजीसे प्रोह करता ।
गुरुजी अत्यन्त दयालु थे, उनको योद्धा-का भी श्रेष्ठ नहीं भाता । [मेरे प्रोह करनेपर भी]
वै बार-बार मुझे उत्तम जानकी ही विद्या देवे ॥ ४ ॥

तेहि के नीच चहाई पावा । सो प्रथमहि इति कहि बसावा ॥

भूम जगल संभ्य सुनु माई । तेहि कुशल वत पदवी पाई ॥ ५ ॥

नीच मनुष्य बिकसे बढ़ाई पाता है, वह सबसे पहले उसीको मारकर उसीका
नाश करता है । हे माई ! सुनिये, अगले उत्तरण हुआ हुआ मेवकी पदवी, पाकर उसी
अभिमानकी हस्त देता है ॥ ५ ॥

सत् मन पही निरादर रहई । सब कर बर जहार मित सहाई ॥

नस्त उदाम प्रथम तेहि माई । दुष्टि हर कथन किरीटहि पवाई ॥ ६ ॥

भूख राखेमें निरादरसे पही रहती है और सदा सब [राज चक्रमेवाली] के
आशोंकी मार खाती है ; पर जब भयम उसे उड़ाता (खोला उड़ाता) है, तो सबसे
पहले वह उसी (भयम) को मर देती है और फिर राज्यभक्ति नेत्रों और किरीटों
(मुकुटों) पर पकती है ॥ ६ ॥

सुनु कथापति अन्न समुक्ति प्रसन्न । ज्ञान कीहि करहि अधम कर संग ॥

अभि कोरिन् राधहि अति नीती । सब सब कहव न भल नहि प्रीती ॥ ७ ॥

हे परित्याग सहकुली ! सुनिये, ऐसी बात समझकर बुद्धिमान लोग अधम (नीच)
का शत्रु नहीं करते । अभि और पण्डित ऐसी नीति कहते हैं कि दुष्टसे न कबहू ही
अच्छा है, न प्रेम ही ॥ ७ ॥

उदासीन विद्व रक्षिष्य बोझाई । सब परिहसि स्वान की माई ॥

मैं सब दुष्टों काट कुम्भिकाई । गुरु दिय कहव न मोहि सोहाई ॥ ८ ॥

हे गोमाई ! उससे तो क्या उदासीन ही स्वान-चाहिये । तुम्हको कुत्तेकी तरह
बूत्ते ही त्याग देना चाहिये । मैं तुम्ह का, दुष्टको काट-और कुम्भिका मरी थी ।
[इतीहिये नकसि] तुम्हकी दिकही काट कहते थे, पर मुझे वह मुहलसी न थी ॥ ८ ॥

सो—पक्ष कर हर मक्षिर तपन्न खेहैं सिव नाम ।

गुरु मायव अभिमान-तें अति बहि बहैह प्रथम ॥ १०६ (क) ॥

एक दिन मैं शिवजीके मन्दिरमें शिवनाम का रहा था। उन्हीं क्षण मुझमें सौं
आये पर भविष्यमानके बारे में उठकर उनको प्रणाम नहीं किया ॥ १०६ (क) ॥

सो दयालु नहीं ज्येष्ठ कछु सर ब खेव लखलेस ।

अति अप गुर भयमानज सहि नहि सके महेस ॥ १०६ (ख) ॥

मुझकी दयालु वे, [मेरा दोष देखकर भी] उन्होंने कुछ नहीं कहा। उनके
हृदयमें लेशमात्र भी अप्रिय नहीं हुआ। पर गुरुका भयानक बहुत बढ़ा था। अतः महादेवकी
उपे नहीं छूट गये ॥ १०६ (ख) ॥

सौ०—मंदिर गढ़ा गई नकवाली । १ हृदयमात्र का भविष्यदी ॥

जपरि सब गुर के नहि कोषा । अति कुलाल पित समक बोधा ॥ १ ॥

मन्दिरमें अकालप्रायी हुई कि ओ हृदयमात्र ! मूर्ख ! भविष्यदी ! यपरि तैरे गुरुको
कोष नहीं है, वे अत्यन्त कुलाल पितके हैं और ज्येष्ठ [पूर्ण तथा] वर्या, ज्ञान है, ॥ १ ॥

हरपि सत्य सब वेदों सोही । भीति विरोध सोहाइ न सोही ॥

औ नहि हृद करी सल सोरा । जह दोइ सुमिलाला मोरा ॥ २ ॥

तो भी हे मूर्ख ! तुझमें मैं सत्य सूँबा [क्योंकि] नीतिपर विरोध होते भयानक
नहीं लाता । ओ गुरु ! यदि मैं तुझे लात न दूँ, तो मेरा केवल सर्व ही श्रेष्ठ हो जाय ॥ २ ॥

जे सय गुर सय हसिया करी । सैय सल सोदि ह्य करी ॥

मिलन जोदि पुनि पारहि सरी । नकुल सल यरि पारहि पोरा ॥ ३ ॥

ओ मूर्ख ! तुमसे ईर्ष्या करते हैं, वे करोड़ों कुलाल सैय नरकमें भेज सकते हैं ।
किर (यही निकलकर) वे शिर्षक (सड़, ली आदि) गोमिर्षों सरी सयन करी
हैं और सब हृदय ज्योंसक दुःख भरो सकते हैं ॥ ३ ॥

कैड रहेसि सयन दय पावे । सय होदि सल सल गति पारी ॥

सल भिद्य कोर नहि जाई । सल नकवाली सयपति पाई ॥ ४ ॥

करे पारी ! तू मुझके सलने सयनको गति देस रहा । रे गुरु ! कैरी तुमसे पाले
उक गयी है, [अतः] ईर्ष्या हो क । और ओ भयपले भी भय ! इस भयगति
(लकी नीची गति) को कलर किसी भे मारी वेकके कोसकेमें जकर रह ॥ ४ ॥

सौ०—हाहाकार सौन्द गुर दासत सुधि सिला खर ।

कपित मोदि विलेकि अति उर वरजा पतिव ॥ १०७ (क) ॥

शिवजीका भयानक वास सुनकर मुझकी हाहाकार सिला । इसे बोझ हुआ
बैसाकर उनके हृदयमें बड़ा संताप उत्पन्न हुआ ॥ १०७ (क) ॥

करि दहवत स्रोम शिव सिव समुच्च कर जोरि ।

बिनय करत मदमद सर समुच्चि योर यति योरि ॥ १०७ (ख) ॥

प्रेमसहित दहवत करके वे आश्रय श्रीशिवजीके लामे हाव जोकर मेरी भयानक
गति (दण्ड) का विचार कर मन्द दासति किसी करने लगे— ॥ १०७ (ख) ॥

बामापीयमीयान निर्वासकर । विष्णु जकरक जल वेदलकर ॥

निज विष्णु निर्वासकर निरीह । विनावासायनकर भजेय ॥ १ ॥

हे मोक्षलक्षण, विष्णु, जकरक जल और केवलक ईश्वर दिखने ईश्वर तथा
अनेक क्षामी श्रीशिवजी । मैं वासको समझकर करता हूँ । निजवासायन सित (यही
मायाविरीयत) [वापिक] कुलाले यिक मेरदित, दहवतके केवल वापिकल

एवं आकाशको ही वस्तरूपमें धारण करनेवाले दिग्मन्दर [अथवा आकाशको भी आच्छादित करनेवाले] वायव्यो मैं भजता हूँ ॥ १ ॥

निराकारमोक्षारमूलं तुरीयं । निरा ध्यान गोतीतमीशंगिरिशं ॥

फराहं महाकाल कालं कृपाहं । गुणान्धार संसारपारं नतोऽहं ॥ २ ॥

निराकार, ओझारके नाल, तुरीय (तीनों गुणों से अतीत), नापी, धन और इन्द्रियों से परे, कैलाससि, विष्णुलाल, महाकालके भी काट, कृपाह, गुणोंके धाम, संसार से परे आप एसेम्बरको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

धुषाराद्रि, संकाश गौरं गभीरं । मनोमूढ कोटि प्रमथ श्री शरीरं ॥

स्फुरन्मौलि कलोलिनी चारुगंगा । ललझलवालेन्दु कंठे भुजंगा ॥ ३ ॥

श्री विमानलके समान गौरवर्ण तथा गम्भीर हैं, जिनके शरीरमें करोड़ों कामदेवोंकी ध्वनि एवं शोभा है, जिनके सिरपर सुन्दर नहीं गङ्गासी विराजमान हैं, जिनके कलाटपर द्वितीयाका चन्द्रमा और गलेमें त्रयं कुसुमेष्व हैं ॥ ३ ॥

बलकुण्डलं भू भुजेयं विशालं । प्रसन्नाननं नीलकण्ठं दयालं ॥

मृगाभीशमर्माभ्यं मुण्डमालं । प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि ॥ ४ ॥

जिनके कानोंमें कुण्डल हैं, जिनके भुजोंमें विशाल नेत्र हैं, जो प्रसन्नमुख, नीलकण्ठ और दयालु हैं; तिर्यचर्मका वस्त्र धारण किये और मुण्डमाछा पहने हैं; उन सबके प्यारे और सबके नाथ [कल्याण करनेवाले] श्रीवन्द्यजीको मैं भजता हूँ ॥ ४ ॥

प्रकाशं प्रकाशं प्रकाशं पेशं । अखंडं बलं भानुकोटिप्रकाशं ॥

प्रयाः शूलं निर्मूलं शूलपतिं । मजेऽहं मवानिपति भावगम्यं ॥ ५ ॥

प्रकाश (स्वरूप), मेघ, तेजस्वी परमेश्वर, अक्षय, अखण्ड, करोड़ों सूर्यों समान प्रकाशवाले, तीनों प्रकारके शूलों (दुःखों) को निर्मूल करनेवाले, हाथमें त्रिशूल धारण किये, माय (प्रेम) के द्वारा मज्ज होनेवाले मदानीके प्रति श्रीवन्द्यजीको मैं भजता हूँ ॥ ५ ॥

कलातीत कल्याण कल्याणकारी । सदा सज्जनानन्ददाता पुण्यी ॥

चिदानन्द संतोह मोहापहारी । प्रसीद प्रसीद प्रमो मम्मयारी ॥ ६ ॥

कलाभी से परे, कल्याणस्वरूप, कल्याण अन्त (प्रकाश) करनेवाले, सज्जनोंको सदा आनन्द देनेवाले, त्रिपुरके शत्रु, अस्मिदमन्वधन, मोहको हरनेवाले, मनको मज्ज डालनेवाले कामदेवके शत्रु, हे प्रमो ! प्रसन्न हूँकिने, प्रसन्न हूँकिये ॥ ६ ॥

न यावद् उमानाथ पद्मारविन्दं । सजतीह लोके परे वा नराणां ॥

न तावत्सुखं शान्ति सन्तपनाशं । प्रसीद प्रमो सर्वभूताधिवासं ॥ ७ ॥

जवनक पार्श्वोंके प्रति आपके कल्याणकर्मोंको स्मरण नहीं भवते, तबतक उन्हें न दो इच्छेक और परलोकमें सुख-शान्ति मिलती है और न उनके तापोंका नाश होता है । अतः हे कल्याण जीवोंके अन्तर (हृदयमें) निजित करनेवाले प्रमो ! प्रसन्न हूँकिये ॥ ७ ॥

न जानामि योगं जपं नैव पूजां । नतोऽहं सदा सर्वदा शंसुं तुभ्यं ॥

अप्य जन्म दुःखौघ व्यतप्यमानं । प्रमो पाहि आपन्नमाभीश शंभो ॥ ८ ॥

मैं न तो योग जानता हूँ, न जप और न पूजा ही । हे सम्भो ! मैं तो सदा-सर्वदा आपको ही नमस्कार करता हूँ । हे प्रमो ! कुदृश्य तथा जन्म [मृत्यु] के दुःखसमूहों से बलसे हुए दुःख दुःखीनी कुशल से रक्षा कीजिये । हे देव ! हे सम्भो ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ८ ॥

श्लोक—कदाएकमिदं प्रोक्तं विप्रैः हृद्योपमे ।
ये पश्यन्ति तदा भक्त्या तेषां हृद्यमु प्रसीदति ॥ १ ॥

मन्वात् खल्वे खल्विष्यत् न मत्त उच्यते नवीनी गृष्टि (प्रकृता) के विप्रे
ब्राह्मणद्वारा कहा गया । जो सुख श्रे गतिपूर्वक पढ़ते हैं उनका भवदान् शम्भु
प्रदान होते हैं ॥ १ ॥

दो०—सुनि विनती छर्चव सिव वेधि विद्य जगुगु ।

पुनि मंदिर नमस्की यद् दिवकर कर मायु ॥ १०८(क) ॥

छर्चव विनतीने विनती सुनी और ब्राह्मण प्रेम सेवा । इन मन्दिरमें भावना-
वाणी हुई कि हे दिवसे । कर मंगे ॥ १०८(क) ॥

जौ प्रसन्न प्रभु ओ पर मन्त्र दीव कर वेदु ।

निज पद भगति हो प्रभु पुनि दूसर कर वेदु ॥ १०८(ख) ॥

[ब्राह्मणने कहा—] हे प्रभो ! यदि मन्त्र कुत्तर प्रसन्न हैं और हे नाथ ! यदि
हम दीनकर आलस्य छोड़ दें तो पहले अपने चरणोंकी मति देकर फिर दूसरा कर
दीविये ॥ १०८(ख) ॥

तब माया पद जीव जह संज्ञा सिद्ध युक्तव ।

तेहि पर श्लेष न करिय प्रभु कुक्षिसिद्ध भगवान् ॥ १०८(ग) ॥

हे प्रभो ! वह वाक्यनी जीव भावकी मन्त्रके वह दोष निम्नतः सूक्त सिद्ध है ।
हे कुपके समुद्र मगध । उनका श्लेष न कीजिये ॥ १०८(ग) ॥

संकर दीनवन्त नव यदि पर होइ कुपस ।

साप जगुगु होर जेहि नव धोरिहीं वरु ॥ १०८(घ) ॥

हे दीनोत्तर दया करनेवाले [कृपाकर] संकर । भव इत्तर कुपस होकर
(कृपा कीजिये) । जिसके हे नाथ ! योद्धे ही सत्यमें इत्तर वाक्यके नव जगुगु (कृपासे
हुकि) हो नाथ ॥ १०८(घ) ॥

चौ०—यदि कर होइ परम कर्मका । तब जह पद कुक्षिसिद्ध ॥

विज गिर सुनि परहित साधो । द्रवमदु इति नव शेषवाची ॥ १ ॥

हे कुपानिधान ! अब कही कीजिये जिससे इत्तर परम कर्मका हो । पहलेके हिले
कनी हुई ब्राह्मणकी वाणी कुपकर फिर आकाशवाणी हुई—‘द्रवमदु’ (दिला दी दो) ॥ १ ॥

नदपि कीन्ह कहि कर्म पाष । ये सुनि दीनवन्त कोर करि साध ॥

कदपि तुम्हारी संजुता देखी । कविहर्षे यदि पर कुप सिनेली ॥ २ ॥

यद्यपि इतने भयानक रूप निज दे कोर मी गो हरे कोष करके साध दिया है तो
भी तुम्हारी सजुता देखकर मैं साधक सिने कुप कर्मका ॥ २ ॥

जमखीव जे नर कर्मकारी । ते, दिव सोदि दिव जगजगदी ॥

मोर नाथ द्विज जगदी न नखति । नम कर्मक नमक, नद पदपि ॥ २ ॥

हे दिव । जो जमखीव एवं कर्मकारी होते हैं, वे कुले वैसे ही द्विज हैं जैसे जगदी
कीरामचन्द्रजी । वे दिव । मेरा नाम जगदीचन्द्रनाथ । वह इत्तर जगजगदीचन्द्रनाथ ॥

नमस्त मरुत कुपस हूँ । यदि कर्मजगदीचन्द्रजी कीजिये तोह ॥

कविहर्षे कर्म सिद्धि भवि जगदी १-सुनदि सुन मम कर्मक प्रसन्न ॥ २ ॥

परन्तु जगदीचन्द्र और कविहर्षे को बुझा दुःख होता है, इससे वह दुःख नरा थी

न व्यापेगा और किसी भी जन्ममें इसका ज्ञान नहीं मिलेगा । हे भद्र ! मेरा प्राणात्मिक (सत्य) बचन सुन ॥ ४ ॥

रक्षुरति पुरीं जन्म सब भयल । पुनि हैं सम सेवों मन दृक्क ॥

पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरें । राम भगति उपविष्टि तर तोरें ॥ ५ ॥

[प्रथम तो] हेरा जन्म श्रीरघुनाथजीकी पुरीमें हुआ । फिर तुने मेरी सेवामें मन आया । पुरीके प्रभाव और मेरी कृपासे तेरे हृदयमें रामभक्ति उत्पन्न होगी ॥ ५ ॥

सुनु मम बचन सत्य सब भाई । हरितोषन उत द्वित सेवकाई ॥

सब पनि करहि विप्र ब्रह्मसत्ता । वाग्येसु संत अनेक समाना ॥ ६ ॥

हे नाई ! अब मेरा सत्य बचन सुन । द्वितीयकी सेवा ही अगवान्को प्रथम करने-वाला मत है । अब कभी ब्राह्मणका अवमान न करना । सर्वोच्चो अमन्त श्रीभगवान्हीके समान जानना ॥ ६ ॥

भद्र कुलिस मम सूल निराला । काळवंड हरि चक्र कराका ॥

औ इन्ह कर मारा बहि मरुं । विप्र प्रौढ पावक सो जरई ॥ ७ ॥

इन्हके चक्र, मेरे विद्याल निष्कल, काळके दण्ड और भीड़िके विकराल चक्रके मारे भी जो नहीं मरता, वह भी विप्रप्रौढरूपी अस्ति मरता हो जाता है ॥ ७ ॥

कस विवेक राखेहु सब माहीं । सुन्द कई का दुर्जन कसु माहीं ॥

सौरव एक भासिया मोरी । अप्रतिहत गति होइहि सोरी ॥ ८ ॥

ऐसा विवेक मझमें रखना । फिर दुम्हारे जिये जगत्में झूठ भी दुर्जन न होगा । मेरा एक और भी आशीर्वाद है कि दुम्हारी सर्वत्र भवाप गति होगी (अर्थात् मैं नहीं जाना चाहोगे, नहीं बिना रोक-टोकके वा सकोगे) ॥ ८ ॥

१०—सुनि सिध बचन हरणि गुर पचमस्तु छति भापि ।

मोहि प्रबोधि गयल गृह खंभु सरन वर रापि ॥ १०९(क) ॥

[आकाशवाणीके द्वारा] शिवजीके बचन सुनकर दुम्हकी इष्टि होकर ऐसा ही हो । यह कहकर तुम्हें बहुत सम्झाकर और शिवजीके चरणोंको धुवनेमें रखकर अपने घर गये ॥ १०९(क) ॥

मेरि काल विधि विरि जाह मयलैं मैं ज्यल ॥

पुनि प्रयास विनु सो तजु सजेरैं गरैं कहु काल ॥ १०९(ख) ॥

काँकी प्रेरणासे मैं विन्यासकर्में नाशर उपे हुआ । फिर कुछ काल बीतनेपर बिना ही परिश्रम (कष्ट) के मैंने वह करीर त्याग दिया ॥ १०९(ख) ॥

जोर तनु धरलैं तजलैं पुनि जन्मयास हरिजान ।

जिमि नूतन पट पहिरा कर परिहरा पुरान ॥ १०९(ग) ॥

हे हरिवाहन ! मैं जो भी करीर प्राप्त करता, उसे बिना ही परिश्रम कैसे ही कुछ पूर्वकल्याण देता था जैसे अनुस्य पुराना कल्ला त्याग देता है और नया पहिन देता है ॥ १०९(ग) ॥

सिखैं राखी अति सीति यह मैं नहि पाचा ह्वेस ।

एहि विधि धरैलैं विविधि तनु भ्यान न गयल खोस ॥ १०९(घ) ॥

शिवजीने वेदकी मर्यादाकी रक्षा की और जी क्लेश भी नहीं पावा । इस प्रकार हे भक्तिपल ! मैंने बहुतसे करीर प्राप्त किये, पर मेरा ज्ञान नहीं गया ॥ १०९(घ) ॥

चौ—त्रिमा देव कर जोइ तनु धरलैं । तई तई राम भजन अनुसरलैं ॥

११—सुन सुन मोहि विरार न कात । गुर कर कोसल सीक सुमात ॥ ११ ॥

सिनेकू योनि (कामधनी) देवता का सुपुत्र। जो भी शरीर धारण करता, वहाँ-
 पावों (उप-उप शरीरों) में भीरुमयी भजन करी रखता । [इस प्रकार मैं सुली
 हो गया] कल्प एक सप्त मुने बना रहा । बुद्धिमान लोक, सुनील समस्त मुने कभी
 नहीं भूला (कभी) मैंने ऐसे कोपलसमान दण्ड तुम्हारा कपटन किया, पर तुम्हें
 मुझे भया बना रहा ॥ १ ॥

उत्तम देव द्विज के मैं हूँ । तुम दुर्जन तुम्हें मुनि नहीं ॥

सेवक मैं कल्पक मिला । कहीं कलक रहवायक किया ॥ २ ॥

मैंने अन्तिम शरीर प्राप्तकर पाया, जिसे पुराण और वेद देवताओंको भी दुर्जन
 कहाते हैं । मैं वहाँ (आलय-शरीरों) में प्रकटित होकर लेला तो भी भुनावनीकी
 ही तब कीकॉरें किया करता ॥ ३ ॥

मैंने भई मोहि विना कथा । कल्पकें तुम्हें मुनि नहीं भला ॥

मम ते सकल कथना जायें । केवल उक्त कथन रूप कायी ॥ ४ ॥

कथना होनेपर सिद्धि मुने सत्ये को । मैं कल्पक तुम्हें और विनाश ॥ ५ ॥
 मुने भूना अन्त नहीं कथा या । मेरे मनो-शरीर कल्पकें बनायी । केवल
 भीरायकी के कल्पोंमें का कथनी ॥ ६ ॥

कल्प कल्पक मम कथन भवनी । कहीं से कल्पकें कथनी ॥ ७ ॥

मैंने अन्त मोहि कल्प न सोचाई । इमेर विना कथा कथाई ॥ ८ ॥

हे गणेश ! कहिये, ऐसा हीन कथना-दोषा को कल्पकें मुने कोपक कथनी
 केना करी । मेरे मम रहनेके कारण, मुने कल्प में नहीं कथना । सिद्धि कथना-कथन
 का राये ॥ ९ ॥

पर कल्पक मम विना कथा । मैं कथनी कथन कथना ॥

कहीं नहीं विनिग दुर्जन कथनी । कथन का कथन विना कथनी ॥ १० ॥

पर विना-कथन कथन ही गये (न गये) । मम मैं कथनी का कथनके
 भीरायकी का भजन करनेके लिये कथनी कथन मम । कथनी कथनी कथनी के नाम
 पाया, कथनी कथनी का-कथन कथनी विना कथनी ॥ ११ ॥

कथनी कथनी का कथन कथनी । कथनी कथनी कथनी कथनी ॥

कथन कथनी ही कथन कथनी । कथनी कथनी कथनी कथनी ॥ १२ ॥

हे गणेश ! उनसे मैं भीरायकी कथनी कथनी कथनी । वे कथनी कथनी कथनी कथनी
 कथनी । इस प्रकार मैं कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी । कथनी कथनी कथनी
 मेरी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी ॥ १३ ॥

कथनी कथनी कथनी कथनी । कथनी कथनी कथनी कथनी ॥

कथन कथनी कथनी कथनी । कथनी कथनी कथनी कथनी ॥ १४ ॥

मेरी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी । कथनी कथनी कथनी कथनी
 कथनी और कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी । कथनी कथनी कथनी कथनी
 कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी ॥ १५ ॥

मेरी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी ॥

विनिग मम मेरी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी ॥ १६ ॥

कथनी मैं कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी । कथनी कथनी कथनी कथनी
 मम मुने नहीं कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी कथनी ॥ १७ ॥

दो—गुर के वचन सुनति करि राम खन मनु लग्य ।

रघुपति जस गावत फिरत छन छन नव अनुपम ॥११०(क)॥

गुरुजीके वचनोंका स्मरण करके मने मन श्रीरामजीके चरणोंमें लगा गया । मैं क्षण-क्षण नया-नया प्रेम प्राप्त करता हुआ श्रीरघुनाथजीका वक्ष माता फिरता था ॥ ११०(क) ॥

मेव सिद्धर वट छर्पा मुचि लोभस आसीन ।

देखि खन सिह नाथत वचन कहैत अति दीन ॥११०(ख)॥

मुनेरूपरतके शिखरपर बटजी काकसे लोभस मुनि बैठे थे । उन्हें देखकर मैंने उनके चरणोंमें सिर नवाया और अत्यन्त दीन बचन कहे ॥ ११०(ख) ॥

मुनि मम वचन वितौत सुदु मुनि कपाल खमराज ।

मोहि साधर पूछत अप दिव आयहु केहि काज ॥११०(ग)॥

हे-पक्षिराज ! मैं आनन्द नग्न होकर झोमक वचन सुनकर कपाल मुनि मुझसे आदरके साथ पूछते-छो—हे ब्राह्मण ! आप किस कार्यसे यहाँ आये हैं ॥ ११०(ग) ॥

तब मैं कहा कृपानिधि तुम्ह सर्वग्य सुजान ।

सगुन ब्रह्म भवराजस मोहि कहहु भगवान ॥११०(घ)॥

तब मैंने कहा—हे कृपानिधि ! जान सर्वज्ञ हैं और सुखान हैं । हे भगवन् ! मुझे सगुण ब्रह्मकी आराधना [की प्रक्रिया] कहिये ॥ ११०(घ) ॥

चौ—तब मुनीस खरुपति गुन पाया । कहे कहुक साधर खगलाया ॥

ब्रह्मपाप हत मुनि कियनी । मोहि परत अधिकारी जानी ॥ १ ॥

तब हे पक्षिराज ! मुनीभरने श्रीरघुनाथजीके गुणोंकी कुछ कपाएँ आदरसहित कहीं । फिर वे ब्रह्मसन्भवाका विद्यानवाद् मुनि मुझे परम अधिकारी जानकर— ॥ १ ॥

जाने कलम ब्रह्म उपदेश । भक्त खैत भगुन हृदयसा ॥

भक्त भगीह भक्तम भक्त्या । भक्तुभक्त राख भक्तक भक्त्या ॥ २ ॥

ब्रह्मका उपदेश करते छो कि वह अलम्ब्य है, अखैत है, निर्गुण है और हृदयका सामी (भक्त्यामी) है । उसे कोई बुद्धिके द्वारा माप नहीं सकता, वह इच्छारहित, नामरहित, कर्परहित, अनुभवी जानने योग्य, अलम्ब्य और उपमावहित है, ॥ २ ॥

जग गोहीत भक्त अधिकारी । निर्निहार चित्तधि दुख राखी ॥

सो तैं ठाहि छोहि नहि मेरा । करि बीचि हृदय गतिहि बेदा ॥ ३ ॥

वह मन और बुद्धिके परे, निर्मल, विनाशरहित, निर्बिकार, धीमावहित और सुखकी प्राप्ति है । वेद देख गते हैं कि वही तू है (तत्त्वमसि) ; भक्त और जलकी छद्मजी मोंति ठकने और तुझमें कोई भेद नहीं है ॥ ३ ॥

विधिनिर्वाति मोहि मुनिसुखला । निर्गुन मत्त मम हृदयें न साधा ॥

मुनि मैं खैतें नाह नद सीसा । सगुन उपासन कहहु मुनीसा ॥ ४ ॥

मुनिने मुझे अनेकों प्रकारसे समझाया, पर निर्गुण मत्त मेरे हृदयमें नहीं बैठा । मैंने फिर मुनिके चरणोंमें सिर नवाकर कहा—हे मुनीश्वर ! मुझे 'सगुण' ब्रह्मकी उपासना कहिये ॥ ४ ॥

राम भगति जल मम मन सीसा । किमि बिलकाह मुनीस प्रवीता ॥

छोड़ उपदेश कहु करि दासा । निव नवनहि देखीं खुराया ॥ ५ ॥

मेरा मन रामभक्तिजी जलमें मछली हो रहा है (तवीमें रा रहा है) । हे चतुर

सुनिश्चर ! ऐसी दशमे वह उसके जग्य कैंसे हो सकता है ! आप दया करके मुझे वही उपदेश (उपाय) कहिये जिससे मैं श्रीधुन्नायकीको अपनी ओरसे देख सकूँ ॥ ५ ॥

भरि सोचन विनोदि जबकेखा । तब सुनिहई निर्गुन उपदेश ॥

सुनि सुनि कहि हरिकथा कसूख । सोहि बहुत सब अमुन विरुपा ॥ ६ ॥

[फले]नेत्र भरकर भोगभोगानामको देखकर उस निर्गुनका उपदेश सुनूँ । मुझे फिर अनुपम हरिकथा कहकर, समुप सबका सम्पन्न करके निर्गुनका निरूपण किया ॥ ६ ॥

तब मैं निर्गुन का कर हूरी । समुन विरुपई भरि हठ भूरी ॥

बसत प्रतिततर मैं सोचि । सुनि तब भव शेष के चीन्हा ॥ ७ ॥

तब मैं निर्गुन काको इदोकर (कटकर) बहुत हठ करके समुनका निरूपण करने लगा । मैंने उत्तर-प्रत्युत्तर किया, इससे मुझे शरीरमें जोनकेविह उपलब्ध हो गये ॥ ७ ॥

सुनु प्रभु बहुत प्रसन्ना किई । तबत शेष साकिह के हिई ॥

अति संवरपन की कर छोई । भगव प्रभु चंद के होई ॥ ८ ॥

हे प्रभो ! मुनिसे, बहुत जपसाध करनेपर मनीके भी इतकमें शेष समाप्त हो जाता है । यदि कोई कन्दनकी लकड़ीको बहुत अधिक रगड़े, तो उसके भी काँच प्रकट हो जायगी ॥ ८ ॥

श्री०—चारधार सखोप सुनि करर विरुपम ग्याब ।

मैं अपने सब बैठ तब करई बिबिधि अनुमान ॥ १११ (क) ॥

मुनि बार-बार शोकाहित सन्तान निरूपण करने लगे । तब मैं बैज-बैज अपने मनमें अनेकों प्रकारके अनुमान करने लगा— ॥ १११ (क) ॥

श्रोत्र कि दैतसुनि विनु दैत विनु अन्धकार ।

मायाबल परिचित जग जीव ईस समान ॥ १११ (ख) ॥

जिना दैतसुनिके शेष बैज और निज अन्तर्गत क्या दैतसुनि हो सकती है ? मायाके बल रहनेवाला परिचित जग जीव सब ईश्वरके समान हो सकता है ॥ १११ (ख) ॥

श्री०—कहाँ कि हुक सब कर हित ठाँव । वेदि कि सुनि पार मति काँव ॥

परजोही की होई निरुप । कभी-जुपि कि रहई कलकल ॥ १ ॥

सबका हित चाहनेसे क्या कभी दुःख हो सकता है ? जिसके पाप पारसवि है, उसके पाप क्या ररिद्रता रह सकती है ? दूसरेसे श्रेष्ठ करनेवाले क्या विषय हो सकते हैं ? और कामी क्या कलकलित (वेदना) रह सकते हैं ? ॥ १ ॥

ईस कि रह हिव अनहित कोई । कर्म कि होई लक्ष्मण कोई ॥

काहु सुसति कि कल हँस लकी । सुन गति परकिपसक्ति गयी ॥ २ ॥

मायाका कुरा करनेसे क्या फल रह सकता है ? स्वभावसे परिचित (आत्मज्ञान) होनेपर क्या [भावविपूर्वक] कर्म हो सकते हैं ? दुष्टोंके लक्ष्मण फल क्रिष्णके शुद्धि उत्पन्न हुई है ? परकीयायी क्या ज्ञान गति पा सकता है ? ॥ २ ॥

जब कि परहि अन्धकार विरुप । सुख कि होई कर्मई हरिकिप ॥

सब कि रहई नीति सिनु कर्म । जब कि रहई हरिचरित कर्म ॥ ३ ॥

कर्मकाको अपनेकोके कहीं कर्म-मरण [के चक्र] में पड़ सकते हैं ? भगवान् भी निन्दा करनेवाले कभी सुखी हो सकते हैं ? नीति जिना अपने कल राज्य रह सकता है ? भीहरिके चरित्र कर्म करनेपर सब फल रह सकते हैं ? ॥ ३ ॥

पावन उस कि पुण्य मिलु होई । रिनु अब बचस कि पावहु कोई ॥

छाहु कि किहु हरि सगल समान । कोहि गानहि भुति संत पुरान ॥ ४ ॥

विना पुण्यके क्या पवित्र ब्रह्म [प्राप्त] हो सकता है ? विना पापके भी क्या कोई अपराध पा सकता है ? जिसकी गहिख वेद, संत और पुराण गाते हैं उस हरिमन्त्रिके समान क्या कोई दूसरा जन्म भी है ! ॥ ४ ॥

हादि कि जग पढ़ि सम किहु भाई । मखि न रामहि नर उनु पाई ॥

अब कि पिसुमता सम कहु आन । धर्म कि दया सरिस हरिजाना ॥ ५ ॥

हे भाई ! जगत्में क्या इसके समान दूसरी भी कोई हानि है कि मनुष्यका शरीर पाकर भी श्रीरामजीका भजन न किया जाय ? सुमन्त्रादिके समान क्या कोई दूसरा पाप है ? और हे गुरुजी ! दयाके समान क्या कोई दूसरा धर्म है ! ॥ ५ ॥

पढ़ि विधि लखि विनुति मन मुनकें । मुनि उपदेस न सखर सुनकें ॥

पुनि पुनि सगुण पण्ड में रोष । तब मुनि बोलेउ बचन सजोर ॥ ६ ॥

इस प्रकार मैं अनभिज्ञत मुक्तियों मन्में विचारता था और आदरके साथ मुनिका उपदेश नहीं सुनता था । अब मैंने बार-बार सगुणका पक्ष स्थापित किया, तब मुनि कोचयुक्त वचन बोले— ॥ ६ ॥

मूढ परम स्थित केहैं न मयसि । उचर प्रसिद्धतर बहु आनसि ॥

सत्य बचन निश्वास न करही । कायस ह्व सखी से करही ॥ ७ ॥

अरे मूढ ! मैं तुझे सर्वोत्तम शिक्षा देता हूँ, तू भी तू उधे नहीं मानता और बहुवचने उत्तर-प्रत्युत्तर (दलीलें) छकर रखता है । मेरे सत्य वचनपर विश्वास नहीं करता ! कौएकी भाँति सभीसे बरता है ॥ ७ ॥

सठ स्वरपण्ड तब द्वयर्षे निस्तान । तपदि होहि पण्डी चंडाकर ॥

छीन्ह जातु मैं सीस चढ़ाई । नहि कहु भयन दीनता भाई ॥ ८ ॥

अरे मूर्ख ! तैरे हृदयमें अपने पक्षका बड़ा भारी इश है । अतः तू सीस चण्डाल पक्षी (कौआ) हो जा । मैंने आनन्दके साथ मुनिके श्लाघको सिरपर चढ़ा लिया । उससे तुझे न कुछ भय हुआ, न दीनता ही आयी ॥ ८ ॥

शे०—गुरुत मयहैं मैं काय तब पुनि मुनि पण्ड सिख भाइ ।

सुमिरि राम रघुर्वंस मखि । हरषित खलेहैं उवाह ॥ ११२(क) ॥

तब मैं व्रत ही कौणा हो गया । फिर मुनिके चरणोंमें तिर नवाकर और रघुपतिरोमण श्रीरामजीका सारण करके मैं हर्षित होकर उड़ चला ॥ ११२(क) ॥

उमा जो राम चरन रत विगत काम मद कोष ।

निज प्रभुमय देखहि जगत कोहि । सन कहि विरोध ॥ ११२(ख) ॥

[निवृत्ति करते हैं—] हे उमा ! जो श्रीरामजीके चरणोंके प्रेमी हैं और काम, अमिमान तथा क्रोधसे रहित हैं, वे जगत्को अपने प्रभुसे मरा हुआ देखते हैं, फिर वे किससे वैर करें ॥ ११२(ख) ॥

शे०—छुत जगस यहि भवु रिपि पूषन । उरं प्रेसक खुबंस विभूषन ॥

छपासिहु मुनि मति करि मोरी । खिन्ही प्रेम परिच्छा मोरी ॥ १ ॥

[काकनुहण्डिनीने कहा—] हे परित्याग भगवन्जी ! मुनिके, इसमें श्रविका कुछ भी दोष नहीं था । रघुवंशके विगुण श्रीरामजी ही उनके हृदयमें प्रेरणा करनेवाले हैं । छपासागर प्रभुने मुनिकी बुद्धिको मोली करके (मुक्तवा देकर) मेरे प्रेमी पक्षी ही ॥ १ ॥

मन दध प्रम मोहि मित्र जन भावा । मुनि मति मुनि फेरी भगवान् ॥

त्रिपि मम ॥ १ ॥ सौम्य देखी । राम पद विनाश विधिरी ॥ २ ॥

मन, धन और कर्मजन्म प्रगुने मुझे अपना दास बन गया । तब भगवान् ने मुझकी बुद्धि फिर फट दी । मुझने मेरा महान् पुस्तक-श्रावण (वैदिक, यज्ञोपवीत आदि) और श्रीरामजीके चरणोंमें स्निग्ध निवास देखा ॥ २ ॥

अति विस्मय मुनि मुनि पतिवार्द । सादर मुनि मोहि कीन्ह बोधार्थ ॥

मम परितोष विविध विधि कीन्हा । इतिवत् सततवत् धन दीन्हा ॥ ३ ॥

तब मुझने बहुत दुःखसे सब बात-बात फलानकर मुझे आदरपूर्वक बुला लिया । उन्होंने अनेकों प्रकारसे मेरा सन्तोष किया और तब हर्षित होकर मुझे रामस्नान दिये ॥ ३ ॥

बालक रूप राम कर जगत् । कहेन मोहि मुनि कुमारीनाम ॥

सुन्दर सुन्दर मोहि अति भला । सो प्रथमहि मैं बुद्धहि मुझका ॥ ४ ॥

कृपानिधान मुझने मुझे बालक रूप श्रीरामजीका नाम (कानकी विधि) बतलाया । सुन्दर और सुख देनेवाला वह ध्यान मुझे बहुत ही अच्छा लगा । वह ध्यान मैं आपसो पहले ही हुना चुका हूँ ॥ ४ ॥

मुनि मोहि कहुन कल लई रत्न । समस्त विद्वान् सब जगत् ॥

सादर मोहि यह कथा सुनवाई । मुनि बोले मुनि विना सुनवाई ॥ ५ ॥

मुझने कुछ समझकर मुझको कहाँ (अपने पास) रखा । सब उन्होंने रामचरित्र-मानस धारण किया । आदरपूर्वक मुझे यह कथा सुनकर फिर मुनि मुझसे इन्त्यर माग्यो थोड़े— ॥ ५ ॥

रामचरित सर सुन सुनाना । मनु प्रसाद लत मैं जगत् ॥

मोहि मित्र भवत राम कर वाणी । अते है सब कहेन जगत् ॥ ६ ॥

हे तात ! वह सुन्दर और सुन रामचरितमानस मैंने विनयीकी कृपसे पाया था । हुनै श्रीरामजीका 'मित्र भक्त' नामा, इसीसे मैंने तुमसे सब परिचय विचारके साथ कहा ॥ ६ ॥

राम भगति किन्हा मैं दर गयी । कहुन सब कहेन किन्हा पायी ॥

मुनि मोहि विविध भोगि स्मृतावा । मैं अपने मुनि पद सिद्ध रखा ॥ ७ ॥

हे तात ! जिसके हृदयमें श्रीरामजीकी भक्ति बड़ी है, उसके समने इसे कभी भी नहीं कहना चाहिये । मुझने मुझे बहुत प्रकारसे सम्माना । तब मैंने प्रेमके साथ मुझके चरणोंमें सिर नवाया ॥ ७ ॥

मित्र कर कर्म करति सब कीन्हा । इतिवत् अतिवत् दीन्हा मुझका ॥

राम जगति अतिवत् कर लीरें । कसिहि कल प्रसाद सब मोरें ॥ ८ ॥

मुनीकरने अपने कर-कर्मसे मेरा फिर सर्व-कारके हर्षित होकर आशीर्वाद दिया कि जब मेरी कृपसे तू हृदयमें सदा प्रसाद राम-भक्ति रखेगी ॥ ८ ॥

दो—सदा राम प्रिय होइ तुम्ह सुख सुख प्रभव जगत् ॥

कामरूप इच्छामरण आवे विनाश विनाश ॥ ११३ (क) ॥

तब सदा श्रीरामजीसे प्रिय होगी और कल्याणरूप दुर्गति का, मानसिक, इच्छानुसार सब कारण करनेमें लगे, इच्छामरण (जिसकी अति जोड़नेकी इच्छा करनेसे ही बहुत दो, बिना इच्छाके सदा न हो) एवं काम और कैरामके भयान होगी ॥ ११३ (क) ॥

जेहि आश्रम तुम्ह बसव पुनि सुमिरत श्रीमगवंत ।

व्यापिहि तहँ न भविचा जोजन एक प्रजंत ॥११३(ख)॥

इतना ही नहीं; श्रीभगवान्‌को शरण करते हुए तुम जिस आश्रममें निवास करोगे वहाँ एक योजन (चार कोश) तक भविष्य (भावा-मोह) नहीं व्यापेगी ॥ ११३(ख) ॥

चौ०—काल कर्म युव दोष सुभाळ । कहु दुख तुम्हहि न व्यापिहि काल ॥

राम रहस्य ललित बिधि जाना । युग प्रकट इतिहास पुराना ॥ १ ॥

काल, कर्म, गुण, दोष और स्वभावसे उत्पन्न कुछ भी दुख तुमको कर्मों नहीं व्यापेगा । अपनेको प्रकारके सुन्दर श्रीरामजीके रहस्य (गुप्त मर्मके चरित्र और गुण), जो इतिहास और पुराणोंमें युग और प्रकट हैं (वर्णित और ललित हैं) ॥ १ ॥

बिनु भ्रम तुम्ह जानव सब सोऊ । पित नव नेह राम बंद होऊ ॥

जो इच्छा करिहु मग साही । हरि प्रसाद कहु दुर्लभ नाहीं ॥ २ ॥

तुम उन सबको भी बिना ही परिभ्रम जान जाओगे । श्रीरामजीके शरणोंमें तुम्हारा मिलन नया प्रेम हो । अपने मनमें तुम जो कुछ इच्छा करोगे, श्रीहरिकी कृपासे उसकी पूर्ति कुछ भी दुर्लभ नहीं होगी ॥ २ ॥

मुनि मुनि आसिब सुहु मतिधीर । प्रहसित भव गगन गँजीरा ॥

पुत्रजस्तु तन बच मुनि ग्यानी । वह भग्न भग्न कर्म मग बानी ॥ ३ ॥

हे श्रीरघुनि गम्भीरी । मुनिवै, मुनिक आशीर्वाद सुनकर आकाशमें गम्भीर प्रहसारी हुई कि हे गानी मुनि । तुम्हारा बचन ऐसा ही (सत्य) हो । यह कर्म, मन और बचनसे मेरा भक्त है ॥ ३ ॥

मुनि बगवित हरष मोहि मजक । प्रेम भगव सब संसय राखक ॥

करि विनती मुनि आम्ह सुपाई । पर सरोज मुनि पुनि सिध पाई ॥ ४ ॥

आकाशवाणी सुनकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ । मैं प्रेममें सब हो गया और मेरा सब संदेह जाता रहा । तदनन्तर मुनिकी विनती करके, आशा पाकर और उनके शरणकर्मत्वमें बार-बार स्थिर नवाकर— ॥ ४ ॥

हरष सहित पाई आश्रम आवतैं । प्रभु प्रसाद दुर्लभ बर पावतैं ॥

इहाँ बसत मोहि सुहु सन ईला । पीते कल्प खात नव बीसा ॥ ५ ॥

मैं हर्षसहित इस आश्रममें आया । प्रभु श्रीरामजीकी कृपासे मैंने दुर्लभ वर पा लिया । हे पक्षिपति ! मुझे यहाँ निवास करते सदाईस कल्प बीत गये ॥ ५ ॥

करतैं सदा खुषति युव गाना । सत्तर सुन्दरि विहंग सुभावा ॥

नव नव जनबडुहीं खुसीना । कहि मगत हित मनुज सरीरा ॥ ६ ॥

मैं यहाँ सदा श्रीरघुनाथजीके गुणोक्त गान किया करता हूँ और चतुर पक्षी ठहरे आदरपूर्वक सुनते हैं । जम्बूद्वीपमें नव-नव श्रीसुवीर भक्तोंके [हितके] जिसे मनुष्यशरीर धारण करते हैं ॥ ६ ॥

तब तब बाद राम हत खतैं । सिमुलील बिलोकि सुख कहतैं ॥

पुनि उर लखि तब सिमुलील । किन आश्रम आवतैं सगभूषा ॥ ७ ॥

तब-तब मैं जानकर श्रीरामजीकी नगरमें रहता हूँ और प्रभुकी शिशुलील देखकर सुख प्राप्त करता हूँ । फिर हे पक्षिपति ! श्रीरामजीके शिशुलपको हृदयमें रखकर मैं अपने आश्रममें आ जाता हूँ ॥ ७ ॥

क्या एकल में तुम्हारे सुकई। कम वेद वेदि करव पाई ॥
 कहियँ सब मन प्रब्र हुनारी। सब अस्ति महिमा अति भारी ॥ ८ ॥
 जिस कारणसे मैंने औरही वेद पायी। वह सारी क्या आपकी हुना दी। हे तन।
 मैंने आपसे सब प्रयोगे उत्तर कहे। नहा। रामप्रसिद्धि नहीं भरी महिमा है ॥ ८ ॥
 दो०—उत्ते यह उन मोहि त्रिप भवत राम फट तेह।
 निज प्रभु वरसन धन्यवै फट एकल खेह ॥ ११४(क) ॥
 मुझे अपना वह काकपीर खोलिये मिल है कि क्यों इसे धीरपनके बलसे
 प्रेम प्राप्त हुआ। इसी शरीरसे मैंने अपने प्रभुके दर्शन पाये और मेरे ॥ तनेह जाते
 रहे (दूर हुए) ॥ ११४ (क) ॥

मातृपारायण, ऊर्जीसर्वा विग्राम

अस्मिन् पच्छ हठ करि खेदें दीप्ति महारिषि सार।
 मुनि दुर्लभ कर पावई देखहु मज्जन प्रसाप ॥ ११४(क) ॥
 मैं हठ करते भक्तिप्रसाप अक्षर था मिलने महर्षि जेनबने मुझे राग विष। सख्य
 उसका फल यह हुआ कि जो मुनिबोधे भी दुर्लभ है, वह करान देते क्या। मज्जन
 प्रसाप सो देखिये ॥ ११४ (क) ॥
 चौ०—तै अस्ति मज्जति आदि परिहारी। केवल भक्त हेतु कम कहीं ॥
 ते अक्षर मज्जयेतु पूर्ण सखी। योग अक्षर विरहि पव सखी ॥ १ ॥
 जो भक्तिकी ऐसी महिमा जानकर भी उसे छोड़ देते हैं और केवल सानके सिद्धे
 भक्त (वाचन) करते हैं, वे मूर्ख परत लड़ी हुई मज्जयेतुके छोड़कर दूसरे सिद्धे
 मदारके पैदों खोजते फिरते हैं ॥ १ ॥
 छन्द श्रोत हरि अस्ति विहारी। वे सुख पावई आप उपाई ॥
 वे सब महासिद्ध मुनि सखी। पैरि पार पावई सब सखी ॥ २ ॥
 हे परितरास। मुनिपे; जो लोग औरही भक्तिसे छोड़कर दूसरे उपायोंसे सुख
 चाहते हैं, वे मूर्ख और अक्षर कलकलके (अपमाने) विष ही जानके तैरकर महासुख-
 के पार जाना चाहते हैं ॥ २ ॥
 मुनि भक्तियुक्त के कर्म उपायी। लोकेन मज्ज हरि पदु सखी ॥
 सब प्रसाप प्रभु मज्ज उर सखी। लोकेन लोक लोक मज्ज सखी ॥ ३ ॥
 [शिवजी कहते हैं—] हे मज्जति। मुनिपेके कर्म सुनकर गम्भीर हसित
 होकर लोकेन बाणीते बोले—हे प्रभो। जानके प्रसापसे मेरे हृदयों सब तनेह, लोक
 मोह और मज्ज कुल भी नहीं रह गया ॥ ३ ॥
 मुनेदें पुनीत राम मुन प्रसाप। सुखी कुल कहें विवर्तन ॥
 एक बात प्रभु दुर्लभ लेही। अक्षर अक्षर कृपाविधि मोही ॥ ४ ॥
 मैंने आपकी कृपासे श्रीप्रसापप्रसन्नके पवित्र पुण्यप्राप्तिके द्वारा और धनि प्राप्त
 की। हे प्रभो। सब मैं जानके एक सब और प्रसन्न हूँ। हे कृपाकर। मुझे
 समस्तकर करिये ॥ ४ ॥
 अक्षर सखि मुनि वेद सुख। तदि अक्षर दुर्लभ मज्ज सखिया ॥
 सोह मुनि दुर्लभ सब कहें मोखई। तदि अक्षर अस्ति नदी सखी ॥ ५ ॥
 उत, मुनि, केर और पुण्य सब कह्ये हैं कि जानके अक्षर दुर्लभ कुल भी नहीं

हे । हे गोरार । वही ज्ञान मुनिने आपसे कहा, परन्तु नामने भक्तिके समान उसका वादर नहीं किया ॥ ५ ॥

भक्तानिहि भगवतिहि अंतर केस । सकल कहहु प्रभु कृपा निकेत ॥

मुनि दरगारि पवन सुख मान । स्रग्दर जोलेउ शय सुजान ॥ ६ ॥

हे कृपाके धाम । हे प्रभो ! ज्ञान और भक्तिमें कितना अन्तर है ! यह सब मुझसे कहिये । गरुड़जीके कवन सुनकर सुजान ब्रह्ममुकुटिजीने सुख माना और गार्दरके साथ कहा— ॥ ६ ॥

भगवतिहि भक्तानिहि नहि कसु भेदा । उसय हरहि अब संस्रम सेदा ॥

नाथ सुवीर कहहि कसु अंतर । सावधान सोउ सुनु मिहंगवर ॥ ७ ॥

भक्ति और ज्ञानमें कुछ भी भेद नहीं है । दोनों ही संसारसे उत्पन्न बन्धनोंको हर केते हैं । हे नाथ । सुनीयर इनमें कुछ अन्तर बताते हैं । हे पक्षिधेनु ! उसे सावधान होकर सुनिये ॥ ७ ॥

ज्यान विरुध जोय विरुधवा । ए सय पुन्य सुगुह हरिमान ॥

पुन्य प्रताप प्रकट सब भौंसी । भक्त्या अकल सहज बड़ जाती ॥ ८ ॥

हे हरिवाहन ! मुनिये ज्ञान, वैराग्य, योग, विद्वान—ये सब पुन्य हैं ; पुन्यका प्रताप सब प्रकारसे प्रकट होता है । भक्त्या (भावा) स्वाभाविक ही निर्विक और जाति (भग्न) से ही बड़ (भूख) होती है ॥ ८ ॥

जो—पुरुष त्यागि सक बरिहि । जो विरुध भति धीर ।

न तु कामी विपद्यवस विमुक्त जो पद रघुवीर ॥ ११५ (क) ॥

परन्तु जो वैराग्यवान् और भीखुदि पुरुष हैं वही लोको त्याग सकते हैं, न कि वे कामी पुरुष, जो किंवोंके कर्मों हैं (उनके गुणमें हैं) और भीरुवीरके वरणोंसे विमुक्त हैं ॥ ११५ (क) ॥

जो—सोउ मुनि भक्तनिधान मृगमयी विभु मुख निरुजि ।

विवस होइ हरिमान मारि विन्दु माया प्रमद ॥ ११५ (ख) ॥

वे ज्ञानके भण्डार मुनि भी मृगमयी (सुवर्णी ली) के चन्द्रमुखको देखकर विवस (उसके मयीन) हो जाते हैं । हे मृगमयी ! साधारण भक्त्यान् विष्णुजी माया ही लीकपते प्रकट है ॥ ११५ (ख) ॥

जो—इहाँ न पण्डित कहु गच्छै । वेद पुराण संस मत् भवतै ॥

मोह न नरि नरि के कथा । पण्डिति यह रीति भ्रमा ॥ १ ॥

यहाँ मैं कुछ पण्डित नहीं रखता । वेद, पुराण और संतोंका मत (सिद्धान्त) ही कहता हूँ । हे गरुड़जी ! यह अनुपम (निरूपण) रीति है कि एक लोके रूपसे दूसरी भी मोक्ष नहीं होती ॥ १ ॥

माया भगति सुगुह छुट दोउ । नरि कब जावह सब कोउ ॥

मुनि रघुवीरि भगति निजारी । कस कसु भौंसी बिचारी ॥ २ ॥

नाथ मुनिये, माया और भक्ति—वे दोनों ही लोकावली हैं, यह सब कोई जानते हैं । फिर भीरुवीरको भक्ति प्यारी है । माया बेचारी ले निवस ही नाकनेवाली (नदिनीमाव) है ॥ २ ॥

भगतिहि समुद्रक रघुनाथ । जते सेहि कसवि जति माया ॥

राम भगति निवस निवसारी । कस कसु उर छत्र बजायी ॥ ३ ॥

भीरुनाथजी भक्तिके विशेष अनुकूल रहते हैं । इच्छिते माया उसके अत्यन्त दूरी

रदती है। जिसके हृदयमें उपमरहित और उपमरहित (विभ्रत) एतन्मति धरा
विना किसी बाधा (रोक-टोक) के बहती है ॥ १ ॥

तोहि मिलोकि मया सुखवाई । करि मरुत कहु निम प्रकुलवाई ॥

अस विचारि ने मुनि विगमनी । जायहि मरति सकल सुख सागी ॥ ४ ॥

उसे देखकर मया सुकुल जाती है। उसपर कह अपनी प्रकृति कुछ भी नहीं कर
(सत्ता) सकती। ऐसा विचार कर ही वो विगमनी मुनि है, ये भी वह सुखोंकी क्षान
भक्तिकी ही बाधना करते हैं ॥ ४ ॥

दो०—यह रहस्य रसुनय कर वेधि न जानह कोर ।

जो जानह रघुपति कुर्यां अपनेहुँ मोह न होइ ॥११६(क)॥

भीरुनाथजीका वह रहस्य (गुप्त मर्म) किसी कोई भी नहीं जान पाता।
भीरुनाथजीकी कृपासे जो ऐसे कल ब्रह्मा है, उसे समझें भी मोह नहीं होता ॥११६(क)॥

भौरह ग्यान मरति कर मोह सुख सुप्रपीन ।

जो सुनि होइ राम पद प्रीति सदा अविच्छिन्न ॥११६(ख)॥

ऐ सुखार गुरुदक्षि । अन्न और भक्षिका और भी मोह मुनिये, जिसके मुनिये
भीरामजीके चरणोंमें सदा अविच्छिन्न (एकसार) प्रेम हो जाता है ॥ ११६ (ख) ॥

जो०—सुपहु-तप्त यह मरुत कहानी । सुखसुख मरुत न छाड़ कबानी ॥

ईसर जीव जीव अविनाशी । केवल मरुत सदा सुख सागी ॥ १ ॥

ऐ सात । वह भक्तजीव कहानी (बाणी) मुनिये । वह समझते ही बनती है,
कही नहीं जा सकती। जीव ईसरका भोग है। [अक्षय] वह अविनाशी; केवल
निर्मल और सम्भाषते ही सुखकी राशि है ॥ १ ॥

तो मयमल मरुत मोसई । केनो और मरुत की जाई ॥

नय केतकी प्रीति परी गई । जगि सुख सुख कहिगई ॥ २ ॥

ऐ मोसाई । वह मयमल बलीश्व होकर तोड़े और वानरकी मोति अपने-आप ही
बैठ गया। इस प्रकार यह और केतकी प्रीति (प्रीति) पर चली । कबने वह प्रीति
मिथ्या ही है, क्योंकि उसके मुँहमें कठिना है ॥ २ ॥

तप है जीव मरुत संसारी । कृत् न प्रीति न होइ सुखारी ॥

मुनि पुरान कहु कहेउ ठाई । कृत् न अधिक अधिक बसवाई ॥ ३ ॥

समीचे जीव संसारी (जन्मे-मरनेवाला) हो गया। यह न तो पॉट कुटती है
और न वह सुखी होता है। वेदों और पुराणोंमें बहुत-से उपाय बताये हैं, पर वह
(प्रीति) छूटती नहीं कर अधिकप्रति उलझती ही जाती है ॥ ३ ॥

जीव इतने नम मोह मिलेगी । प्रीति कृत् किनि परह न देखी ॥

अस संयोग ईस नम कथी । कथी कथित सो विस्तरी ॥ ४ ॥

जीवके हृदयमें एतन्मलकी जनमकर विरोधसमे उस राह है, इससे गोंठ देल ही
नहीं पकती, कृते तो केते । जब कभी ईसर ऐसा संयोग (सौख्य) अपने कहु जाता है।
उपस्थित कर देते हैं तब भी स्थायित्व ही वह (प्रीति) छूट जाती है ॥ ४ ॥

साधक मरुत वेतु सुखई । जो हरि कुर्यां हर्षें मरुत जाई ॥

अप तप अस नम विगम कथी । ये मुनि कह सुन भयो जानप ॥ ५ ॥

भक्तिकी कृपासे यदि किसीकी मरुतकी सुन्दर जो हृदयकी परी अपर नम

जन; अशंस्यो जप, तप, ज्ञान, कम और निष्कारि शुभ धर्म और आचार (आचरण),
नो क्षतिवर्गे बड़े हैं ॥ ५ ॥

वेह तुन स्मित चरै अब बहई । मज बज्ज सिद्ध पण पेन्हाई ॥

नेह निवृत्ति पात्र विस्वासा । निर्मल मन अहोर विख दासा ॥ ६ ॥

सन्दी [धर्मचारणी] हरे तुषों (पात्र) को जन वह मी चरे और आस्तिक
भावकी छोटे बछड़ेको फकर वह पेन्हावे । निवृत्ति (सांसारिक विषयोंसे और प्रपञ्चसे
हटना) कोई (गौंके दूहते छात्र पिछले पैर बाँधनेकी रखी) है, विस्वासा [दूध दुहने-
का] बरतन है, निर्मल (निष्पाप) मन जो सर्व अपना दास है (अपने स्वामी है) ;
दुहनेवाला बहीर है ॥ ६ ॥

पथ धर्मेसप पथ बुद्धि जाई । अहटे मज्झ मज्झम बनारै ॥

सोप मज्झ तप कर्मो उकावै । एहि धम नामहु वेह जसावै ॥ ७ ॥

हे भारे ! इस प्रकार (धर्मचारमें प्रवृत्त आस्तिकी अज्ञाकी गौसे भाव, निवृत्ति
और धर्ममें किये हुए निर्मल मनकी उदाहरणसे) हम धर्ममय दूध दुहाकर उसे निष्काम
भावकी भाँतिपर मलीमोति भीटावे । फिर अन्न और कस्तूरकी हवासे उसे ठंडा करे
और पैर तथा धम (मज्झ निग्रह) की भाँति देखकर उसे समझे ॥ ७ ॥

सुविर्तो मयै विचार मयानी । दम अवार सहु सत्य सुबानी ॥

तप मयि कर्हि केह कबनीस । निमल विराम सुकग सुपुगीसा ॥ ८ ॥

तब बुद्धि (प्रकृत) की कमोरीमें तपविचारकी मयानीसे दम (इन्द्रिय-
दमन) के आचारपर (दमकी चमि भाँटिके छारे) सत्य और सुन्दर वाणीकी रखी
कनाकर उसे मने और मयकर तब उससे निर्मल, सुन्दर और अत्यन्त पवित्र वैराग्यकी
मस्तान निकाल के ॥ ८ ॥

सो—जोग अभिनि करि प्रपन्न तब धर्म सुमसुम लख ।

बुद्धि सिरावै ध्यान पुन ममल मज्झ अरि लख ॥ ११७(क) ॥

तब योगकी भाँति प्रकट करके उसमें समस्त सुमाधुम कर्मकी (धन कमा है
(वह कर्मोंको योगकी भाँतिमें भस्म कर दे) । अब [वैराग्यकी मस्तानका]
मस्ताली मज्झ लख, तब [बने हुए] ज्ञानकी पीछे [निश्वात्मिक] बुद्धिसे
ठंडा करे ॥ ११७(क) ॥

तब विनयनरूपिणी बुद्धि विस्तर पुन लख ।

चित्त दिव्य मरि धरै दृढ़ समल विगटि बनार ॥ ११७(ख) ॥

तब विज्ञानरूपिणी बुद्धि तब [ज्ञानकी] निर्मल पीछे पाकर उससे चित्तकी
दिव्यको भरकर, समस्तकी दीवट कनाकर, उसका उसे हृदयपूर्वक (जनाकर)
रखे ॥ ११७(ख) ॥

तीनि अवलम्ब तीनि गुण वेदि कलस तैं कर्हि ।

एक तुरीय सँवारि बुद्धि वासी करै सुगढ़ि ॥ ११७(ग) ॥

[ज्ञान, सत्य और सुप्रति] तीनों मस्तालें और [सत्य, राज और दम]
तीनों गुणकी कण्ठसे तुरीयान्त्यकी कर्णसे निष्काकर और फिर उसे सँवारकर
उपकी सुन्दर कड़ी बली बनावे ॥ ११७(ग) ॥

सो—पदि विधि ठेठे दीप ठेठ राखि विनयनमय ।

अर्थादि बसु समीप कर्हि मंदादिक-सुख लख ॥ ११७(घ) ॥

इन्द्रिन्द सुख न भव्य सोहार्ह । विषय भोग पर प्रीति सदाई ॥
 विषय समीर बुद्धि कृत खेरी । तेहि विधि दीप को बार बहोरी ॥ ८ ॥
 इन्द्रियों और उनके देवताओंको ज्ञान [समाधिक ही] नहीं सुझता; क्योंकि उनकी
 विषय-भोगोंमें सदा ही प्रीति रहती है । और बुद्धिमें भी विषयरूपी हवाने बाणजी बना
 दिया । तब फिर (दुबारा) उस ज्ञानदीपकको उसी प्रकारसे क्रम जलावे ॥ ८ ॥

दो—तब फिर जीव विविधि विधि पावद संसृति होस ।

हरि मान्य अति दुस्तर तरि न जाद विहगेस ॥ ११८ (क) ॥
 [इस प्रकार ज्ञानदीपकके बुझ जानेपर] तब फिर जीव अनेकों प्रकारसे संसृति
 (लम्प-मरणादि) के बन्धमें पाता है । हे पक्षिराज ! हरिकी कथा अत्यन्त दुस्तर है,
 यह सहजहीमें तरी नहीं जा सकती ॥ ११८ (क) ॥

कहत कठिन समुद्रत कठिन साधत कठिन विवेक ।

होइ पुष्पाञ्छर भय्य जौ पुनि प्रत्युह अनेक ॥ ११८ (ख) ॥
 ज्ञान करने (समझाने) में कठिन, समझनेमें कठिन और साधनेमें भी कठिन
 है । यदि पुष्पाञ्छरनाथके (संयोगपर) कदाचित् यह ज्ञान हो भी जाय, तो फिर [उसे
 बचाये रखनेमें] अनेकों विघ्न हैं ॥ ११८ (ख) ॥

चौ—न्याय पद कृपाय के पास । परत समीर होइ यदि सारा ॥

जो निर्मिक्त पद विवेकई । सो कैवल्य परम पद कहई ॥ १ ॥
 शान्तमार्ग कृपाय (दुष्करी उच्चार) को भारके समान है । हे पक्षिराज ! इस
 माण्डि गिरते देर नहीं लगती । जो इस मार्गको निर्मिक्त निमाह के जाता है, वही कैवल्य
 (मोक्ष) कम परमपदको प्राप्त करता है ॥ १ ॥

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद । संत पुराण विमल ज्ञानम यह ॥

राम भक्त होइ सुकुमि गोखई । भवदुष्कृत बाधइ बरिभाई ॥ २ ॥
 संत, पुराण, वेद और [तन्त्र आदि] साधन [सब] यह कहते हैं कि कैवल्यरूप
 परमपद अत्यन्त दुर्लभ है; किन्तु हे गोखई ! यही [अत्यन्त दुर्लभ] सुकित शौरासजीको
 भक्तनेत्रे बिना इच्छा किये भी कवरदसी आ जाती है ॥ २ ॥

जिमि यह बिनु जाइ रहि न सकाई । सोहि सोहि कोउ करै उपवाई ॥

जो मोक्ष सुख सुख समझाई । रहि न सकइ हरि भक्ति विहाई ॥ ३ ॥
 जैसे खलने बिना लक्ष नहीं रह सकता, जाहे कोई कपेहों प्रकारके उपाय क्यों न करे ।
 वैसे ही, हे पक्षिराज ! मुनिने, मोक्षसुख भी जीवहिंसे भक्तिके छोड़कर नहीं रह सकता ॥ ३ ॥
 बस बिछारि हरि भक्त समझे । सुकित विहाइ भक्ति कुमाने ॥

भक्ति कत मिनु सत्य प्रसाध । संसृति मुकु अविका नासा ॥ ४ ॥

ऐसा विचार कर बुद्धिमान हरिमय भक्तिपर कृपाये रहकर मुक्तिका तिरस्कार कर
 देते हैं । भक्ति करनेसे संसृति (लम्प-मृत्युरूप संसार) की जड़ अविका बिना ही पत
 और परिमलके (लम्प-जगत्) जैसे ही गड़ हो जाती है, ॥ ४ ॥

मोक्षम करिज एहिंति दित कधी । जिमि सो भक्तन एकी अठारणी ॥

भक्ति हरि भक्ति सुख सुखवाई । जो बस सत न बाहि सोहार्ह ॥ ५ ॥

जैसे मोक्षन जिस को कत दे कृति के लिये और उस मोक्षनको अठारमि अपने-
 मत (बिना हमारी चेष्टाके) पता नाली है, ऐसी सुख और लम्प सुख देनेवाली
 हरिमक्ति किते न सुझवे, ऐसा बूढ़ कौन होमा ? ॥ ५ ॥

दो०—सेवक सेव्य मात्र विदु मय न तरिग सरम्भरि ।

भजहु राम पद पंकज अछ सिद्धांत विचारि ॥ ११९ (क) ॥

हे मनेके शत्रु भजहुनी । मैं तेन हूँ और भगवान् भरे तेन (स्वामी) है, इस भावके बिना मकारूपी समुद्रसे उज्ज नहीं हो सक्ता । ऐस सिद्धान्त विचार कर श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलका भजन कीजिये ॥ ११९ (क) ॥

जो चेतन कहँ जइ कय जइहि करइ चैतन्य ।

धस्त समर्थ रघुनाथकहि मजहि जीव ते जन्य ॥ ११९ (ख) ॥

जो चेतनसे जइ कर देता है और जइसे चेतन कर देता है, ऐसे समर्थ श्रीरघुनाथजीको मो जीव भजते हैं, ते जन्य हैं ॥ ११९ (ख) ॥

ची०—छोटे रूपम सिद्धांत सुकई । सुगुह भक्ति मनि के प्रमुखाई ॥

राम भक्ति विचारनि सुंदर । बलइ बलइ अके उर खंड ॥ ११९ (ग) ॥

मैंने शान्ता सिद्धान्त समझाकर कहा । अब भक्तिरूपी मयिकी प्रमुखा (मरिजा) हुनिये । श्रीरामजीकी भक्ति सुन्दर किन्तुमयि है । हे, गुरुजी । यह बिल्के हृदयको अंदर पसती है, ॥ १ ॥

परम प्रकाश रूप दिन छरी । बहिं कहु बहिम दिखत बृह बली ॥

मोह दखि निरुद गहि अवा । खेम वात गहि लखि सुखता ॥ १२० ॥

पद दिन-रात [अपने-आप ही] परम प्रकाशरूप रहता है । उसको दीपक, बी और पक्षी कुछ भी नहीं चाहिये । [इस प्रथम मयिक एक तो सामाजिक प्रकाश रहता है] फिर मोहलरी दरिद्रता समीप नहीं आती [क्योंकि मयि स्वयं धनरूप है] और [लोभसे] लोभरूपी एक उस मयिमय दीपको बुझा नहीं सकती [क्योंकि मयि स्वयं प्रकाशरूप है, वह किसी दूसरेकी लक्ष्मणसे नहीं प्रकाश करती] ॥ २ ॥

प्रबल भविष्य तम भिति आई । हतहि तस्मै सकल समुदाई ॥

कल कामादि निरुद गहि आई । बलइ भक्ति अके उर आई ॥ १२० ॥

[उसके प्रकाशसे] अविवेका प्रबल भविष्यक सिद्ध जाता है । सरासि परलोक का रा समूह हार जाता है । बिल्के हृदयमें भक्ति बसती है, काम, लोभ और खेम आदि दुष्ट तो उसके पास भी नहीं जाते ॥ १ ॥

परत सुधासम अरि हित होई । छेदि भविष्य सुख सब कोई ॥

ब्यापहि मामस रोग न आरी । बिन्द के लस सब जीव हुकारी ॥ १२१ ॥

उसके द्विये मयि प्रभुत्वके लक्षण और बहुत कि हो जाता है । उस मयिके बिना कोई सुख नहीं पाता । कद-कद मामस-रोग, बिल्के बल होकर सब जीव हुकारी हो रहे हैं, उसको नहीं व्यापते ॥ ४ ॥

राम भक्ति मनि उर-पल अके । दुष्ट कलेश य सबैहुँ लके ॥

चतुर सिरोमणि वेद सब लकी । जे मयि लखि सुखता कसई ॥ १२१ ॥

श्रीरामभक्तिरूपी मयि बिल्के हृदयमें बसती है, उसे स्वयं भी लेशमात्र दुःख नहीं होता । जगत्में वे ही मनुष्य चतुरसि सिरोमणि हैं जो उस भक्तिरूपी मयिके द्विये भक्तिमूर्ति बल करते हैं ॥ ५ ॥

जो मयि लदति प्रबल बल आई । तम उमा विदु की खेन कसई ॥

सुगम उपाय पदवे खे । कर इतथाम वेदि अखेरे ॥ १२२ ॥

मरिचि नह मणि जगत्में प्रकट (प्रत्यक्ष) हैं; पर बिना श्रीरामजीकी कृपाके उसे कोई पा नहीं सकता। उसने पत्तेके उपाव भी सुगम ही हैं; पर बभागे मनुष्य उन्हें बुझा देते हैं ॥ ६ ॥

पावन पर्वत बंद पुत्रदा। राम कथा खिचाकर माना ॥

मर्मा सज्जन सुमति कुदारी। ग्याव विराम जयन ठरगरी ॥ ७ ॥

वेद-पुराण पवित्र पर्वत हैं। श्रीरामजीकी नाना प्रकारकी कथाएँ उन पर्वतोंमें सुन्दर खाने हैं। संत पुरुष [उनका इन खानोंके रहस्यको जाननेवाले] मर्मा हैं और सुन्दर हृदि [सोदनेवाली] कुदारी है। हे मरुदजी! ज्ञान और वैराग्य—ये दो उनके नेत्र हैं ॥ ७ ॥

साथ सहित सोवह सौ श्रापी। पाव मरति मनि सब सुख खानी ॥

मोरे मच प्रभु जस दिखाय। राम से अधिक राम कर दास ॥ ८ ॥

जो प्राणी उसे प्रेमके साथ सोवता है, वह सब सुखोंकी खान इस भक्तिरूपी मणि-को पा जाता है। हे प्रभो! मेरे मनमें से ऐसा किशोर है कि श्रीरामजीके दास श्रीरामजी-से भी बढ़कर हैं ॥ ८ ॥

राम सिधु जस सज्जन धीरा। चंदन छत हरि संत समीरा ॥

राम भर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहुँ पाई ॥ ९ ॥

श्रीरामचन्द्रजी समुद्र हैं तो धीर संत पुरुष मेघ हैं। श्रीहरि चन्दनके वृक्ष हैं तो संत पवन हैं। सब वायवोंका फल सुन्दर हरिभक्ति ही है। उसे संतके बिना किसीने नहीं पाया ॥ ९ ॥

जस विचारि बौद्ध कर सतसंग। राम भगति वेदि मुलम बिहंग ॥ १० ॥

ऐसा विचारकर जो भी संतोंका संग करता है, हे मरुदजी! उसके लिये श्रीराम-जीकी भक्ति मुलम हो जाती है ॥ १० ॥

दो—ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्याव संत सुर आहि।

कथा सुधा मधि काढ़हि भगति मधुरता आहि ॥ १२० (क) ॥

ब्रह्म (वेद) समुद्र है; ज्ञान मन्दराचल है और संत देवता हैं, जो उस समुद्रको मधकर कमाकपी अमृत निकालते हैं, जिसमें भक्तिरूपी मधुरता बची रहती है ॥ १२० (क) ॥

विपति बर्म धांस ग्याव मद सोम मोह रिपु मारि।

जय पाइल सो हरि भगति देखु खोख विचारि ॥ १२० (ख) ॥

वैराग्यरूपी ढालसे अपनेको बचाते हुए और शनरूपी तलवारसे मद, सोम और मोहरूपी दैत्योंको मारकर जो विषय प्राप्त करती है, वह हरिभक्ति ही है; हे पक्षिजन! इसे विचार कर देखिये ॥ १२० (ख) ॥

बी—शुनि सप्रेम चौकेउ खनका। बी हुमान् मोहि कपर भाक ॥

नाथ मोहि नित सेवक खानी। सस प्रथम मम कहहु बखानी ॥ १ ॥

पक्षिराज मरुदजी फिर प्रेमसहित बोले—हे कुपण्ड! यदि मुझपर आपका प्रेम है, तो हे नाथ! मुझे अपना सेवक जानकर मेरे खत प्रयत्नोंके उत्तर बखानकर कहिये ॥ १ ॥

प्रथमहि कहहु नाथ सखिधोरा। सब ते दुर्लभ, कवच खरीरा ॥

बद दुख कवन कवन सुख खरी। सोउ संछिपहि कहहु बिचारी ॥ २ ॥

हे नाथ! हे बीरबुद्धि! पहले तो वह कहिये कि सबसे दुर्लभ कौन-सा खरीर है! फिर सबसे बड़ा दुःख कौन है और सबसे बड़ा सुख कौन है, यह भी विचार कर छिछोरे ही कहिये ॥ २ ॥

संत भर्षव भरम पुन्य जावहु। तिन्ह कर सहस्र सुमान बखानहु ॥

कवन पुन्य भुवि विदित बिसम्भा। कहहु कवन अब पस्य कराका ॥ ३ ॥

संत और अवसंन्यासियों (येद) बात जानते हैं, उनके सहज स्वभावका वर्णन कीजिये । फिर कहिये कि भूतिनाम प्रसिद्ध कवसे महान् पुण्य कौन-सा है और सबसे महान् भयंकर पाप कौन है ॥ ३ ॥

मानस रोग बहुत तसुझाई । तमह सर्वस्य कृपा अधिकार है ॥

संत सुनहु सादर गति प्रीति । मैं संछेप कहूँ यह नीति ॥ ४ ॥

फिर मानस-रोगोको सम्झाकर कहिये । आप सर्वज्ञ हैं और गुप्तपर आपकी कृपा भी बहुत है । [प्रायःसुगुण्डिजीने कहा—] हे साध ! अत्यन्त आदर और प्रेमाने साथ सुनिये । मैं बंद नीति संक्षेपसे कहता हूँ ॥ ४ ॥

नर तन सन नहि कर्नात देही । जीव चरपर वाचत कि ॥

नरक स्वयं अपर्ण भित्ती । ग्याज विनाय भवति सुम देही ॥ ५ ॥

मनुष्य-शरीरके उमान कोई शरीर नहीं है । पर-अनर सभी जीव उसकी पावना करते हैं । यह मनुष्य-शरीर नरक, स्वर्ग और मोक्षकी सीढ़ी है तथा कल्याणकारी शान्ति, वैराग्य और भक्तिको देनेवाला है ॥ ५ ॥

सो तनु धरि हरि भवति न के पर । दोहि विषय सत नंद नंद तर ॥

काँच किरिय चढ़ें से केही । कर ते हरि वस्तु भवि देही ॥ ६ ॥

ऐसे मनुष्य-शरीरको धारण (प्राप्त) करके भी जो लोग मीथरिख भजन नहीं करते और नीचसे भी नीच विषयोंमें अनुरक्त रहते हैं, वे पारसमिक्षो शास्त्रों के पक्ष देते हैं और बहतेमें काँचके टुकड़े से लेते हैं ॥ ६ ॥

नहि दृष्टि सम दुख नम माही । संत मित्रस सम सुख का काही ॥

पर उपकार कलम नम पण । संत सहज सुखाद खगला ॥ ७ ॥

जगत्में परिजलाके समान दुःख नहीं है तथा संतोंके मित्रोंके उमान लगायमें सुख नहीं है । और हे पण्डित ! मन, बचन और शरीरको परोपकार करना, यह संतोंका रहस्य स्वभाव है ॥ ७ ॥

संत सहर्षि दुख पर हित कानी । पर दुख हेतु अस्तं अनाली ॥

भूखं तह सस संत कृपास्य । परहितविधि सहविधि विलास ॥ ८ ॥

संत दूसरोंकी भलाईके लिये दुःख खाते हैं और अभाग्य अरु दुर्लोकों दुःख पहुँचानेके लिये । कृपास्य संत मोलके दुःखके समान दूसरोंके हितके लिये बाँटि बिपति खाते हैं (अपनी लाजतक ठगवना छोटे हैं) ॥ ८ ॥

सम हव सक पर भजन करी । सक नमद विपति सहि सरी ॥

सक विदु सारथ पर नमरती । नहि सूख हव सुद उरगरी ॥ ९ ॥

किन्तु दुष्ट लोग उनकी गोपि दूसरोंसे बाँधते हैं और [उन्हें बाँधनेके लिये] अपनी साज सिचवाकर विपति सहकर सर जाते हैं । वे सर्वोक्त सचदनी ! कुनिये, दुष्ट बिना किसी स्वार्थके बाँध और पूरेके समान अनारथ ही दूसरोंका उपकार करते हैं ॥ ९ ॥

पर संपदा विनासि नमहो । विमिससि हवि हिमनपक किमही ॥

हुष्ट सदय नम कहति हेतु । नम प्रसिद्ध कथन अह केद ॥ १० ॥

वे परानी सम्पत्तिका नाश करनेके लक्ष्य हो जाते हैं जैसे सेतीका नाश करके ओठे मछ हो जाते हैं । हुष्टज अमृदय (ठगरी) प्रसिद्ध कथन यह हेतुके उदयकी भाँति लगतके दुःखके लिये ही होना है ॥ १० ॥

संत द्रव्य संजव सुखभरी । किन्तु सुखद विधि ईदु तमारी ॥
 परल धर्म सुवि विवित अहिंसा । पर निहा सम जव न गरीसा ॥ ११ ॥
 और संतोका अमुदय सदा ही सुखकर होता है, जैसे चन्द्रमा और सूर्यका उदय
 निश्चयके लिये सुखदायक है । वेदोंमें अहिंसको परम धर्म माना है और परनिन्दाके
 समान भारी पाप नहीं है ॥ ११ ॥

॥ गुर निवक बहुर होई । जन्म सहस्र पाव तब सोई ॥
 शिव विदक नृमस्त भोग करे । जग जनमदु बान्धव सरीर धरि ॥ १२ ॥
 संकरजी और गुरुजी निन्दा करनेवाला मनुष्य [अथले जन्ममें] मेटक होता है
 और वह हजार जन्मक कही मेटकका शरीर पाता है । ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाला
 व्यक्ति बहुतसे नरक भोगकर फिर जन्तुमें कैश्चक शरीर धारण करके जन्म लेता है ॥ १२ ॥

गुर भुति विदक के अभिमानी । रोज़ करक परहि से प्राणी ॥
 होई चकल संत निहा रत । मोह किन्तु प्रिय ममान भगु गठ ॥ १३ ॥
 जो अभिमानी जीव देवताओं और वेदोंकी निन्दा करते हैं, वे रोज़ नरकमें
 पड़ते हैं । संतोकी निन्दामें जो गुण जोग उत्पन्न होते हैं, सिन्धू मोहकपी रात्रि प्रिय
 होती है और कानकपी सूर्य जिनके लिये शीत पानी (मल हो गया) रहता है ॥ १३ ॥

सम के निहा के मद करहीं । केमगाहुर होइ जगधरहीं ॥
 बुद्ध समान जव मानव रोम । सिन्धु से गुल पावहि तब कोण ॥ १४ ॥
 जो मूर्ख मनुष्य सबकी निन्दा करते हैं, वे पम्पीद्व द्वारक जन्म लेते हैं । हे
 सात । सब मानव-रोम मुनिये, कितने धन जोग गुल पाना करते हैं ॥ १४ ॥

मोह सकल व्याधिद कर मूक । सिन्धु से पुनि उपर्याई बहु सुख ॥
 काम कल कक लोक कषाण । मोह रिच रिच जगती जात ॥ १५ ॥
 सब योगोंकी कद मोह (ज्ञान) है । उन व्याधियोंके फिर और बहुतसे द्रव्य
 उत्पन्न होते हैं । काम वात है, क्रोध अक्षर (बड़ा दुःख) कद है और मोह रिच है
 जो सदा काही बलाय रहता है ॥ १५ ॥

प्रीति कहिं श्री श्रीनिव जई । नरकदु सम्पत्त सुखदाई ॥
 विदप मनीसम दुर्बल मान । से सब सुख नम को साध ॥ १६ ॥
 यदि कहीं से टीनों गार्ह (वात, मित और कफ) प्रीति कर लें (मिल जायें),
 तो दुःखदायक क्षयित रोम उत्पन्न होता है । कर्मिन्ताये प्रसू (पूर्ण) होनेवाले जो
 विपत्तिके मजोरय हैं, वे ही सब धृष्ट (अज्ञानायक रोम) हैं । उनके नाम कौन जानता है
 (अर्थात् वे अज्ञान हैं) ॥ १६ ॥

ममता कदु कदु हफाई । द्रव्य विदप गारह बहुदाई ॥
 पर सुख देखि जनि छेद कई । इह दुखद मन कुटिलई ॥ १७ ॥
 ममता द्रव्य है रंजना (बल) सुखकी है, हर्ष-विषाद गलेके रोगोंकी अभिवृद्धि है
 (गलायः कण्ठमाद्य आ केशा आदि रोग हैं), पराने सुखको देखकर जो लज्ज होती
 है, वही कषी है । दुःखा और ममता कुटिलता ही क्रोध है ॥ १७ ॥

अद्वयत अति दुखद समकल । द्रव्य कपट मद मान वेदकल ॥
 वृत्त कपलुवि अति भारी । विविधि ईवना लक्ष्य तिजारी ॥ १८ ॥
 अद्वयत अत्यन्त दुःख देनेवाला समकल (गौतम) रोम है । दम्भ, कपट, मद

और मान नइकवा (नवीका) रोम है । एण्णा कल भासी उदसुद्धि (जलेश्वर) रोम है । तीन प्रकार (पुत्र, धन और मान) श्री प्रकट हुनकर प्रमत्त विधायी हैं ॥ १८ ॥

शुभ विधि न्तर मासर कथितेन । कर्तुं सवि कर्तुं कुलेय भवेत् ॥ १५ ॥

मत्सर और अनिवेक दो प्रकारके स्वर हैं। इस प्रकार जनेश्वर ने रोम में, जिन्हें
कदाचित् कहे ॥ १९ ॥

श्लो०—एक व्यसि पल नर मरिह ए मसवि नह न्यावि ।

पौद्धि संतत जीव फलुं सो निमि लई समधि ॥ १२१(क) ॥

एक ही रोग के यक्ष होकर मनुष्य पर आते हैं, फिर वे जो बहुतसे अक्षय्य रोग हैं। ये जोषको निरन्तर बढ़ देते प्रत्ये हैं, ऐसी दवायें यः रुक्मिणी (रामिनी) को कैते प्राप्त करें ॥ ३२१ (क) ॥

नेम धर्म आचार सप ग्यान कथ्य कर दाव ।

शेषज्ञः पृथि कोटिन् नहि रोम नहि सुखिन् ॥ १२१ (घ) ॥

निषम, धर्म, आधार (उच्च्य आचार्य), तप, शान, वक्त, वक्त दान हर्षा और
मी करोड़ों ओषधियों हैं, परन्तु दे मरदनी । उनसे वे रोग नहीं होते ॥ १११ (ख) ॥
बौ—एहि विधि सुकळ धीव कन देगी । सोक हल नय मीति विरोधी ॥

नामस दीप कयूक में आये । इति सत्र के इति मिलेनह पाद ॥ ३ ॥

इस प्रकार जगत्में सबका जीव रोमी है, जो खेत, घर, मक, मोति और धियोकी दुःखसे और भी दुःखी हो रहे हैं। जिन के पीछे-पे मानस-रोग बसे हैं। वे हैं जो बन्धो, परन्तु इन्हें ज्ञान पड़े हैं जोई मित्रेरी ॥ १ ॥

जाने से धीरे-धीरे कन्धु पायी । मसल न रोजीहि अब पसिनायी ॥

विषय कृष्ण पाहू अंतरे । मुनिहृदयें का का बटुरे ॥ २ ॥

मागिसौकी उद्योगमन्त्रि ने श्री (रोग) कम किये जानेसे मुक्त होना नकल हो
सकते हैं, परन्तु नाशको नहीं प्राप्त होते । विषकल कुपण पाकर वे सुनिश्चित हुरबोरी भी
ध्वंशित हो सकते हैं, उन केकी खपतरन मनुष्य को तथा जान हैं ॥ २ ॥

एतद् कुर्यात् तस्मिन् सम रोषः । श्री पुरि भक्ति बर संशेषः ॥

सत्यपुत्र वैद-कृत विज्ञानः । संस्कृत-वर्ण-विवरण-के-आद्या-प्र-१-३

चहाईरूपी नैतिक बचनमें विद्यमान हो। विमोक्षोपेक्षा का आनंद ही संभव (सदेव) हो। ॥ २॥

रक्षुपति मगवि सतीवनं सुती । अन्त्यानं कदा मगि सुती ।

प्राणि विधि मछिहि सो सोय नस्यही । पाहि स अत्य कष्ट पाहि सोही ॥ ६ ॥

श्रीगुरुदेवकी मूर्ति स्थापना की है। इसका पूजा करके श्रीगुरुदेव (सर्वेश्वर) का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार के ज्ञान से ही हमें सत्य का ज्ञान मिलेगा।

जाविज ॥ सन विजय गोर्खी । जय उर कळीस विजय गोर्खी ॥ २ ॥

सुमतिं कृष्या कान्द विना मयि । त्वयि कान्द कृष्या कान्द विना मयि ।

हे पोसाई! मन्त्रों की रोग दुःख का ज्ञानी साधक का हृदय सदा ही दुःखित रहता है।
उत्तम बुद्धिस्वी भूलान्त नवीकृतो रहे यौर विषमोक्षी वाचस्पती दुर्नय मित्र वाच ॥ ५ ॥

विमलं गच्छति सदा ज्ञानं त्वं यदा । तदा त्वं त्वं त्वं त्वं त्वं ॥ ५ ॥

सिद्ध संज्ञा मुक्त सम्प्रदायिक भावः । यः शुद्धः सः विद्याः विद्याः ।

[इत प्रकार उस रोगीति बूढ़कर] जब मनुष्य निर्मल मनवासी लक्षों खान कर लेता है, तब उसके बूढ़त्वमें रामचरित का रहती है। शिवजी, ब्रह्माजी, ब्रह्मदेवजी, अनन्तरि और नारद आदि ब्रह्मविचारमें परम नियुक्त जो मुनि हैं ॥ ६ ॥

सब कर ॥ चरितमय बूढ़ । करिब राम यह पंडित नेहा ॥

मुनि दुख सब ग्रंथ पढ़ाहीं । सुखति सज्जति विना सुख नहीं ॥ ७ ॥

हे भक्तिपथ ! तब सबका मत यही है कि श्रीरामजीके परस्परकर्मोंमें प्रेम करना चाहिये।

मुनि, पुराण और सभी ग्रंथ कहते हैं कि श्रीरामजीके मन्त्रिके बिना सुख नहीं है ॥ ७ ॥

कमठ पीठ समझें कब पढ़ा । बंधक सुख सब कछुहि भार ॥

बूढ़हि सब कब बुझिनि सुख । जीव न यह सुख हरि प्रतिकूल ॥ ८ ॥

कछुएकी पीठपर मजे ही बात उग आये, बंधक पुत्र मजे ही किलीकी पार बने, आकाशमें मजे ही कनेकों प्रकारके फूल खिल उठें। परन्तु श्रीहरिके विमुख होकर जीव सुख नहीं प्राप्त कर सकता ॥ ८ ॥

एक बार वह मनुष्यक पाला । वह समझिं छल सीत विधाना ॥

बंदपण यह सोचिं बसलै । राम विमुख न जीव सुख पावै ॥ ९ ॥

मनुष्यप्राये सबको पीलेते मजे ही प्यास मुक्त जान, खरादके विरपर मजे ही बीन निरुज आये, अन्यकार मजे ही सूर्यका नाश कर दे। परन्तु श्रीरामके विमुख होकर जीव सुख नहीं पा सकता ॥ ९ ॥

हिम ते ममक मग्न कर छोड़ें । विमुख राम सुख सब न कोइ ॥ १० ॥

नकी भजे ही अनिर प्रकट हो नाव । दे सब अनहोनी बलें चाहे हो जायें ।

परन्तु श्रीरामके विमुख होकर कोई भी सुख नहीं पा सकता ॥ १० ॥

श्री०—बारि मयें छूत होइ वह सिद्धता ते सब लेख ।

विदु हरि भक्षण न भव करिब यह सिद्धति अनेक ॥ १११ (क) ॥

सबको मयनेते मजे ही बी उल्ला हो नाव और बाव [जो देखे] वे मजे ही लेख निरुज भाने; परन्तु श्रीहरिके भजन बिना संसाररूपी समुद्रसे नहीं छल जा सकता। वह सिद्धांत कटक है ॥ १११ (क) ॥

भक्तकरि करद विरधि मनु भक्तहि भक्तक ते हीन ।

भक्त विचारि लकि संसय रामहि भक्तहि प्रसीन ॥ ११२ (क) ॥

मनु भक्तको भक्षण कर सकते हैं और ब्रह्माको भक्तपते भी मुक्त बना सकते हैं। ऐसा विचार कर चला। पुनः लव कन्देह लगकर श्रीरामजीको ही मलते हैं ॥ ११२ (क) ॥

श्री०—विनिश्चित कदाहि ते न अन्यथा कथासि मे ।

हरि करा अस्मित वेदतिदुस्तरं उपमित ले ॥ ११२ (ग) ॥

मैं आपसे मनीमति निश्चित किना हुआ विद्वान्त कहता हूँ—मेरे भवन भगवा (सिन्हा) नहीं हैं कि जो मनुष्य श्रीहरिके भजन करते हैं, वे वास्तविक दुस्तर संसारजगत्से [छल ही] कर कर बसे हैं ॥ ११२ (ग) ॥

श्री०—कन्देह नाव हरि चरित कथा । जस समस्त समधि अनुसना ॥

मुनि सिद्धांत हृदय उल्लासी । राम सक्थि सब काम विचारौ ॥ ११ ॥

हे नाव ! मैंने श्रीहरिके मनुष्य चरित अपनी बुद्धिके अनुसार कहीं विचारते और कहीं लगेते कहा। हे कन्देह समु बसकही ! मुनिबोध यही विद्वान्त है कि राम परम दुष्टकर (लोचकर) श्रीरामजीके भजन करना चाहिये ॥ ११ ॥

प्रभु प्रसूयति तत्रि सेहल ग्राही । मोहि से छड पर समझ नाही ॥

हृन्द विमानमय यदि मोहा । नाथ कीन्हि सो पर अति मोहा ॥ २ ॥

प्रभु श्रीरघुनाथजीने छोड़कर और किसका सेवन (मजन) किया नाथ, जिनका मुझ-जैसे मूलपर भी उन्मत्त (स्नेह) है । हे नाथ ! तब विस्मयका है, काणको मोह नहीं है । आपने तो मुझपर बड़ी कृपा की है ॥ २ ॥

ऐछिहु राम कथा कनि पावनि । सुक सबकादि संसु मय भावनि ॥

सत संगति दुर्लभ संसार । निमिर बंध मरि पृच्छ पाश ॥ ३ ॥

मो आपने मुझसे सुकदेवजी, सनकादि और किनजीके मनको मित करनेवाली अति पवित्र रामकथा पढ़ी । मंजारीयें पदीभरकर अथवा फलमरकर एक बारका मोक्षतुल्य दुर्लभ है ॥ ३ ॥

देसु गरुड मित्र इदं विधाती । मैं खुबोरे मजन लक्षिकारी ॥

सकुनाभय सप भोजि शरावन । प्रभु मोहि कोन्ह विधि बग पावन ॥ ४ ॥

हे गरुड़जी ! आपको टारपमें विचार कर देखिये, क्या मैं भी श्रीरामजीके मजनकर अधिकारी हूँ ! गतिमांसे सगरे नीच और सब प्रकारसे अपवित्र हूँ । परन्तु ऐसा होनेपर भी प्रभुने मुझको थारे जगत्के पवित्र करनेवाले प्रसिद्ध कर दिया [अथवा प्रभुने मुझको जगत्प्रसिद्ध भक्षण कर दिया] ॥ ४ ॥

चौ०—व्याजु धन्य मैं धन्य अति जयपि सब विधि कीव ।

निज जल गगनि दाम मोहि संत समग्रम दीव ॥ १२३(क) ॥

यद्यपि मैं सब प्रकारसे दीन (नीच) हूँ, तो भी आप मैं धन्य हूँ, भाग्य धन्य हूँ, जो श्रीरामजीने मुझे अपना पवित्र जल देने का संत-समग्रम दिया (आपसे मेरी भेंट करायी) ॥ १२३ (क) ॥

नाथ जयामसि मारेवै एवेवै बहि कहु गोर ।

चरित सिधु रघुनाथक थाह कि पावै कोर ॥ १२३(क) ॥

हे नाथ ! मैंने अपनी पुष्टिके अनुसार कहा, कुछ भी लिया नहीं रहता । [फिर भी] श्रीरघुनाथकी चरित्र वस्तुके समान है, तथा उनकी कोई बात पसन्द है ? ॥ १२३ (क) ॥

चौ०—सुमिरि राम के मुख नम जना । पुनि पुनि हरष भुवि मुनान ॥

महिमा निगत भेति करि साई । सगुणिय बर प्रकाश मनुजई ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके बहुत-से गुणगुणहोकर सारण कर-करके मुन्नन मुझपिची बार-बार वर्णित हो रहे हैं । इनकी महिमा केतने 'धेवि-नेवि' शब्दों वाली है, मिनका बर, प्रताप और प्रभुत्व (सामर्थ्य) अतुलनीय है ॥ १ ॥

सिन्धु बज पूज्य चरम सुकई । मो पर कृपा परम सुकई ॥

अस सुभात कहु सुकई न देखई । केहि समेस सुखसि सत लेखई ॥ २ ॥

मिन श्रीरघुनाथजीके चरण छिपी और मंजारीयोंके हाथ पूज्य हैं, उनकी मुझपर कृपा होनी उनकी परम कोमलता है । किसीका ऐसा स्वभाव कहीं न मुझता हूँ, न देखता हूँ । अतः हे पक्षिराज गरुड़जी ! मैं श्रीरघुनाथजीके समान सिन्धे पिई (समझ) ? ॥ २ ॥

साधक सिद्ध विमुक्त उपासी । कनि कोविद कुल्लभ संन्यासी ॥

जोगी सुर मुक्तमय न्यासी । चरम निज पंक्ति दिव्यासी ॥ ३ ॥

साधक, सिद्ध, जीवन्मुक्त, उपासीन (विरक्त), कनि, विद्वान्, कर्म [रहस्य] के ज्ञाता, संन्यासी, योगी, छात्री, बड़े तपस्वी, ज्ञानी, धर्मरक्षण, पवित्र और विद्वान्—॥ ३ ॥

तहाँ न दिनु सेहँ मन स्यामी । राम नमामि गमामि गमामी ॥

सरन गहँ मो से जब राखी । होहि सुख नमामि अविनाशी ॥ ४ ॥

दे कोहँ भी मैं लखी श्रीरामजीके जेन (मजन) किने बिना नहीं कर सकते । मैं उनकी श्रीरामजीको बार-बार नमस्कार करता हूँ । लिनकी चरण जानेकर सुख-जैसे फलपत्रि भी ब्रह्म (प्राप्तहित) हो जाते हैं, उन अनित्यकी श्रीरामजीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥

बो—जसु नाम मय मेयस हरन घोर जय सुख ।

सो कृपाल मोहि तो पर सदा रह्य अनुकूल ॥ १२४ (क) ॥

शिवका नाम कम-मरकरुषी रोगकी [अन्वय] औषध और तीर्थों मन्त्रकर पीढ़ाओं (आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक दुःखों) को हरनेवाला है, वे कृपालु श्रीरामजी उसपर और आसक्त क्या प्रसन्न रहें ॥ १२४ (क) ॥

सुनि भुवुंछि के दक्षम सुख देखि राम पद मेह ।

बोलेव प्रेम सहित गिरा मरुदु विगत संदेह ॥ १२४ (ख) ॥

भुवुंछिजीके मन्त्रकर्म बचन सुनकर और श्रीरामजीके चरणोंमें उनका मलिनप्रेम प्रेम देखकर बन्देहसे बल्लेमेंति कूटे हुए मरुदुजी प्रेमाहित मजन बोले— ॥ १२४ (ख) ॥

बो—मैं कृपाकृत्य मरुदें तब दानी । सुनि धुंधरि भगति स्त सानी ॥

राम चरण सुख रहि आई । माया जवित विपति सब गई ॥ १ ॥

श्रीरघुवीरके मक्ति-रक्षमें उनकी हुई आपसी दानी दुनकर मैं कृपाकृत्य हो गया । श्रीराम-जीके चरणोंमें मेरी नवीन प्रीति हो गई और मायासे उत्पन्न सारी विपति जाती गयी ॥ १ ॥

मोह लक्ष्मि बोहिट हुम्ह मय । ओ कहँ ताथं विविध सुख दर ॥

मो पहि होह बगति बपकल । कंदै तब पद बाराहि कर ॥ २ ॥

मोहलकी लज्जने हुक्ते हुए मेरे लिये जान बचाव हुए । हे माय ! मायने तुझे शून्य प्रकारके सुख दिये (पल्ल सुखी कर दिया) । मुझसे इतका प्रत्युत्कार (उत्कारके बदलेमें उत्कार) नहीं हो सकता । मैं तो आपके चरणोंकी बार-बार चम्कना ही करता हूँ ॥ २ ॥

पुन काम राम अनुकूल । हुम्ह सन तब न कीज बगमामी ॥

संत प्रिय सखि गिरि घरनी । पर हित हेतु सबह- के करनी ॥ ३ ॥

आज पूर्णप्रम हैं और श्रीरामजीके ऐसी हैं । हे माय ! आपके समान कोई बहुभाग्य नहीं है । संत, ब्रह्म, नदी, पर्वत और धूम्री—इन सबकी किना प्यासे हितके लिये ही होती है ॥ ३ ॥

संत हज्य भवनीत सनाय । कल जकिन्ह पेरि कहै न जाना ॥

मिल पसित्त द्रव्य भवनीय । पर दुख ब्रह्महि संत सुपुणीय ॥ ४ ॥

मनोव्य इत्यन्त मज्जन्ते समान होता है, ऐसा कविनेने कहा है; परन्तु उन्होंने [मज्जती वाद] करना नहीं जाना; क्योंकि मज्जन्त तो अपनेको छाप मिलानेसे पिच्छता है और परम प्रिय संत दूसरोंके दुःखसे मिल जाते हैं ॥ ४ ॥

जीवन कम सुपुण्ड मन मयक । तब प्रसाद संसय सब—गयक ॥

जगदु सदा मोहि मिल किन । पुनि पुनि कम कह्य विहंगम ॥ ५ ॥

मेरा जीवन और मन सदा हो गया । जानकी कृपासे सब बन्देह छटा गया ।

मुझे सदा अपना हाथ ही बानियेगा । [खिन्नी करते हैं—] हे उमा ! पक्षिभेद गरुड़नी बार-बार ऐसा कर रहे हैं ॥ ५ ॥

दो०—ताम्र चरन सिख बार करि प्रेम सहित मतिधीर ।

गवट गरुड़ बैकुण्ठ तब हृदयें राखि ह्युषीर ॥ १२५ (क) ॥

उन (भुवुण्डिनी) के चरणोंमें प्रेमसाहित फिर भ्रमकर और हृदयमें भीरुवीरको धारण करके घोरतुद्धि गरुड़नी तब बैकुण्ठको चले गये ॥ १२५ (क) ॥

गिरिज्य संत खमागम सम न लय कलु आम ।

चिनु हरि कृपा न होइ सरे गवर्धनि केव कुपाम ॥ १२५ (ख) ॥

हे गिरिजे ! सत-समागमके समान दूक्य ओहें आम नहीं है । पर वह (संत-समागम) श्रीहरिकी कृपाके बिना नहीं हो सकत। ऐसा चेद और कुपाम मते हैं ॥ १२५ (ख) ॥

चौ०—कहेई परम पुण्येइ इतिहसस । सुकत जवन सुखेइ मय पास ॥

प्रमत्त फलदाइ कहला हुंसा । उपजइ प्रीति कम पर कंसा ॥ १ ॥

मैंने यह परम पवित्र इतिहास कहा, जिसे कानोंसे सुनते ही भयपण (संसारके पन्थन) छूट जाते हैं और जलपायलोंके [उनके इच्छानुसार फल देनेवाले] स्वर्गद्वारे तथा दयाके समूह श्रीरामजीके चरणकमलोंमें जैन उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

मन क्रम बचक भविष्य जय आई । सुखेइ से कथा जवन मय आई ॥

सीधोदय सप्रम ससुखेई । ओम विराज गवध निपुखेई ॥ २ ॥

जो फल और मन लगाकर इस कथाको सुनते हैं, उनके मन, बचन और कर्म (शरीर) से उत्पन्न सब पाप नष्ट हो जाते हैं । तीर्थयात्रा आदि बहुत-से शाक्य योग, वैराग्य और ज्ञानमें निपुणता,— ॥ २ ॥

नाम कर्म धर्म प्रथ दान । संक्रम दम कर तप मय भावा ॥

ब्रह्म दण्ड द्विज गुर सेवखई । विद्या विदय सिद्धि बखई ॥ ३ ॥

अनेकों प्रकारके कर्म, धर्म, श्रु और दान, अनेकों संन्यास, तप, जप, तप और ब्रह्म, प्राणियोंपर दया, श्राद्ध और पुण्यी सेवा, विद्या, विदय और विनैककी बखाई आदि— ॥ ३ ॥

जई हाथि सजवन केव बंझानी । सब कर पक हरि भवति भवानी ॥

सो रहनम भवति मुक्ति गार्ह । राम कृपा कहुँ एक पाई ॥ ४ ॥

जहाँतक वेदोंने साधन नतकये हैं, हे भवानी ! उन सबका फल भीरिमि भक्ति ही है । किन्तु भुक्तियोंमें गार्ह हुई वह श्रीरामजीकी भक्ति श्रीरामजीकी कृपासे किसी एक (विरले) ने ही पनी है ॥ ४ ॥

दो०—मुनि पुच्छेइ हरि मयति नर पवर्धनि विनर्धनि प्रयास ।

जे यह कथा निरंतर सुखेइ मानि विश्वास ॥ १२६ ॥

किन्तु जो मनुष्य निष्कल मानकर वह कथा निरंतर सुनते हैं, वे बिना ही परिश्रम उस मुनिपुच्छेइ हरिमयिको प्राप्त कर लेते हैं ॥ १२६ ॥

चौ०—सोइ सर्वम गुनी सोइ प्यसा । सोइ गहि सविध संसित दाता ॥

धर्म परामय सोइ कुल प्रसा । राम कर जवन मय राता ॥ १ ॥

जिहवा मन श्रीरामजीके चरणोंमें अनुरक्त है, वही सर्व (सब कुछ बानेवाला) है, वही गुणी है, वही जनी है । वही पूज्य और पवित्र और खनी है । वही परंपरामय है और वही कुल प्रसा है ॥ १ ॥

भीति विह्वल सोह बरष सखल । हृति सिद्धांत नीक तेहि जाना ॥
 सोह कवि कोयिह सोह रचवीर । जो उक्त छवि यवह रघुवीर ॥ २ ॥
 जो छत्र छोड़कर श्रीरघुवीरस भोजन करता है, वही नीतिमें निपुण है, वही परम
 हृदिमान है । उसीने केहेके सिद्धान्तको मजबूतीति जाना है । वही कवि, वही विद्वान्
 रचा वही रचवीर है ॥ २ ॥

धन्य देव सो ज्यौं सुरसरी । धन्य नारि पतिव्रत कुरुसरी ॥
 धन्य सो भुज भीति जो कर्षी । धन्य सो द्विज विज धर्म मटर्षी ॥ ३ ॥
 वह देव धन्य है ज्यों भीमसूताजी है, वह स्त्री धन्य है जो प्रतिव्रत-धर्मका पालन
 करती है । वह राजा धन्य है जो न्याय करता है और वह ब्राह्मण धन्य है जो अपने
 धर्मों नहीं बिगला ॥ ३ ॥

जो वन धन्य प्रथम बरि जायो । धन्य पुष्प रत मति सोह पाकी ॥
 धन्य बरी सोह बरष सखलसा । धन्य जग्न द्विज भगति धर्मसा ॥ ४ ॥
 वह वन धन्य है जिसकी बरषी वरि होती है (जो वान देनेमें व्यय होता है) ।
 वही हृदि धन्य और परिकर है जो पुष्पमें लगी हुई है । वही बड़ी धन्य है जब
 सातह हो और वही कम धन्य है जिसमें ब्राह्मणकी अस्वाच्छ मति हो ॥ ४ ॥

[धन्यही वान गतिर्यो होती है—वान, भोग और नाश । वान उत्तम है, भोग
 सम्पन्न है और नाश नीच मति है । जो पुष्प न देता है, न भोजन है, उसके धन्यही
 सीकरी गति होती है ।]

दो—जो कुछ धन्य कम सुनु जगत् पूर्य सुपुनीत ।
 श्रीरघुवीर परायण जेहि नर उपज विनीत ॥ १२७ ॥
 हे उमा ! सुनो । वह कुछ धन्य है, वंशपरके जिये पूर्य है और परम पवित्र
 है, जिसमें श्रीरघुवीरपरायण (अनन्य राममग्न) निज पुष्प उत्पन्न हो ॥ १२७ ॥
 चौ—मति कुरुष्य कथा में गयो । बरषि प्रथम सुत बरि रावी ॥
 तब नर भीति देखि भविष्य । तब नै सुपति कथा सुकार्य ॥ १ ॥
 मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार वह कथा कही, वरषी पहले इसको लिखाकर
 लखा था । जब दूसरे कर्म प्रेम्ही भविष्यता देखी तब मैंने श्रीरघुनाथजीकी वह
 कथा दुमनो सुनायी ॥ १ ॥

यह न कहिन सखी इसकीअहि । जो नर कष्ट व सुख हरि जोकहि ॥
 कविच योनिहि मोरिहि कमिनि । जो न सखह सखसाधर कामिनि ॥ २ ॥
 यह कथा उजहे न कहनी चाहिये जो कष्ट (पूर्व) हों । इसी समावसे हों और
 श्रीरघुजी कीजको भन जगत्तर न सुनो हों । जोभी, मोरी और कामीको, जो बरा-
 वरके लामों श्रीरामजीको मर्दा मज्जे, वह कथा नहीं कहनी चाहिये ॥ २ ॥
 द्विज मोहिहि न सुनारह कर्षी । सुतंवि सतिह दोह नृप गर्षी ॥
 राम कथा के तेह अधिकारी । सिद्ध कंसत संनति पति चारी ॥ ३ ॥
 ब्राह्मणोंके मोरीको, वरि वह देवराज (हन्र) के लज्जन देख्यमान् राजा भी
 सो, तब भी यह कथा कभी न सुननी चाहिये । श्रीरामजी कथाके अधिकारी वे ही हैं
 किनको सतगति अवश्य मिल है ॥ ३ ॥

सुर नर भीति भीति सत जेई । द्विज सेक अधिकारी तेई ॥
 तं कर्षी यह विवेक सुकार्य । जाहि प्रत्यक्षिणः श्रीरघुर्षी ॥ ४ ॥

जिनकी मुक्तके कारणोंमें प्रीति है, जो नीतिमयत्व है और भावनोंके लेख हैं, वे हो इसके अधिकारी हैं। और उसको तो वह क्या बहुत ही कुछ देनेकरी है, जिसको भीरुतापथकी प्राप्तिके लक्षण माने हैं ॥ ४ ॥

दो०—राम चरत रति जो चर कथन फर निर्माण ।

भाव सहित सो यह कथा करत भवन पुट पान ॥ १२८ ॥

जो श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम जाड़ा हो या शेषभ्रम जाड़ा हो, वह इस कथाकी अभुताकी प्रेमपूर्ण अपने भवनकी दीर्घसे मिले ॥ १२८ ॥

बौ०—राम कथा जिसका मैं जानूँ। कवि यह कथानि अनेक कहैं ॥

संरति रोग समीप सूर। राम कथा कहहि कवि धुरी ॥ १ ॥

हे गिरिजे ! मैंने कवियोंके पाँचों नाम करनेवाली और मने लखो पुर करनेवाली रामचरितामृत नाम किया। यह रामकथा संरति (नय-मय) की ऐसी [भाषा] कि सबकी समझ में है, बेर और मित्रान्तर एक ऐसा कहते हैं ॥ १ ॥

एहि मई कवि सब सोचत। सुनति भक्ति के पंचम ॥

भक्ति हरि का कहि कर होई। फल देह कवि मान सोई ॥ २ ॥

इसमें बात सुनकर सोचिबैं हैं, जो भीरुतापथकी अधिकसे प्राप्त करनेके लक्ष्य हैं।

जिसपर श्रीगुरुजी आत्मन्तु होनी है, वही इस चरण पर रहता है ॥ २ ॥

सब कथना सिद्धि कर कथा। मे वह कथा कदा कवि गथा ॥

कवि सुनहि अनुमोदक कहैं। वे भीरु इस कथाविधि कहैं ॥ ३ ॥

जो कुछ कीदकर यह कथा करते हैं, वे यथुय अपनी समझमानी सिद्धि हो लेते हैं। जो इसे करते-हुकते और अनुमोदन (प्रशंसा) करते हैं, वे संकरकी कथाको चौके धुरते गे हुए पद्योंकी भाँति कर कर जाते हैं ॥ ३ ॥

सुनि सब कथा हृदय भक्ति आई। जिसका सोचने मिल सुनहि ॥

गद्य कुरी सम गद्य लीला। राम चरत उपदेश कर पैदा ॥ ४ ॥

[वाचकपथकी कहते हैं—] यह कथा सुनकर श्रीरामजीकी हृदयको बहुत ही प्रिय लगी और वे सुन्दर सभी को—सामीप्य करते गेरा करने, यथा यथा और भीरुतापथकी चरणोंमें नीति प्रेम उत्पन्न हो गया ॥ ४ ॥

बौ०—मैं कृतकृत्य मूर्ख यह सब प्रसन्न, विस्मय ।

उपनी राम भक्ति धरु कीते सफल फलेत ॥ १२९ ॥

हे विधवाय ! आपकी कथाके मन में, फलार्थ हो गयी। मुझमें यह रामभक्ति उत्पन्न हो गयी और मेरे सम्पूर्ण कोष कीत गये (नष्ट हो गये) ॥ १२९ ॥

बौ०—यह सुन संतु कथा संकल्प। सुन संभाव्य समन विचरा ॥

भय मंद - संकल्प भिन्न। सब रत्न सज्ज विम एत ॥ १ ॥

समुत्तराका यह कथापथकी संवाद सुन उत्तर करनेवाले और शेषका नाम करनेवाला है। नय-मयका नाम करनेवाला, कन्दोलीका नाम करनेवाला, मरुकेसे आनन्द देनेवाला और संत पुरुषोंकी निम है ॥ १ ॥

राम उपदेश के सब कहैं। कवि संत विम कथन पाहीं ॥

सुनति कुरी पत्रकवि गथा। मैं यह पत्रक पत्रि सुनरा ॥ २ ॥

काह्ये जो (जिसे भी) रामचरित हैं, उनको तो इस रामकथाके लक्षण सुन

मी भिन्न नहीं है। श्रीरामजीकी छत्रासे मैंने यह सुन्दर और पवित्र करनेवाला चरित्र अपनी बुद्धिसे अनुसर गाथा है ॥ २ ॥

पूहि कथिकाळ न सावध बूझ । योग जन्म आ छप मत् पूता ॥

उमहि सुशिरिष गच्छत रामहि । संसत सुनिष सम गुन ममहि ॥ १ ॥

[तुलसीदासजी कहते हैं—] इस कविकल्पमें योग, वश, बध, लप, मत् और पूता आदि कोई दूसरा साधन नहीं है। वस, श्रीरामजीका ही स्वरूप करना, श्रीरामजीका ही गुण गाना और निरन्तर श्रीरामजीके ही गुणगुणोंको छनना चाहिये ॥ २ ॥

कानु पठित । शवध वध शवध । कानहि कवि छुति संत पुरावा ॥

कानि भनीदि मव लमि कुटिबई । राम भवें यति केहि नहि पाई ॥ ३ ॥

पठितोंको पवित्र करना किन्दा मन्त्र (प्रविष्ट) काना है—देखा कवि, वेद, संत और पुराण गाते हैं—हे मम ! कुटिलता त्याग कर उन्हींको भव । श्रीरामको भवनेसे कितने प्रेम लगे नहीं पायी ॥ ४ ॥

७—पार्य न केहि गति पठित पावन राम भवि सुख सत भवा ।

गविष्य मन्त्रामिळ व्याध भीष गजबदि सत तरे वना ॥

आभीर अमन निरपत वास आपवादि अति मन्त्ररूप जे ।

कहि लाम करक टेपि पावन होहि राम ममामि ते ॥ १ ॥

जो सुख मन । गुन, पठितोंको भी पवन करनेवाले श्रीरामको भजकर किन्हे परमाति नहीं पायी । शक्ति, अन्नामि, व्याध, भीष, मन्त्र आदि बहुत-से पुष्टोंको उन्होंने तार दिया । आभीर, दान, निरपत, वास, मन्त्र (वाक्याल) आदि जो अत्यन्त पावन हो हैं, वे भी केवल एक बार किन्हीं नाम लेकर पवित्र हो जाते हैं, उन श्रीरामजीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

रघुर्वंश भूषन चरित यह कर कछहि सुनहि जे गावहीं ।

कलि मल ममेसल जोह बिनु भ्रम राम भ्रम सिधावहीं ॥

संत पंच चौपाई मनेहर जनि को कर कर छै ।

दांस भविदा पंच अंगित विचार श्री रघुवर हरे ॥ २ ॥

‘जो मनुष्य रघुवंशके भूषण श्रीरामजीका यह चरित्र करते हैं, सुनते हैं और गाते हैं, वे कलियुगके पाप और भ्रमे मलमें जोकर बिना ही परिश्रम श्रीरामजीके परम भ्रमको पके जाते हैं [अधिक वना] जो मनुष्य पंच-सत चौपाइयोंको भी मनेहर’ बनाकर [अथवा रामायणीकी चौपाइयोंको मने पंच (केन्द्रमाकेन्द्रक सदा निर्णायक) जानकर उनके] हृदयमें बाण कर केत है, उनके भी पंच प्रसंगकी अविधाओंसे उत्पन्न निरर्थकों श्रीरामजी इष्ट कर लेते हैं (क्याही करे रामचरितके दो शब्द ही ‘क्या है’ जो पंच-सत चौपाइयोंको भी समझकर उत्तम अर्थ हृदयमें बाण कर लेते हैं, उनके भी अविव्याजित तारे केले श्रीरामजीकी हर लेते हैं ।) ॥ २ ॥

सुंदर सुखम छपा निष्काम मन्त्र पर कर अति जो ।

सो एक राम कवचम हित निर्विकल्पक सम जान को ॥

माओ छक उपजेस ते मतिमंद तुलसीदासहैं ।

पायो परम निष्काम राम समस्त प्रभु नार्ही कहैं ॥ ३ ॥

[परम] सुन्दर, सुखम और कल्पनिष्काम छपा जो कवचोंपर प्रेम करते हैं, ऐसे एक श्रीरामचरित ही हैं। इनके सब निष्काम (निष्कार्य) हित करनेवाला

(सुहृद्) और मोक्ष देनेवाला दूसरा जैन है ! बिनाही केवलान कृपाते मन्त्रुधि दुलसीदाखे भी परम शान्ति प्राप्त कर ली, तब औरतजीके कथन पद्य कहीं भी नहीं हैं ॥ ३ ॥

दो—भो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रखवीर ।

अस विचारि रखुचंस भवि हरहु विषम मध भीर ॥ १३० (क) ॥

हे औरतजी ! जो समान कोई दीन नहीं है और आपके समान कोई दीनोका हित करनेवाला नहीं है । ऐसा विचार कर हे रखुचंसल ! मेरे नन्द-करके मन्त्रक दुःखका हरण कर लीजिये ॥ १३० (क) ॥

कामिहि चारि विप्रारि जिमि लोचिहि मिम जिमि राम ।

तिमि रखुवाच निरंतर मिम लबहु मोहि राम ॥ १३० (ख) ॥

जैसे कानीको ली मिम लगी है और लोचोको जैसे बन प्याप लगा है, वैसे ही हे रखुवाचजी ! हे रामजी ! आप निरन्तर मुझे मिम भरीये ॥ १३० (ख) ॥

श्लोक—प्राप्त्यै प्रशुभा कृतं सुप्रतिभा श्रीसम्पुन दुर्धनं

श्रीमद्रामपद्माब्जमकिमनिशं प्राप्स्यै तु रामकम्पम् ।

मत्स्य सद्रुचाचनमनिरतं स्यात्सत्समस्यानये

मायवदमिदं चकार तुलसीदासदाया मावसम् ॥ १ ॥

श्रेष्ठ कवि भागवत् श्रीकृष्णजीने पहले किता दुर्धन मन्त्र-रामकम्पकी, श्रीरामजीके चरणकमलमें मिल-निरन्तर [अन्त्य] भक्ति प्राप्त होनेके लिये, रचना की थी, उस भागवत-रामकम्पकी श्रीरुद्रनाथजीके नाममें निरत चलकर अपने मन्त्राकारको अन्धकारकी पिटा देनेके लिये दुलसीदासने इस कानको सम्ये भागवद किया ॥ १ ॥

पुण्यं कापहरं तदा शिषकरं विज्ञप्तमकिमर्धं

मायामोहमलान्धं सुषिमलं प्रेमसम्पुर्णं सुधम् ।

श्रीमद्रामचरित्रममसमिदं अक्षयाचगाहन्ति ये

ते संसारसमूहोपकिरौहन्ति नो मन्त्रवाः ॥ २ ॥

यह श्रीरामचरित्रमन्त्र-पुण्यजन, प्रलेश हरण करनेवाला, तदा कलाचकारी, पिधान और मज्जिते देनेवाला, मन्त्रा मोह और मलान नाश करनेवाला, परम निर्मल प्रेमरसो कहे परिपूर्ण तथा मन्त्रजन है । जो मन्त्रय यत्किमर्धक इस भागवत-श्रीरामचरित्रे गीत लगाते हैं, वे संसाररुपी दुर्धनो बलि प्रचण्ड किरणोंसे नहीं जलते ॥ २ ॥

मासमासम्, सीधवाँ निवास ।

नवाह्वयमासम्, नवाँ निवास ॥

इति श्रीमद्रामचरित्रमानते सकलशक्तिपुष्पविभक्तने सत्मा योगना समाप्तः ।

कविगुरुके कथने पार्श्वे नाथ करनेवाले श्रीरामचरित्रमन्त्रक यह शतार्थ योगना समाप्त हुआ ।

(सत्तराष्टक समाप्त)

श्रीरामायणजीकी आरती

आरति श्रीरामायणजी की । कीरति कलित ललित सिध पी की ॥

गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद ।

बालमीक बिग्यान विसारद ॥

धुक सनकादि सेव अरु सारद ।

बरानि पवनपुत्र कीरति नीकी ॥ १ ॥

गावत वेद पुरान अष्टदस ।

छओ साज्ञ सब ग्रंथन को रस ॥

मुनि जन धन संतन को सरबस ।

सार अंस संमत सबही की ॥ २ ॥

गावत संतत संभु भवानी ।

अरु घटसंभव मुनि बिग्यानी ॥

व्यास आदि कबिबर्ज बखानी ।

कागमुमुडि गरुड के ही की ॥ ३ ॥

कलि मल हरनि विषय रस फीकी ।

सुभग सिंगार मुक्ति जुबती की ॥

दलन रोग भव मूरि अभी की ।

तात मात सब विधि तुलसी की ॥ ४ ॥

विनय-पत्रिका

संस्कृत हिन्दी-टीकासहित, टीकाकार—श्रीगुरुजीदासजी शोधर, एम. ए. लखनऊ हिन्दी भाषामें लखनऊ संग्रहालयमें रखा ही सुन्दर भाषापूर्ण एवं लिखा है और वक्तमें १६ पृष्ठ पर्यंत आये हुए कथामयके समाने गये हैं। पृष्ठ-संख्या १०१, सुन्दर मुद्रण विन, मूल्य १), सविन्द १।)

गीतावली

हिन्दी-अनुवादसहित, मुद्रणमें देसे-देसे अच्छे मसूदा हैं जिन्हें गाने-गाते और सुनते-सुनते मन मग्न होकर आनन्दमें विचार हो जाता है। पृष्ठ १२१, विन १। एम. ए. मूल्य १), सविन्द १।)

कवितावली

हिन्दी-अनुवादसहित, मुद्रणमें श्रीगुरुजीदासजी महाराजने रामायणकी तरह ही सारा कथामय श्रीगुरुजीदासजी वर्य कविमें लिखा है। पृष्ठ २२१, सुन्दर विन १। मूल्य १।)

दोहावली

अनुवादसहित, अनुवादक—श्रीगुरुजीदासजी शोधर। शक्ति, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति और शिक्षा आदि आध्यात्मिक विषयोंपर कवि केने का ही शोधका वह पदा ही समूह संग्रह है। श्रीगुरुजीदासजी सुन्दर विन १। मूल्य १।)

श्रीरामचरितमानस मूल-मुद्रण

आकार सुन्दरान्तर्गत वही, पृष्ठ-संख्या ६८०, इसमें हुने हुए कविमें सुन्दर विन, श्रीगुरुजीदासजी और श्रीगुरुजीदासजी एम. ए. मूल्य १।), आर. वर्य २,२०,००० का सुनी है।

इसमें सम्पूर्ण मानसके विन कथामय और रामायणके विन-राम, संक्षिप्त विन-मूल्य, रामायण-विन, रामायण-अनुवाद, श्रीगुरुजीदासजी वर्य और सम्पूर्ण श्रीगुरुजीदासजी माली भी है, जिससे पुस्तक अधिक बचपने हो गयी है।

श्रीरामचरितमानस मूल-मसूदा साहज

आकार सुन्दरान्तर्गत वही, पृष्ठ-संख्या ६८०, सुन्दर विन, कथामय विन, श्रीगुरुजीदासजी माली वर्य विन, मूल्य २।)

इसके अतिरिक्त पुस्तकमें विने हुए विन-राम, विन-मूल्य, रामायण-विन आदि सभी विन पुस्तकमें भी वे ही वही हैं।

राम-गीतावली, गुरुजीदासजी



